

दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण



सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२५ – भाग ३

(मार्च)

पृष्ठ १ से ११४२

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित
इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार

माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन

माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी.चौहान

माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बरनवाल, अधिवक्ता

२. सुश्री प्रिया अग्रवाल, अधिवक्ता

३. श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

४. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

५. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता

६. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

७. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

८. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

९. श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

१०. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति	
माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता (वरिष्ठ न्यायमूर्ति इलाहाबाद)	३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्र	३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री पियूष अग्रवाल
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अताउ रहमान मसूदी (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन राय	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री करुणेश सिंह पवार
९. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४०. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
११. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर बी सराफ	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजबीर सिंह
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयन्त बनर्जी	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	४७. माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.जे. मुनीर	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीश कुमार
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री दोनाडी रमेश
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मुईन	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव- प्रथम
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्रीप्रकाश सिंह
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुधवार

६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मुहम्मद अजहर हुसेन इदरीसी
६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्र
६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिज़वी
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीश कुमार निगम
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
७२. माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ल
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रवीण कुमार गिरि

3.इला	वर्णमाला सूचकांक आईओएलओआरओ मार्च 2025 (भाग-3)	1
अकरम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य		पृष्ठ-1051
अदील अहमद खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य		पृष्ठ-74
अरविंद कुमार सिंह बनाम लोक आयुक्त, उत्तर प्रदेश एवं अन्य		पृष्ठ-1074
अविनाश शर्मा बनाम सोभान लाल और अन्य		पृष्ठ-628
अशोक कुमार वर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-359
अशोक गांधी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-326
अश्वनी कुमार श्रीवास्तव बनाम प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई के माध्यम से		पृष्ठ-362
आकाश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-565
आजा राम बनाम संयुक्त-संचालक चकबन्दी एवं अन्य		पृष्ठ-297
आमना खातून सी/ओ राजीब अहमद और अन्य बनाम ए.एम.यू. और अन्य		पृष्ठ-226
आयकर आयुक्त (केंद्रीय) कानपुर बनाम श्री उमंग अग्रवाल		पृष्ठ-640
आयुक्त, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ बनाम एस/एस जानकी इंडस्ट्रीज, नई बस्ती, बरेली		पृष्ठ-414
आर. के. प्रसाद एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य		पृष्ठ-1078
उ.प्र.राज्य एवं अन्य बनाम महेन्द्र पालीवाल एवं अन्य		पृष्ठ-380
उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम प्रोफेसर बिमल जायसवाल और अन्य		पृष्ठ-654
उमंग अग्रवाल बनाम आयकर आयुक्त, केंद्रीय सर्किल और अन्य		पृष्ठ-634
उषा देवी @ उर्मिला देवी एवं अन्य बनाम मालती देवी एवं अन्य		पृष्ठ-1025

ओमपाल सिंह, सिंचाई पर्यवेक्षक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-675
कन्यावती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1135
कपिल कसाना बनाम भारत संघ व अन्य	पृष्ठ-59
कल्याण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-964
कांति देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-90
कुलसचिव महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय, बरेली एवं अन्य बनाम फिरोज अहमद एव अन्य	पृष्ठ-389
खजांची बनाम प्रीते	पृष्ठ-52
गेंदन लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-486
गोविंद प्रसाद निषाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-466
गोविन्द राम पाण्डे एव एक अन्य बनाम नूतन प्रकाश एवं अन्य	पृष्ठ-132
गौरव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1105
चंदन सिंह @ चंद्र पाल सिंह बनाम उप-संचालक चकबन्दी, सीतापुर एवं अन्य	पृष्ठ-735
जगमोहन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-252
जनता प्रसार समिति एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-952
जय पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1097
टाटा एआईजी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अमन कुमार व अन्य	पृष्ठ-42
डीआईजी यूपी पुलिस मुख्यालय, इलाहाबाद एवं अन्य बनाम श्रीमती मितलेश एवं अन्य	पृष्ठ-31

3.इला	वर्णमाला सूचकांक आईओएलओआरओ मार्च 2025 (भाग-3)	3
डॉ. सुमन जैन बनाम भारत संघ एवं अन्य		पृष्ठ-1066
तौफीक अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य		पृष्ठ-179
शॉट्सोल इंफोटेक प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य		पृष्ठ-751
दिनेश कुमार कुरेल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य		पृष्ठ-666
दिलीप कुमार सिंह राजपूत एवं अन्य बनाम स्टेट आफ यू.पी. एवं अन्य		पृष्ठ-231
दीपक कुमार वर्मा बनाम भारत संघ एवं अन्य		पृष्ठ-806
देवेंद्र कुमार @ झुन्ना एवं अन्य बनाम सरकार		पृष्ठ-509
धर्म पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-470
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड लखनऊ बनाम गौरव शर्मा और अन्य		पृष्ठ-7
पवन कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य		पृष्ठ-987
प्रवीण कुमार अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य		पृष्ठ-609
प्रियंकर उपाध्याय बनाम भारत संघ एवं अन्य		पृष्ठ-449
बलधीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य		पृष्ठ-601
मुकुल कुमार जैन एवं एक अन्य बनाम सी.बी.आई.		पृष्ठ-208
मुन्ना लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-437
मेसर्स आनंदेश्वर एग्रो फूड्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-1111
मेसर्स इंग्रेविया लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य		पृष्ठ-943

मेसर्स एल.आर. प्रिंट सॉल्यूशंस बनाम मेसर्स एक्सफ्लो सैनिटेशन प्राइवेट लिमिटेड व अन्य	पृष्ठ-120
मेसर्स गुरुनानक सुपारी ट्रेडर्स बनाम आयुक्त, वाणिज्य कर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश एवं अन्य	पृष्ठ-348
मेसर्स जया ट्रेडर्स बनाम अपर आयुक्त ग्रेड-II एवं अन्य	पृष्ठ-335
मेसर्स दुर्गा ट्रेवल्स व अन्य बनाम ऋण वसूली अधिकरण, लखनऊ व अन्य	पृष्ठ-80
मेसर्स भारत एंटरप्राइजेज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-972
मेसर्स सोल्वी एंटरप्राइजेज बनाम अपर आयुक्त ग्रेड 2 व अन्य	पृष्ठ-427
मैसर्स जय प्रकाश एसोसिएट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-810
मैसर्स मनोज पेट्रोलियम एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-929
मोहम्मद खालिद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-171
योगेश्वर राज नगर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश और अन्य	पृष्ठ-99
रजनीश कुमार पाण्डेय बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-699
रमा शंकर एवं अन्य बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद एवं अन्य	पृष्ठ-319
राज किरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1063
राज कुमार चतुर्वेदी बनाम उ.प्र. आवास एवं विकास परिषद व अन्य	पृष्ठ-114
राज कुमार सिंह बनाम भारत संघ और अन्य	पृष्ठ-692
राजू बनाम कलेक्टर सीतापुर और अन्य	पृष्ठ-995
राजू मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1036

राजेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-576
राधेश्याम शुक्ला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-726
राम नारायण राम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-272
राम भरोसे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-475
रामसुजान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-536
रास बिहारी श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-247
विजय कुमार दीक्षित बनाम भारत संघ और अन्य	पृष्ठ-983
विजय प्रताप सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-786
शफीक अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-400
शिवाकर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-409
श्री रामदेव संस्कृत महाविद्यालय के मुख्य प्रबंधक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-920
श्रीमती बिगनी देवी बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी न्यायाधिकरण, लखनऊ और अन्य	पृष्ठ-1000
श्रीमती मैमुना बेगम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-378
श्रीमती रेन् बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-649
श्रीमती संतोष अवस्थी बनाम श्रीमती उर्मिला जैन	पृष्ठ-158
श्रीमती सुमन प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-200
श्रीमती सुशीला श्रीवास्तव बनाम राजस्व बोर्ड उ.प्र. एवं अन्य	पृष्ठ-291

<u>संजय कुमार सेंगर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</u>	पृष्ठ-279
<u>सत्यवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य</u>	पृष्ठ-961
<u>सरवर हुसैन बनाम प्रबंध निदेशक उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड, लखनऊ</u>	पृष्ठ-715
<u>सीमा पदालिया और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य</u>	पृष्ठ-975
<u>सुरेंद्र गुप्ता बनाम अपीलीय प्राधिकारी राज्य जीएसटी/अपर आयुक्त ग्रेड II एवं अन्य</u>	पृष्ठ-354
<u>सूर्य लाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</u>	पृष्ठ-1012
<u>सौरभ लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य</u>	पृष्ठ-1072

अनुराधा

(2025) 3 ILRA 5

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

आदेश से प्रथम अपील संख्या 137/2017

और

आदेश से प्रथम अपील संख्या 217/2017

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड लखनऊ

...अपीलकर्ता

बनाम

गौरव शर्मा और अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्रीमती पूजा अरोरा

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री आशीष चतुर्वेदी

दीवानी विधि - मोटर यान अधिनियम, 1908 - धारा 166 व 173 - प्रतिकर की वृद्धि - दावाकर्ता द्वारा दावा याचिका यह अभिकथन करते हुए दाखिल की गई कि दावाकर्ता आपेक्षिक ट्रक के चालक के लापरवाहीपूर्ण चालन के कारण दुर्घटनाग्रस्त हो गया, अस्पताल में उसका बायाँ पैर काट दिया गया - स्वीकृत की गई और प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया - आक्षेपित आदेश - अभिनिर्धारित, मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी विकलांगता प्रमाण-पत्र जिस पर एक हस्ताक्षरकर्ता के रूप में अस्थि शल्य चिकित्सक के हस्ताक्षर हैं - प्रमाण-पत्र 70% की स्थायी विकलांगता दर्शाता है - सही अवधारित किया गया। (पैरा 10, 13, 41)

अधिकरण ने पीड़ा और कष्टों के लिए 50,000/- रुपये, सुख-सुविधाओं की हानि और वैवाहिक जीवन में गिरावट के लिए 1,00,000/- रुपये अधिनिर्णीत किए - दावाकर्ता जो इंटरमीडिएट का छात्र था और 18 वर्ष की आयु का, अच्छा खिलाड़ी था, एक पैर की हानि के कारण वह इसे खेलने में असमर्थ हो गया, इसलिए, इसकी तुलना धन के रूप में नहीं की जा सकती क्योंकि वह भविष्य में किसी भी क्षेत्र में अपना जीवन-वृत्त बना सकता था किन्तु वह वैसा नहीं कर सकता है, इसलिए, प्रतिकर को 1,50,000/- रुपये तक बढ़ाया जाना है। (पैरा 42)

भविष्य के उपचार के दावे के संबंध में, 2,00,000/- रुपये पर्याप्त होंगे क्योंकि उसी के ब्याज से, दावाकर्ता भविष्य में उक्त व्ययों को पूरा कर लेगा - इस प्रकार, दावाकर्ता ब्याज सहित प्रतिकर के लिए हकदार है। (पैरा 43)

रिट याचिका आंशिक रूप से मंजूर। (ई-13)

उल्लिखित वादों की सूची:

1. राज कुमार बनाम अजय कुमार और अन्य; (2011) 1 एससीसी 343/ 2011 एसीजे 1, (पैरा 12, 13, 19)
2. गोपाल, कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ और अन्य; एआईआर 1968 एससी 1413/ 1968 एससीसी ऑनलाइन एससी 63
3. ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड नांदेड़ बनाम प्रकाश शाहूराज माली और अन्य; 2020 (1) टीएसी 938
4. राजेश कुमार @ राजू बनाम युद्धवीर सिंह और अन्य; एआईआर 2008 एससी 2396
5. नेशनल टेक्सटाइल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम नरेश कुमार बट्टी कुमार जगद और अन्य; 2011 (12) एससीसी 695/ 2011 (29) एलसीडी 1793
6. अनीता शर्मा और अन्य बनाम न्यू इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य; (2021) 1 एससीसी 171, (पैरा 21, 22)
7. सुनीता और अन्य बनाम राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य; (2020) 13 एससीसी 486, (पैरा 22)
8. लक्ष्मण @ लक्ष्मण मौर्य बनाम डिवीजनल मैनेजर, ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य; (2011) 10 एससीसी 756, (पैरा 8, 14, 15)
9. नागप्पा बनाम गुरुदयाल सिंह और अन्य; (2003) 2 एससीसी 274
10. गोविंद यादव बनाम न्यू इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड; 2011 (10) एससीसी 683
11. आर.डी. हट्टांगडी बनाम पेस्ट कंट्रोल (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य; (1995) 1 एससीसी 551
12. जी. रविंद्रनाथ @ आर. चौधरी बनाम ई श्रीनिवास और अन्य; (2013) 12 एससीसी 455
13. लक्ष्मणा गौड़ा बी.एन. बनाम ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य; (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 786
14. जगदीश बनाम मोहन और अन्य; (2018) 4 एससीसी 571, (पैरा 14)
15. यूपीएसआरटीसी गाजियाबाद बनाम श्रीमती नीरजा भाटिया और अन्य; प्रथम अपील आदेश संख्या 1726 ऑफ 2001, आदेश की तारीख 04.08.2023
16. उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम भवानी प्रसाद मांझी; 2024 एससीसी ऑनलाइन एआईआई 7385
17. फूल चंद यादव और अन्य बनाम केदार यादव और अन्य; 2011 एससीसी ऑनलाइन एआईआई 1036
18. कोल इंडिया लिमिटेड और अन्य बनाम उज्ज्वल ट्रांसपोर्ट एजेंसी और अन्य; (2011) 1 एससीसी 117
19. पंकजभाई रमेशभाई ज़लावड़िया बनाम जेठाभाई कालाभाई ज़लावड़िया; (2017) 9 एससीसी 700, (पैरा 16)

20. प्रभावती और अन्य बनाम द मैनेजिंग डायरेक्टर, बेंगलूर मेट्रोपॉलिटन, ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन; 2025 लाइवलों (एससी) 266, (पैरा 11)

21. सैयद सिद्दीकी बनाम डिविज़नल मैनेजर यूनाइटेड इंडिया; 2014 (1) टीएसी 369 एससी 22. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी; (2017) 16 एससीसी 680

23. सरला वर्मा बनाम डीटीसी (2009) 6 एससीसी 121, (पैरा 42)

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. श्रीमती पूजा अरोड़ा, एफ.ए.एफ.ओ. सं. 137 / 2017 में अपीलार्थी की विद्वान अधिवक्ता और एफ.ए.एफ.ओ. सं.217 / 2017 में प्रतिवादी सं.1 की विद्वान अधिवक्ता (इसमें इसके पश्चात् बीमा कंपनी की विद्वान अधिवक्ता के रूप में संदर्भित) और श्री आशीष चतुर्वेदी, एफ.ए.एफ.ओ. सं.137 / 2017 में दावाकर्ता-प्रतिवादी सं.1 के विद्वान अधिवक्ता और एफ.ए.एफ.ओ. सं.217 / 2017 में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता (इसमें इसके पश्चात् दावाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के रूप में संदर्भित) को सुना। स्वामी अर्थात् दोनों अपीलों में प्रतिवादी सं.2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. एफ.ए.एफ.ओ. सं.137 / 2017 मोटर यान अधिनियम, 1908 (इसमें इसके पश्चात् एमवी अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 173 के अधीन, दावा याचिका सं.163 / 2011 (गौरव शर्मा बनाम राजेश कुमार तिवारी व एक अन्य) में पारित निर्णय और पंचाट दिनांक 23.11.2016 को चुनौती देते हुए दाखिल की गई है। एफ.ए.एफ.ओ. सं.217 / 2017 प्रतिकर की वृद्धि के लिए दाखिल की गई है। अतः दोनों अपीलें संबद्ध की जाती हैं और इस सामान्य निर्णय और आदेश से एक साथ विनिश्चित की जाती हैं।

3. बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दावाकर्ता; गौरव शर्मा, जो पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में उपस्थित हुआ, ने अपनी प्रति-परीक्षा में यह स्वीकार किया कि उसने स्कूटी के अपने पश्च दृश्य दर्पण में देखा था कि ट्रक उसके पीछे की ओर आ रहा है किन्तु उसने स्वयं को बचाने का प्रयास नहीं किया था, इसलिए, उसकी अंशदायी उपेक्षा से इंकार नहीं किया जा सकता है किन्तु विद्वान अधिकरण इस पर विचार करने में विफल रहा है। पी.डब्ल्यू.-2 ने अपने साक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि उसने सुनने के पश्चात् दुर्घटना देखी थी, इसलिए, उसे दुर्घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार, आपेक्षिक ट्रक का उतावलापन और लापरवाहीपूर्ण चालन भी सिद्ध हुआ नहीं कहा जा सकता है, किन्तु विद्वान अधिकरण इन सभी पर विचार करने में विफल रहा। वह आगे निवेदन करती हैं कि संबंधित चिकित्सक को यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है कि दुर्घटना में उसे हुई निःशक्तता के कारण दावाकर्ता को भविष्य में हानि की सीमा क्या होगी, इसलिए, विद्वान अधिकरण द्वारा इस संबंध में किया गया आकलन पोषणीय नहीं है। इसके अतिरिक्त भी, पुराने अधिनियम के अनुसार स्थायी निःशक्तता को मोटर यान अधिनियम की धारा 163-क के अधीन प्रार्थना-पत्र में उपरोक्त अधिनियम की अनुसूची-II के निबंधनों में अवधारित किया जा सकता था। अंत में, वह

निवेदन करती हैं कि धारा 163-क के अधीन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने के लिए प्रारूप एसआर-49 में दिया गया है और अधिकरण उपरोक्त धारा के उपबंधों से परे नहीं जा सकता था और दावा याचिका को मोटर यान अधिनियम की धारा 166 के अधीन मानते हुए दावाकर्ता को प्रतिकर अनुज्ञात नहीं कर सकता था। उपरोक्त के आधार पर, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विद्वान अधिकरण द्वारा पारित निर्णय और पंचाट पोषणीय नहीं है और अपास्त किए जाने योग्य है।

4. प्रतिकर की वृद्धि के लिए बीमा कंपनी की अपील का विरोध करते हुए, दावाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अपील भ्रामक और निराधार आधारों पर दाखिल की गई है। दुर्घटना में हुई निःशक्तता के कारण भविष्य की हानि को सिद्ध करने के लिए चिकित्सक को प्रस्तुत नहीं किया गया था और खेल से किसी भी आय या किसी अन्य दावे के संबंध में कोई प्रमाण दाखिल नहीं किया गया है, इसलिए, अपील भ्रामक और निराधार आधारों पर दाखिल की गई है, जो खारिज किए जाने योग्य है।

5. वह राज कुमार बनाम अजय कुमार व एक अन्य; (2011) 1 एससीसी 343/ 2011 एसजे 1, गोपाल, कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ व अन्य; एआईआर 1968 एससी 1413/ 1968 एससीसी ऑनलाइन एससी 63, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एट नांदेड़ बनाम प्रकाश शाहूराज माली व अन्य; 2020 (1) टीएसी 938, राजेश कुमार उर्फ राजू बनाम युद्धवीर सिंह व एक अन्य; एआईआर 2008 एससी 2396, नेशनल टेक्सटाइल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम नरेश कुमार बट्टी कुमार जगद व अन्य; 2011 (12) एससीसी 695/ 2011 (29) एलसीडी 1793, अनीता शर्मा व अन्य बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कं. लिमिटेड व एक अन्य; (2021) 1 एससीसी 171 और सुनीता व अन्य बनाम राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम व अन्य; (2020) 13 एससीसी 486 पर विश्वास व्यक्त करती हैं।

6. इसके प्रतिकूल, दावाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दुर्घटना और आपेक्षिक ट्रक के चालक का उतावलापन और लापरवाहीपूर्ण चालन अधिकरण के समक्ष दावाकर्ताओं द्वारा सिद्ध कर दिया गया है और केवल इसलिए कि दावाकर्ता ने अपनी प्रति-परीक्षा में यह कहा है कि उसने अपनी स्कूटी के पश्च दृश्य दर्पण में ट्रक को अपनी पीछे की ओर आते हुए देखा था, यह उसकी ओर से किसी अंशदायी उपेक्षा के अवधारण का आधार नहीं हो सकता क्योंकि उसने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि वह सड़क के बाएँ ओर 30-40 किमी/घंटा की गति से जा रहा था और यदि ऐसी स्थिति में ट्रक ने पीछे की ओर से टक्कर मारी, तो यह केवल आपेक्षिक ट्रक के चालक के उतावलेपन और लापरवाहीपूर्ण चालन के कारण ही हो सकता है। इस प्रकार, पंचाट को चुनौती देते हुए अपीलार्थी द्वारा दाखिल की गई अपील भ्रामक है और खारिज किए जाने योग्य है। वह आगे निवेदन करते हैं कि यद्यपि अपील मोटर यान अधिनियम की धारा 163-क के अधीन दाखिल की गई थी, किन्तु इसे मोटर यान अधिनियम की धारा 166 के अधीन एक प्रार्थना-पत्र के रूप में निपटा गया था और ट्रक चालक के उतावलेपन और लापरवाहीपूर्ण चालन के संबंध में बीमा कंपनी या किसी अन्य पक्षकार की ओर से बिना किसी आपत्ति के वादबिंदु विरचित करने के पश्चात्, इसलिए, विद्वान अधिकरण ने दावा याचिका का विधि के अनुसार

सही रूप से विनिश्चय किया है और एक बार जब इसका विनिश्चय कर दिया गया है तो बीमा कंपनी इस संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठा सकती है।

7. प्रतिकर की वृद्धि के लिए अपनी अपील पर बल देते हुए दावाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि घायल कक्षा-12 का छात्र था। पढ़ाई के अलावा, वह क्रिकेट खेलता था और एक तेज गेंदबाज था। उसने कई प्रतियोगिताओं में भाग लिया था और कुछ ट्रॉफियाँ भी प्राप्त की थीं और दुर्घटना में हुई निःशक्तता के कारण, उसे क्रिकेट खेलने से रोक दिया गया है और यदि उसे निःशक्तता नहीं हुई होती, तो वह क्रिकेट खेलना जारी रख सकता था और राष्ट्रीय क्रिकेट में खेल सकता था। वह आगे निवेदन करते हैं कि विद्वान अधिकरण ने दावाकर्ता द्वारा दावा किए गए सभी शीर्षों पर प्रतिकर अनुज्ञात नहीं किया है, इसलिए, निर्णय और पंचाट उपांतरित किए जाने योग्य है और प्रतिकर तदनुसार बढ़ाए जाने योग्य है।

8. वह लक्ष्मण @ लक्ष्मण मौर्य बनाम डिविज़नल मैनेजर, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य; (2011) 10 एससीसी 756, नागप्पा बनाम गुरुदयाल सिंह और अन्य; (2003) 2 एसएससी 274, गोविंद यादव बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड; 2011 (10) एससीसी 683, आर.डी. हट्टंगडी बनाम पेस्ट कंट्रोल (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य; (1995) 1 एससीसी 551, राज कुमार बनाम अजय कुमार और अन्य; (2011) 1 एससीसी 343/2011 एसीजे 1, जी. रविंद्रनाथ @ आर. चौधरी बनाम ई श्रीनिवास और अन्य; (2013) 12 एससीसी 455, लक्ष्मणा गौड़ा बी.एन. बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य; (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 786, जगदीश बनाम मोहन और अन्य; (2018) 4 एससीसी 571, यू.पी.एस.आर.टी.सी., गाजियाबाद बनाम श्रीमती नीरजा भाटिया और अन्य; फर्स्ट अपील फ्रॉम ऑर्डर नंबर 1726 ऑफ 2001, उत्तर प्रदेश स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम भवानी प्रसाद मांझी; 2024 एससीसी ऑनलाइन एआईआई 7385 पर निर्भर करता है।

9. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के निवेदनों पर विचार किया है और अभिलेखों का परिशीलन किया है।

10. दावा याचिका दावाकर्ता द्वारा यह अभिकथन करते हुए दाखिल की गई थी कि दावाकर्ता दिनांक 05.08.2010 को आपेक्षिक ट्रक सं.यू.पी.32-जेड-0458 के चालक के लापरवाहीपूर्ण चालन के कारण कृष्णा नगर कोतवाली के निकट दुर्घटनाग्रस्त हो गया, जिसके कारण उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया और अस्पताल में उसका बायाँ पैर काट दिया गया। दावाकर्ता स्कूटर एक्टिवा सं.यू.पी.32-बीडी-9557 पर सवार होकर धीरे और सावधानी से सड़क के बाएँ ओर सभी यातायात नियमों का पालन करते हुए अपने निवास स्थान से कृष्णा नगर जा रहा था। जब वह कृष्णा नगर कोतवाली के निकट पहुँचा, तो ट्रक सं.यू.पी.32-जेड-0458 ने उसके चालक द्वारा उतावलेपन और लापरवाही से वाहन चलाते हुए पीछे से दावाकर्ता के स्कूटर को टक्कर मार दी, जिसके कारण दावाकर्ता गिर गया और उसे गंभीर क्षतियाँ हुईं, जिसके कारण उसका बायाँ पैर काट दिया गया। ट्रक चालक को दुर्घटना स्थल से स्थानीय निवासियों द्वारा पकड़ा गया और कृष्णा नगर पुलिस स्टेशन को सौंप दिया गया और वे

दावाकर्ता को क्षेत्र के लाल अस्पताल भी ले गए, जहाँ से उसे उसी तिथि को ट्रॉमा सेंटर, मेडिकल कॉलेज, लखनऊ के लिए संदर्भित किया गया। दावाकर्ता की श्रोणि अस्थि टूट गई थी। कुछ दिनों के पश्चात् दावाकर्ता को विवेकानंद पॉलीक्लिनिक में स्थानांतरित कर दिया गया, जहाँ नाजुक स्थिति के कारण उसका बायाँ पैर काट दिया गया। कुछ समय पश्चात् उसे सहारा अस्पताल में स्थानांतरित कर दिया गया जहाँ से वह अंततः दिनांक 25.09.2010 को छुट्टी दे दिया गया। उसके पश्चात् भी उपचार चल रहा है।

11. यह आगे अभिकथित किया गया है कि दावाकर्ता पढ़ाई में अच्छा था और कक्षा-12 में पढ़ रहा था। वह एक बहुत अच्छा खिलाड़ी भी था। उसने तेज गेंदबाज के रूप में दो बार जिला स्तर पर सी.के. नायडू क्रिकेट टूर्नामेंट में भाग लिया था। उसने गली-10 क्रिकेट प्रतियोगिता और जिला स्तर 20-20 क्रिकेट प्रतियोगिता में भी भाग लिया। उसने जिला स्तर पर तेज गेंदबाज प्रतियोगिता में भी भाग लिया। उसका भविष्य उज्ज्वल था और यदि वह उपरोक्त दुर्घटनाग्रस्त नहीं हुआ होता, तो दावाकर्ता के राष्ट्रीय स्तर का क्रिकेटर बनने की संभावनाएँ थीं। दावाकर्ता की आय 3000/- रुपये प्रति माह दावा की गई थी। इस प्रकार, यह अभिवचन किया गया था कि दुर्घटना के कारण, एक अच्छा खिलाड़ी और एक अच्छा छात्र विकलांग का जीवन जीने के लिए विवश है क्योंकि वह स्थायी रूप से निःशक्त हो गया था। तदनुसार, प्रतिकर का दावा किया गया था।

12. दावा याचिका का प्रतिवादी सं.1 अर्थात् स्वामी द्वारा दावा याचिका में किए गए अभिकथनों को अस्वीकार करते हुए विरोध किया गया था और उसमें यह प्रकट किया गया कि ट्रक सं. यू.पी.32-जेड-0548 का पंजीकरण, बीमा पॉलिसी, चालक का अनुज्ञप्ति, परमिट, फिटनेस इत्यादि ठीक क्रम में थे, इसलिए, यदि कोई प्रतिकर का भुगतान किया जाना है, तो बीमा कंपनी प्रतिकर की राशि का भुगतान करने के लिए दायी होगी। स्वामी ने बीमा पॉलिसी का आवरण नोट भी दाखिल किया, जो दर्शाता है कि पॉलिसी दुर्घटना की तिथि पर प्रभावी थी। तत्पश्चात् बीमा कंपनी को प्रतिवादी सं.2 के रूप में पक्षकार बनाया गया। बीमा कंपनी ने दावा याचिका में किए गए अभिकथनों को अस्वीकार करते हुए और बीमा पॉलिसी के तथ्यों को भी सत्यापित किए बिना जो उसके पास उपलब्ध रहती है और अन्य दस्तावेजों को भी सत्यापित किए बिना, सामान्य तर्क लेते हुए जो बीमा कंपनी द्वारा लिए जाते हैं, एक लिखित कथन दाखिल किया। अभिवचनों के आदान-प्रदान के पश्चात्, अधिकरण ने छह वादबिंदु विरचित किए, जो नीचे उद्धृत हैं:-

"1. क्या दिनांक 05.08.2010 को समय 9.30 बजे ए.एम. स्थान निकट कृष्णानगर कोतवाली थाना कृष्णानगर, लखनऊ में याची गौरव शर्मा अपने स्कूटर नं० यू०पी०-32/डीबी-9557 से अपने घर से कृष्णानगर जाते समय ट्रक नं० यू०पी०-32/जेड-0458 के चालक ने तेजी व लापरवाही से चलाते हुए स्कूटर में टक्कर मार दी जिससे याची को गंभीर चोटें आयी ?

2. क्या दुर्घटना की तिथि को ट्रक नं० यू०पी०-32/जेड-0458 के चालक के पास वैध एवं प्रभावी अनुज्ञा पत्र था?

3. क्या दुर्घटना की तिथि को ट्रक नं० यू०पी०-32/जेड-0458 विपक्षी सं०-2 से बीमित थी?

4. क्या याचिका आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण है?

5. क्या दुर्घटना मे याची/चोटहिल की स्वयं की योगदायी उपेक्षा एवं लापरवाही थी?

6. याची कोई अनुतोष यदि कोई हो पाने का अधिकारी है, यदि हां तो किससे व कितनी?"

13. पक्षकारों द्वारा मौखिक और साथ ही दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया। दावाकर्ता ने स्वयं को पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में और एक अन्य प्रत्यक्षदर्शी श्री सत्य प्रकाश अवस्थी को पी.डब्ल्यू.-2 के रूप में परीक्षित कराया। दावाकर्ता ने प्राथमिकी की प्रति, दावाकर्ता के अनुज्ञप्ति की प्रति, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, हाथरस द्वारा जारी निःशक्तता प्रमाण-पत्र, आरोप पत्र की प्रति, स्थल-मानचित्र और अन्य चिकित्सा संबंधी दस्तावेज दाखिल किए। स्वामी ने ट्रक चालक के पंजीकरण प्रमाण-पत्र, बीमा पॉलिसी और चालन अनुज्ञप्ति की फोटो प्रतियाँ दाखिल कीं। बीमा कंपनी ने मूल फॉर्म 54 दाखिल किया। विद्वान अधिकरण ने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों पर विचार करने के पश्चात् आक्षेपित निर्णय और पंचाट पारित किया और दावा याचिका स्वीकृत की तथा 9,52,600/- रुपये का प्रतिकर दावा याचिका दाखिल करने की तिथि से 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित अधिनिर्णीत किया।

14. प्रतिकर के लिए प्रार्थना-पत्र 'मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क के अधीन दावा याचिका' शीर्षक के साथ दाखिल किया गया था। धारा 163-क संरचित सूत्र के आधार पर प्रतिकर के भुगतान के संबंध में विशेष उपबंध करती है। तथापि, ट्रक चालक के उतावलेपन और लापरवाहीपूर्ण चालन के वादबिंदु को विरचित करने के पश्चात् प्रार्थना-पत्र पर विचार किया गया है और उसे विनिश्चित किया गया है। उत्तर प्रदेश मोटर यान नियम, 1988 (इसमें इसके पश्चात् 1988 के नियमों के रूप में संदर्भित) मोटर यान अधिनियम की धारा 176 सहित मोटर यान अधिनियम 1988 की विभिन्न धाराओं के अधीन बनाए गए हैं। धारा 176 के अधीन, राज्य सरकार धारा 165 से 174 के उपबंधों को प्रभावी करने के प्रयोजनार्थ नियम बना सकती है और विशेष रूप से ऐसे नियम प्रतिकर के दावों के लिए प्रार्थना-पत्र का प्रारूप और वे विवरण जिन्हें उसमें अंतर्विष्ट किया जा सकता है, और ऐसे प्रार्थना-पत्र के संबंध में देय फीस, यदि कोई हो, को, धारा में बनाए गए अन्य नियमों सहित, उपबंधित कर सकते हैं। 1988 के नियमों का नियम 204 दावा अधिकरण के समक्ष भुगतान के लिए प्रार्थना-पत्र का उपबंध करता है। यह उपबंध करता है कि धारा 166 के अधीन प्रतिकर के भुगतान के लिए प्रत्येक प्रार्थना-पत्र जहाँ तक संभव हो प्रारूप एसआर-48 में किया जाएगा और यदि धारा 163-क के अधीन प्रतिकर का दावा किया जाता है तो प्रारूप एसआर-49 में किया जाएगा। एसआर-48 और एसआर-49 दोनों में, मृत/घायल/और/या संपत्ति को क्षति उठाने वाले व्यक्ति और दुर्घटना में शामिल वाहन इत्यादि का आवश्यक विवरण दिया जाना है। केवल एक अंतर है कि एसआर-49 में पैरा 23 के पश्चात् दो घोषणाएँ की जानी हैं; एक यह कि प्रार्थी ने प्रतिकर के लिए कोई अन्य प्रार्थना-पत्र दाखिल नहीं किया है और तत्पश्चात् यह कि प्रतिकर मोटर यान अधिनियम, 1988 की द्वितीय अनुसूची के अनुसार अवधारित किया जा सकता है और उसी के भुगतान के लिए निदेश दिया जाए, जो उपरोक्त दुर्घटना के संबंध में पूर्ण और अंतिम प्रतिकर होगा, किन्तु यह एसआर-48 में नहीं है जिस पर मोटर यान अधिनियम की धारा 166 के अधीन प्रार्थना-पत्र दाखिल किया गया था। इसलिए, यह विचार करना बहुत सारवान है कि क्या प्रार्थना-पत्र मोटर यान अधिनियम की धारा 163-क

के अधीन है या धारा 166 के अधीन। एसआर-48 में दिया गया प्रारूप और एसआर-49 की उपरोक्त घोषणा नीचे उद्धृत है:-

फॉर्म एसआर-48

[नियम 204 (1) देखें]

प्रतिकर के लिए प्रार्थना-पत्र

(धारा 163-ए के अलावा)

सेवा में,

मोटर दुर्घटना/दावा दावा न्यायाधिकरण

..... मैं, ...पुत्र/पुत्री/विधवा
.....निवासी, मोटर वाहन दुर्घटना में घायल होने और/या संपत्ति को नुकसान होने के कारण, हुई चोट और/या नुकसान के लिए मुआवज़े के लिए आवेदन करता/करती हूँ। चोट/संपत्ति, वाहन आदि को हुए नुकसान के संबंध में ज़रूरी विवरण नीचे दिए गए हैं:

1,.....पुत्र/पुत्री/पत्नी/विधवा निवासी मैं,
श्री/कुमारी/श्रीमती.....पुत्र/पुत्री/पत्नी/विधवा श्री/श्रीमती की मृत्यु/चोट और/या नुकसान के कारण मुआवज़े के लिए कानूनी प्रतिनिधि/एजेंट के रूप में आवेदन करता/करती हूँ, जिनकी मृत्यु/चोट और/या नुकसान मोटर वाहन दुर्घटना में हुआ था। मृत/घायल व्यक्ति और/या संपत्ति को नुकसान और दुर्घटना में शामिल वाहनों आदि का ज़रूरी विवरण नीचे दिया गया है—

1. मृत/घायल व्यक्ति और या संपत्ति को नुकसान झेलने वाले व्यक्ति का नाम पिता/पति के नाम के साथ।
2. मृत/घायल व्यक्ति और या संपत्ति को नुकसान झेलने वाले व्यक्ति का पूरा पता।
3. घायल/मृत व्यक्ति की उम्र।
4. घायल/मृत व्यक्ति का पेशा।
5. मृतक के नियोक्ता का नाम और पता, यदि कोई हो।
6. घायल/मृत व्यक्ति की मासिक आय।
7. मृतक/घायल के प्रत्येक आश्रित का नाम और उम्र, उसके साथ संबंध बताते हुए, और साथ ही मृतक/घायल की औसत मासिक आय और उस आय का स्रोत।
8. क्षतिग्रस्त संपत्ति का विवरण तथा हुई क्षति की मात्रा।
9. क्या वह व्यक्ति, जिसके संबंध में मुआवज़े का दावा किया गया है, आयकर देता है (इसका प्रमाणपत्र/दस्तावेज़ संलग्न करें)।
10. दुर्घटना का स्थान, तिथि और समय।
11. वह पुलिस थाना का नाम और पता, जिसके अधिकार क्षेत्र में दुर्घटना हुई या जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

12. क्या वह व्यक्ति, जिसके संबंध में मुआवज़े का दावा किया गया है, दुर्घटनाग्रस्त वाहन में यात्रा कर रहा था? यदि हाँ, तो यात्रा प्रारंभ करने का स्थान और गंतव्य स्थान का नाम दें।

13. हुई चोटों का प्रकार।

14. घायल/मृत व्यक्ति का इलाज करने वाले चिकित्सक/चिकित्सा अधिकारी का नाम और पता।

15. उपचार की अवधि तथा उस पर हुआ व्यय (यदि कोई हो) – संबंधित प्रमाणपत्र/दस्तावेज़ संलग्न करें।

16. दुर्घटना में सम्मिलित वाहन का पंजीकरण संख्या और प्रकार।

17. वाहन के स्वामी का नाम और पता।

18. वाहन के बीमाकर्ता का नाम और पता।

19. क्या कोई दावा वाहन के स्वामी या बीमाकर्ता के पास प्रस्तुत किया गया है? यदि हाँ, तो उसका परिणाम क्या हुआ।

20. मृतक से संबंध।

21. मृतक की संपत्ति पर अधिकार।

22. दावा की गई मुआवज़े की राशि।

23. कोई अन्य जानकारी जो दावे के निपटारे में आवश्यक या सहायक हो सकती हो।

मैं पूरी ईमानदारी से घोषणा करता हूँ कि ऊपर दी गई जानकारी मेरी जानकारी के अनुसार सही और सच है।

आवेदक के हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान

फॉर्म एसआर-49

[नियम 204(1) देखें]

धारा 163-क के अधीन प्रतिकर के लिए प्रार्थना-पत्र

सेवा में,

मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण

.....

मैं,

.....

.....

.....

.....

.....

.....नीचे दिए गए हैं__

.....

.....

1.

.....

23.

.....

मैंने मुआवज़े के लिए कोई अन्य आवेदन प्रस्तुत नहीं किया है।

अतः मैं, ..., निवेदन करता/करती हूँ कि उपरोक्त दुर्घटना के संबंध में मुआवज़े की राशि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की द्वितीय अनुसूची के अनुसार निर्धारित की जाए तथा वाहन स्वामी/बीमाकर्ता को निर्देश दिया जाए कि निर्धारित मुआवज़े की राशि मुझे भुगतान करें, जो उपरोक्त दुर्घटना के संबंध में पूर्ण और अंतिम मुआवज़ा मानी जाएगी। मैं इस संबंध में धारा 140 तथा धारा 163-ए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के अंतर्गत कोई अन्य दावा प्रस्तुत नहीं करूंगा/करूंगी।

मैं, ..., गंभीरता पूर्वक यह घोषणा करता/करती हूँ कि ऊपर दी गई समस्त जानकारीयाँ मेरे ज्ञान के अनुसार सत्य और सही हैं।

आवेदक के हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान

15. उपरोक्त घोषणा, जिसमें मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की द्वितीय अनुसूची के अनुसार मुआवज़े का दावा किया गया है, वह एस.आर.-48 में नहीं है, जिस पर मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के अंतर्गत मुआवज़े हेतु आवेदन प्रस्तुत किया जाता है। वर्तमान मामले में अभ्यर्थी द्वारा प्रस्तुत आवेदन, जो न्यायाधिकरण के अभिलेख पर उपलब्ध है, से यह स्पष्ट होता है कि आवेदन में ऐसी कोई घोषणा नहीं की गई है और वस्तुतः आवेदन प्रपत्र एस.आर.-48 के प्रारूप पर आधारित है। अतः केवल आवेदन के शीर्षक में मोटर वाहन अधिनियम की धारा 163-ए का उल्लेख कर देने मात्र से आवेदन और उसमें किए गए दावे का स्वरूप नहीं बदल जाता। इसलिए न्यायाधिकरण ने इस आवेदन को विधिसम्मत रूप से धारा 166 के अंतर्गत विचार करते हुए प्रासंगिक मुद्दे निर्धारित कर उचित रूप से निपटारा किया है। यह केवल इसी कारण है कि इस विषय में न्यायाधिकरण के समक्ष मुद्दों के निर्धारण के समय या उसके बाद भी, दावा याचिका के निस्तारण तक कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। अतः जब आवेदन मुआवज़े के लिए नियम, 1988 के प्रपत्र एस.आर.-49 के स्थान पर प्रपत्र एस.आर.-48 पर प्रस्तुत किया गया था और ट्रक चालक की लापरवाही व असावधानी से वाहन चलाने से संबंधित मुद्दा भी निर्धारित किया गया था, परंतु न तो न्यायाधिकरण के समक्ष और न ही इस न्यायालय के समक्ष इस संबंध

में कोई आपत्ति उठाई गई, तो बीमा कंपनी के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत यह आपत्ति भ्रांतिपूर्ण, असंगत तथा अस्वीकार्य है, और इसे अस्वीकार किया जाता है।

16. इस न्यायालय ने **फूलचंद यादव एवं अन्य बनाम केदार यादव एवं अन्य; 2011 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 1036** के मामले में यह निर्णय दिया है कि गलत प्रावधान का उल्लेख करना कभी भी घातक या निर्णायक नहीं होता।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कोल इंडिया लिमिटेड एवं अन्य बनाम उज्जल ट्रांसपोर्ट एजेंसी एवं अन्य; (2011) 1 एस.सी.सी. 117** के मामले में यह निर्णय दिया है कि विधि के किसी गलत प्रावधान के अंतर्गत विलंब की क्षमा हेतु आवेदन प्रस्तुत करने से वह आवेदन अमान्य नहीं होता।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **पंकजभाई रमेशभाई ज़लावडिया बनाम जेठाभाई कालाभाई ज़लावडिया; (2017) 9 एस.सी.सी. 700** के मामले में यह निर्णय दिया है कि अब यह विधि के क्षेत्र में पूर्णतः स्थापित सिद्धांत है कि आवेदन में किसी प्रावधान का केवल गलत उल्लेख कर देने मात्र से किसी पक्ष को न्याय प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जा सकता। अंततः न्यायालयों का उद्देश्य न्याय प्रदान करना है, न कि तकनीकी आधारों पर आवेदन का निपटारा करना। अनुच्छेद 16 का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"16.....अब यह विधिक रूप से पूर्णतः स्थापित है कि आवेदन में किसी प्रावधान का केवल गलत उल्लेख कर देने मात्र से वाद में सम्मिलित किसी पक्ष को न्याय प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जा सकता। अंततः न्यायालयों का उद्देश्य न्याय प्रदान करना है, न कि तकनीकी आधारों पर आवेदनों का निस्तारण करना।

....."

19. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने **उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम, गाज़ियाबाद बनाम श्रीमती नीरजा भाटिया एवं अन्य; प्रथम अपील आदेश संख्या 1726 सन् 2001** में दिनांक 04.08.2023 को पारित अपने निर्णय और आदेश में यह कहा कि जब दोनों पक्षों ने न्यायाधिकरण तथा इस न्यायालय के समक्ष यह स्वीकार कर लिया कि दावा याचिका का निस्तारण मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के प्रावधानों के अनुसार किया जाना है, तो अब इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क प्रस्तुत नहीं किया जा सकता कि वह याचिका अधिनियम की धारा 163-ए के अंतर्गत थी।

20. माननीय न्यायाधिकरण ने मुद्दा संख्या 1 और 5 को एक साथ विचाराधीन किया, जो ट्रक संख्या यू.पी.32-जेड-0548 के चालक द्वारा लापरवाही एवं असावधानी से वाहन चलाने के कारण हुई दुर्घटना तथा दावेदार की

सह-लापरवाही से संबंधित थे। दावा याचिका में यह आरोप लगाया गया था कि 05.08.2010 को प्रातः लगभग 09:30 बजे दुर्घटना उस समय हुई जब दावेदार अपने घर से एक्टिवा स्कूटर पर सवार होकर कृष्णा नगर जा रहा था, तभी ट्रक संख्या यू.पी.32-जेड-0548, जिसे उसका चालक लापरवाही एवं असावधानीपूर्वक चला रहा था, ने दावेदार की स्कूटी को पीछे से टक्कर मार दी, जिसके परिणामस्वरूप वह गिर गया और उसे गंभीर चोटें आईं। ट्रक चालक को वहाँ मौजूद लोगों ने मौके पर ही पकड़ लिया और उसे थाना कृष्णा नगर पुलिस के हवाले कर दिया गया। दावेदार को पास ही स्थित लाल हॉस्पिटल में भर्ती कराया गया, जहाँ से उसे उसी दिन ट्रॉमा सेंटर, किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज, लखनऊ भेजा गया, जहाँ वह 09.08.2010 तक भर्ती रहा। इसके पश्चात् उसे विवेकानंद पॉलीक्लिनिक, लखनऊ में स्थानांतरित किया गया, जहाँ 10.08.2010 को उसकी जान बचाने के लिए उसका बायाँ पैर काटना (अंग विच्छेदन) पड़ा। दुर्घटना की प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 21.10.2010 को दावेदार के पिता द्वारा थाना कृष्णा नगर, जनपद लखनऊ में दर्ज कराई गई, जिसका प्रकरण अपराध संख्या 423/2010 है, तथा यह भारतीय दंड संहिता की धारा 279 एवं 338 के अंतर्गत पंजीकृत किया गया। उपरोक्त मामले में ट्रक चालक के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया, जिसकी प्रति एवं स्थल योजना (साइट प्लान) अभिलेख पर प्रस्तुत की गई। एफ.आई.आर. में देरी का कारण भी उसी में स्पष्ट किया गया है कि दावेदार, जो उनका पुत्र है, गंभीर रूप से घायल होने के कारण उसके उपचार में व्यस्त थे। वह मानसिक और आर्थिक रूप से अत्यंत व्यथित थे, जिसके कारण तत्काल रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई जा सकी। दावेदार का ड्राइविंग लाइसेंस भी अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया, जो दिनांक 14.12.2009 से 13.12.2029 तक वैध और प्रभावी था।

21. दावेदार ने स्वयं को पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में प्रस्तुत किया और दुर्घटना की पुष्टि की। उसने अपने प्रतिपरीक्षण में यह कहा कि उसने रियर व्यू मिरर में देखा था कि ट्रक पीछे से आ रहा है। उसने यह भी बताया कि दुर्घटना के समय उसकी स्कूटर की गति लगभग 30-40 किलोमीटर प्रति घंटा थी और वह सड़क के बाएँ किनारे से जा रहा था। पी.डब्ल्यू.-2, जो प्रत्यक्षदर्शी गवाह भी है, ने भी दुर्घटना की पुष्टि की, परंतु उसने यह कहा कि उसने दुर्घटना को आवाज़ सुनने के बाद देखा था। यह स्पष्ट है कि दुर्घटना ट्रक संख्या यू.पी.32-जेड-0548 के चालक की लापरवाह और असावधान ड्राइविंग के कारण हुई थी, जिसका प्रमाण पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 द्वारा दिया गया। अतः केवल इस आधार पर कि दावेदार ने कहा कि उसने ट्रक को पीछे आते हुए रियर व्यू मिरर में देखा था, या पी.डब्ल्यू.-2 ने कहा कि उसने दुर्घटना को आवाज़ सुनने के बाद देखा था – यह मानने का कोई आधार नहीं बनता कि दावेदार स्वयं लापरवाह था या उसमें कोई सह-लापरवाही थी। क्योंकि दावेदार मध्यम गति से सड़क के बाएँ किनारे पर चल रहा था और यदि उसके बावजूद पीछे से आती ट्रक ने उसकी स्कूटी को पीछे से टक्कर मारी, तो यह केवल ट्रक चालक की लापरवाह और असावधान ड्राइविंग का परिणाम हो सकता है। ट्रक एक भारी वाहन होने के कारण उसके चालक को वाहन चलाते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त, दुर्घटना तथा ट्रक चालक की लापरवाही और असावधानी स्वयं दावेदार द्वारा सिद्ध की गई है, और पी.डब्ल्यू.-2 के साक्ष्य से भी इसकी पुष्टि होती है। दावेदार स्वयं इस दुर्घटना में घायल हुआ था,

जिसका एक पैर उपरोक्त दुर्घटना के कारण काटना पड़ा। ट्रक चालक को भी मौके पर ही पकड़ लिया गया था और पुलिस के हवाले कर दिया गया था। चालक के विरुद्ध आरोप पत्र भी दाखिल किया जा चुका है। ये सभी तथ्य इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि दुर्घटना ट्रक चालक की लापरवाह और असावधान ड्राइविंग के कारण हुई तथा उपरोक्त दुर्घटना में ट्रक की संलिप्तता थी। पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 से ऐसा कुछ भी नहीं निकाला जा सका जिससे उनके द्वारा दिए गए साक्ष्य की सत्यता पर कोई संदेह उत्पन्न हो। बीमा कंपनी या ट्रक के स्वामी द्वारा भी ऐसा कोई विपरीत साक्ष्य या अन्य साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया, जिससे यह संकेत मिले कि दुर्घटना ट्रक चालक की लापरवाही के कारण नहीं हुई या दावेदार की ओर से कोई लापरवाही अथवा सह-लापरवाही थी। दुर्घटना की तिथि पर दावेदार का ड्राइविंग लाइसेंस भी वैध और प्रभावी था।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **प्रभावती एवं अन्य बनाम प्रबंध निदेशक, बंगलुरु मेट्रोपॉलिटन ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन; 2025 लाइव लॉ (एससी) 266** के मामले में यह निर्णय दिया है कि जब अभिलेख पर कोई प्रत्यक्ष या पुष्टिकारी साक्ष्य उपलब्ध न हो, तो यह मान लेना उचित नहीं होगा कि दुर्घटना दोनों वाहनों के चालकों की लापरवाह और असावधान ड्राइविंग के कारण हुई थी। संबंधित अनुच्छेद 11 नीचे उद्धृत है:-

"11. अतः हमारे विचार में, उच्च न्यायालय द्वारा मृतक की 25% सह-लापरवाही निर्धारित करना त्रुटिपूर्ण है। हम **जीजू कुरुविला बनाम कुंजुजम्मा मोहन** के मामले में प्रतिपादित सिद्धांतों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, जिसमें यह कहा गया था कि जब अभिलेख पर कोई प्रत्यक्ष या पुष्टिकारी साक्ष्य उपलब्ध न हो, तो यह मान लेना उचित नहीं होगा कि दुर्घटना दोनों वाहनों की लापरवाह और असावधान ड्राइविंग के कारण हुई थी। इस सिद्धांत का अनुसरण **कुमारी किरन बनाम सज्जन सिंह एवं अन्य** के मामले में भी किया गया था। वर्तमान मामले में भी, केवल सामान्य आरोप के आधार पर यह नहीं माना जा सकता कि दुर्घटना दोनों वाहनों की तेज गति से लापरवाह एवं असावधान ड्राइविंग के कारण हुई थी।"

23. उपरोक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में, माननीय न्यायाधिकरण द्वारा यह निष्कर्ष निकालना कि ट्रक चालक ने लापरवाही और असावधानीपूर्वक वाहन चलाते हुए दुर्घटना कारित की, जिसमें दावेदार को गंभीर चोटें आईं, तथा दावेदार की ओर से कोई सह-लापरवाही नहीं थी पूर्णतः विधिसम्मत है और इसमें किसी प्रकार की त्रुटि या विचलन नहीं है। अतः इस संबंध में बीमा कंपनी के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क भ्रांतिपूर्ण, असंगत एवं अस्वीकार्य है, जिसे अस्वीकार किया जाता है।

24. मुद्दा संख्या 6, जो इस संबंध में था कि क्या दावेदार किसी मुआवज़े का अधिकारी है, यदि हाँ तो कितना और किससे, का विचार न्यायाधिकरण द्वारा किया गया। चिकित्सा व्यय के दावे, जो चिकित्सीय पर्ची और बिलों की प्रतियों (सी28/2 से सी28/179 तक) के आधार पर प्रस्तुत किए गए थे, को न्यायाधिकरण ने अस्वीकार कर दिया। इसका कारण यह बताया गया कि दावेदार ने अपने प्रतिपरीक्षण में स्वयं यह स्वीकार किया कि उसे

यह जानकारी नहीं है कि उसके पिता ने अपने कार्यालय से दुर्घटना से संबंधित देय राशि प्राप्त की है या नहीं। अतः उसने इस तथ्य का भी खंडन नहीं किया कि उपरोक्त बिलों का भुगतान उसके पिता द्वारा उनके कार्यालय से प्राप्त कर लिया गया था। मूल बिल भी अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किए गए, क्योंकि उनका भुगतान विभाग से प्राप्त कर लिया गया था। अतः दावेदार उन बिलों के भुगतान का अधिकारी नहीं है। इसमें किसी प्रकार की त्रुटि या अनियमितता नहीं पाई जाती।

25. माननीय न्यायाधिकरण ने अभिलेख पर उपलब्ध अभिलेखों, पक्षकारों की दलीलों तथा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर यह पाया कि दावेदार इंटरमीडिएट का छात्र था और उसकी आयु 18 वर्ष थी। दुर्घटना में उसे गंभीर चोटें आईं, जिसके परिणामस्वरूप उसका बायाँ पैर काटना पड़ा। मुख्य चिकित्सा अधिकारी, महामाया नगर, हाथरस द्वारा उसका विकलांगता प्रमाण पत्र जारी किया गया, जिसे अभिलेख पर पेपर संख्या सी-38/3 के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त प्रमाण पत्र में उसकी विकलांगता 70% दर्शाई गई है और यह स्थायी है। उस प्रमाण पत्र पर दावेदार का फोटो भी संलग्न है। विकलांगता प्रमाण पत्र में यह उल्लेख है कि दावेदार का बायाँ पैर घुटने के नीचे से काटा गया है। दावेदार ने अपने निवेदन और साक्ष्य में कहा है कि वह क्रिकेट का एक अच्छा खिलाड़ी था। उसने इंटरमीडिएट कॉलेज का प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उसने सी.के. नायडू क्रिकेट टूर्नामेंट (माध्यमिक राज्य कॉलेजों के राज्य स्तरीय प्रतियोगिता) में अपने मंडल के राज्य कॉलेजों की प्रतियोगिता में भाग लिया था और उस राज्य स्तरीय टूर्नामेंट में उसका प्रदर्शन उत्कृष्ट रहा था।

उसने विभिन्न मैचों में अपने प्रदर्शन का विवरण भी प्रस्तुत किया है, जो समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था। न्यायाधिकरण ने अभिलेख, साक्ष्य और दलीलों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि दावेदार की क्रिकेट के क्षेत्र में एक अच्छी प्रतिष्ठा थी और निश्चित रूप से ऐसे छात्र के बाएँ पैर का कट जाना उसके जीवन को उस क्षेत्र में अंधकारमय बना देता है।

26. माननीय न्यायाधिकरण ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **सैयद सिद्दीकी बनाम डिवीजनल मैनेजर, यूनाइटेड इंडिया; 2014 (1) टी.ए.सी. 369 एस.सी.** पर विचार करने के बाद यह पाया कि उपरोक्त मामले में एक सब्जी विक्रेता के बाएँ पैर के विच्छेदन के कारण सर्वोच्च न्यायालय ने उसकी क्रियात्मक अक्षमता 85 प्रतिशत निर्धारित की थी और वर्ष 2011 में उसकी मासिक आय 6,500 रुपये मानी गई थी, जिसके आधार पर मुआवजे की गणना की गई थी। न्यायाधिकरण ने कहा कि उसकी तुलना में वर्तमान मामले के दावेदार ने अपनी मासिक आय 3,000 रुपये बताई है, जो एक मजदूर की आय के बराबर है, और यह उसकी ईमानदारी का सिर्फ एक उदाहरण है। अतः, यह देखते हुए कि वह क्रिकेट का एक अच्छा खिलाड़ी था, न्यायाधिकरण ने उसकी क्रियात्मक अक्षमता 80 प्रतिशत निर्धारित की। न्यायाधिकरण ने आगे भविष्य की संभावनाओं के रूप में 50

प्रतिशत की वृद्धि प्रदान की और दर्द एवं पीड़ा के लिए 50,000 रुपये, सुख-सुविधाओं की हानि एवं वैवाहिक जीवन में गिरावट के लिए 1,00,000 रुपये तथा परिवहन और ईंधन आदि के लिए 25,000 रुपये का मुआवजा प्रदान किया।

27. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **लक्ष्मण उर्फ लक्ष्मण मौर्य बनाम डिवीजनल मैनेजर, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (उपरोक्त)** के मामले में यह निर्णय दिया है कि सड़क दुर्घटनाओं में बचे हुए व्यक्तियों और ऐसे हादसों में विकलांग हुए लोगों की व्यक्तिगत पीड़ाएँ अनेक प्रकार की होती हैं। कभी-कभी उनकी पीड़ाओं को धनराशि के रूप में मापा जा सकता है, परंतु अधिकतर मामलों में ऐसा संभव नहीं होता। ऐसे मामलों में, जहाँ व्यक्ति पूर्ण या आंशिक रूप से विकलांग हो जाता है, मोटरयान अधिनियम, 1988 की धारा 166 में प्रयुक्त 'क्षतिपूर्ति' शब्द का अर्थ केवल तत्काल उपचार पर हुए खर्च तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें भविष्य में आवश्यक चिकित्सा उपचार या देखभाल पर होने वाला संभावित व्यय भी सम्मिलित होता है, जो किसी विशेष चोट या विकलांगता के कारण आवश्यक हो सकता है। यह भी कहा गया है कि यदि किसी दुर्घटना के पीड़ित को स्थायी या अस्थायी विकलांगता होती है, तो न्यायालयों को सदैव यह प्रयास करना चाहिए कि उसे पर्याप्त क्षतिपूर्ति दी जाए, न केवल शारीरिक चोट और उपचार के लिए, बल्कि दुर्घटना से उत्पन्न पीड़ा, कष्ट और मानसिक आघात के लिए भी। साथ ही, आय के नुकसान और पीड़ित की उस असमर्थता के लिए भी मुआवजा दिया जाना चाहिए, जिसके कारण वह सामान्य जीवन जीने और उन सुविधाओं का आनंद लेने में असमर्थ हो गया है, जिनका वह विकलांगता न होने पर आनंद ले सकता था। इसके संबंध में प्रासंगिक अनुच्छेद 8, 14 और 15 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं -

"8. सड़क दुर्घटनाओं में बचे हुए व्यक्तियों और उन लोगों की व्यक्तिगत पीड़ा, जो ऐसी दुर्घटनाओं में अपंग हो जाते हैं, अनेक प्रकार की होती है। कभी-कभी उन्हें धन के रूप में मापा जा सकता है, परंतु अधिकतर अवसरों पर यह संभव नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति किसी दुर्घटना में स्थायी रूप से अपंग हो जाता है, तो उसके उपचार और देखभाल पर बहुत अधिक खर्च आने की संभावना रहती है। पूर्ण या आंशिक अपंगता के मामलों में, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 में प्रयुक्त "क्षतिपूर्ति" शब्द का अर्थ केवल तत्काल उपचार पर किए गए खर्च तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें भविष्य में आवश्यक चिकित्सा उपचार/देखभाल पर होने वाला व्यय भी सम्मिलित है, जो किसी विशेष चोट या दुर्घटना से हुई विकलांगता के कारण आवश्यक हो सकता है।

 "14. राज कुमार बनाम अजय कुमार [(2011) 1 एस.सी.सी. 343 : (2011) 1 एस.सी.सी. (सिविल) 164 : (2011) 1 एस.सी.सी. (क्रि.) 1161] के मामले में न्यायालय ने कुछ पूर्ववर्ती निर्णयों पर विचार किया और यह निर्णय दिया : (एस.सी.सी. पृष्ठ 347-48, अनुच्छेद 5-6)"

“5. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (संक्षेप में ‘अधिनियम’) के प्रावधान यह स्पष्ट करते हैं कि पारित किया गया पुरस्कार न्यायसंगत होना चाहिए, जिसका अर्थ है कि क्षतिपूर्ति यथासंभव इस प्रकार होनी चाहिए कि वह दावेदार को दुर्घटना से पूर्व की स्थिति में पूर्णतः और पर्याप्त रूप से पुनः स्थापित कर सके। क्षतिपूर्ति प्रदान करने का उद्देश्य यह है कि गलत कार्य के परिणामस्वरूप हुए नुकसान की भरपाई यथासंभव धनराशि के माध्यम से निष्पक्ष, युक्तिसंगत और न्यायोचित तरीके से की जा सके। न्यायालय या अधिकरण को क्षतिपूर्ति की गणना वस्तुनिष्ठ रूप से करनी चाहिए और किसी प्रकार के अनुमान या कल्पना को विचार में नहीं लेना चाहिए, यद्यपि विकलांगता की प्रकृति और उसके परिणामों के संबंध में कुछ अनुमान लगाना अनिवार्य रूप से आवश्यक हो सकता है। किसी व्यक्ति को केवल शारीरिक चोट के लिए ही क्षतिपूर्ति नहीं दी जानी चाहिए, बल्कि उस हानि के लिए भी दी जानी चाहिए जो उसे उस चोट के परिणामस्वरूप हुई है। इसका अर्थ यह है कि उसे उस स्थिति के लिए भी क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए जिसमें वह पूर्ण जीवन नहीं जी पा रहा है, उन सामान्य सुविधाओं का आनंद नहीं ले पा रहा है जिनका वह चोट न लगने पर आनंद ले सकता था, और उतनी आय नहीं कमा पा रहा है जितनी वह पहले कमा रहा था या भविष्य में कमा सकता था।

.....

6. व्यक्तिगत चोट के मामलों में क्षतिपूर्ति जिन शीर्षकों के अंतर्गत दी जाती है, वे इस प्रकार हैं –

आर्थिक क्षति (विशेष क्षति):

- (i) उपचार, अस्पताल में भर्ती, दवाइयों, परिवहन, प्रौष्टिक भोजन तथा विविध व्यय से संबंधित खर्च।
- (ii) आय की हानि (और अन्य लाभ) जो घायल व्यक्ति को चोट न लगने की स्थिति में प्राप्त होती, जिसमें शामिल हैं:

- (a) उपचार की अवधि के दौरान आय की हानि;
- (b) स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की आय की हानि।

- (iii) भविष्य के चिकित्सा व्यय।

अआर्थिक क्षति (सामान्य क्षति):

- (iv) चोटों के परिणामस्वरूप दर्द, कष्ट और आघात के लिए क्षतिपूर्ति।
- (v) सुविधाओं की हानि (और/या विवाह की संभावना की हानि)।
- (vi) जीवन प्रत्याशा की हानि (सामान्य दीर्घायु में कमी)।

सामान्य रूप से व्यक्तिगत चोटों के मामलों में क्षतिपूर्ति केवल शीर्षकों (i), (ii)(a) और (iv) के अंतर्गत ही दी जाती है। केवल उन गंभीर मामलों में, जहाँ चिकित्सकीय साक्ष्य दावेदार के साक्ष्य की पुष्टि करता हो, क्षतिपूर्ति शीर्षकों (ii)(b), (iii), (v) और (vi) के अंतर्गत दी जाती है – अर्थात् स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की आय की हानि, भविष्य के चिकित्सा व्यय, सुविधाओं की हानि (और/या विवाह की संभावना की हानि) तथा जीवन प्रत्याशा की हानि।”

(जोर दिया गया)

15. उपरोक्त निर्णयों का सार यह है कि यदि किसी दुर्घटना के पीड़ित को स्थायी या अस्थायी विकलांगता होती है, तो हमेशा यह प्रयास किया जाना चाहिए कि उसे पर्याप्त क्षतिपूर्ति दी जाए – न केवल शारीरिक चोट और उपचार के लिए, बल्कि उस पीड़ा, कष्ट और आघात के लिए भी जो दुर्घटना के कारण हुआ है, साथ ही आय की हानि और पीड़ित की सामान्य जीवन जीने तथा उन सुविधाओं का आनंद लेने में असमर्थता के लिए भी, जिनका वह दुर्घटना से हुई विकलांगता के बिना आनंद ले सकता था।”

28. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नगप्पा बनाम गुरुदयाल सिंह एवं अन्य** के मामले में यह निर्णय दिया है कि भविष्य में होने वाले चिकित्सा व्यय के लिए, जो किसी पीड़ित को करने पड़ सकते हैं, उसके लिए नया पुरस्कार पारित करना कठिन होगा। हालांकि, ऐसे चिकित्सा उपचार के लिए न्यायालय को अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर एक उचित अनुमान तक पहुँचना होता है। उपरोक्त मामले में कृत्रिम पैर को प्रत्येक दो या तीन वर्ष में बदलने की आवश्यकता के लिए कोई मुआवज़ा नहीं दिया गया था, जबकि यह स्पष्ट रूप से इंगित किया गया था कि कृत्रिम पैर का प्रतिस्थापन आवश्यक होगा। न्यायालय ने ₹ 1,00,000/- की अतिरिक्त क्षतिपूर्ति इस आधार पर प्रदान की कि अपीलकर्ता उस राशि के ब्याज से उपरोक्त व्यय वहन करने की स्थिति में रहेगा।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **गोविंद यादव बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी (उपरोक्त)** तथा **जी. रविंद्रनाथ @ आर. चौधरी बनाम ई. श्रीनिवास एवं अन्य (उपरोक्त)** मामलों में उपरोक्त दोनों मामलों के समान दृष्टिकोण अपनाया है और अपीलकर्ता को भविष्य के उपचार हेतु ₹2,00,000/- की क्षतिपूर्ति प्रदान की है।

30. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **आर. डी. हट्टनगाड़ी बनाम पेस्ट कंट्रोल (इंडिया) प्रा. लि. एवं अन्य (उपरोक्त)** के मामले में यह निर्णय दिया है कि जब पीड़ा, कष्ट और जीवन की सुविधाओं के नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति दी जानी हो, तब वादी की विशेष परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए जिसमें उसकी आयु, उसे हुई असामान्य वंचना तथा उसके भविष्य के जीवन पर उसका प्रभाव शामिल है। यह भी कहा गया है कि गैर-आर्थिक हानि (अर्थात् मानसिक एवं शारीरिक पीड़ा) के लिए क्षतिपूर्ति की राशि निर्धारित करना आसान नहीं होता, परंतु पुरस्कार में यह परिलक्षित होना चाहिए कि विभिन्न परिस्थितियों पर विचार किया गया है। इस मामले में न्यायालय ने **पीड़ा और कष्ट** के लिए ₹1,50,000/- तथा **जीवन की सुविधाओं के नुकसान** के लिए ₹1,50,000/- अर्थात् कुल ₹3,00,000/- की क्षतिपूर्ति प्रदान की, जबकि उपरोक्त शीर्षकों के अंतर्गत ₹6,00,000/- का दावा किया गया था।

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राज कुमार बनाम अजय कुमार एवं अन्य (उपरोक्त)** के मामले में यह निर्णय दिया है कि किसी व्यक्ति को केवल शारीरिक चोट के लिए ही नहीं, बल्कि उस चोट के परिणामस्वरूप हुई हानि के लिए भी क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति को उसकी पूर्ण जीवन जीने की

असमर्थता, उन सामान्य सुविधाओं का आनंद न ले पाने की स्थिति, जिनका वह चोट न लगने की स्थिति में आनंद ले सकता था, तथा उतनी आय अर्जित न कर पाने की असमर्थता के लिए भी क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए, जितनी वह पहले कमाता था या कमा सकता था। इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने अनुच्छेद 12 और 13 में यह स्पष्ट किया है कि स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य में आय के नुकसान का आकलन किस प्रकार किया जाएगा, तथा अनुच्छेद 19 में उन सिद्धांतों का सार प्रस्तुत किया गया है, जो नीचे उद्धृत हैं-

“12. अतः, अधिकरण को पहले यह तय करना होगा कि क्या कोई स्थायी विकलांगता है, और यदि है, तो उसकी सीमा क्या है। इसका अर्थ यह है कि अधिकरण को साक्ष्यों के संदर्भ में यह विचार कर निर्णय करना चाहिए:

(i) क्या विकलांगता स्थायी है या अस्थायी;

(द्वितीय) यदि विकलांगता स्थायी है, तो क्या यह पूर्ण स्थायी विकलांगता है या आंशिक स्थायी विकलांगता;

(तृतीय) यदि विकलांगता का प्रतिशत किसी विशिष्ट अंग के संदर्भ में व्यक्त किया गया है, तो उस अंग की विकलांगता का पूरे शरीर के कार्य पर क्या प्रभाव पड़ा है, अर्थात् व्यक्ति को हुई स्थायी विकलांगता की वास्तविक सीमा क्या है।”

यदि अधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कोई स्थायी विकलांगता नहीं है, तो आगे बढ़कर भविष्य की आय क्षमता में हानि निर्धारित करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। परंतु यदि अधिकरण यह निष्कर्ष निकालता है कि स्थायी विकलांगता है, तो उसे उसकी सीमा निर्धारित करनी होगी। चिकित्सकीय साक्ष्यों के आधार पर जब अधिकरण वादी की वास्तविक स्थायी विकलांगता की सीमा निर्धारित कर लेता है, तब उसे यह तय करना होगा कि क्या ऐसी स्थायी विकलांगता ने उसकी आय क्षमता को प्रभावित किया है या भविष्य में प्रभावित करेगी।

13. स्थायी विकलांगता के प्रभाव का वास्तविक आय क्षमता पर निर्धारण तीन चरणों में किया जाता है। पहला चरण यह है कि अधिकरण यह निर्धारित करे कि वादी स्थायी विकलांगता के बावजूद कौन-कौन सी गतिविधियाँ कर सकता है और किन गतिविधियों को वह स्थायी विकलांगता के कारण नहीं कर सकता। (यह “जीवन की सुविधाओं के हास” के अंतर्गत क्षतिपूर्ति निर्धारित करने के लिए भी प्रासंगिक है।) दूसरा चरण यह है कि दुर्घटना से पहले वादी का व्यवसाय, पेशा और कार्य का प्रकार, साथ ही उसकी आयु को भी निर्धारित किया जाए। तीसरा चरण यह है कि यह पता लगाया जाए कि-(i) क्या वादी किसी भी प्रकार की जीविका अर्जित करने में पूरी तरह असमर्थ हो गया है; या (ii) क्या स्थायी विकलांगता के बावजूद वादी पहले की तरह अपनी गतिविधियाँ और कार्य प्रभावी रूप से कर सकता है; या (iii) क्या वह अपनी पूर्व गतिविधियों और कार्यों को करने से वंचित या सीमित हो गया है, परंतु कुछ अन्य या कम स्तर की गतिविधियाँ और कार्य कर सकता है, ताकि वह अपनी जीविका जारी रख सके या जारी रख सकता था।

19. उपरोक्त चर्चा किए गए सिद्धांतों को अब संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

- (i) सभी चोटें (या चोटों से उत्पन्न स्थायी विकलांगता) आय क्षमता के नुकसान का कारण नहीं बनतीं।
- (ii) किसी व्यक्ति के संपूर्ण शरीर के संदर्भ में स्थायी विकलांगता का प्रतिशत, आय क्षमता के नुकसान के प्रतिशत के समान नहीं माना जा सकता। दूसरे शब्दों में, आय क्षमता के नुकसान का प्रतिशत स्थायी विकलांगता के प्रतिशत के समान नहीं होता (सिवाय कुछ मामलों के, जहाँ अधिकरण साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकालता है कि दोनों प्रतिशत समान हैं)।
- (iii) जिस डॉक्टर ने घायल वादी का इलाज किया है या बाद में उसकी स्थायी विकलांगता का आकलन किया है, वह केवल स्थायी विकलांगता की सीमा के संबंध में ही साक्ष्य दे सकता है। आय क्षमता के नुकसान का निर्धारण अधिकरण को समग्र साक्ष्य के आधार पर करना होता है।
- (iv) समान स्थायी विकलांगता विभिन्न व्यक्तियों में आय क्षमता के नुकसान के अलग-अलग प्रतिशत का कारण बन सकती है यह उनके व्यवसाय, कार्य, नौकरी के प्रकार, आयु, शिक्षा और अन्य कारकों पर निर्भर करता है।”

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लक्ष्मणा गौड़ा बी.एन. बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी एवं अन्य (उपरोक्त) मामले में यह अवलोकन किया कि वादी ने स्पष्ट रूप से यह बयान दिया था कि दुर्घटना में लगी चोटों और उससे हुई स्थायी विकलांगता के कारण उसके विवाह के अवसर बहुत कम हो गए हैं, क्योंकि अब कोई भी उससे विवाह करने के लिए आगे नहीं आ रहा है। अतः न्यायालय ने “विवाह के अवसरों की हानि” के लिए ₹50,000/- का मुआवज़ा स्वीकृत किया।

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने जगदीश बनाम मोहन एवं अन्य (उपरोक्त) मामले में यह प्रतिपादित किया कि मुआवज़े का परिमाण ऐसा होना चाहिए जो इस बात को प्रदर्शित करे कि कानून ने मानव अस्तित्व की गरिमा की पुनर्स्थापना के लिए एक वास्तविक और ईमानदार प्रयास किया है। हमारे मुआवज़े के मानदंड इतने निम्न स्तर के नहीं होने चाहिए कि यह प्रश्न उठे कि क्या हमारा कानून वास्तव में मानव जीवन को मूल्यवान मानता है। यदि कानून मानव जीवन का मूल्य समझता है जैसा कि उसे अवश्य समझना चाहिए तो उसे हानि और पीड़ा के दर्द तथा कष्ट के आघात के लिए यथार्थवादी प्रतिपूर्ति प्रदान करनी चाहिए। मुआवज़े का पुरस्कार कोई कानून की कृपा या दया नहीं है; बल्कि अधिकारों की परिधि में यह कानून के अधीन एक वैधानिक अधिकार है। संबंधित परिच्छेद-14 नीचे दिया गया है:-

“14. वर्तमान मामले में गणना करते समय, न्यायालय को इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि अपीलकर्ता को गंभीर विकलांगता हुई है, जिसमें उसने अपने दोनों हाथों के उपयोग की क्षमता खो दी है। किसी व्यक्ति के लिए जो शारीरिक श्रम से संबंधित कार्यों में लगा हुआ है, यह समझना कठिन नहीं है कि हाथों का खो जाना आय अर्जित करने की क्षमता का पूर्ण रूप से समाप्त हो जाना है। इस मामले की परिस्थितियों में –

कुछ भी खोए हुए हाथों को वापस नहीं ला सकता। लेकिन मुआवज़े का मापदंड ऐसा होना चाहिए जो यह दर्शाए कि कानून ने मानव गरिमा को पुनः स्थापित करने का एक सच्चा प्रयास किया है। हमारे मुआवज़े के पैमाने इतने नगण्य नहीं होने चाहिए कि यह प्रश्न उठे कि क्या हमारा कानून मानव जीवन का मूल्य समझता है या नहीं। यदि समझता है जैसा कि होना चाहिए तो उसे हानि के दर्द और पीड़ा के आघात के लिए एक यथार्थपरक प्रतिकर प्रदान करना चाहिए। मुआवज़े के पुरस्कार कानून की दया नहीं हैं। अधिकारों के विमर्श में, वे कानून के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार हैं। हमारे कानूनी विमर्श को व्यक्ति की संरक्षणवादी अधीनता से हटकर, मानव गरिमा के अंतर्निहित प्रवर्तनीय अधिकारों की स्वीकृति की ओर बढ़ना चाहिए।”

34. इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम भवानी प्रसाद मांझी (उपरोक्त) के मामले में यह निर्णय दिया है कि वादी-प्रतिवादी भविष्य की संभावनाओं तथा उस पर ब्याज के लिए भी पात्र है।

35. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नेशनल टेक्सटाइल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम नरेश कुमार बट्टी कुमार जगद एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में यह निर्णय दिया है कि वाद-पत्र और उसके विवरण आवश्यक हैं ताकि न्यायालय मुकदमे में पक्षकारों के अधिकारों का निर्णय कर सके। अतः वाद-पत्र न्यायालय की सहायता करते हैं ताकि विवाद के क्षेत्र को संकुचित किया जा सके और संबंधित पक्षों को सूचित किया जा सके। न्यायालय के लिए वाद-पत्रों से आगे जाना उचित नहीं है क्योंकि वाद-पत्र और मुद्दे इस उद्देश्य से बनाए जाते हैं कि पक्षकारों के बीच वास्तविक विवाद को निर्धारित किया जा सके, विवाद के क्षेत्र को सीमित किया जा सके और यह देखा जा सके कि दोनों पक्षों में मतभेद कहाँ हैं। जहाँ साक्ष्य वाद-पत्रों के अनुरूप नहीं है और उनसे भिन्न है, वहाँ ऐसे साक्ष्य को न तो देखा जा सकता है और न ही उस पर भरोसा किया जा सकता है।

36. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनीता शर्मा एवं अन्य बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में यह निर्णय दिया है कि दुर्घटना दावा मामलों में साक्ष्य की जांच करते समय न्यायालयों का दृष्टिकोण और भूमिका इस प्रकार नहीं होनी चाहिए कि वे यह देखने लगे कि कुछ सर्वोत्तम प्रत्यक्षदर्शियों का परीक्षण क्यों नहीं किया गया, जैसा कि आपराधिक मुकदमों में होता है; बल्कि, न्यायालय को केवल इस बात का विश्लेषण करना चाहिए कि पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के आधार पर क्या वादी का कथन अधिक संभावना के साथ सत्य है या नहीं। संबंधित परिच्छेद 21 और 22 नीचे उद्धृत हैं:

“21. इसी प्रकार, हम इस बात से चिंतित हैं कि उच्च न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ रहा कि मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के मामलों में साक्ष्य के कठोर सिद्धांत और आपराधिक मुकदमे जैसे प्रमाण के मानदंड लागू नहीं होते। ऐसे मामलों में प्रमाण का मानक ‘संभावनाओं के प्राबल्य’ पर आधारित होता है, न कि ‘संदेह से परे पर। न्यायालयों को यह ध्यान रखना चाहिए कि दुर्घटना दावा मामलों में साक्ष्य की जांच करते समय उनका दृष्टिकोण और भूमिका यह नहीं होनी चाहिए कि कुछ सर्वश्रेष्ठ प्रत्यक्षदर्शियों को प्रस्तुत न किए

जाने पर दोष निकाला जाए, जैसा कि आपराधिक मुकदमों में होता है; बल्कि, उन्हें केवल इस बात का विश्लेषण करना चाहिए कि पक्षकारों द्वारा रिकॉर्ड पर प्रस्तुत सामग्री के आधार पर दावाकर्ता का कथन अधिकतर संभावित रूप से सत्य प्रतीत होता है या नहीं।

22. इसी प्रकार की स्थिति दुलसीना फर्नांडीस बनाम जोआकिम ज़ेवियर क्रूज़ [(2013) 10 एस.सी.सी. 646: (2014) 1 एस.सी.सी. (सिविल) 73 : (2014) 1 एस.सी.सी. (क्रि.) 13] के मामले में उत्पन्न हुई थी, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह पुनः कहा था: (एस.सी.सी. पृष्ठ 650, परिच्छेद 7)

“7. यह उल्लेखनीय है कि प्रथम प्रतिवादी, जो पिकअप वैन चला रहा था, की लापरवाही के संबंध में दावा-कर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए निवेदन का निर्णय माननीय अधिकरण को संभावनाओं के संतुलन के आधार पर करना था, न कि संदेह से परे प्रमाण के आधार पर। (बिमला देवी बनाम हिमाचल रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन [(2009) 13 एस.सी.सी. 530: (2009) 5 एस.सी.सी. (सिविल) 189 : (2010) 1 एस.सी.सी. (क्रि.) 1101])।”

(जोर दिया गया)

37. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सुनीता व अन्य बनाम राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम व अन्य (उपरोक्त) के मामले में यह कहा है कि मोटर वाहन दुर्घटनाओं से उत्पन्न मामलों का निर्णय करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्रमाण का मानक संभावनाओं के पलड़े का होना चाहिए, न कि वह कठोर मानक जो आपराधिक मामलों में अपनाया जाता है, जहाँ “संदेह से परे प्रमाण” आवश्यक होता है। एक बार जब मूल तथ्य, अर्थात् दुर्घटना के वास्तव में घटित होने का तथ्य स्थापित हो जाता है, तब ट्रिब्यूनल की भूमिका केवल उचित मुआवजे की राशि निर्धारित करने की होती है, और वह पक्षकारों की दलीलों से सख्ती से बंधा हुआ नहीं रहता। संबंधित पैरा-22 नीचे उद्धृत है:

“22. इस प्रकार यह भली-भांति स्थापित है कि मोटर दुर्घटना दावा मामलों में, एक बार जब मूल तथ्य, अर्थात् दुर्घटना के वास्तव में घटित होने का तथ्य, स्थापित हो जाता है, तब न्यायाधिकरण की भूमिका यह निर्धारित करने की होती है कि यदि दुर्घटना मोटर वाहन चालक की लापरवाही के कारण हुई है, तो उचित मुआवजे की राशि कितनी होनी चाहिए। ऐसा करते समय न्यायाधिकरण पक्षकारों की दलीलों से सख्ती से बंधा नहीं रहेगा। विशेष रूप से, मोटर वाहन दुर्घटना से उत्पन्न मामलों के निर्णय के समय ध्यान रखने योग्य प्रमाण का मानक ‘संभावनाओं के पलड़े’ का होना चाहिए, न कि वह कठोर मानक जो आपराधिक मामलों में अपनाया जाता है, जहाँ ‘संदेह से परे प्रमाण’ आवश्यक होता है।”

38. वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए, माननीय अधिकरण ने मामले का विधिपूर्वक और सही रूप से निस्तारण किया है। अधिकरण ने दावा याचिका को स्वीकार करते हुए याची की आय ₹3000 प्रति माह मान

ली है तथा यह पाया कि दुर्घटना के समय उसकी आयु 18 वर्ष थी। इसलिए अधिकरण ने 18 का गुणक (मल्टीप्लायर) लागू किया, जो विधि और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी (2017) 16 एसएससी 680** के अनुसार है। उपरोक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम (2009) 6 एसएससी 121** में निर्धारित गुणक प्रणाली को अनुमोदित किया है, जिसमें 15 से 20 वर्ष की आयु वर्ग के लिए 18 का परिचालन गुणक प्रदान किया गया है। संबंधित परिच्छेद 42 नीचे उद्धृत है:-

"42. जहाँ तक गुणक (मल्टीप्लायर) का संबंध है, दावा अधिकरण तथा न्यायालयों को सरला वर्मा बनाम दिल्ली परिवहन निगम, (2009) 6 एस.सी.सी. 121: (2009) 2 एस.सी.सी. (सिविल) 770 : (2009) 2 एस.सी.सी. (क्रिमिनल) 1002 के परिच्छेद 19 के चरण 2 और उसी निर्णय के परिच्छेद 42 में दिए गए निर्देशों का पालन करना होगा। पूर्णता के हित में, परिच्छेद 42 नीचे उद्धृत किया जा रहा है (सरला वर्मा मामला, (2009) 6 एस.सी.सी. 121: (2009) 2 एस.सी.सी. (सिविल) 770 : (2009) 2 एस.सी.सी. (क्रिमिनल) 1002, एस.सी.सी. पृष्ठ 140):

"42. अतः हम यह मानते हैं कि उपयोग किया जाने वाला गुणक (मल्टीप्लायर) वही होना चाहिए जैसा कि ऊपर दी गई सारणी के कॉलम (4) में उल्लिखित है (जिसे केरल राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम सुसम्मा थॉमस, (1994) 2 एस.सी.सी. 176 : 1994 एस.सी.सी. (क्रि.) 335, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम त्रिलोक चन्द्र, (1996) 4 एस.सी.सी. 362 तथा न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम चार्ली, (2005) 10 एस.सी.सी. 720 : 2005 एस.सी.सी. (क्रि.) 1657 को लागू करते हुए तैयार किया गया है)। यह 18 के परिचालन गुणक (ऑपरेटिव मल्टीप्लायर) से प्रारंभ होता है (15 से 20 वर्ष तथा 21 से 25 वर्ष की आयु वर्ग के लिए), और प्रत्येक पाँच वर्ष के लिए एक इकाई घटाई जाती है, अर्थात् 26 से 30 वर्ष के लिए एम-17, 31 से 35 वर्ष के लिए एम-16, 36 से 40 वर्ष के लिए एम-15, 41 से 45 वर्ष के लिए एम-14, 46 से 50 वर्ष के लिए एम-13, उसके बाद प्रत्येक पाँच वर्ष के लिए दो इकाई घटाई जाती हैं, अर्थात् 51 से 55 वर्ष के लिए एम-11, 56 से 60 वर्ष के लिए एम-9, 61 से 65 वर्ष के लिए एम-7, तथा 66 से 70 वर्ष के लिए एम-5।"

39. बीमा कंपनी के अधिवक्ता की यह दलील कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **राज कुमार बनाम अजय कुमार एवं अन्य (उपरोक्त)** मामले में स्थापित सिद्धांतों के अनुसार, चूंकि डॉक्टर को वादी की भविष्य की विकलांगता सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया था, इसलिए अधिकरण को इस विषय पर विचार करने और निर्णय देने का अधिकार नहीं था – यह तर्क भ्रांतिपूर्ण और अस्थिर है, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि घायल-वादी का उपचार करने वाला डॉक्टर या वह डॉक्टर जिसने बाद में उसकी स्थायी विकलांगता की सीमा का आकलन किया है, केवल स्थायी विकलांगता की सीमा के संबंध में ही साक्ष्य दे सकता है। आय अर्जन क्षमता की हानि ऐसी बात है जिसका आकलन अधिकरण को संपूर्ण साक्ष्यों के आधार

पर करना होता है, और एक समान स्थायी विकलांगता भी विभिन्न व्यक्तियों में आय अर्जन क्षमता की हानि के अलग-अलग प्रतिशतों का कारण बन सकती है। यह अंतर व्यक्ति के पेशे, व्यवसाय या नौकरी के स्वरूप, आयु, शिक्षा, अन्य कारकों तथा स्थायी विकलांगता के वास्तविक आय अर्जन क्षमता पर प्रभाव को किस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है, इस पर निर्भर करता है, जैसा कि निर्णय के परिच्छेद-13 में बताया गया है। **राजेश कुमार @ राजू बनाम युधवीर सिंह एवं अन्य (उपरोक्त)** मामले में दिया गया निर्णय उस मामले की विशिष्ट परिस्थितियों पर आधारित था, जिसमें प्रमाणपत्र दुर्घटना के दो वर्ष बाद प्राप्त किया गया था। इसलिए यह बीमा कंपनी के लिए सहायक नहीं है, क्योंकि वर्तमान मामले में ऐसा कोई अभिकथन नहीं है और प्रस्तुत प्रमाणपत्र में 70% विकलांगता एक पैर के विच्छेदन के कारण निर्धारित की गई है, जिसे विवादित नहीं किया गया है। इसी प्रकार **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, नांदेड़ बनाम प्रकाश शाहुराज माली एवं अन्य (उपरोक्त)** तथा **गोपाल कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ एवं अन्य (उपरोक्त)** के मामले भी बीमा कंपनी के लिए किसी प्रकार से सहायक नहीं हैं।

40. उपरोक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट है कि एक इंटरमीडिएट के अच्छे विद्यार्थी तथा एक अच्छे खेल-व्यक्ति, जिसने एक तेज गेंदबाज के रूप में नाम और प्रसिद्धि अर्जित की थी, के लिए एक पैर का खोना बहुत बड़ी क्षति है, क्योंकि वह किसी भी क्षेत्र में अध्ययन करने के बाद एक अच्छे पद पर आसीन हो सकता था, परंतु एक पैर के खोने के कारण उसके लिए अनेक नौकरियों और गतिविधियों के द्वार बंद हो गए, जिसे नकारा नहीं जा सकता। यद्यपि आजकल विकलांग व्यक्तियों को विभिन्न स्थानों पर रोजगार प्राप्त है, तथापि एक पैर के नुकसान का उनके कार्यकुशलता पर प्रभाव तथा विकल्पो की सीमितता को नकारा नहीं जा सकता। दावेदार एक अच्छा क्रिकेट खिलाड़ी और तेज गेंदबाज भी था। उसने अनेक प्रतियोगिताओं में भाग लिया और माध्यमिक स्तर पर बहुत अच्छा प्रदर्शन किया, परंतु एक पैर के खोने के कारण वह अपने पूरे जीवन में अब क्रिकेट खेलने में असमर्थ हो गया है। इस क्षेत्र में भी वह अच्छा कर सकता था, यहाँ तक कि अपना करियर भी बना सकता था। इसके अतिरिक्त, खेल व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक क्षमता को बढ़ाते हैं, जिससे वह अपने करियर और अन्य क्षेत्रों में भी बेहतर प्रदर्शन कर सकता है। खेल मनोरंजन का भी एक अच्छा साधन है, जो व्यक्ति की कार्यकुशलता और योग्यता को बढ़ाता है, किंतु दावेदार ने यह अवसर सदा के लिए खो दिया है।

41. विकलांगता प्रमाणपत्र सक्षम प्राधिकारी अर्थात् मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी किया गया है, जिसमें आर्थोपेडिक सर्जन के हस्ताक्षर एक हस्ताक्षरकर्ता के रूप में हैं। प्रमाणपत्र में 70% स्थायी विकलांगता दर्शाई गई है, जिसे विवादित नहीं किया जा सका। केवल इतना विवाद उठाया गया है कि, जब किसी ऐसे डॉक्टर का साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया जिसने दावेदार का उपचार किया हो, तो भविष्य की विकलांगता निर्धारित नहीं की जा सकती थी। जहाँ किसी व्यक्ति का पैर घुटने के नीचे से काटा गया हो, वहाँ यह नकारा नहीं जा सकता कि उसे न केवल अपने दैनिक जीवन में बल्कि अपने करियर में भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा

और उसने क्रिकेट खेलने के अवसर भी खो दिए हैं। अतः 80% विकलांगता का निर्धारण उचित रूप से किया गया है। इसमें कोई अवैधानिकता या त्रुटि नहीं है।

42. माननीय न्यायाधिकरण ने पीड़ा और कष्ट के लिए ₹50,000/- तथा सुख-सुविधाओं की हानि एवं वैवाहिक जीवन में आई गिरावट के लिए ₹1,00,000/- का मुआवजा प्रदान किया है। इस न्यायालय का मत है कि याची, जो इंटरमीडिएट का छात्र था, 18 वर्ष की आयु का था और एक अच्छा खिलाड़ी भी था, को हुए दर्द और कष्ट के मद्देनज़र तथा दुर्घटना में एक पैर खोने के कारण अब वह खेल नहीं सकता, इस हानि को धनराशि में पूरी तरह नहीं आँका जा सकता। उसके सामने पूरा जीवन था और वह भविष्य में अपनी पसंद के किसी भी क्षेत्र में करियर बना सकता था, परंतु अब वह ऐसा करने में असमर्थ है। अतः मुआवजे की यह राशि बढ़ाए जाने योग्य है दोनों ही मदों में ₹1,50,000/- तथा ₹1,50,000/- प्रदान की जाती है।

43. जहाँ तक भविष्य में उपचार के दावे का प्रश्न है, बीमा कंपनी के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि इस संबंध में कोई याचिका में उल्लेख नहीं है, जबकि वादपत्र से स्पष्ट है कि अपीलकर्ता ने इस विषय में उल्लेख किया है और इस आधार पर ₹6,00,000/- की मांग भी की है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि याची, जिसने अपना एक पैर खो दिया है, उसे जीवनभर कृत्रिम पैर की आवश्यकता रहेगी। इसलिए, भले ही इसे विशेष रूप से याचिका में नहीं लिखा गया हो, परंतु जब उसने यह कहा है कि कृत्रिम पैर पर ₹2,50,000/- खर्च हुए हैं और उसने भविष्य के उपचार के लिए मुआवजे की मांग की है, तो बीमा कंपनी के अधिवक्ता का यह तर्क गलत और अस्वीकार्य है। यह न्यायालय इस मत का है कि इस मद के अंतर्गत ₹2,00,000/- की राशि पर्याप्त होगी, क्योंकि उस पर प्राप्त ब्याज से याची भविष्य में इस प्रकार के खर्चों को पूरा कर सकेगा।

44. उपरोक्त तथ्यों एवं मामले की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, बीमा कंपनी द्वारा दायर की गई अपील निराधार है तथा उसमें लिए गए आधार विधि की दृष्टि में ग्राह्य नहीं हैं, अतः उसे खारिज किया जाता है। वहीं, याची द्वारा दायर अपील आंशिक रूप से स्वीकृत किए जाने योग्य है और उपरोक्त अनुसार मुआवजे की राशि बढ़ाए जाने योग्य है। अतः याची ₹9,52,600 + ₹1,00,000 + ₹50,000 + ₹2,00,000 अर्थात् ₹13,02,600/- की कुल मुआवजा राशि प्राप्त करने का हकदार है, जिस पर न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित ब्याज भी देय होगा।

45. उपरोक्त के साथ, बीमा कंपनी द्वारा दायर एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 137 सन् 2017 को यथास्थिति **खारिज** किया जाता है और याची द्वारा मुआवजा वृद्धि हेतु दायर एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 217 सन् 2017 को **आंशिक रूप से स्वीकृत** किया जाता है। तदनुसार, दिनांक 23.11.2016 का निर्णय एवं पुरस्कार संशोधित किया जाता है। बीमा कंपनी को निर्देश दिया जाता है कि वह बड़ी हुई राशि, यदि कोई शेष है तो उसे भी, ब्याज सहित

3.इला डीआईजी यूपी पुलिस मुख्यालय, इलाहाबाद एवं अन्य बनाम श्रीमती मितलेश एवं अन्य 31

जमा करने की तिथि तक की गणना के साथ, आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर संबंधित न्यायाधिकरण के समक्ष जमा करे। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

46. इस न्यायालय के समक्ष की गई वैधानिक जमा राशि को मुआवजे में समायोजन हेतु तथा न्यायाधिकरण के अभिलेखों को संबंधित न्यायाधिकरण को तुरंत, और किसी भी स्थिति में आज से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर, प्रेषित किया जाएगा।

(2025) 3 ILRA 23

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक : लखनऊ, 17.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन के समक्ष

आदेश से प्रथम अपील दोषपूर्ण सं. 178 / 2024

डीआईजी यूपी पुलिस मुख्यालय, इलाहाबाद एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती मितलेश एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

दीवानी विधि – सीमाबद्धता अधिनियम, 1963 – धारा 5 – विलंब की क्षमा विभागीय अपील 700 दिनों की देरी से दाखिल की गई – राज्य द्वारा पर्याप्त कारण प्रस्तुत करने में असफलता – लापरवाह एवं उदासीन आचरण – देरी का कारण प्रशासनिक सुस्ती और नौकरशाही लालफीताशाही बताया गया – न्यायालय ने माना कि ऐसा आचरण विलंब माफ करने के लिए उचित आधार नहीं हो सकता – विलंब माफी में विवेक का प्रयोग न्यायसंगत एवं तर्कसंगत होना चाहिए – देरी का संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया – सरकार को सीमाबद्धता कानून के अंतर्गत कोई विशेष छूट नहीं दी जा सकती – अपील खारिज की गई।

(पैरा 7, 8, 14 और 15)

निर्णय:

आवेदन तथा हलफनामे और पूरक हलफनामे में किए गए कथनों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि अपील दायर करने का निर्णय लेने में सरकार को लगभग दस माह का समय लग गया। जबकि यह कहा गया है कि अपील का मसौदा दिसंबर 2023 में तैयार कर लिया गया था, फिर भी यह जानने में कि अपील वास्तव में दायर हुई है या नहीं, पैरोकार को लगभग 11 माह लग गए। यह स्वयं यह दर्शाता है कि अपील दायर करने में अधिकारियों का रवैया अत्यंत लापरवाह और उदासीन रहा, जिसके परिणामस्वरूप 700 दिनों की देरी हुई है। (पैरा 7)

उपरोक्त निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का यह मत रहा है कि जब कोई वाद निर्धारित सीमा अवधि के बाद न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है, तो संबंधित व्यक्ति को यह समझाना आवश्यक होता है कि उसके पास क्या “पर्याप्त कारण” था अर्थात् ऐसा उचित और पर्याप्त कारण, जिसने उसे सीमा अवधि के भीतर न्यायालय में आने से रोका। यद्यपि सीमा कानून किसी पक्ष के अधिकारों को कठोर रूप से प्रभावित कर सकता है, फिर भी जब यह विधि द्वारा निर्धारित हो, तो इसे पूर्ण कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए। (पैरा 14)

वर्तमान मामले में, जैसा कि उपर्युक्त में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, अपीलकर्ताओं की ओर से पूरे समय एक लापरवाह, उदासीन और ढीले-ढाले रवैये का प्रदर्शन किया गया है। अपील दाखिल करने के निर्णय में राज्य को लगभग दस माह का समय लग गया और यद्यपि यह कहा गया कि अपील तैयार कर ली गई थी, फिर भी पैरोकार को यह समझने में ग्यारह माह का समय लग गया कि अपील वास्तव में दाखिल ही नहीं की गई है। यह अपीलकर्ताओं की ओर से घोर लापरवाही को दर्शाता है। अतः विलंब हेतु प्रस्तुत आवेदन में जो कारण बताए गए हैं, वे विश्वास उत्पन्न नहीं करते। फलस्वरूप, देरी माफी के ये आवेदन अस्वीकार किए जाते हैं। (पैरा 15)

आवेदन निरस्त किया जाता है। (ई-14)

उल्लिखित वादों की सूची :

1. मुख्य डाक महा अधीक्षक एवं अन्य बनाम लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, (2012) 3 एससीसी 563।
2. भारत संघ बनाम सेंट्रल तिब्बती स्कूल प्रशासन एवं अन्य, (2021) एससीसी ऑनलाइन 119।
3. सीमा शुल्क आयुक्त, चेन्नई एवं अन्य बनाम वॉलेक्स इंटरकनेक्ट (इंडिया) प्रा. लि., (2022) 3 एससीसी 159।

3.इला डीआईजी यूपी पुलिस मुख्यालय, इलाहाबाद एवं अन्य बनाम श्रीमती मितलेश एवं अन्य 33

4. पथुपति सुब्बा रेड्डी (मृत) अपने वैधानिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं अन्य बनाम विशेष उप संग्राहक (भूमि अधिग्रहण), [2024] 4 एससीआर 241।

5. मध्य प्रदेश राज्य बनाम रामकुमार चौधरी, 2024 आईएनएससी 932 में प्रकाशित।

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन द्वारा प्रदत्त)

(आदेश – आवेदन संख्या 1/2024 एवं 3/2025 पर)

1. अपीलकर्ता की ओर से माननीय स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।
2. ये अपील दायर करने में हुई देरी को माफ करने हेतु प्रस्तुत प्रार्थना पत्र तथा उक्त प्रार्थना पत्र के समर्थन में दायर अनुपूरक शपथपत्र हैं।
3. देरी 700 दिनों की है।
4. दिनांक 15.01.2025 को इस न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों को नोटिस जारी किया गया था।
5. कार्यालय की दिनांक 07.03.2025 की रिपोर्ट के अनुसार, प्रतिवादी संख्या 1 एवं 3 को व्यक्तिगत रूप से तथा प्रतिवादी संख्या 2 एवं 4 को उनकी माता के माध्यम से नोटिस की तामिली हो चुकी है। अतः दिनांक 07.03.2025 की कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवादियों पर नोटिस की तामिली पर्याप्त मानी जाती है। तथापि, प्रतिवादियों की ओर से कोई उपस्थिति या प्रत्युत्तर नहीं हुआ है, इसलिए न्यायालय देरी की माफी हेतु प्रस्तुत प्रार्थना पत्रों की सुनवाई एवं निस्तारण हेतु अग्रसर होता है।
6. शासकीय अधिवक्ता ने अपील दाखिल करने में हुई 700 दिनों की देरी को उचित ठहराने हेतु देरी माफी आवेदन तथा उसके समर्थन में दायर पूरक हलफनामे पर भरोसा किया है। उनका कहना है कि वाद में निर्णय माननीय अधिकरण द्वारा दिनांक 30.09.2022 को पारित किया गया था। उक्त निर्णय की सूचना वाद का संचालन कर रहे अधिवक्ता द्वारा दिनांक 03.12.2022 के अपने पत्र के माध्यम से प्रदान की गई थी। इसके प्रत्युत्तर में, अपर जिलाधिकारी (प्रशासन), रामपुर ने अपने पत्र दिनांक 16.12.2022 के माध्यम से अधिवक्ता के पत्र एवं अधिकरण द्वारा पारित उक्त निर्णय की सूचना दी। इसके पश्चात अपील दाखिल करने के संबंध में गृह (पुलिस) अनुभाग-02, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ को पत्र भेजा गया। लगभग दस माह बाद, शासन ने अपने पत्र दिनांक 06.10.2023 के माध्यम से अपील दाखिल करने की अनुमति प्रदान की। इसके पश्चात, पैरोकार ने मुख्य स्थायी अधिवक्ता के कार्यालय से संपर्क किया और दिसंबर 2023 में अपील तैयार की गई।

यह विश्वास करते हुए कि अपील दाखिल हो चुकी है, पैरोकॉर वापस चला गया और केवल नवंबर 2024 में अपील की स्थिति जानने के लिए लौटा, जहाँ से यह स्पष्ट हुआ कि विलंब की क्षमादान हेतु एक आवेदन दाखिल किया जाना आवश्यक है। तत्पश्चात, विलंब क्षमादान का आवेदन अपील सहित 02.12.2024 को इस न्यायालय में दाखिल किया गया।

7. विलंब क्षमादान के लिए दायर आवेदन, जो एक शपथपत्र तथा पूरक शपथपत्र द्वारा समर्थित है, के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि अपील दायर करने के निर्णय में सरकार को लगभग दस महीने का समय लग गया। यद्यपि अपील कथित रूप से दिसंबर 2023 में तैयार कर ली गई थी, फिर भी पैरोकॉर को यह पता लगाने में लगभग 11 महीने का समय लग गया कि क्या अपील वास्तव में दायर हुई है या नहीं। यह स्वयं इस बात को दर्शाता है कि इस न्यायालय के समक्ष अपील दायर करने में अधिकारियों का रवैया अत्यंत लापरवाह और उदासीन रहा है, जिसके परिणामस्वरूप 700 दिनों की देरी हुई है।

8. अपीलों/पुनरीक्षणों को दाखिल करने में विभाग की ओर से जो देरी प्रायः होती है, उस पर उच्चतम न्यायालय ने *मुख्य डाकपाल जनरल एवं अन्य बनाम लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड एवं अन्य*, (2012) 3 एस.सी.सी. 563 के मामले में विस्तारपूर्वक विचार किया है। इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती अनेक निर्णयों (जिनमें से कुछ पर अधिवक्ता द्वारा भी भरोसा किया गया है) पर विचार करने के बाद निम्नलिखित रूप से निर्णय दिया है:-

"27. यह विवादित नहीं है कि संबंधित व्यक्ति विषय-वस्तु तथा इसमें निहित सभी मुद्दों से भली-भाँति अवगत एवं परिचित थे, जिनमें विशेष अनुमति याचिका प्रस्तुत करने की निर्धारित परिसीमा अवधि भी सम्मिलित है। ऐसे में वे यह दावा नहीं कर सकते कि उनके लिए परिसीमा की पृथक अवधि लागू होगी, जबकि विभाग में न्यायिक कार्यवाही से परिचित सक्षम अधिकारी विद्यमान थे। जब विलंब के लिए कोई युक्तिसंगत एवं स्वीकार्य स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो हम यह प्रश्न उठाते हैं कि केवल इस आधार पर कि सरकार अथवा सरकार का कोई विभाग पक्षकार है, क्या विलंब को स्वतःस्फूर्त रूप से क्षम्य माना जाना चाहिए?"

28. यद्यपि हमें इस तथ्य का भान है कि विलंब की क्षमायाचना के विषय में, यदि कोई घोर लापरवाही, जानबूझकर निष्क्रियता अथवा अभाव-ए-निष्ठा (अभाव-ए-सद्भावना) न हो, तो पर्याप्त न्याय सुनिश्चित करने हेतु उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए, तथापि वर्तमान परिस्थितियों में हमारा मत है कि विभाग पूर्ववर्ती निर्णयों का लाभ नहीं उठा सकता। यांत्रिक प्रणाली की निरपेक्षता अथवा नौकरशाही पद्धति के अंतर्गत अनेक टिप्पणियाँ तैयार किए जाने की परंपरागत कार्यप्रणाली का हवाला अब स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि आधुनिक प्रौद्योगिकी का व्यापक प्रयोग एवं सुलभता उपलब्ध है। परिसीमा का विधान निःसंदेह सभी पर बाध्यकारी है, जिसमें सरकार भी सम्मिलित है।"

29. हमारे विचार में अब यह उचित समय है कि सभी शासकीय संस्थाओं, उनकी एजेंसियों एवं अधीनस्थ निकायों को यह स्पष्ट रूप से अवगत कराया जाए कि जब तक उनके पास विलंब के लिए कोई युक्तिसंगत एवं स्वीकार्य कारण तथा सद्भावनापूर्ण प्रयास न हो, तब तक यह सामान्य स्पष्टीकरण स्वीकार नहीं किया जाएगा कि प्रकरण अनेक माह अथवा वर्षों तक प्रक्रियागत औपचारिकताओं अथवा लालफीताशाही के कारण लंबित रहा। शासन विभागों पर यह विशेष दायित्व है कि वे अपने कर्तव्यों का पालन सतर्कता, निष्ठा एवं उत्तरदायित्व के साथ करें। विलंब की क्षमायाचना एक अपवाद है, इसे शासकीय विभागों के लिए पूर्वनिर्धारित लाभ के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। विधि का संरक्षण सभी को समान रूप से प्राप्त है, और उसे कुछ लोगों के लाभ हेतु परिवर्तित नहीं किया जा सकता।"

9. इसी प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत संघ बनाम सेंट्रल तिब्बतन स्कूल्स प्रशासन एवं अन्य 2021 एस.सी.सी. ऑनलाईन 119 के प्रकरण में निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया है :-

"4. हमने अतिरिक्त महाधिवक्ता को कुछ समय तक सुना है और यह उल्लेख करना आवश्यक है कि विवादित आदेश [भारत संघ बनाम सेंट्रल तिब्बतन स्कूल्स प्रशासन, 2018 एस.सी.सी. ऑनलाईन दिल्ली 13371] में जो एकमात्र त्रुटि प्रतीत होती है, वह यह है कि यह कहा गया कि यह अशिक्षित वादकारी का मामला नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार से सरकार ने अपनी अपील का अनुसरण किया है, वह इससे बेहतर कुछ नहीं दर्शाता! भारत सरकार जैसी सशक्त संस्था, जिसमें असंख्य अधिकारी एवं अधिवक्ता सम्मिलित विशाल विधि विभाग कार्यरत है, द्वारा विलंब के लिए प्रस्तुत किया गया कारण अत्यंत हास्यास्पद एवं अस्वीकार्य है।

5. हमने अपने अनेक आदेशों के माध्यम से विभिन्न शासकीय विभागों, राज्य सरकारों तथा अन्य लोक प्राधिकरणों को बार-बार यह परामर्श दिया है कि वे अपीलें समय पर दायर करना सीखें तथा विशेष रूप से अपने विधि विभाग के कार्यकलापों में सुधार करें, क्योंकि अब तकनीकी साधन उनके लिए सहज उपलब्ध हैं। तथापि, यह परामर्श निरर्थक सिद्ध हो रहा है, यद्यपि अनेक प्रकरणों में विलंब के लिए लागत अधिरोपित की गई है और यह निर्देश भी दिया गया है कि उक्त लागत की वसूली उन अधिकारियों से की जाए जो विलंब के लिए उत्तरदायी हैं, क्योंकि हमारा मत है कि ऐसे अधिकारियों को जवाबदेह ठहराया जाना आवश्यक है। परंतु, इसका कोई अनुकरणीय प्रभाव नहीं पड़ा है, और वर्तमान प्रकरण का प्रस्तुत किया जाना तो इस प्रवृत्ति की पराकाष्ठा को ही दर्शाता है।

6. उपर्युक्त तथ्यों से ही यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष अत्यंत लापरवाहीपूर्ण एवं असावधान दृष्टिकोण अपनाते हुए कोई भी ठोस अथवा युक्तिसंगत कारण प्रस्तुत किए बिना विलंब की क्षमायाचना की है। वस्तुतः याचिकाकर्ता की शिथिलता एवं अक्षमता के अतिरिक्त अभिलेख पर कोई ऐसा तथ्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जो विलंब के औचित्य को सिद्ध कर सके। हमने बारम्बार राज्य सरकारों एवं लोक

प्राधिकरणों को यह चेताया है कि वे यह गलत धारणा न रखें कि वे जब चाहे सर्वोच्च न्यायालय में प्रवेश कर सकते हैं और विधि द्वारा निर्धारित परिसीमा अवधि की उपेक्षा कर सकते हैं, मानो परिसीमा का विधान उन पर लागू ही नहीं होता। इस संदर्भ में हमारा ध्यान आकर्षित करने हेतु **मध्य प्रदेश राज्य बनाम भेरूलाल** [(2020) 10 एस.सी.सी. 654 : (2021) 1 एस.सी.सी. (नागरिक) 101 : (2021) 1 एस.सी.सी. (दंड) 117 : (2021) 1 एस.सी.सी. (सेवा) 84] तथा **उड़ीसा राज्य बनाम सुनंदा महाकुदा** [(2021) 11 एस.सी.सी. 560] के हमारे निर्णयों का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। सरकार अथवा लोक प्राधिकरणों को उनकी अंतर्निहित अक्षमताओं के कारण जो छूट प्रदान की जाती थी, वह इस न्यायालय के कुछ पुराने आदेशों का परिणाम थी, जो उस काल में दिए गए थे जब तकनीकी प्रगति आज की भाँति विकसित नहीं हुई थी, अतः उस समय अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया जाता था। परंतु वर्तमान समय में यह स्थिति अब विद्यमान नहीं है, और इस न्यायालय ने अपने निर्णय **पोस्टमास्टर जनरल बनाम लिविंग मीडिया (इंडिया) लिमिटेड** [(2012) 3 एस.सी.सी. 563 : (2012) 2 एस.सी.सी. (नागरिक) 327 : (2012) 2 एस.सी.सी. (दंड) 580 : (2012) 1 एस.सी.सी. (सेवा) 649] में वर्तमान विधिक स्थिति का स्पष्ट प्रतिपादन किया है। इसके बावजूद, ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार एवं लोक प्राधिकरणों के दृष्टिकोण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है।

7. हमने ऐसे प्रकार के प्रकरणों को 'प्रमाण-प्रकरण' के रूप में वर्गीकृत किया है, जिन्हें केवल इस उद्देश्य से दायर किया जाता है कि सर्वोच्च न्यायालय से यह औपचारिक निर्णय प्राप्त हो जाए कि अपील निरस्त कर दी गई है, जिससे यह कहा जा सके कि अब कुछ किया नहीं जा सकता। ऐसे प्रकरणों का वास्तविक उद्देश्य केवल औपचारिकता पूर्ण करना तथा उन अधिकारियों को उत्तरदायित्व से बचाना होता है, जिन्होंने या तो विधिसम्मत प्रक्रिया का पालन नहीं किया या जानबूझकर उसे अनुपालित रहने दिया। हमने इस प्रकार की प्रथाओं और प्रक्रियाओं का खंडन किया है और पुनः ऐसा कर रहे हैं। हम ऐसे प्रमाण-पत्र जारी करने से इन्कार करते हैं और यदि सरकार/लोक प्राधिकरणों को हानि होती है, तो यह समय है कि उन संबंधित अधिकारियों को, जो इसके लिए उत्तरदायी हैं, इसके परिणाम भुगतने चाहिए। विडंबना यह है जिसका हमने बारम्बार उल्लेख किया है कि उन अधिकारियों के विरुद्ध कभी भी कोई प्रभावी कार्रवाई नहीं की जाती तथा यदि न्यायालय इस पर ज़ोर देता है तो आम तौर पर केवल एक सौम्य चेतावनी तक ही मामला सीमित रह जाता है।

8. भारत संघ द्वारा इस प्रकार के प्रकरण में जिस घोर लापरवाही एवं निर्भीकता के साथ इस न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया गया है, उसे दृष्टिगत रखते हुए हम यह उपयुक्त समझते हैं कि इस प्रकरण में ₹1,00,000 (एक लाख रुपये) की विशेष लागत अधिरोपित की जाए, जिसकी वसूली संबंधित अधिकारी/अधिकारियों से की जाएगी तथा उक्त राशि चार सप्ताह की अवधि के भीतर **सर्वोच्च न्यायालय अधिवक्ता-ऑन-रिकॉर्ड कल्याण कोष** में जमा कराई जाएगी।

3.इला डीआईजी यूपी पुलिस मुख्यालय, इलाहाबाद एवं अन्य बनाम श्रीमती मितलेश एवं अन्य 37

9. उपर्युक्त कारणों के आधार पर विशेष अनुमति याचिकाएँ विलंब की परिसीमा से बाधित होने के कारण निरस्त की जाती हैं। लंबित प्रार्थना-पत्र भी तदनुसार निस्तारित किया जाता है।"

10. यह उल्लेखनीय है कि सेंट्रल तिब्बतन स्कूल्स (उक्त) प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय तीन माननीय न्यायाधीशों की पीठ द्वारा पारित किया गया था।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आयुक्त, सीमा शुल्क, चेन्नई बनाम वोलैक्स इंटरकनेक्ट (इंडिया) प्रा. लि. (2022) 3 एस.सी.सी. 159 के प्रकरण में निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया है:-

"2. यह ऐसा एक और प्रकरण है, जिसे हम पहले ही 'प्रमाण-प्रकरण' (Certificate Case) की श्रेणी में रख चुके हैं, और इस पर अधिक विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसका उद्देश्य केवल न्यायालय के समक्ष प्रकरण प्रस्तुत कर उसे समाप्त कराना प्रतीत होता है, जबकि विलंब की क्षमायाचना हेतु कोई ठोस या युक्तिसंगत कारण प्रस्तुत नहीं किया गया है, जैसा कि पोस्टमास्टर जनरल बनाम लिविंग मीडिया (इंडिया) लिमिटेड [(2012) 3 एस.सी.सी. 563: (2012) 2 एस.सी.सी. (नागरिक) 327 : (2012) 2 एस.सी.सी. (दंड) 580 : (2012) 1 एस.सी.सी. (सेवा) 649] के निर्णय में प्रतिपादित किया गया है।

3. उपर्युक्त तथ्यों के बावजूद हमने इस प्रकरण का गुण-दोष के आधार पर भी परीक्षण किया है तथा यह पाया है कि न्यायाधिकरण द्वारा लिया गया निर्णय पूर्णतः न्यायोचित एवं उचित है, क्योंकि विभाग स्वयं ही वर्गीकरण के संदर्भ में आगामी वर्षों में भी करदाता के साथ समान व्यवहार कर रहा है।

4. अतः, उपर्युक्त दोनों कारणों के आधार पर हमारा मत है कि यह अपील विचारणीय नहीं है। यह अपील तदनुसार निरस्त की जाती है।"

12. हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाथुपति सुब्बा रेड्डी (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधिगण एवं अन्य बनाम विशेष उप संग्राहक (भूमि अधिग्रहण) [2024 (4) एस.सी.आर. 241] के प्रकरण में निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया है:-

"16. सामान्यतः न्यायालयों ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 में प्रयुक्त शब्द 'पर्याप्त कारण' की व्याख्या करते समय अत्यंत उदार दृष्टिकोण अपनाया है, ताकि न्यायालय विलंब को क्षम्य ठहराकर वास्तविक न्याय कर सकें तथा विधि का ऐसा सार्थक अनुप्रयोग सुनिश्चित कर सकें जो न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करे। भूमि अधिग्रहण अधिकारी, अनंतनाग एवं अन्य बनाम कटीजी एवं अन्य के प्रकरण में इस न्यायालय ने 'पर्याप्त कारण' के लिए विलंब क्षमा करने के विषय में उदार दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि

सामान्यतः कोई भी वादकारी विलंब से अपील दायर करके लाभ नहीं उठाता; अपील प्रस्तुत करने में प्रत्येक दिन के विलंब का पृथक् स्पष्टीकरण देना आवश्यक नहीं है; और कभी-कभी यदि विलंब क्षमा करने से इनकार किया जाए तो कोई गुणयुक्त प्रकरण अस्वीकार हो सकता है, अतः न्याय के हित में यह आवश्यक है कि वास्तविक न्याय के कारणों को तकनीकी विचारों पर प्रधानता दी जाए तथा यदि विलंब जानबूझकर न किया गया हो, तो उसे क्षम्य माना जाना चाहिए। उपरोक्त के बावजूद, चाहे विलंब क्षमा करने में कितना ही उदार दृष्टिकोण क्यों न अपनाया जाए, अपील समय से प्रस्तुत न करने के लिए 'पर्याप्त कारण' का अस्तित्व विलंब क्षमायाचना की विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग हेतु अनिवार्य शर्त है। 'उदार दृष्टिकोण', 'न्याय-मुखी दृष्टिकोण' तथा 'वास्तविक न्याय की प्राप्ति हेतु कारण' जैसे सिद्धांतों का प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जा सकता कि वे परिसीमा के विधान को निष्प्रभावी कर दें और पुराने अथवा वस्तुतः समाप्त हो चुके प्रकरणों को परिसीमा अधिनियम की धारा 5 की आड़ में पुनर्जीवित या पुनः विचार हेतु प्रस्तुत किया जा सके।

17. यह सदैव ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत दायर प्रार्थना-पत्र का निर्णय करते समय 'पर्याप्त कारण' की व्याख्या करते हुए यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि अपील प्रस्तुत करने की निर्धारित परिसीमा अवधि समाप्त हो जाने पर, डिफ्री-धारक के पक्ष में एक वास्तविक अधिकार उत्पन्न हो जाता है, जिसे हल्के में बाधित नहीं किया जाना चाहिए। समयावधि बीत जाने पर डिफ्री-धारक यह मान लेता है कि डिफ्री अब बाध्यकारी है, और वह इस विश्वास के आधार पर नए अधिकारों का सृजन या उन पर कार्यवाही भी कर सकता है।

18. इस न्यायालय ने सन् 1962 में **रामलाल, मोतीलाल एवं छोटेलाल बनाम रेवा कोलफील्ड्स लिमिटेड** के प्रकरण में यह स्पष्ट किया था कि यदि कोई पक्षकार अपील समय-सीमा के भीतर प्रस्तुत न कर पाने हेतु 'पर्याप्त कारण' सिद्ध भी कर दे, तो भी उसे विलंब क्षमा का स्वतः अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता, क्योंकि विलंब क्षमा करना न्यायालय का विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र है। न्यायालय, यद्यपि 'पर्याप्त कारण' सिद्ध हो जाने पर भी, विभिन्न परिस्थितियों में पक्षकार की सद्भावना पर विचार करते हुए विलंब क्षमा करने से इंकार कर सकता है।"

13. पुनः, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मध्य प्रदेश राज्य बनाम रामकुमार चौधरी 2024 आई.एन.एस.सी. 932** के प्रकरण में निम्नलिखित अभिमत व्यक्त किया है:-

"5. विधिक स्थिति यह है कि जब कोई प्रकरण न्यायालय के समक्ष परिसीमा अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात प्रस्तुत किया जाता है, तो याचिकाकर्ता पर यह दायित्व होता है कि वह न्यायालय को यह स्पष्ट करे कि ऐसा कौन-सा 'पर्याप्त कारण' (संगत एवं पर्याप्त कारण) था, जिसने उसे परिसीमा अवधि के भीतर न्यायालय का द्वार खटखटाने से रोका। **मज्जी सन्नम्मा बनाम रेड्डी श्रीदेवी** के प्रकरण में इस न्यायालय ने यह प्रतिपादित

किया था कि यद्यपि परिसीमा का नियम किसी पक्षकार के अधिकारों को कठोर रूप से प्रभावित कर सकता है, तथापि जब यह विधि द्वारा निर्धारित है, तो इसे उसकी समस्त कठोरता के साथ लागू किया जाना आवश्यक है। इस न्यायालय के निर्णय **अजय डबरा बनाम प्यारे राम** का भी संदर्भ दिया गया, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया कि:

"13. इस न्यायालय ने **बसवराज बनाम विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी** [(2013) 14 एस.सी.सी. 81] के प्रकरण में, 'पर्याप्त कारण' के अभाव में विलंब क्षमायाचना की प्रार्थना-पत्र को अस्वीकार करते हुए, पैराग्राफ 15 में निम्नलिखित निष्कर्ष व्यक्त किया है:

"15. इस विषय पर विधिक स्थिति का सार यह है कि जब कोई प्रकरण न्यायालय के समक्ष परिसीमा अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात प्रस्तुत किया जाता है, तो आवेदक पर यह दायित्व होता है कि वह न्यायालय को यह स्पष्ट करे कि ऐसा कौन-सा 'पर्याप्त कारण' था अर्थात् ऐसा संगत एवं पर्याप्त कारण जिसने उसे परिसीमा अवधि के भीतर न्यायालय का आश्रय लेने से रोका। यदि किसी पक्ष को लापरवाह पाया जाए, अथवा प्रकरण की परिस्थितियों में उसके आचरण में सद्भावना (बोना फाइड) का अभाव हो, या यह प्रतीत हो कि उसने सतर्कता से कार्य नहीं किया या निष्क्रिय बना रहा, तो ऐसे में विलंब क्षमा करने का कोई औचित्यपूर्ण आधार नहीं हो सकता। कोई भी न्यायालय इस प्रकार के अत्यधिक विलंब को किसी भी शर्त के अधीन रहते हुए भी क्षम्य नहीं ठहरा सकता। विलंब क्षमायाचना से संबंधित प्रार्थना-पत्र का निर्णय केवल उन मानदंडों के अंतर्गत किया जाना चाहिए, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा विलंब क्षमा के संदर्भ में निर्धारित किया गया है। यदि कोई ऐसा 'पर्याप्त कारण' नहीं है जिसने वादकारी को समय पर न्यायालय का आश्रय लेने से रोका हो, तो बिना किसी औचित्य के विलंब क्षमा करना – चाहे किसी भी प्रकार की शर्त क्यों न लगाई गई हो विधिक प्रावधानों के उल्लंघन के समान होगा तथा यह विधायिका के प्रति घोर उपेक्षा एवं अनादर का परिचायक होगा।"

14. अतः, हमारे विचार में उच्च न्यायालय द्वारा वर्तमान अपीलकर्ता की विलंब क्षमायाचना प्रार्थना-पत्र को अस्वीकार करने में कोई त्रुटि नहीं की गई है।"

अतः यह पूर्णतः स्पष्ट है कि विलंब क्षमा करने का विवेकाधिकार प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर न्यायसंगत रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए, और यदि किसी पक्ष के प्रति लापरवाही, निष्क्रियता अथवा सद्भावना के अभाव का आरोप सिद्ध होता है, तो ऐसे में 'पर्याप्त कारण' की अभिव्यक्ति की उदार व्याख्या नहीं की जा सकती।

5.1. **भारत संघ बनाम जहांगीर बायरमजी जीजीभाँय (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** [2024 एस.सी.सी. ऑनलाईन एस.सी. 489] के प्रकरण में, जिसमें हममें से एक (माननीय न्यायमूर्ति जे.बी. पारदीवाला) पीठ के सदस्य थे, विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करते हुए इस न्यायालय ने स्पष्ट एवं निर्विवाद शब्दों में यह प्रतिपादित किया कि

विलंब को उदारता या दया के आधार पर क्षम्य नहीं माना जाना चाहिए, तथा 'पर्याप्त न्याय' प्रदान करने का अर्थ यह नहीं है कि विपक्षी पक्ष को किसी प्रकार की क्षति या प्रतिकूलता पहुँचे। इस निर्णय का प्रासंगिक अंश लाभकारी रूप से निम्नलिखित है:

"24. उपर्युक्त परिस्थितियों में हमने यह पूर्णतः स्पष्ट किया कि जब तक हमें यह संतोषजनक रूप से प्रतीत नहीं होता कि इतने दीर्घ एवं अत्यधिक विलंब के लिए 'पर्याप्त कारण' प्रस्तुत किया गया है, तब तक हम प्रकरण के गुण-दोष पर विचार नहीं करेंगे।

25. जब विलंब की अवधि बारह वर्षों से अधिक हो, तब यह कोई महत्व नहीं रखता कि वादकारी कोई निजी पक्ष है या राज्य अथवा भारत संघ स्वयं है। यदि कोई पक्ष विधि द्वारा निर्धारित अवधि बीत जाने के बहुत बाद न्यायालय का आश्रय लेने का निर्णय करता है, तो वह यह नहीं कह सकता कि विलंब क्षमा करने से किसी भी पक्ष को कोई क्षति या पूर्वाग्रह नहीं होगा। पक्षकारों के मध्य यह वाद लगभग सन् 1981 में प्रारम्भ हुआ था, और हम अब सन् 2024 में हैं अर्थात् लगभग तैंतालीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। तथापि आज तक प्रतिवादी अपने डिक्री के फल का उपभोग नहीं कर सका है। यदि हम बारह वर्ष और एक सौ अठावन दिनों के विलंब को क्षम्य ठहराते हैं और प्रतिवादी को पुनः न्यायिक कार्यवाहियों की लंबी प्रक्रिया से गुजरने को विवश करते हैं, तो यह न्याय का उपहास ही होगा।

26. विलंब की अवधि एक प्रासंगिक तत्व है, जिसका न्यायालय को विचार करते समय ध्यान रखना आवश्यक है कि क्या उक्त विलंब को क्षम्य ठहराया जाना चाहिए या नहीं। अपीलार्थियों के आचरण की प्रकृति से यह प्रतीत होता है कि वे विधि द्वारा निर्धारित परिसीमा अवधि की उपेक्षा करते हुए, कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए अपनी ही परिसीमा अवधि निर्धारित करना चाहते हैं। जब यह स्थापित हो जाता है कि किसी पक्ष ने अपनी ही लापरवाही और निष्क्रियता के कारण, लंबे समय तक विलंब करते हुए मामले को गुण-दोष के आधार पर विचारित कराए जाने का अधिकार खो दिया है, तब ऐसे विलंब को अनजाने या गैर-इरादतन नहीं माना जा सकता। ऐसी परिस्थिति में वह यह दलील नहीं दे सकता कि तकनीकी पहलुओं की तुलना में 'मौलिक न्याय' को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। विलंब की क्षमा याचना पर विचार करते समय न्यायालय को मुख्य मामले के गुण-दोष से प्रारंभ नहीं करना चाहिए। न्यायालय का यह दायित्व है कि वह पहले यह जांचे कि विलंब के लिए दी गई व्याख्या सद्भावनापूर्ण है या नहीं। केवल तब, जब विलंब का कारण पर्याप्त प्रतीत हो और दोनों पक्षों के तर्क समान रूप से संतुलित हों, न्यायालय मामले के गुण-दोष को ध्यान में रखकर विलंब को क्षम्य ठहराने पर विचार कर सकता है।

27. हमारा मत है कि सीमा अवधि का प्रश्न केवल तकनीकी विचार नहीं है। सीमा संबंधी नियम, सुसंगत सार्वजनिक नीति और न्याय-सिद्धांतों पर आधारित हैं। हमें ऐसा नहीं करना चाहिए कि प्रतिवादी के

सिर पर 'डैमोकलीज की तलवार' को अनिश्चित काल तक लटकाए रखें, जिसे अपीलकर्ताओं की मनमानी और इच्छानुसार कभी भी नीचे गिराया जा सके।

XXX

XXX

XXX

34. उपरोक्त के दृष्टिगत, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई त्रुटि नहीं की, और विधि की कोई त्रुटि तो बिल्कुल नहीं की। इसके अतिरिक्त भी, उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अपनी पर्यवेक्षणीय अधिकारिता का प्रयोग कर रहा था।

35. इस न्यायालय के ढेरों निर्णयों में, यह कहा गया है कि विलंब को उदारता के विषय के रूप में क्षमा नहीं किया जाना चाहिए। पर्याप्त न्याय प्रदान करने का अर्थ विरोधी पक्षकार के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न करना नहीं है। अपीलार्थी यह सिद्ध करने में विफल रहे हैं कि वे मामले के अभियोजन में युक्तियुक्त रूप से परिश्रमी थे और विलंब को क्षमा करने के लिए यह महत्वपूर्ण परीक्षण इस मामले में संतुष्ट नहीं होता है।

36. पूर्वगामी सभी कारणों से, यह अपील विफल होती है और एतद्वारा खारिज की जाती है। खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।"

उपरोक्त विधिक प्रतिपादन को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने विलंब को क्षमा करने से सही रूप से अस्वीकार कर दिया और यह टिप्पणी करते हुए अपील को खारिज कर दिया कि ऐसे अत्यधिक विलंब को संतोषजनक ढंग से स्पष्ट नहीं किया गया था, इसके लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं दर्शाया गया, और राज्य द्वारा कोई विश्वसनीय कारण प्रस्तुत नहीं किया गया। इसलिए, हम इस याचिका को प्रारम्भ में ही अस्वीकार करने के लिए प्रवृत्त हैं।"

14. उपरोक्त निर्णयों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय का यह मत रहा है कि जहाँ कोई मामला न्यायालय में परिसीमा के पश्चात् प्रस्तुत किया गया है, उस व्यक्ति को न्यायालय को यह स्पष्ट करना होगा कि वह "पर्याप्त कारण" क्या था, जिसका अर्थ है एक यथोचित और पर्याप्त कारण जिसने उसे परिसीमा के भीतर न्यायालय में पहुँचने से रोका। यद्यपि परिसीमा किसी पक्षकार के अधिकारों को कठोरता से प्रभावित कर सकती है, तथापि जब यह संविधि द्वारा विहित है तो इसे पूरी कठोरता के साथ लागू किया जाना है।

15. वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर पहले ही दर्शाया गया है, अपीलार्थियों की ओर से शुरू से ही एक अनौपचारिक, उपेक्षापूर्ण और उदासीन रवैया रहा है, जहाँ तक कि, राज्य को अपील दाखिल करने का निर्णय लेने में लगभग दस महीने लगे हैं और अभिकथित रूप से अपील तैयार कर लिए जाने के बावजूद, पैरोकार को यह समझने में ग्यारह महीने लगे कि अपील दाखिल नहीं की गई है। यह अपीलार्थियों की ओर से सरासर

लापरवाही है और इस प्रकार, वे आधार, जो विलंब क्षमा करने के आवेदनों में लिए गए हैं, विश्वास उत्पन्न नहीं करते हैं और परिणामस्वरूप, विलंब क्षमा करने के आवेदन अस्वीकार किए जाने योग्य हैं और तदनुसार, अस्वीकार किए जाते हैं।

(पुनरीक्षण ज्ञापन पर आदेश)

16. चूँकि विलंब क्षमा करने के आवेदन अस्वीकार कर दिए गए हैं, पुनरीक्षण भी **खारिज** हो जाता है।

(2025) 3 ILRA 30

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

आदेश से प्रथम अपील संख्या 182 / 2023

टाटा एआईजी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

...अपीलार्थी

बनाम

अमन कुमार व अन्य

...प्रतिवादी

अपीलार्थी के अधिवक्ता:

दीपक कुमार अग्रवाल

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

अरुणेन्द्र नाथ मिश्रा, प्रवीण चन्द्रा

दंड विधि - मोटर यान अधिनियम, 1988 - धारा 168, 169 व 173 - मोटर दुर्घटना दावा - अधिकरण का कर्तव्य - अनिवार्य जाँच - अधिकरण धारा 168 के अधीन उचित जाँच करने में विफल रहा - प्राथमिकी और दावा याचिका में विरोधाभासी वाहन पंजीकरण संख्याएँ - अधिकरण ने प्रमुख प्रत्यक्षदर्शी को प्रति-परीक्षा हेतु आहूत करने के आवेदन पर विनिश्चय किए बिना कार्यवाही की - बीमित वाहन के दुर्घटना में शामिल होने का तर्क सिद्ध नहीं हुआ - पंचाट पर्याप्त संवीक्षा के बिना पारित किया गया - निर्णय और पंचाट अपास्त किया गया - मामला नए सिरे से न्यायनिर्णयन हेतु प्रतिप्रेषित-अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (प्रस्तर 10 से 13, 14, 16, और 23)

निर्णीत:

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, गोपाल कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ व अन्य; 1968 एआईआर एससी 1413/1968 एससीसी ऑनलाइन एससी 63, के मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई पक्षकार, भले ही उस पर सबूत का भार न हो, अपने कब्जे में मौजूद महत्वपूर्ण साक्ष्य को, जो विवादक तथ्यों पर प्रकाश डाल सकता है, रोकता है, तो न्यायालय द्वारा प्रतिकूल अनुमान निकाला जा सकता है। (प्रस्तर 14)

उपरोक्त तथ्यों का, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन, अधिकरण द्वारा परीक्षण किया जाना आवश्यक था क्योंकि स्वामी और चालक द्वारा दुर्घटना से इंकार किया गया था। उन्होंने इस आशय का साक्ष्य प्रस्तुत किया कि दुर्घटना की तिथि पर वाहन उनके गाँव में चलाया जा रहा था, यद्यपि उन्होंने विनिर्दिष्ट रूप से यह नहीं कहा है कि दुर्घटना के समय वाहन दुर्घटना स्थल पर नहीं था, किन्तु दावाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत अभिवचनों और साक्ष्य में कई विसंगतियाँ हैं, जिनकी मोटर यान अधिनियम की धारा 168 के अधीन जाँच में अधिकरण द्वारा जाँच की जानी आवश्यक थी। मोटर यान अधिनियम की धारा 168 यह उपबंध करती है कि धारा 166 के अधीन किए गए प्रतिकर के लिए आवेदन की प्राप्ति पर, दावा अधिकरण, बीमाकर्ता और पक्षकारों (बीमाकर्ता सहित) को सूचना देने और सुनवाई का अवसर देने के पश्चात्, दावे की जाँच करेगा या जैसा भी मामला हो, धारा 163 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जाँच करेगा, और प्रतिकर की ऐसी राशि का अवधारण करते हुए एक पंचाट पारित कर सकेगा जो उसे न्यायसंगत प्रतीत होती है। (प्रस्तर 16)

मोटर यान अधिनियम की उपरोक्त धारा 169 के दृष्टिगत, दावा अधिकरण, इस निमित्त बनाए जा सकने वाले किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए, ऐसी संक्षिप्त प्रक्रिया का अनुसरण कर सकेगा, जैसी वह उचित समझे। धारा 169 की उप-धारा (2) यह उपबंध करती है कि दावा अधिकरण को शपथ पर साक्ष्य लेने और साक्षियों को उपस्थित कराने और दस्तावेजों एवं भौतिक वस्तुओं के प्रकटीकरण और प्रस्तुतीकरण को विवश करने के प्रयोजनार्थ और ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिए, जो विहित किए जाएँ, सिविल न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी और इसे सिविल न्यायालय समझा जाएगा। इस प्रकार दावा अधिकरण को न्यायसंगत होने के लिए सत्य का पता लगाने हेतु संक्षिप्त प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए जाँच करनी है। यह सत्य है कि मोटर यान अधिनियम के अधीन दावा याचिका को संभावनाओं की प्रबलता पर विनिश्चित किया जाना है और जैसा कि दांडिक मामलों के अधीन आवश्यक है, संदेह से परे पक्के सबूत की आवश्यकता नहीं है किन्तु जब उपरोक्त जैसी विसंगतियाँ अधिकरण के समक्ष इंगित की गई थीं और अपीलार्थी द्वारा प्रत्यक्षदर्शी को प्रति-परीक्षा के लिए आहूत करने हेतु एक आवेदन भी प्रस्तुत किया गया था, जिसका साक्ष्य विसंगतियों को स्पष्ट करने के लिए सारवान हो सकता था, तो अधिकरण द्वारा उसी की जाँच की जानी आवश्यक थी या प्रतिकूल अनुमान निकाला जा सकता था। (प्रस्तर 18)

उपरोक्त के दृष्टिगत और मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि विद्वान अधिकरण न केवल मोटर यान अधिनियम की धारा 168 के अधीन यथा अपेक्षित जाँच करने में विफल रहा है, बल्कि आक्षेपित निर्णय और पंचाट पारित करने से पूर्व अपीलार्थी के आवेदनों पर विचार

न करके और उनका निपटारा न करके उसे पर्याप्त अवसर देने में भी विफल रहा है, इसलिए वही अधिकरण को इस निर्देश के साथ अपास्त किए जाने योग्य है कि वह विधि के अनुसार और इस आदेश में ऊपर की गई टिप्पणियों के आलोक में मामले पर नए सिरे से विचार करे और उसका विनिश्चय करे। (प्रस्तर 23)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. गोपाल कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ व अन्य; 1968 एआईआर एससी 1413/1968 एससीसी ऑनलाइन एससी 63
2. कुलदीप सिंह बावा व अन्य बनाम टीका राम व अन्य; 2009 एससीसी ऑनलाइन डेल. 4293
3. भगत सिंह बनाम जय भगवान व अन्य; 2011 एससीसी ऑनलाइन पीएंडएच 12472
4. मयूर अरोड़ा बनाम अमित @ पांगे व अन्य; 2011 (1) टीएसी 878 (दिल्ली)

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. श्री दीपक कुमार अग्रवाल, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता और श्री प्रवीण चन्द्रा, प्रतिवादी सं.1 के विद्वान अधिवक्ता को सुना। प्रतिवादी सं.2 और 3 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. यह आदेश से प्रथम अपील (इसमें इसके पश्चात् एफ.ए.एफ.ओ. के रूप में संदर्भित) मोटर यान अधिनियम, 1988 (इसमें इसके पश्चात् मोटर यान अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 173 के अधीन, मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं.287 / 2017; अमन कुमार बनाम अरुण कुमार व अन्य में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, हरदोई द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 10.03.2023 और पंचाट दिनांक 13.03.2023 के विरुद्ध दाखिल की गई है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट चार महीने और कुछ अधिक के विलंब से, विलंब के लिए किसी स्पष्टीकरण के बिना, दर्ज कराई गई थी क्योंकि अभिकथित दुर्घटना 23.04.2017 को घटित हुई थी और प्रथम सूचना 26.08.2017 को दर्ज कराई गई थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट, पंजीकरण सं.यूपी-30-एजे-7710 वाली मोटरसाइकिल से दुर्घटना का अभिकथन करते हुए दर्ज कराई गई थी, किन्तु दावा याचिका पंजीकरण सं.यूपी-30-एएफ-7710 वाली मोटरसाइकिल के विरुद्ध दाखिल की गई थी और विद्वान अधिकरण ने इसे इस आधार पर स्वीकार कर लिया है कि दावाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट में शुद्धि के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जबकि उसने अधिकरण के समक्ष वही देने से इंकार कर दिया। दावाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट में अंतिम रिपोर्ट पंजीकरण

सं.यूपी-30-एजे-7710 वाली मोटरसाइकिल के विरुद्ध दाखिल की गई थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि विद्वान अधिकरण दुर्घटना के तथ्य पर समुचित रूप से विचार करने में भी विफल रहा है क्योंकि प्रतिवादी-दावाकर्ता के वर्णन में स्पष्ट विसंगतियाँ हैं। प्रतिवादी-दावाकर्ता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जिसमें यह अभिकथन किया गया था कि जब अभिकथित दुर्घटना घटित हुई तब वह एक देश राज के साथ खड़ा था और इसका अभिवचन दावा याचिका में भी किया गया है और उसका शपथ-पत्र पर साक्ष्य (मुख्य-परीक्षा) भी दावाकर्ता-प्रतिवादी के शपथ-पत्र के साथ दाखिल किया गया था, किन्तु उक्त देश राज प्रति-परीक्षा में उपस्थित नहीं हुआ और उसे प्रति-परीक्षा के लिए आहूत करने हेतु अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत आवेदन के बावजूद, आक्षेपित निर्णय और पंचाट पारित करने से पहले उस पर विचार नहीं किया गया और अधिकरण द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किए गए। इस प्रकार निवेदन यह है कि विद्वान अधिकरण मोटर यान अधिनियम की धारा 168 के अधीन यथा अपेक्षित जाँच करने में विफल रहा है और इस पर विचार करने के पश्चात् कि क्या पंजीकरण सं.यूपी-30-एएफ-7710 वाली अभिकथित मोटरसाइकिल दुर्घटना में शामिल थी अथवा नहीं, कोई निष्कर्ष अभिलिखित करने में विफल रहा है। इस प्रकार आक्षेपित निर्णय और पंचाट विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है और अपास्त किए जाने योग्य है।

4. इसके प्रतिकूल, दावाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दावाकर्ता-प्रतिवादी को दुर्घटना में गंभीर क्षतियाँ कारित हुई थीं, जिसके कारण उसका एक पैर काटना पड़ा और वह लगभग एक महीने तक अस्पताल में भर्ती रहा था और मानसिक तथा शारीरिक आघात के कारण वह समय पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं करा सका और विलंब का कारण स्वयं प्रथम सूचना रिपोर्ट में दिया गया है, इसलिए, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब दावा याचिका को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त भी एक बार जब दुर्घटना और आपेक्षिक वाहन का तेज़ और लापरवाहीपूर्ण चलाना मोटर यान अधिनियम के अधीन अधिकरण के समक्ष सिद्ध हो जाता है, तो दांडिक मामले की कार्यवाहियों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह आगे निवेदन करते हैं कि केवल इसलिए कि अंतिम रिपोर्ट पंजीकरण सं.यूपी-30-एजे-7710 वाले वाहन के संबंध में दाखिल की गई थी, पंजीकरण सं.यूपी-30-एएफ 7710 वाले वाहन की संलिप्तता से इंकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह अन्वेषण अधिकारी द्वारा नहीं पाया जा सका। प्रतिवादी सं.2 अर्थात् आपेक्षिक वाहन के स्वामी ने यह स्वीकार किया है कि राम सागर दुर्घटना की तिथि पर वाहन चला रहा था। यद्यपि यह तर्क लिया गया है कि वह गाँव में वाहन चला रहा था, किन्तु इसका कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त भी उसने दुर्घटना को विवादित नहीं किया है और प्रतिवादी सं.3 अर्थात् मोटरसाइकिल के चालक ने भी प्रतिवादी सं.2 के साक्ष्य का समर्थन किया है, किन्तु उन्होंने इस बात से इंकार नहीं किया है कि वे दुर्घटना की तिथि और समय पर दुर्घटना स्थल पर नहीं थे। इस प्रकार दावाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आक्षेपित निर्णय और पंचाट, अभिवचनों, साक्ष्य और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के पश्चात् विद्वान अधिकरण द्वारा सही रूप से पारित किया गया है, जो किसी भी अवैधता या त्रुटि से ग्रस्त नहीं है, जिसके लिए इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। अपील भ्रामक और निराधार आधारों पर दाखिल की गई है, जो खारिज किए जाने योग्य है।

5. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के निवेदनों पर विचार किया है और अभिलेखों का परिशीलन किया है।

6. दावा याचिका दावाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा यह अभिकथन करते हुए दाखिल की गई थी कि वह देश राज के साथ गाँव सिंगुवामऊ, थाना-सुरसा, जिला-हरदोई से अपने घर आने के लिए दिनांक 23.04.2017 को शाम लगभग 7 बजे परिवहन की प्रतीक्षा कर रहा था, जब पंजीकरण सं.यूपी-30-एफ-7710 वाली मोटरसाइकिल, जो लखनऊ की ओर से आ रही थी, जिसे उसके चालक द्वारा उतावलेपन और लापरवाही से चलाया जा रहा था, गलत दिशा में आई और उसे टक्कर मार दी, जिसमें उसे गंभीर क्षतियाँ कारित हुईं। उसे जिला सरकारी अस्पताल, हरदोई में भर्ती कराया गया, किन्तु गंभीर स्थिति के कारण उसे लखनऊ के लिए रेफर कर दिया गया। उपचार के दौरान उसका बायाँ पैर काट दिया गया और दूसरे पैर की शल्य चिकित्सा की गई और उपचार अभी भी चल रहा है। वह दोनों पैरों से पूर्णतः विकलांग हो गया है। दुर्घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट पुलिस अधीक्षक, हरदोई के आदेश से वाद अपराध सं.208 / 2017, धारा 279, 338 आईपीसी के अधीन, थाना-सुरसा, जिला हरदोई में दर्ज कराई गई। दावाकर्ता-प्रतिवादी एक सब्जी व्यापारी था और 15,000/- रुपये प्रति माह कमाता था, किन्तु दुर्घटना में लगी चोटों के कारण वह आजीविका कमाने में असमर्थ है, इसलिए, वह प्रतिवादियों से मुआवज़े का हकदार है।

7. पंजीकरण सं.यूपी-30-एफ-7710 वाली मोटरसाइकिल के स्वामी, प्रतिवादी सं.2, ने अपना लिखित कथन मुख्य रूप से दावा याचिका में किए गए अभिकथनों से इंकार करते हुए दाखिल किया। उसने यह भी कथन किया कि अभिकथित दुर्घटना उसके वाहन से घटित नहीं हुई है। दुर्घटना में शामिल वाहन भिन्न है। उसका दुर्घटना से कोई सरोकार नहीं है। उसे शत्रुता और पक्ष प्रतिद्वंद्विता के कारण फँसाया गया है। उसका वाहन टाटा एआईजी इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के पास वैध रूप से पंजीकृत और बीमित था और उसके चालक राम सागर के पास वैध चालन अनुज्ञप्ति थी। इस प्रकार दावा याचिका उसके विरुद्ध खारिज किए जाने योग्य है।

8. प्रतिवादी सं.3 अर्थात् अपीलार्थी ने मुख्य रूप से दावा याचिका में किए गए अभिकथनों से इंकार करते हुए लिखित कथन दाखिल किया। यह आगे कथन किया गया कि दुर्घटना की प्रकृति को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि दुर्घटना किसी अज्ञात वाहन से घटित हुई थी और दावा प्राप्त करने के लिए पुलिस की मिलीभगत से झूठा मामला दर्ज किया गया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकरण सं.यूपी-30-एफ-7710 वाली मोटरसाइकिल के विरुद्ध दर्ज कराई गई है, किन्तु तत्पश्चात् पंजीकरण सं.यूपी-30-एफ-7710 वाली मोटरसाइकिल को दुर्घटना में रोपित कर दिया गया है। दस्तावेज जैसे कि आयु का प्रमाण, चिकित्सीय पर्चे कूटरचित प्रतीत होते हैं, इसलिए, बीमा कंपनी उक्त अवधि के लिए ब्याज का भुगतान करने के लिए दायी नहीं है और दावा याचिका खर्चों सहित खारिज किए जाने योग्य है।

9. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर चार वादबिंदु विरचित किए गए। तत्पश्चात् पक्षकारों द्वारा दस्तावेजी तथा मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किया गया।

10. विद्वान अधिकरण ने, वादबिंदु सं.1 अर्थात् दिनांक 23.04.2017 को शाम लगभग 7 बजे गाँव सिंगुवामऊ, थाना-सुरसा, जिला-हरदोई के निकट मोटरसाइकिल पंजीकरण सं.यूपी-30-एफ-7710 से, जिसे उसके चालक द्वारा उतावलेपन और लापरवाही से चलाया जा रहा था, दुर्घटना होने, जिसमें दावाकर्ता-प्रतिवादी को गंभीर क्षतियाँ कारित हुईं और वह विकलांग हो गया है, के संबंध में विचार करते समय, पी.डब्ल्यू.-1, ओ.पी.डब्ल्यू.-1 और ओ.पी.डब्ल्यू.-2 के साक्ष्य पर विचार किया और यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि दुर्घटना, प्रतिवादी सं.2 राम सागर अर्थात् वर्तमान अपील में प्रतिवादी सं.3 द्वारा, दिनांक 23.04.2017 को मोटरसाइकिल पंजीकरण सं.यूपी-30-एफ-7710 के उतावलेपन और लापरवाहीपूर्ण चालन के कारण घटित हुई थी, किन्तु वह दावाकर्ता-प्रतिवादी के इन अभिवचनों पर विचार करने में विफल रहा कि वह अपने गाँव के देश राज के साथ खड़ा होकर परिवहन की प्रतीक्षा कर रहा था, जब दुर्घटना घटित हुई थी और इस तथ्य का उल्लेख करते हुए प्रथम सूचना रिपोर्ट भी दर्ज कराई गई थी और देश राज का साक्ष्य में एक शपथ-पत्र (मुख्य-परीक्षा) भी दावाकर्ता-प्रतिवादी के शपथ-पत्र के साथ दाखिल किया गया था, किन्तु उसे प्रति-परीक्षा के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया, जबकि वह दुर्घटना और प्रतिवादी सं.3 के उतावलेपन और लापरवाहीपूर्ण चालन को सिद्ध करने के लिए सर्वोत्तम स्वतंत्र साक्षी हो सकता था। दिनांक 02.03.2023 को अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा दावा याचिका से संबंधित दांडिक मामले की कागज-पत्र को आहूत करने के लिए एक आवेदन पत्र सं.30-जीए दाखिल किया गया, जिसे अभिलेख पर लिया गया। दिनांक 10.03.2023 को अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा दो आवेदन प्रस्तुत किए गए।

11. विद्वान अधिकरण ने, दिनांक 02.03.2023 के आदेश के माध्यम से, मामले को प्रतिरक्षा साक्ष्य, यदि कोई हो, और दिनांक 10.03.2023 को बहस के लिए नियत किया। पत्र सं.31-जीए, दावाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दिनांक 20.02.2023 को दाखिल किए गए उपचार से संबंधित दस्तावेजों की छायाप्रति प्रदान करने के लिए, मोटर यान अधिनियम की धारा 169 के अधीन प्रस्तुत किया गया और पत्र सं.34-जीए देश राज को आहूत करने के लिए प्रस्तुत किया गया, जिसमें यह अभिकथन किया गया कि देश राज का साक्ष्य साक्षी के रूप में दाखिल किया गया है, किन्तु उसे प्रति-परीक्षा के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है और दावाकर्ता-प्रतिवादी ने अपना साक्ष्य दिनांक 15.02.2023 को अभिलिखित कराया, और 15.02.2023 को बंद कर दिया, इसलिए, दावाकर्ता-प्रतिवादी को देश राज को उसकी प्रति-परीक्षा के लिए प्रस्तुत करने हेतु निर्देशित किया जाए। पत्र सं.31-जीए पर, अधिकरण ने 'पत्रावली पर रखा जाए' का आदेश दिया और पत्र सं.34-जीए पर 'केवल पत्रावली पर रखा जाए' का आदेश दिया। यद्यपि अधिकरण ने उपरोक्त तीनों आवेदनों को अभिलेख पर ले लिया, किन्तु उन पर कोई आदेश पारित किए बिना, दिनांक 10.03.2023 को ही आक्षेपित निर्णय और पंचाट पारित कर दिया।

12. विद्वान अधिकरण ने आक्षेपित निर्णय और पंचाट इस पर विचार किए बिना पारित कर दिया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट वाहन सं.यूपी-30-एजे-7710 के विरुद्ध दर्ज कराई गई थी, किन्तु दावा याचिका वाहन सं.यूपी-30-एफ-7710 के विरुद्ध दाखिल की गई है और अंतिम रिपोर्ट वाहन सं.यूपी-30-एजे-7710 के शामिल न होने के आधार पर और इस आधार पर कि दुर्घटना में शामिल वाहन की कोई सही जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकी और भविष्य में इसका पता नहीं लगाया जा सकता है तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित वाहन दुर्घटना के पश्चात् खरीदा गया था, दाखिल की गई है, इसलिए, यद्यपि यह सुस्पष्ट है कि उक्त वाहन दुर्घटना में शामिल

नहीं हो सकता था, किन्तु क्या दूसरा वाहन दुर्घटना में शामिल था अथवा नहीं, क्योंकि उसी की संख्या को तत्पश्चात् शुद्ध किया गया था और दुर्घटना के संबंध में दावाकर्ता-प्रतिवादी के अभिवचनों और साक्ष्य में विसंगतियाँ थीं, इस पर समुचित रूप से विचार नहीं किया गया है।

13. विद्वान अधिकरण दावाकर्ता-प्रतिवादी के इस विनिर्दिष्ट अभिवचन पर विचार करने में भी विफल रहा कि दुर्घटना के समय उसके गाँव का देश राज उसके साथ था और साक्षी के रूप में उसका साक्ष्य भी दावाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा उसके साक्ष्य के साथ दाखिल किया गया था, किन्तु उसे प्रति-परीक्षा के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है, जबकि वह दुर्घटना का एक सारवान प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था क्योंकि वह दुर्घटना के समय दावाकर्ता-प्रतिवादी के साथ उपस्थित था और जब उसका साक्ष्य दाखिल किया गया था तो उसे प्रति-परीक्षा के लिए भी प्रस्तुत किया जाना चाहिए था। उसने अभिलेख पर दाखिल अपने शपथ-पत्र में यह स्वीकार किया है कि वह दुर्घटना स्थल पर दावाकर्ता-प्रतिवादी के साथ उपस्थित था। इस पर भी विचार किया जाना आवश्यक था कि उसे प्रति-परीक्षा के लिए क्यों प्रस्तुत नहीं किया गया है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, गोपाल कृष्णाजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ व अन्य; 1968 एआईआर एससी 1413/1968 एससीसी ऑनलाइन एससी 63, के मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई पक्षकार, भले ही उस पर सबूत का भार न हो, अपने कब्जे में मौजूद महत्वपूर्ण साक्ष्य को, जो विवादक तथ्यों पर प्रकाश डाल सकता है, रोकता है, तो न्यायालय द्वारा प्रतिकूल अनुमान निकाला जा सकता है।

15. विद्वान अधिकरण इस पर विचार करने में भी विफल रहा कि दावाकर्ता-प्रतिवादी ने यद्यपि यह कथन करते हुए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई कि देश राज दुर्घटना स्थल पर उसके साथ उपस्थित था, इसका अभिवचन दावा याचिका में किया और देश राज का एक शपथ-पत्र भी दाखिल किया, जिसने इस तथ्य को स्वीकार किया, किन्तु उसने अपने साक्ष्य में इंकार कर दिया। उसने अपनी प्रति-परीक्षा में अपने साक्ष्य में यह कथन किया कि वह दुर्घटना की तिथि पर सिंगुवामऊ से अकेला वापस आ रहा था। वह अपने भाई के ससुराल वालों के नाम, जहाँ उसने जाना कथित किया था, बताने में भी विफल रहा। उसने यह भी कथन किया कि उसने दुर्घटना की सूचना थाने को दिनांक 23.08.2024 को दी थी और उसने पुलिस अधीक्षक, हरदोई को कोई आवेदन नहीं दिया था और प्रथम सूचना रिपोर्ट उसके द्वारा थाने पर दी गई सूचना पर दर्ज की गई थी, जबकि दावाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा स्वयं अभिलेख पर रखे गए दस्तावेज यह दर्शाते हैं कि आवेदन दावाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा पुलिस अधीक्षक, हरदोई को दिनांक 25.08.2017 को दिया गया था, जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसका उल्लेख प्रथम सूचना रिपोर्ट में भी है। वाहन की संख्या में शुद्धि के लिए आवेदन भी पुलिस अधीक्षक, हरदोई को दिया गया था, जो अंतिम रिपोर्ट में संदर्भित है।

16. उपरोक्त तथ्यों का, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन, अधिकरण द्वारा परीक्षण किया जाना आवश्यक था क्योंकि स्वामी और चालक द्वारा दुर्घटना से इंकार किया गया था। उन्होंने इस आशय का साक्ष्य

प्रस्तुत किया कि दुर्घटना की तिथि पर वाहन उनके गाँव में चलाया जा रहा था, यद्यपि उन्होंने विनिर्दिष्ट रूप से यह नहीं कहा है कि दुर्घटना के समय वाहन दुर्घटना स्थल पर नहीं था, किन्तु दावाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत अभिवचनों और साक्ष्य में कई विसंगतियाँ हैं, जिनकी मोटर यान अधिनियम की धारा 168 के अधीन जाँच में अधिकरण द्वारा जाँच की जानी आवश्यक थी। मोटर यान अधिनियम की धारा 168 यह उपबंध करती है कि धारा 166 के अधीन किए गए प्रतिकर के लिए आवेदन की प्राप्ति पर, दावा अधिकरण, बीमाकर्ता और पक्षकारों (बीमाकर्ता सहित) को सूचना देने और सुनवाई का अवसर देने के पश्चात्, दावे की जाँच करेगा या जैसा भी मामला हो, धारा 163 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जाँच करेगा, और प्रतिकर की ऐसी राशि का अवधारण करते हुए एक पंचाट पारित कर सकेगा जो उसे न्यायसंगत प्रतीत होती है। मोटर यान अधिनियम की धारा 168 नीचे उद्धृत है:-

“168. दावा अधिकरण का पंचाट- (1) धारा 166 के अधीन किए गए प्रतिकर के लिए आवेदन की प्राप्ति पर, दावा अधिकरण, आवेदन की सूचना बीमाकर्ता को देने के पश्चात् और पक्षकारों (बीमाकर्ता सहित) को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात्, दावे की या, जैसा भी मामला हो, प्रत्येक दावे की अन्वेषण करेगा और, [धारा 163] के उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रतिकर की ऐसी राशि का अवधारण करते हुए एक पंचाट पारित कर सकेगा जो उसे न्यायसंगत प्रतीत होती है और उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों को विनिर्दिष्ट करते हुए जिन्हें प्रतिकर का भुगतान किया जाएगा और पंचाट पारित करने में दावा अधिकरण उस राशि को विनिर्दिष्ट करेगा जिसका भुगतान, जैसा भी मामला हो, बीमाकर्ता या दुर्घटना में शामिल वाहन के स्वामी या चालक द्वारा या उन सभी के द्वारा या उनमें से किसी के द्वारा किया जाएगा:

(2) दावा अधिकरण, संबंधित पक्षकारों को पंचाट की प्रतियाँ शीघ्रतापूर्वक और किसी भी दशा में पंचाट की तिथि से पंद्रह दिनों की अवधि के भीतर, परिदत्त करने की व्यवस्था करेगा।

(3) जब इस धारा के अधीन कोई पंचाट पारित किया जाता है, तब वह व्यक्ति, जो ऐसे पंचाट के निबंधनों के अनुसार कोई राशि अदा करने के लिए अपेक्षित है, दावा अधिकरण द्वारा पंचाट सुनाए जाने की तिथि से तीस दिनों के भीतर, संपूर्ण अधिनिर्णीत राशि ऐसी रीति से जमा करेगा, जैसी दावा अधिकरण निर्देशित करे।”

17.उपरोक्त के दृष्टिगत अधिकरण को पंचाट पारित करने से पूर्व दावे की जाँच करनी होती है। मोटर यान अधिनियम की धारा 169 दावा अधिकरण की प्रक्रिया और शक्तियों का उपबंध करती है, जो नीचे उद्धृत है:-

“169. दावा अधिकरणों की प्रक्रिया और शक्तियाँ- (1) धारा 168 के अधीन कोई जाँच करने में, दावा अधिकरण, इस निमित्त बनाए जा सकने वाले किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए, ऐसी संक्षिप्त प्रक्रिया का अनुसरण कर सकेगा, जैसी वह उचित समझे।

(2) दावा अधिकरण को शपथ पर साक्ष्य लेने और साक्षियों को उपस्थित कराने और दस्तावेजों एवं भौतिक वस्तुओं के प्रकटीकरण और प्रस्तुतीकरण को विवश करने के प्रयोजनार्थ और ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिए, जो विहित किए जाएँ, सिविल न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी; और दावा अधिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 195 और अध्याय 26 के सभी प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा।

(3) इस निमित्त बनाए जा सकने वाले किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए, दावा अधिकरण, प्रतिकर के लिए किसी दावे पर न्यायनिर्णयन करने के प्रयोजनार्थ, जाँच करने में अपनी सहायता के लिए जाँच से सुसंगत किसी विषय का विशेष ज्ञान रखने वाले एक या अधिक व्यक्तियों को चुन सकेगा।

[(4) अपने पंचाट के प्रवर्तन के प्रयोजनार्थ, दावा अधिकरण को, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी डिक्री के निष्पादन में सिविल न्यायालय की सभी शक्तियाँ भी प्राप्त होंगी, मानो पंचाट ऐसे न्यायालय द्वारा किसी दीवानी वाद में पारित धन के भुगतान के लिए डिक्री हो।]"

18. मोटर यान अधिनियम की उपरोक्त धारा 169 के दृष्टिगत, दावा अधिकरण, इस निमित्त बनाए जा सकने वाले किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए, ऐसी संक्षिप्त प्रक्रिया का अनुसरण कर सकेगा, जैसी वह उचित समझे। धारा 169 की उप-धारा (2) यह उपबंध करती है कि दावा अधिकरण को शपथ पर साक्ष्य लेने और साक्षियों को उपस्थित कराने और दस्तावेजों एवं भौतिक वस्तुओं के प्रकटीकरण और प्रस्तुतीकरण को विवश करने के प्रयोजनार्थ और ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिए, जो विहित किए जाएँ, सिविल न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी और इसे सिविल न्यायालय समझा जाएगा। इस प्रकार दावा अधिकरण को न्यायसंगत होने के लिए सत्य का पता लगाने हेतु संक्षिप्त प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए जाँच करनी है। यह सत्य है कि मोटर यान अधिनियम के अधीन दावा याचिका को संभावनाओं की प्रबलता पर विनिश्चित किया जाना है और जैसा कि दांडिक मामलों के अधीन आवश्यक है, संदेह से परे पक्के सबूत की आवश्यकता नहीं है किन्तु जब उपरोक्त जैसी विसंगतियाँ अधिकरण के समक्ष इंगित की गई थीं और अपीलार्थी द्वारा प्रत्यक्षदर्शी को प्रति-परीक्षा के लिए आहूत करने हेतु एक आवेदन भी प्रस्तुत किया गया था, जिसका साक्ष्य विसंगतियों को स्पष्ट करने के लिए सारवान हो सकता था, तो अधिकरण द्वारा उसी की जाँच की जानी आवश्यक थी या प्रतिकूल अनुमान निकाला जा सकता था।

19. यह देखा गया है कि दांडिक मामले की पत्रावली को आहूत करने, अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य की प्रतियाँ प्रदान करने और साक्षी को प्रति-परीक्षा के लिए बुलाने हेतु आवेदन साक्ष्य की तिथि पर प्रस्तुत किए गए थे, इसलिए, उन्हीं पर विनिश्चय किए बिना अधिकरण उसी तिथि को दावा याचिका को विनिश्चित करने के लिए अग्रसर नहीं हो सकता था।

20. उपरोक्त के दृष्टिगत, इस न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण, जैसा कि मोटर यान अधिनियम के अधीन उपबंधित है, जाँच करने में विफल रहा है और उसने अपीलार्थी द्वारा दाखिल किए गए आवेदनों पर विनिश्चय न करके, उसे पर्याप्त अवसर प्रदान किए बिना, आक्षेपित निर्णय और पंचाट भी पारित कर दिया है।

21. दिल्ली उच्च न्यायालय ने, **कुलदीप सिंह बावा व अन्य बनाम टीका राम व अन्य; 2009 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 4293**, के मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि मोटर यान अधिनियम की धारा 168 विद्वान अधिकरण पर सार्थक रीति से जाँच करने का कर्तव्य अधिरोपित करती है। सुसंगत प्रस्तर 5 नीचे उद्धृत है:-

“5. मोटर वाहन अधिनियम की धारा 168 यह उपबंधित करती है कि माननीय अधिकरण दावा याचिका पर एक अन्वेषण करेगा। मोटर वाहन अधिनियम की धारा 169 यह प्रावधान करती है कि उक्त जाँच करने हेतु माननीय अधिकरण ऐसी संक्षिप्त प्रक्रिया अपनाएगा, जैसी वह उपयुक्त समझे। धारा 168 में वर्णित अन्वेषण, दीवानी वाद से भिन्न है। मोटर वाहन अधिनियम की धारा 168 माननीय अधिकरण पर यह दायित्व डालती है कि वह अन्वेषण को सार्थक एवं प्रभावी रूप से संपादित करे। इस प्रावधान के पीछे विधानमंडल का उद्देश्य यह है कि सड़क दुर्घटना के पीड़ित अपने भाग्य पर न छोड़े जाएँ। यदि माननीय अधिकरण को वाहन की संलिप्तता पर कोई संदेह था, तो अधिकरण को आपराधिक मामले के विवेचक को तलब करना चाहिए था तथा आपराधिक अभिलेख का अवलोकन करना चाहिए था। परंतु इस प्रकरण में ऐसी कोई जाँच नहीं की गई है।”

22. ऐसा ही मत पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा, **भगत सिंह बनाम जय भगवान व अन्य; 2011 एससीसी ऑनलाइन पीएंडएच 12472**, के मामले में और दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा, **मयूर अरोड़ा बनाम अमित उर्फ पांगे व अन्य; 2011 (1) टीसी 878 (दिल्ली)**, के मामले में व्यक्त किया गया है।

23. उपरोक्त के दृष्टिगत और मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि विद्वान अधिकरण न केवल मोटर यान अधिनियम की धारा 168 के अधीन यथा अपेक्षित जाँच करने में विफल रहा है, बल्कि आक्षेपित निर्णय और पंचाट पारित करने से पूर्व अपीलार्थी के आवेदनों पर विचार न करके और उनका निपटारा न करके उसे पर्याप्त अवसर देने में भी विफल रहा है, इसलिए वही अधिकरण को इस निर्देश के साथ अपास्त किए जाने योग्य है कि वह विधि के अनुसार और इस आदेश में ऊपर की गई टिप्पणियों के आलोक में मामले पर नए सिरे से विचार करे और उसका विनिश्चय करे।

24. उपरोक्त के साथ अपील **आंशिक रूप से स्वीकृत** की जाती है। मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं.287 / 2017; अमन कुमार बनाम अरुण कुमार व अन्य में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, हरदोई द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 10.03.2023 और पंचाट दिनांक 13.03.2023 एतद्वारा अपास्त किया जाता है। मामला संबंधित अधिकरण को उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के आलोक में दावा याचिका पर नए सिरे से विनिश्चय करने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाता है।

25. चूँकि मामला वर्ष 2017 का है, यह न्यायालय अधिकरण को यह निर्देश देना उचित समझता है कि वह दावा याचिका पर नए सिरे से शीघ्रतापूर्वक और अधिमानतः पक्षकारों की उपस्थिति के लिए इस आदेश में अधिकरण के समक्ष नियत तिथि से चार महीने की अवधि के भीतर, पक्षकारों में से किसी को भी अनावश्यक स्थगन दिए बिना, विनिश्चय करे।

26. पक्षकार संबंधित अधिकरण के समक्ष 24 मार्च, 2025 को उपस्थित होंगे।

27. इस न्यायालय के समक्ष जमा की गई सांविधिक राशि और इस न्यायालय द्वारा पारित किसी आदेश के अधीन कोई अन्य राशि संबंधित अधिकरण को तत्काल प्रतिप्रेषित की जाएगी और किसी भी दशा में आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर, जिसका संवितरण अधिकरण द्वारा लिए गए नए विनिश्चय के अध्यधीन होगा।

(2025) 3 ILRA 38

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

प्रथम अपील सं. 27 / 2018

खजांची

.....अपीलार्थी

बनाम

प्रीते

.....प्रतिवादी

अपीलार्थी के अधिवक्ता: उमेश चन्द्र सक्सेना, संतोष कुमार मौर्य

प्रतिवादी के अधिवक्ता: संजय कुमार पटेल (एस.के.), श्रवण कुमार वर्मा

पारिवारिक विधि – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा 13 व 13ख – विवाह-विच्छेद – कुटुम्ब न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद याचिका की खारिजी के विरुद्ध अपील – लंबा अलगाव और सहवास का अभाव – मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र के समक्ष समझौता संपन्न हुआ – स्थायी निर्वाह-व्यय का भुगतान पूर्ण हुआ – सभी लंबित वादों को वापस लेने पर सहमति हुई – कोई और दावे नहीं किए जाएंगे – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 89(2)(घ), आदेश 23 नियम 3 – मध्यस्थता – न्यायालय स्वैच्छिक और विधिसम्मत मध्यस्थता

समझौते के आधार पर डिक्री पारित करने हेतु सशक्त – सिविल प्रक्रिया संहिता और मध्यस्थता नियमों के अधीन सांविधिक अपेक्षाओं की संतुष्टि – विवाह-विच्छेद की डिक्री समझौते के आधार पर सही पारित की गई- उत्तर प्रदेश सिविल प्रक्रिया मध्यस्थता नियम, 2009 – नियम 26 – मध्यस्थता केन्द्र द्वारा अभिलिखित समझौता स्वैच्छिक और असंघिजन्य पाया गया – डिक्री पारित करने से पूर्व न्यायालय संतुष्ट-अभिनिर्धारित, आपसी सहमति से विवाह-विच्छेद की डिक्री समझौता करार के निबंधनों में प्रदान की गई – अपील स्वीकृत। (प्रस्तर 10 से 14)

निर्णय:

इस संबंध में, यह न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89(2)(घ) द्वारा निर्देशित है, जो यह कथन करती है कि जहाँ कोई विवाद मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया गया है, मध्यस्थ पक्षकारों को समझौता करने में सहायता करेगा, और यदि कोई समझौता हो जाता है, तो न्यायालय उसके निबंधनों के अनुसार डिक्री पारित कर सकेगा। यह सुनिश्चित करता है कि मध्यस्थता से हुए समझौतों में विधिक प्रवर्तनीयता हो और यह न्यायालयों को पारस्परिक रूप से सहमत निबंधनों के आधार पर डिक्री प्रदान करने में सक्षम बनाता है, जिससे सौहार्दपूर्ण विवाद समाधान को बढ़ावा मिलता.... (प्रस्तर 10)

इसके अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश सिविल प्रक्रिया मध्यस्थता नियम, 2009 का नियम 26, यह आज्ञापित करता है कि न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि समझौता मिलीभगत नहीं है और स्वैच्छिक रूप से किया गया है.... (प्रस्तर 11)

वर्तमान मामले में, दोनों पक्षकारों ने सभी लंबित मामलों को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल और तय कर लिया है और इस न्यायालय के मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र के समक्ष निष्पादित समझौता करार दिनांक 07.04.2022 के अनुसार उनके बीच प्रतिफल का आदान-प्रदान भी हो गया है। उक्त करार के परिशीलन पर और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार करने के पश्चात्, यह न्यायालय संतुष्ट है कि समझौता सद्भावपूर्ण और स्वैच्छिक है। अब केवल पक्षकारों के बीच विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किया जाना शेष है। (प्रस्तर 12)

इस संबंध में, यह न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 द्वारा भी निर्देशित है, जो वादों में समझौते की अनुमति देता है, बशर्ते कि ऐसा समझौता लिखित रूप में हो और पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित हो। इस न्यायालय के समक्ष मामले के अभिलेखों से यह सुस्पष्ट है कि समझौता करार दिनांक 07.04.2022 इन अपेक्षाओं को पूरा करता है और पक्षकारों द्वारा स्वैच्छिक रूप से किया गया है। इस उपबंध के अनुसार, न्यायालय करार को अभिलिखित करने और उसके अनुसार डिक्री पारित करने के लिए आबद्ध है.... (प्रस्तर 13)

चूँकि समझौता सद्भावपूर्ण है और दोनों पक्षकारों द्वारा उस पर कार्य किया गया है, यह न्यायालय, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, समझौते के निबंधनों में डिक्री पारित करने के लिए सक्षम है, यहाँ तक कि मूल वाद की परिधि से परे भी। इसके अतिरिक्त, चूँकि कार्यवाहियाँ कुटुम्ब न्यायालय से उद्भूत हुई हैं, यह न्यायालय हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने के लिए भी सशक्त है, समझौते के आलोक में, जैसा कि संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 के अधीन मान्यता प्राप्त है। (प्रस्तर 14)

अपील स्वीकृत। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी,
एवं

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला, द्वारा प्रदत्त)

(1) मैंने श्री देव प्रकाश श्रीवास्तव, अधिवक्ता, जो अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री उमेश चंद्र सक्सेना की ओर से पेश हुए, और श्री पंकज कुमार साहू, अधिवक्ता, जो प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री श्रवण कुमार वर्मा की ओर से पेश हुए, दोनों की बात सुनी और रिकॉर्ड भी देखा।

(2) वर्तमान प्रथम अपील, पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19(1) के अंतर्गत दायर की गई है, जो दिनांक **13.02.2018** को पारित उस निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध है, जिसे माननीय पारिवारिक न्यायालय/अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश/एफ.टी.सी., लखीमपुर खीरी द्वारा **एच.एम. वाद संख्या 61 वर्ष 2013 (खजांची बनाम प्रीते)** में पारित किया गया था। उक्त निर्णय द्वारा अपीलकर्ता द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अंतर्गत दायर **विवाह विच्छेद** का वाद खारिज कर दिया गया था।

(3) हमने दोनों पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेखों का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है। वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि वर्ष 2006 में, अपीलार्थी/खजांची और प्रतिवादी/प्रीते के बीच विवाह हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ था। विवाह के शीघ्र पश्चात्, प्रतिवादी ने बार-बार अपने माता-पिता के घर जाना और रहना प्रारम्भ कर दिया। अपीलार्थी ने यह तर्क दिया कि प्रतिवादी अपने वैवाहिक कर्तव्यों का निर्वहन करने में विफल रही और उसने स्वास्थ्य कारण से उसके साथ सहवास करने से इंकार कर दिया था।

(4) तत्पश्चात्, पक्षकारों के बीच वैवाहिक संबंध तनावपूर्ण हो गया। दिनांक 12.01.2013 को, प्रतिवादी ने वैवाहिक गृह छोड़ दिया और तब से अपने माता-पिता के साथ निवास कर रही है। सुलह करने और सहारा देने के अपीलार्थी के बार-बार के प्रयासों के बावजूद, प्रतिवादी ने वैवाहिक गृह से अनुपस्थित रहना चुना, जिसने अपीलार्थी को विवाह-विच्छेद दाखिल करने के लिए प्रेरित किया।

(5) अपीलार्थी का विवाह-विच्छेद के लिए वाद, जो हिन्दू विवाह वाद सं. 61 / 2013 के रूप में पंजीकृत था, इस आधार पर था कि पक्षकार एक दीर्घ अवधि से अलग-अलग रह रहे थे, और यह कि प्रतिवादी ने अपने वैवाहिक कर्तव्यों का निर्वहन करने से इंकार कर दिया था। किन्तु, विद्वान कुटुम्ब न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 13.02.2018 द्वारा विवाह-विच्छेद याचिका को यह पाते हुए खारिज कर दिया कि विवाह-विच्छेद के आधारों की संपुष्टि नहीं हुई।

(6) अपीलार्थी ने, खारिजी आदेश दिनांक 13.02.2018 से व्यथित होकर, कुटुम्ब न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध अनुतोष की मांग करते हुए यह प्रथम अपील दाखिल की है।

(7) दिनांक 20.09.2019 को, मामला इस न्यायालय के मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र को संदर्भित किया गया था।

(8) उपरोक्त आदेश दिनांक 20.09.2019 के अनुसरण में, दोनों पक्षकार अपने विवाद के सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए इस न्यायालय के मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र के समक्ष उपस्थित हुए। विद्वान मध्यस्थ ने पक्षकारों के बीच हुए करार के साथ एक आख्या दिनांक 07.04.2022 भेजी है, जिसमें यह कथन किया गया है कि मध्यस्थता कार्यवाहियाँ पूर्ण हो गई हैं और पक्षकारों के बीच एक समझौता हो गया है जो संलग्न है। करार का सुसंगत अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"एतदद्वारा पक्षकारों के बीच निम्नलिखित समझौता संपन्न हुआ है:

(क) कि दोनों पक्षकार अपने विवाद को एकमुश्त समाधान के माध्यम से हल करने के लिए सहमत हो गए हैं, जिसकी राशि 10,50,000/- रुपये (दस लाख पचास हजार रुपये मात्र) के रूप में निर्धारित की गई है, जैसा कि श्री खजांची (पति/प्रथम पक्षकार) द्वारा सुश्री प्रीते (पत्नी/द्वितीय पक्षकार) को स्थायी निर्वाह-व्यय के एवज में भुगतान किए जाने के लिए पारस्परिक रूप से सहमत हुआ है।

(ख) कि दोनों पक्षकार सहमत हो गए हैं कि वे भविष्य में एक-दूसरे के विरुद्ध इस समाधान के माध्यम से विघटित किए जा रहे विवाह से जुड़े किसी भी अधिकार के संबंध में किसी भी प्रकार का कोई दावा नहीं करेंगे।

(ग) कि 10,50,000/- रुपये (दस लाख पचास हजार रुपये मात्र) की संपूर्ण राशि में से, 5,25,000/- रुपये (पाँच लाख पच्चीस हजार रुपये मात्र) की एक राशि सुश्री प्रीते (पत्नी/द्वितीय पक्षकार) द्वारा, एक्सिस बैंक शाखा भंडसरिया खेर यूपी से प्रीति देवी (नाम पासबुक के अनुसार है) के नाम पर जारी दिनांक 22.03.2022 के मांग पत्र सं. 000076 के माध्यम से, दिनांक 31.03.2022 को प्राप्त कर ली गई है और 5,25,000/- रुपये (पाँच लाख पच्चीस हजार रुपये मात्र) की शेष राशि का भुगतान आज अर्थात् 07.04.2022 को प्रथम पक्षकार द्वारा द्वितीय पक्षकार को, एक्सिस बैंक, शाखा भंडसरिया खेर यूपी से प्रीति देवी के नाम पर जारी दिनांक 05.04.2022 के मांग पत्र सं. 000077 के माध्यम से कर दिया गया है।

(घ) कि द्वितीय पक्षकार, पक्षकारों के बीच पारस्परिक रूप से संपन्न हुए इस करार के आलोक में विवाह को विघटित कराने के लिए सहमत हो गई है।

(ङ) कि दोनों पक्षकार वर्तमान करार के निबंधनों में एक-दूसरे के विरुद्ध दाखिल किए गए सभी मामलों को वापस लेने/दबाव न डालने/विनिश्चित कराने के लिए सहमत हो गए हैं, जिनका विवरण निम्नानुसार है:

1. दांडिक वाद सं. 639 / 2018, धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन (प्रीते बनाम खजांची), अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, लखीमपुर खीरी के समक्ष लंबित।

उपरोक्त के अतिरिक्त यदि कोई अन्य मामला दोनों पक्षकारों के बीच लंबित है या दाखिल किया गया है, तो उसे संबंधित पक्षकारों में से किसी के द्वारा वापस ले लिया जाएगा।

(च) कि पक्षकारों के बीच यह भी सहमत हुआ है कि न तो वे स्वयं और न ही उनके संबंधित परिवारों का कोई सदस्य, एक-दूसरे के विरुद्ध, या उनके किसी रिश्तेदार या परिवार के सदस्यों के विरुद्ध, भविष्य में वर्तमान विवाद के संबंध में या उससे आनुषंगिक किसी मामले के संबंध में, किसी भी दांडिक या दीवानी कार्यवाही के रूप में, कोई विद्वेषपूर्ण अभियोजन संस्थित करेंगे, और यदि कोई कार्यवाही पहले ही प्रारम्भ कर दी गई है, तो वही इस समझौता करार के निबंधनों में निस्तारित समझी जाएगी।

(छ) कि दोनों पक्षकार यह समझते हैं, सहमत होते हैं और स्वयं को आगे आबद्ध करते हैं कि यदि पक्षकारों में से कोई भी इसमें ऊपर निर्धारित शर्तों का बिखंडन करता है या उनका अनुसरण नहीं करता है, तो ऐसा कार्य के लिए उचित कानूनी कार्रवाई की जाएगी।

इस करार पर हस्ताक्षर करके एतद्वारा पक्षकार यह कथन करते हैं कि प्रथम अपील सं. 27 / 2018 (खजांची बनाम प्रीते) के संबंध में उनके एक-दूसरे के विरुद्ध कोई और दावे या माँगें नहीं हैं तथा इस संबंध में सभी विवादों और मतभेदों को एतद्वारा पक्षकारों द्वारा सुलह/मध्यस्थता की प्रक्रिया के माध्यम से सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटा लिया गया है।"

(9) पूर्वोक्त तथ्यों के आलोक में, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता, अपने-अपने मुक्किलों से परामर्श करने के पश्चात्, यह निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामले को समझौता दिनांक 07.04.2022, जिसे "समझौता करार" के रूप में संदर्भित किया गया है, जो इस न्यायालय के मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र के समक्ष विधिवत् निष्पादित किया गया था, के निबंधनों में निस्तारित किया जा सकता है। उन्होंने आगे कथन किया कि समझौते के शेष निबंधनों का पक्षकारों द्वारा पहले ही अनुपालन किया जा चुका है।

(10) इस संबंध में, यह न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89(2)(घ) द्वारा निर्देशित है, जो यह कथन करती है कि जहाँ कोई विवाद मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया गया है, मध्यस्थ पक्षकारों को समझौता करने में सहायता करेगा, और यदि कोई समझौता हो जाता है, तो न्यायालय उसके निबंधनों के

अनुसार डिक्री पारित कर सकेगा। यह सुनिश्चित करता है कि मध्यस्थता से हुए समझौतों में विधिक प्रवर्तनीयता हो और यह न्यायालयों को पारस्परिक रूप से सहमत निबंधनों के आधार पर डिक्री प्रदान करने में सक्षम बनाता है, जिससे सौहार्दपूर्ण विवाद समाधान को बढ़ावा मिलता है। सुसंगत उपबंध नीचे पुनरुत्पादित है:

"धारा 89. न्यायालय के बाहर विवादों का निपटारा:

(2) जहाँ कोई विवाद- (घ) मध्यस्थता के लिए, संदर्भित किया गया है, वहाँ न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौता कराएगा और ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा, जो निर्धारित किया गया हो।"

(11) इसके अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश सिविल प्रक्रिया मध्यस्थता नियम, 2009 का नियम 26, यह आजापित करता है कि न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि समझौता असंधिजन्य नहीं है और स्वैच्छिक रूप से किया गया है। सुसंगत उपबंध नीचे पुनरुत्पादित है:

"उत्तर प्रदेश सिविल प्रक्रिया मध्यस्थता नियम, 2009

नियम 26. समझौते को अभिलिखित करने और डिक्री पारित करने के लिए न्यायालय द्वारा तिथि नियत किया जाना:-

मध्यस्थ द्वारा नियत तिथि पर, या ऐसी अन्य तिथि पर, जो मध्यस्थ द्वारा नियत तिथि से सात दिनों से अधिक न हो, पक्षकारों के न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने पर, संबंधित न्यायालय पक्षकारों को सुनेगा और यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि पक्षकारों ने अपने विवादों को स्वैच्छिक रूप से निपटा लिया है और यह कि समझौता असंधिजन्य नहीं है, तो वह, यदि समझौता वाद के सभी वादबिंदुओं का निपटारा करता है, तो इस प्रकार अभिलिखित समझौते के अनुसार डिक्री पारित करेगा।

(i) यदि समझौता वाद या कार्यवाही में उत्पन्न होने वाले केवल कतिपय वाद बिंदुओं का निपटारा करता है, तो न्यायालय उन वाद बिंदुओं के संबंध में समझौते को अभिलिखित करेगा यदि वे अन्य वाद बिंदुओं से पृथक्करणीय हैं और यदि उन वाद बिंदुओं द्वारा आच्छादित समझौते की सीमा तक डिक्री पारित की जा सकती है, तो न्यायालय उन वाद बिंदुओं पर समझौते के अनुसार सीधे डिक्री पारित कर सकेगा, उन अन्य वाद बिंदुओं पर, जो निपटाए नहीं गए हैं, न्यायालय के विनिश्चय की प्रतीक्षा किए बिना।

(ii) यदि वादबिंदु पृथक्करणीय नहीं हैं, तो उस दशा में, न्यायालय उन अन्य वादबिंदुओं पर, जो निपटाए नहीं गए हैं, न्यायालय के विनिश्चय की प्रतीक्षा करेगा।"

(12) वर्तमान मामले में, दोनों पक्षकारों ने सभी लंबित मामलों को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल और तय कर लिया है और इस न्यायालय के मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र के समक्ष निष्पादित समझौता करार दिनांक 07.04.2022 के अनुसार उनके बीच प्रतिफल का आदान-प्रदान भी हो गया है। उक्त करार के परिशीलन पर और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार करने के पश्चात्, यह न्यायालय संतुष्ट है कि

समझौता सद्भावपूर्ण और स्वैच्छिक है। अब केवल पक्षकारों के बीच विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किया जाना शेष है।

(13) इस संबंध में, यह न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 द्वारा भी निर्देशित है, जो वादों में समझौते की अनुमति देता है, बशर्ते कि ऐसा समझौता लिखित रूप में हो और पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित हो। इस न्यायालय के समक्ष मामले के अभिलेखों से यह सुस्पष्ट है कि समझौता करार दिनांक 07.04.2022 इन अपेक्षाओं को पूरा करता है और पक्षकारों द्वारा स्वैच्छिक रूप से किया गया है। इस उपबंध के अनुसार, न्यायालय करार को अभिलिखित करने और उसके अनुसार डिक्री पारित करने के लिए आबद्ध है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 को नीचे नीचे दिया जा रहा है:

"3. वाद का समझौता- जहाँ यह न्यायालय के समाधानप्रद रूप से सिद्ध कर दिया जाता है कि किसी वाद का पूर्णतः या भागतः किसी विधिपूर्ण करार या समझौते द्वारा (जो लिखित और पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित है), समायोजन हो गया है, या जहाँ प्रतिवादी वाद की संपूर्ण विषय-वस्तु या उसके किसी भाग के संबंध में वादी को संतुष्ट कर देता है, वहाँ न्यायालय ऐसे करार, समझौते या संतुष्टि को अभिलिखित किए जाने का आदेश देगा, और उसके अनुसार एक डिक्री पारित करेगा (जहाँ तक वह वाद के पक्षकारों से संबंधित है, चाहे करार, समझौते या संतुष्टि की विषय-वस्तु वही हो या न हो जो वाद की विषय-वस्तु है)।

(14) चूँकि समझौता सद्भावपूर्ण है और दोनों पक्षकारों द्वारा उस पर कार्य किया गया है, यह न्यायालय, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, समझौते के निबंधनों में डिक्री पारित करने के लिए सक्षम है, यहाँ तक कि मूल वाद की परिधि से परे भी। इसके अतिरिक्त, चूँकि कार्यवाहियाँ कुटुम्ब न्यायालय से उद्भूत हुई हैं, यह न्यायालय हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने के लिए भी सक्षम है, समझौते के आलोक में, जैसा कि संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3 के अधीन मान्यता प्राप्त है।

(15) चूँकि पक्षकारों के बीच सभी कार्यवाहियाँ पहले ही तय हो चुकी हैं और सहमत मौद्रिक प्रतिफल का आदान-प्रदान हो गया है, एकमात्र शेष औपचारिकता समझौता करार के अनुसार डिक्री प्रदान करना है। इसलिए, न्याय के हित में और वाद को अनावश्यक रूप से लंबा खींचने से बचने के लिए, यह न्यायालय समझौता करार दिनांक 07.04.2022 के निबंधनों में अपील को स्वीकृत करता है।

(16) तदनुसार, इस न्यायालय के मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र के समक्ष निष्पादित, पक्षकारों द्वारा किए गए समझौता करार दिनांक 07.04.2022 के निबंधनों के अनुसार, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 ख के अधीन आपसी सहमति से विवाह-विच्छेद की एक डिक्री पक्षकारों को प्रदान की जाती है। करार के परे वैवाहिक संबंध के विषय में पक्षकारों के बीच कोई और दावे ग्रहण नहीं किए जाएँगे।

(17) प्रथम अपील उपरोक्त के निबंधनों में स्वीकृत की जाती है।

(2025) 3 ILRA 43

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका सं. 384 / 2024

कपिल कसाना

....याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ व अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अरविंद श्रीवास्तव, सुश्री कात्यायनी सिंह, श्री निगमेंद्र शुक्ला, श्री प्रतीक कुमार

प्रतिवादी के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., जी.ए., श्री प्रेम नारायण राय

दंड विधि - राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 - धारा 3 (2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149, 302 व 404 - निरोध आदेश के विरुद्ध - ग्राम प्रधान चुनाव की रंजिश के कारण, याचिकाकर्ता ने अन्य साथियों के साथ मिलकर सूचनाकर्ता के भाई की, सार्वजनिक स्थान पर शस्त्र लेकर उस पर गोली चलाकर, हत्या कर दी - संज्ञान लेते हुए, रासुका के अधीन कार्यवाहियाँ याचिकाकर्ता सहित सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध प्रारम्भ की गईं - अभिनिर्धारित, कुछ मामलों में, निरुद्ध व्यक्ति को दोषमुक्त किया जा चुका है जबकि कुछ मामलों में पुलिस को कोई साक्ष्य नहीं मिला, जिसके परिणामस्वरूप अंतिम आख्याएँ प्रस्तुत की गईं - 2010 में चार मामलों में दोषमुक्ति पाने के पश्चात्, 2019 तक निरुद्ध व्यक्ति द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया, अतः 9 वर्षों की अवधि तक निरुद्ध व्यक्ति कभी भी समाज-विरोधी गतिविधियों में लिप्त नहीं रहा - अन्वेषण अधिकारी ने विधि और व्यवस्था की अशांति के बारे में उल्लेख किया किन्तु ऐसे कथन सूचनाकर्ता और प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा नहीं दिए गए - प्राधिकरण अभिकथित अपराधों और निरोध आदेश के बीच संबंध ढूँढने में विफल रहा। (प्रस्तर 14, 23, 26, 27)

जिला मजिस्ट्रेट की यह आशंका कि निरुद्ध व्यक्ति, जो कारागार में निरुद्ध था, शीघ्र ही जमानत पर छूटने की संभावना है और यह अतिरिक्त समाधान कि वह लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली

गतिविधियों में लिप्त हो सकता है, का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है - आक्षेपित आदेश निरस्त किया गया। (प्रस्तर 33)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-13)

उल्लिखित वादों की सूची:

1. नेनावथ बुज्जी बनाम तेलंगाना राज्य व अन्य, 2024 0 सुप्रीम (एससी) 265
2. रामेश्वर शॉ बनाम जिला मजिस्ट्रेट, बर्दवान व एक अन्य, 1963 0 सुप्रीम (एससी) 221, (प्रस्तर 9, 10)
3. रमेश यादव बनाम जिला मजिस्ट्रेट, एटा व अन्य, 1985 0 सुप्रीम (एससी) 301
4. शशि अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1988 लॉशूट (एससी) 12
5. वीरी सिंह बनाम भारत संघ व अन्य, 2016 0 सुप्रीम (इला.) 714
6. अलीजन मियां बनाम जिला मजिस्ट्रेट, धनबाद, एआईआर 1983 एससी 1130
7. रमेश यादव बनाम जिला मजिस्ट्रेट, एटा, एआईआर 1986 एससी 315
8. पुष्कर मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1969) 1 एससीसी 10, (प्रस्तर 13)
9. खुदीराम दास बनाम बंगाल राज्य, (1975) 2 एससीसी 81, (प्रस्तर 52)
10. कमरुन्निसा बनाम भारत संघ व एक अन्य, 1990 (27) एससीसी 621 एससी, (प्रस्तर 13)
11. युम्मन ऑगबी लेम्बी लीमा बनाम मणिपुर राज्य व अन्य, दांडिक अपील सं.26 / 2012, 4.1.2012 को निर्णीत
12. विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य, (1984) 3 एससीसी 14
13. पेबम निंगोल मिकोई देवी बनाम मणिपुर राज्य, (2010) 9 एससीसी 618
14. अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1970 (3) एससीआर 288

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. श्री निगमेंद्र शुक्ला, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रेम नारायण राय, भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता और श्री अजय कुमार शर्मा, राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, को सुना।

2. वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन निम्नलिखित राहतें माँगते हुए दाखिल की गई है:-

"(क) बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट की प्रकृति का रिट, आदेश या निदेश जारी करें, जो प्रतिवादियों को, राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3 (2) के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रतिवादी सं.5, अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.3.2024 (संलग्नक-1) को अपास्त करने के पश्चात् याचिकाकर्ता को अवमुक्त करने का निदेश देता हो।

(ख) ऐसा अन्य आदेश या निदेश जारी करें जिसे यह माननीय न्यायालय मामले में उचित और समुचित समझे।

(ग) याचिकाकर्ता को वाद व्यय दिलाया जाए।":

3. उपरोक्त राहतें निम्नलिखित मुख्य आधारों के आधार पर प्रार्थित की गई हैं।"

(i) कि आक्षेपित हिरासत आदेश एक गैर-स्पष्ट आदेश है और इस प्रकार कानून के तहत मान्य नहीं है।

(ii) कि गाजियाबाद के जिला मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित हिरासत आदेश पारित करते समय कोई व्यक्तिपरक संतुष्टि दर्ज नहीं की है।

(iii) कि कानून और व्यवस्था की समस्या हो सकती है, सार्वजनिक व्यवस्था की नहीं।

4. आक्षेपित हिरासत आदेश दिनांक 4.3.2024 प्रतिवादी नंबर 5 - जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (संक्षेप में 'एनएसए 1980') की धारा 3 (2) के तहत पारित किया गया था।

5. विवेचना अधिकारी द्वारा अभिलिखित साक्ष्यों के कथनों सहित मामले की दैनिकी के उद्धरण याचिकाकर्ता द्वारा शपथ-पत्र के साथ संलग्न किए गए हैं।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि रासुका, 1980 के अधीन कार्यवाहियाँ याचिकाकर्ता के विरुद्ध दिनांक 23.10.2023 की प्राथमिकी के आधार पर प्रारम्भ की गईं, जो वाद अपराध सं. 611 / 2023, धारा 147, 148, 149, 302 और 404 आईपीसी के अधीन, थाना तिलामोड़, जिला गाजियाबाद में पंजीकृत है। उक्त प्राथमिकी में अभिकथित घटना यह थी कि सूचनाकर्ता के भाई को दिनांक 22.10.2023 को रात्रि लगभग 8.30 बजे उसके घर के निकट नौ नामजद और एक अज्ञात व्यक्तियों द्वारा, जिनमें वर्तमान याचिकाकर्ता भी शामिल हैं, गोली मार दी गई थी। उस प्राथमिकी के अनुसरण में याचिकाकर्ता को दिनांक 24.10.2023 को गिरफ्तार किया गया था और वह अभी भी कारागार में है। तत्पश्चात्, आरोप पत्र सं. 01/2024, धारा 147, 148, 149, 302, 404, 120-बी, 34, 224, 394, 411, 307 आईपीसी, 7 दंड विधि संशोधन अधिनियम और 3/25 व 27 शस्त्र अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए, दिनांक 19.1.2024 को मामले में प्रस्तुत किया गया। इस मामले की प्राथमिकी में उल्लिखित कथन से मृतक की पत्नी के धारा 161 सीआरपीसी के अधीन अभिलिखित कथन में सारवान विरोधाभास थे किन्तु विद्वान विचारण न्यायालय ने उसे अस्वीकार कर दिया। यह भी निवेदन किया गया है कि एक आख्या एस.एच.ओ., थाना तिलामोड़, आयुक्तालय,

गाजियाबाद द्वारा दिनांक 2.3.2024 को तैयार की गई थी, जिसे प्रतिवादी सं.7 के माध्यम से प्रतिवादी सं.8 को, याचिकाकर्ता के विरुद्ध रासुका, 1980 की धारा 3(2) के अधीन कार्यवाही की संस्तुति करते हुए, अग्रेषित किया गया था। प्रतिवादी सं.8 ने मामले की जाँच की और प्रतिवादी सं.9 - एस.एच.ओ. थाना तिलामोड़, की आख्या से सहमत होते हुए, याचिकाकर्ता के विरुद्ध रासुका, 1980 की धारा 3(2) के अधीन निरोध / कार्यवाही की संस्तुति की। प्रतिवादी सं.8 ने अपनी आख्या में याचिकाकर्ता को एक समाज-विरोधी आपराधिक मानसिकता वाले व्यक्ति के रूप में चित्रित किया, जो अपने आपराधिक कृत्यों से ग्रामीणों के मन में दहशत, भय और आतंक पैदा करता है, परिणामस्वरूप लोक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, अतः गाँव और समाज में शांति बनाए रखने के लिए और विधि के शासन की स्थापना के लिए रासुका, 1980 के अधीन याचिकाकर्ता का निरोध आवश्यक था, जैसा कि प्रतिवादी सं.2 की आख्या के अनुसार, जो प्रतिवादी सं.5 को भेजी गई, और तत्पश्चात् आक्षेपित निरोध आदेश तदनुसार पारित किया गया। सभी संबंधित प्राधिकारियों ने वर्तमान याचिकाकर्ता से संबंधित लगभग एक जैसे निष्कर्ष अभिलिखित किए किन्तु महत्वपूर्ण रूप से जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद ने आक्षेपित आदेश दिनांक 4.3.2024 पारित किया जो कोई वैयक्तिक समाधान अभिलिखित किए बिना या अपनी ओर से कोई पृथक् निष्कर्ष दिए बिना एक अवाच्य आदेश था जो आक्षेपित निरोध आदेश पारित करते समय जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा स्वतंत्र रूप से मस्तिष्क का प्रयोग न किए जाने को दर्शाता है।

7. यह भी निवेदन किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद के साथ-साथ प्रतिवादी सं.1 को रासुका, 1980 की धारा 14 के अधीन दिनांक 9.3.2024 को क्रमशः कारागार अधीक्षक के माध्यम से एक अभ्यावेदन दिया गया था, किन्तु उसे अस्वीकार करते हुए, प्राधिकारियों द्वारा आदेश दिनांक 11.3.2024 और 9.4.2024 के माध्यम से आक्षेपित निरोध आदेश की पुष्टि कर दी गई। यह भी निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 4.3.2024 इस निराधार आशंका पर आधारित है कि वाद अपराध सं. 611 / 2023 में याचिकाकर्ता की जमानत पर रिहाई से समाज में आतंक उत्पन्न हो सकता है और लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

8. यह पुरजोर निवेदन किया गया है कि याचिकाकर्ता को केवल इस आशंका पर निरुद्ध करना कि यह समान आपराधिक कृत्य करके लोक जीवन और व्यवस्था के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता है, रासुका, 1980 के अधीन किसी भी व्यक्ति के निरोध का एकमात्र आधार नहीं हो सकता। यह भी निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय जिला मजिस्ट्रेट द्वारा व्यक्त मत केवल आधार-वाक्यों और अनुमानों पर आधारित है और उक्त आदेश पूर्णतः निराधार और अस्पष्ट है।

9. यह भी निवेदन किया गया है कि वर्तमान याचिकाकर्ता का नौ मामलों का एक आपराधिक इतिहास है, जो निम्नानुसार हैं:

(i) वाद अपराध सं. 611 / 2023, धारा 147, 148, 149, 307, 402, 120-बी, 34 आईपीसी, 7 दंड विधि संशोधन अधिनियम और 3/25/27 शस्त्र अधिनियम के अधीन, थाना तिलामोड़, आयुक्तालय गाजियाबाद।

(ii) वाद अपराध सं. 454 / 2023, धारा 332, 353, 504, 506 आईपीसी के अधीन, थाना तिलामोड़, आयुक्तालय गाजियाबाद।

(iii) वाद अपराध सं. 505 / 2023, धारा 323, 504, 506 आईपीसी के अधीन, थाना तिलामोड़, आयुक्तालय गाजियाबाद।

(iv) वाद अपराध सं. 915 / 2019, धारा 147, 307, 504 आईपीसी के अधीन, थाना लोनी, आयुक्तालय गाजियाबाद।

(v) वाद अपराध सं. 1094 / 2021, धारा 420, 34, 467, 468, 471, 511 आईपीसी के अधीन, थाना लोनी, आयुक्तालय गाजियाबाद।

(vi) वाद अपराध सं. 49 / 2009, धारा 307 आईपीसी के अधीन, थाना सेक्टर 58, आयुक्तालय गौतमबुद्ध नगर।

(vii) वाद अपराध सं. 52 / 2009, धारा 25 शस्त्र अधिनियम के अधीन, थाना सेक्टर 58, आयुक्तालय गौतमबुद्ध नगर।

(viii) वाद अपराध सं. 1180 / 2008, धारा 307 आईपीसी के अधीन, थाना सेक्टर 58, आयुक्तालय गौतमबुद्ध नगर।

(ix) वाद अपराध सं. 664 / 2008, धारा 392, 411 आईपीसी के अधीन, थाना फेज 2, आयुक्तालय गौतमबुद्ध नगर।

10. यह भी निवेदन किया गया है कि ऊपर उल्लिखित मामलों में, याचिकाकर्ता क्रम सं. 2 और 3 पर उल्लिखित मामलों में जमानत पर रिहा है, क्रम सं. 4 और 5 पर उल्लिखित मामलों में अंतिम आख्याएँ प्रस्तुत की जा चुकी हैं और क्रम सं. 6 से 9 पर उल्लिखित शेष मामलों में याचिकाकर्ता के पक्ष में दोषमुक्ति के आदेश अभिलिखित किए जा चुके हैं और इसके अतिरिक्त क्रम सं. 1 पर दर्शाया गया दांडिक मामला एकमात्र मामला है जिसमें याचिकाकर्ता कारागार में निरुद्ध है और कार्यपालक प्राधिकारियों को यह निराधार आशंका है कि उक्त मामले में याचिकाकर्ता की जमानत पर रिहाई से लोक व्यवस्था में अशांति उत्पन्न हो सकती है। यह भी निवेदन किया गया है कि कारागार में बिना किसी ठोस आधार के याचिकाकर्ता का निरोध वास्तव में याचिकाकर्ता के संवैधानिक अधिकार से इंकार करना है। आक्षेपित आदेश दुर्बलता और अवैधता से ग्रस्त है, जो इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की अपेक्षा करता है।

11. अपने निवेदनों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है:

(i). नेनावथ बुज्जी बनाम तेलंगाना राज्य व अन्य, 2024 0 सुप्रीम (एससी) 265.

(ii). रामेश्वर शॉ बनाम जिला मजिस्ट्रेट, बर्दवान व एक अन्य, 1963 0 सुप्रीम (एससी) 221.

(iii). रमेश यादव बनाम जिला मजिस्ट्रेट, एटा व अन्य, 1985 0 सुप्रीम (एससी) 301.

(iv). शशि अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1988 लॉशूट (एससी) 12.

(v). वीरी सिंह बनाम भारत संघ व अन्य, 2016 0 सुप्रीम (इला.) 714.

12. इसके प्रतिकूल, भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता पुरजोर निवेदन करते हैं कि याचिकाकर्ता गंभीर प्रकृति के दांडिक मामलों के लंबे आपराधिक इतिहास वाला एक कट्टर अपराधी है और उसका कृत्य समाज के लिए खतरा है। वह उपरोक्त वाद अपराध सं. 611 / 2023, धारा 147, 148, 149, 302, 404, 120-बी, 34, 224, 394, 411, 307 आईपीसी, 7 दंड विधि संशोधन अधिनियम और 3/25 व 27 शस्त्र अधिनियम के अधीन, कारागार में है। यह भी निवेदन किया गया है कि प्राधिकारियों को और अधिक विशेष रूप से जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद - प्रतिवादी सं.5 को यह वास्तविक आशंका है कि उपरोक्त वाद अपराध सं. 611 / 2023 में याचिकाकर्ता की जमानत पर रिहाई, लोक जीवन में अशांति उत्पन्न कर सकती है और लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। यह भी निवेदन किया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद - प्रतिवादी सं.5 ने अपना वैयक्तिक समाधान अभिलिखित करने के पश्चात् याचिकाकर्ता के रासुका, 1980 की धारा 3(2) के अधीन निरोध के लिए आक्षेपित आदेश दिनांक 4.3.2024 पारित किया और तदनुसार उसे जिला कारागार, गाजियाबाद में निरुद्ध किया गया। आक्षेपित आदेश में ऐसी कोई दुर्बलता, विकृति या अवैधता नहीं है, जो इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की अपेक्षा करती हो।

13. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए विरोधी निवेदनों पर विचार किया है और आक्षेपित आदेश सहित संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया है।

14. तथ्यात्मक ताना-बाना, जैसा कि इस न्यायालय के समक्ष लाया गया है, संक्षेप में, यह है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध गंभीर प्रकृति के अपराधों से संबंधित कई दांडिक मामले दर्ज किए गए थे। वह समाज में आतंक पैदा करने वाला आपराधिक चरित्र का व्यक्ति है। ग्राम प्रधान चुनाव की रंजिश के कारण याचिकाकर्ता ने अन्य साथियों के साथ मिलकर सूचनाकर्ता के भाई प्रमोद कसाना उर्फ लालू की, एक सार्वजनिक स्थान पर बड़ी संख्या में लोगों के सामने शस्त्र लेकर उस पर गोली चलाकर, हत्या कर दी और कई चक्र गोलियाँ चलाई गईं तथा विधि और व्यवस्था एवं साधारण लोगों का जीवन खतरे में पड़ गया और इसने समाज में पूरी तरह से अव्यवस्था पैदा कर दी। तत्पश्चात्, उक्त मामले के अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों से पुलिस द्वारा कुछ आग्नेयास्त्र और कारतूस बरामद किए गए तथा रासुका, 1980 के अधीन कार्यवाही सह-अभियुक्त कालू उर्फ प्रवीण पुत्र सतवीर के विरुद्ध भी जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा आदेश दिनांक 19.2.2024 के माध्यम से प्रारम्भ की गई और विवेचना के दौरान उक्त वाद अपराध सं. 611 / 2023 में वांछित कुछ अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को भी पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया। उपरोक्त तथ्यों का संज्ञान लेते हुए, याचिकाकर्ता के विरुद्ध रासुका, 1980 के अधीन कार्यवाहियाँ प्रारम्भ की गईं और संबंधित प्राधिकारियों को यह वास्तविक आशंका थी कि यदि वह उक्त मामले में जमानत प्राप्त कर लेता है तो लोक जीवन खतरे में पड़ सकता है।

15. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में, हमें यह अधिनिर्णीत करना है कि क्या जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा पारित आक्षेपित निरोध आदेश दिनांक 4.3.2024 एक वास्तविक और विधिक आदेश है अथवा नहीं।

16. उक्त आक्षेपित आदेश की वैधता की संवीक्षा करने के लिए, यह वांछनीय है कि रासुका, 1980 की धारा 3(2) पर, स्पष्टीकरण सहित, दृष्टिपात किया जाए, जो निम्नवत् उद्धृत है:

“3. कतिपय व्यक्तियों को निरुद्ध करने वाले आदेश करने की शक्ति।-- (1) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार,--

(क) यदि उसका किसी व्यक्ति के संबंध में यह समाधान हो जाता है कि उसे भारत की रक्षा, विदेशी शक्तियों के साथ भारत के संबंधों, या भारत की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी रीति में कार्य करने से निवारित करने की दृष्टि से, या

(ख) यदि उसका किसी विदेशी के संबंध में यह समाधान हो जाता है कि भारत में उसकी निरंतर उपस्थिति को विनियमित करने की दृष्टि से या भारत से उसके निष्कासन के लिए व्यवस्था करने की दृष्टि से, ऐसा करना आवश्यक है, यह निदेश देते हुए आदेश कर सकेगी कि ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध किया जाए।

(2) केन्द्र सरकार या राज्य सरकार, यदि उसका किसी व्यक्ति के संबंध में यह समाधान हो जाता है कि उसे राज्य की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी रीति में कार्य करने से या लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी रीति में कार्य करने से या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदायों और सेवाओं को बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी रीति में कार्य करने से निवारित करने की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक है, तो वह यह निदेश देते हुए आदेश कर सकेगी कि ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध किया जाए।

स्पष्टीकरण--इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए, "समुदाय के लिए आवश्यक प्रदायों और सेवाओं को बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी रीति में कार्य करना" के अन्तर्गत, "समुदाय के लिए आवश्यक वस्तुओं के प्रदायों को बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी रीति में कार्य करना", जैसा कि कालाबाजारी निवारण और आवश्यक वस्तु प्रदाय अनुरक्षण अधिनियम, 1980 (1980 का 7) की धारा 3 की उप-धारा (1) के स्पष्टीकरण में परिभाषित है, नहीं आता है, और तदनुसार, इस अधिनियम के अधीन निरोध का कोई आदेश ऐसे किसी भी आधार पर नहीं किया जाएगा जिस पर उस अधिनियम के अधीन निरोध का आदेश किया जा सकता है।"

17. सर्व-प्रथम, हमें यह विचार करना है कि क्या आक्षेपित आदेश दिनांक 4.3.2024 एक अवाच्य आदेश है और जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा कोई वैयक्तिक समाधान अभिलिखित नहीं किया गया है और उसी क्रम में यह भी देखा जाना है कि क्या आक्षेपित निरोध आदेश पारित करते समय जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा दर्शाए गए आधार वास्तविक थे अथवा नहीं।

18. निरोध आदेश दिनांक 4.3.2024 अभिलेख पर उपलब्ध है जिसमें जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद ने यह उल्लेख किया है कि वे संतुष्ट हैं कि लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए वर्तमान याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक निरोध आदेश पारित करना वांछनीय है और उपरोक्त के दृष्टिगत, आक्षेपित निरोध आदेश पारित किया गया था। अभिलेख का परिशीलन आगे यह दर्शाता है कि जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद को कुछ आशंका थी कि यद्यपि निरुद्ध व्यक्ति वाद अपराध सं. 611 / 2023 के संबंध में कारागार में है किन्तु उसकी जमानत पर रिहा होने की संभावना है जिससे आगे लोक व्यवस्था के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है।

19. उपरोक्त के दृष्टिगत, हमने याचिकाकर्ता के आपराधिक इतिहास पर भी अपना ध्यान दिया है। स्वयं याचिका में निरुद्ध व्यक्ति के नौ मामलों के आपराधिक इतिहास को स्पष्ट किया गया है। इस मामले का अभिलेख यह भी दर्शाता है कि उक्त 9 मामलों में से, चार मामले याचिकाकर्ता की दोषमुक्ति में समाप्त हो गए हैं जबकि दो मामलों में पुलिस को गहन विवेचना के पश्चात् याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई साक्ष्य नहीं मिला और परिणामस्वरूप विवेचना अधिकारी द्वारा अंतिम आख्याएँ प्रस्तुत की गईं। अन्य दो मामलों में, याचिकाकर्ता जमानत पर है और एक मात्र मामले अर्थात् वाद अपराध सं. 611 / 2023 में वह कारागार में निरुद्ध है। जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश उनका वैयक्तिक समाधान दर्शाने में विफल रहता है क्योंकि यह कहीं भी तार्किक रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है कि जो व्यक्ति एक मात्र दांडिक मामले में निरुद्ध है, उसे निश्चित रूप से जमानत दे दी जाएगी और भले ही उसे उस एक मात्र मामले में, जिसमें वह कारागार में है, जमानत दे दी जाती है, वह लोक व्यवस्था के लिए खतरा कैसे हो सकता है। जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद ने बिना किसी ठोस सामग्री के केवल एक निराधार कथन किया है कि याचिकाकर्ता की जमानत पर रिहा होने की संभावना है और उक्त आशंका पूर्णतः निराधार और अस्पष्ट है और आक्षेपित निरोध आदेश निश्चित रूप से आधार-वाक्यों और अनुमानों पर आधारित है।

20. याचिकाकर्ता द्वारा **शशि अग्रवाल मामले (उपरोक्त)** पर विश्वास व्यक्त किया गया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय को मामले से निपटने का अवसर मिला था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक प्राथमिक प्रश्न इस रूप में उठाया गया था कि क्या निरुद्ध व्यक्ति का निरोध केवल इस आधार पर न्यायोचित होगा कि वह जमानत पर बाहर आने का प्रयास कर रहा था और उसके जमानत पर छूट जाने की पर्याप्त संभावना थी और तब वह लोक व्यवस्था के हित पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला कार्य करेगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त मामले में इस मुद्दे की भी संवीक्षा की कि अभिरक्षा में या कारागार में होने के बावजूद किसी व्यक्ति के विरुद्ध प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित किया जा सकता है किन्तु निरोधकर्ता प्राधिकारी को सुस्पष्ट रूप से प्रकट की गई सामग्री होनी चाहिए जो प्रत्येक मामले में निश्चित रूप से भिन्न होती है।

21. जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद वर्तमान मामले में आक्षेपित आदेश द्वारा यह संतुष्ट नहीं कर सके कि वे कौन से बाध्यकारी कारण थे जिन्होंने उन्हें यह विचार करने के लिए प्रेरित किया कि यद्यपि निरुद्ध व्यक्ति कारागार में है किन्तु उसका निवारक निरोध अभी भी आवश्यक है।

22. उपरोक्त मामले में, अलीजन मियां बनाम जिला मजिस्ट्रेट, धनबाद, एआईआर 1983 एससी 1130 और रमेश यादव बनाम जिला मजिस्ट्रेट, एटा, एआईआर 1986 एससी 315, के निर्णयों का संदर्भ देते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि उपरोक्त मामले में जिस बात पर बल दिया गया था वह यह है कि निरोधकर्ता प्राधिकारी की यह आशंका कि अभियुक्त यदि जमानत पर छूट गया तो वह पुनः अपनी आपराधिक गतिविधियाँ जारी रखेगा, राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने के लिए अपने आप में पर्याप्त नहीं है। इस पर भी बल दिया गया कि केवल इस आधार पर कि एक अभियुक्त जो एक विचाराधीन बंदी के रूप में निरोध में है, की जमानत पर छूटने की संभावना थी, राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरोध का आदेश साधारणतः पारित नहीं किया जाना चाहिए।

23. यह ध्यान दिया जाना है कि निरुद्ध व्यक्ति द्वारा किए गए अपराध का जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा पारित निरोध आदेश से कोई संबंध नहीं है। हम पाते हैं कि आक्षेपित आदेश यह दर्शाने में कम पड़ता है कि जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद ने किस आधार पर उसे पारित करने के लिए अपना वैयक्तिक समाधान अभिलिखित किया। वाद अपराध सं. 611 / 2023 के रूप में पंजीकृत उपरोक्त अपराध ऐसा मामला नहीं है जहाँ याचिकाकर्ता जन-सामान्य के प्रति आक्रामक रहा हो, अपितु यह एक ऐसा मामला था जहाँ एक विशिष्ट व्यक्ति को निरुद्ध व्यक्ति और उसके साथियों द्वारा गोली मारकर हत्या कर दिया जाना कहा गया है। जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद ने इस तथ्य की पूर्णतः उपेक्षा की कि कुछ मामलों में निरुद्ध व्यक्ति को न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया जा चुका है जबकि कुछ मामलों में पुलिस को स्वयं निरुद्ध व्यक्ति के विरुद्ध कोई भी साक्ष्य नहीं मिला और मामलों का परिणाम अंतिम आख्याएँ प्रस्तुत किए जाने में हुआ। जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद इस तथ्य का मूल्यांकन करने में विफल रहे कि वर्ष 2008 और 2009 से संबंधित दांडिक मामलों में वर्ष 2010 में चार मामलों में दोषमुक्ति पाने के पश्चात् वर्ष 2019 तक निरुद्ध व्यक्ति द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया, जब उसके विरुद्ध वाद अपराध सं. 915 / 2019 पंजीकृत किया गया, और इसलिए अपने पक्ष में दोषमुक्ति के आदेश होने पर लगभग 9 वर्षों की अवधि तक निरुद्ध व्यक्ति कभी भी किसी समाज-विरोधी गतिविधियों में लिप्त नहीं रहा और न ही उसने लोक सुरक्षा और व्यवस्था के लिए कोई खतरा उत्पन्न किया। याचिका के साथ संलग्न शपथ-पत्र का प्रस्तर 22, जो निरुद्ध व्यक्ति के आपराधिक इतिहास को स्पष्ट करता है, इस संबंध में सुसंगत है। उल्लेखनीय है कि प्रति-शपथ पत्र दिनांक 29.7.2024 के प्रस्तर 41 में उक्त तथ्यों का खंडन नहीं किया गया है। वर्ष 2010 में पारित दोषमुक्ति के आदेशों और वाद अपराध सं. 915 / 2019 के बीच एक बड़ा अंतराल था और यदि सक्षम न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति किए जाने के पश्चात् लगभग 9 वर्षों की अवधि तक निरुद्ध व्यक्ति के खाते में कोई आपराधिक इतिहास नहीं जुड़ा और उसने क्षेत्र में कोई आपराधिक गतिविधियाँ जारी रखने से स्वयं को विरत रखा, तो जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद का यह समाधान कि यदि निरुद्ध व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जाता है तो वह पुनः आपराधिक गतिविधियों में स्वयं को लिप्त कर लेगा, जिससे लोक व्यवस्था को खतरा उत्पन्न होगा, यदि किसी भी दशा में, इसे सत्य माना जाता है, तो जमानत प्रार्थना-पत्र का अभियोजन द्वारा पुरजोर विरोध किया जाना था और जमानत प्रदान किए जाने की दशा में उस आदेश के विरुद्ध उच्चतर मंच पर चुनौती दी जानी है। हमारी राय में, याचिकाकर्ता, जो एक विचाराधीन बंदी के रूप में कारागार में था, की जमानत पर छूटने की संभावना थी, यह कभी भी एक अच्छा

और वैध आधार नहीं हो सकता था और रासुका, 1980 के अधीन केवल उपरोक्त आधार पर निरोध का आदेश जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद द्वारा पारित नहीं किया जाना चाहिए था। निरोधकर्ता प्राधिकारी की आशंका और उसके वैयक्तिक समाधान के बीच एक बड़ा अंतर है। निर्विवाद रूप से वर्तमान मामले में जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद की ओर से एक निराधार आशंका विद्यमान है और निरोध आदेश में उसके वैयक्तिक समाधान का अभाव है।

24. **नेनावथ बुज्जी मामले (उपरोक्त)** में, जो इस विषय पर एक अग्रणी मामला है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विधि यह सुस्थापित है कि निवारक निरोध से संबंधित किसी भी अधिनियमिति के अधीन शक्ति का प्रयोग अत्यधिक सावधानी, सतर्कता और संयम के साथ किया जाना है। **पुष्कर मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1969) 1 एससीसी 10**, में एक निर्णय का संदर्भ देते हुए, यह इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था:

"13.....क्या "लोक व्यवस्था" अभिव्यक्ति के अन्तर्गत हर प्रकार का व्यवस्था का उल्लंघन आता है या केवल उसकी कुछ श्रेणियाँ ही आती हैं। यह सुस्पष्ट है कि विशिष्ट व्यक्तियों पर हमले या उन्हें क्षति पहुँचाने का प्रत्येक कार्य लोक व्यवस्था उत्पन्न नहीं करता है। जब दो लोग झगड़ा करते हैं और लड़ते हैं तथा एक घर के अन्दर या गली में एक-दूसरे पर हमला करते हैं, तो यह कहा जा सकता है कि व्यवस्था है किन्तु लोक व्यवस्था नहीं है। ऐसे मामलों से साधारण दंड विधि के उपबंधों के अधीन कार्यपालक प्राधिकारियों में निहित शक्तियों के अधीन निपटा जाता है किन्तु अपराधियों को इस आधार पर निरुद्ध नहीं किया जा सकता कि वे लोक व्यवस्था को भंग कर रहे थे। किसी भी विधि का उल्लंघन हमेशा व्यवस्था को प्रभावित करता है किन्तु इससे पूर्व कि यह कहा जा सके कि यह लोक व्यवस्था को प्रभावित करता है, इसे समुदाय या जन-सामान्य को बड़े पैमाने पर प्रभावित करना चाहिए। इस संबंध में हमें व्यवस्था के गंभीर और बढ़े हुए रूपों, जो सीधे समुदाय को प्रभावित करते हैं या लोक हित को क्षति पहुँचाते हैं, और विशुद्ध रूप से स्थानीय महत्व वाले शांति के अपेक्षाकृत छोटे उल्लंघनों, जो प्राथमिक रूप से विशिष्ट व्यक्तियों को क्षति पहुँचाते हैं और केवल गौण अर्थ में लोक हित को क्षति पहुँचाते हैं, के बीच एक सीमांकन रेखा खींचनी चाहिए। इस प्रकार विधि और व्यवस्था की मात्र अशांति, जो व्यवस्था उत्पन्न करती है, निवारक निरोध अधिनियम के अधीन कार्यवाही के लिए आवश्यक रूप से पर्याप्त नहीं है किन्तु एक अशांति जो लोक व्यवस्था को प्रभावित करेगी, वह इस अधिनियम की परिधि में आती है..."

25. इसके अतिरिक्त, **माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने खुदीराम दास बनाम बंगाल राज्य, (1975) 2 एससीसी 81**, में एक अन्य निर्णय का संदर्भ देते हुए, यह भी अभिनिर्धारित किया कि:

"52... निरुद्ध व्यक्ति के "अपराध-वृत्त" का परीक्षण करते समय, इस न्यायालय ने, स्पष्ट शब्दों में, यह स्पष्ट किया था कि एक सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता कि निरुद्ध व्यक्ति उन अपराधों को करने का अभ्यस्त था। केवल इसलिए कि निरुद्ध व्यक्ति पर कई अपराधों के लिए आरोप लगाया गया था, यह नहीं

कहा जा सकता कि वह ऐसे अपराधों को करने का अभ्यस्त था। इसके अतिरिक्त, अपराध करने की अभ्यस्तता को, पृथक् रूप से, किसी निरोध आदेश का आधार नहीं माना जा सकता; अपितु इसका परीक्षण "लोक व्यवस्था" के मानदंडों पर किया जाना है, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। इसलिए, वे मामले जहाँ ऐसी अभ्यस्तता ने कोई "लोक अव्यवस्था" उत्पन्न की है, निरोध का आदेश देने के लिए आधार के रूप में अर्ह हो सकते हैं।"

26. हस्तगत मामले में, निरुद्ध व्यक्ति ने अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर, जैसा कि अभिकथित है, सूचनाकर्ता के भाई की हत्या की, और वाद अपराध सं. 611 / 2023 के रूप में पंजीकृत संपूर्ण प्राथमिकी में ऐसा कुछ भी नहीं है कि याचिकाकर्ता और उसके साथियों द्वारा किए गए आपराधिक कृत्य से कोई लोक अव्यवस्था उत्पन्न हुई थी। यद्यपि विवेचना अधिकारी ने मामले की दैनिकी में यह अभिलिखित किया है कि जब सूचनाकर्ता के भाई की हत्या की गई थी तब इसने विधि और व्यवस्था की स्थिति को प्रभावित किया था किन्तु साक्षियों के मौखिक कथन कहीं भी यह प्रकट नहीं करते हैं कि सूचनाकर्ता के भाई की हत्या की घटना ने किसी भी प्रकार से लोक अव्यवस्था उत्पन्न की और यहाँ तक कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों श्रीमती सुनीता, सूचनाकर्ता की पत्नी, और श्रीमती करुणा उर्फ कुंती, मृतक की पत्नी, और स्वयं सूचनाकर्ता ने, जिनसे विवेचना अधिकारी द्वारा पूछताछ भी की गई थी, कहीं भी यह कथन नहीं किया कि उक्त अपराध के पश्चात् कोई लोक अव्यवस्था उत्पन्न हुई थी। ऐसे कथन संलग्नक सं.6 में स्थान पाते हैं, जो याचिकाकर्ता द्वारा शपथ-पत्र के साथ संलग्न है। यह सत्य है कि विवेचना अधिकारी ने हत्या के अपराध के परिणामस्वरूप विधि और व्यवस्था की अशांति के संबंध में मामले की दैनिकी में उल्लेख किया है किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि क्यों ऐसे कथन सूचनाकर्ता और इस मामले के उपरोक्त प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा नहीं दिए गए और यह जिला मजिस्ट्रेट की ओर से वैयक्तिक समाधान के मुद्दे पर एक गंभीर आघात है।

27. वस्तुतः निरुद्ध व्यक्ति के पूर्ववृत्त का निरोध के आधार के साथ एक निकटस्थ और जीवंत संबंध होना चाहिए और यदि ऐसा नहीं है तो ऐसी बासी सामग्री / मामले को निरोध आदेश पारित करने के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता है। जिला मजिस्ट्रेट ने यद्यपि याचिकाकर्ता के आपराधिक इतिहास पर विश्वास व्यक्त किया किन्तु वे अभिकथित अपराधों और निरोध आदेश के बीच संबंध ढूँढने में सर्वथा विफल रहे। उन्होंने पुलिस द्वारा रखी गई आख्या और सामग्रियों में प्रकट किए गए अभिकथनों और तथ्यों में अपना वैयक्तिक समाधान करने का कभी भी कष्ट नहीं किया और स्वतंत्र मस्तिष्क का समुचित प्रयोग किए बिना आक्षेपित आदेश को केवल पारित कर दिया।

28. निरोध आदेश यह दर्शाने में भी विफल रहता है कि जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद के पास अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह विश्वास करने का कारण कैसे था कि याचिकाकर्ता के जमानत पर रिहा होने की पूरी संभावनाएँ थीं और इसके अतिरिक्त कि, इस प्रकार रिहा होने पर, वह पूरी संभावना है कि लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली गतिविधियों में लिप्त हो जाएगा। यह सुस्थापित विधि है कि संबंधित व्यक्ति का कारागार में निरोध प्राधिकारियों को निरोध का आदेश पारित करने से प्रवारित नहीं करता है किन्तु ऐसे प्राधिकारियों को इस तथ्य पर सदैव अपना मस्तिष्क अवश्य लगाना चाहिए कि निरुद्ध

व्यक्ति पहले से ही कारागार में है और ऐसे बाध्यकारी कारण विद्यमान हैं जो इस तथ्य के बावजूद कि वह पहले से ही कारागार में था, ऐसे निरोध को न्यायोचित ठहराते हैं। यह आगे अपेक्षा करता है कि निरोधकर्ता प्राधिकारी के समक्ष ठोस सामग्री होनी चाहिए जो उसके इस वैयक्तिक समाधान की ओर ले जाती है कि निकट भविष्य में निरुद्ध व्यक्ति के अभिरक्षा से रिहा होने की संभावना है और अपनी रिहाई के पश्चात् वह संभवतः लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली गतिविधियों में लिप्त हो जाएगा। वह अपराध जिसके लिए निरुद्ध व्यक्ति कारागार में है, विधि और व्यवस्था के लिए एक मुद्दा हो सकता है किन्तु यह लोक व्यवस्था बनाए रखने को प्रभावित करने वाला है, जिसका अर्थ है समुदाय और जन-सामान्य को बड़े पैमाने पर प्रभावित करना। इस तत्व का आक्षेपित आदेश में निश्चित रूप से अभाव है।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कमरुन्निसा बनाम भारत संघ व एक अन्य 1990 (27) एसीसी 621 एससी** के मामले में उन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया है कि कब एक ऐसे व्यक्ति के संबंध में, जो पहले से ही न्यायिक अभिरक्षा में है, निरोध आदेश पारित किया जा सकता है और उपरोक्त मामले के प्रस्तर 13 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"13. ऊपर संदर्भित निर्णयों की शृंखला से, यह हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि अभिरक्षा में एक व्यक्ति के मामले में भी एक निरोध आदेश वैध रूप से पारित किया जा सकता है (1) यदि आदेश पारित करने वाला प्राधिकारी इस तथ्य से अवगत है कि वह वास्तव में अभिरक्षा में है; (2) यदि उसके पास अपने समक्ष रखी गई विश्वसनीय सामग्री के आधार पर यह विश्वास करने का कारण है (क) कि उसकी जमानत पर रिहा होने की वास्तविक संभावना है, और (ख) कि इस प्रकार रिहा होने पर वह पूरी संभावना है कि प्रतिकूल गतिविधि में लिप्त हो जाएगा; और (3) यदि उसे ऐसा करने से निवारित करने के लिए उसे निरुद्ध करना आवश्यक समझा जाता है। यदि प्राधिकारी अपनी ओर से अपना समाधान अभिलिखित करने के पश्चात् एक आदेश पारित करता है, तो ऐसे आदेश को इस आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता कि प्राधिकारी के लिए उचित मार्ग जमानत का विरोध करना था और यदि ऐसे विरोध के बावजूद जमानत प्रदान की जाती है तो उसे एक उच्चतर न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत करना था।"

30. हस्तगत मुद्दे पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक अग्रणी मामले **रामेश्वर शॉ (उपरोक्त)** में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

"9. यह भी सत्य है कि इस प्रश्न पर विनिश्चय करने में कि क्या किसी व्यक्ति को निरुद्ध करना आवश्यक है, प्राधिकारी को यह समाधान होना है कि यदि उक्त व्यक्ति को निरुद्ध नहीं किया जाता है, तो वह प्रतिकूल रीति में कार्य कर सकता है, और इस निष्कर्ष पर प्राधिकारी द्वारा साधारणतः उक्त व्यक्ति की विगत प्रतिकूल गतिविधियों के बारे में साक्ष्य के आलोक में युक्तियुक्त रूप से पहुँचा जा सकता है। जब प्राधिकारी के समक्ष व्यक्ति के ऐसे विगत आचरण के संबंध में साक्ष्य रखा जाता है, तो प्राधिकारी को उक्त साक्ष्य का परीक्षण करना होता है और यह विनिश्चित करना होता है कि क्या उक्त व्यक्ति को प्रतिकूल रीति में कार्य

करने से निवारित करने के क्रम में उसे निरुद्ध करना आवश्यक है। यही कारण है कि इस न्यायालय ने उजागर सिंह बनाम पंजाब राज्य और जगजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य⁽¹⁾ में यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी व्यक्ति के विगत आचरण या पूर्ववृत्त इतिहास को निरोध आदेश करने में ध्यान में रखा जा सकता है, और वस्तुतः, यह मुख्य रूप से किसी व्यक्ति की प्रवृत्तियों या झुकावों को दर्शाने वाली पूर्व की घटनाओं से है कि यह अनुमान निकाला जा सकता है कि क्या वह भविष्य में भी लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली रीति में कार्य करने की संभावना रखता है।

10. इस संबंध में, तथापि, यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि व्यक्ति का विगत आचरण या पूर्ववृत्त इतिहास, जिस पर प्राधिकारी कार्य करने का आशय रखता है, साधारणतः समय के बिन्दु में निकटस्थ होना चाहिए और इस निष्कर्ष के साथ एक तर्कसंगत संबंध होना चाहिए कि व्यक्ति का निरोध आवश्यक है। उदाहरण के लिए, व्यक्ति के उस आचरण को ध्यान में रखना तर्कहीन होगा जो उसके निरोध की तिथि से दस वर्ष पूर्व घटित हुआ था और यह कहना कि यद्यपि उक्त घटना घटित होने के पश्चात् व्यक्ति के विरुद्ध प्रतिकूल रीति में कार्य करने की उसकी प्रवृत्ति को दर्शाते हुए कुछ भी ज्ञात नहीं है, फिर भी उक्त घटना के बल पर, जो दस वर्ष पुरानी है, प्राधिकारी संतुष्ट है कि उसका निरोध आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, जहाँ कोई प्राधिकारी सद्भावपूर्वक कार्य कर रहा है और इस प्रश्न पर विचार कर रहा है कि क्या किसी व्यक्ति को निरुद्ध किया जाना चाहिए, वह स्वाभाविक रूप से यह अपेक्षा करेगा कि वह साक्ष्य जिस पर उक्त निष्कर्ष अंततः आधारित होने जा रहा है, उसके विगत आचरण या पूर्ववृत्त इतिहास का साक्ष्य होना चाहिए जो युक्तियुक्त और तर्कसंगत रूप से इस निष्कर्ष को न्यायोचित ठहराता है कि यदि उक्त व्यक्ति को निरुद्ध नहीं किया जाता है, तो वह प्रतिकूल गतिविधियों में लिप्त हो सकता है। हमें यह जोड़ना चाहिए कि कोई भी अनम्य परीक्षण निर्धारित करना अव्यवहारिक और अवांछनीय दोनों हैं। प्राधिकारी के समाधान की वैधता के बारे में प्रश्न पर प्रत्येक मामले के तथ्यों पर विचार किया जाना होगा। बिना विचारण के किसी व्यक्ति का निरोध उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर एक बहुत गंभीर अतिक्रमण है, और इसलिए, प्रत्येक प्रक्रम पर, उक्त निरोध के संबंध में सभी प्रश्नों पर सावधानीपूर्वक और गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए।"

31. लगभग समान परिस्थितियों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **युम्मन आंगबी लेम्बी लीमा बनाम मणिपुर राज्य व अन्य** (दांडिक अपील सं.26 / 2012, 4.1.2012 को निर्णीत) में, यह अभिनिर्धारित किया कि निवारक निरोध किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए किसी कार्य के लिए दंडित करना नहीं है बल्कि उसे वह करने से निवारित करना है। केवल निरोधकर्ता प्राधिकारी की इस आशंका पर कि जमानत पर रिहा होने के पश्चात्, याचिकाकर्ता निरुद्ध व्यक्ति समान गतिविधियों में लिप्त हो जाएगा, जो लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली होंगी, अधिनियम के अधीन आदेश साधारणतः पारित नहीं किया जाना चाहिए। एक व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता संविधान के भाग III के अधीन प्रत्याभूत सबसे बहुमूल्य और अनमोल अधिकार है। राज्य को ऐसे अधिकारों पर अंकुश लगाने की शक्ति दांडिक विधियों के अधीन और साथ ही निवारक निरोध की विधियों के अधीन भी प्रदान की गई है, जिन्हें, इसलिए, सम्यक् सतर्कता के साथ और साथ ही इस तथ्य के समुचित मूल्यांकन पर कि क्या ऐसे कार्य किसी भी प्रकार से राज्य और उसके नागरिकों के हित और सुरक्षा

पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हैं, या लोक विधि और व्यवस्था को भंग करने की चेष्टा करते हैं, जो ऐसे आदेश को जारी करने की अपेक्षा करता हो, प्रयोग किए जाने की आवश्यकता है।

32. इसके अतिरिक्त, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **विजय नारायण सिंह बनाम बिहार राज्य, (1984) 3 एससीसी 14** में यह अभिनिर्धारित करते हुए सचेत किया है कि "निवारक निरोध की विधि, एक कठोर और सख्त विधि होने के कारण, का कड़ाई से अर्थान्वयन किया जाना चाहिए और इसका साधारणतः एक अभियुक्त के पंख कतरने के लिए उपयोग नहीं किया जाना चाहिए यदि, दांडिक अभियोजन पर्याप्त होगा।

33. हस्तगत मामले में, जिला मजिस्ट्रेट की यह आशंका कि निरुद्ध व्यक्ति जो वाद अपराध सं. 611 / 2023 में कारागार में निरुद्ध है, की बहुत शीघ्र जमानत पर छूटने की संभावना है और इसके अतिरिक्त, जिला मजिस्ट्रेट का यह समाधान कि इस प्रकार जमानत पर रिहा होने के पश्चात् वह लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किन्हीं गतिविधियों में लिप्त हो सकता है, का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है। आक्षेपित आदेश में दोनों ही तत्वों के पीछे कोई वैयक्तिक समाधान नहीं है। वैयक्तिक समाधान, जैसा कि अपेक्षित है, दोहरा होना चाहिए, अर्थात् निरोधकर्ता प्राधिकारी को यह संतुष्ट होना चाहिए कि वह व्यक्ति जिसे निरुद्ध किया जाना है, राज्य की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी रीति में कार्य करने की संभावना रखता है या लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी रीति में कार्य करने की (संभावना रखता है), और प्राधिकारी को यह अतिरिक्त समाधान होना चाहिए कि उक्त व्यक्ति को उसे ऐसा करने से निवारित करने के क्रम में निरुद्ध करना आवश्यक है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **पेबम निंगोल मिकोई देवी बनाम मणिपुर राज्य, (2010) 9 एससीसी 618** में प्रख्यापित विधि के अभिमत से एकत्रित किया जा सकता है।

34. हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई झिझक नहीं है कि निरोधकर्ता प्राधिकारी सुसंगत आधारों पर अपना वैयक्तिक समाधान अभिलिखित करने के लिए सदैव आबद्ध है और यदि मस्तिष्क का प्रयोग यांत्रिक रीति से किया जाता है तो यह कभी भी निरोधकर्ता प्राधिकारी के वैयक्तिक समाधान की श्रेणी में नहीं आ सकता है।

35. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1970 (3) एससीआर 288**, के मामले में निर्णय में, प्रश्न यह था कि क्या निरोध आदेश में उल्लिखित आधारों को लोक व्यवस्था का उल्लंघन माना जा सकता है और इस प्रकार, निरोध आदेश वैध रूप से किया जा सकता था। उक्त मामले में अपीलार्थी ने दो सम्मानित युवतियों के साथ छेड़छाड़ की थी, उनके पिता के जीवन को धमकी दी थी और दो अन्य व्यक्तियों पर हमला किया था। उसे निवारक निरोध अधिनियम, 1950 की धारा 3(2) के अधीन निरुद्ध किया गया था ताकि उसे लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्य करने से निवारित किया जा सके। यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि यह प्रश्न कि क्या किसी व्यक्ति ने केवल विधि और व्यवस्था का उल्लंघन किया है, या ऐसी रीति में कार्य किया है जिससे लोक व्यवस्था

की अशांति उत्पन्न होने की संभावना है, मात्रा का और समाज पर उस कार्य की पहुँच की सीमा का प्रश्न है। परीक्षण यह है कि: क्या यह समुदाय के जीवन की सम गति में अशांति उत्पन्न करता है, इस प्रकार कि यह लोक व्यवस्था की अशांति की कोटि में आता हो, या, क्या यह समाज की शांति को प्रभावित किए बिना केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करता है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि यह लोक व्यवस्था की आशंका या उल्लंघन की कोटि में आता है, और अतः, वह अवमुक्त होने का हकदार था। दिए गए विषय पर, **वीरी सिंह मामले** (उपरोक्त) का निर्णय भी याचिकाकर्ता के मामले में सहायता करता है।

36. उपरोक्त से, हम पाते हैं कि निरोधकर्ता प्राधिकारी ने निरोध के आधार के लिए दो आधारों का उल्लेख किया है, प्रथमतः, कि निरुद्ध व्यक्ति वाद अपराध सं. 611 / 2023 में, जिसमें वह पहले से ही कारागार में है, जमानत पाने वाला है और द्वितीयतः, कारागार से ऐसी रिहाई पर निरुद्ध व्यक्ति के लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली समान गतिविधियों में लिप्त होने की संभावना थी। तथापि, निरोधकर्ता प्राधिकारी आक्षेपित आदेश में अपना यह वैयक्तिक समाधान अभिलिखित करने में विफल रहा है कि उसकी जमानत पर रिहा होने की वास्तविक संभावना थी और ऐसा लोप आक्षेपित आदेश को दूषित करने के लिए पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त, इस बिन्दु पर जिला मजिस्ट्रेट की ओर से कोई सारवान समाधान नहीं है कि जमानत पर रिहा होने के पश्चात् निरुद्ध व्यक्ति, लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए, अपनी आपराधिक गतिविधियाँ दोहराएगा। जिला मजिस्ट्रेट ने इस तथ्य की उपेक्षा की कि पूर्व में लगभग 9 वर्षों की अवधि तक निरुद्ध व्यक्ति के विरुद्ध कोई दांडिक मामला पंजीकृत नहीं किया गया था और इस विशिष्ट परिस्थिति में भी, उसके पास यह मानने के लिए क्या तर्कसंगत आधार उपलब्ध था कि जमानत पाने के पश्चात् निरुद्ध व्यक्ति लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी भी रीति में कार्य करने जा रहा था, यह आक्षेपित आदेश में स्पष्ट नहीं किया गया है। वह विधि और व्यवस्था तथा लोक व्यवस्था के क्षेत्रों के बीच भेद करने में भी चूक गए क्योंकि यदि याचिकाकर्ता केवल विधि और व्यवस्था को हानि पहुँचाने की संभावना रखता था और यह लोक व्यवस्था को प्रभावित नहीं कर सकता था, तो कोई निरोध आदेश पारित नहीं किया जा सकता था और निःसंदेह इस बिन्दु पर निरोधकर्ता अधिकारी अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद के अंत में कोई वैयक्तिक समाधान अभिलिखित नहीं किया गया है। ऊपर उल्लिखित आधारों पर, आक्षेपित आदेश 'सवाक् आदेश' की श्रेणी में भी नहीं आता है।

37. अतः, उपरोक्त विश्लेषण के दृष्टिगत, हमारा यह सुविचारित मत है कि राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3 (2) के उपबंधों के अधीन पारित निरोध आदेश विधि के अधीन पोषणीय नहीं है। परिणामस्वरूप, आक्षेपित निरोध आदेश दिनांक 4.3.2024 और सभी पारिणामिक आदेश निरस्त किए जाने योग्य हैं और वही एतद्वारा निरस्त किए जाते हैं।

38. वर्तमान याचिका स्वीकृत की जाती है और याचिकाकर्ता/निरुद्ध व्यक्ति को, यदि किसी अन्य मामले के संबंध में वाँछित न हो, प्रतिवादियों द्वारा तत्काल अवमुक्त किए जाने का आदेश दिया जाता है।

(2025) 3 ILRA 54

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

दीवानी विविध समीक्षा प्रार्थना-पत्र सं. 33 / 2025

अंतर्गत दीवानी विविध रिट याचिका सं. 3191 / 2019

अदील अहमद खान

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री कुष्मोडेय शाही, श्री तनुज शाही

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री अरविंद प्रबोध दुबे, सी.एस.सी.

क. दीवानी विधि-सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 आदेश 47 नियम 1(क)-याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल किया गया समीक्षा प्रार्थना-पत्र पोषणीयता के आधार पर खारिज कर दिया गया-न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूँकि याचिकाकर्ता ने एक विशेष अपील दाखिल करके अपीलीय उपचार का लाभ पहले ही उठा लिया था और एक समीक्षा दाखिल करने की स्वतंत्रता माँगे बिना उसे वापस लिया गया के रूप में खारिज करा लिया था, समीक्षा प्रार्थना-पत्र सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम 1(क) के अधीन विधि में पोषणीय नहीं था- न्यायालय ने थुंगभद्रा इंडस्ट्रीज, कुन्हयम्मद, और खोडे डिस्टिलरीज में सर्वोच्च न्यायालय के विनिर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया, और यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना एक पश्चात्कर्ती समीक्षा को वर्जित करता है। (पैरा 1 से 13)

पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र खारिज किया जाता है। (ई-6)

उल्लिखित वादों की सूची:

1. थुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार (1964) एआईआर एससी 1372,
2. कुन्हयम्मद बनाम केरल राज्य (2000) 6 एससीसी 359
3. खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड बनाम श्री महादेश्वरा सहकारी कारखाने लिमिटेड (2019) 4 एससीसी 376,

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

सी.एम. प्रार्थना-पत्र सं. शून्य/2025 (पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने में विलंब क्षमा हेतु प्रार्थना-पत्र):

1. पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र कुछ विलंब के साथ दाखिल किया गया है। पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र के साथ विलंब क्षमा करने की माँग करने वाला एक प्रार्थना-पत्र संलग्न है, जो एक शपथ-पत्र द्वारा समर्थित है, जिसमें पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने में विलंब का कारण एक विशेष अपील दाखिल करना कहा गया है। एक उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए, विलंब क्षमा हेतु प्रार्थना-पत्र स्वीकृत किया जाता है और पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने में हुए विलंब को क्षमा किया जाता है।

पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र पर आदेश:

2. यह तत्काल प्रार्थना-पत्र, रिट-ए सं.3191 / 2019 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 03.07.2024 के पुनर्विलोकन की माँग करते हुए दाखिल किया गया है।

3. पुनर्विलोकन प्रार्थी ने इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 03.07.2024, जिसका पुनर्विलोकन माँगा गया है, के विरुद्ध एक विशेष अपील त्रुटि सं.629 / 2024 दाखिल की थी। विशेष अपील, परिसीमा की अवधि की समाप्ति के पश्चात्, विशेष अपील दाखिल करने में हुए विलंब के क्षमा हेतु एक प्रार्थना-पत्र के साथ दाखिल की गई थी। विलंब क्षमा हेतु प्रार्थना-पत्र स्वीकृत किया गया और विशेष अपील दाखिल करने में हुए विलंब को एक आदेश दिनांक 08.01.2025 के माध्यम से क्षमा कर दिया गया। विशेष अपील दाखिल करने में हुए विलंब को क्षमा किए जाने के पश्चात्, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि विशेष अपील को वापस लिया गया के रूप में खारिज कर दिया जाए और विशेष अपील तदनुसार वापस लिया गया के रूप में खारिज कर दी गई।

4. न तो आदेश के पुनर्विलोकन हेतु प्रार्थना-पत्र के लिए विद्वान अधिवक्ता ने और न ही न्यायालय ने उसकी विशेष अपील को खारिज करते समय उसे ऐसी कोई स्वतंत्रता प्रदान की थी।

5. आदेश 47, नियम 1 (क) सी.पी.सी. यह उपबंध करता है कि किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, जिससे कोई अपील अनुज्ञात है किन्तु जिससे कोई अपील नहीं की गई, आदेश के पुनर्विलोकन की माँग करते हुए एक प्रार्थना-पत्र दाखिल कर सकेगा। यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध अपने निबंधनों में रिट कार्यवाहियों पर लागू नहीं होते हैं, सिविल प्रक्रिया के आधारभूत सिद्धांत रिट कार्यवाहियों पर भी लागू होते हैं।

6. पुनर्विलोकन प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है:-

(i) ठाकुर सिंह बनाम दीनानाथ साह: 1937 एससीसी ऑनलाइन पैट 73;

- (ii) बदरुन्निसा मोहम्मद सिकदर बनाम केशीबेन जेठालाल परमार व एक अन्य: 2000 एससीसी ऑनलाइन गुज 535;
- (iii) कुन्हयम्मद व अन्य बनाम केरल राज्य व एक अन्य: (2000) 6 एससीसी 359;
- (iv) कनोरिया इंडस्ट्रीज लिमिटेड व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य: 2017 एससीसी ऑनलाइन डेल 7215; व
- (v) खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड बनाम श्री महादेश्वरा सहकारी सक्करे कारखाने लिमिटेड: (2019) 4 एससीसी 376.

7. **थुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार: एआईआर 1964 एससी 1372** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि:-

“सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 47 नियम 1(1) पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र दाखिल किए जाने की अनुज्ञा देता है “किसी ऐसी डिग्री या आदेश से, जिससे अपील अनुज्ञात है किन्तु जिससे कोई अपील नहीं की गई है”। ...यह अवधारित करने के लिए निर्णायक तिथि कि आदेश 47 नियम 1(1) के निबंधन संतुष्ट होते हैं या नहीं, वह तिथि है जब पुनर्विलोकन के लिए प्रार्थना-पत्र दाखिल किया जाता है। यदि उस तिथि को कोई अपील दाखिल नहीं की गई है तो पुनर्विलोकन याचिका की सुनवाई करने वाला न्यायालय, अपील के लंबित होने के बावजूद, प्रार्थना-पत्र का गुणागुण पर निपटारा करने के लिए सक्षम है, केवल इसके अधीन रहते हुए, कि यदि पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र पर अंतिम रूप से विनिश्चय किए जाने से पूर्व अपील का ही निपटारा कर दिया गया है, तो पुनर्विलोकन याचिका की सुनवाई करने वाले न्यायालय का क्षेत्राधिकार समाप्त हो जाएगा।”

8. **थुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड** के मामले में निर्णय का अनुसरण **कुन्हयम्मद बनाम केरल राज्य: (2000) 6 एससीसी 359** में किया गया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश 47, नियम 1 (क) सी.पी.सी. में अंतर्विष्ट उपबंध के आलोक में एक विशेष अनुमति याचिका दाखिल करने के पश्चात् एक पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र की पोषणीयता पर विचार किया और निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले: -

(i) जहाँ किसी अपील या पुनरीक्षण का उपबंध किसी न्यायालय, अधिकरण या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध वरिष्ठ मंच के समक्ष किया जाता है और ऐसा वरिष्ठ मंच अपने समक्ष विवादक विनिश्चय को उपांतरित करता है, उलट देता है या उसकी पुष्टि करता है, तो अधीनस्थ मंच का विनिश्चय वरिष्ठ मंच के विनिश्चय में विलय हो जाता है और यह पश्चात्पूर्ति विनिश्चय ही है जो अस्तित्व में रहता है, प्रचालन में रहता है, और विधि की दृष्टि में प्रवर्तन किए जाने योग्य होता है।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार दो प्रक्रमों में विभाज्य है। पहला प्रक्रम अपील दाखिल करने के लिए विशेष अनुमति हेतु प्रार्थना के निपटारे तक है। दूसरा प्रक्रम तब प्रारम्भ होता है यदि और

जब अपील करने की अनुमति प्रदान कर दी जाती है और विशेष अनुमति याचिका एक अपील में परिवर्तित हो जाती है।

(iii) विलय का सिद्धांत सार्वभौमिक या असीमित लागू होने वाला सिद्धांत नहीं है। यह वरिष्ठ मंच द्वारा प्रयोग किए गए क्षेत्राधिकार की प्रकृति पर निर्भर करेगा और रखी गई या रखी जा सकने वाली चुनौती की अंतर्वस्तु या विषय-वस्तु विलय की प्रयोज्यता की अवधारक होगी। वरिष्ठ क्षेत्राधिकार को अपने समक्ष विवादक आदेश को उलटने, उपांतरित करने या उसकी पुष्टि करने में सक्षम होना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, न कि अपील करने के लिए विशेष अनुमति हेतु याचिका का निपटारा करते हुए विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, अपील किए गए निर्णय-डिक्री या आदेश को उलट सकेगा, उपांतरित कर सकेगा या उसकी पुष्टि कर सकेगा। इसलिए विलय का सिद्धांत पूर्वोक्त पर लागू किया जा सकता है, न कि पश्चात्त्वर्ती पर।

(iv) अपील करने के लिए विशेष अनुमति अस्वीकार करने वाला आदेश एक अवाच्य आदेश या एक सवाक् आदेश हो सकता है। दोनों में से किसी भी दशा में यह विलय के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करता है। अपील करने के लिए विशेष अनुमति अस्वीकार करने वाला आदेश चुनौती के अधीन आदेश के स्थान पर प्रतिस्थापित नहीं होता है। इसका केवल यह अर्थ है कि न्यायालय अपील को दाखिल किए जाने की अनुमति देने हेतु अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रवृत्त नहीं था।

(v) यदि अपील करने की अनुमति अस्वीकार करने वाला आदेश एक सवाक् आदेश है, अर्थात्, अनुमति प्रदान करने से अस्वीकार करने के कारण देता है, तो आदेश के दो निहितार्थ हैं। प्रथमतः, आदेश में अंतर्विष्ट विधि का कथन संविधान के अनुच्छेद 141 के अर्थ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि की घोषणा है। द्वितीयतः, विधि की घोषणा के अतिरिक्त, आदेश में जो कुछ भी कहा गया है वह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष हैं जो उसमें पक्षकारों को और न्यायिक अनुशासन के तौर पर उसके पश्चात्त्वर्ती किन्हीं कार्यवाहियों में न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी को भी आबद्ध करेंगे, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है। किन्तु, इसका यह अर्थ नहीं है कि नीचे के न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी का आदेश विशेष अनुमति याचिका को अस्वीकार करने वाले सर्वोच्च न्यायालय के आदेश में विलय हो गया है या कि सर्वोच्च न्यायालय का आदेश ही एकमात्र आदेश है जो पक्षकारों के बीच पश्चात्त्वर्ती कार्यवाहियों में प्राङ्गण्य के रूप में आबद्धकर है।

(vi) एक बार जब अपील करने की अनुमति प्रदान कर दी गई है और सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा चुका है, अपील में पारित आदेश विलय के सिद्धांत को आकर्षित करेगा; आदेश उलटने, उपांतरण या केवल पुष्टि का हो सकता है।

(vi) सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील किए जाने पर या अपील करने की अनुमति माँगने वाली याचिका के एक अपील में परिवर्तित हो जाने पर, उच्च न्यायालय का एक पुनर्विलोकन याचिका ग्रहण करने का क्षेत्राधिकार तत्पश्चात् समाप्त हो जाता है, जैसा कि आदेश 47 नियम 1 सी.पी.सी. के उप-नियम (1) द्वारा उपबंधित है।"

(बल दिया गया)

9. खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड बनाम श्री महादेश्वरा सहकारी सक्करे कारखाने लिमिटेड: (2019) 4 एससीसी 376 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः इस बिन्दु पर चर्चा की और विभिन्न पूर्व-निर्णयों का संदर्भ देने के पश्चात्, निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

"26. विभिन्न निर्णयों के समग्र पठन से, हम विधिक स्थिति को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं:

26.1. इस न्यायालय की तीन-न्यायमूर्ति न्यायपीठ द्वारा कुन्हयम्मद में दिए गए और पैरा 44 में संक्षेपित निष्कर्षों की पुष्टि और पुनरुक्ति की जाती है।

26.2. हम इन मामलों के लिए सुसंगत निष्कर्षों को निम्नानुसार दोहराते हैं:

"(iv) अपील करने के लिए विशेष अनुमति अस्वीकार करने वाला आदेश एक अवाच्य आदेश या एक सवाक् आदेश हो सकता है। दोनों में से किसी भी दशा में यह विलय के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करता है। अपील करने के लिए विशेष अनुमति अस्वीकार करने वाला आदेश चुनौती के अधीन आदेश के स्थान पर प्रतिस्थापित नहीं होता है। इसका केवल यह अर्थ है कि न्यायालय अपील को दाखिल किए जाने की अनुमति देने हेतु अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रवृत्त नहीं था।

(v) यदि अपील करने की अनुमति अस्वीकार करने वाला आदेश एक सवाक् आदेश है, अर्थात्, अनुमति प्रदान करने से अस्वीकार करने के कारण देता है, तो आदेश के दो निहितार्थ हैं। प्रथमतः, आदेश में अंतर्विष्ट विधि का कथन संविधान के अनुच्छेद 141 के अर्थ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि की घोषणा है। द्वितीयतः, विधि की घोषणा के अतिरिक्त, आदेश में जो कुछ भी कहा गया है वह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष हैं जो उसमें पक्षकारों को और न्यायिक अनुशासन के तौर पर उसके पश्चात्कर्ती किन्हीं कार्यवाहियों में न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी को भी आबद्ध करेंगे, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है। किन्तु, इसका यह अर्थ नहीं है कि नीचे के न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी का आदेश विशेष अनुमति याचिका को अस्वीकार करने वाले सर्वोच्च न्यायालय के आदेश में विलय हो गया है या कि सर्वोच्च न्यायालय

का आदेश ही एकमात्र आदेश है जो पक्षकारों के बीच पश्चात्कर्ती कार्यवाहियों में प्राइन्त्याय के रूप में आबद्धकर है।

(vi) एक बार जब अपील करने की अनुमति प्रदान कर दी गई है और सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा चुका है, अपील में पारित आदेश विलय के सिद्धांत को आकर्षित करेगा; आदेश उलटने, उपांतरण या केवल पुष्टि का हो सकता है।

(vii) एक अपील किए जाने पर या अपील करने की अनुमति माँगने वाली याचिका के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील में परिवर्तित हो जाने पर, उच्च न्यायालय का एक पुनर्विलोकन याचिका ग्रहण करने का क्षेत्राधिकार तत्पश्चात् समाप्त हो जाता है, जैसा कि आदेश 47 नियम 1 सी.पी.सी. के उप-नियम (1) द्वारा उपबंधित है।"

(बल दिया गया)

10. चूँकि अपील खारिज होने के पश्चात् एक पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र की पोषणीयता के बिन्दु पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कई आधिकारिक विनिर्णय हैं, अतः याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन पर विश्वास व्यक्त किया गया है, अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णयों को संदर्भित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

11. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने एक विशेष अपील दाखिल की थी, जिसमें न्यायालय की किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है। याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया था और विशेष अपील दाखिल करने में हुए विलंब को इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा क्षमा कर दिया गया था, जिसके पश्चात् अपील अपने गुणागुण पर विनिश्चित किए जाने के लिए सक्षम हो गई। इसके तत्पश्चात् ही अपीलार्थी ने, एक पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने की अनुमति माँगे बिना, अपील को वापस लिया गया के रूप में खारिज करा लिया। इस प्रकार, याचिकाकर्ता ने खंडपीठ के अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया था और तत्पश्चात् उसने विशेष अपील को खारिज करा लिया।

12. विशेष अपील दाखिल करने और याचिकाकर्ता को एक पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने की अनुमति प्रदान किए बिना उसकी खारिजी के पश्चात् दाखिल किया गया पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र, आदेश 47 नियम 1 (क) सी.पी.सी. में समाविष्ट सिद्धांत के दृष्टिगत और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **थुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड, कुन्हयम्मद और खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड (उपरोक्त)** में प्रतिपादित विधि के दृष्टिगत, इस न्यायालय द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता है। विशेष अपील में याचिकाकर्ता के सफल नहीं हो सकने के पश्चात् एक पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र को ग्रहण करना, न्यायिक अनुशासन के लिए विध्वंसक होगा।

13. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र खारिज किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 58

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

मेसर्स दुर्गा ट्रेवल्स व अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

ऋण वसूली अधिकरण, लखनऊ व अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: आशीष चतुर्वेदी, मनोज कुमार द्विवेदी, वंदना सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: अभिषेक खरे, पारुल शर्मा, शिवांशु शुक्ला

जिस तरीके से कब्जा लिया गया है, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 300ए के आधार पर याचिकाकर्ताओं में निहित अधिकारों का उल्लंघन करता है- यह अधिनियम की धारा 14 के अधिदेश के विपरीत था- रिट याचिका पोषणीय है- निर्देश जारी किए गए।

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. आईसीआईसीआई बैंक लिमिटेड बनाम प्रकाश कौर व अन्य; (2007) 2 एससीसी 711
2. सीलिर एलएलपी बनाम बाफना मोटर्स (मुंबई) प्राइवेट लिमिटेड व अन्य; (2024) 2 एससीसी 1
3. पी.एच.आर. इन्वेंट एजुकेशनल सोसाइटी बनाम यूको बैंक व अन्य: 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 528
4. यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन: (2010) 8 एससीसी 110.
5. एनकेजीएसबी को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम सुबीर चक्रवर्ती व अन्य: (2022) 10 एससीसी 286

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री मनोज कुमार द्विवेदी और श्री आशीष चतुर्वेदी, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ श्री अभिषेक खरे, सुश्री पारुल शर्मा, श्री शिवांशु शुक्ला और श्री नवनीत यादव, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान याचिका पर याचिकाकर्ताओं द्वारा यह अभिकथन करते हुए बहस की गई है कि जिस तरीके से कब्जा लिया गया है, वह याचिकाकर्ताओं के उन अधिकारों का उल्लंघन करता है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 300ए के आधार पर निहित हैं। यह आगे अभिकथन किया गया था कि जिस तरीके से कब्जा लिया गया, वह द सिक्यूरिटाइजेशन एंड रिकंस्ट्रक्शन ऑफ फाइनेंशियल एसेट्स एंड एन्फोर्समेंट ऑफ सिक्योरिटी इंटरेस्ट एक्ट, 2002 (इसमें इसके पश्चात् "सरफेसी अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 14 के अधिदेश के विपरीत था और संवैधानिक तथा सांविधिक अधिकारों के उल्लंघन के दृष्टिगत, याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

3. वर्तमान याचिका से उत्पन्न तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता सं.1 ने वर्ष 2015 में स्कूल बसें खरीदने के लिए ऋण लिया था और याचिकाकर्ता सं.2 से 4 उक्त ऋण के लिए जमानतदार थे। यह तर्क दिया गया कि बकाया राशि के भुगतान में चूक हुई थी, जिसके कारण ऋण को गैर-निष्पादित आस्ति (एनपीए) के रूप में वर्गीकृत किया गया और बैंक ने सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन दिनांक 29.10.2020 को एक नोटिस जारी किया। तत्पश्चात्, प्रतिवादी सं.3-बैंक ने अपने अधिकारों को प्रतिवादी सं.2, जो आस्तियाँ पुनर्संरचना कंपनी है, को समनुदेशित कर दिया। अभिलेख से यह भी प्रतीत होता है कि धारा 13(4) के अधीन नोटिस भी जारी किए गए थे और उसके पश्चात्, संपत्ति का कब्जा लेने के लिए अपर जिला मजिस्ट्रेट (ए.डी.एम.), गौतमबुद्ध नगर के समक्ष सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन एक प्रार्थना-पत्र दाखिल किया गया था।

4. अपर जिला मजिस्ट्रेट ने, आदेश दिनांक 21.04.2023 (रिट याचिका का संलग्नक-1) के निबंधनों में, प्रतिवादी सं.2 को प्रश्नगत संपत्ति का कब्जा लेने के लिए निदेश दिया। उक्त आदेश में यह भी नोट किया गया था कि यदि उक्त आदेश के विपरीत किसी न्यायालय द्वारा कोई आदेश पारित किया गया था, तो वह आदेश भी समाप्त हो जाएगा। यह भी निदेश दिया गया था कि प्रतिवादी सं.2 पुलिस प्राधिकारियों की सहायता से प्रश्नगत संपत्ति का वास्तविक कब्जा ले सकता है। यह आदेश अपर पुलिस आयुक्त को आदेश के कार्यान्वयन के लिए प्रभावी कदम उठाने हेतु भेजा गया था। यह भी निदेश दिया गया था कि कब्जा लेने से पहले बैंक और पुलिस अधिभोगियों को उचित नोटिस देंगे ताकि वे अपना माल कहीं और स्थानांतरित कर सकें। निर्धारित न्यूनतम नोटिस 48 घंटे से लेकर एक सप्ताह तक लिखित में था। यह भी प्रेक्षित किया गया था कि कब्जा लेने के समय स्वतंत्र साक्षी और पुलिस आयुक्त द्वारा नियुक्त एक अधिकारी उपस्थित रहेंगे। याचिकाकर्ताओं ने प्रतिभूतिकरण प्रार्थना-पत्र सं.360 / 2023 दाखिल करके उक्त आदेश दिनांक 21.04.2023 को चुनौती दी, जिस पर अंतरिम राहत प्रार्थना-पत्र को निस्तारित करते हुए एक आदेश पारित किया गया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा रिट-सी सं.22594 / 2022 में की गई टिप्पणियों के दृष्टिगत, अपर जिला मजिस्ट्रेट/मुख्य महानगरीय मजिस्ट्रेट (सी.एम.एम.) को वास्तविक कब्जा लेने से पहले कम से कम

15 दिन का पूर्व नोटिस जारी करने का निदेश दिया गया था। प्रतिवादियों को आपति दाखिल करने के लिए समय दिया गया था।

5. अभिलेख से यह भी प्रतीत होता है कि एकमुश्त निपटान (ओटीएस) प्रस्ताव के लिए ऋण वसूली अधिकरण (डीआरटी) द्वारा कुछ निर्देश जारी किए गए थे, जिसे याचिकाकर्ताओं के अनुसार 27/- लाख रुपये की राशि जमा करके लाभ उठाया गया था, तथापि, उसके बाद कुछ भी नहीं हुआ प्रतीत होता है। साथ ही, दिनांक 05.12.2023 को, प्रतिवादी सं.2 द्वारा विवादित संपत्ति का वास्तविक कब्जा 27.12.2023 को लेने के लिए एक नोटिस जारी किया गया था।

6. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट/अपर जिला मजिस्ट्रेट (सी.एम.एम./ए.डी.एम.) द्वारा दिए जाने के लिए जैसा निदेश दिया गया था, वैसा कोई नोटिस याचिकाकर्ताओं को कभी भी तामील नहीं किया गया। यह कथन किया गया है कि दिनांक 25.02.2025 को प्रतिवादी सं.2 के वसूली एजेंट आए और प्रश्नगत संपत्ति का बलपूर्वक कब्जा ले लिया। यह तर्क दिया गया है कि अपर जिला मजिस्ट्रेट कार्यालय का कोई सरकारी अधिकारी उपस्थित नहीं था। यह कथन किया गया है कि प्रतिवादी सं.2 के गुंडों ने मुख्य द्वार तोड़ दिया और गाली-गलौज इत्यादि के अभिकथन भी लगाए गए हैं। संक्षेप में, यह तर्क दिया गया है कि कब्जा लेने का तरीका न तो सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन विधि द्वारा समर्थित है और न ही यह ऋण वसूली अधिकरण (डी.आर.टी.) द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुरूप था और इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 300ए के अधीन याचिकाकर्ताओं के अधिकार स्पष्ट रूप से उल्लंघन किए गए हैं। *आईसीआईसीआई बैंक लिमिटेड बनाम प्रकाश कौर व अन्य; (2007) 2 एससीसी 711* के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया।

7. उक्त निवेदनों के आलोक में, इस न्यायालय ने स्थायी अधिवक्ता के माध्यम से पुलिस प्राधिकारियों से और अपर जिला मजिस्ट्रेट (ए.डी.एम.) से एक आख्या माँगी थी, और इस न्यायालय ने इन अभिकथनों के दृष्टिगत कि दवाइयाँ, पुस्तकें इत्यादि जैसे आवश्यक सामान भी ताले में पड़े थे और याचिकाकर्ताओं के लिए सुलभ नहीं थे, एक न्यायालय आयुक्त नियुक्त किया था।

8. उपरोक्त निर्देशों के निबंधनों में, न्यायालय आयुक्त ने अपनी आख्या प्रस्तुत की है, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने पुलिस प्राधिकारियों से प्राप्त निर्देशों को अग्रेषित किया है और अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा भी एक शपथ-पत्र दाखिल किया गया है। प्रतिवादी सं.2 की ओर से एक संक्षिप्त प्रति-शपथ पत्र दाखिल किया गया है। संक्षिप्त प्रति-शपथ पत्र के आधार पर, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता जमानतदारों के रूप में बकाया ऋण राशि का भुगतान करने के लिए दायी थे। याचिकाकर्ता ने पूर्व में धारा 14 के अधीन पारित आदेश के विरुद्ध एक प्रतिभूतिकरण अपील दाखिल करके ऋण वसूली अधिकरण (डी.आर.टी.) का दरवाजा खटखटाया था, इस प्रकार, *सेलिर एलएलपी बनाम बाफना मोटर्स (मुंबई) प्राइवेट लिमिटेड व अन्य; (2024) 2 एससीसी 1* के मामले में

और पीएचआर इन्वेंट एजुकेशनल सोसाइटी बनाम यूको बैंक व अन्य: 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 528 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दृष्टिगत वर्तमान रिट याचिका पोषणीय नहीं है और याचिकाकर्ताओं को अधिनियम के अधीन विहित उपचार प्राप्त करने के लिए प्रत्यावर्तित किया जाना चाहिए।

9. प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा यह आगे तर्क दिया गया है कि धारा 14 के अधीन आदेश पारित होने के पश्चात्, प्रतिवादी सं.2 ने विधि के अनुसार पुलिस अधिकारियों की सहायता से संपत्ति का वास्तविक कब्जा ले लिया। यह आगे तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी सं.2 भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' नहीं है और इसलिए, उसके विरुद्ध रिट दाखिल नहीं होनी चाहिए। एकमुश्त निपटान (ओटीएस) के संबंध में, यह कथन किया गया है कि ओटीएस जिस रूप में प्रस्तुत किया गया था, वह स्वीकार्य नहीं था। इस प्रकार वह तर्क देते हैं कि दाखिल की गई रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है। **यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन: (2010) 8 एससीसी 110** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया गया है। बल का उपयोग किए जाने के संबंध में अन्य अभिकथनों से इनकार किया गया है। रोचक रूप से, प्रतिवादी सं.2 की ओर से दाखिल किया गया शपथ-पत्र योगेश श्रीवास्तव नामक एक व्यक्ति द्वारा शपथपूर्वक सत्यापित किया गया है, जो प्रतिवादी सं.2 के प्राधिकृत प्रतिनिधि के रूप में सेवारत निजी नौकरी में है और दावा करता है कि शपथकर्ता के पक्ष में बोर्ड संकल्प पारित किया गया है जो संलग्नक-सीए-1 के रूप में अभिलेख पर है।

10. स्थायी अधिवक्ता के माध्यम से अपर जिला मजिस्ट्रेट (ए.डी.एम.) द्वारा दाखिल किया गया व्यक्तिगत शपथ-पत्र यह इंगित करता है कि अपर जिला मजिस्ट्रेट ने सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन दिनांक 21.04.2023 को एक आदेश पारित किया था। उक्त आदेश के निबंधनों में, पुलिस उपायुक्त, गौतम बुद्ध नगर को एक उपयुक्त पुलिस अधिकारी को नामित करने के पश्चात् उक्त आदेश का निष्पादन करना था जिसे दिनांक 06.03.2025 को एक पत्र लिखा गया था।

11. इस न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश पारित किए जाने के पश्चात्, पुलिस अधिकारी से एक आख्या माँगी गई। उक्त आख्या के निबंधनों में, यह कहा गया कि प्रतिवादी सं.2-कंपनी के अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता सं.1 पर एक विधिक नोटिस तामील किया था और नोटिस तामील होने के पश्चात्, प्रतिवादी-बैंक के 5-6 अधिकारियों ने थाना सेक्टर 39 नोएडा और उप-निरीक्षक सचिन तोमर, चौकी इंचार्ज सेक्टर 41; उप-निरीक्षक यशवंत सिंह; महिला उप-निरीक्षक प्रिया; आरक्षी सुधीर और महिला आरक्षी अंजलि से संपर्क किया जिन्हें वीडियोग्राफर के साथ कंपनी के अधिकारियों की उपस्थिति में स्थावर संपत्ति पर भेजा गया जहाँ कार्यवाहियाँ संचालित की गईं। यह आगे तर्क दिया गया है कि संपत्ति तीन मंजिला घर है, जिस पर भूतल का कब्जा लिया गया था किन्तु बच्चे की बोर्ड परीक्षा के दृष्टिगत अधिभोगी द्वारा किए गए अनुरोध के कारण, दो दिन का समय प्रदान किया गया था और पहली मंजिल का कब्जा नहीं लिया गया। वह अधिकारी, जिसने शपथ-पत्र पर शपथपूर्वक सत्यापन किया है, यह भी कथन करता है कि जब कब्जा लिया गया तब वह साइट पर उपस्थित नहीं था। यह भी कथन किया गया है कि बोर्ड परीक्षा के दृष्टिगत, पहली मंजिल का आधा हिस्सा नहीं लिया गया।

12. न्यायालय आयुक्त की आख्या दाखिल की गई है जिसमें एक दौरे के पश्चात्, उन्होंने आख्या दी कि जब न्यायालय आयुक्त ने परिसर का दौरा किया तो याचिकाकर्ताओं से संबंधित सामान परिसर के अंदर पड़ा था। निरीक्षण के समय, याचिकाकर्ताओं द्वारा उनके उपयोग के लिए कुछ सामान लिया गया। यह कथन किया गया है कि प्रतिवादी सं.2 की मुहर लगे ताले, तालों पर पाए गए और कुछ ताले मुहरबंद नहीं थे। यह कथन किया गया है कि जारी किए गए निदेश के निबंधनों में, याचिकाकर्ता के पिता से संबंधित आवश्यक दवाइयाँ और चिकित्सीय उपकरण और पहली मंजिल पर पड़ी कुछ दवाइयाँ याचिकाकर्ता को सौंप दी गईं और कुछ पुस्तकें याचिकाकर्ताओं के बच्चों को सौंप दी गईं।

13. विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत निर्देशों में यह कहा गया है कि प्रतिवादी सं.2 का एक पत्र अपर पुलिस आयुक्त, नोएडा के कार्यालय में 19.05.2024 को प्राप्त हुआ था और उस पर, नोट किए गए अधिकारियों को भेजा गया था। यह कथन किया गया था कि उन्हें प्रतिवादी सं.2 के माध्यम से एक दिन का वेतन भी दिया गया था। कब्जे के संबंध में तथ्य का भी खुलासा किया गया था।

14. उपरोक्त अभिलिखित अभिवचनों और तथ्यों के आलोक में, विनिश्चित किया जाने वाला पहला वादबिंदु यह है कि "जैसा कि प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है, क्या रिट याचिका पोषणीय होगी या नहीं?"

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के दृष्टिगत कि सामान्यतः लेनदार द्वारा सरफेसी अधिनियम के अधीन उठाए गए कदमों के संबंध में, सरफेसी अधिनियम के अधीन भी एक उपचार विहित है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सी.ई.एल.आई.आर. एल.एल.पी. बनाम बाफना मोटर्स (उपरोक्त) के मामले में यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टेंडन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को नोट किया था, जिसमें यह प्रेक्षित किया गया था कि अधिनियम एक व्यापक प्रक्रिया और अर्ध-न्यायिक निकायों द्वारा शिकायतों के निवारण का भी उपबंध करता है और न्यायालय को उक्त उपचार का लाभ उठाने पर बल देना चाहिए। यह भी प्रेक्षित किया गया था कि यद्यपि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन, उच्च न्यायालय के पास भाग-III द्वारा प्रदत्त किन्हीं भी अधिकारों के प्रवर्तन के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए रिट जारी करने की व्यापक शक्तियाँ हैं, तथापि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय द्वारा एक आत्म-संयम का पालन किया जाना चाहिए। यह भी प्रेक्षित किया गया था कि यद्यपि वैकल्पिक उपचार की समाप्ति विवेक का नियम है, उसी का प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामलों में वैकल्पिक उपचार के संबंध में विधि को भी नोट किया और निम्नलिखित निष्कर्ष अभिलिखित किए गए:

"110. हम अपने अंतिम निष्कर्ष को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं:

110.1. उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में न्यायोचित नहीं था, और अधिक विशेष रूप से तब जब उधारकर्ताओं ने सरफेसी अधिनियम की धारा 17 के अधीन उनके लिए उपलब्ध वैकल्पिक उपचार का पहले ही लाभ उठा लिया था।

110.2. 2002 नियमों के नियम 9(2) के अधीन बैंक द्वारा विक्रय की पुष्टि, सफल नीलामी क्रेता में नियमों के परिशिष्ट V में दिए गए प्रारूप में स्थावर संपत्ति के विक्रय का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का एक निहित अधिकार निहित करती है, अर्थात् प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 के नियम 9(6) के अनुसार।

110.3. सरफेसी अधिनियम की असंशोधित धारा 13(8) के अनुसार, उधारकर्ता का प्रतिभूत आस्ति को मोचन करने का अधिकार ऐसी प्रतिभूत आस्ति के विक्रय या अंतरण तक उपलब्ध था। दूसरे शब्दों में, उधारकर्ता का मोचन का अधिकार प्रतिभूत आस्ति की नीलामी-विक्रय की तिथि पर ही समाप्त नहीं हुआ था और अंतरण के विक्रय प्रमाण-पत्र के पंजीकरण और प्रतिभूत आस्ति का कब्जा दिए जाने के माध्यम से नीलामी क्रेता के पक्ष में पूर्ण होने तक जीवित रहा। तथापि, सरफेसी अधिनियम की धारा 13(8) के संशोधित उपबंध यह स्पष्ट करते हैं कि उधारकर्ता का प्रतिभूत आस्ति को मोचन करने का अधिकार, 2002 नियमों के नियम 9(1) के अधीन लोक नीलामी के लिए नोटिस के प्रकाशन की ठीक तिथि पर उसके अधीन समाप्त हो जाता है। वास्तव में, वर्तमान सांविधिक व्यवस्था के अधीन उधारकर्ता को उपलब्ध मोचन का अधिकार अत्यधिक सीमित कर दिया गया है और यह 2002 नियमों के नियम 9(1) के अधीन नोटिस के प्रकाशन की तिथि तक ही उपलब्ध होगा, न कि नीलामी-क्रेता के पक्ष में प्रतिभूत आस्ति के विक्रय या अंतरण के पूर्ण होने तक।

110.4. 2002 नियमों के नियम 9(2) के अधीन विक्रय की पुष्टि करने के पश्चात् बैंक, 2002 नियमों के नियम 9(6) के अधीन विक्रय प्रमाण-पत्र को रोक नहीं सकता था, और एक उधारकर्ता के साथ एक निजी व्यवस्था में प्रवेश नहीं कर सकता था।

110.5. संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय, सरफेसी अधिनियम के अधीन विहित सांविधिक नीलामी प्रक्रिया द्वारा परिकल्पित परिणाम पर अध्यारोही होने के लिए साम्यिक विचारों को लागू नहीं कर सकता था।

110.6. तेलंगाना उच्च न्यायालय के कंसर्न रेडीमिक्स और अम्मम श्रीसैलम के दो निर्णय विधि की सही स्थिति को प्रतिपादित नहीं करते हैं। उसी तरह, पल अलॉयज एंड मेटल इंडिया (पी) लिमिटेड बनाम इलाहाबाद बैंक: 2021 एससीसी ऑनलाइन पीएंडएच 2733 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय का निर्णय भी विधि की सही स्थिति को प्रतिपादित नहीं करता है।

110.7. आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का श्री साई अन्नधथा पॉलीमर्स बनाम केनरा बैंक: 2018 एससीसी ऑनलाइन एचवाईडी 178 में निर्णय और तेलंगाना उच्च न्यायालय का के.वी.वी. प्रसाद राव गुप्ता बनाम एसबीआई 2021 एससीसी ऑनलाइन टीएस 328 में निर्णय सरफेसी अधिनियम की संशोधित धारा 13(8) की व्याख्या करते समय विधि की सही स्थिति को प्रतिपादित करते हैं।"

16. इस प्रक्रम पर, कब्जा लेने की रीति के संबंध में धारा 14 के अधीन विहित विधि पर ध्यान देना भी आवश्यक है, जो **एनकेजीएसबी को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम सुबीर चक्रवर्ती व अन्य: (2022) 10 एससीसी 286** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए आई, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न आया कि क्या धारा 14 के अधीन आदेश के निबंधनों में वास्तविक कब्जा धारा 14 के अधीन नियुक्त एक अधिवक्ता आयुक्त द्वारा लिया जा सकता है अथवा नहीं। सरफेसी अधिनियम की धारा 14(1-ए) में अंतर्विष्ट भाषा के दृष्टिगत, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए भिन्न मतों को देखते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि एक अधिवक्ता को न्यायालय का एक अधिकारी माना जाना है और इस प्रकार सरफेसी अधिनियम की धारा 14 (1-ए) के प्रयोजनार्थ मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट/जिला मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने के लिए 'क्रियात्मक अधीनस्थता' का परीक्षण लागू किया कि एक अधिवक्ता न्यायालय का एक अधिकारी होने के कारण, मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट/जिला मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ था। उक्त दो निर्णयों के आलोक में, सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के साथ-साथ धारा 14(1-ए) के अधिदेश को भी नोट करना आवश्यक है, जो निम्नानुसार हैं:

"14. प्रतिभूत आस्ति का कब्जा लेने में प्रतिभूत लेनदार की सहायता करने के लिए मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट।—

(1) जहाँ प्रतिभूत लेनदार द्वारा किसी प्रतिभूत आस्ति का कब्जा लिया जाना अपेक्षित है या यदि इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्रतिभूत लेनदार द्वारा किसी प्रतिभूत आस्ति को बेचा या अंतरित किया जाना अपेक्षित है, तो प्रतिभूत लेनदार, ऐसी किसी प्रतिभूत आस्ति का कब्जा या नियंत्रण लेने के प्रयोजनार्थ, उस मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट से, जिसके क्षेत्राधिकार के भीतर ऐसी कोई प्रतिभूत आस्ति या उससे संबंधित अन्य दस्तावेज स्थित या पाए जा सकते हैं, लिखित रूप में, उसका कब्जा लेने के लिए अनुरोध कर सकेगा, और मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या, यथास्थिति, जिला मजिस्ट्रेट, उसे ऐसा अनुरोध किए जाने पर

(क) ऐसी आस्ति और उससे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा ले; और

(ख) ऐसी आस्ति और दस्तावेजों को प्रतिभूत लेनदार को अग्रोषित करे:

परन्तु यह कि प्रतिभूत लेनदार द्वारा कोई भी प्रार्थना-पत्र प्रतिभूत लेनदार के प्राधिकृत अधिकारी द्वारा विधिवत् सत्यापित एक शपथ-पत्र के साथ होगा, जो यह घोषित करता है कि—

(i) प्रदान की गई वित्तीय सहायता की सकल राशि और आवेदन दाखिल करने की तिथि तक बैंक का कुल दावा;

(ii) उधारकर्ता ने विभिन्न संपत्तियों पर प्रतिभूति हित सृजित किया है और यह कि बैंक या वित्तीय संस्था ऐसी संपत्तियों पर एक वैध और विद्यमान प्रतिभूति हित धारण कर रही है तथा बैंक या वित्तीय संस्था का दावा परिसीमा अवधि के भीतर है;

(iii) उधारकर्ता ने विभिन्न संपत्तियों पर प्रतिभूति हित सृजित किया है, जिसमें उपखंड (ii) में संदर्भित संपत्तियों का विवरण दिया गया है;

(iv) उधारकर्ता ने प्रदत्त वित्तीय सहायता के पुनर्भुगतान में चूक की है, जिसकी कुल राशि विनिर्दिष्ट राशि है;

(v) वित्तीय सहायता के पुनर्भुगतान में ऐसी चूक के परिणामस्वरूप उधारकर्ता का खाता गैर-निष्पादित आस्ति के रूप में वर्गीकृत किया गया है;

(vi) यह पुष्टि करना कि धारा 13 की उप-धारा (2) के उपबंधों द्वारा यथा अपेक्षित साठ दिनों की सूचना, जिसमें व्यतिक्रमित वित्तीय सहायता के भुगतान की माँग की गई है, उधारकर्ता पर तामील की जा चुकी है;

(vii) उधारकर्ता से प्राप्त नोटिस के उत्तर में आपति या अभ्यावेदन पर प्रतिभूत लेनदार द्वारा विचार किया गया है और ऐसी आपति या अभ्यावेदन की गैर-स्वीकृति के कारण उधारकर्ता को सूचित किए गए थे;

(viii) उधारकर्ता ने उपरोक्त नोटिस के बावजूद वित्तीय सहायता का कोई पुनर्भुगतान नहीं किया है और इसलिए प्राधिकृत अधिकारी मूल अधिनियम की धारा 14 के साथ पठित धारा 13 की उप-धारा (4) के उपबंधों के अधीन प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने के लिए हकदार है;

(ix) कि इस अधिनियम के उपबंधों और उसके अधीन बनाए गए नियमों का अनुपालन किया गया है:

परन्तु यह और कि प्राधिकृत अधिकारी से शपथ-पत्र की प्राप्ति पर, जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, यथास्थिति, शपथ-पत्र की अंतर्वस्तु से संतुष्ट होने के पश्चात् आवेदन की तिथि से तीस दिनों की अवधि के भीतर प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने के प्रयोजनार्थ उपयुक्त आदेश पारित करेगा:

परन्तु यह भी कि यदि मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा उसके नियंत्रण से परे कारणों से उक्त तीस दिनों की अवधि के भीतर कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है, तो वह उसी के लिए कारणों को लिखित में अभिलिखित करने के पश्चात्, ऐसी और अवधि के भीतर किन्तु कुल मिलाकर साठ दिनों से अनधिक आदेश पारित कर सकेगा।

परन्तु यह भी कि प्रथम परन्तुक में कथित शपथ-पत्र दाखिल करने की अपेक्षा इस अधिनियम के प्रारम्भ होने की तिथि पर किसी जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, यथास्थिति, के समक्ष लंबित कार्यवाही पर लागू नहीं होगी।

(1ए) जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को प्राधिकृत कर सकेगा,--

(i) ऐसी आस्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा लेने के लिए; और

(ii) ऐसी आस्तियों और दस्तावेजों को प्रतिभूत लेनदार को अग्रेषित करने के लिए।

(2) उप-धारा (1) के उपबंधों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ, मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट ऐसे कदम उठा सकेगा या उठा सकेगा और ऐसे बल का प्रयोग कर सकेगा या करवा सकेगा, जो उसकी राय में, आवश्यक हो।

(3) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी का इस धारा के अनुसरण में किया गया कोई भी कार्य किसी भी न्यायालय में या किसी भी प्राधिकारी के समक्ष प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।"

17. उपरोक्त दो उपबंधों के साधारण पठन पर, यह स्पष्ट है कि धारा 14 जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट को संबंधित संपत्ति का कब्जा लेने के लिए सशक्त करती है। धारा 14(1-ए) आगे जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट को "अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को प्राधिकृत" करने के लिए सशक्त करती है कि वह उक्त आस्तियों का कब्जा ले और तत्पश्चात् ऐसी आस्तियों को प्रतिभूत लेनदार को अग्रेषित करे। इस प्रकार, धारा 14 (1-ए) के अधिदेश के निबंधनों में, यह स्पष्ट है कि जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या तो स्वयं कब्जा ले सकता है या अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को प्राधिकृत कर सकता है।

18. वर्तमान मामले में, यह स्वीकार्य है कि अपर जिला मजिस्ट्रेट (ए.डी.एम.) ने स्वयं कब्जा नहीं लिया और इसे एक पुलिस अधिकारी को कब्जा लेने के लिए आगे प्रत्यायोजित करने की शक्ति के साथ अपर पुलिस आयुक्त को प्रत्यायोजित कर दिया। जो प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि "क्या अपर पुलिस आयुक्त, जिला मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ एक अधिकारी है और क्या जिला मजिस्ट्रेट अपर पुलिस आयुक्त द्वारा शक्तियों के आगे प्रत्यायोजन की अनुमति देने के लिए अपनी शक्ति के भीतर था अथवा नहीं"। इस आशय के लिए पक्षकारों में से किसी के द्वारा अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है जो यह सुझाव दे या तर्क दे कि अपर पुलिस आयुक्त को अपर जिला मजिस्ट्रेट के अधीनस्थ अधिकारी कहा जा सकता है, भले ही एनकेजीएसबी को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित धारा 14(1-ए) की व्याख्या के लिए क्रियात्मक अधीनस्थता परीक्षण स्वीकार कर लिया जाए।

19. स्वीकार्य रूप से अभिवचनों के अनुसार, स्थावर संपत्ति (बंधक) का कब्जा एक ऐसे अधिकारी द्वारा लिया गया जिसे अपर पुलिस आयुक्त द्वारा प्राधिकार प्रत्यायोजित किया गया था और उसके द्वारा प्रत्यायोजित अधिकारी न तो अपर जिला मजिस्ट्रेट के क्रियात्मक रूप से अधीनस्थ हैं और न ही उन्हें न्यायालय का अधिकारी कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ताओं को जंगम आस्तियों (जो अधमर्णित/बंधक नहीं थीं) पर भी उनके कब्जे से वंचित किया गया।

20. चूँकि स्थावर और जंगम आस्तियों का कब्जा आज्ञापक उपबंधों के विपरीत लिया गया है, मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई झिझक नहीं है कि रिट जारी करने का उपचार उपलब्ध होगा क्योंकि प्रथम दृष्टया, भारत के संविधान के अनुच्छेद 300ए के आधार पर निहित अधिकारों का उल्लंघन हुआ था, जिनका प्रथम दृष्टया पालन नहीं किया गया है और इस प्रकार रिट याचिका पोषणीय

होगी। इस प्रकार, यह निष्कर्ष प्रतिवादियों के अधिवक्ता के इस तर्क से निपटता है कि रिट पोषणीय नहीं होगी।

21. मामले में देखा जाने वाला एक अन्य पहलू यह है कि अपर जिला मजिस्ट्रेट (ए.डी.एम.) के आदेश दिनांक 21.04.2023 के निदेशों का भी पालन नहीं किया गया, क्योंकि जमानतदारों अर्थात् याचिकाकर्ता सं.2 और 4 को कभी कोई नोटिस तामील नहीं किया गया। यह स्वीकार्य है कि नोटिस केवल याचिकाकर्ता सं.1 पर ही तामील किया गया था, इस प्रकार, आदेश दिनांक 21.04.2023 का पूर्व सूचना देने का आशय, ताकि सामान समय पर हटाया जा सके, उसका भी पालन नहीं किया गया। यह भी देखा जाना है कि ऋण वसूली अधिकरण (डी.आर.टी.) द्वारा अपने आदेश दिनांक 12.05.2023 में अपर जिला मजिस्ट्रेट को कब्जा लेने से पहले कम से कम 15 दिन का पूर्व नोटिस जारी करने का निदेश दिया गया था, उसका भी वर्तमान मामले में पालन नहीं किया गया है।

22. उपरोक्त रूप में देखी गई दुर्बलताओं के दृष्टिगत, स्पष्ट रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 300ए के अधीन प्रत्याभूत अधिकारों का उल्लंघन है, कब्जा लेने की रीति सरफेसी अधिनियम की धारा 14 (1-ए) के अधिदेश के अनुसार नहीं है और जंगम आस्तियों का कब्जा लेना विधि के किसी भी प्राधिकार के बिना था, इस प्रकार, मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई झिझक नहीं है कि जिस तरीके से कब्जा लिया गया था, वह विधि के विपरीत था।

23. जहाँ तक प्रतिवादियों के अधिवक्ता का यह निवेदन है कि रिट पोषणीय नहीं होगी क्योंकि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में "राज्य" नहीं है, उक्त तर्क केवल इस कारण से अस्वीकार किए जाने योग्य है कि वर्तमान मामले में, स्थावर और जंगम आस्तियों का कब्जा सरकारी प्राधिकारियों द्वारा लिया गया है और इस प्रकार रिट पोषणीय होगी।

24. इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने *आईसीआईसीआई बैंक लिमिटेड बनाम प्रकाश कौर (उपरोक्त)* के मामले में इस बात पर बल दिया है कि विधि के शासन की सर्वोच्चता के किसी भी उल्लंघन की निंदा की जानी चाहिए, विधि के अधीन विहित प्रक्रिया का ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए जिसका वर्तमान मामले में पालन नहीं किया गया है। इस प्रकार, वर्तमान रिट याचिका स्वीकृत किए जाने योग्य है और तदनुसार **स्वीकृत** की जाती है।

25. तथापि, प्रतिवादी सं.2 सरफेसी अधिनियम की धारा 14 (1-ए) के अधिदेश के कड़ाई से निबंधनों में विधि के अनुसार कब्जा लेने के लिए स्वतंत्र होगा। अपर जिला मजिस्ट्रेट (ए.डी.एम.) यह सुनिश्चित

करेंगे कि कब्जा सरफेसी अधिनियम की धारा 14 (1-ए) के अधिदेश के कड़ाई से निबंधनों में लिया जाए।

(2025) 3 ILRA 66

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

तारीख: लखनऊ 27.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 1667 सन् 2025

कांति देवी

... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता : ज्ञानेंद्र पाठक, अभिषेक श्रीवास्तव, आदर्श कुमार त्रिपाठी

प्रतिवादी के अधिवक्ता : सी.एस.सी

सिविल कानून -भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 227 - उत्तर प्रदेश भू राजस्व संहिता, 2006 - धारा 80 और 82 -आक्षेपित आदेश पूर्णतः यांत्रिक रूप से पारित किया गया है तथा इसमें न तो समुचित विचार किया गया है और न ही विवाद से संबंधित प्रासंगिक विधिक प्रावधानों का ध्यान रखा गया है। संहिता की धारा 80 के अंतर्गत दायर आवेदन का निस्तारण केवल उन्हीं शर्तों को ध्यान में रखते हुए किया जा सकता है, जो विधि में निर्धारित हैं, विशेषकर धारा 80 की उपधारा (4), (7) एवं (8) में उल्लिखित शर्तें। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार प्रदान की गई अनुमति को केवल धारा 82 के अंतर्गत ही निरस्त किया जा सकता है। इन समस्त आवश्यक पहलुओं पर प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित था, परंतु उसने ऐसा नहीं किया। आदेश आदेश को निरस्त/रद्द किया जाता है। (पैरा 6-8)

याचिका स्वीकार की जाती है।(ई-15)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया, द्वारा प्रदान किया गया)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता तथा राज्य के अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडेय को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

2. इस याचिका के जरिए, याचिकाकर्ता ने उप-विभागीय मजिस्ट्रेट- बहराइच के 23.07.2024 के आदेश को चुनौती दी है, जो उसमें लगाई गई शर्तों के तहत है। यह आदेश उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व संहिता, 2006 (संक्षिप्त में 'संहिता') के धारा 80 के तहत पावर का इस्तेमाल करते हुए लगाया गया था, जो याचिकाकर्ता- कांति देवी द्वारा शुरू किए गए कंप्यूटराइज्ड वाद नंबर T802024028697 के तौर पर रजिस्टर्ड वाद में था।

23.07.2024 के आदेश का प्रभावशाली हिस्सा इस तरह है।

"अतः तहसीलदार सदर बहराइच की जांच आख्या दिनांकित 09-07-2024 तथा पत्रावलित अभिलेखों के परीक्षणोपरान्त ग्राम अमीनपुरनगरौर परगना तहसील व जिला बहराइच खाता संख्या 146 गाटा संख्या 145 रकबा 0.532हे० में से 0.266हे० भूमि में आवेदिका कान्ती देवी पुत्री जुग्गी लाल पत्नी विद्याराम निवासी खुटेहना हाल पता नगरौर परगना तहसील व जनपद बहराइच का नाम संयुक्त रूप से सक्रमणीय भूमिधर दर्ज है, की भूमि को उ० प्र० राजस्व संहिता 2006 की धारा 80(2) अस्सी (दो) के अन्तर्गत गैर-कृषिक घोषित किया जाता है। यह आदेश किसी प्रकार के मुआवजा धनराशि निर्धारण / अन्तरण के लिए प्रभावी नहीं होगा। तथ्यों को छिपाकर यदि आदेश प्राप्त किया जाता है तो स्वतः शून्य होगा। आदेश की एक प्रति तहसीलदार सदर बहराइच को आवश्यक कार्यवाही हेतु भेजी जाये। बाद आवश्यक कार्यवाही पत्रावली संग्रहीत हो।"

3. ऊपर बताए गए 23.07.2024 के आदेश के प्रभावशाली हिस्से का अंडरलाइन हिस्सा इस न्यायालय के सामने है, जैसा कि दूसरी पक्ष नंबर 2 - एडिशनल कमिशनर, (एडमिनिस्ट्रेशन), देवी पाटन डिवीजन गोंडा के सामने भी था, जिन्होंने 05.03.2025 को संहिता 2006 के धारा 210 के तहत शुरू किए गए वाद में विवादित आदेश पास किया था, जिसे रिविजन/वाद नंबर 1305/2024; कंप्यूटराइज्ड वाद नंबर C202408000001305 (कांति देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के तौर पर रजिस्टर्ड किया गया था। इसका संबंधित हिस्सा नीचे दिया गया है:-

"निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपने मौखिक तर्क में, निगरानी में कहे गये कथनों को आधार बनाते हुए निगरानी को स्वीकार किये जाने तथा अवर न्यायालय द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश दिनांक 23.07.2024 में अंश "यह आदेश किसी प्रकार की मुआवजा धनराशि/अन्तरण के लिए प्रभावी नहीं होगा। तथ्यों को छिपाकर यदि आदेश प्राप्त किया जाता है तो स्वतः शून्य होगा।" को निरस्त करते हुए, शेष आदेश को यथावत रखे जाने पर बल दिया गया।

दूसरी ओर मण्डलीय शासकीय अधिवक्ता (राजस्व) द्वारा अपने मौखिक / लिखित बहस में यह कहा गया निगरानीकर्ता के आवेदन पर, जाँच प्रक्रिया में आख्या दिनांकित 09.07.2024 तहसीलदार सदर बहराइच में धारा-80 (2) के तहत अकृषिक घोषित करने हेतु आख्या प्रेषित होकर उप जिलाधिकारी सदर बहराइच द्वारा आलोच्य आदेश दिनांक 23.07.2024 पारित है। अवर न्यायालय द्वारा उ०प्र० राजस्व संहिता 2006 के प्राविधान धारा-80(2) के तहत आलोच्य आदेश पारित किया है, जो विधिसंगत व न्यायसंगत है। अंत में शासकीय अधिवक्ता द्वारा निगरानी को बलहीन कहते हुए निरस्त किये जाने पर बल दिया गया।

उभयपक्ष के विद्वान अधिवक्तागण के तर्कों को सुनने तथा निगरानी न्यायालय व अवर न्यायालय की पत्रावली पर उपलब्ध अभिलेखों के अवलोकन से स्पष्ट है कि अपर न्यायालय द्वारा आवेदक द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रार्थनापत्र पर, तहसीलदार बहराइच द्वारा प्रस्तुत की गयी जाँच आख्या दिनांकित 09.07.2024 व पत्रावली पर उपलब्ध अभिलेखों के परिक्षणोपरान्त प्रश्नगत आदेश दिनांक 23.07.2024 पारित क्रिया गया है। प्रश्नगत आदेश निगरानीकर्ता के पक्ष में है। अवर न्यायालय द्वारा प्रश्नगत आदेश पारित करने में किसी क्षेत्राधिकार का उल्लंघन नहीं किया है। निगरानीकर्ता द्वारा प्रस्तुत की गयी निगरानी बलहीन है, जो निरस्त किये जाने योग्य है।

अतः उपरोक्त विवेचना के आधार पर प्रस्तुत निगरानी बलहीन होने के कारण निरस्त की जाती है। निगरानी में यदि कोई स्थगनादेश पारित है, तो उसे वापस लिया जाता है। आदेश की प्रति के साथ अवर न्यायालय की पत्रावली वापस भेजी जाये। इस न्यायालय की पत्रावली बाद आवश्यक कार्यवाही दाखिल दफ्तर की जाये।

(कमलेश चन्द्र),
अपर आयुक्त (प्रशासन),
देवीपाटन मण्डल, गोण्डा।

उपरोक्त आदेश आज मेरे द्वारा हस्ताक्षरित व दिनांकित करके, खुले न्यायालय में उद्घोषित किया गया।

दिनांक:-05.03.2025

(कमलेश चन्द्र),
अपर आयुक्त (प्रशासन),
देवीपाटन मण्डल, गोण्डा।"

4. संहिता के संबंधित प्रावधान के आधार पर, पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया गया और विवादित आदेश को पढ़ा गया।

5. इस याचिका में शामिल विवाद/मुद्दे पर फैसला करने के लिए, यह न्यायालय संहिता के संबंधित धारा (धारा) और उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता नियम 2016 रूल्स, 2016 (शॉर्ट में 'रूल्स') के हिंदी और अंग्रेजी संस्करण पर ध्यान देना सही समझता है, जो नीचे दिए गए हैं।

संबंधित धारा (धारा)

धारा 79. अनन्य कब्जा के लिए भूमिधरों को अधिकार -

(1) संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर को इस संहिता की उपबन्धों के अधीन रहते हुए उस समस्त भूमि पर जिसका वह ऐसा भूमिधर है, अनन्य कब्जा का और किसी भी प्रयोजन के लिये उसका उपयोग करने का अधिकार होगा।

(2) असंक्रमणीय अधिकार वाले किसी भूमिधर की इस संहिता के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उस समस्त भूमि पर जिसका वह ऐसा भूमिधर है अनन्य कब्जा का और कृषि से सम्बन्धित किसी प्रयोजन को लिये ऐसी भूमि का उपयोग करने का अधिकार होगा।

धारा 80. औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए जोत का उपयोग-

(1) जहां संक्रमणीय अधिकारों वाला कोई भूमिधर, अपनी जोत या उसके आंशिक भाग का उपयोग औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए करता है, वहां उपजिलाधिकारी स्वप्रेरणा से या ऐसे भूमिधर द्वारा आवेदन किये जाने पर यथा विहित जांच करने के पश्चात या तो कोई घोषणा कर सकता है कि उक्त भूमि का प्रयोग कृषि से भिन्न प्रयोजन के लिए किया जा रहा है या वह आवेदन की अस्वीकृत कर सकता है। उपजिलाधिकारी आवेदन प्राप्त किए जाने के दिनांक से पैंतालीस कार्य दिवसों के भीतर आवेदन पत्र पर विनिश्चय करेगा। यदि आवेदन अस्वीकृत कर दिया जाता है तो उपजिलाधिकारी ऐसी अस्वीकृति के लिखित कारणों को उल्लिखित करेगा और आवेदक को अपने विनिश्चय की सूचना देगा,

परंतु यह कि यदि घोषणा करने के आवेदन के साथ विहित शुल्क संलग्न हो तथा संयुक्त जोत होने के मामले में सह-भू-धृत धारकों की अनापत्ति सह-भू-धृत धड़क होने की स्थिति में संलग्न हो और यदि उपजिलाधिकारी द्वारा यथापूर्वक्त पैंतालीस दिन के भीतर घोषणा नहीं की जाती है तो घोषणा की गई समझी जाएगी और तहसीलदार "उपजिलाधिकारी के आदेश अध्याधीन" टिप्पणी सहित राजस्व अभिलेखों में अभिलिखित करेगा। यदि कोई प्रभावित पक्षकार कोई आपत्ति दाखिल करना चाहे तो वह सक्षम न्यायलय में आपत्ति दाखिल कर सकता है।

(2) जहाँ संक्रमणीय अधिकारों वाला कोई भूमिधर अपनी जोत या उसके आंशिक भाग का भविष्य में औद्योगिक वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए उपयोग करने का प्रस्ताव करता है वहाँ ऐसे भूमिधर द्वारा आवेदन किये जाने पर उपजिलाधिकारी यथाविहित रूप में जाँच करने के पश्चात आवेदन प्राप्त किये जाने के दिनांक से पैंतालीस कार्य दिवस के भीतर या तो यह घोषणा कर सकता है कि उक्त भूमि का प्रयोग कृषि से भिन्न प्रयोजन को लिए किया जा सकता है या वह आवेदन अस्वीकृत कर सकता है। यदि आवेदन अस्वीकृत किया जाता है तो उपजिलाधिकारी को ऐसी अस्वीकृति को लिखित कारणों का उल्लेख करना होगा और आवेदक को अपने विनिश्चय की सूचना देनी होगी;

परन्तु यह और कि यदि भूमिधर, इस उपधारा के अधीन घोषणा के दिनांक से पांच वर्ष की अवधि के भीतर प्रस्तावित गैर कृषि संबंधी गतिविधि करने में विफल रहता है तो उपधारा (2) के अधीन जोत या उसके आंशिक भाग की घोषणा व्यपगत हो जायेगी;

परन्तु यह और कि इस उपधारा के अधीन घोषणा, भू-उपयोग परिवर्तन की कोटि में नहीं होगी और उक्त भूमि निरन्तर कृषि भूमि के रूप में ही समझी जायेगी। तथापि भूमिधर ऐसी जोत या उसके आंशिक भाग, जिसके

लिए इस उपधारा के अधीन घोषणा प्राप्त की गयी हो, पर प्रस्तावित गतिविधि अथवा परियोजना के लिए ऋण और अन्य आवश्यक अनुज्ञाएं, समाशोधन आदि प्राप्त करने का हकदार होगा;

(3) अपनी जोत या उसके आंशिक भाग को लिए उपधारा (2) के अधीन घोषणा धारण करने कला कोई भूमिधर, उपधारा (2) के अधीन घोषणा पांच वर्ष की अवधि के भीतर निर्माण किया-कलाप पूर्ण कर लेने या प्रस्तावित गैर कृषि क्रिया कलाप प्रारम्भ करने के पश्चात उपधारा (2) की घोषणा को उपधारा (1) की घोषणा से आच्छादित करने के लिए उप जिलाधिकारी के समक्ष आवेदन कर सकता है। ऐसा कोई आवेदन प्राप्त किये जाने पर उपजिलाधिकारी यथा आवश्यक जाँच करने के पश्चात आवेदन पत्र प्राप्त किये जाने के दिनांक से 15 दिन की अवधि के भीतर आवेदन स्वीकृत करेगा या अस्वीकृत करेगा। अस्वीकृति की स्थिति में उसे ऐसी अस्वीकृति के कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित करना होगा;

परन्तु यह कि उपधारा (2) के अधीन घोषणा का उपधारा (1) के अधीन घोषणा में संपरिवर्तन के लिए भूमिधर पूर्व में उपधारा (2) के अधीन घोषणा के लिए अपने द्वारा पहले ही भुगतान की गई धनराशि का समायोजन करने के पश्चात् प्रचलित सर्किल दर पर आगणित संदेय शुल्क की मात्र अवशेष राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा;

(4) उपधारा (1) या (2) के अधीन घोषणा के लिए भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी सह-भूमिधर द्वारा किया गया कोई आवेदन तब तक पोषणीय नहीं होगा जब तक कि ऐसी भूमिधरी भूमि के समस्त सह-भूमिधरों द्वारा आवेदन नहीं किया जाता है। यदि कोई एक सह-भूमिधर, संयुक्त हित की भूमि में से अपने अंश की घोषणा कराना चाहता है तो ऐसा आवेदन, भूमि में सह-भूमिधरों के अपने-अपने अंशों का विभाजन विधि के उपबन्धों के अनुसार किये जाने के पश्चात ही प्रहार किया जायेगा;

(5) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन घोषणा के लिए आवेदन में ऐसे विवरण अंतर्विष्ट होंगे और उक्त आवेदन ऐसी रीति से किया जायेगा जैसे कि विहित किया जाए;

(6) जहां उपधारा (1) या (2) के अधीन आवेदन, जोत के किसी आंशिक भाग के संबंध में किया जाता है, वहां उपजिलाधिकारी विहित रीति से ऐसे आंशिक भाग का सीमांकन ऐसी घोषणा के प्रयोजनों के लिए कर सकता है:

(7) इस धारा की अधीन कोई घोषणा, उपजिलाधिकारी द्वारा नहीं की जा सकती है, यदि उसका यह समाधान हो जाये कि भूमि या उसके आंशिक भाग का उपयोग, ऐसे प्रयोजन के लिए किया जा रहा है या किया जाना प्रस्तावित है, जिसके कारण लोक उत्ताप होना या लोक व्यवस्था, लोक स्वास्थ्य, सुरक्षा या सुविधा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना सम्भावित हो या जो महायोजना में प्रस्तावित उपयोगों के विरुद्ध हो;

(8) यदि भूमि या उसका आंशिक भाग, जिसके लिए इस धारा के अधीन घोषणा की अपेक्षा की जा रही हो, किसी नगरीय या औद्योगिक विकास प्राधिकरण के अधीन अधिसूचित क्षेत्र के अंतर्गत आता है तो सम्बन्धित विकास प्राधिकरण की पूर्व अनुज्ञा आज्ञापक होगी;

(9) राज्य सरकार इस धारा के अधीन घोषणा के लिए शुल्क-मान नियत कर सकती है और भिन्न-भिन्न शुल्क भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए नियत किये जा सकते हैं;

परन्तु यह कि यदि आवेदक जोत या उसके आंशिक भाग का उपयोग अपने निजी आवासीय प्रयोजन के लिए करता है तो इस धारा के अधीन घोषणा के लिए कोई शुल्क प्रभारित नहीं किया जायेगा।

धारा 81. घोषणा का परिणाम-

जहां [धारा 80 की उपधारा (1)] के अधीन घोषणा की जाय वहां ऐसे जोत या उसमें सम्बन्धित भाग के सम्बन्ध में निम्नलिखित परिणाम होंगे;

(क) भूमि के अन्तरण के सम्बन्ध में इस अध्याय के द्वारा या अधीन आरोपित सभी निबन्धन संक्रमणीय अधिकारों वाले भूमिधर के लिए लागू नहीं रह जायेंगे;

(ख) अध्याय ग्यारह में किसी बात के होते हुए भी उक्त घोषणा के दिनांक के अनुगामी कृषि वर्ष के प्रारंभ के दिनांक से ऐसी भूमि भू-राजस्व के भुगतान से मुक्त होगी

(ग) भूमिधर न्यागमन के विषय में उस वैयक्तिक विधि से नियंत्रित होगा जिसके यह अधीन है।

धारा 82. घोषणा का रद्द किया जाना -

(1) जब कभी किसी ऐसी जोत या उसके भाग, जिसके सम्बन्ध में धारा 80 के अधीन घोषणा की गयी है, कृषि से सम्बन्धित किसी प्रयोजन के लिये उपयोग किया जाता है तब उप जिलाधिकारी स्व-प्रेरणा से या इस निमित्त आवेदन दिए जाने पर ऐसी जांच करने के पश्चात्, जैसी विहित की जाए, ऐसी घोषणा को रद्द सकता है।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन कोई घोषणा रद्द की जाए वहां जोत या उससे सम्बन्धित भाग के सम्बन्ध में निम्नलिखित परिणाम सुनिश्चित किए जायेगे, अर्थात्-

(क) जोत या उसका भाग अन्तरण और न्यागमन के विषय में इस अध्याय के द्वारा या अधीन आरोपित सभी निबन्धनों के अधीन हो जाएगा,

(ख) जोत या उसके भाग का उस कृषि वर्ष के, जिसमें घोषणा को रद्द करने का आदेश दिया जाए, प्रारम्भ के दिनांक से भू-राजस्व का भुगतान किया जाएगा:

परंतु जब तक इस संहिता के उपबन्धों के अनुसार ऐसी जोत या भाग का कोई भू-राजस्व पुनर्निर्धारित न किया जाए तब तक धारा 80 के अधीन घोषणा किए जाने के पूर्व ऐसी जोत या उसके भाग के सम्बन्ध में देय या देय समझे गए भू-राजस्व की ऐसी जोत या भाग के सम्बन्ध में देय भू-राजस्व समझा जाएगा।

(ग) जहां भूमि किसी संविदा या पट्टा के आधार पर उसके भूमिधर से भिन्न किसी व्यक्ति के कब्जे में हो और ऐसी संविदा या पट्टा के निबन्धन इस संहिता के उपबन्धों से असंगत हो, वहां ऐसी संविदा या पट्टा, ऐसी असंगति की सीमा तक शून्य हो जाएगा और कब्जाधारी व्यक्ति को भूमिधर के बाद बेदखल किया जा सकेगा; परन्तु घोषणा को रद्द किए जाने के दिनांक को विद्यमान भूमि-बन्धक को ऐसी भूमि पर देय एवं प्रतिभूति धनराशि के लिये दृष्टि बन्धक द्वारा प्रतिस्थापित समझा जाएगा जिसकी ब्याज की दर ऐसी होगी जैसी विहित की जाए।

धारा 83. घोषणा या रद्दकरण को अभिलिखित किया जाना -

धारा 80 के अधीन प्रत्येक घोषणा को या धारा 82 के अधीन रद्दकरण को अधिकार अभिलेखों में यथाविहित रीति से अभिलिखित किया जायेगा और धारा 80 अधीन घोषणा के बाद भी अन्तरण या उत्तराधिकार के आधार पर विहित रीत से नामान्तरण आदेश पारित किया जायेगा।

संबंधित नियम

85. उद्घोषणा के लिए आवेदन [धारा 80] -

(1) संक्रमणीय अधिकार वाला भूमिधर जो अपने जोत या उसके किसी भाग के उपयोग कृषि से जुड़े हुये कार्यो में नहीं कर रहा है तो वह संहिता की धारा 80 (1) के अन्तर्गत आर० सी० प्रपत्र 25 में उपजिलाधिकारी को उसकी उद्घोषणा हेतु आवेदन कर सकता है।

(2) आवेदक उद्घोषणा शुल्क की आवश्यक रकम जमा करेगा जो कि सम्बन्धित जिले के कलेक्टर द्वारा कृषि प्रयोजन के लिये निर्धारित सर्किल रेट के अनुसार आगणित रकम का एक प्रतिशत अथवा समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा नियत दर के अनुसार होगा।

(3) उपनियम (1) के अन्तर्गत यदि उपजिलाधिकारी को आवेदन प्राप्त होता है तो वह राजस्व अधिकारी जो राजस्व निरीक्षक के पद से नीचे का नहीं होगा, से अपना यह समाधान करने के लिये जांच करायेगा कि उस सम्पूर्ण जोत अथवा उसके किसी भाग पर कृषि से जुड़ा हुआ कोई कार्य नहीं हो रहा है। सम्बन्धित राजस्व अधिकारी मौका मुआईना कर यह आख्या उपजिलाधिकारी को प्रस्तुत करेगा कि जोत अथवा उसका भाग वास्तव में किस प्रयोजन के लिये प्रयोग लाया जा रहा है।

86. भूमिधर को सूचना [धारा 80] -

जब धारा 80 (1) के अन्तर्गत कार्यवाही उपजिलाधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा से प्रारम्भ की गयी हो वहां, वह सम्बन्धित भूमिधर को नोटिस देगा और भूमिधर द्वारा उस नोटिस के जवाब, यदि कोई हो, दिये जाने के पश्चात् नियम 85 (3) के अन्तर्गत जांच कर आख्या प्रस्तुत की जायेगी।

87. घोषणा का किया जाना [धारा 80] -

यदि राजस्व अधिकारी की आख्या की परीक्षण करने के बाद उपजिलाधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि :

(क) सम्पूर्ण जोत पर कृषि से सम्बन्धित कार्य नहीं हो रहा है; और

(ख) धारा 80 (4) में उल्लिखित शर्तें पूरी हो रही हैं तब वह धारा 80 (1) के अन्तर्गत ऐसी जोत के सम्बन्ध में उद्घोषणा करेगा।

88. भू-राजस्व का विभाजन [धारा 80] -

(1) यदि संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर द्वारा अपनी जोत के केवल किसी भाग का प्रयोग कृषि से भिन्न प्रयोजन के लिये किया जा रहा है और उपजिलाधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि धारा 80 (1) के द्वितीय परन्तुक के उपबन्धों का उल्लंघन नहीं है, तो वह केवल ऐसे भाग के सम्बन्ध में उद्घोषणा कर सकेगा, बशर्ते कि नियम 22 के उपनियम (2) के अनुसार विभाजन का खर्च ऐसी घोषणा के पहले भूमिधर द्वारा जमा कर दी गयी हो।

(2) जहाँ उपजिलाधिकारी जोत के किसी भाग के सम्बन्ध में घोषणा के लिये स्वप्रेरणा से कार्यवाही करता है वहाँ ऐसे सीमांकन का खर्च उपजिलाधिकारी द्वारा भू-राजस्व के बकाये की भांति वसूला जायेगा।

(3) उपनियम (1) अथवा उपनियम (2) के अन्तर्गत घोषणा के प्रत्येक प्रकरण में विद्यमान सर्वे मानचित्र के आधार पर सीमांकन किया जाएगा और उपजिलाधिकारी ऐसे भूमिधर द्वारा देय भू-राजस्व का विभाजन करेगा।

(4) उप जिलाधिकारी आवेदन के दर्ज किये जाने के दिनांक से पैंतालीस दिनों की अवधि के अन्दर धारा 80 की उपधारा (1) के अन्तर्गत उद्घोषणा की कार्यवाही को पूर्ण करने का प्रयास करेगा और यदि कार्यवाही ऐसी अवधि के अन्दर पूर्ण नहीं की जाती है तो उसका कारण अभिलिखित किया जायेगा।

89. उद्घोषणा का निरस्तीकरण [धारा 82] - जहाँ कि किसी जोत या उसके किसी भाग को उद्घोषणा, धारा 30 तथा पुराने उ० प्र० जमींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा 143 को गई है। उस जोत अथवा उसके किसी भाग पर पुनः कृषि से सम्बन्धित कार्य शुरू कर दिया जाता है तो, धारा 82 के अन्तर्गत उद्घोषणा को रद्द किये जाने हेतु आवश्यक आवेदन आर० सी० प्रपत्र 26 में प्रस्तुत किया जा सकता है।

90. निरस्तीकरण के पूर्व जांच [धारा 82] - नियम 89 के अन्तर्गत आवेदन प्राप्त होने पर, उपजिलाधिकारी धारा 82 के अनुसार उद्घोषणा निरस्त करने के पहले जांच करेगा और नियम 85 लगायत 88 में दी गयी प्रक्रिया का पालन करेगा।

91. उद्घोषणा एवं निरस्तीकरण का ढंग [धारा 83] - (1) धारा 80 के अन्तर्गत की गयी एवं धारा 82 के अन्तर्गत रद्द की गयी प्रत्येक घोषणा उप खण्ड अधिकारी द्वारा सम्यक रूप से हस्ताक्षरित को जाएगी और उस पर उनके न्यायालय को मुहर लगी होगी तथा निम्न विशिष्टियों से युक्त होगी:

- (क) धारा जिसके अन्तर्गत को गयी हो।
- (ख) भू-खण्ड की संख्या तथा क्षेत्रफल जिसके सम्बन्ध में किया गया हो।
- (ग) प्रश्नगत भू-खण्डों का भू-राजस्व, यदि कोई हो, तो।
- (घ) ग्राम, तहसील एवं जिले का नाम जिसमें भू-खण्ड स्थित है।
- (ङ) भूमिधर का नाम, पितृनाम तथा पता जिसके पक्ष में घोषणा हुई है।
- (च) घोषणा का दिनांक

(2) रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1908 के अन्तर्गत ऐसी घोषणा को पंजीकृत करना जरूरी नहीं होगा, परन्तु उसे अधिकार अभिलेख में अभिलिखित करना होगा।

92. ब्याज दर | धारा 82] -

जब कब्जे के साथ बंधक को धारा 82 (2) के खण्ड (ग) के परन्तुक के अन्तर्गत सामान्य बंधक से प्रतिस्थापित किया जाता है तो ऐसा सामान्य बंधक चार प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज वाहन करेगा।

93. उद्घोषणा अथवा निरस्तीकरण का दर्ज किया जाना | धारा 83] -

धारा 80 के अन्तर्गत प्रत्येक घोषणा अथवा धारा 82 के अन्तर्गत निरस्तीकरण की अधिकार अभिलेख में दर्ज किया जायेगा और धारा 80 के अन्तर्गत घोषणा के बाद भी अन्तरण अथवा उत्तराधिकार के आधार पर नामांतरण आदेश इस नियमावली के अध्याय 5 में विहित रीति से पारित किया जाएगा

6. ऊपर बताए गए कानूनी प्रावधान पर ठीक से विचार करने के बाद, यह न्यायालय पाता है कि मामले में दखल देना जरूरी है। ऐसा इन वजहों से है:-

- (i) ऊपर बताए गए 23.07.2024 के आदेश में लगाई गई शर्तें, क्योंकि ऊपर बताए गए कानूनी प्रावधान ऐसी शक्ति नहीं देते हैं और संहिता के धारा 80 के तहत पावर का इस्तेमाल करते हुए आदेश पास करते समय बताई जा सकने वाली शर्तें संहिता के धारा 80 के उप-धारा 2 और उप-धारा 7 से ली जा सकती हैं। (ii) दूसरी पक्ष नंबर 2 ने बिना सोचे-समझे और ऊपर बताए गए खास नियमों पर ध्यान दिए बिना, जो उसके सामने

आए मुद्दे से जुड़े थे, आदेश पूरी तरह से मशीनी तरीके से पास किया। हालांकि, वह इस पर ध्यान देने और 23.07.2024 के आदेश को पुष्टि या संशोधित करते हुए सही आदेश पास करने के लिए मजबूर था।

(iii) संहिता के धारा 80 के तहत दी गई एप्लीकेशन को संहिता के धारा 80 के उप-धारा (4), (7) और (8) के तहत बताई गई शर्तों सहित कानूनी नियमों में बताई गई शर्तों पर ध्यान देने के बाद मंजूरी दी जा सकती है या रिजेक्ट किया जा सकता है और इस तरह दी गई परमिशन को संहिता के धारा 82 के तहत ही कैंसल किया जा सकता है और इन सभी बातों पर दूसरी पक्ष नंबर 2 को ध्यान देना चाहिए था, जिन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया और इसलिए, यह न्यायालय पाता है कि दूसरी पक्ष नंबर 2 कानूनी ज़िम्मेदारी निभाने में फेल रही।

7. इसलिए, 05.03.2025 का आदेश उपर्युक्त सीमा तक निरस्त /रद्द किया जाता है। इसलिए याचिका **स्वीकार** की जाती है। व्यय के बारे में कोई आदेश नहीं।

8. न्यायालय इस निर्णय का प्रारूप करने में मेरे साथ जुड़ी रिसर्च एसोसिएट सुश्री उर्मिश शंकर की कीमती मदद को रिकॉर्ड करता है।

(2025) 3 ILRA 73

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद, संख्या 4173 वर्ष 2018

(अपराधिक)

संबद्ध

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन, संख्या 2701 वर्ष 2019

योगेश्वर राज नागर और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश और अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: सुश्री अभिलाषा सिंह, श्री आशुतोष यादव, श्री मनोज कुमार राजवंशी, श्री श्याम लाल, श्री यादवेश यादव

प्रतिवादी के अधिवक्ता: सरकारी अधिवक्ता, श्री लल्लन प्रसाद यादव, श्री नागेश कुमार, श्री विमलेंदु त्रिपाठी

आपराधिक कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 20 और 227 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 406, 420, 465, 471 और 506 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 468 और 482 - एक सोसायटी और एक शैक्षणिक संस्थान के प्रबंधन को लेकर विवाद के कारण कई कानूनी कार्यवाहियां हुईं - एक परिवाद मामला- वर्ष 2005 में एक एफ.आई.आर. दर्ज की गई थी - लेकिन विवेचना के बाद, पर्याप्त साक्ष्य न होने के कारण पुलिस ने 2006 में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की - विचारण न्यायालय द्वारा 2012 में अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई - वर्ष 2017 में, विपक्षी पक्ष ने उन्हीं तथ्यों के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ एक और परिवाद दायर किया - जिसके परिणामस्वरूप सम्मन आदेश जारी हुए - आपराधिक पुनरीक्षण- खारिज - अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान रिट याचिका - इसके अतिरिक्त, छह साल की देरी के बाद, विपक्षी संख्या 2 ने धारा 482 के तहत एक आवेदन के माध्यम से अंतिम रिपोर्ट की स्वीकृति को चुनौती दी, जिसमें देरी का कोई औचित्य नहीं दिया गया - दोनों मामले एक ही वाद-कारण से उत्पन्न हुए हैं और एक ही साझा निर्णय के माध्यम से तय किए गए हैं - न्यायालय पाता है कि, - (i) विवाद मुख्य रूप से एक सोसायटी और शैक्षणिक संस्थान के प्रबंधन से संबंधित है, जो नागरिक प्रकृति का है, लेकिन इसे आपराधिक रंग देने के प्रयास अनुचित माने गए, - (ii) आईपीसी की धारा 406 के तहत अपराध साबित करने के लिए 'न्यास' आवश्यक है, जो इस मामले में नहीं दिखाया गया था, - (iii) सम्मन आदेश अस्पष्ट था और इसमें उचित तर्क की कमी थी, - (iv) महत्वपूर्ण देरी के बाद उन्हीं तथ्यों पर दूसरा परिवाद दायर करना अनुचित माना गया और यह सीआरपीसी की धारा 468 से बाधित था - (v) किसी को सम्मन करने से पहले, न्यायालय को सावधानीपूर्वक जांच करनी चाहिए कि क्या कार्यवाही के लिए वैध आधार मौजूद हैं, जो यहाँ नहीं किया गया था - निर्णय दिया गया - विचारण न्यायालय ने दूसरे परिवाद को स्वीकार करने में त्रुटि की है और इसके अलावा आक्षेपित आदेश बहुत ही संक्षिप्त है, जिसके द्वारा आवेदक को सम्मन किया गया है, इसलिए वह विचारणीय नहीं है - तदनुसार, अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका स्वीकार की जाती है - और - धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन देरी और योग्यता की कमी के कारण खारिज किया जाता है। (पैरा - 27, 28, 30, 36, 37, 38)

रिट याचिका स्वीकार एवं आवेदन खारिज। (ई-11)

उल्लिखित वादों की सूची:

1. ललन कुमार सिंह एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1383,
2. दिल्ली रेस क्लब लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (2024) 10 एससीसी 690,
3. महबूब एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: 2016 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 4468,
4. भागीरथ कानोरिया एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य: (1984) 4 एससीसी 222,

5. कृष्णा भट्टाचार्य बनाम सारथी चौधरी: (2016) 2 एससीसी 705,
6. बलराम सिंह बनाम सुखवंत कौर एवं अन्य: 1991 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 37,
7. शैलेश त्रिपाठी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (धारा 482 सीआर.पी.सी. के तहत आवेदन संख्या 12792 वर्ष 2015),
8. प्रमथ नाथ तालुकदार बनाम सरोज रंजन सरकार, 1961 एससीसी ऑनलाइन एससी 155,
9. शिवशंकर सिंह बनाम बिहार राज्य, (2012) 1 एससीसी 130,
10. जतिंदर सिंह बनाम रंजीत कौर, (2001) 2 एससीसी 570,
11. सुब्रत चौधरी बनाम असम राज्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3126,
12. द्वारका नाथ मंडल बनाम बेनी माधव बनर्जी: आईएलआर 1901 28 कोलकाता 652,
13. बिन्देश्वरी प्रसाद सिंह बनाम काली सिंह: (1977) 1 एससीसी 57.

(माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री आशुतोष यादव, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री विमलेंद्र त्रिपाठी और राज्य सरकार के विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना गया।
2. उपरोक्त दोनों मामले एक ही वाद कारण से उत्पन्न हुए हैं और दोनों मामलों के तथ्य एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। इसके मद्देनजर, दोनों मामलों का निर्णय इस सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है।
3. याचिकाकर्ताओं द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका दायर की गई है, जिसमें आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2/2018 (योगेश्वर राज नागर और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 5, बुलंदशहर द्वारा पारित दिनांक 28.04.2018 के आदेश को रद्द करने की मांग की गई है, साथ ही भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के तहत शिकायत वाद संख्या 536/2017 (शैलजा बनाम योगेश्वर) में अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 3, बुलंदशहर द्वारा पारित दिनांक 06.10.2017 के आदेश को भी रद्द करने की मांग की गई है। दिनांक 06.10.2017 के आदेश के तहत, याचिकाकर्ताओं को विपरीत पक्ष संख्या 2 द्वारा दायर उपरोक्त शिकायत मामले में धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध के लिए बुलाया गया था, जिसके खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण पेश किया गया था।
4. धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन आवेदक श्रीमती शैलजा नागर द्वारा दायर किया गया है, जो रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 2 हैं, जिसमें मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर द्वारा विविध मामले (अंतिम रिपोर्ट) संख्या 679/2007 (श्रीमती शैलजा नागर और अन्य) में दिनांक 22.11.2012 को पारित आदेश को रद्द करने की मांग की गई है, जो वाद अपराध संख्या 33/2005 से धारा 406, 420, 465, 476 और 506 भारतीय

दंड संहिता, पुलिस स्टेशन-सिकंदराबाद, जिला-बुलंदशहर के तहत उत्पन्न हुआ है, जिसके द्वारा अन्वेषण अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई है।

5. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता संख्या 1 और विपक्षी संख्या 2 के पति सगे भाई हैं। याचिकाकर्ता संख्या 1 के पिता और विपक्षी संख्या 2 के पति ने रेलवे कॉलोनी रोड, सिकंदराबाद, जिला-बुलंदशहर में 'स्प्रिंग डेल एकेडमी' नामक एक सोसाइटी की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य एक प्रतिष्ठित पब्लिक स्कूल की स्थापना करके शिक्षा प्रदान करना था। सोसाइटी की स्थापना के उद्देश्य के अनुसरण में, स्कूल की विधिवत स्थापना की गई और उसे सी.बी.एस.ई. बोर्ड से संबद्ध किया गया। याचिकाकर्ता संख्या 1 के पिता ने याचिकाकर्ता संख्या 1 के पक्ष में 06.03.2003 को एक वसीयत और 10.03.2003 को एक और वसीयत की थी और उसके बाद 17.03.2003 को उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद, उक्त सोसायटी का नाम बदलकर 'राजबाला स्प्रिंग डेल अकादमी' कर दिया गया।

6. याचिकाकर्ता संख्या 1 के पिता मेजर देशराज सिंह की मृत्यु के बाद, उक्त सोसायटी और सोसायटी द्वारा स्थापित स्कूल के प्रबंधन और मामलों के संबंध में विवाद उत्पन्न हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि सोसायटी का प्रबंधन याचिकाकर्ता संख्या 1 द्वारा अपने हाथ में ले लिया गया था। इससे व्यथित होकर, विपक्षी संख्या 2 द्वारा विभिन्न कार्यवाहियाँ शुरू की गईं, जिनमें दिनांक 03.09.2005 को धारा 406, 420, 465, 468, 471 और 506 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत थाना- सिकंदराबाद, जिला- बुलंदशहर में प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमा अपराध संख्या सी-33/2005 का पंजीकरण शामिल है।

7. उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट का अन्वेषण पूर्ण कर लिया गया और उसके बाद दिनांक 27.06.2006 को चार्जशीट संख्या 226/2006 पेश की गई। इसके बाद आगे के अन्वेषण के लिए एक आदेश पारित किया गया। आगे के अन्वेषण के बाद और गवाहों के बयान और दस्तावेजों के सत्यापन के आधार पर आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ पर्याप्त सबूत नहीं मिले। इसके बाद अंतिम रिपोर्ट पेश की गई। अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ, विपरीत पक्ष संख्या 2 ने एक प्रत्यावेदन याचिका पेश की थी। विरोध याचिका पेश करने के बाद और अवसर दिए जाने के बावजूद, विपरीत पक्ष संख्या 2 अदालत के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहा। तदनुसार, दिनांक 22.11.2012 के एक पक्षीय आदेश द्वारा अंतिम रिपोर्ट अदालत द्वारा स्वीकार कर ली गई। इसके बाद, पक्षों के बीच कई अन्य विवाद जारी रहे। हालांकि, विपरीत पक्ष संख्या 2 ने पर्याप्त लंबे समय तक 22.11.2012 के उक्त आदेश को चुनौती देने का विकल्प नहीं चुना।

8. इसके बाद, विपक्षी सं0 2 ने समान तथ्यों पर शिकायत वाद संख्या 536/2017 (शैलजा बनाम योगेश्वर) दायर किया जिसमें दावा किया गया कि 22.11.2012 का आदेश विपक्षी संख्या 2 को बिना बताए अंतिम रिपोर्ट स्वीकार करते हुए पारित किया गया था। उपरोक्त शिकायत में प्रार्थना की गई थी कि पुलिस स्टेशन- सिकंदराबाद, जिला- बुलंदशहर में धारा 406, 420, 465, 468, 471 और 506 भारतीय दंड संहिता के तहत 03.09.2005

को वाद अपराध संख्या सी -33/2005 के तथ्यों और गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद उक्त मामले में प्रस्तुत अन्वेषण रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ताओं को दंडित किया जाना चाहिए।

9. धारा 202 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद, विद्वान अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 06.10.2017 के आदेश के तहत याचिकाकर्ताओं को धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत तलब किया, जिसके खिलाफ याचिकाकर्ताओं द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2/2018 दायर किया गया था, जिसे भी खारिज कर दिया गया था। उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं द्वारा तत्काल आपराधिक विविध रिट याचिका दायर की गई है। उपरोक्त रिट याचिका दायर करने के बाद, विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने भी धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन दायर किया है जिसमें मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बुलंदशहर द्वारा मामला विविध अपराध संख्या 679/2007 में, जोकि मामला अपराध संख्या सी-33/2005 से उत्पन्न हुआ है, धारा 406, 420, 465, 468, 471 और 506 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत लगभग 6 वर्षों के विलम्ब के बाद पारित किया गया था, दिनांक 22.11.2012 को पारित आदेश को रद्द करने की मांग की गई है। विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत दाखिल संपूर्ण आवेदन में, 22.11.2012 के आदेश को रद्द करने के लिए इस न्यायालय में आने में लगभग छह वर्षों के विलम्ब का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

10. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं को वर्ष 2017 में दायर की गई एक शिकायत पर भारतीय दंड संहिता के धारा 406 के अंतर्गत अपराध के लिए समन किया गया है, यह शिकायत उसी वाद हेतु है जिसके लिए विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही दिनांक 22.11.2012 के आदेश द्वारा समाप्त कर दी गई थी, जिसके तहत अंतिम रिपोर्ट को विचारण न्यायालय ने स्वीकार कर लिया था। विपक्षी पक्ष संख्या 2 कार्यवाही के बारे में पूरी तरह से अवगत था क्योंकि सोसायटी के मामलों के संबंध में पक्षों के बीच लगातार कई अन्य मुकदमे लंबित थे और विपक्षी पक्षकार संख्या 2 लगातार उन मामलों पर मुकदमा लड़ रहा था। इसलिए, धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध के लिए, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 06.10.2017 के आदेश के अनुसार संज्ञान नहीं लिया जाना चाहिए था, क्योंकि यह धारा 468 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत वर्जित है और धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध के लिए अधिकतम सजा 3 साल है और उसी के लिए कार्रवाई का कारण वर्ष 2005 में ही उत्पन्न हुआ है और विपक्षी पक्षकार संख्या 2 द्वारा प्रारंभिक कार्रवाई के कारण से 12 साल बाद शिकायत दर्ज की गई है जिसके लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जो 22.11.2012 को विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के खिलाफ समाप्त हो गई है। उस समय से भी विपक्षी पक्षकार संख्या 2 द्वारा दायर शिकायत में 6 साल की देरी हो चुकी है। इसलिए, किसी भी तरह से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 468 के तहत निषेधाज्ञा के मददेनजर मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान नहीं लिया जा सकता। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि इसी वाद हेतु याचिकाकर्ताओं के अभियोजन का अंतिम निष्कर्ष 22.11.2012 को अंतिम रिपोर्ट स्वीकार करके निकाला जा चुका है। इस प्रकार, एक ही कारण हेतु 6 वर्ष बाद शिकायत दर्ज करना दोहरा संकट है, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20 के अंतर्गत आता है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 06.10.2017 का आदेश, जिसमें याचिकाकर्ताओं को बुलाया गया है, एक गुप्त आदेश है और कानून में कायम नहीं रखा जा सकता क्योंकि इसे बिना कोई कारण बताए या रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर विचार किए बिना पारित किया गया है। इसके मददेनजर, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 06.10.2017 के आदेश के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28.04.2018 के आदेश को रद्द करने की मांग की है।

12. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि पक्षों के बीच पूरा विवाद सोसायटी और स्कूल के मामलों के प्रबंधन के संबंध में है और याचिकाकर्ता केवल याचिकाकर्ता के पिता द्वारा उनके पक्ष में निष्पादित वसीयत के आधार पर अधिकार का दावा करते हैं जबकि विपरीत पक्ष संख्या 2 सोसायटी के मामलों का प्रबंधन करने के लिए बाद की वसीयत के आधार पर अधिकार का दावा करता है। इसलिए, पक्षों के बीच विवाद पूरी तरह से सिविल प्रकृति का है और वर्तमान कार्यवाही सिविल विवाद को आपराधिक रंग देने और दुर्भावनापूर्ण झरादों से दबाव बनाने के झरादे से शुरू की गई थी।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध का गठन करने के लिए, शिकायतकर्ता की ओर से कुछ सौंपना आवश्यक है और वर्तमान मामले में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा कोई सौंपा गया था। यहां तक कि धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध भी याचिकाकर्ताओं के खिलाफ सौंपने के अभाव में नहीं बनता है। विवाद केवल सोसायटी के प्रबंधन के अधिकार के उत्तराधिकार के संबंध में है। इसलिए, निचले न्यायालय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझने में विफल रहे हैं।

14. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों के समर्थन में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **ललन कुमार सिंह एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एससी 1383, दिल्ली रस क्लब लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (2024) 10 एससीसी 690**, तथा इसी न्यायालय की लखनऊ पीठ द्वारा **महबूब एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: 2016 एससीसी ऑनलाइन सभी 4468** में दिए गए निर्णयों का हवाला दिया है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि किसी आपराधिक मामले में व्यक्तियों को समन भेजना एक बहुत ही गंभीर मामला है और इसे यंत्रवत् नहीं किया जाना चाहिए। अभियुक्तों को समन भेजने के आदेश में विवेक का प्रयोग अवश्य होना चाहिए।

16. इसके विपरीत, पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **भागीरथ कनोड़िया एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य: (1984) 4 एससीसी 222, कृष्णा भट्टाचार्य बनाम सारथी चौधरी: (2016) 2 एससीसी 705, बलराम सिंह बनाम सुखवंत कौर एवं अन्य: 1991 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 37** में पंजाब एवं हरियाणा उच्च

न्यायालय के फैसले, शैलेश त्रिपाठी एवं 5 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता संख्या 12792/2015 के तहत आवेदन) में इस न्यायालय के फैसलों पर भरोसा करते हुए प्रस्तुत किया कि धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध एक सतत अपराध है।

17. पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि 22.11.2012 का आदेश मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-बुलंदशहर द्वारा, याचिकाकर्ताओं को कोई अवसर दिए बिना पारित किया गया था और उन्हें कार्यवाही के निष्कर्ष के बारे में जानकारी नहीं थी जिसके द्वारा विपरीत पक्षकार संख्या 2 द्वारा दायर विरोध याचिका को खारिज कर दिया गया था और अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई थी। विपरीत पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध याचिकाकर्ताओं द्वारा एक सतत अपराध है, क्योंकि वे लगातार सोसायटी और स्कूल के प्रबंधन के मामलों को चला रहे थे, बावजूद इसके कि सोसायटी के मामलों का प्रबंधन करने का उनका अधिकार दोनों पक्षों द्वारा शुरू की गई विभिन्न कार्यवाहियों पर सर्वोच्च न्यायालय तक खारिज कर दिया गया था। चूंकि, यह निरंतर प्रकृति का अपराध है, इसलिए विपरीत पक्षकार संख्या 2 को शिकायत मामला दर्ज करने का पूरा अधिकार था और इसलिए, धारा 468 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान तत्काल मामले में लागू नहीं होंगे।

18. विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि पुलिस मामले में अंतिम रिपोर्ट स्वीकार किए जाने के बाद भी शिकायत का मामला बनाए रखने योग्य है। उन्होंने प्रमथ नाथ तालुकदार बनाम सरोज रंजन सरकार, 1961 एससीसी ऑनलाइन एससी 155, शिवशंकर सिंह बनाम बिहार राज्य, (2012) 1 एससीसी 130, जतिंदर सिंह बनाम रंजीत कौर, (2001) 2 एससीसी 570 और सुब्रत चौधरी बनाम असम राज्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3126 के फैसले पर भरोसा किया है।

19. दोनों पक्षों द्वारा किए गए प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को सुनने के बाद इस न्यायालय ने मामले के रिकॉर्ड को ध्यान से देखा है।

20. विचार के लिए पहला मुद्दा यह है कि क्या उसी वाद के कारण पर पुलिस मामले में अंतिम रिपोर्ट स्वीकार किए जाने के बाद भी शिकायत दर्ज की जायेगी। किसी व्यक्ति द्वारा दायर प्रत्यावेदन याचिका पर प्राथमिकी में नामित अभियुक्तों को दोषमुक्त करने वाली अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करना, जिसमें अन्वेषण अधिकारी द्वारा अपनी अंतिम रिपोर्ट में दर्ज निष्कर्षों पर विवाद किया गया हो, जबकि वह उस शिकायतकर्ता के विरुद्ध निर्णय हो चुका हो, जिसने प्रत्यावेदन याचिका दायर की थी और अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई हो। सामान्यतः, समान वाद-कारण और समान सामग्री पर दूसरी शिकायत पर विचार नहीं किया जाना चाहिए, हालाँकि, दूसरी शिकायत दर्ज करने पर कोई विशेष रोक नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रमथ नाथ तालुकदार (उपरोक्त) मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

50. दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, "मजिस्ट्रेट को शिकायत" का विषय दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 16 में वर्णित है। इस मामले के लिए प्रासंगिक प्रावधान धारा 200, 202 और 203 हैं। धारा 200 शिकायतकर्ताओं की परीक्षा से संबंधित है और धारा 202, 203 और 204 शिकायत को खारिज करने या प्रक्रिया जारी करने के संबंध में मजिस्ट्रेट की शक्तियों से संबंधित हैं। धारा 202 और 203 का दायरा और सीमा वाडीलाल पांचाल बनाम दत्तात्रेय दुलाजी घाडीगांवकर मामले में निर्धारित की गई थी। धारा 202 के अंतर्गत जाँच का दायरा शिकायत की सच्चाई का पता लगाने तक सीमित है ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि प्रक्रिया जारी की जानी चाहिए या नहीं और धारा 203 यह निर्धारित करती है कि इस उद्देश्य के लिए किन सामग्रियों पर विचार किया जाना है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को जो निर्णय देना होता है, वह शिकायतकर्ता और उसके गवाहों के बयानों और जाँच या पूछताछ, यदि कोई हो, के परिणाम पर आधारित होना चाहिए। उसे प्रस्तुत सामग्री पर विचार करना होगा और यह निर्णय लेना होगा कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। इसलिए, यदि उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अंतर्गत की गई जाँच के दायरे के बारे में स्वयं को गलत दिशा नहीं दी है, और अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री का न्यायिक रूप से अध्ययन किया है और फिर अपना आदेश जारी किया है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसने त्रुटिपूर्ण कार्य किया है। हालाँकि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के अंतर्गत खारिज करने का आदेश उन्हीं तथ्यों पर दूसरी शिकायत स्वीकार करने पर कोई रोक नहीं लगाता है, लेकिन यह केवल असाधारण परिस्थितियों में ही स्वीकार किया जाएगा, उदाहरण के लिए, जहाँ पिछला आदेश अपूर्ण अभिलेख पर या शिकायत की प्रकृति की गलतफहमी के आधार पर पारित किया गया था या वह स्पष्ट रूप से बेतुका, अन्यायपूर्ण या मूर्खतापूर्ण था या जहाँ नए तथ्य प्रस्तुत किए गए थे, जिन्हें पिछली कार्यवाही में उचित परिश्रम के साथ अभिलेख पर नहीं लाया जा सकता था। यह न्याय के हित में नहीं कहा जा सकता है कि शिकायतकर्ता के खिलाफ उसके मामले पर पूर्ण विचार करने के बाद निर्णय दिए जाने के बाद, उसे या किसी अन्य व्यक्ति को उसकी शिकायत की जांच करने का एक और अवसर दिया जाना चाहिए। अल्लाह डिट्टो बनाम करम बख्श राम नारायण चौबे बनाम पानाचंद जैन; हंसाबाई बनाम आनंद दौरेसामी बनाम सुब्रमण्यम। एक नई शिकायत लाने के लिए नए तथ्यों को पेश करने के संबंध में अपील के तहत फैसले में विशेष पीठ ने ऊपर उद्धृत मामलों में बॉम्बे उच्च न्यायालय या पटना उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया और क्वीन एम्प्रेस बनाम डोलेगोबिंदा दास में मैकलीन, सीजे की राय को अपनाया, जो द्वारका नाथ मंडल बनाम बेनीमादास बनर्जी में एक पूर्ण पीठ द्वारा पुष्टि की गई थी। इसलिए यह माना गया कि एक नई शिकायत पर विचार किया जा सकता है जहां स्पष्ट त्रुटि है, या पिछले आदेश में न्याय की स्पष्ट विफलता है या जब नया सबूत सामने आ रहे हैं।

21. **द्वारका नाथ मंडल बनाम बेनी माधस बनर्जी: आइ.एल.आर.1901 28 कोलकाता 652** में कोलकाता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले में, यह माना गया था कि एक नई शिकायत पर विचार किया जा सकता है जहां पिछले आदेश में स्पष्ट त्रुटि या न्याय की स्पष्ट विफलता है या उपलब्ध नए साक्ष्य आने वाले हैं।

22. **प्रमथ नाथ तालुकदार (उपरोक्त)** में फैसले पर भरोसा करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने **बिंदेश्वरी प्रसाद सिंह बनाम काली सिंह: (1977) 1 एससीसी 57** में माना है कि दूसरी शिकायत केवल नए तथ्यों या यहां तक कि पिछले तथ्यों पर ही आधारित हो सकती है, केवल तभी जब कोई विशेष मामला बनता है।

23. **महेश चंद (उपरोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

“19. स्थापित कानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हम इस राय के हैं कि उच्च न्यायालय यह मानने में सही नहीं था कि दूसरी शिकायत पूरी तरह से वर्जित थी यह स्थापित कानून है कि समान तथ्यों पर दूसरी शिकायत दर्ज करने में कोई वैधानिक रोक नहीं है। ऐसे मामले में जहां पिछली शिकायत को बिना कोई कारण बताए खारिज कर दिया जाता है, मजिस्ट्रेट धारा 204 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपराध का संज्ञान ले सकता है और कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार होने पर प्रक्रिया जारी कर सकता है। जैसा कि प्रमथ नाथ तालुकदार मामले में कहा गया है [एआईआर 1962 एससी 876: 1962 सप्प (2) एससीआर 297: (1962) 1 क्रि एलजे 770] दूसरी शिकायत को पिछले मामले में शिकायतकर्ता के खिलाफ उसके मामले पर पूर्ण विचार करने के बाद फैसला दिए जाने के बाद खारिज किया जा सकता है। इसके अलावा, समान तथ्यों पर दूसरी शिकायत केवल असाधारण परिस्थितियों में ही स्वीकार की जा सकती है, अर्थात्, जहां पिछला आदेश अधूरे रिकॉर्ड पर या शिकायत की प्रकृति की गलतफहमी पर पारित किया गया था या यह स्पष्ट रूप से बेतुका, अन्यायपूर्ण था या ऐसे नए तथ्य प्रस्तुत किए गए जो उचित परिश्रम के बावजूद, पूर्व की कार्यवाही में रिकॉर्ड पर नहीं लाए जा सकते थे। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, इस मामले को माननीय मजिस्ट्रेट के पास वापस भेज दिया जाना चाहिए था ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि कथित अपराध के संज्ञान के लिए कोई मामला बनाया गया था या नहीं।

24. **शिवशंकर सिंह (उपरोक्त)** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

“18. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि कानून समान तथ्यों पर भी दूसरी शिकायत दर्ज करने या विचार करने पर रोक नहीं लगाता है, बशर्ते कि पहले की शिकायत अपर्याप्त सामग्री के आधार पर तय की गई हो या शिकायत की प्रकृति को समझे बिना आदेश पारित किया गया हो या पूरे तथ्य अदालत के सामने नहीं रखे हो या जहां शिकायतकर्ता को पहली शिकायत के निपटारे के बाद कुछ तथ्यों का पता चला हो, जो उसके पक्ष में संतुलन झुका सकते थे। हालांकि, दूसरी शिकायत बनाए रखने योग्य नहीं होगी, जिसमें पहले की शिकायत का निपटारा शिकायतकर्ता के मामले के गुण-दोष के आधार पर किया गया हो।

19. विरोध याचिका को हमेशा एक शिकायत के रूप में माना जा सकता है और अध्याय 15 दंड प्रक्रिया संहिता के संदर्भ में आगे बढ़ाया जा सकता है। इसलिए, यदि असाधारण परिस्थितियों में समान तथ्यों पर दूसरी शिकायत पर विचार करने पर कोई रोक नहीं है, तो दूसरी विरोध याचिका भी इसी तरह केवल असाधारण परिस्थितियों में ही विचार की जा सकती है। यदि पहली विरोध याचिका मामले का फैसला करने के लिए आवश्यक सभी तथ्यों/विवरणों को प्रस्तुत किए बिना दायर की गई है, और अदालत द्वारा इसपर विचार करने

से पहले, पूर्ण विवरण देते हुए एक नई विरोध याचिका दायर की जाती है, तो हम यह समझने में असफल हैं कि इसे क्यों नहीं बनाए रखा जाना चाहिए।"

25. जतिंदर सिंह (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:

"9. संहिता या किसी अन्य कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो किसी शिकायतकर्ता को उन्हीं आरोपों पर दूसरी शिकायत करने से रोकता है यदि पहली शिकायत के परिणामस्वरूप दोषसिद्धि या बरी या यहां तक कि छुट्टी नहीं हुई है। संहिता की धारा 300, जो दूसरे मुकदमे पर रोक लगाती है, ने यह स्पष्ट करने का ध्यान रखा है कि "शिकायत को खारिज करना, या अभियुक्त को उन्मुक्त करना, इस धारा के प्रयोजनों के लिए बरी नहीं है"। हालांकि, जब एक मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 202 के तहत जांच करता है और गुण-दोष के आधार पर शिकायत को खारिज करता है, तो समान तथ्यों पर दूसरी शिकायत तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि बहुत ही असाधारण परिस्थितियां न हों। फिर भी, दूसरी शिकायत इस बात पर निर्भर करती है कि पहली बार में शिकायत कैसे खारिज हुई।

26. सुब्रत चौधरी (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"10. जैसा कि शुरू में उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया और उसके द्वारा तय किया गया विधि का प्रश्न यह था कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत दायर अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार करने के बाद, लिखित आपत्ति/विरोध याचिका पर विचार करने और शिकायतकर्ता को सुनने के बाद, तथ्यों के एक ही सेट पर एक नई शिकायत बनाए रखने योग्य है या नहीं। इस स्थिति के संबंध में कोई दो राय नहीं हो सकती कि समान तथ्यों के आधार पर दूसरी शिकायत दर्ज करने पर कोई व्यापक रोक नहीं हो सकती। हम इस विवादास्पद प्रश्न और उपरोक्त स्थिति पर थोड़ी देर बाद चर्चा करेंगे।

23. अनेक निर्णयों को देखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत न्यायालय द्वारा जांच के लिए भेजी गई शिकायत की प्राप्ति के बाद दर्ज प्राथमिकी के आधार पर जांच के बाद दायर अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली जाती है और उस पर विरोध याचिका खारिज कर दी जाती है, तब भी मजिस्ट्रेट समान या मिलते-जुलते आरोपों या तथ्यों पर दूसरी शिकायत या दूसरी विरोध याचिका पर संज्ञान ले सकता है। लेकिन यह स्थिति कुछ शर्तों के अधीन है।

27. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि अंतिम रिपोर्ट स्वीकार होने और विरोध याचिका खारिज होने के बाद भी, मजिस्ट्रेट के लिए दूसरी शिकायत या दूसरी विरोध याचिका पर संज्ञान लेना स्वतंत्र है, हालांकि, यह स्थिति इस शर्त के अधीन है कि बाद में नए तथ्यों का पता चले या कोई स्पष्ट त्रुटि हो या न्याय की स्पष्ट चूक हो। इस प्रकार, हालांकि दूसरी शिकायत पर संज्ञान लेने पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है, लेकिन ऐसा केवल असाधारण परिस्थितियों में ही किया जा सकता है, न कि नियमित रूप से। दूसरी शिकायत पर विचार करने और उस पर संज्ञान लेने के लिए अत्यंत असाधारण परिस्थितियाँ होनी चाहिए।

28. वर्तमान मामले में, प्रथम सूचना रिपोर्ट, अंतिम रिपोर्ट, विरोध याचिका और दूसरी शिकायत के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि ऐसी कोई विशेष या असाधारण परिस्थितियाँ नहीं हैं, जो शिकायतकर्ता को शिकायत दर्ज करने के लिए बाद में कार्रवाई का कारण देती हैं, बल्कि विरोध याचिका वर्ष 2012 में खारिज कर दी गई थी और अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई थी और बिना किसी स्पष्टीकरण के पांच साल से अधिक की देरी के बाद वर्ष 2017 में तत्काल शिकायत दर्ज की गई है। उसी कार्रवाई के लिए पांच साल बाद शिकायत दर्ज करते समय एक भी नई परिस्थिति का संकेत नहीं दिया गया है। इस प्रकार, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह न्यायालय इस विचार पर है कि समान तथ्यों के आधार पर दूसरी शिकायत पर संज्ञान लेने के लिए कोई विशेष परिस्थितियाँ होने के बिना वर्तमान मामले में दूसरी शिकायत पर विचार नहीं किया जाना चाहिए था।

29. अगला प्रश्न जो वर्तमान मामले में तर्क दिया गया है, वह यह है कि चूंकि धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध एक सतत अपराध है, इसलिए, शिकायतकर्ता की ओर से दूसरी शिकायत दर्ज करने में देरी शिकायतकर्ता के लिए घातक नहीं होगी। इस प्रकार, उक्त शिकायत विचारणीय है। भारतीय दंड संहिता की धारा 406 इस प्रकार है:

"धारा 406 आपराधिक न्यासभंग के लिए दंड - जो कोई आपराधिक न्यासभंग करता है, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक हो सकती है, या जुर्माने से, या दोनों से दंडित किया जाएगा।"

30. भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अंतर्गत अपराध के लिए मूलभूत आवश्यकता यह है कि शिकायतकर्ता की ओर से आरोपी व्यक्तियों को कार्यभार सौंपा जाना चाहिए। वर्तमान मामले में, सोसायटी और शैक्षणिक संस्थान के प्रबंधन के संबंध में विवाद है। दोनों पक्ष उत्तराधिकार के आधार पर संस्थानों के प्रबंधन के अपने अधिकार का दावा कर रहे हैं। इस प्रकार, मामले के तथ्यों के आधार पर किसी भी पक्ष द्वारा दूसरे के पक्ष में कार्यभार नहीं सौंपा जा सकता है। संस्था के प्रबंधन के संबंध में दोनों पक्षों द्वारा लगातार सर्वोच्च न्यायालय तक लड़ा गया एक निरंतर दीवानी विवाद था। इस प्रकार, यह संस्था और सोसायटी के प्रबंधन के संबंध में विशुद्ध रूप से एक दीवानी प्रकृति का विवाद था। वर्तमान शिकायत मामले में प्राथमिकी दर्ज करके शिकायतकर्ता द्वारा दीवानी विवाद को आपराधिक रंग दिया जा रहा है, जिसका अप्रत्यक्ष उद्देश्य यहां याचिकाकर्ताओं पर अनुचित दबाव बनाना है। यहां तक कि, यदि धारा 406 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अपराध को एक निरंतर अपराध माना जाता है, तो भी वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर यह कार्यभार नहीं मानेगा। इसलिए, इस न्यायालय की सुविचारित राय में उस मुद्दे पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

31. विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा शुरू किए गए अभियोजन के परिणामस्वरूप अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, जिसे सक्षम न्यायालय ने आदेश 22.11.2012 के तहत कानून के अनुसार स्वीकार कर लिया था। विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने 6 साल से अधिक समय के बाद दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन दायर करके उक्त आदेश को चुनौती दी है, यहां तक कि इतने लंबे विलंब के बाद तत्काल आवेदन दायर करने में हुई देरी के संबंध में कोई तथ्य भी प्रस्तुत नहीं किया है।

32. जहां तक याचिकाकर्ताओं द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई वर्तमान याचिका का संबंध है, इस मामले में अपराध के होने के 12 साल से अधिक समय बाद विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा शिकायत दायर की गई है। इस मामले में याचिकाकर्ताओं के पक्ष में विपक्षी पक्ष संख्या 2 की ओर से सौंपे जाने वाला कोई दस्तावेज नहीं है। इसलिए, प्रथम दृष्टया धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत यहां याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मामला नहीं बनाया गया कहा जा सकता है। इसके अलावा, विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करके शुरू किया गया अभियोजन कार्यवाही पहले ही 22.11.2012 के आदेश द्वारा समाप्त हो चुका है और उसके बाद, 6 साल से अधिक के अंतराल के बाद तत्काल शिकायत दर्ज की गई है, जो फिर से धारा 468 दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा प्रभावित होती है, क्योंकि धारा 406 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध के लिए अधिकतम सजा तीन साल है। छह साल के अंतराल के बाद विपक्षी पक्ष संख्या 2 को मामले के तथ्यों की पूरी जानकारी होने के बाद शिकायत दर्ज की गई है।

33. विचारणीय अगला प्रश्न यह है कि क्या कोई न्यायालय मामले के तथ्यों पर ध्यान दिए बिना यंत्रवत् समन आदेश पारित कर सकती है। ललन कुमार सिंह (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियां की गई हैं, जो इस प्रकार हैं:

“38. प्रक्रिया जारी करने का आदेश एक खाली औपचारिकता नहीं है। मजिस्ट्रेट को अपने दिमाग का उपयोग करने की आवश्यकता है कि मामले में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है या नहीं। इस तरह की राय के गठन को आदेश में ही बताया जाना आवश्यक है। यदि इस निष्कर्ष पर पहुँचते समय कि अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है, आदेश में कोई कारण नहीं दिया जाता है तो आदेश रद्द किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदेश में विस्तृत कारणों को शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में एक संदर्भ सुनील भारती मित्तल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो के मामले में इस न्यायालय के फैसले का किया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

“51. दूसरी ओर, संहिता की धारा 204 प्रक्रिया के मुद्दे से संबंधित है, यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। यह धारा एक आपराधिक कार्यवाही शुरू करने से संबंधित है। यदि किसी मामले का संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट (यह वह मजिस्ट्रेट हो सकता है जिसने शिकायत प्राप्त की है या जिसे धारा 192 के तहत इसे स्थानांतरित किया गया है), उसके सामने मौजूद सामग्रियों (यानी शिकायत, शिकायतकर्ता और उसके गवाहों की परीक्षा, यदि मौजूद हैं, या जांच की रिपोर्ट, यदि कोई हो) पर विचार करने के बाद, सोचता है कि अपराध के संबंध में कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामला है, तो वह अभियुक्त के खिलाफ प्रक्रिया जारी करेगा।

52. प्रक्रिया को मंजूरी देने या अस्वीकार करने के संबंध में व्यापक विवेक दिया गया है और इसे न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को केवल इसलिए अदालत में नहीं घसीटा जाना

चाहिए क्योंकि शिकायत दर्ज की गई है। यदि प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो मजिस्ट्रेट को प्रक्रिया जारी करनी चाहिए और इसे केवल इसलिए अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वह सोचता है कि इससे दोषसिद्धि होने की संभावना नहीं है।

53. हालांकि, धारा 204 में आने वाले शब्द "कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार" अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। ये शब्द इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि पूरी तरह से विचार करने के बाद ही यह राय बनाई जानी चाहिए कि उक्त अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है और ऐसी राय बनाने की जानकारी आदेश में ही उल्लिखित होनी चाहिए। यदि इस निष्कर्ष पर पहुँचते समय कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है, कोई कारण नहीं दिया जाता है, तो आदेश रद्द किया जा सकता है, हालाँकि आदेश में विस्तृत कारण शामिल करना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त, यदि दिया गया कारण स्पष्टतः गलत साबित होता है, तो आदेश कानूनन अमान्य होगा।

34. दिल्ली रेस क्लब लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ की हैं, जो इस प्रकार हैं:

23. इस न्यायालय ने बार-बार याद दिलाया है कि किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त को समन करना एक गंभीर मामला है। आपराधिक कानून को स्वाभाविक रूप से लागू नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि शिकायतकर्ता को आपराधिक कानून को लागू करने के लिए शिकायत में अपने आरोपों के समर्थन में केवल दो गवाह ही लाने होंगे। अभियुक्त को समन करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश में यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि उन्होंने मामले के तथ्यों और उस पर लागू कानून का गहन अध्ययन किया है। उन्हें शिकायत में लगाए गए आरोपों की प्रकृति और उनके समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों की जाँच करनी होगी। ऐसा नहीं है कि अभियुक्त को समन करने से पहले प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करते समय मजिस्ट्रेट मूक दर्शक बने रहें। मजिस्ट्रेट को अभिलेख पर लाए गए साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जाँच करनी होगी और वह स्वयं भी शिकायतकर्ता और उसके गवाहों से आरोपों की सत्यता या अन्यथा का पता लगाने के लिए उत्तर प्राप्त करने हेतु प्रश्न पूछ सकता है और फिर जाँच कर सकता है कि क्या प्रथम दृष्टया सभी या किसी भी अभियुक्त द्वारा कोई अपराध किया गया है। [देखें: पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट [पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 5 एससीसी 749: 1998 एससीसी (क्रि) 1400]]

31. महमूद उल रहमान बनाम खजीर मोहम्मद टुंडा [महमूद उल रहमान बनाम खजीर मोहम्मद टुंडा, (2015) 12 एससीसी 420: (2016) 1 एससीसी (क्रि) 124] में, इस न्यायालय ने इस प्रकार माना: (एससीसी पी. 430, पैरा 22)

22.... कार्यवाही के लिए आधार पर संतुष्टि का मतलब होगा कि शिकायत में आरोपित तथ्य एक अपराध का गठन करेंगे, और जब दर्ज किए गए बयानों के साथ विचार किया जाएगा, तो प्रथम दृष्टया, अभियुक्त को अदालत के समक्ष जवाबदेह बना देगा। ...दूसरे शब्दों में, मजिस्ट्रेट को अपने समक्ष दायर प्रत्येक शिकायत का

संज्ञान लेने और प्रक्रिया जारी करने में डाकघर की तरह काम नहीं करना है। मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में पर्याप्त संकेत होना चाहिए कि वह संतुष्ट है कि शिकायत में आरोप एक अपराध है और जब दर्ज किए गए बयानों और धारा 202 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पूछताछ या जांच की रिपोर्ट के परिणाम के साथ विचार किया जाता है, तो आरोपी आपराधिक अदालत के समक्ष जवाबदेह है, उपस्थिति के लिए प्रक्रिया जारी करके धारा 204 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आरोपी के खिलाफ कार्यवाही करने का आधार है। संतुष्टि होने पर मन का प्रकटीकरण करके दिमाग का उपयोग सबसे अच्छा प्रदर्शित होता है। ...एक आरोपी के रूप में आपराधिक अदालत में पेश होने के लिए बुलाया जाना एक गंभीर मामला है जो समाज में किसी की गरिमा, आत्म-सम्मान और छवि को प्रभावित करता है। इसलिए, आपराधिक अदालत की प्रक्रिया को उत्पीड़न का हथियार नहीं बनाया जाएगा।

32. उपरोक्त निर्णय से स्पष्ट विधि का सिद्धांत यह है कि सम्मन जारी करना एक गंभीर मामला है और इसलिए इसे यंत्रवत् नहीं किया जाना चाहिए तथा यह जांच के दौरान एकत्रित सामग्री के आधार पर संबंधित व्यक्ति के खिलाफ मामले में आगे कार्यवाही करने के लिए संतुष्टि के आधार पर ही किया जाना चाहिए।

33. उपर्युक्त परिस्थितियों में, विचारणीय अगला प्रश्न यह है कि क्या मजिस्ट्रेट द्वारा जारी समन में धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप किया जा सकता है। भूषण कुमार बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) [भूषण कुमार बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र), (2012) 5 एससीसी 424 : (2012) 2 एससीसी (क्रि) 872] और पेप्सी फूड्स [पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, (1998) 5 एससीसी 749 : 1998 एससीसी (क्रि) 1400] के निर्णयों में, इस न्यायालय ने माना कि अभियुक्त को समन करने के आदेश को रद्द करने के लिए धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दायर याचिका पोषणीय है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि एक बार यह मान लिया गया कि समन जारी करने की शक्ति के प्रयोग के लिए अनिवार्य शर्त मजिस्ट्रेट द्वारा जारी समन की वैधता पर विचार करने की शक्ति का प्रयोग करते समय "आगे बढ़ने के आधार पर" व्यक्तिपरक संतुष्टि है, तो निश्चित रूप से यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह इस प्रश्न पर विचार करे कि क्या विद्वान मजिस्ट्रेट ने यह मनन किया कि आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है, और उसी संदर्भ में संबंधित अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने हेतु समन जारी किया। इस संदर्भ में, हम यह कहना उचित समझते हैं कि किसी को यह समझना चाहिए कि धारा 190सीआरपीसी के तहत सशक्त "संज्ञान लेना" और धारा 204सीआरपीसी के तहत सशक्त "जारी करने की प्रक्रिया" अलग और विशिष्ट हैं। [सुनील भारती मित्तल बनाम सीबीआई में निर्णय देखें [सुनील भारती मित्तल बनाम सीबीआई, (2015) 4 एससीसी 609: (2015) 2 एससीसी (क्रि) 687]]।

35. महबूब (उपरोक्त) के फैसले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया है:

"11) वर्तमान मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट ने खुद को संतुष्ट करने के लिए कोई जांच नहीं की है कि शिकायत में आरोप एक अपराध है और जब दर्ज किए गए बयानों और इस तरह की जांच के परिणाम के साथ विचार किया जाता है। धारा 204 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कार्यवाही के लिए आधार है।

यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने प्रथम दृष्टया निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपना दिमाग लगाया है। यह याद रखना चाहिए कि आपराधिक अदालत में पेश होने के लिए अभियुक्त को बुलाना एक गंभीर मामला है जो समाज में गरिमा, आत्म-सम्मान और छवि को प्रभावित करता है। आपराधिक अदालत की प्रक्रिया को उत्पीड़न का हथियार नहीं बनाया जा सकता है।

(12) विद्वान मजिस्ट्रेट ने केवल यह कहकर एक अत्यंत गूढ़ आदेश पारित किया है कि शिकायतकर्ता और गवाहों के बयान, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और 202 के तहत दर्ज किए गए हैं, का अवलोकन किया जाता है और अभियुक्तों को समन किया जाता है। ऐसा आदेश अपने आप में अवैध है और कानून की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

36. इस प्रकार, उपरोक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति को समन करना एक अत्यंत गंभीर मामला है और इसे सामान्य तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। समन करने से पहले, मजिस्ट्रेट को स्वयं यह सुनिश्चित करना होगा कि व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार हैं और ऐसे गूढ़ आदेश द्वारा समन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जो विद्वान मजिस्ट्रेट के विचार और मनन को प्रतिबिंबित नहीं करता।

37. इस प्रकार, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ताओं को तलब करने के लिए पारित दिनांक 06.10.2017 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यह एक गूढ़ आदेश है और स्पष्ट रूप से उनकी संतुष्टि दर्ज किए बिना और कोई कारण बताए या यह संतुष्टि किए बिना पारित किया गया है कि धारा 406 के तहत अपराध बनता है या नहीं। चूंकि, विपरीत पक्ष संख्या 2 द्वारा दायर पिछली प्रथम सूचना रिपोर्ट में एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, जिसका विपरीत पक्ष संख्या 2 ने विरोध किया था, जिसे संबंधित न्यायालय ने खारिज कर दिया था और पांच साल से अधिक की देरी के बाद, बिना किसी विशेष परिस्थिति के उन्हीं तथ्यों के आधार पर तत्काल शिकायत दर्ज की गई है, जिसके लिए दूसरी शिकायत पर विचार किया जाना आवश्यक हो। इसलिए, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, विचारण न्यायालय ने दूसरी शिकायत पर विचार करने में गलती की है और इसके अलावा आक्षेपित आदेश एक बहुत ही गूढ़ आदेश है, जिसके तहत आवेदकों को समन किया गया है। इसलिए, उक्त आदेश विधि की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है और इसे तदनुसार **निरस्त** किया जाता है। परिणामस्वरूप, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश भी **निरस्त** किया जाता है।

38. तदनुसार, अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका **स्वीकार** की जाती है।

39. तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, चूंकि धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन छह वर्ष से अधिक की देरी से बिना किसी स्पष्टीकरण के दायर किया गया है और जैसा कि इस न्यायालय ने पहले ही सुविचारित राय में कहा है, शिकायतकर्ता पक्षकारों के बीच के सिविल विवाद को आपराधिक रंग देने का प्रयास कर रहा है। इसके मददेनजर, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन **खारिज** किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 84

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

अनुच्छेद 227 के अधीन मामले सं. 8117 / 2024

(दीवानी)

राज कुमार चतुर्वेदी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उ.प्र. आवास एवं विकास परिषद व अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री राहुल सहाय

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री कृष्ण मोहन गर्ग, श्री निपुण सिंह, श्री सौरभ पाण्डेय, सुश्री सुरभि पाण्डेय, श्री सुरेश चन्द्र पाण्डेय

दीवानी विधि-भारत का संविधान, 1950 अनुच्छेद 227 -सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-धारा 107, आदेश 6 नियम 17--- एक बार जब संशोधन प्रार्थना-पत्र अस्वीकार कर दिया गया है और उसे चुनौती नहीं दी गई थी, याचिकाकर्ता को कुछ समय पश्चात् नया प्रार्थना-पत्र दाखिल करके उन्हीं तथ्यों को पुनः लाने की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती। वस्तुतः याचिकाकर्ता का ऐसा कृत्य प्राइमर्याय के सिद्धांत से वर्जित है---न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा संशोधन प्रार्थना-पत्र को सही रूप से अस्वीकार कर दिया है---अपीलीय न्यायालय के पास अतिरिक्त साक्ष्य लेने या ऐसा साक्ष्य लिए जाने की अपेक्षा करने की पर्याप्त शक्ति है, अपीलीय न्यायालय के पास वही शक्तियाँ होंगी और वह लगभग उन्हीं कर्तव्यों का पालन करेगा जो इस संहिता द्वारा मूल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालयों पर अधिरोपित और उन्हें प्रदत्त किए गए हैं---आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 11, 15 व 16)

याचिका खारिज की जाती है। (ई-15)

उल्लिखित वादों की सूची:

1. अशोक कुमार श्रीवास्तव बनाम नेशनल इंश्योरेंस कं. लिमिटेड व अन्य, एआईआर 1998 सुप्रीम कोर्ट 2046
2. बी. वी. नागेश व एक अन्य बनाम एच. वी. श्रीनिवास मूर्ति, (2010) 13 एससीसी 530

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री राहुल सहाय, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री के. एम. गर्ग, प्रतिवादी सं. 3/1, 3/3 व 3/5 के विद्वान अधिवक्ता, श्री एस. सी. पाण्डेय, प्रतिवादी सं. 3/2 के विद्वान अधिवक्ता और श्री सौरभ पाण्डेय, प्रतिवादी सं. 3/4/1 से 3/4/7 के विद्वान अधिवक्ता, को सुना।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहतेँ माँगते हुए दाखिल की गई है:-

"I. आक्षेपित निर्णय/आदेश दिनांक 17.05.2024 को, जो अपर जिला न्यायाधीश न्यायालय सं. 10, मथुरा द्वारा दीवानी अपील सं. 40 / 2010 (राज कुमार चतुर्वेदी व अन्य बनाम उ.प्र. आवास एवं विकास परिषद व अन्य) में पारित किया गया, अपास्त करने के लिए एक उपयुक्त आदेश या निदेश जारी करें।

II. एक उपयुक्त आदेश या निदेश जारी करें जो संशोधन प्रार्थना-पत्र 114 क को स्वीकृत करे या विकल्पतः निर्णय/आदेश दिनांक 20.07.2018, 02.02.2019 और 27.01.2019 को, जो अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय सं. 8, मथुरा और अपर जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, न्यायालय सं. 4, मथुरा द्वारा क्रमशः पारित किए गए, अपास्त करे।"

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पूर्व में प्रतिवादी सं. 1 द्वारा भूमि अधिग्रहीत की गई थी और घोषणा एवं स्थायी व्यादेश के लिए वाद सं. 16 / 1988 दाखिल किया गया है। मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी सं.1 द्वारा भूमि अधिग्रहीत की गई थी किन्तु बाद में उक्त कार्यवाही को अधिसूचना दिनांक 07.07.2005 के माध्यम से समाप्त कर दिया गया है। बाद में, उक्त अधिसूचना को प्रतिवादी सं.1 द्वारा एक अन्य अधिसूचना दिनांक 25.04.2008 द्वारा वापस ले लिया गया। उससे व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका अर्थात् सी.एम.डब्ल्यू.पी. सं.529 / 2009 दाखिल की थी जो आदेश दिनांक 31.08.2010 के माध्यम से स्वीकृत कर ली गई। उपरोक्त याचिका के लंबित रहने के दौरान, वादी/याचिकाकर्ता का वाद स्वयं निर्णय/डिक्री दिनांक 30.03.2010 के माध्यम से विनिश्चित कर दिया गया। व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने जिला न्यायाधीश, मथुरा के समक्ष दीवानी अपील सं. 40 / 2010 दाखिल की है। अपील के लंबित रहने के दौरान, चूँकि पूर्व में दाखिल रिट याचिका स्वीकृत कर ली गई थी, याचिकाकर्ता ने 65 क और 67 ख के रूप में संख्यांकित दो संशोधन प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किए हैं जो उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 31.08.2010 पर आधारित हैं। उक्त संशोधन प्रार्थना-पत्र, आदेश दिनांक 20.07.2018 के माध्यम से इस निष्कर्ष के साथ अस्वीकार कर दिए गए कि अपील का विनिश्चय करते समय उच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार किया जाएगा।

4. उन्होंने आगे निवेदन किया कि इस बीच प्रतिवादी सं.1 ने एस.एल.पी. (सी) सं. 34271 / 2010 और 34090 / 2010 दाखिल की, जिसे अपीलार्थी को आदेश दिनांक 31.08.2010 के विरुद्ध एक प्रत्यावर्तन/पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र माँगने की अनुमति देते हुए निस्तारित किया गया। आदेश दिनांक 31.08.2010 के प्रत्यावर्तन के लिए प्रत्यावर्तन प्रार्थना-पत्र दाखिल किया गया, जिसे इस न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 07.04.2017 के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया। उसके विरुद्ध प्रतिवादी सं.1 ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दीवानी अपील सं.3025-3026 / 2022 दाखिल की, जिसे आदेश दिनांक 20.04.2022 के माध्यम से खारिज कर दिया गया।

5. उन्होंने आगे निवेदन किया कि इस प्रक्रम पर याचिकाकर्ता ने उपरोक्त घटनाक्रमों को वाद पत्र में समाविष्ट करने के लिए संशोधन प्रार्थना-पत्र दाखिल किया है, जिसे आक्षेपित आदेश दिनांक 17.05.2024 के माध्यम से इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि पूर्व में भी इस न्यायालय द्वारा समान प्रकृति का संशोधन प्रार्थना-पत्र पहले ही खारिज कर दिया गया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि इस न्यायालय के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश द्वारा हुए नए घटनाक्रम के आलोक में, तथ्य को समाविष्ट किया जाना आवश्यक है। इसलिए, संशोधन प्रार्थना-पत्र को स्वीकृत किया जाना चाहिए था और उसके लिए विलंब एक आधार नहीं हो सकता। जहाँ तक आदेश दिनांक 20.07.2018 का संबंध है, यदि उच्च न्यायालय के समक्ष कुछ घटनाक्रम हुआ है तो विलंब एक आधार नहीं हो सकता। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यद्यपि आदेश दिनांक 20.07.2018 के माध्यम से पहले संशोधन प्रार्थना-पत्र की अस्वीकृति के प्रक्रम पर विधिक स्थिति वही है किन्तु तथ्यात्मक पहलू बदल गया है और उसे अभिलेख पर अवश्य लाया जाना चाहिए था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि चूँकि वाद का विनिश्चय निजी प्रतिवादियों को अधिकार देते हुए अधिसूचना दिनांक 25.04.2008 के आलोक में किया गया था, संशोधन के पुनः मूल्यांकन की आवश्यकता है। इसलिए, आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य हैं।

6. इसके प्रतिकूल, श्री के. एम. गर्ग, प्रतिवादी सं. 3/1, 3/3 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आदेश दिनांक 20.07.2018 को कभी चुनौती नहीं दी गई, अपितु याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 20.07.2018 के प्रत्यावर्तन के लिए शपथ-पत्र के साथ प्रार्थना-पत्र 83 ग और 84 ग दाखिल किया, जिसे आदेश दिनांक 02.02.2019 के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया। तत्पश्चात्, उसने अपील ज़ापन में संशोधन के लिए संशोधन प्रार्थना-पत्र 87 क और 89 क दाखिल किया, जिसे भी आदेश दिनांक 27.01.2019 के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया। प्रार्थना-पत्रों संख्यांक 65 क, 67 क, 87 क और 89 क में पारित उपरोक्त आदेशों को उच्च न्यायालय के समक्ष कभी चुनौती नहीं दी गई है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक निवेदन किया कि धारा 96 सी.पी.सी. के आलोक में, याचिकाकर्ता के पास उक्त आदेशों को द्वितीय अपील में चुनौती देने का उपचार है। उन्होंने यह भी इंगित किया कि प्रथम संशोधन प्रार्थना-पत्र 65 क को अस्वीकार करते समय विचारण न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि अपील के निस्तारण के समय उच्च न्यायालय के आदेश पर विचार किया जाएगा। इसलिए, संशोधन प्रार्थना-पत्र को स्वीकृत करने का कोई अवसर नहीं है। धारा 107 और 96 सी.पी.सी. के आलोक में, अपीलीय न्यायालय के पास सभी शक्तियाँ हैं और वह अपील का विनिश्चय करते

समय अपना स्वतंत्र निष्कर्ष अभिलिखित कर सकता है। इसलिए, नए घटनाक्रम की दशा में, अपीलीय न्यायालय साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन कर सकता है और अपना स्वयं का निष्कर्ष दे सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के, **बी. वी. नागेश व एक अन्य बनाम एच. वी. श्रीनिवास मूर्ति, (2010) 13 एससीसी 530** में पारित, निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

7. उन्होंने यह भी इंगित किया कि चूँकि प्रथम संशोधन प्रार्थना-पत्र 65 क और 67 क में अंतर्वलित वादबिंदु वही हैं जो वर्तमान संशोधन प्रार्थना-पत्र 114 क में हैं, इसलिए, यह वादबिंदु विबंधन से वर्जित है। इसलिए, न्यायालय ने प्रार्थना-पत्र को सही रूप से अस्वीकार कर दिया है।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार किया है और अभिलेख, विधि के उपबंधों के साथ-साथ उस निर्णय का, जिस पर विश्वास व्यक्त किया गया है, परिशीलन किया है।

9. अभिलेख के परिशीलन से, मामले के अविवादित तथ्य यह हैं कि स्थायी व्यादेश की घोषणा के लिए वाद सं. 16 / 1988 के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी सं.1 द्वारा पूर्व में अधिग्रहीत विवादित भूमि को अधिसूचना दिनांक 07.07.2005 के माध्यम से समाप्त कर दिया गया है, किन्तु बाद में उक्त अधिसूचना को प्रतिवादी सं.1 द्वारा एक अन्य अधिसूचना दिनांक 25.04.2008 के माध्यम से वापस ले लिया गया।

10. व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका अर्थात् सी.एम.डब्ल्यू.पी. सं. 529 / 2009 दाखिल की जो आदेश दिनांक 31.08.2010 के माध्यम से स्वीकृत कर ली गई। याचिका के लंबित रहने के दौरान वाद सं. 16 / 1988 निर्णय और डिक्री दिनांक 30.03.2010 के माध्यम से विनिश्चित कर दिया गया। उसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने जिला न्यायाधीश, मथुरा के समक्ष दीवानी अपील सं. 40 / 2000 दाखिल की है चूँकि सी.एम.डब्ल्यू.पी. सं. 529 / 2009 जो आदेश दिनांक 31.08.2010 के माध्यम से स्वीकृत कर ली गई थी। अपील के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता ने 65 क और 65 ख के रूप में संख्यांकित दो संशोधन प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किए हैं। उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 31.08.2010 के आलोक में, दोनों संशोधन प्रार्थना-पत्र आदेश दिनांक 20.07.2018 के माध्यम से इस निष्कर्ष के साथ अस्वीकार कर दिए गए हैं कि अपील का विनिश्चय करते समय उच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार किया जाएगा। इस बीच प्रतिवादी सं.1 ने एस.एल.पी. सं. 34271 / 2010 और 34090 / 2010 दाखिल की, जिसे उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 31.08.2010 के विरुद्ध प्रत्यावर्तन/पुनर्विलोकन प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करने की अनुमति के साथ खारिज कर दिया गया। आदेश दिनांक 31.08.2010 के प्रत्यावर्तन के लिए प्रत्यावर्तन प्रार्थना-पत्र दाखिल किया गया, जिसे इस न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 04.07.2017 के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया। उसके विरुद्ध प्रतिवादी सं.1 ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दीवानी अपील सं. 3025-3026 / 2022 दाखिल की है, जिसे भी खारिज कर दिया गया है। इस प्रक्रम पर, तथ्यों को अभिलेख पर लाने के लिए प्रश्नगत संशोधन प्रार्थना-पत्र पुनः दाखिल किए गए हैं, जिन्हें आक्षेपित आदेश दिनांक 17.05.2024 के माध्यम से इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि पूर्व में भी समान प्रकृति का संशोधन प्रार्थना-पत्र इस न्यायालय द्वारा पहले ही खारिज कर दिया गया था।

न्यायालय के लिए एकमात्र वादबिंदु कि क्या एस.एल.पी., दीवानी अपील सं. 3025-3026 / 2022 की खारिजी के पश्चात्, संशोधन प्रार्थना-पत्र स्वीकृत किए जा सकते थे अथवा नहीं।

11. इस बिन्दु पर कोई विवाद नहीं है कि रिट याचिका को निर्णय और आदेश दिनांक 31.08.2010 के माध्यम से खारिज किए जाने के पश्चात् नए तथ्यों को लाने के लिए, संशोधन प्रार्थना-पत्र दाखिल किया गया था जिसे इस टिप्पणी के साथ अस्वीकार कर दिया गया था कि उपरोक्त तथ्यों को अंतिम विनिश्चय लेते समय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देखा जा सकता है। अब सिविल अपील सं. 3025-3026 / 2022 की खारिजी के पश्चात् द्वितीय वाद में, इस न्यायालय के समक्ष उन्हीं तथ्यों को लाने के सिवाय कोई नया तथ्य नहीं है जो सी.एम.डब्ल्यू.पी. सं. 529 / 2009 को आदेश दिनांक 31.08.2010 के माध्यम से स्वीकृत किए जाने के पश्चात् सामने आए। इसलिए, एक बार जब पूर्व में संशोधन प्रार्थना-पत्र को आदेश दिनांक 20.07.2018 के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया है और उसे चुनौती नहीं दी गई थी, याचिकाकर्ता को कुछ समय पश्चात् नया प्रार्थना-पत्र दाखिल करके उन्हीं तथ्यों को पुनः लाने की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती। वस्तुतः याचिकाकर्ता का ऐसा कृत्य रिस जूडीकाटा के सिद्धांत से वर्जित है, इसलिए, न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा संशोधन प्रार्थना-पत्र को सही रूप से अस्वीकार कर दिया है।

12. इस वादबिंदु पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अशोक कुमार श्रीवास्तव बनाम नेशनल इंश्योरेंस कं. लिमिटेड व अन्य, एआईआर 1998 सुप्रीम कोर्ट 2046**, के मामले में भी विचार किया गया है। सुसंगत पैरा सं. 14 और 15 निम्नानुसार उद्धृत किए जा रहे हैं:-

"14. यद्यपि उक्त स्पष्टीकरण विचारण प्रक्रम पर यथावत् लागू नहीं हो सकता है, तथापि इसमें सन्निहित सिद्धांत को उस पर लागू होना चाहिए। यह सारहीन है कि रिट याचिका केवल तत्पश्चात् दाखिल की गई थी क्योंकि उसमें किए गए निष्कर्ष अंतिम हो गए चूंकि निर्णय के विरुद्ध कोई अपील दाखिल नहीं की गई थी। प्राङ्गन्याय के नियम में आधारभूत विचार "मेमो डिबेट बिस वेक्सारी प्रो ऊना एट ईडेम कॉसा" (किसी भी व्यक्ति को एक ही हेतुक के लिए दो बार तंग नहीं किया जाना चाहिए) कहावत से प्रस्फुटित हुआ है। वाई. बी. पाटिल बनाम वाई. एल. पाटिल, (1976) 4 एससीसी 66: (एआईआर 1977 एससी 392) में, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने एक ही वाद के पश्चात्पूर्वी प्रक्रमों पर एक रिट याचिका में दिए गए विनिश्चय के प्रभाव पर विचार किया। इसने अभिनिर्धारित किया: "प्राङ्गन्याय के सिद्धांतों का प्रयोग केवल पृथक् पश्चात्पूर्वी कार्यवाहियों में ही नहीं किया जा सकता है, वे उसी कार्यवाही के पश्चात्पूर्वी प्रक्रम में भी आकर्षित होते हैं। एक बार जब किसी कार्यवाही के अनुक्रम में किया गया कोई आदेश अंतिम हो जाता है, तो यह उस कार्यवाही के पश्चात्पूर्वी प्रक्रम में आबद्धकर होगा।

15. इस प्रकार, विधिक स्थिति स्पष्ट है और प्रतिवादी अब अधिनियम की धारा 34 के अधीन वाद की पोषणीयता के संबंध में प्रश्न को पुनः आंदोलित नहीं कर सकता है। तथापि, विद्वान अधिवक्ता ने हमारे समक्ष एक वैकल्पिक तर्क अपनाया कि वाद वस्तुतः एक संविदा के विनिर्दिष्ट प्रवर्तन के लिए है और ऐसे वाद की परिकल्पना अधिनियम की धारा 14 के अधीन नहीं की गई है और अतः यह पोषणीय नहीं है। विद्वान अधिवक्ता

के अनुसार, वाद में माँगी गई राहतें, यदि प्रदान की जाती हैं, तो नियोजन की एक संविदा के विनिर्दिष्ट प्रवर्तन में परिणत होंगी। अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 14 (1) (क) यह स्पष्ट करती है कि नियोजन की कोई संविदा विनिर्दिष्ट रूप से प्रवर्तनीय नहीं है चूँकि उसके अपालन के लिए धन द्वारा प्रतिकर दिया जा सकता है।"

13. सी.पी.सी. की धारा 107 के अनुसार, अपीलीय न्यायालय के पास अतिरिक्त साक्ष्य लेने की सभी शक्ति है। सी.पी.सी. की धारा 107 नीचे उद्धृत की जा रही है-

"107. अपीलीय न्यायालय की शक्तियाँ- (1) ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, जो विहित की जाएँ, अपीलीय न्यायालय को शक्ति होगी- (क) मामले का अंतिम रूप से अवधारण करने की; (ख) मामले को प्रतिप्रेषित करने की; (ग) वादबिंदु विरचित करने और उन्हें विचारण के लिए संदर्भित करने की; (घ) अतिरिक्त साक्ष्य लेने की या ऐसे साक्ष्य को लिए जाने की अपेक्षा करने की। (2) जैसा कि पूर्वोक्त है उसके अधीन रहते हुए, अपीलीय न्यायालय को वही शक्तियाँ होंगी और वह लगभग उन्हीं कर्तव्यों का पालन करेगा जो इस संहिता द्वारा मूल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालयों पर अधिरोपित और उन्हें प्रदत्त किए गए हैं उनमें संस्थित वादों के संबंध में।"

14. अपीलीय न्यायालय की शक्ति पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बी. वी. नागेश व एक अन्य बनाम एच. वी. श्रीनिवास मूर्ति, (2010) 13 एससीसी 530 के मामले में भी विचार किया गया है और सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपील का विनिश्चय करते समय यह उच्च न्यायालय का कर्तव्य है कि वह निष्कर्ष अभिलिखित करने से पूर्व पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत सभी वादबिंदुओं और साक्ष्य पर विचार करे। सुसंगत पैरा सं.3 और 4 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं-

"3. नियमित प्रथम अपील का निपटारा अपीलीय न्यायालय/उच्च न्यायालय द्वारा कैसे किया जाना है, इस पर इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में विचार किया गया है। सी.पी.सी. का आदेश 41 मूल डिक्रियों से अपीलों से संबंधित है। विभिन्न नियमों में से, नियम 31 यह आज्ञापित करता है कि अपीलीय न्यायालय के निर्णय में यह कथित होगा:

(क) अवधारण के लिए प्रश्न;

(ख) उस पर विनिश्चय;

(ग) विनिश्चय के लिए कारण; और -

(घ) जहाँ अपील की गई डिक्री उलटी जाती है या उसमें फेरफार किया जाता है, वह राहत जिसके लिए अपीलार्थी हकदार है।

"4. अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटने या उनकी पुष्टि करने का क्षेत्राधिकार है। प्रथम अपील पक्षकारों का एक मूल्यवान अधिकार है और जब तक कि विधि द्वारा प्रतिबंधित न हो, उसमें संपूर्ण मामला तथ्य के प्रश्नों और विधि के प्रश्नों दोनों पर पुनः सुनवाई के लिए खुला होता है। इसलिए,

अपीलीय न्यायालय के निर्णय में, अपीलीय न्यायालय के विनिश्चय के लिए पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत और दबाए गए तर्कों के साथ-साथ उद्भूत होने वाले सभी वादबिंदुओं पर, उसके द्वारा मस्तिष्क का सचेत प्रयोग प्रतिबिंबित होना चाहिए और कारणों द्वारा समर्थित निष्कर्ष अभिलिखित होने चाहिए। प्रथम अपील के न्यायालय के रूप में बैठते हुए, यह उच्च न्यायालय का कर्तव्य था कि वह अपने निष्कर्षों को अभिलिखित करने से पूर्व पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत सभी वादबिंदुओं और साक्ष्य पर विचार करे। प्रथम अपील एक मूल्यवान अधिकार है और पक्षकारों को विधि के प्रश्नों और तथ्यों पर दोनों पर सुने जाने का अधिकार है और प्रथम अपील में निर्णय को विधि और तथ्य के सभी वादबिंदुओं को संबोधित करना चाहिए और निष्कर्षों के समर्थन में कारण देते हुए उसका विनिश्चय करना चाहिए।”

15. 107 सी.पी.सी. के परिशीलन के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **बी. वी. नागेश (उपरोक्त)** में निर्णय से, यह सुस्पष्ट है कि अपीलीय न्यायालय के पास अतिरिक्त साक्ष्य लेने या ऐसा साक्ष्य लिए जाने की अपेक्षा करने की पर्याप्त शक्ति है, अपीलीय न्यायालय के पास वही शक्तियाँ होंगी और वह लगभग उन्हीं कर्तव्यों का पालन करेगा जो इस संहिता द्वारा मूल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालयों पर अधिरोपित और उन्हें प्रदत्त किए गए हैं। इसलिए, आक्षेपित आदेश दिनांक 17.05.2024 में कोई अवैधता नहीं है।

16. इसलिए, मामले के तथ्यों, सी.पी.सी. के उपबंधों और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बी. वी. नागेश (उपरोक्त)** में प्रतिपादित विधि के आलोक में, मैं आक्षेपित आदेश दिनांक 17.05.2024 में कोई दुर्बलता नहीं पाता हूँ। याचिका में गुणागुण का अभाव है और तदनुसार, **खारिज** की जाती है।

17. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 3 ILRA 89

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल

अनुच्छेद 227 के अधीन मामले सं. 8387 / 2024

मेसर्स एल.आर. प्रिंट सॉल्यूशंस

...याचिकाकर्ता

बनाम

मेसर्स एक्सफ्लो सैनिटेशन प्राइवेट लिमिटेड व अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अभिषेक कुमार, श्री ईश्वर कुमार उपाध्याय

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री इशिर श्रीपत

सिविल विधि-भारत का संविधान, 1950 अनुच्छेद 227 - माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996-धारा 34 व 37- पंचाट का उसके अक्षरशः और मूल भावना में अनुपालन न करने के लिए अंतःकालीन लाभ का भुगतान-याचिकाकर्ता ने प्रश्नगत परिसर को पंचाट पारित होने की तिथि से 30 दिनों के भीतर खाली नहीं किया और इसके अतिरिक्त याचिकाकर्ता ने यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई है कि पंचाट को किसी भी सक्षम न्यायालय द्वारा स्थगन दिया गया था---माध्यस्थम् पंचाट पर कोई स्थगन नहीं दिया गया था या अन्यथा कोई सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई गई थी और अंततः पंचाट को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट कर दिया गया है और उसके पश्चात् कोई कार्यवाही लंबित नहीं है---विरोधी प्रतिवादी सं. 1 अंतःकालीन लाभ का हकदार है क्योंकि पंचाट का उसके अक्षरशः और मूल भावना में अनुपालन नहीं किया गया था। (पैरा 22 व 25)

याचिका में गुणागुण का अभाव है, खारिज की जाती है। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मेसर्स श्री विष्णु कंस्ट्रक्शंस बनाम इंजीनियर इन चीफ मिलिट्री इंजीनियरिंग सर्विसेज व अन्य, 2023 8 एससीसी 329
2. भारत संघ व अन्य बनाम मेसर्स बनवारी लाल एंड संस (पी) लिमिटेड, एआईआर 2004 सुप्रीम कोर्ट 1983
3. स्मॉल स्केल इंडस्ट्रियल मैनुफैक्चरर्स एसोसिएशन (रजि.) बनाम भारत संघ व अन्य, (2021) 8 एससीसी 511.
4. बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया बनाम कोचिंग क्रिकेट प्राइवेट लिमिटेड व अन्य (2018) 6 एससीसी 287;
5. हिंदुस्तान कंस्ट्रक्शन कं. लिमिटेड व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य, एआईआर 2020 एससी 122;
6. राजस्थान राज्य व अन्य बनाम जे.के. सिंथेटिक्स लिमिटेड व अन्य, (2011) 2 एससीसी 518

(माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री अभिषेक कुमार के साथ श्री ईश्वर कुमार उपाध्याय, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता; श्री राहुल श्रीपत, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ श्री इशिर श्रीपत, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका, निष्पादन न्यायालय / वाणिज्यिक न्यायालय सं. 2, जिला गौतम बुद्ध नगर द्वारा निष्पादन वाद सं. 108 / 2021 में पारित आदेश दिनांक 24.6.2024 को निरस्त करने के लिए दाखिल की गई है।

3. रिट याचिका में कथित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता औद्योगिक प्लॉट सं. सी - 156, सेक्टर 10, नोएडा (क्षेत्रफल 114 वर्ग मीटर) (भवन का भूतल), किराया करार दिनांक 1.7.2008 के निष्पादन की तिथि से 8000/- रुपये प्रति माह की दर पर, किरायेदार है। करार विनिर्माण प्रयोजनार्थ 11 माह की अवधि के लिए अपंजीकृत था जो अवधि की समाप्ति के पश्चात् भी जारी रहा। वादी-याचिकाकर्ता और प्रतिवादी सं. 1 के बीच किराए के भुगतान के संबंध में विवाद था, इसलिए, प्रतिवादी सं. 1 ने याचिकाकर्ता को बेदखल करने के लिए लघुवाद सं. 19 / 2011 दाखिल किया है। उक्त वाद में, याचिकाकर्ता ने आदेश 7 नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन वाद-पत्र की अस्वीकृति के लिए इस आधार पर एक प्रार्थना-पत्र दाखिल किया है कि चूँकि पक्षकारों के बीच किराया करार में एक माध्यस्थम् खंड है, इस प्रकार, विवाद का विनिश्चय केवल मध्यस्थ द्वारा किया जाना अपेक्षित है और न्यायालय का इस मामले में कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। उक्त प्रार्थना-पत्र का प्रतिवादी सं. 1 द्वारा विरोध किया गया है, तथापि, अपर सत्र न्यायाधीश ने आदेश दिनांक 19.9.2015 के माध्यम से प्रतिवादी का वाद-पत्र अस्वीकार कर दिया है। तत्पश्चात्, प्रतिवादी सं. 1 ने उसी राहत के लिए एकमात्र मध्यस्थ के समक्ष माध्यस्थम् याचिका दाखिल की है जिसमें याचिकाकर्ता ने लिखित कथन दाखिल किया है। तत्पश्चात्, मध्यस्थ ने पंचाट दिनांक 19.7.2017 के माध्यम से प्रतिवादी सं. 1 के दावे को स्वीकृत कर लिया है, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने वाणिज्यिक न्यायालय, गौतम बुद्ध नगर के समक्ष माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन एक आपति दाखिल की है। धारा 34 के अधीन उक्त आपति आदेश दिनांक 30.6.2022 के माध्यम से अस्वीकार कर दी गई थी। उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 37 के अधीन माध्यस्थम् अपील त्रुटि सं. 46 / 2022 दाखिल की है, जिसे आदेश दिनांक 6.12.2022 के माध्यम से खारिज कर दिया गया। तत्पश्चात् याचिकाकर्ता ने विशेष अनुमति याचिका में सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे भी खारिज कर दिया गया। अधिनियम की धारा 34 के अधीन याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल की गई आपति के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी सं. 1 ने पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 5.3.2021 के माध्यम से प्रश्नगत संपत्ति को प्रतिवादी सं. 2 को बेच दिया, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा सिविल जज (ज्येष्ठ खंड), गौतम बुद्ध नगर के समक्ष विक्रय विलेख दिनांक 5.3.2021 को निरस्त करने के लिए वाद सं. 342 / 2021 दाखिल किया गया था, जिसे आदेश दिनांक 29.5.2023 के माध्यम से खारिज कर दिया गया। उक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा इस न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील सं. 1000 / 2023 में चुनौती दी गई है, जिसे दिनांक 10.4.2024 को ग्रहण कर लिया गया था। निष्पादन वाद सं. 108 / 2021 में, डिक्री धारक ने दिनांक 3.4.2024 को एक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया, जिस पर याचिकाकर्ता द्वारा आपति की गई किन्तु निचले न्यायालय ने आक्षेपित आदेश दिनांक 24.6.2024 द्वारा विरोधी प्रतिवादी द्वारा दाखिल प्रार्थना-पत्र संख्यांक 89 ग को स्वीकृत कर लिया है और निर्णय ऋणी/याचिकाकर्ता को 8,58,795/- रुपये का भुगतान करने का निदेश दिया गया। अतः वर्तमान याचिका दाखिल की गई है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि पंचाट दिनांक 19.7.2017 में यह उपबंधित है कि यदि उसका 30 दिनों के भीतर अनुपालन नहीं किया जाता है तो याचिकाकर्ता 20.8.2017 से कब्जा सौंपने तक 10% चक्रवृद्धि ब्याज के साथ 15 हजार रुपये अंतःकालीन लाभ के रूप में दावाकर्ता/प्रतिवादी सं. 1 को भुगतान करने के लिए दायी होगा। वह आगे निवेदन करते हैं कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रार्थना-

3.इला मेसर्स एल.आर. प्रिंट सॉल्यूशंस बनाम मेसर्स एक्सप्लो सैनिटेशन प्राइवेट लिमिटेड व अन्य 123

पत्र समय के भीतर दाखिल किया गया है, पंचाट पर स्थगन दिया गया समझा जाएगा और याचिकाकर्ता पंचाट के निदेश का अनुपालन करने के लिए बाध्य नहीं था। वह आगे निवेदन करते हैं कि एक बार जब पंचाट प्रचालन में नहीं है, तो याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी सं. 1 को अंतःकालीन लाभ का भुगतान किए जाने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि एक बार जब माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने मात्र से विधि के प्रवर्तन द्वारा पंचाट पर स्थगन दे दिया गया था, तो अंतःकालीन लाभ की राशि का भुगतान करने के लिए याचिकाकर्ता पर कोई दायित्व नहीं है। वह आगे निवेदन करते हैं कि आक्षेपित आदेश द्वारा, न्यायालय ने मामले पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया है, इसलिए, यह अपास्त किए जाने योग्य है। वह आगे निवेदन करते हैं कि अधीनस्थ न्यायालय ने दिसंबर 2020 से मार्च 2021 की अवधि के भुगतान के लिए राशि की गलत गणना की है क्योंकि उक्त अवधि का भुगतान याचिकाकर्ता द्वारा पहले ही किया जा चुका है। वह वर्तमान याचिका को स्वीकृत करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

5. अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है:-

- (i) मेसर्स श्री विष्णु कंस्ट्रक्शंस बनाम इंजीनियर इन चीफ मिलिट्री इंजीनियरिंग सर्विसेज व अन्य, 2023 8 एससीसी 329;
- (ii) भारत संघ व अन्य बनाम मेसर्स बनवारी लाल एंड संस (पी) लिमिटेड, एआईआर 2004 सुप्रीम कोर्ट 1983;
- (iii) स्मॉल स्केल इंडस्ट्रियल मैनुफैक्चरर्स एसोसिएशन (रजि.) बनाम भारत संघ व अन्य, (2021) 8 एससीसी 511.

6. इसके प्रतिकूल, श्री राहुल श्रीपत, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आक्षेपित आदेश विधि के अनुसार पारित किया गया है, इसलिए कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है। वह आगे निवेदन करते हैं कि पंचाट दिनांक 19.7.2017 अनुपालन न करने की दशा में अंतःकालीन लाभ और दंडात्मक ब्याज के भुगतान का स्पष्ट रूप से उपबंध करता है। यह स्वीकार्य तथ्य है कि याचिकाकर्ता ने अप्रैल 2024 तक परिसर खाली नहीं किया, इसलिए, पंचाट के अनुसार, याचिकाकर्ता ब्याज सहित अंतःकालीन लाभ का भुगतान करने के लिए कर्तव्यबद्ध था। वह आगे निवेदन करते हैं कि पंचाट दिनांक 19.7.2017 ने अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है और किसी भी प्रक्रम पर, उक्त पंचाट को किसी भी सक्षम न्यायालय द्वारा स्थगन नहीं दिया गया था और इसके अतिरिक्त विधि के किसी भी न्यायालय में उसी के विरुद्ध कोई कार्यवाही लंबित नहीं है।

7. वह आगे निवेदन करते हैं कि याचिकाकर्ता ने अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रार्थना-पत्र वर्ष 2017 में संस्थित किया था किन्तु यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई है कि उसके पक्ष में अंतरिम आदेश दिया गया था, इसलिए, याचिकाकर्ता की ओर से यह कहना गलत है कि अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने मात्र से, याचिकाकर्ता के पक्ष में स्वतः स्थगन समझा गया।

8. अपने निवेदन को पुष्ट करने के क्रम में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि वर्ष 2015 में माध्यस्थम् अधिनियम को संशोधित किया गया है और स्वीकार्य रूप से, वर्तमान कार्यवाहियाँ धारा 34 के अधीन याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 2017 में प्रारम्भ की गईं, इसलिए, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने मात्र से, याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई स्वतः स्थगन नहीं समझा जा सकता है।

9. अपने निवेदन के समर्थन में, प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है:-

- (i) बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया बनाम कोच्चि क्रिकेट प्राइवेट लिमिटेड व अन्य (2018) 6 एससीसी 287;
- (ii) हिंदुस्तान कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य, एआईआर 2020 एससी 122;
- (iii) राजस्थान राज्य व अन्य बनाम जे.के. सिंथेटिक्स लिमिटेड व अन्य, (2011) 2 एससीसी 518.

11. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि निष्पादन न्यायालय ने ब्याज सहित अंतःकालीन लाभ की सही गणना की है और याचिकाकर्ता के लिए इस प्रक्रम पर पंचाट दिनांक 19.7.2017 द्वारा प्रतिवादी के पक्ष में दंडात्मक ब्याज प्रदान किए जाने को चुनौती देना उचित नहीं है क्योंकि पंचाट ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के प्रक्रम तक अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है। वह वर्तमान रिट याचिका को खारिज करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

12. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात्, न्यायालय ने अभिलेखों का परिशीलन किया है।

13. यह पक्षकारों के बीच स्वीकृत है कि पंचाट दिनांक 19.7.2017 को पारित किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता को प्रश्नगत परिसर को खाली करने और पंचाट पारित होने की तिथि से 30 दिनों के भीतर शांतिपूर्ण कब्जा सौंपने का निदेश दिया गया था, ऐसा न करने पर प्रतिवादी-दावाकर्ता न केवल किराए के लिए बल्कि ब्याज सहित अंतःकालीन लाभ के लिए भी हकदार होगा। यह भी विवाद में नहीं है कि उक्त पंचाट के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने वर्ष 2017 में अधिनियम की धारा 34 के अधीन एक प्रार्थना-पत्र दाखिल किया है। यह भी विवाद में नहीं है कि पंचाट के निदेश के अनुसार कब्जा अप्रैल 2024 में सौंपा गया।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने मात्र से, माध्यस्थम् पंचाट पर स्थगन दे दिया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा कोई चूक नहीं की गई है जो प्रतिवादी सं. 1 को अंतःकालीन लाभ का दावा करने के लिए हकदार बनाती हो। किन्तु अभिलेख यह प्रकट करता है कि अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रार्थना-पत्र याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 2017 में दाखिल किया गया था और माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 23.10.2015 से प्रभावी रूप से संशोधित की गई थी। अधिनियम की धारा 34 को न्यायालय की कार्यवाही माना जाता है और उसमें किया गया संशोधन

बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किए अनुसार संभावित रूप से लागू होगा और उसी को श्री विष्णु कंस्ट्रक्शंस (उपरोक्त) के मामले में आगे स्पष्ट किया गया था।

15. बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के सुसंगत पैरा निम्नानुसार उद्धृत हैं:-

"25. कि "माध्यस्थम् कार्यवाहियाँ" अभिव्यक्ति माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों को संदर्भित करती है, यह 1996 अधिनियम के अध्याय V के शीर्षक से स्पष्ट है, जो निम्नानुसार पढ़ा जाता है:

"माध्यस्थम् कार्यवाहियों का संचालन"

संपूर्ण अध्याय धारा 18 से 27 से मिलकर बना है जो एक माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संचालन से संबंधित है। यह नोट करना भी महत्वपूर्ण है कि केवल इन्हीं कार्यवाहियों को संदर्भित किया जाता है, "के संबंध में" अभिव्यक्ति के विपरीत "को" अभिव्यक्ति इसे स्पष्ट करती है। साथ ही, 1996 अधिनियम की धारा 21 का संदर्भ, जो अध्याय V में प्रकट होती है, और जो माध्यस्थम् कार्यवाहियों के उस तिथि को प्रारम्भ होने की बात करती है जिस पर माध्यस्थम् के लिए विवाद के संदर्भ का अनुरोध प्रतिवादी द्वारा प्राप्त किया जाता है, यह भी स्पष्ट करेगा कि ये कार्यवाहियाँ हैं, और कोई अन्य नहीं, जो धारा 26 के पहले भाग की विषय-वस्तु बनाती हैं। साथ ही, चूँकि माध्यस्थम् कार्यवाहियों का संचालन प्रकृति में मुख्य रूप से प्रक्रियात्मक है, पक्षकार "अन्यथा सहमत" हो सकते हैं और संशोधन अधिनियम को माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर लागू कर सकते हैं जो संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने से पहले प्रारम्भ हुई हैं। धारा 26 के पहले भाग के पूर्ण विपरीत दूसरा भाग है, जहाँ संशोधन अधिनियम उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों "के संबंध में" लागू किया गया है जो संशोधन अधिनियम के प्रारम्भ की तिथि को या उसके पश्चात् प्रारम्भ हुई। जो अपनी अनुपस्थिति से सुस्पष्ट है वह 1996 अधिनियम की धारा 21 का कोई संदर्भ है। जबकि पहला भाग केवल एक माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष माध्यस्थम् कार्यवाहियों को संदर्भित करता है, दूसरा भाग माध्यस्थम् कार्यवाहियों "के संबंध में" न्यायालय की कार्यवाहियों को संदर्भित करता है, और धारा 26 के दूसरे भाग में न्यायालय की इन्हीं कार्यवाहियों के प्रारम्भ होने का संदर्भ दिया गया है, क्योंकि दूसरे भाग में "माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में" शब्द 1996 अधिनियम की धारा 21 के लागू होने से नियंत्रित नहीं होते हैं।

धारा 26, इसलिए, कार्यवाहियों को, जैसा कि ऊपर कहा गया है, महान स्पष्टता के साथ, दो सेटों में विभाजित करता है - स्वयं माध्यस्थम् कार्यवाहियाँ, और उसके संबंध में न्यायालय की कार्यवाहियाँ। धारा 26 का पहला भाग नकारात्मक रूप में इसलिए रखा गया है ताकि केवल यह कहा जा सके कि संशोधन अधिनियम उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर भी लागू होगा जो संशोधन से पहले प्रारम्भ हुई यदि पक्षकार अन्यथा सहमत होते हैं। यदि धारा 26 का पहला भाग सकारात्मक भाषा में रखा गया होता (दूसरे भाग की तरह), तो एक परन्तुक जोड़ना आवश्यक होता जिसमें यह कथन किया जाता कि संशोधन अधिनियम उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर भी लागू होगा जो संशोधन से पहले प्रारम्भ हुई यदि पक्षकार सहमत होते हैं। दोनों में से किसी भी दशा में,

विधानमंडल का आशय समान रहता है, नकारात्मक रूप वही सटीक रूप से व्यक्त करता है जो आवश्यक परन्तु के साथ सकारात्मक रूप से कहा जा सकता था। स्पष्ट रूप से, "माध्यस्थम् कार्यवाहियाँ" पहले भाग में उत्प्रेषित होने के कारण दूसरे भाग में पुनः प्रकट नहीं हो सकती हैं, और "माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में" अभिव्यक्ति, इसलिए, केवल न्यायालय की कार्यवाहियों पर लागू होगी जो माध्यस्थम् कार्यवाहियों से संबंधित हैं। इस प्रकार धारा 26 की योजना स्पष्ट है: कि संशोधन अधिनियम प्रकृति में संभावित है, और उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर लागू होगा जो मूल अधिनियम की धारा 21 द्वारा यथा अवधारित, संशोधन अधिनियम को या उसके पश्चात् प्रारम्भ हुई हैं, और न्यायालय की कार्यवाहियों पर जो संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने की तिथि को या उसके पश्चात् प्रारम्भ हुई हैं।

.....

43. इस मामले को थोड़े भिन्न दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। संशोधन अधिनियम से पूर्व की धारा 36, केवल डिक्री धारक के अधिकार पर एक बाधा है, जो अपने पक्ष में पंचाट का निष्पादन तब तक नहीं कर सकता जब तक कि इस धारा की शर्तें पूरी नहीं होती हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसे पंचाट के निष्पादन पर स्थगन देने का निर्णय ऋणी में एक तत्संबंधी अधिकार है। तथापि, अपीलार्थियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि पंचाट में एक सारवान परिवर्तन किया गया है, जो धारा 34 की कार्यवाहियाँ पूर्ण होने के पश्चात् ही एक निष्पादन योग्य डिक्री बना, किन्तु जिसे अब तत्काल प्रभाव से एक डिक्री के रूप में निष्पादन योग्य बनाया गया है, और यह कि यह परिवर्तन, इसलिए, प्रतिवादियों के पक्ष में एक निहित अधिकार या प्रोद्भूत विशेषाधिकार को छीन लेगा। कई निर्णयों पर विश्वास व्यक्त करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि चूँकि धारा 36 पंचाटों की प्रवर्तन प्रक्रिया का एक हिस्सा है, इसलिए 1996 के असंशोधित अधिनियम में अपीलार्थियों के पक्ष में एक निहित अधिकार या कम से कम एक प्रोद्भूत विशेषाधिकार लागू होता है जहाँ तक माध्यस्थम् कार्यवाहियाँ और उसके संबंध में न्यायालय की कार्यवाहियाँ, संशोधन अधिनियम के प्रारम्भ होने से पहले प्रारम्भ हुई हैं। स्वयं वह निर्णय जिस पर अपीलार्थियों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा पुरजोर विश्वास व्यक्त किया गया है, अर्थात् गरिकापति वीरैया (उपरोक्त), स्वयं पैरा 515 पर उपस्थापन (v) में कथन करता है कि अपील का निहित अधिकार केवल एक पश्चात्वर्ती अधिनियमिति द्वारा ही लिया जा सकता है, यदि वह विशिष्ट रूप से या आवश्यक आशय द्वारा ऐसा उपबंध करता है और अन्यथा नहीं। हमने पहले ही अभिनिर्धारित किया है कि धारा 26 विशिष्ट रूप से यह उपबंध करती है कि माध्यस्थम् कार्यवाहियों से स्वतंत्र होने के कारण माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संबंध में न्यायालय की कार्यवाहियों को माध्यस्थम् कार्यवाहियों का एक सिलसिला नहीं माना जाएगा, बल्कि उन्हें पृथक रूप से देखा जाएगा। यह मामला होने के कारण, भारत संघ बनाम ए.एल. रल्लिया राम, (1964) 3 एससीआर 164 और एनबीसीसी लिमिटेड बनाम जे.जी. इंजीनियरिंग (पी) लिमिटेड, (2010) 2 एससीसी 385, जैसे निर्णयों को संदर्भित करना अनावश्यक है, जो यह कथन करते हैं कि धारा 34 की कार्यवाही एक पर्यवेक्षी और अपीलीय कार्यवाही नहीं है। स्नेहदीप स्ट्रक्चर्स (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र लघु उद्योग विकास निगम लिमिटेड, (2010) 3 एससीसी 34 पैरा 47-49 पर, जिसे यह कथन करने के प्रयोजनार्थ उद्धृत किया गया था कि एक धारा 34 की कार्यवाही विलंबित भुगतानों पर लघु और सहायक औद्योगिक

उपक्रमों को ब्याज अधिनियम, 1993 की धारा 7 के अर्थ के भीतर एक "अपील" मानी जा सकती है, वह इस आधार पर सुस्पष्ट रूप से विभेदनीय है कि वह एक कल्याणकारी अधिनियमिति में प्रकट होने वाली उक्त अभिव्यक्ति से संबंधित है, जिसका उद्देश्य पराजित हो जाएगा यदि "अपील" शब्द में एक धारा 34 का प्रार्थना-पत्र शामिल नहीं किया जाता है। यह उपरोक्त निर्णय द्वारा स्वयं निम्नानुसार स्पष्ट किया गया है:

36. उपरोक्त उल्लिखित ढेरों निर्णयों के परिशीलन से, हमारा यह मत है कि "अपील" एक ऐसा शब्द है जो अपने साथ अर्थों की एक विस्तृत श्रृंखला रखता है और अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग विभिन्न रूपों में किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में सदैव तथ्य और विधि के संपूर्ण मैट्रिक्स का पुनरावंदन शामिल होगा। हमने अभ्यंकर [(1969) 2 एससीसी 74] में पहले ही देखा है कि संहिता की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण की सीमित शक्ति के आधार पर पारित एक आदेश को भी अपीलीय क्षेत्राधिकार का एक प्रयोग माना जाता है, यद्यपि उस उपबंध के अधीन, न्यायालय तथ्यों के प्रश्नों में प्रवेश नहीं कर सकता है। "अपील" पद को ऐसा विस्तृत अर्थ देने के पक्ष में प्राधिकारों के वजन को देखते हुए, हम प्रतिवादी निगम के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क से असहमत होने के लिए विवश हैं कि अपील का अर्थ केवल एक डिक्री या आदेश को चुनौती देना होगा जहाँ आक्षेपित आदेश/डिक्री के संबंध में विधि और तथ्य का संपूर्ण मैट्रिक्स पुनरावंदित किया जा सकता है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि धारा 34 पंचाट को चुनौती देने के केवल सीमित आधारों की परिकल्पना करती है; तथापि, हम कोई कारण नहीं देखते हैं कि केवल उसे ही धारा 34 के अधीन एक प्रार्थना-पत्र को अपील की परिधि से बाहर क्यों करना चाहिए विशेष रूप से तब जब पुनरीक्षण की शक्ति को भी इस न्यायालय और प्रिवी काउंसिल द्वारा अपीलीय क्षेत्राधिकार का एक प्रयोग माना जाता है।

40. यह नोट किया जा सकता है कि धारा 6(1) क्रेता को किसी भी कार्यवाही के माध्यम से देय भुगतान प्राप्त करने के लिए सशक्त करती है। इस प्रकार वे कार्यवाहियाँ जिनका क्रेता आश्रय ले सकता है, निस्संदेह, माध्यस्थम् को भी शामिल करती हैं। यह नोट करना सुसंगत है कि धारा 6(2) के विपरीत, धारा 6(1) यह नहीं कहती है कि यदि पक्षकार माध्यस्थम् का आश्रय लेना चुनते हैं, तो उसके अनुसरण में कार्यवाहियाँ माध्यस्थम् अधिनियम द्वारा शासित होंगी। अतः, वह सही संदर्भ जिसमें "अपील" पद के अर्थ की व्याख्या की जानी चाहिए, वह स्वयं ब्याज अधिनियम है। माध्यस्थम् अधिनियम या सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन इस पद का अर्थ सुसंगत होता यदि ब्याज अधिनियम ने उन्हें संदर्भित किया होता। इसी कारण से, हम यह भी सुसंगत नहीं पाते हैं कि माध्यस्थम् अधिनियम प्रार्थना-पत्रों और अपीलों से दो भिन्न अध्यायों में निपटता है। हम ब्याज अधिनियम में "अपील" पद के अर्थ से संबंधित हैं, न कि माध्यस्थम् अधिनियम में।

46. वर्ष 2004 में, इस न्यायालय के नेशनल एल्युमीनियम कंपनी (उपरोक्त) मामले में निर्णय ने यह संस्तुति की थी कि धारा 36 को प्रतिस्थापित किया जाए, क्योंकि यह वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणाली के मूल उद्देश्य

को विफल करता है, और यह कि विधि में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिए धारा को जल्द से जल्द संशोधित किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट होगा कि व्यावहारिक पहलू और वर्तमान में अंतर्वर्लित अधिकारों की प्रकृति को देखते हुए, और असंशोधित उपबंध की सरासर अनुचितता को देखते हुए, जिसने धारा 34 की प्रवर्तन प्रक्रिया पूर्ण होने से पहले पंचाट के निष्पादन को स्वतः स्थगन प्रदान किया था (और यह स्थगन कई वर्षों तक चल सकता था) प्रत्येक मामले के तथ्यों को देखे बिना, यह स्पष्ट है कि उपरोक्त कारणों से संशोधित धारा 36 को संशोधन अधिनियम के प्रारम्भ होने से पहले दाखिल किए गए धारा 34 प्रार्थना-पत्रों पर भी लागू होना चाहिए।"

16. श्री विष्णु कंस्ट्रक्शंस (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का सुसंगत पैरा निम्नानुसार उद्धृत है:-

9.1 याचिकाकर्ता की ओर से उपरोक्त निवेदन को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, इसका साधारण कारण यह है कि इस न्यायालय ने बी.सी.सी.आई. (उपरोक्त) के मामले में धारा 34 और 36 के अधीन न्यायालय की कार्यवाहियों पर विचार कर रहा था। उस पर, इस न्यायालय ने धारा 26 की व्याख्या ऊपर पुनरुत्पादित पैरा 37 से 39 में की, और अभिनिर्धारित किया कि संशोधन अधिनियम प्रकृति में संभावित है, और उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर लागू होगा जो मूल अधिनियम की धारा 21 द्वारा यथा अवधारित, संशोधन अधिनियम, 2015 को या उसके पश्चात् प्रारम्भ हुई हैं और न्यायालय की कार्यवाहियों पर जो संशोधन अधिनियम, 2015 के प्रवृत्त होने की तिथि को या उसके पश्चात् प्रारम्भ हुई हैं। इसलिए, बी.सी.सी.आई. (उपरोक्त) के मामले में पैरा 37 से 39 में इस न्यायालय द्वारा की गई कोई भी टिप्पणी को संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् प्रारम्भ हुई न्यायालय की कार्यवाहियों के संबंध में समझा और अर्थान्वित किया जाएगा, अर्थात् धारा 34 व 36 के अधीन कार्यवाहियाँ। इसलिए, परमार कंस्ट्रक्शंस कंपनी (उपरोक्त) और प्रदीप विनोद कंस्ट्रक्शन कंपनी (उपरोक्त) के मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों को सक्षम न्यायपीठ के मत के विपरीत और/या बी.सी.सी.आई. (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के विपरीत नहीं कहा जा सकता। जैसा कि ऊपर प्रेक्षित किया गया है, परमार कंस्ट्रक्शंस कंपनी (उपरोक्त) के मामले में जो सीधे बिन्दु पर है, यह दीवानी अपील सं. 3461 / 2023 पैरा 40 में 42 का विशेष रूप से प्रेक्षण किया गया और अभिनिर्धारित किया गया कि 2015 संशोधन अधिनियम, जो दिनांक 23.10.2015 से प्रभावी हुआ, उन माध्यस्थम् कार्यवाहियों पर लागू नहीं होगा जो मूल अधिनियम, 1996 की धारा 21 के उपबंधों के अनुसार, 2015 संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने से पहले प्रारम्भ हुई हैं, जब तक कि पक्षकार अन्यथा सहमत न हों (पैरा 27)। एस.पी. सिंगला कंस्ट्रक्शंस प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में समान मत व्यक्त किया गया है।

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

17. उपरोक्त निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सुस्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 और 36 के अधीन कार्यवाहियाँ न्यायालय की कार्यवाहियाँ हैं और संशोधन के प्रवृत्त होने के पश्चात् प्रारम्भ हुई कोई भी कार्यवाही प्रकृति में संभावित होगी।

18. वर्तमान मामले में, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रार्थना-पत्र याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 2017 में दाखिल किया गया था, जो वर्ष 2015 में संशोधित अधिनियम के प्रवर्तन के काफी बाद में है, इसलिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन प्रार्थना-पत्र दाखिल करने मात्र से प्रश्नगत पंचाट पर स्वतः स्थगन दे दिया गया था, अस्थान पर है और स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

19. इसके अतिरिक्त, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **हिंदुस्तान कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में **बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया (उपरोक्त)** के मामले में पारित अपने पहले के निर्णय को संज्ञान में लेने के पश्चात् सुस्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन केवल अपील दाखिल करने के कारण पंचाट का कोई स्वतः स्थगन पोषणीय नहीं होगा।

20. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा **स्मॉल स्केल इंडस्ट्रियल मैनुफैक्चरर्स एसोसिएशन (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त करते हुए उठाया गया अन्य तर्क यह है कि चूँकि याचिकाकर्ता की ओर से कोई चूक नहीं थी, इसलिए अंतःकालीन लाभ अनुदत्त नहीं किया जाना चाहिए था।

21. उपरोक्त निर्णय के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि उक्त निर्णय पूरी तरह से उस मामले के तथ्यों पर आधारित था क्योंकि वह संघ सरकार द्वारा विरचित आर्थिक नीतियों से संबंधित था, किन्तु हस्तगत मामले के तथ्य पूरी तरह से भिन्न हैं। याचिकाकर्ता ने पंचाट दिनांक 19.7.2017 के अनुसार 30 दिनों के भीतर कब्जा नहीं सौंपा, और न ही पंचाट को सक्षम न्यायालय द्वारा स्थगन दिया गया था या अपास्त किया गया था, इसलिए, उक्त निर्णय का लाभ याचिकाकर्ता के पक्ष में नहीं दिया जा सकता है।

22. स्वीकार्य रूप से, याचिकाकर्ता ने पंचाट पारित होने की तिथि से 30 दिनों के भीतर प्रश्नगत परिसर को खाली नहीं किया है और इसके अतिरिक्त याचिकाकर्ता ने यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई है कि पंचाट को किसी भी सक्षम न्यायालय द्वारा स्थगन दिया गया था, इसलिए, विरोधी प्रतिवादी सं. 1 अंतःकालीन लाभ का हकदार है।

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राजस्थान राज्य बनाम जे.के. सिंथेटिक्स लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

14. विरोधी प्रतिवादियों ने ब्याज की माँग और नियम 64ए की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाओं का दूसरा दौर दाखिल किया, दो आधारों पर: कि नियम 64-ए

अवैध था; कि ब्याज की दर अत्यधिक थी। विद्वान एकल न्यायमूर्ति ने साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स के निर्णय के दृष्टिगत पहले तर्क को अस्वीकार कर दिया। तथापि, उन्होंने दूसरे तर्क को स्वीकार कर लिया और ब्याज की दर को 12% प्रति वर्ष तक सीमित कर दिया। विरोधी प्रतिवादियों ने उच्च न्यायालय के उस आदेश को चुनौती नहीं दी है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वे 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करने के लिए दायी हैं। उन्होंने वास्तव में ऐसी दर पर ब्याज का भुगतान किया है। हमारे समक्ष, राज्य के ब्याज की दर में वृद्धि के दावे का विरोध करने के लिए जोर दिए गए तर्कों में से एक दायित्व के बारे में मूलभूत प्रश्न के संदर्भ में है। यह निवेदन किया गया था कि बढ़ी हुई रायल्टी राशि पर ब्याज का भुगतान करने के लिए वे दायी नहीं थे, वृद्धि और उच्च न्यायालय के अंतरिम स्थगन आदेश को उनकी चुनौती के दृष्टिगत। विरोधी प्रतिवादियों द्वारा यह निवेदन किया गया था कि भले ही रायल्टी दर को संशोधित करने वाली अधिसूचना दिनांक 17.2.1992 को चुनौती देने वाली रिट याचिकाएँ अंततः खारिज कर दी गईं, ब्याज की रायल्टी राशि में अंतर पर भुगतान करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा किसी विशिष्ट निदेश के अभाव में, स्थगन के प्रचालन की अवधि के दौरान वे कोई ब्याज का भुगतान करने के लिए दायी नहीं थे। यह प्रश्न अब विचार के लिए नया नहीं है। हम इस न्यायालय के 11 निर्णयों का संदर्भ दे सकते हैं जिन्होंने सुस्पष्ट रूप से स्थगन की अवधि के लिए ब्याज का भुगतान करने के दायित्व के बारे में प्रतिपादित किया है जब स्थगन अंततः खाली कर दिया जाता है।

15. कनोरिया केमिकल्स एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम यू.पी. स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड - 1997 (5) एससीसी 772 के मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि बिजली के शुल्कों को संशोधित करने वाली अधिसूचना पर स्थगन प्रदान करने का यह प्रभाव नहीं होता है कि यह अंतरिम स्थगन के कारण उनके द्वारा रोकी गई राशि पर ब्याज (या विलंबित भुगतान अधिभार) का भुगतान करने के दायित्व से उपभोक्ता को मुक्त कर दे, यदि और जब रिट याचिकाएँ अंततः खारिज कर दी जाती हैं। उक्त सिद्धांत निम्नलिखित तर्क पर आधारित था:

"अन्यथा अभिनिर्धारित करने का अर्थ यह होगा कि यद्यपि बिजली बोर्ड, जो रिट याचिकाओं में प्रतिवादी था, उसमें सफल होता है, फिर भी विलंबित भुगतान अधिभार से वंचित हो जाता है जो टैरिफ नियमों/विनियमों के अधीन उसे देय है। यह न्यायालय के आदेशों के कारण हानि है और उसकी कोई गलती नहीं है। वह रिट याचिका में सफल होता है और फिर भी हार जाता है। उपभोक्ता रिट याचिका दाखिल करता है, दरों को संशोधित करने वाली अधिसूचना के प्रचालन पर स्थगन प्राप्त करता है और अधिसूचना की विधिमान्यता पर अपने आक्षेप में विफल रहता है और फिर भी वह स्थगन की अवधि के लिए विलंबित भुगतान अधिभार का भुगतान करने के दायित्व से मुक्त हो जाता है, जिसका भुगतान

करने के लिए वह आपूर्ति के सांविधिक निबन्धनों और शर्तों के अनुसार दायी है - जो निबन्धन और शर्तें वास्तव में बोर्ड के साथ उसके द्वारा की गई आपूर्ति की संविदा का हिस्सा हैं। हम यह नहीं सोचते हैं कि कोई भी ऐसा अनुचित और असाम्यिक प्रतिपादन विधि में पोषणीय हो सकता है..... यह भी समान रूप से सुस्थापित है कि एक रिट याचिका/वाद या अन्य कार्यवाही के निपटान के लंबित रहने के दौरान अनुदत्त स्थगन का आदेश मूल कार्यवाही के खारिज होने के साथ समाप्त हो जाता है और यह कि ऐसे मामले में न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह पक्षकारों को उसी स्थिति में रखे जिसमें वे न्यायालय के अंतरिम आदेशों के बिना होते। कोई अन्य मत किसी पक्षकार (इस मामले में बोर्ड) को उसकी कोई गलती न होने पर भी न्यायालय के कार्य या आदेश से हानि पहुँचाएगा और इसका यह भी अर्थ होगा कि एक रिट याचिकाकर्ता को उसकी विफलता के बावजूद पुरस्कृत करना। हम यह नहीं सोचते हैं कि कोई भी ऐसा अन्यायपूर्ण परिणाम न्यायालयों द्वारा सहन किया जा सकता है। वास्तव में, यहाँ उपभोक्ताओं का तर्क, यदि तार्किक रूप से बढ़ाया जाए तो इसका अर्थ यह होना चाहिए कि स्थगन के आदेश द्वारा आच्छादित अवधि के लिए बड़ी हुई दरें भी देय नहीं हैं क्योंकि टैरिफ दरों को संशोधित/बढ़ाने वाली स्वयं अधिसूचना का प्रचालन स्थगित कर दिया गया था। सौभाग्य से, ऐसा कोई तर्क अपीलार्थियों द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया। यह समझ से परे है कि बड़ी हुई दरें देय क्यों कही जा सकती हैं किन्तु उस पर विलंबित भुगतान अधिभार क्यों नहीं, जब वृद्धि और विलंबित भुगतान अधिभार दोनों उसी अधिसूचना द्वारा उपबंधित हैं जिसका प्रचालन स्थगित कर दिया गया था।"

24. उपरोक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सुस्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि रिट याचिका खारिज होने के पश्चात्, उपभोक्ता अंतरिम आदेश की अवधि के दौरान भी ब्याज का भुगतान करने के लिए दायी है जो उपभोक्ता को राशि रोकने के लिए हकदार बनाता है।

25. हस्तगत मामले में, माध्यस्थम् पंचाट दिनांक 19.7.2017 को स्थगन नहीं दिया गया था या अन्यथा कोई सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई गई थी और अंततः पंचाट दिनांक 19.7.2017 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट कर दिया गया है और उसके पश्चात् कोई कार्यवाही लंबित नहीं है। इस प्रकार, उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत, विरोधी प्रतिवादी सं. 1 अंतःकालीन लाभ का हकदार है क्योंकि पंचाट दिनांक 19.7.2017 का उसके अक्षरशः और मूल भावना में अनुपालन नहीं किया गया था।

26. उपरोक्त चर्चा के साथ-साथ यहाँ ऊपर संदर्भित सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के दृष्टिगत, आक्षेपित आदेश में इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

27. याचिका में गुणागुण का अभाव है और वही तदनुसार खारिज की जाती है।

(2025) 3 ILRA 98

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद 21.03.2025 और

26.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

वाद अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 10194 सन् 2024

(सिविल)

गोविन्द राम पाण्डे एव एक अन्य

-----याचिकाकर्ता

बनाम

नूतन प्रकाश एवं अन्य

-----प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के ओर से अधिवक्ता :

श्री रवि शंकर पाठक, श्री सिद्धार्थ निरंजन, श्री यादवेन्द्र पाई पाण्डेय, श्री धर्मा पाल सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादी के ओर से अधिवक्ता:

सुश्री अनन्या पाण्डेय, श्री आशीष कुमार दुबे, श्री दुर्लभ कुमार पाण्डे, श्री बद्री मणि त्रिपाठी, श्री राहुल सहाय, श्री राकेश कुमार, श्री यादवेन्द्र राय पाण्डे, सुश्री नंदनी शर्मा, श्री सी.एल. पाण्डे (वरिष्ठ अधिवक्ता) श्री एच.एन. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 227- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- धारा 94- आदेश 40

नियम 1-श्री ठाकुर बलदेव जी महाराज मंदिर उर्फ दाऊजी मंदिर के 'रिसीवर' की नियुक्ति और दैनिक कार्यों का नियंत्रण --कोई भी व्यक्ति संबंधित मंदिर के 'रिसीवर' के रूप में कार्य नहीं करेगा और दिनांक 02.09.1904 के समझौते के अनुसार एक सात सदस्यीय प्रबंध समिति का गठन किया जाएगा ---विद्वान जिला न्यायधीश को निम्नलिखित निर्देशों के साथ मामला प्रेषित किया जाता है: (1) दाऊजी मंदिर के 734 पंडो/सेवायतो, जो छह भागों में विभाजित हैं, कि एक बैठक बुलाए, जिसका संचालन वरिष्ठतम अपर जिला न्यायधीश द्वारा एक माह के भीतर किया जाएगा। (2) सभी 734 सदस्यों द्वारा एक अनुपूरक समझौता केवल इस सीमा तक निष्पादित किया जाएगा कि उनके नाम अभिलेख में दर्ज किये जाए, दिनांक 02.09.1904 के समझौते में निर्धारित नियमों और शर्तों को छुए बिना। (3) सदस्य अपने अपने थोकों में से एक व्यक्ति का चयन करेगा जिसे मंदिर के कार्यों के प्रबंधन हेतु प्रबंध समिति में भेजा जाएगा। (4) प्रबंध समिति का गठन दिनांक 02.09.1904 के समझौते के अनुसार किया जायेगा जिसमें केवल 734 परिवारों के नए सदस्य ही पूरक समझौते का हिस्सा बनेंगे। (5) नवगठित प्रबंध समिति मंदिर के दैनिक कार्यों की देखभाल करेगी। जिला न्यायधीश,

मथुरा से अनुरोध है कि वे आज से दो दिन की अवधि के भीतर, दाऊजी मंदिर की समस्त चल अल सम्पत्ति, जिनमे नकदी, बैंक खाते, आभूषण आदि सम्मिलित है, की पूरी सूची तैयार करवाये। जब प्रबंधन, नवकठित प्रबंध समिति को सौंप दिया जाएगा, तो इस प्रकार तैयार की गई सूची भी हस्तांतरित कर दी जाएगी। (प्रस्तर 61 से 65) (ई-15)

उद्धृत मामले की सूची:

- 1) मुल्जी उमरशी शाह बनाम पैराडिसिया बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड, एआईआर 1998 बाम्बे 87
- 2) एस.बी. इंस्ट्रीज बनाम .यूनाईटेड बैंक आफ इंडिया, एआईआर 1978 189
- 3) सत्यनारायन बनर्जी एवं एक अन्य बनाम कल्याणी प्रसाद सिंह देव बहादुर एवं अन्य , एआईआर 1945 सीएल 387
- 4) राम कुमार पाण्डे बनाम नारायण प्रसाद पाण्डे, मामला अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 1637 सन् 2018, 31/8/208 को निर्णत
- 5) टी. कृष्णा स्वामी चेट्टी बनाम सी. भंगावेलु चेट्टी एवं अन्य, एआईआर 1955 मद्र 430

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा वितरीत किया गया)

1. पवित्र नगरी मथुरा, मंदिर से जुड़े तुच्छ मुकदमों की चपेट में है। इनमें से ज्यादातर मुकदमे 'रिसीवर' की नियुक्ति और दैनिक कामकाज पर नियंत्रण को लेकर हैं।

2. वर्तमान मुकदमा प्रसिद्ध श्री ठाकुर बलदेव जी महाराज मंदिर, जिसे दाऊजी मंदिर भी कहते हैं, से जुड़ा है। यह मथुरा के बलदेव महावन में स्थित एक प्राचीन मंदिर है। इसका इतिहास लगभग 500 वर्ष पुराना है, जब इसका निर्माण/स्थापना परमपूज्य गोस्वामी कल्याण देवाचार्य जी महाराज ने की थी। उनकी मृत्यु के बाद, उनके उत्तराधिकारियों ने मंदिर का प्रबंधन संभाला और सेवा, पूजा, अर्चना आदि का कार्य किया। समय के साथ, उत्तराधिकारियों के परिवार बढ़ते गए और 1903 के अंत तक, 145 परिवार सेवा और पूजा की देखभाल कर रहे थे।

3. स्वीकार्य रूप से, 2.09.1904 को एक न्यासी नामा/इकरार नामा (जिसे आगे "समझौता" कहा जाएगा) निष्पादित किया गया, जिसे 145 परिवारों के सदस्यों द्वारा 13.09.1904 को पंजीकृत कराया गया। पंजीकृत समझौते के अनुसार, 145 परिवार के सदस्यों को छह समूहों (थोकों) में विभाजित किया गया था। उनमें से, सात सदस्यीय प्रबंध समिति नियुक्त की गई, जिसमें निम्नलिखित व्यक्ति सम्मिलित थे:-

(i) नंदन पुत्र छितर (ii) जयराम पुत्र हरदेव (iii) जसरथ पुत्र धनीराम (iv) दानीराम पुत्र ब्रजलाल (v) भगवान पुत्र बंशी (vi) नारायण पुत्र गोरधन लाल (vii) राम प्रसाद पुत्र ठाकुर दास

4. समझौते के प्रस्तर 3 में यह प्रावधान था कि प्रत्येक हिस्सेदार अपनी बारी आने पर पूजा और सेवा करता रहेगा और समिति केवल ऐसी गतिविधियों की निगरानी करेगी। प्रस्तर 5 में यह प्रावधान था कि यदि किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है, या वह काम करने से इनकार कर देता है, या एक वर्ष तक समिति की बैठक में उपस्थित नहीं होता है, तो उसके थोके से एक अन्य सदस्य नियुक्त किया जाएगा। यदि तीन महीने तक कोई सदस्य नियुक्त नहीं होता है, तो शेष सदस्य उसके स्थान पर एक सदस्य नियुक्त करेंगे। इसके अतिरिक्त, उपस्थित सदस्यों के बीच विवाद की स्थिति में, देवता के समक्ष लॉटरी निकाली जाएगी और जिस व्यक्ति के नाम पर चिट खुली है, उसे सदस्य नियुक्त किया जाएगा।

5. 02.09.1904 को निष्पादित और 13.09.1904 को पंजीकृत समझौता मामले की बेहतर समझ के लिए नीचे उद्धृत किया गया है:-

“बही नं० 4 तरतीबी दस्तावेज 132 मालियत स्टाम्प 15

न्यासीनामा/इकरारनामा

हम कि:-

1-नेतराम व 2-रेवती पिसरान सुखराम व 3-मोरध्वज बल्द रामशरन व 4-दीसा बल्द बद्री व 5-लोचन बल्द बुद्धी व 6-लजा बल्द नारायन व 7-गंगाधर बल्द गोविन्दराम व 8-शिवरतन बल्द टैनी व 9-शंकर बल्द तेजा व 10-रघुवर बल्द जुगला व 11- घसीटा व 12-रामचन्द पिसरान जयराम व 13- इन्दरजीत बल्द दामोदर व 14- टीकाधर बल्द जयदेव 15- मोहनलाल 16- व मूली पिसरान धीरजलाल व 17- टोका बल्द जनादन व 18-रामप्रसाद व 19- चिरंजी पिसरान चतुर्भुज व 20- राधाचरन बल्द तोता व 21- बन्शीधर बल्द दयाकिशन व 22- दानीराम व 23-पेमानन्द पिसरान, ब्रिजलाल व 24-राधाचरन व 25-लक्खीराम पिसरान हरफूल व 26- पन्नी बल्द चेती व 27-जोहरी व 28- मूला व 29- खरमर पिसरान केशव व 30- श्रीधर रुन्द किशनलाल व 31-शिवलाल बल्द गोरधन लाल व 32-छीतो व 33-अर्जुन पिसरान बासुदेव व 34-घसीटा बल्द मूलिराम 35- खलाल पलाल व 36-हरफूल व 37-दीपा व 38-इन्दर पिसरान कमला व 39- परमा व 40-लकूवी व 41-मूला पिसरान सुखदेव व 42-रामचन्द बल्द जैजीराम व 43- जशरथ बल्द धनीराम व 44-मिछल व 45- कुना व 46- चतुरा पिसरान सुखदेव व 47-नन्दन बल्द छीतर व 48-रोशनलाल व 49- टीकाधर पिसरान रामरतन व 50-जसरथ बल्द जयदेव व 51-जयराम बल्द हरदेव व 52-तोता व 53-बंशी व 54- कुण्डा व 55-दुरगा व 56-मैजी पिसरान चुन्नी लाल व 57-रेवती बल्द मुरली व 58-गनपति व 59- शंकर पिसरान तोताराम व 60-मुन्शी व 61-हरचरन व 62-द्वारिका पिसरा धरनीचर व 63-इन्दर व 64-नत्थी पिसरान गंगाधर व 65-बाबू बल्द बंशीराम व 66-छीतो व 57-भद्री व 68-रघुवर पिसरान ठाकुरदास व 69-भिको बल्द नत्थी व 70- रामलाल बल्द दूला व 71- मूला बल्द चरंजी व 72- नारायन बल्द राधे व 73- नत्थो बल्द मथुरा व 74-रणछोर बल्द मनमोहन व 75-रोशन लाल व 76-इन्दर व 77-चुन्नीलाल पिसरान चतुर्भुज व 78-नाथूराम व 79-ब्रजबल्लभपिसरान परसादीलाल व 80-जयदेव व 81-कुन्जबिहारी व 82-श्यामलाल पिसरान जयराम व 83-रामप्रसाद बल्द ठाकुरदास व 84-बंशी व 85- जम्मन पिसरान केवलराम व 86-भगवान बल्द बाबू मुकुन्द व 87-गिरधर बल्द रामरतन व 88- निड्डी वल्द तीरथा व 89-फूली व 90- ब्रजमोहन पिसरान रनछोर व 91-जयकिशोर व 92- नारायन व 93-धीरजलाल पिसरान गोर्धन लाल व 94--नन्दन बल्द गोकुलचन्द व 95- नौनिद्धि बल्द इन्द्रजीत व 96-मंगी व 97-केसरी पिसरान रामलाल व 98-गंगाधर व 99-दीपचन्द

पिसरान नेतराम व 100शिवलाल व 101- धूजी पिसरान रघुरवर व 102धनीराम व 103-जीवन व 104- शंकर पिसरान परसादी लाल 105सावलिया बल्द टीकम व 106-हरचरन बल्द रनछार व 107भगवान व 108द्वारिका व 109-ब्रजलाल पिसरान वंशी व 110- डालचन्द बल्द रनछोर व 111चिरंजीलाल बल्द हरनाम व 112-मूलो बल्द मोहनीराम व 113गंगाधर बल्द जसरथ व 114- द्वारिका व 115- छिददा लाल व 116श्रीदामा पिसरान केदार व 117-कमला बल्द किशनलाल व 118- धीरज लाल बल्द धनी व 119- मूला बल्द मकखन व 120- खूबी बल्द हरिराम व 121भोला बल्द मूली व 122मेवाराम व 123-टीकम व 124- नेकराम पिसरान हरबल्लभ व 125सोहन बल्द बालमुकुन्द व 126- चिरंजी व 127- गिरवर पिसरान नन्दन व 128फूली बल्द दामोदर व 129- धूजी बल्द केशवदेव व 130- शिवलाल व 131वासुदेव पिसरान नन्दन व 132- चिरंजी व 133राधाचरन पिसरान इन्दर व 134-नाथूराम बल्द वजयंत व 135- काशीराम बल्द हन्डू व 136- धीरज लाल व 137धनीराम पिसरान भवानी शंकर व 138- नत्थू बल्द नन्दकिशोर व 139-चुन्नी बल्द चतुरी व 140-जयकिशोर व 141- धिरंजी बुल्द बलदेवदास व 142टीकम पिसरान सेवाराम व 143- विद्याधर बल्द खुशालीराम व 144रामप्रसाद बल्द गंगाराम व 145-तोता बल्द नन्दन अकवास ब्राह्मण अहिवासी साकिनान कस्बा बलदेव पण्डगान व पुजारीयान श्री ठाकुर बलदेव जी महाराज कस्बा बलदेव परगना महावन जिला मथुरा के हैं। जोकि जुमलाइन्तजाम व महतमाम मन्दिर बलदेव जी उर्फ दाऊजी महाराज बाके दलदेव परगना महावन जिला मथुरा हमेशा से हम और हमारे मुरिस करते रहे हैं और सिवाय हमारे और किसी का दखल व तसरूफ उसमें कभी कुछ नहीं रहा और यह इन्तजाम इस तौर होता आया कि हम पण्डे अपनी तरफ से चन्दअसखास को मुहतमित मुकर्रर कर देते हैं व सब कार्यवाही मन्दिर व जायदाद मुताबिक मन्दिर की किया करते हैं अब चन्द साल से वाहम हम पण्डगान की न्गइस्तफाकी रहती है और मोहतमिनान साबिका में से अक्सर फौत हो गये और इस वजह से काम में अवतरी बाके होती है। देहात मुआफी मुतालिका मन्दिर का रूपया हमेशा से गोलक मन्दिर में दाखिल हुआ करता था उसकी अदखाल की नौहबत कई साल से आज तक नहीं पहुंची और नजर भेट की आमदनी पेशतर आती थी। यह भी पूरे तौर पर दाखिल मन्दिर ठाकुर जी महाराज नहीं हुई इसमें भी अक्सर दस्तअन्दाजी होती है और बाज बाज किताआत जमीन उफतादा व बंजर जो मिनजुमला आराजी मुआफी की है और यह इन्तजाम इस तौर होता आया कि हम पण्डे अपनी तरफ से चन्दअसखास को मुप्तमित मुकर्रर कर देते हैं व सब कार्यवाही मन्दिर व कायदा मुतालिक नन्दः शी किया करते हैं अब चन्द साल से वाहम हम पण्डगान की न्गइस्तफाकी रहती है और मोहतमिनान साबिका में से अक्सर फौत हो गये और इस वजह से काम में अवतरी बाके होती है। देहात मुआफी मुतालिका मन्दिर का रूपया हमेशा से गोलक मन्दिर में दाखिल हुआ करता था उसकी अदखाल की नौहबत कई साल से आज तक नहीं पहुंची और नजर भेट की आमदनी पेशतर आती थी। यह भी पूरे तौर पर दाखिल मन्दिर ठाकुर जी महाराज नहीं हुई इसमें भी अक्सर दस्तअन्दाजी होती है और बाज बाज किताआत जमीन उफतादा व बंजर जो मिनजुमला आराजी मुआफी की है और एक बाग तखमीनन 27बीघा ठाकुर जी महाराज है। बाज बाज मकानात व कुन्जाई व वगैराह मुतालिल्का मन्दिर हैं उन पर खिलाफ दस्तूर व रिवाज कदीमाना बेडोल बेतसर्रफ जाती अपना कर रखा है और नेज दीगर उमूर मुतालिल्का मन्दिर में सिवाय सेवा पूजा राम भोग के सूरत बेइन्तजामी बरपा है लिहाजा हम मिनमुकरान जो बुजुर्ग और कारकुन सरगर्दा अपने अपने खानदान के हैं एक कमेटी इतजामी जिसमें 7पण्डे मैम्बर होंगे मुकर्रर करते हैं और जिस तरीके से इन्तखाब मैम्बरान का हुआ है यह तरीका यह है कि

नम्बर 1-कि फिलहाल दो थोक आठ आठ आने के हैं और एक आठ आना में तीन थोक छटे छटे हिस्से के हैं और दूसरे आठ आना में एक चार आना का और दो थोक दो दो आने के हैं इन छः थोक से एक एक मैम्बर मुन्तखिब किया गया है और इसी तरह आयिन्दा भी मुन्तखिब होगा एक सातवां मैम्बर एक थोक चार आना से जैसा कि अब हुआ है कि मुन्तखिब होगा मगर दूसरी साल आठ आना के थोक में से जिसमें तीन छटे छटे हिस्से के थोक शामिल हैं मुन्तखिब किया जायेगा।

नम्बर 2-इस वक्त इस कमेटी के मैम्बर असखास जैल है नन्दन बल्द छीतर, जयराम बल्द हरदेव, जसरथ बल्द धनीराम, दानीराम बल्द ब्रजलाल, भगवान बल्द वंशी, नारायण बल्द गोरधन लाल, रामप्रसाद बल्द ठाकुरदास ।

नम्बर 3-सबकाम मन्दिर मसलन इन्तजाम आमदनी जायदाद मुतालिल्का मन्दिर व जायदाद चढ़ावा हर किस्म व नजर भेट व तकरूर व मौकूफी मुलाजमान व मरम्मत बगैराह मकानाते व करने नालिशात व जबावदेही का इख्तियार कमेटी का होगा मगर अमलदरामद सेवा पूजा व राग भोग ठाकुर जी महाराज जैसा कि आयिन्दा से है बदस्तूर कायम रहेगा और हम लोगों का हिस्सा बदस्तूर कदीम तकसीम है। जाया करेगा वाद खत्म होने साल के माह पूस या माघ जो रूपया मसारिफ राग भोग सेवा पूजा व सौरात व दीगर अखराजात मन्दिर से बचेगा वो वाद वजह करने जर व फण्ड के जिसका जिक्र दफा 12में है पण्डगान में माफिक दस्तूर के तकसीम हो जाया करेगा और सेवा पूजा भी हस्व अमरदरामद साबिका बदस्तूर से होगी कि हर हिस्सेदार अपनी अपनी बारी से सेवा पूजा इन्तजाम व राग भोग करता रहेगा कमेटी सिर्फ सेवा पूजा की निगराह रहेगी।

नम्बर 4- कमेटी इन्तजामी को लाजिम होगा कि इन्तजाम काम मन्दिर व इमलाफ मन्दिर के वास्ते कवायद मनजब्ता करे और उसकी एक नकल जिस पर दस्तखत जुमला मैम्बरान के होंगे मंजरे आम मन्दिर में उतरान रखें और एक नकल बजरिये हाकिम परगना खिदमत में जनाव साहब कलेक्टर बहादुर भेजें और कबायद मनजब्ता कमेटी के सब मैम्बरान पाबन्द रहेंगे।

नम्बर 5-जब कोई मैम्बर मर जावे या काम करने से इन्कार या गफलत करे या ववजह जईफी वगैराह नाकाबिल काम के हो जावे या कोई फेल बददियानती करे या अरकान जरायम संगीन सजायाब हो जावे या अपने मजहब को तरक कर दे या एक साल तक मुताबातिर कमेटी से गैर हाजिर रहे तो वह अपने अहोदे से अलहदा कर दिया जावेगा और उसके बजाय पण्डे वसलाह वाहमी दूसरा शख्स उसी थोक से नामजद कर दें अगर तीन महीना तक पण्डे नामजद न करें तो वावहू बाकी मैम्बर एक दूसरा मैम्बर कसरतराये से मुकर्रर कर देंगे। अगर ताहम मैम्बरान में इत्फाक न हो या पण्डों ने एक से ज्यादा को नामजद किया हो तो मैम्बरान कमेटी ठाकुर जी महाराज के सामने मजमा आम में चिड़ड़ी डालकर जिसके नाम की चिड़ड़ी निकले उसको मुकर्रर कर दें।

नम्बर 6-दरसूरत बददियानती या तरक करने मजहब के एक दरखास्त जिस पर सौ पण्डों के दस्तखत होंगे सबूत काफी वास्ते वरखास्तगी के मैम्बर के होगा।

नम्बर 7-मैम्बरान कमैटी मिनजुमला मैम्बरान के एक मैम्बर को मैम्बर मजलिस वास्ते एक साल के मुकर्रर करेंगे। जब तक दूसरा मैम्बर मजलिस किसी साल के वास्ते मुकर्रर न किया जावे तो मैम्बर मजलिस साबिक मैम्बर मजलिस कमैटीमुतसब्बिर होगा इस साल जसरथ पण्डा मैम्बर मुकर्रर हुआ।

नम्बर 8-मामूली तौर पर कमैटी सहमायी हुआ करेगी मगर शर्त जरूरत मैम्बरान कमैटी खास कमैटी भी कर सकती है कार्यवाही कमैटी एक रजिस्टर में तहरीर की जावेगी।

नम्बर 9-इतला तारीख कमैटी की मैम्बरान को अमूमन तीन योम पेशतर हो जाया करेगी और कम अज कम तीन मैम्बर जब जमा हो जाये तो काम कमैटी किया जावेगा।

नम्बर 10-अगर किसी अमर की निस्बत मैम्बरान कमैटी के इख्तलाफ होगा तो फैसला कसरत राये से होगा अगर मैम्बरान कमैटी मसावी हो तो मैम्बर मजलिस की राय बराबर दो राये के समझी जावेगी।

नम्बर 11-अगर किसी कमैटी से मैम्बर मजलिस गैर हाजिर हो तो दीगर मैम्बरानं हाजिर उस वक्त में से किसी को मैम्बर मजलिस उस कमैटी का मुन्तखिब करेंगे।

नम्बर 12-मैम्बरान कमैटी हिसाब आमदनी व इखराजात का रखेंगे और साल तमाम पर वाद तय होने मसारूप व इखराजात के नगद रूपया पण्डगान में तकसीम किया जावेगा उसमें अव्वलन यह कार्यवाही होगी कि तीन सौ रूपया कब्ल तकसीम हमेशा निकाला जावेगा और वह रूपया जमा रहेगा उस रूपयों में से इखराजात गैर मामूली मन्दिर के अगर कोई हो तो किये जायेंगे वरना वह रूपया ऐसी जगह काम में लगाया जावेगा कि जिससे आयन्दा तरक्को व कबायद मन्दिर मुतसबिर हो और उसका हिसाब पूरी तौर पर अलहदा मैम्बरान कनटी मुर्तिब करते रहेंगे।

नम्बर 13- न्यासीनामा हाजा का नफाद तारीख रजिस्ट्री से मुतसबिर होगा और शरायत मुदरजा न्यासीनामा हाजा और कबायद माखूजा व मुनकिता की पायबन्दी हम और हमारे बुरसा व कायम मुकामान व जानसीनान पर नसलन बाद नसलन लाजिम होगी किसी को किसी वक्त में इतराफ न होगा लिहाजा चन्द कलमा वतरीक न्यासीनामा लिख दिये कि सनद रहे तहरीर तारीख दोयम (2) सितम्बर 1904ई० वकलम श्यामलाल चौधरी

(दस्तखत) दः तोता (145) दः श्योरतन (8) दः मोरद्वज (3) दः राधाचरन (20) दः रनछोर (74) दः लकीराम (40) दः जैराम (51) दः छीती (66) दः मिकु (49) दः नन्दन (94) दः धीरजा (136) दः मूला (71) दः बाबूराम (65) दः रघुवर (68) दः रामलाल (70) दः हरचरन (61) दः चुनी (139) दः गोरधनलाल (7) निशानी हरफूल (37) दः इन्दर (36) दः रेवतीशरन (2) दः टीकाधर (49) दः धीरजलाल (118) दः मोहनलाल (15) दः रामचन्द (12) दः नेकसे (14) दः ब्रजबाधभ (79) दः रोशलाल (75) दः श्यामलाल (82) दः चिरंजी (141) दः कुन्दा (54) दः चिरंजी (111) दः दुरगा (55) दः गिरवर (127) दः कुन्जबिहारी (21) दः मूलचन्द

(41) वासुदेव दः मूला (28) दः नत्थी (62) दः खरमर (29) गवाह डालचन्द बल्द सुखदेव गवाह गोरधन लाल रामरतन कौम पण्डा साकिन बलदेव गवाह गोरधन लाल गवाह केशवदेव बल्द नारायण दास कौम बनीया साकिन बलदेव बरवत सराफी तस्दीक की जाती है कि दस्तावेज हाजा में मुसवा साताकेता और मुताल्लिका है केदारनाथ सबरजिस्ट्रार नम्बर 132पर आज तारीख 13सितम्बर 1904ई० रजिस्ट्री की गयी

केदारनाथ सबरजिस्ट्रार

6. उपरोक्त दस्तावेज के लागू होने के बाद, लगभग एक दशक तक 145 परिवारों द्वारा पूजा-अर्चना और सेवा जारी रही, लेकिन वर्ष 1923 में प्रबंध समिति के कामकाज को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया। 17.06.1923 को दाऊजी मंदिर के 200 पंडों (सेवायतों) की एक बैठक हुई और सात सदस्यीय प्रबंध समिति को हटाने का प्रस्ताव पारित किया गया, जो 1904 में नियुक्त किए गए मूल सदस्य नहीं थे और जिन्होंने स्वयं को उनके विधिक उत्तराधिकारी होने का दावा किया था। उसी दिन, 200 पंडों द्वारा सात सदस्यीय समिति का गठन किया गया, जिसमें शिवचरण लाल, शंकर लाल, पुरुषोत्तम लाल, गोपाल, गोकुल चंद्र, कन्हैया और देवकी नंदन सम्मिलित थे। 31.10.1923 को, इन सात सदस्यों ने सब जज, बहादुर, मथुरा, जिला-आगरा के समक्ष सोहन पुत्र दशरथ, बाबू पुत्र भोली, हरनाथ पुत्र दानीराम, श्री दामो पुत्र रामचरण, हंसलाल पुत्र गोवर्धन, धूजी पुत्र भगवान और शिवचरण पुत्र नंदलाल के विरुद्ध मूल वाद संख्या 94 सन् 1923 प्रस्तुत किया। वादपत्र में, यह आरोप लगाया गया था कि पंजीकृत समझौते दिनांक 02.09.1904 के अनुसार, सात सदस्यीय समिति गठित की गई थी जिसमें दशरथ, दानीराम, नंदन, जयराम, नारायण, भगवान और राम प्रसाद सम्मिलित थे। मूल प्रबंधन समिति के सदस्यों की मृत्यु के बाद, समझौते के अनुसार कोई नया सदस्य सम्मिलित नहीं किया गया था, परन्तु उनके विधिक उत्तराधिकारियों और निकट संबंधियों ने प्रबंधन की एक समिति बनाई थी। उक्त मुकदमे में, मंदिर के मामलों के प्रबंधन के लिए घोषण की राहत के साथ-साथ प्रतिवादियों को शांतिपूर्ण कामकाज में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की राहत मांगी गई थी वाद संख्या 94 सन् 1923 का सम्पूर्ण वाद नीचे उद्धृत है:-

“बअदालत सब जज बहादुर मथुरा जिला आगरा

मुकदमा दीवानी नम्बर 94/1923

शिवचरण लाल बल्द नाथूराम व शंकर लाल बल्द परसादी लाल व पुरुषोत्तम लाल बल्द टीकम दास, गोपाल बल्द नेतराम व गोकुल चन्द बल्द धूजीराम व कन्हैया लाल बल्द सुखदेव व देवकी नन्दन बल्द रन्छोर अकवाम ब्राह्मण पण्डा साकिनान कस्बा बलदेव, परगना महावन, जिला मथुरा

मुददईयान

बनाम्

सोहन बल्द दशरथ व बाबू बल्द भोली व हरनाथ बल्द दानीराम व श्री दामो बल्द रामचरण व हंसलाल बल्द गोरधन लाल व धूजी बल्द भगवान व शिवचरण बल्द नन्दलाल अकवाम ब्राह्मण पण्डा साकिनान कस्बा बलदेव, परगना महावन, जिला मथुरा

मुददालय

मुद्दईयान मजकूर हस्व जैल अर्ज करते हैं :-

1. यह कि बमुकाम कस्या बलदेव, परगना महावन, जिला मथुरा एक नशहूर मन्दिर श्री दाऊजी महाराज का वाकै है और कसीर जायदाद मंकूला व गैर मंकूला और जंर आमदनी मन्दिर की है।

2. यह कि पण्डमान साकिनान कस्बा बलदेव मौरूसी ट्रस्टियान मन्दिर मजकूर के हैं और हमेशा से मन्दिर व जायदाद मुताल्लिका मन्दिर का इन्तजाम करते रहे हैं।

3. यह कि बगरज सहूलियत इन्तजाम त रफे निदा बाहमी सरगर्दा पण्डों की बजरिये इकरानामा मौरखा 2 सितम्बर 1904 एक कमेटी सात अशखास की हस्व शरायत मुन्दरजा इकरारनामा मजकूर मुकर्र की और अब्बल मेम्बरान कमेटी हस्व जल करार दी गई। 1. दशरथ, 2. दानीराम, 3. नन्दन, 4. जैराम, 5. नारायन, 6. भगवान, 7. रामपरसाद

4. यह कि मिनजुमला मेम्बरान मुकर्रर शुदा के जो मरता गया उसके बजाय कोई मेम्बर हस्व जाब्ता मुन्दरजी इकरारनामा मजकूर जदीद नेम्बर मुकर्रर नहीं किया गया बल्कि चार बाकी मांदा मेम्बरान के वारिस या सगे सम्बन्धी मेम्बर कर लिया गया। आखिर मेम्बर नन्दन फौत हुआ इस तौर से मुद्दालय नम्बरानी से सात मेम्बरान कमेटी और मुन्तजिम मन्दिर नाजायज तौर से बन बैठे और अब मन्दिर का इंतजाम कर रहे हैं।

5. यह कि मुद्दालय मजकूर और उनके मुनकदली इकरारनामा 2 सितम्बर 1904 की शरायत के विरुद्ध अमलदरामद करते रहे और मन्दिर का काम मुनासिब और सही तौर पर नहीं चलाया और उन्होंने सदाबरात बन्द कर दिया और मुकर्रम तादाद गोआन की नहीं रखते न सालाना हिसाब समझाया न पण्डों में रूपया तकसीम किया और कोई बाजाब्ता हिसाब लिखा और व कार्यवाही सही तरह से की गई और इन्तजाम जायदाद मुतालिका मन्दिर का ईमानदारी से नहीं किया और जायदाद मरम्मत तलब की मरम्मत... करायी और न पूरा रूपया गोलक में जमा किया और अकसर कार्यवाइयां ऐसी है जिसमें मन्दिर का रूपया फिजूल खर्च हुआ और जायदाद मन्दिर को नुकसान पहुंचा और दीगर तौर पर मुरतकिब बदनीयती और बद एमालियों की हुई।

6. यह कि बवजह बद इन्तजामी व बददयानती तजेकरा बाला के एक नालिश नम्बर 1/1912 बऊचालत साहब जज बहादुर आगरा में हस्थ दफा 92 जाब्ता दीवानी प्रस्तुत की गयी लेकिन न्यायालय हाईकोर्ट ने ये तजवीज हुआ कि नालिश मजकूर मिस्ल मामूली नालिश बाहमी मालिक दरमैण्ट की न्यायालय सब जजी में होना चाहिए।

7. यह कि मुद्दालय और इनके पेशतरों की बद इंतजामी व बद ऐमाली व तजल्लुब से तंग आकर पण्डगान दाऊजी ने बतारीख 17 जून सन् 1923 को एक जलसा मुनककद किया जिसमें करीब दो सौ पण्डगान की राय से मुद्दालय इन्तजाम मन्दिर से बरतरफ व बर्खास्त किये गये और मुद्दईयान मेम्बरान कमेटी मुन्तखिब की गया चुनाचे मुद्दईयान मुस्तहक इन्तजाम मन्दिर है।

8. यह कि मुद्दालय से कहा गया कि वो इन्तजा मन्दिर से बाहर हो और मुददई के इन्तजाम मन्दिर में फराहम है लेकिन मुद्दालय परवाह नहीं करते चुन हिजामहत दावा हाजा बतारीख 17 जून 1923 ई० बमुकाम कस्बा वलदेव, पर महावन, जिला मथुरा अन्दर इलाका न्यायालय हाजा के पैदा हुआ।

9. यह कि हक दावा बगरज समाअत न्यायालय हाजा का है और कोर्ट फीस मुब 5 रूपया इस्तकरार और मुबलिग 6 रूपया 2 आना बिना पर हुकम इम्ताई मुब अदा किया गया मेम्बरान मुददईयान दाद ख्वाह है।

(अलिफ) इस्तकरार इस अग्र का अदालत से सादिर फरमाया जावे कि मुददईयान मुस्तहक इंतजाम मन्दिर व जायदाद मुताल्लिका मन्दिर के है और मुद्दालय को कोई हक मन्सब व इस्तहकाक इन्तजाम मन्दिर जायदाद मुतालिका मन्दिर का नहीं है।

(बे) हुकम इन्तआई दवामी बनाम् मुद्दालय जारी फरमाया जावे कि वह मुददईयान के इंतजाम मन्दिर व जायदाद मुतालिका मन्दिर में फराहम न हो।

(लीम) खर्चा मुकदमा मुद्दालय से दिलाया जावे।

मद नं 1 व 2, 3, 4, 5, 6, 7,

बइल्म जाती है और मद 9 को

हस्व मशवरा कानूनी राय के

हुआ इकरार करता हूँ बमुकाम

मथुरा तारीख 31 अक्टूबर सन् 1923"

7. वाद संख्या 94 सन् 1923 के प्रतिवादियों ने इसका विरोध किया और 03.10.1924 को अपना लिखित उत्तर प्रस्तुत किया। लिखित उत्तर के प्रस्तर 3 में, वादपत्र के प्रस्तर 3 को स्वीकार किया गया। वादपत्र के प्रस्तर 4 को प्रतिवादियों द्वारा लिखित उत्तर के प्रस्तर 4 में इस हद तक स्वीकार किया गया कि प्रबंध समिति के सदस्यों की मृत्यु हो चुकी थी और वे मंदिर के कामकाज का प्रबंधन कर रहे थे। वाद संख्या 94 सन् 1923 के प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत लिखित उत्तर का अंश इस प्रकार है:-

बअदालत सब जजी मथुरा

नम्बर मुकदमा 94सन् 1923

शिवचरन लाल वगैरह बनाम्

-----मुददईयान

सोहन वगैरह

-----मुद्दालय

ब्यान तहरीरी मिनजानिव मुद्दालय हस्व जैल है:-

1. मद: 1अर्जी दावा तस्लीम है।

2. मद 2में वे अम्र गलत है. कि हमेशा से जुमला पण्डमान इन्तजाम करते रहे हैं

बकाया मजमून तस्लीम है।

3. मद 3तस्लीम है।

4. मद 4में साबिक मैम्बरान कमेटी का फौत होना और मुद्दालय का इन्तजाम करना तस्लीम है बाकी मजमून से इंकार है।

5. मद 5सरासर गलत है:

6. मद 6में अल्फाज बदइंतजामी व बददयानती गलत व वेजा दर्ज है।

7. मदात 7, 8 9तस्लीम नहीं है।

उजरात मजीद

8. यह कि माबैन फरीकेन व दीगर पण्डमान मुकदमा नम्बरी 51सन् 1918ई० वास्ते दादरसी मुन्दरजा अर्जी दावा व दीगर दावर से दायर हुआ था जो अदालत हाजा से खारिज हुआ और अब बकईया अपील अदालत आलिया हाईकोर्ट में दायर है हस्व दफा 10जाब्ता दीवानी नालिश होने के तजबीज व समात नहीं हो सकती

उजरात मजीद

9. यह कि मुद्दालय काबिज मन्दिर व जायदाद मुतालिका भन्दिर है नालिश इस्तकरार व हुकम इन्साती काबिज कायम रहने के नहीं है और जरूरी असखास फरीक मुकदमा नहीं किये गये हैं।

10. यह कि दावे में दफा 42 कानूनन दादरसी खास गलत है।

11. तईयुन नालिश कम किया गया है और कोर्ट फीस नाकाफी अदा किया गया है।

12. नालिश हाजा में तमादी गलत है।

13. यह कि मुद्दईयान व जुमला पण्डमान अपनी तरजे अमल से मुद्दालय को मैम्बरान तस्लीम करते रहे हैं और अपना हिस्सा तकसीम गोलक से लेते रहे हैं अब उनको मन्सब दारी हांसिल नहीं है।

14. यह कि पेशतर नालिश नम्बरी 101 सन् 1910 ई० खारिज हो चुकी है दावे में दफा 11 जाब्ता दीवानी गलत है।

15. यह कि मुद्दालय बहैसियत अपने-अपने पेशतकन हक के फौत होने पर हस्व शरायत इकरारनामा 2 सितम्बर 1904 बाकायदा मुकरर की गयी है। यह ब्यान मुद्दईवान कि मुद्दालय नाजायज तौर से मेम्बरान कमेटी व मुन्तजिम बन बैठे हैं गलत है।

16. यह कि कोई कमेटी जुमला पण्डमान तजकरा मद 7 अर्जी नालिश नहीं हुई न मुद्दईयान बाजाब्ता मेम्बरान कमेटी मुकरर की गई न बमौजूदगी मुद्दालय के मुद्दईयान या और कोई शख्स मेम्बरान कमेटी मुकरर हो सकता है।

17. यह कि मुद्दईयान व उनके मिस्ल मधून ने अगर पोशीदा तौर पर मुद्दईयान गैर हाजिरी कसीर तादाद पण्डमान जो परदेस गये हुये थे अगर कोई..... है तो ऐसे जलसे में न मुद्दईयान मुन्तखिव हो सकते हैं। न उनको हक इन्तजार या नालिश पैदा होता है।

18. यह कि मुद्दालय जमीअत ने खल्फ दरानी शरायत इकरारनामा 2 सितम्बर 1904 ई0 की न बदइंतजामी बददयानती की, इल्जामात मुन्दरजा मद 5 अर्जी दावा अदावतन गलत लिखायी गयी है।

खास खास इल्जामात का जबाव दिया जाता है

(अलिफ) सदाबरत कभी बन्द नहीं हुआ

(बे) कोई तादाद गठ्ठों की मुकर्रिर नहीं है न मन्दिर के वास्ते गठ्ठू खरीदें जाते हैं।

(जीम) रुपया का हिसाब बराबर समझाया गया और रुपया तकसीम किया गया।

(द) हस्व कायदा कदीम हिसाब रखा जाता है और कार्यवाही कमेटी की जाती है।

(हे) मरम्मत जरूरी करायी जाती है अलावा तरीब हमेशा से ये कायदा रहा है कि मरम्मत के सर्फ के वास्ते जात्रियान से इस्तदुआ की जावे चुनाचे भण्डार मन्दिर से मरम्मत ने कराना और जात्रियान के अतीया की कोशिश करना फेल बदइंतजामी नहीं है।

(वाव) कोई कार्यवाही फिजूल खर्ची या मन्दिर को नुकसान पहुंचाने की नहीं की न अब तक बदयेमाली व बदनीयती हुई।

19. जिन पण्डमान का नाम हिस्सा मन्दिर में उन्होंने अर्से से ये तरीका इख्तयार कर लिया है कि जात्रियान को मन्दिर में गलत बयानी करके उन पण्डगान को भीक देने पर आमादा करते थे और जो रुपया जात्रियान मन्दिर में चढाव को लाते थे उनसे खुद लेते थे। जो रुपया मालगुजारी याफतनी श्री दाऊजी महाराज उनके हिस्से निकलता था उसको अदा नहीं करते थे। इन्हीं खरावियों को रोकने के वास्ते इकरारनामा मौरखा 2 सितम्बर 1904 इं० तहरीर हुआ।

20. यह कि मुद्दालय बहैसियत व पेशतरून हक मुद्दालय इन खराबियों को दफीया के वास्ते और दाऊजी महाराज के नफे के वास्ते कोशिश करते रहे हैं कि जो मुद्दईयान व दीगर साथी मुद्दईयान अपना जाती नुकसान समझ कर मुद्दालय को तरह तरह की तकलीफ देने व मुकदमे बाजी करते रहे हैं, इस वजह से ये मुकदमा दायर किया है।

21. यह कि मुद्दईयान जो खैरखाह मन्दिर नहीं है और जिनकी कुल कार्यवाही खुदगर्जी के वास्ते है मुनासिब अशखास मैम्बरान कमेटी नहीं है।

22. यह कि मुद्दालय साथ मेहनत जानफशाई व दयानत खोरी के इन्तजाम मन्दिर कर रहे हैं मुस्ताजिब अलैहदगी है बाकायदा अलैहदगी की गई है।

23. यह कि दावा हाजा बराहे नेक नीयती बगरज नफा मन्दिर नहीं किया गया है काबिले डिसमिस है।

24. यह कि मुद्दईयान पैदा नहीं हुये न मुस्तहक दावे के है।

तस्दीक की जाती है कि मदात 1. 2, 3, 4, 5,

6, 7 व मद 8 में नासमझी जुज व आखिर मद 13, 9, 11, 22 हक अब्बल व मद 15 व मद 17. 18, 19, 20, 21, 22, 23 का इल्म जाती है और जिस पर मद 8 का चन्द हिस्सा व मद 10, 12, 14का हक उल खबर व मद 24 का इल्म मशवरा कानूनी के है जिसका सही होना ठकरार करता हूँ सब जजी दस्तावेज की तस्दीक बमुकाम कस्बा बलदेव बतारीख 3 अक्टूबर 24 की गई।"

8. वाद के पक्षकारों ने 14.10.1924 को एक समझौता आवेदन प्रस्तुत किया, जिसके खंड 10 में यह प्रावधान था कि बाबू बलदेव बिहारी लाल, मंदिर के 'रिसीवर' होंगे और वे मंदिर का लेखा-जोखा न्यायालय में प्रस्तुत करेंगे। उक्त समझौता आवेदन, के आधार पर 15.10.1924 को वाद मे आदेश पारित किया गया। समझौता आवेदन की प्रति और उसमें पारित आदेश नीचे दिए गए हैं:-

"असल पर स्टाम्प 8आना व 8आना

बअदालत सब जजी मथुरा।

नं० मु० 94सन् 1923ई०

शिवचरन वगैरा

-----मुद्दईयान

बनाम

सोहनलाल वगैरा

-----मुद्दालायहम

जनाब आली,

वाहम फरीकेन तसफिया हस्ब जैल हो गया उसके मुआफिक डिग्री सादिर फरमायी जावे।

1- जुमला इन्तजाम मन्दिर सुपुर्द बाबू बल्देव बिहारी लाल वकील जो अब तक बतौर सुपरवाईजर काम कर रहे हैं कर दिया जावे और मुद्दलायहम व मुद्दईयान इन्तजाम मन्दिर से दस्तबरदार होते हैं।

2-बाबू बल्देव बिहारी लाल का फर्ज होगा कि मन्दिर के अन्दर जात्रियों से खैरात किसी तौर पर कोई सख्स न तलब करे और न ही दिखावे और न उनके साथ आवे और न उनसे दान ले और न सेवकी मन्दिर में मांगी जावे और न मिश्री निकाली जावे।

3-हर फरीक को इख्तियार होगा कि दरसूरत न पाबंदी होने शरायत मजकूरा वाला के वजरिये इजराय डिग्री अदालत हाजा से तामील करा ली जाये।

4-अगर किसी वजह से बाबू बल्देव बिहारी लाल इन्तजाम मन्दिर से सुबुकदोष हो या नाकाबिल इन्तजाम हो जाये तो अदालत को इख्तियार होगा कि उनके बजाय व मशवराह फरीकैन या उनके कायम मुकामान दूसरा मुनासिब शख्स मुर्करर सीया इजराय में कर दें। मगर अगर फरीकैन आपस में किसी एक खास सख्स की बावत रजामन्द न हो या मशवराह देना न चाहे तो अदालत को इख्तियार होगा कि सख्स मुनासिब को उनके बजाय मुर्करर कर दें।

5-अगर किसी वजह से इन्तजाम बाबू बल्देव बिहारी लाल साकित हो जावे या कायम न रहे तो अदालत को इख्तियार होगा कि एहकाम मुनासिब बावत इन्तजाम मन्दिर मजकूर किसी फरीक की दरखास्त पर व सीया इजराय सादिर फरमायें।

6- हर फरीक को बाबू बल्देव बिहारी लाल या उनके कायम मुकाम के इन्तजाम के मुताल्लिक शिकायत करने का हक हासिल होगा और अदालत उसके मुताल्लिक जो कुछ इन्तजाम मुनासिब खयाल फरमावे अमल में लायें।

7-बाबू बल्देव बिहारी लाल की फीस 2000/- दो हजार रूपया सालाना आमदनी मन्दिर से दी जायेगी और उनको अख्तियार होगा कि हर सहमाही पर मु० 500/- पाँच सौ रूपया वसूल कर ले अलावा सफर खर्च।

8- खरचा फरीकैन जिम्मे फरीकैन रहे।

9-जो अपील व अदालत जुल आलिया हाईकोर्ट मिनजानिब मुद्दईयान व दीगर असखास दीगर है वह मुकईयान का फर्ज होगा व जहां तक कि उनका तालुक अपील से है वापिस ले ले और अगर वापिस न ले तो दावी मुद्दईयान मय खर्चा डिसमिस होगा और मुद्दालयहम अपना खर्चा मुद्द्यान से पायेंगे।

10- बाबू बल्देव बिहारी लाल की हैसियत बतौर रिसीवर के होगी और वह अपना हिसाब हर सहमाही पर अदालत में पेश करेंगे।

11-हदूद मन्दिर वह ही मुततब्बिर होगी जो इस मुकदमा में बयान व चुकलाय फरीकैन में बतलायी गयी है।

फकत तारीख 14 अक्टूबर सन् 1924 ई०

द० अंग्रेजी अपठित 14-10-24

आज इस तसिफया को बाबू टिकनरायन सीनियर वकील मुद्दई व बाबू बसतलाल वकील मुद्दालयहम ने रूबरू अदालत पेश करके और हरूफ बहरूफ सुनकर व समझकर तस्दीक किया 14 अक्टूबर सन् 1924 ई 0

मथुरा के उप-न्यायाधीश के न्यायालय में
उपस्थित- पंडित शम्भू नाथ दुबे, एमए, एलएल.बी.
सब जज

सिविल वाद सं0 - 94 सन् 1923

शिव चरण और अन्य, वादी बनाम सोहन और अन्य प्रतिवादी।

निर्णय:

यह वाद, जो बलदेव नगर में स्थित श्री बलदेव जी महाराज के मंदिर के संबंध में पिछले 12 वर्षों या उससे अधिक समय में लड़े गए कई मुकदमों में से एक है, यह घोषित करने के लिए है कि देनदार मंदिर का प्रबंधन करने के हकदार नहीं हैं। इसमें एक स्थायी निषेधाज्ञा की भी प्रार्थना की गई है।

शुरुआत में इस मुकदमे में काफी बहस हुई, लेकिन आखिरकार दोनों पक्षों ने एक समझौता कर लिया जिससे मंदिर के प्रबंधन को लेकर लंबे समय से चली आ रही प्रतिस्पर्धा कम से कम काफी समय के लिए खत्म हो गई। यह समझौता दोनों पक्षों और उनके कानूनी सलाहकारों के लिए फ़ायदेमंद है।

आदेश

समझौते के पक्षकारों में वाद डिक्री का आदेश, जो डिक्री में दर्ज किया जाएगा, पक्षकारों की लागत पर होगी। समझौते की एक प्रति बी. बलदेव बिहारी लाल को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्रवाई हेतु भेजी जाए।

एसडी/-

एसएन दुबे

उप न्यायाधीश 15.10.1924"

9. चूँकि 15.10.1924 को समझौते के आधार पर वाद का निर्णय हो गया था, इसलिए 'रिसीवर' दाऊजी मंदिर की देखभाल करता रहा। प्रथम 'रिसीवर' के चले जाने के बाद, मथुरा का सिविल न्यायालय रिसीवरों की नियुक्ति करता रहा और यह मामला कई बार इस न्यायालय में पहुँचा। न्यायालयों में विभिन्न दौर के मुकदमों में एकमात्र विवाद यह था कि दाऊजी मंदिर का 'रिसीवर' कौन बना रहेगा।

10. 20.02.2019 को, मूल वाद संख्या 94 सन् 1923 से उत्पन्न विविध वाद संख्या 34 सन् 2014 में अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, मथुरा द्वारा राम कटोर पाण्डेय (प्रतिवादी संख्या 13) को 20.02.2019 से 31.03.2020 तक की अवधि के लिए 'रिसीवर' नियुक्त किया गया था। राम कटोर पाण्डेय की नियुक्ति 2019 से मंदिर की संपत्ति के गबन की शिकायत दर्ज होने तक जारी रही। 20.07.2024 के आक्षेपित आदेश

द्वारा, प्रतिवादी संख्या 13 को 'रिसीवर' पद से निलंबित कर दिया गया और कुंवर पाल सिंह तोमर को कार्यवाहक 'रिसीवर' नियुक्त किया गया।

11. वर्तमान याचिका दो याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत की गई है जो दाऊजी मंदिर के न्यासी होने का दावा कर रहे हैं और उन्होंने प्रतिवादी संख्या 1 से 12 को भी सम्मिलित किया है, जो संबंधित न्यास के न्यासी होने का दावा कर रहे हैं। प्रतिवादी संख्या 13 वर्ष 2019 में नियुक्त 'रिसीवर' है, जबकि प्रतिवादी संख्या 14 से 16 सेवायत हैं और न तो न्यासी हैं और न ही मुकदमे में पक्षकार हैं।

12. याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 1 से 12 दोनों एक ही राय रखते हैं और अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित उस आदेश के विरुद्ध पुरजोर तरीके से मुकदमा लड़ रहे हैं जिसमें प्रतिवादी संख्या 13, राम कटोरा पांडे की 'रिसीवर' के रूप में शक्ति को निलंबित करने और छीन लेने का आदेश दिया गया है।

13. याचिकाकर्ताओं और तथाकथित न्यासियों के मामले का पूरा आधार यह है कि वे 1923 के वाद संख्या 94 के मूल वादी और प्रतिवादी के विधिक उत्तराधिकारी हैं और इस प्रकार, उन्होंने मंदिर के मामलों का प्रबंधन जारी रखा है और वे ही एक व्यक्ति को 'रिसीवर' के रूप में नामित करेंगे।

14. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री धर्मपाल सिंह ने दलील दी कि दाऊजी मंदिर भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 के अंतर्गत पंजीकृत न्यास नहीं है। यह एक निजी मंदिर है जिसका प्रबंधन लंबे समय से पंडों/सेवायतों द्वारा किया जा रहा है और यह वर्ष 1904 में निष्पादित न्यास नामा/इकरार नामा से बंधा हुआ है। उनके अनुसार, 15.10.1924 को समझौता डिक्री पारित होने के बाद, 'रिसीवर' नियुक्त किया गया था और समझौते की शर्तों के अनुसार, 'रिसीवर' समय-समय पर मंदिर की देखभाल करेगा और खातों का विवरण न्यायालय में प्रस्तुत करेगा। प्रतिवादी संख्या 13, राम कटोरा पांडे के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है और उन्हें कुछ संवायतो द्वारा वर्तमान मुकदमे में गलत तरीके से घसीटा गया है जो उन्हें हटाना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त, मंदिर के लगभग 700 सेवायत हैं जो छह थोकों से संबंधित हैं और उनमें से प्रत्येक अपनी बारी के अनुसार सेवा और पूजा कर रहे हैं। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि कुछ सेवायतों द्वारा एफ.ए.एफ.ओ संख्या 92 सन् 1954 और एफ.ए.एफ.ओ संख्या 100 सन् 1954 में समझौता डिक्री को चुनौती दी गई थी, जिसे खारिज कर दिया गया था और समझौता डिक्री के अनुसरण में, मंदिर का प्रबंधन 1924 से वाद के 14 पक्षों के पास ही रहा है।

15. राम कटोरा पांडे की नियुक्ति का बचाव करते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि यह नियुक्ति हमेशा न्यायालय द्वारा मुकदमे के 14 पक्षों की बहुमत की राय को ध्यान में रखते हुए की गई है। उनके अनुसार, 'रिसीवर' द्वारा काफ़ी सुधार किया गया है और इसलिए उन्हें उनकी नियुक्ति जारी रखनी देनी चाहिए।

16. प्रतिवादी संख्या 1, 2, 4, 5, 6, 7, 8, 11 और 12 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सी.एल. पांडे ने याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के तर्क का समर्थन किया। उन्होंने आगे तर्क दिया कि सभी 14 न्यासियों के बीच सर्वसम्मति है और राम कटोरा पांडे को मंदिर का 'रिसीवर' बने रहना चाहिए।

17. सुश्री नंदनी शर्मा, विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 9 के लिए उपस्थित हुईं और याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क का समर्थन किया और राम कटोरा पांडे की कार्यों का बचाव किया और प्रस्तुत किया कि 'रिसीवर' की शक्ति को निलंबित करने में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आदेश सही नहीं था।

18. विद्वान अधिवक्ता श्री बद्री मणि त्रिपाठी ने प्रतिवादी संख्या 10 की ओर से उपस्थित होकर दलील दी कि 15.10.1924 की समझौता डिक्री के अनुसार बाबू बलदेव बिहारी लाल को पहला 'रिसीवर' नियुक्त किया गया था। उनके अनुसार समझौते की शर्तों में यह प्रावधान था कि यदि 'रिसीवर' अपने पद पर बने नहीं रहते हैं तो न्यायालय को 'रिसीवर' नियुक्त करना होगा और समझौता डिक्री अनंत काल तक जारी रहेगी। उन्होंने दलील दी कि मुकदमे में 14 पक्षकारों के प्रतिनिधि अपने पद पर बने रहेंगे और मुकदमे में एक पक्ष के रूप में उत्तराधिकारी बने रहेंगे। उन्होंने यह समझाने की कोशिश की कि 1924 से आज तक चल रहे इस मुकदमे में सात वादी और प्रतिवादी के विधिक उत्तराधिकारी क्रमिक रूप से पक्षकार बनाए गए हैं और याचिकाकर्ताओं द्वारा दावा किए गए वर्तमान 14 न्यासी उन मूल सात वादी और प्रतिवादियों के विधिक प्रतिनिधि हैं।

19. प्रतिवादी संख्या 14, 15, 16 और दो हस्तक्षेपकर्ताओं दाऊजी दयाल और बलराम पांडे की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह ने प्रस्तुत किया कि पिछले 100 वर्षों से पक्षकार, 02.09.1904 को निष्पादित समझौते का पालन किए बिना 1924 के समझौता डिक्री के आधार पर मुकदमा लड़ रहे हैं, जो कि 145 परिवारों को छह थोकों में विभाजित करने और सात सदस्यीय प्रबंधन समिति नियुक्त करने का मूल दस्तावेज है।

20. प्रबंध समिति में विधिक प्रतिनिधि की कोई अवधारणा नहीं थी। जब उनके थोके का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रबंध समिति के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती थी या वह कार्य करने में असमर्थ हो जाता था, तो उसी थोके से किसी अन्य सदस्य की नियुक्ति की जाती थी, अथवा नियुक्ति न होने की स्थिति में शेष सदस्य मिलकर प्रबंध समिति में किसी सदस्य की नियुक्ति करते थे। उनके अनुसार, प्रबंध समिति में विधिक प्रतिनिधि की अवधारणा उस प्रारंभिक समझौते से भिन्न है जो दाऊजी मंदिर के सभी पंडों/सेवायतों पर बाध्यकारी है।

21. दाऊजी मंदिर में पंडों और सेवायतों के लगभग 734 परिवार हैं और इन 734 परिवारों में से ही प्रबंध समिति का गठन किया जाना है, जो आरंभिक 145 परिवारों से बढ़कर अब एक नई व्यवस्था बन गई है। 1924 में हुआ समझौता, पंडों/सेवायतों पर बाध्यकारी नहीं है, क्योंकि यह वाद प्रबंध समिति द्वारा प्रस्तुत किया गया था, जिसका निर्वाचन, वर्ष 1923 में हुआ था और जिसने उन व्यक्तियों के विरुद्ध राहत का दावा किया था जो प्रबंध समिति के सदस्य नहीं थे और 02.09.1904 के समझौते का उल्लंघन कर रहे थे। समझौता

डिक्री/समझौता आवेदन में उत्तराधिकार का कोई प्रावधान नहीं है और न्यायालय केवल वर्ष 1904 के न्यास नामा/समझौते के अनुसार, सेवायतों की प्रबंध समिति की नियुक्ति न होने की स्थिति में ही 'रिसीवर' नियुक्त कर सकता है।

22. मैंने पक्षों के संबंधित अधिवक्ताओं को सुना है तथा पत्रावली में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

23. यह दाऊजी मंदिर की संपत्ति हड़पने और उसका प्रबंधन करने के लिए न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। मूलतः, पंडों/सेवायतों के 145 परिवारों ने 02.09.1904 को एक समझौता किया था, जिसका पंजीकरण 13.09.1904 को हुआ था। समझौते में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि छह थोकों (समूहों) से सात सदस्यीय प्रबंध समिति गठित की जाएगी।

24. प्रथम प्रबंध समिति के सदस्यों की नियुक्ति समझौते के समय हुई थी और प्रस्तर 2 में सदस्यों के नामों का विवरण दिया गया है। समझौते का प्रस्तर 3 प्रबंध समिति द्वारा किए जाने वाले कार्यों का सार प्रस्तुत करता है। प्रस्तर 7 अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि इसमें प्रबंध समिति के किसी सदस्य के उत्तराधिकार की व्यवस्था नहीं है। वास्तव में, इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि यदि किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है, वह कार्य करने से इनकार कर देता है या एक वर्ष तक प्रबंध समिति की बैठक में उपस्थित नहीं होता है, तो उसके स्थान पर उसके थोके (समूह) का एक सदस्य नियुक्त किया जाएगा। यदि थोका तीन महीने के भीतर किसी सदस्य की नियुक्ति करने में विफल रहता है, तो शेष सदस्य अपने थोके से किसी सदस्य की नियुक्ति कर सकते हैं। मौजूदा सदस्यों के बीच बराबरी या विवाद की स्थिति में, सदस्य की नियुक्ति के लिए देवता के समक्ष चिट प्रस्तुत की जाएगी।

25. प्रबंध समिति के सदस्यों के उत्तराधिकार की अवधारणा, 145 पंडों के परिवारों के बीच 13.09.1904 को संपन्न पंजीकृत समझौते से अलग है। उपरोक्त समझौता, दाऊजी मंदिर के पंडों/सेवायतों के परिवारों द्वारा मंदिर के शासन और प्रबंधन की शुरुआत है, जो छह थोकों (समूहों) में विभाजित हैं और दैनिक कार्यों के प्रबंधन के लिए सात सदस्यों को नामित करते हैं। 02.09.1904 को संपन्न और 13.09.1904 को पंजीकृत यह दस्तावेज़ मुकदमे के सभी पक्षों की कार्यवाही को नियंत्रित करता है।

26. वर्ष 1923 में सात वादियों द्वारा प्रस्तुत मुकदमे में, जिन्हें 17.06.1923 को आयोजित बैठक में सेवायतों/पंडों द्वारा प्रबंधन समिति का सदस्य नियुक्त किया गया था, ने विशेष रूप से 'घोषणा की राहत' का दावा किया था और साथ ही मुकदमे के सात प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी निषेधाज्ञा की राहत की भी मांग की थी ताकि उन्हें 17.06.1923 के प्रस्ताव के अनुसरण में मंदिर के मामलों का प्रबंधन करने की अनुमति दी जा सके और प्रतिवादियों को उनके शांतिपूर्ण कामकाज में हस्तक्षेप करने से रोका जा सके।

27. वाद संख्या 94 सन् 1923 का सम्पूर्ण आधार यह था कि 02.09.1904 को निष्पादित समझौता मंदिर के प्रबंधन के क्षेत्र को नियंत्रित करता है, और शुरू में एक सात सदस्यीय समिति नियुक्त की गई थी और उन सदस्यों की मृत्यु हो गई है और उनके विधिक उत्तराधिकारियों और परिवार के सदस्यों ने बेईमानी से एक प्रबंधन समिति का गठन किया है और मंदिर के मामलों की देखभाल कर रहे हैं।

28. वादपत्र में, यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि प्रतिवादी प्रबंध समिति के रूप में कार्य नहीं कर सकते, जो 02.09.1904 के समझौते के विरुद्ध था। उक्त वाद के प्रतिवादियों ने अपने लिखित उत्तर में 02.09.1904 के समझौते के निष्पादन को स्वीकार किया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया था कि प्रारंभिक सात सदस्यों की मृत्यु हो चुकी है और वे ही मंदिर के कार्यों का प्रबंधन कर रहे हैं।

29. लिखित उत्तर में इस बात का कोई तर्क नहीं दिया गया कि वे किस प्रकार प्रबंध समिति का कार्य कर रहे थे या पूर्ववर्ती प्रबंध समिति के पद पर किस प्रकार आसीन हुए थे। उनके पक्ष में किसी प्रस्ताव पर भरोसा नहीं किया गया था जिसमें उन्हें उनके संबंधित थोके (समूह) से प्रबंध समिति का सदस्य नियुक्त किया गया हो।

30. प्रबंध समिति में सदस्य की नियुक्ति केवल उसके थोके से ही की जा सकती है। किसी सदस्य को अपने थोके से भेजे जाने पर ही सदस्य के रूप में अपनी निरंतरता प्रदर्शित करनी होगी। लिखित उत्तर में, उस वाद के प्रतिवादी पक्ष द्वारा ऐसा कोई कथन नहीं किया गया था।

31. 14.10.1924 को प्रस्तुत समझौता आवेदन में, वाद के पक्षकारों ने यह स्वीकार नहीं किया था कि उनका उत्तराधिकार विधि के आधार पर बना हुआ था। कथित समझौता मंदिर के मामलों के प्रबंधन के विवाद को सुलझाने के लिए किया गया था और बाबू बलदेव बिहारी लाल, अधिवक्ता को 'रिसीवर' नियुक्त किया गया था। किए गए समझौते का उद्देश्य यह नहीं दर्शाता कि 'रिसीवर' मंदिर में अनंत काल तक कार्य करता रहेगा।

32. प्रतिवादी के अधिवक्ता का यह तर्क कि डिक्री ने पक्षों को हमेशा के लिए बाँध दिया है, बिल्कुल अस्पष्ट है और अभिलेख में उपलब्ध तथ्यों के विरुद्ध है। 02.09.1904 को निष्पादित समझौता दाऊजी मंदिर के सभी पंडों/सेवायतों को, जिनकी संख्या अब 734 है, बाँधता है। समझौते में, प्रबंध समिति के सदस्यों की नियुक्ति में उत्तराधिकार का प्रावधान नहीं था। संबंधित थोके को ही प्रबंध समिति में एक सदस्य भेजना था।

33. केवल गतिरोध की स्थिति उत्पन्न होने पर ही वर्ष 1924 में हुए समझौते के अनुपालन में एक रिसीवर नियुक्त किया गया था।

34. ऐसा प्रतीत होता है कि बाबू बलदेव बिहारी लाल के दाऊजी मंदिर के 'रिसीवर' पद से हटने के बाद, पक्षकारों द्वारा 'रिसीवर' की नियुक्ति हेतु लगातार आवेदन प्रस्तुत किए गए, जो पिछले 100 वर्षों से जारी रहे। किसी भी न्यायालय ने पंडों/सेवायतों के बीच दिनांक 02.09.1904 को हुए उस समझौते पर विचार नहीं किया, जो

दिनांक 13.09.1904 को पंजीकृत हुआ था कि प्रबंध समिति के सदस्यों के विधिक उत्तराधिकारी/प्रतिनिधि उत्तराधिकारी नहीं होंगे।

35. वर्तमान मामले से यह पता चलता है कि उत्तराधिकार विधि के आधार पर दावा करने वाले मुकदमे के पक्षकार अपने लोगों को मंदिर का 'रिसीवर' नियुक्त कर रहे हैं और वे स्वयं को प्रबंध समिति के मामलों का प्रभारी बना रहे हैं और उन्हें न्यास का न्यासी मान रहे हैं। रिट याचिका में पक्षकारों के विवरण से स्पष्ट है कि दोनों याचिकाकर्ता प्रतिवादी संख्या 1 से 12 के साथ स्वयं को दाऊजी मंदिर का न्यासी होने का दावा करते हैं। जबकि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया था कि यह भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 के अन्तर्गत पंजीकृत न्यास नहीं है और न ही यह धर्मार्थ एवं धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920 द्वारा शासित है।

36. इस तथ्य की आड़ में याचिकाकर्ता और प्रतिवादी स्वयं को वाद संख्या 94 सन् 1923 के सात वादी और प्रतिवादी के उत्तराधिकारी/विधिक उत्तराधिकारी और प्रतिनिधि होने का दावा कर रहे हैं और तब से मुकदमेबाजी कर रहे हैं तथा सभी सेवायतों और पंडों को न्यायिक क्षेत्र से बाहर कर मंदिर के मामलों का प्रबंधन कर रहे हैं।

37. श्री त्रिपाठी का तर्क भी इसी आधार पर आधारित है कि वर्तमान याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 1 से 12, वाद संख्या 94 सन् 1923 के वादी और प्रतिवादी के वंशज हैं और वे वाद चलाने के हकदार हैं तथा केवल उनकी सहमति से ही किसी व्यक्ति को 'रिसीवर' नियुक्त किया जा सकता है। यह तर्क पूरी तरह से अस्पष्ट है और 02.09.1904 के समझौते के मद्देनजर उत्तराधिकार की अवधारणा से बिल्कुल अलग है।

38. वर्तमान मुकदमे के सभी पक्षकारों ने दिनांक 02/13.09.1904 के दस्तावेज़ के निष्पादन और पंजीकरण को स्वीकार किया है। एक बार ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर, संपूर्ण कार्यवाई उक्त समझौते में निर्धारित नियमों और शर्तों द्वारा शासित होगी। यह पहली बार है कि हस्तक्षेपकर्ता अधिवक्ता ने दाऊजी मंदिर के पंडों/सेवायतों के 145 परिवारों के बीच 13.09.1904 को पंजीकृत समझौते को प्रस्तुत किया है, जिसमें 145 परिवारों के सदस्यों के नाम का विवरण है, जो छह थोकों में विभाजित थे। प्रबंध समिति की नियुक्ति और कार्यप्रणाली की संपूर्ण प्रक्रिया वर्ष 1904 के समझौते में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। यह मंदिर के सभी पंडों और सेवायतों के बीच की बंधनकारी शक्ति है।

39. कोई भी निर्णय या आदेश समझौते को छोड़कर या समझौते के प्रावधान के विरुद्ध पारित नहीं किया जा सकता।

40. याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादियों, विशेष रूप से प्रतिवादी संख्या 1 से 12, के अधिवक्ताओं की पूरी दलील वर्ष 1904 में निष्पादित समझौते को छोड़कर, वर्ष 1924 की समझौता डिक्री पर आधारित है। यह समझौता ही पूरे विवाद का मूल है जो 1923 से शुरू हुआ है। वाद संख्या 94 सन् 1923 की वाद-पत्र में, आरंभ में,

02.09.1904 को समझौते के निष्पादन का उल्लेख है। इसमें वादीगण ने पूरी तरह से 1904 के समझौते पर भरोसा किया था और उसी पर निर्भर करते हुए अपनी राहत का दावा किया था।

41. समय के साथ, पंडों और सेवायतों के परिवारों की संख्या 145 से बढ़कर वर्तमान में 734 हो गई है। छह थोकों में विभाजित ये परिवार ही प्रबंधन समिति में सात सदस्य भेजेगे जो मंदिर के कामकाज की देखभाल करेंगे। 'रिसीवर' की भूमिका तभी लागू होगी जब सर्वसम्मति न बन पाए या प्रबंधन समिति का गठन न हो। समझौता आदेश के बाद के मुकदमों से यह पता नहीं चलता कि पिछले 100 वर्षों में प्रबंधन समिति के गठन का कोई प्रयास किया गया था जिसका मूल कार्य मंदिर के कामकाज की देखभाल करना था। 'रिसीवर' की नियुक्ति तभी की जाती है जब सभी उपाय विफल हो जाते हैं और संपत्ति की सुरक्षा के लिए न्यायालय के पास किसी व्यक्ति को नियुक्त करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचता।

42. आदेश XL नियम 1 सीपीसी 'रिसीवर' की नियुक्ति के लिए प्रावधान करता है जहां न्यायालय को यह उचित और सुविधाजनक प्रतीत होता है, न्यायालय आदेश द्वारा ऐसा कर सकता है:- (क) किसी संपत्ति का 'रिसीवर' नियुक्त करें, चाहे डिक्री से पहले या बाद में, (ख) किसी व्यक्ति को संपत्ति के कब्जे या हिरासत से हटा दें, (ग) 'रिसीवर' के कब्जे, हिरासत या प्रबंधन को सौंप दें; और (घ) 'रिसीवर' को ऐसे सभी अधिकार प्रदान करें, जैसे कि मुकदमों को लाने और बचाव करने और संपत्ति की वसूली, प्रबंधन, सुरक्षा, संरक्षण और सुधार, इसके किराए और लाभ का संग्रह, ऐसे किराए और लाभ का आवेदन और निपटान, और दस्तावेजों का निष्पादन जो स्वामी के पास स्वयं हैं, या ऐसी शक्तियां जो न्यायालय ठीक समझे।

43. 'रिसीवर' की नियुक्ति का उद्देश्य किसी वाद के लंबित रहने के दौरान संपत्ति की सुरक्षा, परिरक्षण और प्रबंधन करना है। "न्यायसंगत और सुविधाजनक होना" शब्दों के स्थान पर "किसी चल या अचल संपत्ति, जो किसी वाद या कुर्की का विषय हो, की प्राप्ति, परिरक्षण या बेहतर अभिरक्षा या प्रबंधन के लिए आवश्यक होना" शब्द प्रतिस्थापित किए गए हैं। इस संशोधन का प्रभाव यह है कि न्यायालय अब न केवल पुरानी धारा में निर्दिष्ट किसी विशेष मामले में, बल्कि प्रत्येक मामले में 'रिसीवर' नियुक्त कर सकेगा जिसमें न्यायालय को ऐसा करना न्यायसंगत और सुविधाजनक प्रतीत हो।

44. इस आदेश के अंतर्गत 'रिसीवर' नियुक्त करने की न्यायालय की शक्ति धारा 94 के नियंत्रणकारी प्रावधान के अधीन है और इसका प्रयोग न्याय के उद्देश्यों को विफल होने से बचाने के लिए किया जाएगा। धारा 94 सीपीसी इस प्रकार है;

"94. अनुपूरक कार्यवाहियाँ.-न्याय के उद्देश्यों को विफल होने से बचाने के लिए न्यायालय, यदि ऐसा विहित किया गया हो,--

- (क) प्रतिवादी को गिरफ्तार करने और उसे न्यायालय के समक्ष लाने के लिए वारंट जारी करना ताकि कारण बताया जा सके कि उसे अपनी उपस्थिति के लिए सुरक्षा क्यों नहीं देनी चाहिए, और यदि वह सुरक्षा के किसी भी आदेश का पालन करने में विफल रहता है तो उसे सिविल जेल में सौंपना;
- (ख) प्रतिवादी को उसकी किसी संपत्ति को प्रस्तुत करने के लिए प्रतिभूति देने का निर्देश दे सकेगा और उसे न्यायालय के अधीन रख सकेगा या किसी संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकेगा;
- (ग) अस्थायी निषेधादेश जारी कर सकेगा और अवज्ञा की स्थिति में दोषी व्यक्ति को सिविल कारागार में भेज सकेगा तथा आदेश दे सकेगा कि उसकी सम्पत्ति कुर्क कर बेची जाए;
- (घ) किसी संपत्ति का 'रिसीवर' नियुक्त करना तथा उसकी संपत्ति को कुर्क करके और बेचकर उसके कर्तव्यों का पालन कराना;
- (ई) ऐसे अन्य अन्तरवर्ती आदेश पारित करना जो न्यायालय को न्यायसंगत और सुविधाजनक प्रतीत हों।"

45. अंतरिम राहत प्रदान करने की न्यायालय की शक्ति का स्रोत धारा 94 है। हालाँकि, इस शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब मामले की परिस्थितियाँ, नियमों के अंतर्गत आती हों। इसलिए, जब कोई मामला न्यायालय के समक्ष आता है, तो न्यायालय को प्रत्येक मामले के तथ्यों की जाँच करनी होती है और यह सुनिश्चित करना होता है कि क्या धारा 94 के नियमों के साथ पठित तत्व, किसी आदेश में, संतुष्ट हैं और तदनुसार उचित राहत प्रदान करनी होती है।

46. **मुल्जी उमरशी शाह बनाम परादिसीया बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड , एआईआर 1998 बॉम्बे 87** में , बॉम्बे उच्च न्यायालय ने माना कि 'रिसीवर' की नियुक्ति मुकदमे के किसी भी पक्ष के आवेदन पर और साथ ही स्वप्रेरणा से की जा सकती है और इसलिए, आवेदन की अनुपस्थिति न्यायालय को ऐसे आदेश पारित करने से नहीं रोकेंगी यदि यह उचित और सुविधाजनक है।

47. **एस.बी. इंडस्ट्रीज बनाम यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया , एआईआर 1978 189** में , इस न्यायालय की खंडपीठ ने 'रिसीवर' की नियुक्ति पर विचार करते हुए यह निर्णय दिया कि 'रिसीवर' की नियुक्ति को उचित ठहराने के लिए, वादी को यह उचित संभावना स्थापित करनी होगी कि वादी अंततः मुकदमे में दावा की गई राहत प्राप्त करने में सफल होगा। इस प्रकार, आवश्यकता यह है कि उसे प्रथम दृष्टया एक ठोस मामला स्थापित करना होगा। न्यायालय ने आगे कहा कि 'रिसीवर' की नियुक्ति, सामान्य नियम के अनुसार, विवेकाधीन है, न कि अधिकार का मामला। न्यायालय ने यह भी कहा कि 'रिसीवर' के पास कोई शक्ति नहीं है, सिवाय उन शक्तियों के जो उसे उन आदेशों द्वारा प्रदान की जाती हैं जिनके द्वारा उसकी नियुक्ति की जाती है।

48. **सत्यनारायण बनर्जी एवं अन्य बनाम कल्याणी प्रसाद सिंह देव बहादुर एवं अन्य , एआईआर 1945 सीएलए 387** में , न्यायालय ने माना कि 'रिसीवर' की नियुक्ति का उद्देश्य और प्रयोजन सामान्यतः लंबित मुकदमे की विषय-वस्तु का संरक्षण और उसके पक्षकारों के अधिकारों का न्यायिक निर्धारण माना जा सकता है। 'रिसीवर' की नियुक्ति सभी संबंधित पक्षों के लाभ के लिए की जाती है, वह न्यायालय का और उस मुकदमे में हितबद्ध

सभी पक्षों का प्रतिनिधि होता है, जिसमें उसकी नियुक्ति की जाती है। 'रिसीवर' की नियुक्ति न्यायालय का एक कार्य है और न्याय के हित में की जाती है। वह न्यायालय का एक अधिकारी या प्रतिनिधि होता है जो उसके आदेश के अधीन होता है। उसका अधिकार न्यायालय का अधिकार है।

49. टी. कृष्णास्वामी चेट्टी (उपरोक्त) मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने पाँच सिद्धांत निर्धारित किए थे जिन्हें 'रिसीवर' नियुक्त करने में न्यायसम्य क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले हमारे न्यायालयों के "पंच सदाचार" के रूप में वर्णित किया जा सकता है। निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 13 यहाँ निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"13. पांच सिद्धांत जिन्हें 'रिसीवर' नियुक्त करने में न्यायसम्य क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले हमारे न्यायालयों के 'पंच सदाचार' के रूप में वर्णित किया जा सकता है, इस प्रकार हैं:

(1) किसी मुकदमे के लंबित रहने तक 'रिसीवर' की नियुक्ति न्यायालय के विवेक पर निर्भर मामला है। यह विवेक मनमाना या पूर्ण नहीं है: यह एक उचित और न्यायिक विवेक है, जो मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखता है, न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने और विवाद और विषय-वस्तु में रुचि रखने वाले सभी पक्षों के अधिकारों की रक्षा करने के उद्देश्य से प्रयोग किया जाता है और इस तथ्य पर आधारित है कि न्यायिक कार्यवाही के वांछित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कोई अन्य पर्याप्त उपाय या साधन नहीं है: -- 'मथुश्री बनाम मथुश्री', 19 मद्रा 120 (पीसी) (जेड5); -- 'शिवगणनाथम्मल बनाम अरुणाचलम पिल्लई', 21 मद एलजे 821 (जेड6); -- 'हबीबुल्लाह बनाम अब्दुलकल्लाह', एआईआर 1918 कैल 882 (जेड7); -- 'तीरथ सिंह बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति', एआईआर 1931 लाह 688 (जेड8); -- 'घनशाम बनाम मोराबा', 18 बॉम 474 (जेड9); -- 'जगत तारिणी दासी बनाम नबागोपाल चाकी', 34 कैल 305 (जेड10); -- 'शिवाजी राजा साहब बनाम ऐश्वर्यानंदजी', एआईआर 1915 मैड 926 (जेड11); -- 'प्रसन्नो मोयी देवी बनाम बेनी माधब राय', 5 ईला0 556 (जेड12); -- 'सिद्धेश्वरी डाबी बनाम अभयेश्वरी डाबी', 15 कैल 818 (जेड13); -- 'श्रोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति, अमृतसर बनाम धरम दास', एआईआर 1925 लाह 349 (जेड14); -- 'भूपेंद्र नाथ बनाम मनोहर मुखर्जी', एआईआर 1924 कैल 456 (जेड15)।

(2) न्यायालय को 'रिसीवर' की नियुक्ति तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक वादी यह सिद्ध न कर दे कि प्रथम दृष्टया उसके पास इस वाद में सफल होने की बहुत अच्छी संभावना है। - 'धूमी बनाम नवाब सज्जाद अली खान', एआईआर 1923 लाह 623 (जेड16); - 'रघुबीर सिंह जसवंत फर्म बनाम नरिंजन सिंह', एआईआर 1923 लाह 48 (जेड17); - 'सियाराम दास बनाम मोहबीर दास', 27 कैल 279 (जेड18); - 'मुहम्मद कासिम बनाम नागराजा मूपनार', एआईआर 1928 मद 813 (जेड19); - 'बनवारीलाल चौधरी बनाम मोतीलाल', एआईआर 1922 पट 493 (जेड20)।

(3) वादी को न केवल संपत्ति पर प्रतिकूल और परस्पर विरोधी दावों का मामला दिखाना होगा, बल्कि उसे तत्काल कार्रवाई की मांग करने वाली कोई आपातस्थिति, खतरा या हानि भी दिखानी होगी और उसके अधिकार के अनुसार, उसे यथोचित रूप से स्पष्ट और संदेह से मुक्त होना होगा। खतरे का तत्व एक महत्वपूर्ण विचारणीय बिंदु है। न्यायालय केवल संभावित खतरे के आधार पर कार्रवाई नहीं करेगा; खतरा बड़ा और आसन्न होना चाहिए जिसके लिए तत्काल राहत की आवश्यकता हो। यह सही कहा गया है कि न्यायालय केवल इस आधार पर 'रिसीवर' की नियुक्ति कभी नहीं करेगा कि इससे कोई नुकसान नहीं होगा। -- 'मंगहनमल ताराचंद बनाम मिक्नबाई', एआईआर 1933 सिंध 231 (जेड21); -- 'बिदुररामजी बनाम केशोरामजी', एआईआर 1939 अवध 61 (जेड22); -- 'श्यामंबर बान बनाम मोहन बान', एआईआर 1941 अवध 328 (जेड23)।

(4) 'रिसीवर' नियुक्त करने का आदेश तब नहीं दिया जाएगा जब इसका प्रभाव प्रतिवादी को 'वास्तविक' कब्जे से वंचित करने का हो, क्योंकि इससे अपूरणीय क्षति हो सकती है। यदि विवाद केवल स्वामित्व का है, तो न्यायालय बहुत अनिच्छा से 'रिसीवर' द्वारा कब्जे में बाधा डालता है, लेकिन यदि संपत्ति खतरे और हानि के अधीन है और कब्जाधारी व्यक्ति ने इसे धोखाधड़ी या बलपूर्वक प्राप्त किया है, तो न्यायालय संपत्ति की सुरक्षा के लिए 'रिसीवर' द्वारा हस्तक्षेप करेगा। यह तब अलग होगा जब संपत्ति 'मध्यस्थ' दिखाई गई हो, अर्थात्, किसी के भी उपयोग में नहीं, क्योंकि न्यायालय कब्जा लेने में शायद ही कोई गलती कर सकता है: तब सभी पक्षों का साझा हित होगा कि न्यायालय किसी भी तरह की गड़बड़ी को रोके क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी संपत्ति का वास्तविक वैध उपयोग नहीं कर रहा है और इसे लेकर और इसे वैध व्यक्तियों के लाभ के लिए संरक्षित करके, जो सफल हो सकते हैं, किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जा सकता है। इसलिए, भले ही अपव्यय और कुप्रबंधन का कोई आरोप न हो, यह तथ्य कि संपत्ति कमोबेश 'मध्यस्थ' है, न्यायालय को 'रिसीवर' नियुक्त करने का अधिकार देने के लिए पर्याप्त है। -- 'नीलाम्बर दास बनाम मबल बिहारी', एआईआर 1927 पट 220 (जेड24); -- 'अलकमा बीबी बनाम सैयद इस्तक हुसैन', एआईआर 1925 कैल 970 (जेड25); - - 'मथुरिया देव्या बनाम शिबदयाल सिंह', 14 कैल डब्ल्यूएन 252 (जेड26); -- 'भुवनेश्वर प्रसाद बनाम राजेश्वर प्रसाद', एआईआर 1948 पट 195 (जेड27)। अन्यथा, विवादित संपत्ति के वास्तविक कब्जेदार के स्थान पर 'रिसीवर' नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए और जब तक विपरीत स्थिति स्थापित न हो जाए या निस्संदेह अनुमान न लगाया जा सके, तब तक वास्तविक कब्जेदार के स्थान पर 'रिसीवर' की नियुक्ति नहीं की जानी चाहिए।

(5) न्यायालय, 'रिसीवर' के आवेदन पर, आवेदन करने वाले पक्ष के आचरण को देखता है और आमतौर पर तब तक हस्तक्षेप करने से इनकार कर देता है जब तक कि उसका आचरण दोषमुक्त न हो। उसे न्यायालय में साफ हाथों से आना चाहिए और लापरवाही, विलंब, मौन स्वीकृति आदि के कारण न्यायसंगत राहत से स्वयं को वंचित नहीं करना चाहिए।"

50. पक्षकारों की दलीलों और दोनों पक्षों की ओर से दिए गए तर्कों से पता चलता है कि वे केवल 'रिसीवर' की नियुक्ति और उसके बने रहने में रुचि रखते हैं। याचिका या पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्क में

इस बात का कोई ज़िक्र नहीं है कि पिछले 100 वर्षों में प्रबंध समिति गठित करने का कोई प्रयास किया गया था। चूँकि यह स्वीकार किया गया है कि पंडों और सेवायतों के 700 से ज़्यादा परिवार छह थोकों में बँटे हुए हैं, इसलिए सात सदस्यीय समिति की नियुक्ति के लिए उनकी इच्छाओं पर विचार किया जाना चाहिए।

51. वर्तमान कार्यवाही, जो विविध वाद संख्या 165 सन् 2020 के रूप में अधीनस्थ न्यायालय में चल रही थी, जारी नहीं रह सकती क्योंकि समझौता डिक्री में यह अनिवार्य नहीं था कि 'रिसीवर' अनंत काल तक पद पर बना रहे। 'रिसीवर' की नियुक्ति एक अस्थायी व्यवस्था है। 1924 में समझौता डिक्री केवल मंदिर के मामलों के प्रभारी होने का दावा करने वाले दो समूहों के बीच विवाद के कारण दर्ज की गई थी। यह समझौता प्रबंध समिति की नियुक्ति के क्षेत्र को नियंत्रित करता है। मूल वाद संख्या 94 सन् 1923 में विविध कार्यवाही की आड़ में, कार्यवाही पिछले 100 वर्षों से चल रही थी।

52. यह न्यायालय यह जानकर आश्चर्यचकित है कि अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा, 1904 के समझौते पर गौर करके तथा मंदिर के सभी पंडों और सेवायतों के बीच हुए समझौते के अनुसरण में प्रबंधन समिति गठित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

53. कथित दो न्यायासियों द्वारा प्रस्तुत की गई वर्तमान याचिका, प्रतिवादी संख्या 13 की ओर से एक प्रतिनिधि याचिका प्रतीत होती है, जिसे वर्ष 2019 में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा 'रिसीवर' नियुक्त किया गया था। प्रतिवादी संख्या 1 से 12, जो दाऊजी मंदिर के न्यासी होने का भी दावा करते हैं, ने याचिकाकर्ताओं द्वारा लिए गए रुख का समर्थन किया था और प्रतिवादी संख्या 13 को 'रिसीवर' के रूप में जारी रखने की प्रार्थना की थी।

54. इन कथित न्यायासियों द्वारा न्यायिक व्यवस्था के साथ किया जा रहा यह एक धोखा है, क्योंकि वे यह स्पष्ट रूप से सिद्ध करने में विफल रहे हैं कि वे स्वयं को दाऊजी मंदिर का न्यासी या मंदिर के प्रबंधन का प्रभारी व्यक्ति कैसे कह रहे हैं। 1904 के मूल समझौते में सात सदस्यीय प्रबंध समिति के उत्तराधिकार का कोई प्रावधान नहीं है। इसमें केवल अपने-अपने थोके से सदस्य के प्रतिस्थापन का प्रावधान है और वरासत या उत्तराधिकार की विधि लागू नहीं होती।

55. 1924 की समझौता डिक्री की आड़ में कई दशकों तक न्यायिक कार्यवाही जारी रखना न्यायालय के साथ किया गया एक धोखा है। 'रिसीवर' की नियुक्ति का उद्देश्य केवल मुकदमे के लंबित रहने के दौरान संपत्ति की सुरक्षा, संरक्षण और प्रबंधन करना है। 1923 में प्रस्तुत मुकदमे में पक्षकारों के बीच समझौता हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप न्यायालय ने 1924 में 'रिसीवर' की नियुक्ति की थी। डिक्री में 'रिसीवर' के अनंत काल तक बने रहने का प्रावधान नहीं है।

56. वर्तमान में, किसी भी पक्षकार के बीच ऐसा कोई वाद लंबित नहीं है। 734 पंडों/सेवायतों में से किसी ने भी कोई वाद प्रस्तुत नहीं किया है और न ही पक्षकारों ने न्यायालय के समक्ष कोई ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत किया है

जिससे यह सिद्ध हो कि कोई वाद विचाराधीन है। विविध कार्यवाही के माध्यम से, 'रिसीवर' की नियुक्ति हेतु एक तुच्छ मामला तैयार किया गया है, जिसमें किसी भी पक्षकार के बीच कोई वाद लंबित नहीं है और वादग्रस्त संपत्ति की सुरक्षा आवश्यक है।

57. दाऊजी मंदिर के पंडों/सेवायतों के हितों की रक्षा आवश्यक है और वर्ष 1904 में पंडों/सेवायतों के 145 परिवारों के बीच हुए समझौते के अनुसार, प्रबंध समिति का गठन किया जाना है। 13.09.1904 के बाद, न तो समझौता रद्द किया गया और न ही उसमें कोई परिवर्तन किया गया। यह अभी भी प्रभावी है और पंडों व सेवायतों के परिवारों को बांधे हुए है। मंदिर की संपूर्ण सेवा/पूजा और प्रबंधन को 1904 के समझौते में निर्धारित शर्तों के अनुसार देखा जाना चाहिए।

58. वर्ष 1924 में समझौता डिक्री होने के बाद, कृत्रिम मुकदमेबाजी के माध्यम से, दाऊजी मंदिर के मामलों के प्रबंधन हेतु क्रमिक रूप से 'रिसीवर' नियुक्त किए गए हैं। न्यायालय के संज्ञान में यह बात कभी नहीं लाई गई कि 1904 में पंडों/सेवायतों के 145 परिवारों के बीच कोई समझौता हुआ था।

59. **राम कुमार पांडे बनाम नारायण प्रसाद पांडे, मामला अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 1637 सन् 2018** के अंतर्गत मामले, में समन्वय पीठ द्वारा 31.08.2018 को दिए गए निर्णय पर बल दिया गया है जिससे यह पता चलता है कि 1904 का समझौता न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया था। न्यायालय के समक्ष लाया गया पूरा मामला उस चरण से है, जब समझौता डिक्री पारित की गई थी। पिछले कुछ दशकों से इस मामले में मुकदमा लड़ रहे पक्षकारों ने कभी 1904 के समझौते का उल्लेख नहीं किया है और केवल 1924 की समझौता डिक्री पर बल देते हुए मामले में आगे बढ़े हैं।

60. 1923 के मुकदमे की पूरी उत्पत्ति पक्षकारों द्वारा 1904 के समझौते की अवहेलना थी। सेवायतों के 145 परिवारों के बीच हुआ समझौता ही वह मूल दस्तावेज़ है जिस पर दाऊजी मंदिर से संबंधित कोई भी मुकदमा आधारित होगा।

61. उक्त समझौते पर चर्चा और विचार किए बिना किसी भी विवाद का समाधान नहीं हो सकता। समझौता डिक्री की आड़ में याचिकाकर्ताओं ने एक भ्रामक मुकदमा रचा है और 1923 के मुकदमे के पक्षकारों के उत्तराधिकारी होने का दावा करते हुए, संबंधित मंदिर पर नियंत्रण करने का प्रयास कर रहे हैं।

62. मंदिर का प्रबंधन पंडों और सेवायतों के 145 परिवारों के छह थोकों से गठित सात सदस्यीय समिति के अधीन है। इसके अतिरिक्त, कोई भी व्यक्ति दाऊजी मंदिर के प्रबंधन का अधिकार नहीं जता सकता।

63. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि मूल वाद संख्या 94 सन् 1923 में 'रिसीवर' की नियुक्ति हेतु कोई विविध कार्यवाही नहीं की जा सकती। अतः, विविध वाद संख्या 165 सन्

2020 की संपूर्ण कार्यवाही एतद्वारा निरस्त की जाती है। कोई भी व्यक्ति संबंधित मंदिर का 'रिसीवर' नहीं होगा और दिनांक 02.09.1904 के समझौते के अनुसार एक सात सदस्यीय प्रबंध समिति गठित की जाए। यह मामला जिला न्यायाधीश, मथुरा को इस अनुरोध के साथ प्रेषित किया जाता है कि:-

- (i) दाऊजी मंदिर के 734 पण्डों/सेवायतों की, जो छः थोकों में विभाजित हैं, एक माह के अन्दर वरिष्ठतम अपर जिला न्यायाधीश द्वारा, बैठक बुलाई जाए।
- (ii) सभी 734 सदस्यों द्वारा एक अनुपूरक समझौता केवल इस सीमा तक निष्पादित किया जाएगा कि उनके नाम पत्रावली में लाए गए हैं, 13.09.1904 को पंजीकृत 02.09.1904 के समझौते में निर्धारित नियमों और शर्तों को छुए बिना।
- (iii) सदस्य अपने-अपने थोकों में से एक व्यक्ति का चयन करेंगे, जिसे मंदिर के कार्यों के प्रबंधन के लिए प्रबंधन समिति में भेजा जाएगा।
- (iv) प्रबंधन समिति का गठन दिनांक 02.09.1904 के समझौते के अनुसार किया जाएगा और केवल 734 परिवारों के नए सदस्य ही पूरक समझौते का हिस्सा बनेंगे।
- (v) नवगठित प्रबंधन समिति, मंदिर के दिन-प्रतिदिन के कार्यों की देखभाल करेगी।

64. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि 'रिसीवर' की नियुक्ति के लिए पक्षों द्वारा शुरू की गई समस्त विविध कार्यवाही को रद्द कर दिया गया है और दिनांक 02.09.1904 के समझौते के अनुसरण में मंदिर के मामलों की देखभाल के लिए नई प्रबंधन समिति गठित करने के निर्देश जारी किए गए हैं, वर्तमान रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

संदर्भ : सिविल विविध सुधार/संशोधन आवेदन संख्या 13 सन् 2025

1. यह सुधार/संशोधन आवेदन प्रतिवादी संख्या 14, 15 और 16 की ओर से प्रस्तुत किया गया है। जिसमें दिनांक 21.03.2025 के निर्णय और आदेश में सुधार/संशोधन की मांग की गई है, जिसके अनुसार जिला न्यायाधीश, मथुरा नकदी, बैंक खातों, आभूषणों आदि सहित सभी चल और अचल संपत्तियों की एक सूची तुरंत तैयार करवाएंगे और कार्यवाहक रिसीवर, कुंवर पाल सिंह तोमर द्वारा प्रबंध समिति के गठन के समक्ष एक आख्या प्रस्तुत करेंगे।

2. उक्त तथ्य के मद्देनजर, दिनांक 21.03.2025 के निर्णय एवं आदेश को इस सीमा तक के मद्देनजर, संशोधित किया जाता है कि प्रस्तर संख्या 64 के पश्चात् निम्नलिखित प्रस्तर जोड़े जाते हैं:-

"65. जिला न्यायाधीश, मथुरा से अनुरोध है कि वे आज से दो दिन की अवधि के भीतर, दाऊजी मंदिर की समस्त चल एवं अचल संपत्तियों, जिनमें नकदी, बैंक खाते, आभूषण आदि सम्मिलित हैं, की पूर्ण सूची तैयार करवाएँ। जब प्रबंधन नवगठित प्रबंध समिति को सौंप दिया जाएगा, तो इस प्रकार तैयार की गई सूची भी हस्तान्तरित कर दी जाएगी।

66. इसके अतिरिक्त, निबंधक (अनुपालन) को निर्देशित किया जाता है कि वे इस आदेश को पूर्व के निर्णय एवं आदेश दिनांक 21.03.2025 के साथ आवश्यक अनुपालन हेतु 24 घंटे के भीतर जिला न्यायाधीश, मथुरा को प्रेषित करें।"

3. सुधार/संशोधन आवेदन निस्तारित किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 116

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

मामला अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या- 11807 सन् 2024

श्रीमती संतोष अवस्थी

-----याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती उर्मिला जैन

-----प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के ओर से अधिवक्ता :

रमा गोयल बंसल, शालिनी गोयल

प्रतिवादी के ओर से अधिवक्ता :

अरविंद श्रीवास्तव

सिविल विधि- भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 227-सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा - 115, आदेश 21 नियम 97, 102-संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882- धारा 52- पुनरीक्षण न्यायालय के धारा 115 सीपीसी के अन्तर्गत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, निष्पादन न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा आदेश XXI नियम 97 के अन्तर्गत प्रस्तुत आवेदन को खारिज करके अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है। --- निष्पादन न्यायालय ने वर्ष 2014 से अपने समक्ष लंबित निष्पादन मामले का निर्णय करने के अपने प्रयास में भी विफलता दिखाई है, और प्रांग न्याय का प्रश्न तैयार करने के बाद मामले को अंतिम चरण में निर्णय के लिए स्थगित कर दिया --- जहां यह एक स्वीकृत तथ्य है कि, संपत्ति, वाद के लंबित रहने के दौरान हस्तांतरित की गई थी और याचिकाकर्ता एक लंबित हस्तान्तरित है और सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 के प्रावधानों के अंतर्गत आता है, इसलिये निष्पादन न्यायालय को शुरू से ही नियम 102 के अनुसार आदेश

पारित करना चाहिए था --- मामला निष्पादन न्यायालय को आदेश XXI नियम 97 सीपी के अन्तर्गत प्रस्तुत आवेदन करने के लिये वापस भेजा जाता है। (प्रस्तर 34,35 और 37)

याचिका का निपटारा किया गया। (ई-15)

उद्धृत मामले की सूची

1. सिद्धाम सेट्टी इन्फ्रा प्रोजेक्ट्स प्राइवेट बनाम कट्टा सुजाता रेड्डी और अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एसी 3214
2. रिंगारा सिंह बनाम दलजीत सिंह एवं अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 2823
3. उषा सिन्हा बाम दीना राम 2008(7)एससीसी 144
4. श्रीराम हाउसिंग फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेन्ट बनाम ओनेश मिश्रा मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट 2024 (15) एससीसी 176
5. सिल्वर लाइन फोरम प्रा0 लिमिटेड बनाम ट्रस्ट और अन्य (1998) 3 एससीसी 723
6. सूर्य देव राय बनाम राम चंदर राम 2003 (6) एससीसी 675
7. राधेश्याम और अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य 2009 (5) एससीसी 616
8. पेरियम्मल बनाम वी, राजमणि, सिविल अपील संख्या 3640-3642 सन् 2025

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा वितरित किया गया)

1. याचिकाकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री रमा गोयल बंसल और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद श्रीवास्तव को सुना गया।
2. यह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत सिविल पुनरीक्षण संख्या 59 सन् 2024 में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, झांसी द्वारा पारित दिनांक 05.08.2024 के आदेश को चुनौती देते हुए प्रस्तुत की गई है।
3. संक्षेप में, वर्तमान याचिका प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक तथ्य यह हैं कि मालती देवी नामक एक महिला विवादित संपत्ति की मूल स्वामिनी थीं। उन्होंने रूप चंद जैन नामक व्यक्ति को 1.8 एकड़ ज़मीन बेची थी, जिसमें विवादित संपत्ति भी सम्मिलित है। 03.12.1976 को रूप चंद जैन ने अपनी खरीदी हुई संपत्ति से अलग-अलग भूखण्ड काटकर एक हिस्सा सुशीला कुमारी, पत्नी राम नारायण को बेच दिया। बिक्री विलेख में भूखण्ड संख्या '767' अंकित था।

4. इसी तरह, 20.05.1979 को उर्मिला जैन ने मालती देवी से भूखण्ड संख्या 776 का 9 डेसीमल क्षेत्रफल खरीदा। उन्होंने भूखण्ड संख्या 771, 770, 772, 773, 774, 775, 768 और 766 भी खरीदे, जिनका कुल क्षेत्रफल 2.5 एकड़ है। सुशीला कुमारी का देहांत वर्ष 1986 में हो गया, उनके पति राम नारायण वर्मा और बेटे नवीन प्रकाश, आनंद प्रकाश, रत्नेश वर्मा और राजेश वर्मा बचे हैं। उर्मिला जैन ने 28.01.1991 को स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक वाद प्रस्तुत किया, जिसे भूखण्ड संख्या 776 और 771 के संबंध में राम नारायण और उनके बेटों के विरुद्ध वाद संख्या 33 सन् 1991 के रूप में पंजीकृत किया गया। 767, जिसका आकार 25 x 50 फीट और 25 x 50 फीट है, के विरुद्ध विचारण न्यायालय ने उर्मिला जैन के पक्ष में अस्थायी निषेधाज्ञा जारी की थी और प्रतिवादियों को भूखण्ड संख्या 776 और 771 के संबंध में वादी के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोक दिया था।

5. 21.01.1991 को मुख्तारनामा धारक रूप चंद जैन द्वारा राम नारायण के पक्ष में एक सुधार विलेख/टिटिम्मा निष्पादित किया गया और भूखण्ड संख्या 767 को 776 में बदल दिया गया। 16.04.1991 को राम नारायण ने अपने बेटों के साथ भूखण्ड संख्या 21, 22 और भूखण्ड संख्या 776 के संबंध में प्रकाश चंद जैन, कैलाश चंद जैन और उर्मिला जैन के विरुद्ध स्थायी निषेधाज्ञा की राहत के लिए वाद संख्या 151 सन् 1991 प्रस्तुत किया। अस्थायी निषेधाज्ञा देने के लिए एक आवेदन दिया गया था जिसे विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया था, जिसके विरुद्ध राम नारायण द्वारा एक विविध अपील प्रस्तुत की गई थी जिसे 17.05.2000 को खारिज कर दिया गया था। दोनों मुकदमों के लंबित रहने के दौरान, राम नारायण ने दोनों मुकदमों में विवादित संपत्ति के संबंध में श्रीमती संतोष अवस्थी को 12.01.2001 को एक विक्रय विलेख निष्पादित किया। श्रीमती संतोष अवस्थी ने 23.01.2002 को इसी विकास प्राधिकरण से मानचित्र स्वीकृत करवाया।

6. उर्मिला जैन द्वारा प्रस्तुत मूल वाद संख्या 33 सन् 1991 का निर्णय 14.10.2003 को हुआ था, जबकि राम नारायण द्वारा प्रस्तुत वाद संख्या 151 सन् 1991 को खारिज कर दिया गया था। राम नारायण ने 14.10.2003 के निर्णय के विरुद्ध सिविल अपील संख्या 96 सन् 2003 प्रस्तुत की। उक्त अपील 13.04.2010 को खारिज कर दी गई। उर्मिला जैन ने 16.12.2010 को निष्पादन वाद संख्या 40 सन् 2010 प्रस्तुत किया, उक्त निष्पादन वाद में श्रीमती संतोष अवस्थी ने 17.01.2011 को पक्षकार बनने का आवेदन प्रस्तुत किया। उक्त आवेदन 04.08.2012 को अदम पैरवी में खारिज कर दिया गया, एक 'रिकाल' आवेदन प्रस्तुत किया गया जो 18.09.2013 को पुनः खारिज कर दिया गया। दिनांक 18.09.2013 के आदेश को वापस लेने के लिए 19.10.2013 को एक और 'रिकाल' आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसे 22.01.2014 को गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया।

7. याचिकाकर्ता, श्रीमती संतोष अवस्थी ने 21.07.2010 को उसी राहत के लिए वाद संख्या 341 सन् 2010 प्रस्तुत की, जिसके लिए राम नारायण द्वारा वाद संख्या 151 सन् 1991 प्रस्तुत किया गया था। उक्त वाद 20.09.2022 को खारिज कर दिया गया था। वाद संख्या 341 सन् 2010 के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता श्रीमती संतोष अवस्थी ने आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अन्तर्गत आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे विविध वाद

संख्या 6 सन् 2014 के रूप में पंजीकृत किया गया था। उक्त आवेदन का उर्मिला जैन ने विरोध किया, जिन्होंने इसकी पोषणीयता के आधार पर अपनी आपत्तियां दर्ज कीं। 16.05.2024 को विचारण न्यायालय ने प्रांग न्याय के संबंध में वाद बिन्दु तैयार किया परन्तु कहा कि प्रांग न्याय का वाद बिन्दु पक्षों के सभी साक्ष्यों को पूरा करने के बाद अंतिम चरण में तय किया जाएगा। उक्त आदेश से व्यथित होकर, उर्मिला जैन द्वारा सिविल पुनरीक्षण संख्या 59 सन् 2024 प्रस्तुत किया गया, जिसे दिनांक 05.08.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। अतः यह रिट याचिका।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि धारा 115 सीपीसी का दायरा बहुत सीमित है और न्यायालय केवल धारा 115 सीपीसी के अन्तर्गत दिए गए मापदंडों के भीतर ही आदेश को देख सकता है। पुनरीक्षण शक्ति अपीलीय न्यायालय के समान नहीं है। उनके अनुसार, पुनरीक्षण न्यायालय ने न केवल विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया, बल्कि अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अन्तर्गत प्रस्तुत आवेदन को खारिज कर दिया। उन्होंने तर्क दिया कि आदेश के अवलोकन से यह पता चलता है कि न्यायालय की राय थी कि प्रांग न्याय के वाद बिन्दु को प्रारंभिक मुद्दे के रूप में विचारण न्यायालय द्वारा तय किया जाना चाहिए और पुनरीक्षण न्यायालय को, मामले को, इस बिन्दु पर तय करने के लिए, विचारण न्यायालय को वापस भेजना चाहिए था, लेकिन उसने गलती की और इसके बजाय आदेश XXI नियम 97 के साथ-साथ धारा 151 सीपीसी सहपठित नियम 101 के अन्तर्गत प्रस्तुत आवेदन को खारिज कर दिया।

9. उनके अनुसार, याचिकाकर्ता के अधिकार का निर्णय निष्पादन न्यायालय द्वारा ही किया जाना चाहिए था क्योंकि याचिकाकर्ता वर्ष 2002 से, संबंधित संपत्ति का वैध स्वामी है और मूल वाद संख्या 33 सन् 1991 की डिब्री की आड़ में आवेदन को खारिज कर दिया गया और आज तक न्यायालय द्वारा मामले पर निर्णय नहीं किया गया। यह भी तर्क दिया गया कि सुधार विलेख/टिटिम्मा भूमि के मूल धारक के पक्ष में निष्पादित किया गया था, जिसने भूमि याचिकाकर्ता को हस्तांतरित कर दिया जो एक वास्तविक क्रेता है और इस प्रकार, आवेदन खारिज होने से पहले निष्पादन न्यायालय को उसे सुनना चाहिए था। उन्होंने **हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन बनाम दिलबहार सिंह (2014) 9 एससीसी 78, झाऊ लाल एवं अन्य बनाम मोहन लाल एवं अन्य, एआईआर ऑनलाइन 2013 एससी 498, श्रीमती कस्तूरी राधाकृष्णन एवं अन्य बनाम एम. चिन्नियन एवं अन्य एआईआर 2016 एससी 609 और जिनी धनराजगीर एवं अन्य बनाम शिबू मैथ्यू एवं अन्य आदि, सिविल अपील संख्या 3758-3796/2023 एसएलपी(सी) संख्या 28258-28296/20181** से उत्पन्न, 16.05.2023 को निर्णीत, में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का हवाला दिया है।

10. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया कि बिक्री विलेख मूल स्वामी रूप चंद जैन द्वारा श्रीमती सुशीला कुमारी के पक्ष में भूखण्ड संख्या 767 के संबंध में निष्पादित किया गया था न कि 776 के संबंध में। मूल वाद संख्या 33 सन् 1991 में राम नारायण द्वारा एक शपथपत्र प्रस्तुत किया गया था जिसमें उन्होंने स्वीकार किया था कि भूखण्ड संख्या 776 से उनका कोई संबंध नहीं है। मूल वाद संख्या 33

सन् 1991 के संस्थित होने के बाद रूप चंद जैन के कथित मुख्तारनामा धारक द्वारा सुशीला कुमारी के पक्ष में बेची गई भूमि के संबंध में एक सुधार विलेख/टिटिम्मा निष्पादित किया गया था और संख्या 767 से 776 में सुधार की गई थी। इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि राम नारायण ने भी जवाबदाता प्रतिवादी के विरुद्ध वर्ष 1991 में एक वाद प्रस्तुत किया था और दोनों वादों को एक साथ मिला दिया गया था और अंततः वर्ष 2003 में निर्णय दिया गया था मुकदमे के लंबित रहने के दौरान ही राम नारायण द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में संपत्ति हस्तांतरित कर दी गई थी और इस प्रकार यह, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 से बाधित है और इस पर 'लंबित वाद' का सिद्धान्त लागू होगी।

11. उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता, जिसने वर्ष 2001 में संपत्ति क्रय की थी, उसे लंबित वाद की अच्छी तरह जानकारी था और उसने वर्ष 2003 में प्रतिवादी के पक्ष में वाद का निर्णय सुनाने वाले आदेश के विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत नहीं की। यह अपील राम नारायण द्वारा प्रस्तुत की गई थी, जिसे अंततः वर्ष 2010 में खारिज कर दिया गया, जिसके विरुद्ध कोई दूसरी अपील प्रस्तुत नहीं की गई और निर्णय अंतिम हो गया। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने स्वयं प्रतिवादी के विरुद्ध वाद संख्या 341 सन् 2010 प्रस्तुत किया और उसी राहत का दावा किया जो वाद संख्या 151 सन् 1991 में थी, जिसे 20.09.2022 को खारिज कर दिया गया था, जिसके विरुद्ध आज तक कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गई है और यह दोनों पक्षों के बीच अंतिम हो गई है। यह भी तर्क दिया गया कि वर्ष 2010 में वाद के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता ने निष्पादन कार्यवाही में पक्षकार बनने का आवेदन दिया था, जिसे दो बार खारिज कर दिया गया था और उसके बाद वर्ष 2014 में आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अन्तर्गत आवेदन प्रस्तुत किया गया था।

12. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अन्तर्गत प्रस्तुत आवेदन पोषणीय नहीं है क्योंकि यह आदेश IX नियम 9 सीपीसी के सिद्धांत द्वारा बाधित है क्योंकि 2010 के वाद संख्या 341 के खारिज होने के बाद कोई नया वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, राम नारायण द्वारा प्रस्तुत वाद संख्या 151 सन् 1991 के खारिज होने के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अन्तर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जो कि प्रांग न्याय के सिद्धांत द्वारा बाधित है क्योंकि इसे हस्तांतरिती ने वाद लंबित रहते हुए हस्तांतरित किया था जो पोषणीय नहीं है। यह भी तर्क दिया गया है कि आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अन्तर्गत आवेदन आदेश XXI नियम 102 सीपीसी द्वारा बाधित है क्योंकि इसे हस्तांतरिती लाइट ने वाद लंबित रहते हस्तांतरित किया है। उन्होंने अंत में तर्क दिया कि विचारण न्यायालय द्वारा 16/5/2024 को पारित आदेश अंतर्विदिय नहीं बल्कि अंतिम है। उन्होंने शालिनी श्याम शेटी एवं अन्य बनाम राजेंद्र शंकर पाटिल (2010) 8 एससीसी 329, रोशन दीन बनाम प्रीति लाल (2002) 1 एससीसी 100, राधेश्याम एवं अन्य बनाम छवि नाथ एवं अन्य (2009) 5 एससीसी 616, पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य बनाम समर कुमार सरकार (2009) 15 एससीसी 444, गददे वेंकटेश्वर राव बनाम एपी सरकार एवं अन्य (1965) सुप्रीम टुडे 247, साधना लोध बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (2003) 3 एससीसी 524, वरयाम सिंह एवं अन्य बनाम अमरनाथ एवं अन्य (1954) एआईआर एससी 215, ओसेफ मथाई एवं अन्य बनाम एम. अब्दुल खादिर (2001) 8 सुप्रीम 262, मोहम्मद इनाम बनाम संजय कुमार सिंघल

और अन्य (2020) 0 सुप्रीम (एससी) 423, उषा सिन्हा बनाम दीना राम और अन्य (2008) 7 एससीसी 144, शिंगारा सिंह बनाम दलजीत सिंह और अन्य (2024) एससीसी ऑनलाइन एससी 2823, सिद्धमसेट्टी इंफ्रा प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम कट्टा सुजाता रेड्डी और अन्य (2024) एसएससी ऑनलाइन एससी 3214, श्रीराम हाउसिंग फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट इंडिया लिमिटेड बनाम ओमेशा मिश्रा मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट (2024) 15 एससीसी 176, सुरेश चंद जैन बनाम तृतीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश (2001) 10 एससीसी 508, सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड बनाम राजीव ट्रस्ट एवं अन्य(1998) 3 एससीसी 723, क्षेत्रीय प्रबंधक, क्षेत्र II, भारतीय स्टेट बैंक, आंचलिक कार्यालय, गढ़ रोड, मेरठ एवं अन्य बनाम प्रदीप गोयल (1992) सभी डब्ल्यूसी 857, हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इशाक एवं अन्य(1955) एआईआर एससी 233, गुजरात राज्य बनाम वखतसिंहजी वजेसिंहजी वाघेला (मृत) एवं अन्य (1968) एआईआर एससी 1481 और एमएमटीसी लिमिटेड बनाम वाणिज्यिक कर आयुक्त एवं अन्य (2009) 1 एससीसी 81 के मामलों में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयो पर भरोसा किया है।

13. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

14. पूरा विवाद दोनों पक्षों द्वारा क्रय गए भूखण्ड संख्या 776 को लेकर है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि सुशीला कुमारी ने 03.12.1976 को पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से रूपचंद जैन से भूखण्ड संख्या 767 खरीदा था। 20.05.1979 को उर्मिला जैन ने मालती देवी से भूखण्ड संख्या 776 का 9 डिसमिल हिस्सा खरीदा। सुशीला कुमारी की मृत्यु के बाद, जब उर्मिला जैन द्वारा वाद प्रस्तुत किया गया था, सुशीला कुमारी के पति राम नारायण ने रूपचंद जैन के मुख्तारनामा धारक के माध्यम से एक सुधार विलेख/टिटिम्मा निष्पादित करवाया और भूखण्ड संख्या 767 से 776 में बदल दी गई।

15. यह सच है कि सुधार विलेख/टिटिम्मा के क्रियान्वयन से पहले, राम नारायण ने 30.01.1991 को एक शपथपत्र प्रस्तुत किया था कि सुशीला कुमारी ने उर्मिला जैन द्वारा प्रस्तुत मूल वाद संख्या 33 सन् 1991 के अंतर्गत भूखण्ड संख्या 767 खरीदा था। उर्मिला जैन और राम नारायण द्वारा दाखिल वाद के लंबित रहने के दौरान ही, याचिकाकर्ता द्वारा विवादित संपत्ति 12.01.2001 को राम नारायण से खरीदी गई थी। उर्मिला जैन द्वारा प्रस्तुत वाद पर 14.10.2003 को निर्णय हुआ और राम नारायण द्वारा प्रस्तुत वाद खारिज कर दिया गया, जिसके विरुद्ध सिविल अपील संख्या 96 सन् 2003 प्रस्तुत की गई, जिसे भी 13.04.2010 को खारिज कर दिया गया।

16. इस अवधि के दौरान याचिकाकर्ता ने अपील में पक्षकार बनने हेतु कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया, तथा अपील खारिज होने और डिक्री धारक उर्मिला जैन द्वारा निष्पादन वाद प्रस्तुत किए जाने के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा पक्षकार बनने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसे तीन बार खारिज किया गया। इस बीच, याचिकाकर्ता

ने वाद संख्या 341 सन् 2010 भी प्रस्तुत किया, जिसे 20.09.2022 को खारिज कर दिया गया, जिसके विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गई।

17. याचिकाकर्ता ने उक्त मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, निष्पादन न्यायालय के समक्ष आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अन्तर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसका डिफ्री धारक द्वारा भी विरोध किया गया और इस आधार पर इसकी पोषणीयता पर आपत्तियाँ उठाई गई कि आवेदन 'वाद लंबित' के सिद्धांत से बाधित है। डिफ्री धारक ने यह भी आपत्ति की कि आवेदन प्रांग न्याय के प्रावधानों द्वारा बाधित है और इसे पहले निष्पादन न्यायालय द्वारा तय किया जाना चाहिए। विचारण न्यायालय ने 16.05.2024 को प्रांग न्याय के संबंध में वाद बिन्दु तैयार किया, लेकिन यह टिप्पणी की कि सभी पक्षों के साक्ष्य पूरे होने के बाद अंतिम चरण में इसका निर्णय किया जाएगा। निष्पादन न्यायालय के आदेश को, डिफ्री धारक प्रतिवादी द्वारा चुनौती दिया गया था।

18. संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 'लंबित विधि' के सिद्धांत को प्रतिपादित करती है। उपर्युक्त प्रावधान का प्रभाव किसी वाद के पक्षकारों द्वारा किए गए सभी स्वैच्छिक हस्तांतरणों को रद्द करना नहीं है, बल्कि केवल उस वाद में पारित डिफ्री या आदेश के अन्तर्गत पक्षकारों के अधिकारों के अधीन करना है। इसका प्रभाव केवल वाद में पारित डिफ्री को हस्तांतरिती पर बाध्यकारी बनाना है, यदि वह तृतीय पक्षकार है, भले ही वह उसका पक्षकार न भी हो।

19. हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने **सिद्धमसेट्टी इंफ्रा प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम कट्टा सुजाता रेड्डी एवं अन्य , 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3214** में 'लंबित वाद' के सिद्धांत पर विचार करते हुए यह निर्णय दिया कि 'लंबित वाद' का मूल उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि न्यायालय की प्रक्रिया को बाधित और निष्फल न किया जाए। 'लंबित वाद' के सिद्धांत के अभाव में, प्रतिवादी वाद की संपत्ति को अलग करके वाद के उद्देश्य को विफल कर सकता है। प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 47 और 49 नीचे उद्धृत हैं;

"47. संक्षेप में, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 में निहित 'लंबित वाद' का सिद्धांत मुकदमे के लंबित रहने के दौरान वादग्रस्त संपत्ति के अंतरण पर रोक लगाता है। इस सिद्धांत का एकमात्र अपवाद तब है जब इसे न्यायालय के अधिकार के अन्तर्गत और उसके द्वारा लगाई गई शर्तों पर हस्तांतरित किया जाता है। जहां मुकदमे के पक्षों में से एक पक्ष वादग्रस्त संपत्ति (या उसका एक हिस्सा) किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरित करता है, तो वह कार्यवाही के परिणाम से बाध्य होता है, भले ही उसे मुकदमे या कार्यवाही की सूचना न हो। जिस सिद्धांत पर यह अधिकारिक मत आधारित है, उसे न्यायमूर्ति टर्नर ने बेलामी बनाम सबाइन¹¹ में इस प्रकार समझाया:

"मैं समझता हूँ कि यह सिद्धांत, विधि और समता दोनों ही न्यायालयों में समान है और जैसा कि मैं समझता हूँ, यह इस आधार पर आधारित है कि यदि वाद लंबित रहते हुए हस्तांतरित को अनुमति दी गई तो किसी भी मुकदमे या वाद का सफलतापूर्वक समापन होना स्पष्ट रूप से असंभव होगा। वादी, प्रत्येक मामले में निर्णय या

डिक्री से पहले प्रतिवादियों द्वारा हस्तांतरण के कारण, पराजित होने के लिए बाध्य होगा, और उसे अपनी कार्यवाही नए सिरे से शुरू करनी पड़ेगा, जो कार्यवाही के उसी क्रम में पुनः पराजित होने के अधीन होगा।"

49. 'लंबित वाद' का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि न्यायालय की प्रक्रिया को बाधित और निष्फल न किया जाए। 'लंबित वाद' के सिद्धांत के अभाव में, प्रतिवादी वाद की संपत्ति को हस्तांतरित करके वाद के उद्देश्य को विफल कर सकता है। इस प्रावधान का उद्देश्य धारा 52 के स्पष्टीकरण खंड में प्रभावी रूप से स्पष्ट किया गया है, जो "लंबित" की परिभाषा देता है। 1929 के संशोधन अधिनियम 20 ने "सक्रिय अभियोजन" के स्थान पर "लंबित" शब्द प्रतिस्थापित किया। संशोधन अधिनियम में "वाद या कार्यवाही के लंबित" शब्द को परिभाषित करने वाला स्पष्टीकरण भी सम्मिलित था। "लंबित" को "स्थापना की तिथि" से "निपटारे" तक के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रतिवादियों का यह तर्क कि 'लंबित वाद' का सिद्धांत लागू नहीं होता, क्योंकि पुनर्विचार याचिका रजिस्ट्री में दोषपूर्ण अवस्था में पड़ी थी, स्वीकार नहीं किया जा सकता। पुनर्विचार कार्यवाही तीस दिनों की सीमा अवधि के भीतर "स्थापित" की गई थी। 'लंबित वाद' का सिद्धांत "स्थापना" के चरण में लागू होता है, न कि उस चरण में जब इस न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किया जाता है। इस प्रकार, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52, इस न्यायालय के समक्ष समीक्षा याचिका प्रस्तुत करने के बाद बिक्री निष्पादित होने पर, तृतीय-पक्ष क्रेता पर लागू होगी। लंबित रहने के दौरान किया गया कोई भी अंतरण मुकदमे के अंतिम परिणाम के अधीन होगा।"

20. शिंगारा सिंह बनाम दलजीत सिंह एवं अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 2823 में, सर्वोच्च न्यायालय ने उषा सिन्हा बनाम दीना राम 2008 (7) एससीसी 144 के मामले में दिए गए पूर्व निर्णय पर विचार करते हुए यह माना कि 'लंबित वाद' का सिद्धांत मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किसी अन्य हस्तांतरण पर लागू होता है, चाहे ऐसे हस्तांतरणकर्ताओं को लंबित कार्यवाही की सूचना हो या न हो। प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 11 नीचे उद्धृत किया गया है;

"11. उषा सिन्हा बनाम दीना राम² में इस न्यायालय ने माना कि 'लंबित वाद' का सिद्धांत मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किसी हस्तांतरण पर लागू होता है, चाहे ऐसे हस्तांतरणकर्ताओं को लंबित कार्यवाही की सूचना हो या न हो। प्रस्तर 18 और 23 में निम्नलिखित माना गया है:

"18. डेढ़ शताब्दी पहले, बेल्लामी बनाम सबाइन [(1857) 1 डी जी एंड जे 566: 44 ईआर 842] में, माननीय क्रैनवर्थ, एलसी ने घोषणा की कि जहां किसी वादी और प्रतिवादी के बीच किसी विशेष संपत्ति के अधिकार के संबंध में वाद लंबित है, मानव जाति की आवश्यकताओं की मांग है कि मुकदमे में न्यायालय का निर्णय न केवल वाद करने वाले पक्षों पर बाध्यकारी होगा, बल्कि उन लोगों पर भी होगा जो मुकदमे के लंबित रहने के दौरान किए गए हस्तांतरणों द्वारा उनके अन्तर्गत शीर्षक प्राप्त करते हैं, चाहे ऐसे हस्तांतरणकर्ताओं को लंबित कार्यवाही की सूचना हो या न हो। यदि ऐसा नहीं होता, तो कोई निश्चितता नहीं हो सकती थी कि वाद कभी समाप्त होगा।

23. इस प्रकार यह स्थापित विधि है कि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान वादग्रस्त संपत्ति के क्रेता को किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के निष्पादन का विरोध करने या उसमें बाधा डालने का कोई अधिकार नहीं है। "लंबित वाद" का सिद्धांत किसी पक्षकार को उस संपत्ति से संबंधित लेन-देन करने से रोकता है जो मुकदमे की विषय-वस्तु है। "लंबित वाद" को ही क्रेता के लिए रचनात्मक सूचना के रूप में माना जाता है कि वह लंबित मुकदमे में दर्ज की जाने वाली डिक्री से बाध्य है। इसलिए, नियम 102 स्पष्ट करता है कि वाद लंबित रहते हुए प्रतिरोध या बाधा नहीं डाली जानी चाहिए। यह, घोषित करता है कि यदि हस्तांतरिती द्वारा निर्णीत-ऋणी के वाद लंबित रहते हुए प्रतिरोध उत्पन्न किया जाता है या बाधा डाली जाती है, तो वह आदेश 21 के नियम 98 या 100 का लाभ नहीं ले सकता।"

21. श्रीराम हाउसिंग फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट बनाम ओमेश मिश्रा मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट 2024 (15) एससीसी 176 में , सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि आदेश XXI के नियम 97 के अन्तर्गत, केवल डिक्री धारक ही उस स्थिति में आवेदन करने का हकदार है जब किसी व्यक्ति द्वारा उसका प्रतिरोध या बाधा उत्पन्न की जाती है। इसके अतिरिक्त, नियम 99, डिक्री धारक या उसके क्रेता द्वारा संपत्ति पर कब्जा करने वाले व्यक्ति द्वारा अचल संपत्ति से बेदखल किए जाने के विरुद्ध न्यायालय में शिकायत करने से संबंधित है।

22. वर्तमान मामले में, आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत आवेदन एक हस्तांतरिती 'लंबित वाद' /याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिसने वाद संख्या 151 सन् 1991 के वादी से 12.01.2001 को संपत्ति खरीदी थी, जबकि वाद का निर्णय 14.10.2003 को हुआ था। वह न तो वाद में और न ही अपील में कभी पक्षकार बनी। वास्तव में, उसके द्वारा प्रस्तुत वाद संख्या 341 सन् 2010, 20.09.2022 को खारिज कर दिया गया था, जिसके विरुद्ध आज तक कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गई है।

23. सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड बनाम राजीव ट्रस्ट एवं अन्य (1998) 3 एससीसी 723 में सर्वोच्च न्यायालय ने "नियम 97 के अंतर्गत आवेदन पर कार्यवाही में पक्षकारों के बीच उत्पन्न होने वाले सभी प्रश्न" शब्दों की व्याख्या करते हुए यह निर्णय दिया कि यह केवल उन्हीं प्रश्नों पर लागू होता है जो उन पक्षकारों के बीच विधिक रूप से निर्धारण हेतु उत्पन्न होते हैं। न्यायालय केवल इसलिए किसी प्रश्न का निर्धारण करने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि प्रतिवादी ने उसे उठाया है।

24. न्यायालय ने आगे कहा कि नियम 101 के अन्तर्गत निष्पादन न्यायालय जिस प्रश्न का निर्धारण करने के लिए बाध्य है, उसके दो उपबंध होने चाहिए। पहला यह कि ऐसे प्रश्न पक्षकारों के बीच विधिक रूप से उत्पन्न हुए हों, और दूसरा यह कि ऐसे प्रश्न पक्षकारों के बीच विचार और निर्धारण के लिए प्रासंगिक होने चाहिए, उदाहरण के लिए, यदि विरोधकर्ता यह स्वीकार करता है कि वह एक वाद लंबित रहते हुए है, तो उसके द्वारा उठाए गए इस प्रश्न का निर्धारण करना आवश्यक नहीं है कि संपत्ति खरीदते समय उसे मुकदमे की जानकारी नहीं थी।

25. आदेश XXI का नियम 102 स्पष्ट रूप से 'लंबित वाद' हस्तांतरिती पर इसके लागू होने पर रोक लगाता है और इसे नीचे उद्धृत किया गया है

" आदेश 21 नियम 102 सीपीसी

नियम वाद लंबित रहते हुए पर लागू नहीं होते हैं- नियम 98 और 100 में कुछ भी उस व्यक्ति द्वारा अचल संपत्ति के कब्जे के लिए डिक्री के निष्पादन में प्रतिरोध या बाधा पर लागू नहीं होगा, जिसे निर्णीत-ऋणी ने उस वाद के संस्थित होने के बाद संपत्ति हस्तांतरित कर दी है जिसमें डिक्री पारित की गई थी या ऐसे किसी व्यक्ति को बेदखल करने पर, लागू नहीं होगा।

स्पष्टीकरण- इस नियम में, "स्थानान्तरण" में विधि के प्रवर्तन द्वारा किया गया स्थानान्तरण भी सम्मिलित है।"

26. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता निस्संदेह एक 'वाद लंबित' रहते हुए प्रस्तुत हुआ है और उसने वर्ष 2001 में राम नारायण से विवादित संपत्ति खरीदने के तथ्य से इनकार नहीं किया है, जब मूल वाद संख्या 33 सन् 1991 और 151 सन् 1991 दोनों विचाराधीन थे। शिंगारा सिंह (उपरोक्त), सिद्धमसेट्टी इंफ्रा प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त), श्रीराम हाउसिंग फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय और सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय के मद्देनजर, याचिकाकर्ता एक लंबित वाद हस्तान्तरित होने के नाते आदेश XXI के नियम 97 के अन्तर्गत आवेदन नहीं कर सकता है और वह डिक्री से बंधा है, और आदेश XXI के नियम 102 द्वारा भी बाधित है।

27. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने निष्पादन कार्यवाही के दौरान स्वयं को पक्षकार बनाने वाले आवेदन के खारिजा से इनकार नहीं किया है और उसके बाद, वर्ष 2010 में उसके द्वारा स्थापित मुकदमे को खारिज कर दिया एक बार ऐसी स्थिति होने पर याचिकाकर्ता को आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अन्तर्गत अपने आवेदन की पोषणीयता का औचित्य सिद्ध करना होगा ।

28. इस समय विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या निष्पादन न्यायालय द्वारा दिनांक 16.05.2024 का आदेश पारित करना उचित था, जबकि डिक्री धारक उर्मिला जैन द्वारा आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत आवेदन की पोषणीयता पर आपत्तियाँ उठाई गई थीं और यह प्रांग न्याय के प्रावधानों द्वारा बाधित था। यह सच है कि निष्पादन न्यायालय ने प्रांग न्याय का मुद्दा तो तैयार किया था, लेकिन यह भी कहा था कि उक्त मुद्दे पर अंतिम चरण में साक्ष्यों पर विचार करने के बाद निर्णय लिया जाएगा।

29. स्थापित विधिक प्रस्ताव और नियम 102 के प्रावधानों को देखते हुए, एक बार जब यह स्वीकार किया गया कि याचिकाकर्ता एक हस्तांतरिती है, तो निष्पादन न्यायालय को, आवेदन पर आगे कोई कार्यवाही नहीं करनी चाहिए थी और सबसे पहले लंबित वाद और नियम 102 के सिद्धांत के प्रकाश में डिक्री धारक द्वारा उठाए गए आपत्तियों का निर्णयन करना चाहिए था। यदि निष्पादन न्यायालय द्वारा प्रांग न्याय का वाद बिन्दु तैयार

किया गया था, तो उसे निर्णय लेना चाहिए था और आगे कोई साक्ष्य लेने और इसे स्थगित करने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए थी।

30. जहाँ तक 'लंबित वाद' के सिद्धांत का संबंध है, विधि में यह स्थापित है कि एक बार जब किसी पक्षकार द्वारा यह स्वीकार कर लिया जाता है कि उसने वाद के लंबित रहने के दौरान संपत्ति खरीदी है, तो ऐसा अंतरण संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 के प्रावधानों के अंतर्गत आता है। यदि ऐसा है, तो आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत आवेदन, प्रथम दृष्टया, पोषणीय नहीं था। निष्पादन न्यायालय ने आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन को लंबित रखते हुए, मामले को वर्ष 2014 से 2024 तक लगभग 10 वर्षों तक गलत तरीके से खींचा है।

31. हालाँकि, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिनांक 16.05.2024 के आदेश के विरुद्ध सिविल पुनरीक्षण स्वीकार्यता के संबंध में उठाए गए तर्क पर विचार करते हुए, मैं पाता हूँ कि यह कोई निर्णीत मामला नहीं था और केवल निष्पादन न्यायालय ने ही प्रांग न्याय का वाद बिन्दु तैयार करने के बाद मामले को अंतिम चरण में निर्णय के लिए स्थगित कर दिया था। यदि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण पर विचार किया गया होता और पाया गया होता कि प्रांग न्याय के वाद बिन्दु पर पहले निर्णय लिया जाना था, तो उसे मामले को पहले निर्णय के लिए निष्पादन न्यायालय को वापस भेज देना चाहिए था। पुनरीक्षण न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए था और निष्पादन न्यायालय के समक्ष आवेदन लंबित होने के बाद ही आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन को खारिज कर देना चाहिए था।

32. सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर भरोसा करने से प्रतिवादी अधिवक्ता को सहयोग नहीं मिलता है क्योंकि **सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय 2003 (6) एससीसी 675, राधेश्याम और अन्य बनाम छवि नाथ और अन्य 2009 (5) एससीसी 616** के मामले में निर्णय पर भरोसा किया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से माना गया है कि पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग संयम से और केवल उचित मामलों में किया जाना चाहिए जहां उच्च न्यायालय की न्यायिक अंतरात्मा उसे कार्य करने के लिए निर्देशित करती है, अन्यथा न्याय की घोर विफलता होगी या गंभीर अन्याय हो सकता है।

33. वर्तमान मामले में पुनरीक्षण न्यायालय ने निष्पादन न्यायालय का क्षेत्राधिकार ग्रहण कर लिया था और आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन को खारिज कर दिया था, हालाँकि यह देखते हुए कि पहले प्रांग न्याय के बिन्दु पर निर्णय लिया जाना चाहिए था। पुनरीक्षण न्यायालय अधिक से अधिक कुछ निर्देशों के साथ मामले को वापस भेज सकता था, लेकिन पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए वह निष्पादन न्यायालय की भूमिका ग्रहण नहीं कर सकता था, क्योंकि दिनांक 16.05.2024 का आदेश निर्णीत मामले की श्रेणी में नहीं आता।

34. गहन विचार-विमर्श के बाद, मैं पाता हूँ कि पुनरीक्षण न्यायालय ने धारा 115 सीपीसी के अंतर्गत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन को खारिज करके अपने क्षेत्राधिकार का दुरुपयोग किया है। तथापि, निष्पादन न्यायालय वर्ष 2014 से अपने समक्ष लंबित निष्पादन मामले का निर्णय करने में भी विफल रहा है, और प्रांग न्याय का बिन्दु तैयार करने के बाद, मामले को अंतिम चरण में निर्णय के लिए स्थगित कर दिया।

35. ऐसे मामले में जहां यह स्वीकृत तथ्य है कि संपत्ति मुकदमे के लंबित रहने के दौरान हस्तांतरित की गई थी और याचिकाकर्ता एक हस्तांतरिणी है और संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 के प्रावधानों से वाधित है, निष्पादन न्यायालय को शुरू में ही नियम 102 सीपीसी के अनुसरण में आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए था ।

36. हाल ही में, 06.03.2025 को, सर्वोच्च न्यायालय ने **पेरियाम्मल बनाम वी. राजमणि, सिविल अपील संख्या 3640-3642 सन् 2025** में, पूर्व निर्णयों के आधार पर, निष्पादन कार्यवाही में तेजी लाने के लिए देश भर के निष्पादन न्यायालयों को आवश्यक निर्देश जारी किए। प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत हैं:-

"72. इस मामले को बंद करने से पहले, हमारा दृढ़ विश्वास है कि हमें देश भर के निष्पादन न्यायालयों द्वारा निष्पादन याचिकाओं पर निर्णय लेने में होने वाली लंबी और अत्यधिक देरी के संबंध में कुछ कहना चाहिए।

73. राहुल एस. शाह (उपरोक्त) मामले में की गई टिप्पणियों पर पुनर्विचार करना उचित होगा, जिसमें इस न्यायालय ने निष्पादन कार्यवाही के संचालन हेतु दिशानिर्देश और निर्देश प्रदान किए हैं। उक्त निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे पुनः प्रस्तुत है:

"42. मुकदमों और निष्पादन कार्यवाही से निपटने वाले सभी न्यायालयों को अनिवार्य रूप से नीचे उल्लिखित निर्देशों का पालन करना होगा:

42.1. कब्जे की सुपुर्दगी से संबंधित मुकदमों में, न्यायालय को आदेश 10 के अन्तर्गत तीसरे पक्ष के हित के संबंध में, वाद के पक्षकारों की जांच करनी चाहिए और आदेश 11 नियम 14 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पक्षकारों से शपथ पर उन दस्तावेजों का खुलासा करने और प्रस्तुत करने के लिए कहना चाहिए जो पक्षकारों के कब्जे में हैं, जिसमें ऐसी संपत्तियों में तीसरे पक्ष के हित से संबंधित घोषणा भी सम्मिलित है।

42.5. न्यायालय को संपत्ति के कब्जे के संबंध में डिक्री पारित करने से पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि डिक्री स्पष्ट हो ताकि उसमें न केवल संपत्ति का स्पष्ट विवरण हो बल्कि संपत्ति की स्थिति का भी ध्यान रखा जाए।

42.8. धारा 47 या आदेश 21 सीपीसी के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालय को, अधिकारों का दावा करने वाले किसी तीसरे पक्ष के आवेदन पर, यांत्रिक तरीके से नोटिस जारी नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, न्यायालय को ऐसे किसी भी आवेदन पर विचार करने से बचना चाहिए जिस पर न्यायालय द्वारा मुकदमे के निर्णय के दौरान पहले ही विचार किया जा चुका हो या जो कोई ऐसा वाद बिन्दु उठाता हो जिसे अन्यथा आवेदक द्वारा उचित तत्परता बरते जाने पर मुकदमे के निर्णय के दौरान उठाया और निर्धारित किया जा सकता था।

42.9. न्यायालय को केवल असाधारण और दुर्लभ मामलों में ही निष्पादन कार्यवाही के दौरान साक्ष्य प्रस्तुती की अनुमति देनी चाहिए, जहां तथ्य के प्रश्न का निर्णय किसी अन्य त्वरित विधि जैसे कि आयुक्त की नियुक्ति या शपथपत्र के साथ फोटो या वीडियो सहित 'इलेक्ट्रॉनिक सामग्री' मंगाने के माध्यम से नहीं किया जा सकता है।

42.10. न्यायालय को उचित मामलों में, जहाँ उसे आपति या प्रतिरोध या दावा तुच्छ या दुर्भावनापूर्ण लगे, आदेश 21 के नियम 98 के उप-नियम (2) का सहारा लेना होगा और साथ ही धारा 35-क के अनुसार प्रतिकर लागत भी प्रदान करनी होगी।

42.12. निष्पादन न्यायालय को निष्पादन कार्यवाही को, स्थगित करने की तिथि से छह महीने के भीतर निपटाना होगा, जिसे केवल, ऐसे विलंब के कारणों को लिखित रूप में दर्ज करके बढ़ाया जा सकता है।

(बल दिया गया)

74. राहुल एस. शाह (उपरोक्त) के प्रस्तर 42.12 में निहित अनिवार्य निर्देश, जिसमें निष्पादन कार्यवाही को स्थापित करने की तथि से छह महीने के भीतर पूरा करने की आवश्यकता है, को इस न्यायालय ने भोज राज गर्ग बनाम गोयल एजुकेशन एंड वेलफेयर सोसाइटी, विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 19654 सन् 2022 में अपने आदेश में दोहराया है।”

37. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, सिविल पुनरीक्षण संख्या 59 सन् 2024 में अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, झांसी द्वारा पारित दिनांक 05.08.2024 के आदेश और विविध वाद संख्या 6 सन् 2024 में पारित निष्पादन न्यायालय के दिनांक 16.05.2024 के आदेश को एतद्वारा अपास्त किया जाता है। शिंगारा सिंह (उपरोक्त), सिद्धमसेट्टी इंफ्रा प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त), श्रीराम हाउसिंग फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट (उपरोक्त), सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) और पेरियाम्मल (उपरोक्त) के मामलों में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए और साथ-साथ नियम 102 सीपीसी और लंबित वाद के सिद्धांत पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा आदेश XXI नियम 97 सीपीसी के अन्तर्गत प्रस्तुत आवेदन पर, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से

एक महीने की अवधि के भीतर, विधि के अनुसार आवश्यक आदेश पारित करने के लिए, मामला निष्पादन न्यायालय को वापस भेजा जाता है।

38. उपर्युक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 126

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव गुप्ता,

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 13742 वर्ष 2021

संबद्ध

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 13816 वर्ष 2021

मोहम्मद खालिद

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... विपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता: श्री आशीष मल्होत्रा, सुश्री पुष्पिला बिष्ट

विपरीत पक्षों के अधिवक्ता: श्री आशुतोष उपाध्याय, श्री बीरेन्द्र सिंह, श्री अजय कुमार सिंह, जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138 और 142- धारा 482 के तहत आवेदन - बड़ी पीठ - यह पता करने के लिए गठित की गई कि क्या परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दायर शिकायत में अभियोग आवेदन दाखिल करना वैध है, यदि कंपनी को आरोपी के रूप में नामित किए बिना केवल मालिक के खिलाफ दायर किया गया हो - विभिन्न उच्च न्यायालय की पीठों ने परस्पर विरोधी निर्णय दिए थे - यह संदर्भ अनीता हाड़ा बनाम गॉडफादर ट्रेवल्स की व्याख्या करने वाले उच्च न्यायालय के परस्पर विरोधी निर्णयों के कारण उठा। - बाद में, स्पष्ट किया कि यदि कोई कंपनी शामिल है, तो उसे शिकायत में आरोपी के रूप में नामित किया जाना चाहिए। साथ ही, धारा 142 के तहत कार्रवाई करने की कानूनी समय सीमा (सीमा अवधि) समाप्त होने के बाद, कोई नया आरोपी नहीं जोड़ा जा सकता है - माना गया - परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 142 के तहत अपराध का संज्ञान लेने

के लिए निर्धारित सीमा समाप्त होने के बाद शिकायत दर्ज करने के बाद किसी अतिरिक्त आरोपी को शामिल नहीं किया जा सकता है - इसलिए, संदर्भ का उत्तर दिया गया - और मामला संबंधित एकल न्यायाधीश के समक्ष फिर से शुरू होगा - आवेदन लंबित है। (पैरा - 9, 10, 11)

आवेदन लंबित है। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मोहम्मद खालिद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 11600 वर्ष 2021 का फैसला 19.08.2021 को हुआ,
2. गौरव सब्बरवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य - आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482 नंबर 1224 वर्ष 2021 - 19.08.2021 को निर्णीत हुआ,
3. अनीता हाडा बनाम गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टूरस प्राइवेट लिमिटेड: (2012) 5 एससीसी 661,
4. पवन कुमार गोयल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: 2022 एस सी सी ऑनलाइन एस सी 1598

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल, द्वारा प्रदान किया गया)

1. आवेदक की ओर से अधिवक्ता सुश्री पुष्पिला बिष्ट और श्री आशीष मल्होत्रा, विपक्षी पक्ष संख्या 2 के अधिवक्ता श्री बिरेन्द्र सिंह के प्रतिनिधि अधिवक्ता श्री अजय कुमार सिंह, तथा राज्य/विपक्षी पक्ष संख्या 1 की ओर से अधिवक्ता श्री ए. एन. मुल्ला, श्री शशि शेखर तिवारी और श्री जितेन्द्र कुमार जायसवाल, विद्वान ए.जी.ए को सुना गया तथा अभिलेखों का अवलोकन किया गया।
2. यह मामला माननीय मुख्य न्यायाधीश के दिनांक 17.05.2024 के आदेश द्वारा इस बड़ी बेंच के नामांकन के माध्यम से इस बेंच के समक्ष रखा गया है।
3. बड़ी बेंच के सामने जो मुद्दा उठाया गया है, जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश दिनांक 25.11.2021 में बताया गया है, वह इस प्रकार है:-

"आवेदक की ओर से दायर लिखित दलीलें रिकॉर्ड पर ले ली गई हैं।"

आवेदक की ओर से श्री सतीश त्रिवेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री अजय कुमार पांडे और श्री आशीष मल्होत्रा, विद्वान अधिवक्ता कर रहे हैं, प्रतिवादी नंबर 2 की ओर से श्री बीरेंद्र सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री प्रशांत कुमार कर रहे हैं, और विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

इस अदालत के सामने विचार के लिए एकमात्र कानूनी मुद्दा यह है कि क्या इस तरह की शिकायत पालन योग्य है, जिसमें कंपनी के मालिक को नोटिस जारी किया गया है और शिकायत मोहम्मद खालिद, मेसर्स प्लेनम इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड के मालिक के खिलाफ दायर की गई है, जिसमें मेसर्स प्लेनम इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड को एक कॉर्पोरेट इकाई के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया है।

इसी विवाद पर दो फैसले हैं, एक माननीय विवेक अग्रवाल, जे. द्वारा आदेश दिनांक 19.8.2021 को दिया गया है, जिसे आदेश दिनांक 17.9.2021 द्वारा सुधारा गया है और दूसरा माननीय राजीव मिश्रा, जे. द्वारा आदेश दिनांक 19.8.2021 को दिया गया है और दोनों फैसलों में अनीता हाडा और अन्य बनाम गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टूर्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, सुप्रीम कोर्ट की तीन न्यायाधीशों की बेंच द्वारा दिए गए फैसले (2012) 5 एस.सी.सी. 661 पर भरोसा किया गया है। उपरोक्त दो मामलों में माननीय विवेक अग्रवाल, जे. ने आवेदन को रद्द कर दिया और अनुमति दे दी, जबकि माननीय राजीव मिश्रा, जे. ने निम्नलिखित आदेश पारित किया है:-

"15. उपरोक्त पर विचार करने के बाद, यह कोर्ट पक्षकारों को दलीलें बदलने और कार्यवाही पर अंतरिम रोक लगाने का निर्देश दे सकता था। हालांकि, यह देखते हुए कि शिकायत 2015 में दायर की गई थी और मामला छह साल से अधिक समय से शुरूआती चरण में लंबित है, यह कोर्ट इस विचार का है कि न्याय के हित में यह बेहतर होगा कि आवेदक द्वारा बताए गए दोष पर उचित रूप से विचार किया जाए।

16. तदनुसार, निचली अदालत द्वारा 23.01.2015 को पारित संज्ञान लेने का आदेश और समन आदेश रद्द किया जाता है। शिकायतकर्ता/ प्रतिवादी सं0 -2 एक वाद चलाने का आवेदन दायर करेगी जिसमें कंपनी, यानी मेसर्स सक्षम सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड को शिकायत में एक पक्षकार के रूप में शामिल करके शिकायत में संशोधन करने की मांग की जाएगी और आगे, संशोधन के माध्यम से शिकायत में संशोधन करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाएंगे। उपरोक्त प्रक्रिया 30 अक्टूबर, 2021 तक पूरी की जाएगी। उसके बाद, निचली अदालत शिकायत पर विचार करेगी और तदनुसार आगे बढ़ेगी। "

मुद्दा यह है कि क्या वाद चलाने का आवेदन दायर करने की अनुमति दी जा सकती है या नहीं।

ऐसी परिस्थितियों में, मामले को माननीय मुख्य न्यायाधीश के पास भेजा जाता है ताकि इस मुद्दे को सुलझाने के लिए एक बड़ी बेंच का गठन किया जा सके।

तब तक आवेदक के खिलाफ कोई भी दंडात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी।"

4. माननीय एकल न्यायाधीश के समक्ष समन्वय पीठों के दो आदेश रखे गए थे, जिनमें से एक आपराधिक विविध आवेदन धारा 482 के तहत संख्या 11600 वर्ष 2021 (मोहम्मद खालिद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दिनांक 19.08.2021 को था जिसे बाद में आदेश दिनांक 17.09.2021 द्वारा संशोधित किया गया था

और दूसरा आदेश दिनांक 19.08.2021 को आपराधिक विविध आवेदन धारा 482 के तहत संख्या 1224 वर्ष 2021 (गौरव सब्बरवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित किया गया था। दोनों मामलों को सर्वोच्च न्यायालय के फैसले **अनीता हाडा बनाम गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टूर्स प्राइवेट लिमिटेड: (2012) 5 SCC 661** पर भरोसा किया गया था लेकिन पहले वाले आदेश के अनुसार याचिका मंजूर कर ली गई थी और कार्यवाही रद्द कर दी गई थी, जिसमें शिकायतकर्ता को सलाह दी गई थी कि वह कर्ज की वसूली के लिए दीवानी उपाय अपना सकता है, जबकि बाद वाले आदेश में इसके पैराग्राफ 15 और 16 में निर्देश दिए गए थे कि शिकायतकर्ता / - प्रतिवादी सं० 2 कंपनी को शिकायत में एक पक्षकार के रूप में शामिल करके शिकायत में संशोधन करने के लिए एक वाद चलाने का आवेदन दायर करेगा और आगे संशोधन के माध्यम से शिकायत में संशोधन करने के लिए आवश्यक कदम उठाएगा। संबंधित अदालत को शिकायत पर विचार करने और उसी के अनुसार आगे बढ़ने का निर्देश दिया गया था।

5. विद्वान एकल न्यायाधीश ने दोनों आदेशों का हवाला देते हुए इस मामले पर विचार किया और इस मुद्दे को इस प्रकार सामने रखा: -

"मुद्दा यह है कि क्या वाद चलाने का आवेदन दाखिल करने की अनुमति दी जा सकती है या नहीं।"

6. इस प्रकार, इस मुद्दे को सुलझाने के लिए एक बड़ी बेंच गठित करने के लिए माननीय मुख्य न्यायाधीश को एक निर्देश भेजा गया। इस प्रकार यह मामला उपरोक्त आधार पर इस बड़ी बेंच के समक्ष है।

7. इस मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश के सामने विचार के लिए जो मुद्दा उठा, वह यह था कि क्या कोई शिकायत उस रूप और तरीके से बनाए रखने योग्य है जिसमें कंपनी के मालिक को नोटिस जारी किया गया है और शिकायत उसके खिलाफ कंपनी के मालिक के रूप में दायर की गई है, लेकिन कंपनी को एक कॉर्पोरेट इकाई के रूप में पक्षकार बनाए बिना। इस प्रकार, अलग-अलग समन्वय पीठों के दो आदेशों का हवाला देते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने उपरोक्त मुद्दा तैयार किया और मामले को एक बड़ी बेंच को भेज दिया।

8. नेगोशिएबल इंस्ट्रूमेंट्स एक्ट, 1881 (इसके बाद एन. आई. एक्ट के रूप में संदर्भित) की धारा 138 के तहत एक शिकायतकर्ता द्वारा कंपनी को आरोपी के रूप में शामिल करने के लिए दायर की गई शिकायत में वाद चलाने का आवेदन दाखिल करने का सवाल अब *कोई नया नहीं है।* सुप्रीम कोर्ट को **पवन कुमार गोयल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1598** (17.11.2022 को तय) के मामले में इसी मुद्दे का सामना करना पड़ा था।

9. उच्चतम न्यायालय के सामने चुनौती हाई कोर्ट के अंतिम फैसले और आदेश की थी जिसमें रिट याचिकाओं को स्वीकार करते हुए और उसके सामने उक्त मामले के समन आदेश सहित पूरी कार्यवाही को रद्द कर दिया गया था। उच्चतम न्यायालय के सामने दलीलें यह थीं कि उच्च न्यायालय ने यह समझने में गलती की कि

प्रतिवादी नंबर 2 को कंपनी के निदेशक के रूप में वर्णित करते हुए नाम से आरोपी बनाया गया था और टाइपिंग की गलती के कारण, कंपनी को शिकायत में आरोपी नंबर 2 के रूप में नाम से आरोपी नहीं बनाया जा सका, हालांकि उसका विवरण आरोपी नंबर 1 के विवरण में उल्लिखित था। इस मुद्दे पर उक्त फैसले के पैराग्राफ 26, 27, 28 में विचार किया गया था और अंत में उसी के पैराग्राफ 29 में, कोर्ट ने फैसला सुनाया कि शिकायत दर्ज होने के बाद किसी अतिरिक्त आरोपी को शामिल नहीं किया जा सकता है, जहां एन.आई. एक्ट की धारा 142 के तहत अपराध का संज्ञान लेने की समय सीमा समाप्त हो गई हो। उक्त फैसले के पैराग्राफ 24 से 29 इस प्रकार हैं:-

"24. अब इस मामले के तथ्यों पर आते हैं, अनुलग्नक पी-1 के रूप में दायर शिकायत को देखने से दो बातें साफ तौर पर साबित होती हैं:-

(i) शिकायत में प्रतिवादी-आरोपी का विवरण इस प्रकार है:-

"श्रीमान देवेंद्र कुमार गर्ग, पुत्र लाला जगदीश प्रसाद गर्ग, निदेशक, रवि ऑर्गेनिक्स लिमिटेड, 19-ए, न्यू मंडी, पुलिस स्टेशन-न्यू मंडी, जिला-मुजफ्फरनगर।"

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि यद्यपि प्रतिवादी-आरोपी को रवि ऑर्गेनिक्स लिमिटेड के निदेशक के रूप में वर्णित किया गया था, लेकिन कंपनी को शिकायत में एक पक्ष के रूप में शामिल नहीं किया गया था।

(ii) शिकायत में किए गए कथनों को देखने से यह बिना किसी संदेह के पता चलता है कि ऐसे कोई कथन नहीं हैं कि प्रतिवादी नंबर 2, जब अपराध किया गया था, उस समय कंपनी के व्यवसाय के संचालन के लिए कंपनी का प्रभारी था, और कंपनी के प्रति जिम्मेदार था।

25. यह न्यायालय इस रुख पर दृढ़ रहा है कि यदि शिकायतकर्ता एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध करने के लिए शिकायत में कंपनी के खिलाफ विशिष्ट कथन करने में विफल रहता है, तो इसे आपराधिक न्यायशास्त्र के सामान्य सिद्धांतों का सहारा लेकर ठीक नहीं किया जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं है, धारा 141 के प्रावधान मान्यता के आधार पर परोक्ष दायित्व लगाते हैं जो कंपनी या फर्म द्वारा अपराध किए जाने की पूर्वधारणा और आवश्यकता रखते हैं। इसलिए, जब तक कंपनी या फर्म ने मुख्य आरोपी के रूप में अपराध नहीं किया है, उप-धारा (1) और (2) में उल्लिखित व्यक्ति परोक्ष दायित्व के सिद्धांतों के आधार पर दोषी ठहराए जाने के लिए उत्तरदायी नहीं होंगे।

26. इस संबंध में इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ के एक अन्य निर्णय हिमांशु बनाम बी. शिवमूर्ति और अन्य (सुप्रा) का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिसके तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से काफी मिलते-जुलते हैं, इस मुद्दे पर विचार करते हुए कि शिकायत केवल निदेशक के खिलाफ दर्ज की गई थी, जिसमें कंपनी को आरोपी के रूप में शामिल नहीं किया गया था और क्या कंपनी को बाद में आरोपी के रूप में शामिल किया जा सकता है, यह देखा गया कि:-

"11. वर्तमान मामले में, न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड से पता चलता है कि चेक अपीलकर्ता द्वारा लक्ष्मी सीमेंट एंड सिरेमिक्स इंडस्ट्रीज लिमिटेड के लिए, उसके निदेशक के रूप में जारी किया गया था। मांग का नोटिस केवल अपीलकर्ता को दिया गया था। शिकायत सिर्फ अपीलकर्ता के खिलाफ दर्ज की गई थी कंपनी को आरोपी बनाए बिना।

12. धारा 141 के प्रावधान यह बताते हैं कि यदि धारा 138 के तहत अपराध करने वाला व्यक्ति कोई कंपनी है, 4 (2018) 13 एससी 663 तो हर वह व्यक्ति, जो अपराध होने के समय कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए कंपनी का प्रभारी था या जिम्मेदार था, साथ ही कंपनी भी, अपराध के लिए दोषी मानी जाएगी और उसके खिलाफ कार्रवाई की जाएगी और उसे दंडित किया जाएगा।

13. कंपनी को आरोपी के रूप में पेश न किए जाने के कारण, अपीलकर्ता के खिलाफ शिकायत इसलिए चलने योग्य नहीं थी। अपीलकर्ता ने कंपनी के निदेशक के रूप में और उसकी ओर से चेक पर हस्ताक्षर किए थे। इसके अलावा, कंपनी को मांग का नोटिस नहीं दिए जाने और धारा 138 के प्रावधान का पालन किए बिना, हाई कोर्ट ने यह मानने में गलती की कि कंपनी को अब आरोपी के रूप में पेश किया जा सकता है।"

27. यह मुद्दा इस कोर्ट की तीन-न्यायाधीशों की बेंच के अनीता हाडा बनाम गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टूर्स (पी) लिमिटेड (सुप्रा) मामले में दिए गए फैसले से तथ्य हो गया है, जिसमें यह माना गया है कि एन. आई एक्ट की धारा 141 के तहत मुकदमा चलाने के लिए, कंपनी को आरोपी के रूप में पेश करना अनिवार्य है और कंपनी को शामिल न करना शिकायत के लिए घातक होगा। उक्त फैसले से निम्नलिखित अंश उद्धृत करना प्रासंगिक हो सकता है:

"58. सख्त व्याख्या के सिद्धांत को लागू करते हुए, हम इस सुविचारित राय के हैं कि कंपनी द्वारा अपराध किया जाना दूसरों की प्रतिनिधि दायित्व को आकर्षित करने के लिए एक स्पष्ट पूर्व शर्त है। इस प्रकार, धारा में आने वाले शब्द "साथ ही कंपनी भी" यह बिल्कुल स्पष्ट करते हैं कि जब कंपनी पर मुकदमा चलाया जा सकता है, तभी अन्य श्रेणियों में उल्लिखित व्यक्ति याचिका में दिए गए बयानों और उसके सबूत के अधीन अपराध के लिए प्रतिनिधि रूप से उत्तरदायी हो सकते हैं। कोई भी इस तथ्य से अनजान नहीं हो सकता कि कंपनी एक कानूनी व्यक्ति है और उसकी अपनी प्रतिष्ठा है। यदि उसके खिलाफ कोई निष्कर्ष दर्ज किया जाता है, तो इससे उसकी प्रतिष्ठा में कमी आएगी। ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं जब किसी निदेशक पर आरोप लगने पर कॉर्पोरेट प्रतिष्ठा प्रभावित होती है।

59. हमारे उपरोक्त विश्लेषण को देखते हुए, हम इस अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अधिनियम की धारा 141 के तहत अभियोजन को बनाए रखने के लिए, एक कंपनी को आरोपी के रूप में पेश करना अनिवार्य है। अपराधियों की अन्य श्रेणियों को केवल परोक्ष दायित्व के आधार पर ही दायरे में लाया जा सकता है, जैसा कि प्रावधान में ही निर्धारित किया गया है।"

28. उपरोक्त फैसले में की गई टिप्पणियां अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का भी पूरा जवाब हैं कि एन. आई अधिनियम के तहत किसी भी रोक के अभाव में, शिकायत में संशोधन अनुमेय है और शिकायत दर्ज करने के बाद एक अतिरिक्त आरोपी को शामिल करना वर्जित नहीं होगा। इस मोड़ पर, हम एन. हरिहर कृष्णन बनाम जे. थॉमस (सुप्रा) मामले में की गई निम्नलिखित टिप्पणियों का भी उल्लेख कर सकते हैं: -

“26. अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडित करने में अभियोजन की योजना दण्ड प्रक्रिया संहिता की योजना से अलग है। धारा 138 एक अपराध बनाती है और सजा निर्धारित करती है। अपराध की जांच के लिए किसी प्रक्रिया की परिकल्पना नहीं की गई है। अभियोजन एक चेक के भुगतानकर्ता द्वारा की गई लिखित शिकायत के आधार पर शुरू किया जाता है। जाहिर है, ऐसी शिकायतों में धारा 138 के तहत अपराध के प्रत्येक तत्व का गठन करने वाले तथ्यात्मक आरोप होने चाहिए। वे तत्व हैं: (1) कि एक व्यक्ति ने बैंक में अपने द्वारा रखे गए खाते पर एक चेक जारी किया; (2) कि ऐसा चेक जब बैंक में प्रस्तुत किया गया तो बैंक द्वारा बिना भुगतान के वापस कर दिया गया; (3) कि ऐसा चेक जारी होने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर या उसकी वैधता की अवधि के भीतर, जो भी पहले हो, बैंक में प्रस्तुत किया गया था; (4) कि भुगतानकर्ता ने चेक के जारीकर्ता से चेक के तहत भुगतानकर्ता को देय राशि का भुगतान करने के लिए लिखित रूप में मांग की; और (5) भुगतान का ऐसा नोटिस भुगतानकर्ता द्वारा बैंक से चेक के बिना भुगतान के वापस होने के संबंध में जानकारी प्राप्त होने की तारीख से 30 दिनों की अवधि के भीतर दिया गया है। धारा 138 की योजना से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक तत्व एक दस्तावेज से उत्पन्न होता है जो ऐसे तत्व के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। सेक्शन 138 के तहत अपराध साबित करने के लिए सिर्फ एक और चीज़ साबित करनी होती है, वह यह है कि ऊपर बताए गए मांग नोटिस के बावजूद, चेक जारी करने वाला व्यक्ति मांग मिलने की तारीख से 15 दिनों के अंदर पेमेंट करने में फेल रहा। यह एक ऐसा तथ्य है जिसे शिकायतकर्ता सिर्फ कह सकता है लेकिन साबित नहीं कर सकता, इसलिए यह साबित करने का बोझ मुख्य रूप से चेक जारी करने वाले पर होगा कि उसने असल में मांग के बाद पेमेंट कर दिया था।

27. एक्ट की धारा 138 के तहत अपराध की प्रकृति के अनुसार, अपराध का पहला हिस्सा यह है कि किसी व्यक्ति ने चेक जारी किया। चेक जारी करने वाले की पहचान शिकायतकर्ता (भुगतान पाने वाले) को पता होना ज़रूरी है और इसकी जांच की आवश्यकता होती है और आमतौर पर इसमें कोई विवाद नहीं होता जब तक कि जिस व्यक्ति पर चेक जारी करने का आरोप है, वह इस बात से इनकार न करे। चेक जारी करने वाले व्यक्ति को सज़ा दिलाने के लिए जिन अन्य तथ्यों को साबित करने की आवश्यकता होती है, वे यह हैं कि चेक के भुगतान पाने वाले ने वास्तव में मुकदमा शुरू करने से पहले एक्ट की धारा 138 के तहत बताए गए हर कदम का पालन किया था। क्योंकि इस कोर्ट ने पहले ही यह माना है कि धारा 138 के तहत बताए गए किसी भी कदम का पालन न करने से “मुकदमा चलाने का कारण” नहीं मिलेगा। इसलिए, धारा 138 के तहत मुकदमे के संदर्भ में, अपराध का संज्ञान लेना लेकिन अपराधी का नहीं, यह उचित नहीं है। जब तक शिकायत में धारा 138 के तहत अपराध के हर हिस्से को बनाने वाले सभी आवश्यक तथ्यात्मक आरोप शामिल नहीं होते, तब तक

कोर्ट अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता। चेक जारी करने वाले व्यक्ति का नाम बताना उन तथ्यात्मक आरोपों में से एक है जो शिकायत में होना ज़रूरी है।

अन्यथा, धारा 138 के तहत अपराध की जांच करने के लिए कानून के किसी भी अधिकार के अभाव में, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जिसके खिलाफ कोर्ट कार्रवाई कर सके। आरोपी के बिना मुकदमा नहीं हो सकता। धारा 138 के तहत अपराध व्यक्ति विशेष है। इसलिए, संसद ने धारा 142 के तहत यह घोषित किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में संज्ञान लेने से संबंधित प्रावधानों को धारा 142 के तहत निर्धारित प्रक्रिया को मानना चाहिए। इसलिए धारा 142 के तहत नॉन ऑब्स्टेंट क्लॉज़ की शुरुआत हुई।

यह भी याद रखना चाहिए कि धारा 142 न तो पुलिस को रिपोर्ट करने की बात करती है और न ही संज्ञान लेने वाले कोर्ट को पुलिस को शिकायत की जांच करने का निर्देश देने का अधिकार देती है।

28. यह सवाल कि क्या प्रतिवादी के पास एक्ट के तहत निर्धारित अवधि के भीतर दक्षिण के खिलाफ शिकायत दर्ज न करने का पर्याप्त कारण था, नीचे की दोनों अदालतों में से किसी ने भी जांच नहीं की है। जैसा कि सही बताया गया है, यह एप्लीकेशन, जो इस अपील का विषय है, कथित तौर पर सेक्शन 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत दायर की गई है, यह सिर्फ एक तरीका है जिससे विपक्षी एक्ट के तहत तय समय सीमा के बाद दक्षिण के खिलाफ मुकदमा शुरू करना चाहता है।"

29. उपरोक्त को देखते हुए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क कि शिकायत दर्ज करने के बाद एक अतिरिक्त आरोपी को शामिल किया जा सकता है, इस पर कोई विचार नहीं किया जा सकता है, एक बार जब NI एक्ट की धारा 142 के तहत अपराध का संज्ञान लेने के लिए निर्धारित समय सीमा समाप्त हो गई हो। विशेष रूप से, इस तथ्य को देखते हुए कि याचिकाकर्ता ने कार्यवाही के किसी भी चरण में कंपनी को आरोपी के रूप में पेश करने का कोई प्रयास नहीं किया और न ही ऐसी कोई परिस्थिति या कारण बताया गया है जिससे कोर्ट को धारा 142 के प्रावधान द्वारा दी गई शक्ति का प्रयोग करके, निर्धारित समय सीमा के भीतर शिकायत दर्ज न करने में हुई देरी को माफ करने में मदद मिल सके।"

10. इस प्रकार **पवन कुमार गोयल** (उपरोक्त) के मामले में फैसले को देखते हुए यह स्पष्ट है कि एक बार जब एन.आई. एक्ट की धारा 142 के तहत अपराध का संज्ञान लेने के लिए निर्धारित समय सीमा समाप्त हो गई हो, तो शिकायत दर्ज करने के बाद कोई अतिरिक्त आरोपी शामिल नहीं किया जा सकता है।

11. इस प्रकार विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा इस मामले में संदर्भित मुद्दे का उत्तर यह है कि "एक बार जब एन.आई. एक्ट की धारा 142 के तहत अपराध का संज्ञान लेने के लिए निर्धारित समय सीमा समाप्त हो गई हो, तो शिकायत दर्ज करने के बाद कोई अतिरिक्त आरोपी शामिल नहीं किया जा सकता है।"

12. इस प्रकार संदर्भ का उत्तर उपरोक्त के अनुसार दिया गया है।

13. यह प्रकरण रोस्टर के अनुसार माननीय एकल न्यायाधीश के समक्ष, 24.03.2025 से प्रारंभ होने वाले सप्ताह में सूचीबद्ध किया जाए।

(2025) 3 ILRA 132

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद 27.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. संख्या-18295 सन् 2021

तौफीक अहमद

.....आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य

.....विपक्षी

आवेदक के ओर से अधिवक्ता:

वेद प्रकाश मिश्रा

विपक्षी के ओर से अधिवक्ता:

विजय कुमार तिवारी, शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा-482-भारतीय दण्ड संहिता, 1860-धारा 420, 323, 376, 344- उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2020-धारा 3/4 -बलात्कार के अपराध के संबंध में कोई भी समझौता, किसी महिला के सम्मान के विरुद्ध, जो उसके जीवन के जड़ को हिला देता है और उसके सर्वोच्च सम्मान पर गंभीर आघात के समान है, उसके सम्मान और गरिमा दोनों को ठेस पहुंचता है, इस न्यायालय को स्वीकार्य नहीं है।--- अधिनियम, 2020 का उद्देश्य मिथ्या, निरूपण, बल, अनुचित प्रभाव, दबाव, प्रलोभन या किसी भी कपटपूर्ण तरीके से एक धर्म से दूसरे धर्म में अवैध धर्मांतरण का निषेध करना है।--- यह स्पष्ट है कि अवैध धार्मिक रूपांतरण, विशेष रूप से जब बलपूर्वक, धोखाधड़ी या अनुचित प्रभाव के माध्यम से प्राप्त किया जाता है, एक गंभीर अपराध माना जाता है, जिसमें न्यायालय कार्यवाही को, पक्षकारों के बीच समझौते के आधार पर, रद्द नहीं कर सकता।--- भारतीय दण्ड संहिता की धारा 376 और उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2020 की धारा(1) के अंतर्गत कथित अपराध गंभीर प्रकृति के और गैर-शमनीय है, इसलिए धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों

का प्रयोग करते हुए पक्षकारों के बीच समझौते के आधार पर वर्तमान कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता। (प्रस्तर 48, 54 और 56)

याचिका खारिज। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. बी.एस. जोशी व अन्य बनाम हरियाणा राज्य व अन्य, (2003)4 एससीसी 675
2. ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य (2012) 10 एससीसी 303
3. मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य (2019)5 एससीसी 188
4. मधु लिमाये बनाम महाराष्ट्र राज्य (1977) एससीसी 551
5. करनाटक राज्य बनाम एल. मुनीस्वामी (1977)2 एससीसी 699
6. माधवराव जीवाजीराव सींदिया बनाम सम्भाजीराव चन्द्रोजीराव आंग्रे (1988)। एससीसी 692
7. परबत भाई अहीर उर्फ परबत भाई भीम सिंह भाई करमुर एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य (2017)9 एससीसी 641
8. शोसल एक्शन फोरम फार मानवाधिकार एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं एक अन्य (2018)10 एससीसी 433
9. नरींदर सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य (2019)6 एससीसी 466
10. शिम्भू बनाम हरियाणा राज्य (2014)13 एससीसी 318
11. श्याम नारायण बनाम (एनसीटी दिल्ली) राज्य
12. बलदेव बनाम पंजाब राज्य
13. रविन्द्र बनाम मध्य प्रदेश राज्य
14. दक्शाबेन बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य 2022 एससीसी आनलाईन एससी 936
15. मध्य प्रदेश राज्य बनाम मदन लाल (2015)7 एससीसी 381
16. रेव स्टेनीसलाउस बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य (1977)1 एससीसी 677
17. प्रियांशी उर्फ कुमारी शमरीन एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य रिट-सी संख्या-14288 सन् 2020, 20.09.2020 को निर्णित
18. श्रीमती नूर जहाँ बेगम उर्फ अंजली मिश्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य रिट सी संख्या-57068 सन् 2014 साथ एक संलग्न मामला, 16.12.2024 को निर्णित

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा वितरित किया गया)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री वेद प्रकाश मिश्रा, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री विजय कुमार तिवारी तथा राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रमोद कुमार सिंह को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान 482 दं.प्र.सं. आवेदन दिनांक 07.05.2021 के आरोप पत्र संख्या 230 सन् 2021 और आपराधिक मुकदमा संख्या 1340 सन् 2021 की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रस्तुत किया गया है, जो मुकदमा अपराध संख्या 220 सन् 2021 अन्तर्गत धारा 420 , 323 , 376 , 344 भा.दं.सं. और धारा 3/4 (1) उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2020, पुलिस स्टेशन स्वार, जिला रामपुर से उत्पन्न हुआ है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा 07.06.2021 को लगभग 18:31 बजे राहुल उर्फ मोहम्मद अयान और दो अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि विपक्षी संख्या 2 की फेसबुक के माध्यम से राहुल नामक व्यक्ति से दोस्ती हो गई थी। राहुल ने विपक्षी संख्या 2 का मोबाइल नंबर ले लिया और बार-बार उसे फोन करता था। फेसबुक के माध्यम से लगभग एक वर्ष तक चैटिंग करने के बाद, कथित आरोपी राहुल ने विपक्षी संख्या 2 से शादी करने का प्रस्ताव रखा। टेलीफोन के माध्यम से हुई बातचीत से विपक्षी संख्या 2 को उक्त राहुल की आदतें पसंद आईं, इसलिए उसने शादी के लिए अपनी सहमति दे दी। राहुल के अनुरोध पर, विपक्षी संख्या 2 रामपुर पहुंची, जहां से उसे, उसके गांव नवाबनगर, थाना-स्वार, जिला-रामपुर ले जाया गया और छह महीने तक उसके घर में रखा गया। रहने की अवधि के दौरान, उसे पता चला कि उपरोक्त राहुल कुमार एक मुस्लिम लड़का है इसलिए उसने कहा कि वह शादी नहीं कर सकती क्योंकि वह एक हिन्दू लड़की है। शादी से इनकार करने पर, विपक्षी संख्या 2 को राहुल कुमार उर्फ मोहम्मद अयान पुत्र मोहम्मद जहूर ने बुरी तरह पीटा और उसकी सहमति के बिना उसके साथ जबरन शारीरिक संबंध बनाए। उसे छह महीने तक अवैध रूप से हिरासत में रखा गया और उसका यौन शोषण किया गया। उसने अपने दो दोस्तों को भी बुलाया, जिन्होंने उसके साथ जबरदस्ती बलात्कार किया। विपक्षी संख्या 2 वहाँ से भागने में कामयाब रही और उसने यह प्राथमिकी दर्ज कराई। उसने यह भी बताया कि राहुल उर्फ मोहम्मद अयान ने फेसबुक के ज़रिए दोस्ती करके कई लड़कियों का शोषण किया। उसे मदरसे द्वारा हिंदू लड़कियों के शोषण के लिए दिए जाने वाले पैसे के बारे में पता चला, जिसके बारे में उसने, विपक्षी संख्या 2 को बताया था।

4. विवेचना के दौरान, विपक्षी संख्या 2 का बयान धारा 161 और 164 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत दर्ज किया गया और उसका चिकित्सकीय परीक्षण भी कराया गया। धारा 161 और 164 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत अपने बयानों में, उसने प्राथमिकी में कथन किये गए अपने बयान को दोहराया है और दो व्यक्तियों, तौफीक अहमद (यहाँ आवेदक) और मोहम्मद रियाज़, जो राहुल कुमार उर्फ मोहम्मद अयान के बहनोई और बड़े भाई हैं, के नाम का खुलासा किया है। तौफीक अहमद (यहाँ आवेदक) और मोहम्मद रियाज़ ने भी उसके साथ बलात्कार किया है। विवेचना के बाद, 07.05.2021 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत इस प्रस्तुतिकरण पर कि पक्षों ने समझौता कर लिया है, दिनांक 25.03.2023 को माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी (अब सेवानिवृत्त) द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

"आवेदक के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हैं। राज्य का प्रतिनिधित्व विद्वान शासकीय अधिवक्ता द्वारा किया जा रहा है।

दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत यह आपराधिक विविध आवेदन आपराधिक मुकदमा संख्या 1340 सन् 2021 के विरुद्ध, मुकदमा अपराध संख्या 220 सन् 2021 में आरोप-पत्र संख्या 230 सन् 2021 दिनांक 07.05.2021, धारा 420 , 323 , 376 , 344 भा.दं.सं. और 3/5(1) उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2020, थाना स्वार, जिला रामपुर के अन्तर्गत पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि दोनों पक्षों ने समझौता कर लिया है। समझौते की शर्तें और नियम प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या सीए-1 में दिए गए हैं।

विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त तथ्यों को स्वीकार किया है।

पक्षकारों को दो सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर समझौता पत्र प्रस्तुत करना होगा। उक्त समझौता पत्र विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने पर, वह विधिवत पहचान के बाद समझौते का सत्यापन करेगा। विचारण न्यायाधीश, पक्षों के बीच हुए समझौते की विधिवत सत्यापित प्रति, समझौते के सत्यापन हेतु अपने आदेश की एक प्रति सहित, इस न्यायालय को अग्रेषित करेंगे, जो अगली निर्धारित तिथि से पूर्व प्रस्तुत किया जाएगा।

28.04.2022 को सूचीबद्ध करे

सूचीबद्ध होने की अगली तिथि तक, उपरोक्त मामले में आवेदक के विरुद्ध कोई उत्पीडनात्मक कदम नहीं उठाया जाएगा।

कार्यालय उपरोक्त आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करेगा तथा आदेश की प्रति के साथ समझौते की प्रति तीन दिन के भीतर संबंधित सत्र न्यायाधीश के माध्यम से विचारण न्यायालय को प्रेषित करेगा।"

6. इस प्रकार दिए गए अंतरिम आदेश को 28.04.2022 और 06.09.2022 को बढ़ाया गया। तत्पश्चात, जब मामला 15.03.2023 को सूचीबद्ध हुआ, तो इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने मामले को 10.04.2023 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया और अंतरिम आदेश को बढ़ा दिया।

7. दिनांक 10.04.2023 को आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रार्थना के अनुसार, नए सिरे से समझौता प्रस्तुत करने के लिए 15 दिन का समय दिया गया तथा अंतरिम आदेश बढ़ा दिया गया।

8. यह मामला इस न्यायालय के समक्ष 31.08.2024 को सुनवाई के लिए आया और उक्त तिथि पर, पक्षों के अधिवक्ताओं से इस मुद्दे पर न्यायालय को संबोधित करने के लिए कहा गया कि ऐसे गंभीर अपराध में समझौता कैसे किया जा सकता है जिसमें प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

9. दिनांक 30.09.2024 को आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री वेद प्रकाश मिश्रा के बीमार होने की पर्ची पर मामला स्थगित किया गया और मामले की सुनवाई दिनांक 03.10.2024 को प्रातः 10:00 बजे नियत की गई। उक्त तिथि को पक्षकारों के अधिवक्ताओं की सुनवाई के पश्चात मामले में निर्णय सुरक्षित रखा गया।

10. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **बी.एस. जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (2003)4 एससीसी 675** के मामले पर भरोसा जताते हुए कहा कि न्यायालय प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए, संपूर्ण कार्यवाही और आरोपपत्र को दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत निहित क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत रद्द किया जाना चाहिए, क्योंकि पक्षों ने सौहार्दपूर्ण ढंग से विवाद को सुलझा लिया है और समझौता कर लिया है।

11. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता तथा विपक्षी संख्या 2 के अधिवक्ता का तर्क है कि समझौता दिनांक 21.04.2022 को ही सत्यापित हो चुका है, जैसा कि अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 1, रामपुर के पत्र से स्पष्ट है। अतः सम्पूर्ण कार्यवाही निरस्त की जाए।

12. दूसरी ओर, विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री प्रमोद कुमार सिंह ने समझौते के आधार पर कार्यवाही और आरोपपत्र को रद्द करने की प्रार्थना का विरोध किया है। उनका तर्क है कि कुछ अपराध अशमनीय और जघन्य भी होते हैं; वे निजी/व्यक्तिगत प्रकृति के नहीं होते हैं, जो मात्र व्यक्तियों को प्रभावित करते हो, बल्कि समाज पर भी प्रभाव डालते हैं; वे समाज के लिए हानिकारक हैं और इसलिए न तो अपराधों का समझौता किया जा सकता है और न ही समझौते के आधार पर कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है।

13. उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने कहा कि यह न्यायालय वर्तमान मामले में धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग न करें, और इसलिए वर्तमान आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

14. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है तथा वर्तमान आवेदन के अभिलेखों का अवलोकन किया है।

15. संक्षिप्त प्रश्न जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में, धारा 376 के उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2020 के अन्तर्गत दंडनीय, बलात्कार और धारा 3/4 (1) अपराध से जुड़े मामलों में आरोप पत्र के साथ-साथ पूरी कार्यवाही को पक्षकारों द्वारा किए गए समझौते के आधार रद्द किया जा सकता है?

16. वर्तमान मामले के तथ्यों की विवेचना करने और धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत इस न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली शक्तियों के सीमा को पुनः परिभाषित करने से पहले, धारा 482 दं.प्र.सं. को समझना उचित होगा, जो उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रावधान करती है। धारा 482 दं.प्र.सं. इस प्रकार है:-

"उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की व्यावृत्ति। इस संहिता की कोई भी बात उच्च न्यायालय की ऐसे आदेश देने की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी जो इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हों।"

17. संविधान द्वारा स्थापित न्यायालयों की अंतर्निहित शक्ति एक ऐसी शक्ति है जो अभिलेख न्यायालय होने के नाते ऐसे न्यायालयों में निहित है। यह शक्ति संविधान द्वारा ही निहित है, अन्य बातों के साथ-साथ, भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 के अन्तर्गत। प्रत्येक उच्च न्यायालय में वास्तविक और सारवान न्याय करने के लिए, जिसके प्रशासन के लिए ही यह अस्तित्व में है या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए न्याय करने के दायित्व के कारण कार्य करने की अंतर्निहित शक्ति है। धारा 482 दं.प्र.सं. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को बचाती है और यह 'फिर भी' खंड से शुरू होती है "इस संहिता में कुछ भी उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा, जो आवश्यक हो सकते हैं।" अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत (i) संहिता के अन्तर्गत एक आदेश को प्रभावी करने के लिए किया जा सकता है; (ii) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए (iii) या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए।

18. उच्च न्यायालय के पास निहित शक्ति, व्यापक है और इस पर कोई वैधानिक प्रतिबंध नहीं है। ऐसी शक्ति के प्रयोग पर लगाई गई सीमाएं स्व-लगाई गई प्रतिबंध हैं। संहिता का कोई भी प्रावधान उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित नहीं कर सकता है। लेकिन, यह शक्ति असाधारण होने के कारण इसका प्रयोग संयम से, सावधानी से, सतर्कता और विवेक के साथ किया जाना चाहिए और केवल तभी किया जाना चाहिए जब ऐसा प्रयोग दं.प्र.सं. की धारा 482 में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया जाता हो। यदि शिकायत के निवारण के लिए विधि में कोई विशिष्ट प्रावधान है, तो उच्च न्यायालय आमतौर पर असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने से मना कर देता है, और उस स्थिति में भी जब मामले के संबंध में, विधि में कोई विशिष्ट प्रतिबंध निहित हो। इस शक्ति के प्रयोग में सर्वोपरि विचार न्यायालय की प्रक्रिया के

दुरुपयोग को रोकना है। यदि प्रक्रिया के किसी भी दुरुपयोग से अन्याय होता है, जिसे न्यायालय के ध्यान में लाया जाता है, तो न्यायालय इस अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने में न्यायसंगत होगी।

19. इस मोड़ पर, **ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य 1** मामले में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायमूर्तियों की पीठ द्वारा निर्णित निम्नलिखित सिद्धांतों पर प्रकाश डालना समीचीन होगा :-

"61...अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए किसी आपराधिक कार्यवाही या प्राथमिकी या शिकायत को रद्द करने की उच्च न्यायालय की शक्ति, संहिता की धारा 320 के अन्तर्गत अपराधों का प्रशमन करने के लिए आपराधिक न्यायालय को दी गई शक्ति से अलग और भिन्न है। अंतर्निहित शक्ति व्यापक है और इसमें कोई वैधानिक सीमा नहीं है, लेकिन इसका प्रयोग ऐसी शक्ति में निहित दिशानिर्देश के अनुसार किया जाना चाहिए, जैसे:-

(i) न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए, या (ii) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए। किन मामलों में आपराधिक कार्यवाही या शिकायत या प्राथमिकी को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है जहां अपराधी और पीड़ित ने अपना विवाद सुलझा लिया है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और कोई श्रेणी निर्धारित नहीं की जा सकती है। हालांकि, ऐसी शक्ति का प्रयोग करने से पहले, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता पर उचित ध्यान देना चाहिए। मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध सामान्य रूप से रद्द नहीं किए जा सकते हैं, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार और अपराधी ने विवाद सुलझा लिया हो। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इसी तरह, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष विधियों के अन्तर्गत अपराधों या उस क्षमता में काम करते हुए लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों आदि के संबंध में पीड़ित और अपराधी के बीच कोई समझौता, परन्तु जिन आपराधिक मामलों में मुख्यतः दीवानी प्रवृत्ति होती है, उन्हें रद्द करने के लिए एक अलग आधार मिलता है, विशेष रूप से वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, दीवानी, साझेदारी या ऐसे ही अन्य लेन-देन से उत्पन्न अपराध या दहेज आदि से संबंधित, विवाह से उत्पन्न अपराध या पारिवारिक विवाद जहाँ अपराध मूलतः निजी या व्यक्तिगत प्रकृति की हो और पक्षकारों ने अपना पूरा विवाद सुलझा लिया हो। इन श्रेणी के मामलों में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि उसकी राय में, अपराधी और पीड़ित के बीच समझौते के कारण, दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम और क्षीण है और आपराधिक मामले को जारी रखने से अभियुक्त पर अत्यधिक अत्याचार और पूर्वाग्रह होगा और पीड़ित के साथ पूर्ण समझौता होने के बावजूद आपराधिक मामले को रद्द न करने से उसके साथ घोर अन्याय होगा। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय को यह विचार करना चाहिए कि क्या आपराधिक कार्यवाही जारी रखना न्याय के हित के प्रतिकूल या अनुचित होगा या पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के बावजूद आपराधिक कार्यवाही जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और क्या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए यह उचित है कि आपराधिक मामले को समाप्त कर दिया जाए और यदि उपरोक्त

प्रश्न(ओं) का उत्तर सकारात्मक है, तो उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के अपने अधिकार क्षेत्र में होगा।"

(बल दिया गया)

20. एक से अधिक न्यायिक उदाहरणों में संरचित इन व्यापक बुनियादी सिद्धांतों के संग्रह को **मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य 2** में सर्वोच्च न्यायालय की एक अन्य तीन न्यायामूर्तियों की पीठ द्वारा विस्तारपूर्वक दोहराया गया है:

"(1) संहिता की धारा 320 के अधीन अशमनीय अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग मुख्यतः सिविल प्रकृति के मामलों में किया जा सकता है, विशेष रूप से वे मामले जो वाणिज्यिक लेनदेन से उत्पन्न होते हैं या वैवाहिक संबंध या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न होते हैं और जब पक्षकारों ने सम्पूर्ण विवाद को आपस में सुलझा लिया हो;

(2) ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाएगा जिनमें मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध सम्मिलित हैं। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं;

(3) इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष विधियों के अन्तर्गत अपराधों के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा या उस क्षमता में काम करते हुए लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों को केवल पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जाएगा;

(4) xxx xxx xxx

(5) अशमनीय अपराधों के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते समय, जो निजी प्रकृति के हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव नहीं डालते हैं, इस आधार पर कि पीड़ित और अपराधी के बीच समाधान/समझौता है, उच्च न्यायालय को अभियुक्त के पूर्ववृत्त पर विचार करना आवश्यक है; अभियुक्त का आचरण, अर्थात्, क्या अभियुक्त फरार था और वह क्यों फरार था, वह शिकायतकर्ता के साथ समझौता करने में कैसे कामयाब रहा, आदि।"

(बल दिया गया)

21. संहिता की धारा 320 (1) भारतीय दंड संहिता (भा.दं.सं.) के अन्तर्गत दंडनीय कुछ अपराधों के लिए उप-धारा (2) के अन्तर्गत दी गई तालिका के पहले दो स्तंभों में निर्दिष्ट व्यक्तियों द्वारा दंडनीय कुछ अपराधों के शमन का प्रावधान करती है। संहिता की धारा 320 की उप-धारा (2) आगे भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत दंडनीय कुछ अपराधों के लिए उप-धारा (2) के अन्तर्गत दी गई तालिका के तीसरे स्तंभ में निर्दिष्ट व्यक्तियों

द्वारा पहले दो स्तंभों में निर्दिष्ट अपराधों के लिए उस न्यायालय की अनुमति से शमन का प्रावधान करती है, जिसके समक्ष ऐसे अपराध के लिए कोई अभियोजन लंबित है। धारा 320 की उप-धारा (9) में विशेष रूप से प्रावधान है कि, "इस धारा द्वारा प्रदान किए गए के अतिरिक्त, किसी अपराध का शमन नहीं किया जाएगा" अर्थात् संहिता की धारा 320 के।

22. धारा 320 दंड प्रक्रिया संहिता, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में बाधा नहीं डालती है। आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की उच्च न्यायालय की शक्ति, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के अन्तर्गत अपराधों का शमन करने के लिए दंड न्यायालय को दी गई शक्ति से भिन्न और विशिष्ट है। उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति संहिता की धारा 320 द्वारा न तो प्रतिबंधित है और न ही नियंत्रित। अशमनीय अपराधों की कार्यवाहियों को भी, उच्च न्यायालय द्वारा, अंतर्निहित अधिकारिता के प्रयोग में, सुस्थापित सिद्धांतों के आधार पर, लेकिन संयम और सावधानी के साथ, न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने और किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के दो उद्देश्यों में से किसी एक पर एक राय बनाते हुए, रद्द किया जा सकता है। धारा 320 दंड प्रक्रिया संहिता का यह प्रतिबंध केवल दंड न्यायालय के समक्ष लागू होता है, जहां शमन के लिए प्रार्थना की जाती है। वहां, केवल उन अपराधों को ही शमनीय बनाया जा सकता है, तथा जो अपराध शमनीय नहीं हैं, उन्हें दे.प्र.सं. की धारा 320 की उपधारा (9) के मद्देनजर शमनीय नहीं बनाया जा सकता है।

23. यह सच है कि जो अपराध 'अशमनीय' हैं, उनका शमन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के अन्तर्गत अपनी शक्तियों का कथित प्रयोग करते हुए कोई आपराधिक न्यायालय नहीं कर सकता। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 की भाषा में कोई स्पष्ट या अव्यक्त अस्पष्टता नहीं है, जो इसकी व्यापक व्याख्या को उचित ठहरा सके और ऐसे अपराधों को 'शमनीय' अपराधों की सूची में सम्मिलित कर सके जिन्हें जानबूझकर अशमनीय के रूप में बाहर रखा गया है। फिर भी, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के ढांचे के भीतर किसी अपराध का शमन करने का सीमित अधिकार क्षेत्र, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय को प्रदत्त अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

24. बी.एस. जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, 3 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि यदि न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्राथमिकी रद्द करना आवश्यक हो जाता है, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 रद्द करने की शक्ति के प्रयोग में बाधक नहीं होगी। हालाँकि, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, ऐसी शक्ति का प्रयोग करना या न करना एक अलग मामला है। उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही या प्राथमिकी या शिकायत रद्द कर सकता है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत शक्तियों को सीमित या प्रभावित नहीं करती है।

25. इसी प्रकार, **मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य** 4 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि यदि न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्राथमिकी को रद्द करना आवश्यक हो जाता है, तो धारा 320 रद्द करने की शक्ति के प्रयोग में बाधक नहीं होगी। हालाँकि, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, ऐसी शक्ति का प्रयोग करना या न करना एक अलग मामला है।

26. **कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनिस्वामी** 5 मामले में, धारा 482 के अंतर्गत निरस्तीकरण की अंतर्निहित शक्ति के दायरे पर विचार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि इस पूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय कार्यवाही को निरस्त करने का हकदार है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि न्याय के उद्देश्य में ऐसा करना आवश्यक है। यह देखा गया कि एक आपराधिक मामले में, एक कमजोर अभियोजन के पीछे छिपा उद्देश्य, अभियोजन की संरचना जिस सामग्री पर आधारित है उसकी प्रकृति आदि न्याय के हित में उच्च न्यायालय द्वारा कार्यवाही को निरस्त करने को उचित ठहराते हैं और न्याय के उद्देश्य विधि के उद्देश्यों से उच्चतर हैं, हालाँकि न्याय, विधायिका द्वारा बनाए गए विधियों के अनुसार ही प्रशासित किया जाना चाहिए। न्यायालय ने कहा कि इन टिप्पणियों को करने की अनिवार्य आवश्यकता यह है कि राज्य और उसकी प्रजा के बीच न्याय करने की उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को बचाने का प्रयास करने वाले प्रावधान के उद्देश्य और प्रयोजन को उचित रूप से समझे बिना, उस प्रमुख अधिकार क्षेत्र की व्यापकता और रूपरेखा को समझना असंभव होगा। तथ्यों के आधार पर, यह भी पाया गया कि अभियुक्त को अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने की कोई उचित संभावना नहीं थी। उस मामले की सुनवाई का क्या होगा जहाँ पत्नी संबंधित प्रकार की प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों का समर्थन नहीं करती है? जैसा कि न्यायालय ने भी देखा, बाद में उसने एक शपथपत्र प्रस्तुत किया है कि स्वभावगत मतभेदों और निहित आरोपों के कारण उसके कहने पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी। आरोपों का समर्थन न करने के कई कारण हो सकते हैं। ऐसा या तो इस कारण से हो सकता है कि उसने अपने पति और उसके परिवार के अन्य सदस्यों के साथ विवाद सुलझा लिया है और परिणामस्वरूप वह फिर से अपने पति के साथ रहने लगी है, जिसके साथ उसके पहले मतभेद थे, या उसने स्वेच्छा से साथ छोड़ दी है और अकेले खुशी से रह रही है, या उसने पहले के विवाह के पक्षकारों की सहमति से तलाक द्वारा विघटित होने के बाद किसी और से विवाह कर लिया है, या किसी अन्य समान आधार पर अभियोजन पक्ष का समर्थन करने में विफल रही है। ऐसी स्थिति में, दोषसिद्धि की संभावना लगभग न के बराबर होगी। क्या तब इस आधार पर निरस्तीकरण की शक्ति का प्रयोग करने से मना करना उचित होगा कि इससे पक्षकारों को अशमनीय अपराधों का शमन करने की अनुमति मिल जाएगी? इसका उत्तर स्पष्ट रूप से "नकारात्मक" होना चाहिए। हालाँकि, यह अलग बात होगी यदि उच्च न्यायालय तथ्यों के आधार पर, सद्भावना के अभाव सहित किसी भी वैध कारण से, रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दे।

27. **माधवराव जीवाजीराव सिंधिया बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे**, 6 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि धारा 482 के अन्तर्गत निरस्तीकरण की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय को किसी विशेष मामले में प्रकट होने वाली किसी भी विशेष विशेषता पर विचार करना चाहिए ताकि यह विचार किया जा सके कि अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देना समाचीन और न्याय के हित में है या नहीं। जहाँ न्यायालय

की राय में, अंतिम दोषसिद्धि की संभावनाएँ कम हैं और इसलिए, आपराधिक अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होने की संभावना नहीं है, वहाँ न्यायालय मामले के विशेष तथ्यों पर विचार करते हुए, कार्यवाही को निरस्त भी कर सकता है।

28. इस प्रकार, **बी.एस. जोशी (उपरोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही या प्राथमिकी या शिकायत को रद्द कर सकता है और संहिता की धारा 320 संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत शक्तियों को सीमित या प्रभावित नहीं करती है।

29. **परबतभाई आहिर उर्फ परबतभाई भीमसिंहभाई करमुर एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य 7** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के प्रस्तर संख्या 16 में, इस विषय पर पूर्व उदाहरणों से उभरे सिद्धांतों को पुनः संक्षेपित किया और निर्धारित किया, जो इस प्रकार है:-

“16. इस विषय पर पूर्व उदाहरणों से उभरने वाले व्यापक सिद्धांतों को निम्नलिखित प्रस्तावों में संक्षेपित किया जा सकता है:

16.1 धारा 482, किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित रखने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को संरक्षित करती है। यह प्रावधान नई शक्तियाँ प्रदान नहीं करता है। यह केवल उच्च न्यायालय में निहित शक्तियों को मान्यता देता है और संरक्षित करता है;

16.2 किसी प्राथमिकी या आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना कि अपराधी और पीड़ित के बीच समझौता हो गया है, अपराध के शमन के लिए अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के समान नहीं है। किसी अपराध का शमन करते समय, न्यायालय की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 320 के प्रावधानों द्वारा शासित होती है। धारा 482 के अन्तर्गत निरस्त करने की शक्ति तब भी लागू होती है जब अपराध शमनीय न हो।

16.3 धारा 482 के अन्तर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए किसी आपराधिक कार्यवाही या शिकायत को रद्द किया जाना चाहिए या नहीं, इस बारे में राय बनाते समय उच्च न्यायालय को यह मूल्यांकन करना होगा कि क्या न्याय के उद्देश्य, अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को उचित ठहराएंगे;

16.4 यद्यपि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की सीमा और व्यापकता वृहद है, फिर भी इसका प्रयोग किया जाना चाहिए: (i) न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए या (ii) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए;

16.5 किसी शिकायत या प्राथमिकी को इस आधार पर रद्द किया जाना चाहिए या नहीं कि अपराधी और पीड़ित ने विवाद सुलझा लिया है, इसका निर्णय अंततः प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और सिद्धांतों का कोई विस्तृत विवरण तैयार नहीं किया जा सकता है;

16.6 धारा 482 के अन्तर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते समय और इस तर्क पर विचार करते समय कि विवाद का निपटारा हो गया है, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता का उचित ध्यान रखना चाहिए। मानसिक विकृति से जुड़े जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार और डकैती जैसे अपराध उचित रूप से निरस्त नहीं किए जा सकते, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार ने विवाद सुलझा लिया हो। ऐसे अपराध, वास्तव में, निजी प्रकृति के नहीं होते, बल्कि समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। ऐसे मामलों में मुकदमा जारी रखने का निर्णय, गंभीर अपराधों के लिए दोषियों को दंडित करने में जनहित के सर्वोपरि तत्व पर आधारित होता है;

16.7 गंभीर अपराधों से अलग, ऐसे आपराधिक मामले भी हो सकते हैं जिनमें सिविल विवाद का प्रबल या प्रमुख तत्व हो। जहाँ तक निरस्त करने की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग का संबंध है, वे एक अलग आधार पर खड़े होते हैं;

16.8 वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, साझेदारी या इसी तरह के लेन-देन से उत्पन्न होने वाले अपराधों से संबंधित आपराधिक मामले, जिनमें अनिवार्य रूप से नागरिक प्रकृति हो, उचित परिस्थितियों में रद्द किए जा सकते हैं, जहां पक्षों ने विवाद का निपटारा कर लिया हो;

16.9 ऐसे मामले में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि विवादकर्ताओं के बीच समझौते के मददेनजर, दोषसिद्धि की संभावना दूर की कौड़ी हो और आपराधिक कार्यवाही जारी रखने से उत्पीड़न और पूर्वाग्रह पैदा हो; और

16.10 उपरोक्त प्रस्ताव 16.8 और 16.9 में निर्धारित सिद्धांत का अभी भी एक अपवाद है। राज्य की वित्तीय और आर्थिक भलाई से जुड़े आर्थिक अपराधों के निहितार्थ ऐसे होते हैं जो मात्र निजी विवादकर्ताओं के बीच विवाद के दायरे से परे होते हैं। जहां अपराधी वित्तीय या आर्थिक धोखाधड़ी या दुष्कर्म जैसी गतिविधि में सम्मिलित हो, वहां उच्च न्यायालय द्वारा रद्द करने से इनकार करना उचित होगा। वित्तीय या आर्थिक आधार वाले शिकायती कृत्य के परिणाम, तराजू में तौले जाएंगे।”

30. **परबतभाई आहिर (उपरोक्त)** मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि उच्च न्यायालय द्वारा अपने निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए प्राथमिकी रद्द करने के आवेदन पर विचार न करने का निर्णय उचित था, क्योंकि यह मामला जबरन वसूली, जालसाजी, षडयंत्र, दस्तावेजों की जालसाजी, पंजीकरण प्राधिकारियों के समक्ष स्वामित्व हस्तांतरण हेतु जाली दस्तावेजों का उपयोग और जाली मुख्तारनामा के आधार पर

शिकायतकर्ता को भूमि में उसके अधिकार से वंचित करने से संबंधित था, और परिणामस्वरूप, इस आधार पर प्राथमिकी रद्द करना समाज के हित में नहीं था कि शिकायतकर्ता के साथ समझौता हो गया था। ऐसे अपराधों को केवल निजी या सिविल विवाद नहीं माना जा सकता, बल्कि गंभीर अपराधों के अभियोजन, सामाजिक हित को भी प्रभावित करते हैं।

31. "सोशल एक्शन फोरम फार मानव अधिकार और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य" 8 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि अशमनीय अपराध के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है। जब समझौता हो जाता है, तो दोनों पक्ष धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत एक याचिका प्रस्तुत कर सकते हैं और उच्च न्यायालय, याचिका की सद्भावना पर विचार करते हुए, जान सिंह (उपरोक्त) में निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए इसका निपटारा करेगा।

32. "मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य" में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः यह निर्णय दिया कि संहिता की धारा 482 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने की शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाना चाहिए जिनमें मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध सम्मिलित हों। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। लक्ष्मी नारायण (उपरोक्त) का प्रस्तर 15 निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"15. इस मुद्दे पर विधि और इस न्यायालय के अन्य निर्णयों पर विचार करते हुए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह निम्नानुसार माना जाता है: -

15.1) संहिता की धारा 320 के अन्तर्गत अशमनीय अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग मुख्य रूप से सिविल प्रकृति के मामलों में किया जा सकता है, विशेष रूप से वे जो वाणिज्यिक लेनदेन से उत्पन्न होते हैं या वैवाहिक संबंध या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न होते हैं और जब पक्षकारों ने आपस में पूरे विवाद को सुलझा लिया हो;

15.2) ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाना चाहिए जिनमें मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध सम्मिलित हों। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं;

15.3) इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष विधियों के अन्तर्गत अपराधों के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए या उस क्षमता में काम करते समय लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों को केवल पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जाना चाहिए;

15.4) धारा 307 भा.दं.सं. और आयुध अधिनियम आदि के अन्तर्गत अपराध गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएंगे और इसलिए इन्हें समाज के विरुद्ध अपराध माना जाएगा, न कि केवल व्यक्ति के विरुद्ध, और इसलिए, धारा 307 भा.दं.सं. और/या आयुध अधिनियम आदि के अन्तर्गत अपराध के लिए आपराधिक कार्यवाही, जिसका समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, को संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत शक्तियों के प्रयोग में इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि पक्षों ने आपस में अपने पूरे विवाद को सुलझा लिया है। हालांकि, उच्च न्यायालय केवल इसलिए अपना निर्णय नहीं सुनाएगा क्योंकि प्राथमिकी में धारा 307 भा.दं.सं. का उल्लेख है या इस प्रावधान के अन्तर्गत आरोप तय किया गया है। यह जांचना उच्च न्यायालय के लिए खुला होगा कि क्या धारा 307 भा.दं.सं. मात्र सम्मिलित करने के लिए ही है या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्र किए हैं जो यदि सिद्ध हो जाता है तो धारा 307 के अन्तर्गत आरोप विरचित होगा। इस प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय को, लगी चोट की प्रकृति, कि क्या ऐसी चोट शरीर के महत्वपूर्ण/नाजुक अंगों पर लगी है, प्रयोग किए गए हथियारों की प्रकृति आदि के आधार पर निर्णय लेने की स्वतंत्रता होगी। हालांकि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा अभ्यास केवल विवेचना के बाद साक्ष्य एकत्र किए जाने और आरोप पत्र प्रस्तुत/आरोप तय किए जाने और/या मुकदमे के दौरान ही स्वीकार्य होगा। जब मामला अभी भी विवेचना के अधीन है तो ऐसा अभ्यास स्वीकार्य नहीं है। इसलिए, नरिंदर सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 29.6 और 29.7 में अंतिम निष्कर्ष को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए, समग्र रूप से और ऊपर बताई गई परिस्थितियों में पढ़ा जाना चाहिए;

15.5) अशमनीय अपराधों, जो निजी प्रकृति के हैं और समाज पर कोई गंभीर प्रभाव नहीं डालते हैं, के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते समय कि पीड़ित और अपराधी के बीच समाधान/समझौता हो गया है, उच्च न्यायालय को अभियुक्त के पूर्ववृत्त पर विचार करना आवश्यक है; अभियुक्त का आचरण, अर्थात्, क्या अभियुक्त फरार था और वह क्यों फरार था, उसने शिकायतकर्ता के साथ समझौता करने में कैसे कामयाबी हासिल की आदि।"

33. **लक्ष्मी नारायण (उपरोक्त)** मामले में, उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 307 और 34 के अंतर्गत अपराधों के लिए, आपराधिक कार्यवाही को समझौते के आधार पर यांत्रिक रूप से रद्द कर दिया था और जब विवेचना चल रही थी, तब अभियुक्त किसी प्रकार शिकायतकर्ता के साथ समझौता करने में सफल रहा और समझौते के आधार पर प्राथमिकी रद्द करने की माँग की। यह माना गया कि आरोप गंभीर प्रकृति के थे। अपराध को अंजाम देने में आग्नेयास्त्रों का प्रयोग किया गया था। अपराध की गंभीरता और अभियुक्त के आचरण तथा उसके पूर्ववृत्त को देखते हुए, समझौते के आधार पर प्राथमिकी रद्द करने को विधि की दृष्टि में उचित नहीं माना गया।

34. उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि न्यायालय, अपराध की प्रकृति और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पक्षकारों ने अपने विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है और पीड़ित ने आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए स्वेच्छा से सहमति दे दी है, धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग

करते हुए ऐसी कार्यवाही को रद्द कर सकता है, भले ही अपराध अशमनीय है। न्यायालय निस्संदेह किसी व्यक्ति के शरीर से परे अपराध के परिणामी प्रभावों का मूल्यांकन कर सकता है और उसके बाद एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना सकता है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि घोर अपराध, भले ही दंडित न किया जाए, परन्तु वह आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रशासन के मूल उद्देश्य को अप्रभावी या पंगु नहीं बना सकता।

35. इसने आगे यह भी माना है कि गैर-जघन्य अपराधों से संबंधित आपराधिक कार्यवाहियाँ या जहाँ अपराध मुख्यतः निजी प्रकृति के हों, उन्हें रद्द किया जा सकता है। जिन मामलों में समझौता हो चुका है, वहाँ इस न्यायालय को, अंतर्निहित शक्ति के अंतर्गत, घटना से जुड़ी परिस्थितियों, समझौते के तरीके और अपराध की प्रकृति और गंभीरता के साथ-साथ घटना से पहले और बाद में अभियुक्त के आचरण को ध्यान में रखते हुए, पूरी ईमानदारी से अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए।

36. इस न्यायालय का मत है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत असाधारण शक्ति के प्रयोग की कसौटी, न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति है। न्यायालय की, ठोस न्याय करने की शक्ति को सीमित करने वाली कोई कठोर और निश्चित रेखा नहीं हो सकती। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अंतर्निहित शक्तियों का प्रतिबंधात्मक निर्वचन कठोर या दिखावटी न्याय की ओर ले जा सकता है, जो किसी मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, घोर अन्याय का कारण बन सकता है। दूसरी ओर, ऐसे मामलों में जहाँ अपराधियों के विरुद्ध जघन्य अपराध सिद्ध हो चुके हैं, ऐसा कोई लाभ नहीं दिया जाना चाहिए, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने **नरिंदर सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य तथा लक्ष्मी नारायण (उपरोक्त)** के मामले में कहा है।

37. दूसरे शब्दों में, गंभीर या संगीन अपराध या ऐसे अपराध जिनमें नैतिक अधमता सम्मिलित हो या जो समाज के सामाजिक और नैतिक ताने-बाने पर हानिकारक प्रभाव डालते हों या जिनमें सार्वजनिक नीति से संबंधित मामले सम्मिलित हों, उन्हें केवल दो व्यक्तियों या समूहों के बीच नहीं समझा जा सकता, क्योंकि ऐसे अपराधों का संपूर्ण समाज पर प्रभाव पड़ने की संभावना होती है। निराकरण प्रक्रिया के माध्यम से घृणित अपराधों को मिटाने से न केवल समुदाय में गलत संकेत जाएगा, बल्कि बेईमान आदतन या पेशेवर अपराधियों को अनुचित लाभ भी मिल सकता है, जो दबाव, धमकी, सामाजिक बहिष्कार, रिश्वत या अन्य संदिग्ध तरीकों से 'समझौता' कर सकते हैं। यह सही कहा गया है कि यदि हो सके तो, "किसी दोषी को न बचने दिया जाए"

38. **शिम्भू बनाम हरियाणा राज्य** 10 के एक अंश को पुनः उद्धृत करना लाभदायक होगा, जिसमें तीन न्यायमूर्तियों की पीठ ने माना है कि पक्षों के बीच हुए समझौते को कार्यवाही को रद्द करने का प्रमुख कारण नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त, यह भी माना गया है कि बलात्कार एक अशमनीय अपराध है और यह समाज के विरुद्ध अपराध है, इसलिए यह ऐसा मामला नहीं है जिसे पक्षों द्वारा समझौता करके सुलझाया जा सके। चूँकि न्यायालय हमेशा इस बात के लिए आश्वस्त नहीं हो सकता कि मामले में समझौता करने में पीड़िता

द्वारा दी गई सहमति वास्तविक सहमति है, इसलिए इस बात की पूरी संभावना है कि दोषियों ने उस पर दबाव डाला हो या वर्षों से उसके द्वारा झेले गए आघात ने उसे समझौता करने के लिए मजबूर किया हो।

39. बलात्कार या बलात्कार के प्रयास के मामले में, किसी भी परिस्थिति में समझौते की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ये एक स्त्री के शरीर के विरुद्ध अपराध हैं, जो उसका अपना मंदिर है। ये ऐसे अपराध हैं जो जीवन की साँसों का दम घोट देते हैं और प्रतिष्ठा को कलंकित करते हैं और प्रतिष्ठा, इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं कि जीवन का सबसे अनमोल रत्न है। कोई भी इसे नष्ट नहीं होने देगा। जब मानव शरीर अपवित्र होता है, तो "सर्वोत्तम निधि" नष्ट हो जाती है। एक स्त्री की गरिमा उसके अविनाशी और अमर स्वरूप का एक अंग है और किसी को भी इसे मिट्टी में मिलाने के बारे में कभी नहीं सोचना चाहिए। कोई निवारण या समझौता नहीं हो सकता क्योंकि यह उसके सम्मान के विरुद्ध होगा, जो सबसे महत्वपूर्ण है। यह पवित्र है। कभी-कभी यह सांत्वना दी जाती है कि अपराधी ने उसके साथ विवाह करने के लिए सहमति दे दी है, जो कि एक चतुराईपूर्ण तरीके से दबाव डालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है; और हम इस बात पर जोर देते हुए कहते हैं कि न्यायालयों को इस मामले में नरम रुख अपनाने के इस छल-कपट से बिल्कुल दूर रहना चाहिए, क्योंकि किसी भी तरह का उदार दृष्टिकोण, घोर भूल की श्रेणी में आता है।

40. **श्याम नारायण बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष तक पहुँचा कि यह रवैया महिला की गरिमा और उसके उत्साह के प्रति संवेदनशीलता की कमी को दर्शाता है। इस संबंध में किसी भी प्रकार का उदार दृष्टिकोण या मध्यस्थता का विचार पूरी तरह से विधिक अनुज्ञेय के बिना है।

41. इस समय, दो न्यायनिर्णयों, अर्थात् **बलदेव सिंह बनाम पंजाब राज्य** और **रवींद्र बनाम मध्य प्रदेश राज्य**, का उल्लेख करना उचित होगा। **बलदेव सिंह (उपरोक्त)** मामले पर **शिंभू (उपरोक्त)** मामले में तीन न्यायमूर्तियों की पीठ ने विचार किया था और उस मामले में यह कहा गया है कि:-

"18.1 बलदेव सिंह बनाम पंजाब राज्य मामले में, यद्यपि अधिनस्थ न्यायालयों ने दस वर्ष की सजा सुनाई थी, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि घटना 14 वर्ष पुरानी थी, अपीलकर्ता लगभग साढ़े तीन वर्ष कारावास काट चुके थे, अभियोक्ता और अपीलकर्ता ने विवाह कर लिया था (एक दूसरे से नहीं) और समझौता कर लिया था, इस न्यायालय ने, विशिष्ट परिस्थितियों पर विचार करते हुए, दण्ड को पहले से ही बिताई गई अवधि तक कम कर दिया, लेकिन जुर्माना 1000 रुपये से बढ़ाकर 50,000 रुपये कर दिया। निर्णयों की श्रृंखला के प्रकाश में, विपरीत दृष्टिकोण अपनाते हुए, हम मानते हैं कि बलदेव सिंह बनाम पंजाब राज्य मामले में उक्त निर्णय को एक मिसाल के रूप में उद्धृत नहीं किया जा सकता है और इसे उसी मामले तक सीमित रखा जाना चाहिए।"

42. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नरिंदर सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य** 11 मामले में स्पष्ट रूप से यह माना है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अंतर्गत मामला भी एक ऐसा अपराध है, जो किसी विशिष्ट पीड़ित के संबंध में होने के बावजूद, पक्षों के बीच निजी विवाद नहीं कहा जा सकता। इसका

समाज पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए, अभियुक्त और पीड़ित के बीच कथित समझौते के आधार पर, किसी भी कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता।

43. विधि के इस सिद्धांत को हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **दक्साबेन बनाम गुजरात राज्य और अन्य** 12 मामले में भी दोहराया गया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 34, 38 और 47 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"34. इंद्र मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य , (2007) 12 एससीसी 1 में , इस न्यायालय ने टिप्पणी की:-

"46. न्यायालय को यह सुनिश्चित करना होगा कि आपराधिक अभियोजन का प्रयोग उत्पीड़न के साधन के रूप में, निजी प्रतिशोध के लिए या अभियुक्त पर दबाव डालने के गुप्त उद्देश्य से न किया जाए। उपर्युक्त मामलों के विश्लेषण के आधार पर, हमारी राय है कि अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को नियंत्रित करने वाला कोई कठोर नियम निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय। दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों का अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र यद्यपि व्यापक है, उसका प्रयोग संयमपूर्वक, सावधानीपूर्वक और सतर्कतापूर्वक किया जाना चाहिए और केवल तभी किया जाना चाहिए जब यह स्वयं विधि और उपर्युक्त मामलों में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया जाए। स्थापित विधि स्थिति को देखते हुए, आक्षेपित निर्णय को बरकरार नहीं रखा जा सकता।"

38. हालांकि, किसी प्राथमिकी, आपराधिक शिकायत और/या आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करने से पहले , उच्च न्यायालय को, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सतर्क रहना होगा और अपराध की प्रकृति और गंभीरता को ध्यान में रखना होगा। जघन्य या गंभीर अपराध, जो प्रकृति में निजी नहीं हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं, अपराधी और शिकायतकर्ता और/या पीड़ित के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं किए जा सकते। हत्या, बलात्कार, चोरी, डकैती और यहां तक कि आत्महत्या के लिए उकसाने जैसे अपराध न तो निजी हैं और न ही नागरिक प्रकृति के हैं। ऐसे अपराध समाज के विरुद्ध हैं। किसी भी परिस्थिति में ऐसे अभियोजन को, समझौते पर, रद्द नहीं किया जा सकता है, जब अपराध महत्वपूर्ण और गंभीर हो और समाज के विरुद्ध अपराध के दायरे में आता हो।

47. मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण , (2019) 5 एससीसी 688 में, तीन न्यायमूर्तियों की पीठ ने इस न्यायालय के पहले के निर्णयों पर चर्चा की और निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए:-

"15. इस मुद्दे पर विधि और इस न्यायालय के अन्य निर्णयों पर विचार करते हुए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह निम्नानुसार माना और प्रतिपादित किया जाता है:

15.1. संहिता की धारा 320 के अन्तर्गत अशमनीय अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग मुख्य रूप से सिविल प्रकृति के मामलों में किया जा सकता है, विशेष रूप से वे मामले जो वाणिज्यिक लेनदेन से उत्पन्न होते हैं या वैवाहिक संबंध या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न होते हैं और जब पक्षकारों ने आपस में पूरे विवाद को सुलझा लिया हो;

15.2. ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाएगा जिनमें मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध सम्मिलित हों। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं;

15.3 इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष विधि के अन्तर्गत अपराधों के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा या उस क्षमता में काम करते समय लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों को केवल पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जाएगा;

15.4. धारा 307 भा.दं.सं. और आयुध अधिनियम आदि के अन्तर्गत अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएंगे और इसलिए इन्हें समाज के विरुद्ध अपराध माना जाएगा, न कि केवल व्यक्ति के विरुद्ध, और इसलिए, धारा 307 भा.दं.सं. और/या आयुध अधिनियम आदि के अन्तर्गत अपराध के लिए आपराधिक कार्यवाही, जिसका समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, को संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत शक्तियों के प्रयोग में इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि पक्षों ने आपस में अपने पूरे विवाद को सुलझा लिया है। हालांकि, उच्च न्यायालय केवल इसलिए अपना निर्णय नहीं सुनाएगा क्योंकि प्राथमिकी में धारा 307 भा.दं.सं. का उल्लेख है या इस प्रावधान के अन्तर्गत आरोप विरचित किया गया है। यह जांचना उच्च न्यायालय के लिए खुला होगा कि क्या धारा 307 भा.दं.सं. को सम्मिलित करने के लिए ही किया गया है या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्र किए हैं, इस प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय को, लगी चोट की प्रकृति के आधार पर जाना खुला होगा, क्या ऐसी चोट शरीर के महत्वपूर्ण/नाजुक हिस्सों पर पहुंचाई गई है, प्रयोग किए गए हथियारों की प्रकृति आदि पर। हालांकि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा अभ्यास, विवेचना के बाद साक्ष्य एकत्र करने और आरोप पत्र प्रस्तुत करने/आरोप विरचित करने और/या मुकदमे के दौरान ही स्वीकार्य होगा। जब मामला अभी भी विवेचना के अधीन है तो ऐसा अभ्यास स्वीकार्य नहीं है। इसलिए, नरिंदर सिंह [(2014) 6 एससीसी 466: (2014) 3 एससीसी (क्रि) 54] में इस न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 29.6 और 29.7 में अंतिम निष्कर्ष को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए और समग्र रूप से और ऊपर बताई गई परिस्थितियों में पढ़ा जाना चाहिए;

15.5. अशमनीय अपराधों, जो निजी प्रकृति के हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव नहीं डालते हैं, के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते समय कि पीड़ित और अपराधी के बीच समाधान/समझौता हो गया है, उच्च न्यायालय को अभियुक्त के

पूर्ववृत्त पर विचार करना आवश्यक है; अभियुक्त का आचरण, अर्थात्, क्या अभियुक्त फरार था और वह क्यों फरार था, वह शिकायतकर्ता के साथ समझौता करने में कैसे कामयाब हुआ, आदि।"

(बल दिया गया)

44. पक्षों के बीच हुए समझौते को कम दण्ड देने का एक प्रमुख कारण नहीं माना जा सकता। बलात्कार एक अशमनीय अपराध है और यह समाज के विरुद्ध अपराध है, इसलिए यह ऐसा मामला नहीं है जिसे पक्षों द्वारा समझौता करके सुलझाया जा सके। चूँकि न्यायालय हमेशा इस बात के लिए आश्वस्त नहीं हो सकता कि मामले में समझौता करने में पीड़िता द्वारा दी गई सहमति वास्तविक सहमति है, इसलिए इस बात की पूरी संभावना है कि दोषियों ने उस पर दबाव डाला हो या वर्षों से उसके द्वारा झेले गए आघात ने उसे समझौता करने के लिए मजबूर किया हो।

45. "शिम्भू बनाम हरियाणा राज्य"¹³ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बलात्कार एक अशमनीय अपराध है और यह समाज के विरुद्ध अपराध है और यह ऐसा मामला नहीं है जिसे पक्षकारों पर समझौता करने और निपटाने के लिए छोड़ा जाए। चूँकि न्यायालय हमेशा इस बात के लिए आश्वस्त नहीं हो सकता कि मामले में समझौता करने में पीड़िता द्वारा दी गई सहमति वास्तविक सहमति है, इसलिए इस बात की पूरी संभावना है कि दोषियों द्वारा उस पर दबाव डाला गया हो या वर्षों से उसके द्वारा झेले गए आघात ने उसे समझौता करने के लिए मजबूर किया हो। वास्तव में, इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से पीड़िता पर अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। अभियुक्त समझौते के लिए उस पर दबाव बनाने के लिए अपने पूरे प्रभाव का प्रयोग कर सकता है। इसलिए, न्याय के हित में और पीड़िता पर अनावश्यक दबाव/उत्पीड़न से बचने के लिए, बलात्कार जो भारतीय दंड संहिता की धारा 376(2) के प्रावधान के अन्तर्गत दण्डनीय है के मामलों में पक्षकारों के बीच हुए समझौते को न्यायालय द्वारा विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने का आधार मानना सुरक्षित नहीं होगा।

46. "मध्य प्रदेश राज्य बनाम मदन लाल" ¹⁴ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बलात्कार या बलात्कार का प्रयास स्त्री के शरीर, जो उसका अपना मंदिर है, के विरुद्ध अपराध हैं। ये ऐसे अपराध हैं जो जीवन की साँसों का दम घोट देते हैं और प्रतिष्ठा को कलंकित करते हैं। प्रतिष्ठा जीवन का सबसे अनमोल रत्न है जिसकी कल्पना की जा सकती है। इसे कोई भी नष्ट नहीं होने दे सकता। जब मानव शरीर अपवित्र होता है, तो "सर्वोत्तम निधि" नष्ट हो जाती है। स्त्री की गरिमा उसके अविनाशी और अमर स्वरूप का एक अंश है और किसी को भी इसे मिट्टी में मिलाने के बारे में कभी नहीं सोचना चाहिए। कोई निवारण या समझौता नहीं हो सकता क्योंकि यह उसके सम्मान के विरुद्ध होगा, जो सबसे अधिक मायने रखता है। कभी-कभी यह सांत्वना दी जाती है कि अपराधी ने उसके साथ विवाह करने के लिए सहमति दे दी है, जो कि एक चतुराईपूर्ण तरीके से दबाव डालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि न्यायालयों को इस मामले में नरम रुख अपनाने के इस छल-कपट से बिल्कुल दूर रहना

चाहिए, क्योंकि किसी भी तरह का उदार दृष्टिकोण, घोर भूल की श्रेणी में आता है। या यूँ कहें कि, यह भूल के अभयारण्य के दायरे में होगा।

47. इस प्रकार, यह पूरी तरह से स्थापित है कि हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे गंभीर अपराधों या भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत मानसिक विकृति के अन्य अपराधों या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष विधि के अन्तर्गत नैतिक पतन के अपराधों या उस क्षमता में काम करते हुए लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों के संबंध में, अपराधी और पीड़ित के बीच समझौते को कोई विधिक मंजूरी नहीं मिल सकती है। ऐसे अपराधों के संबंध में पीड़ित और अपराधी के बीच कोई भी समझौता आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का कोई आधार प्रदान नहीं कर सकता है। उन अभियोजनों में अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए जिनमें जघन्य और गंभीर अपराध सम्मिलित हैं। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। ऐसे मामलों में मुकदमे को जारी रखने का निर्णय, गंभीर अपराधों के लिए, दोषियों को दंडित करने में सार्वजनिक हित के सर्वोपरि तत्व पर आधारित है। इन्हें समाज के विरुद्ध अपराध माना जाता है, न कि केवल व्यक्ति के विरुद्ध, इसलिए समाज पर गंभीर प्रभाव डालने वाले इन धाराओं के अंतर्गत अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही को संहिता की धारा 482 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता कि पक्षों ने अपने बीच संपूर्ण विवाद को समझौते/निपटारे के माध्यम से सुलझा लिया है।

48. बलात्कार के अपराध के संबंध में किसी महिला के सम्मान के विरुद्ध कोई निवारण या समझौता, जो उसके जीवन की जड़ को हिलाकर रख दे और उसके सर्वोच्च सम्मान पर गंभीर आघात के समान हो, तथा उसके सम्मान और गरिमा दोनों को ठेस पहुंचाए, इस न्यायालय को स्वीकार्य नहीं है।

49. किसी अन्य धर्म में धर्म परिवर्तन के लिए मूलतः एक स्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्त को अपनी स्वतंत्र इच्छा से अपने विश्वास और व्यक्तिगत संबंधों में परिवर्तन करना होता है, जिसे वह ब्रह्माण्ड, अपना निर्माता या रचयिता मानता है, जिसके बारे में वह विश्वास करता है कि वह अचेतन प्राणियों और ब्रह्माण्ड की शक्तियों के अस्तित्व को नियंत्रित करता है।

50. ईश्वर और मुहम्मद को अपना पैगम्बर मानने की समता में आस्था और विश्वास ही, किसी अन्य धर्म के व्यक्ति को, यह कहने का आधार देता है कि उसने इस्लाम धर्म अपना लिया है। इस्लाम धर्म अपनाने पर ऐसे व्यक्ति पर मुस्लिम पर्सनल लॉ लागू होता है।

51. किसी व्यक्ति द्वारा इस्लाम धर्म अपनाना तभी वास्तविक माना जा सकता है जब वह वयस्क हो, स्वस्थ मस्तिष्क का हो और अपनी इच्छा से तथा ईश्वर (अल्लाह) की एकता और मुहम्मद के पैगम्बर होने में विश्वास और आस्था के कारण इस्लाम धर्म अपनाता हो। यदि धर्म परिवर्तन धार्मिक भावना से प्रेरित होकर और अपने लिए नहीं किया गया है, बल्कि केवल किसी अधिकार के दावे के लिए आधार बनाने के उद्देश्य से या विवाह

से बचने के उद्देश्य से या ईश्वर (अल्लाह) और मुहम्मद के अपने पैगम्बर होने की एकता में विश्वास और आस्था के बिना किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया गया है, तो ऐसा धर्म परिवर्तन वास्तविक नहीं होगा। धर्म परिवर्तन के मामले में हृदय परिवर्तन और मूल धर्म के सिद्धांतों के स्थान पर नए धर्म के सिद्धांतों में ईमानदारी से विश्वास होना आवश्यक है।

52. **रेव. स्टैनिसलॉस बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य**, के मामले में , सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश धर्म स्वतंत्रता अधिनियम, 1968 की संवैधानिक वैधता पर विचार करते हुए निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

".....किसी अन्य व्यक्ति को अपने धर्म में परिवर्तित करने का कोई मौलिक अधिकार नहीं है, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को अपने धर्म में परिवर्तित करता है, जो कि उसके धर्म के सिद्धांतों को प्रसारित करने या फैलाने के उसके प्रयास से अलग है, तो यह देश के सभी नागरिकों को समान रूप से प्राप्त "अंतरात्मा की स्वतंत्रता" पर अतिक्रमण होगा।"

53. अधिनियम, 2020 का उद्देश्य मिथ्या निरूपण, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन या किसी कपटपूर्ण विधि से एक धर्म से दूसरे धर्म में अवैध रूप से धर्म परिवर्तन पर रोक लगाना है।

54. विधि की उपरोक्त स्थापित स्थिति के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि अवैध धर्मांतरण, विशेष रूप से जब बलपूर्वक, धोखाधड़ी या अनुचित प्रभाव के माध्यम से प्राप्त किया जाता है, एक गंभीर अपराध माना जाता है, जिसमें न्यायालय पक्षों के बीच समझौते के आधार पर कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकता है।

55. **प्रियांशी उर्फ कुमारी शमरीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य 17** के मामले में , इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने **श्रीमती नूरजहाँ बेगम उर्फ अंजलि मिश्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य 18** के मामले में की गई टिप्पणी पर विचार किया और माना कि केवल विवाह के उद्देश्य से किया गया धर्मपरिवर्तन अस्वीकार्य है। अधिनियम, 2020 के अनुसार, केवल विवाह के उद्देश्य से किया गया ऐसा धर्मपरिवर्तन भी अपराध है।

56. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ विधि की उपरोक्त स्थिति पर विचार करते हुए, न्यायालय पाता है कि धारा 376 भा.दं.सं. और धारा 3/4 (1) उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2020 के अन्तर्गत कथित अपराध, प्रकृति में गंभीर और अशमनीय हैं, इसलिए, धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में, पक्षों के बीच समझौते के आधार पर तत्काल कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है।

57. तदनुसार, धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत वर्तमान आवेदन **खारिज** किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 148

मूल अधिकारिता

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 25836 वर्ष 2024

श्रीमती सुमन प्रजापति

.....आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.....विपक्षी पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता:-

लालजी यादव, यशपाल यादव

विपक्षी के अधिवक्ता:-

जी.ए., संजय कुमार श्रीवास्तव

(ए) आपराधिक कानून - पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान - सूचनाकर्ता को सूचना देने का अधिकार - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 173 (2) (ii), 190 (1) (बो) और 319 - अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्रवाई करने की शक्ति - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - मजिस्ट्रेट आरोप-पत्रित अभियुक्त के खिलाफ संज्ञान लेने से पहले सूचनाकर्ता को नोटिस जारी करने के लिए बाध्य नहीं है - जब मजिस्ट्रेट ने एफआईआर में नामित व्यक्तियों के संबंध में सूचना देने वाले को नोटिस जारी किए बिना केवल आरोप-पत्रित व्यक्तियों के खिलाफ संज्ञान लिया है तो सूचना देने वाले को कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है - परीक्षण के दौरान धारा 319 सीआरपीसी के तहत अन्य लोगों को बुलाने की गुंजाइश बनी रहती है। (प्रस्तर- 25 से 31)

आवेदक द्वारा दर्ज कराई गई एफआईआर - केवल एक आरोपी के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत - अंतिम आरोप पत्र पांच अन्य के खिलाफ -रिपोर्ट दर्ज करने के मामले में आवेदक ने मजिस्ट्रेट द्वारा उसे नोटिस दिए बिना लिए गए संज्ञान के आदेश को चुनौती दी। (प्रस्तर- 2,3)

निर्णय: - सूचनाकर्ता का अधिकार किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होता यदि मैजिस्ट्रेट ने केवल चार्जशीट किए गए व्यक्तियों के खिलाफ संज्ञान लिया और एफ.आई.आर. में नामित किन्तु चार्जशीट न किए गए व्यक्तियों

के संबंध में सूचनाकर्ता को नोटिस जारी नहीं किया। वर्तमान मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।(प्रस्तर- 31,33)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन खारिज (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. भगवत सिंह बनाम पुलिस आयुक्त एवं अन्य, एआईआर 1985 एससी 1285
2. यू.पी.एस.सी. बनाम एस. पपैया, 1997 (7) एससीसी 614
3. अभिनन्दन झां और अन्य बनाम दिनेश मिश्रा 1968 एआईआर 117
4. महेश चन्द्र बनाम जनार्दन रेड्डी 2003 (1) एससी 734
5. एम.एस. अहलावत बनाम सेंट ऑफ हर. एवं अन्य, 2000 (1) एससीसी 278
6. इंडिया कैरेट पी. लिमिटेड बनाम सेंट ऑफ कर्ण एवं अन्य, एआईआर 1989 एससी 885

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा प्रदत्त किया गया)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री यशपाल यादव, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार श्रीवास्तव तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री अमित सिंह चौहान को सुना गया।
2. यह आवेदन अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 16, इलाहाबाद द्वारा आपराधिक वाद संख्या 04/2024 (राज्य बनाम त्रिपुरारी) में, जो मुकदमा अपराध संख्या 436/2023, धारा 498-ए, 323, 504, 506 आईपीसी और धारा 3/4 डी.पी. एक्ट, थाना धूमनगंज, जिला प्रयागराज (इलाहाबाद) से उत्पन्न हुआ है, में पारित दिनांक 30.01.2024 के आदेश को निरस्त करने के लिए प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त, अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 16, इलाहाबाद को निर्देश दिया गया है कि वे आगे संज्ञान लेने से पहले आवेदक को सुनवाई का अवसर प्रदान करें।
3. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं: श्रीमती सुमन प्रजापति (आवेदिका) द्वारा 23.08.2023 को 20:55 बजे छह व्यक्तियों के विरुद्ध दहेज की मांग को लेकर मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित करने के आरोप में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी। अन्वेषण के बाद 19.11.2023 को केवल त्रिपुरारी प्रजापति के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जबकि संतलाल, श्रीमती लालमणि देवी, श्रीमती प्रतिभा, श्रीमती संध्या और दिव्या के पक्ष में 19.11.2023 को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। दिनांक 19.11.2023 का आरोप पत्र संबंधित न्यायालय में 30.01.2024 को प्रस्तुत की गई और न्यायालय ने संज्ञान लेते हुए त्रिपुरारी प्रजापति को 28.01.2024 की तिथि तय करते हुए तलब किया।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने संबंधित न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 30.01.2024 के आदेश को चुनौती दी है, जिसमें त्रिपुरारी प्रजापति को तलब किया गया है, जिनके विरुद्ध मामले में संज्ञान लेने से पूर्व आवेदक (वर्तमान मामले में सूचक) को कोई अवसर दिए बिना आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।
5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173(2) के अनुसार, विवेचना अधिकारी को अपने द्वारा की गई कार्रवाई की सूचना उन व्यक्तियों को अवश्य देनी चाहिए जिन्हें अपराध के घटित होने की सूचना सबसे पहले दी गई थी। आवेदक-सूचनाकर्ता ने प्राथमिकी दर्ज कराई, लेकिन विवेचना अधिकारी ने न तो उसे विवेचना की प्रगति की जानकारी दी और न ही अवर न्यायालय में केस डायरी (पुलिस रिपोर्ट) प्रस्तुत करने से पहले उसकी एक प्रति प्रदान की। इस प्रकार, आवेदक को पुलिस रिपोर्ट की सूचना और संप्रेषित किए बिना संबंधित अदालत में आरोप पत्र प्रस्तुत करना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अधिदेश के विरुद्ध है, अतः यह अनुचित, अन्यायपूर्ण और अवैध है।
6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि एफआईआर में नामित अन्य पांच व्यक्तियों के पक्ष में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, जिसमें उन्हें *कानूनी प्रक्रिया* (न्यायिक कार्यवाही) से मुक्त कर दिया गया था क्योंकि एफआईआर दर्ज करने वाला आवेदक इससे प्रभावित था, इसलिए विद्वान मजिस्ट्रेट के लिए नोटिस जारी करना, सूचना देने वाले को एक अवसर देना अनिवार्य था और सूचना देने वाले को सुनने के बाद ही संज्ञान लेने का आदेश पारित किया जाना चाहिए था, इस प्रकार त्रिपुरारी प्रजापति के खिलाफ संज्ञान लेने का आदेश और अन्य व्यक्तियों के खिलाफ नहीं लेने का आदेश, जिनका नाम एफआईआर में था, हालांकि उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया था, अवैध है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है।
7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि विवेचना अधिकारी को आवेदक को विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने और अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने की सूचना देनी चाहिए थी और संबंधित न्यायालय को कोई भी आदेश पारित करने से पहले सूचक को नोटिस जारी करना चाहिए था और सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद संज्ञान लेना चाहिए था। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने **भगवत सिंह बनाम पुलिस आयुक्त एवं अन्य एआईआर 1985 एससीसी** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का हवाला दिया है। इस प्रकार, दिनांक 30.01.2024 का आदेश अवैध है और निरस्त किए जाने योग्य है।
8. विद्वान ए.जी.ए. का तर्क है कि इस स्तर पर, सूचक को नोटिस जारी करके, उसे आरोप-पत्र न दाखिल करने वाले व्यक्तियों के संबंध में मजिस्ट्रेट को संबोधित करने का अवसर देने से मामला लंबा खिंच जाएगा और अनावश्यक देरी होगी, जबकि सूचक के पास मुकदमे के दौरान साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त समय है। केवल अभियुक्त के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत करने में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है, इसलिए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

9. उभय पक्ष के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।
10. इस मुद्दे पर विचार करने से पहले, मामले के उचित निर्णय के लिए कुछ प्रावधानों पर चर्चा करना उचित होगा।
11. सीआरपीसी का अध्याय XII पुलिस को सूचना देने और उसकी विवेचना की शक्तियों से संबंधित है।
12. धारा 154(1) में यह प्रावधान है कि किसी संज्ञेय अपराध के घटित होने से संबंधित प्रत्येक सूचना, यदि मौखिक रूप से पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को दी जाती है, तो उसे उसके द्वारा या उसके निर्देश पर लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा और सूचना देने वाले को पढ़कर सुनाया जाएगा और ऐसी प्रत्येक सूचना, चाहे लिखित रूप में दी गई हो या लिखित रूप में दर्ज की गई हो, सूचना देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154(2) के अनुसार, ऐसी सूचना की एक प्रति सूचना देने वाले को तत्काल, निःशुल्क दी जाएगी।
13. धारा 156(1) सीआरपीसी किसी पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी भी संज्ञेय मामले की जांच करने की शक्ति प्रदान करती है और उस धारा की उपधारा (3) धारा 190 के तहत सशक्त मजिस्ट्रेट को उस धारा की उपधारा (1) में उल्लिखित जांच का आदेश देने के लिए अधिकृत करती है।
14. धारा 157(1) सीआरपीसी में प्रावधान है कि यदि प्राप्त सूचना से या अन्य किसी माध्यम से पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी के पास किसी अपराध के होने का संदेह करने का कारण है, जिसकी विवेचना करने के लिए उसे धारा 156 सीआरपीसी के तहत अधिकार दिया गया है, तो वह तुरंत एक मजिस्ट्रेट को इसकी रिपोर्ट भेजेगा, जो पुलिस रिपोर्ट पर ऐसे अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की विवेचना करने के लिए घटनास्थल पर जाएगा और यदि आवश्यक हो, तो अपराधी की खोज और गिरफ्तारी के लिए उपाय करेगा। इस प्रकार, मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायतकर्ता/सूचना देने वाले द्वारा धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत आवेदन किए जाने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा विवेचना करने और एफआईआर दर्ज करने के लिए पारित आदेश के अनुसार एफआईआर दर्ज की जाती है। जैसे ही वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करता है, उसे धारा 154(2) सीआरपीसी के तहत इसकी एक प्रति निःशुल्क प्रदान की जानी चाहिए।
15. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157(2) का परंतुक (ख) यह अधिनियमित करता है कि यदि किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि विवेचना शुरू करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह मामले की विवेचना नहीं करेगा। लेकिन ऐसे मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157(2) के अनुसार, अधिकारी को सूचना देने वाले को तुरंत सूचित करना होगा कि वह मामले की विवेचना नहीं करेगा या विवेचना नहीं करवाएगा। विवेचना पूरी होने पर पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी को क्या करना आवश्यक है, यह धारा 157(2) में बताया गया है।

16. धारा 173(2)(i) सीआरपीसी में यह प्रावधान है कि जैसे ही विवेचना पूरी हो जाती है, पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रारूप में एक रिपोर्ट भेजेगा, जिसमें विभिन्न विवरण दिए जाएंगे, जिसमें यह भी शामिल होगा कि क्या अधिकारी की राय में अपराध किया गया प्रतीत होता है और यदि हां, तो किसके द्वारा किया गया है।

17. धारा 173(2)(ii) सीआरपीसी में कहा गया है कि अधिकारी, राज्य सरकार द्वारा निर्धारित तरीके से, उसके द्वारा की गई कार्रवाई की जानकारी उस व्यक्ति को भी देगा, यदि कोई हो, जिसने अपराध के किए जाने से संबंधित सूचना सबसे पहले दी थी।

18. जब किसी पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2)(i) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को भेजी गई रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के विचारार्थ आती है, तो दो भिन्न स्थितियों में से एक उत्पन्न हो सकती है।

(1) रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपराध किसी विशिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा किया गया प्रतीत होता है।

(2) दूसरी ओर रिपोर्ट में यह कहा जा सकता है कि पुलिस की राय में कोई अपराध नहीं किया गया प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट निम्नलिखित तीन में से एक कदम उठा सकता है:-

(i) वह रिपोर्ट स्वीकार कर सकता है और अपराध का संज्ञान ले सकता है तथा प्रक्रिया जारी कर सकता है; या,

(ii) वह रिपोर्ट से असहमत हो सकता है और कार्यवाही छोड़ सकता है; या,

(iii) वह धारा 156(3) सीआरपीसी के तहत आगे की विवेचना का निर्देश दे सकता है और पुलिस को आगे की रिपोर्ट प्रस्तुत करने की आवश्यकता हो सकती है।

19. इन दोनों स्थितियों में से किसी भी स्थिति में, मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेने और प्रक्रिया जारी करने का निर्णय लेता है, तो सूचना देने वाले को कोई पूर्वाग्रहपूर्ण नुकसान नहीं होता, न ही घायल या मृत्यु के मामले में, मृतक का कोई रिश्तेदार व्यथित होता है, क्योंकि अपराध का संज्ञान मजिस्ट्रेट द्वारा लिया जाता है और मजिस्ट्रेट द्वारा यह निर्णय लिया जाता है कि मामला आगे बढ़ेगा। लेकिन अगर मजिस्ट्रेट यह निर्णय लेता है कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है और कार्यवाही को छोड़ देता है या यह दृष्टिकोण रखता है कि हालांकि प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित अन्य लोगों के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है, तो सूचना देने वाले पर निश्चित रूप से पूर्वाग्रह होगा क्योंकि उसके द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट अपने उद्देश्य में पूरी तरह या आंशिक रूप से विफल हो गई होगी। इसके अलावा, जब उसके द्वारा दर्ज की गई प्रथम

सूचना रिपोर्ट पर त्वरित और प्रभावी कार्रवाई में सूचना देने वाले के हित को सीआरपीसी की धारा 154(2) में निहित प्रावधानों द्वारा स्पष्ट रूप से मान्यता दी गई है, तो सीआरपीसी की धारा 157(2) के और धारा 173(2)(ii) सीआरपीसी के तहत, यह माना जाना चाहिए कि सूचना देने वाला भी यह देखने में समान रूप से रुचि रखेगा कि मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान ले और प्रक्रिया जारी करे, क्योंकि यह उसके द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट की परिणति होगी।

20. **भगवत सिंह (उपरोक्त)** में न्यायालय का यह मत था कि जब कोई मजिस्ट्रेट, जिसके पास धारा 173(2)(i) सीआरपीसी के अंतर्गत रिपोर्ट भेजी जाती है, अपराध का संज्ञान न लेने और कार्यवाही बंद करने का निर्णय लेता है या यह विचार करता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित कुछ व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो मजिस्ट्रेट को सूचना देने वाले को नोटिस देना चाहिए और रिपोर्ट पर विचार के समय उसे सुनवाई का अवसर प्रदान करना चाहिए, और सूचना देने वाले को नोटिस देने की कठिनाई, मजिस्ट्रेट द्वारा रिपोर्ट पर विचार किए जाने के समय सूचना देने वाले को सुनवाई के अवसर से वंचित करने का कोई औचित्य प्रदान नहीं कर सकती।

21. उपर्युक्त मामले में, न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधानों या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से यह पता नहीं लगा सका कि मजिस्ट्रेट पर घायल व्यक्ति या मृतक के किसी संबंधी को रिपोर्ट पर विचार के समय सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए नोटिस जारी करने का कोई दायित्व है, जब तक कि ऐसा व्यक्ति प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने वाला सूचक न हो। लेकिन यह देखा गया कि यदि ऐसा व्यक्ति मजिस्ट्रेट से नोटिस पाने का हकदार नहीं भी है, तब भी वह मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होकर अपनी दलीलें दे सकता है, जब मजिस्ट्रेट द्वारा रिपोर्ट पर विचार किया जाता है ताकि यह तय किया जा सके कि रिपोर्ट पर उसे क्या कार्रवाई करनी चाहिए। यह भी देखा गया कि घायल व्यक्ति या मृतक का कोई संबंधी, यद्यपि मजिस्ट्रेट से नोटिस पाने का हकदार नहीं है, फिर भी रिपोर्ट पर विचार के समय मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने का अधिकार रखता है, यदि उन्हें अन्यथा पता चलता है कि रिपोर्ट पर मजिस्ट्रेट द्वारा विचार किया जा रहा है और यदि वे रिपोर्ट के संबंध में अपनी दलीलें देना चाहते हैं, तो मजिस्ट्रेट उनकी सुनवाई करने के लिए बाध्य है।

22. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधानों, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों तथा **भगवत सिंह (उपरोक्त)** में की गई टिप्पणियों के अनुसार, यद्यपि मजिस्ट्रेट रिपोर्ट पर विचार के लिए नियत सुनवाई की सूचना घायल व्यक्ति या मृतक के किसी रिश्तेदार को देने के लिए बाध्य नहीं है, फिर भी वह अपने विवेक के प्रयोग में, यदि वह ऐसा उचित समझे, तो घायल व्यक्ति या मृतक के किसी विशेष रिश्तेदार या रिश्तेदारों को ऐसी सूचना दे सकता है, लेकिन ऐसी सूचना न देने से उस आदेश पर कोई अवैध प्रभाव नहीं पड़ेगा जो मजिस्ट्रेट द्वारा रिपोर्ट पर विचार करने के बाद दिया जा सकता है।

23. आपराधिक मामलों में, जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया जाता है, तो मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेने या न लेने का निर्णय लेने के लिए उसकी समीक्षा करते हैं। यदि पुलिस कुछ ऐसे व्यक्तियों को आरोप पत्र में शामिल नहीं करती है, जिन्हें प्राथमिकी में अभियुक्त के रूप में दर्शाया गया है, और मजिस्ट्रेट इससे असहमत हैं, तो भी मजिस्ट्रेट उन व्यक्तियों को समन भेज सकते हैं, यदि साक्ष्य उनकी संलिप्तता का संकेत देते हैं। हालाँकि, मजिस्ट्रेट, आरोप पत्र रहित व्यक्तियों को न बुलाने का निर्णय लेने से पहले सूचना देने वाले या शिकायतकर्ता को समन भेजने के लिए बाध्य है या नहीं, यह स्थिति और कानूनी कार्यवाही पर निर्भर करता है।

24. न्यायालयों ने निर्णय दिया है कि मजिस्ट्रेट द्वारा आरोप-पत्र में शामिल न किए गए व्यक्तियों को समन न करने का निर्णय लेने से पहले, सूचना देने वाले और शिकायतकर्ता को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि सूचना देने वाले को पुलिस के निर्णय को चुनौती देने का अवसर मिले। हालाँकि, यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से संतुष्ट हैं और आरोप-पत्र में शामिल न किए गए व्यक्तियों को समन करने का कोई आधार नहीं देखते हैं, तो वे सूचना देने वाले को सुने बिना भी कार्यवाही कर सकते हैं। सूचना देने वाले को विरोध याचिका दायर करके अंतिम रिपोर्ट को चुनौती देने का हमेशा अवसर मिलता है, जिस पर संबंधित मजिस्ट्रेट सुनवाई करेगा। यह भी देखा गया कि जिन मामलों में प्राथमिकी में अभियुक्त के रूप में दर्शाए गए व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दायर नहीं किया गया है, वहाँ उन्हें सीआरपीसी की धारा 319 के तहत समन किए जाने की हमेशा गुंजाइश रहती है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि उन मामलों में, जहाँ कुछ व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया जा चुका है और शेष व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दायर नहीं किया गया है, सूचना देने वाले को नोटिस जारी न किए जाने पर सूचना देने वाले के अधिकार प्रभावित होते हैं।

25. **भगवत सिंह (उपरोक्त)** मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि जब मजिस्ट्रेट किसी कार्यवाही पर विचार कर रहा हो, उसे रद्द कर रहा हो या अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार कर रहा हो, जिसमें कुछ अभियुक्तों को शामिल नहीं किया गया हो, तो सूचना देने वाले की बात अवश्य सुनी जानी चाहिए। हालाँकि, उपरोक्त से, वह ऐसा नहीं कर सकता। यह कहा जा सकता है कि हर मामले में यह स्वतः ही है कि यदि मजिस्ट्रेट किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने पर विचार नहीं कर रहा है जिसका नाम मूल शिकायत या प्राथमिकी में था, लेकिन आरोप पत्र में शामिल नहीं था, तो सूचना देने वाले को अपनी बात कहने का अधिकार है। उपरोक्त मामले को अक्सर इस सिद्धांत के लिए उद्धृत किया जाता है कि सूचना देने वाले को मजिस्ट्रेट द्वारा किसी पुलिस रिपोर्ट को स्वीकार करने से पहले अपनी बात कहने का अधिकार है जिसमें कुछ अभियुक्तों को छोड़ दिया गया हो।

26. **संघ लोक सेवा आयोग बनाम एस. पपैया 1997(7) एससीसी 614** के एक अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से बाध्य नहीं है और उसे किसी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार है, भले ही कुछ व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल न किया गया हो, तथापि, यदि

मजिस्ट्रेट रिपोर्ट को यथास्थिति स्वीकार करने के लिए इच्छुक है तो सूचना देने वाले को आपत्तियां प्रस्तुत करने का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए।

27. **अभिनंदन झा एवं अन्य बनाम दिनेश मिश्रा 1968 एआईआर 117** के एक अन्य मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि मजिस्ट्रेट पुलिस को आरोप पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश नहीं दे सकता है, लेकिन पुलिस रिपोर्ट से असहमत होने और अपराध का संज्ञान लेने का विकल्प चुन सकता है, यह मामला पुलिस रिपोर्ट का मूल्यांकन करने में मजिस्ट्रेट की स्वतंत्रता स्थापित करता है, लेकिन विशेष रूप से सूचना देने वाले के सुनवाई के अधिकार को संबोधित नहीं करता है।

28. **महेश चंद बनाम बी. जनार्दन रेड्डी एवं अन्य 2003 (1) एससीसी 734** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि मजिस्ट्रेट आरोप पत्र में नामित न किए गए व्यक्तियों के विरुद्ध संज्ञान ले सकता है, यदि पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो और सूचना देने वाले के सुनवाई के अधिकार को उन मामलों में निहित किया जा सकता है जहां मजिस्ट्रेट यह मूल्यांकन कर रहा है कि आरोप पत्र में नामित न किए गए व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही की जाए या नहीं।

29. सर्वोच्च न्यायालय ने **एम.एस. अहलावत बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य 2000 (1) एससीसी 278** के मामले में अपना मत व्यक्त किया कि शिकायतकर्ता या आपराधिक कार्यवाही में मुखबिर की उपस्थिति आवश्यक है, विशेष रूप से मजिस्ट्रेट द्वारा कुछ व्यक्तियों को अभियोजन से बाहर रखने संबंधी रिपोर्टों पर निर्णय लेते समय।

30. उपर्युक्त निर्णयों से यह स्थापित होता है कि यद्यपि मजिस्ट्रेट के पास पुलिस रिपोर्ट को स्वीकार या अस्वीकार करने का विवेकाधिकार है, फिर भी सूचनादाता या शिकायतकर्ता को सामान्यतः सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए, विशेषकर यदि मजिस्ट्रेट ऐसी रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हो जो कुछ व्यक्तियों को दोषमुक्त करती है।

31. दंड प्रक्रिया संहिता के उपरोक्त प्रावधानों और विभिन्न निर्णयों का अध्ययन करने के बाद, इस न्यायालय की राय है कि आरोप-पत्र दाखिल न करने वाले व्यक्तियों के संबंध में मजिस्ट्रेट को संबोधित करने का अवसर देने के लिए सूचना देने वाले को नोटिस जारी करने से मामला लंबा खिंच जाएगा और अनावश्यक देरी होगी और जबकि सूचना देने वाले के पास विचारण के दौरान साक्ष्य और सामग्री रिकॉर्ड पर रखने के लिए पर्याप्त अवसर हैं, जिसके आधार पर उन्हें धारा 319 सीआरपीसी के प्रावधानों के तहत आरोपी व्यक्तियों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, सूचना देने वाले के लिए कोई पूर्वाग्रह नहीं है जब मजिस्ट्रेट ने केवल आरोप-पत्र दाखिल करने वाले व्यक्तियों को नोटिस जारी किया है, जैसा कि वर्तमान मामले में है। यदि मजिस्ट्रेट ने केवल आरोप-पत्र दाखिल करने वाले व्यक्तियों के खिलाफ संज्ञान लिया है, लेकिन उन व्यक्तियों के संबंध

में सूचना देने वाले को नोटिस जारी नहीं किया है जिनका नाम एफआईआर में है लेकिन जिनके खिलाफ आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया है, तो सूचना देने वाले के अधिकार किसी भी तरह से प्रभावित नहीं होते हैं।

32. इस न्यायालय का मानना है कि वर्तमान मामले में अभी तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 का चरण नहीं आया है। जिस आक्षेपित आदेश के तहत आरोप-पत्रित व्यक्तियों के विरुद्ध संज्ञान लिया गया है, वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190(1)(बी) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग है और इस स्तर पर मजिस्ट्रेट की अपराध का संज्ञान लेने और उन लोगों के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने की शक्तियों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता, जिन्हें पुलिस ने आरोप-पत्र दाखिल करते समय अभियुक्त नहीं बनाया है। उपरोक्त बात **इंडिया कैरेट पी. लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य एआईआर 1989 एससी 885** के मामले में भी कही गई है।

33. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों, मामले के तथ्यों और अभिलेख में प्रस्तुत सामग्री पर विचार करने के बाद, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तथा इस मुद्दे पर स्थापित कानून के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि वर्तमान मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। सीआरपीसी की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन **खारिज** किया जाता है।

34. न्यायालय, सुश्री श्रेया शुक्ला, अनुसंधान सहयोगी द्वारा की गई कड़ी मेहनत की सराहना करना चाहेगा, जिन्होंने इस मामले में विस्तृत जानकारी पर ध्यान आकर्षित किया है तथा यह बात इस मामले में कानूनी सहायता प्रदान करने के उनके कार्य में भी दिखाई देती है।

(2025) 3 ILRA 154

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. संख्या- 28882 सन् 2024

मुकुल कुमार जैन एवं एक अन्य

-----आवेदक

बनाम

सी.बी.आई.

-----विपक्षी

आवेदक के ओर से अधिवक्ता :

शिव सागर सिंह

विपक्षी के ओर से अधिवक्ता :

संजय कुमार यादव

आपराधिक विधि- दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482- विधि उन लोगों की रक्षा करती है जो इसका सम्मान करते हैं और इसका पालन करते हैं।

विधि का खुलेआम उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की तुलना विधि की प्रक्रिया का पालन करने वाले व्यक्ति से नहीं की जा सकती। विधिक प्रक्रिया से बचने वाले व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार चुनिंदा चरणों में अपनी शिकायत व्यक्त करने की अनुमति नहीं दी जा सकती -- आरोपी आवेदक _ कभी भी विवेचना में सम्मिलित नहीं हुए, जिसका परिणाम उनके विरुद्ध भगोड़े के रूप में आरोप पत्र प्रस्तुत करने के रूप में निकला और कार्यवाही की जानकारी होने के बावजूद वे फिर से विचारण न्यायालय से फरार हो गए और इस प्रकार कार्यवाही को रद्द करने की मांग करने के लिये वे इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करने के पात्र नहीं हैं --

विवेचना में आवेदकों का पूर्ण असहयोग, दलीलों की अस्पष्टता, विवेचना में सम्मिलित न होने और सहयोग न करने का आवेदकों का आचरण, जिसके परिणाम स्वरूप उनके विरुद्ध भगोड़े के रूप में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जैसा कि पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश से प्रकट होता है न्यायालय के आदेशों को टालने के लिये जानबूझकर किये गये प्रयास और यह तथ्य कि आरोप पत्र को उसके गुण दोष के आधार पर चुनौती नहीं दी जा रही है, साथ ही यह तथ्य कि दिनांक 01.03.2024 के संज्ञान लेने के आदेश को पुनरीक्षण में चुनौती दी गई, जो गुण दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया, हस्तक्षेप के लिये कोई आधार नहीं है। (प्रस्तर 20 और 21)

याचिका खारिज। (ई-15)

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल द्वारा वितरित किया गया)

1. दिनांक 03.01.2025 को इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था:-

"1. सूची दोहराई गई

2. अधिवक्ता श्री मयंक कुमार जैन ने, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव सागर सिंह, जो वर्तमान मामले के साथ-साथ संबंधित मामले में भी उपस्थित हुए हैं, का पक्ष रखा तथा श्री ज्ञान प्रकाश, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता के लिए दोनों मामलों में केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार यादव उपस्थित हुए, को सुना।

3. वर्तमान आवेदन, दिनांक 27.09.2024 के आदेश के अनुपालन में, आवेदन अन्तर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. संख्या 11034 सन् 2024 (मुकुल जैन एवं अन्य बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) से जुड़ा हुआ है।

4. अभिलेखों से पता चलता है कि वर्तमान मामले को आज "माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश (त्वरित) मामले" के अंतर्गत अतिरिक्त वाद सूची/असूचीबद्ध सूची-1 में सूचीबद्ध किया गया है। माननीय मुख्य न्यायाध्यापक के दिनांक 02.01.2025 के निर्देशानुसार, इस मामले को संबंधित मामले सहित आज सूचीबद्ध किया गया है।

5. दोहराई गई सूची में मामले को लिए जाने पर, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मामले को एक सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया जाए ताकि वह इसे बहस के लिए तैयार कर सकें।

6. अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 12964 सन् 2024 (मुकुल कुमार जैन बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो) में विविध आवेदन डायरी संख्या 59714 सन् 2024 में दिनांक 20.12.2024 के आदेश के अन्तर्गत निर्देश दिया है कि वर्तमान मामले को माननीय मुख्य न्यायाध्यापक के समक्ष जनवरी, 2025 के प्रथम सप्ताह में तिथि निर्धारित करने के लिए रखा जाए, साथ ही पीठ के विद्वान पीठासीन न्यायाध्यापक से मामले पर शीघ्र सुनवाई करने का अनुरोध किया जाए।

7. आज, मामले की सुनवाई शुरू होने पर, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने बहस की तैयारी के आधार पर स्थगन की मांग की है। उन्हें उनके आवेदन पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 20.12.2024 के आदेश का स्मरण कराया जाता है।

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दोनों मामलों को 16.01.2025 को सूचीबद्ध किया जाए ताकि वह उन पर बहस कर सकें।

9. प्रार्थना स्वीकार की गई

10. वर्तमान मामले को संबंधित मामले सहित 16.01.2025 को सूचीबद्ध किया जाए।

2. तत्पश्चात दिनांक 16.01.2025 को इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

"1. वर्तमान मामला आपराधिक विविध 482 संख्या 11034 सन् 2024 (मुकुल जैन एवं अन्य बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो) से जुड़ा है, जिसके पत्रावली से पता चलता है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित दिनांक 6.8.2024 के आदेश द्वारा इसका अंतिम रूप से निपटारा कर दिया गया है।

2. वर्तमान मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 20.12.2024 को एक आदेश पारित किया है जिसमें मामले को माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष जनवरी, 2025 के शुरुआती सप्ताह में एक तिथि निर्धारित करने के लिए प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया है, साथ ही पीठ के विद्वान पीठासीन न्यायामूर्ति से अनुरोध किया गया है कि वे मामले पर शीघ्र सुनवाई करें। इस प्रकार, यह मामला 3.1.2025 को इस पीठ के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जिस दिन आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने मामले को बहस के लिए तैयार करने हेतु एक सप्ताह के लिए स्थगन का अनुरोध किया। इस पीठ द्वारा उक्त तिथि को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

"1. सूची दोहराई गई

2. अधिवक्ता श्री मयंक कुमार जैन ने, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव सागर सिंह, जो वर्तमान मामले के साथ-साथ संबंधित मामले में भी उपस्थित हुए हैं, का पक्ष रखा तथा श्री ज्ञान प्रकाश, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता के लिए दोनों मामलों में केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार यादव उपस्थित हुए, को सुना।

3. वर्तमान आवेदन, दिनांक 27.09.2024 के आदेश के अनुपालन में, अन्तर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. संख्या 11034 सन् 2024 (मुकुल जैन एवं अन्य बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) से जुड़ा हुआ है।

4. अभिलेखों से पता चलता है कि वर्तमान मामले को आज "माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश (शीघ्र) मामले" के अंतर्गत अतिरिक्त वाद सूची/असूचीबद्ध सूची-1 में सूचीबद्ध किया गया है। माननीय मुख्य न्यायामूर्ति के दिनांक 02.01.2025 के निर्देशानुसार, इस मामले को संबंधित मामले सहित आज सूचीबद्ध किया गया है।

5. दोहराई गई सूची में मामले को लिये जाने पर, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मामले को एक सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया जाए ताकि वह इसे बहस के लिए तैयार कर सकें।

6. अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 12964 सन् 2024 (मुकुल कुमार जैन बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो) में विविध आवेदन डायरी संख्या 59714 सन् 2024 में दिनांक 20.12.2024 के आदेश के अन्तर्गत निर्देश दिया है कि वर्तमान मामले को माननीय मुख्य न्यायामूर्ति के समक्ष जनवरी, 2025 के प्रथम सप्ताह में तिथि तय करने के लिए रखा जाए, साथ ही पीठ के विद्वान पीठासीन न्यायामूर्ति से मामले पर शीघ्र सुनवाई करने का अनुरोध किया जाए।

7. आज, मामले की सुनवाई शुरू होने पर, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने बहस की तैयारी के आधार पर स्थगन की मांग की है। उन्हें उनके आवेदन पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 20.12.2024 के आदेश का स्मरण कराया जाता है।

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दोनों मामलों को 16.01.2025 को सूचीबद्ध किया जाए ताकि वह उन पर बहस कर सकें।

9. प्रार्थना स्वीकार की गई

10. वर्तमान मामले को संबंधित मामले सहित 16.01.2025 को सूचीबद्ध किया जाए।

3. आज आवेदक की ओर से प्रार्थना किए जाने पर इस मामले की सुनवाई शुरू हुई। आवेदक की ओर से अधिवक्ता श्री मनीष गुप्ता और श्री शिव सागर सिंह उपस्थित हुए, तथा प्रतिवादी, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/भारत के अपर महाधिवक्ता श्री ज्ञान प्रकाश, अधिवक्ता श्री संजय कुमार यादव की सहायता से उपस्थित हुए।

4. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बाद 3.1.2025 को उन्हें तीसरा अनुपूरक शपथपत्र दिया गया है, जिसके लिए उन्हें प्रति शपथपत्र/प्रतिक्रिया प्रस्तुत करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया जाए।

5. अभिलेख यह भी दर्शाते हैं कि यद्यपि आवेदक की ओर से मामले को बहस के लिए तैयार करने के लिए 3.1.2025 को स्थगन का अनुरोध किया गया था, लेकिन उक्त तिथि को तीसरा अनुपूरक शपथपत्र प्रस्तुत किया गया।

6. प्रतिवादी केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता की प्रार्थना स्वीकार की जाती है।

7. दिनांक 3.1.2025 के तीसरे अनुपूरक शपथपत्र पर प्रति-शपथपत्र/प्रतिक्रिया प्रस्तुत करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया जाता है। इसके बाद, आवेदकों को उस पर प्रति-शपथपत्र/प्रतिक्रिया, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने के लिए दो सप्ताह का समय होगा।

8. इस मामले को 20.2.2025 को सूचीबद्ध किया जाए। कार्यालय यह सुनिश्चित करेगा कि अगली तिथि पर यह मामला सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शीघ्र निपटाए जाने मामलों के शीर्षक के अंतर्गत सूचीबद्ध हो।

3. दिनांक 20.2.2025 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

"1. सूची दोहराई गई

2. श्री मनीष गुप्ता, अधिवक्ता, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव सागर सिंह के ओर से और केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार यादव उपस्थित हैं।

3. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस मामले की पैरवी भारत के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/उप सॉलिसिटर जनरल श्री ज्ञान प्रकाश द्वारा की जानी है, जो न्यायालय में आए थे, लेकिन कल उनकी पुत्री की शादी होने के कारण वापस चले गए हैं। उन्होंने इस मामले में एक सप्ताह के लिए स्थगन का अनुरोध किया है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने इस पर कोई आपति नहीं जताई, लेकिन उन्होंने कहा कि 16.01.2025 के आदेश के अनुपालन में केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा उन्हें कोई प्रतिक्रिया / प्रति-शपथपत्र नहीं दिया गया है।

5. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्थगन के अनुरोध के मद्देनजर, मामले को आज के लिए स्थगित किया जाता है।

6. मामले को 27.02.2025 को सूचीबद्ध किया जाए।

4. दिनांक 27.20.2025 को इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

"1. सूची दोहराई गई

2. श्री मनीष गुप्ता, श्री शिव सागर सिंह आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता की ओर से तथा श्री सुमित केसरवानी, श्री संजय कुमार यादव, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अधिवक्ता की ओर से, उपस्थित हैं।

3. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता ने आज न्यायालय में आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता को प्रति-शपथपत्र की एक प्रति प्रदान की है। केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता इसे 48 घंटे के भीतर पोर्टल पर प्रस्तुत/अपलोड करें।

4. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया कि वे केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रति-शपथपत्र पर कोई प्रत्युत्तर शपथपत्र प्रस्तुत करने का प्रस्ताव नहीं रखते हैं।

5. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस मामले पर भारत के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/उप सॉलिसिटर जनरल श्री ज्ञान प्रकाश द्वारा बहस की जानी है, जो अस्वस्थ होने के कारण न्यायालय में नहीं आए हैं।

6. अभिलेखों से पता चलता है कि पिछली बार श्री ज्ञान प्रकाश की ओर से व्यक्तिगत आधार पर स्थगन मांगा गया था। आज भी उनके अस्वस्थ होने के आधार पर उनके अनुरोध पर स्थगन मांगा जा रहा है।

7. अंतिम अवसर के रूप में, मामले को आज के लिए स्थगित किया जाता है।

8. मामले को 06.03.2025 को सूचीबद्ध किया जाए।

9. मामले को इस समझ पर स्थगित किया जा रहा है कि इसे अगली तिथि पर स्थगित नहीं किया जाएगा।"

5. विविध आवेदन डायरी संख्या 59714 सन् 2024 में पारित सर्वोच्च न्यायालय का दिनांक 20.12.2024 का आदेश नीचे उद्धृत है:-

"1. आवेदक-याचिकाकर्ताओं द्वारा तत्काल अंतरिम राहत की मांग करते हुए, प्रस्तुत दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अन्तर्गत आवेदन संख्या 28882 सन् 2024 इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है। चूंकि आवेदक-याचिकाकर्ताओं की ओर से दलील दी गई तात्कालिकता के बावजूद मामले को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध नहीं किया जा रहा था, इसलिए उन्होंने एसएलपी (सीआरएल) संख्या 12964 सन् 2024 के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। हालांकि, उक्त याचिका पर गुण-दोष के आधार पर बल नहीं डाला गया, और उपर्युक्त आवेदन-सह-याचिका के शीघ्र निपटारे के लिए उच्च न्यायालय में जाने की स्वतंत्रता मांगी गई।

2. प्रस्तुत, विशेष अनुमति याचिका में यह विविध आवेदन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी बताया गया है कि यह मामला 23.10.2024 को उच्च न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध था, लेकिन बिना किसी प्रभावी सुनवाई के इसे 18.12.2024 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। इसमें यह भी कहा गया है कि 18.12.2024 को भी कोई सुनवाई नहीं हो सकी और मामले को बिना कोई तिथि निर्धारित किए जनवरी, 2025 तक के लिए स्थगित कर दिया गया है। इस पृष्ठभूमि में, आवेदक-याचिकाकर्ता उचित निर्देश चाहते हैं।

3. आवेदक-याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. अभिषेक मनु सिंघवी को सुनने के बाद, और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि धारा 482 के अन्तर्गत आवेदन संख्या 28882 सन् 2024 अभी भी उच्च न्यायालय में लंबित है, हम इस विविध आवेदन का निपटारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को निर्देश के साथ करते हैं कि वे इस आदेश को उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करें और उचित प्रशासनिक आदेश प्राप्त करें, जिसकी सुनवाई की तिथि जनवरी, 2025 के शुरुआती सप्ताह में तय की जाए, साथ ही पीठ के विद्वान पीठासीन न्यायमूर्ति से अनुरोध किया जाए कि वे मामले को शीघ्रता से निपटाएं।

4. यह स्पष्ट किया जाता है कि हमने मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है।

5. तदनुसार, विविध आवेदन का निपटारा किया जाता है।

6. सभी लंबित आवेदन, यदि कोई हों, का भी निपटारा किया जाता है।

6. वर्तमान आपराधिक विविध आवेदन धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत, आवेदक मुकुल कुमार जैन/आवेदक संख्या 1 और प्रियंका जैन/आवेदिका संख्या 2 द्वारा इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है:-

"इसलिए, यह बहुत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय वाद संख्या 06 सन् 2024 में विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो न्यायालय, गाजियाबाद द्वारा पारित दिनांक 01.03.2024 के संज्ञान आदेश को रद्द/समाप्त करने की कृपा करे और प्राथमिकी संख्या आरसी0072022A0001 दिनांक 11.03.2022 के अन्तर्गत धारा 120-बी , 420 , 467 , 468 और 471 भा.दं.सं. सहपठित धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) भ्र.नि. अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत थाना एसीबी देहरादून, उत्तराखंड में " केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम मुकुल जैन और अन्य " शीर्षक में प्रस्तुत की गई चार्जशीट दिनांक 30.12.2023 से उत्पन्न सभी परिणामी कार्यवाही को रद्द/समाप्त करे।

इसके अतिरिक्त कोई भी आदेश पारित किया जाए कि आवेदक/ओं के विरुद्ध प्राथमिकी संख्या आरसी 0072022AA0001, दिनांक 11.03.2022 के अन्तर्गत धारा 120-बी , 420 , 467 , 468 और 471 भा.दं.सं. सहपठित धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) भ्र.नि. अधिनियम, 1988 थाना एसीबी देहरादून, उत्तराखंड में पंजीकृत और तत्काल आवेदन के लंबित रहने तक कोई अन्य परिणामी कार्यवाही नहीं की जाएगी और तत्काल आवेदन के अंतिम निपटारे तक 11.03.2022 की तत्काल प्राथमिकी से उत्पन्न सभी कार्यवाहियों पर रोक लगाई जाए।

7. मामले के तथ्य यह हैं कि 11.3.2022 को प्राथमिकी संख्या आरसी0072022A0001 सन् 2022 के रूप में थाना एसीबी देहरादून, जिला देहरादून में धारा 120बी सहपठित धारा

420 , 467 , 468 , 471 भा.दं.सं., धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(डी) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत श्री आशीष अग्रवाल, शाखा प्रबंधक, बैंक ऑफ इंडिया, मेरठ शाखा, आनंद भवन, कोठी नंबर 346, खैर नगर, मेरठ, यूपी द्वारा मुकुल जैन, श्रीमती प्रियंका जैन, मेसर्स महावीर फोर्डिंग प्राइवेट लिमिटेड मेरठ, मेसर्स आश्रय एंटरप्राइजेज (गारंटर) के विरुद्ध जरिये इसके स्वामिनी श्रीमती प्रियंका प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्रियंका जैन और अज्ञात लोक सेवक(यों) और निजी व्यक्ति(यों) के विरुद्ध आरोप लगाया गया है कि मेसर्स महावीर फोरजिंग प्राइवेट लिमिटेड, मेरठ सिंडिकेट बैंक, डिफेंस कॉलोनी शाखा, मेरठ से 742.00 लाख रुपये की ऋण सुविधा का लाभ उठा रहा था। उक्त ऋणों को बैंक ऑफ इंडिया, मेरठ शाखा ने 17.3.2011 को बढ़ी हुई क्रेडिट सुविधाओं के साथ 3 करोड़ रुपये के सावधि ऋण (टीएल) और 13 करोड़ रुपये की कैश क्रेडिट (सीसी) सीमा के साथ लिया था। इस प्रकार 17.03.2011 को, मेसर्स महावीर फोरजिंग प्राइवेट लिमिटेड को बैंक ऑफ इंडिया द्वारा कुल 1732.17 लाख रुपये की क्रेडिट सुविधा मंजूर की गई थी। उधारकर्ता कंपनी ने आठ संपत्तियों को न्यायसंगत बंधक बनाया है। नियम और शर्तों के अनुसार, उधारकर्ता कंपनी को पहले संवितरण के बाद 30 दिनों की अवधि के भीतर कृषि भूमि को गैर-कृषि भूमि में बदलना आवश्यक था। आरोपी कर्जदार ने ग्राम भुवा, परगना हस्तिनापुर, तहसील मवाना में स्थित तीन संपत्तियों के संबंध में बैंक में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 143 के अन्तर्गत भूमि उपयोग परिवर्तन से संबंधित तीन फर्जी और जाली आदेश प्रस्तुत किए। इसके अतिरिक्त मुकुल जैन और श्रीमती प्रियंका जैन ने बैंक की अनुमति और सूचना के बिना, ग्राम काशी परगना और जिला मेरठ में स्थित गिरवी रखी गई संपत्ति से संबंधित बिक्री विलेख को रद्द करने की सहमति दे दी, जिसमें दो बिक्री विलेख संख्या 2872 और संख्या 2874 सम्मिलित थे। तदनुसार, मेरठ के संबंधित न्यायालय ने 11.02.2015 के आदेश के अन्तर्गत बिक्री विलेखों को रद्द कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप बैंक को अपनी सुरक्षा से वंचित होना पड़ा। कंपनी के निदेशकों ने बैंक को सूचित किए बिना बैंक के पास गिरवी/प्रभारित संयंत्र और मशीनरी को हटा दिया और इस तरह बैंक को सुरक्षा से वंचित कर दिया। कंपनी द्वारा प्रस्तुत विदेशी बिल फर्जी निकले और बैंक द्वारा कोई राशि वसूल नहीं की जा सकी। इस प्रकार, कंपनी का खाता 15.09.2014 को एनपीए में बदल गया, जिससे 21,10,49,257.12 रुपये का गलत नुकसान हुआ और 25.06.2020 को धोखाधड़ी घोषित कर दिया गया।

8. प्राथमिकी दर्ज होने के बाद मामले की अन्वेषण प्रतिवादी/केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा की गई और दिनांक 30.12.2023 को आरोप पत्र संख्या 05 सन् 2023 निम्नलिखित विवरण के साथ प्रस्तुत किया गया:-

क्रम संख्या	अभियुक्त का नाम	अधिनियम और धाराएं	अभियुक्त व्यक्ति(यों) की स्थिति
1.	श्री मुकुल जैन	धारा 120बी के साथ 420, 468, 471 भा.दं.सं. और उसके मूल अपराध के अन्तर्गत मामला दर्ज किया गया।	फरार.

2.	श्रीमती प्रियंका जैन	धारा 120बी के साथ 420, 468, 471 भा.दं,सं. और उसके मूल अपराध के अन्तर्गत मामला दर्ज किया गया।	फरार.
3.	मेसर्स महावीर फोर्जिंग्स प्राइवेट लिमिटेड, इसके निदेशक श्री मुकुल जैन और श्रीमती प्रियंका जैन के माध्यम से	धारा 120बी के साथ भा.दं,सं. की धारा 420, 468, 471 और उसके मूल अपराध के अन्तर्गत।	प्राइवेट लिमिटेड कंपनी।
4.	श्री आकाशदीप सिंघल	अन्तर्गत धारा 120बी सहपठित धारा 420 भा.दं,सं.	निजी व्यक्ति।
5.	श्री निमित्त सिंघल	अन्तर्गत धारा 120बी सहपठित धारा 420 भा.दं,सं.	निजी व्यक्ति।
6.	श्री विपिन कुमार जैन	अन्तर्गत धारा 120बी सहपठित धारा 420 भा.दं,सं.	
7.	श्री विकास	अन्तर्गत धारा 120बी सहपठित धारा 420 भा.दं,सं.	निजी व्यक्ति।
8.	श्री मोहन कुमार	अन्तर्गत धारा 120बी सहपठित धारा 420 भा.दं,सं.	नादरयाफ्त (निजी व्यक्ति)।
9.	श्री अजय शर्मा	अन्तर्गत धारा 120बी सहपठित धारा 420 भा.दं,सं.	
10.	श्री देवेन्द्र शर्मा	अन्तर्गत धारा 120बी सहपठित धारा 420 भा.दं,सं.	नादरयाफ्त (निजी व्यक्ति)।
11.	श्रीमती उषा गुप्ता	अन्तर्गत धारा 120बी सहपठित धारा 420 भा.दं,सं.	
12.	श्री पंकज कुमार	अन्तर्गत धारा 120बी सहपठित धारा 420 भा.दं,सं.	

9. उक्त आरोप-पत्र पर विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट (केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो), गाजियाबाद की न्यायालय ने दिनांक 03.01.2024 के आदेश द्वारा मामले के संज्ञान हेतु बहस हेतु सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया। तत्पश्चात, दिनांक 01.03.2024 के आदेश द्वारा विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट (केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो), गाजियाबाद की न्यायालय ने उक्त आरोप-पत्र पर संज्ञान लिया और अभियुक्तों को तलब किया।

10. अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदकों द्वारा अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत किए गए थे और उक्त अग्रिम जमानत आवेदनों में कुछ दोषों के कारण विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट (केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो), गाजियाबाद द्वारा दिनांक 14.3.2024 के आदेश द्वारा उन्हें स्थगित कर दिया गया था। दिनांक 14.3.2024 के उक्त आदेशों से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष धारा 482 संख्या 11034 सन् 2024 (मुकुल जैन एवं अन्य बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो) के अन्तर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसका निपटारा इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 06.8.2024 को पारित आदेश द्वारा किया गया था, जिसमें आवेदकों द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत आवेदन पर निर्णय लेने के, अधिकार क्षेत्र के, संबंध में निर्धारित तिथि को संबंधित न्यायालय के समक्ष आवेदकों को अपनी आपत्तियां उठाने के लिए खुला रखा गया था और संबंधित न्यायालय को निर्देश दिया गया था कि आवेदकों द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत के आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने से पहले, वह इस प्रश्न का उत्तर दे और फिर मामले को आगे बढ़ाए।

"श्री मनीष गुप्ता, अधिवक्ता के साथ आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव सागर सिंह और भारत के विद्वान उप सॉलिसिटर जनरल श्री ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव को सुना गया, जिनकी सहायता केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार यादव ने की।

दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत यह आवेदन विशेष न्यायाधीश, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो न्यायालय, गाजियाबाद द्वारा अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1918 सन् 2024 और 1919 सन् 2024 में पारित दिनांक 14.03.2024 के आदेश को चुनौती देते हुए प्रस्तुत किया गया है, जिसके अन्तर्गत अधीनस्थ न्यायालय ने आवेदकों द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत आवेदनों की सुनवाई इस आधार पर स्थगित कर दी है कि आवेदकों द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत के आवेदनों में कुछ खामियां हैं।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि यद्यपि आवेदकों के विरुद्ध दर्ज की गई प्राथमिकी भी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत थी, परन्तु तत्पश्चात, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने धारा 173 (2) दं.प्र.सं. (आरोप-पत्र) के संदर्भ में दिनांक 30.12.2023 को पुलिस आख्या प्रस्तुत की है, परन्तु आवेदकों के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत आरोप-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया कि आवेदकों द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत आवेदन के लंबित रहने के दौरान आवेदकों के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं।

हालाँकि, न्यायालय को अभिलेखों से पता चलता है कि बाद में, अधीनस्थ न्यायालय ने दिनांक 14.03.2024 को एक आदेश पारित किया था, जिसके अन्तर्गत यह पाया गया था कि यद्यपि आवेदकों को त्रुटियाँ दूर करने का बार-बार अवसर दिया गया था, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वे जानबूझकर कार्यवाही में देरी कर रहे थे, इसलिए न्यायालय ने निर्देश दिया कि आवेदकों को त्रुटियाँ दूर करने और संबंधित न्यायालय के समक्ष अपने निवास पते के बारे में शपथपत्र प्रस्तुत करने का एक अंतिम अवसर दिया जाए। इस आवेदन में दं.प्र.सं. की धारा

482 के अंतर्गत संशोधन आवेदन प्रस्तुत करके उपरोक्त दिनांक 14.03.2024 के आदेश को चुनौती नहीं दी गई है।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए तथा श्रीकांत उपाध्याय एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन 282 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय द्वारा आवेदकों के पक्ष में कोई अंतरिम संरक्षण प्रदान नहीं किया जा सकता है, क्योंकि आवेदकों के विरुद्ध अधीनस्थ न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं।

उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करते हुए, यह निर्देश दिया जाता है कि अधीनस्थ न्यायालय, आवेदकों द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1918 सन् 2024 और संख्या 1919 सन् 2024 पर, अग्रिम जमानत आवेदनों में निर्धारित अगली तिथि को, निर्णय करेगी। आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा व्यक्त की गई चिंता यह है कि आवेदकों की अग्रिम जमानत आवेदनों की सुनवाई करने वाली न्यायालय को अग्रिम जमानत पर निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है कि आवेदकों द्वारा सत्र न्यायाधीश के समक्ष अग्रिम जमानत आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसे सत्र न्यायाधीश ने विशेष न्यायाधीश, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो न्यायालय को स्थानांतरित कर दिया है। यह सर्वविदित है कि सत्र न्यायाधीश, विशेष न्यायाधीश, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं कर सकते। हालाँकि, आवेदकों को इस मामले में निर्धारित तिथि पर अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष आवेदकों की अग्रिम जमानत आवेदनों पर निर्णय लेने के अधिकार क्षेत्र के संबंध में अपनी आपत्तियाँ उठाने की स्वतंत्रता होगी और अधीनस्थ न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह आवेदकों द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत आवेदनों पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने से पहले इस प्रश्न का उत्तर दे और फिर मामले को आगे बढ़ाए।

उपर्युक्त निर्देश/टिप्पणी के साथ, यह आवेदन अंतिम रूप से निपटाया जाता है।"

11. आवेदक संख्या 2/प्रियंका जैन की अग्रिम जमानत अर्जी, जिसे अग्रिम जमानत अर्जी संख्या 690 सन् 2024, पंजीकरण संख्या 1919 सन् 2024 के रूप में क्रमांकित किया गया था, को प्रभारी विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निरोधक), केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, गाजियाबाद की न्यायालय द्वारा दिनांक 16.8.2024 के आदेश के अन्तर्गत इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि आरोपी प्रियंका जैन को अपना शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए समय दिए जाने के बावजूद, ऐसा कोई शपथपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है और इस प्रकार उक्त अग्रिम जमानत अर्जी का निपटारा संभव नहीं है। दिनांक 22.10.2024 को पूरक शपथपत्र, आवेदकों की ओर से प्रस्तुत किया गया है जिसमें उक्त अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 690 सन् 2024, पंजीकरण संख्या 1919 सन् 2024, प्रियंका जैन बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो में पारित दिनांक 16.8.2024 के आदेश को पत्रावली पर लाया गया है। यद्यपि आरोपी मुकुल जैन और श्रीमती प्रियंका जैन की ओर से प्रस्तुत 482 दं.प्र.सं. याचिका में पारित दिनांक 06.8.2024 के आदेश के अवलोकन से यह पता चलता है कि अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1918 सन् 2024 और 1919 सन् 2024 के रूप में क्रमांकित दो अग्रिम जमानत आवेदन उसमें विषय वस्तु थे, लेकिन

वर्तमान मामले के पत्रावली और बहस के दौरान रखे गए दस्तावेज आवेदक संख्या 1/मुकुल कुमार जैन की अग्रिम जमानत आवेदन के स्थिति को नहीं दर्शाते हैं क्योंकि पत्रावली पर यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि इसमें क्या हुआ।

12. इस बिंदु पर यह तथ्य एक बार फिर दोहराना प्रासंगिक होगा कि दोनों आवेदकों की ओर से धारा 482 संख्या 11034 सन् 2024 (मुकुल जैन एवं एक अन्य बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो) के अन्तर्गत आपराधिक विविध आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसमें उक्त दोनों अग्रिम जमानत आवेदनों पर पारित दिनांक 14.03.2024 के आदेश को चुनौती दी गई थी, लेकिन आवेदक संख्या 1/मुकुल कुमार जैन की ओर से प्रस्तुत अग्रिम जमानत आवेदन की स्थिति अभी तक स्पष्ट नहीं की गई है। इसके अतिरिक्त, आवेदकों की ओर से दिनांक 03.1.2025 का एक तीसरा पूरक शपथपत्र प्रस्तुत किया गया है, जिसके विशेष रूप से प्रस्तर संख्या 2, 3 और 4 से पता चलता है कि गैर जमानती वारंट के अनुपालन में भारतीय अधिकारियों द्वारा आवेदक के विरुद्ध 'रेड कार्नर नोटिस' जारी किया गया था और वर्तमान अपराध के लिए एक ब्लू नोटिस जारी किया गया था जिसके अनुसरण में आवेदक को 02.1.2025 को दुबई में अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार किया गया था और 15 दिनों की अवधि के लिए हिरासत में लिया गया था। इसके अतिरिक्त प्रस्तर-4 से पता चलता है कि भारत में आवेदक के प्रत्यर्पण का अनुरोध भी सरकार द्वारा किया गया है। इस समय भी, यह कहना प्रासंगिक है कि उक्त शपथपत्र अस्पष्ट है क्योंकि यह कहता है कि यह आवेदकों की ओर से प्रस्तुत किया गया है और वर्तमान आवेदन में आवेदक दं.प्र.सं. की धारा 482 के अन्तर्गत दो आरोपी हैं, मुकुल कुमार जैन और श्रीमती प्रियका जैन, लेकिन प्रस्तर 2, 3 और 4 ने किसी भी तरह से विशिष्ट शब्दों में यह स्पष्ट नहीं किया कि कौन सा आवेदक हिरासत में लिया गया है इसके साथ संलग्न अनुलग्नक संख्या एसए-1 का अवलोकन किया गया, जिससे यह पता चला कि आवेदक संख्या 1 मुकुल कुमार जैन को हिरासत में लिया गया था। प्रस्तर संख्या 2, 3 और 4 नीचे उद्धृत हैं:-

"2. यह कि धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत वर्तमान आवेदन के लंबित रहने के दौरान, जो मुख्य रूप से इस आधार पर प्रस्तुत किया गया था कि विद्वान विचारण न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत कोई अपराध नहीं होने के कारण मामले की सुनवाई में अपने अधिकार क्षेत्र का दुरुपयोग किया है, आवेदक को 17.12.2024 को दुबई में अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार किया गया था और 19.12.2024 को 15 दिनों की अवधि के लिए हिरासत में लिया गया था।

3. दुबई में अधिकारियों द्वारा गिरफ्तारी और आगे की हिरासत के लिए दिया गया मुख्य कारण, भारतीय अधिकारियों द्वारा आवेदक को गैर-जमानती वारंट के बाद जारी किए गए 'रेड कार्नर नोटिस' और धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत वर्तमान आवेदन में विचाराधीन अपराध के लिए जारी किए गए 'ब्लू नोटिस' के अन्तर्गत हिरासत में रखने की आवश्यकता है। गिरफ्तारी और हिरासत नोटिस/कार्यवाही की प्रतियाँ इसके साथ संलग्न हैं और तीसरे पूरक शपथपत्र के अनुलग्नक एसए-1 के रूप में अंकित हैं।

4. आवेदक ने दुबई में कोई अपराध नहीं किया है और दुबई में उसकी कैद केवल भारत को आवेदक के प्रत्यर्पण के लिए, प्रतिवादी केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की सिफारिश पर जारी 'रेड कार्नर नोटिस' के आधार पर है।"

13. इसके अतिरिक्त उक्त पूरक शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या एसए-2 से पता चलता है कि यह ए.एस.जे/विशेष न्यायाधीश, विशेष न्यायालय, भ्रष्टाचार निरोधक, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, न्यायालय संख्या 3, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 217 सन् 2024, मुकुल कुमार जैन और एक अन्य बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो में दिनांक 06.11.2024 को पारित निर्णय और आदेश है, जो कि आपराधिक मामला संख्या 06 सन् 2024, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम मुकुल जैन और एक अन्य में विशेष मजिस्ट्रेट, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, गाजियाबाद की न्यायालय द्वारा दिनांक 01.3.2024 को पारित आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया था, जिस पर निर्णय हुआ और उक्त पुनरीक्षण खारिज हो गया। उक्त निर्णय और आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि इसके प्रस्तर संख्या 2 में केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और पक्षों द्वारा दिए गए उदाहरणों/परिपत्रों सहित पूरे पत्रावली पर विचार किया गया। इसके बाद न्यायालय ने अपने समक्ष उपलब्ध सामग्री के आधार पर पुनरीक्षण पर निर्णय लिया। अतः, आवेदकों द्वारा उपरोक्त प्रार्थनाओं के साथ, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत वर्तमान आवेदन इस न्यायालय में प्रस्तुत किया गया है।

14. आरम्भ में ही, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 26.2.2025 के पूरक प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर संख्या 7, 8 और 9 को प्रस्तुत करते हुए प्रस्तुत किया कि दिनांक 01.03.2024 के संज्ञान आदेश और उसके अंतर्गत सभी परिणामी कार्यवाहियों को चुनौती देने वाली धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत वर्तमान आवेदन, विचारणीय नहीं है क्योंकि आवेदक किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं क्योंकि वे न तो जाँच में सम्मिलित हुए, न ही जाँच में सहयोग किया और आज तक फरार हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक अपने विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी होने के बावजूद संबंधित अधीनस्थ न्यायालय में उपस्थित नहीं हुए। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उनके विरुद्ध 'ब्लू नोटिस' जारी किए गए हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी मुकुल कुमार जैन के विरुद्ध दिनांक 05.11.2024 को एक 'इंटरपोल रेड नोटिस कंट्रोल नंबर ए-12804/11-2024' जारी किया गया है और आरोपी श्री मुकुल कुमार जैन की गिरफ्तारी के लिए इंटरपोल सचिवालय जनरल, ल्योन द्वारा प्रकाशित भी किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह भी प्रस्तुत किया गया है कि एनसीबी, अबू धाबी ने दिनांक 21.12.2024 के अपने 'ई-मेल' के माध्यम से, राजनयिक माध्यम से, आरोपी मुकुल कुमार जैन के प्रत्यर्पण अनुरोध को भेजने का अनुरोध किया है और मुकुल कुमार जैन के प्रत्यर्पण के लिए एक प्रत्यर्पण अनुरोध संयुक्त सचिव (सीपीवी), विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा दिनांक 03.02.2025 को भारतीय दूतावास, अबू धाबी के राजदूत को भेजा गया है, जिसमें संयुक्त अरब अमीरात में संबंधित प्राधिकारियों को प्रत्यर्पण अनुरोध प्रस्तुत करने का अनुरोध किया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी प्रियंका जैन की गिरफ्तारी के लिए, ल्योन स्थित इंटरपोल सचिवालय द्वारा, आरोपी प्रियंका के विरुद्ध दिनांक 05.11.2024 को 'रेड नोटिस' जारी किया गया है और प्रकाशित किया गया है। उक्त नोटिस के आधार पर आरोपी प्रियंका जैन को अबू धाबी में हिरासत में लिया गया है। उक्त शपथपत्र के प्रस्तर संख्या 7, 8 और 9 नीचे उद्धृत हैं:-

"7. यह उल्लेख करना उचित है कि धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत तत्काल याचिका के तीसरे पूरक शपथपत्र पर सिद्धांत कुमार सिंह द्वारा शपथ ली जा रही है, इसका कारण यह है कि दोनों आरोपी / आवेदक यानी मुकुल कुमार जैन और श्रीमती प्रियंका जैन संज्ञेय अपराध कारित करने के बाद फरार हैं। आरोपी / आवेदक न तो जांच में सम्मिलित हुए हैं और न ही जांच में सहयोग किया है और इसलिए वे किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि प्राथमिकी आरसी0072022A0001 में जांच के अनुसरण में, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने आरोपी मुकुल कुमार जैन और श्रीमती प्रियंका जैन के विरुद्ध धारा 120 बी, सहपठित धारा 420, 468 और 471 1. भ.नि. और इसके मूल अपराधों के अन्तर्गत दंडनीय अपराधों के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। आरोपी आवेदक न तो जांच में सम्मिलित हुए हैं और न ही जांच में सहयोग किया है और फरार हो गए हैं। उनके विरुद्ध गैर जमानती वारंट जारी किए गए हैं। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी/आवेदकों के विरुद्ध 'ब्लू नोटिस' जारी किए गए हैं। आरोपी मुकुल कुमार जैन की गिरफ्तारी के लिए 'इंटरपोल रेड नोटिस कंट्रोल नंबर A-12804/11-2024' दिनांक 5 नवंबर, 2024 को, आरोपी मुकुल कुमार जैन के विरुद्ध जारी किया गया है और ल्योन में इंटरपोल सचिवालय द्वारा प्रकाशित किया गया है। 'रेड नोटिस कंट्रोल नंबर A-12804/11-2024 दिनांक 5 नवंबर, 2024' के आधार पर, आरोपी मुकुल कुमार जैन को राष्ट्रीयता (वानुअतु गणराज्य) के साथ संयुक्त अरब अमीरात में पाया गया है। एनसीबी, बहरीन ने संयुक्त अरब अमीरात में उनकी उपस्थिति के बारे में 28 नवंबर 2024 के अपने ई-मेल के जरिए सूचित किया है। 28 नवंबर, 2024 के ई-मेल की एक प्रति इसके साथ संलग्न है और अनुलग्नक एससीए-1 के रूप में चिह्नित है।

8. यह कि, 'इंटरपोल रेड नोटिस कंट्रोल संख्या A-12804/11-2024' दिनांक 5 नवंबर, 2024 के अनुसार, अभियुक्त मुकुल कुमार जैन को 18.12.2024 को संयुक्त अरब अमीरात में गिरफ्तार किया गया है। एनसीबी, अबू धाबी ने अपने ई-मेल दिनांक 23.12.2024 के माध्यम से, राजनयिक माध्यमों से, यूएई केंद्रीय प्राधिकरण (न्याय मंत्रालय) को अभियुक्त मुकुल कुमार जैन के प्रत्यर्पण अनुरोध को भेजने का अनुरोध किया है। उक्त ई-मेल की एक प्रति संलग्न है और अनुलग्नक एससीए -2 के रूप में अंकित है।

9. यह कि, अभियुक्त मुकुल कुमार जैन के प्रत्यर्पण के लिए संयुक्त सचिव (सीपीवी), विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा 03.02.2025 को भारतीय दूतावास, अबू धाबी के राजदूत को प्रत्यर्पण अनुरोध भेजा गया है, जिसमें अनुरोध किया गया है कि प्रत्यर्पण अनुरोध को संयुक्त अरब अमीरात में संबंधित अधिकारियों को प्रस्तुत किया जाए। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त प्रियंका जैन की गिरफ्तारी के लिए, ल्योन स्थित इंटरपोल सचिवालय द्वारा अभियुक्त प्रियंका जैन के विरुद्ध 5 नवंबर, 2024 को 'कन्ट्रोल संख्या A-12809/11-2024' के अन्तर्गत रेड नोटिस जारी किया गया है और इसे प्रकाशित किया गया है। 5 नवंबर, 2024 को 'कन्ट्रोल संख्या A-12809/11-2024' के अन्तर्गत रेड नोटिस के आधार पर, अभियुक्त प्रियंका जैन को अबू धाबी, संयुक्त अरब अमीरात में पाया गया।"

15. श्री मनीष गुप्ता, अधिवक्ता आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव सागर सिंह और श्री शिव सागर सिंह, की ओर से, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/ भारत के उप महाधिवक्ता श्री ज्ञान प्रकाश, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो/विपक्षी

पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार यादव की सहायता से प्रस्तुत के तर्क सुने गए तथा अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

16. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं ने तर्क दिया कि वर्तमान मामले में आरोप पत्र प्रस्तुत करने को चुनौती नहीं दी जा रही है, बल्कि चुनौती केवल मामले में अधिकार क्षेत्र की है, गुण-दोष की नहीं। उन्होंने तर्क दिया कि उनके तर्क मामले के गुण-दोष से संबंधित नहीं हैं, बल्कि केवल अधिकार क्षेत्र के आधार पर हैं।

17. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं ने निम्नानुसार प्रस्तुत किया:-

(1) प्राथमिकी क्षेत्राधिकार से बाहर है क्योंकि वह देहरादून में दर्ज की गई थी जबकि मामला जिला मेरठ से संबंधित है।

(2) वर्तमान प्राथमिकी दूसरी प्राथमिकी है क्योंकि प्राथमिकी दर्ज करने के लिए पहले आवेदन दिया गया था जिसे वापस कर दिया गया था और फिर वर्तमान आवेदन दिया गया जिसे पंजीकृत कर लिया गया।

(3) गैर-जमानती वारंट का संज्ञान लेना और जारी करना क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

(4) इस न्यायालय द्वारा आवेदन धारा 482 संख्या 11034 सन् 2024 में पारित दिनांक 06.8.2024 के आदेश का विशेष न्यायाधीश द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है और दिनांक 16.8.2024 का आदेश पारित किया गया है।

(5) संबंधित अपर सत्र न्यायाधीश का दिनांक 06.11.2024 का निर्णय एवं आदेश, जिसमें उक्त पुनरीक्षण को खारिज किया गया, उक्त न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बाहर है।

(6) वर्तमान याचिका को स्वीकार किया जाए तथा आवेदकों द्वारा की गई प्रार्थनाएं प्रदान की जाएं।

18. केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नानुसार प्रस्तुत किया:-

(1) वर्तमान याचिका में प्रार्थना अस्पष्ट है क्योंकि संज्ञान आदेश और सभी कार्यवाहियों को चुनौती दी गई है लेकिन आरोप पत्र को चुनौती नहीं दी गई है और इस स्तर पर क्षेत्राधिकार के आधार पर संज्ञान के आदेश की एकमात्र चुनौती पर विचार नहीं किया जा सकता है।

(2) यहां तक कि दिनांक 01.03.2024 के आदेश को चुनौती देने वाले पुनरीक्षण न्यायालय के दिनांक 06.11.2024 के निर्णय को भी यहां चुनौती नहीं दी गई है।

(3) संज्ञान के आदेश का पुनरीक्षण न्यायालय के निर्णय और आदेश के साथ विलय हो जाता है और इस प्रकार धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत वर्तमान याचिका पोषणीय नहीं है।

(4) वर्तमान याचिका खारिज की जाए।

19. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने तथा ऊपर बताए गए मामले के तथ्यों को देखने के बाद, शुरू में ही यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में चुनौती, आरोप पत्र प्रस्तुत करने, संज्ञान लेने और उस पर समन जारी करने के बाद मामले के गुण-दोष के आधार पर नहीं, बल्कि क्षेत्राधिकार के आधार पर संबंधित न्यायालय की क्षमता, के आधार पर दी गई है। यह तर्क कि वर्तमान प्राथमिकी एक दूसरी प्राथमिकी है, भ्रामक है क्योंकि वर्तमान मुद्दे और विषय-वस्तु पर पहले कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई है। वर्तमान प्राथमिकी इस मुद्दे और मामले पर पहली प्राथमिकी है। इसके अतिरिक्त, जहां तक पुनरीक्षण न्यायालय के क्षेत्राधिकार का संबंध है, शुरू में ही यह इंगित करना प्रासंगिक होगा कि 01.3.2024 का संज्ञान लेने वाला आदेश, जिस पर यहां भी आपत्ति जताई गई है, उसमें चुनौती दी गई थी और उक्त पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी गई थी। उक्त खारिजा गुण-दोष के आधार पर थी और उसमें पारित निर्णय और आदेश में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि बार-बार अवसर दिए जाने के बावजूद पुनरीक्षणकर्ता की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ और फिर न्यायालय ने मामले की गुण-दोष के आधार पर जांच की और उसमें निर्णय और आदेश पारित किया। न्यायालय उक्त पुनरीक्षण से जुड़ी हुई थी और इसने इसकी योग्यता के आधार पर इसका निर्णयन किया है क्योंकि कई अवसरों के बावजूद पुनरीक्षणकर्ता की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। यह वधि के स्थापित सिद्धांतों के अनुरूप है। जहां तक आवेदकों के आवेदन अन्तर्गत धारा 482 संख्या 11034 सन् 2024 के अन्तर्गत उक्त आवेदन में पारित दिनांक 06.8.2024 के आदेश के अनुपालन न करने का संबंध है, यह दिखाने के लिए पत्रावली पर कुछ भी नहीं है कि आवेदक संख्या 1/मुकुल कुमार जैन की अग्रिम जमानत याचिका में क्या हुआ। एकमात्र खुलासा आवेदक संख्या 2/प्रियंका जैन द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत याचिका के संबंध में है जिसे अनुलग्नक संख्या एसए-मे दर्शाया गया है जो कि उक्त पूरक शपथपत्र में संलग्न है जबकि इसके प्रस्तर में दलीले अस्पष्ट हैं और यह मात्र आवेदक को संदर्भित करती है, हालांकि उक्त 482 दं.प्र.सं. याचिका दोनों आवेदकों ने अपनी-अपनी अग्रिम जमानत याचिकाओं में पारित आदेशों को चुनौती देते हुए प्रस्तुत की थी। आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं ने स्पष्ट किया है कि वे आरोप पत्र को उसके गुण-दोष के आधार पर चुनौती नहीं दे रहे हैं, बल्कि संबंधित न्यायालय के क्षेत्राधिकारी को उसके अधिकार क्षेत्र के आधार पर चुनौती दे रहे हैं। इस मामले में आवेदकों के विरुद्ध भगोड़े के रूप में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रति शपथपत्र के प्रस्तर-7 में कहा गया है कि आवेदक न तो जांच में सम्मिलित हुए और न ही जांच में सहयोग किया और इसके अतिरिक्त उन्होंने संबंधित अधीनस्थ न्यायालय के आदेशों का भी पालन नहीं किया और फिर उनके विरुद्ध गैर जमानती वारंट जारी किए गए। इसका कोई खंडन नहीं है क्योंकि आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने 27.2.2025 को प्रस्तुत किया था कि उन्हें केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रति शपथपत्र पर कोई प्रत्युत्तर शपथपत्र प्रस्तुत

नहीं करना है। इस प्रकार तथ्य यह है कि जांच के दौरान भी आवेदकों की स्थिति भगोड़े की थी आरोप-पत्र प्रस्तुत करने, उस पर संज्ञान लेने और सम्मन जारी करने के बाद भी, वे संबंधित न्यायालय के आदेशों का पालन करने में फिर से विफल रहे और इसलिए उनके विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किए गए। ऐसा नहीं है कि आवेदकों को वर्तमान मामले और उनके विरुद्ध कार्यवाही की जानकारी नहीं थी, बल्कि अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें मामले और उनके विरुद्ध कार्यवाही की अच्छी जानकारी थी और फिर भी उन्होंने फरार रहने और किसी भी स्तर पर कार्यवाही में सम्मिलित न होने का विकल्प चुना। इसके अतिरिक्त, आवेदकों की ओर से प्रस्तुत 03.1.2025 के पूरक शपथपत्र और केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के प्रति- शपथपत्र के प्रस्तर संख्या 7, 8 और 9 से यह स्पष्ट होता है कि आवेदक देश में ही नहीं हैं बल्कि देश से बाहर हैं।

20. विधि उन लोगों की रक्षा करता है जो उसका सम्मान करते हैं और उसका पालन करते हैं। विधि का घोर उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की तुलना विधि की प्रक्रिया का पालन करने वाले व्यक्ति से नहीं की जा सकती। विधि की प्रक्रिया से बचने वाले व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार चुनिंदा चरणों में अपनी शिकायत व्यक्त करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। विधि का स्थापित सिद्धांत यह है कि अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग संयम और सावधानी से किया जाना चाहिए और इनका प्रयोग नियमित रूप से नहीं किया जा सकता, खासकर अभियुक्त की सुविधा के लिए। यह न्यायालय धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के सीमा और धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के मुद्दे पर विभिन्न निर्णयों से अवगत है। किसी भी मामले में, जैसे कि वर्तमान मामले में, अभियुक्त-आवेदकों का आचरण महत्वपूर्ण हो जाता है और यह न्यायालय पाता है कि दोनों अभियुक्त-आवेदक उस जाँच में कभी सम्मिलित नहीं हुए जिसका समापन उनके विरुद्ध भगोड़े के रूप में आरोप पत्र प्रस्तुत करके हुआ और वे कार्यवाही की जानकारी होने के बावजूद फिर से अधीनस्थ न्यायालय से फरार हैं और इस प्रकार कार्यवाही को रद्द करने की माँग करने के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने के हकदार नहीं हैं। वे विधिक व्यवस्था और प्रावधानों को अनदेखा करके लाभ नहीं उठा सकते।

21. उक्त तथ्यों और आवेदकों द्वारा जांच में पूर्ण असहयोग, दलीलों की अस्पष्टता, आवेदकों द्वारा जांच में सम्मिलित न होने और उसमें सहयोग न करने का आचरण, जिसके कारण उनके विरुद्ध, फरार के रूप में, आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, न्यायालय के आदेशों से बचने के लिए जानबूझकर किए गए प्रयास, जैसा कि पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश से प्रतीत होता है और यह तथ्य कि आरोप पत्र को उसके गुण-दोष के आधार पर चुनौती नहीं दी गई थी, साथ ही यह तथ्य कि दिनांक 01.3.2024 के संज्ञान लेने के आदेश को पुनरीक्षण में चुनौती दी गई, जो गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया है, हस्तक्षेप के लिए कोई आधार नहीं है।

22. वर्तमान आपराधिक विविध आवेदन अन्तर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. **खारिज** की जाती है।

(2025) 3 ILRA 167

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी,

रिट ए संख्या 368 वर्ष 2021

आमना खातून सी/ओ राजीब अहमद और अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

ए.एम.यू. और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता : श्री मोहम्मद. आदिल सिद्दीकी, श्री तौसीफ खान, श्री अलीबिन सैफ, श्री जीशान खान

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., श्री अबरार अहमद, श्री तीर्थ राज शुक्ला, श्री शशांक शेखर सिंह

सिविल लॉ - सेवा कानून - नियुक्ति - विज्ञापन में अस्पष्टता - "संबंधित / प्रासंगिक / संबद्ध विषय" जैसी अस्पष्ट अभिव्यक्तियां - अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की सहायक प्रोफेसर (रसायन विज्ञान) के पद पर भर्ती - ए.एम.यू. ने विज्ञापन में "संबंधित / प्रासंगिक / संबद्ध विषय" जैसी अस्पष्ट अभिव्यक्तियों का उपयोग किया - सर्वोच्च न्यायालय ने मोहम्मद सोहराब खान बनाम अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, (2009) 4 एससीसी 555 में साफ़ तौर पर कहा गया है कि विश्वविद्यालय पद भरने के लिए ज़रूरी योग्यता तय करेगी, जिसमें उस पद को भरने के लिए प्रार्थना पत्र जारी करते समय बताए जाने वाले संबंध विषय और विषय स्रोत की सही व ज़रूरी योग्यता बताई जाएगी - रिट याचिका का निपटारा इस निर्देश के साथ किया गया कि ए.एम.यू. भविष्य में जारी किए जाने वाले विज्ञापनों में स्पष्ट एवं असंदिग्ध योग्यता का उल्लेख सुनिश्चित करे, जिससे अन्यथा पात्र अभ्यर्थियों के साथ किसी प्रकार का पक्षपात या बहिष्कार न हो। (पैरा 15, 18)

स्वीकृत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी प्रदान किया गया)

1. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं श्री अलीबिन सैफ और जीशान खान, श्री तीर्थ राज शुक्ला, विद्वान अधिवक्ता जो प्रतिवादी-अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी (संक्षेप में "ए.एम.यू.") के विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक शेखर सिंह की ओर से पेश हुए, को सुना।

2. याचिकाकर्ताओं (अम्मा खातून, डॉ. मोहम्मद अज़फ़र शैदा और डॉ. सैयद मोहम्मद हुमायूँ अख़्तर) ने वर्ष 2021 में इस न्यायालय में यह प्रार्थना करते हुए संपर्क किया कि उन्हें विज्ञापन संख्या 4/2019(टी) दिनांक 03.07.2019 के साथ-साथ ए.एम.यू. द्वारा जारी विज्ञापन संख्या 2/2020(टी) दिनांक 11.06.2020 के अनुसरण में शुरू की गई चयन प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति दी जाए, यह तर्क देते हुए कि वे भी लेक्चरर (केमिस्ट्री) के पद के लिए योग्य हैं, जिनके पास 'इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री' में एम.एससी. की योग्यता है, जो एक "संबद्ध विषय" यानी उस पद के लिए एक आवश्यक योग्यता हो सकती है।

3. यह विवादित नहीं है कि पहले भी प्रतिवादी-ए.एम.यू. द्वारा आयोजित एक पिछली भर्ती प्रक्रिया के संबंध में इसी तरह का विवाद उत्पन्न हुआ था और मामला उच्चतम न्यायालय तक पहुंचा था। **मोहम्मद सोहराब खान बनाम अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी और अन्य, (2009) 4 एससीसी 555** के मामले में आखिरकार यह माना गया कि औद्योगिक रसायन विज्ञान में परास्नातक डिग्री धारक व्यक्ति व्याख्याता (रसायन विज्ञान) के पद के लिए तब तक बेहतर उपयुक्त नहीं होगा जब तक कि विज्ञापन में इस संबंध में कोई विशेष घोषणा न हो। इस संबंध में, यह भी देखा गया कि विज्ञापित पद शुद्ध रसायन विज्ञान स्ट्रीम से संबंधित व्यक्ति द्वारा भरा जाना था, बिना किसी विशेष शर्त के कि एम.एस.सी. औद्योगिक रसायन विज्ञान वाला व्यक्ति भी योग्य होगा या अधिक उपयुक्त हो सकता है। फैसले का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत है: -

"21. यूनिवर्सिटी की ओर से पेश हुए विद्वान अधिवक्ता ने हमारी पूछताछ पर हमारे सामने साफ तौर पर कहा कि उपरोक्त पद जिसे उपरोक्त तरीके से भरा जाना था, वह इस समय खाली है और उसे एक अतिथि व्याख्याता को नियुक्त करके भरा जा रहा है जिसके पास शुद्ध रसायन विज्ञान में मास्टर डिग्री है।

22. यदि आवश्यकता औद्योगिक रसायन विज्ञान में मास्टर डिग्री वाले व्यक्ति की होती, तो उस स्थिति में पद को औद्योगिक रसायन विज्ञान स्ट्रीम के अतिथि व्याख्याता के माध्यम से भरा जाता। इसलिए, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि औद्योगिक रसायन विज्ञान में परास्नातक डिग्री वाला व्यक्ति उक्त पद के लिए नियुक्ति के लिए बेहतर उपयुक्त होगा।

23. विज्ञापित पद शुद्ध रसायन विज्ञान विभाग से संबंधित व्यक्ति के लिए था, क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता, तो विज्ञापन में ही यह उल्लेख किया जाता कि इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री में मास्टर डिग्री वाला व्यक्ति ही आवेदन करे या ऐसा डिग्री वाला व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ भी आवेदन कर सकता है। विज्ञापन में ऐसा उल्लेख नहीं किया गया था और इसलिए, मेराजुद्दीन अहमद को छोड़कर, इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री में किसी अन्य डिग्री धारक ने उपरोक्त पद के लिए उम्मीदवार बनने के लिए आवेदन नहीं किया था।"

4. उपरोक्त संदर्भित फैसले में, यह भी निर्देश दिया गया था कि: -

“यूनिवर्सिटी उपरोक्त पद को भरने के लिए आवश्यक योग्यता निर्धारित करे। यूनिवर्सिटी अब उक्त पद का विज्ञापन करते समय सटीक आवश्यक योग्यता निर्धारित करेगी जिसमें विशेष विषय और विषय-स्ट्रीम का संकेत दिया जाएगा जो उक्त पद को भरने के लिए आवेदन करने के लिए आवश्यक है।”

5. ऐसा लगता है कि ए.एम.यू. ने निर्देश को नहीं समझा है और ऊपर बताए गए फैसले को उसकी सही भावना से फॉलो नहीं किया है और बाद के विज्ञापन में सहायक व्याख्याता (रसायन विज्ञान) की नियुक्ति के उद्देश्य के लिए कोई खास स्पष्टीकरण दिए बिना, यानी कि एम.एस.सी. औद्योगिक रसायन विज्ञान बराबर योग्यता होगी या नहीं, और इसके बजाय कुछ अस्पष्ट शब्दों का इस्तेमाल किया है, जैसे कि “किसी भारतीय यूनिवर्सिटी से संबंधित/प्रासंगिक/संबद्ध विषय में 55% अंकों के साथ मास्टर डिग्री (या जहां श्रेणीकरण प्रणाली लागू किया जाता है, वहां बिंदु स्तर में समकक्ष ग्रेड), या किसी विज्ञापन में मान्यता प्राप्त विदेशी यूनिवर्सिटी से समकक्ष डिग्री”। शब्द “संबंधित/प्रासंगिक/संबद्ध विषय” का अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग मतलब हो सकता है।

6. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्तों ने कहा है कि रसायन विज्ञान में सहायक व्याख्याता के उद्देश्य के लिए, औद्योगिक रसायन विज्ञान में एम.एस.सी. की डिग्री “संबद्ध विषय” के तहत आएगी।

7. विद्वान अधिवक्तों ने आगे कहा कि उपरोक्त अस्पष्टता को दूर करने के बजाय, ए.एम.यू. ने 05.11.2019 को एक शुद्धिपत्र प्रकाशित किया, जिसमें कहा गया कि मोहम्मद सोहराब खान (उपरोक्त) के मददेनजर, औद्योगिक रसायन विज्ञान को एम.एस.सी. डिग्री के बराबर नहीं माना जा सकता। संदर्भ के लिए, 05.11.2019 के शुद्धिपत्र का प्रासंगिक हिस्सा नीचे दिया गया है: -

शुद्धिपत्र

संदर्भ: स्थानीय विज्ञापन संख्या 12/ पॉली/2019-2020 दिनांक: 23.10.2019

उपरोक्त अधिसूचना में सहायक प्रोफेसर संविदा (रसायन विज्ञान) के पद के लिए योग्यता में निम्नलिखित परिवर्तन कृपया नोट करें।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सिविल अपील संख्या 1130 / 2009 के निर्णय के अनुसार, रसायन विज्ञान और औद्योगिक रसायन विज्ञान में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्यक्रम संरचना के संबंध में, माननीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि दोनों विषयों के पाठ्यक्रम काफी अलग और विशिष्ट हैं और निष्कर्षों के आलोक में यह भी दर्ज किया गया है कि औद्योगिक रसायन विज्ञान में एम.एस.सी. की डिग्री को रसायन विज्ञान में एम.एस.सी. की डिग्री के बराबर नहीं माना जा सकता है।

इसलिए यह सूचित किया जाता है कि औद्योगिक रसायन विज्ञान में एम.एससी. की योग्यता वाले उम्मीदवार व्यवहारिक विज्ञान और मानविकी अनुभाग विश्वविद्यालय पॉलिटेक्निक-एएमयू में सहायक प्रोफेसर संविदा (रसायन विज्ञान) के पद के लिए पात्र नहीं हैं।

8. विद्वान अधिवक्ताओं ने आगे प्रस्तुत किया कि अस्पष्टता और बढ़ गई और उन्होंने विश्वविद्यालय द्वारा दायर काउंटर हलफनामे में संलग्न एक दस्तावेज का उल्लेख किया, जो सीए-15 है, यानी 14.07.2021 को आयोजित बैठक का कार्यवृत्त, जिसमें विश्वविद्यालय में सहायक व्याख्याता की भर्ती के लिए रसायन विज्ञान के अनुशासन में "संबद्ध विषय" के रूप में औद्योगिक रसायन विज्ञान से संबंधित मुद्दे पर चर्चा की गई और यह माना गया कि "औद्योगिक रसायन विज्ञान विश्वविद्यालय पॉलिटेक्निक में सहायक व्याख्याता के पद के लिए एक संबद्ध विषय है। हालांकि, संबंध विषय के उम्मीदवारों पर तभी विचार किया जाएगा, जब संबंधित विषय के उम्मीदवार उपलब्ध नहीं होंगे और चयन से पहले उम्मीदवारों की पात्रता निर्धारित करने के लिए सशक्त सक्षम/ संबंधित निकाय द्वारा इसकी जांच की जाएगी। यह केवल विश्वविद्यालय पॉलिटेक्निक में सहायक प्रोफेसर (रसायन विज्ञान) के पद पर लागू होगा।" उपरोक्त निर्णय से याचिकाकर्ताओं को और अधिक नुकसान हुआ है और दोनों निर्णय न केवल आत्म-विरोधी थे बल्कि मनमाने भी थे।

9. प्रतिवादी-विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मोहम्मद सोहराब खान (उपरोक्त) के निर्णय का पालन किया गया और यदि कोई अस्पष्टता थी, तो उसे स्पष्ट कर दिया गया और एम.एससी. औद्योगिक रसायन विज्ञान को व्याख्याता (रसायन विज्ञान) के पद पर विचार के लिए एक "संबद्ध विषय" घोषित किया गया था। उन्होंने आगे बताया कि विज्ञापन संख्या 2/2022(टी) दिनांक 03.05.2022 और 4/2022(टी) दिनांक 06.08.2022 के अनुसरण में, एक चयन समिति की बैठक 06.12.2024 को हुई और दो उम्मीदवारों को सहायक व्याख्याता (रसायन विज्ञान) के पद पर नियुक्त किया गया और चूंकि उनकी नियुक्तियों को इस रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई है और वे भी पार्टी-प्रतिवादी नहीं हैं, इसलिए, इस रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं को कोई राहत नहीं दी जा सकती है।

10. उपरोक्त दलीलों के जवाब में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं ने कहा कि इस संबंध में कानून अच्छी तरह से तय है कि चूंकि चयनित उम्मीदवारों (दो की संख्या में) की नियुक्तियों को चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए, वर्तमान रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं हो सकती है, हालांकि, उन्होंने आगे कहा कि ए.एम.यू. को एक निर्देश दिया जाए कि जब भी कोई नया विज्ञापन प्रकाशित हो, तो स्थिति स्पष्ट की जाए, ताकि याचिकाकर्ता और इसी तरह की स्थिति वाले उम्मीदवार इसके लिए आवेदन कर सकें, कि यह विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए कि एम.एस.सी. औद्योगिक रसायन विज्ञान व्याख्याता रसायन विज्ञान के पद के लिए पात्रता है या नहीं और आगे यह मनमाना निर्देश कि ऐसे उम्मीदवारों की उम्मीदवारी पर सबसे अंत में विचार किया जाएगा, उसे विशेष रूप से हटा दिया जाना चाहिए।

11. मैंने उपरोक्त दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

12. जैसा कि ऊपर बताया गया है, उच्चतम न्यायालय ने मोहम्मद सोहराब खान, (उपरोक्त) के फैसले में इस मुद्दे पर विचार किया है कि व्याख्याता (रसायन विज्ञान) के पद पर नियुक्ति के लिए, ए.एम.यू. में एक उम्मीदवार जिसके पास औद्योगिक रसायन विज्ञान में एम.एससी. है, वह व्याख्याता एम.एससी. (रसायन विज्ञान) के पद के लिए पात्र होगा या नहीं और क्या विज्ञापन में किसी विशिष्ट घोषणा के बिना, ऐसे उम्मीदवारों को अधिक उपयुक्त माना जाएगा और, विचार के बाद, ए.एम.यू. की कार्रवाई की आलोचना की गई और एक निर्देश दिया गया कि भविष्य में विज्ञापन में बिना किसी अस्पष्टता के पात्रता स्पष्ट रूप से दिखाई देनी चाहिए।

13. हालांकि, ऐसा लगता है कि ए.एम.यू. ने मोहम्मद सोहराब खान के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले का पालन नहीं किया है। सोहराब खान (उपरोक्त) और बाद के विज्ञापनों में भी यह अस्पष्टता बनी रही हालांकि उन्होंने बाद में स्थिति साफ करने की कोशिश की कि, एक तरफ उन्होंने माना है कि एम.एस.सी. औद्योगिक रसायन विज्ञान "संबंधित विषय" के दायरे में आएगा, इसलिए इसे व्याख्याता (रसायन विज्ञान) के पद के लिए योग्यता माना गया, लेकिन, एक मनमाना फैसला लिया गया कि उनकी उम्मीदवारी पर तभी विचार किया जाएगा जब एम.एस.सी. (रसायन विज्ञान) वाले उम्मीदवार उपलब्ध नहीं होंगे या उपयुक्त नहीं पाए जाएंगे।

14. यह कार्रवाई साफ तौर पर मनमानी है। उन्होंने बाद में एक और विज्ञापन प्रकाशित किया और संबंधित/प्रासंगिक/संबद्ध विषय में 55% अंकों के साथ मास्टर डिग्री की पात्रता बताई, लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया कि एम.एस.सी. औद्योगिक रसायन विज्ञान, रसायन विज्ञान के उद्देश्य के लिए संबंध विषय होगा या नहीं, इसलिए, यह संभव है कि एम.एस.सी. औद्योगिक रसायन विज्ञान वाले कई उम्मीदवारों ने भाग न लेने का फैसला किया हो।

15. उच्चतम न्यायालय ने मोहम्मद सोहराब खान (उपरोक्त) मामले में बहुत स्पष्ट रूप से निर्देश दिया था कि यूनिवर्सिटी पद भरने के लिए आवश्यक योग्यता निर्धारित करेगी, जिसमें सटीक आवश्यक योग्यता बताई जाएगी, जिसमें संबंध विषय और विषय स्ट्रीम का उल्लेख किया जाएगा, जो उक्त पद को भरने के लिए आवेदन करने के लिए आवश्यक है, हालांकि, इस निर्देश का पालन नहीं किया गया और इसलिए अस्पष्टता दोहराई गई।

16. इस स्तर पर, कोर्ट ध्यान देता है कि इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान यानी पिछले 5 सालों में, बहुत कुछ बदल गया है और पद पहले ही भरे जा चुके हैं और चूंकि उनके चयन को चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए वर्तमान रिट याचिका में मांगी गई राहत बेकार हो गई है।

17. हालांकि, न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता की अंतिम दलील को संज्ञान में लिया है कि यह निर्देश दिया जाए कि न केवल उच्चतम न्यायालय के फैसले का अक्षरशः पालन किया जाए बल्कि ऐसी अस्पष्टता दोहराई न जाए।

18. उपरोक्त परिस्थितियों में, इस रिट याचिका का निपटारा इस निर्देश के साथ किया जाता है कि मोहम्मद सोहराब खान (उपरोक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय के फैसले का अक्षरशः पालन किया जाएगा। रजिस्ट्रार, ए.एम.यू. भविष्य में विज्ञापन प्रकाशित करते समय सावधान रहेंगे ताकि कोई अस्पष्टता पैदा न हो बल्कि ऐसी अस्पष्टता को दूर किया जाए यानी शब्दों का चुनाव सावधानी से किया जाए और अस्पष्ट शब्दों "संबंधित/प्रासंगिक/संबद्ध विषय" के बजाय, यूनिवर्सिटी को योग्यता के बारे में विशेष रूप से उल्लेख करना चाहिए ताकि सभी योग्य उम्मीदवार विज्ञापन में भाग ले सकें और किसी के साथ अन्याय न हो।

19. रजिस्ट्रार (अनुपालन) आवश्यक कार्रवाई करें।"

(2025) 3 ILRA 171

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए नं 634 of 2025

दिलीप कुमार सिंह राजपूत एवं अन्य

....याची

बनाम

स्टेट आफ यू.पी. एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अशोक खरे, श्री राधाकान्त ओझा (वरि. अधि.), श्री अनुराग त्रिपाठी, श्री शेवंदु ओझा, श्री प्रभाकर अवस्थी, श्री सीमांत सिंह, श्री रविन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव, श्री फूल चन्द्र सिंह, श्री भानु प्रताप सिंह, श्री अमित कुमार तिवारी, श्री राजेश कुमार वर्मा, श्री जैनेंद्र पाण्डेय, श्री कबीर तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

श्रीमती अर्चना सिंह, श्री संजय कुमार सिंह, श्री वी.पी. सिंह कछवाहा, श्री जय प्रकाश सिंह, श्री शशि प्रकाश राय, श्री अतुल कुमार शाही, श्री अभिषेक श्रीवास्तव, सी.एस.सी., श्री ए.के. नागवंशी, ए.सी.एस.सी., श्रीमती स्तुति मालवीय

अ) सेवा नियम - शिक्षा नीति - संवैधानिक मामले - शैक्षणिक संसाधन व्यक्तियों (ARP- Academic Resource Person) के चयन और कार्यकाल से संबंधित विवाद - ARP के चयन प्रक्रिया और कार्यकाल की वैधता - संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन - भारतीय संविधान - अनुच्छेद 14, 16 , उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम - समानता का

अधिकार - युक्तियुक्त वर्गीकरण - नीतिगत निर्णयों में न्यायिक हस्तक्षेप की सीमा - नीतिगत निर्णयों में न्यायालय तभी हस्तक्षेप करेगा जब वे मनमाने, तर्कहीन या संवैधानिक प्रावधानों के विपरीत हों। (पैरा - 26,27)

याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश के विभिन्न विद्यालयों में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत हैं - ARP के रूप में 3 वर्ष तक सेवा दे चुके हैं - शासनादेश दिनांक 22.10.2019 के तहत ARP के पदों का पुनर्गठन किया गया - जिसमें नए चयन प्रक्रिया के लिए पूर्व ARP को अयोग्य घोषित कर दिया गया। (पैरा 1, 10, 17)

निर्णय: याचिकाकर्ताओं का ARP पद पर पुनः चयन के लिए अयोग्य घोषित किया जाना संवैधानिक या विधिक दृष्टि से अमान्य नहीं है, क्योंकि यह नीतिगत निर्णय है जो शैक्षणिक उद्देश्यों को पूरा करता है। न्यायालय नीतिगत निर्णयों में तभी हस्तक्षेप करेगा जब वे मनमाने, तर्कहीन या संविधान के प्रावधानों के विपरीत हों। (पैरा 26, 27) (E-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. आंध्र प्रदेश राज्य प्रति डा० वी. बी. जे. चेलीकनी, २०२४ आई.एन.एस.सी. ८९४
2. दयाराम सरोज एवं अन्य प्रति उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य २००६ एस.सी.सी. आनलाइन ए.एल.एल. २२८८
3. ए.एच.व्हीलर एण्ड को०.प्रा०.लि०. एवं अन्य प्रति यूनिनियन आफ इण्डिया एवं अन्य : २००५ एस.सी.सी. आनलाइन ए.एल.एल २०६
4. श्रद्धा यादव एवं ६ अन्य प्रति उत्तर प्रदेश राज्य एवं १० अन्य ;२०२४ :ए.एच.सी.:४०८५

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

१. वर्तमान याचिकाओं के समूह के समस्त याचिकाकर्ता, बेसिक शिक्षा परिषद के अंतर्गत संचालित विभिन्न विद्यालयों में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत हैं।

२. अपर मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश शासन ने एक शासनादेश दिनांक २२ अक्टूबर २०१९ के द्वारा राज्य परियोजना निदेशक, समग्र शिक्षण अभियान, उत्तर प्रदेश (बेसिक शिक्षा अनुभाग- ५) को विषय "समग्र शिक्षा अभियान के अंतर्गत स्थापित न्याय पंचायत संसाधन केन्द्रों एवं ब्लाक संसाधन केन्द्रों के पुनर्गठन के संबंध में", संबोधित किया, जिसके द्वारा पूर्व में शासनादेश दिनांक ०२.०२.२०१९ को अवक्रमित करते हुए एक नवीन व्यवस्था लागू किए जाने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय को लेने का कारण पूर्व व्यवस्था से अपेक्षित परिणाम प्राप्त न होना था।

३. उपरोक्त शासनादेश के अंतर्गत पुनर्गठन की व्यवस्था व संरचना व 'अकादमिक रिसोर्स पर्सन' (ए.आर.पी.) के चयन हेतु निम्न आहता निर्धारित की गयी है:-

“ (१) पुर्नगठन की व्यवस्था व संरचना-

उक्त के परिप्रेक्ष्य में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों को अपेक्षानुरूप शैक्षिक सहयोगात्मक पर्यवेक्षण (Supportive Supervision) प्रदान करने के लिये नयी व्यवस्था में विषय विशेषज्ञों के समूह का पुर्नगठन किया जा रहा है।

१. प्रत्येक विकास खण्ड हेतु कुल ६ Academic Resource Person (ARP) जिसमें से ०५ विषय विशेषज्ञ शिक्षक, ०१ डायट मेंटर सदस्य होंगे, Academic Resource Persons (ARP) का चयन जनपद स्तर पर निर्धारित चयन प्रक्रिया के माध्यम से किया जाएगा। ०६ विशेषज्ञ सदस्यों का विवरण निम्नवत है:-

२. ०१ विशेषज्ञ सामाजिक अध्ययन विषय के (चयन हेतु कला संवर्ग में निर्धारित विषय-समाज शास्त्र, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थ शास्त्र, मनोविज्ञान, सैन्य विज्ञान, सांख्यिकी, कृषि)

३. ०१ विशेषज्ञ अंग्रेजी विषय के (चयन हेतु कला संवर्ग में स्नातक के अंतिम वर्ष में अंग्रेजी अनिवार्य हो।)

४.- ०१ विशेषज्ञ हिन्दी विषय के (चयन हेतु कला संवर्ग में स्नातक में अंतिम वर्ष में हिन्दी अनिवार्य हो)

५. ०१ विशेषज्ञ गणित विषय के (चयन हेतु भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित पी. सी. एम संवर्ग से अनिवार्य हो)

६. ०१ विशेषज्ञ विज्ञान विषय के (चयन हेतु जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान_जेड.बी सी. सवर्ग से अनिवार्य हो)

७. ०१ डायट मेंटर (संबंधित विकास खण्ड के लिये नामित पदेन Academic Resource Person (ARP)

८- अकादमिक संदर्भ समूह Academic Resource Group (ARG) के सदस्यों का चयन विद्यालयों को पूर्णकालिक सहयोगात्मक पर्यवेक्षण प्रदान करने एवं लर्निंग आउटकम के सापेक्ष बच्चों में अधिगम स्तर बढ़ाने के लिए किया जायेगा। इसके अतिरिक्त उनसे अन्य कार्य नहीं लिया जायेगा।

(२) Academic Resource Person (ARP) के चयन हेतु अर्हता:-

i. वांछित विषय में स्नातक के साथ अध्यापक प्रशिक्षण योग्यता हो।

ii. प्राथमिक/पूर्व माध्यमिक विद्यालय में न्यूनतम ०५ वर्ष का शिक्षण अनुभव हो।

iii. सेवा निवृत्त होने में न्यूनतम १० वर्ष शेष हो।

iv. किसी भी प्रकार की जांच गतिमान न हो और न ही पूर्व में किसी प्रकार की अनुशासनात्मक कार्यवाही की गयी हो।”

४. उक्त शासनादेश के अनुसार ए.आर.पी. के चयन के मानदण्ड व इनके कार्यकाल व अन्य महत्वपूर्ण निर्देश निम्न हैं:-

“ (६) चयन हेतु मापदण्ड:-

Academic Resource Person (ARP) के चयन हेतु निम्नवत अंक निर्धारित है:-

क्र०सं०	विवरण	अंक
१	विषयवार लिखित परीक्षा	६० अंक
२	माइक्रो टीचिंग/शिक्षण प्रदर्शन (१० से १५ मिनट प्रति प्रतिभागी- श्रोताओं को बाँधे रखना, संतुलित दृष्टिकोण, सहज एवम् तार्किक प्रवाह, एक अच्छे सम्प्रेषक के रूप में इत्यादि)	३० अंक
३	साक्षात्कार (विषयगत जानकारी, स्वप्रेरण, Leadership, Commitment, प्रारंभिक शिक्षा के प्रति विजन इत्यादि)	१० अंक
	कुल योग	१०० अंक

१. लिखित परीक्षा में ६० प्रतिशत या ६० प्रतिशत से ऊपर अंक पाने वाले अभ्यर्थी ही माइक्रो टीचिंग/शिक्षण प्रदर्शन के लिये क्वालिफाई करेंगे।

२. माइक्रो टीचिंग/शिक्षण प्रदर्शन में ६० प्रतिशत या ६० प्रतिशत से ऊपर अंक पाने वाले अभ्यर्थी ही साक्षात्कार के लिये क्वालिफाई करेंगे।

३. साक्षात्कार में ६० प्रतिशत या ६० प्रतिशत से ऊपर अंक पाने वाले अभ्यर्थी ही फाइनल चयन हेतु क्वालिफाई करेंगे।

४. लिखित परीक्षा, माइक्रो टीचिंग शिक्षण प्रदर्शन तथा साक्षात्कार के कुल योग को जोड़ने के बाद जिन अभ्यर्थियों का नम्बर ६० प्रतिशत या ६० प्रतिशत से ऊपर होगा उन्हें Academic Resource Person (ARP) के चयन के लिये मेरिट लिस्ट बनाई जाये।

५. यदि जनपद में रिक्त पदों के सापेक्ष अधिक अभ्यर्थी क्वालिफाई करते हैं तो उस स्थिति में मेरिट के आधार पर चयन किया जाये। शेष क्वालिफाई करने वाले अभ्यर्थियों में से विषयवार अधिकतम ०५ अभ्यर्थियों की प्रतीक्षा सूची बनाई जाये जो ६ माह तक वैध होगी।

६. चयन के उपरान्त यदि कुछ पद रिक्त रह जाते हैं तो ऐसी दशा में उपरोक्तानुसार पुनः चयन प्रक्रिया सुनिश्चित करते हुए शत प्रतिशत नियुक्तियां सुनिश्चित की जायें।

७- साक्षात्कार सम्पन्न होने के दो दिवस के अन्दर चयनित अभ्यर्थियों की सूची डायट एवं जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर चस्पा की जाये।

८- चयनित Academic Resource Person (ARP) का पदस्थापन काउंसलिंग के माध्यम से मेरिट वरिष्ठता के क्रम में किया जायेगा। पदस्थापन का कार्य सूची प्रकाशन की अगली तिथि को अनिवार्य रूप से किया जाना होगा।

(७) Academic Resource Person (ARP) का कार्यकाल एवं अन्य निर्देश:-

I. Academic Resource Person (ARP) का कार्यकाल ०१ वर्ष हेतु निर्धारित होगा। प्रत्येक वर्ष परफारमेन्स अप्रैजल के आधार पर जनपदीय चयन समिति द्वारा अनुमोदन के पश्चात् इनका नवीनीकरण किया जायेगा। अधिकतम ०३ वर्ष के पश्चात् पुनः चयन की प्रक्रिया की जायेगी।

II. विद्यालयों का सहयोगात्मक पर्यवेक्षण (Supportive Supervision) करने हेतु प्रत्येक Academic Resource Person (ARP) को समय शिक्षा के वित्तीय नियमों/अनुमोदन के आधार पर Academic Resource Person को रु. २५००.०० प्रतिमाह एवम डायट मेन्टर को रु. १०००.०० प्रतिमाह मोबिलिटी वाहन भत्ता जनपद स्तर से देय होगा।

III. Academic Resource Person (ARP) का समुचित वार्षिक मूल्यांकन (Performance appraisal) की व्यवस्था की जायेगी। मूल्यांकन हेतु जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी एवं प्राचार्य, डायट द्वारा गठित समिति द्वारा की जायेगी। समिति द्वारा आख्या प्रस्तुत करने के उपरांत मुख्य विकास अधिकारी द्वारा स्वीकृति दी जायेगी।

IV. Academic Resource Person (ARP) के वार्षिक मूल्यांकन में संबंधित ब्लाक का मेन्टर एक सदस्य के रूप में सम्मिलित होगा।

V Academic Resource Person (ARP) पदस्थापन के उपरान्त जिला परियोजना कार्यालय में कार्यभार ग्रहण करेंगे। पदस्थापन उपरान्त इनका कार्यक्षेत्र सम्बन्धित ब्लाक निर्धारित होगा।

VI Academic Resource Person (ARP) की कार्य अवधि मुख्यरूप से विद्यालय समयावधि होगी किसी कार्य की आवश्यकता पर विद्यालय समयावधि के बाद ही ब्लाक संसाधन केन्द्र पा जा सकेंगे।

VII. Academic Resource Person (ARP) द्वारा नियोजित कार्य योजना के अंतर्गत किये जाने वाले कार्य के लिये संकुल का मुख्य विद्यालय अथवा संकुल का अन्य विद्यालय (जहां पर अतिरिक्त कक्षा कक्षा/स्थान हो) मुख्यतौर पर होगा।

VIII. Academic Resource Person (ARP) की नियमित उपस्थिति उनके द्वारा प्रेषित सपोर्टिव सुपरविजन रिपोर्ट प्रेरणा एप पर अपलोड किये जाने से मानी जाये।

IX. Academic Resource Person (ARP) अपने विषय से संबंधित प्रशिक्षणों में ही प्रतिभागी। प्रशिक्षक के रूप में नियोजित किये जायेगे।”

५. उक्त शासनादेश के द्वारा ए.आर.पी के कार्य व दायित्व भी निर्धारित किए गए हैं, जो निम्न हैं:-

“(९) Academic Resource Person (ARP) के कार्य व दायित्व:-

१. Academic Resource Person (ARP) आगामी एक माह की कार्ययोजना एवं भ्रमण कार्यक्रम जिला समन्वयक प्रशिक्षण के माध्यम से जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी एवं डायट प्राचार्य को माह की २८ तारीख तक अवश्य प्रेषित करेंगे तथा कार्ययोजना के अनुसार क्रियान्वयन सुनिश्चित करेंगे। यह कार्ययोजना वर्तमान विद्यालयों स्थितियों व उपलब्ध अकादमिक जानकारीयों व आंकड़ों के आधार पर बनायेगे। उसी प्रकार मासिक कार्ययोजना के आधार पर उपलब्धि आख्या (Achievement Report) उपर्युक्त उल्लिखित प्रक्रिया आगामी माह की ५ तारीख तक सम्बन्धित को प्रेषित करेंगे।

२. प्रत्येक Academic Resource Person (ARP) द्वारा प्रतिमाह न्यूनतम ३० विद्यालयों (डायट मेन्टर द्वारा १० विद्यालय) (के.जी.बी.वी. में अधिकतम हो बार) में 'प्रेरणा' ऐप के माध्यम से आनलाईन सपोर्टिव सुपरविजन सुनिश्चित करेंगे।

३. लर्निंग आउटकम पर आधारित बच्चों का अधिगम स्तर आकलन का डाटा फीडिंग पूर्ण करवाना तथा विद्यालयवार/ छात्रवार उपलब्धि आख्या अपने पास सुरक्षित रखेंगे।

४. विद्यालयों का सपोर्टिव सुपरविजन करने के दौरान लर्निंग आउटकम पर आधारित बच्चों का अधिगम स्तर आकलन के आधार पर सबसे कम परफारमेंस वाले ५ बच्चों से बातचीत कर प्रगति का विश्लेषण करेंगे एवं सुधार हेतु शिक्षक/प्रधानाध्यापक से वार्ता कर कार्ययोजना बनवायेंगे। (अधिगम स्तर आकलन के आधार पर कम उपलब्धि वाले बच्चों को यह एहसास न होने दें कि उनका परफारमेंस कम है)

५. दीक्षा ऐप के प्रयोग हेतु निरन्तर समीक्षा कोगे। दीक्षा ऐप शिक्षण सामग्री/ गतिविधि/आडियो विजुअल विषय वस्तु को देख व समझकर आत्मसात करने एवं कक्षा शिक्षण में प्रयोग कर बच्चों के सीखने की प्रक्रिया को आनन्दकारी बनाने हेतु शिक्षक को प्रेरित करेंगे।

६. दीक्षा ऐप में आडियो विजुअल डिजिटल सामग्री के Adoption एवं Viewing Time बढ़ाने हेतु शिक्षकों का अभिमुखकरण करना एवं उन्हें प्रेरित करेंगे।

७. जनपद में गठित एस०आर०जी०, खण्ड शिक्षा अधिकारी, डायट एवं डी०पी०ओ० के साथ समन्वय स्थापित करेंगे।

८. पर्यवेक्षण के समय विद्यालय की शैक्षणिक गतिविधियों जैसे विद्यालय में बच्चों को प्रार्थना सभा, बैठक व्यवस्थाए समय-सारिणी का प्रयोग, बाल संसद/मीना मंच, पुस्तकालय, खेलकूद आदि गतिविधियों का अवलोकन एवं माडल शिक्षण का प्रदर्शन (डिमॉन्स्ट्रेशन) करेंगे।

९. प्रत्येक Academic Resource Person (ARP) के पास अपने विषय से सम्बन्धित एक किट होगा, जिसमें विषय से सम्बन्धित टी.एल.एम., साहित्य, पाठ्यक्रम, लर्निंग आउटकम तथा कुछ ऐसी कच्ची सामग्री एवं उपकरण होंगे जिनसे वह आवश्यकतानुसार मौके पर अपनी विषयवस्तु के सापेक्ष कुछ टी.एल.एम./सामग्री तैयार कर सके।

१०. विद्यालय भ्रमण के दौरान विभिन्न महत्वपूर्ण संवेदनशील मुद्दे जैसे लैंगिक, समता समानता, जीवन कौशल शिक्षा, पर्यावरण संवेदना, सड़क सुरक्षा, आपदा प्रबन्धन, आत्मरक्षा, बाल अधिकार आदि विषय पर विचार विमर्श के द्वारा शिक्षकों को संवेदनशील बनायेंगे।

११. विद्यालय भ्रमण उपरान्त प्रधानाध्यापक एवं शिक्षकों के साथ चर्चा करेंगे एवं पर्यवेक्षण पंजिका में अपने द्वारा प्रदान किये गये शैक्षिक अनुसमर्थन एवं आगामी कार्ययोजना के बिन्दुओं को अंकित करेंगे तथा प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक साथी हस्ताक्षर उपरान्त इसकी फोटो खींचकर प्रेरणा ऐप पर अपलोड करेंगे। अगले भ्रमण में यह सुनिश्चित करेंगे कि दिए गए सुझावों व तय की गयी कार्ययोजना का विद्यालय द्वारा अनुपालन किया गया अथवा नहीं।

१२. विद्यालय स्तर पर छात्र प्रोफाइल व सतत व्यापक मूल्यांकन प्रपत्र भरने में आ रही कठिनायों का निदान करेंगे।

१३. विद्यालय भ्रमण के दौरान शिक्षकों द्वारा किए जा रहे नवाचारों या बेहतर शिक्षण-अधिगम प्रयासों अभिलेखीकरण करेंगे तथा डायट, डी.पी.ओ. व राज्य परियोजना कार्यालय को प्रेषित करेंगे।

१४. कक्षा अवलोकन/शिक्षक से बातचीत के आधार पर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में गुणवत्ता सुधार हेतु शिक्षकों की आवश्यकता आधारित अभिमुखीकरण/प्रशिक्षण करेंगे।

१५. ब्लाक स्तर पर नवाचारी व बेहतर शिक्षण अधिगम कार्य करने वाले शिक्षकों का समूह (पीयर लर्निंग कम्युनिटी-PLC) विकसित करेंगे तथा नवाचारी शिक्षकों द्वारा किये गये कार्यों को विकास खण्ड के अन्य शिक्षकों के साथ साझा करेंगे।

१६. बी.आर.सी. स्तर पर होने वाली प्रधानाध्यापकों की मासिक बैठकों में Academic Resource Person (ARP) प्रतिभाग करेंगे तथा विद्यालय स्तरीय अकादमिक उपलब्धियों तथा चुनौतियों से उन्हें अवगत करायेंगे तथा इस संबंध में प्राप्त आंकड़ों के आधार पर एक कार्ययोजना विकसित करायेंगे।

१७. जनपद में शैक्षिक गुणवत्ता में वृद्धि एवं शैक्षिक वातावरण के निर्माण हेतु कार्यशाला प्रशिक्षण, गोष्ठी, सेमिनार, प्रतियोगिता, बैठक, रैली इत्यादि का आयोजन करेंगे।”

६. समस्त याचिकाकर्ता उपरोक्त वर्णित चयन प्रक्रिया में सम्मिलित हुए और ए.आर.पी. के पद पर कार्यालय आदेश दिनांक १३.०१.२०२० द्वारा नियुक्त हुए और उनको अलग-अलग जिलों में अलग-अलग विकास खण्ड आवंटित हुए।

७. नियुक्ति आदेश के अनुसार उनकी नियुक्ति अस्थाई व प्रारम्भिक कार्यकाल ०१ वर्ष निर्धारित किया गया एवं परफार्मेंस अप्रेसल के अनुसार, चयन समिति के अनुमोदन के पश्चात, प्रत्येक वर्ष नवीनीकरण किए जाने का प्रावधान भी रखा गया एवं अधिकतम कार्यकाल ०३ वर्ष निर्धारित किया गया।

८. सभी याचिकाकर्ताओं का कथन है कि उनके परफार्मेंस अप्रेसल पर हर वर्ष उनकी नियुक्ति का नवीनीकरण ए.आर.पी. के पद पर किया गया और उन्होंने सफलतापूर्वक ३ वर्ष पूर्ण किये एवं वर्तमान में भी कार्य कर रहे हैं अर्थात् वर्तमान तक करीब ५ वर्ष का कार्यकाल पूर्ण कर लिया है।

९. अब नवीन नियुक्ति की प्रक्रिया प्रारंभ होने वाली है। इस स्तर पर प्रमुख सचिव उत्तर प्रदेश शासन के आदेश दिनांक १०-१०-२०२४ के माध्यम से एक शासनादेश, विषय "समग्र शिक्षा के अन्तर्गत स्थापित न्याय पंचायत संसाधन केन्द्रों एवं ब्लाक संसाधन केन्द्रों के पुर्नगठन हेतु निर्गत शासनादेश के क्रम में अकादमिक रिसोर्स पर्सन्स (ए०आर०पी०) के कार्यकाल की अवधि विस्तारित किये जाने के सम्बन्ध में" निर्गत किया गया, जिसके प्रमुख अंश निम्न हैं:-

“२- इस संबंध में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि शासन स्तर पर सम्यक विचारोपरान्त विषयगत प्रकरण में निम्नवत निर्णय लिया गया है:-

१) शासनादेश संख्या-९०२/६८-५-२०१९ दिनांक २२ अक्टूबर, २०१९ एवं शासनादेश संख्या-२८४७/६८-५-२०२२ दिनांक ०५ जनवरी, २०२३ के क्रम में अकादमिक रिसोर्स पर्सन्स (ए०आर०पी०) के कार्यकाल की अवधि माह मार्च, २०२५ तक विस्तारित किये जाने की अनुमति प्रदान की जाती है। ताकि इनके द्वारा विकास खण्ड के १० विद्यालयों को "निपुण विद्यालय" के रूप में विकसित किये जाने का लक्ष्य सुनियोजित ढंग से प्राप्त किया जा सके। उक्त सेवा अवधि अर्थात् दिनांक ३१ मार्च, २०२५ को जिन ए०आर०पी० का कार्यकाल ०३ वर्ष या इससे अधिक हो जायेगा, उन ए०आर०पी० का कार्यकाल स्वतः समाप्त हो जायेगा तथा ए०आर०पी० चयन हेतु पुनः नवीन चयन प्रक्रिया संपादित की जायेगी।

(२) वर्तमान शैक्षिक सत्र २०२४-२५ (अर्थात् दिनांक ३१ मार्च, २०२५ तक) के उपरान्त शासनादेश संख्या-९०२/६८-५-२०१९ दिनांक २२ अक्टूबर २०१९ के परिप्रेक्ष्य में ए०आर०पी० का कार्यकाल ०१ वर्ष हेतु निर्धारित होगा तथा प्रत्येक वर्ष ए०आर०पी० का परफारमेन्स अप्रेजल के आधार पर जनपदीय चयन समिति द्वारा अनुमोदन के पश्चात् इनका नवीनीकरण किया जायेगा। अधिकतम ०३ वर्ष के पश्चात् पुनः नवीन चयन की प्रक्रिया अपनाई जायेगी।

(३) ए०आर०पी० के रूप में अधिकतम ०३ वर्ष का कार्यकाल पूर्ण करने के उपरान्त पूर्व में कार्य कर चुके कोई भी अकादमिक रिसोर्स पर्सन्स भविष्य में अकादमिक रिसोर्स पर्सन के पद पर चयन के लिए अनर्ह होंगे।

(४) अकादमिक रिसोर्स पर्सन्स के चयन संबंधी अन्य दिशा निर्देश शासनादेश संख्या-९०२/६८-५-२०१९ दिनांक २२ अक्टूबर, २०१९ में उल्लिखित व्यवस्थानुसार यथावत् रहेंगे।"

१०. समस्त याचिकाकर्ता उपरोक्त प्रस्तर २(३) से क्षुब्ध हैं क्योंकि उन्होंने ३ वर्ष से अधिक का ए.आर.पी. के पद पर कार्यकाल पूर्ण कर लिया है, अतः अब वे नवीन नियुक्ति की प्रक्रिया में भाग नहीं ले पाएंगे, क्योंकि उपरोक्त प्रस्तर द्वारा उन्हें चयन के लिए अनर्ह घोषित कर दिया है।

११. वर्तमान सभी याचिकाओं में उपरोक्त खण्ड २(३) को निरस्त करने की प्रार्थना यह कहते हुये की गयी है कि उनको अनर्ह घोषित करना एक मनमाना आदेश है।

१२. याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री अशोक खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा सहायक श्री अनुराग त्रिपाठी, अधिवक्ता; श्री राधा कान्त ओझा; वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा सहायक श्री शिवेन्दू ओझा, अधिवक्ता तथा सर्व श्री प्रभाकर अवस्थी; श्री सीमांत सिंह; श्री रवींद्र प्रकाश श्रीवास्तव; श्री फूल चंद्र सिंह; श्री भानु प्रताप सिंह; श्री अमित कुमार तिवारी; श्री राजेश कुमार वर्मा एवं श्री जैनेंद्र पांडे, कबीर तिवारी, अधिवक्तागणों ने अपना पक्ष रखा तथा उनके द्वारा दिए गए तर्क संक्षेप में निम्न हैं:-

(क) पूर्व निर्धारित चयन व्यवस्था में ऐसी कोई अनर्हता वर्णित नहीं की गई थी।

(ख) पूर्व में ए.आर.पी. का कार्यकाल ३ वर्ष पूर्ण करने के बाद भविष्य में उपरोक्त पद के चयन के लिए अनर्ह कारित का आदेश पूर्णतः मनमाना है एवं भारत के संविधान के अनुच्छेद १४ का पूर्ण रूपेण उल्लंघन है।

(ग) याचिकाकर्ता चयन का अधिकार तो नहीं रखते हैं, परंतु चयन प्रक्रिया में भागीदार होने का अधिकार अवश्य रखते हैं और यह अधिकार मनमाने रूप से समाप्त नहीं किया जा सकता।

(घ) आक्षेपित प्रस्तर २(३), भारतीय संविधान के अनुच्छेद १६ (लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता) का भी उल्लंघन करता है।

(ङ) याचिकाकर्ताओं ने ए.आर.पी. के पद पर ३ वर्ष से अधिक कार्य किया और उनके विरुद्ध कार्य संबंधी कोई भी शिकायत नहीं की गई। उनको मनमाने आदेश द्वारा नवीन चयन प्रक्रिया के लिए अनर्ह घोषित करना 'वैध अपेक्षा' के सिद्धान्त के भी विपरीत है।

(च) याचिकाकर्ताओं के ए.आर.पी. पर ३ वर्षों से ज्यादा कार्य करने में हुए अनुभव का लाभ देने के स्थान पर उनको चयन के लिए अनर्ह घोषित करना न्याय विरुद्ध है।

(छ) ए.आर.पी. के चयन की प्रक्रिया का निर्धारण, जैसा प्रारम्भिक स्तर पर किया गया था, उसके अनुसार कोई भी अध्यापक वर्णित शर्तें पूर्ण होने के बाद, भाग ले सकता है। चयन के मानदण्ड के अनुसार, प्रत्येक प्रतियोगी को लिखित परीक्षा, शिक्षण प्रदर्शन व साक्षात्कार का भागीदार बनना होगा, अतः यह एक मुक्त प्रतियोगिता है। याचिकाकर्ताओं को उनके पूर्व अनुभवों के आधार पर कोई महत्व नहीं दिया जा रहा है। यदि उन्हें भी अन्य प्रतियोगियों की भांति ही चयन प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाता है तो इससे किसी दूसरे प्रतियोगी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(ज) संविधान के अनुच्छेद १४ के अंतर्गत अनुमय वर्गीकरण के लिए दो कारकों का होना आवश्यक है। पहला, वर्गीकरण बोधगम्य विभेद पर आधारित होना चाहिए व दूसरा, विभेद, वर्गीकरण के उद्देश्य से तार्किक रूप से संबंधित होना चाहिए। परंतु वर्तमान तथ्यों में विभेद, उपरोक्त दोनों कारकों का पालन नहीं करता है अतः निरस्त किया जाना चाहिए।

(झ) अधिवक्ताओं ने न्यायालय का ध्यान वार्षिक शिक्षा स्थिति रिपोर्ट (ग्रामीण), २०२४, (Annual Status of Education Report, (Rural), २०२४) की ओर आकर्षित यह कहते हुए कराया कि गत वर्षों में ए.आर.पी. के सफल कार्यों के कारण अच्छे परिणाम आये हैं, एवं छात्र-छात्राओं के मूलभूत शिक्षण स्तर में संतोषजनक सुधार आया है। अतः अगर वह मुक्त प्रतियोगिता में भाग लेकर पुनः सफल होते हैं तो वह अपने पूर्व अनुभवों के कारण और अधिक अच्छे परिणाम लाने में सफल होंगे।

(ञ) अधिवक्ताओं ने अपर मुख्य सचिव द्वारा पारित कार्यालय जाप दिनांक ०६.०२.२०२५ पर भी ध्यान यह कहते हुए आकर्षित कराया कि यह आदेश इस न्यायालय के द्वारा पारित आदेश दिनांक २३.०१.२०२५ के अनुपालन में पारित किया गया था जिसमें उपरोक्त वर्गीकरण के उद्देश्य को वर्णित किया गया है, जिसे निम्न उद्धर्णित किया जा रहा है:-

"उपर्युक्त संदर्भित शासनादेश दिनांक १० अक्टूबर, २०२४ में उल्लिखित निर्देशानुसार कार्यवाही सुनिश्चित कराये जाने के लिये राज्य परियोजना कार्यालय के पत्रांक-गुण०वि०/ए०आर०पी०/ ६७७८/२०२४-२५ दिनांक १८ अक्टूबर, २०२४ द्वारा जनपदों को दिशा निर्देश निर्गत किये गये।

(४) शासनादेश संख्या-६८-५०९९/१४३/२०२४-अनुभाग-५ दिनांक १० अक्टूबर, २०२४ में प्रदत्त निर्देशों एवं उल्लिखित प्रक्रियानुसार आगामी शैक्षिक सत्र (२०२५-२६) के पूर्व जनपद में अकादमिक रिसोर्स पर्सन्स के चयन संबंधी कार्यवाही नियमानुसार दिनांक १५ मार्च, २०२५ तक पूर्ण कराये जाने के लिये राज्य परियोजना कार्यालय के पत्रांक-गुण०वि०/ए०आर०पी०/९३३३ /२०२४-२५ दिनांक १५ जनवरी, २०२५ द्वारा जनपदों को दिशा-निर्देश निर्गत किये गये हैं।

(५) "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२०" एवं नेशनल कॅरिकुलम फ्रेमवर्क (NCF-FS) के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा निपुण भारत मिशन प्री-प्राइमरी (बालवाटिका) से कक्षा-२ (अर्थात् ०८ वर्ष की आयु) तक लागू किये जाने का निर्णय लिया गया है। तत्क्रम में शासनादेश संख्या-३६/२०२४/१/७९७९६२/२०२४-६८-५०९९/४९७/२०२४, बेसिक शिक्षा अनुभाग-५, दिनांक १८ नवम्बर, २०२४ द्वारा 'निपुण भारत मिशन' के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु संशोधित निपुण लक्ष्य एवं गतिविधियों के क्रियान्वयन हेतु निर्देश निर्गत किये गये हैं।

निपुण भारत मिशन के अन्तर्गत शिक्षा की गुणवत्ता पर विशेष बल देते हुये बच्चों में बुनियादी भाषायी एवं गणितीय दक्षताओं को प्राप्त कराने के लिये 'संदर्शिका' के माध्यम से सुनियोजित शिक्षण कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया जा रहा है तथा विभिन्न शैक्षणिक सामग्री यथा-संदर्शिका, प्रिंटरिच सामग्री, टी०एल०एम०, गणित किट, लाइब्रेरी बुक्स, शिक्षक हैंडआउट्स तथा 'तालिका' समस्त परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों को उपलब्ध करायी गयी हैं। इसके साथ ही परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण भी प्रदान किया गया है। निपुण भारत मिशन के अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किये जाने हेतु समस्त शिक्षकों एवं सभी हितधारकों के निरन्तर, समन्वित एवं समर्पित प्रयास की आवश्यकता है, जिसके लिये विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियां क्रियान्वित की जा रही हैं।

(६) राष्ट्रीय शिक्षा नीति- २०२० में शिक्षकों के Continuous Professional Development पर विशेष बल दिया गया है। अवगत कराना है कि उ०प्र० बेसिक शिक्षा परिषद के अधीन परिषदीय विद्यालयों में ४.३४ लाख से अधिक शिक्षक कार्यरत हैं, जिन्हें ऑनसाइट शैक्षिक सपोर्ट तथा सहयोगात्मक पर्यवेक्षण हेतु प्रत्येक विकासखण्ड में ०५ अकादमिक रिसोर्स पर्सन की व्यवस्था की गयी है। विभाग चरणबद्ध रूप से अधिक संख्या में शिक्षकों को ए०आर०पी० के रूप में कार्य करने का अवसर प्रदान करना चाहता है, जिससे कि अधिक से अधिक शिक्षकों का चरणबद्ध रूप से विशेष क्षमता संवर्द्धन करते हुये सकारात्मक शैक्षणिक वातावरण का सृजन किया जा सके। विभाग में शिक्षकों की संख्या के दृष्टिगत उनके सतत् क्षमता संवर्द्धन हेतु विशेष प्रयास आवश्यक हैं ताकि पियर लर्निंग करते हुये लक्षित हस्तक्षेप सुनिश्चित किये जा सकें।

(७) विद्यालयों में मेण्टरिंग के दो पक्ष हैं-ए०आर०पी० के माध्यम से विद्यालयों का सहयोगात्मक पर्यवेक्षण किया जाना तथा शिक्षक संकुल बैठकों के माध्यम से पियर लर्निंग को बढ़ावा दिया जाना। सुनियोजित कक्षा-शिक्षण, शैक्षणिक चुनौतियों पर चर्चा, शिक्षकों को प्रभावी फीडबैक प्रदान करने एवं उत्कृष्ट तथा नवाचारी शैक्षिक प्रथाओं को साझा किये जाने के साथ ही अकादमिक गतिविधियों के संबंध में विचार-विमर्श करने के लिये शिक्षक संकुल की एजेण्डा आधारित मासिक बैठकें आयोजित की जाती हैं। उक्त बैठकों में अकादमिक रिसोर्स पर्सन (ए०आर०पी०) मेण्टरिंग के समय के प्राप्त अनुभवों को शिक्षकों के साथ साझा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अर्जित अनुभव, विशेषज्ञता एवं समर्पित भाव से अपने मूल विद्यालय को आदर्श विद्यालय के रूप में विकसित कर उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं।

(८) यह शासनादेश एक समान सभी शिक्षकों पर लागू है। इस संबंध में यह बिन्दु विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है कि दीर्घ अवधि तक मूल विद्यालय एवं मूल शिक्षण कार्य से पृथक रहने से शिक्षकों का बच्चों एवं स्थानीय समुदाय के साथ आत्मीय रिश्ता प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। अतः एक निश्चित अवधि के उपरान्त मेण्टरिंग का कार्य कर रहे शिक्षकों को विद्यालय में सामान्य शिक्षण कार्य हेतु नियोजित रखा जाना आवश्यक है, जिससे कि वास्तविक कक्षा शिक्षण, पाठ्यक्रम की योजना और क्रियान्वयन, सब्जेक्ट नॉलेज, कक्षा प्रबन्धन, विद्यालय प्रबन्धन आदि महत्वपूर्ण एवं मुख्य शैक्षणिक तथा विद्यालयीय पहलुओं से अद्यावधिक रह सकें।

इसके अतिरिक्त यह भी उद्देश्य है कि विद्यालयों में अध्यापन कार्य कर रहे अन्य योग्य शिक्षकों को भी ए०आर०पी० के पद पर मेण्टरिंग कार्य एवं सहयोगात्मक पर्यवेक्षण संबंधी कार्य करने के अवसर उपलब्ध हो सकें। यह तभी संभव है जब चरणबद्ध रूप से अधिक से अधिक शिक्षकों को मेण्टर्स के रूप में कार्य करने का अवसर प्रदान किया जा सके, जिससे कि बेहतर शिक्षण संस्कृति को बढ़ावा दिया जा सके।"

(ट) अधिवक्ताओं ने उपरोक्त वर्णित कारणों को निराधार बताया कि ५-६ वर्ष की अवधि को दीर्घ अवधि नहीं माना जा सकता। यह प्रक्रिया स्थाई नहीं है तथा कुछ वर्षों के उपरांत सभी ए.आर.पी. को वापस शिक्षण कार्य पर ही जाना होगा। मात्र याचिकाकर्ताओं को चयन प्रक्रिया से अनर्ह करने से, अन्य योग्य शिक्षकों को ए.आर.पी. के पद में ट्रेनिंग कार्य एवं सहयोगात्मक पर्यवेक्षण संबंधी कार्य करने के अवसर उपलब्ध नहीं होंगे, यह निर्धारित करने के पीछे कोई युक्तियुक्त कारण नहीं है। यह स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के उद्देश्य के भी विपरीत है। विद्वान अधिवक्ताओं ने उच्चतम न्यायालय द्वारा आंध्र प्रदेश राज्य प्रति डा० राव वी. बी. जे. चेलीकनी, २०२४ आई.एन.एस.सी. ८९४, का उद्धरण किया कि किसी भी विभेद का उद्देश्य विसंगत, अनुचित एवं अन्यायपूर्ण नहीं होना चाहिए। विद्वान अधिवक्ताओं ने निम्न विधि दृष्टांगों पर भी बल दिया: दयाराम सरोज एवं अन्य प्रति उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य : २००६ एस.सी.सी. आनलाइन ए.एल.एल. २२८८; ए.एच.व्हीलर एण्ड को०.प्रा०.लि०. एवं अन्य प्रति यूनियन आफ इण्डिया एवं अन्य: २००५ एस.सी.सी. आनलाइन ए.एल.एल. २०६;

१३. प्रतिवादीगणों की ओर से श्रीमती अर्चना सिंह; श्री संजय कुमार सिंह; श्री वी.पी.सिंह कछवाह; श्री जय प्रकाश सिंह; श्री शशि प्रकाश राय; श्री अतुल कुमार शाही, अधिवक्तागण एवं श्री अभिषेक श्रीवास्तव, मुख्य स्थायी अधिवक्ता; ए.के.सिंह नागवंशी, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता; एवं, श्रीमती श्रुती मालवीया, ब्रीफ होल्डर, नें पक्ष रखा और लिखित बहस भी दाखिल की। उनके द्वारा दिए गए तर्क संक्षेप में निम्न हैं:-

क. "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२०" एवं राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (एनसीएफ-एफएस) के परिपेक्ष में शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्री-प्राइमरी (बालवाटिका) से कक्षा-२ तक (अर्थात् ०८ वर्ष की आयु तक) निपुण भारत मिशन को क्रियान्वित किये जाने का निर्णय लिया गया है। इस सम्बन्ध में शासनादेश संख्या-३६/२०२४/१/७९७९६२/ २०२४- ६८-५०९९/४९७/२०२४, बेसिक शिक्षा अनुभाग-५, दिनांकित १८ नवम्बर, २०२४ द्वारा 'निपुण भारत मिशन' के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु पुनरीक्षित निपुण भारत मिशन के लक्ष्यों एवं क्रियाकलापों के क्रियान्वयन हेतु निर्देश जारी किये गये हैं।

ख. निपुण भारत मिशन के अंतर्गत बच्चों को बुनियादी भाषायी एवं गणितीय कौशल प्राप्त कराने के लिए 'संदर्शिका' के माध्यम से एक संरचित शिक्षण पद्धति लागू की जा रही है, जिसमें शिक्षा की गुणवत्ता पर विशेष बल दिया गया है। सभी परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में संदर्शिका, चित्र बहुल सामग्री, टीएलएम, गणित किट, पुस्तकालय की पुस्तकें, शिक्षक हैंडआउट और 'तालिका' जैसी विभिन्न शैक्षिक सामग्री उपलब्ध कराई गई है। निपुण भारत मिशन के तहत निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सभी शिक्षकों और सभी हितधारकों के निरंतर, समन्वित और समर्पित प्रयासों की आवश्यकता है, जिसके लिए विभिन्न शैक्षिक गतिविधियों को लागू किया जा रहा है।

ग. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२० में शिक्षकों के सतत वृत्तिक विकास पर विशेष बल दिया गया है। उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद के अन्तर्गत परिषदीय विद्यालयों में ०४ लाख से अधिक शिक्षक कार्यरत हैं, जिनके लिए यथास्थान शैक्षिक सहायता एवं सहयोगी पर्यवेक्षण हेतु प्रत्येक विकास खण्ड में ०५ एकेडमिक रिसोर्स पर्सन की व्यवस्था की गई है। विभाग चरणबद्ध तरीके से अधिकाधिक संख्या में शिक्षकों को ए.आर.पी. के रूप में कार्य करने का अवसर प्रदान करना चाहता है, जिससे शिक्षकों की क्षमता निर्माण में अधिकाधिक वृद्धि हो सके।

घ. विद्यालयों में मार्गदर्शन के दो पहलू हैं- ए.आर.पी. के माध्यम से विद्यालयों का सहायक पर्यवेक्षण तथा शिक्षक संकुल बैठकों के माध्यम से सहकर्मी शिक्षण को बढ़ावा देना। सुनियोजित कक्षा शिक्षण, शैक्षिक चुनौतियों पर चर्चा, शिक्षकों को प्रभावी फीडबैक प्रदान करने तथा शैक्षणिक गतिविधियों के संबंध में चर्चा के साथ-साथ सर्वोत्तम एवं नवीन शैक्षिक प्रथाओं को साझा करने के लिए, शिक्षक संकुल की एजेंडा आधारित मासिक बैठकें आयोजित की जाती हैं। उक्त बैठकों में अकादमिक रिसोर्स पर्सन (ए.आर.पी.) शिक्षकों के साथ मार्गदर्शन के दौरान प्राप्त अनुभवों को साझा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, अर्जित अनुभव, विशेषज्ञता और समर्पण के साथ, कोई भी व्यक्ति अपने मूल विद्यालय को एक आदर्श विद्यालय के रूप में विकसित करके एक उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है।

ड. संदर्भित शासनादेश सभी शिक्षकों पर समान रूप से लागू हैं। इस संबंध में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि मुख्य विद्यालय एवं मुख्य शिक्षण कार्य से लम्बे समय तक दूर रहने से शिक्षकों का बच्चों एवं स्थानीय समुदाय के साथ आत्मीय सम्बन्ध प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। अतः एक निश्चित अवधि के पश्चात् विद्यालय में ही मार्गदर्शन कार्य करने वाले शिक्षकों को मूल शिक्षण कार्य हेतु नियोजित रखना आवश्यक है, ताकि वे महत्वपूर्ण एवं प्रमुख शैक्षिक एवं विद्यालयी पहलुओं जैसे वास्तविक कक्षा शिक्षण, पाठ्यक्रम की योजना एवं क्रियान्वयन, विषय ज्ञान, कक्षा प्रबन्धन, विद्यालय प्रबन्धन आदि से अद्यतन रह सकें।

च. उपरोक्त का उद्देश्य स्कूलों में पढ़ाने वाले अन्य योग्य शिक्षकों को ए.आर.पी. के रूप में मार्गदर्शन कार्य और सहायक पर्यवेक्षण कार्य करने के अवसर प्रदान करना भी है। यह तभी संभव है, जब अधिक से अधिक शिक्षकों को चरणबद्ध तरीके से मार्गदर्शन कार्य करने के अवसर प्रदान किए जाएं, ताकि बेहतर शिक्षण संस्कृति को बढ़ावा दिया जा सके।

छ. ए.आर.पी के पास ए.आर.पी के रूप में काम करने का कोई निहित अधिकार नहीं है क्योंकि मूल नियुक्ति बेसिक स्कूल में सहायक शिक्षक के रूप में है। नीतिगत निर्णय के तहत ए.आर.पी की नियुक्ति

उपरोक्त वर्णित कारणों के लिए की गई थी और अन्य शिक्षकों को भी यही लाभ और अनुभव दिया जाना है, इसलिए उन ए.आर.पी पर प्रतिबंध लगाया गया है जो पहले से ही तीन साल तक काम कर चुके हैं। ऐसी शर्त न तो मनमानी है और न ही तर्कहीन है, बल्कि वैध कारणों पर आधारित है। ४ लाख से अधिक शिक्षकों में से केवल ४४०० को हमेशा के लिए ए.आर.पी के रूप में काम करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह एक क्लास मॉनिटर की भूमिका से बढ़कर है, इसलिए दूसरों को नेतृत्व की भूमिका निभाने का अवसर देने के लिए इसे नियमित रूप से बदलना होगा।

ज. याचीगण बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित बेसिक प्राइमरी स्कूलों में नियुक्त सहायक अध्यापक हैं और उनकी सेवाएं उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (अध्यापक) सेवा नियमावली १९८१ के प्रावधानों द्वारा शासित होती हैं, जिसके नियम २७ में यह प्रावधान है कि शिक्षक को अपने विद्यालय में जहां वे नियुक्त हैं अनिवार्य रूप से शिक्षण कार्य करना होगा, इसलिए याचीगण द्वारा ए.आर.पी. के रूप में अपने कार्यकाल के तीन वर्ष पूरे करने के बाद भी ए.आर.पी. के लिए फिर से आवेदन करने की अनुमति देने के लिए किया गया कोई भी अनुरोध नियम २७, १९८१ नियमावली का उल्लंघन होगा, क्योंकि उन्हें स्वयं को उन विद्यालयों से, जहां उन्हें अध्यापन के लिए नियुक्त किया गया था, दूर रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, इसलिए राज्य सरकार द्वारा शासनादेश दिनांकित १०.१०.२०२४ में जो प्रतिबंध लगाया गया है, वह नियम २७, १९८१ नियमावली के तहत उल्लिखित कर्तव्यों के उद्देश्य को प्राप्त करने और शिक्षण कार्य की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए है, ताकि एक शिक्षक को बहुत लंबे समय तक अपने मूल शिक्षण कार्य से दूर न रखा जा सके।

१४. याचिकाकर्ताओं व प्रतिवादीगणों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना एवं पत्रावली का अध्ययन किया।

१५. ए.आर.पी. के कार्य व दायित्व पूर्व के प्रस्तरों में वर्णित किए गए हैं कि उनको एक सहायक पर्यवेक्षक (सपोर्टिव सुपरविजन) सुनिश्चित करना और अधिगम प्रतिफल (लर्निंग आउटकम) पर विद्यालयों के बच्चों (८ वर्ष) तक अधिगम स्तर आकलन कर उनसे व उनके शिक्षक/प्रधानाध्यापक से वार्ता कर ऐसी कार्य योजना बनवानी है जिससे उन बच्चों को उनकी कमियों का एहसास दिलाए बिना, उनके अधिगम में सुधार करना है। उसके लिए उनको 'प्रेरणा' व 'दीक्षा' ऐप का प्रयोग करके निरंतर समीक्षा करना है। और विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियों एवं महत्वपूर्ण संवेदनशील मुद्दों पर अन्य शिक्षकों को भी संवेदनशील बनाना है।

१६. उपरोक्त कार्यो व अन्य दायित्वो के स्तर के अध्ययन से यह निर्धारित किया जा सकता है कि ए.आर.पी. एक समग्र शिक्षक बनाने में अपना योगदान देता है। और वास्तव में इसका सबसे अधिक लाभ स्वयं उसको होगा एवं जब वह वापस अपने मूल शिक्षा क्षेत्र में जाएगा, तो अर्जित अनुभव व निपुणता, अपने व बच्चों के स्तर को ऊपर उठाने एवं निपुण बनाने के लिए करेगा। और यही 'निपुण भारत मिशन' का उद्देश्य भी है, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता उच्च हो, अर्थात अगर एक शिक्षक ने ए.आर.पी. का दायित्व पूर्ण रूप से निभाया है

तो वह एक निपुण शिक्षक बनेगा जिसका सबसे अधिक लाभ उन छात्र-छात्राओं को होगा जो सुकुमार उम्र (८ वर्ष तक) में उन शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करेंगे।

१७. यह विदित है कि ए.आर.पी. योजना एक बहुत लंबे समय की योजना नहीं है और २०२६-२७ तक या कुछ और वर्षों तक रहेगी और तब तक यह आशा है कि कक्षा ३ तक बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मकता (एफ.एल.एन) का सार्वभौमिक अधिग्रह सुनिश्चित हो जाएगा जैसा 'निपुण भारत मिशन' का उद्देश्य है।

१८. उपरोक्त से यह भी विदित है कि उक्त ए.आर.पी. के पद के दायित्व निभाते समय, अर्जित हुए अनुभवों का उपयोग वह शिक्षक तब भी करेगा जब वह वापस अपना शिक्षण कार्य अपने विद्यालय में करेगा। यह अनुभव उसके ही हित में है और वृहद रूप से छात्र-छात्राओं के भी हित में है।

१९. शासनादेश दिनांक ०२.०२.२०१९ द्वारा शासन ने पूर्व में समग्र शिक्षा अभियान के अंतर्गत स्थापित न्याय पंचायत संसाधन केंद्रों एवं ब्लॉक संसाधन केंद्रों का पुनर्गठन करने का निर्णय किया, क्योंकि पूर्व संरचना से अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए थे, अतः गुणवत्ता बढ़ाने के लिए नई प्रक्रिया का चयन किया तथा ए.आर.पी की अवधारणा करी और यह भी निर्धारित किया कि ए.आर.पी का कोई पद पृथक से सृजन नहीं किया जाएगा वरन् पूर्व व्यवस्था में सह-समन्वयकों हेतु स्वीकृत पदों में ही समाहित किया जाएगा। एक विस्तृत पुनर्गठन की व्यवस्था व संरचना का निर्माण किया तथा चयन हेतु मानदण्ड निर्धारित किये व कार्यकाल की अवधि को भी निर्धारित किया। अर्थात् एक युक्तियुक्त नीतिगत निर्णय लिया।

२०. सभी याचिकाकर्ताओं ने अपने ए.आर.पी. का दायित्व का निर्वहन अपने निर्धारित कार्यकाल ३ वर्ष से अधिक, सफलतापूर्वक किया है। उनके कार्यकाल के संदर्भ में कोई शिकायत पत्रावली पर उपलब्ध नहीं है। याचिकाकर्ता ने कुछ रिपोर्ट पत्रावली पर प्रस्तुत करी है कि पिछले कुछ वर्षों में इस व्यवस्था के कारण छात्र-छात्राओं के शिक्षण के स्तर में सुधार हुआ है अर्थात् नीतिगत निर्णय के परिणाम अच्छे आए हैं।

२१. यह अविवादित है कि सभी याचिकाकर्ताओं को वापस अपने-अपने विद्यालय जाना है और शिक्षण का कार्य करना है एवं उनका ए.आर.पी. के कार्यकाल के अनुभव से उनके शिक्षण के स्तर में सुधार आएगा, जिससे छात्र-छात्राओं को लाभ होगा।

२२. आक्षेपित प्रस्तर द्वारा नवीन चयन प्रक्रिया से उन ए.आर.पी. को अनर्ह किया गया है जो पूर्व में ३ वर्ष तक ए.आर.पी. रह चुके हैं। नीतिगत निर्णय का उद्देश्य यह बताया गया है कि अगर नवीन शिक्षक ए.आर.पी. के पद पर चयनित होते हैं, तो वह भी कुछ वर्ष बाद जब अपने विद्यालय वापस जाएंगे तो उस अनुभव का उपयोग अपने शिक्षण कार्य में करेंगे और कई महत्वपूर्ण कारक जैसे मेंटरिंग, संवेदनशीलता व शिक्षण कार्य का उत्थान होगा और उनका अपने विद्यालय के छात्र-छात्राओं से संपर्क भी पुनः स्थापित होगा।

२३. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं का कथन है कि चयन प्रक्रिया एक मुक्त प्रक्रिया है जिसमें कोई भी शिक्षक अगर अर्हता रखता है, भागीदार बन सकता है और चयनित हो सकता है। याचिकाकर्ताओं को भी किसी सामान्य प्रतियोगी की तरह ही चयन प्रक्रिया में सम्मिलित होने का अवसर देना चाहिए और क्योंकि उनके पूर्व ए.आर.पी. कार्यकाल का कोई महत्व नहीं दिया जा रहा है, इसलिए उनकी भागीदारी से किसी भी अन्य प्रतियोगी को किसी प्रकार की प्रतिकूलता का सामना नहीं करना होगा। यह उद्देश्य कि, पूर्व ए.आर.पी. को पूर्णतया नवीन चयन प्रक्रिया से अलग करके नए ए.आर.पी. का चयन पूर्ण रूप से नये शिक्षकों से ही होना चाहिए, एक युक्तियुक्त निर्णय नहीं हो सकता। यह कारण की वर्तमान ए.आर.पी. वापस अपने विद्यालय जाकर अपने ए.आर.पी. के अनुभव का उपयोग करके अपने विद्यालय में बच्चों से संपर्क फिर स्थापित कर शिक्षण का स्तर बढ़ायें, विभेद का युक्तियुक्त कारण नहीं हो सकता है।

२४. याचिकाकर्ताओं का यह तर्क कि उनको चयन से अनर्ह करना भारतीय संविधान के अनुच्छेद १६ (लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता) का उल्लंघन है, एक बलहीन तर्क है, क्योंकि ए.आर.पी. की चयन प्रक्रिया किसी अधिनियम या नियमावली के अंतर्गत निर्धारित नहीं की गई है, और न ही इसमें सभी शिक्षक भागीदार हो सकते हैं, क्योंकि यह माध्यमिक/पूर्व माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए ही है। और न ही यह प्रक्रिया लोक नियोजन के अंतर्गत आती है। परंतु इस कथन को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि किसी भी प्रकृति की चयन प्रक्रिया में मनमाने कारक नहीं हो सकते हैं।

२५. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ताओं ने, याचिकाकर्ताओं को अनर्ह निर्धारित करने का उद्देश्य उल्लिखित किया कि ऐसे ए.आर.पी. जो ३ वर्ष का कार्यकाल पूर्ण कर चुके हैं उनको एक निश्चित अवधि मानते हुए यह निर्धारित किया गया है कि अब उनकी उपयोगिता अपने-अपने विद्यालयों में वापस जाकर वहां के शिक्षार्थियों को अपने इस पद पर अर्जित अनुभव का लाभ देकर उनके शिक्षा का स्तर उच्च करना है व नए शिक्षकों को ए.आर.पी. बनने का मौका देना है जिससे वह भी अनुभव अर्जित कर वापस विद्यालय आकर, शिक्षण का स्तर और उच्च कर सकें।

२६. जहां तक नीतिगत निर्णयों में न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की सीमा का प्रश्न है, इस न्यायालय द्वारा श्रद्धा यादव एवं ६ अन्य प्रति उत्तर प्रदेश राज्य एवं १० अन्य; २०२४:ए.एच.सी.:४०८५ के वाद में पारित निर्णय के प्रस्तर १९ व २० को निम्न उल्लिखित करना समीचीन रहेगा।

“१९. मा० उच्चतम न्यायालय के एक नवीन निर्णय जो देवेश शर्मा प्रति भारत संघ व अन्य: २०२३ एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. ९८५, के प्रकरण में पारित किया गया है, में पुनः यह प्रतिपादित किया कि:-

“ ७३. हमारे मस्तिष्क में निश्चित रूप से कोई संदेह नहीं है, कि साधारणतः राज्य के नीतिगत निर्णयों में संवैधानिक न्यायालयों द्वारा उसके पुनः निरीक्षण अधिकारों के अंतर्गत हस्ताक्षेप नहीं किया जा सकता है। इसी के साथ अगर नीतिगत निर्णय स्वयं में ही विधि के विरुद्ध और वो मनमाना व तर्कहीन हो तो पुनः निरीक्षण के अधिकार का उपयोग करना ही चाहिये।”

२०. मा० उचतम न्यायालय द्वारा एक अन्य प्रकरण सत्यदेव बागुर प्रति राजस्थान शासन व अन्य (२०२२) ५ एस. सी.सी. ३२४, के प्रकरण में पूर्व में पारित कृष्णन्न कक्कनाथ प्रति केरल राज्य: (१९९७) ९ एस.सी.सी. ४९५ व शेर सिंह प्रति भारत संघ: (१९९५) ६ एस.सी.सी. ५१५ के निर्णयों का संदर्भ लेते हुए यह निर्णीत किया कि:-

"१५. यह अतिसामान्य है कि न्यायालय नीतिगत मामलों में हस्तक्षेप करने में मन्द रहेंगे. जब तक कि नीति स्पष्ट रूप से पक्षपाती और मनमानी न स्थापित हो जाये। यह न्यायालय राज्य की नीतिगत निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करेगा. जब राज्य यह इंगित कर सके कि नीति के कार्यावहन में युक्तियुक्त अंतर है और वो युक्तियुक्त अंतर उसके उद्देश्य की प्राप्ति से संबंध रखता है।"

२७. यह अविवादित है कि एक नीति के अंतर्गत ही सभी याचिकाकर्ताओं को पूर्व में ए.आर.पी. बनने का मौका दिया गया और उनका इस पद पर वैधानिक रूप से बने रहना या भागीदार होने का कोई निहित अधिकार नहीं है। यह भी अविवादित है कि नीति को बदला भी जा सकता है, जैसा पूर्व में भी किया गया, जिसका लाभ वर्तमान याचिकाकर्ताओं को हुआ। अतः मात्र इस कारण से कि अब नवीन चयन नीति के अंतर्गत उन्हें अनर्ह घोषित किया गया तो वह निर्णय असंगत व मनमाना है, ऐसा नहीं माना जा सकता। उन्हें यह प्रदर्शित करना होगा कि नवीन नीतिगत निर्णय, किसी वैधानिक विधि से विपरीत हो, पूर्णतः तर्कहीन व पूर्णतः मनमाना हो और इसके विपरीत अगर यह प्रदर्शित किया जा सके कि, युक्तियुक्त विभेद उसके उद्देश्य की प्राप्ति से संबंध रखता है, तो नीतिगत निर्णय में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा पाएगा।

२८. उपरोक्त विभेद का कारण विद्यालयों के शिक्षा के स्तर को और अधिक उच्च करना है, जिसके लिए वर्तमान ए.आर.पी. के अनुभवों का उपयोग करना है। यह अविवादित है कि याचिकाकर्ताओं का मूल कार्य शिक्षण है और उनका सर्वप्रथम कर्तव्य अपने छात्र-छात्राओं के शिक्षण स्तर को उत्तम करना है, इसके लिए उनके द्वारा अर्जित अनुभवों का लाभ यथाशीघ्र उनके छात्र-छात्राओं को मिले, जो उनके उद्देश्य व कर्तव्य के लिए भी उत्तम है वरन् बच्चों के लिए भी अत्यंत उपयोगी है इस कारण यह न्यायालय नियमावली १९८१ के नियम २७ का भी संज्ञान लेता है।

२९. न्यायालय इस कथन का भी संज्ञान लेता है कि ए.आर.पी. के प्रदेश स्तर पर मात्र ४४०० पद हैं, जबकि शिक्षकों की संख्या ४ लाख से भी अधिक है और इस प्रक्रिया की शेष अवधि भी बहुत कम है अतः इस अल्प समयान्तराल में अगर ऐसी नीति जिससे अधिक से अधिक शिक्षक ए.आर.पी. के पद के अनुभव का लाभ ले सके, इसके लिए अगर उस युक्तियुक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चयन प्रक्रिया में कुछ बदलाव के कारण उन ए.आर.पी. को, जो पूर्व में ३ वर्ष तक उक्त पद पर कार्य कर चुके हैं, चयन प्रक्रिया के लिए अनर्ह घोषित किया गया है, वो पूर्णतः मनमाना नहीं हो सकता। इसका उद्देश्य वृहद लाभ के लिए है, जिससे याचिकाकर्ता किसी भी तरह के पक्षपात से पीड़ित नहीं माने जा सकते। उपरोक्त विभेद, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मनमाना नहीं माना जा सकता। याचिकाकर्ता यह भी प्रदर्शित करने में असफल रहें हैं कि अनर्हता से उनकी अग्रिम सेवा

के भविष्य में कोई प्रतिकूलता हो सकती है। इसके विपरीत जो शिक्षक ए.आर.पी. का लाभ नहीं ले पायेंगे वह उस स्तर के शिक्षण से कदापि वंचित रह सकते हैं।

३०. उपरोक्त विश्लेषण का परिणाम यह है कि अनर्हता का उद्देश्य, ए.आर.पी. से लाभान्वित शिक्षकों का छात्र-छात्राओं के वृहद हित में होना है, एवं अन्य शिक्षकों को ए.आर.पी. बनने के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना है, जो युक्तियुक्त विभेद से तार्किक रूप से संबंध रखता है। ऐसा विभेद मनमाना या पक्षपात पूर्ण कदापि नहीं माना जा सकता है। अतः ऐसे नीतिगत निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

३१. अतः सभी याचिकाएं बलहीन होने के कारण निरस्त की जाती है।

(2025) 3 ILRA 187

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

रिट ए संख्या 7683 वर्ष 2021

रास बिहारी श्रीवास्तव

.....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: अवध बिहारी सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., एमजे अख्तर

ए. सेवा कानून - नियमितीकरण - उत्तर प्रदेश समूह 'सी' और समूह 'डी' के पदों पर दैनिक मजदूरी या कार्य प्रभार या अनुबंध पर सरकारी कर्मचारियों का नियमितीकरण (उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर) नियम, 2016 - अनुबंध के आधार पर नियुक्त समूह 'डी' कर्मचारी - तकनीकी आधार पर नियमितीकरण से इनकार - अनुचित माना गया - नियोक्ता एक आदर्श नियोक्ता है - उसे निष्पक्ष रूप से कार्य करना होगा - नामकरण निर्धारक नहीं है - कार्य की प्रकृति, सेवा की निरंतरता और बारहमासी आवश्यकता पर विचार किया जाना चाहिए - रिट याचिका स्वीकार की गई।

B. सेवा कानून - नियमितीकरण - याचिकाकर्ता, एक ग्रुप-डी बहुउद्देशीय कर्मचारी जो अनुबंध के आधार पर नियुक्त था, ने बिना किसी रुकावट के उसे सौंपे गए विभिन्न कर्तव्यों का निर्वहन किया था। नियमितीकरण के लिए उसके दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि उसके पास पंप ऑपरेटर के रूप में नियुक्ति के लिए तकनीकी योग्यता नहीं थी और वह एक संविदा कर्मचारी था। निर्णित: इस तरह के तकनीकी आधार पर नियमितीकरण से इनकार करना अनुचित श्रम व्यवहार है। न्यायालय ने यह बल दिया कि सेवा की वास्तविक प्रकृति का निर्धारण आवरण हटाकर किया जाना चाहिए, अर्थात् किए गए कार्यों, सेवा की अवधि तथा ऐसी सेवाओं की सतत आवश्यकता का परीक्षण किया जाना चाहिए। न्यायालय ने आगे कहा कि बहुउद्देशीय कर्मचारी, जो नियोक्ता के निर्देश में अलग-अलग काम करते हैं, उन्हें सिर्फ एक खास भूमिका के लिए योग्यता न होने की वजह से नियमितीकरण से मना नहीं किया जा सकता, विशेषकर तब जब वे अन्य समूह-‘डी’ पदों के लिए पात्र हों और उन पर नियुक्ति के लिए इच्छुक हों। अतः प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया कि वे याचिकाकर्ता के मामले पर समूह-‘डी’ श्रेणी में नियमितीकरण हेतु विचार करें। (पैरा 8, 11, 15)

स्वीकृत। (ई-5)

उद्धृत मामले की सूची:

जग्गो बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य एमएएन यू/एस सी/1403/2024 में रिपोर्ट किया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट, द्वारा प्रदान किया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अवध बिहारी सिंह, प्रतिवादी नंबर 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री एम.जे. अख्तर और राज्य प्रतिवादियों के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।
2. आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को श्रेणी -IV कर्मचारी के रूप में नियमित करने का दावा केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि उसके पास पंप ऑपरेटर की योग्यता नहीं है।
3. याचिकाकर्ता को शुरू में 15.05.1995 को प्रतिवादी नगर पालिका परिषद, कुशीनगर में पंप ऑपरेटर के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता को श्रेणी -IV पद पर नियुक्त किया गया था, और वह सफाई नायक जैसे क्लास-IV कर्मचारियों की विभिन्न श्रेणियों के कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है। प्रतिवादियों ने अपने जवाबी हलफनामे में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि याचिकाकर्ता एक समूह - डी कर्मचारी है जो संविदा के आधार पर कार्यरत है। जवाबी हलफनामे के अनुसार, याचिकाकर्ता प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा सौंपे गए कार्य के अनुसार विभिन्न प्रकार के कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा था। एक समूह - डी कर्मचारी को नियोक्ता के निर्देशानुसार विभिन्न भूमिकाएँ निभानी होती हैं।

4. निस्संदेह याचिकाकर्ता अपनी नियुक्ति की तारीख से बिना किसी रुकावट के लगातार काम कर रहा है। वह समूह - डी श्रेणी के तहत एक बहुउद्देशीय कर्मचारी है।

5. प्रतिवादियों के रुख के अनुसार भी, जो समूह - डी कर्मचारी अनुबंध पर नियुक्त होते हैं, वे बहुउद्देशीय कर्मचारी होते हैं। कर्मचारियों के इस वर्ग को विभागीय आवश्यकताओं के अनुसार नियोक्ता द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए तैनात किया जा सकता है। वास्तव में, बहुउद्देशीय कर्मचारियों की अवधारणा का मतलब है कि कर्मचारियों का यह समूह कई तरह के काम या विविध कार्य कर सकता है और किसी विशेष प्रकार के काम तक सीमित नहीं हो सकता है या केवल एक विशिष्ट कर्तव्य तक ही सीमित नहीं हो सकता है। उक्त कर्मचारी ऐसे कर्तव्यों को करने से इनकार नहीं कर सकते हैं जो नियोक्ता द्वारा सौंपे जा सकते हैं।

6. याचिकाकर्ता का नियमितीकरण का दावा दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों को प्राप्त अधिकारों के आधार पर किया जा रहा है उत्तर प्रदेश सरकार में समूह - 'सी' और समूह - 'डी' पदों पर दैनिक मजदूरी या कार्य प्रभार या अनुबंध पर काम करने वाले व्यक्तियों के नियमितीकरण (उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर) नियम, 2016 के तहत याचिकाकर्ता उक्त नियमितीकरण नियम, 2016 में परिकल्पित नियमितीकरण के मानदंडों को पूरा करता है और उक्त नियमों के तहत नियमितीकरण का हकदार है।

7. जवाबी हलफनामे से पता चलता है कि नियमित पंप ऑपरेटर के रूप में नियुक्त होने के लिए न्यूनतम पात्रता योग्यता में तकनीकी योग्यताएं शामिल हैं। प्रतिवादियों के रुख के अनुसार याचिकाकर्ता के पास उपरोक्त तकनीकी योग्यताएं नहीं हैं और इसलिए उसे पंप ऑपरेटर के पद पर नियमित नहीं किया जा सकता है।

8. यदि याचिकाकर्ता के पास उपरोक्त योग्यताएं नहीं हैं तो उसे पंप ऑपरेटर के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता है। हालांकि, यह तथ्य किसी भी तरह से समूह - डी श्रेणी में अन्य पदों पर नियुक्त होने के उसके दावे को कम नहीं करता है जिसके लिए वह योग्य है। याचिकाकर्ता की समूह - डी पद पर नियमितीकरण के लिए पात्रता जिसके लिए उसके पास योग्यता है, चर्चा के पिछले भाग में पहले ही पुष्टि की जा चुकी है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष स्पष्ट रूप से कहा है कि वह समूह - डी श्रेणी के तहत किसी भी पद पर शामिल होने के लिए तैयार है और नियोक्ता द्वारा उसे सौंपे गए किसी भी अन्य कर्तव्यों का पालन करेगा।

9. याचिकाकर्ता का समूह - डी पद पर बने रहना इस तथ्य की पुष्टि करता है कि विभाग की आवश्यकता स्थायी प्रकृति की है। प्रतिवादियों ने स्वीकार किया है कि विभिन्न श्रेणियों के तहत समूह - डी कर्मचारियों के रिक्त पद हैं।

10. अत्यधिक तकनीकी आधारों का सहारा लेकर आक्षेपित आदेश द्वारा नियमितीकरण से इनकार करना एक आदर्श नियोक्ता द्वारा अपनाई गई एक अनुचित प्रथा है। उक्त प्रथा कर्मचारियों के शोषण के बराबर है जिसे इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

11. नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने का दूसरा आधार यह है कि वह एक संविदा कर्मचारी है। कानून, श्रेणी डी कर्मचारियों को उनके अधिकारों से वंचित करने के लिए मालिकों द्वारा अपनाए जाने वाले अलग-अलग तरीकों के प्रति सतर्क है, और कोर्ट ने किसी भी सरकारी मालिक द्वारा अपनाई गई किसी भी शोषणकारी प्रथा के खिलाफ कड़ा रुख अपनाया है। ऐसे मामलों में कोर्ट को पर्दे के पीछे जाकर नियुक्ति के नाम से परे देखना होता है। कोर्ट किसी कर्मचारी द्वारा किए गए कामों की प्रकृति, सेवा की अवधि और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अन्य संबंधित कारकों (यदि कोई हो) की जांच कर सकता है। ऐसी जांच के आलोक में कोर्ट रोजगार की प्रकृति और कर्मचारी के अधिकारों का निर्धारण कर सकता है। इस चर्चा में अधिकारियों का लाभ मिला है।

12. सर्वोच्च न्यायालय ने जग्गो बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य, एम ए एन यू/ एस सी/1403/2024 में रिपोर्ट किया गया है, जो कर्मचारियों को लाभ देने से बचने के लिए उन्हें गलत तरीके से वर्गीकृत करने के परिणामों पर ध्यान देता है। संबंधित पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

24. यूनाइटेड स्टेट्स में विज़केनो बनाम माइक्रोसॉफ्ट कॉर्पोरेशन 4 मामले में ऐतिहासिक फैसला निजी क्षेत्र से एक प्रासंगिक उदाहरण के रूप में कार्य करता है, जो कर्मचारियों को लाभ देने से बचने के लिए उन्हें गलत तरीके से वर्गीकृत करने के परिणामों को दर्शाता है। इस मामले में, माइक्रोसॉफ्ट ने कुछ कर्मचारियों को स्वतंत्र ठेकेदार के रूप में वर्गीकृत किया, जिससे उन्हें कर्मचारी लाभ से वंचित कर दिया गया। नौवें सर्किट के लिए अमेरिकी अपील न्यायालय ने निर्धारित किया कि ये कर्मचारी, वास्तव में, सामान्य कानून के तहत कर्मचारी थे और नियमित कर्मचारियों के समान लाभ के हकदार थे। न्यायालय ने नोट किया कि बड़ी कंपनियाँ कर्मचारी लाभों के भुगतान से बचने के लिए अस्थायी कर्मचारियों या स्वतंत्र ठेकेदारों को काम पर रखने की प्रथा को तेजी से अपना रही हैं, जिससे उनका मुनाफा बढ़ रहा है। यह निर्णय इस सिद्धांत पर जोर देता है कि किसी कर्मचारी की रोजगार स्थिति और संबंधित अधिकार एवं लाभ निर्धारित करने में कार्य का स्वभाव अधिक महत्वपूर्ण है, न कि कर्मचारी को दिया गया लेबल। यह इस तरह के गलत वर्गीकरण को ठीक करने और यह सुनिश्चित करने में न्यायपालिका की भूमिका पर प्रकाश डालता है कि श्रमिकों को उचित व्यवहार मिले।

25. यह एक परेशान करने वाली सच्चाई है कि अस्थायी कर्मचारी, विशेष रूप से सरकारी संस्थानों में, अक्सर कई तरह के शोषण का सामना करते हैं। जबकि अस्थायी अनुबंधों का मूल उद्देश्य अल्पकालिक या मौसमी जरूरतों को पूरा करना हो सकता है, वे तेजी से कर्मचारियों के प्रति लंबे समय तक चलने वाली जिम्मेदारियों से बचने का एक तंत्र बन गए हैं। ये प्रथाएँ कई तरह से प्रकट होती हैं:

* "अस्थायी" लेबल का दुरुपयोग: जो कर्मचारी किसी संस्थान के कामकाज के लिए आवश्यक, आवर्ती और अभिन्न काम के लिए लगे हुए हैं, उन्हें अक्सर "अस्थायी" या "अनुबंध" के रूप में लेबल किया जाता है, भले ही उनकी भूमिकाएँ नियमित कर्मचारियों के समान हों। इस तरह के गलत वर्गीकरण से श्रमिकों को उस गरिमा, सुरक्षा और लाभों से वंचित कर दिया जाता है जिसके नियमित कर्मचारी हकदार होते हैं, भले ही वे समान कार्य करते हों।

* मनमानी बर्खास्तगी: अस्थायी कर्मचारियों को अक्सर बिना किसी कारण या नोटिस के बर्खास्त कर दिया जाता है, जैसा कि वर्तमान मामले में देखा गया है। यह प्रथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को कमजोर करती है और श्रमिकों को उनकी सेवा की गुणवत्ता या अवधि की परवाह किए बिना लगातार असुरक्षा की स्थिति में डाल देती है।

* पेशागत उन्नति की कमी: अस्थायी कर्मचारी अक्सर खुद को कौशल विकास, पदोन्नति, या वेतन वृद्धि के अवसरों से वंचित पाते हैं। वे अपनी भूमिकाओं में स्थिर रहते हैं, जिससे उनके और उनके नियमित साथियों के बीच एक व्यवस्थित असमानता पैदा होती है, भले ही उनका योगदान बराबर महत्वपूर्ण हो।

* आउटसोर्सिंग का ढाल के रूप में उपयोग: संस्थान अस्थायी कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले कामों को आउटसोर्स करने का सहारा ले रहे हैं, जिससे प्रभावी रूप से शोषित श्रमिकों के एक समूह को दूसरे समूह से बदल दिया जाता है। यह प्रथा न केवल शोषण को बढ़ावा देती है बल्कि नियमित रोजगार देने की बाध्यता से बचने के जानबूझकर किए गए प्रयास को भी दिखाती है।

* बुनियादी अधिकारों और लाभों से वंचित करना: अस्थायी कर्मचारियों को अक्सर पेंशन, भविष्य निधि, स्वास्थ्य बीमा, और सवैतनिक अवकाश जैसे मौलिक लाभों से वंचित रखा जाता है, भले ही उनका कार्यकाल दशकों तक क्यों न हो। सामाजिक सुरक्षा की इस कमी के कारण उन्हें और उनके परिवारों को अनुचित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, खासकर बीमारी, सेवानिवृत्ति, या अप्रत्याशित परिस्थितियों के मामलों में।

26. जबकि उमा देवी (उपरोक्त) मामले में फैसले का उद्देश्य पिछले दरवाजे से प्रवेश की प्रथा को कम करना और यह सुनिश्चित करना था कि नियुक्तियाँ संवैधानिक सिद्धांतों का पालन करें, यह खेदजनक है कि इसके सिद्धांतों की अक्सर गलत व्याख्या की जाती है या लंबे समय से सेवा कर रहे कर्मचारियों के वैध दावों को अस्वीकार करने के लिए इसका गलत इस्तेमाल किया जाता है। इस फैसले का उद्देश्य "अवैध" और "अनियमित" नियुक्तियों के बीच अंतर करना था। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि अनियमित नियुक्तियों में लगे कर्मचारी, जो विधिवत स्वीकृत पदों पर कार्यरत थे और दस साल से अधिक समय तक लगातार सेवा कर चुके थे, उन्हें एक बार के उपाय के रूप में नियमितीकरण के लिए विचार किया जाना चाहिए। हालांकि, फैसले के सराहनीय इरादे को तब कमजोर किया जा रहा है जब संस्थान कर्मचारियों के दावों को अंधाधुंध खारिज करने के लिए इसके निर्देशों पर निर्भर करते हैं, यहां तक कि उन मामलों में भी जहां उनकी नियुक्तियाँ अवैध नहीं हैं, बल्कि केवल प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं का पालन नहीं किया गया है। सरकारी विभाग अक्सर उमा देवी (उपरोक्त) मामले में फैसले का हवाला देते हैं यह तर्क देने के लिए कि अस्थायी कर्मचारियों के लिए नियमितीकरण का कोई निहित अधिकार मौजूद नहीं है, यह अनदेखी करते हुए कि फैसले में स्पष्ट रूप से उन मामलों को स्वीकार किया गया है जहां नियमितीकरण उचित है। यह चयनात्मक अनुप्रयोग फैसले की भावना और उद्देश्य

को विकृत करता है, प्रभावी रूप से इसे उन कर्मचारियों के खिलाफ हथियार के रूप में इस्तेमाल करता है जिन्होंने दशकों से अपरिहार्य सेवाएं प्रदान की हैं।

27. इन बातों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय में, सरकारी विभागों के लिए यह ज़रूरी है कि वे निष्पक्ष और स्थिर रोज़गार देकर एक मिसाल कायम करें। कर्मचारियों को लंबे समय तक अस्थायी आधार पर काम पर रखना, खासकर जब उनकी भूमिका संगठन के कामकाज के लिए ज़रूरी हो, तो यह न केवल अंतरराष्ट्रीय श्रम मानकों का उल्लंघन करता है, बल्कि संगठन को कानूनी चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है और कर्मचारियों का मनोबल भी गिरता है। निष्पक्ष रोज़गार प्रथाओं को सुनिश्चित करके, सरकारी संस्थान अनावश्यक मुकदमों का बोझ कम कर सकते हैं, नौकरी की सुरक्षा को बढ़ावा दे सकते हैं, और न्याय और निष्पक्षता के उन सिद्धांतों को बनाए रख सकते हैं जिन्हें उन्हें अपनाना चाहिए। यह दृष्टिकोण अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप है और निजी क्षेत्र के लिए एक सकारात्मक मिसाल कायम करता है, जिससे देश में श्रम प्रथाओं में समग्र सुधार में योगदान मिलता है।”

13. याचिकाकर्ता का मामला स्पष्ट रूप से सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के दायरे में आता है। प्रतिवादियों पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जगमोहन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (उपरोक्त) मामले में दिए गए कानून को लागू करने की ज़िम्मेदारी है।

14. दिनांक 12.03.2021 का आक्षेपित आदेश रद्द किए जाने योग्य है और इसे रद्द किया जाता है।

15. प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति मिलने की तारीख से दो महीने के भीतर समूह - डी पद की वरिष्ठता सूची के अनुसार याचिकाकर्ता को नियमित करने का उचित आदेश पारित करें, जिन्हें दैनिक मज़दूरी/ अनुबंध के आधार पर काम पर रखा गया है।

16. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2025) 3 ILRA 191

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद 03.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे.मुनीर

रिट ए संख्या- 11524 सन् 2024

जगमोहन

.....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के ओर से अधिवक्ता:

अरविंद कुमार, बंश नारायण विश्वकर्मा, शारदा विश्वकर्मा

प्रतिवादी के ओर से अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

(क) सेवा विधि - अनुशासनात्मक कार्यवाही को चुनौती दी गई और दीर्घ शास्ति लगाया गया- अवैध जांच-उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 नियम 7, 13 - मौखिक परीक्षण करने और साक्ष्य द्वारा आरोपों को सिद्ध करने में विफलता - उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियम-अनुच्छेद 351क सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध सेवानिवृत्ति के बाद की अनुशासनात्मक कार्यवाही - उत्तर प्रदेश लोक सेवा अधिकरण अधिनियम, 1976-धारा 4-अधिकरण के समक्ष उपाय-सभी दीर्घ शास्त्रियों में, आरोपों को पहले नियोक्ता द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने सिद्ध किया जाना चाहिए-जांच अधिकारी मात्र आरोप-पत्र और आरोपित कर्मचारी के उत्तर को पढ़कर निष्कर्ष नहीं दे सकता है; साक्ष्य, मौखिक और दस्तावेजी दोनों, संस्थान द्वारा प्रस्तुत किए जाने चाहिए, गवाहों से जिरह की जानी चाहिए-विभागीय जांच को नियम 7 में निर्धारित प्रक्रिया का सख्ती से पालन करना चाहिए, ऐसा करने में विफलता पूरी कार्यवाही को निष्प्रभावी कर देती है- अनुच्छेद 351क पर विचार न करने से परिलब्धियों से इनकार करना विधिक रूप से कमजोर हो जाता है (प्रस्तर - 2,10,13,35)

याचिकाकर्ता ने अपने विरुद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही को चुनौती दी, जिसे पहले पुनः नये सिरे से जाँच के लिये न्यायाधिकरण को वापस भेजा गया था। जांच अधिकारी ने जांच की तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया - संस्थान द्वारा कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया - याचिकाकर्ता को गवाहों से जिरह करने का अवसर नहीं दिया गया - जांच अधिकारी ने गलती से मान लिया कि केवल दस्तावेजों और याचिकाकर्ता को उत्तर के आधार पर आरोप सिद्ध हो गए हैं - जांच अधिकारी, संस्थान द्वारा मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करके आरोप सिद्ध करने के लिए बाध्य था - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7 का उल्लंघन - प्राकृतिक न्याय के हितकारी सिद्धांतों का उल्लंघन - अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने मूल वेतन में कटौती का आदेश पारित किया - जिसे बाद में संशोधित करके बर्खास्तगी अवधि के लिए वेतन देने से इन्कार कर दिया गया क्योंकि याचिकाकर्ता लंबित कार्यवाही के दौरान सेवानिवृत्ति हो गया था। (प्रस्तर 24 से 32)

प्रतिपादित : सेवानिवृत्ति के बाद, मात्र राज्यपाल को सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 351क के अन्तर्गत दंड देने का अधिकार था। नियमावली 1999 के नियम-3 या अनुच्छेद 351-क के अंतर्गत दंड देना स्वीकार्य नहीं था। प्रतिवादियों को त्रुटिपूर्ण जांच आख्या के आधार पर कोई भी दंडात्मक आदेश पारित करने के लिए अक्षम माना गया। नई जाँच मात्र नियम 7 और हितकारी सिद्धांतों के अनुसार ही की जा

सकती थी। यदि आवश्यक हो, तो कोई भी दंड केवल अनुच्छेद 351-क के अन्तर्गत राज्यपाल द्वारा ही दिया जा सकता था। आक्षेपित आदेश रद्द कर दिए गए। **प्रस्तर (33 से 37)**

याचिका स्वीकृत /(ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010)2 एससीसी772
2. राधे कांत खरे बनाम उत्तर प्रदेश, सुगर फैक्ट्रीज फेडरेशन लिमिटेड, 2003(21) एलसीडी 210
3. रूप सिंह नेगी बनाम पी.एन.बी., (2009)2 एससीसी 570
4. उत्तरांचल राज्य बनाम खडक सिंह, (2008)8 एससीसी 238
5. सत्येन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 एससीसी आनलाइन एससी 3325
6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशोरी लाल, 2018(9) एडीजे 397 (डीबी)
7. श्रीमती करुणा जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2018(9) एडीजे 107(डीबी)
8. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आदित्य प्रसाद श्रीवास्तव, 2017(2)एडीजे 554 (डीबी)
9. गया प्रसाद यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एससीसी आनलाइन इला. 685

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा वितरित किया गया)

1. यह रिट याचिका उप-जिलाधिकारी, कोरांव, जिला प्रयागराज के दिनांक 16.04.2024 के आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसमें याचिकाकर्ता, एक लेखपाल को अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के बाद दंडित किया गया था और उप-जिलाधिकारी, कोरांव, प्रयागराज के दिनांक 30.04.2024 के आगे के आदेश में, अंतिम उल्लिखित आदेश को, संशोधित किया गया था। 16.04.2024 के आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही संपन्न कर दी गई, जिससे याचिकाकर्ता को उसके मूल वेतन में कटौती करके दंडित किया गया। इसके अतिरिक्त, यह निर्देश दिया गया था कि याचिकाकर्ता उस अवधि के दौरान किसी भी परिलब्धियों का हकदार नहीं होगा, जब वह पहले सेवा से बर्खास्तगी के कारण सेवा से बाहर रहा था और राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण (संक्षेप में, 'न्यायाधिकरण') ने नए सिरे से जांच करने की स्वतंत्रता के साथ इसे रद्द कर दिया था। दिनांक 16.04.2024 के आदेश में संशोधन की मांग की गई क्योंकि कार्यवाही लंबित रहते हुए ही कर्मचारी सेवानिवृत्त हो गया था।

2. इस याचिका को जन्म देने वाले तथ्य एक अनैतिक कार्यवाही का, पाठन है और इस न्यायालय को यह विश्वास दिलाता है कि चाहे कुछ भी हो जाए, सरकार के विभिन्न विभागों में अनुशासनात्मक प्राधिकारी, जो प्रशासनिक अधिकारी हैं, एक कर्मचारी के विरुद्ध आरोप पर विभागीय जांच करने के लिए वैध प्रक्रिया के

आवश्यक तत्वों की सराहना नहीं कर सकते हैं, जिससे एक दीर्घ शास्ति लगाया जा सकता है। वे यह नहीं समझ पाएंगे कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 (संक्षेप में, '1999 की नियमावली') के नियम 7 में एक आरोपी/आरोपित वाले कर्मचारी के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने की स्थापना की क्या अपेक्षा है, जो आरोपों का सामना कर रहा है, जिससे एक दीर्घ शास्ति लगाया जा सकता है। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि इस संबंध में विधि दो दशकों से अधिक समय से आधिकारिक रूप से निर्धारित है, जो यह मानता है कि सभी दीर्घ शास्ति मामलों में, जांच अधिकारी केवल आरोप-पत्र और आरोपित कर्मचारी के उत्तर को पढ़कर निष्कर्ष नहीं दे सकता। संस्थान को आरोपों को पहली बार में सिद्ध करने के लिए गवाहों की गवाही के साथ-साथ दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने होंगे। ऐसा नहीं है कि आरोपित कर्मचारी को आरोपों का दोषी मान लिया जाए और उसके उत्तर को पढ़ने के बाद, जो संतोषजनक नहीं पाया गया, संस्थान द्वारा साक्ष्य के बिना, दोषी ठहराया जाए। 1999 के नियम 7 के अनुरूप जांच आयोजित करने की प्रक्रिया का पालन करने पर दोष सिद्ध किया जा सकता है, जहां जांच अधिकारी एक न्यायाधिकरण के रूप में बैठता है और संस्थान दस्तावेजी साक्ष्य और गवाहों को प्रस्तुत करके आरोपों को पहली बार में सिद्ध करने का भार वहन करता है और आरोपित कर्मचारी को ऐसे गवाहों से जिरह करने का अवसर देता है। किसी भी दीर्घ शास्ति मामले में किये जा सकने वाले किसी भी वैध जांच के लिए यही उपयुक्त प्रक्रिया है।

3. हम इस मुद्दे पर अब न्यायनिर्णयों का हवाला देंगे। चाहे कोई भी उच्च और सुसंगत प्राधिकारी क्यों न हो, किसी भी अन्य संभावित कार्यवाही को छोड़कर, अनुभव यह बताता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी के रूप में कार्य करने वाले प्रशासनिक प्राधिकारी, आरोप-पत्र पढ़कर, जहाँ आरोप सत्य प्रतीत होते हैं, किसी आरोपित कर्मचारी को दोषी मानने की प्रथा नहीं छोड़ेंगे, और फिर, मात्र उत्तर पर गौर करके यह पता लगाएंगे कि क्या आरोपित कर्मचारी की निर्दोषता के अनुरूप कोई उचित स्पष्टीकरण सामने आया है। राज्य भर के विभिन्न संस्थानों, जिनमें सरकार भी सम्मिलित है, के अनुशासनात्मक प्राधिकारी यही दृष्टिकोण अपनाते हैं और हमें विश्वास है कि वे इसे नहीं छोड़ेंगे। जब हम इस मुद्दे पर न्यायनिर्णयन, और सुसंगतता का हवाला देते हैं, तो इसमें किसी को भी संदेह नहीं रह जाता कि यहाँ दिए गए सिद्धांतों का लगातार उल्लंघन किया जा रहा है। इस मामले में, जैसा कि लगभग सभी अन्य मामलों में होता है, केवल न्यायनिर्णयो का उल्लेख करने और उसके बाद उस आधार पर आदेश को रद्द करने से काम नहीं चलेगा। राज्य के विभिन्न संस्थानों में अनुशासनात्मक प्राधिकारियों को यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य करने हेतु कुछ और कदम उठाने होंगे कि नियमावली 1999 के नियमों के नियम 7 के अनुसार वैध जाँच करने या ऐसी जाँचों के संबंध में, जिनमें दीर्घ शास्ति देने की बात हो, उचित प्रक्रिया अपनाने से संबंधित प्रक्रियात्मक विधि का पालन किया जाए। इस संबंध में स्थापित विधि के लागू होने से, जाँच का सामना कर रहे कर्मचारियों को अनावश्यक परेशानी से बचाया जा सकेगा और राज्य को अनावश्यक व्यय से बचाया जा सकेगा। इस न्यायालय ने ऊपर बताए गए शब्दों में कैसे और क्यों टिप्पणी की है, यह इस मामले के तथ्यों से स्पष्ट होगा, जिसका उल्लेख आगे किया जाएगा।

4. याचिकाकर्ता इलाहाबाद (अब प्रयागराज) जिले में एक लेखपाल था। शुरुआत में उन्हें 20.10.1982 के आदेश द्वारा तहसील हंडिया में नियुक्त किया गया था, जहां उन्होंने वर्ष 2001 तक काम किया। उन्हें तहसील मेजा

में स्थानांतरित कर दिया गया और 11.05.2010 तक वहां रहे। याचिकाकर्ता को दिनांक 12.05.2010 के आदेश द्वारा कदाचार के आरोप में जांच लंबित रहने तक निलंबित कर दिया गया था। यह उन परिस्थितियों में हुआ जब अप्रैल और मई, 2010 के महीनों में बारी, तहसील मेजा, जिला प्रयागराज में एक लेखपाल के रूप में तैनात होने के दौरान, राजस्व निरीक्षक द्वारा गलती से खाता संख्या 39, 198 और 120 के संबंध में दाखिल-खारिज का आदेश पारित किया गया था।

5. याचिकाकर्ता पर दिनांक 19.07.2010 को चार आरोपों के साथ आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया। ये आरोप इस प्रकार हैं:

"आरोप 1 :- अपचारी कर्मचारी के ऊपर प्रथम आरोप यह है कि वह ग्राम बरी खाता संख्या - 198, 39 पर दर्ज खातेदार सितावी देवी पत्नी रामराज निवासी बेदौली को मृत दर्शाकर उसके स्थान पर धर्मराज पुत्र ठाकुर प्रसाद नि० ग्राम बेदौली का नाम हितबद्ध होकर दर्ज करा दिया गया, जबकि सितावी देवी पत्नी रामराज अभी जीवित है। इस आरोप के जवाब में अपचारी कर्मचारी द्वारा कहा गया है कि धर्मराज पुत्र ठाकुर प्रसाद ने उसको बताया कि सितावी देवी हमारी भाभी है तथा मृतक हो चुकी है और उनके कोई संतान नहीं है, वारिस हमी है, तब मैंने सितावी देवी के स्थान पर धर्मराज पुत्र ठाकुर प्रसाद (देवर) के नाम दिनांक 20.04.2010 को वरासत करा दिया। अपचारी कर्मचारी के कथन से ही स्पष्ट है कि उसने हितबद्ध व्यक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से सितावी देवी के बारे में कोई जाँच नहीं की और उससे मिलकर गलत ढंग से जीवित व्यक्ति को मृतक दिखाकर वरासत दर्ज कर दिया। अपचारी कर्मचारी का जवाब संतोषजनक नहीं है। आरोप संख्या-1 उसके ऊपर पूर्णतया सिद्ध होता है।

आरोप 2:- अपचारी कर्मचारी के ऊपर द्वितीय आरोप यह है कि उसने ग्राम बरी के खाता संख्या - 120 पर दर्ज खातेदार रामबरन पुत्र रामलाल के स्थान पर उसके जायज वारिसान सभाजीत पुत्र रामबरन व विनय कुमार पुत्र कमेशचन्द्र का नाम न दर्ज करके अन्य व्यक्ति रमेश पुत्र जयनारायण निवासी बेदौली का नाम दिनांक 20.04.2010 को वरासतन दर्ज कर दिया। जवाब में अपचारी कर्मचारी द्वारा कहा गया है कि रमेश पुत्र जयनारायण ने उनसे कहा कि रामबरन उसके बाबा हैं, उसके मरे 10 वर्ष हो गये और अभी तक मेरे नाम उनकी वरासत नहीं हुई है। अपचारी कर्मचारी ने कहा है कि विश्वास में आकर गलत वरासत दर्ज कर दिया। अपचारी कर्मचारी के जवाब से स्पष्ट है कि वरासत दर्ज करने से पहले उसके द्वारा समुचित जाँच पड़ताल नहीं कि गई और गलत ढंग से वरासत दर्ज कर दी गई। आरोपी कर्मचारी का जवाब संतोषजनक नहीं है और आरोप संख्या-2 उसके ऊपर पूर्णतया सिद्ध है।

आरोप 3 :- अपचारी कर्मचारी के ऊपर तीसरा आरोप यह है कि उसने पदेन दायित्वों का निर्वहन न करके स्वेच्छाचारितापूर्वक हितबद्ध होकर अनुचित रूप से दूसरे व्यक्ति के नाम वरासत दर्ज कर लाभ पहुँचाने का दोषि है। इस आरोप का जवाब भी संतोषजनक नहीं है और यह आरोप भी अपचारी कर्मचारी पर सिद्ध होता है।

आरोप 4:- अपचारी कर्मचारी के ऊपर चौथा आरोप यह है कि वह एक लापरवाह कर्मचारी है और भूमाफियों से सौंठ-गाँठ करके उन्हें लाभ पहुँचाने का दोषी है। जवाब में अपचारी कर्मचारी द्वारा कहा गया है कि वह सत्यनिष्ठा पूर्वक कार्य करने वाला कर्मचारी है और उसके साथ विश्वासघात करके कार्य कराया गया तथा उसने कर्मचारी आचार संहिता का उल्लंघन नहीं किया है। हो सकता है हितबद्ध व्यक्ति भू-माफियों न हो, लेकिन वरासत दर्ज करने में आरोपी कर्मचारी द्वारा अत्यधिक लापरवाही बरती गयी है। दो-दो प्रकरणों में एक साथ ऐसी वरासत दर्ज हो जाना संयोग की बात नहीं हो सकती है। इसलिए आरोप संख्या 4 भी अपचारी कर्मचारी पर सिद्ध होता है।"

6. याचिकाकर्ता ने दिनांक 04.08.2010 को आरोप-पत्र पर अपना उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें आरोपों से इनकार किया गया तथा बचाव में दलीलें प्रस्तुत की गईं।

7. पहले आरोप के संबंध में याचिकाकर्ता का बचाव यह था कि धर्मराज पुत्र ठाकुर प्रसाद, जो बारी गांव में पाही कास्तकार बताया गया है, ने याचिकाकर्ता से कहा था कि सीताबी देवी पत्नी रामराज, जो उसकी भाभी थी, अब इस दुनिया में नहीं है और वह उसकी जगह पर दाखिल खारिज कराने का हकदार है। याचिकाकर्ता ने इस संबंध में राजस्व निरीक्षक के समक्ष एक आख्या दी, जिसमें सद्भावनापूर्वक दाखिल खारिज का प्रस्ताव दिया गया था। इसके आधार पर 20.04.2010 का दाखिल खारिज आदेश पारित किया गया। याचिकाकर्ता को पता चला कि धर्मराज द्वारा दी गई सूचना गलत थी। इसलिए उसने तुरंत नायब तहसीलदार से आख्या के साथ संपर्क किया, जिसके परिणामस्वरूप राजस्व निरीक्षक द्वारा 20.04.2010 को दिए गए त्रुटिपूर्ण दाखिल खारिज को नायब तहसीलदार ने 04.05.2010 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया।

8. दूसरे आरोप के बारे में, याचिकाकर्ता का कहना है कि रमेश चंद्र पुत्र जय राम ने उन्हें सूचित किया था कि राम बरन पुत्र राम लाल, जो गांव बारी में पाही कास्तकार थे, जो उनके दादा थे, मर चुके हैं। रमेश चंद्र ने खुद को राम बरन का उत्तराधिकारी और विधिक प्रतिनिधि बताया। याचिकाकर्ता ने सद्भावपूर्वक, उपरोक्त स्थिति को सही मानते हुए, राजस्व निरीक्षक को एक दाखिल-खारिज आख्या दी, जिन्होंने इसके आधार पर 20.04.2010 को दाखिल-खारिज आदेश पारित किया। फिर, जैसे ही याचिकाकर्ता को पता चला कि रमेश चंद्र द्वारा दी गई सूचना गलत थी, उन्होंने तुरंत एक आख्या के साथ नायब तहसीलदार से संपर्क किया, जिसके आधार पर राजस्व निरीक्षक द्वारा दिया गया दाखिल-खारिज 04.05.2010 को रद्द कर दिया गया।

9. तीसरे और चौथे आरोपों के बारे में, याचिकाकर्ता ने अपने बचाव में कहा कि उसने प्रभावित पक्षों की ओर से किसी शिकायत या इस संबंध में किसी उच्च अधिकारी के निर्देश के बिना ही गलत दाखिल-खारिज को रद्द करने के लिए तत्काल कदम उठाए थे। इसलिए, उसने कहा कि वह सद्भावना और अपने कर्तव्यों के दौरान की गई एक मात्र त्रुटि के आधार पर किए गए अपने पूर्व कार्यों के लिए संरक्षण का हकदार है, जिसका उसने सद्भावपूर्वक निर्वहन किया था।

10. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि जांच अधिकारी, नियमावली 1999 के नियम 7 के अनुसार जांच करने की प्रक्रिया का पालन करने में विफल रहे। उन्होंने जांच की कोई तिथि, समय और स्थान तय नहीं किया, जहां संस्थान को आरोपों को सिद्ध करने के लिए अपने साक्ष्य, विशेष रूप से गवाहों को प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता। आरोप पत्र और याचिकाकर्ता के उत्तर को देखने के बाद, जांच अधिकारी ने बिना किसी जांच के जांच आख्या दिनांक 31.08.2010 प्रस्तुत की। जांच अधिकारी ने सभी आरोपों को सिद्ध पाया। याचिकाकर्ता ने जांच आख्या का विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया, जाहिर तौर पर, 31.08.2010 की जांच आख्या की एक प्रति के साथ दिए गए कारण बताओ नोटिस के उत्तर में। याचिकाकर्ता का उत्तर दिनांक 15.09.2010 का है। उप-जिलाधिकारी, मेजा, प्रयागराज, अनुशासनात्मक प्राधिकारी, ने दिनांक 09.12.2010 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया।

11. दण्ड आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने 10.01.2011 को अपीलीय प्राधिकारी, प्रयागराज जिलाधिकारी के समक्ष एक वैधानिक अपील प्रस्तुत की। रिट-ए संख्या 18116 सन् 2011 प्रस्तुत की गई, जिसमें मांगी गई राहत बिल्कुल स्पष्ट नहीं है, जिस पर इस न्यायालय ने अपीलीय प्राधिकारी को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता की लंबित अपील का निपटारा उपरोक्त रिट याचिका में पारित आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से दो माह के भीतर विधि के अनुसार किया जाए। यह आदेश इस न्यायालय द्वारा 29.03.2011 को पारित किया गया। प्रयागराज के जिलाधिकारी, अपीलीय प्राधिकारी ने 30.04.2011 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की अपील खारिज कर दी। इसके बाद याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 40747 सन् 2011 के अन्तर्गत इन दोनों आदेशों को चुनौती दी। उक्त रिट याचिका में विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आपत्ति उठाई कि अपीलीय आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता के पास नियमावली 1999 के नियम 13 के अन्तर्गत राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण के माध्यम से अभी भी एक वैकल्पिक उपाय है। इस न्यायालय ने चुनौती को बरकरार रखते हुए और विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिए गए वैकल्पिक उपाय की प्रभावकारिता पर भरोसा करते हुए, इस आधार पर रिट याचिका को खारिज कर दिया और परिणाम स्वरूप 22.07.2011 के आदेश के अन्तर्गत याचिकाकर्ता को पदावनत कर दिया गया।

12. याचिकाकर्ता ने 04.08.2011 को राज्य सरकार के समक्ष एक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया, जिसे प्रमुख सचिव, राजस्व विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार को संबोधित किया गया। उक्त पुनरीक्षण को राज्य सरकार की ओर से कार्यरत प्रमुख सचिव, राजस्व विभाग द्वारा नियम 13 के अन्तर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए खारिज कर दिया और कारण के रूप में दर्शाया कि:-

"7- उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में श्री जगमोहन, लेखपाल, क्षेत्र बरी, तहसील मेजा, जनपद इलाहाबाद द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण अभ्यावेदन जिलाधिकारी की आख्या तथा पत्रावली में उपलब्ध अन्य अभिलेखों का भलीभाँति परीक्षण किया गया और यह पाया गया कि श्री जगमोहन, लेखपाल के पुनरीक्षित अभ्यावेदन दिनांक 04-08-2011 में उल्लिखित तथ्यों में कोई बल नहीं है। अतः वर्णित स्थिति में श्री जगमोहन, लेखपाल, (पदच्युत) क्षेत्र

बरी, तहसील मेजा, जनपद इलाहाबाद का पुनरीक्षण अभ्यावेदन दिनांक 04-08-2011 आधारहीन एवं तथ्यों से परे होने के कारण एतद्वारा निरस्त करते हुए निस्तारित किया जाता है।"

13. पुनः, याचिकाकर्ता तीसरी बार इस न्यायालय में प्रस्तुत हुआ और रिट-ए संख्या 40170 सन् 2013 के माध्यम से सभी आदेशों अर्थात् अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश, अपीलीय आदेश और पुनरीक्षण आदेश को चुनौती दी। इस बार, इस न्यायालय ने रिट याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता के पास उत्तर प्रदेश लोक सेवा अधिकरण अधिनियम, 1976 (संक्षेप में, '1976 का अधिनियम') की धारा 4 के अन्तर्गत एक वैधानिक वैकल्पिक उपाय था। इस समय तक, याचिकाकर्ता को इस न्यायालय द्वारा गुण-दोष के आधार पर नहीं सुना गया था। याचिकाकर्ता ने दावा याचिका संख्या 258 सन् 2014 प्रस्तुत की, जिसमें अनुशासनात्मक प्राधिकारी, अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित तीनों आदेशों पर प्रश्न उठाया गया, जिससे उसकी सेवाएं समाप्त की गई थी। न्यायाधिकरण ने दिनांक 06.02.2015 के आदेश द्वारा दावा याचिका को अनुमति दी प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभागीय जाँच को उसकी उपस्थिति में साक्ष्य दर्ज करने के चरण से नए सिरे से आगे बढ़ाने और उसे गवाहों से जिरह करने तथा अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई। न्यायाधिकरण के निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से चार महीने की अवधि के भीतर जाँच पूरी करने का निर्देश दिया गया। याचिकाकर्ता को यह राहत क्यों दी गई, यह न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 06.02.2015 के अपने निर्णय में की गई निम्नलिखित टिप्पणियों से स्पष्ट होगा:

"6. बर्खास्तगी के आदेश पर मुख्य रूप से इस आधार पर आपत्ति की गई है कि जांच अधिकारी ने आरोपों के समर्थन में किसी गवाह से पूछताछ नहीं की है और याचिकाकर्ता को जिरह का अवसर नहीं दिया गया है और जांच करने के लिए कोई तिथि, समय और स्थान तय नहीं किया गया था, इस प्रकार जांच उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 के नियम 7 के प्रावधानों के अनुसार नहीं की गई थी, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

7. इस संबंध में हमने उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं दण्ड) नियमावली, 1999 के नियम 7(vii) का अवलोकन किया है जो इस प्रकार है:-

जहाँ आरोपित सरकारी सेवक आरोपों से इनकार करता है, वहाँ जाँच अधिकारी आरोप-पत्र में प्रस्तावित गवाहों को बुलाएगा और आरोपित सरकारी सेवक की उपस्थिति में उनके मौखिक साक्ष्य दर्ज करेगा। आरोपित सरकारी सेवक को ऐसे गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाएगा। उपरोक्त साक्ष्य दर्ज करने के बाद, जाँच अधिकारी उन मौखिक साक्षियों को बुलाएगा और दर्ज करेगा, जिन्हें आरोपित सरकारी सेवक ने अपने लिखित बयान में अपने बचाव में प्रस्तुत करने की इच्छा व्यक्त की थी।

8. अभिलेखों के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को विभागीय जाँच के मददेनजर दिनांक 12.5.2010 के आदेश के अन्तर्गत निलंबित किया गया था और याचिकाकर्ता को दिनांक 19.7.2010 को चार आरोपों वाला आरोप-पत्र जारी किया गया था। याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए मुख्य आरोप गलत और अवैध दाखिल-खारिज से संबंधित हैं, जो याचिकाकर्ता द्वारा किया गया था। हमने दिनांक 31.8.2010 की जाँच आख्या का भी अवलोकन किया है, जिससे पता चलता है कि जाँच अधिकारी ने जाँच के लिए कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया था और आरोपों को सिद्ध करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई थी। याचिकाकर्ता को गवाहों से जिरह करने का भी कोई अवसर नहीं दिया गया और जाँच अधिकारी ने केवल आरोप-पत्र के उत्तर पर विचार किया और 31.8.2010 को जाँच आख्या प्रस्तुत की, जिसमें उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध पाया गया। आरोप पत्र के अवलोकन से स्पष्ट है कि तहसीलदार, मेजा की दिनांक 07.5.2010 की आख्या को साक्ष्य के रूप में उद्धृत किया गया था, लेकिन जांच अधिकारी ने आरोपों को सिद्ध करने के लिए तहसीलदार, मेजा से पूछताछ नहीं की है।

9. उपरोक्त नियम के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जब याचिकाकर्ता अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार करता है तो जांच अधिकारी के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह आरोपों के समर्थन में गवाहों के मौखिक साक्ष्य याचिकाकर्ता की उपस्थिति में दर्ज करने के लिए तिथि, समय और स्थान निर्धारित करे लेकिन वर्तमान मामले में कभी भी मौखिक जांच नहीं की गई और किसी गवाह की न तो उसकी उपस्थिति में और न ही अनुपस्थिति में जांच की गई, इसलिए जांच उपरोक्त नियमों के प्रावधानों के अनुसार नहीं की गई है। याचिकाकर्ता को गवाहों से जिरह करने का अवसर भी नहीं दिया गया। जांच अधिकारी के लिए यह अनिवार्य था कि वह गवाहों से जिरह करने का अवसर प्रदान करता, चाहे याचिकाकर्ता इसके लिए अनुरोध करता या नहीं। याचिकाकर्ता को बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं दिया गया। इस प्रकार यह बिना किसी संदेह के स्थापित हो जाता है कि जांच, नियमों के प्रावधानों के अनुसार नहीं की गई है और याचिकाकर्ता को बचाव का उचित अवसर भी नहीं दिया गया। इसलिए जांच आख्या दोषपूर्ण है और दोषपूर्ण जांच आख्या के आधार पर, पदधारी को कोई दंड नहीं दिया जा सकता।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 2010(2) सुप्रीम कोर्ट केस 772 उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा के मामले में भी निम्न प्रकार से निर्णय दिया है:

एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्यरत एक जाँच अधिकारी एक स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जाँच करना है, यहाँ तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी, यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य आरोपों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। वर्तमान मामले में उपर्युक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूँकि किसी मौखिक साक्ष्य की जाँच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज़ सिद्ध नहीं हुए हैं और यह निष्कर्ष निकालने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता था कि प्रतिवादियों के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं।

11. उपरोक्त न्याय दृष्टांतीय स्थिति के आलोक में, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई विभागीय जाँच निर्धारित नियमों के अनुसार नहीं थी। कोई मौखिक साक्ष्य दर्ज नहीं किया गया। याचिकाकर्ता की उपस्थिति में या उसकी अनुपस्थिति में किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई। याचिकाकर्ता को गवाहों से जिरह का अवसर नहीं दिया गया, अतः अनियमितता के आधार पर, की गई जाँच विधिसम्मत नहीं कही जा सकती और निरस्त किए जाने योग्य है। अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी ने भी दिनांक 30.4.2011 और 22.4.2013 के आदेश पारित करने से पूर्व इन बिंदुओं पर विचार नहीं किया, अतः वे भी निरस्त किए जाने योग्य हैं। इस प्रकार, इस तकनीकी आधार पर, आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं है और निरस्त किए जाने योग्य है।

12. वर्तमान मामले में कोई मौखिक जांच नहीं की गई थी और याचिकाकर्ता को सूचित करते हुए कोई तिथि, समय और स्थान तय नहीं किया गया था, इसलिए, पूरी जांच दोषपूर्ण है और दोषपूर्ण जांच के आधार पर याचिकाकर्ता को कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता।

2003 (21) एलसीडी 610 राधे कांत खरे बनाम यूपी कार्पोरेशन शुगर फैक्ट्रीज फेडरेशन लिमिटेड में माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद (लखनऊ बेंच) की खंडपीठ ने दीर्घ शास्ति देने से पहले जांच की प्रक्रिया से निपटते हुए निम्नानुसार माना है:

"कर्मचारी को आरोप-पत्र दिए जाने के बाद मौखिक पूछताछ अनिवार्य है, चाहे कर्मचारी इसके लिए अनुरोध करे या नहीं। इसलिए उसे पूछताछ की तिथि, समय और स्थान बताते हुए एक नोटिस जारी किया जाना चाहिए।"

14. न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.02.2015 के अनुपालन में, उपजिलाधिकारी, मेजा, प्रयागराज ने दिनांक 27.04.2015 को एक आदेश पारित कर याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल कर दिया और उसी समय जांच लंबित रहने तक उसे निलंबित कर दिया। न्यायाधिकरण के निर्देशों पर कार्यवाई करते हुए आरोप पत्र के चरण से जांच पुनः आयोजित करने का प्रस्ताव था। याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 23323 सन् 2015 के माध्यम से आदेश के उस हिस्से को चुनौती दी जिसमें उसे सेवा से निलंबित करने का निर्देश दिया गया था। इस न्यायालय ने 19.05.2015 को प्रस्ताव का नोटिस जारी किया और निलंबन के आदेश पर रोक लगा दी, जिसमें प्रतिवादियों को, याचिकाकर्ता को, कोई काम न सौंपने का विवेकाधिकार भी दिया गया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने न्यायाधिकरण के निर्णय से परे जाकर याचिकाकर्ता को दिनांक 02.06.2015 को एक नया आरोप पत्र जारी किया। दिनांक 02.06.2015 के आरोप-पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता के विरुद्ध चार आरोप लगाए गए:

"प्रथम आरोप- आपके विरुद्ध प्रथम आरोप यह है कि ग्राम बरी के खाता सं० 198, 39 पर दर्ज सितावी देवी पत्नी रामराज की मृत दिखाकर धर्मराज पुत्र ठाकुर प्रसाद नि० बेदौली प० क० 0 11 क पर आदेश 20.04.2010 द्वारा वरासतन दर्ज करा दिया है जब कि मूल खातेदार सितावी देवी पत्नी रामराज अभी जीवित है। इस प्रकार

जीवित को मृतक दिखाकर उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति के नाम वरासत दर्ज कराकर हितवद्ध होकर लाभ पहुंचाने के दोषी है।

साक्ष्य में तहसीलदार मेजा की आख्या दिनांक 07.05.2010 पठनीय है।

द्वितीय आरोप- आपके विरुद्ध दूसरा आरोप यह है कि ग्राम बरी के खाता संख्या 120 पर दर्ज खातेदार राम बरन पुत्र राम लाल के मृत होने पर उनके वारिसान सभाजीत पुत्र रामबरन व विनय कुमार पुत्र कमलेश चन्द्र का नाम वरासतन दर्ज न कराकर अन्य व्यक्ति रमेश चन्द्र पुत्र जयनरायन नि० बेदौली का नाम वजरिए वरासत दिनांक 20.04.2010 को आदेश पारित कराकर दर्ज करा दिया। इस प्रकार अवैधानिक कार्य करके आवंछित व्यक्ति को अनुचित लाभ पहुंचाने के दोषी है।

साक्ष्य में तहसीलदार मेजा की आख्या दिनांक 07.05.2010 पठनीय है।

तृतीय आरोप- आपके विरुद्ध तीसरा आरोप यह है कि आपने अपने पदेन दायित्वों का निर्वहन नहीं किया और स्वेच्छा चारिता पूर्वक हितवद्ध होकर अनुचित रूप से दूसरे व्यक्तियों के नाम वरासत दर्ज कराकर लाभ पहुंचाने के दोषी है।

चौथा आरोप- आपके विरुद्ध चौथा आरोप यह है कि आप एक लापरवाह कमचारी हैं और भ्रूमाफियों से सांठ-गाठ करके उन्हें लाभ पहुंचाने के दोषी हैं और आप द्वारा कर्मचारी आचार संहिता का उल्लंघन किया है। आपके इस कृत्य से आप सरकारी सेवा में रहने योग्य नहीं हैं।"

15. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के प्रस्तर संख्या 25 में यह तर्क दिया है कि न्यायाधिकरण के निर्णय के अन्तर्गत नए सिरे से की गई जांच में, संस्थान ने आरोपों के समर्थन में गवाह प्रस्तुत नहीं किए और न ही याचिकाकर्ता को उनसे जिरह करने का अवसर दिया। 06.02.2016 की जांच आख्या प्रस्तुत की गई, जिसमें पहला और दूसरा आरोप सिद्ध पाया गया, लेकिन तीसरा और चौथा आरोप सिद्ध नहीं हुआ। उप-जिलाधिकारी ने, इस अवसर पर, याचिकाकर्ता को उत्तर देने के लिए सक्षम बनाने हेतु जांच आख्या की प्रति के साथ कारण बताओ नोटिस नहीं दिया। इसके बजाय, याचिकाकर्ता के उत्तर के बिना जांच आख्या पर विचार करते हुए, उप-जिलाधिकारी ने 30.04.2024 के आदेश के अन्तर्गत याचिकाकर्ता को निम्नलिखित रूप से दंडित किया:

- (1) याचिकाकर्ता को निलंबन की अवधि के लिए कोई पारिश्रमिक नहीं मिलेगा;
- (2) याचिकाकर्ता को पहले दी गई दण्ड वही रहेगी; और,
- (3) याचिकाकर्ता को आदेश में निर्धारित शर्तों के अनुसार निंदा प्रविष्टि दी गई थी।

16. बाद में, दिनांक 04.05.2016 के आदेश के अन्तर्गत, दिनांक 30.04.2016 के दण्ड आदेश को संशोधित किया गया ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि प्रस्तर संख्या 8 की नौवीं पंक्ति में, याचिकाकर्ता को सेवा से

निलंबन की अवधि के लिए उसके परिलब्धियों से वंचित करने के निर्देश का, गलत उल्लेख किया गया था, जिसे सेवा से निष्कासन की अवधि के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

17. याचिकाकर्ता ने दिनांक 30.04.2016 और 04.05.2016 के आदेशों से व्यथित होकर 28.06.2016 को जिलाधिकारी, प्रयागराज के समक्ष एक वैधानिक अपील प्रस्तुत की। उन्होंने अन्य दलीलों के अतिरिक्त, जांच में साक्ष्य प्रस्तुत करके संस्थान द्वारा अपना मामला सिद्ध नहीं करने की भी प्रस्तुति की। यह अपील जिलाधिकारी के पास तीन वर्षों से अधिक समय तक लंबित रही। इसके बाद याचिकाकर्ता ने जिलाधिकारी द्वारा उसकी वैधानिक अपील के निर्णय में देरी की शिकायत करते हुए रिट-ए संख्या 4728 सन् 2019 प्रस्तुत की। इस न्यायालय ने, तदनुसार, जिलाधिकारी को निर्देश देते हुए रिट-ए संख्या 4728 सन् 2019 का निपटारा कर दिया कि *'सभी तथ्यों के सत्यापन के अधीन, याचिकाकर्ता की लंबित वैधानिक अपील पर ध्यान दिया जाएगा और विधि के अनुसार निपटारा किया जाएगा, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो महीने की अवधि के भीतर।'*

18. इस न्यायालय द्वारा पारित अंतिम उल्लिखित आदेश के अनुपालन में, जिलाधिकारी, प्रयागराज ने याचिकाकर्ता की अपील को दिनांक 02.03.2021 के आदेश के अन्तर्गत तय किया, जिसमें 30.04.2016 के दंड आदेश को रद्द कर दिया गया, जिसमें दिनांक 04.05.2016 का इसे संशोधित करने वाला आदेश भी सम्मिलित है, और उप- जिलाधिकारी कोरांव को विधि के अनुसार अभिलेखों की जांच के बाद नए सिरे से उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। उप-जिलाधिकारी ने लगभग छह महीने तक जिलाधिकारी, प्रयागराज द्वारा पारित दिनांक 02.03.2021 के आदेश का पालन नहीं किया, जिसके कारण याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 17166 सन् 2021 स्थापित की, जिसमें प्रार्थना की गई कि जिलाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 02.03.2021 के आदेश के अनुसार उचित आदेश पारित करने के लिए उप-जिलाधिकारी को एक परमादेश जारी किया जाए। इस याचिका का निपटारा दिनांक 07.12.2021 के आदेश के अन्तर्गत उप-जिलाधिकारी, कोरांव, प्रयागराज को निर्देश दिया गया कि वे जिलाधिकारी, प्रयागराज द्वारा पारित दिनांक 02.03.2021 के आदेश का पालन करें और विधि के अनुसार नए आदेश पारित करें, अधिमानतः अंतिम उल्लिखित रिट याचिका में पारित आदेश की प्रमाणित प्रति की प्राप्ति की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर। इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 17166 सन् 2021 में पारित दिनांक 07.12.2021 के आदेश का उप-जिलाधिकारी, कोरांव या जिलाधिकारी के आदेश का अनुपालन नहीं किया गया, जिसे इस न्यायालय द्वारा परमादेशित किया गया था। उप-जिलाधिकारी ने मामले को कुछ और महीनों के लिए 28.02.2022 तक अपने पास लंबित रखा, तब जब याचिकाकर्ता सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से सेवानिवृत्त हो गया।

19. याचिकाकर्ता ने सेवानिवृत्ति के बाद उप-जिलाधिकारी, कोरांव से संपर्क किया और जिलाधिकारी के आदेश को लागू करने के लिए अनुस्मारक भी भेजे, लेकिन सब व्यर्थ रहा। उन्होंने जिलाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 02.03.2021 के आदेश का पालन नहीं किया। उप-जिलाधिकारी द्वारा निरंतर निष्क्रियता से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अविनाश यादव, तत्कालीन उप-जिलाधिकारी, कोरांव, प्रयागराज के विरुद्ध अवमानना आवेदन

(सिविल) संख्या 6545 सन् 2023 प्रस्तुत किया। उक्त अवमानना आवेदन का निपटारा दिनांक 12.09.2023 के आदेश द्वारा किया गया, जिसमें उस आवेदन के अवमाननाकर्ता-विपक्षी को रिट पक्ष पर इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 07.12.2021 के आदेश का पालन करने के लिए तीन महीने का अतिरिक्त समय दिया गया। उप-जिलाधिकारी ने उस अवसर का लाभ नहीं उठाया और याचिकाकर्ता का कहना है कि उप-जिलाधिकारी ने स्वेच्छा और जानबूझकर इस न्यायालय द्वारा रिट पक्ष और अवमानना प्रार्थना पत्र में पारित दिनांक 07.12.2021 के आदेशों की अवहेलना की, जिससे याचिकाकर्ता को अविनाश यादव, उप-जिलाधिकारी, कोरांव के विरुद्ध दूसरी बार अवमानना प्रार्थना (सिविल) संख्या 775 सन् 2024 प्रस्तुत करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस न्यायालय ने अंतिम उल्लिखित अवमानना प्रार्थना पत्र में दिनांक 06.03.2024 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"1. इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 17166 सन् 2021 में पारित दिनांक 07.12.2021 के आदेश की विचारपूर्वक अवज्ञा करने के कारण तत्काल अवमानना आवेदन प्रस्तुत किया गया है, विपक्षी पक्ष द्वारा विचारपूर्वक आज तक आवेदक के मामले पर पुनर्विचार नहीं किया गया है।

2. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने उप-जिलाधिकारी, कोरांव, जिला प्रयागराज द्वारा हस्ताक्षरित निर्देश दिनांकित 05.03.2024 की प्रति आज न्यायालय में प्रस्तुत की है, जिसे अभिलेख पर लिया गया है। उपरोक्त निर्देशों की प्रति आवेदक के विद्वान अधिवक्ता को प्रदान की गई है।

3. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने, निर्देशों के आधार पर कहा है कि डीजीसी (सिविल) से विधिक सलाह मांगी गई है कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पालन किया जा सकता है या नहीं। संबंधित अधिकारी की ओर से यह अत्यंत खेदजनक स्थिति है, जिन्होंने निर्देश दिया है कि इस न्यायालय के आदेश का पालन डीजीसी (सिविल) से विधिक सलाह लेने के बाद ही किया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि संबंधित प्राधिकारी स्वयं को इस न्यायालय से श्रेष्ठ बताकर, ऐसा करने से स्वयं को रोक रहे हैं। यह इस मामले में दूसरी अवमानना है। विपक्षी द्वारा किया गया आचरण अत्यंत निंदनीय है।

4. न्याय के हित में, अंतिम अवसर के रूप में, विपक्षी को एक माह का समय दिया जाता है, इससे अधिक नहीं, कि वह या तो इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का अनुपालन करें या कारण बताएं कि क्यों न उनके विरुद्ध अवमानना कार्यवाही शुरू की जाए

5. इस मामले को 22.04.2024 को अतिरिक्त वाद सूची में डालें।"

20. याचिकाकर्ता का पक्ष यह है कि उपरोक्त आदेश प्राप्त होने पर, जल्दबाजी में और बिना सोचे-समझे, उप-जिलाधिकारी, कोरांव ने दिनांक 16.04.2024 को एक आदेश पारित कर याचिकाकर्ता को बहाल कर दिया और उसे उसके प्रारंभिक वेतनमान पर घटा दिया। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता को सेवा से बाहर रहने की अवधि

का वेतन देने से भी मना कर दिया गया। निन्दा प्रविष्टि भी की गई। उप-जिलाधिकारी द्वारा इस आदेश को 30.04.2024 को संशोधित किया गया, यह देखते हुए कि याचिकाकर्ता सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका है और अब उसे बहाल नहीं किया जा सकता। संशोधित दंड आदेश इस प्रकार है:

"अपचारी कर्मचारी श्री जगमोहन लेखपाल के विभागीय कार्यवाही में जिलाधिकारी महोदय, प्रयागराज के पत्रांक459/भूलेख सात 2020-21 दिनांक 02 मार्च 2021 के अनुपालन में अधोहस्ताक्षरी के कार्यालय पत्रांक-2914 / एस 0 टी0 कोरांव - 2024 दिनांक 16. 04.2024 से निर्गत आदेश के पृष्ठसंख्या 02 के पैरा संख्या-02 में आंशिक संशोधन करते हुए उसके स्थान पर निम्न आदेश पारित किया जाता है.

"मेरे द्वारा जांच अधिकारी की जांच आख्या व अपचारी कर्मचारी के उत्तर / जवाब व पत्रावली में संलग्न साक्ष्यों के अनुशीलन करने के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि अपचारी कर्मचारी ने जानबूझकर जीवित खातेदार को मृतक दिखाकर वरासत दर्ज किया है, जिसके लिए अपचारी कर्मचारी पूर्ण रूपेण दोषी है। अपचारी कर्मचारी का यह कृत्य कर्मचारी आचरण नियमावली के विपरीत है। अपचारी कर्मचारी दिनांक 28.02.2022 को सेवानिवृत्त हो चुके हैं। अपचारी कर्मचारी को पृथक काल का वेतन अदेय करते हुए विभागीय कार्यवाही समाप्त की जाती है।"

21. उप-जिलाधिकारी, कोरांव, प्रयागराज द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.04.2024, यथा संशोधित 30.04.2024 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत वर्तमान रिट याचिका संस्थित की है।

22. इस न्यायालय द्वारा 09.08.2024 को याचिका की सूचना जारी की गई और प्रतिवादी संख्या 3 और 4 की ओर से 05.09.2024 को न्यायालय में प्रति-शपथपत्र प्रस्तुत किया गया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्युत्तर-शपथपत्र प्रस्तुत करने के अपने अधिकार का त्याग कर दिया। याचिका को सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया, जो तत्काल शुरू हुई। निर्णय सुरक्षित रखा गया।

23. याचिकाकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री शारदा विश्वकर्मा और राज्य की ओर से उपस्थित अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता सुश्री मोनिका आर्य को सुना गया।

24. इस मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि यह सत्य है, जैसा कि इस निर्णय के शुरुआती प्रस्तरों में कहा गया है, कि न्यायाधिकरण द्वारा मामले को पुनः जाँच के लिए वापस भेजे जाने के बाद, जाँच अधिकारी ने विभागीय जाँच की उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया, जहाँ दीर्घ शास्ति दिए जाने की संभावना थी। यह भी एक ऐसा मामला है जहाँ नियमावली 1999 के नियम 7 का उल्लंघन उसी दोष के लिए है, जो ऐसी जाँचों को नियंत्रित करने वाले उचित सिद्धांतों का, उल्लंघन करता है।

25. रिट याचिका के प्रस्तर संख्या 43 और 44 में, यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जाँच अधिकारी ने जाँच के लिए कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया, न ही उन्होंने आरोपों को सिद्ध करने के लिए संस्था से मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करने या गवाहों से पूछताछ करने की अपेक्षा की। प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत प्रति-शपथपत्र के, प्रस्तर संख्या 43 और 44 में दिए गए दावों का न तो प्रभावी रूप से खंडन किया गया है और न ही यह दर्शाया गया है कि किसी दीर्घ शास्ति मामले में वैध विभागीय जाँच के लिए आवश्यक प्रक्रिया का पालन किया गया था।

26. किसी ऐसे मामले में जो जाँच से संबंधित हो, जहाँ कोई दीर्घ शास्ति दिया जा सकता हो, यह अनिवार्य है कि जाँच के लिए एक तिथि, समय और स्थान निर्धारित किया जाए, जिसकी सूचना आरोपी और संस्थान दोनों को दी जाए। जाँच अधिकारी के समक्ष, जो सुनवाई नियत तिथि, समय और स्थान पर होनी है, वह प्रथम दृष्टया आरोपों को सिद्ध करने के लिए संस्थान के साक्ष्य की सुनवाई है। ऐसा करते समय, जाँच अधिकारी को एक औपचारिक जाँच न्यायाधिकरण के रूप में स्वयं को स्थापित करना होगा, और स्वयं को संस्थान से दूर रखना होगा, जिसका वह अन्यथा हिस्सा हो सकता है। उसे संस्थान से, उनके प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के माध्यम से, आरोपी के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने के लिए, दस्तावेजी और मौखिक, अर्थात् गवाह, दोनों साक्ष्य प्रस्तुत करने की अपेक्षा करनी होगी। संस्थान द्वारा आरोपों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के बाद, गवाहों को, आरोपी को जिरह के लिए सौंपना होगा। अगले चरण में आरोपी को अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कहा जा सकता है, जो दस्तावेजी और मौखिक दोनों हो सकते हैं। यदि आरोपी गवाहों से पूछताछ करता है, तो वे उसी प्रकार संस्थान द्वारा जिरह के लिए, उपलब्ध होंगे। यदि आरोपी कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करता है, तो जाँच अधिकारी आरोपों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने के भार से संस्थान को मुक्त नहीं कर सकता।

27. जांच अधिकारी आरोप-पत्र और लिखित बयान तथा संलग्न कागजातों को देखने के बाद यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता कि आरोपी कर्मचारी दोषी है। जांच अधिकारी को संस्थान से, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, दस्तावेजी और मौखिक दोनों साक्ष्यों के माध्यम से आरोपों को सिद्ध करने की मांग करनी होगी। वर्तमान मामले में, जैसा कि अभियोग से पता चलता है, जांच अधिकारी द्वारा की गई हितकारी प्रक्रिया के उल्लंघन के बारे में न्यायाधिकरण द्वारा 06.02.2015 के रिमांड के निर्णय में विशिष्ट टिप्पणियों के बावजूद, जो कि नियमावली 1999 के नियम 7 के भी विपरीत है, की गई नए सिरे से जांच में, जांच अधिकारी ने संस्थान से नियत तिथि, समय और स्थान पर गवाहों सहित साक्ष्य प्रस्तुत करने की मांग नहीं की। जांच में, सुनवाई का तात्पर्य संस्थान के गवाहों और उनके साक्ष्य को सुनना है। यहाँ, ऐसा प्रतीत होता है कि जांच अधिकारी ने सोचा कि आरोप स्वयं प्रमाण हैं और याचिकाकर्ता अपने उत्तर से आरोपों को खारिज नहीं कर पाया है। जांच अधिकारी द्वारा किसी भी साक्ष्य को अनिवार्य तरीके से नहीं सुना गया, जो कि हितकर सिद्धांत और नियमावली 1999 के नियम 7 के प्रावधानों के अनुसार था।

28. जांच अधिकारी द्वारा जांच करने में पालन की जाने वाली हितकारी प्रक्रिया के संबंध में विधि की स्थिति, जिससे एक दीर्घ शास्ति लगाया जा सकता है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा , (2010) 2 एससीसी 772, रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य , (2009) 2 एससीसी 570, उत्तरांचल राज्य और अन्य बनाम खड़क सिंह , (2008) 8 एससीसी 236 और यूपी राज्य और अन्य बनाम किशोरी लाल और अन्य , 2018 (9) एडीजे 397 (डीबी) (एलबी), और इस न्यायालय के खंडपीठ के निर्णयों के मददेनजर अच्छी तरह से स्थापित है। श्रीमती करुणा जायसवाल बनाम यूपी राज्य, 2018 (9) एडीजे 107 (डीबी) (एलबी) और यूपी राज्य बनाम आदित्य प्रसाद श्रीवास्तव और अन्य, 2017 (2) एडीजे 554 (डीबी) (एलबी)।

29. इस संबंध में विधि की स्थिति जो समय की कसौटी पर खरी उतरी है, को हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने सत्येंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3325 में समर्थन दिया है, जहां यह माना गया है:

"12. राज्य के विद्वान अधिवक्ता अपीलकर्ता के अधिवक्ता के इस तर्क से सहमत थे कि जांच कार्यवाही के दौरान किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई थी। जांच आख्या के सूक्ष्म मूल्यांकन से यह स्पष्ट है कि जांच का आधार बनने वाले तथाकथित अनियमित लेनदेन से संबंधित दस्तावेजों का उल्लेख करने के अतिरिक्त, जांच अधिकारी, अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने के लिए एक भी गवाह का साक्ष्य दर्ज करने में विफल रहे।

13. इस न्यायालय ने अनेक निर्णयों में यह माना है कि किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही में, जिसमें किसी दीर्घ शास्ति का प्रस्ताव हो, साक्ष्यों का अभिलेखन अनिवार्य है। इस संबंध में रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक , (2009) 2 एससीसी 570 और निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य , (2013) 4 एससीसी 301 का संदर्भ लिया जा सकता है।

30. यदि याचिकाकर्ता सेवा में होता, तो यह उसी आरोप-पत्र पर पुनः जाँच के लिए 'रिमांड' पर लेने का मामला होता, जिसमें प्रतिवादियों के विरुद्ध लागत की माँग की गई होती, इस बार जाँच में, बार-बार त्रुटिपूर्ण प्रक्रिया अपनाने के लिए। लेकिन, इस मामले में स्थिति में एक सामान्य परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन याचिकाकर्ता की अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित रहने के दौरान उनकी सेवानिवृत्ति के कारण आया है। अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित रहने के दौरान सेवानिवृत्त होने वाले किसी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित किया जा सकने वाला आदेश सिविल सेवा विनियम (संक्षेप में 'सीएसआर') के अनुच्छेद 351-क द्वारा शासित होता है। याचिकाकर्ता जैसे उत्तर प्रदेश सरकार में कार्यरत सरकारी सेवकों के मामले में, राज्यपाल की अनुमति के बिना सेवानिवृत्ति के बाद लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने पर कोई रोक नहीं है। हालाँकि, सेवानिवृत्त सरकारी सेवक को दी जा सकने वाली सज़ाएँ सीएसआर के अनुच्छेद 351-क के अंतर्गत निर्धारित दंडों तक ही सीमित हैं। अनुच्छेद 351-क के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग केवल राज्यपाल द्वारा किया जा सकता

है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा नहीं। दी जाने वाली दण्ड, पेंशन या उसके किसी भाग को रोकने या वापस लेने तक सीमित है, इसके अतिरिक्त कर्मचारी की पेंशन से राज्य को हुए किसी भी नुकसान की वसूली का अधिकार भी है। इस शक्ति का प्रयोग तब किया जा सकता है जब कर्मचारी का कदाचार गंभीर पाया जाता है या जिससे सरकार को आर्थिक नुकसान हुआ हो। कदाचार की गंभीरता चाहे जो भी हो, नियमावली 1999 के अन्तर्गत, सेवा में रहते हुए, कर्मचारी पर जो दण्ड लगाई जा सकती हैं, वे नहीं दी जा सकतीं। कर्मचारी के सेवा में रहते हुए, दी जा सकने वाली दण्ड नियमावली 1999 के नियम 3 में वर्णित हैं। इन्हें मोटे तौर पर 'लघु' और दीर्घ' दंडों में विभाजित किया गया है। नियमावली 1999 के नियमों का नियम 3 इस प्रकार है:

“3. शास्तियाँ”

यहां दर्शायी गयी शास्तियाँ उचित एवं उपर्युक्त कारणों से सरकारी कर्मचारी पर लगायी जा सकती है:

लघु शास्तियाँ

(एक) परिनिन्दा,

(दो) किसी विनिर्दिष्ट अवधि के लिए वेतन वृद्धि को रोकना,

(तीन) किसी दक्षतरोध को रोकना,

(चार) आदेशों की उपेक्षा या उनका उल्लंघन करने के कारण सरकार को हुई आर्थिक हानि को पूर्णतः या अंशतः वेतन में चसूल किया जाना,

(पांच) समूह "च" पदों को धारण करने वाले व्यक्तियों के मामले में जुर्माना: परन्तु ऐसे जुर्माने की धनराशि किसी भी स्थिति में, उस मांस के वेतन के, जिसमें जुर्माना अधिरोपित किया गया है, पच्चीस प्रतिशत से अधिक नहीं होगी।

दीर्घ शास्तियाँ:

(एक) संचयी प्रभाव के साथ वेतन वृद्धि का रोकना

(दो) किसी निम्नतर पद या श्रेणी या समय वेतनमान बा किसी समय वेतनमान में निम्नतर प्रक्रम पर अवनति करना,

(तीन) सेवा से हटाना जो भविष्य में नियोजन से निरहित नहीं करता हो,

(चार) सेवा से पदच्युति जो भविष्य में नियोजन से निरहित करता हो।

स्पष्टीकरण: इस नियम के अर्थ के अन्तर्गत निम्नलिखित को शास्ति की कोटि में नहीं माना जायेगा, अर्थात् :-

(एक) किसी विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करने में विफल रहने पर या सेवा को शासित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार किसी अन्य शर्त को पूरा करने में विफल रहने पर किसी सरकार सेवक की वेतनवृद्धि का रोकना,

(दो) दक्षता रोक पार करने के लिए उपयुक्त न पाये जाने के कारण समय वेतनमान में दक्षता रोक पर वेतन का रुक जाना।

(तीन) सेवा में परिवीक्षा पर नियुक्त किसी व्यक्ति का परिवीक्षा अवधि के दौरान या उसकी समाप्ति कर नियुक्त के निबंधन या ऐसी परिवीक्षा को शासित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार सेवा में प्रतिवर्तन, (चार) परिवीक्षा पर नियुक्त किसी व्यक्ति की परिवीक्षा अवधि के दौरान या उसकी समाप्ति पर सेवा के निबंधन या ऐसी परिवीक्षा को शासित करने वाले नियमों और आदेशों के अनुसार, सेवा का पर्यवस्थान,"

31. यदि याचिकाकर्ता सेवा में होता, तो भी 30.04.2024 के संशोधित आदेश के बाद जो दंड दिया गया है, अर्थात् बर्खास्तगी के आदेश के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता के सेवा से बाहर रहने की अवधि के लिए वेतन से वंचित करना, वैध रूप से नहीं दिया जा सकता था। कारण यह है कि यह नियमावली 1999 के नियम 3 के अंतर्गत परिकल्पित दंडों में से एक नहीं है। यदि याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति से पहले सेवा में बहाल कर दिया गया होता, तो यह आदेश बर्खास्तगी आदेश के कारण सेवा से बाहर रहने की अवधि के लिए याचिकाकर्ता को देय परिलब्धियों के संबंध में दिया गया आदेश हो सकता था, जिसे बाद में 'रिमांड' के साथ रद्द कर दिया गया।

32. वर्तमान स्थिति में, याचिकाकर्ता एक सेवानिवृत्त कर्मचारी है और एक सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी को कौन सी दण्ड दी जा सकती है, इसे गया प्रसाद यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य जरिये प्रमुख सचिव और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 685 में इस न्यायालय की खंडपीठ की टिप्पणियों से अच्छी तरह समझा जा सकता है। गया प्रसाद यादव (उपरोक्त) में, जो सशस्त्र पुलिस के एक कांस्टेबल से संबंधित मामला था, इस न्यायालय ने माना:

"31. इसलिए, इस मामले में यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या ऐसा कोई नियम, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रबींद्रनाथ चौबे (उपरोक्त) मामले में चर्चा की गई है, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को नियंत्रित करने वाले आचरण, अनुशासन और अपीलीय नियमों में उपस्थित है।

32. राज्य सरकार ने पुलिस अधिनियम, 1861 के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए "उत्तर प्रदेश पुलिस अधीनस्थ अधिकारी (दंड एवं अपील) नियमावली, 1991" तैयार की है। ये नियम वैधानिक प्रकृति के हैं। नियम 4 में दो प्रकार के दंड का प्रावधान है, जिसके अनुसार दीर्घ शास्तियों में (i) सेवा से बर्खास्तगी, (ii) सेवा से निष्कासन और (iii) पद में कमी, जिसमें निम्न वेतनमान या समयमान में निम्नतर स्तर पर कमी सम्मिलित है, जबकि लघु शास्तियों में (i) पदोन्नति रोकना, (ii) एक माह के वेतन से अधिक का जुर्माना, (iii) वेतन वृद्धि रोकना, जिसमें दक्षता पर रोक लगाना और (iv) निंदा प्रविष्टी सम्मिलित है। दंड देने की प्रक्रिया नियम 14 में दी गई है।

33. नियम 14(1) में दीर्घ शास्ति की प्रक्रिया का प्रावधान है, जिसके अनुसार कार्यवाही नियमों के साथ संलग्न परिशिष्ट-I में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की जाएगी। नियम 14(2) में कहा गया है कि पुलिस अधिकारी को उसके विरुद्ध प्रस्तावित कार्रवाई और उस कार्य या चूक के बारे में लिखित रूप से सूचित करने के बाद, जिसके

आधार पर कार्रवाई प्रस्तावित है, उसे अभ्यावेदन का उचित अवसर देने के बाद दीर्घ शास्ति लगाया जा सकता है।

34. उत्तर प्रदेश पुलिस अधीनस्थ अधिकारी (दंड एवं अपील) नियमावली, 1991 में अनुशासन एवं अपील नियमावली के 34.2 के प्रावधानों के समान कोई प्रावधान नहीं है, जैसा कि *रवींद्रनाथ चौबे* (उपरोक्त) के मामले में चर्चा की गई है। यहाँ तक कि सिविल सेवा विनियमों में भी ऐसा कोई नियम या प्रावधान नहीं है जो कर्मचारी के सेवानिवृत्त होने की स्थिति में बर्खास्तगी या अन्य शास्ति का आदेश पारित करने की अनुमति देता हो। विद्वान राज्य अधिवक्ता भी हमारे समक्ष ऐसा कोई नियम प्रस्तुत नहीं कर पाए हैं।

35. किसी ऐसे नियम के अभाव में, जो सेवानिवृत्ति के बाद बर्खास्तगी का दण्ड देने की अनुमति देता हो या जो अनुशासनात्मक कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए कर्मचारी-नियोक्ता संबंध को सेवानिवृत्ति के बाद भी जारी रखने योग्य मानता हो, हमारी राय में, *रवींद्रनाथ चौबे* (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का इस मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं है। तदनुसार, विद्वान राज्य अधिवक्ता द्वारा उक्त निर्णय पर भरोसा करना गलत है। जैसा कि पहले ही ऊपर देखा गया है, *प्रभाकर सदाशिव करवड़े* (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद किसी अधिकारी/कर्मचारी पर बर्खास्तगी का दण्ड नहीं लगाया जा सकता है जब तक कि उस संबंध में कोई विशिष्ट नियम उपलब्ध न हो। यदि संबंधित कर्मचारी की सेवानिवृत्ति से पहले, अनुशासनात्मक जांच शुरू की जाती है, तो वह सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 351-क के अन्तर्गत जारी रहेगा तथापि, ऐसे मामले में यदि कर्मचारी गंभीर कदाचार का दोषी पाया जाता है या सरकार को आर्थिक नुकसान पहुँचाता है, तो राज्यपाल सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-क के अनुसार कार्रवाई कर सकते हैं।"

33. विचारणीय एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या प्रतिवादी, याचिकाकर्ता को उस अवधि के सभी परिलब्धियों से वंचित कर सकते हैं, जब वह बर्खास्तगी के आदेश के कारण सेवा से बाहर रहा था। इस आदेश को अपीलीय प्राधिकारी ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेज दिया और रद्द कर दिया है। यदि यह बहाली का मामला होता, तो इस पर विचार किया जा सकता है कि आरोप की गंभीरता, उसके प्रमाण आदि के आधार पर, याचिकाकर्ता को उस अवधि के लिए कितनी परिलब्धियाँ दी जानी चाहिए, जब वह रोजगार से बाहर रहा था। यहां प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को बहाल करने का अधिकार खो दिया है, जो सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है, जिससे नियोक्ता-कर्मचारी संबंध विच्छेद हो गया है। इसलिए, प्रतिवादियों के पास याचिकाकर्ता को उस अवधि के लिए परिलब्धियों से वंचित करने की कोई गुंजाइश नहीं है, जब वह बर्खास्तगी आदेश के कारण रोजगार से बाहर रहा था। न्यायाधिकरण द्वारा बर्खास्तगी आदेश को नए सिरे से जांच के लिए वापस भेज दिया गया तथा याचिकाकर्ता के सेवा में रहते हुए प्रतिवादियों के अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार में कोई और आदेश पारित नहीं किया गया, अब याचिकाकर्ता के विरुद्ध केवल एक ही आदेश पारित किया जा सकता है, जो सीएसआर के अनुच्छेद 351-क के अंतर्गत है, जिसे विशेष रूप से राज्यपाल द्वारा किया जा सकता है।

34. विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या प्रतिवादियों से, यदि वे ऐसा चुनते हैं तो, जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध दर्ज निष्कर्षों के आधार पर, सीएसआर की धारा 351-क के प्रावधानों का सहारा लेने के लिए कहा जा सकता है। हमें ऐसा नहीं लगता। वर्तमान स्थिति में, जांच अधिकारी की जांच आख्या से पता चलता है कि न्यायाधिकरण द्वारा नियमावली 1999 के नियमों के हितकारी प्रक्रिया और नियम 7 के अनुसार नए सिरे से जांच करने की स्वतंत्रता के बाद, जांच अधिकारी फिर से लड़खड़ा गए हैं। उन्होंने एक जांच आख्या प्रस्तुत की है, जो विभागीय जांच के लिए हितकारी प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाले विधि के अनुरूप नहीं है, जहां एक दीर्घ शास्ति लगाया जा सकता है। यह तथ्य कि जांच आख्या के आधार पर न्यायाधिकरण द्वारा 'रिमांड' के बाद मूल वेतन में कमी का दण्ड दिया गया। यह दर्शाता है कि एक दीर्घ शास्ति देने का इरादा था और वास्तव में 16.04.2024 के आदेश के अनुसार नियमावली 1999 के नियमों के नियम 3(ii) के अन्तर्गत दिया गया था। यह निष्कर्ष अनिवार्य है कि यह एक बृहद शास्ति का मामला था। यह तथ्य कि इस आदेश को दिनांक 30.04.2024 के अन्य आदेश द्वारा संशोधित किया गया था, एक आकस्मिक परिस्थिति का परिणाम है कि कार्यवाही लंबित रहने तक, याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हो गया। यह अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रकृति से अलग नहीं होगा क्योंकि इसमें एक बृहद दंड सम्मिलित है। इसलिए, एक दीर्घ शास्ति मामले में विभागीय जाँच को नियंत्रित करने वाली हितकारी प्रक्रिया का पालन प्रतिवादियों द्वारा किया जाना था। नियमावली 1999 के नियम 7 के लिए भी यही कार्यवाही आवश्यक होगी। परिणाम यह होगा कि जाँच आख्या, जिसके आधार पर शास्ति का आदेश पारित किया गया है, त्रुटिपूर्ण प्रक्रिया का परिणाम है।

35. यदि प्रतिवादी याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करना चाहते हैं और आदेश पारित करना चाहते हैं, जैसा भी अब विधि समर्थन करे, तो उन्हें एक नई जाँच करनी होगी, जो तीसरा दौर होगा, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि याचिकाकर्ता दोषी है या नहीं। यदि प्रतिवादी याचिकाकर्ता के विरुद्ध नई कार्यवाही करने का चुनाव करते हैं, तो उन्हें नियमावली 1999 के नियम 7 के अनुसार जाँच और हितकारी प्रक्रिया का पालन करना होगा, जहाँ जाँच अधिकारी, जाँच के लिए तिथि, समय और स्थान निर्धारित करने के बाद, संस्थान द्वारा मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करके अपना मामला सिद्ध करने की अपेक्षा करेगा। इस संबंध में इस निर्णय में की गई अन्य टिप्पणियों और विधि की स्थापित स्थिति को ध्यान में रखा जाएगा। यदि प्रतिवादी नई कार्यवाही करने का चुनाव नहीं करते हैं, तो किसी भी प्रकार का दण्डादेश, चाहे अनुच्छेद 351-क का सहारा लेकर या अन्यथा, याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक जाँच आख्या के आधार पर पारित नहीं किया जा सकता, जो कि एक अंतर्निहित रूप से दोषपूर्ण प्रक्रिया का परिणाम है। यदि प्रतिवादी विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नई कार्यवाही करने का विकल्प चुनते हैं, तो जो दंड दिया जा सकता है, वह अब प्रतिवादियों के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। उन्हें सीएसआर के अनुच्छेद 351-क के प्रावधानों का सहारा लेना होगा, जहाँ विधि के अनुसार की गई जाँच में, याचिकाकर्ता के पुनः दोषी पाए जाने की स्थिति में, राज्यपाल के उचित आदेश की आवश्यकता होगी।

36. परिणामस्वरूप, यह याचिका सफल होती है और **स्वीकृत** की जाती है। उप-जिलाधिकारी, कोरांव, प्रयागराज द्वारा पारित दिनांक 16.04.2024 का आक्षेपित आदेश और दिनांक 30.04.2024 का संशोधित आदेश, दोनों को एतद्वारा **रद्द** किया जाता है। प्रतिवादियों के लिए, यदि वे ऐसा चुनते हैं, तो आरोप-पत्र के चरण से

विभागीय जांच को नए सिरे से करने के लिए, दिनांक 02.06.2015 के आरोप-पत्र पर याचिकाकर्ता के उत्तर को ध्यान में रखते हुए, खुला होगा। यदि जांच की जाती है, तो जांच में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में इस निर्णय में की गई टिप्पणियों को सख्ती से ध्यान में रखते हुए की जाएगी। यदि याचिकाकर्ता दोषी पाया जाता है, तो प्रतिवादी सीएसआर के अनुच्छेद 351-क के अनुसार आगे बढ़ेंगे, मामले को राज्यपाल के आदेश के लिए प्रस्तुत करेंगे, लेकिन स्वयं कोई दण्डादेश पारित नहीं करेंगे। यदि नए सिरे से जांच कराने का निर्णय नहीं लिया जाता है, तो याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों का हकदार माना जाएगा, जिसमें उस अवधि के लिए पारिश्रमिक भी सम्मिलित होगा, जब तक वह रोजगार से बाहर रहा है।

37. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

38. इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को भेजी जाए, इस निर्देश के साथ कि राज्य सरकार के सभी विभागों में दीर्घ शास्ति लगाने से संबंधित मामलों में, विभागीय जांच के संचालन से संबंधित हितकारी प्रक्रिया के संबंध में, स्थापित विधि का पालन सुनिश्चित किया जाए।

(2025) 3 ILRA 206

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए संख्या 26967 वर्ष 2008

एवं अन्य संबद्ध वाद

राम नारायण राम एवं अन्य

....याचिकाकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:-

अरविंद उपाध्याय, अशोक कुमार सिंह, आई. राज सिंह, सुरेश चंद्र वर्मा

उत्तरदातागण के अधिवक्ता:-

सी.एस.सी., एस.के. सिंह, एस.आर. सिंह, वी.के. सिंह

ए. सेवा कानून - वेतन का संदाय - दीर्घकालिक नियुक्ति - न्यायसंगत सिद्धांत - आवेदन - 25 दावा किए गए पदों में से 14 स्वीकृत पदों के विरुद्ध नियुक्ति की गई - याचिकाकर्ताओं का एक समूह कार्यरत पाया गया और उनके पक्ष में अंतरिम आदेश भी है - स्वीकृत पदों के विरुद्ध दीर्घकालिक नियुक्ति, किस हद तक संरक्षित होने योग्य है - यह देखते हुए कि ये रिट याचिकाएं पिछले 17 वर्षों से अधिक समय से लंबित हैं और याचिकाकर्ताओं का पहला समूह, यानी राम नारायण राम और अन्य, सेवा कर चुके हैं और अब उनकी अधिवर्षिता की आयु हो गई होगी, इसलिए, न्यायसंगत सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, यदि अब उनकी सेवाओं में बाधा डाली जाती है, तो यह इस न्यायालय का एक अमानवीय दृष्टिकोण होगा और इससे बचा जाना चाहिए - ऐसी लंबी नियुक्ति भले ही अनियमित हो, संरक्षित की जानी चाहिए - राधेश्याम यादव के मामले पर भरोसा किया गया। (प्रस्तर 17 और 19)

एक समूह की रिट याचिकाएँ मंजूर की गईं और दूसरे समूह की रिट याचिकाएँ खारिज की गईं।(ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

राधेश्याम यादव व अन्य बनाम स्टेट आफ यूपी व अन्य 2024 आईएनएससी 7

1. यह छह रिट याचिकाओं का एक समूह है। सभी याचिकाओं के उचित न्यायनिर्णयन के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों का उल्लेख आवश्यक होगा।

(ए) रिट-ए संख्या - 26967 वर्ष 2008

2. यह रिट याचिका 13 याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर की गई थी कि उन्हें प्रतिवादी संस्थान, अर्थात् अंजुमन इस्लामिया उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, दौना सफीपुर, आजमगढ़ में शिक्षक/कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था, जिसे बाद में जूनियर हाई स्कूल से उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अपग्रेड कर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ताओं ने दावा किया है कि उप शिक्षा निदेशक सप्तम क्षेत्र, गोरखपुर ने दिनांक 01.04.1995 को एक आदेश पारित किया और सभी 25 पदों को मंजूरी दी और उसके बाद याचिकाकर्ताओं को 2001 से 2005 के बीच अलग-अलग तारीखों पर जारी नियुक्ति पत्रों के माध्यम से चयन प्रक्रिया के अनुसरण में नियुक्त किया गया।

4. वर्ष 2004 में प्रतिवादी-संस्था की प्रबंधन समिति ने संस्था को अनुदान सहायता के अंतर्गत लेने के लिए एक रिट याचिका दायर की, जिसे दिनांक 30.09.2004 के आदेश द्वारा अनुमति दे दी गई तथा राज्य द्वारा दायर विशेष अपील को दिनांक 12.07.2005 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया तथा तदनुसार प्रतिवादी-संस्था को अनुदान सहायता के अंतर्गत लाया गया।

5. तत्पश्चात्, वित्तीय स्वीकृति प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ताओं के पत्र प्रस्तुत किए गए। जिला विद्यालय निरीक्षक, आजमगढ़ ने अपने 29.12.2007 के आदेश द्वारा पाया कि केवल 14 स्वीकृत पद थे, जिन पर कुछ वर्तमान याचिकाकर्ताओं को वैधानिक रूप से नियुक्त माना गया। तत्पश्चात्, जिला विद्यालय निरीक्षक ने उपलब्ध सामग्री के आधार पर एक विस्तृत आदेश पारित किया। आदेश जिसके तहत याचिकाकर्ता राम नारायण राम और अन्य सेवा में पाए गए, जबकि संबंधित रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता, यानी पलकधारी राम और अन्य सेवा में नहीं पाए गए। याचिकाकर्ताओं का यह भी कहना है कि बहुत ही कम समय में, उपरोक्त आदेश की समीक्षा की गई और 08.05.2008 को एक नया आदेश जारी किया गया, जिसमें किसी भी याचिकाकर्ता की नियुक्ति को वैध नहीं माना गया और अन्य 13 व्यक्तियों (पलकधारी राम और अन्य) की नियुक्ति को वैध माना गया और तदनुसार उनकी स्वीकृति प्रदान की गई। इस आदेश को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

6. इस न्यायालय ने दिनांक 04.06.2008 के आदेश द्वारा एक अंतरिम आदेश पारित किया था जिसके अंतर्गत दिनांक 08.05.2008 के आक्षेपित आदेश को स्थगित रखने का निर्देश दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं ने उसी अंतरिम आदेश के प्रभाव में लगातार काम किया है, जो अभी भी प्रभावी है। संदर्भ के लिए दिनांक 04.06.2008 का अंतरिम आदेश यहाँ पुनः प्रस्तुत है:

"प्रतिवादी संख्या 1 से 4 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता एक महीने के भीतर जवाबी हलफनामा दायर कर सकते हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के पास इसके बाद जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए दो सप्ताह का समय होगा।"

प्रतिवादी संख्या 5 और 6 को नोटिस जारी किया जाए, एक सप्ताह के भीतर कार्यवाही की जाए। कार्यवाही होने पर, कार्यालय 18.8.2008 से प्रारंभ होने वाले सप्ताह में एक तिथि निर्धारित करेगा और रिट याचिका को नोटिस में उल्लिखित तिथि पर सूचीबद्ध किया जाए।

सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 8.5.2008 (रिट याचिका के अनुलग्नक-6) के आदेश का प्रभाव और संचालन स्थगित रहेगा।

(बी) रिट - ए संख्या - 34523 वर्ष 2008

7. उपरोक्त रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, तीन अन्य कर्मचारियों ने भी यह रिट याचिका दायर कर 08.05.2008 के आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है क्योंकि उनकी नियुक्तियाँ भी अवैध मानी गई थीं। इस न्यायालय ने 18.07.2008 के अंतरिम आदेश के माध्यम से उक्त याचिकाकर्ताओं को भी इसी प्रकार की अंतरिम राहत प्रदान की है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये याचिकाकर्ता भी उक्त अंतरिम आदेश के अधीन कार्यरत हैं, जिसका पुनः उल्लेख किया गया है:

"प्रतिवादी संख्या 1 से 4 की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता उपस्थित हुए तथा उन्होंने प्रति-शपथपत्र दाखिल करने के लिए चार सप्ताह का समय मांगा, जिसके लिए उन्हें अनुमति प्रदान की गई। इसके बाद दो सप्ताह के भीतर प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल किया जा सकता है।"

प्रतिवादी संख्या 5 और 6 को उपरोक्त अवधि के भीतर प्रति-शपथपत्र दाखिल करने के लिए नोटिस जारी किया जाए।

इसके तुरंत बाद रिट याचिका संख्या 26967/2008, राम नारायण राम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य को सूचीबद्ध किया जाए।

सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक, प्रतिवादी संख्या 4, जिला विद्यालय निरीक्षक, आजमगढ़ द्वारा पारित रिट याचिका के अनुलग्नक-15, दिनांक 08.5.2008 के आदेश का प्रभाव और संचालन स्थगित रहेगा।

(सी) रिट-ए संख्या 51401 वर्ष 2013

8. उपरोक्त दो रिट याचिकाओं में दलीलों के आदान-प्रदान के दौरान, यह ध्यान में लाया गया कि कर्मचारियों के एक अन्य समूह (अर्थात् पलकधारी राम और अन्य) को वर्ष 2004 में पारित विभिन्न आदेशों द्वारा पहले ही बर्खास्त कर दिया गया था, जिसका उल्लेख उपरोक्त दो रिट याचिकाओं में उनके पक्ष में दिनांक 08.05.2008 के आदेश पारित होने पर नहीं किया गया था। इसलिए, वर्तमान रिट याचिका पाँच याचिकाकर्ताओं द्वारा उनकी लंबी अनुपस्थिति के आधार पर पारित उनके बर्खास्तगी आदेशों को चुनौती देते हुए दायर की गई थी। हालाँकि, इस रिट याचिका में कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया था, संभवतः इस आधार पर कि उपरोक्त दो रिट याचिकाओं, अर्थात् रिट-ए संख्या 26967/2008 और 34523/2008 में याचिकाकर्ताओं के अन्य समूह के पक्ष में एक अंतरिम आदेश था।

(डी) रिट - ए संख्या - 45035 वर्ष 2016

9. यह रिट याचिका याचिकाकर्ताओं के एक अन्य समूह (अर्थात् पलकधारी राम व अन्य) द्वारा दिनांक 20.06.2016, 13.07.2016 और 09.08.2016 के आदेशों को चुनौती देते हुए दायर की गई थी, जिसमें जाँच के बाद पाया गया कि याचिकाकर्ताओं के एक अन्य समूह, अर्थात् राम नारायण व अन्य, वास्तविक नियुक्तियाँ थीं और इन रिट याचिकाकर्ताओं की नियुक्तियाँ फर्जी थीं। वर्तमान रिट याचिका में भी कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया।

(ई) रिट - ए संख्या - 39263 वर्ष 2017

10. उपरोक्त संदर्भित आक्षेपित आदेश दिनांक 20.06.2016, 13.07.2016 और 09.08.2016 को इस रिट याचिका में अन्य समूह के छह याचिकाकर्ताओं द्वारा भी आक्षेपित किया गया था और कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया था।

(एफ) रिट - ए संख्या - 16753 वर्ष 2024

11. यह नौ याचिकाकर्ताओं (राम नारायण और अन्य) द्वारा दायर अंतिम याचिका है, जिसमें अतिरिक्त शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), यूपी, प्रयागराज द्वारा पारित दिनांक 25.09.2024 और 27.09.2024 के आदेशों को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं का वेतन विलम्बित चरण में रोक दिया गया था, जबकि उपरोक्त रिट याचिकाएं लंबित थीं और अंतरिम आदेश भी प्रचलन में थे।

12. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ताओं के दो समूह हैं। पहले समूह के याचिकाकर्ता राम नारायण राम और अन्य हैं, अर्थात् रिट याचिका संख्या 26967/2008, 34523/2008 और 16753/2024 के याचिकाकर्ता, जो इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के तहत अभी भी कार्यरत हैं, लेकिन वर्ष 2024 में उनका वेतन रोक दिया गया था और दूसरे समूह के याचिकाकर्ता पलकधारी राम और अन्य हैं, अर्थात् रिट याचिका संख्या 51401/2013, 45035/2016 और 39263/2017 के याचिकाकर्ता, जिनकी सेवा समाप्त हो चुकी है और उनके पक्ष में कोई अंतरिम आदेश नहीं आया है। अभिलेखों के अनुसार, सभी याचिकाकर्ताओं की आयु 60 वर्ष से अधिक प्रतीत होती है।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने, जिनकी सहायता याचिकाकर्ताओं के पहले समूह के विद्वान अधिवक्ता श्री जे.पी. सिंह ने की, प्रस्तुत किया कि शिक्षा उप निदेशक, सप्तम क्षेत्र, गोरखपुर द्वारा दिनांक 01.04.1995 को पारित आदेश में स्पष्ट रूप से माना गया था कि प्रतिवादी-संस्थान में 25 स्वीकृत पद थे और उसके बाद जिला विद्यालय निरीक्षक ने उपलब्ध सामग्री के आधार पर दिनांक 29.12.2007 को एक विस्तृत आदेश पारित किया, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं के पहले समूह, अर्थात् राम नारायण राम और अन्य, सेवा में पाए गए, जबकि याचिकाकर्ताओं के दूसरे समूह, अर्थात् पलकधारी राम और अन्य सेवा में नहीं पाए गए। हालाँकि, कुछ ही दिनों के भीतर, शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) द्वारा दिए गए एक टेलीफोनिक निर्देश के आधार पर दिनांक 08.05.2008 को एक विपरीत आदेश पारित किया गया कि राम नारायण राम और अन्य को गलत तरीके से नियुक्त किया गया था और धोखाधड़ी करके उनकी नियुक्तियों को गलत तरीके से अनुमोदित किया गया था। ऐसा विपरीत आदेश देने का कोई कारण नहीं बताया गया। अर्थात्, उच्च अधिकारी द्वारा टेलीफोन पर दिए गए निर्देश का विवरण तथा एफआईआर दर्ज करने का आदेश क्यों पारित किया गया, इसका विवरण भी दिया गया।

14. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि यदि आरोपित आदेश को सत्य माना जाता है, तो इसका अर्थ केवल यह होगा कि 14 स्वीकृत पद थे और याचिकाकर्ताओं के दूसरे समूह को पहले ही समाप्त कर दिया गया है, इसलिए, याचिकाकर्ताओं के पहले समूह की नियुक्ति संरक्षित होने के योग्य है। उन्होंने आगे **राधेश्याम यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2024 आईएनएससी 7** के मामले में फैसले का हवाला दिया कि वर्तमान मामले में सेवा की बहुत लंबी अवधि (दो दशक से अधिक) संरक्षित की जानी चाहिए क्योंकि ऐसा नहीं है कि उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था। याचिकाकर्ताओं के पहले समूह के खिलाफ एकमात्र मामला यह है कि पद स्वीकृत नहीं था लेकिन जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है आज वे मूल

स्वीकृत पदों, यानी 14 पदों के विरुद्ध काम कर रहे हैं। चूंकि धोखाधड़ी का आरोप ठोस सामग्री पर आधारित होना चाहिए, लेकिन ऐसी कोई सामग्री न तो दिनांक 08.05.2008 के आक्षेपित आदेश में प्रकट की गई और न ही वर्तमान रिट याचिकाओं के समूह में दलीलों के आदान-प्रदान के दौरान रिकार्ड में लायी गयी।

15. इसके विपरीत, याचिकाकर्ताओं के दूसरे समूह अर्थात् पलकधारी राम और अन्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी ने प्रस्तुत किया कि 14 रिक्त पदों पर उन्हें मूल रूप से नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ताओं के पहले समूह को गैर-स्वीकृत पदों पर नियुक्त किया गया था और 08.05.2008 के आक्षेपित आदेश द्वारा जिला विद्यालय निरीक्षक ने शिक्षा निदेशक द्वारा वास्तविक स्थिति के बारे में सही जानकारी दी है और इसलिए, उक्त आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ताओं के दूसरे समूह को सेवा में पाया गया। सभी आवश्यक विवरण उक्त आक्षेपित आदेश का हिस्सा थे। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि बिना किसी जांच के याचिकाकर्ताओं को बर्खास्त कर दिया गया और इसलिए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन किया गया। उनका मामला यह है कि वे नियमित रूप से कॉलेज में उपस्थित होते थे, हालांकि, प्रबंधन ने उन्हें हस्ताक्षर करने की अनुमति नहीं दी है या उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दी है, इसलिए, बर्खास्तगी का आधार, यानी उनकी लंबी अनुपस्थिति गलत थी।

16. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

17. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तथ्य अत्यंत चिंताजनक हैं क्योंकि प्रबंधन समिति द्वारा प्रतिवादी-प्राधिकारियों के समक्ष पदों की सटीक संख्या अलग-अलग प्रस्तुत की गई थी, जिसके कारण वर्तमान मुकदमें उत्पन्न हुए हैं। फिर भी, यह देखते हुए कि ये रिट याचिकाएँ पिछले 17 वर्षों से अधिक समय से लंबित हैं और याचिकाकर्ताओं का पहला समूह, अर्थात् राम नारायण राम और अन्य, सेवा कर चुके हैं और अब सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके होंगे, इसलिए, समता के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, यदि अब उनकी सेवाओं में बाधा डाली जाती है, तो यह इस न्यायालय का अमानवीय दृष्टिकोण होगा और इससे बचा जाना चाहिए।

18. जिला विद्यालय निरीक्षक, आजमगढ़ ने अपने आदेश दिनांक 29.12.2007 के तहत पाया कि दावा किए गए 25 पदों के मुकाबले केवल 14 स्वीकृत पद थे, जिस पर पहले सेट के याचिकाकर्ता यानी राम नारायण राम और अन्य निरीक्षण में सेवा में पाए गए और तदनुसार निर्देश पारित किया गया कि उनके वेतन का भुगतान राज्य के खजाने से किया जाए। हालांकि, कुछ ही महीनों के भीतर यानी लगभग पांच महीने बाद 08.05.2008 को उक्त आदेश की समीक्षा की गई और याचिकाकर्ताओं के दूसरे सेट यानी पलकधारी राम और अन्य को इस बात पर ध्यान दिए बिना सेवा में पाया गया कि उन्हें वर्ष 2004 में ही समाप्त कर दिया गया था। इसलिए पहले के आदेश की समीक्षा करने का कोई कारण नहीं था और इस न्यायालय ने सही रूप से दिनांक 08.05.2008 के आक्षेपित आदेश के संचालन पर उचित

ही रोक लगाई है और अंतरिम आदेश के तहत पहले समूह के याचिकाकर्ताओं, यानी राम नारायण राम और अन्य को काम करने की अनुमति दी गई। यह भी बेहद अजीब है कि केवल एक उच्च अधिकारी के टेलीफोन पर दिए गए निर्देश पर, बिना कोई कारण बताए, पूर्व आदेश की समीक्षा कर दी गई। निरीक्षण रिपोर्ट का पालन न करने का कोई कारण भी नहीं बताया गया। यहाँ तक कि याचिकाकर्ताओं को भी पूर्व सूचना नहीं दी गई।

19. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ताओं के प्रथम समूह अर्थात् राम नारायण राम एवं अन्य की ओर से **राधेश्याम यादव एवं अन्य (उपरोक्त)** मामले में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिया गया निर्णय प्रासंगिक होगा कि ऐसी लम्बी नियुक्ति को, भले ही वह अनियमित हो, संरक्षित किया जाना चाहिए, यद्यपि तथ्य बहुत स्पष्ट रूप से यह प्रकट नहीं करते हैं कि उनकी नियुक्तियां अनियमित थीं और इसके अलावा उन्होंने स्वीकृत पद (संख्या 14) के विरुद्ध ही कार्य किया।

20. तदनुसार, याचिकाकर्ताओं के पहले समूह अर्थात् राम नारायण राम और अन्य द्वारा दायर रिट-ए संख्या 26967/2008, 34523/2008 और 16753/2024 को अनुमति दी जाती है, बशर्ते कि जिला विद्यालय निरीक्षक, आजमगढ़ द्वारा प्रतिवादी-कॉलेज में उनके नियमित कार्य करने के बारे में तथ्यात्मक सत्यापन किया जाए, क्योंकि ये रिट याचिकाएं पिछले 17-18 वर्षों से अधिक समय से लंबित हैं। उक्त रिट याचिकाकर्ताओं ने अंतरिम आदेशों के तहत काम किया है और इन रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान, राज्य-प्रतिवादियों के पास उनका वेतन रोकने के लिए दिनांक 25.09.2024 और 27.09.2024 के आदेश पारित करने का कोई कारण नहीं था, इसलिए, उपरोक्त रिट याचिकाओं में आक्षेपित आदेश, अर्थात् दिनांक 08.05.2008, 25.09.2024 और 27.09.2024 को एतद्वारा अपास्त किया जाता है। हालाँकि, इस आदेश को एक मिसाल के रूप में नहीं माना जाएगा क्योंकि यह वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में पारित किया गया है।

21. जहाँ तक याचिकाकर्ताओं के दूसरे समूह, यानी पलकधारी राम और अन्य का संबंध है, उन्हें वर्ष 2004 में विभिन्न आदेशों द्वारा उनकी लंबी अनुपस्थिति के आधार पर सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। न तो दलीलों में और न ही सुनवाई के दौरान ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत किया गया जिससे यह साबित हो कि उक्त आधार तथ्यात्मक रूप से गलत था। बल्कि, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें समायोजित करने के लिए, बिना किसी कानूनी आधार के स्वीकृत सीटों की संख्या 14 से बढ़ाकर 25 कर दी गई। इसलिए, सेवा से बर्खास्तगी के आधार का खंडन करने वाली किसी भी ठोस सामग्री के अभाव में, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

22. तदनुसार, याचिकाकर्ताओं के दूसरे समूह अर्थात् पलकधारी राम और अन्य द्वारा दायर रिट-ए संख्या 51401/2013, 45035/2016 और 39263/2017 को खारिज किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 211

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए संख्या 63857 वर्ष 2007

संबंध

रिट ए संख्या 52910 वर्ष 2011

संजय कुमार सेंगर

...याचिकाकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

एच.एन मल्होत्रा, अजय भनोट, गौरव सिंह, कृपा शंकर सिंह, एल.एस. यादव, पंकज कुमार, रविन्द्र मिश्रा

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., अखिलेश कुमार सिंह, जी.के. सिंह, ऋतुध्वज प्रताप सिंह, आर. के. ओझा, संकल्प नारायण, वी. के. सिंह

ए. सेवा कानून- पर्यवसान - प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत - नियुक्ति परीक्षा - कर्तव्य का निर्वहन पूरी तत्परता से न करने का आरोप लगाया गया- याचिकाकर्ता को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, तथा उसे इंकार नहीं किया गया, नोटिस पर पूर्व में दिए गए प्रस्तुतीकरण को दोहराया गया- प्रभाव - यह माना गया कि इस स्तर पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पर्याप्त रूप से अनुपालन किया गया। (अनुच्छेद 22)

बी. सेवा कानून - पर्यवसान - सहायक अध्यापक, व्यायाम के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन निष्ठापूर्वक न करने और महाविद्यालय के सामान्य कामकाज में बाधा डालने का आरोप लगाया गया था - जांच के दौरान दर्ज प्रासंगिक सामग्री और गवाहों के बयानों के आधार पर आरोप का स्पष्ट रूप से खंडन नहीं किया गया है - प्रभाव - यह अच्छी तरह से स्थापित है कि रोजगार के नियमों के तहत या संविदात्मक अधिकार के प्रयोग में एक परीक्षाधीन की सेवाओं की समाप्ति न तो बर्खास्तगी है और न ही निष्कासन है - हालांकि, यदि आदेश कर्मचारी के चरित्र या ईमानदारी के खिलाफ है, तो यह सजा के रूप में एक आदेश होगा, भले ही कर्मचारी केवल परीक्षाधीन हो या अस्थायी हो। - यदि उसे उसकी समाप्ति के खिलाफ कारण बताने का उचित अवसर दिए बिना समाप्त कर दिया गया था और यहां तक कि ऐसे मामलों में यदि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन

किया गया था और प्रक्रिया में कोई कमी नहीं थी, तो रिट कोर्ट हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं होगा। (प्रस्तर 24 और 25)

एक रिट याचिका खारिज कर दी गई और दूसरी रिट याचिका स्वीकार कर ली गई। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. शमशेर सिंह बनाम सेंट ऑफ पु. (1974) 2 एससीसी 831
2. स्वाति प्रियदर्शिनी बनाम मध्य प्रदेश एवं अन्य, 2024 आईएनएससी 620)।

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव सिंह, को सुना, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री समर्थ सिंह की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी. के. सिंह और प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश कुमार सिंह को सुना गया। प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री वी. के. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री समर्थ सिंह, संबंधित रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, श्री संजीव सिंह, प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और संबंधित याचिका में राज्य-प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री श्रुति मालवीय को सुना गया।
2. याचिकाकर्ता को एक विज्ञापन के अनुसरण में शुरू की गई भर्ती प्रक्रिया के तहत व्यायाम में सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया था और वह 04.01.2006 को प्रतिवादी-संस्था (एक अल्पसंख्यक संस्थान) में एक वर्ष की परीक्षा पर शामिल हुआ था, अर्थात् 3 जनवरी, 2006 तक, जिसे स्कूल की प्रबंधन समिति के एक प्रस्ताव द्वारा एक वर्ष के लिए अर्थात् 3 जनवरी, 2008 तक आगे बढ़ा दिया गया था।
3. याचिकाकर्ता के अनुसार, जब उसे स्थायी घोषित नहीं किया गया और नियमित वेतन नहीं दिया गया, तो उसने डीआईओएस, हाथरस से संपर्क किया, जिन्होंने दिनांक 09.05.2007 और 21.05.2007 को सख्त आदेश पारित किए और संस्थान को उसका वेतन देने का निर्देश दिया, जिसे प्रतिवादी-प्रबंधन समिति द्वारा रिट-ए संख्या 24751/2007 में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे शुरू में वर्तमान रिट याचिका के साथ संलग्न किया गया था, लेकिन बाद में, उसके अधिवक्ता द्वारा दिए गए बयान के आधार पर इसे दिनांक 28.03.2024 के आदेश द्वारा निष्फल घोषित कर दिया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता को दिनांक 06.09.2007 को एक आरोप-पत्र दिया गया, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उसने व्यायाम में सहायक अध्यापक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन निष्ठापूर्वक नहीं किया है और वह ऐसी गतिविधियों में लिप्त

रहा है, जो संस्थान के हित में निर्धारित थीं और बार-बार अनुरोध के बावजूद, उसने अपने आचरण में सुधार नहीं किया है।

4. याचिकाकर्ता ने 17.09.2007 को एक जवाब दाखिल किया था और आरोपों से इनकार किया था। इसके बाद, संस्थान ने 20.09.2007 को याचिकाकर्ता को एक पत्र सौंपा, जिसमें कारण बताए गए थे कि वे उसके जवाब से संतुष्ट नहीं हैं और सभी आरोपों को दोहराया गया था।

5. संस्था के प्रबंधक ने दिनांक 08.10.2007 को आठ आरोपों का उल्लेख करते हुए आरोप पत्र प्रस्तुत किया। संदर्भ हेतु उसे आगे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"1. आपके द्वारा संस्था में विगत वर्ष 2006-07 के माह जनवरी, 2007 से सत्र 2007-08 के अगस्त माह तक कोई खेल-कूद नहीं कराया गया। प्रबन्धकमहोदय द्वारा दि० 01.08.2007 की अध्यापकों के साथ की गई मीटिंग में भी आपको बताया गया कि बार-बार कहने पर भी संस्था में खेल-कूद के स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ है। इस गम्भीर व सोचनीय स्थिति के लिए आप जिम्मेदार हैं जिसके लिए आप जान बूझकर गम्भीर कर्तव्य की उपेक्षा के दोषी हैं।

2. आप नैतिक तथा खेलकूद, पी०टी०/स्काउट के घंटों में जान बूझकर नहीं जाते हैं या विलम्ब से पहुँचते हैं। जिससे इन विषयों का शिक्षण प्रभावित हो रहा है। अतः आप अपनी शिक्षा कार्य कलाप ठीक से निर्वाह न करने के दोषी हैं।

3. आप विगत सत्र 2006-07 में कक्षा 9 कृषि (प्रथम) के कक्षाध्यापक थे। कार्यालय द्वारा प्रधानाचार्य जी को अवगत कराया गया कि आपने कक्षा के कक्षा रजिस्टर को कार्यालय में जमा नहीं किया है। जिससे कार्यालय का कार्य बाधित है। संस्था अभिलेख का कार्यालय में जमा नहीं करना घोर अपराध है। ऐसा मालूम पड़ता है कि आपने किसी कमी को छिपाने हेतु इस कक्षा रजिस्टर को जानबूझ कर गुम या नष्ट किया है। अतः आप कॉलेज रिकार्ड को जानबूझकर गुम या नष्ट करने के दोषी हैं।

4. आप संस्था विरोधी कार्यों में संलिप्त हैं। संस्था एवं संस्थाध्यक्षों को बदनाम करने में अवांछनीय एवं विरोधी तत्वों से मिलकर अनेक प्रकार की विरोधी गतिविधियों में संलिप्त हैं जिससे आपकी कर्तव्य निष्ठा एवं विश्वसनीयता संस्था के प्रति संदिग्ध है। अतः आप घोर कुराचरण के दोषी हैं।

5. आपको मौखिक रूप से अनेक बार समझाया जा चुका है कि अपने स्तर से कोई ऐसा कार्य नहीं करें जो अनुशासनहीनता की श्रेणी में आता हो परन्तु फिर भी आप अपने स्तर से कोई सुधारात्मक रुख अगल में नहीं ला रहे हैं तथा अपने साथी कर्मचारी/शिक्षकों को गुमराह करते रहते हैं जिससे संस्था का शैक्षणिक विकास बाधित

हो रहा है, आपका यह कृत्य अनुशासनहीनता की श्रेणी में आता है। अतः आप घोर अनधीनता व अनुशासनहीनता के दोषी हैं।

6. प्रबन्ध समिति की खेलकूद उपसमिति ने अपने आकस्मिक निरीक्षण में आपको खेलकूद के समय मैदान पर नहीं पाया गया। विद्यार्थियों से पूछने पर पता चला कि आप अक्सर मैदान पर नहीं आते हैं। अतः आप अपनी झूटी व कर्तव्यों का पालन न करने के दोषी हैं।

7. प्रबन्ध समिति की खेलकूद उपसमिति ने खेलकूद में कोई सुधार नहीं पाया। इसके लिए आप दोषी है।

8. प्रबन्धन की संज्ञाय में आया है कि खेलकूद के लिए बाहर गई टीमों को खाने, नाश्ते आदि का जो पैसा विभाग से दिया जाता है वह आपने उन विद्यार्थियों पर पूर्णरूपेण खर्च न कर उसका दुरुपयोग किया है जो बेईमानी व भ्रष्टाचार की परिधि में आता है इसके लिए आप दोषी हैं।""

6. याचिकाकर्ता ने आरोप-पत्र का उत्तर दिया और अपने विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया। इसके बाद, याचिकाकर्ता को जाँच समिति के समक्ष उपस्थित होना आवश्यक था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा कुछ आपत्तियाँ दर्ज की गई थीं कि संबंधित दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं कराए गए थे, फिर भी जाँच समिति ने 14.11.2007 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें सभी आरोप सत्य और सिद्ध पाए गए और याचिकाकर्ता का कार्य असंतोषजनक पाया गया। इसलिए, यह प्रस्ताव किया गया कि परिवीक्षा अवधि न बढ़ाई जाए और उसकी सेवाएँ समाप्त कर दी जाएँ। जाँच रिपोर्ट का प्रासंगिक अंश यहाँ पुनः प्रस्तुत है:-

"श्री संजय कुमार सेंगर जांच उपसमिति के समक्ष उपस्थित नहीं हुये व उन्होने दिनांक 01.11.2007 को पत्र द्वारा जांच उपसमिति के गठन को चेलेन्ज किया व इण्टरमीडिएट अधिनियम धारा 3(35) का उल्लेख किया। जांच उपसमिति ने सभी पहलुओं पर विचार कर पाया कि जांच समिति गठित किये जाने का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। श्री सेंगर ने अपने उत्तर में प्रधानाचार्य व प्रबन्धक पर सीधे दुराग्रह व पूर्वाग्रह का आरोप लगाया है। अतः प्रबन्ध समिति ने निष्पक्ष न्याय को ध्यान में रखते हुये प्रबन्धक व प्रधानाचार्य को अलग रखते हुये जांच उपसमिति का गठन किया जो विधि अनुसार है। अतः श्री सेंगर का इस बारे में दिया गया आवेदन निरस्त किया जाता है।

श्री संजय कुमार सेंगर ने जांच उपसमिति के अध्यक्ष से समय पूर्व प्रातः 11:00 बजे प्रबन्धक कक्ष में प्रबन्धक व श्री अंजय जैन, सदस्य प्रबन्ध समिति की उपस्थिति में मिलकर कहा कि उन्होने जो आरोप पत्र का उत्तर दिया है एवं जो पत्र दिनांक 01.11.2007 को दिया है, उसके अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं कहना है। परन्तु उन्होंने इस स्थान पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया था। उन्होंने यह भी आरोप लगाया कि उनके सहयोगी जो विभिन्न खेलोंकी उपसमितियों के प्रभारी हैं, सहयोग नहीं करते हैं। अन्त में वह यह कह कर चले गये कि वह

उपसमिति के समक्ष उपस्थित नहीं होंगे। समिति श्री सेंगर द्वारा लगाये गये अक्षेप के सम्बन्ध में श्री भानु प्रताप सिंह व श्री धमेन्द्र पाल सिंह यदुवंशी के बयान लिये और श्री सेंगर के इस आक्षेप को गलत पाया।

समिति ने श्री संजय कुमार सेंगर के आरोपों के उत्तर को साक्ष्य के अभाव में मानने योग्य नहीं पाया, अतः समिति ने बिन्दुवार जांच करने का निश्चय किया। समिति ने भी राजवीर सिंह के बयान व कक्षाओं में सीधे विद्यार्थियों से पूछताछ करने पर पाया कि वह नैतिक शिक्षा व खेलकूद पी०टी० व स्काउट के घंटे में नहीं जाते या विलम्ब से पहुंचते हैं। उन्होंने नैतिक शिक्षा व खेलकूद का प्रश्न पत्र बनाने से भी साफ इंकार कर दिया था जिसका साक्ष्य देखने के पश्चात यह निर्णय निकाला कि उन पर लगाया गया आरोप संख्या 2 सत्य है। अतः श्री सेंगर जानबूझकर कर्तव्य की उपेक्षा अनधीनता व अनुशासनहीनता के दोषी है।

कालेज के मुख्य लिपिक श्री विनोद कुमार जैन के बयान व तथ्यों की जानकारी करने पर कोई विपरीत साक्ष्य न होने के कारण समिति ने आरोप संख्या-3 को सच माना है। जिसके आधार पर श्री संजय कुमार सेंगर कालेज रिकार्ड को जानबूझ कर गुम करने व नष्ट करने के दोषी पाये गये।

समिति के सामने जो विभिन्न प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध हुये जिसमें *लोकल इंटेलिजेंस यूनिट* की रिपोर्ट भी शामिल हैं जिसमें श्री सेंगर का नाम उल्लिखित है, के आधार पर इस बात की पुष्टि होती है कि श्री सेंगर की कर्तव्य निष्ठा एवं विश्वसनीयता संस्था के प्रति नहीं है। अतः श्री सेंगर घोर दुराचरण के दोषी हैं और उन पर लगाया गया आरोप संख्या 4 सत्य है।

आरोप संख्या 1 व 5 के सम्बन्ध में प्रधानाचार्य का ध्यान खेलकूद उपसमिति की रिपोर्ट के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि श्री सेंगर को सुधार हेतु एक वर्ष का जो परिवीक्षण का समय बढ़ाया गया, उसके बावजूद भी खेलकूद की गतिविधियों में कोई सुधार नहीं हुआ। श्री सेंगर को समय समय पर आगाह भी किया गया पर उन पर इसका कोई असर नहीं हुआ। यह भी संज्ञान में आया है कि श्री सेंगर खेलकूद के मैदान में अधिकतर बाहरी व्यक्तियों को खिलाकर यह दिखाना चाहते हैं कि खेलकूद में सुधार हुआ है और प्रबन्धन को गुमराह करने का प्रयास कर रहे हैं। मैनपुरी के लिये चयनित विद्यार्थियों के शिकायत पत्र की जांच के बाद पाया गया कि श्री सेंगर चयनित विद्यार्थियों को छोड़ गये व उनकी जगह बाहरी लोगों को ले गये जो निहायत ही गलत कार्य है। अगर आयोजकों के संज्ञान में यह बात आ जाती तो विद्यालय की बदनामी होती व उसका नाम काली सूची में डाल दिया जाता। इस प्रकार श्री सेंगर जानबूझ कर गम्भीर कर्तव्य की उपेक्षा, प्रबन्धन को गुमराह करने और घोर अनुशासनहीनता के दोषी है।

आरोप संख्या 6 व 7 के बारे में श्री सेंगर का उत्तर कि संदर्भित खेलकूद उपसमिति का उन्हें कोई ज्ञान नहीं है झूठा है। श्री सेंगर खेलकूद उपसमिति के सदस्यों से मिलते रहे हैं व उन्होंने उन्हें पत्र भी लिखे हैं इसके बावजूद उनका यह कहना झूठ का आधार लेकर तथ्यों को छिपाने का प्रयास है। प्रबन्ध समिति की खेल कूद उपसमिति ने अपनी आकस्मिक निरीक्षण की रिपोर्ट व मैदान पर विद्यार्थियों से पूछने पर पाया कि श्री सेंगर मैदान पर

अधिकांश नहीं आते हैं। यह तथ्य पूर्ण रूप से सत्य पाया गया। विद्यालय व विद्यार्थियों के हित में प्रबन्ध समिति का कोई भी सदस्य कालेज की गतिविधियों का आकस्मिक निरीक्षण कर सकता है। यदि श्री सेंगर अपनी झूठी ठीक से करते तो उन्हें इस प्रकार के निरीक्षण पर क्यों ऐतराज होता। अतः समिति ने श्री सेंगर को कर्तव्यों का पालन न करने का दोषा पाया व उस पर लगाये गये यह आरोप सं० 6 व 7 सत्य पाये गये।

आरोप संख्या-8 के सम्बन्ध में यह संज्ञान में आया कि श्री सेंगर जो बाहरी लोगों को कालेज में मैनपुरी खिलाने ले गये उनका टी०ए०/ डी०ए० का बिल उन्होंने पूर्ण पैसा प्राप्त करने हेतु प्रेषित किया। जब उस पर यह आपत्ति लगाई गई तो उन्होंने उसे काट कर ठीक किया। यह दस्तावेज रिकार्ड पर उपलब्ध है। इस प्रकार उन्होंने सरकारी पैसे का गलत तथ्यों के आधार पर निकाल कर अपने स्वार्थ के लिये उपयोग करने का प्रयास किया।

इसी आधार पर यह भी माना जा सकता है कि पूर्व में भी उन्होंने इस प्रकार का कृत्य किया होगा। अतः श्री सेंगर धोखाधड़ी से सरकारी पैसा निकालने व उसका दुरुपयोग करने के प्रयास के दोषी हैं जो बेईमानी व भ्रष्टाचार की परिधि में आता है।

समीक्षा :-

उक्त सभी आरोपों को ध्यान में रखते हुए समिति ने सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि पाया कि श्री संजय कुमार सेंगर व्यायाम शिक्षक पर लगाये गये सभी आरोपसत्य सिद्ध होते हैं जिसके आधार पर वह कर्तव्य की उपेक्षा, अनधीनता, घोर अनुशासनहीनता, घोर दुराचरण प्रबन्धन को गुमराह करने, अपने कर्तव्यों का पालन न करने, बेईमानी व भ्रष्टाचार के दोषी हैं। वह व्यायाम अध्यापन के कार्य में भी सक्षम नहीं पाये गये। एक वर्ष का परिवीक्षण कार्यकाल भी बढ़ाये जाने के बाद भी खेलकूद के उन्नयन में कामयाब नहीं हुये।

निष्कर्ष :-

श्री संजय कुमार सेंगर स्थाई अध्यापक नहीं है और उनका परिवीक्षण कार्यकाल जनवरी 2008 के प्रथम सप्ताह में समाप्त हो रहा है। श्री सेंगर पर लगाये गये आरोपों की पुष्टि व उनके असन्तोषजनक कार्य को देखते हुये यह उप समिति सर्व सहमति से विद्यालय और विद्यार्थियों के हितों को ध्यान में रखते हुये संस्तुति करती है कि श्री संजय कुमार सेंगर का स्थाईकरण न किया जाये जिसके फलस्वरूप परिवीक्षण काल समाप्ति होने पर उनकी सेवायें स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी। उपर्युक्त रिपोर्ट प्रबन्धसमिति को विचार हेतु प्रेषित"

(जोर दिया गया)

7. इसके बाद महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति के प्रबन्धक ने जांच रिपोर्ट की प्रति के साथ दिनांक 20.11.2007 को कारण बताओ नोटिस जारी किया तथा रिपोर्ट पर विचार करने तथा जवाब देने के लिए तिथि निर्धारित की।

8. उपर्युक्त परिस्थितियों में, दिनांक 26.11.2007 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया जिसके तहत याचिकाकर्ता की सेवाएँ 03.01.2008 से समाप्त करने का निर्देश दिया गया। दिनांक 26.11.2007 का आक्षेपित आदेश आगे उल्लिखित है:-

"संस्था की प्रबंध कारिणी समिति की बैठक संस्था में दिनांक 25-11-2007 को हुई। बैठक में अधोहस्ताक्षरकर्ता द्वारा आपको प्रेषित अनुशासनहीनता आदि सम्बन्धी आरोप पत्र दिनांक 8-10-2007 से संबंधित जांच आप समिति द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट सभा के समक्ष रखी गई। जांच उपसमिति ने अपनी जांच में सभी आपसे संबंधित अनुशासनहीनता सम्बन्धी सभी आरोपों को साक्ष्यों एवं गवाही के आधारों पर पूर्णरूप से सही पाया और आपको संस्थाहित में स्थाई नहीं करने की संस्तुति की है। अतः सभा में उपस्थिति श्री सदस्यों ने जांच में सही पाये गये आरोपों उपजांच समिति की संस्तुति पर गम्भीरता से विचारकिया और सब सम्पत्ति से एक प्रस्ताव पारित किया कि संस्था की गरिमा एवं स्थाहित में श्री संजय कुमार सेंगर सहायक अध्यापक व्यायाम शिक्षक को स०अ० पद पर स्थाई नहीं किया जाय और उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया जाय और सेवा समाप्ति की नोटिस की संजय कुमार सेंगर सहायक अध्यापक को भेज दिया जाय और संबंधित विभागीय अधिकारियों को इस वस्तु स्थिति से अवगत करा दिया जाय जांच उपसमिति ने अपने पत्र दिनांक 26-10-2007 को आपको दिनांक 1-11-2007 को उपसमिति के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करने को बुलाया तो आप स्वयं उपस्थित हुए और कहा कि मैंने जो पत्र आज दिनांक 1-11-2007 को दिया है उसके अतिरिक्त मुझे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है और इस व्यान पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया और उठकर चले गये जांच उप समिति ने आपको उत्तर को साक्ष्य के अभाव में मानने योग्य नहीं पाया है। और जांच उप समिति के गठन को उचित ठहराया है।

जांच उपसमिति ने समय सारिणी व्यवस्थापक एवं सीधे संबंधित कक्षाओं विद्यार्थियों से पूछताछ करने पर पाया कि आप नैतिक एवं शारीरिक खेलकूद शिक्षा के अनिवार्य विषय व पी टी तथा स्काउट के घण्टों में पढ़ाने नहीं जाते हैं या विलम्ब से पहुंचते हैं। अपने नैतिक एवं शारीरिक खेलकूद शिक्षा अनिवार्य विजय के प्रश्न के प्रश्न पत्र बनाने से स्पष्ट मना कर दिया और कहा कि पेरे पास समय नहीं है। इस बात को संस्था के परीक्षा कार्यालय के साक्ष्यों के आधार पर जांच समिति ने सत्य पाया है। आप इसलिए जानबूझकर कर्तव्य की उपेक्षा अधीनता व अनुशासनहीनता के दोषी है अतः आरोप संख्या-2 सत्य है। इस सम्बन्ध में आप आपने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है।

जांच उपसमिति ने संस्था के मुख्य लिपिक और अन्य तथ्यों की जानकारी पर आरोप संख्या-3 को तथ्य पाया जिसके आधार पर आप कालिज रिकार्ड को जानबूझकर गुम करने अथवा नष्ट करने के दोषी पाये गये हैं इस सम्बन्ध में आपने कोई स्पष्टीकरण साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है। उपसमिति के सामने जो विभिन्न साक्ष्य उपलब्ध कराये गये जिनमें स्थानीय जांच यूनिट की रिपोर्ट समिति है जिसमें आपका नाम शिकायत करता के रूप में उल्लेखित है के आधार पर इस बात का पुष्टि होती है कि बाद को कर्तव्य निष्ठता एवं विश्वसनीयता संस्था के प्रति संदिग्ध कारण नहीं है आप पर लगाया गया आरोप संख्या-4 सत्य है। आप द्वारा खेलकूद

गतिविधियों में कोई अभिक्षति नहीं ली जाती है खेलकूद उप समिति एवं संस्था के प्रधानाचार्य की रिपोर्टों के आधारपर जांच उप समिति द्वारा जांच में यह पाया गया कि आप खेलकूद मैदान में अनुपस्थित रहते हैं और बाहरी छात्रों की विठाकर दिखाना चाहते हैं कि खेल कूद स्तर में सुधार हुआ है। मण्डलीय स्तर पर कबड्डी टीम में बाहरी कार्यों को इस सन 2007-08 में खिलाने जनपद मैनपुरी में ले गये थे आरोप संख्या 1 व 05 साक्ष्यों के आधार पर सत्य पाये गये हैं। अतः आप जानबूझकर गम्भीर कर्तव्य की उपेक्षा प्रबंधन को गुमराह करने एवं घोर अनुशासनहीनता के दोषी हैं इस सम्बन्ध में आपका उत्तर सन्तोष जनक नहीं है। आरोप संख्या 06 व 07 के बारे में आपका उत्तर असत्य है झूठ बोलकर आपने सही संस्था को छिपाने का असफल प्रयास किया है। खेलकूद उपसमिति ने अपनी आकस्मिक निरीक्षण तथा विद्यार्थियों से पूछने पर पाया कि आप खेल मैदान पर अनुपस्थित चाहते हैं अतः आप कर्तव्यों के पालन नहीं करने के दोषी हैं और आरोप संख्या 06 व 07 सत्य है इस सम्बन्ध में आपके स्तर से कोई साक्ष्य या गवाही प्रस्तुत नहीं की गई है। जांच समिति ने अपनी जांच में पाया कि बाहरी लोगों को खिलाने कबड्डी की टीम मैनपुरी ले गये तो उनका टी ए एवं डी ए का बिल पूरा पैसा प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत किया। जब संस्थागत छात्रों ने विरोध किया तो अपने विल को संशोधित कर पेश किया वह संशोधित दस्तावेज रिकार्ड पर उपलब्ध है आपने इसी स्वीकार किया तथा भूल वश करने का बयान दिया अतः आरोप संख्या 08 सत्य पाया गया है। आप संस्था से पैसा निकालने व उनका स्वयं के लिए दुरुपयोग करने के प्रयास के दोषी हैं जो बेईमानी व भ्रष्टाचार की परिधि में आता है। इस प्रकार आप अपने विरुद्ध बने आरोपों के सापेक्ष कोई गवाही एवं साक्ष्य प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं और आरोपों के सम्बन्ध में प्राप्त उत्तर एवं स्पष्टीकरण सन्तोष नहीं है। जबकि आपको गवाही एवं साक्ष्य प्रस्तुत करने में अधोहस्ताक्षरी ने अनेक अवसर प्रदान किये हैं। ऐसी परिस्थिति में आपको संस्था में सेवा में रखना न्याय संगत नहीं होगा।

अतः आपकी सहायक अध्यापक व्यायाम शिक्षा पद पर सेवाएँ दिनांक 03.01.2009 के बाद स्वतः समाप्त हो जावेगी।"

9. वर्तमान रिट याचिका में उपरोक्त आदेश को चुनौती दी गई है। व्यायाम में सहायक अध्यापक के पद को भरने के लिए जारी नए विज्ञापन को भी संशोधन के माध्यम से चुनौती दी गई है।

10. यह विवाद का विषय नहीं है कि उक्त नई भर्ती प्रक्रिया के अनुसरण में, वलीउज्जमां खान नामक व्यक्ति को नियुक्त किया गया था और जब 29.06.2009 के बाद के आदेश द्वारा उनका वेतन भुगतान नहीं किया गया, तो उन्होंने प्रबंध समिति के साथ मिलकर रिट-ए संख्या 52910/2011 (सी/एम के.एल. जैन इंटर कॉलेज सासनी महामाया नगर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) के तहत एक रिट याचिका दायर की, जिसकी सुनवाई भी इस रिट याचिका के साथ हुई।

11. याचिकाकर्ता (संजय कुमार सेंगर) के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव सिंह ने तर्क दिया है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया और याचिकाकर्ता को नियुक्ति प्राधिकारी के समक्ष अपना पक्ष रखने का कोई अवसर नहीं दिया गया। विद्वान अधिवक्ता ने आगे

तर्क दिया कि उनके उत्तर पर विचार किए बिना केवल जाँच रिपोर्ट के आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया और सभी आरोप झूठे हैं। जाँच प्रासंगिक प्रावधानों के अनुसार नहीं की गई थी।

12. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि याचिकाकर्ता को एक वर्ष की परिवीक्षा अवधि पूरी होने के बाद स्थायी घोषित किया जाना चाहिए था। हालाँकि, बिना किसी कानूनी सहायता या प्रावधान के इसे एक वर्ष के लिए और बढ़ा दिया गया। बर्खास्तगी का आदेश एक कलंकपूर्ण आदेश है, इसलिए, आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश पारित करने से पहले उनके पक्ष पर विचार किया जाना चाहिए। हालाँकि, ऐसा कोई अवसर नहीं दिया गया।

13. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा कि वर्तमान मामले के विचाराधीन होने के बावजूद, नई भर्ती आयोजित करके न्यायालय ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि यदि इस रिट याचिका को स्वीकार भी कर लिया जाता है, तो भी याचिकाकर्ता को संभवतः कोई लाभ नहीं मिलेगा।

14. इसके विपरीत, प्रबंधन समिति की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है और प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता परिवीक्षा पर था और जांच के बाद उसका आचरण संतोषजनक नहीं पाया गया क्योंकि वह अवैध गतिविधियों में लिप्त था और उसने व्यायाम के सहायक अध्यापक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन निष्ठापूर्वक नहीं किया है, इसलिए उसकी परिवीक्षा अवधि नहीं बढ़ाई गई और तदनुसार उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत सहित उचित प्रक्रिया का अनुपालन करके।

15. नव चयनित अभ्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि व्यायाम में सहायक अध्यापक के पद को भरने के लिए नई भर्ती प्रक्रिया अन्य पद के संबंध में थी और इससे याचिकाकर्ता के दावे पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

16. संबंधित रिट याचिका रिट-ए संख्या 52910/2011 (सी/एम के.एल. जैन इंटर कॉलेज सासनी महामाया नगर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सहायक अध्यापक, व्यायाम के पद को भरने के लिए अलग से भर्ती प्रक्रिया शुरू की गई थी और चूंकि पद विषयवार सृजित नहीं किए गए थे, इसलिए सहायक अध्यापक, व्यायाम के पद को भरने के लिए प्रक्रिया शुरू करने में कोई अवैधता नहीं थी और उचित प्रक्रिया के बाद उक्त रिट याचिका में याचिकाकर्ता संख्या 2 को नियुक्त किया गया और जब राज्य के खजाने से उसका वेतन रोक दिया गया तो उसने उपर्युक्त याचिका के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जिसमें 28.05.2013 के एक अंतरिम आदेश द्वारा, उक्त आदेश पर रोक लगा दी गई और तदनुसार याचिकाकर्ता संख्या 2 अभी भी काम कर रहा है और उसे नियमित वेतन दिया जा रहा है। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि चयन प्रक्रिया प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लंघन थी।

17. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त रिट याचिका की पोषणीयता पर आपत्ति की है तथा प्रस्तुत किया है कि यह याचिका प्रबन्ध समिति तथा चयनित अभ्यर्थी दोनों द्वारा दायर की गई है, जबकि रिट याचिका के साथ चयनित अभ्यर्थी का शपथ पत्र संलग्न है, जिसका प्रबन्ध समिति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

18. श्री वी.के. सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री समर्थ सिंह, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त, संदर्भित रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, उल्लिखित रिट याचिकाओं में कहा गया कि इस रिट याचिका को केवल याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा दायर माना जा सकता है क्योंकि वह प्रभावित पक्ष था।

19. पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया। याचिकाकर्ता, संजय कुमार सेंगर, को 02.01.2006 को एक वर्ष की परिवीक्षा अवधि के लिए व्यायाम विद्यालय में सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया था, जिसे एक वर्ष के लिए और बढ़ा दिया गया था। यद्यपि परिवीक्षा अवधि के दौरान यदि किसी चयनित अभ्यर्थी की सेवाएँ संतोषजनक नहीं थीं, तो उसकी परिवीक्षा अवधि नहीं बढ़ाई जा सकती थी, फिर भी चूँकि ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ आरोप थे, इसलिए विभागीय कार्यवाही शुरू की गई। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के इस तर्क में कोई विशेष कानूनी बल नहीं है कि एक वर्ष की परिवीक्षा अवधि पूरी होने के बाद उसे स्थायी माना जाना चाहिए था। यह भी विवाद का विषय नहीं है कि परिवीक्षा अवधि के दौरान संतोषजनक सेवा पूरी करने के बाद किसी कर्मचारी को स्थायी नियुक्ति दी जा सकती है।

20. याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप मुख्य रूप से सहायक अध्यापक, व्यायाम के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन निष्ठापूर्वक नहीं करने के हैं, साथ ही दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि के दौरान खेल के स्तर में सुधार नहीं किया गया।

21. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कोई ठोस सबूत पेश नहीं किया है कि उनके दो साल के परिवीक्षा काल के दौरान खेल के स्तर में कोई सुधार हुआ हो। यदि उनकी सेवाएँ असंतोषजनक पाई जाती हैं, तो परिवीक्षाधीन व्यक्ति की नियुक्ति बिना किसी जाँच के भी रद्द की जा सकती है। हालाँकि, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है कि चूँकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कुछ आरोप थे। इसलिए, आरोप पत्र जारी किया गया और उसके बाद जाँच भी की गई।

22. यह विचार करने के लिए कि क्या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया गया था या नहीं, न्यायालय ने जाँच रिपोर्ट पर गौर किया है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि याचिकाकर्ता द्वारा आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और उसने प्रबंधक द्वारा जारी नोटिस पर प्रस्तुत अपने पूर्व के तर्कों को दोहराया है। संबंधित कॉलेज की प्रबंधन समिति द्वारा जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। अतः, इस स्तर पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पर्याप्त रूप से पालन किया गया।

23. जाँच रिपोर्ट के आधार पर नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। इस स्तर पर, याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि कारण बताओ नोटिस की प्रति उन्हें नहीं दी गई। इसलिए, वे कोई जवाब दाखिल नहीं कर पाए। यह भी तर्क दिया गया है कि प्रबंधन समिति ने भी पर्याप्त अवसर नहीं दिया और यह एकपक्षीय रिपोर्ट थी। अब केवल यह विचारणीय बिंदु बचा है कि कारण बताओ नोटिस दिया गया या नहीं और विचारार्थ कोई जवाब दाखिल किया गया या नहीं और यदि दाखिल किया गया तो क्या उस पर विचार किया गया। इस संबंध में, प्रति-शपथपत्र में प्रबंधन समिति का उत्तर प्रासंगिक होगा और संदर्भ के लिए इसके पैरा 17 की विषयवस्तु यहाँ पुनः प्रस्तुत है:-

"17. रिट याचिका में पैराग्राफ संख्या 38 जोड़कर संशोधन आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 17 की सामग्री गलत है, इसलिए इसे अस्वीकार किया जाता है। इसके जवाब में यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि प्रबंधन समिति ने याचिकाकर्ता को 20.11.2007 को एक पत्र भेजा है जिसमें सूचित किया गया है कि जांच रिपोर्ट पर विचार करने के लिए 25.11.2007 को बैठक आयोजित की जाएगी, इसलिए याचिकाकर्ता को उस तारीख को उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है। इस माननीय न्यायालय के अवलोकन के लिए, कॉलेज की प्रबंधन समिति के प्रबंधक द्वारा याचिकाकर्ता को भेजे गए पत्र दिनांक 20.11.2007 की फोटोस्टेट प्रति इसके साथ दायर की जा रही है और इस हलफनामे के अनुलग्नक सीए 3 के रूप में चिह्नित की जा रही है।

यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि इस पत्र द्वारा याचिकाकर्ता को यह भी सूचित किया गया था कि यदि वह जांच रिपोर्ट के विरुद्ध कोई उत्तर या आपति प्रस्तुत करना चाहता है तो वह उसे उक्त तिथि को प्रस्तुत कर सकता है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 20.11.2007 के पत्र के अनुसरण में 25.11.2007 को एक बैठक आयोजित की गई और याचिकाकर्ता स्वयं उस बैठक में उपस्थित थे तथा उन्होंने उपस्थिति पत्रक पर अपने हस्ताक्षर भी किए हैं। माननीय न्यायालय के अवलोकनार्थ, दिनांक 25.11.2007 के उपस्थिति पत्रक की प्रमाणिकता/फोटोस्टेट प्रति इस शपथपत्र के साथ संलग्न की जा रही है तथा इसे अनुलग्नक CA-4 के रूप में अंकित किया जा रहा है।

(जोर दिया गया)

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता परीक्षा पर था, इसलिए यदि उसका कार्य संतोषजनक नहीं था, तो प्रबंध समिति उसकी परीक्षा अवधि न बढ़ाने का आदेश पारित कर सकती है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध मुख्यतः यह आरोप था कि वह व्यायाम विद्यालय में सहायक अध्यापक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन ठीक से नहीं कर रहा था और महाविद्यालय के सामान्य कामकाज में बाधा डाल रहा था। यह कहा गया है कि संबंधित महाविद्यालय के छात्रों को प्रोत्साहित करने के बजाय, वह अन्य छात्रों को कबड्डी प्रतियोगिता में ले गया। जाँच के दौरान दर्ज किए गए प्रासंगिक साक्ष्य और गवाहों के बयानों के आधार पर उक्त आरोप का स्पष्ट रूप से खंडन नहीं किया गया है।

25. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पर्याप्त रूप से पालन किया गया। यह सर्व विदित है कि किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवा समाप्ति, रोजगार नियमों के अंतर्गत या संविदात्मक अधिकार के प्रयोग में, न तो बर्खास्तगी है और न ही निष्कासन। हालाँकि, यदि यह आदेश कर्मचारी के चरित्र या निष्ठा के विरुद्ध है, तो यह दंडात्मक आदेश होगा, चाहे कर्मचारी केवल परिवीक्षाधीन हो या अस्थायी। यदि उसे उसकी सेवा समाप्ति के विरुद्ध कारण बताने का उचित अवसर दिए बिना सेवा से बर्खास्त कर दिया गया हो और ऐसे मामलों में भी, यदि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया गया हो और प्रक्रिया में कोई कमी न हो, तो रिट न्यायालय हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं होगा।

26. उपर्युक्त परिस्थितियों में, अब यह मानना उचित होगा कि चूँकि जाँच के दौरान प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया गया और जाँच समिति द्वारा उनके उत्तर पर विचार किया गया तथा तत्पश्चात जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, साथ ही प्रबन्ध समिति के प्रबंधक द्वारा याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस भी दिया गया और उन्होंने भी अनुमोदन किया, अतः कोई अनियमितता नहीं हुई। प्रति-शपथपत्र और उसके साथ संलग्न अनुलग्नक की विषय-वस्तु यह दर्शाने के लिए पर्याप्त होगी कि याचिकाकर्ता कारण बताओ नोटिस के अनुसरण में उपस्थित हुआ है और उसने दिनांक 25.11.2007 की बैठक में हस्ताक्षर भी किए हैं। अतः, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क कि कारण बताओ नोटिस जारी करने के चरण में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया, अभिलेख के विपरीत होगा।

27. उपर्युक्त परिस्थितियों में और उन आरोपों को ध्यान में रखते हुए, जो इस बात पर आधारित हैं कि याचिकाकर्ता अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी लगन से नहीं कर रहा था और न ही खेलों का स्तर सुधारा गया और न ही कॉलेज के छात्रों को प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया, न्यायालय का विचार है कि जिस आदेश के तहत परिवीक्षा अवधि नहीं बढ़ाई गई और सेवा समाप्त कर दी गई, उसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अतः दिनांक 26.11.2007 का आदेश बरकरार रखा जाता है।

28. न्यायालय ने **शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (1974) 2 एससीसी 831** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का भी संज्ञान लिया है कि चूँकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पर्याप्त रूप से अनुपालन किया गया था और याचिकाकर्ता अपने कदाचार को स्पष्ट करने में सक्षम नहीं था और उसकी सेवाएं संतोषजनक नहीं थीं, इसलिए **शमशेर सिंह (उपरोक्त)** में प्रस्तावित कानून का भी अनुपालन किया गया था, यहां तक कि समाप्ति का आदेश भी दंडात्मक हो सकता है, हालांकि चूँकि सुनवाई का उचित अवसर दिया गया था, इसलिए हस्तक्षेप के लिए कोई आधार मौजूद नहीं है। (**स्वाति प्रियदर्शिनी बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024 आईएनएससी 620** भी देखें)।

29. जहाँ तक रिट याचिका, रिट-ए संख्या 52910 वर्ष 2011 का संबंध है। उक्त याचिका में, चयनित अभ्यर्थी अर्थात् याचिकाकर्ता संख्या 2 के पक्ष में एक अंतरिम आदेश पहले ही पारित किया जा चुका है और उक्त याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में दम है कि पद विषयवार नहीं हैं और अन्य विषयों के शिक्षक भी हैं, इसलिए व्यायाम के लिए किसी अन्य शिक्षक की नियुक्ति पर कोई रोक नहीं है। अतः, उक्त याचिका में याचिकाकर्ता संख्या 2 की नियुक्ति में कोई अवैधता नहीं थी। अतः, अंतरिम आदेश को पूर्णतः लागू किया जाता है।

30. उपर्युक्त टिप्पणियों के साथ, रिट याचिका, अर्थात् रिट-ए संख्या 63857/2007 (संजय कुमार सेंगर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) **खारिज** की जाती है और संबंधित रिट याचिका, अर्थात् रिट-ए संख्या 52910 वर्ष 2011 (सी/एम के.एल. जैन इंटर कॉलेज सासनी महामाया नगर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) स्वीकार की जाती है। संयुक्त शिक्षा निदेशक, अलीगढ़ क्षेत्र, अलीगढ़ द्वारा पारित दिनांक 29.06.2010 का आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा निरस्त किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 219

मूल अधिकारिता

नागरिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.03.2025

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति अरुण भंसाली

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

रिट बी संख्या 1261 सन् 2024

श्रीमती सुशीला श्रीवास्तव

...याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड उ.प्र. एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:-

अखिलेश कुमार पांडे, स्वधा गुप्ता

उत्तरदाताओं अधिवक्ता:-

सी.एस.सी. लाक्खी चन्द त्यागी, मोहन सिंह, शिव शंकर त्यागी

ए. सिविल कानून -भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-यूपी राजस्व संहिता, 2006-धारा 210 और 212-पुनरीक्षण की पोषणीयता-राजस्व मामले का हस्तांतरण-समवर्ती क्षेत्राधिकार-याचिकाकर्ता ने राजस्व बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 05.09.2024 के आदेश को चुनौती दी, जिसने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता 2006 की धारा 210 के तहत दायर पुनरीक्षण को अनुमति दी थी। उक्त पुनरीक्षण उसी संहिता की धारा 212(2) के अंतर्गत स्थानांतरण आदेश के विरुद्ध दायर किया गया था। - विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले को एक वृहत्तर पीठ को भेज दिया - खंडपीठ ने माना कि ऐसे आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण याचिका स्वीकार्य है क्योंकि धारा 210 उन कार्यवाहियों पर पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार प्रदान करती है जहाँ कोई अपील नहीं होती है, और धारा 212(2) के अंतर्गत आदेश संहिता के अंतर्गत अपील योग्य नहीं है - पीठ ने आगे स्पष्ट किया कि शारदा सिंह मामले में लिया गया पूर्व दृष्टिकोण, जिसमें माना गया था कि ऐसे स्थानांतरण आदेशों पर कोई पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार मौजूद नहीं है, विधि के अनुसार सही नहीं है - संदर्भ का तदनुसार उत्तर दिया गया कि ऐसे मामलों में पुनरीक्षण की ग्राह्यता को पुष्ट किया गया। (प्रस्तर 1 से 21)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. शारदा सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2019) 142आरडी 190.
2. बाबू सिंह एवं अन्य बनाम राज बहादुर सिंह एवं अन्य {टी.ए. (सिविल) संख्या 121/2021}

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति अरुण भंसाली
और
माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा प्रदत्त किया गया)

1. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 19.12.2024 के आदेश के तहत एक बड़ी पीठ को निम्नलिखित प्रश्न पर विचार करने के लिए संदर्भ दिए जाने पर, मामला हमारे समक्ष रखा गया है:

"क्या राजस्व संहिता, 2006 की धारा 210 के तहत कोई पुनरीक्षण राजस्व संहिता, 2006 की धारा 212 के तहत शक्ति के प्रयोग में किसी भी मामले या कार्यवाही को स्थानांतरित करने के लिए पारित आदेश के खिलाफ बनाए रखा जा सकता है, विशेष रूप से संहिता 2006 की धारा 210 के साथ धारा 209 को ध्यान में रखते हुए?"

2. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 ('कोड, 2006') की धारा 210 के तहत दायर पुनरीक्षण याचिका में पारित आदेश दिनांक 05.09.2024 को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर की गई थी, जिसके तहत संहिता, 2006

की धारा 212 के तहत शक्तियों के प्रयोग में मामले के हस्तांतरण की अनुमति देने वाले आदेश के खिलाफ प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण को अनुमति दी गई थी।

3. विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष यह दलील दी गई कि पुनरीक्षण स्वीकार्य नहीं है, जिस दलील को राजस्व बोर्ड के समक्ष उठाया गया, तथापि, उस पर विचार नहीं किया गया और इस संबंध में **शारदा सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: 2019(142) आरडी 190** के निर्णय पर भरोसा किया गया।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश का मत था कि मामले में निर्णय शारदा सिंह (उपरोक्त) ने संहिता, 2006 की धारा 209 और 210 के प्रावधानों को ध्यान में नहीं रखा था और कहा था कि अधीनस्थ राजस्व न्यायालय या प्राधिकरण द्वारा संहिता, 2006 की धारा 212 के तहत पारित आदेश के खिलाफ प्रथम दृष्टया पुनरीक्षण शक्ति, संहिता, 2006 की धारा 210 के तहत प्रयोग करने योग्य होगी और परिणामस्वरूप, इस मुद्दे को वृहत्तर बेंच को भेज दिया गया।

5. विद्वान याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने शुरू में दलील दी कि उन्हें **बाबू सिंह एवं अन्य बनाम राज बहादुर सिंह एवं अन्य** [स्थानांतरण आवेदन (सिविल) संख्या 121/2021] में 10.11.202 को तय किए गए डिवीजन बेंच के फैसले की जानकारी नहीं थी।

6. खंडपीठ ने धारा 24 सीपीसी के तहत पारित आदेश के संबंध में जिला न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ धारा 115 सीपीसी के तहत पुनरीक्षण शक्ति के प्रयोग के संबंध में एक समान प्रकृति के संदर्भ का उत्तर देते हुए, जो स्थानांतरण और वापसी की सामान्य शक्तियों से संबंधित है, इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि ऐसी पुनरीक्षण याचिका बनाए रखने योग्य थी।

7. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने **बाबू सिंह (उपरोक्त)** के निर्णय पर भी भरोसा किया।

8. हमने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया है तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

9. संहिता, 2006 की धारा 209, 210 और 212 के प्रावधानों को उद्धृत करना उचित होगा, जो इस प्रकार हैं:

209. कुछ अपीलों पर प्रतिबन्ध- धारा 207 और 208 में किसी बात के होते हुए भी, किसी आदेश या डिक्री के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाएगी।

(क) इस संहिता के अध्याय XI के अधीन बनाया गया;

(ख) परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत विलम्ब की क्षमा के लिए आवेदन को स्वीकृत या अस्वीकृत करना;

(ग) पुनरीक्षण के लिए आवेदन को अस्वीकार करना;

(घ) स्थगन हेतु आवेदन स्वीकृत करना या अस्वीकार करना;

(ई) मामले को किसी अधीनस्थ न्यायालय को भेजना;

(च) जहां ऐसा आदेश या डिक्री अंतरिम प्रकृति की है।

(छ) पक्षकारों की सहमति से न्यायालय या अधिकारी द्वारा पारित; या

(ज) जहां एकपक्षीय या व्यतिक्रम से पारित किया गया है:

परंतु एकपक्षीय या व्यतिक्रम से पारित आदेश से व्यथित कोई पक्षकार, आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर ऐसे आदेश को अपास्त करने के लिए आवेदन प्रस्तुत कर सकेगा, परंतु यह और कि ऐसा कोई आदेश उस पक्षकार को, जिसके पक्ष में आदेश पारित किया गया है, उपस्थित होने और उसके समर्थन में सुनवाई के लिए पूर्व में बुलाए बिना उलटा या परिवर्तित नहीं किया जाएगा।

210. अभिलेख मंगाने की शक्ति (1) बोर्ड या आयुक्त किसी अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा विनिश्चित किसी वाद या कार्यवाही का अभिलेख, जिसमें कोई अपील नहीं होती है, ऐसे वाद या कार्यवाही में पारित किसी आदेश की वैधता या औचित्य के बारे में स्वयं का समाधान करने के प्रयोजनार्थ मंगा सकेगा; और यदि ऐसे अधीनस्थ न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि-

(क) किसी ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है जो कानून द्वारा उसमें निहित नहीं है, या

(ख) इस प्रकार निहित अधिकारिता में असफल होना; या किसी अधिकारिता का प्रयोग करना

(ग) ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग अवैध रूप से या भौतिक अनियमितता के साथ किया गया हो; बोर्ड या आयुक्त, जैसा भी मामला हो, मामले में ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा वह ठीक समझे।

(2) यदि इस धारा के अधीन कोई आवेदन किसी व्यक्ति द्वारा बोर्ड या आयुक्त को प्रस्तुत किया गया है तो उसी व्यक्ति द्वारा किया गया कोई और आवेदन उनमें से किसी अन्य द्वारा ग्रहण नहीं किया जाएगा।

स्पष्टीकरण - शंका के निवारण के लिए यह घोषित किया जाता है कि जब इस धारा के अधीन कोई आवेदन बोर्ड या आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, तो उसी आदेश के विरुद्ध आवेदन को उनमें से किसी अन्य के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रयोजनार्थ आवेदन को वापस लेने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

(3) इस धारा के अधीन कोई भी आवेदन, संशोधित किए जाने के लिए वांछित आदेश की तारीख से या इस संहिता के प्रारंभ की तारीख से, जो भी बाद में हो, साठ दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात् ग्रहण नहीं किया जाएगा।

212. मामलों को स्थानांतरित करने की शक्ति-- (1) जहां बोर्ड को यह प्रतीत हो कि न्याय के उद्देश्यों के लिए ऐसा करना समीचीन होगा, वहां वह निर्देश दे सकेगा कि किसी मामले को एक राजस्व अधिकारी से उसी जिले

या किसी अन्य जिले के समान या वरिष्ठ रैंक के किसी अन्य राजस्व अधिकारी को स्थानांतरित कर दिया जाए।

(2) आयुक्त, कलेक्टर या उप-विभागीय अधिकारी इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य अधिनियम के उपबंधों के अधीन उत्पन्न होने वाले किसी मामले या मामलों के वर्ग को अपने अधीनस्थ किसी राजस्व अधिकारी को, जो ऐसे मामले या मामलों के वर्ग पर निर्णय करने के लिए सक्षम हो, निर्णय के लिए अपनी फाइल से सौंप सकेगा, या किसी ऐसे राजस्व अधिकारी से कोई मामला या मामलों के वर्ग को वापस ले सकेगा और ऐसे मामले या मामलों के वर्ग पर स्वयं विचार कर सकेगा या उसे निपटान के लिए ऐसे मामले या मामलों के वर्ग पर निर्णय करने के लिए सक्षम किसी अन्य राजस्व अधिकारी को निर्दिष्ट कर सकेगा।"

10. धारा 212 के प्रावधानों के अवलोकन से पता चलता है कि उप-धारा (1) के तहत स्थानांतरण की शक्ति राजस्व बोर्ड को प्रदान की गई है, जो यह निर्देश दे सकता है कि किसी भी मामले को एक राजस्व अधिकारी से उसी जिले या किसी अन्य जिले में समान या वरिष्ठ रैंक के दूसरे राजस्व अधिकारी को स्थानांतरित किया जाए। उप-धारा (2) के तहत किसी भी मामले या मामलों के वर्ग के संबंध में आयुक्त, कलेक्टर और उप-मंडल अधिकारी को अपनी फाइल से अपने अधीनस्थ किसी राजस्व अधिकारी को स्थानांतरित करने या किसी भी ऐसे राजस्व अधिकारी से किसी भी मामले या मामलों के वर्ग को वापस लेने की शक्ति प्रदान की गई है और वे ऐसे मामले या मामलों के वर्ग से स्वयं निपट सकते हैं या ऐसे मामले या मामलों के ऐसे वर्ग का फैसला करने के लिए सक्षम किसी अन्य राजस्व अधिकारी को निपटान के लिए भेज सकते हैं।

11. राजस्व बोर्ड और आयुक्त/कलेक्टर/उप-मंडल अधिकारी की शक्तियां समवर्ती हैं, जिसमें आयुक्त, कलेक्टर या उप-मंडल अधिकारी द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति का प्रयोग राजस्व बोर्ड द्वारा भी किया जा सकता है।

12. संहिता, 2006 में तीसरी अनुसूची के स्तंभ 2 में निर्दिष्ट किसी वाद, आवेदन या कार्यवाही में पारित अंतिम आदेश या डिक्री के विरुद्ध धारा 207 के अंतर्गत प्रथम अपील का प्रावधान है और यह धारा 47, 104 और आदेश XLIII नियम 1 सीपीसी में निर्दिष्ट प्रकृति के आदेश के विरुद्ध भी है।

13. धारा 212 के अंतर्गत पारित आदेश संहिता की तीसरी अनुसूची के कॉलम 2 में निर्दिष्ट नहीं है, इसलिए उस पर अपील नहीं की जा सकती। संहिता, 2006 की धारा 209 कुछ आदेशों के विरुद्ध अपील दायर करने पर रोक लगाती है।

14. संहिता, 2006 की धारा 210 बोर्ड या को पुनरीक्षण शक्तियां प्रदान करती है किसी अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा किसी वाद या कार्यवाही में पारित किसी आदेश के संबंध में आयुक्त को, यदि कोई अपील नहीं होती है।

15. उपरोक्त प्रावधानों के संयुक्त अध्ययन से पता चलता है कि संहिता, 2006 की धारा 212(2) के तहत पारित आदेश के विरुद्ध राजस्व बोर्ड के समक्ष पुनरीक्षण प्रस्तुत किया जाएगा।

16. **बाबू सिंह (उपरोक्त)** मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने इस विषय पर संपूर्ण कानून का अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला:

"43. हमने जो ऊपर कहा है, उसके मददेनजर, संदर्भित प्रश्नों के हमारे उत्तर ये हैं:

(i) प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है और यह माना गया है कि जिला न्यायाधीश द्वारा धारा 24 सीपीसी के तहत पारित आदेश धारा 115 सीपीसी के तहत संशोधित करने योग्य है, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है।

(ii) प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है और यह माना जाता है कि उसी आवेदक द्वारा समान कारण के आधार पर धारा 24 सीपीसी के तहत एक और आवेदन, जिला न्यायाधीश द्वारा धारा 115 सीपीसी के तहत पुनरीक्षण के माध्यम से धारा 24 सीपीसी के तहत जिला न्यायाधीश द्वारा निपटाए गए आवेदन पर पारित आदेश को चुनौती दिए बिना इस न्यायालय के समक्ष बनाए रखने योग्य नहीं होगा। सामान्यतः, धारा 24 सीपीसी के तहत एक आवेदन पर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश पुनरीक्षण योग्य होने के कारण, अनुच्छेद 227 के तहत संवैधानिक उपाय, हालांकि वर्जित नहीं है, धारा 115 सीपीसी के तहत समान रूप से प्रभावी वैधानिक वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के ठोस सिद्धांत पर लागू नहीं किया जा सकता है।

17. जहां तक **शारदा सिंह (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय का प्रश्न है संबंधित मामले में मुद्दा इस दलील के कारण उठा कि जब राजस्व बोर्ड के समक्ष स्थानांतरण आवेदन दायर किया गया था, तो यह खुलासा नहीं किया गया था कि पहले कलेक्टर, काशगंज के समक्ष स्थानांतरण आवेदन दायर किया गया था, जिसे खारिज कर दिया गया था, जिस पर प्रस्तुत करने पर, विद्वान एकल न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि धारा 212 के तहत स्थानांतरण की शक्ति संहिता, 2006 की धारा 212 की उप-धारा (2) में उल्लिखित किसी भी अधिकारी द्वारा प्रयोग की जाने वाली एक समवर्ती शक्ति है, हालांकि, उक्त निष्कर्ष पर आने के बाद, एक और अवलोकन, जैसा कि नीचे दिया गया है, किया गया था:

"कोई भी प्राधिकारी किसी स्थानांतरण आवेदन पर आदेश पर अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करता है, जो उसके अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया हो।"

18. हमारा विचार है कि उक्त टिप्पणियां संहिता, 2006 की धारा 210 सहित प्रासंगिक प्रावधानों के संदर्भ के बिना और विषय वस्तु पर चर्चा के बिना की गई थीं।

19. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, प्रश्न का हमारा उत्तर इस प्रकार है:

I. संहिता, 2006 की धारा 210 के तहत एक पुनरीक्षण याचिका संहिता, 2006 की धारा 212 (2) के तहत शक्तियों के प्रयोग में किसी भी मामले या कार्यवाही को पारित/स्थानांतरित करने वाले आदेश के खिलाफ बनाए रखने योग्य होगी।

II. पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के संबंध में शारदा सिंह (उपरोक्त) के मामले में की गई टिप्पणियां सही कानून निर्धारित नहीं करती हैं।

20. संदर्भ का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

21. मामले को उचित पीठ के समक्ष रखा जाए।

(2025) 3 ILRA 223

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक : लखनऊ 03.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

रिट बी संख्या- 4405 सन् 1985

व

एक अन्य मामला

आज्ञा राम

.....याचिकाकर्ता

बनाम

संयुक्त-संचालक चकबन्दी एवं अन्य

.....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के ओर से अधिवक्ता:

श्री एस मिर्जा, श्री एच.एस. सहाय, श्री क्यू.एम. हक, श्री यू.एस. मिर्जा, श्री यू.एस. सहाय

प्रतिवादी के ओर से अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, बाल केशवर श्रीवास्तव, श्री एन.आर. त्रिपाठी, श्री पंकज कुमार श्रीवास्तव, पिकी देवी, श्री पुतु लाल मिश्रा, श्री क्यू.एम.हक, श्री आर.के. त्रिपाठी, श्री.एस.पी. दुबे, श्री प्रकाश वर्मा, श्री विनोद कुमार गुप्ता, श्री जेड. जिलानी

(क) सिविल विधि - उ.प्र. जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953-धारा 9(क-2) - सह-किरायेदार और उत्तराधिकार - प्रतिकूल कब्जा - परिवारिक समझौता - दाखिल खारीज कार्यवाही - विवाद गोंडा जिले के पिपरा एकडंगा गांव मे खाता सं.-5 और 41 से संबंधित था - चकबन्दी शुरू होने पर, आज्ञा राम, पराग और श्रीमती छितना के नाम हिस्से दर्ज किये गये - श्रीमती यशोदा (हरिद्वार की बेटी) ने अपनी बहन छितना के साथ सह-किरायेदार का दावा करते हुए आपत्तिया प्रस्तु की - आज्ञा राम और पराग ने भी एक समझौता विलेख (1959) और एक पारिवारिक सुलह के आधार पर बड़े हिस्से का दावा किया, यह दावा करते हे कि भूमि एक मवाई से, पैतृक संपत्ति थी - चकबन्दी अधिकारी ने संपत्ति को हरिद्वार द्वारा स्व-अर्जित माना व उसकी पुत्रियों, श्रीमती यशोधरा, और श्रीमती छितना को 1950 की धारा 173 के अन्तर्गत याचिकाकर्ताओं के साथ प्रत्येक को 1/3 हिस्सा देने का प्रावधान किया - अपील मे बन्दोबत अधिकारी ने इसे बदल दिया, आज्ञा राम और पराग को पूरी तरह से बाहर कर संपत्ति को चिंता और यशोधरा के उत्तराधिकारियों मे समान रूप से बाट दिया। उप-संचालक चकबन्दी ने इसे बरकरार रखा, साक्ष्य के आभाव में समझौता एवं पारिवारिक सुलह को खारिज कर दिया और कहा कि मात्र कब्जे से शीर्षक या प्रतिकूल कब्जा स्थापित नहीं होता है। न्यायालय ने माना कि संपत्ति पैतृक सिद्ध नहीं हुई है। - 1959 का समझौता अप्रमाणित और गैर - बाध्यकारी था, विशेष रूप से दाखिल खारिज कार्यवाही में। - विरोधाभासी दलीलों, साक्ष्य की कमी और विधिक आवश्यकताओं की पूर्ति न करने के कारण प्रतिकूल कब्जे की दलील विफल हो गई। पारिवारिक सुलह विश्वसनीय नहीं था, उससे सही दस्तावेजी की कमी थी और उसमे मुख्य पक्ष श्रीमती यशोदा सम्मिलित नहीं थी और रिट याचिकाओ मे बल नहीं था इसलिए उन्हें खारिज कर दिया गया - चकबन्दी अधिकारियों के आदेश को बरकरार रखा गया। (प्रस्तर - 1 से 46)

रिट याचिका खारिज //(ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. भगवती दीन बनाम शीतयादिन (2022) एससीसी आनलाईन इला. 349
2. सोहन लाल बनाम उप-चकबन्दी संचालक, हरदोई एवं अन्य मनु/यूपी/4189/2022
3. काले एवं अन्य बनाम उप-चकबन्दी संचालक एवं अन्य (1976) 3 एससीसी 119
4. राम मिलन बनाम कृपा शंकर एवं अन्य। मनु/यूपी/2728/2023

5. भूप सिंह बनाम राम सिंह मेजर एवं अन्य (1995)5 एससीसी 709

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा वितरित)

1. हमने याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री यू.एस. सहाय, मृतक प्रतिवादी संख्या 5 के उत्तराधिकारीयों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद काशिफ रफी और श्री प्रकाश वर्मा तथा प्रतिवादी संख्या 7 के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज श्रीवास्तव की दलीलें सुनीं।

2. यह निर्णय रिट याचिका संख्या 4405 सन् 1985 (आजा राम और अन्य बनाम संयुक्त संचालक चकबंदी और अन्य) और संबंधित रिट-बी संख्या 3396 सन् 1987 (छोटे लाल और अन्य बनाम संयुक्त संचालक चकबंदी और अन्य) का निर्णय करेगी।

3. चूंकि दोनों रिट याचिकाएं चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी और उप-संचालक चकबंदी द्वारा पारित एक ही आदेश को चुनौती देती हैं और इनमें समान तथ्य और विधि के प्रश्न सम्मिलित हैं, इसलिए दोनों याचिकाओं को एक साथ मिलाकर इस एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है। चूंकि याचिकाएं 1985 और 1987 से लंबित हैं और कुछ पक्षकारों का देहांत हो चुका है तथा उनके विधिक उत्तराधिकारीयों को पत्रावली में सम्मिलित किया गया है, फिर भी सुविधा के लिए, न्यायालय पक्षकारों को उसी क्रम में संदर्भित करेगा जिस क्रम में उन्हें मूल रूप से चकबंदी न्यायालयों के समक्ष पक्षकार बनाया गया था।

4. विवाद खाता संख्या 5 से संबंधित है जो भूमिधरी खाता है और खाता संख्या 41 जो सिरदरी खाता है, जो ग्राम पिपरा एकडंगा, परगना और तहसील उत्तरौला, जिला गोंडा में स्थित है।

5. उक्त ग्राम में चकबंदी प्रक्रिया शुरू होने पर आजा राम, पराग और श्रीमती छितना के नाम दर्ज किए गए। श्रीमती छितना का आधा हिस्सा दिखाया गया जबकि आजा राम और पराग का 1/4 हिस्सा था।

6. श्रीमती यशोदरा ने उत्तर प्रदेश भूमि चकबंदी अधिनियम, 1953 (जिसे आगे "1953 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 9 (क-2) के अन्तर्गत अपनी आपत्तियां दर्ज कराईं और अपनी बहन श्रीमती छितना के साथ सह-स्वामित्व का दावा किया। याचिकाकर्ता आजा राम और पराग ने भी अपनी आपत्तियां दर्ज कराईं और कहा कि खाता संख्या 5 और 41 दोनों में उनका 2/3 हिस्सा है, जिसे गलत तरीके से छितना के आधे हिस्से के रूप में दिखाया गया है, जबकि छितना का केवल 1/3 हिस्सा है। यह दावा तहसीलदार की न्यायालय में 28.02.1959 को हुए दाखिल खारिज की कार्यवाही में, पक्षों के बीच हुए समझौते के आधार पर किया गया था।

7. अवध राम द्वारा सह-काशतकारी अधिकारों का दावा करते हुए आपत्तियों का एक और समूह प्रस्तुत किया गया था, लेकिन इसे खारिज कर दिया गया और उसके बाद उन्होंने अपने दावे को आगे नहीं बढ़ाया और इसी कारण से, मुख्य विवाद श्रीमती छितना, श्रीमती यशोदरा और पराग तथा आज्ञा राम के बीच ही रह गया।

8. चकबंदी अधिकारी के समक्ष, याचिकाकर्ताओं, आज्ञा राम और पराग द्वारा प्रस्तुत मामला यह था कि विवादित खाते हरिद्वार और हर कृष्ण द्वारा बनवाए गए थे, जो सगे भाई थे। आगे यह भी कहा गया कि दोनों पक्षों के बीच पारिवारिक समझौता हुआ और परिणामस्वरूप पराग और आज्ञा राम को संयुक्त रूप से 2/3 हिस्सा मिला, जबकि श्रीमती छितना को 1/3 हिस्सा मिला। आगे यह भी कहा गया कि चूंकि हरिद्वार बड़े भाई थे, इसलिए उनका नाम दर्ज किया गया था और उनकी मृत्यु के बाद, उनकी पत्नी श्रीमती प्राण देई का नाम दर्ज किया गया। प्राण देई की मृत्यु के बाद, तहसीलदार के समक्ष दाखिल खारिज कार्यवाही में, एक समझौता हुआ जिसमें श्रीमती छितना ने पराग और आज्ञा राम के संयुक्त 2/3 हिस्से को स्वीकार किया, जबकि श्रीमती छितना को 1/3 हिस्सा मिलना था। इस प्रकार, यह कहा गया कि आधार वर्ष के खतौनी में छितना के आधे हिस्से का उल्लेख गलत था और श्रीमती छितना को 1/3 हिस्सा मिलना चाहिए था। हालांकि छितना ने अपनी अलग आपत्तियां दर्ज कराई थीं, लेकिन वे मान्य नहीं थीं क्योंकि तहसीलदार के समक्ष हुए समझौते के अनुसार श्रीमती छितना विपरीत दलील देने से प्रतिबंधित थीं और न ही वह याचिकाकर्ताओं के 2/3 हिस्से को चुनौती दे सकती थीं।

9. अवध राम, जिन्होंने अपनी आपत्तियां दर्ज कराई थीं, ने दावा किया कि विवादित संपत्ति का सृजन पूर्वज मताई ने किया था, जिनके चार पुत्र हरिद्वार, हर कृष्ण, हरदत्त और हर प्रसाद जीवित थे। आगे कहा गया कि हरिद्वार सबसे बड़े पुत्र थे, इसलिए उनका नाम प्रतिनिधि के रूप में विधिवत दर्ज किया गया था। हालांकि, परिवार संयुक्त बना रहा और इस प्रकार मताई की मृत्यु के बाद, विवादित दो खातों में अधिकार मताई के चार पुत्रों और अवध राम को प्राप्त हो गए, जो हर प्रसाद के पुत्र थे और संपत्ति में उनके सह-स्वामित्व अधिकार थे। यह भी कहा गया कि श्रीमती छितना, पराग और आज्ञा राम ने धोखाधड़ी से अवध राम को छोड़कर अपने नाम संपत्ति में दर्ज करवा लिए थे और इसलिए उक्त प्रविष्टियां गलत थीं।

10. तीसरी आपत्ति श्रीमती यशोदरा द्वारा प्रस्तुत की गई, जो हरिद्वार की पुत्री हैं। उन्होंने दावा किया कि संपत्ति उनके पिता हरिद्वार द्वारा स्वयं सृजित की गई थी और उनकी मृत्यु के बाद श्रीमती प्राण देई को प्राप्त हुई। श्रीमती प्राण देई की मृत्यु के बाद उनकी दो पुत्रियाँ छितना और यशोदरा जीवित थीं। इसलिए, श्रीमती छितना को श्रीमती यशोदरा के हिस्से को अस्वीकार करने का कोई अनन्य अधिकार नहीं है और विवादित खाते में उनका आधा हिस्सा है।

11. श्रीमती छितना ने अपनी आपत्तियाँ प्रस्तुत करते हुए कहा था कि श्रीमती प्राण देई की मृत्यु के समय श्रीमती यशोदरा ने अपने अधिकार त्याग दिए थे, इसलिए वे किसी भी अधिकार का दावा नहीं कर सकतीं। श्रीमती छितना ने पराग और आज्ञा राम के अधिकार को इस आधार पर भी चुनौती दी कि विवादित संपत्ति पूरी

तरह से हरिद्वार द्वारा सृजित गई थी और हरिद्वार की मृत्यु के बाद, संपत्ति श्रीमती प्राण देई को प्राप्त हुई और प्राण देई से श्रीमती छितना को अपना अनन्य अधिकार प्राप्त हुआ। श्रीमती छितना ने यह भी प्रस्तुत किया कि 28.2.1959 को तहसीलदार की न्यायालय में पराग और आज्ञा राम द्वारा लगाए गए आरोपों के अनुसार ऐसा कोई समझौता नहीं हुआ था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि हरिद्वार के भाई हर कृष्ण का संपत्ति में कोई अधिकार नहीं था और इसलिए पराग और आज्ञा राम को कोई अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता, अतः श्रीमती छितना को विवादित दोनों खातों की एकमात्र काशतकार माना जाना चाहिए और दर्ज किया जाना चाहिए।

12. इस स्तर पर यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि श्रीमती यशोदरा की कार्यवाही के दौरान मृत्यु हो गई थी और उनका प्रतिनिधित्व उनके पुत्र रघु नंदन ने किया था तथा उनके दावे का विरोध भी रघु नंदन ने ही किया था। श्रीमती छितना की मृत्यु के बाद, उनका मामला उनके पुत्र छोटे लाल ने आगे बढ़ाया, जबकि पराग और आज्ञा राम, जिनकी रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई, का प्रतिनिधित्व पराग और आज्ञा राम के विधिक उत्तराधिकारी कर रहे हैं, जो याचिकाकर्ता हैं।

13. उपरोक्त परस्पर विरोधी दावों के आलोक में, चकबंदी अधिकारी ने आठ मुद्दे निर्धारित किए। पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने के बाद, चकबंदी अधिकारी ने यह निष्कर्ष दर्ज किया कि यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि विचाराधीन संपत्ति कभी भी सामान्य पूर्वज मताई के नाम पर दर्ज थी। श्रीमती छितना द्वारा प्रस्तुत किया गया सबसे पुराना राजस्व अभिलेख 1358 फसली (1951 ई.) वर्ष की खतौनी की एक प्रति थी, जिसमें खाता संख्या 5 और 41 मताई के पुत्र हरिद्वार के नाम पर दर्ज थीं। यह भी माना गया कि अवध राम कोई भी ऐसा दस्तावेज प्रस्तुत नहीं कर सका जिससे यह संकेत मिले कि विवादित खाते किसी भी समय मताई के नाम पर दर्ज थे, अतः इसके अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि संपत्ति पैतृक थी और यह मताई के चार पुत्रों को हस्तांतरित हुई।

14. उन्होंने आगे कहा कि अवध राम यह नहीं बता सकते कि हरिद्वार का नाम प्रतिनिधि के रूप में दर्ज किया गया था और उक्त निष्कर्षों के आधार पर अवध राम का दावा खारिज कर दिया गया।

15. चकबंदी अधिकारी ने आगे यह माना कि चूंकि यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो चुका है कि संपत्ति हरिद्वार द्वारा स्वयं अर्जित की गई थी और हरिद्वार की मृत्यु के बाद, यह उनकी पत्नी प्राण देई को प्राप्त हुई, जिनकी मृत्यु लगभग 1959 में हुई थी और उसके बाद प्राण देई की दो पुत्रियाँ श्रीमती छितना और यशोदरा उत्तराधिकारी बनीं। अधिकारी ने आगे यह भी माना कि यद्यपि यूपी जेड ए एवं एल आर अधिनियम, 1950 (जिसे आगे "1950 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 171 के अनुसार संपत्ति हरिद्वार की दोनों पुत्रियों को प्राप्त होनी चाहिए थी, लेकिन चूंकि छितना और आज्ञा राम तथा पराग के बीच समझौता हुआ था और वे विवादित भूखंडों पर कब्जा किए हुए हैं, फिर भी यह तथ्य बना हुआ है कि यशोदरा भी छितना की सगी बहन और हरिद्वार की पुत्री थीं। अतः, श्रीमती यशोदरा द्वारा विधिवत किसी भी प्रकार के त्यागपत्र के अभाव में, उन्हें उनके हिस्से से

वंचित नहीं किया जा सकता। अतः, चकबंदी अधिकारी ने श्रीमती यशोदरा को 1/3 भाग, श्रीमती छित्ना को 1/3 भाग और आज्ञा राम एवं पराग को संयुक्त रूप से 1/3 भाग आवंटित किया। उन्होंने यह भी पाया कि चूंकि श्रीमती यशोदरा का निधन चकबंदी अधिकारी के समक्ष कार्यवाही लंबित रहने के दौरान हो गया था, इसलिए उनका भाग उनके पुत्र को और इसी प्रकार श्रीमती छित्ना का भाग उनके पुत्रों, अर्थात् छोटे लाल और राम अचेबर को विरासत में मिलेगा।

16. चकबंदी अधिकारी के दिनांक 10.12.1982 के इस निर्णय को चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी के समक्ष चुनौती दी गई। तीन अपीलें प्रस्तुत की गईं; एक श्रीमती यशोदरा के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा; दूसरी श्रीमती छित्ना के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा और तीसरी आज्ञा राम और पराग द्वारा। चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी ने पक्षों की सुनवाई के बाद आज्ञा राम और पराग की अपील खारिज कर दी और आगे कहा कि चूंकि यह विवादित नहीं है कि श्रीमती यशोदरा और श्रीमती छित्ना हरिद्वार की पुत्रियाँ थीं, इसलिए श्रीमती छित्ना और श्रीमती यशोदरा के विधिवत उत्तराधिकारियों के बीच वितरित की जाने वाली संपत्ति में दोनों का आधा-आधा हिस्सा होगा। चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी ने श्रीमती यशोदरा और श्रीमती छित्ना के विधिक उत्तराधिकारियों के बीच हिस्सेदारी पर विचार किया। छित्ना के मामले में यह निर्णय लिया गया कि चूंकि छित्ना के दो पुत्र राम अचेबर और छोटे लाल जीवित हैं, इसलिए उन्हें उसमें 1/4 हिस्सा मिलेगा जबकि शेष आधा हिस्सा यशोदरा के पुत्र रघु नंदन को विरासत में मिलेगा।

17. दिनांक 13.3.2008 को चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी द्वारा पारित निर्णय को उप-संचालक चकबंदी के समक्ष चुनौती दी गई, जहाँ फिर से तीन पुनरीक्षण याचिकाएँ प्रस्तुत की गईं। पुनरीक्षण संख्या 724 आज्ञा राम और पराग द्वारा प्रस्तुत की गई क्योंकि उन्हें पूर्णतः बेदखल कर दिया गया था, क्योंकि चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी ने यह माना था कि विवादित खातों में उनका कोई अधिकार नहीं है। पुनरीक्षण संख्या 723 रघु नंदन (यशोदरा के पुत्र) द्वारा प्रस्तुत की गई, जिसमें उन्होंने अपने और अपने अन्य चचेरे भाइयों (छित्ना के पुत्रों) के बीच शेरों के वितरण पर आपत्ति जताई। तीसरा पुनरीक्षण याचिका छित्ना के उत्तराधिकारियों द्वारा प्रस्तुत की गई।

18. तीनों पुनरीक्षणों को एक साथ मिलाकर गोंडा के उप संचालक, चकबंदी द्वारा दिनांक 22.04.1985 को एक सामान्य निर्णय द्वारा निपटाया गया, जिसमें यह माना गया कि वर्ष 1959 में दाखिल खारिज कार्यवाही में हुए किसी भी समझौते को पक्षों पर बाध्यकारी नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि सभी संबंधित पक्ष उक्त समझौते के पक्षकार नहीं थे। इसमें यह भी पाया गया कि आज्ञा राम और पराग द्वारा पारिवारिक समझौते का दावा भी विधि के अनुसार सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह पहले ही सर्वसम्मति से माना जा चुका है कि विचाराधीन संपत्ति मताई द्वारा नहीं बल्कि केवल हरिद्वार द्वारा सृजित की गई थी। उत्तराधिकार विधि के अनुसार, संपत्ति केवल हरिद्वार के विधिक उत्तराधिकारियों, अर्थात् उनकी दो पुत्रियाँ छित्ना और यशोदरा को ही मिलनी चाहिए। श्रीमती छित्ना स्वयं, समझौते या कथित समझौते के द्वारा भी, ऐसे पक्ष के, पक्ष में अधिकार सृजित नहीं कर सकती जिसका कोई अधिकार नहीं है। किसी तीसरे पक्ष के, पक्ष में, कोई भी अधिकार केवल वसीयत, दान या विक्रय जैसे किसी दस्तावेज द्वारा ही सृजित किया जा सकता है, न कि किसी समझौते या

पारिवारिक समझौते द्वारा। अतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि मात्र नाम दर्ज कराने से आजा राम और पराग संपत्ति पर अपना अधिकार नहीं जता सकते, विशेषकर तब जब श्रीमती छितना ने स्वयं 1959 में तहसीलदार की न्यायालय में हुए कथित समझौते पर आपत्ति जताई थी। साथ ही, इसका कारण यह भी था कि कथित समझौते पर केवल पराग ने ही हस्ताक्षर किए थे और न तो छितना, न यशोदरा और न ही आजा राम ने अपने हस्ताक्षर/अंगूठे के निशान लगाए थे।

19. उप-संचालक, चकबंदी ने यह भी माना कि आजा राम और पराग द्वारा कब्जा मात्र, किसी भी प्रकार का अधिकार या स्वामित्व प्रदान नहीं कर सकता और आजा राम और पराग द्वारा उठाया गया प्रतिकूल कब्जे का दावा विधिवत मान्य नहीं है। तदनुसार, आजा राम और पराग की पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी गई।

20. श्रीमती छितना और यशोदरा के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण याचिका पर विचार करते हुए, उप-संचालक चकबंदी ने पाया कि श्रीमती छितना और यशोदरा दोनों की मृत्यु हो जाने के बाद, मृत्यु तिथि के अभाव में, यह निर्धारित नहीं किया जा सकता कि किस विधिक उत्तराधिकारी को किसका हिस्सा किस अनुपात में मिलेगा। अतः यशोदरा और छितना के विधिक उत्तराधिकारियों के संबंधित हिस्सों का निर्धारण करने के लिए, उप-संचालक चकबंदी ने 22.4.1985 के अपने निर्णय के माध्यम से सीमित निर्देशों के साथ मामले को चकबंदी अधिकारी को वापस भेज दिया।

21. यह भी ध्यान देने योग्य है कि आजा राम और पराग के संबंध में, चूंकि उप संचालक, चकबंदी और चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी द्वारा उन्हें पूरी तरह से अयोग्य घोषित कर दिया गया था, इसलिए उन्होंने रिट याचिका संख्या 4405 सन् 1985 प्रस्तुत की। इसी प्रकार, छितना के विधिक उत्तराधिकारियों ने भी उप संचालक, चकबंदी द्वारा पारित पुनरीक्षण आदेश को चुनौती दी, इसलिए उन्होंने रिट याचिका संख्या 3396 सन् 1987 प्रस्तुत की।

22. यहाँ यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि यशोदरा के पुत्र रघु नंदन ने उप संचालक, चकबंदी द्वारा दिनांक 22.4.1985 को पारित पुनरीक्षण आदेश के अनुसार हिस्सेदारी निर्धारण की कार्यवाही में भाग लिया था और इसके अनुसरण में, चकबंदी अधिकारी और बन्दोबस्त अधिकारी द्वारा आदेश पारित किया गया था, जिसे पुनरीक्षण में चुनौती दी गई थी, जिसमें उप संचालक, चकबंदी ने दिनांक 28.10.2009 के आदेश के माध्यम से छितना और यशोदरा के उत्तराधिकारियों के बीच हिस्सेदारी को स्पष्ट रूप से बरकरार रखा था और इसे रिट याचिका संख्या 732 (चकबंदी) 2009 में आगे चुनौती दी गई थी, जिसे 27.10.2014 को गैर-अभियोजन के कारण खारिज कर दिया गया था और प्रस्तुत की गई 'रिकाल' याचिका भी 2.8.2019 को खारिज कर दी गई थी और इस हद तक, छितना और श्रीमती यशोदरा के उत्तराधिकारियों के बीच आपसी दावा अंततः समाप्त हो गया था।

23. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, केवल दो रिट याचिकाएँ ही बची रहीं, वे थीं रिट याचिका रिट-बी संख्या 4405 सन् 1985 और रिट-बी संख्या 3396 सन् 1987 है।

24. याचिकाकर्ताओं की ओर से रिट याचिका संख्या 4405 सन् 1985 में उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री यू.एस. सहाय ने निवेदन किया है कि चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी और उप-संचालक चकबंदी द्वारा पारित आदेश विधि की दृष्टि से गलत हैं क्योंकि उनमें उत्तराधिकार विधि का ध्यान नहीं रखा गया है, जो पक्षों के अधिकारों को सही परिप्रेक्ष्य में नियंत्रित करता है। उन्होंने निवेदन किया है कि संपत्ति मताई की थी और उनकी मृत्यु के बाद, यह उनके चार पुत्रों को प्राप्त हुई। उन्होंने आगे तर्क दिया कि हरिद्वार की मृत्यु के बाद, संपत्ति उनकी विधवा प्राण देई को प्राप्त होगी और श्रीमती प्राण देई की मृत्यु के बाद, चूंकि छितना और यशोदरा विवाहित पुत्रियां थीं, इसलिए उन्हें संपत्ति विरासत में नहीं मिलेगी, बल्कि हर कृष्ण के पुत्र आज्ञा राम और पराग, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के अनुसार उत्तराधिकार क्रम में अधिमान्य उत्तराधिकारी होंगे, अतः वे हरिद्वार के संपूर्ण हिस्से के उत्तराधिकारी बनने के पात्र होंगे। उन्होंने आगे तर्क दिया कि चकबंदी अधिकारियों ने समझौते के तथ्य को गलत समझा है, जो वास्तव में एक पारिवारिक समझौता था। एक बार संपत्ति पैतृक हो जाने और मताई के चार पुत्रों - आज्ञा राम, पराग, यशोदरा और श्रीमती छितना - को मिलने के बाद, ये मताई की तीसरी पीढ़ी के बच्चे थे और उन्हें विधिक रूप से पारिवारिक समझौता करने और अपने हिस्से को अपनी इच्छानुसार पुनर्व्यवस्थित करने का अधिकार था इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि समझौता या पारिवारिक व्यवस्था विधि की दृष्टि में गलत था।

25. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सहाय ने आगे यह तर्क दिया कि वैसे भी यह निर्विवाद है कि आज्ञा राम और पराग विवादित संपत्ति पर स्थायी कब्जे में थे और उनके निरंतर कब्जे को दोनों पक्षों ने स्वीकार किया था। इस प्रकार, उन्होंने अपने अधिकार को पूर्ण कर लिया था और वैकल्पिक रूप से प्रतिकूल कब्जे के आधार पर भी संपत्ति पर उनका अधिकार होगा।

26. इसके अतिरिक्त, यह तर्क दिया जाता है कि श्रीमती यशोदरा का नाम किसी भी समय खाते में सम्मिलित नहीं किया गया था। इसलिए, उनका कोई अधिकार नहीं हो सकता और इस पहलू पर चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी और उप-संचालक चकबंदी ने ध्यान नहीं दिया है, जिन्होंने याचिकाकर्ताओं को विवादित खातों में उनके हिस्से से गलत तरीके से वंचित कर दिया है। अतः यह तर्क दिया जाता है कि चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी और उप-संचालक चकबंदी द्वारा पारित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध हैं और इसलिए उन्हें रद्द किया जाना चाहिए।

27. मोहम्मद काशिफ रफी और श्री प्रकाश वर्मा, जो छोटे लाल और राम अचेबर (श्रीमती छितना के दोनों पुत्र) के उत्तराधिकारीयों की ओर से उपस्थित हुए, तथा श्री पंकज श्रीवास्तव, जो रघु नंदन (यशोदरा के पुत्र) के उत्तराधिकारीयों की ओर से उपस्थित हुए, ने चकबंदी बंदोबस्त अधिकारी और उप संचालक द्वारा पारित निर्णयों का समर्थन किया और प्रार्थना की कि रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया जाए।

28. यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया प्रतिकूल कब्जे का दावा मान्य नहीं है, क्योंकि यह परस्पर विरोधी दावा है। एक ओर, याचिकाकर्ता 1959 के समझौते के अनुसार अपने अधिकारों को पूर्ण कर चुके सह-स्वामित्व के आधार पर अधिकारों का दावा करते हैं, इसलिए सह-स्वामित्व और प्रतिकूल कब्जे के उनके दावे एक साथ मान्य नहीं हो सकते। आगे यह भी कहा गया कि यदि समझौते और प्रतिकूल कब्जे के दावे पर अलग-अलग भी विचार किया जाए, तब भी इन्हें सिद्ध करने के लिए आवश्यक तत्व न तो पूरे हुए हैं और न ही इस संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है। इसलिए, उपरोक्त दावे के आधार पर, विवादित आदेशों को गलत नहीं कहा जा सकता।

29. यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने चकबंदी न्यायालयों के समक्ष दिए गए तर्क के विपरीत दलीलें दी हैं। याचिकाकर्ताओं के लिए बहस के दौरान अपना रुख बदलना स्वीकार्य नहीं है, जबकि चकबंदी अधिकारी के समक्ष और यहां तक कि रिट याचिका प्रस्तुत करने तक भी उनका पूरा मामला यही था कि संपत्ति छितना के पिता हरिद्वार और याचिकाकर्ताओं के पिता हर कृष्ण द्वारा बनाई गई थी। किसी भी साक्ष्य के अभाव में उपरोक्त दलील को त्याग देने के बाद, अब याचिकाकर्ताओं के लिए यह कहना उचित नहीं है कि संपत्ति पैतृक थी और इसके अतिरिक्त, इसे सिद्ध करने के लिए पत्रावली में कोई साक्ष्य नहीं है, खासकर तब जब चकबंदी अधिकारी पहले ही यह तथ्य दर्ज कर चुके हैं कि संपत्ति केवल हरिद्वार द्वारा बनाई गई थी। अतः निवेदन है कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलें मान्य नहीं हैं और इसलिए रिट याचिकाएं खारिज किए जाने योग्य हैं।

30. छितना के पुत्र छोटे लाल और राम अचेबर के विधिक उत्तराधिकारीयों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद काशिफ रफी और श्री प्रकाश वर्मा इस तथ्य से इनकार नहीं कर सके कि यद्यपि उन्होंने उप संचालक द्वारा पारित उस आदेश को चुनौती दी थी जिसमें छितना और यशोदरा के उत्तराधिकारीयों के बीच आपसी हिस्सेदारी निर्धारित करने के लिए मामले को वापस भेजा गया था, और इस पर पहले ही निर्णय लिया जा चुका है, तथा रघु नंदन द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका संख्या 732 (चकबंदी) सन् 2009 जिसमें वापस भेजे गए आदेश के अनुसरण में हिस्सेदारी निर्धारण के आदेश को चुनौती दी गई थी, अंतिम रूप ले चुकी है, इसलिए उक्त रिट-बी संख्या 3396 (चकबंदी) सन् 1987 भी अपने आप से अस्तित्व में नहीं बनी रह सकती है, सिवाय उस स्थिति में जब रिट-बी संख्या 4405 (चकबंदी) सन् 1985 को स्वीकार कर लिया जाता है।

31. विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज श्रीवास्तव ने भी इस तथ्य पर विवाद नहीं किया कि रघु नंदन के उत्तराधिकारीयों (यशोदरा के पुत्रों) के संबंध में, उनके अधिकारों का निर्णय उप संचालक चकबंदी द्वारा दिनांक 22.4.1985 को पारित पुनरीक्षण आदेश के अनुसार पहले ही हो चुका है और उनकी याचिका संख्या 732 सन् 2009 की बर्खास्तगी के साथ ही इस आदेश को चुनौती देने का मामला भी अंतिम हो चुका है।

32. उपरोक्त तथ्यात्मक परिदृश्य के आलोक में व्यावहारिक रूप से केवल रिट याचिका संख्या 4405 सन् 1985 ही विचारणीय है और जब तक इसे स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक यह छितना और यशोदरा के उत्तराधिकारीयों के अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा।

33. इस मामले को देखते हुए, न्यायालय श्री यू.एस. सहाय द्वारा रिट-बी संख्या 4405 सन् 1985 में प्रस्तुत दलीलों पर विचार करना उचित समझता है।

34. श्री यू.एस. सहाय द्वारा प्रस्तुत किए गए प्राथमिक तीन बिंदुओं का सारांश इस प्रकार है:-

(i). यह संपत्ति पैतृक थी और मताई से उत्पन्न हुई थी। तदनुसार, मताई की मृत्यु पर, संपत्ति उनके विधिक उत्तराधिकारीयों अर्थात् चार पुत्रों, अर्थात् हरिद्वार, हर किशन, हर दत्त और हर प्रसाद को हस्तांतरित हो जाएगी।

(ii). श्री सहाय ने यह भी कहा कि आज्ञा राम और पराग ने प्रतिकूल कब्जे से अपने अधिकारों को पूर्ण कर लिया है।

(iii). याचिकाकर्ताओं को पारिवारिक समझौते/ वर्ष 1959 में तहसीलदार की न्यायालय में हुए समझौते के आधार पर संपत्ति में अधिकार प्राप्त था।

35. यह न्यायालय याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रतिकूल कब्जे के तर्क पर पहले विचार करना उचित समझता है।

36. आगे बढ़ने से पहले, यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि कृषि संपत्तियों के संबंध में प्रतिकूल कब्जे का विधि थोड़ी अलग तरीके से काम करती है। यद्यपि यह अब सर्वविदित है कि प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्ति के पक्ष में कोई विशेष अधिकार नहीं होते, क्योंकि यह वैध स्वामी को उसके अधिकारों से वंचित करने का प्रयास है। अतः, प्रतिकूल कब्जे के दावे को सिद्ध करने के लिए, दावा करने वाले पक्ष को उक्त दावे को स्थापित करने के लिए आवश्यक दलीलों और प्रमाण के मानक का सख्ती से पालन करना होगा।

37. यह भी उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि एक ओर याचिकाकर्ता पारिवारिक समझौते के आधार पर अधिकारों का दावा कर रहे हैं और दूसरी ओर उत्तराधिकार के आधार पर भी अधिकार का दावा कर रहे हैं, जिसमें वे अन्य सभी को छोड़कर संपूर्ण अधिकारों का दावा कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता प्रतिकूल कब्जे का तर्क नहीं दे सकते क्योंकि यह परस्पर विरोधी तर्क होगा। फिर भी, यदि प्रतिकूल कब्जे के तर्क पर विचार भी किया जाए, तो यह याचिकाकर्ताओं के कथनों के बिल्कुल विपरीत है, जिन्होंने कहा है कि विचाराधीन संपत्ति छितना के पिता हरिद्वार और याचिकाकर्ताओं के पिता हर कृष्ण द्वारा बनाई गई थी। विरोधाभासी कथनों के

आलोक में, याचिकाकर्ताओं की सत्यनिष्ठा संदिग्ध हो जाती है, लेकिन फिर भी प्रतिकूल कब्जे के तर्क को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करने और सिद्ध करने के लिए, यह स्पष्ट रूप से इंगित किया जाना चाहिए था कि संपत्ति का वास्तविक स्वामी कौन था। याचिकाकर्ताओं को संपत्ति का कब और कैसे प्राप्त हुआ और किस समय से उनका कब्जा प्रतिकूल हो गया और यह बात वास्तविक स्वामी को ज्ञात थी, और यह कि इस जानकारी के बावजूद वास्तविक स्वामी ने उस समय से लेकर अब तक प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्तियों को बेदखल करने के लिए कोई विधिक कदम नहीं उठाया, तभी विधि द्वारा निर्धारित अवधि की समाप्ति के बाद ही इस दावे को सिद्ध माना जा सकता है।

38. भगवती दीन बनाम शीतलदीन (2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 349) मामले में इस न्यायालय को कृषि संपत्तियों से संबंधित प्रतिकूल कब्जे के विधि की प्रयोज्यता पर विचार करने का अवसर मिला था और सोहन लाल बनाम जिला डीडीसी हरदोई और अन्य (एमएएनयू/यूपी/4198/2022) मामले में इसी का अनुसरण किया गया था और सोहन लाल (उपरोक्त) के प्रस्तर-11 में इस न्यायालय द्वारा विचार किए गए प्रासंगिक अंश को नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

11. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए और भगवती दीन (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर विचार करते हुए, जिसमें इस न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों का हवाला देते हुए प्रतिकूल कब्जे की दलील पर विस्तृत चर्चा की गई है, उक्त निर्णय का प्रस्तर-28 इस प्रकार है:-

“28. हाल ही में, इस न्यायालय को भी चित्त बहल सिंह बनाम संयुक्त संचालक चकबन्दी के मामले में प्रतिकूल कब्जे के उपरोक्त मुद्दे पर विचार करने का अवसर मिला, जिसका निर्णय 29.04.2022 को हुआ था और बाबू अली बनाम डी.डी.सी. (उपरोक्त) के निर्णय पर भरोसा करते हुए प्रतिकूल कब्जे की दलील को खारिज कर दिया गया था। विधि और प्रविष्टियों की तैयारी तथा किन तत्वों को पूरा किया जाना चाहिए, इसकी व्याख्या करने वाले प्रासंगिक प्रस्तर नीचे दिए गए हैं:-

“11. भूमि अभिलेख नियमावली (जिसे आगे "नियमावली" कहा गया है) के प्रस्तर 89-क, 89-ख और 102-ख, जो इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं, नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

“89-क. परिवर्तनों की सूची.- प्रत्येक ग्राम के खरीफ एवं रबी फसल के बाद लेखपाल खसरा में नई और संशोधित प्रविष्टियों की एक समेकित सूची तीन प्रतियों में निम्नलिखित प्रारूप में तैयार करेगा:

प्रपत्र संख्या पी-10

खसरा संख्या	भूखंड का क्षेत्रफल	पिछले वर्ष की प्रविष्टियों का विवरण	चालू वर्ष में की गई प्रविष्टियों का विवरण	राजस्व निरीक्षक द्वारा	टिप्पणियाँ

				सत्यापन आख्या	
1	2	3	4	5	6

(ii) लेखपाल प्रथम चार स्तंभों को भरेगा और सूची की एक प्रति भूमि प्रबंधन समिति के अध्यक्ष को सौंपेगा। वह सूची से एक अंश तैयार करेगा और स्तंभ 3 और 4 में दर्ज संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों को, यदि संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों की मृत्यु हो गई है, तो उनके उत्तराधिकारियों को, सूची की प्रति पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त करके जारी करेगा। एक अन्य प्रति राजस्व निरीक्षक को भेजी जाएगी।

(iii) राजस्व निरीक्षक यह सुनिश्चित करेगा कि ग्राम के अपने आंशिक निरीक्षण के समय सभी मामलों में उद्धारण जारी किए गए हों और प्राप्तकर्ताओं के हस्ताक्षर प्राप्त किए गए हों।

89-ख. परिवर्तनों की आख्या.- लेखपाल के पास उपस्थित सूची की प्रति, जिसमें उद्धारण प्राप्तकर्ताओं के हस्ताक्षर हों, संबंधित खसरा से संलग्न की जाएगी और उसके साथ रजिस्ट्रार (राजस्व निरीक्षक) के पास अगले वर्ष की 31 जुलाई को या उससे पहले प्रस्तुत की जाएगी (प्रस्तर 60 का उप-प्रस्तर

102-ख. कब्जे की प्रविष्टि (स्तंभ 22) (टिप्पणी स्तंभ).- (1) लेखपाल, खसरा के टिप्पणी स्तंभ में कब्जे के तथ्य को दर्ज करते समय, उसी दिन कब्जे के तथ्य को कब्जेदार व्यक्ति के नाम सहित अपनी डायरी में भी लिखेगा, और संबंधित प्रविष्टि के सामने खसरा के टिप्पणी स्तंभ में डायरी की तिथि और क्रम संख्या भी लिखेगा।

(2) चूंकि ग्राम पटल के पूरा होने के बाद प्रपत्र पी-10 में परिवर्तनों की सूची तैयार की जाती है, इसलिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसी सभी प्रविष्टियाँ सूची में सम्मिलित कर ली गई हैं, खसरा के टिप्पणी स्तंभ में संबंधित प्रविष्टि के नीचे परिवर्तनों की सूची का क्रम संख्या लाल स्याही से अंकित किया जाएगा।

(3) यदि लेखपाल अनुच्छेद 89-क में निहित किसी भी प्रावधान का पालन करने में विफल रहता है, तो खसरा के टिप्पणी स्तंभ में की गई प्रविष्टि को उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में की गई प्रविष्टि नहीं माना जाएगा।”

12. उपरोक्त प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि यदि पीए-10 में कोई प्रविष्टि की जाती है, तो इसकी सूचना स्तंभ 3 और 4 में दर्ज संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों या उनके उत्तराधिकारियों को दी जाएगी और उनके हस्ताक्षर प्राप्त किए जाएंगे। राजस्व निरीक्षक को अभिलेख प्रस्तुत किए जाने पर, वह पदताल (यानी ग्राम का सत्यापन) के समय यह सुनिश्चित करेगा कि सभी मामलों में यह जारी किया गया है और प्राप्तकर्ताओं के हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए गए हैं। इसलिए, यदि प्रतिकूल कब्जे के आधार पर कोई प्रविष्टि की जाती है, तो

इसकी सूचना संबंधित व्यक्ति को दी जानी चाहिए और दावा करने वाले व्यक्ति को यह सिद्ध करना होगा कि यह नियमावली के अनुसार था और कब्जे की प्रकृति क्या थी, यह पट्टेदार की जानकारी में कब शुरू हुआ, कब्जा निरंतर था और कितने समय तक जारी रहा।

13. इस न्यायालय ने मोहम्मद रजा बनाम उप संचालक चकबंदी, 1997 आरडी 276 के मामले में इस मुद्दे पर विचार किया और यह माना कि राजस्व पत्रों में प्रविष्टियाँ उत्तर प्रदेश भूमि अभिलेख नियमावली के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना तैयार की गई हैं और मुख्य किरायेदार को पीए-10 नोटिस नहीं दिया गया है, ऐसी प्रविष्टियों का कोई साक्ष्य मूल्य नहीं है और इनसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

14. इस न्यायालय ने गुरुमुख सिंह बनाम उप संचालक, चकबंदी, नैनीताल, (1997) 80 आरडी 276 के मामले में यह भी माना है कि यदि प्रविष्टियाँ भूमि अभिलेख नियमावली के प्रावधानों के अनुरूप नहीं हैं तो उनका कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं होगा और प्रतिकूल कब्जे के आधार पर कब्जा जताने वाले व्यक्ति पर ही साक्ष्य का भार होगा। प्रासंगिक प्रस्तर 6 और 7 नीचे उद्धृत हैं:-

"6. भूमि अभिलेख नियमावली के प्रस्तर क-102ग से यह स्पष्ट है कि यदि प्रविष्टियाँ भूमि अभिलेख नियमावली के प्रावधानों के अनुसार नहीं की गई हैं, तो उनका कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं होगा। प्रविष्टियों की सत्यता का अनुमान लगाया जाता है, बशर्ते कि वे भूमि अभिलेख नियमावली के प्रासंगिक प्रावधान के अनुसार की गई हों। दूसरा, यदि कोई व्यक्ति अभिलेखित काश्तकार के विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे का दावा कर रहा है और वह इस बात से इनकार करता है कि उसे कोई पीए 10 प्राप्त नहीं हुआ था या उसे राजस्व अभिलेखों में की गई प्रविष्टियों की जानकारी नहीं थी, तो प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्ति पर यह सिद्ध करने का भार है कि काश्तकार को निर्धारित प्रपत्र पीए 10 में विधिवत सूचना दी गई थी। प्रस्तर क-81 में ही यह प्रावधान है कि सूचना लेखपाल द्वारा दी जाएगी और वह भूमि प्रबंधन समिति के अध्यक्ष के साथ-साथ अभिलेखित काश्तकार के हस्ताक्षर भी प्राप्त करेगा। प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा अन्य आवश्यक प्रावधान भी किए जाने चाहिए। प्रतिकूल कब्जे का विधि यह मानता है कि न केवल वास्तविक स्वामी के विरुद्ध कब्जे की निरंतरता होनी चाहिए, बल्कि यह भी कि उस व्यक्ति को इस बात की पूरी जानकारी होनी चाहिए कि कब्जे में मौजूद व्यक्ति वास्तविक स्वामी के विरुद्ध अधिकार और कब्जा का दावा कर रहा है। यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की भूमि पर कब्जा कर लेता है, तो वह प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सकता, जब तक कि वह यह सिद्ध न कर दे कि भूमिधारक को ऐसे प्रतिकूल कब्जे की जानकारी थी।

7. जमुना प्रसाद बनाम उप संचालक, चकबंदी, आगरा के मामले में, इस न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि प्रविष्टियों की सत्यता को चुनौती देने वाले व्यक्ति पर साक्ष्य का बोझ होता है। यह टिप्पणी की गई:

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि राजस्व अभिलेखों में दर्ज प्रविष्टियों के सही होने की धारणा होती है और यह सिद्ध करने का दायित्व प्रतिवादी पर है कि याचिकाकर्ता के कब्जे को दर्शाने वाली

प्रविष्टियाँ विधि के अनुसार नहीं थीं। यह तर्क निराधार है। प्रथम, किसी पक्ष के लिए नकारात्मक तथ्य को सिद्ध करना संभव नहीं है। द्वितीय, यह प्रश्न कि क्या प्रपत्र पीए 10 में नोटिस जारी किया गया था और याचिकाकर्ता को तामील कराया गया था, यह भी एक ऐसा तथ्य है जो केवल याचिकाकर्ता के ही संज्ञान में था।

“याचिकाकर्ता का यह तर्क कि कब्जे के दस्तावेज की प्रामाणिकता को गलत सिद्ध करने और उसके प्रामाणिक मूल्य को नकारने का भार प्रतिवादियों पर है, स्वीकार नहीं किया जा सकता। मेरी राय में, जहां कोई पक्ष अपने पक्ष में प्रतिकूल कब्जे के दस्तावेज पर भरोसा करते हुए कब्जे का दावा करता है और दर्ज किए गए काशतकार द्वारा ऐसे कब्जे से इनकार किया जाता है, तो यह सिद्ध करने का भार याचिकाकर्ता पर है कि उसके कब्जे से संबंधित दस्तावेज विधि के अनुसार बनाए गए थे।”

15. इस न्यायालय ने साधु सरन बनाम संयुक्त संचालक, चकबंदी, गोरखपुर (2003) 94 आरडी 535 के मामले में यह माना है कि यह विधि में सर्वविदित है कि अवैध प्रविष्टि से स्वामित्व प्राप्त नहीं होता। इसलिए, यदि प्रविष्टि की भी गई है, तो भी यदि वह विधि और निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नहीं है, तो उससे कोई अधिकार, स्वामित्व या हित प्राप्त नहीं होता। यह न्यायालय और पक्षकारों के अधिवक्ता भी लेखपाल डायरी में इसे प्राप्त नहीं कर सके। पीए-24 का प्रावधान 03.07.1965 की अधिसूचना के माध्यम से आया है, इसलिए यह भी सहायक नहीं है क्योंकि 1373 फसली की खतौनी में पीए-24 के आधार पर प्रविष्टि नहीं की जा सकती थी और यह प्रविष्टि क्रमांक और वर्ष के बिना भी है।

16. इस न्यायालय ने पुट्टी बनाम संयुक्त संचालक, चकबंदी, बहराइच (2007) 2 ऑल एलजे 43 के मामले में यह माना है कि न्यायालय को प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार घोषित करने में सावधानी बरतनी चाहिए, अन्यथा यह शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथों में समाज के कमजोर वर्गों की संपत्ति हड़पने का हथियार बन सकता है। न्यायालय ने आगे यह भी माना है कि प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार और स्वामित्व घोषित करने के लिए निरंतर कब्जे की कोई धारणा नहीं होगी, जब तक कि खसरा या खतौनी में विधि के अनुसार वर्ष-दर-वर्ष प्रविष्टियाँ न की गई हों और ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा सिद्ध न की गई हों। इसे सिद्ध करने का भार उस व्यक्ति पर है जो प्रतिकूल कब्जे के आधार पर सीरदरी या भूमिधरी अधिकारों का दावा करता है। प्रासंगिक अनुच्छेद-41 नीचे उद्धृत है:--

“41. प्रतिकूल कब्जे के आधार पर स्वामित्व का दावा करने का अधिकार ब्रिटिश विधि की विरासत है। न्यायालयों को प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार घोषित करने में सावधानी बरतनी चाहिए। यदि प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार और स्वामित्व का विस्तार करने के लिए उदार दृष्टिकोण अपनाया जाता है, तो यह शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथों में समाज के कमजोर वर्गों की संपत्ति हथियाने का हथियार बन सकता है। तदनुसार, न्यायालयों के लिए यह हमेशा अनिवार्य होगा कि वे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के दायरे में, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, साक्ष्य और अभिलेखीय सामग्री की गहन जांच करें। प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार और स्वामित्व का दावा करने वाले पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर थोड़ा सा भी संदेह किसी विशेष

तथ्य और परिस्थिति में ऐसे दावे को खारिज करने के लिए पर्याप्त हो सकता है। प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार और स्वामित्व घोषित करने के लिए निरंतर कब्जे का कोई अनुमान नहीं लगाया जाएगा, जब तक कि खसरा या खतौनी में विधि के अनुसार वर्ष-दर-वर्ष की प्रविष्टियाँ ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा सिद्ध न हो जाएँ। ऐसी प्रविष्टियों को सिद्ध करने का भार, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, उस व्यक्ति पर होगा जो सीरदरी का दावा करता है। प्रतिकूल कब्जे के आधार पर भूमिधरी अधिकार ऐसे किसी प्रमाण के अभाव में, यह अनुमान दर्ज किए गए काशतकार के पक्ष में होगा जिसका नाम खतौनी के स्तंभ-1 में दर्ज है।”

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पी.टी. मुनिचिक्कन्ना रेड्डी बनाम रेवम्मा , 2008 (26) एलसीडी 15 के मामले में यह माना है कि प्रतिकूल कब्जे की स्थिति में, स्वामी को सूचना देना और कब्जे के प्रति उसकी प्रतिकूलता अनिवार्य है। प्रासंगिक अनुच्छेद 19 से 23 नीचे उद्धृत किए गए हैं:--

“19. इस प्रकार, बेदखल करने का आशय होना चाहिए और यह इतना खुला और प्रतिकूल होना चाहिए कि इसे वादी के संज्ञान में लाया जा सके और उसे आपत्ति करने का अवसर मिले। अंततः प्रतिकूल कब्जे का अधिकार कोई मौलिक अधिकार नहीं है, बल्कि यह जमीन के कायजी स्वामी द्वारा संपत्ति की अखंडता की रक्षा या देखभाल करने के अधिकार के त्याग (जानबूझकर) या चूक (लापरवाही या अन्यथा) का परिणाम है। प्रतिकूल कब्जे से संबंधित विधि, अन्य परिसीमा विधियों की तरह, एक सार्वजनिक नीति पर आधारित हैं जो मुकदमेबाजी को बढ़ावा नहीं देते और उन स्थितियों को बहाल करने का लक्ष्य रखते हैं जिन्हें पक्षों ने लंबे समय तक बिना किसी प्रश्न के बने रहने दिया है, जिससे उनकी सहमति का संकेत मिलता है।

20. प्रतिकूल कब्जे के विधि में इरादे के पहलू से निपटते समय, विभिन्न कोणों से इसकी बारीकियों को समझना महत्वपूर्ण है।

21. इरादे का तात्पर्य प्रतिकूल कब्जेदार की जानकारी से है। इस संदर्भ में सरूप सिंह बनाम बंतो (2005) 8 एससीसी 330 के मामले में यह कहा गया है कि:

“29. अनुच्छेद 65 के अनुसार परिसीमा की शुरुआत उस तिथि से नहीं होती जब वादी को स्वामित्व का अधिकार प्राप्त होता है, बल्कि उस तिथि से होती है जब प्रतिवादियों का कब्जा प्रतिकूल हो जाता है। (देखें वसंतबेन प्रहलादजी नायक बनाम सोमनाथ मुलजीभाई नायक , (2004) 3 एससीसी 376)।

30. कब्जे का इरादा प्रतिकूल कब्जे के आवश्यक तत्वों में से एक है। जब तक भूमि पर कब्जा करने वाले व्यक्ति के पास अपेक्षित इरादा नहीं होती, परिसीमा अवधि शुरू नहीं होती। जैसा कि इस मामले में, अपीलकर्ता स्पष्ट रूप से कहता है कि उसका कब्जा वास्तविक स्वामी के कब्जे के समान प्रतिकूल नहीं है, इसका तार्किक निष्कर्ष यह है कि उसके पास अपेक्षित इरादा नहीं था। (देखें मोहम्मद अली बनाम जगदीश कलिता, एससीसी प्रस्तर 21)।”

22. शांतिपूर्ण, खुला और निरंतर कब्जा, जैसा कि कहावत 'नेक वी, नेक क्लेम, नेक प्रीकारियो' में अंकित है, इस न्यायालय द्वारा कर्नाटक वक्फ बोर्ड बनाम भारत सरकार, (2004) 10 एससीसी 779 में निम्नलिखित शब्दों में उल्लेख किया गया है:

"इस प्रकार के मामलों में, अनन्य कब्जे का भौतिक तथ्य और वास्तविक स्वामी को छोड़कर स्वामी के रूप में कब्जा करने का इरादा (एनिमस पॉसिडेंडी) सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। प्रतिकूल कब्जे का दावा विशुद्ध रूप से विधि का प्रश्न नहीं है, बल्कि तथ्य और विधि का मिश्रित प्रश्न है। इसलिए, प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्ति को यह दिखाना चाहिए: (क) उसने किस तिथि को कब्जा प्राप्त किया, (ख) उसके कब्जे की प्रकृति क्या थी, (ग) क्या कब्जे की जानकारी दूसरे पक्ष को थी, (घ) उसका कब्जा कितने समय तक जारी रहा, और (ङ) उसका कब्जा खुला और अबाधित था। प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्ति के पक्ष में कोई न्यायसंगत आधार नहीं होता। चूंकि वह वास्तविक स्वामी के अधिकारों को नकारने का प्रयास कर रहा है, इसलिए यह उसका कर्तव्य है कि वह अपने प्रतिकूल कब्जे को सिद्ध करने के लिए आवश्यक सभी तथ्यों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करे और स्थापित करे।"

संपत्ति के स्वामी को इरादे का जो भी अर्थ प्रतीत होता हो, उसे समझना महत्वपूर्ण है। प्रश्न यह है कि संपत्ति के स्वामी को उसके अनुचित उपयोग का इरादा पता चल जाए। यहीं पर विधि कब्जे के तरीके के लिए प्रतिकूलता और पारदर्शिता को महत्वपूर्ण मानता है। इसका अर्थ यह है कि प्रतिकूल कब्जेदार का कब्जा इतना स्पष्ट होना चाहिए कि संपत्ति के स्वामी को उचित सूचना और अवसर मिल सके।"

39. उपर्युक्त सिद्धांतों को वर्तमान मामले पर लागू करने पर, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, न तो पर्याप्त दलीलें दी गई हैं और न ही इस संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है, और न ही यह सिद्ध किया जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं का कब्जा, यदि था भी, तो कभी प्रतिकूल था या उत्तर प्रदेश भूमि अभिलेख नियमावली के अंतर्गत रखे गए राजस्व अभिलेखों के कॉलम 9 में दर्ज था, और न ही यह कि पीए-10 कभी वास्तविक स्वामियों को जारी किया गया था और उन्हें तामील कराई गई थी। अतः, इनके अभाव में, प्रतिकूल कब्जे का दावा स्पष्ट रूप से निराधार है और इसे खारिज किया जाता है।

40. अब यदि पारिवारिक समझौते और सुलह की दलील पर विचार किया जाए, तो यह कहना उचित होगा कि पारिवारिक समझौता और सुलह दोनों अलग-अलग क्षेत्रों में काम करते हैं। पारिवारिक समझौते से संबंधित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के प्रसिद्ध मामले, काले और अन्य बनाम उप संचालक चकबंदी और अन्य : 1976 (3) एससीसी 119 पर ध्यान देना उचित होगा, जो आज भी प्रासंगिक है। इसमें प्रतिपादित सिद्धांत का पालन इस न्यायालय ने राम मिलन बनाम कृपा शंकर और अन्य : मनु/यूपी/2728/2023 में पारिवारिक समझौते की दलील पर विचार करते हुए किया था, जिसमें इस न्यायालय ने पारिवारिक समझौते से संबंधित उपरोक्त दलील पर विचार करते हुए काले बनाम डी.डी.सी. (उपरोक्त) से लेकर सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों की सहायता से सभी प्रमुख निर्णयों का सहारा लिया था और राम मिलन (उपरोक्त) का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:

“25. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री विभांशु श्रीवास्तव ने खुशी राम (उपरोक्त) के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रश्न से निपटते हुए कि क्या किसी दीवानी मुकदमे में पारित डिक्री को पंजीकरण की आवश्यकता है और पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 के प्रावधानों पर विचार करने के बाद यह माना कि यदि डिक्री मुकदमे के विषय से संबंधित है, तो इसे पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 (2) (vi) के अन्तर्गत पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है और इस प्रकार यह अपवर्जन खंड के अंतर्गत आता है।

26. पारिवारिक समझौते के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय को भेजे गए दूसरे प्रश्न के संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय ने काले बनाम डीडीसी (उपरोक्त) मामले में अपने प्रसिद्ध निर्णय पर भरोसा करते हुए यह माना कि काले बनाम डी.डी.सी. (उपरोक्त) में प्रतिपादित सिद्धांत अभी भी बाध्यकारी हैं और इसलिए न्यायालय को पारिवारिक समझौतों से निपटते समय व्यापक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। हालांकि, उक्त मामले में यह देखना आवश्यक है कि मुद्दा यह था कि क्या पारिवारिक समझौता करने के लिए पक्षों को एक परिवार के रूप में माना जा सकता है और इसी संदर्भ में उक्त निर्णय दिया गया था।

27. कोरुकांडा (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने पारिवारिक समझौते और उसके पंजीकरण की आवश्यकता के मुद्दे पर पूर्व के निर्णयों पर ध्यान देते हुए कहा कि यदि कोई दस्तावेज़ किसी पूर्व-निर्धारित पारिवारिक समझौते का प्रमाण देने वाला ज्ञापन है और उसे भविष्य में किसी भी प्रकार की भ्रम की स्थिति से बचने के लिए अभिलेख के रूप में तैयार किया गया है, तो उसे पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है; हालांकि, जहां विभाजन हो चुका है और पूर्ववर्ती अधिकारों की अवधारणा को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है, तो ऐसे दस्तावेज़ का पंजीकरण आवश्यक होगा।

28. कॉम्पैक एंटरप्राइजेज (उपरोक्त) का निर्णय एक सहमति डिक्री से संबंधित है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि सहमति डिक्री का उद्देश्य पक्षों के विरुद्ध निर्णय द्वारा विबंधन बनाना है जिससे भविष्य के मुकदमों का अंत हो सके, हालांकि, यह एक पूर्ण सूत्र नहीं है और जहां समझौता धोखाधड़ी, गलत बयानी या गलती से दूषित था, वहां सहमति डिक्री विबंधन के रूप में कार्य नहीं करेगी।

29. जहां तक श्री चौधरी द्वारा उद्धृत निर्णयों का संबंध है, काले बनाम डी.डी.सी. (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने पारिवारिक समझौते से संबंधित विभिन्न बारीकियों पर ध्यान दिया है, जिनका आज तक निःसंदेह पालन किया जाता है और पक्षों के सम्मानजनक निवेदनों पर विचार करते समय उचित रूप से ध्यान दिया जाएगा।

30. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने रिपु दमन (उपरोक्त) के एक निर्णय पर भरोसा किया है, जो इस मुद्दे से संबंधित है कि क्या भूमि के संबंध में एक समझौता डिक्री, जो मुकदमे का विषय नहीं है, बल्कि परिवार के सदस्यों के बीच समझौते का हिस्सा है, का अनिवार्य पंजीकरण आवश्यक है। पंजीकरण अधिनियम, 1908

की धारा 17 के प्रावधानों और सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों पर ध्यान देने के बाद, उन्होंने माना कि समझौता डिक्री, जो पूर्व-उपस्थित अधिकारों की घोषणा करती है और स्वयं संपत्ति में कोई नया अधिकार या स्वामित्व सृजित नहीं करती है, का पंजीकरण आवश्यक नहीं है। हालांकि, यदि डिक्री अचल संपत्ति में पहली बार कोई अधिकार या स्वामित्व या हित सृजित करती है, तो उसका पंजीकरण आवश्यक होगा।

31. जे. यशोदा (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 से संबंधित मामले में यह माना है कि सामान्य नियम के अनुसार, द्वितीयक साक्ष्य केवल प्राथमिक साक्ष्य की अनुपस्थिति में ही स्वीकार्य है और विधि के अनुसार प्राथमिक साक्ष्य की अनुपस्थिति के लिए उचित स्पष्टीकरण आवश्यक है, तभी द्वितीयक साक्ष्य को स्वीकार किया जा सकता है।

32. संबंधित पक्षों द्वारा उद्धृत विधि के उपरोक्त प्रस्तावों की पृष्ठभूमि में और जिन विधिक प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है, उन्हें ध्यान में रखते हुए, प्रदर्श-5 के रूप में प्रस्तुत पारिवारिक समझौते के प्रभाव और प्रदर्श-2 के रूप में प्रस्तुत दिनांक 01.11.1972 के सहमति डिक्री के प्रभाव पर विचार करना उचित होगा।

“33. सर्वप्रथम, यह जानना प्रासंगिक होगा कि पारिवारिक समझौता क्या है और इसकी व्याख्या कैसे की जानी चाहिए, और इस उद्देश्य के लिए, सर्वोच्च न्यायालय का काले बनाम डी.डी.सी. (उपरोक्त) का निर्णय सहायक होगा और उक्त निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद संदर्भ के लिए नीचे दिए गए हैं:-

9.....पारिवारिक समझौते या व्यवस्था के माध्यम से, एक ही पूर्वज या निकट संबंधी से वंशज परिवार के सदस्य अपने मतभेदों और विवादों को समाप्त करने, अपने परस्पर विरोधी दावों या विवादित अधिकारों को हमेशा के लिए निपटाने और हल करने का प्रयास करते हैं ताकि मन की शांति प्राप्त हो सके और परिवार में पूर्ण सामंजस्य और सद्भाव स्थापित हो सके। पारिवारिक व्यवस्थाएं अपने आप में विशिष्ट एक विशेष न्यायसंगतता द्वारा शासित होती हैं और यदि ईमानदारी से की गई हों तो उन्हें लागू किया जाएगा। इस संबंध में, केर ने अपने मूल्यवान ग्रंथ 'केर ऑन फ्रॉड' के पृष्ठ 364 पर पारिवारिक व्यवस्था की प्रकृति के बारे में निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियां की हैं, जिन्हें इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

“अजनबियों के बीच सामान्य समझौते के मामलों में लागू होने वाले सिद्धांत पारिवारिक समझौतों के मामलों में समान रूप से लागू नहीं होते हैं। पारिवारिक समझौते एक विशेष निष्पक्षता द्वारा शासित होते हैं और यदि ईमानदारी से किए गए हों तो उन्हें लागू किया जाएगा, भले ही उनका उद्देश्य समझौता करना न हो, बल्कि वे सभी पक्षों की गलती से उत्पन्न हुए हों, जो उनके वास्तविक अधिकारों या उन बिंदुओं के बारे में तथ्यों की जानकारी की कमी या आज्ञानता से उत्पन्न हुई हो जिन पर उनके अधिकार वास्तव में निर्भर करते हैं।”

इस व्यवस्था का उद्देश्य, परिवार को, लंबे समय तक चलने वाले मुकदमों या निरंतर कलह से बचाना है, जो परिवार की एकता और एकजुटता को भंग करते हैं और परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच घृणा और द्वेष

पैदा करते हैं। आज जब हम एक समतावादी समाज के निर्माण और समाज के पूर्ण पुनर्निर्माण का प्रयास कर रहे हैं, तब परिवार की एकता और समरूपता को बनाए रखना और उसका समर्थन करना अत्यंत आवश्यक है, जो अंततः समाज और इस प्रकार पूरे देश के एकीकरण का आधार बनता है। एक ऐसी पारिवारिक व्यवस्था जिसमें संपत्ति को विभिन्न उत्तराधिकारियों के बीच समान रूप से विभाजित किया जाता है ताकि धन का समान वितरण हो सके, न कि कुछ ही लोगों के हाथों में केंद्रित हो, निस्संदेह सामाजिक न्याय प्रशासन में एक मील का पत्थर है। इसीलिए "परिवार" शब्द को व्यापक अर्थ में समझना आवश्यक है, ताकि इसमें न केवल करीबी रिश्तेदार या विधिक उत्तराधिकारी सम्मिलित हों, बल्कि वे लोग भी सम्मिलित हों जिनका किसी प्रकार का पूर्व अधिकार हो, किसी दावे का आभास हो या उत्तराधिकार की संभावना हो। इससे भविष्य के विवाद हमेशा के लिए समाप्त हो जाते हैं और परिवार आपस में दावे करने और व्यर्थ के मुकदमों में समय, धन और ऊर्जा बर्बाद करने के बजाय देश के व्यापक हित में अधिक रचनात्मक कार्यों पर ध्यान केंद्रित कर पाता है। इसलिए, न्यायालयों ने तकनीकी या तुच्छ आधारों पर पारिवारिक व्यवस्था को भंग करने के बजाय उसे बनाए रखने का पक्ष लिया है। जहां न्यायालयों को लगता है कि पारिवारिक व्यवस्था में कोई विधिक खामी या औपचारिक दोष है, वहां विबंधन का नियम लागू किया जाता है और इसका प्रयोग उस व्यक्ति की दलील को खारिज करने के लिए किया जाता है जो पारिवारिक व्यवस्था का पक्षकार होते हुए भी पहले से तय विवाद को पलटना चाहता है और उस पारिवारिक व्यवस्था को रद्द करने का दावा करता है जिसके अन्तर्गत उसने स्वयं कुछ भौतिक लाभ प्राप्त किए हैं। इस मामले में इंग्लैंड का विधि भी लगभग यही है। 'हल्सबरी के इंग्लैंड के विधि', खंड 17, तीसरा संस्करण, पृष्ठ 215-216 पर, पारिवारिक समझौते के अनिवार्य तत्वों और इसके अस्तित्व को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के संबंध में निम्नलिखित उपयुक्त टिप्पणियाँ की गई हैं:

"पारिवारिक व्यवस्था एक ही परिवार के सदस्यों के बीच किया गया एक समझौता है, जिसका उद्देश्य आम तौर पर और उचित रूप से परिवार के लाभ के लिए होता है, या तो संदिग्ध या विवादित अधिकारों पर समझौता करके या मुकदमेबाजी से बचकर या परिवार की संपत्ति या परिवार की शांति और सुरक्षा को संरक्षित करके या उसके सम्मान की रक्षा करके।"

यह समझौता लंबे समय से चले आ रहे लेन-देन से निहित हो सकता है, लेकिन आमतौर पर इसे एक ऐसे विलेख में सम्मिलित या प्रभावी बनाया जाता है जिसमें "पारिवारिक व्यवस्था" शब्द का प्रयोग किया जाता है।

पारिवारिक व्यवस्थाएँ उन सिद्धांतों द्वारा शासित होती हैं जो अजनबियों के बीच होने वाले लेन-देन पर लागू नहीं होते। न्यायालय, पारिवारिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत पक्षों के अधिकारों या ऐसी व्यवस्थाओं को रद्द करने के दावों पर निर्णय लेते समय, मामले के व्यापक परिप्रेक्ष्य में परिवारों के हित में सबसे उपयुक्त बात पर विचार करता है और उन बातों को ध्यान में रखता है जिन पर एक ही परिवार के सदस्य न होने वाले व्यक्तियों के बीच लेन-देन के मामलों में विचार नहीं किया जाता। वे बातें जो अजनबियों के बीच होने वाले समान लेन-देन

की वैधता के लिए घातक सिद्ध हो सकती हैं, पारिवारिक व्यवस्थाओं के बाध्यकारी प्रभाव पर आपत्ति नहीं मानी जा सकती।

10. दूसरे शब्दों में, पारिवारिक समझौते के बाध्यकारी प्रभाव और आवश्यक तत्वों को ठोस रूप देने के लिए, इस मामले को निम्नलिखित प्रस्तावों के रूप में संक्षेपित किया जा सकता है:

"(1) पारिवारिक समझौता एक वास्तविक समझौता होना चाहिए ताकि परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच संपत्ति के निष्पक्ष और न्यायसंगत विभाजन या आवंटन द्वारा पारिवारिक विवादों और प्रतिद्वंद्वी दावों का समाधान किया जा सके;

(2) उक्त समझौता स्वैच्छिक होना चाहिए और धोखाधड़ी, दबाव या अनुचित प्रभाव से प्रेरित नहीं होना चाहिए;

(3) पारिवारिक व्यवस्था मौखिक भी हो सकती है, ऐसी स्थिति में पंजीकरण आवश्यक नहीं है;

(4) यह सर्वविदित है कि पंजीकरण तभी आवश्यक होगा जब पारिवारिक व्यवस्था की शर्तें लिखित रूप में दर्ज हों। यहाँ भी, पारिवारिक व्यवस्था की शर्तों और विवरणों वाले दस्तावेज़ और पारिवारिक व्यवस्था के बाद अभिलेख के उद्देश्य से या आवश्यक उत्परिवर्तन के लिए न्यायालय की सूचना हेतु तैयार किए गए मात्र ज्ञापन के बीच अंतर किया जाना चाहिए। ऐसे मामले में, ज्ञापन स्वयं अचल संपत्तियों में किसी भी अधिकार का सृजन या समाप्ति नहीं करता है और इसलिए पंजीकरण अधिनियम की धारा 17(2) के सीमा में नहीं आता है और अतः अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य नहीं है;

(5) पारिवारिक व्यवस्था में सम्मिलित सदस्यों का संपत्ति में कोई पूर्ववर्ती अधिकार, दावा या हित होना चाहिए, भले ही वह संभावित दावा ही क्यों न हो, जिसे समझौते के पक्षकारों द्वारा स्वीकार किया गया हो। यदि समझौते के पक्षकारों में से किसी एक का कोई अधिकार नहीं है, लेकिन व्यवस्था के अन्तर्गत दूसरा पक्षकार ऐसे व्यक्ति के पक्ष में अपने सभी दावों या अधिकारों को त्याग देता है और उसे एकमात्र स्वामी के रूप में स्वीकार करता है, तो पूर्ववर्ती अधिकार को मान लिया जाएगा और पारिवारिक व्यवस्था मान्य होगी तथा न्यायालयों को इस पर सहमति देने में कोई कठिनाई नहीं होगी;

(6) भले ही वास्तविक विवाद, चाहे वे वर्तमान हों या संभावित, जिनमें विधिक दावे सम्मिलित न हों, किसी निष्पक्ष और न्यायसंगत वास्तविक पारिवारिक व्यवस्था द्वारा सुलझा लिए जाएं, तो भी पारिवारिक व्यवस्था अंतिम होगी और समझौते के पक्षों पर बाध्यकारी होगी।"

41. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भूप सिंह बनाम राम सिंह मेजर और अन्य (1995) 5 सुप्रीम कोर्ट केस 709 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है (प्रासंगिक प्रस्तर 12):

“12. हमारे अनुसार, उपर्युक्त निर्णय संपूर्ण मामले को आच्छादित नहीं करते हैं। वे जहाँ तक जाते हैं, हमें स्वीकार्य हैं। लेकिन खंड (6) के वास्तविक आशय को समझने के लिए कुछ और कहना आवश्यक है। यह बताना आवश्यक है कि धारा 17 की उपधारा (1) में यह अनिवार्य है कि खंड (क) से (ड) में सूचीबद्ध दस्तावेज का पंजीकरण अनिवार्य होगा यदि संबंधित संपत्ति अचल संपत्ति है, जिसका मूल्य 100 रुपये या उससे अधिक है। जब दस्तावेज वर्तमान या भविष्य में किसी भी अधिकार, हक या हित को, चाहे वह निहित हो या आकस्मिक, सृजित, घोषित, आवंटित, सीमित या समाप्त करने का आशय रखता है या ऐसा करता है, तो उसका पंजीकरण अनिवार्य है। अधिनियम “दस्तावेज” को परिभाषित नहीं करता है। भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2(14) “दस्तावेज” को ऐसे प्रत्येक दस्तावेज के रूप में परिभाषित करती है जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व सृजित, हस्तांतरित, सीमित किया जाता है या सृजित, विस्तारित, समाप्त या दर्ज होने का आशय रखता है। अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (2) उपधारा (1) के खंड (ख) और (ग) के अंतर्गत आने वाले दस्तावेजों में अपवाद जोड़ती है। हम उपधारा (2) के खंड (छठी) से संबंधित हैं। खंड (छठी) किसी न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश से संबंधित है, सिवाय उस निर्णय या आदेश के जो किसी समझौते पर आधारित हो और जिसमें वाद या कार्यवाही के विषय वस्तु के अतिरिक्त अन्य अचल संपत्ति सम्मिलित हो। खंड (व) प्रासंगिक है, जो इसके विपरीत, इस प्रकार है:

“कोई भी दस्तावेज जो स्वयं किसी अचल संपत्ति में सौ रुपये या उससे अधिक मूल्य के किसी अधिकार, हक या हित का सृजन, घोषणा, आवंटन, सीमा निर्धारण या समाप्ति नहीं करता है, बल्कि केवल किसी अन्य दस्तावेज को प्राप्त करने का अधिकार सृजित करता है, जो निष्पादित होने पर ऐसे किसी अधिकार, हक या हित का सृजन, घोषणा, आवंटन, सीमा निर्धारण या समाप्ति करेगा;

स्पष्टीकरण में यह स्पष्ट किया गया है कि अचल संपत्ति की बिक्री के लिए ऐसा कोई अनुबंध जिसमें किसी बयाना राशि या खरीद मूल्य के पूरे या किसी हिस्से के भुगतान का उल्लेख हो, उसे पंजीकरण की आवश्यकता नहीं मानी जाएगी और न ही कभी पंजीकरण की आवश्यकता रही होगी।”

42. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राम मिलन (उपरोक्त) में उल्लिखित विभिन्न निर्णयों में स्पष्ट किए गए विधि पर विचार करते हुए, न्यायालय पाता है कि पारिवारिक समझौते की दलील भी न्यायालय को प्रभावित नहीं करती, क्योंकि यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि मताई ने संपत्ति कैसे प्राप्त की थी। यह दर्शाने के लिए कोई भी सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई गई की विचाराधीन संपत्ति मताई द्वारा बनाई गई थी। आश्चर्यजनक रूप से, केवल 2006 में, याचिकाकर्ताओं ने एक पूरक शपथपत्र प्रस्तुत करके कुछ दस्तावेजों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया, जो श्रीमती प्राण देई के निधन के बाद से 1959 से लंबित कार्यवाही के बाद भी कभी सामने नहीं आए थे। तीनों चकबंदी न्यायालयों ने विवाद को स्पष्ट किया है और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ताओं ने विरोधाभासी रुख अपनाया है, क्योंकि चकबंदी अधिकारी के समक्ष उनका विशिष्ट तर्क था कि संपत्ति हर कृष्ण और हरिद्वार द्वारा बनाई गई थी और उनका यह दावा कभी नहीं था कि यह पैतृक संपत्ति थी। यहां तक कि रिट याचिका प्रस्तुत करते समय भी, दलील वही रही और रिट याचिका या

दलीलों में संशोधन किए बिना, केवल एक पूरक शपथपत्र प्रस्तुत करके और कुछ ऐसे दस्तावेज़ प्रस्तुत करके, जिनकी मुकदमे में जांच नहीं हुई है, याचिकाकर्ताओं को उस दलील के विपरीत अपने मामले से पलटने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जिस पर उन्होंने पूरी कार्यवाही में लड़ाई लड़ी थी।

43. चाहे जो भी हो, जब तक याचिकाकर्ता यह सिद्ध नहीं कर देते कि उनके कोई पूर्व-स्थापित अधिकार थे, तब तक प्रस्तावित पारिवारिक समझौता मान्य नहीं हो सकता। याचिकाकर्ता यह भी सिद्ध नहीं कर सके कि उनके पिता हर कृष्ण ने हरिद्वार के साथ संपत्ति प्राप्त की थी, इसलिए फिर से पारिवारिक समझौते का कोई दावा नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से छितना और याचिकाकर्ताओं के बीच, जिसमें श्रीमती यशोदरा को कम से कम सम्मिलित भी नहीं किया गया हो।

43. उपरोक्त कारणों से, पारिवारिक समझौते की दलील भी विश्वास जगाने वाली नहीं है और उप संचालक चकबंदी तथा बन्दोबस्त अधिकारी द्वारा पारिवारिक समझौते की दलील को खारिज करने के लिए दिए गए तर्कों में कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं है।

44. तहसीलदार की न्यायालय में हुए कथित समझौते की दलील की जांच करने पर, यह समझौता बंदोबस्त चकबंदी अधिकारी और उप-संचालक चकबंदी के समक्ष स्वीकार्य नहीं पाया गया। न्यायालय भी इस तर्क से सहमत है कि दाखिल खारिज कार्यवाही में हुआ उक्त समझौता किसी भी स्थिति में बाध्यकारी नहीं था, इस अर्थ में कि यह वैध स्वामी को उसके अधिकार से वंचित कर सके। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता इस बात से असहमत नहीं हो सके कि तहसीलदार की न्यायालय में प्रस्तुत किए गए कथित समझौते पर केवल पराग के हस्ताक्षर थे। इस पर श्रीमती छितना, श्रीमती यशोदरा या स्वयं आज्ञा राम के हस्ताक्षर नहीं थे। यदि तर्क के लिए उक्त समझौते को ध्यान में भी रखा जाए, तब भी इसका कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं हो सकता, क्योंकि यह एक दाखिल खारिज कार्यवाही में हुआ था, जबकि इस पर 1953 के अधिनियम की धारा 9-क (2) के अन्तर्गत कार्यवाही में विवाद हुआ था, जो कि मूल कार्यवाही है जिसमें पक्षों के अधिकारों, जिनमें उनका स्वामित्व भी सम्मिलित है, का निर्णय किया जाता है और इसका बाध्यकारी प्रभाव होता है, जिसमें यह 1953 के अधिनियम की धारा 49 के अनुसार, किसी अन्य राजस्व या सिविल न्यायालय के समक्ष प्रांगन्याय के रूप में कार्य करता है। चकबंदी अधिकारी के समक्ष कार्यवाही में, श्रीमती छितना द्वारा उक्त समझौते से इनकार करने के बावजूद, उक्त समझौता सिद्ध नहीं हुआ। याचिकाकर्ताओं के लिए समझौता सिद्ध करना हमेशा संभव था, लेकिन यह सिद्ध नहीं किया गया और इसलिए, विधि के अनुसार उक्त समझौते को सिद्ध किए बिना केवल दलील देने से इसे सिद्ध नहीं माना जा सकता। उक्त समझौते को सिद्ध हुआ मानने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि इस पर यशोदरा, पराग और छितना के हस्ताक्षर नहीं थे। अतः, समझौते की दलील भी खारिज की जाती है।

45. अंत में, उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह सिद्ध नहीं कर सके कि संपत्ति पैतृक थी और वैसे भी यह उनके कथनों के विपरीत थी, इसलिए उक्त दलील में भी कोई बल नहीं है।

46. उपरोक्त सभी कारणों से, याचिका संख्या 4405 सन् 1985 में कोई बल नहीं है और इसे तदनुसार खारिज किया जाता है। इसी प्रकार, याचिका संख्या 3396 सन् 1987 का भी यही हश्र होता है। इसे भी तदनुसार खारिज किया जाता है।

लागत पर कोई आदेश नहीं।

(2025) 3 ILRA 240

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.03.2025

समक्ष

माननीय चंद्र कुमार राय, न्यायमूर्ति

रिट बी संख्या 15451/1996

रमा शंकर एवं अन्य

.....याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री प्रकाश चंद्र, श्री विशाल खंडेलवाल

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:

श्री आशीष कुमार श्रीवास्तव, श्री अविनाश चंद्र श्रीवास्तव, सी.एस.सी., श्री जय राज सिंह तोमर

ए. सिविल विधि- यू.पी. ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950-धारा 122बी(4-एफ)-अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित याचिकाकर्ताओं को, गाँव सभा भूमि के संबंध में अधिनियम, 1950 की धारा 122बी(4-एफ) का लाभ प्रदान किया गया था। दिनांक 31.01.1994 और 20.01.1994 के आदेशों के अनुसार-तदनुसार उनके नाम राजस्व अभिलेखों में गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों वाले भूमिधर के रूप में दर्ज किए गए। इसके बाद, जिला सरकारी अधिवक्ता ने एक वापसी आवेदन दायर किया, जिसे उप-मंडल अधिकारी ने 17.09.1994 को स्वीकार कर लिया और मूल आवंटन आदेश को रद्द कर दिया। राजस्व बोर्ड ने, अपर आयुक्त के संदर्भ में, जिसमें याचिकाकर्ता के अधिकारों की बहाली की सिफारिश की गई थी, दिनांक 25.01.1996 के आदेश के अनुसार उसे अस्वीकार कर दिया। न्यायालय ने माना कि एक बार धारा 122बी(4-एफ) का लाभ प्रदान कर दिए जाने के बाद, उसे चुनौती देने की उचित प्रक्रिया अधिनियम, 1950 की धारा 198(4) के तहत कार्यवाही के माध्यम से है, न कि वापसी/पुनर्स्थापना आवेदनों के माध्यम से। -डीजीसी द्वारा दायर किया गया वापसी

आवेदन इसलिए विचारणीय नहीं था। -नवमी लाल बनाम राज्य, श्रीमती रेशमा देवी बनाम आयुक्त और मनोरे @ मनोहर बनाम राजस्व बोर्ड में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया, जिसने अनुसूचित जाति के कृषि मजदूरों के मूल और प्रक्रियात्मक अधिकारों की धारा 122बी(4-एफ) के तहत पुष्टि की थी। -दिनांक 17.09.1994 (एसडीओ) और 25.01.1996 (राजस्व बोर्ड) के आदेश अपास्त किए जाते हैं। (पैरा 1 से 15)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. नवमी लाल बनाम उत्तर प्रदेश के सचिव एवं अन्य के माध्यम से (2018) 141 आर.डी. 750
2. श्रीमती रेशमा देवी व अन्य बनाम कमिश्नर व अन्य (2014)122 आरडी 667
3. बासदेव बनाम उत्तर प्रदेश के सेंट व अन्य (2023) 9 एडीजे 208
4. मनोरे @ मनोहर बनाम राजस्व बोर्ड व अन्य (2003) एआईआर एससी 4102

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री विशाल खंडेलवाल, राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक कुमार श्रीवास्तव और ग्राम सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री अविनाश चंद्र श्रीवास्तव को सुना गया।
2. प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ताओं को ग्राम-सिकंदरपुर कोटवार, तहसील-फ़िरोज़ाबाद, ज़िला-फ़िरोज़ाबाद में स्थित प्लॉट संख्या 430 के संबंध में उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जिसे आगे उत्तर प्रदेश ज़मींदारी अधिनियम एवं भूमि सुधार अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 122 बी (4-एफ) का लाभ दिया गया था। 31.01.1994 और 20.01.1994 के आदेश के तहत याचिकाकर्ताओं के पक्ष में उत्तर प्रदेश ज़मींदारी अधिनियम एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122 बी (4-एफ) का लाभ दिया गया था। जिला सरकारी अधिवक्ता द्वारा 14.09.1994 को प्रत्याहरण आवेदन दायर किया गया था। उप-मंडल अधिकारी ने दिनांक 17.09.1994 के आदेश द्वारा उपर्युक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया और दिनांक 31.01.1994 के आदेश को अपास्त कर दिया और कार्यवाही को उसके मूल क्रमांक पर बहाल कर दिया। उप-मंडल अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 17.09.1994 के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने आयुक्त के समक्ष तीन पुनरीक्षण दायर किए, जिन्हें उत्तर प्रदेश भू-आकृतिक एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 333ए के अंतर्गत पुनरीक्षण संख्या 1/1994, 2/1994 और 3/1994 के रूप में पंजीकृत किया गया। अपर आयुक्त (न्यायिक), आगरा मंडल, आगरा ने दिनांक 19.09.1995 के आदेश द्वारा राजस्व बोर्ड के समक्ष संदर्भ भेजा ताकि पुनरीक्षणों की अनुमति दी जा सके, उप-मंडल अधिकारी द्वारा तीन मामलों में पारित दिनांक 17.09.1994 के आदेशों को अपास्त किया जा सके और पुनर्स्थापना आवेदनों के नए सिरे से निपटान के लिए। ये संदर्भ संदर्भ संख्या 15, 16, 17, 1995-

96 के रूप में पंजीकृत थे। राजस्व बोर्ड ने दिनांक 25.01.1996 के आदेश द्वारा संदर्भों को अस्वीकार कर दिया। अतः याचिकाकर्ताओं की ओर से निम्नलिखित राहत के लिए यह रिट याचिका प्रस्तुत है:-

(i) 1995-96 के सभी संदर्भों 15 से 17 में राजस्व बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 25.01.1996 के आदेश और साथ ही उप-मंडल अधिकारी, फिरोजाबाद द्वारा दिनांक 17.09.1994 को पारित आदेश को रद्द करते हुए, उत्प्रेषण के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

(ii) आगे कोई भी आदेश पारित करना, जिसे यह माननीय न्यायालय प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उचित और उपयुक्त समझे।

3. इस न्यायालय ने प्रकरण पर विचार किया और 08.05.1996 को अंतरिम संरक्षण प्रदान किया और आक्षेपित आदेशों के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी।

4. दिनांक 08.05.1996 के आदेश के अनुसरण में, पक्षों के बीच शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया गया है।

उन्होंने इस याचिका के साथ संलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न 'खतौनी' की प्रति प्रस्तुत की ताकि यह दर्शाया जा सके कि टिप्पणी कॉलम में उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) का लाभ प्रदान करने वाले आदेश का विवरण दिया गया है ताकि याचिकाकर्ताओं का नाम अहस्तांतरणीय अधिकारों वाले 'भूमिधर' के रूप में दर्ज किया जा सके।

उन्होंने आगे कहा कि 31.01.1994 के आदेश के विरुद्ध उचित कार्यवाही शुरू करने के स्थान पर प्रत्याहरण प्रार्थना-पत्र आवेदन दायर किया गया है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा 2018 में रिपोर्ट किए गए मामले (141) आर.डी. 750 नवमी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सचिव और अन्य के माध्यम से और साथ ही 2014 में रिपोर्ट किए गए मामले (122) आर.डी. 677 श्रीमती रेशमा देवी और अन्य बनाम आयुक्त और अन्य में अभिनिर्धारित किया गया था।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति समुदाय से हैं और याचिकाकर्ताओं को संबंधित तिथि से पहले संबंधित भूखंड पर कब्जा पाया गया था तदनुसार, उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) का लाभ याचिकाकर्ताओं को उचित तरीके से प्रदान किया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) का लाभ प्रदान करने वाले दिनांक 31.01.1994/20.01.1994 के आदेश के आधार पर, तदनुसार याचिकाकर्ताओं के नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज किए गए थे। उन्होंने इस याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न 'खतौनी' की प्रति प्रस्तुत की ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) का लाभ प्रदान करने वाले आदेश

के टिप्पणी कॉलम में। और याचिकाकर्ताओं का नाम अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ 'भूमिधर' के रूप में दर्ज करने के लिए भूमि अधिकार अधिनियम का उल्लेख किया गया है। उन्होंने आगे दलील दी कि इस न्यायालय द्वारा 2018 में दर्ज प्रकरण (141) आर.डी. 750 नवमी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सचिव एवं अन्य के माध्यम से और साथ ही 2014 में दर्ज प्रकरण (122) आर.डी. 677 श्रीमती रेशमा देवी एवं अन्य उन्होंने दलील दी कि श्रीमती रेशमा देवी (उपरोक्त) और नवमी लाल (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात के मददेनजर, उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) का लाभ देने वाले आदेश के विरुद्ध प्रत्याहरण/पुनर्स्थापना आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे दलील दी कि अपर आयुक्त ने संशोधन की अनुमति के लिए संदर्भ भेजा है, लेकिन राजस्व बोर्ड ने मनमाने तरीके से संदर्भों को अस्वीकार कर दिया है। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता अभी भी उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) का लाभ देने वाले 31.01.1994/20.01.1994 के आदेश के आधार पर संबंधित भूखंड पर काबिज हैं। अधिनियम के अनुसार, इस प्रकार, विवादित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए और उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) का लाभ प्रदान करने वाले दिनांक 31.01.1994/20.01.1994 के आदेश को बरकरार रखा जाना चाहिए। बनाम आयुक्त एवं अन्य में दिए गए निर्णय के अनुसार, 31.01.1994 के आदेश के विरुद्ध वापस बुलाने का आवेदन दायर किया गया है।

6. दूसरी ओर, श्री अभिषेक कुमार श्रीवास्तव, राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता और श्री अविनाश चंद्र श्रीवास्तव, गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जिला सरकारी अधिवक्ता द्वारा गाँव सभा की ओर से दिनांक 31.01.1994/20.01.1994 के आदेश के विरुद्ध वापसी आवेदन सही रूप से इस आधार पर दायर किया गया है कि आदेश गाँव सभा को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना एकतरफा तरीके से पारित किया गया था। उन्होंने आगे दलील दी कि उप-मंडल अधिकारी ने दिनांक 31.01.1994/20.01.1994 के आदेश को रद्द कर दिया है और नए सिरे से निर्णय के लिए कार्यवाही बहाल कर दी है। कानून के अनुसार, इस प्रकार 25.01.1996 के विवादित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं को उप-मंडल अधिकारी के दिनांक 17.09.1994 के आदेश के अनुसरण में न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में भाग लेने का पूरा अवसर प्राप्त है। उन्होंने आगे दलील दी कि राजस्व बोर्ड ने अपर आयुक्त द्वारा भेजे गए संदर्भ को सही ढंग से खारिज कर दिया है, इसलिए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आगे इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया, जो **2023 (9) एडीजे 208 बासदेव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य** में दिया गया था, यह प्रदर्शित करने के लिए कि यदि गाँव सभा/राज्य भूमि के संबंध में आदेश एकतरफा रूप से पारित किया गया है, तो किसी भी समय वापसी या बहाली का आवेदन दायर किया जा सकता है। उन्होंने दलील दी कि किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज की जा सकती है।

7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

8. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता अनुसूचित समुदाय से हैं और याचिकाकर्ताओं को उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) के तहत 31.01.1994/20.01.1994 को लाभ प्रदान किए गए थे। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि बहाली आवेदन के आधार पर, 31.01.1994/20.01.1994 के आदेश को वापस ले लिया गया है और कार्यवाही को उसके मूल क्रमांक पर बहाल कर दिया गया है। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण में पुनरीक्षण की अनुमति के लिए राजस्व बोर्ड के समक्ष संदर्भ भेजे गए थे, लेकिन राजस्व बोर्ड ने अपर आयुक्त द्वारा भेजे गए संदर्भ को खारिज कर दिया है।

9. इस प्रकरण में शामिल विवाद को समझने के लिए यू.पी.जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) का अवलोकन करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:-

"[(4F) पूर्वगामी उपधारा में किसी बात के होते हुए भी, जहाँ अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का कोई कृषि मजदूर धारा 117 के अंतर्गत गाँव सभा में निहित किसी भूमि (धारा 132 में उल्लिखित भूमि नहीं) पर [13 मई, 2007] से पहले से काबिज है, और इस प्रकार काबिज भूमि उक्त तिथि से पूर्व भूमिधर, सरदार या असामी के रूप में उसके द्वारा धारित भूमि, यदि कोई हो, सहित, 1.26 हेक्टेयर (3.125 एकड़) से अधिक नहीं है, तो भूमि प्रबंधन समिति या कलेक्टर द्वारा ऐसे मजदूर के विरुद्ध इस धारा के अंतर्गत कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी, और [उसे धारा 195 के अंतर्गत उस भूमि के अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में स्वीकार किया जाएगा और उसके लिए उस भूमि में अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में अपने अधिकारों की घोषणा के लिए वाद दायर करना आवश्यक नहीं होगा।

स्पष्टीकरण.- 'कृषि मजदूर' शब्द का वही अर्थ होगा जो धारा 198 में दिया गया है।]

10. माननीय उच्चतम न्यायालय ने एआईआर 2003 में प्रस्तुत प्रकरण में उच्चतम न्यायालय 4102 मनोरे उर्फ मनोहर बनाम राजस्व बोर्ड व अन्य ने उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122-बी (4-एफ) के अंतर्गत कार्यवाही के दायरे पर विचार किया है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मोनेरे (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद निम्नलिखित हैं:-

"इस प्रकार, धारा 122बी की उप-धारा (4एफ) न केवल उच्च न्यायालय के मतानुसार कब्जे की रक्षा के लिए एक कवच प्रदान करती है, बल्कि यह उस उप-धारा में निर्धारित मानदंडों को पूरा करने वाले भूमि के अधिभोगी को भूमिधर का एक सकारात्मक अधिकार भी प्रदान करती है। इस उप-धारा में निहित स्पष्ट भाषा और कानून के सुधारात्मक उद्देश्य के बावजूद, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने रामदीन बनाम राजस्व बोर्ड (उपरोक्त) (इस प्रकरण में उसी विद्वान न्यायाधीश द्वारा अनुसरण किया गया) में यह विचार व्यक्त किया था कि उप-धारा (4एफ) द्वारा परिकल्पित अधिभोगी के भूमिधरी अधिकार केवल तभी फलित हो सकते हैं जब धारा 198 के तहत भूमि प्रबंधन समिति द्वारा एक विशिष्ट आवंटन आदेश दिया गया हो। उच्च न्यायालय के अनुसार, उप-धारा (4एफ) में निहित डिमिंग प्रावधान को अन्य प्रावधानों को अधिक्रमित करने के लिए अतिरंजित

नहीं किया जा सकता है। अधिनियम में विशेष रूप से भूमिधर के अधिकार के निर्माण से संबंधित / दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय का मत था कि उपधारा (4एफ) में निहित लाभकारी प्रावधान के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति को धारा 198 के तहत आवंटन की प्रक्रिया से गुजरना होगा, भले ही वह बेदखली के लिए उत्तरदायी न हो। इस मत के परिणामस्वरूप, यह माना गया कि अधिभोगी राजस्व अभिलेखों में सुधार की मांग करने का हकदार नहीं है, भले ही उसका मामला धारा 122बी की उपधारा (4एफ) के अंतर्गत आता हो। हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय का मत स्पष्ट रूप से अस्थिर है। यह एक निश्चित सामाजिक उद्देश्य से अधिनियमित एक मान्य प्रावधान के प्रभाव की अनदेखी करने के समान है। जब एक बार मानित प्रावधान स्पष्ट रूप से धारा 195 के तहत अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में प्रावधान में निर्धारित अपेक्षित मानदंडों को पूरा करने वाले व्यक्ति को प्रवेश देने का प्रावधान करता है, तो उसे पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए। धारा 195 में प्रावधान है कि भूमि प्रबंधन समिति, उपखंड के प्रभारी सहायक कलेक्टर के पूर्व अनुमोदन से, गाँव सभा में निहित किसी भी खाली भूमि (धारा 132 के अंतर्गत आने वाली भूमि को छोड़कर) पर किसी भी व्यक्ति को अहस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर के रूप में प्रवेश देने का अधिकार होगा। धारा 198 "धारा 195 और 197 के तहत भूमि पर व्यक्तियों को प्रवेश देने में वरीयता क्रम" निर्धारित करती है। धारा 122बी की उप-धारा (4एफ) का अंतिम भाग, एक वैधानिक कल्पना द्वारा, भूमि के पात्र अधिभोगी को गैर-हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिधर का दर्जा प्रदान करता है, मानो उसे धारा 195 के तहत इस रूप में स्वीकार किया गया हो। सारतः और प्रभाव में, यह माना गया प्रावधान घोषित करता है कि वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त भूमिधर, धारा 195 के तहत अन्य प्रावधानों के साथ भूमिधरी अधिकारों के लिए स्वीकार किए गए व्यक्ति के समान ही होना चाहिए। एक तरह से, उप-धारा (4एफ) उस उप-धारा के सुरक्षात्मक क्षेत्र में आने वाले व्यक्ति को विशेष रूप से समान लाभ प्रदान करके धारा 195 का पूरक है। धारा 198 के साथ धारा 195 के तहत गाँव सभा से संपर्क करने की आवश्यकता, उप-धारा (4एफ) में निहित माना गया प्रावधान द्वारा समाप्त कर दी गई है। हमें माना गया प्रावधान के दायरे को सीमित करने का कोई वारंट नहीं मिलता है।

कानूनी स्थिति होने के कारण, उप-धारा (4एफ) के अंतर्गत आने वाले पात्र व्यक्ति द्वारा राजस्व अभिलेख में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए आवेदन करने पर कोई रोक नहीं है। जब एक बार आवेदक का दावा स्वीकार कर लिया जाता है, तो संबंधित राजस्व अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे वैधानिक आदेश को प्रभावी बनाने के लिए राजस्व अभिलेखों में आवश्यक प्रविष्टियाँ करें। ऐसा करने का दायित्व उप-धारा (4एफ) के दायरे में आने वाले व्यक्ति में निहित वैधानिक अधिकार के कारण आवश्यक निहितार्थ से उत्पन्न होता है। अधिनियम के तहत आवेदन करने के लिए विशिष्ट प्रावधान का अभाव आवेदन को अस्वीकार्य मानकर खारिज करने का कोई आधार नहीं है। राजस्व अभिलेख स्वाभाविक रूप से वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त अधिकारों के अनुरूप होने चाहिए। इसलिए उप-मंडल अधिकारी को आवेदन स्वीकार करने और अभिलेखों में सुधार करने का निर्देश देने का अधिकार था। राजस्व बोर्ड और उच्च न्यायालय को उस आदेश को रद्द नहीं करना चाहिए था। यह तथ्य कि गाँव सभा की भूमि प्रबंधन समिति ने प्रतिवादियों के पक्ष में पट्टा अधिकार सृजित किए थे, कोई महत्व नहीं रखता। ऐसा पट्टा, अपीलकर्ता के वैधानिक अधिकार के सामने, कानून की नज़र में ईमानदार है और इसे नज़रअंदाज़ किया जा सकता है। यह आश्चर्यजनक है कि उत्तर प्रदेश राज्य ने गाँव सभा के साथ मिलकर उपखंड अधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील दायर करने का निर्णय लिया। यह राज्य के संबंधित

अधिकारियों की ओर से विवेक का प्रयोग न करने का स्पष्ट प्रकरण प्रतीत होता है, जिसे इस कानून के सामाजिक-आर्थिक उद्देश्य को लागू करने की अपेक्षा की जाती है।

अपील स्वीकार की जाती है। राजस्व बोर्ड और उच्च न्यायालय के आदेश रद्द किए जाते हैं। उपखंड अधिकारी का आदेश बहाल किया जाता है। कोई खर्चा नहीं।”

11. इस प्रकरण में याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति समुदाय से हैं और प्राधिकारियों ने 31.01.1994/20.01.1994 को याचिकाकर्ताओं के पक्ष में उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) का लाभ प्रदान किया है, अतः जिला सरकारी अधिवक्ता द्वारा दायर प्रत्याहरण आवेदन पर इस न्यायालय द्वारा नवमी लाल (उपरोक्त) एवं श्रीमती रेशमा देवी (उपरोक्त) के प्रकरण में निर्धारित कानून के अनुपात के मद्देनजर विचार नहीं किया जा सकता।

12. इस न्यायालय ने नवमी लाल (उपरोक्त) और रेशमा देवी (उपरोक्त) के प्रकरण में यह माना है कि उत्तर प्रदेश प्राकृतिक गैस और प्राकृतिक गैस अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) के लाभ प्रदान करने के बाद, उचित प्रक्रिया उत्तर प्रदेश प्राकृतिक गैस और प्राकृतिक गैस अधिनियम की धारा 198(4) के तहत लागू करना है, न कि उत्तर प्रदेश प्राकृतिक गैस और प्राकृतिक गैस अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) के लाभ प्रदान करने वाले आदेश के विरुद्ध वापसी/पुनर्स्थापना दायर करना है। याचिकाकर्ताओं को इस न्यायालय द्वारा वर्ष 1996 में अंतरिम आदेश दिया गया था और याचिकाकर्ता संबंधित भूखंड पर अपना कब्जा बनाए हुए हैं। नवमी लाल (उपरोक्त) के प्रकरण में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का पैराग्राफ संख्या 11 अवलोकनार्थ प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:-

“11. हालाँकि, उत्तर प्रदेश ज़ेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 198(4) या उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 128 के तहत कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए, गाँव सभा में निहित भूमि में किसी व्यक्ति का प्रवेश धारा 195 के साथ धारा 198 के तहत या उत्तर प्रदेश ज़ेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 122-बी (4-एफ) के तहत किया गया है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दोनों कार्यवाहियों में, पात्र व्यक्तियों को गाँव सभा की भूमि में प्रवेश दिया जाता है और जैसा कि ऊपर देखा गया है, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता की धारा 128, उत्तर प्रदेश ज़ेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 198(4) में निहित प्रावधानों के समतुल्य है और कलेक्टर को जाँच के बाद ऐसे आवंटन या प्रवेश को रद्द करने का अधिकार प्रदान करती है। धारा के तहत होने वाला 'भूमि का आवंटन' उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 128 और उत्तर प्रदेश ज़ेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 198 (4) को केवल उत्तर प्रदेश ज़ेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 198 के साथ धारा 195 के अंतर्गत भूमि आवंटन तक सीमित नहीं रखा जा सकता; बल्कि यह किसी व्यक्ति को गाँव सभा की भूमि में प्रवेश देने को भी अपने दायरे में लेता है जिससे उसे उक्त अधिनियम की धारा 122-बी(4-एफ) का लाभ मिलता है।”

13. इस न्यायालय द्वारा श्रीमती रेशमा देवी (उपरोक्त) प्रकरण में दिए गए निर्णय का पैराग्राफ संख्या 11 भी अवलोकनार्थ प्रासंगिक होगा जो इस प्रकार है:-

“11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि धारा 122बी(4एफ) के अंतर्गत भूमि आवंटन को रद्द करने की कार्यवाही धारा 198 की उप-धारा 4 के अंतर्गत शुरू नहीं की जा सकती, गलत है क्योंकि धारा 122बी(4एफ) के अंतर्गत व्यक्ति को धारा 195 के अंतर्गत भूमि के अहस्तांतरणीय अधिकार के साथ भूमिधर के रूप में स्वीकार किया गया है और धारा 198 धारा 195 और 197 दोनों का ध्यान रखती है, इसलिए धारा 198 की उप-धारा (4) दोनों के संबंध में लागू होगी, अर्थात् अधिनियम की धारा 195 या 197 के अंतर्गत भूमि आवंटन।”

14. प्रकरण के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ माननीय उच्चतम न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी संख्या 1/राजस्व बोर्ड द्वारा वर्ष 1995-96 के संदर्भ प्रकरण संख्या 15 से 17 में पारित दिनांक 25.01.1996 का आक्षेपित आदेश और प्रत्यर्थी संख्या 2/उप-विभागीय अधिकारी, फिरोजाबाद द्वारा पारित दिनांक 17.09.1994 का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है और इन्हें एतद्वारा अपास्त किया जाता है।

15. रिट याचिका स्वीकार की जाती है और याचिकाकर्ताओं के पक्ष में उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) के लाभ प्रदान करने वाले दिनांक 31.01.1994/20.01.1994 के आदेश की पुष्टि की जाती है। अधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 122बी (4-एफ) के लाभ प्रदान करने वाले आदेश के आधार पर राजस्व अभिलेखों में याचिकाकर्ताओं के नाम दर्ज करें।

16. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 246

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला,

रिट कर संख्या 147/2023

अशोक गांधी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

राजीव कुमार श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

क. कर कानून - मनोरंजन कर -मल्टीप्लेक्स सिनेमा - प्रोत्साहन योजना - सहायता अनुदान की राशि का 10% और ब्याज प्रकरण की पुनः जाँच के लिए जमा करने का निर्देश दिया गया - वैधता को चुनौती दी गई - यह माना गया कि याचिकाकर्ता को प्रदान की गई कुल सहायता अनुदान राशि का 10%, अभ्यावेदन की सुनवाई के लिए जमा करने की मांग न तो कानून में निहित है और न ही यह अपीलीय स्तर पर है। (अनुच्छेद 9 और 15)

ख. कर कानून - प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत - प्रयोज्यता - अनुदान सहायता की राशि का 10% जमा करने का निर्देश देने से पहले सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया - प्रभाव -

यह माना गया कि अनुदान सहायता के 10% के भुगतान की मांग से नागरिक परिणाम उत्पन्न होते हैं और याचिकाकर्ता के अधिकारों पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किसी भी प्रकरण में, सुनवाई का अवसर 'प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत' के सबसे महत्वपूर्ण घटकों में से एक है - किसी व्यक्ति के हित को प्रभावित करने वाला कोई भी आदेश जिसके परिणामस्वरूप नागरिक परिणाम उत्पन्न होते हैं, सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित नहीं किया जा सकता। (अनुच्छेद 17 और 18)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. क्रांति एसोसिएट्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान; (2010) 9 एससीसी 496
2. धर्मपाल सत्यपाल लिमिटेड बनाम सीसीई; (2015) 8 एससीसी 519 2015 एससीसी ऑनलाइन एससी 489

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव कुमार श्रीवास्तव और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रतिपक्ष संख्या 3-जिला मजिस्ट्रेट/लाइसेंसिंग प्राधिकारी, सहारनपुर और प्रतिपक्ष संख्या 1/राज्य द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 24.04.2023 और 26.05.2023 के आदेशों को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को निर्देश दिया गया है कि वह सहायता अनुदान राशि और ब्याज (₹4,37,50,359/-) का 10% अर्थात् ₹40,75,035.90 एक सप्ताह के भीतर जीएसटी खाते के शीर्ष में जमा करें और चालान की एक प्रति प्रस्तुत करें ताकि आयुक्त, राज्य कर, उत्तर प्रदेश को सूचित किया जा सके।

3. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता, सहारनपुर में जी.एन.जी. मल्टीप्लेक्स नामक एक सिनेमा हॉल चला रहा था, जिसका निर्माण याचिका के अनुलग्नक संख्या 3 में दिए गए दिनांक 05.03.2008 के साझेदारी विलेख की शर्तों और नियमों के अनुसार साझेदारी फर्म द्वारा किया गया था। उसे लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा उक्त जी.एन.जी. मल्टीप्लेक्स में ऑडी 1 से 4 सिनेमा हॉल चलाने का लाइसेंस प्रदान किया गया था।

4. राज्य सरकार ने दिनांक 03.01.2011 को एक शासनादेश जारी किया था, जिसके तहत पूर्व के शासनादेशों और प्रोत्साहन योजना, 2005 के स्थान पर, राज्य सरकार ने राज्य में मल्टीप्लेक्स सिनेमा हॉल खोलने के उद्देश्य से वर्ष 2010 के लिए नई प्रोत्साहन योजना शुरू की थी। यह प्रोत्साहन योजना 2010 31.03.2015 से प्रभावी थी। उक्त योजना 2010 के अनुसार, इस योजना का लाभ इस अवधि के दौरान निर्मित उन सभी मल्टीप्लेक्स को मिलेगा, जिन्होंने उत्तर प्रदेश सिनेमा नियम, 1951 में दिए गए नियमों के तहत लाइसेंसिंग प्राधिकारी से निर्माण हेतु पूर्व अनुमति प्राप्त करने के बाद मल्टीप्लेक्स का निर्माण पूरा कर लिया है और 31.3.2015 तक सिनेमा प्रदर्शन हेतु लाइसेंस प्राप्त कर लिया है। तथापि, जिन आवेदकों ने शासनादेश दिनांक 27.09.2005 की योजना से प्रभावित होकर, उत्तर प्रदेश सिनेमा नियमावली, 1951 के प्रावधानों के अंतर्गत जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति प्राप्त कर मल्टीप्लेक्स का निर्माण कार्य प्रारंभ कर दिया है, परंतु 31.3.2010 तक मल्टीप्लेक्स के सिनेमा हॉलों में फिल्मों के सार्वजनिक प्रदर्शन हेतु लाइसेंस प्राप्त नहीं कर पाए हैं, ऐसे मल्टीप्लेक्स, जिन्होंने 31.3.2011 तक प्रदर्शन हेतु लाइसेंस प्राप्त कर लिया है, उन्हें भी इस शासनादेश में उल्लिखित अन्य शर्तों के अनुपालन पर, इसके पैरा-2 में उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार इस योजना का लाभ दिया जाएगा।

5. याचिकाकर्ता, एक साझेदारी फर्म, जो स्वयं को सहारनपुर स्थित जीएनजी मल्टीप्लेक्स की ऑडी 1 से 4 का लाइसेंसधारी होने का दावा करती है, ने लाइसेंसिंग प्राधिकरण/जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर के समक्ष उपरोक्त शासनादेश दिनांक 03.01.2011 के अनुसार एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे लाइसेंसिंग प्राधिकरण अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर द्वारा स्वीकार कर लिया गया और याचिकाकर्ता को 5 वर्ष की अवधि के लिए अर्थात् 31.03.2020 तक कुछ नियमों और शर्तों पर 20.07.2015 के आदेश द्वारा 8,88,74,933.40 रुपये की अनुदान सहायता राशि स्वीकृत की गई।

6. याचिकाकर्ता के अनुसार, उन्होंने वित्तीय वर्ष 2020-21 के लिए लाइसेंस के नवीनीकरण हेतु 29.02.2020 को आवेदन प्रस्तुत किया और 21.03.2020 को लाइसेंसिंग प्राधिकरण/जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर के समक्ष ऑडी 1 से 4 के लिए लाइसेंस नवीनीकरण शुल्क अर्थात् 2,40,000/- रुपये भी जमा किए। हालाँकि, कोविड-19 महामारी के कारण, जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर ने सभी मल्टीप्लेक्स सिनेमा हॉल को 16.03.2020 से 31.03.2020 तक बंद करने का निर्देश दिया, जिसे 02.04.2020 तक बढ़ा दिया गया। याचिकाकर्ता के अनुसार, बंद करने का निर्देश 15.10.2020 तक जारी रहा और उसके बाद राज्य सरकार द्वारा सिनेमा हॉल और मल्टीप्लेक्स सहित कुछ गतिविधियों को खोलने के लिए एक मानक संचालन प्रक्रिया (एसओपी) जारी की गई। इसके अलावा, वाणिज्य कर अधिकारी/प्रभारी अधिकारी (पूर्ववर्ती मनोरंजन कर), सहारनपुर ने भी सभी लाइसेंसधारियों को दिनांक 07.10.2020 को एक सामान्य आदेश जारी किया है, जिसमें उन्हें 14.10.2020 तक अनुपालन रिपोर्ट सहित सभी औपचारिकताएँ पूरी करने का निर्देश दिया गया है।

7. जाहिर है, याचिकाकर्ता ने लाइसेंस के नवीनीकरण और सहायता अनुदान के लिए दिनांक 14.10.2020 को एक आवेदन भी दायर किया था। याचिकाकर्ता का प्रकरण यह है कि यद्यपि राज्य सरकार ने 15.10.2020 को 50% बैठने की क्षमता के साथ मल्टीप्लेक्स खोलने के लिए मानक संचालन प्रक्रिया "एस.ओ.पी." जारी की थी, हालाँकि, चूँकि फिल्म उद्योग ने उस कोविड-19 अवधि के दौरान दुनिया भर में अपना व्यवसाय बंद कर दिया था, इसलिए कोई नई फिल्म रिलीज़ नहीं हुई और दुर्भाग्य से, जिला मजिस्ट्रेट ने सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना, याचिकाकर्ता के खिलाफ दिनांक 05.02.2021 को एक आदेश पारित किया, जो 03.10.2011 के सरकारी आदेश में उल्लिखित शर्तों के उल्लंघन से संबंधित था और परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को 4,37,50,359.00 रुपये जमा/वापस करने का निर्देश दिया, जो स्वीकृत 1,000 रुपये की अनुदान सहायता राशि के बाद प्राप्त संचयी राशि थी। 2,89,64,466/- और 18% ब्याज सहित कुल 1,47,85,893/- रुपये। इस अंतराल में, याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश सिनेमैटोग्राफ नियम, 1951 के तहत विद्युत निरीक्षक से 25.03.2021 को, स्वास्थ्य चिकित्सा अधिकारी से 21.03.2021 को और क्षेत्रीय अग्निशमन अधिकारी से 01.04.2021 को अपेक्षित अनुपालन प्रमाण पत्र प्राप्त करने में भी सक्षम रहा, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता के ऑडी 1 से 4 के लाइसेंस का नवीनीकरण 05.04.2021 से प्रभावी और 31.03.2024 तक वैध हो गया।

8. याचिकाकर्ता ने, यह स्वीकार किया कि, जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर द्वारा पारित उपरोक्त आदेश दिनांक 05.02.2021 का विरोध नहीं किया, हालाँकि, उसने दिनांक 05.02.2021 के आदेश के विरुद्ध दिनांक 03.12.2021 को एक अभ्यावेदन दायर किया। तत्पश्चात्, उप सचिव, राज्य उत्तर प्रदेश ने संबंधित वाणिज्य कर विभाग, उत्तर प्रदेश से समय-समय पर विभिन्न रिपोर्टें माँगी थीं।

9. याचिकाकर्ता के निवेदन का आधार यह है कि यद्यपि, प्रकरण सक्रिय रूप से विचाराधीन था, तथापि, अचानक दिनांक 24.04.2023 का आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया संयुक्त सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा, जिसमें आयुक्त, राज्य कर, उत्तर प्रदेश को निर्देश दिया गया है कि वे प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत आने

वाले सीएनजी मल्टीप्लेक्स सहारनपुर के विरुद्ध जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर द्वारा दिनांक 05.02.2021 को पारित वसूली आदेश के अनुसार 10% राशि जमा करने के संबंध में आवश्यक कार्रवाई करें; प्रकरण की पुनः जाँच करें; और अपनी स्पष्ट रिपोर्ट सरकार को प्रदान करें, जिसके परिणामस्वरूप, जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 26.05.2023 का आदेश पारित किया है, जिसमें याचिकाकर्ता को निर्देश दिया गया है कि वह अनुदान सहायता राशि और ब्याज की 10% राशि (4,37,50,359/- रुपये) अर्थात् 40,75,035.90 रुपये जीएसटी खाते में दिनांक 05.02.2021 के आदेश के अनुसरण में एक सप्ताह के भीतर जमा करें और चालान की एक प्रति प्रस्तुत करें ताकि आयुक्त, राज्य कर, उत्तर प्रदेश को सूचित किया जा सके। वर्तमान रिट याचिका में दिनांक 24.04.2023 और 26.05.2023 के इन्हीं आदेशों का आलोचना की गई है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि इससे पहले, दिनांक 05.02.2021 के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने विभिन्न आधारों पर लाइसेंसिंग प्राधिकारी/ जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर के समक्ष दिनांक 03.12.2021 को एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जो दिसंबर, 2021 से राज्य सरकार के समक्ष लंबित है और याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन के संबंध में विभिन्न रिपोर्ट भी मांगी गई है, हालाँकि, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर कोई निर्णय लिए बिना, अचानक, संयुक्त सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य ने, दिनांक 24.04.2023 के आक्षेपित आदेश के तहत, आयुक्त (राज्य कर), उत्तर प्रदेश सरकार को, दिनांक 05.02.2021 के वसूली आदेश के अनुसरण में 10% राशि जमा करने हेतु कार्रवाई करने का निर्देश दिया, जिसके परिणामस्वरूप, जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर ने परिणामी आदेश दिनांक 05.02.2021 जारी किया है। 26.05.2023. निवेदन यह है कि यह अभ्यावेदन दिसंबर, 2021 से राज्य सरकार के समक्ष लंबित था और राज्य सरकार द्वारा पारित 24.04.2023 के आदेश के अनुसरण में जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर द्वारा पारित 26.05.2023 का आक्षेपित आदेश, जिसमें तीन वर्ष बाद 10% राशि जमा करने की मांग की गई थी, मनमाना और बिना किसी कानूनी आधार के है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, सभी लाइसेंसों के नवीनीकरण के लिए समय पर आवेदन किया गया था और अचानक आदेश पारित करने का कोई कारण नहीं था क्योंकि अभ्यावेदन 3 वर्षों से अधिक समय से सक्षम प्राधिकारी के पास विचाराधीन था।

11. दूसरी ओर, राज्य के स्थायी अधिवक्ता ने, यद्यपि वर्तमान रिट याचिका के तथ्यों और घटनाओं पर कोई विवाद नहीं किया, परंतु जिस तरह से याचिकाकर्ता द्वारा वसूली की कार्यवाही को रोकने का प्रयास किया जा रहा है, उस पर कड़ी आपत्ति जताई है। उनके अनुसार, याचिकाकर्ता समझौते के पैरा-7 में उल्लिखित शर्त का स्पष्ट उल्लंघन कर रहा है और पाँच वर्षों तक अनुदान सहायता के क्रम में मल्टीप्लेक्स चलाने में विफल रहा है। उनके अनुसार, याचिकाकर्ता ने 15.10.2020 से 15.04.2021 तक मल्टीप्लेक्स को बंद कर दिया और विभाग को भारी राजस्व हानि पहुँचाई। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता कृषि मंत्री, मुख्यमंत्री सहित विभिन्न अधिकारियों को आईजीआरएस, भारतीय उद्योग संघ आदि के माध्यम से अभ्यावेदन भेज रहा है, केवल विभाग पर दबाव बनाने और अंततः उनके खिलाफ वसूली की कार्यवाही में देरी करने के लिए।

12. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों को ध्यान में रखते हुए और वर्तमान रिट याचिका में हमारे समक्ष उपलब्ध अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, यह न्यायालय यह पाता है कि यद्यपि मनोरंजन कर में रियायत अर्थात सहायता अनुदान स्वीकृत होने और याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त होने की घटनाओं से संबंधित कोई विवाद नहीं है, तथापि, उक्त रियायत की शर्तों के उल्लंघन के मुद्दे से संबंधित पक्षों के बीच एक गंभीर विवाद है।

13. यह स्वीकार किया जाता है कि विपक्षी पक्ष संख्या 3/लाइसेंसिंग प्राधिकारी ने उक्त सरकारी आदेश दिनांक 03.01.2011 में निहित अधिकारों का प्रयोग करते हुए रियायत को रद्द कर दिया है और दिनांक 05.02.2021 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता से 18 प्रतिशत की दर से ब्याज सहित पूरी राशि वापस करने की मांग की है, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 03.12.2021 को प्रस्तुत अभ्यावेदन लंबित है। दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हैं कि उक्त अभ्यावेदन सक्रिय रूप से विचाराधीन है, हालाँकि, याचिकाकर्ता प्रतिपक्ष संख्या 1 और 3 द्वारा क्रमशः 24.04.2023 को आक्षेपित आदेश और 26.05.2023 को परिणामी आदेश जारी करने के तरीके पर विवाद करता है, जिसमें याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर पुनर्विचार हेतु एक पूर्व शर्त के रूप में, सहायता अनुदान की वापसी के रूप में मांगी गई कुल राशि का 10% जमा करने की मांग की गई है।

14. चूँकि लाइसेंसिंग प्राधिकरण/जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर द्वारा याचिकाकर्ता को स्वीकृत अनुदान सहायता को रद्द करने का दिनांक 05.02.2021 का आदेश चुनौती का विषय नहीं है, इसलिए यह न्यायालय उक्त रद्दीकरण आदेश के गुण-दोष पर टिप्पणी करने से बचता है। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता केवल अभ्यावेदन के निपटान की शर्त के रूप में कुल वापसी राशि के 10% की मांग से व्यथित है। यह न्यायालय पाता है कि सुनवाई के लिए पूर्व शर्त के रूप में मांगी गई राशि के एक हिस्से की मांग या जमा करने की अवधारणा कर कानूनों या उस प्रकरण के लिए सामान्य कानूनों के तहत असामान्य नहीं है, जैसा कि हमारे पास उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (कृपया अधिनियम की धारा 19 या धारा 51 का प्रावधान देखें) या रेरा अधिनियम, 2016 (कृपया अधिनियम की धारा 43(5) देखें) में है। हालाँकि, अधिकांश प्रकरण में, जैसा कि आयकर कानूनों, जीएसटी कानूनों या सीमा शुल्क कानूनों के तहत प्रचलित है, सुनवाई के लिए ये पूर्व शर्त मूल रूप से अपीलीय मंच के स्तर पर होती है, न कि मूल न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के समक्ष। इसके अलावा, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अपील की सुनवाई के लिए मांगी गई धनराशि का एक हिस्सा जमा करने की ये शर्तें विशिष्ट कानून के अंतर्गत पाई जाती हैं, उदाहरण के लिए, हमारे पास आयकर अधिनियम की धारा 254, सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 129 ई या केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 35 एफ या सी.जी.एस.टी. अधिनियम, 2017 की धारा 107(6) या धारा 112(8) के तहत पूर्व-जमा के लिए विशिष्ट धाराएँ हैं। इस प्रकार, इस सादृश्य से यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सुनवाई के लिए पूर्व-शर्त के रूप में मांगी गई धनराशि के एक हिस्से की मांग स्वयं कानून से उत्पन्न होती है और सभी मामलों में उक्त पूर्व-शर्त अपीलीय चरण में लगाई जाती है, अर्थात वह समय जब शुल्क या मांग पर मूल प्रशासनिक या अर्ध-न्यायिक निकाय द्वारा निर्णय लिया जाता है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मांग अस्थिर अवस्था में नहीं होती है।

15. वर्तमान प्रकरण में, यह न्यायालय यह पाता है कि याचिकाकर्ता को प्रदान की गई कुल अनुदान सहायता रियायत का 10%, अभ्यावेदन की सुनवाई के लिए जमा करने की मांग न तो कानून में स्थापित है और न ही यह अपीलीय चरण में है। विद्वान स्थायी अधिवक्ता कानून के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं बता पा रहे हैं जिसके तहत राज्य सरकार/प्रतिपक्ष संख्या 1 ने याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन के निपटान के लिए पूर्व-जमा राशि की मांग की हो। इसके अलावा, यह न्यायालय अप्रैल, 2023 के विलंबित चरण में उक्त पूर्व-जमा राशि की मांग करने में प्रतिपक्ष पक्षों के आचरण की सराहना करने में असमर्थ है, खासकर जब अभ्यावेदन दिसंबर, 2020 से लंबित था।

16. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय का मानना है कि दिनांक 24.04.2023 का आक्षेपित आदेश और दिनांक 26.05.2023 का परिणामी आदेश, जिसमें कुल अनुदान सहायता राशि का 10% जमा करने की मांग की गई थी, क्रमशः प्रतिपक्ष संख्या 1 और 3 द्वारा, बिना किसी तर्क के या याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना पारित किया गया है। इस न्यायालय को इस विषय पर विभिन्न न्यायदृष्टांतों का बोझ डालने की आवश्यकता नहीं है कि तर्क किसी भी न्यायिक या प्रशासनिक आदेश की आत्मा और पहचान है और निष्पक्ष प्रक्रिया का एक हिस्सा है। इतना कहना ही पर्याप्त है कि **क्रांति एसोसिएट्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान** : (2010) 9 एससीसी 496 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने, किसी प्राधिकारी द्वारा, चाहे वह प्रशासनिक, अर्ध-न्यायिक या न्यायिक हो, तर्कपूर्ण आदेश पारित करने की आवश्यकता पर विचार करते हुए, इस संबंध में पूर्व विधि घोषणाओं को लागू करने के बाद, संक्षेप में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है:-

“...उपरोक्त चर्चा का सारांश देते हुए, यह न्यायालय का मानना है:

क. प्रदर्शित किया जाए कि संबंधित कारकों पर निष्पक्ष रूप से विचार किया गया है। यह न्याय प्रणाली में वादियों के विश्वास को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

ख. एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण को अपने निष्कर्षों के समर्थन में कारण दर्ज करने चाहिए।

ग. कारणों को दर्ज करने पर ज़ोर देने का उद्देश्य न्याय के व्यापक सिद्धांत की पूर्ति करना है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि ऐसा प्रतीत भी होना चाहिए कि न्याय किया गया है।

घ. कारणों को दर्ज करना न्यायिक और अर्ध-न्यायिक या प्रशासनिक शक्ति के किसी भी संभावित मनमाने प्रयोग पर एक वैध प्रतिबंध के रूप में भी कार्य करता है।

ड. कारण यह आश्वस्त करते हैं कि निर्णयकर्ता द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग प्रासंगिक आधारों पर और बाह्य विचारों की उपेक्षा करके किया गया है।

च. तर्क वस्तुतः निर्णय लेने की प्रक्रिया का उतना ही अनिवार्य घटक बन गए हैं जितना कि न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और यहाँ तक कि प्रशासनिक निकायों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना।

छ. कारण उच्च न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं।

ज. कानून के शासन और संवैधानिक शासन के प्रति प्रतिबद्ध सभी देशों में चल रही न्यायिक प्रवृत्ति प्रासंगिक तथ्यों पर आधारित तर्कसंगत निर्णयों के पक्ष में है। यह वस्तुतः न्यायिक निर्णय लेने का जीवन रक्त है जो इस सिद्धांत को सही ठहराता है कि तर्क न्याय की आत्मा है।

झ. न्यायिक या यहाँ तक कि अर्ध-न्यायिक राय इन दिनों उतनी ही भिन्न हो सकती हैं जितने कि उन्हें देने वाले न्यायाधीश और प्राधिकारी। ये सभी निर्णय एक ही उद्देश्य पूरा करते हैं और वह है तर्क द्वारा यह प्रदर्शित करना कि संबंधित कारकों पर वस्तुनिष्ठ रूप से विचार किया गया है। यह न्याय प्रणाली में वादियों के विश्वास को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

ञ. तर्क पर जोर न्यायिक जवाबदेही और पारदर्शिता दोनों के लिए आवश्यक है।

ट. यदि कोई न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी अपनी निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है, तो यह जानना असंभव है कि निर्णय लेने वाला व्यक्ति पूर्ववर्ती सिद्धांत के प्रति या वृद्धिवाद के सिद्धांतों के प्रति वफादार है या नहीं।

ठ. निर्णयों के समर्थन में तर्क ठोस, स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। तर्कों या 'रबर-स्टाम्प कारणों' का दिखावा किसी वैध निर्णय लेने की प्रक्रिया के बराबर नहीं होना चाहिए।

ड. इसमें कोई संदेह नहीं है कि पारदर्शिता न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग पर लगाम लगाने के लिए अनिवार्य शर्त है। निर्णय लेने में पारदर्शिता न केवल न्यायाधीशों और निर्णयकर्ताओं को गलतियों की संभावना कम करती है, बल्कि उन्हें व्यापक जाँच के अधीन भी बनाती है। (डेविड शापिरो द्वारा न्यायिक स्पष्टता की रक्षा (1987) 100 हार्वर्ड लॉ रिव्यू 731-737 देखें)।

ढ. चूँकि कारण दर्ज करने की आवश्यकता निर्णय लेने में निष्पक्षता के व्यापक सिद्धांत से उत्पन्न होती है, इसलिए उक्त आवश्यकता अब वस्तुतः मानवाधिकारों का एक घटक बन गई है और इसे स्ट्रासबर्ग न्यायशास्त्र का हिस्सा माना जाता था। देखें (1994) 19 ई.एच.आर.आर. 553, 562 पैरा 29 और आन्या बनाम ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, 2001 ई.डब्ल्यू.सी.ए. सी.आई.वी. 405, जिसमें न्यायालय ने यूरोपीय मानवाधिकार सम्मेलन के अनुच्छेद 6 का उल्लेख किया है, जिसमें न्यायिक निर्णयों के लिए पर्याप्त और विवेकपूर्ण कारण दिए जाने की आवश्यकता है।

ग. सभी सामान्य विधि क्षेत्राधिकारों में, निर्णय भविष्य के लिए मिसाल कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए, विधि के विकास के लिए, निर्णय के लिए कारण बताने की आवश्यकता अत्यंत आवश्यक है और वस्तुतः यह उचित प्रक्रिया का एक हिस्सा है।

17. इसके अलावा, इस न्यायालय का मानना है कि प्रतिपक्ष संख्या 1 और 3 ने आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले, सहायता अनुदान का 10% जमा करने की मांग की थी, याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया। इस पहलू पर कोई विवाद नहीं है कि सहायता अनुदान के 10% के भुगतान की मांग से नागरिक परिणाम उत्पन्न होते हैं और याचिकाकर्ता के अधिकारों को गंभीर नुकसान पहुँचता है। किसी भी स्थिति में, सुनवाई का अवसर "प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत" का एक सबसे महत्वपूर्ण घटक है। उच्चतम न्यायालय ने **धर्मपाल सत्यपाल लिमिटेड बनाम सीसीई : (2015) 8 एससीसी 519 : 2015 एससीसी ऑनलाइन एससी 489 पृष्ठ 537 में निम्नलिखित निर्णय दिया है:**

“35. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी निर्णय को लेने से पहले सुनवाई का अवसर प्रदान करना अदालती कार्यवाही में एक बुनियादी आवश्यकता मानी जाती थी। बाद में, इस सिद्धांत को अन्य अर्ध-न्यायिक प्राधिकरणों और अन्य न्यायाधिकरणों पर भी लागू किया गया और अंततः अब यह स्पष्ट रूप से निर्धारित हो गया है कि प्रशासनिक कार्यों में भी, जहाँ प्राधिकरण के निर्णय के परिणामस्वरूप दीवानी परिणाम हो सकते हैं, निर्णय लेने से पहले सुनवाई आवश्यक है।”

18. जैसा भी हो, यह एक सामान्य कानून है कि किसी व्यक्ति के हित को नुकसान पहुँचाने वाला कोई भी आदेश, जिसके परिणामस्वरूप दीवानी परिणाम हो, सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित नहीं किया जा सकता। यह विरोधी पक्षों का प्रकरण नहीं है कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया था या वर्तमान प्रकरण ऐसा है जिसमें सुनवाई की सूचना से छूट दी जानी है। यह न्यायालय यह पाता है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 24.04.2023 के आक्षेपित आदेश और दिनांक 26.05.2023 के परिणामी आदेश पारित करने से पहले सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था, जिसके तहत याचिकाकर्ता को उनके अभ्यावेदन की सुनवाई के लिए पूर्व-जमा के रूप में 40,75,035.90 रुपये जमा करने का निर्देश दिया गया था। दिनांक 03.12.2021।

19. उपरोक्त के अनुक्रम में, प्रतिपक्ष संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 24.04.2023 का आक्षेपित आदेश और प्रतिपक्ष संख्या 3-जिला मजिस्ट्रेट, सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 26.05.2023 का परिणामी आदेश, विधि की दृष्टि में मान्य नहीं है और इस प्रकार इन्हें निरस्त किया जाता है। प्रतिपक्ष संख्या 1, 05.02.2021 के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दायर दिनांक 03.12.2021 के अभ्यावेदन पर विचार करेगा और उसे एक तर्कपूर्ण आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता से किसी भी पूर्व जमा राशि पर जोर दिए बिना, शीघ्रतापूर्वक, मान लीजिए, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर, निर्णय देगा।

20. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने किसी भी तरह से वर्तमान मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है और पक्षकारों के लिए यह खुला है कि वे अपने अधिकारों और दायित्वों, यदि कोई हों, को सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करें, जैसा कि कानून के तहत अनुमेय हो।

21. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2025) 3 ILRA 253

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल

रिट टैक्स संख्या 1022, 2021

साथ

रिट टैक्स संख्या 1019, 2021

साथ

रिट टैक्स संख्या 1020, 2021

साथ

रिट टैक्स संख्या 1021, 2021

साथ

रिट टैक्स संख्या 1023, 2021

मेसर्स जया ट्रेडर्स

...याचिकाकर्ता

बनाम

अपर आयुक्त ग्रेड-II एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: आदित्य पांडे

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

सिविल कानून - माल और सेवा कर अधिनियम, 2003-धारा 31 और 129- एक बार जब याचिकाकर्ता पश्चिम बंगाल/असम से दिल्ली तक माल की सच्ची/वास्तविक आवाजाही साबित करने में विफल हो जाता है, तो ज़बती की कार्यवाही को अनुचित नहीं कहा जा सकता- इसलिए, साथ में दिए गए कर चालान और अन्य दस्तावेजों को वास्तविक नहीं कहा जा सकता - संगठित कर चोरी का एक ज्वलंत उदाहरण - जीएसटी अधिनियम की धारा 129 - कोई भी व्यक्ति किसी भी माल का परिवहन - अधिनियम के उल्लंघन में - हिरासत में लिए जाने या ज़ब्त किए जाने के लिए उत्तरदायी - कर चालान अधिनियम की धारा 31 के अनुसार जारी किया जाना चाहिए, - नियम 138 का गलत फायदा उठाने के लिए जानबूझकर माल का कम मूल्यांकन किया हो, जो माल के साथ ई-वे बिल की आवश्यकता को समाप्त करता है - ज़बती की कार्यवाही को अनुचित नहीं कहा जा सकता।

डब्ल्यू.पी. खारिज. (ई-9)

उद्धृत प्रकरणों की सूची:

1. एस.के. ट्रेडिंग कंपनी एवं अन्य बनाम अतिरिक्त आयुक्त ग्रेड-2 (अपील) एवं अन्य (रिट कर सं. 1464/2022)
2. मेसर्स माँ आबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, तटस्थ उद्धरण सं. 2024: एएचसी: 158372-डीबी
3. मेसर्स शंभू सरन अग्रवाल एंड कंपनी बनाम अपर आयुक्त ग्रेड-2, तटस्थ उद्धरण संख्या 2024: एएचसी:15975।
4. के.पी. सुगंध लिमिटेड बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2020 एनटीएन (खंड 74) 372
5. बेस्ट सेलर्स (कोचीन) प्राइवेट लिमिटेड बनाम सहायक राज्य कर अधिकारी, 2021 एनटीएन (खंड 75) -360
6. समीर मैट इंडस्ट्रीज एंड अन्य बनाम केरल राज्य एंड अन्य, 2018 एनटीएन (खंड 66) -69
7. मेसर्स घाटा मेहंदीपुर बालाजी ग्राइंडिंग वर्क्स प्रा. लिमिटेड बनाम आयुक्त वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ (व्यापार कर संशोधन संख्या 15, 2014) 25.3.2014 को निर्णीत
8. सेंट ऑफ कर्ण बनाम मेसर्स ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड (सिविल अपील संख्या 230, 2023) 13.3.2023 को निर्णीत
9. मेसर्स शिव ट्रेडिंग बनाम सेंट ऑफ उत्तर प्रदेश एवं अन्य (रिट कर संख्या 1421, 2022) 28.11.2023 को निर्णीत
10. मेसर्स राधा फ्रेगरेंस बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य (रिट कर संख्या 427, 2019)
11. शक्ति ट्रेडिंग कंपनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट टैक्स संख्या 756/2011) 24.5.2011 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य पांडे और राज्य प्रत्यार्थियों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री रवि शंकर पांडे को सुना गया।
2. सभी रिट याचिकाओं में समान विवाद शामिल है, अतः, पक्षों की सहमति से, पूर्वोक्त सभी रिट याचिकाओं का निर्णय एक सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है, जिसमें रिट कर संख्या 1022/2021 को प्रमुख प्रकरण माना गया है।

रिट कर संख्या 1022/2021

3. इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता अधिवक्ता संख्या 1 द्वारा अपील संख्या जी.एस.टी. /110/2020-21 (वित्त वर्ष 2021-22) में आई.जी.एस. टी/सीजीएसटी अधिनियम की धारा 129 (3) के अंतर्गत पारित दिनांक 25.10.2021 के आदेश का विरोध कर रहा है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता एक स्वामित्व वाली फर्म है जिसका जी.एस.टी.आई.इन. क्रमांक 18BPUPT4581B1ZB है और वह पान मसाला और सुगंधित तंबाकू के व्यापार में संलग्न है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि सामान्य व्यावसायिक प्रक्रिया में, याचिकाकर्ता को दिल्ली स्थित विभिन्न पंजीकृत डीलरों से पान मसाला और सुगंधित तंबाकू की आपूर्ति का आदेश प्राप्त हुआ है और उक्त आदेश के अनुसरण में दिनांक 15.9.2021 का कर चालान जारी किया गया था, जिस पर आई.जी.एस.टी और उपकर लगाया गया था। चूंकि माल का मूल्य निर्धारित सीमा से कम था, इसलिए ई-वे बिल जारी नहीं किया गया और दिनांक 15.9.2021 के कर चालान क्रमांक 41 से 45 के माध्यम से माल पश्चिम बंगाल/असम से नई दिल्ली पहुंचाया गया और आगे की यात्रा के दौरान इसे कानपुर में ट्रांसशिप किया गया जहाँ इसे रोक लिया गया। ट्रक चालक का बयान दर्ज किया गया जिसमें उसने बताया कि माल कानपुर से लोड किया गया था और उक्त आधार पर, कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिस पर याचिकाकर्ता ने अपना जवाब प्रस्तुत किया कि अधिनियम के तहत निर्धारित क्रॉसिंग चालान माल के साथ था, जिससे पता चलता है कि माल दिल्ली की आगे की यात्रा के दौरान कानपुर में ट्रांसशिप किया गया था और चूंकि माल का मूल्य 50,000 रुपये से कम था, इसलिए माल के साथ ई-वे बिल की आवश्यकता नहीं थी, इसलिए कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती। उसने तर्क दिया कि माल को कम मूल्यांकन के आधार पर जब्त किया गया था, जो कि हिरासत में लेने/जब्ती करने वाले प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। उसने तर्क दिया कि दंड आदेश के विरुद्ध एक अपील दायर की गई थी, जिसे अभिलेख में मौजूद सामग्री पर विचार किए बिना खारिज कर दिया गया है।

5. उनका तर्क है कि अधिकारियों ने कुछ तथ्यों को गलत समझा है, जो अभिलेख से परे हैं। अधिनियम की धारा 129 के तहत ज़बती की कार्यवाही में, अधिकारी कम मूल्यांकन के आधार पर माल को ज़ब्त नहीं कर सकते।

6. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय के निम्नलिखित प्रकरण में दिए गए निर्णयों का हवाला दिया:-

(i) मेसर्स एस.के. ट्रेडिंग कंपनी एवं अन्य बनाम अपर आयुक्त ग्रेड-2 (अपील) एवं अन्य (रिट कर संख्या 1464/2022) 16.3.2023 को निर्णीत,

(ii) मेसर्स माँ आबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, तटस्थ उद्धरण संख्या 2024: एचसी: 158372 -डीबी

(iii) मेसर्स शंभू सरन अग्रवाल एवं कंपनी बनाम अपर आयुक्त ग्रेड-2, तटस्थ उद्धरण संख्या 2024:एचसी:15975।

7. उन्होंने अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णयों पर भी भरोसा किया:-

(i) छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, के.पी. सुगंध लिमिटेड बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2020 एनटीएन (खंड 74) 372 के प्रकरण में;

(ii) केरल उच्च न्यायालय ने बेस्ट सेलर्स (कोचीन) प्राइवेट लिमिटेड बनाम सहायक राज्य कर अधिकारी, 2021 एनटीएन (खंड 75) -360 और समीर मैट इंडस्ट्रीज एवं अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य, 2018 एनटीएन (खंड 66)-69 में यह आदेश दिया।

8. विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता आलोचना आदेश का समर्थन करते हैं और तर्क देते हैं कि यह केवल कर चोरी का प्रकरण है। उनका तर्क है कि माल को न केवल कम मूल्यांकन के आधार पर, बल्कि माल के साथ मौजूद गैर-वास्तविक दस्तावेजों के आधार पर भी रोका और जब्त किया गया था। उनका तर्क है कि माल के साथ मौजूद दस्तावेजों के अवलोकन से पता चलता है कि माल की आवाजाही पश्चिम बंगाल/असम से दिल्ली के लिए शुरू हुई थी, लेकिन वाहन चालक का कथन था कि माल कानपुर से लोड किया गया था।

9. उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता इस न्यायालय के समक्ष भी कोई भी सामग्री अभिलेख पर लाने में विफल रहा है, जिससे यह साबित हो सके कि माल की वास्तविक आवाजाही पश्चिम बंगाल/असम से शुरू हुई थी। उन्होंने आगे दलील दी कि कार्यवाही के किसी भी चरण में न तो किसी ट्रक नंबर का उल्लेख किया गया है और न ही किसी टोल रसीद का उल्लेख/दिखाया गया है जिससे यह साबित हो सके कि माल की वास्तविक आवाजाही पश्चिम बंगाल/असम से हुई थी, हालाँकि जब वाहन को कानपुर में रोका गया तो भौतिक सत्यापन पर माल की आवाजाही वास्तविक नहीं पाई गई, इसलिए, कार्यवाही सही ढंग से शुरू की गई थी।

10. उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता पश्चिम बंगाल/असम से दिल्ली तक माल की आवाजाही को साबित करने के लिए कोई भी ठोस सबूत पेश करने में पूरी तरह विफल रहा है। उन्होंने आगे दलील दी कि चालक के बयान का कार्यवाही के किसी भी चरण में खंडन नहीं किया गया है।

11. अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान एसीएससी ने मेसर्स घाटा मेहंदीपुर बालाजी ग्राइंडिंग वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम वाणिज्य कर आयुक्त, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ (व्यापार कर संशोधन संख्या 15/2014) के प्रकरण में इस न्यायालय के दिनांक 25.3.2014 को दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है।

12. पूर्वोक्त दलील का खंडन करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि यह मानते हुए भी कि माल कानपुर से लोड किया गया था, फिर भी, कम मूल्यांकन के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

13. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की सुनवाई के पश्चात, न्यायालय ने अभिलेखों का अवलोकन किया है।

14. पक्षों द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि विचाराधीन माल टैक्स इनवॉयस और क्रॉस चालान के साथ था, लेकिन ट्रक चालक के इस कथन पर कि माल कानपुर से लोड किया गया था, कार्यवाही शुरू कर दी गई है। संलग्न दस्तावेज़ पश्चिम बंगाल/असम से दिल्ली तक माल की आवाजाही दर्शाते हैं, जबकि ट्रक चालक के कथन में माल कानपुर में लोड किया गया था। अभिलेख से यह भी पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने न तो कोई जवाब दिया और न ही ट्रक चालक द्वारा दिए गए कथन का खंडन किया।

15. यह भी स्वीकार किया जाता है कि विचाराधीन माल कानपुर में निर्मित किया गया था। माल के साथ दिए गए दस्तावेज़ की प्रामाणिकता साबित करने के लिए, याचिकाकर्ता को श्रृंखला पूरी करनी थी, अर्थात् वह ट्रक/वाहन नंबर जिस पर माल पश्चिम बंगाल/असम से लाया गया था, कानपुर तक की यात्रा के दौरान पार किए गए टोल प्लाजा की टोल रसीदें।

16. अभिलेख से यह भी पता चलता है कि याचिकाकर्ता पश्चिम बंगाल/असम से कानपुर तक माल की वास्तविक आवाजाही को अभिलेख में दर्ज करने में पूरी तरह विफल रहा है। दस्तावेज़ की प्रामाणिकता का दावा करने के लिए, याचिकाकर्ता का कर्तव्य था कि वह परिवहन के साधन का विवरण और साथ ही कानपुर तक माल के परिवहन के लिए प्रयुक्त वाहन का विवरण भी बताए। याचिकाकर्ता द्वारा कोई विवरण प्रस्तुत न किए जाने के कारण, कार्यवाही को अवैध नहीं कहा जा सकता।

17. अभिलेख से यह भी पता चलता है कि एमओवी-7 जारी करते समय, निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं, जिन्हें नीचे उद्धृत किया गया है:-

"वाहन चालक द्वारा दिये गये सशपथ बयान माल के भौतिक सत्यापन एवं प्रपत्रों की जांच के आधार पर निम्नलिखित प्रतिकूल बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण अपेक्षित है:- परिवहन के समय चेकिंग पर प्रस्तुत प्रपत्रों के अनुसार माल का परिवहन असम व पश्चिम बंगाल से दिल्ली हेतु किया जा रहा है जबकि वाहन चालक द्वारा सशपथ बयान में स्वीकार किया गया है कि प्रश्नगत माल उनके द्वारा दादानगर, कानपुर नगर से लोड किया गया है। उल्लेखनीय है कि भौतिक सत्यापन में प्रश्नगत माल गगन ब्रांड पान मसाला एवं सेन्टेड जर्दा के पाउच पर कानपुर के निर्माणकर्ता फर्म सर्वश्री गीन्सवर्थ इण्टरप्राइजेज प्रा० लि० (GSTIN-09AAJCG0608CIZZ) पता-C9.A/2. A-5 AND A-6 SIDE-1. PANKI INDUSTRIAL AREA, KANPUR NAGAR अंकित पाया गया है जिससे स्पष्ट है कि प्रश्नगत माल का निर्माण कानपुर में ही किया गया है। इस सम्बन्ध में माल

के परिवहन में प्रयुक्त वाहन की EWAY OFFICER APP पर VEHICLE PASSAGE DETAIL चेक किये जाने पर प्रक्रगत वाहन को इन तिथियों में पश्चिम बंगाल व असम से कानपुर आना प्रदर्शित नहीं पाया गया। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि कानपुर में निर्मित माल पान मसाला एवं सेन्टेड जर्दा को कानपुर से प्रश्नगत वाहन में लोड कर पश्चिम बंगाल एवं असम की फर्मों द्वारा जारी कूटरचित प्रपत्रों के आधार पर दिल्ली की फर्मों को आपूर्ति दिखाते हुए उत्तर प्रदेश माल एवं सेवा कर अधिनियम केन्द्रीय माल एवं सेवा कर अधिनियम एकीकृत माल एवं सेवाकर अधिनियम 2017 के सुसंगत प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए करापवंचन की मंशा से माल का परिवहन किया जा रहा है।"

(इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

18. इसके अलावा, एमओवी-6 में आदेश पारित करते समय निम्नलिखित निष्कर्ष नोट किए गए हैं:-

"8. माल के स्वामी द्वारा प्रस्तुत आपति का अवलोकन किया गया जिसे निम्न कारणों से स्वीकार/अस्वीकार किया जाता है। जारी नोटिस के क्रम में विक्रेता फर्म सर्वश्री जया ट्रेडर्स असम (GSTIN- 18BPUPT4581BIZB) के अधिकृत प्रतिनिधि श्री अमित कुमार पुत्र श्री राम गोपाल, निवासी- 133P/105, ट्रांसपोर्ट नगर, कानपुर नगर उपस्थित हुए एवं फर्म की तरफ से जारी अधिकार पत्र, फर्म का REG-06 एवं नोटिस का लिखित उत्तर दाखिल करते हुये 60 बैग गगन पान समाला एवं 15 बैग गगन सेन्टेड जर्दा माल के स्वामित्व का दावा प्रस्तुत किया। लिखित उत्तर के बिन्दु सं०-1 में विक्रेता फर्म द्वारा प्रश्नगत माल के स्वामित्व का दावा तो प्रस्तुत किया गया है, किन्तु नोटिस में उठाए गए बिन्दु कि प्रश्नगत माल कानपुर में ही निर्मित है एवं वाहन चालक के सशपथ बयान के अनुसार कानपुर से ही लोड किया गया है। के सम्बन्ध में कोई उत्तर दाखिल नहीं किया गया है। कानपुर में निर्मित माल को कानपुर से लोड कर असम में स्थित फर्म द्वारा दिल्ली की फर्म हेतु जारी इनवाइस के आधार पर माल को परिवहित क्यों किया जा रहा है, इस बिन्दु पर उत्तर प्रस्तुतकर्ता मौन हैं, जो कि प्रश्नगत फर्म के कानपुर के नॉन बोनाफाईड डीलर के साथ दुस्मि संधि कर छप/कूटरचित प्रपत्रों का प्रयोग करते हुए करापवंचन की मंशा से माल का परिवहन किए जाने की पुष्टि करता है। दाखिल उत्तर के बिन्दु सं०-2 में कहा गया है कि माल प्रपत्रों के अनुसार है एवं कोई भिन्नता नहीं है। जारी नोटिस में इंगित तथ्य कि प्रश्नगत माल के भौतिक सत्यापन में माल के कानपुर की निर्माणकर्ता फर्म सर्वश्री ग्रीन्सवर्थ इण्टरप्राइजेज प्रा०लि० (GSTIN- 09AAJCG0608CIZZ) पता-C9, A/2, A-5 AND A-6 SIDE-1, PANKI INDUSTRIAL AREA, KANPUR NAGAR द्वारा निर्मित होने तथा माल को कानपुर से ही लोड किये जाने के तथ्य, के साथ यह भी इंगित किया गया है कि प्रश्नगत प्रकरण में सुनियोजित ढंग से वास्तविक मूल्य से कम मूल्य घोषित करते हुए कुछ इस प्रकार टैक्स इनवाइस जारी की जा रही है कि क्रेता फर्म को ₹ 50000.00 मूल्य से अधिक मूल्य के माल की आपूर्ति भी हो जाए एवं सी०जी०एस०टी० रूल 2017 के नियम 138 के प्रावधानों का उल्लंघन भी न होने पाए। अतः माल की मात्रा तो प्रपत्रों के अनुसार अवश्य है, किन्तु प्रपत्रों में की गई घोषणा के विपरीत न तो प्रश्नगत माल को असम से लोड किया गया है एवं न ही प्रश्नगत माल प्रस्तुत टैक्स इनवाइस के मूल्य से आच्छादित है। इस प्रकार के छद्म कूटरचित प्रपत्रों की रचना करते हुए प्रश्नगत वाहन में लोड माल की मात्रा भी प्रपत्रों के अनुसार सुनिश्चित करना विक्रेता फर्म की करापवंचना की विधि (MODUS OPERANDI OF

TAX EVASION) को स्पष्ट करता है तथा उनके द्वारा यू०पी०जी०एस०टी० सी०जी०एस०टी० एक्ट 2017 के सुसंगत प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए करापवंचन की मंशा को प्रमाणित करता है।"
(Emphasis supplied by this Court)

19. अभिलेख यह भी दर्शाता है कि प्रत्यर्थी प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों का याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील में विशेष रूप से विरोध नहीं किया गया है। रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 5 में संलग्न अपील के आधारों, जो पैराग्राफ संख्या 1 से 20 तक हैं, के अवलोकन से पता चलता है कि किसी भी आधार में, यह बताने के लिए वाहन या परिवहन के साधन का कोई विवरण नहीं दिया गया है कि माल पश्चिम बंगाल/असम से कानपुर कैसे ले जाया गया। चूंकि अपील में याचिकाकर्ता के विरुद्ध दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों का विरोध नहीं किया गया है, इसलिए कार्यवाही को किसी भी तरह से अवैध या मनमानी नहीं कहा जा सकता है।

20. याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि कार्यवाही केवल कम मूल्यांकन के आधार पर अवैध है, लेकिन वर्तमान प्रकरण में, माल को न केवल कम मूल्यांकन के आधार पर रोका और जब्त किया गया, बल्कि ट्रक चालक के इस बयान पर भी कि माल कानपुर से लोड किया गया था, जबकि माल के साथ मौजूद दस्तावेजों से पता चलता है कि इसे पश्चिम बंगाल/असम से ले जाया जा रहा था।

20. याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि कार्यवाही केवल कम मूल्यांकन के आधार पर अवैध है, लेकिन वर्तमान प्रकरण में, माल को न केवल कम मूल्यांकन के आधार पर रोका और जब्त किया गया, बल्कि ट्रक चालक के इस बयान पर भी कि माल कानपुर से लोड किया गया था, जबकि माल के साथ मौजूद दस्तावेजों से पता चलता है कि इसे पश्चिम बंगाल/असम से ले जाया जा रहा था।

21. कर निर्धारण अधिनियम के तहत, मूल कार्यवाही या संक्षिप्त कार्यवाही में, प्राथमिक भार करदाता द्वारा अभिलेख पर ठोस सामग्री लाकर पूरा किया जाना है। पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही या बाद की कार्यवाही में, जो मूल कार्यवाही नहीं है, साक्ष्य का भार विभाग पर ही स्थानांतरित होता है। दूसरे शब्दों में, मूल कार्यवाही में करदाता अपने दावे के समर्थन में सामग्री अभिलेख पर लाने के लिए बाध्य है, लेकिन बाद की कार्यवाही में, अर्थात् पुनर्मूल्यांकन कार्यवाही में, भार राजस्व पर स्थानांतरित हो जाता है।

22. वर्तमान प्रकरण में, याचिकाकर्ता पश्चिम बंगाल/असम से कानपुर होते हुए दिल्ली तक माल के परिवहन के लिए कोई भी ठोस सबूत अभिलेख पर लाने में पूरी तरह विफल रहा है। चूंकि याचिकाकर्ता पश्चिम बंगाल/असम से दिल्ली तक माल की वास्तविक/वास्तविक आवाजाही साबित करने में विफल रहा है, इसलिए ज़ब्ती की कार्यवाही को अनुचित नहीं कहा जा सकता।

23. माननीय उच्चतम न्यायालय ने कर्नाटक राज्य बनाम मेसर्स ईकॉम गिल कॉफ़ी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड (सिविल अपील संख्या 230/2023) के प्रकरण में, जिसका निर्णय 13.3.2023 को हुआ था, यह माना है कि अपने दावे को संदेह से परे साबित करने का दायित्व डीलर पर है। इसके अलावा, उच्चतम न्यायालय ने उक्त निर्णय में इस बात पर जोर दिया है कि यदि डीलर किसी छूट का दावा कर रहा है, तो लेन-देन की वास्तविकता साबित करने का दायित्व लाभ का दावा करने वाले व्यक्ति पर है। इस पृष्ठभूमि में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना है कि डीलर को माल की वास्तविक भौतिक आवाजाही साबित करनी होगी।

24. उक्त निर्णय के अनुसरण में, इस न्यायालय ने मेसर्स शिव ट्रेडिंग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट टैक्स संख्या 1421/2022) के प्रकरण में, जिसका निर्णय 28.11.2023 को हुआ था, यह माना है कि वास्तविक लेनदेन, माल की भौतिक आवाजाही और लेनदेन की वास्तविकता को संदेह से परे साबित और स्थापित करने का दायित्व आवश्यक है।

25. मेसर्स शिव ट्रेडिंग (पूर्वोक्त) में पारित उक्त निर्णय की पुष्टि उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष अपील अनुमति (सी) संख्या 3345/2024 में की गई है, जिसका निर्णय 12.2.2024 को हुआ था।

26. इस प्रकरण में, याचिकाकर्ता का कर्तव्य था कि वह पश्चिम बंगाल/असम से कानपुर होते हुए दिल्ली तक माल की वास्तविक भौतिक आवाजाही को संदेह से परे स्थापित करे, लेकिन याचिकाकर्ता ऐसा करने में विफल रहा है, इसलिए, साथ में दिए गए कर चालान और अन्य दस्तावेजों को असली नहीं कहा जा सकता। दूसरे शब्दों में, यह अधिनियम और नियमावली दोनों के उल्लंघन का स्पष्ट मामला है।

27. यह संगठित कर चोरी का एक ज्वलंत उदाहरण है। याचिकाकर्ता पश्चिम बंगाल/असम से माल की वास्तविक आवाजाही को दर्शाने के लिए कोई भी सामग्री अभिलेख में पेश करने में विफल रहा है। पश्चिम बंगाल/असम से कानपुर तक की यात्रा के दौरान ट्रक नंबर या टोल रसीद का विवरण किसी भी स्तर पर दर्ज नहीं किया गया है।

28. याचिकाकर्ता के विरुद्ध विभिन्न निष्कर्ष दर्ज किए गए हैं जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, लेकिन इस न्यायालय के समक्ष भी किसी भी स्तर पर उनका विरोध नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध दर्ज किए गए तथ्यों पर कोई आपत्ति नहीं की गई है और याचिकाकर्ता ने अपनी बुद्धिमत्ता से केवल कुछ अंश पर ही आपत्ति करने का निर्णय लिया है, अर्थात् कम मूल्यांकन के आधार पर, जब्ती को उचित नहीं ठहराया जा सकता।

29. अभिलेख से यह भी पता चलता है कि हिरासत के समय, ट्रक चालक ने बयान दिया था कि माल कानपुर से लोड किया गया था, जबकि साथ में दिए गए दस्तावेजों से पता चलता है कि माल पश्चिम बंगाल/असम से आ रहा था, इसलिए पहली बार में ही, याचिकाकर्ता को पश्चिम बंगाल/असम से माल की आवाजाही को दर्शाने

वाली सामग्री पेश करनी चाहिए थी। इसलिए, ट्रक चालक के बयान को, जो पहली बार में लिया गया था, अधिक मौलिकता दी जानी चाहिए।

30. इस न्यायालय ने मेसर्स घाटा मेहंदीपुर बालाजी ग्राइंडिंग वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड (पूर्वोक्त) के प्रकरण में निम्नलिखित निर्णय दिया है:-

"न्यायालय का मानना है कि न तो पुनरीक्षणवादी के पास कागजात उपलब्ध थे और न ही उन्हें उचित समय के भीतर प्रस्तुत किया गया। ड्राइवर के बयान, जो पहली बार में प्राप्त किए गए हैं, उन्हें बाद में प्रबंधकों और मालिकों द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण की तुलना में अधिक मान्यता दी जानी चाहिए।"

31. अभिलेख से यह भी पता चलता है कि आदेश न केवल कम मूल्यांकन के आधार पर पारित किए गए हैं, बल्कि अन्यथा भी।

32. याचिकाकर्ता माल की वास्तविक आवाजाही को दर्शाने के लिए कोई भी ठोस सबूत अभिलेख में पेश करने में विफल रहा। चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा दावा की गई वास्तविक यात्रा साबित नहीं हुई, इसलिए कार्यवाही को अवैध या मनमानी नहीं कहा जा सकता।

33. जीएसटी अधिनियम की धारा 129 में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी माल का परिवहन करता है जब वह पारगमन में हो, तो इस अधिनियम या इसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, तो उक्त माल को रोका जा सकता है या जब्त किया जा सकता है।

34. जीएसटी अधिनियम के अंतर्गत, कर चालान अधिनियम की धारा 31 के अनुसार जारी किया जाना चाहिए, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि प्रत्येक पंजीकृत व्यापारी, जो कर योग्य वस्तुओं की आपूर्ति करता है, ऐसी वस्तुओं की आपूर्ति से पहले या हटाए जाने के समय, एक कर चालान जारी करेगा जिसमें वस्तुओं का विवरण, मात्रा और मूल्य, उस पर लगाया गया कर और ऐसे अन्य विवरण दर्शाए जाएंगे जो निर्धारित किए जा सकते हैं।

35. जीएसटी नियमों के नियम 46 (जे) और (के) में कर चालान में उल्लिखित विवरण भी निर्धारित किए गए हैं,

जैसे कि माल की आपूर्ति का कुल मूल्य और माल की आपूर्ति का कर योग्य मूल्य।

36. उक्त धाराओं और नियमों को ध्यान से पढ़ने पर, यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विधानमंडल का आशय यह है कि पंजीकृत व्यापारी **कर चालान पर माल का सही और सटीक मूल्य प्रस्तुत करेगा।** लेकिन माल का सही मूल्य घोषित न करने पर, मूल्यांकन के संदर्भ में दस्तावेज़ को उचित नहीं माना जाएगा। विधानमंडल ने

माल को जब्त करने की शक्ति प्रदान की है, यदि पारगमन में माल अधिनियम और उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों का उल्लंघन करता है।

37. नियम 138 50,000/- रुपये से कम मूल्य के माल के साथ ई-वे बिल की आवश्यकता को समाप्त करने का अधिकार देता है।

38. अभिलेख से स्पष्ट है कि डीलर ने नियम 138 का गलत फायदा उठाने के लिए जानबूझकर माल का कम मूल्यांकन किया है जो माल के साथ ई-वे बिल की आवश्यकता को समाप्त करता है उसे बखशा नहीं जा सकता।

39. इस न्यायालय ने **मेसर्स राधा फ्रेगरेन्स बनाम भारत संघ एवं अन्य (रिट कर संख्या 427/2019)** के प्रकरण में समान तथ्यों के आधार पर दिनांक 14.2.2023 के निर्णय और आदेश द्वारा याचिका को खारिज कर दिया है, जिसमें याचिकाकर्ता ने कम मूल्यांकन के आधार पर माल की जब्ती को चुनौती दी थी। निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत हैं:-

“16. विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या नियम 138 के तहत दिए गए कुछ संरक्षण की आड़ में, 50,000 रुपये से कम मूल्य के माल के लिए ई-वे बिल की आवश्यकता को समाप्त करते हुए, एक व्यापारी जो एक निर्माता है, को अपने माल को अलग-अलग प्राप्तकर्ताओं को भेजने की अनुमति दी जा सकती है माल का कम मूल्यांकन करते हुए और कर अधिकारियों को अधिनियम के तहत कार्रवाई न करने की अनुमति दी जा सकती है।

17. ...

18. कर अधिकारियों ने उचित मूल्यांकन पर पाया कि पारगमन में पान मसाला और तंबाकू दोनों का माल 7,12,766/- रुपये का था, जबकि डीलर द्वारा उचित खुलासा नहीं किया गया था। माल के इस कम मूल्यांकन के आधार पर ही अधिकारियों ने कार्यवाही की और आई.जी.एस.टी. और जुर्माना लगाया।

19. ई-वे बिल डाउनलोड करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि पारगमन में प्रत्येक माल वेब पोर्टल पर दर्ज हो और सरकार को डीलरों द्वारा निर्मित और बेचे जाने वाले माल की स्पष्ट जानकारी हो, चाहे वह अंतर-राज्यीय हो या राज्य के भीतर।

20. केवल छोटे व्यापार की सुरक्षा के लिए, जहाँ मूल्य न्यूनतम है, सरकार द्वारा ई-वे बिल डाउनलोड करने की आवश्यकता समाप्त कर दी गई है। 50,000 रुपये से कम मूल्य के सामान के लिए ई-वे बिल जारी करने का उद्देश्य, व्यापारी को अपने सामान का कम मूल्य दर्शाने की अनुमति नहीं देता है ताकि वह उसे वेब पोर्टल पर अपलोड करके सरकार और कर अधिकारियों के ध्यान में लाने से बच सके।

21...

22. याचिकाकर्ता द्वारा किए गए लेन-देन से यह स्पष्ट है कि भारी मात्रा में पान मसाला और तंबाकू का परिवहन अनिवार्य ई-वे बिल डाउनलोड किए बिना, माल का कम मूल्य दर्शाकर किया जा रहा था। तकनीकी पहलुओं की आड़ में, ऐसे व्यापारी को कोई लाभ नहीं दिया जा सकता जिसने कानून की नज़र से बचने के लिए जानबूझकर अपने माल का कम मूल्य दर्शाया हो।

23 ...,

24.....

25. इस न्यायालय का मानना है कि यह डीलर द्वारा भेजे गए 3,84,000 पान मसाला के पाउचों का अत्यधिक कम मूल्यांकन करने का प्रकरण है, जिसकी कीमत 69,600 रुपये बताई गई थी। एकमात्र निष्कर्ष जो निकाला जा सकता है, वह यह है कि ई-वे बिल डाउनलोड करने और लेनदेन को अभिलेख में दर्ज करने से बचने के लिए माल का इतना कम मूल्यांकन किया गया था।

26. इसके अलावा, कर अधिकारियों ने यह भी पाया है कि झारखंड स्थित एक माल प्राप्तकर्ता वास्तव में कर अधिकारियों के पास पंजीकृत था और उसने अपने व्यवसाय की प्रकृति 'कार्य अनुबंध और सेवाओं के आपूर्तिकर्ता' बताई थी, न कि व्यापार के व्यवसाय में। डीलर की इन कार्रवाइयों से केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि लेन-देन राजस्व विभाग में दर्ज नहीं किए गए थे ताकि देय कर के भुगतान से बचने के लिए ई-वे बिल की आवश्यकता केवल तभी हो जब माल का मूल्य 50,000 रुपये से अधिक हो।

27. इस प्रकार, पूर्वोक्त से यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि माल को रोकने और कर एवं जुर्माना लगाने में राज्य प्राधिकरणों की कार्रवाई, जिसकी पुष्टि प्रथम अपीलीय प्राधिकरण द्वारा की गई है, में इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है क्योंकि डीलर को इस तथ्य का सहारा लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि 50,000 रुपये से कम मूल्य के माल के प्रकरण में ई-वे बिल की आवश्यकता नहीं है।

28. यह डीलर द्वारा माल के कम मूल्यांकन का स्पष्ट मामला है जो माल का नगण्य मूल्य दिखाते हुए भारी मात्रा में पान मसाला और तंबाकू का परिवहन कर रहा था।

40. अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि क्रय-विक्रय फर्म ने वित्त वर्ष 2021-22 में पान मसाला/सुगंधित तंबाकू की कोई खरीद नहीं दिखाई है। उक्त तथ्य जीएसटी एमओवी 07 दिनांक 22.9.2021 में दर्ज किया गया है, जिसका उल्लेख नीचे दिया गया है:-

"प्रश्नगत संव्यवहार में सभी विक्रेता फर्मों की आनलाइन विभागीय पोर्टल पर खरीद विक्री की जांच करने पर पाया गया की वर्ष 2021-22 में इन फर्मों द्वारा पान मसाले एवं तम्बाकू की कोई खरीद प्रदर्शित नहीं है। प्रस्तुत प्रपत्रों की जांच में यह भी प्रकाश में आया की आसाम व पश्चिम बंगाल के पंजीकृत फर्मों द्वारा दिल्ली के पंजीकृत फर्मों को माल के वास्तविक मूल्य से कम मूल्य घोषित करते हुवे इस प्रकार सुनियोजित ढंग से इनवाइस जारी किये जा रहे हैं की प्रत्येक कर्ता फर्मों की रु 50 हजार से अधिक मूल्य के माल की आपूर्ति भी हो जाये एवं सीजीएसटी रूल 2017 के नियम 138 के प्राविधानों का उल्लंघन भी न हो पाए। "

41. यही निष्कर्ष दिनांक 24.9.2021 के मांग आदेश में दर्ज किया गया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

"प्रश्नगत संव्यवहार में सभी विक्रेता फर्मों की आनलाइन विभागीय पोर्टल पर खरीद विक्री की जांच करने पर पाया गया की वर्ष 2021-22 में इन फर्मों द्वारा पान मसाले एवं तम्बाकू की कोई खरीद प्रदर्शित नहीं है। "

42. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने मेसर्स शिव शक्ति ट्रेडिंग कंपनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट कर सं. 756/2011) के प्रकरण में, जिसका निर्णय 24.5.2011 को हुआ था, कम मूल्यांकन के आधार पर माल की जब्ती को बरकरार रखा है। खंडपीठ ने माना है कि माल का परिवहन करने वाले व्यक्ति के लिए माल का सही मूल्य घोषित करना अनिवार्य है और ऐसा न करने पर मूल्यांकन के संदर्भ में उचित दस्तावेज नहीं बनेंगे, इसलिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध माल जब्त करने के अधिकार का सही प्रयोग किया गया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत हैं:

"2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, दिनांक 07.05.2011 के जब्ती आदेश को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी है:-

"(i) उत्तर प्रदेश मूल्य वर्धित कर अधिनियम की धारा 50, कम मूल्यांकन के आधार पर उत्तर प्रदेश राज्य में आयात की जा रही किसी खेप को जब्त करने की अनुमति नहीं देती है; पूरी कार्यवाही अधिकार क्षेत्र के अभाव से गस्त है और शुरू से ही शून्य है।

4.....चूँकि नोटिस में आरोप लगाया गया था कि माल का कम मूल्यांकन किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता ने प्रत्यार्थियों से इस आरोप का आधार मांगा। याचिकाकर्ता ने इस बात से इनकार किया कि माल का कम मूल्यांकन किया गया था और तर्क दिया कि कम मूल्यांकन का आरोप टिकने योग्य नहीं है। उत्तर प्रदेश वैट अधिनियम के तहत कम मूल्यांकन के आधार पर माल को जब्त करने का अधिकार उपलब्ध नहीं था। इसलिए, यह तर्क दिया गया कि कार्यवाही शुरू से ही शून्य है।

7. अतः, पूर्वोक्त प्रावधानों के अवलोकन से यह पता चलता है कि, कोई भी व्यक्ति जो राज्य के बाहर किसी भी स्थान से राज्य में कोई माल आयात करता है, उसे उस क्षेत्र पर अधिकार रखने वाले कर निर्धारण प्राधिकारी से, जहाँ उसका मुख्य व्यवसाय स्थान स्थित है, या यदि ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ वह सामान्यतः निवास करता है, निर्धारित तरीके से घोषणा का निर्धारित प्रारूप प्राप्त करना होगा। धारा 50 की उपधारा (4) उस अधिकारी को शक्ति प्रदान करती है जो इस धारा के अंतर्गत तलाशी या निरीक्षण कर रहा है, यदि वह किसी व्यक्ति को किसी ऐसे माल का परिवहन करते हुए या परिवहन का प्रयास करते या दुष्प्रेरित करते हुए पाता है जिस पर यह धारा लागू होती है, और जो पूर्ववर्ती उपधाराओं में निर्दिष्ट उचित और वास्तविक दस्तावेजों के अंतर्गत नहीं आता है, और अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, यदि वह ऐसे व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देने के बाद संतुष्ट हो जाता है कि ऐसा माल इस अधिनियम के अंतर्गत देय या देय होने वाले कर के आकलन या भुगतान से बचने के प्रयास में इस प्रकार परिवहन किया जा रहा था, तो वह ऐसे माल को रोके रखने का आदेश दे सकता है। धारा 50 की उपधारा (5) के आधार पर, उत्तर प्रदेश वैट अधिनियम की धारा 48 के विभिन्न प्रावधान, जो मशीनरी प्रावधान हैं, उपधारा (4) के अंतर्गत माल पर लागू किए गए हैं। ऐसा ही एक प्रावधान धारा 48 की उपधारा (7) है, जिसके अंतर्गत माल जब्त करने वाला अधिकारी, डीलर या प्रभारी व्यक्ति को बुलाकर, और उस राशि का संकेत देकर, जो संभावित दंड को कवर करने के लिए पर्याप्त

होगी, माल को नकद जमा करने के लिए छोड़ सकता है। इस उपधारा के पहले प्रावधान के अंतर्गत, आयुक्त या ऐसा अन्य अधिकारी, जो उप आयुक्त के पद से नीचे का न हो, जिसे आयुक्त द्वारा अधिकृत किया जा सकता है, लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले पर्याप्त कारणों से, बिना किसी जमा राशि के या कम राशि जमा करने पर, या नकद या क्षतिपूर्ति बांड के अलावा किसी अन्य रूप में सुरक्षा प्रदान करने पर, जैसा वह उचित समझे, माल को छोड़ने का निर्देश दे सकता है।

इस धारा पर विचार करने से यह संकेत मिलता है कि माल का आयात निर्धारित घोषणा पत्र भरकर और माल की मात्रा या माप और मूल्य बताकर किया जाना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि मात्रा, माप या मूल्य वास्तविक मात्रा, माप या मूल्य हैं, न कि कम मात्रा या माप या कम मूल्यांकित। यदि इसे इस प्रकार पढ़ा जाए, तो धारा 50 की उप-धारा (4) को सही ढंग से समझा जा सकता है, क्योंकि प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'उचित और वास्तविक दस्तावेज' है। एक दस्तावेज, जो मूल्य को सही ढंग से नहीं बताता है, उसे उचित दस्तावेज नहीं कहा जा सकता।

8. हमारी राय में, हमारे लिए दिल्ली कलकत्ता कैरिंग कॉर्पोरेशन (पूर्वोक्त) प्रकरण में उत्तर प्रदेश व्यापार कर अधिनियम के प्रावधानों के तहत दिए गए विद्वान न्यायाधीश के फैसले का पालन करना संभव नहीं होगा। इसका कारण यह है कि माल का आयात करने वाले व्यक्ति के लिए माल का सही मूल्य घोषित करना अनिवार्य है। माल का सही मूल्य घोषित न करने पर, दस्तावेज को मूल्यांकन के संदर्भ में उचित दस्तावेज नहीं माना जाएगा।

9... विधानमंडल ने स्वयं धारा 50 के तहत आयात किए जा रहे माल के संबंध में, यदि वह उचित और वास्तविक दस्तावेजों द्वारा कवर नहीं किया गया है, निरोध की शक्ति प्रदान की है और धारा 50 (5) के आधार पर धारा 48 के मशीनरी प्रावधानों को धारा 50 में शामिल किया है। इसलिए, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि उत्तर प्रदेश वैट अधिनियम की धारा 50 (4) के तहत, तलाशी लेने वाले अधिकारी को उचित और/या वास्तविक दस्तावेजों द्वारा कवर नहीं किए गए माल को निरोध करने का अधिकार है। इसलिए, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि राज्य में आयातित माल को बिना उचित या वास्तविक दस्तावेजों के जब्त करने की शक्ति धारा 50 (4) में निहित है।

(इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

43. जीएसटी अधिनियम की धारा 31 के साथ धारा 129 (3) और जीएसटी नियमों का नियम 46 वैट अधिनियम की धारा 48 और 50 के समान है।

44. यदि याचिकाकर्ता माल के साथ दिए गए कर चालान का कोई लाभ उठाना चाहता है, तो पश्चिम बंगाल/असम से दिल्ली तक माल की आवाजाही का प्राथमिक कर्तव्य पूरा नहीं हुआ है।

45. शिव शक्ति ट्रेडिंग कंपनी (पूर्वोक्त) के प्रकरण में खंडपीठ द्वारा दिए गए पूर्वोक्त दो निर्णयों और राधा फ्रेगर्नेस (पूर्वोक्त) के प्रकरण में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिए गए अन्य निर्णयों के मददेनजर, यह माना गया है कि जब्ती कम मूल्यांकन के आधार पर भी की जा सकती है, यदि कम मूल्यांकन जानबूझकर कर के भुगतान से बचने या अधिनियम के प्रावधानों को विफल करने के उद्देश्य से किया गया हो।

46. इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा केरल उच्च न्यायालय और छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय के जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे याचिकाकर्ता के लिए कोई सहायक नहीं हैं, क्योंकि उच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर जो निर्णय दिया है, वह वर्तमान प्रकरण को पूरी तरह से कवर करता है।

47. इसके अलावा, याचिकाकर्ता द्वारा एस.के. ट्रेडिंग (पूर्वोक्त), मेसर्स शंभू सरन अग्रवाल एंड कंपनी (पूर्वोक्त) के प्रकरण में दिए गए अन्य निर्णयों पर ध्यान नहीं दिया गया है, मेसर्स राधा फ्रेगर्नेस (पूर्वोक्त) के प्रकरण में दिए गए पूर्व निर्णय पर, इसलिए वे अपरिहार्य हैं और याचिकाकर्ता के लिए कोई सहायक नहीं हैं।

48. हालाँकि, जहाँ तक याचिकाकर्ता द्वारा मेसर्स माँ आबे (पूर्वोक्त) के प्रकरण में लिए गए खंडपीठ के फैसले का संबंध है, यह केवल माल की रिहाई के प्रयोजनों के लिए है, न कि अधिनियम की धारा 129 (3) के तहत कार्यवाही के लिए, इसलिए, यह वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

49. पूर्वोक्त के मददेनजर, इस न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

50. पूर्वोक्त सभी रिट याचिकाएँ गुणदोष से रहित हैं और उन्हें तदनुसार खारिज किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 263

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

रिट कर संख्या - 1177 वर्ष 2022

मेसर्स गुरुनानक सुपारी ट्रेडर्स

...याचिकाकर्ता

बनाम

आयुक्त, वाणिज्य कर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश एवं अन्य

... प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

3.इला मेसर्स गुरुनानक सुपारी ट्रेडर्स बनाम आयुक्त, वाणिज्य कर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश एवं अन्य 349
सुश्री पूजा तलवार

प्रत्यार्थियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

सिविल कानून - राज्य वस्तु और सेवा कर अधिनियम, 2017 - नियम 138 और 138 ए के साथ धारा 68 -
वस्तुओं को निरोध जाने के लगभग तीन घंटे बाद उसी दिन ई-वे बिल तैयार किया गया - याचिकाकर्ता उस स्थान पर व्यवसाय नहीं कर रहा था जहां प्रतिष्ठान पंजीकृत था - प्रतिष्ठान का पंजीकरण भी स्वतः संज्ञान से रद्द कर दिया गया - नियम में संशोधन के बाद, यह अनिवार्य हो गया है कि वस्तुओं के साथ ई-वे बिल होना चाहिए - कर से बचने का इरादा - घोषित वस्तुओं का विवरण अलग-अलग घोषित किया गया था - वस्तुओं पर @5% कर घोषित किया गया था जबकि सत्यापन में पाया गया वस्तुएं @18% कर योग्य थे ।

डब्ल्यू.पी. खारिज। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मेसर्स मॉडर्न ट्रेडर्स बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. व अन्य, 2018 एनटीएन 187 1287 वर्ष 2024
2. एक्सप्रेस लॉजिस्टिक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. व अन्य, 2018 एनटीएन 245
3. राज आयरन एंड बिल्डिंग मैटेरियल्स बनाम यू.ओ.आई., 2018 यूपीटीसी 217
4. मेसर्स फाल्गुनी स्टील्स बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. व अन्य, 2024 यूपीटीसी 221
5. अशरफ अली के.एच. बनाम सहायक स्टेट टैक्स अधिकारी व अन्य, रिट टैक्स संख्या -1177 वर्ष 2022[3] 2021 यूपीटीसी 469
6. मेसर्स झांसी एंटरप्राइजेज, नंदनपुरा, झांसी बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. & अन्य, रिट टैक्स संख्या 1081 वर्ष 2019, 01.03.2024 को निर्णीत
7. मेसर्स अखिलेश ट्रेडर्स बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. & अन्य, रिट टैक्स संख्या 1109 वर्ष 2019, 20.02.2024 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा प्रदत्त किया गया)

1. याचिकाकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री पूजा तलवार और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार मिश्रा को सुना गया।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से राज्य वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 की धारा 129(1) के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए वाणिज्य कर अधिकारी, सेक्टर-3 (मोबाइल दस्ता), एटा द्वारा पारित दिनांक 16.06.2022 के आदेश तथा धारा 129(3) के अन्तर्गत पारित दिनांक 24.06.2022 के आदेश को चुनौती दी गई है तथा 90,62,400/- रुपये के कर एवं अर्थदण्ड की मांग तथा अपीलीय आदेश दिनांक 18.08.2022 को निरस्त करने की मांग की गई है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता राज्य वस्तु और सेवा कर अधिनियम, 2017 (जिसे आगे "2017 का अधिनियम" कहा जाएगा) के तहत एक पंजीकृत वितरक है। उसने दिनांक 09.06.2022 को कर चालान के जरिए 400 बैग सुपारी मेसर्स जगदंबा एंटरप्राइजेज, नागपुर को बेची है, जो उनके संबंधित राज्य में एक पंजीकृत वितरक भी बताया गया है। उक्त सुपारी को मेसर्स रवि गुड्स ट्रांसपोर्ट द्वारा दिल्ली से नागपुर, महाराष्ट्र ले जाया जा रहा था। माल को दिनांक 10.06.2022 को सुबह 4:28 बजे मथुरा में रोका गया। पारगमन के दौरान माल पर ई-वे बिल नहीं था। ई-वे बिल दिनांक 10.06.2022 को सुबह 7:36 बजे उत्पन्न किया गया और वह दिनांक 16.06.2022 तक वैध था। प्रेषित माल का भौतिक सत्यापन किया गया। अधिनियम 2017 की धारा 129(1) के अंतर्गत निरोध आदेश पारित किया गया। सत्यापन पर, यह पाया गया कि पारगमन में जो माल था वह *चिकनी भुनी सुपारी (प्रसंस्कृत सुपारी)* है और उस पर @18% की दर से कर लगता है, न कि याचिकाकर्ता द्वारा घोषित @5% की दर से। दिनांक 16.06.2022 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया। जब कारण बताओ नोटिस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई, तो प्रत्यर्थी संख्या 2 ने दिनांक 24.06.2022 को अधिनियम 2017 की धारा 129(3) के अंतर्गत आदेश पारित किया और याचिकाकर्ता के विरुद्ध 90,62,400/- रुपये के कर और जुर्माने की मांग की गई। उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष रिट कर संख्या 933 वर्ष 2022 योजित किया, जिसे दिनांक 12.07.2022 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता के पास 2017 के अधिनियम की धारा 107 के तहत अपील प्रस्तुत करने का विकल्प है। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने अधिनियम की धारा 107 के तहत अपर आयुक्त, ग्रेड-II (अपील), अलीगढ़ के समक्ष अपील प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 18.08.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। अतः, वर्तमान रिट याचिका।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 16.06.2022 का निरोध आदेश और साथ ही दिनांक .06.2022 का जुर्माना आदेश सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना पारित किया गया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम अपीलीय प्राधिकारी ने अपील को खारिज करते समय अपना दिमाग नहीं लगाया है और एक नॉन-स्पीकिंग आदेश पारित किया गया है। उनके अनुसार, जिस व्यक्ति ने ई-वे बिल डाउनलोड किया था, वह निरोध के स्थान पर मौजूद नहीं था और वाहन का चालक याचिकाकर्ता को सूचित किए बिना बाहर चला गया था। जैसे ही चालक को गलती का एहसास हुआ और उसने याचिकाकर्ता को ई-वे बिल की अनुपलब्धता के बारे में सूचित किया, उसे बिना देरी किए डाउनलोड किया गया और अधिकारियों के समक्ष पेश किया गया। *मेसर्स मॉडर्न ट्रेडर्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य, 2018 एनटीएन 187* के मामले में निर्णय और *एक्सप्रेस लॉजिस्टिक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ और 3 अन्य, 2018 एनटीएन 245* के

3.इला मेसर्स गुरुनानक सुपारी ट्रेडर्स बनाम आयुक्त, वाणिज्य कर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश एवं अन्य 351

मामले में समन्वय पीठ के निर्णय पर भरोसा किया गया है। । राज आयरन एंड बिल्डिंग मटेरियल बनाम भारत संघ, 2018 यूपीटीसी 217, मेसर्स फाल्गुनी स्टील्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2024 यूपीटीसी 221 और केरल उच्च न्यायालय के अशरफ अली केएच बनाम सहायक राज्य कर अधिकारी और अन्य, 2021 यूपीटीसी 469 के मामले में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया गया है।

5. इसके बाद यह तर्क दिया गया कि माल को सुपारी के रूप में घोषित किया गया है, जबकि अधिकारी इसे चिकनी भुनी सुपारी (प्रसंस्कृत सुपारी) होने का दावा कर रहे हैं। उनके अनुसार, माल का गलत वर्गीकरण पारगमन में माल को रोकने का आधार नहीं हो सकता। कर लगाने वाले अधिकारी अधिक से अधिक न्यायिक मूल्यांकन अधिकारियों को प्रभावी ढंग से प्रेषित करने के लिए संबंधित कागजात तैयार करने के उद्देश्य से माल को अधिकतम निरोध ले सकते थे, इससे आगे कुछ भी नहीं।

6. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध करते हुए तर्क दिया कि कर चोरी का इरादा था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि पारगमन के दौरान पकड़े गए माल को बिना ई-वे बिल के ले जाया जा रहा था। वाहन संख्या एनएल-01-क्यू-5655 को लगभग सुबह 4:28 बजे रोका गया, जबकि ई-वे बिल दिनांक 10.06.2022 को सुबह 7:36 बजे, यानी लगभग तीन घंटे बाद जारी करने के बाद डाउनलोड किया गया था। इसके अलावा, जब याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान की जीएसटी पोर्टल पर जाँच की गई, तो प्रतिष्ठान के मालिक गुरसेन सिंह के किरायानामा पर किए गए हस्ताक्षर लेनदेन के लिए जारी किए गए कर चालान से अलग थे।

7 वाहन के चालक ने अपने बयान में कहा कि माल दूसरे वाहन से लिया गया था और इसे बकौली, दिल्ली में वाहन में लदान किया गया था। बकौली, दिल्ली में न तो इस प्रतिष्ठान का व्यवसाय का मुख्य स्थान है और न ही व्यवसाय का अतिरिक्त स्थान है। इसके अलावा, जारी किए गए बाद के ई-वे बिल में प्रेषण का स्थान उत्तर पश्चिम दिल्ली, पिन कोड 110041 दर्शाता है जबकि बकौली का पिन कोड 110036 है। इन साक्ष्यों से पता चलता है कि परिवहन के मूल स्रोत और माल की निकासी को छिपाने के लिए पंजीकरण का दुरुपयोग किया जा रहा है। जीएसटीआईएन के आधार पर, विक्रेता प्रतिष्ठान, मेसर्स गुरुनानक सुपारी ट्रेडर्स, दिल्ली (याचिकाकर्ता) की जाँच में पाई गई कमियों के आधार पर, प्रतिष्ठान की जाँच के लिए सहायक आयुक्त, एसजीएसटी, जोन-5, वार्ड-62, दिल्ली को एक पत्र भेजा गया। दिनांक 14.06.2022 को जांच रिपोर्ट भेजी गई, जिसमें प्रतिष्ठान के व्यवसाय का स्थान पता लगाने योग्य नहीं पाया गया तथा प्रतिष्ठान के विरुद्ध स्वतः संज्ञान लेकर निरस्तीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी गई है।

8. विद्वान स्थायी अधिवक्ता के अनुसार, यह स्पष्ट रूप से वर्तमान विक्रेता के नाम पर अज्ञात माल मालिक के बीच असंतुलन के कारण कर की चोरी को साबित करता है। जांच के समय, विक्रेता के दिखाए गए व्यापारिक स्थान पर कोई व्यावसायिक गतिविधि नहीं पाई गई। इसके अलावा, माल के सत्यापन से पता चला कि कटी हुई चिकनी भुनी हुई सुपारी (प्रसंस्कृत) लोड की गई थी, जबकि उन्हें सुपारी-201 माल के रूप में घोषित किया गया है, जबकि भौतिक सत्यापन पर माल सुपारी (एचएसएन कोड 21069030) की श्रेणी में आता है, जो

@18% कर योग्य है, जबकि कर @5% लिया गया था। यह भी तर्क दिया गया कि क्रेता प्रतिष्ठान मेसर्स जगदंबा एंटरप्राइजेज, नागपुर, महाराष्ट्र दिनांक 05.01.2022 को पंजीकृत थी और उसने केवल एक फर्म मेसर्स हर्ष इंटरनेशनल, दिल्ली से माल खरीदा है। उनके अनुसार, तथ्यों से पता चलता है कि विचाराधीन लेनदेन एक संगठित समूह द्वारा कर चोरी के इरादे से किया जा रहा था, जो 2017 के अधिनियम की धारा 68, नियम 138 और 138ए का उल्लंघन है और यह आईजीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 20, यूजीएसटी/सीजीएसटी अधिनियम की धारा 129 के प्रावधानों के अंतर्गत आता है। इसके अलावा, वाहन चालक को दिनांक 16.06.2022 को नोटिस दिया गया था और प्राप्तकर्ता और प्रेषक को भी दिनांक 16.06.2022 को ईमेल के माध्यम से भेजा गया था, लेकिन उनकी ओर से कोई स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं हुआ।

9 अंत में यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा जिस निर्णय पर भरोसा किया गया है, वह उस अवधि से संबंधित है, जहाँ अप्रैल, 2018 से पहले माल को निरोध में रखा गया था। उनके अनुसार, अप्रैल, 2018 के बाद निरोध में लिए जाने वाले घटनाओं में, ई-वे बिल अनिवार्य है और इसे माल के साथ ले जाना आवश्यक है। **मेसर्स झांसी एंटरप्राइजेज, नंदनपुरा, झांसी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट टैक्स संख्या 1081 वर्ष 2019**, दिनांक 01.03.2024 को निर्णीत मामले में समन्वय पीठ के निर्णय और **मेसर्स अखिलेश ट्रेडर्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट टैक्स संख्या 1109 वर्ष 2019**, दिनांक 20.02.2024 को निर्णीत मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है।

10. मैंने पक्षकारों के संबंधित अधिवक्ताओं की बातें सुनी हैं और अभिलेख पर मौजूद सामग्री का परिशीलन किया है।

11. विचारणीय एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए ई-वे बिल रखना अनिवार्य है। उत्तर प्रदेश वस्तु एवं सेवा कर नियमावली, 2017 के 14वें संशोधन, जो दिनांक 01.04.2018 से प्रभावी हुआ, के बाद अब यह प्रश्न *अछूता मामला* नहीं रहा। नियम में संशोधन के बाद, माल के साथ ई-वे बिल का होना अनिवार्य हो गया है। **अखिलेश ट्रेडर्स (सुप्रा)** मामले में समन्वय पीठ ने माना था कि यदि माल के साथ ई-वे बिल नहीं है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कर चोरी का इरादा है। कर चोरी का ऐसा अनुमान माल के स्वामी/परिवहनकर्ता द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सामग्री द्वारा खंडनीय हो जाता है। प्रासंगिक अनुच्छेद 7 और 8 यहां निम्नानुसार उद्धृत किए गए हैं:-

“7. इस न्यायालय ने ऐसे अनेक मामलों में, जहाँ अधिनियम की धारा 129 के अंतर्गत दंड लगाया जा रहा था, यह माना कि कर चोरी का इरादा मौजूद होना चाहिए, तथापि, यदि माल के साथ चालान या ई-वे बिल संलग्न नहीं है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कर चोरी का इरादा है। कर चोरी का ऐसा अनुमान माल के स्वामी/परिवहनकर्ता द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सामग्री द्वारा खंडित किया जा सकता है।

3.इला मेसर्स गुरुनानक सुपारी ट्रेडर्स बनाम आयुक्त, वाणिज्य कर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश एवं अन्य 353

8. वर्तमान मामले में, यह निष्कर्ष निकलता है कि याचिकाकर्ता कर चोरी की धारणा का खंडन करने में सक्षम नहीं हैं, क्योंकि वह चालान और ई-वे बिल की अनुपस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं दे पाया है। अवरोधन के बाद इन दस्तावेजों का उत्पादन याचिकाकर्ता को दंड के दायित्व से मुक्त नहीं कर सकता है क्योंकि जुर्माना लगाने का उद्देश्य उन व्यक्तियों के लिए एक निवारक के रूप में कार्य करना है जो सरकार को देय करों का भुगतान करने से बचने का इरादा रखते हैं। यह स्पष्ट है कि यदि माल को नहीं पकड़ा गया होता तो सरकार को उक्त माल पर देय जीएसटी के संबंध में अपनी जेब से पैसा निकालना पड़ता।

12. झाँसी एंटरप्राइजेज (सुप्रा) मामले में, अखिलेश ट्रेडर्स (सुप्रा) मामले में दिए गए निर्णय के बाद, समन्वय पीठ ने आगे कहा कि अवरोधन के बाद केवल दस्तावेज प्रस्तुत करना यह दर्शाने का वैध आधार नहीं हो सकता कि कर चोरी का कोई इरादा नहीं था। न्यायालय ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता द्वारा इस मामले में लिए गए निर्णय पर अप्रैल, 2018 से पहले के लेन-देन का भरोसा था, लेकिन अप्रैल, 2018 के बाद, उन कठिनाइयों का समाधान हो गया है और ई-वे बिल बनाने और डाउनलोड करने में कोई कठिनाई नहीं है। न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:-

"11. अवरोधन के बाद केवल दस्तावेज प्रस्तुत करना यह दर्शाने का वैध आधार नहीं हो सकता कि कर चोरी का कोई इरादा नहीं था। उचित समय पर दस्तावेज प्रस्तुत न करने को उचित ठहराने के लिए कुछ उचित आधार होने चाहिए।

12. इसके अलावा, जिन निर्णयों पर याचिकाकर्ता भरोसा कर रहा है वे अप्रैल 2018 से पहले के हैं, जब वास्तव में ई-वे बिल बनाने में कुछ कठिनाइयाँ थीं। लेकिन अप्रैल, 2018 के बाद उन कठिनाइयों का समाधान कर लिया गया है और अब ई-वे बिल बनाने और डाउनलोड करने में कोई कठिनाई नहीं है।

13 याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा उठाया गया यह तर्क कि वाहन गोदाम में सामान उतारने के लिए खड़ा था, तथ्यों से समर्थित नहीं है। वाहन का अवरोधन गोदाम से दूर एक स्थान पर था और यह पूरा तर्क स्पष्ट रूप से बाद का विचार है। तदनुसार, अधिकारियों द्वारा अधिनियम की धारा 129(3) का प्रयोग वैध और कानून की दृष्टि से न्यायसंगत है।

14 . उपरोक्त के आलोक में, मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता ने कानून के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया है, इसलिए प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा उठाए गए कदम उचित और कानून के अनुसार हैं और इसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।"

13. वर्तमान मामले में, यह एक स्वीकृत मामला है कि माल को प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दिनांक 10.06.2022 को प्रातः 4:28 बजे निरोध किया गया था, जबकि ई-वे बिल उसी दिन प्रातः 7:36 बजे, माल रोके जाने के लगभग तीन घंटे बाद, उत्पन्न किया गया था। इसके अतिरिक्त, जाँच में यह पाया गया कि याचिकाकर्ता उस

स्थान पर व्यवसाय नहीं कर रहा था जहाँ उसका प्रतिष्ठान पंजीकृत था। प्रतिष्ठान का पंजीकरण भी स्वतः संज्ञान लेकर रद्द कर दिया गया था।

14. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि दिनांक 24.06.2022 के आदेश पारित होने से पहले नोटिस की तामील नहीं की गई थी, पूरी तरह से अभिलेख पर मौजूद सामग्री के बिल्कुल विपरीत है, जिससे न केवल यह पता चलता है कि चालक को नोटिस दिया गया था, बल्कि इसे दिनांक 16.06.2022 को विक्रेता और क्रेता दोनों को ईमेल के ज़रिए भी भेजा गया था, जिस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। जब एक बार प्राधिकारियों द्वारा निष्कर्ष दर्ज कर लिया गया है और याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान ने प्राधिकारियों के समक्ष कार्यवाही में कभी भाग नहीं लिया, इसलिए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

15. इसके अलावा, याचिकाकर्ता के आचरण से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि कर से बचने का इरादा है क्योंकि न केवल पारगमन में माल ई-वे बिल के साथ नहीं था, बल्कि याचिकाकर्ता द्वारा घोषित माल का विवरण भी अलग था, जिसे दिनांक 10.06.2022 को कर अधिकारियों द्वारा रोक दिया गया था। माल पर @5% की दर से कर घोषित किया गया था, जबकि सत्यापन में पाया गया माल @ 18% की दर से कर योग्य था।

16. वर्तमान मामले के तथ्यों में खंडपीठ के निर्णय पर भरोसा स्पष्ट है क्योंकि उन मामलों में, लेन-देन अप्रैल, 2018 से पहले हुआ था, जहाँ लाभ उन करदाताओं को दिया गया था। माल को पारगमन में जाने के बाद विक्रेता के लिए ई-वे बिल डाउनलोड करना अनिवार्य है। बाद में ई-वे बिल डाउनलोड करने से अधिनियम के तहत दायित्व से मुक्ति नहीं मिलेगी।

17. हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

18. रिट याचिका विफल होती है और एतद्वारा खारिज की जाती है।

(2025) 3 ILRA 267

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल

रिट कर संख्या - 1892 वर्ष 2024

सुरेंद्र गुप्ता

...याचिकाकर्ता

बनाम

अपीलीय प्राधिकारी राज्य जीएसटी/अपर आयुक्त ग्रेड II एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

निखिल कुमार, वागीश यादव

प्रत्यार्थियों के अधिवक्ता :

कौशलेंद्र नाथ सिंह, अंकुर अग्रवाल, सी.एस.सी., गोपाल वर्मा

याचिकाकर्ता ने न्यू ओखला विकास प्राधिकरण ('नोएडा') को 97,18,500/- रुपये की एकमुश्त पट्टा किराया राशि का भुगतान किया और 18% की दर से जीएसटी का भुगतान भी किया- नोएडा ने याचिकाकर्ता को एक कर चालान जारी किया- उसने सीजीएसटी/यूपीजीएसटी अधिनियम की धारा 39 के तहत अपनी विवरणी प्रस्तुत किया- नोएडा की ओर से हुई गलती के कारण, यह जीएसटीआर-3बी प्रपत्र में प्रतिबिंबित नहीं हो रहा था- आक्षेपित आदेश- सीजीएसटी अधिनियम की धारा 61 के तहत कार्यवाही शुरू की गई - अपील-अस्वीकृत- आक्षेपित-याचिकाकर्ता को नोएडा की ओर से की गई गलती के लिए दंडित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती- याचिकाकर्ता ने नोएडा को वैध कर का भुगतान किया, जो उचित मद में जमा नहीं किया गया था- याचिकाकर्ता को 15 दिनों के भीतर नोएडा द्वारा प्रतिकर दिया जाना चाहिए।

डब्ल्यू.पी. का निपटान किया गया । (E-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. बटलीबॉय एनवायरनमेंटल इंजीनियर्स लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य, (2024) 2 सुप्रीम कोर्ट केसेस 375

(माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल द्वारा प्रदत्त किया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री निखिल कुमार, प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री अंकुर अग्रवाल, तथा राज्य प्रत्यार्थियों के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री आर.एस. पांडे को सुना गया।

2 . इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 05.09.2024 के आदेश और प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 15.12.2023 के आदेश को चुनौती दी है।

3 . याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता हिंदू अविभाजित परिवार का मुखिया (कर्ता) है, जिसका परिवार एफ-16, सेक्टर-18, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर में स्थित भवन के कब्जे और स्वामित्व में है। उक्त संपत्ति एक वाणिज्यिक चार मंजिला इमारत है और इस तरह याचिकाकर्ता उक्त संपत्ति को किराए पर देने के व्यवसाय में है। उक्त संपत्ति से प्राप्त किराया, वस्तु और सेवा कर अधिनियम, 2017 के तहत कर योग्य है और इसलिए, याचिकाकर्ता ने अपनी विवरणी प्रस्तुत किया है। याचिकाकर्ता, एक विधिपालक नागरिक

होने के नाते, न्यू ओखला विकास प्राधिकरण (इसके बाद 'नोएडा' के रूप में संदर्भित) को 97,18,500/- रुपये की एकमुश्त पट्टा किराया राशि का भुगतान किया है और उन्होंने 18% की दर से जीएसटी भी अदा किया, जो 17,49,330 रुपये बनता है, जिसके अनुसार, नोएडा ने याचिकाकर्ता को कर चालान जारी किया। याचिकाकर्ता ने सीजीएसटी/यूपीजीएसटी अधिनियम की धारा 39 के तहत अपनी विवरणी प्रस्तुत किया है। उन्होंने आगे कहा कि नोएडा की ओर से हुई गलती के कारण, यह जीएसटीआर-3बी प्रपत्र में दिखाई नहीं दे रहा था, हालाँकि, याचिकाकर्ता द्वारा जमा किया गया कर नोएडा द्वारा स्वीकार कर लिया गया था।

4 . उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध सीजीएसटी अधिनियम की धारा 61 के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी, जिस पर याचिकाकर्ता ने अपना उत्तर प्रस्तुत किया और उसके बाद, सीजीएसटी अधिनियम की धारा 73 (1) के तहत कार्यवाही शुरू की गई, जिस पर याचिकाकर्ता ने कर के भुगतान के साथ-साथ नोएडा द्वारा जारी पावती रसीद को दर्शाने वाले दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा समर्थित एक विस्तृत उत्तर भी प्रस्तुत किया, लेकिन उस पर विचार किए बिना, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है जिसके विरुद्ध अपील प्रस्तुत की गई थी, जिसे अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार किए बिना खारिज कर दिया गया था।

5 . उन्होंने आगे कहा कि नोएडा की ओर से प्रस्तुत प्रति शपथपत्र में याचिकाकर्ता द्वारा कर की राशि जमा करने के तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है और उसे किसी अन्य मद में जमा कर दिया गया है। उन्होंने आगे कहा कि एक बार नोएडा द्वारा कर का भुगतान स्वीकार कर लिया जाता है, तो याचिकाकर्ता को दो बार दंडित नहीं किया जा सकता; एक बार नोएडा को कर का भुगतान करने के बाद उसे कानून के अनुसार जीएसटी विभाग में जमा करना पड़ा और दूसरी ओर जीएसटी अधिनियम की धारा 73 के तहत दंडात्मक कार्यवाही का सामना करना पड़ा, जिसके तहत याचिकाकर्ता पर फिर से समान राशि का कर लगाया गया और साथ ही 19,22,778 रुपये का जुर्माना भी लगाया गया। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता पर आक्षेपित आदेश द्वारा लगाए गए कर और जुर्माने की राशि को नोएडा द्वारा याचिकाकर्ता को भुगतान/प्रतिकर देने का निर्देश दिया जा सकता है।

6 . प्रतिपक्षी, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत करते हुए आक्षेपित आदेश का समर्थन किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही सही ढंग से शुरू की गई थी क्योंकि वह वाणिज्यिक भवन को किराये पर देने में लगा हुआ था, जिस पर वस्तु और सेवा कर का भुगतान/जमा किया जाना है, लेकिन उसे जमा नहीं किया गया।

7 . नोएडा की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि याचिकाकर्ता से जीएसटी भुगतान के लिए राशि प्राप्त हुई थी, लेकिन उसे किसी गलत मद में जमा कर दिया गया। उन्होंने आगे कहा कि अगर इसकी सूचना उचित समय पर अधिसूचित किया गया होता, तो इसे ठीक कर दिया गया होता। उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थी-नोएडा को समय पर सूचित न करना याचिकाकर्ता की ओर से हुई गलती है।

8 . पक्षकारों को सुनने के पश्चात, न्यायालय ने अभिलेखों का परिशीलन किया।

9 . अभिलेखों से पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने नोएडा को जीएसटी की राशि का भुगतान कर दिया है, जिसे जीएसटी विभाग में जमा किया जाना आवश्यक था। उक्त तथ्य का किसी भी प्राधिकारी द्वारा खंडन नहीं किया गया है।

10 . नोएडा की ओर से प्रस्तुत प्रति शपथपत्र के अनुच्छेद संख्या 3, 4, 5 और 6 प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार हैं:-

“3. यहां यह प्रस्तुत करना उचित है कि दिनांक 21.09.2017 को याचिकाकर्ता ने एफ-16, सेक्टर 18, नोएडा में स्थित भूखंड के एकमुश्त/एकमुश्त पट्टा किराया की राशि के रूप में 97,18,500/- रुपये जमा किए थे। याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी प्राधिकारी को उपरोक्त भूखंड के लिए 18% जीएसटी के रूप में 17,49,330 रुपये का भुगतान भी किया। लागू जीएसटी के भुगतान के साथ एकमुश्त पट्टा किराया के भुगतान के लिए याचिकाकर्ता के खातों के विवरण की प्रति और दिनांक 21.09.2017 के भुगतान चालान की प्रति सामूहिक रूप से **अनुलग्नक संख्या एसए 1 (समग्र)** के रूप में यहां प्रस्तुत की जा रही है।

4. यह प्रासंगिक है कि चूंकि जीएसटी अधिनियम हाल ही में अधिनियमित किया गया है और स्पष्टता न होने के कारण तथा प्राधिकरण के कर सलाहकार की सलाह पर, प्रत्यर्थी प्राधिकरण द्वारा उक्त कर को बी2सी मद में जमा कर दिया गया और तत्पश्चात विवरणी प्रस्तुत किया गया। यदि याचिकाकर्ता ने उस समय प्राधिकरण से संपर्क किया होता, तो प्राधिकरण सुधार आवेदन प्रस्तुत कर सकता था। परन्तु इस तथ्य पर किसी ने ध्यान नहीं दिया और परिणामस्वरूप इसे समय रहते इसमें सुधार नहीं किया जा सका।

5. दिनांक 18.10.2017 को, प्रत्यर्थी नोएडा प्राधिकरण ने राज्य जीएसटी प्राधिकरणों के पास 18% की दर से 17,49,330/- रुपये की जीएसटी की उपरोक्त राशि जमा की और इस प्रकार सितंबर माह, वित्त वर्ष 2017-18 के लिए दिनांक 18.10.2017 को प्रपत्र जीएसटीआर-3 बी में अपनी विवरणी प्रस्तुत किया। सितंबर माह, वित्त वर्ष 2017-18 के लिए नोएडा प्राधिकरण द्वारा दिनांक 18.10.2017 को प्रस्तुत की गयी विवरणी की प्रति **अनुलग्नक संख्या एसए 2** के रूप में संलग्न है।

6. नोएडा प्राधिकरण द्वारा अपनी विवरणी के माध्यम से सितंबर माह, वित्त वर्ष 2017-18 के लिए दिनांक 18.10.2017 को प्रपत्र जीएसटीआर 3बी में सीजीएसटी के रूप में 14,10,21,036/- रुपये और एसजीएसटी के रूप में 14,10,21,036/- रुपये जमा किए। इस राशि में याचिकाकर्ता द्वारा सीजीएसटी के रूप में 8,74,665/- रुपये और एसजीएसटी के रूप में 8,74,665/- रुपये की राशि शामिल थी। इसलिए, इस तरह प्रत्यर्थी नोएडा प्राधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता से एकत्र किया गया कर प्रत्यर्थी नोएडा प्राधिकरण द्वारा 18.10.2017 को ही जीएसटी अधिकारियों के पास जमा कर दिया गया था।”

11. नोएडा की ओर से प्रस्तुत प्रति-शपथपत्र की विषय-वस्तु के अवलोकन से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा जमा किया गया जीएसटी का भुगतान नोएडा प्राधिकरण द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने गलत मद में जीएसटी राशि जमा करने की बात भी स्वीकार की। नोएडा प्राधिकरण ने अपनी गलती के लिए उस कर सलाहकार को जिम्मेदार ठहराया था, जिसकी सलाह ली गई थी। परिणामस्वरूप, नोएडा प्राधिकरण भी याचिकाकर्ता द्वारा देय कर को उचित मदों में जमा न करने की अपनी गलती स्वीकार करता है।

12. नोएडा/ प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा प्रस्तुत प्रति शपथपत्र में की गई उपरोक्त स्पष्ट स्वीकृति के मददेनजर, आक्षेपित आदेशों को मनमाना नहीं कहा जा सकता है या इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

13. निर्णय सुनाने से पूर्व, यह ध्यान रखना उचित होगा कि याचिकाकर्ता द्वारा नोएडा प्राधिकारियों को भुगतान की गई कर राशि स्वीकार कर ली गई थी और गलत मद में जमा कर दी गई थी, इसलिए याचिकाकर्ता को नोएडा की ओर से हुई गलती का खामियाजा भुगतान की अनुमति नहीं दी जा सकती। याचिकाकर्ता ने नोएडा को वैध कर का भुगतान किया था, जो उचित मद में जमा नहीं किया गया और इसलिए, इसके कारण याचिकाकर्ता को न केवल जीएसटी की कार्यवाही का सामना करना पड़ेगा, बल्कि जुर्माना भी लग सकता है।

14. विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, न्यायालय का मानना है कि याचिकाकर्ता को नोएडा द्वारा प्रतिफल दिया जाना चाहिए।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बटलीबाँय एनवायरनमेंटल इंजीनियर्स लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य, (2024) 2 सुप्रीम कोर्ट केसेस 375**, के मामले में माना है कि मुआवजे की गणना मनमाना और बेतुका नहीं होना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप एक पक्ष को दूसरे की कीमत पर अप्रत्याशित लाभ और इनाम मिले और प्रतिफल पक्ष द्वारा उठाए गए नुकसान के अनुरूप होनी चाहिए।

16. चूँकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध जुर्माने सहित 19,22,778/- रुपये का आकलन किया गया है, जिसकी पुष्टि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा की गई है, अतः भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रत्यर्थी संख्या 4 अर्थात् नोएडा को आज से 15 दिनों के भीतर याचिकाकर्ता को 19,22,778/- रुपये का भुगतान/प्रतिकर देने के लिए परमादेश की एक रिट जारी की गयी है। याचिकाकर्ता को उक्त भुगतान करने के बाद, नोएडा उक्त अवधि के अन्दर जिलाधिकारी, गौतमबुद्ध नगर को इसके बारे में सूचित करेगा।

17. नोएडा अपने विभाग के दोषी अधिकारी से उक्त राशि वसूलने के लिए स्वतंत्र है।

18. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, नोएडा द्वारा याचिकाकर्ता को प्रतिकर का भुगतान करने में विफलता की स्थिति में, जिलाधिकारी, गौतम बुद्ध नगर को निर्देश दिया जाता है कि वह नोएडा से उक्त राशि की वसूली करें और उसके बाद 15 दिनों के भीतर याचिकाकर्ता को भुगतान करें।

19. तदनुसार, रिट याचिका का **निपटान** किया जाता है।

20. नोएडा द्वारा आज से एक माह की अवधि के भीतर अनुपालन का शपथपत्र प्रस्तुत किया जाएगा। ऐसा न करने की स्थिति में, जिलाधिकारी, गौतमबुद्ध नगर को एक माह के भीतर उपर्युक्त अनुपालन का शपथपत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है।

21. दिनांक 15.05.2025 को चैंबर में सूचीबद्ध करें।

22. इस न्यायालय के रजिस्ट्रार (अनुपालन) को निर्देश दिया जाता है कि वे आज से 24 घंटे के अन्दर इस आदेश को नोएडा और जिलाधिकारी, गौतम बुद्ध नगर को सूचित करें।

(2025) 3 ILRA 271

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 20.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

सीआरपीसी की धारा 438 के अन्तर्गत आपराधिक प्रकीर्ण

अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 329 वर्ष 2025

अशोक कुमार वर्मा एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

आवेदकों के अधिवक्ता :

रत्नेश कांत अग्निहोत्री, अपर्णा द्विवेदी, उत्कर्ष प्रताप सिंह

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता :

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438- पिछले तीन वर्षों से मामले की जाँच चल रही है और आवेदक जाँच में सहयोग कर रहे हैं। हालाँकि, यह अंतिम चरण में है और जाँच अधिकारी, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 170 की गलत व्याख्या करके, आवेदकों को पकड़ने/गिरफ्तार करने के लिए हर संभव प्रयास कर रहा है। आवेदक जाँच में सहयोग करने के लिए तैयार हैं और जब भी उनकी उपस्थिति आवश्यक होगी, वे जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होंगे-सह-अभियुक्तों को पहले ही जमानत पर रिहा किया जा चुका है-आवेदकों के पक्ष में, सीमित अवधि के लिए अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक, गिरफ्तारी से सुरक्षा प्रदान की जाए। (अनुच्छेद 6, 8 और 9)

अग्रिम जमानत आवेदन का निपटारा किया गया। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

नाथू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2021(6) एससीसी 64, एमएएनयू/एससी/0360/2021

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर द्वारा प्रदत्त किया गया)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया तथा अभिलेख का परिशीलन किया गया। पारित आदेश के आलोक में, विपक्षी संख्या 2 को नोटिस जारी किये जाते हैं।
2. प्रथम जमानत आवेदन मुकदमा अपराध संख्या 79 वर्ष 2021 धारा 420, 467, 468, और 471 आईपीसी, थाना गाजीपुर, जिला लखनऊ के अन्तर्गत योजित किया गया है।
3. प्रथम सूचना रिपोर्ट की विषय-वस्तु के अनुसार, आवेदकों ने सह-अभियुक्तों के साथ मिलकर फार्मासिस्ट के रूप में पंजीकरण के प्रयोजनार्थ कथित रूप से कूटरचित प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किए हैं।
4. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट सभी प्रासंगिक दस्तावेजों का सत्यापन एवं जांच किए बिना ही दर्ज कर दी गई है।
5. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया कि आवेदकों का प्रकरण सह अभियुक्तों अर्थात् जाफर अली, अरविंद कुमार चौरसिया, मोहम्मद नदीम खान, अभिषेक कुमार अग्रवाल, अंकित कुमार अग्रवाल, संजय कुमार चौधरी, मोहन सिंह, अभिषेक सक्सेना, विक्रम सिंह, आकाश कुमार रे और संदीप सिंह और ध्रुव राज सिंह के प्रकरण के सममूल्य है, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा क्रमांकित-

दिनांक 5.8.2024, 29.2.2024, 6.8.2024, 2.9.2024, 5.9.2024, 1.10.2024, 12.11.2024, 22.7.2024, 22.10.2024, 22.10.2024, 24.10.2024 और 3.1.2025 के आदेशों के तहत अग्रिम जमानत दी गई है, जो सीआरपीसी की धारा 438 के तहत आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन में पारित किए गए हैं। क्रमशः 1737/2024, 424/2024, 1746/2024, 1992/2024, 2042/2024, 2265/2024, 2506/2024, 1600/2024, 2494/2024, 2495/2024, 2430/2024 और 2792/2024 और इस तरह वह समानता का दावा करता है।

6 . यह प्रस्तुत किया गया है कि पिछले तीन वर्षों से मामले की जाँच चल रही है और आवेदक जाँच में सहयोग कर रहे हैं। हालाँकि, यह जाँच अब अंतिम चरण में है और जाँच अधिकारी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 170 की गलत व्याख्या करके आवेदकों को पकड़ने/गिरफ्तार करने के लिए हर संभव प्रयास कर रहे हैं। आवेदक जाँच में सहयोग करने के लिए तैयार हैं और जब भी उनकी उपस्थिति की आवश्यकता होगी, वे जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित रहेंगे ।

7 . दूसरी तरफ विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया है कि जिस तरह से अपराध किया गया है, उसे देखते हुए आवेदक किसी भी संरक्षण के हकदार नहीं हैं, लेकिन मामले के तथ्यात्मक पहलुओं पर विवाद नहीं करते हैं।

8 . पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों और अभिलेखों के परिशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि कूटरचित दस्तावेज प्रस्तुत करने के समान आरोपों पर विभिन्न व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है। सह-अभियुक्तों को पहले ही जमानत पर रिहा किया जा चुका है, जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है।

9 . इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **नाथू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य**, 2021(6) एससीसी 64, एमएनयू/एससी/0360/2021 में निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, सीमित अवधि के लिए अर्थात धारा 173(2) सीआरपीसी के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक, आवेदकों के पक्ष में गिरफ्तारी से सुरक्षा प्रदान की जा सकती है।

10 . परिणामस्वरूप, आवेदक **अशोक कुमार वर्मा, विनय कुमार, जयप्रकाश विश्वकर्मा, प्रांजल सिंह, अखिलेश और रामलखन यादव** द्वारा प्रस्तुत अग्रिम जमानत आवेदन को इस निर्देश के साथ अंतिम रूप से निस्तारित किया जाता है कि धारा 173 (2) सीआरपीसी के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत होने तक, उपर्युक्त मामले में आवेदकों की गिरफ्तारी की स्थिति में, उन्हें निम्नलिखित शर्तों के अधीन संबंधित थाने के थाना प्रभारी/जांच अधिकारी की संतुष्टि के लिए 50,000/- रुपये के व्यक्तिगत बांड और समान राशि में दो जमानत प्रस्तुत करने पर अग्रिम जमानत पर तुरंत रिहा किया जाएगा:

(1) आवेदक, जब भी आवश्यक हो, पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ या किसी तथ्य की खोज के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएंगे;

(2) आवेदक, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेंगे जिससे कि वह न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से विमुख हो जाए;

(3) आवेदक, न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना देश नहीं छोड़ेंगे।

11. किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, जांच अधिकारी इस आदेश को रद्द करने/संशोधित करने के लिए इस न्यायालय से संपर्क कर सकता है।

(2025) 3 ILRA 272

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

मामला:- रिट -ए संख्या - 52 वर्ष 2025

अश्वनी कुमार श्रीवास्तव

...याचिकाकर्ता

बनाम

प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई के माध्यम से

... प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

रितेश श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव

स्थानांतरण- विकलांगता अधिनियम, 2016- आक्षेपित स्थानांतरण आदेश- याचिकाकर्ता के स्थानांतरण के अनुरोधों को बैंक द्वारा नियमित रूप से स्वीकार किया गया है- उसे बार-बार उसके विकल्प की तैनाती दी गई- उसे एक दशक से अधिक समय तक एक ही अंचल में बनाए रखा गया- यथासंभव देखभालकर्ता के रूप में समायोजित किया गया- बैंक ने याचिकाकर्ता की पत्नी, जो एक सहायक शिक्षिका है, की विकलांगता की सीमा

3.इला अश्वनी कुमार श्रीवास्तव बनाम प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई के माध्यम से 363 की सही जांच की है- वह अपना दैनिक कार्य करती है, सम्मान के साथ रहती है, और अपनी चुनी हुई जीविका में उत्कृष्टता प्राप्त कर चुकी है- याचिकाकर्ता का स्थानांतरण नियमित/चक्रीय स्थानांतरण की श्रेणी में नहीं आता है और यह उसे स्थानांतरण नीति के तहत छूट का दावा करने के हक से वंचित करता है।

डब्ल्यू.पी. खारिज। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

नीरज चतुर्वेदी बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य, 2022 (4) एडब्ल्यूसी 3722

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त किया गया)

1. चर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए निर्णय को निम्नलिखित वैचारिक ढांचे में संरचित किया जा रहा है:

I	प्रस्तावना								
II	पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ								
III	तथ्य								
IV	वैधानिक ढाँचा/कानूनी प्रावधान <table> <tr> <td>अ.</td><td>विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016</td></tr> <tr> <td>ब.</td><td>भारत सरकार का कार्यालय ज्ञापन</td></tr> <tr> <td>स.</td><td>बैंक परिपत्र</td></tr> <tr> <td>द.</td><td>स्थानांतरण: सेवा की एक घटना</td></tr> </table>	अ.	विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016	ब.	भारत सरकार का कार्यालय ज्ञापन	स.	बैंक परिपत्र	द.	स्थानांतरण: सेवा की एक घटना
अ.	विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016								
ब.	भारत सरकार का कार्यालय ज्ञापन								
स.	बैंक परिपत्र								
द.	स्थानांतरण: सेवा की एक घटना								

V	लागू वैधानिक योजना और कानूनी प्रावधानों के परस्पर प्रभाव के आलोक में देखभाल करने वालों के अधिकार और नियोक्ताओं के दायित्व
VI	निष्कर्ष

I. प्रस्तावना

2. याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 06.05.2024 के आदेश को चुनौती दी है, जिसमें याचिकाकर्ता को रानीगंज शाखा, जिला (वाराणसी क्षेत्र) से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, क्षेत्रीय कार्यालय, राजकोट में स्थानांतरित किया गया था।

II. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री रितेश श्रीवास्तव ने आक्षेपित स्थानांतरण आदेश पर आपत्ति करते हुए निम्नानुसार तर्क दिया:

I. याचिकाकर्ता अपनी पत्नी की देखभाल करने वाला है, जो दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016¹ के तहत विकलांगता से पीड़ित व्यक्ति है।

II. आक्षेपित आदेश दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के अधिदेश का उल्लंघन है। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के विभिन्न प्रावधानों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है।

III. आक्षेपित स्थानांतरण आदेश भारत सरकार द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन दिनांक 08.10.2018, बैंक परिपत्र दिनांक 28.06.2022 और बैंक की स्थानांतरण नीति दिनांक 15.03.2024 के अन्तर्गत आता है।

IV. याचिकाकर्ता, विकलांगता अधिनियम, 2016 के उपरोक्त प्रावधानों, भारत सरकार द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन दिनांक 08.10.2018, बैंक परिपत्र दिनांक 28.06.2022 और बैंक की स्थानांतरण नीति दिनांक 15.03.2024 के तहत स्थानांतरण से छूट का हकदार है।

V. याचिकाकर्ता की मां भी विकलांगता अधिनियम, 2016 के तहत उपयुक्तता से ग्रस्त है।

VI. आक्षेपित आदेश में विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है और इसे नियमित रूप से पारित किया गया था।

¹ इसके बाद विकलांगता अधिनियम, 2016 के रूप में जाना जाएगा

प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुतियाँ

4. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने प्रतिवादी बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री ज्ञान प्रकाश की सहायता से, निम्नलिखित तर्क देते हुए आक्षेपित आदेश का बचाव किया:

I. स्थानांतरण सेवा का एक परिणाम है। भारत सरकार के कार्यालय ज्ञापन में देखभाल करने वाले कर्मचारियों के स्थानांतरण पर पूर्ण प्रतिबंध नहीं लगाया गया है।

II. याचिकाकर्ता ने विकलांगता अधिनियम, 2016 की गलत व्याख्या की है। इस तरह की गलत व्याख्या का समग्र रूप से संस्थान के कामकाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

III. याचिकाकर्ता को प्रतिवादियों द्वारा वर्षों से एक देखभालकर्ता के रूप में उसके कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए और उसकी विकलांगता से ग्रस्त पत्नी को सहायता प्रदान करने के लिए यथासंभव अधिकतम सुविधा प्रदान की गई है।

IV. आक्षेपित स्थानांतरण आदेश भारत सरकार द्वारा जारी दिनांक 08.10.2018 के कार्यालय ज्ञापन, दिनांक 28.06.2022 के बैंक परिपत्र और दिनांक 15.03.2024 की बैंक स्थानांतरण नीति का उल्लंघन नहीं करता है।

V. विकलांगता अधिनियम, 2016 के तहत माँ की विकलांगता के दावे का समर्थन करने के लिए कोई दस्तावेज अभिलेख में नहीं है।

VI. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सभी प्रासंगिक पहलुओं पर उचित विचार करने के बाद आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

III. तथ्य

5. याचिकाकर्ता सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया (जिसे आगे बैंक कहा जाएगा) में एक कर्मचारी है। याचिकाकर्ता की पत्नी दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 की धारा 2(आर) के तहत परिभाषित मानक विकलांगता से ग्रस्त है। विकलांगता प्रमाण पत्र में दर्ज याचिकाकर्ता की पत्नी की विकलांगता की प्रकृति नीचे दी गई है:

“(अ) वह लोकोमोटर विकलांगता का मामला है।

(ब) उसके मामले में निदान धीरे-धीरे प्रगतिशील पेशी दुर्बलता दाहिने निचले अंग में है।

(स) दिशानिर्देशों के अनुसार, उसके दाहिने पैर में 40% (आंकड़ों में) और चालीस प्रतिशत (शब्दों में) स्थायी विकलांगता है (दिशानिर्देशों के अनुसार, भारत सरकार द्वारा दिनांक 04/01/2018 के एस.ओ. 76(ई) द्वारा अधिसूचित आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम, 2016 के अंतर्गत शामिल किसी व्यक्ति में निर्दिष्ट विकलांगता की सीमा का आकलन करने के उद्देश्य से दिशानिर्देश)”

6. याचिकाकर्ता का दावा है कि उसकी मां भी विकलांगता अधिनियम, 2016 के तहत विकलांगता से पीड़ित हैं। हालांकि, सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी याचिकाकर्ता की मां का कोई विकलांगता प्रमाण पत्र अभिलेख में नहीं है। प्रतिवादी बैंक ने याचिकाकर्ता के उसकी मां की विकलांगता के दावे का विशेष रूप से खंडन किया है। बैंक द्वारा

दिए गए तर्कों पर विचार नहीं किया गया है। अपनी मां की विकलांगता के संबंध में याचिकाकर्ता का दावा खारिज किया जाता है।

7. याचिकाकर्ता 10 साल तक वाराणसी क्षेत्र में और 15 साल तक लखनऊ क्षेत्र में तैनात रहा। याचिकाकर्ता को उसके स्वयं के अनुरोध पर इलाहाबाद स्थानांतरित कर दिया गया था। स्थानांतरण के लिए उसके दूसरे अनुरोध को भी स्वीकार कर लिया गया और उसे 22.07.2021 से वाराणसी क्षेत्र में बनाए रखा गया। आक्षेपित आदेश के तहत याचिकाकर्ता को राजकोट क्षेत्र में स्थानांतरित कर दिया गया है।

IV. वैधानिक ढाँचा/कानूनी प्रावधान

क. विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016

8. वर्तमान विवाद के लिए कानून, भारत सरकार के ज्ञापन और बैंक परिपत्रों की जांच की आवश्यकता है।

9. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016, दिव्यांगजन अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन को प्रभावी बनाने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियमित किया गया था। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 13 दिसंबर, 2006 को दिव्यांगजन अधिकारों पर अपने सम्मेलन को अपनाया था। इस सम्मेलन में दिव्यांगजनों के सशक्तिकरण हेतु निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए गए थे और दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के विधायी उद्देश्य को निर्देशित किया गया था।

(क) अंतर्निहित गरिमा, व्यक्तिगत स्वायत्तता, जिसमें अपने विकल्प चुनने की स्वतंत्रता और व्यक्तियों की स्वतंत्रता शामिल है, के प्रति सम्मान;

(ख) भेदभाव रहितता

(ग) समाज में पूर्ण और प्रभावी भागीदारी और समावेशन

(घ) भिन्नता के प्रति सम्मान और विकलांग व्यक्तियों को मानव विविधता और मानवता के अंग के रूप में स्वीकार करना;

(ङ) अवसर की समानता;

(च) सुगम्यता;

(छ) पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता;

(ज) विकलांग बच्चों की विकसित होती क्षमताओं के प्रति सम्मान और विकलांग बच्चों के अपनी पहचान बनाए रखने के अधिकार के प्रति सम्मान;

10 विकलांगता अधिनियम, 2016 के उन प्रावधानों को निकालना उचित होगा जो विवाद के लिए प्रासंगिक हैं। विकलांगता अधिनियम, 2016 की धारा 2(आर) मानक विकलांगता को इस प्रकार परिभाषित करती है:

3.इला अश्वनी कुमार श्रीवास्तव बनाम प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई के माध्यम से 367

"धारा 2(आर)" मानक विकलांगता वाले व्यक्ति" का अर्थ है कम से कम चालीस प्रतिशत निर्दिष्ट विकलांगता वाला व्यक्ति, जहाँ निर्दिष्ट विकलांगता को मापने योग्य शब्दों में परिभाषित नहीं किया गया है और इसमें वह विकलांगता वाला व्यक्ति भी शामिल है जहाँ निर्दिष्ट विकलांगता को मापने योग्य शब्दों में परिभाषित किया गया है, जैसा कि प्रमाणन प्राधिकारी द्वारा प्रमाणित किया गया है;"

11 विकलांगता अधिनियम, 2016 की धारा 2(एस) में विकलांगता की परिभाषा इस प्रकार बताई गई है:

धारा 2(एस) "विकलांग व्यक्ति" का अर्थ है दीर्घकालिक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या संवेदी विकलांगता वाला व्यक्ति, जो बाधाओं के साथ मिलकर, दूसरों के साथ समान रूप से समाज में उसकी पूर्ण और प्रभावी भागीदारी में बाधा डालता है;

12. याचिकाकर्ता की पत्नी की विकलांगता, जो उपर्युक्त प्रावधान से संबंधित है, पर ऊपर चर्चा की जा चुकी है।

13.विकलांगता अधिनियम, 2016 की धारा 2(घ) में विकलांग व्यक्ति की सहायता के लिए एक "देखभालकर्ता" का प्रावधान है और यह इस प्रकार है:

"धारा 2(घ)" "देखभालकर्ता" का अर्थ माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्यों सहित कोई भी व्यक्ति है जो भुगतान के साथ या बिना भुगतान के विकलांग व्यक्ति की देखभाल, सहायता या सहयोग प्रदान करता है।"

14."देखभालकर्ता" सीधे दिव्यांगजनों के जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। देखभालकर्ता प्रमुख सुविधा प्रदाता होते हैं जो दिव्यांगजनों को दिव्यांगजन अधिनियम, 2016 के तहत उनके अधिकारों का एहसास कराने में सक्षम बनाते हैं।

15."देखभालकर्ता" शब्द की परिभाषा व्यापक और समावेशी है। जहाँ एक ओर इस परिभाषा में परिवार के सदस्यों और माता-पिता को प्राथमिकता दी गई है, वहीं दूसरी ओर दिव्यांगजन अधिनियम, 2016 की योजना के तहत अन्य देखभालकर्ताओं को भी समान मान्यता प्राप्त है। दिव्यांगजन अधिनियम, 2016 के तहत दिव्यांगजनों के लिए देखभालकर्ता एक महत्वपूर्ण सहायता प्रणाली हैं।

16. दिव्यांगजन अधिनियम, 2016 की धारा 2(i) में "प्रतिष्ठान" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "धारा 2(i) "प्रतिष्ठान" में सरकारी प्रतिष्ठान और निजी प्रतिष्ठान शामिल हैं;"

17. विकलांगता अधिनियम, 2016 की धारा 2 (I) "उच्च सहायता" को परिभाषित करती है:

धारा 2 (एल) "उच्च सहायता" का अर्थ है गहन शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और अन्य सहायता, जिसकी आवश्यकता मानक विकलांगता वाले व्यक्ति को दैनिक गतिविधियों के लिए, सुविधाओं तक पहुँचने और शिक्षा, रोजगार, पारिवारिक और सामुदायिक जीवन तथा उपचार और चिकित्सा सहित जीवन के सभी क्षेत्रों में भाग लेने के लिए स्वतंत्र और सूचित निर्णय लेने के लिए हो सकती है;

18. दिव्यांगजनों को दिव्यांगजन अधिनियम, 2016 की धारा 2(टी) और धारा 58 के तहत उच्च सहायता की आवश्यकता वाले दिव्यांगजनों में वर्गीकृत किया गया है। प्रावधानों का सारांश इस प्रकार है:

धारा 2(टी) "उच्च सहायता की आवश्यकता वाले दिव्यांगजन" का अर्थ है धारा 58 की उपधारा (2) के खंड (ए) के तहत प्रमाणित मानदंड दिव्यांगता वाला व्यक्ति जिसे उच्च सहायता की आवश्यकता है;

धारा 58. प्रमाणन की प्रक्रिया-(1) विनिर्दिष्ट विकलांगता वाला कोई भी व्यक्ति, केंद्रीय सरकार द्वारा निर्धारित तरीके से, विकलांगता प्रमाणपत्र जारी करने के लिए अधिकारिता रखने वाले प्रमाणन प्राधिकारी को आवेदन कर सकता है।

(2) उप-धारा (1) के तहत आवेदन प्राप्त होने पर, प्रमाणन प्राधिकारी धारा 56 के तहत अधिसूचित प्रासंगिक दिशानिर्देशों के अनुसार संबंधित व्यक्ति की विकलांगता का आकलन करेगा और, यथास्थिति, ऐसे आकलन के बाद,

(क) ऐसे व्यक्ति को, केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित प्रारूप में, विकलांगता प्रमाणपत्र जारी करना; (ख) उसे लिखित रूप में सूचित करना कि उसे कोई निर्दिष्ट विकलांगता नहीं है।

(3) इस धारा के अंतर्गत जारी विकलांगता प्रमाणपत्र पूरे देश में मान्य होगा।"

19. विकलांगता अधिनियम, 2016 की धारा 2 (वाई) "उचित समायोजन" पर विचार करके विधायी मंशा को पूरा करती है ताकि विकलांग व्यक्ति दूसरों के साथ समान रूप से अपने अधिकारों का उपभोग कर सकें। यह प्रावधान नीचे पुनः प्रस्तुत है:

"धारा 2 (वाई))" उचित समायोजन "का अर्थ है, किसी विशेष मामले में असंगत या अनुचित बोझ डाले बिना, विकलांग व्यक्तियों को दूसरों के साथ समान रूप से अधिकारों का उपभोग या प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक और उचित संशोधन और समायोजन।

20. "दिव्यांग व्यक्तियों के लिए समानता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से, विकलांगता अधिनियम, 2016 की धारा 3 उपयुक्त सरकार को आवश्यक उपाय करने का आदेश देती है। साथ ही, यह प्रावधान उचित समायोजन की आवश्यकता पर भी बल देता है। प्रावधान का सार नीचे दिया गया है:

3.इला अश्वनी कुमार श्रीवास्तव बनाम प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई के माध्यम से 369

"3. समानता और भेदभाव--(1) उपयुक्त सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि दिव्यांग व्यक्तियों को समानता, सम्मान के साथ जीवन और अपनी ईमानदारी के सम्मान का अधिकार दूसरों के समान ही प्राप्त हो।

(2) उपयुक्त सरकार उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराकर दिव्यांग व्यक्तियों की क्षमता का उपयोग करने के लिए कदम उठाएगी।

(3) किसी भी दिव्यांग व्यक्ति के साथ दिव्यांगता के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा, जब तक कि यह न दर्शाया जाए कि आक्षेपित कार्य या चूक किसी वैध उद्देश्य को प्राप्त करने का एक आनुपातिक साधन है।

(4) किसी भी व्यक्ति को केवल दिव्यांगता के आधार पर उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

(5) उपयुक्त सरकार दिव्यांग व्यक्तियों के लिए उचित समायोजन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम उठाएगी।"

21. विकलांगता अधिनियम, 2016 की धारा 20 सरकारी प्रतिष्ठानों में रोजगार में भेदभाव को प्रतिबंधित करती है और सक्षम सरकार से विकलांग कर्मचारियों की नियुक्ति और स्थानांतरण के लिए नीतियां बनाने की भी अपेक्षा करती है:

"धारा 20. रोजगार में भेदभाव न करना--(1) कोई भी सरकारी प्रतिष्ठान रोजगार से संबंधित किसी भी मामले में किसी भी विकलांग व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं करेगा:

बशर्त कि सक्षम सरकार, किसी भी प्रतिष्ठान में किए जाने वाले कार्य के प्रकार को ध्यान में रखते हुए, अधिसूचना द्वारा और ऐसी शर्तों के अधीन, यदि कोई हो, किसी भी प्रतिष्ठान को इस धारा के प्रावधानों से छूट दे सकती है।

(2) प्रत्येक सरकारी प्रतिष्ठान दिव्यांग कर्मचारियों को उचित आवास और बाधा-मुक्त एवं अनुकूल वातावरण प्रदान करेगा।

(3) किसी व्यक्ति को केवल दिव्यांगता के आधार पर पदोन्नति से वंचित नहीं किया जाएगा।

(4) कोई भी सरकारी प्रतिष्ठान ऐसे कर्मचारी को, जो अपनी सेवा के दौरान दिव्यांग हो जाता है, पद से वंचित या उसकी श्रेणी में कमी नहीं करेगा:

बशर्त कि, यदि दिव्यांग होने के बाद कोई कर्मचारी अपने पद के लिए उपयुक्त नहीं है, तो उसे समान वेतनमान और सेवा लाभों के साथ किसी अन्य पद पर स्थानांतरित कर दिया जाएगा:

इसके अलावा, यदि कर्मचारी को किसी पद पर समायोजित करना संभव नहीं है, तो उसे उपयुक्त पद उपलब्ध होने तक या उसकी अधिवर्षिता की आयु प्राप्त होने तक, जो भी पहले हो, किसी अतिरिक्त पद पर रखा जा सकता है।

(5) उपयुक्त सरकार दिव्यांग कर्मचारियों की नियुक्ति और स्थानांतरण के लिए नीतियाँ बना सकती है।"

(जोर दिया गया)

"धारा 21. समान अवसर नीति- (1) प्रत्येक प्रतिष्ठान समान अवसर नीति को अधिसूचित करेगा जिसमें इस अध्याय के उपबंधों के अनुसरण में उसके द्वारा प्रस्तावित उपायों का ब्यौरा केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित तरीके से दिया जाएगा।

(2) प्रत्येक प्रतिष्ठान उक्त नीति की एक प्रति मुख्य आयुक्त या राज्य आयुक्त के पास, जैसा भी मामला हो, पंजीकृत कराएगा।"

22 . समुचित सरकार से अपेक्षित स्थानांतरण नीतियों में देखभाल करने वालों से संबंधित नीतियाँ भी शामिल हैं। उक्त स्थानांतरण नीतियों को विकलांगता अधिनियम, 2016 की योजना के अनुरूप बनाया जाना चाहिए।

IV बी. भारत सरकार का कार्यालय जापन

23. भारत सरकार ने विकलांगता अधिनियम, 2016 के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए दिनांक 08.10.2018 को कार्यालय जापन जारी किया, जिसके तहत प्रशासनिक बाधयताओं के अधीन, विकलांग व्यक्तियों और देखभाल करने वालों को नियमित स्थानांतरण/चक्रीय स्थानांतरण से छूट दी गई:

"3 दिनांक 17 अप्रैल, 2017 को दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के अधिनियमित होने के साथ ही स्थानांतरण/चक्रीय स्थानांतरण की नियमित प्रक्रिया से छूट प्राप्त करने की पात्रता के संबंध में दिनांक 6 जून, 2014, दिनांक 17 नवंबर, 2014 और दिनांक 5 जनवरी, 2016 के समसंख्यक उपर्युक्त कार्यालय जापनों के स्थान पर निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाते हैं:

(i) एक सरकारी कर्मचारी जो निर्दिष्ट विकलांगता से ग्रस्त आश्रित पुत्री/पुत्र/माता-पिता/पति/पत्नी/भाई/बहन की देखभाल करता है, जिसे प्रमाणन प्राधिकारी द्वारा दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 की धारा 2 (आर) के तहत परिभाषित मानदंड विकलांगता वाले व्यक्ति के रूप में प्रमाणित किया गया है, उसे प्रशासनिक बाधाओं के अधीन स्थानांतरण/चक्रीय स्थानांतरण के नियमित अभ्यास से छूट दी जा सकती है।

(ii) दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 की अनुसूची में परिभाषित "निर्दिष्ट दिव्यांगता" शब्द में (1) कुष्ठ रोग से ठीक हुए व्यक्ति, मस्तिष्क पक्षाघात, बौनापन, मांसपेशीय दुर्विकास और एसिड हमले के पीड़ितों सहित चलने-फिरने में अक्षमता (ii) अंधापन (iii) कम दृष्टि (iv) बधिरता (v) सुनने में कठिनाई (vi) वाणी और भाषा संबंधी दिव्यांगता (vii) बौद्धिक दिव्यांगता जिसमें विशिष्ट अधिगम दिव्यांगता और ऑटिज्म स्पेक्ट्रम विकार

3.इला अश्वनी कुमार श्रीवास्तव बनाम प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई के माध्यम से 371 शामिल हैं (viii) मानसिक बीमारी (ix) निम्न के कारण होने वाली दिव्यांगता शामिल है: (क) तंत्रिका संबंधी स्थितियां जैसे मल्टीपल स्क्लेरोसिस और पार्किंसंस रोग (ख) रक्त विकार- हीमोफीलिया, थैलेसीमिया और सिकल सेल रोग और (x) बहु दिव्यांगता (उपर्युक्त निर्दिष्ट दिव्यांगताओं में से एक से अधिक) जिसमें बधिरता अंधापन और दिव्यांगता की कोई अन्य श्रेणी शामिल है, जिसे केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है।

(iii) यहां परिभाषित "निर्दिष्ट विकलांगता" शब्द केवल सरकारी कर्मचारी द्वारा नियमित स्थानांतरण / चक्रीय स्थानांतरण से छूट प्राप्त करने के उद्देश्य के लिए लागू होता है, जो आश्रित बेटी / बेटे / माता-पिता / पति / पत्नी / भाई / बहन की देखभाल करने वाला है जैसा कि ऊपर पैरा 3 (i) में बताया गया है।

4. सभी मंत्रालयों/विभागों से अनुरोध है कि वे इन निर्देशों को अपने नियंत्रणाधीन सभी संबंधितों के संज्ञान में लाएं।

IV सी. बैंक परिपत्र

24. देखभालकर्ता को नियमित/चक्रीय स्थानान्तरण से छूट प्रदान करने वाले भारत सरकार के उपरोक्त दिशानिर्देशों को प्रतिवादी बैंक द्वारा उचित सीमाओं के साथ अपनाया गया था। स्थानांतरण नीति के प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत हैं:

“1. सभी प्रकार के स्थानांतरण पर लागू सामान्य प्रावधान:

1.1 इन मानदंडों में जो भी कहा गया है, उसके बावजूद, प्रबंधन अपने विवेक से किसी भी अधिकारी को किसी भी समय किसी भी स्थान/क्षेत्र/अंचल में, वहां रहने की अवधि की परवाह किए बिना, बैंक की प्रशासनिक/व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुसार या प्रबंधन द्वारा अपनी राय में मान्य किसी अन्य कारण के अनुसार तैनात/स्थानांतरित कर सकता है।

1.2 दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 की धारा 2(आर) के तहत परिभाषित मानदंड दिव्यांगता वाले व्यक्ति के रूप में शारीरिक रूप से विकलांग अधिकारी, मानदंड दिव्यांगता वाले व्यक्ति और ऐसे अधिकारी जो प्रमाणन प्राधिकारी द्वारा प्रमाणित 'निर्दिष्ट दिव्यांगता' के साथ आश्रित बेटी/बेटे/माता-पिता/पति/पत्नी/भाई/बहन की देखभाल करने वाला है, के स्थानांतरण/तैनाती के संबंध में, डीओपीटी के दिशा-निर्देशों के अनुसार, दिनांक 8 अक्टूबर, 2018 के ओ.एम.सं.42011/3/2014-स्था.(आरईएस) के अनुसार, बैंक प्रशासनिक बाध्यता के अधीन, समय-समय पर भारत सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों का पालन करेगा।

देखभालकर्ताओं को चक्रीय स्थानांतरण छूट को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए, उन कर्मचारियों को परिवार के अन्य सदस्यों की तुलना में प्राथमिकता देने का निर्णय लिया गया है जो आश्रित जीवनसाथी और आश्रित बच्चों की देखभाल करते हैं।

चक्रीय स्थानान्तरण:

3.1 स्केल I/II/III के अधिकारी जिन्होंने (पैरा 1.2 और 3.2 एवं 3.5 के प्रावधानों के अधीन)
- किसी शाखा में 3 वर्ष का कार्यकाल पूरा कर लिया है, उन्हें स्थान/क्षेत्र के भीतर किसी अन्य शाखा में स्थानांतरित किया जाएगा।

- प्रशासनिक पदस्थापना में 5 वर्ष का कार्यकाल पूरा कर लिया है, जिसमें तत्काल पूर्व प्रशासनिक कार्यकाल भी शामिल है, लेकिन वर्तमान कार्यालय में लगातार 5 वर्ष का प्रशासनिक कार्यकाल पूरा नहीं किया है, उन्हें उसी क्षेत्र के भीतर किसी शाखा/कार्यालय में तैनात किया जाएगा। हालाँकि, वर्तमान क्षेत्र में लगातार 5 वर्ष का प्रशासनिक कार्यकाल पूरा करने पर अधिकारी को किसी अन्य क्षेत्र में स्थानांतरित कर दिया जाएगा।

- सीएलडी/एसपीबीटीसी/सीबीओटीसी/जेडएओ/जेडओ/आरओ/एलडीएमओ/सीजीटीएमएसई सेल और किसी अन्य विभाग/कार्यालय में तैनात अधिकारी जो सीधे तौर पर ग्राहक व्यवहार से संबंधित नहीं हैं, उन्हें प्रशासनिक पदस्थापना माना जाएगा।

- एक अधिकारी के रूप में क्षेत्र में 6 वर्ष का कार्यकाल पूरा करने वाले अधिकारी को, चाहे उनका वेतनमान कुछ भी हो, किसी अन्य क्षेत्र में स्थानांतरित किया जाएगा जो अंचल/अन्य अंचल के भीतर हो सकता है।

- किसी विशेष अंचल में अधिकारी के रूप में 10 वर्ष पूरे करने के बाद, वेतनमान चाहे जो भी हो, उन्हें दूसरे अंचल में स्थानांतरित कर दिया जाएगा। हालाँकि, केन्द्रीय वृद्धि में प्रदर्शन मूल्यांकन की रैंकिंग के आधार पर, योग्यता क्रम में प्रशासनिक आवश्यकताओं को पूरा करने की सीमा तक अधिकारियों को उसी अंचल में बनाए रखा जा सकता है।

- वर्तमान क्षेत्र/अंचल में पदोन्नति पर रखे गए स्केल I, II और III के अधिकारियों को, जैसा भी मामला हो, उनके 3 वर्ष के कार्यकाल की समाप्ति तक उसी क्षेत्र/अंचल में बनाए रखा जाएगा।

- किसी भी अधिकारी को केन्द्रीय कार्यालय के महाप्रबंधक-एचसीएम की पूर्व स्वीकृति के बिना क्रमशः 3 वर्ष/5 वर्ष का कार्यकाल पूरा होने से पहले शाखा/प्रशासनिक कार्यालय से स्थानांतरित नहीं किया जाएगा।

- उपरोक्त वर्णित बातों के बावजूद, स्थानांतरण रिक्तियों, अधिकारियों की उपयुक्तता और प्रबंधन की आकस्मिकताओं के अधीन होंगे।

- वर्तमान क्षेत्र/अंचल में अपेक्षित प्रवास अवधि निर्धारित करने की अंतिम तिथि 30 जून तक होगी।

हालांकि, ग्रामीण शाखाओं में तैनात जेएमजी स्केल I के अधिकारियों को 2 वर्ष का ग्रामीण प्रवास पूरा होने के बाद स्थानांतरित किया जा सकता है ताकि उन अन्य अधिकारियों को अवसर प्रदान किया जा सके जिन्हें अभी ग्रामीण कार्यकाल पूरा करना है। इसके अलावा, संबंधित राज्य सरकार द्वारा जनजातीय क्षेत्र के रूप में घोषित

3.इला अश्वनी कुमार श्रीवास्तव बनाम प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई के माध्यम से 373 स्थान पर कार्यरत अधिकारियों को ऐसे जनजातीय क्षेत्र में 2 वर्ष के प्रवास के बाद उसी क्षेत्र के 3 स्थानों में से उनके विकल्प का स्थान दिया जा सकता है।

हालांकि, ग्रामीण/एसयू शाखा में बीएम के रूप में तैनात अधिकारियों को न्यूनतम 2 वर्ष या कार्यकाल पूरा होने तक बने रहना चाहिए।”

IV डी. स्थानांतरण: सेवा की एक घटना

25. स्थानांतरण सेवा की एक घटना है। स्थानांतरण को सेवा न्यायशास्त्र में सेवा की अनिवार्य आवश्यकता कहा जाता है। नियोक्ता को वैधानिक प्रावधानों और कानून के अन्य प्रावधानों के अधीन कर्मचारियों को स्थानांतरित करने का अधिकार है। किसी भी कर्मचारी को किसी विशेष स्थान या तैनाती पर नियुक्त होने का निहित अधिकार नहीं है। स्थानांतरण कर्मचारियों को विभिन्न परिस्थितियों और वातावरणों से परिचित कराते हैं जिससे उनकी क्षमताओं और कार्य की गुणवत्ता का निर्माण होता है। स्थानांतरण सभी कर्मचारियों को विभिन्न पदों पर कार्य करने के अवसर प्रदान करते हैं और निहित स्वार्थों के निर्माण को रोकते हैं जो अक्सर किसी कर्मचारी के एक ही स्थान या क्षेत्र में लंबे समय तक बने रहने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। स्थानांतरण की तर्कसंगत नीतियाँ संस्था के लाभ के लिए कार्य करती हैं, कर्मचारियों के हितों की रक्षा करती हैं और संगठन की दक्षता में भी योगदान करती हैं। स्थानांतरण जनहित में और संस्थागत दक्षता बढ़ाने के लिए किए जाते हैं।

V. लागू वैधानिक योजना और कानूनी प्रावधानों के परस्पर प्रभाव के आलोक में देखभालकर्ता के अधिकार और नियोक्ताओं के दायित्व:

26. विकलांगता अधिनियम, 2016 की वैधानिक योजना, भारत सरकार के ज्ञापन और बैंक परिपत्रों, नियोक्ता में निहित स्थानांतरण की शक्तियों, जिनकी पहले चर्चा की गई थी, का परस्पर प्रभाव देखभालकर्ता के अधिकारों, नियोक्ताओं के दायित्वों का निर्धारण करेगा और अंततः इस मामले के नियति को नियंत्रित करेगा।

27. विकलांगता अधिनियम, 2016, भारत सरकार द्वारा जारी दिनांक 08.10.2018 के कार्यालय ज्ञापन, दिनांक 28.06.2022 के बैंक परिपत्र और दिनांक 15.03.2024 की बैंक स्थानांतरण नीति, किसी कर्मचारी को स्थानांतरित करने के नियोक्ता के अधिकार का संयुक्त वाचन उक्त स्थानांतरण नीतियों के तहत देखभाल करने वालों के लिए स्थानांतरण से छूट के दायरे को समझने के लिए किया जाना चाहिए। भारत सरकार के कार्यालय ज्ञापन और स्थानांतरण नीति विकलांगता अधिनियम, 2016 के अनुकूल हैं और साथ में वे एक समग्र योजना का गठन करते हैं।

28. विकलांगता अधिनियम, 2016 दिव्यांगजनों के लिए उनके अधिकारों का प्रयोग करने, जीवन का आनंद लेने और उनकी क्षमताओं के विकास में समान अवसर प्रदान करने की परिकल्पना करता है। उक्त विधायी अधिनियम में यह परिकल्पना की गई है कि समग्र समाज, संबंधित सरकार, सरकारी संस्थान और अन्य

प्रतिष्ठान दिव्यांगजनों की आवश्यकताओं के प्रति पूरी तरह संवेदनशील हों और दिव्यांगजनों के अधिकारों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त सहायता प्रणालियाँ और कार्य-प्रणाली का निर्माण करें।

29. साथ ही, विकलांगता अधिनियम, 2016 नियोक्ताओं की सीमाओं को भी मान्यता देता है, जिन्हें विकलांगता अधिनियम, 2016 के लाभकारी प्रावधानों को लागू करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए।

30. अनुच्छेद 2(वाई) के अनुसार परिभाषित और विकलांगता अधिनियम, 2016 की धारा 3 और धारा 20(2) में लागू किए गए "उचित समायोजन" शब्दों का तात्पर्य यह है कि प्रतिष्ठानों/संस्थानों को विकलांग व्यक्तियों के लिए सहायता प्रणाली बनाने के लिए आवश्यक नीति समायोजन करना चाहिए ताकि वे दूसरों के साथ समान रूप से अपने अधिकारों का उपभोग कर सकें। विकलांगता अधिनियम, 2016 के तहत "देखभालकर्ता" भी सरकार/सरकारी संस्थानों द्वारा बनाई गई स्थानांतरण नीतियों के तहत "उचित समायोजन" के लाभ के हकदार हैं।

31. हालाँकि, उक्त प्रावधानों में नियोक्ता द्वारा किए जाने वाले ऐसे समायोजन/समन्वय के कार्य-क्षेत्र पर प्रतिबंध निहित हैं।

32. ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी के आठवें संस्करण में "उचित समायोजन" का अर्थ इस प्रकार है:

"उचित समायोजन। 1. किसी विकलांग व्यक्ति के लिए अनुकूलन या समायोजन हेतु की गई कार्रवाई, जो इस प्रकार से की जाती है कि कार्रवाई करने वाले पक्ष पर कोई अनावश्यक बोझ न आए। अमेरिकी विकलांगता अधिनियम के तहत, नियोक्ता को कर्मचारी की विकलांगता के लिए उचित समायोजन करना चाहिए। न्यायालयों द्वारा अनुमोदित उचित समायोजन के उदाहरणों में अतिरिक्त अवैतनिक अवकाश प्रदान करना, कर्मचारी के कार्यसूची में संशोधन करना और कर्मचारी को अधिक उपयुक्त, रिक्त पद पर पुनः नियुक्त करना शामिल है।"

33 "उचित समायोजन" वाक्यांश संबंधित प्रतिष्ठानों द्वारा स्थानांतरण नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन के लिए एक बहुत ही स्पष्ट और सुस्पष्ट विधायी मानक है। विधायिका ने सहानुभूति और व्यावहारिकता का एक सफल मिश्रण तैयार किया है। यह कानून प्रतिष्ठानों को विकलांग व्यक्तियों के लिए सहायता प्रणालियाँ बनाने के लिए बाध्य करता है, और नियोक्ताओं की बाधाओं को ध्यान में रखते हुए लाभकारी उपायों के अनुप्रयोग को सीमित करता है। यह प्रावधान दिव्यांगजनों के प्रति प्रतिष्ठानों/नियोक्ताओं की ज़िम्मेदारियों पर जोर देता है, और उक्त वर्ग के व्यक्तियों के अधिकारों की प्राप्ति के लिए नीति निर्माण और कार्यान्वयन में अनुकूलशीलता की वकालत करता है। उक्त प्रावधान उन दावों को भी रोकता है जो विकलांगता अधिनियम के लाभकारी उद्देश्य को लागू करते समय प्रतिष्ठानों/नियोक्ताओं पर अनावश्यक बोझ डालते हैं। इस प्रकार, विधायिका नियोक्ता/प्रतिष्ठान द्वारा प्रदान की जा सकने वाली समायोजन की सीमा को स्वीकार करती है।

3.इला अश्वनी कुमार श्रीवास्तव बनाम प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई के माध्यम से 375

34. उल्लेखनीय है कि दिव्यांगजनों और देखभालकर्ताओं को सहायता प्रदान करने के लिए उक्त विधायी अधिदेश को पूर्ण या गैर-परक्राम्य शर्तों में नहीं रखा गया है। प्रतिष्ठानों को "देखभालकर्ताओं" के लिए नीतियाँ बनाने की पूरी छूट दी गई है। "उचित समायोजन" का विधायी मानदंड स्वर्णिम मध्य मार्ग को अपनाता है और अधिकतम पदों के विकल्प को छोड़ देता है।

35.भारत सरकार के उक्त ज्ञापन और स्थानांतरण नीति वाले बैंक परिपत्र में उद्धृत पूर्वोक्त प्रावधान हैं कि देखभालकर्ताओं को कुछ योग्यताओं के आधार पर नियमित स्थानांतरण/चक्रीय स्थानांतरण से छूट दी जाती है।

36. भारत सरकार के उपरोक्त ज्ञापन में सरकारी नियोक्ताओं को देखभालकर्ताओं को स्थानांतरण से छूट देने हेतु नीतियाँ बनाने की आवश्यकता बताते हुए "कर सकते हैं" शब्द का प्रयोग किया गया है, और "प्रशासनिक बाधाएँ" वाक्यांश के साथ उक्त नीति की प्रयोज्यता को और सीमित कर दिया गया है। भारत सरकार के कार्यालय ज्ञापन के अनुसार, जो कर्मचारी स्थानांतरण से छूट की मांग कर रहे हैं, उन्हें अपनी आश्रित बेटी, बेटे, माता-पिता, पति/पत्नी, भाई, बहन की देखभाल करने वाला होना होगा।

37. उक्त बैंक परिपत्र में "प्रशासनिक बाधाएँ" शब्द का भी प्रयोग किया गया है, जो देखभालकर्ताओं के स्थानांतरण और छूट को विनियमित करता है। "प्रशासनिक बाधाएँ" देखभालकर्ताओं के लिए छूट नीति को परिभाषित करती हैं और उन्हें दी गई स्थानांतरण से छूट में प्रतिबंधों का उल्लेख करती हैं। उक्त "प्रशासनिक बाधाओं" में प्रतिष्ठान द्वारा प्रदत्त सार्वजनिक उद्देश्य, स्थानांतरण नीति द्वारा पोषित संस्थागत हित, जो स्थानान्तरण की नीति द्वारा पूरा किए जाते हैं, और अन्य कर्मचारियों के अधिकार भी शामिल हैं।

38. विकलांगता अधिनियम, 2016 की समय योजना, भारत सरकार का दिनांक 08.10.2018 का कार्यालय ज्ञापन और दिनांक 28.06.2022 का बैंक परिपत्र, देखभाल करने वालों के लिए स्थानांतरण पर पूर्ण प्रतिबंध या स्थायी छूट प्रदान नहीं करता है।

39. देखभाल करने वालों के स्थानांतरण पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने की योजना न बनाने के कारण तलाशने से ज्यादा दूर नहीं हैं। स्थानांतरण पर पूर्ण प्रतिबंध नियोक्ता को स्थानांतरण की शक्ति से पूरी तरह वंचित कर देगा, और संस्थागत हितों पर अनुपातहीन रूप से नकारात्मक प्रभाव डालेगा। इस प्रकार "देखभालकर्ता" के स्थानांतरण पर पूर्ण प्रतिबंध संस्था पर भारी मांगें लगाएगा और उसके कामकाज में अव्यवस्था पैदा करेगा या संस्थागत नीतियों में व्यवधान पैदा करेगा।

40 स्थानांतरण से छूट की नीति की ऐसी अतिवादी व्याख्या संस्थागत आवश्यकताओं का अतिक्रमण करेगी, संस्थानों की अपने सार्वजनिक उद्देश्य को प्राप्त करने की क्षमता को कम करेगी, अन्य कर्मचारियों के अधिकारों को नकारेगी, और अंततः सार्वजनिक हित के लिए हानिकारक होगी।

41. विधायी अधिनियम के उद्देश्य को प्रभावी बनाने और कार्यकारी नीति के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विकलांगता अधिनियम, 2016 और पूर्वोक्त भारत सरकार के जापन तथा बैंक परिपत्र को क्रमशः सामंजस्यपूर्वक पढ़ा जाना चाहिए। देखभालकर्ताओं के पक्ष में उचित समायोजन में उनके अनुरोधों को स्वीकार करना या उनकी आवश्यकताओं के अनुसार समायोजन करना शामिल है, लेकिन यह भी आवश्यक है कि नियोक्ता संस्थागत हितों की उपेक्षा न करें। "उचित समायोजन" की बाहरी सीमा तब पूरी होती है जब देखभालकर्ताओं की माँगों को स्वीकार करना संस्थागत हितों से अधिक हो जाता है या प्रतिष्ठान के लिए अनुचित कठिनाई का कारण बनता है। स्थानांतरण नीति में निहित प्रशासनिक बाधाएँ नियोक्ता को संस्थागत हितों का अतिक्रमण करने या स्वीकार्य सीमा से परे अन्य कर्मचारियों के अधिकारों का अतिक्रमण करने से भी रोकती हैं।

42. मोटे तौर पर, विकलांगता अधिनियम, 2016, उपरोक्त वैधानिक अधिदेश को ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार के कार्यालय जापन और बैंक परिपत्रों के दो दीर्घकालिक कार्रवाइयों द्वारा क्रियान्वित किया जा सकता है। उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार देखभालकर्ताओं के छूट दावों को समायोजित करना आवश्यक है। इसके साथ ही, सर्वोपरि स्थापना/संस्थागत उद्देश्य और आवश्यकताएँ, स्थानांतरण नीति से उत्पन्न हित, अन्य कर्मचारियों के अधिकार, स्थापना/संस्थागत दक्षता के हित और जनहित भी इस प्रक्रिया में परीक्षण के योग्य हैं। निर्णय में विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों और उनके देखभालकर्ताओं की आवश्यकताओं, तथा संस्थागत उद्देश्य और आवश्यकताओं की अनिवार्यताओं के बीच संतुलन बनाना होगा।

43. व्यावहारिक रूप से, इस तरह की प्रक्रिया में देखभालकर्ता द्वारा स्थानांतरण से छूट के लिए किए गए दावे पर विचार करते समय प्रासंगिक कारकों पर विचार करना आवश्यक होगा। स्थानांतरण से छूट के प्रत्येक अनुरोध पर मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचार करना होगा। ऐसी जाँच के पहले चरण में दिव्यांग व्यक्ति की स्थिति की जाँच आवश्यक होगी। अंतिम निर्णय लेते समय देखभालकर्ता के कर्तव्यों और दिव्यांग व्यक्ति को उनके द्वारा दी जाने वाली सहायता की प्रकृति को ध्यान में रखना होगा। वास्तव में, विकलांगता अधिनियम, 2016 दिव्यांगता की विभिन्न श्रेणियों को स्वीकार करता है, जिनमें वे दिव्यांगताएँ भी शामिल हैं जिन्हें सहायता की अत्यधिक आवश्यकता होती है। नियोक्ता को यह निर्धारित करना होगा कि दिव्यांग व्यक्ति देखभालकर्ता का आश्रित है या नहीं। नियोक्ता के कार्यों में दिव्यांग व्यक्तियों/देखभालकर्ताओं के प्रति सहानुभूति और दिव्यांगता अधिनियम, 2016 के लाभकारी प्रावधानों को लागू करने की प्रतिबद्धता प्रदर्शित होनी चाहिए। नियोक्ता को "देखभालकर्ता" को उसके विकल्प के स्थान पर समायोजित करने या स्थानांतरण से छूट प्रदान करने के लिए वास्तविक प्रयास करने होंगे।

44. इस प्रक्रिया में संस्था के उद्देश्य, आवश्यकताओं और जनहित को भी उचित महत्व दिया जाएगा। देखभालकर्ता द्वारा किए गए छूट अनुरोधों को बार-बार स्वीकार करना, किसी विशेष क्षेत्र में लंबे समय तक कार्यरत रहना, और कर्मचारी की व्यापक अनुभव की आवश्यकता, अंतिम निर्णय में ध्यान में रखे जाने वाले प्रासंगिक मानदंडों में से एक हैं। किसी विशेष स्थान पर देखभालकर्ता कर्मचारी की अनिश्चितकालीन नियुक्ति,

3.इला अश्वनी कुमार श्रीवास्तव बनाम प्रबंध निदेशक सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मुंबई के माध्यम से 377 स्थानांतरण की अवधारणा को रद्द कर देगी, अन्य कर्मचारियों के उक्त कार्यों के अवसरों को स्थायी रूप से समाप्त कर देगी और बैंक के संस्थागत हितों को कमजोर करेगी। छूट नीति को लागू करते समय इन महत्वपूर्ण पहलुओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

VI. निष्कर्ष:

45. पूर्वोक्त चर्चा के मददेनजर, अब यह देखा जाना बाकी है कि क्या प्रतिवादी बैंक ने इस मामले में उपर्युक्त प्रकार की कोई कार्रवाई की थी।

46. याचिकाकर्ता के स्थानांतरण संबंधी अनुरोधों को बैंक द्वारा नियमित रूप से स्वीकार किया गया है। याचिकाकर्ता को बार-बार उसके विकल्प के स्थान पर तैनाती दी गई। उसे एक दशक से भी अधिक समय तक एक ही अंचल में बनाए रखा गया था। याचिकाकर्ता को यथासंभव अधिकतम सीमा तक देखभालकर्ता के रूप में समायोजित किया गया था।

47. इसके अलावा, बैंक ने याचिकाकर्ता की पत्नी की विकलांगता की सीमा का सही ढंग से परीक्षण किया है। याचिकाकर्ता की पत्नी एक प्राथमिक विद्यालय में सहायक शिक्षिका हैं। विकलांगता से ग्रस्त होने के बावजूद, वह सहायक शिक्षिका के रूप में अपने कार्यों का निर्वहन स्वतंत्र रूप से और बिना किसी दोष के कर रही हैं। याचिकाकर्ता की पत्नी अपने दैनिक कार्य करती हैं, सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करती हैं और अपनी चुनी हुई जीविका में उत्कृष्टता प्राप्त कर चुकी हैं। याचिकाकर्ता की पत्नी की एक स्वतंत्र आय है। यह महिला समग्र समाज के लिए एक प्रेरणादायक उदाहरण हैं।

48. प्रतिवादी बैंक ने संस्था के समग्र हित और याचिकाकर्ता के आजीविका प्रलेख को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता को स्थानांतरित करने की संस्थागत आवश्यकताओं पर भी उचित ध्यान दिया है।

49. याचिकाकर्ता द्वारा भेजे गए विभिन्न स्थानांतरण अनुरोधों पर बैंक द्वारा सहानुभूतिपूर्वक विचार किया गया, जो एक नियोक्ता के दृष्टिकोण को दर्शाता है जो विकलांग व्यक्ति की जरूरतों के प्रति संवेदनशील है, और नियमित स्थानांतरण से देखभाल करने वालों को छूट देने के संबंध में विकलांगता अधिनियम, 2016, कार्यालय ज्ञापन और बैंक परिपत्र को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध है।

50. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता का स्थानांतरण नियमित/चक्रीय स्थानांतरण की श्रेणी में नहीं आता है और उसे स्थानांतरण नीति के तहत छूट का दावा करने से वंचित करता है।

51. संस्थागत हितों और व्यक्तिगत अधिकारों की प्रतिस्पर्धी मांगों को बैंक द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय उचित विचार के साथ सुव्यस्थित ढंग से संतुलित किया गया है। आक्षेपित स्थानांतरण आदेश में सभी प्रासंगिक मानदंडों को ध्यान में रखा गया है और यह निर्णय में की गई टिप्पणियों के अनुरूप है।

नियोक्ता/प्रतिवादी बैंक का आचरण याचिकाकर्ता के हितों की रक्षा के लिए "उचित समायोजन" के परीक्षण को संतुष्ट करता है। अपनी पसंद के स्थान पर आगे बने रहने के लिए याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करना प्रतिवादी बैंक की "प्रशासनिक बाधाओं" के दायरे में है। आक्षेपित आदेश विकलांगता अधिनियम, 2016 भारत सरकार के कार्यालय जापन, बैंक परिपत्र के प्रावधानों के अनुरूप है जिसमें स्थानांतरण नीति शामिल है।

52. इस न्यायालय द्वारा **नीरज चतुर्वेदी बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य 2022(4) एडब्ल्यूसी 3722** के मामले में में दिए गए निर्णय, जिस पर याचिकाकर्ता ने भरोसा किया है, का अब संदर्भ लिया जाएगा। **नीरज चतुर्वेदी (सुप्रा)** का मामला अलग है और इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता। **नीरज चतुर्वेदी (सुप्रा)** में याचिकाकर्ता की पत्नी 100% विकलांगता से पीड़ित थी। **नीरज चतुर्वेदी (सुप्रा)** में विकलांग व्यक्ति न तो काम कर रहा था और न ही स्वतंत्र वेतन प्राप्त कर रहा था।

53. आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि स्थापित नहीं की जा सकी। आक्षेपित स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

54. पूर्वगामी चर्चा के मददेनजर रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है और तदनुसार खारिज की जाती है।

55. विकलांगता अधिनियम, 2016 के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए, इन टिप्पणियों को अलग करना उचित होगा। विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों को साकार करने में देखभालकर्ताओं की महत्वपूर्ण भूमिका और नियोक्ताओं पर पड़ने वाले दायित्वों पर निर्णय में विस्तार से चर्चा की गई है। यदि देखभालकर्ताओं का स्थानांतरण होता है, तो संबंधित नियोक्ताओं को विकलांग व्यक्तियों के लिए वैकल्पिक देखभालकर्ताओं की सुविधा प्रदान करने या उन्हें नई तैनाती स्थल पर सुचारू रूप से स्थानांतरित करने की व्यवहार्यता का पता लगाना चाहिए।

56. इस आदेश की प्रति संबंधित नियोक्ताओं, अर्थात् प्रमुख सचिव, बेसिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश सरकार और प्रबंध निदेशक, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, के सम्मुख प्रस्तुत की जाए ताकि उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में देखभालकर्ताओं के संबंध में एक नीति विकसित करने पर विचार किया जा सके। यदि ऐसी नीति विकसित की जाती है, तो याचिकाकर्ता और उसकी पत्नी इसके लाभों के हक्दार होंगे।

(2025) 3 ILRA 285

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार

रिट - ए संख्या 122 वर्ष 2025

श्रीमती मैमुना बेगम

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

कालेंद्र प्रसाद, धर्मेन्द्र कुमार

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता :

सी.एस.सी.

चिकित्सा बिलों की प्रतिपूर्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर वापस कर दिया गया है कि इसे नियमों के तहत निर्धारित 90 दिनों की अवधि के भीतर प्रस्तुत नहीं किया गया था - यदि किसी कर्मचारी की उपचार के दौरान मृत्यु हो जाती है - तो उसकी पत्नी/उत्तराधिकारियों को तकनीकी कारणों से परेशान नहीं किया जाना चाहिए - ऐसे नियम का कभी-कभी सख्ती से अनुपालन के लिए रखा जा सकता है, जहां कर्मचारी जीवित है - लेकिन जहां कर्मचारी की उपचार के दौरान मृत्यु हो गई है - ऐसे नियमों को चिकित्सा बिलों के वास्तविक दावों की प्रतिपूर्ति में बाधा डालने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए - यह प्रावधान प्रकृति में निर्देशिका के रूप में आयोजित करने के लिए उत्तरदायी है।

डब्ल्यू.पी. निपटान किया गया। (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेखों का परिशीलन किया गया।
2. याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से चिकित्सा बिलों की प्रतिपूर्ति पर पुनर्विचार करने का अनुरोध किया है, जो पहले समिति को भेजे गए थे, लेकिन उन्हें केवल विलंब से प्रस्तुत करने के आधार पर वापस कर दिया गया था।
3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता एक विधवा है, इसलिए प्राधिकारी को मामले में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए था, क्योंकि याचिकाकर्ता के पति की उपचार के दौरान मृत्यु हो गई थी, विधवा को गहरा सदमा लगा था और वह कुछ समय बाद ही ठीक हो सकी।
4. दिनांक 17.12.2024 के पत्र के अवलोकन से मुझे पता चला कि प्रतिपूर्ति के लिए याचिकाकर्ता का दावा केवल इस आधार पर वापस कर दिया गया है कि इसे नियमों के तहत निर्धारित 90 दिनों की अवधि के भीतर प्रस्तुत नहीं किया गया था।
5. मेरे विचार से, यदि किसी कर्मचारी की उपचार के दौरान मृत्यु हो जाती है, तो उसकी पत्नी/उत्तराधिकारियों को तकनीकी कारणों से परेशान नहीं किया जाना चाहिए। ऐसे नियम जो प्रतिपूर्ति के लिए चिकित्सा बिल जमा

करने के लिए निर्धारित करते हैं, कभी-कभी सख्ती से अनुपालन के लिए रखा जा सकता है, जहाँ कर्मचारी जीवित है, लेकिन यदि कर्मचारी की उपचार के दौरान मृत्यु हो जाती है, तो उसके उत्तराधिकारियों के मामले में, ऐसे नियमों को चिकित्सा बिलों के वास्तविक दावों की प्रतिपूर्ति में रुकावट नहीं बनने दिया जाना चाहिए। यह प्रावधान प्रकृति में निर्देशिका के रूप में आयोजित करने के लिए उत्तरदायी है।

6. मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि जहाँ कोई कर्मचारी और उसके उत्तराधिकारी सेवा के कुछ आकस्मिक लाभों के हकदार हैं, वहाँ परिसीमा कानून लागू करके विलंब को रुकावट के रूप में संचालित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इस न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई प्रावधान नहीं रखा गया है कि 90 दिनों के बाद प्रतिपूर्ति के दावों को अनिवार्य रूप से अस्वीकार कर दिया जाएगा। इसलिए, चिकित्सा बिल वापस करने में प्राधिकारियों द्वारा दिए गए कारण, इस प्रकार, मान्य नहीं किए जा सकते।

7. उपरोक्त अवलोकन और निर्णय के मद्देनजर, यह न्यायालय याचिकाकर्ता को चार सप्ताह की अवधि के भीतर कार्यकारी अभियंता, लोक निर्माण विभाग, रायबरेली के समक्ष फिर से चिकित्सा बिल प्रस्तुत करने का निर्देश देता है, और यदि चिकित्सा बिल उपरोक्त निर्देशानुसार प्रस्तुत किए जाते हैं, तो संबंधित प्रत्यर्थी, इस वक्त, चिकित्सा प्रतिपूर्ति बिलों की प्रस्तुति की तारीख से दो सप्ताह की अवधि के भीतर उचित निर्णय लेकर प्रासंगिक नियमों के अनुसार उन्हें मंजूरी देगा।

8. इस याचिका का निपटान उपरोक्तानुसार किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 286

अपील क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला

विशेष अपील संख्या: 703 वर्ष 2024

उ.प्र.राज्य एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

महेंद्र पालीवाल एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता:

सी.एस., तेज भानु पांडेय

प्रत्यर्थागण के अधिवक्ता:

कुनाल शाह, प्रभाकर अवस्थी, शैलेंद्र कुमार गुप्ता

सिविल विधि - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 - अध्याय VIII - नियम 5 - उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक विद्यालय (जूनियर हाई स्कूल) (शिक्षकों की नियुक्ति एवं सेवा की शर्तें) नियमावली, 1978 - नियम 10 एवं 10(1) - अंतः न्यायालीय अपील - जूनियर हाई स्कूल में सहायक अध्यापक (अंग्रेजी) के एक स्वीकृत पद के रिक्त हो जाने पर - प्रबंधन समिति ने अनुमति मांगी - बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा अनुमति प्रदान की गई - विज्ञापन प्रकाशित हुआ - भर्ती प्रक्रिया प्रारंभ हुई - अभ्यर्थियों ने आवेदन किया - चयन प्रक्रिया पूरी होने पर याचिकाकर्ता/ प्रत्यर्थी संख्या 1 का नाम चयन समिति द्वारा अनुशंसित किया गया - बेसिक शिक्षा अधिकारी ने चयन को स्वीकृति देने से यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया, कि 1978 के नियमों के नियम 10 का पालन नहीं किया गया - नियम के तहत तीन अभ्यर्थियों के नाम अनुशंसित किए जाने चाहिए थे, जबकि केवल दो नाम भेजे गए - याचिकाकर्ता ने इस निर्णय को चुनौती दी - रिट याचिका स्वीकार की गई - विधिक सूक्तियों का अनुप्रयोग - "डॉक्ट्राइन ऑफ इम्पॉसिबिलिटी" (असंभवता का सिद्धांत) अर्थात् "लेक्स नॉन काजिट एड इम्पॉसिबिलिया" (कानून असंभव को करने हेतु बाध्य नहीं करता) तथा "नेमो टेनेएटर एड इम्पॉसिबिलिया" (कोई भी व्यक्ति असंभव कार्य करने के लिए बाध्य नहीं है) - न्यायालय ने पाया कि - यह नियम आज्ञापक नहीं बल्कि निर्देशात्मक है, तथा जिस शासनादेश का उल्लेख किया गया, वह विज्ञापन जारी होने के काफी बाद जारी हुआ था, अतः वह इस मामले में लागू नहीं होता - तदनुसार, प्रबंधन समिति के लिए तीन से अधिक अभ्यर्थियों के नाम भेजना असंभव था क्योंकि साक्षात्कार हेतु केवल एक ही अभ्यर्थी उपस्थित हुआ था - निर्णय: विशेष अपील खारिज की गई, क्योंकि पूर्ववर्ती निर्णय को चुनौती नहीं दी गई थी और उसमें प्रतिपादित विधिक सिद्धांतों को राज्य द्वारा स्वीकार कर लिया गया था - अतः न्यायालय ने चयन प्रक्रिया की वैधता को बरकरार रखा - अपील तदनुसार खारिज। (पैरा - 11, 12, 13)

अपील खारिज। (ई-11)

उद्धृत वादों की सूची:

1. नीलिमा श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 2021 SC 3884; निशीथ राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2018) 3 ए.एल.एल. एल.जे 683
2. श्रीमती रानी बनाम उप निदेशक (संशोधन), 1959 आर.डी 102 :ए.आई.आर 1959 ए.एल.एल 525
3. मध्य प्रदेश राज्य बनाम नर्मदा बचाओ आंदोलन एवं अन्य, ए.आई.आर 2011 एस.सी.1989

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

एवं

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला द्वारा निर्णित)

1. जब जूनियर हाई स्कूल, सायर, मौदाहा, जनपद हमीरपुर नामक संस्था में अंग्रेजी विषय के सहायक अध्यापक के स्वीकृत पद पर रिक्ति हुई, तब प्रबंधन समिति ने उक्त पद पर भर्ती की कार्यवाही प्रारंभ करने हेतु बेसिक शिक्षा अधिकारी से अनुमति मांगी। सहायक अध्यापक के पद पर भर्ती हेतु अनुमति दिनांक 18.05.2018 के आदेश द्वारा प्रदान की गई। इसके अनुपालन में, 23.05.2018 को व्यापक प्रसार वाले समाचार पत्रों में विज्ञापन प्रकाशित किए गए। याचिकाकर्ता / प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अन्य अभ्यर्थियों के साथ साक्षात्कार हेतु आवेदन किया और चयन की विधिवत प्रक्रिया के उपरांत, दिनांक 12.03.2019 की अनुशंसा द्वारा याचिकाकर्ता का नाम चयन हेतु अनुशंसित किया गया। चयन समिति ने, जिसमें विद्यालय का प्रधानाचार्य, संस्था की प्रबंधन समिति का प्रबंधक तथा बेसिक शिक्षा अधिकारी के नामित प्रतिनिधि के रूप में खंड शिक्षा अधिकारी सम्मिलित थे, आवश्यक अनुशंसा की। हालाँकि, जब बेसिक शिक्षा अधिकारी ने दिनांक 23 नवम्बर 2021 को यह कहते हुए याचिकाकर्ता / प्रत्यर्थी संख्या 1 के चयन को स्वीकृति देने से अस्वीकार कर दिया कि चयन समिति द्वारा अपनाई गई चयन प्रक्रिया 1978 के उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक विद्यालय (जूनियर हाई स्कूल) (शिक्षकों की नियुक्ति एवं सेवा की शर्तों) नियमावली के नियम 10(1) के प्रावधानों के विपरीत थी – क्योंकि चयन समिति द्वारा चयनित अभ्यर्थियों की पैनल में नियम 10 के अनुसार अनिवार्य रूप से 3 नाम भेजे जाने की आवश्यकता थी जबकि केवल 2 नाम भेजे गए – तब इसके विरुद्ध रिट याचिका संख्या. रिट-ए सं. 404/2022 (महेंद्र पालीवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 4) दायर की गई।

2. चयन की प्रक्रिया नियम 10(1), नियमावली 1978 में वर्णित है, और चूँकि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान नियम 10, नियमावली 1978 की ओर आकर्षित किया, अतः उसे यहां पुनः उद्धृत किया जा रहा है –

“10. चयन की प्रक्रिया.

(1) चयन समिति उन अभ्यर्थियों का साक्षात्कार लेने के उपरांत, जो इस उद्देश्य से निर्धारित तिथि पर उसके समक्ष उपस्थित हों – जिसकी सूचना सभी अभ्यर्थियों को विधिवत दी जाएगी – ऐसे तीन अभ्यर्थियों के नाम, जिन्हें नियुक्ति हेतु उपयुक्त पाया गया हो, यथासंभव वरीयता के क्रम में एक सूची तैयार करेगी।

(2) उपर्युक्त उपखंड (1) के अंतर्गत तैयार की गई सूची में अभ्यर्थियों की जन्मतिथि, शैक्षिक योग्यता तथा शिक्षण अनुभव का विवरण भी अंकित होगा तथा उस पर चयन समिति के सभी सदस्यों के हस्ताक्षर होंगे।

(3) चयन समिति उक्त सूची को तथा समिति की कार्यवाही विवरणिका को यथाशीघ्र प्रबंधन को अग्रेषित करेगी।

(4) प्रबंधक उक्त प्रपत्र प्राप्त होने की तिथि से एक सप्ताह की अवधि के भीतर सूची की एक प्रति जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को भेजेगा।

(5) (i) यदि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि—”

(क) चयन समिति द्वारा अनुशंसित अभ्यर्थी उस पद के लिए नियत न्यूनतम शैक्षिक अर्हताएँ रखते हों;

(ख) प्रधानाचार्य या सहायक अध्यापक, जैसा भी मामला हो, के चयन हेतु नियमों में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया हो, तो जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी चयन समिति द्वारा की गई अनुशंसा को स्वीकृति प्रदान करेगा और उपर्युक्त उपखंड (4) के अंतर्गत अभिलेख प्राप्त होने की तिथि से दो सप्ताह के भीतर अपना निर्णय प्रबंधन को सूचित करेगा।

(ii) यदि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी उपर्युक्त के अनुसार संतुष्ट नहीं होता है, तो वह अभिलेख प्रबंधन को यह निर्देश देते हुए वापस करेगा कि प्रकरण का पुनर्विचार चयन समिति द्वारा किया जाए।

(iii) यदि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी उपर्युक्त उपखंड (4) के अंतर्गत अभिलेख प्राप्त होने की तिथि से एक माह के भीतर अपना निर्णय संप्रेषित नहीं करता है, तो यह माना जाएगा कि उसने चयन समिति द्वारा की गई अनुशंसाओं को स्वीकृति प्रदान कर दी है।

3. रिट याचिका संख्या रिट-ए सं. 404/2022, जिसमें पक्षकारों द्वारा प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर किए गए थे, दिनांक 11.07.2022 के आदेश द्वारा स्वीकार की गई। उक्त आदेश द्वारा दिनांक 23.11.2021 का आदेश निरस्त किया गया तथा जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को याची के चयन को स्वीकृति प्रदान करने संबंधी प्रकरण पर पुनः विचार करने हेतु परमादेश (न्यायादेश) जारी किया गया।

मामला पुनर्विचार हेतु भेजे जाने के उपरांत, बेसिक शिक्षा अधिकारी ने पुनः विचार करते हुए दिनांक 14.11.2022 के आदेश द्वारा एक बार फिर संस्था की प्रबंधन समिति द्वारा की गई नियुक्ति को अस्वीकृत कर दिया।

तदुपरांत, याची ने पुनः उक्त आदेश दिनांक 14.11.2022 को चुनौती देते हुए रिट-ए सं. 19311/2023 दायर की।

जब वह रिट याचिका दिनांक 10.01.2024 को स्वीकार कर ली गई, तो वर्तमान विशेष अपील उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य द्वारा मुख्यतः निम्न दो आधारों पर दायर की गई –

i. नियमावली 1978 के नियम 10 के अनुसार चयन समिति द्वारा साक्षात्कार उपरांत चयन समिति को उन अभ्यर्थियों की एक चयन सूची के माध्यम से जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को सूचित करना आवश्यक था, जिसमें यथासंभव वरीयता क्रम में तीन अभ्यर्थियों के नाम शामिल होने चाहिए थे, जिन्हें रिक्त पद पर नियुक्ति हेतु उपयुक्त पाया गया हो।

अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि 1978 की नियमावली के नियम 10 की भाषा आज्ञापक स्वरूप की है, और यदि तीन से कम नाम भेजे जाते हैं, तो संपूर्ण चयन प्रक्रिया शून्य एवं अवैध हो जाएगी।

ii. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री तेज भानु पांडेय ने यह भी प्रस्तुत किया कि दिनांक 31.10.2019 के शासनादेश के अनुसार संपूर्ण चयन प्रक्रिया में परिवर्तन किया जा चुका था, अतः दिनांक 23.05.2018 को प्रकाशित विज्ञापन के आधार पर की गई नियुक्ति विधि सम्मत नहीं मानी जा सकती।

1. याचिकाकर्ता/ प्रत्यर्थी की ओर से प्रस्तुत अधिवक्ता श्री कुनाल शाह ने विशेष अपील का विरोध किया तथा एकल न्यायाधीश के आदेश का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि यह विशेष अपील कतई विचारणीय नहीं है क्योंकि इससे पहले उच्च न्यायालय ने, दिनांक 11.07.2022 के अपने आदेश में यह स्पष्ट रूप से निर्णय दिया था कि प्रतिवादियों द्वारा अपनाई गई चयन प्रक्रिया में कोई त्रुटि नहीं थी। उच्च न्यायालय ने यह माना था कि जब चयन समिति के समक्ष केवल दो ही अभ्यर्थी उपलब्ध थे, तो उनके सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद “तीन नाम” भेजा जाना संभव नहीं था। इस प्रकार, उन्होंने तर्क दिया कि जब एक बार प्रत्यर्थीगण ने उच्च न्यायालय के दिनांक 11.07.2022 के आदेश को स्वीकार कर लिया था, तथा उसके विरुद्ध न तो कोई विशेष अपील और न ही सर्वोच्च न्यायालय में कोई अपील दायर की, तो यह स्पष्ट है कि राज्य-अपीलकर्ता (यूपी राज्य) ने माननीय एकल न्यायाधीश के आदेश तथा उसमें प्रतिपादित विधिक सिद्धांतों को स्वीकार कर लिया था। उन्होंने यह भी कहा कि माननीय एकल न्यायाधीश के 11.07.2022 के निर्णय में स्पष्ट रूप से यह घोषित किया गया था कि 1978 की नियमावली का नियम 10 निर्देशात्मक प्रकृति का है, आज्ञापक का नहीं। और जब साक्षात्कार की तिथि पर चयन हेतु आवेदन करने वाले 7 अभ्यर्थियों में से केवल दो अभ्यर्थी ही उपस्थित हुए थे, जिसमें याचिकाकर्ता भी शामिल था – तो नियम 10(1) के अनुसार चयन समिति केवल उन्हीं दो अभ्यर्थियों के नाम अग्रेषित कर सकती थी जो समिति के समक्ष साक्षात्कार हेतु उपस्थित हुए थे। इस प्रकार, “यथासंभव” की अवधारणा पूर्ण रूप से इस चयन प्रक्रिया में अनुपालित की गई थी, क्योंकि चयन समिति ने उपलब्ध दो अभ्यर्थियों के ही नाम अनुशंसित किए थे।

2. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने अपने इस तर्क को सुदृढ़ करते हुए कि याचिकाकर्ता ने एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए सं. 404 of 2022 में दिए गए दिनांक 11.07.2022 के निर्णय और आदेश को स्वीकार करके अपील दायर करने के अधिकार का अभित्याग कर दिया था, सर्वोच्च न्यायालय के नीलिमा श्रीवास्तव बनाम उ.प्र. राज्य., ए.आई.आर 2021एस.सी 3884 निर्णय पर विश्वास किया – विशेष रूप से उन्होंने अनुच्छेद 31, 32, 33, 34, 35 एवं 36 का उल्लेख किया। अतः उन्हें यहाँ पुनः उद्धृत किया जा रहा है –

“31. उच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने ऐसे कार्यवाही की मानो वह 23-01-2006 को दिए गए विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के [नीलिमा श्रीवास्तव बनाम उ.प्र. राज्य., डब्लू पी (एस एस) ए.एल.एल सं० 7890/2003, दिनांक 23-01-2006] के विरुद्ध अपील सुन रही हो, जबकि वह निर्णय पहले ही अंतिम रूप से सुनिश्चित हो चुका था।” “...न्यायालय के नियमों के अंतर्गत दायर की गई अपील वास्तव में 15-05-2014 के उस निर्णय के विरुद्ध थी, जो नीलिमा श्रीवास्तव बनाम उ.प्र. राज्य [2014 एस. सी. सी ऑनलाइन ए.एल.एल 16618] में पारित हुआ था। यह विधि का सुप्रतिष्ठित सिद्धांत है कि लेटर्स पेटेंट अपील, जो कि रिट याचिका की निरंतरता में होती है, इसका उपयोग उसी उच्च न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती वाद-प्रक्रिया में पारित निर्णय को परीक्षा रूप से

निरस्त करने के लिए नहीं किया जा सकता – विशेष रूप से तब जब रेस ज्यूडिकेटा (पूर्व निर्णय)और डॉन्ट्रिन ऑफ फाइनैलिटी (अंतिमता के सिद्धांत) स्पष्ट रूप से लागू होते हों।

32. बहुमत के आधार पर, नरेश श्रीधर मिराजकर बनाम महाराष्ट्र राज्य [1966 एस. सी. सी ऑनलाइन एस. सी 10 : ए.आई.आर 1967 एस. सी 1] में इस विषय पर निम्न विधि प्रतिपादित की गई है : (ए.आई.आर पृष्ठ 11, अनुच्छेद 38)

“38. ... जब कोई न्यायाधीश उसके समक्ष प्रस्तुत मामलों पर निर्णय करता है, तो वह सबसे पहले उन तथ्यों से संबंधित प्रश्नों का निर्णय करता है जिन पर पक्षकारों में विवाद होता है, और उसके बाद वह उन तथ्यों पर संबंधित विधि को लागू करता है। न्यायाधीश द्वारा दर्ज किए गए तथ्यात्मक निष्कर्ष सही हैं या गलत, और उनके द्वारा निकाला गया विधिक निष्कर्ष किसी त्रुटि से ग्रसित है या नहीं – यह सब तब विचार और निर्णय किया जा सकता है जब न्यायाधीश के निर्णय से पीड़ित पक्ष वह मामला अपीलीय न्यायालय के समक्ष ले जाए।”

33. रुपा अशोक हुर्रा बनाम अशोक हुर्रा [(1999) 2 एस. सी. सी 103] में, समान मुद्दे पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने यह कहा कि जिस निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अंतिम रूप दिया जा चुका हो, उसका पुनर्विचार सामान्यतः संभव नहीं है। इस न्यायालय द्वारा विधि के प्रश्न पर दिया गया निर्णय अंतिम एवं बाध्यकारी होता है और आगामी मामलों में इस न्यायालय पर भी लागू होता है। न्यायालय अपने ही निर्णय के विरुद्ध अपील के रूप में नहीं बैठ सकता।

34. भारत संघ बनाम एस.पी.शर्मा [(2014) 6 एस. सी. सी 351] में, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों वाली पीठ ने निम्नलिखित प्रकार से निर्णय दिया : (एस. सी. सी पृ. 389, पैरा 76) ...”

“76. किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय को गौण कार्यवाहियों में चुनौती नहीं दिया जा सकता, क्योंकि यदि ऐसा करने की अनुमति दी जाए तो ‘अव्यवस्था और अराजकता फैल जाएगी और न्यायिक कार्यवाही की अंतिमता का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।”

35. इस प्रकार यह भली-भांति स्थापित विधि का सिद्धांत है कि पक्षकारों के लिए न्यायालय के अंतिम निर्णयों को पुनः खोलना स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि ऐसा करना न केवल न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा बल्कि न्याय प्रशासन पर व्यापक प्रतिकूल प्रभाव डालेगा।

36. यह निर्विवाद है कि माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 15-5-2014 को दिए गए निर्णय [नीलिमा श्रीवास्तव बनाम उ.प्र. राज्य., 2014 एस. सी. सी ऑनलाइन ए.एल.एल 16618] के अनुपालन में, दिनांक 31-10-2015 के आदेश द्वारा प्रतिवादियों ने प्रार्थी की सेवाओं को नियमित कर दिया था, जो कि एल.पी.ए. (लेटर्स

पेटेंट अपील) की कार्यवाही के परिणाम के अधीन था, और अब अपीलकर्ता लगभग 33 वर्ष की सतत सेवा के उपरांत अधिवार्षण की आयु प्राप्त कर सेवानिवृत्त हो चुके हैं।

”

6. इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि नियम, 1978 के नियम 10 में प्रयुक्त शब्द "यथासंभव" किसी भी स्थिति में चयन समिति को यह अनिवार्य रूप से निर्देशित नहीं करते कि यदि इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि यदि साक्षात्कार की निर्धारित तिथि पर, चयन समिति के समक्ष उपस्थित होने हेतु 7 अभ्यर्थियों को सूचित किए जाने के बावजूद केवल 2 अभ्यर्थी ही उपस्थित हुए, तो ऐसी स्थिति में चयन प्रक्रिया को त्यागने के लिए नियम, 1978 के नियम 10 में प्रयुक्त शब्द "यथासंभव" चयन समिति पर कोई अनिवार्य प्रतिबंध नहीं लगाते।

7. याचिकाकर्ता- प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता का कहना है कि "यथासंभव" शब्द का आशय यह है कि चयन समिति को तीन नाम भेजने के सिद्धांत का पालन करना चाहिए, जब तक कि तीन अभ्यर्थियों के नाम भेजना असंभव न हो जाए। वर्तमान मामले में अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब 7 व्यक्तियों को साक्षात्कार हेतु बुलाया गया था, किंतु केवल 2 ही साक्षात्कार हेतु उपस्थित हुए, तो चयन समिति के लिए तीन या अधिक व्यक्तियों के नाम भेजना असंभव था।

याचिकाकर्ता- प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने इस विधिक सिद्धांत के समर्थन में इस न्यायालय के निर्णय **श्रीमती रानी बनाम उप निदेशक (समेकन), 1959 आर.डी 102 : ए.आई.आर 1959 ए.एल.एल 525** पर विश्वास किया। उस निर्णय के प्रासंगिक अंश को निम्नवत् पुनरुत्पादित किया जा रहा है :-

“यह सत्य है कि प्रत्येक धारा में ‘यथासंभव’ शब्द का प्रयोग किया गया है। इस वाक्यांश का वास्तविक अर्थ यह है कि सिद्धांतों का पालन किया जाए, जब तक कि मामले की विशेष परिस्थितियों में उनका पालन करना संभव न हो। यह योग्यता इसलिए अत्यावश्यक थी क्योंकि इस राज्य में विद्यमान विशेष परिस्थितियों में अनिवार्य समेकन की प्रक्रिया अत्यंत कठिन एवं जटिल है। सदियों की प्रक्रिया से भूमि के विखंडन की स्थिति ऐसी हो गई है कि सीधे मार्ग से पुनः समेकन की ओर लौटना संभव नहीं है। जो कार्य एक गाँव में किया जा सकता है, वह दूसरे गाँव में संभव हो यह आवश्यक नहीं। अतः समेकन की तीव्र आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इन योग्यता सूचक शब्दों को जोड़ना आवश्यक था।”

8. याचिकाकर्ता- प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने "लेक्स नॉन काजिट एड इम्पोसिबिलिया" के सिद्धांत पर भी विस्तार से प्रकाश डाला, जिसका अर्थ है कि विधि किसी व्यक्ति को वह कार्य करने के लिए बाध्य नहीं करता जो वह कर ही नहीं सकता। इसी तरह उन्होंने इस सिद्धांत पर भी विश्वास किया – "इम्पोसिबिलियम नूला ऑब्लिगेसियो इस्ट" अर्थात् विधि किसी व्यक्ति से असंभव कार्य करने की अपेक्षा नहीं करता तथा "नेमो टेनेटर एड इम्पोसिबिलिया" जिसका अर्थ है कि किसी को भी असंभव कार्य करने हेतु बाध्य नहीं किया जा सकता।

इन तीनों सिद्धांतों (maxims) को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करते हुए याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के अधिवक्ता ने मूलतः यह तर्क दिया कि जब चयन समिति ने 7 अभ्यर्थियों को साक्षात्कार हेतु बुलाया था और केवल 2 ही उपस्थित हुए, तो दो से अधिक नाम भेजना व्यावहारिक रूप से पूर्णतया असंभव था।

9. इस संदर्भ में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने *राज्य बनाम नर्मदा बचाओ आंदोलन एवं अन्य (म. प्र. राज्य बनाम नर्मदा बचाव आंदोलन एवं अन्य)*, ए.आई.आर 2011 एस.सी 1989, में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास किया। इस निर्णय के अनुच्छेद संख्या 36, 38 और 39 पर उन्होंने विशेष रूप से बल दिया। इन अनुच्छेदों का संबंधित भाग निम्नलिखित है:

“36. न्यायालय सरकार द्वारा लिए गए किसी नीति-निर्णय को केवल इस आधार पर निरस्त नहीं कर सकता कि उसे प्रतीत होता है कि कोई अन्य निर्णय अधिक न्यायसंगत, अधिक वैज्ञानिक, अधिक तार्किक या अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण होता। नीतियों की बुद्धिमत्ता और उपयुक्तता सामान्यतः न्यायिक पुनर्विलोकन के अंतर्गत नहीं आती, जब तक कि वह नीति वैधानिक या संवैधानिक प्रावधानों के विपरीत न हो, या मनमानी, तर्कहीन या शक्ति के दुरुपयोग की श्रेणी में न आती हो। (देखें – *राम सिंह विजय पाल सिंह बनाम उ०प्र राज्य* [(2007) 6 एस.सी.सी 44], *विलिनोर ईआरकाई पदुकप्पू मैययम बनाम भारत संघ*)” [(2009) 7 एस.सी.सी 561] तथा *केरल राज्य बनाम पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबरटिस* [(2009) 8 एस.सी.सी 46]।)

“यथासंभव”

38. उपर्युक्त वाक्यांश अनुकूलनशीलता प्रदान करता है तथा संबंधित प्राधिकरण को इस स्थिति में शक्ति देता है कि जब सामान्य प्रक्रिया सुचारु रूप से लागू न हो सके तो वह विशेष परिस्थितियों का समाधान कर सके। यह वाक्यांश निषेधात्मक प्रकृति का नहीं माना जा सकता। बल्कि ये शब्द यह दर्शाते हैं कि संबंधित प्राधिकरण के पास विवेकाधिकार निहित है – यह बाध्यता नहीं है। इस संबंध में कोई कठोर और निश्चित नियम नहीं होता, क्योंकि ये शब्द प्राधिकरण को विवेक का विकल्प प्रदान करते हैं।

एक बार जब प्राधिकरण अपना विवेकाधिकार प्रयोग कर लेता है, तो न्यायालय को उस विवेक/निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जब तक कि वह स्पष्ट रूप से मनमाना न हो। (देखें – *इरिडियम इंडिया टेलीकॉम लिमिटेड बनाम मोटोरोला आइ.एन.सी.* [(2005) 2 एस.सी.सी 145 : ए.आई.आर 2005 एस.सी 514] और *हाई कोर्ट ऑफ ज्यूडिकेचर फॉर राजस्थान बनाम वीना वर्मा* [(2009) 14 एस.सी.सी 734 : (2010) 1 एस.सी.सी (L&S) 452 : ए.आई.आर 2009 एस.सी 2938]।)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह वाक्यांश केवल यही अर्थ देता है कि सिद्धांतों का पालन किया जाए, जब तक कि किसी मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में ऐसा करना संभव न हो।

“डॉक्ट्राइन ऑफ इम्पोसिबिलिटी” (असाध्यता का सिद्धांत)

39. न्यायालय को निम्न सिद्धांतों के प्रयोग के दायरे को समझना और विचार करना होता है –लेक्स नॉन काजिट एड इम्पोसिबिलिया (अर्थात् विधि किसी व्यक्ति को वह करने के लिए बाध्य नहीं करता जिसे वह कर ही न सके); इम्पोसिबिलियम नूला ऑब्लिगोसियो इस्ट (विधि किसी पक्ष से असंभव कार्य करने की अपेक्षा नहीं करता); तथा इंपोटेंसिया ऐक्सक्यूसेट लीगम – इस सीमित अर्थ में कि यदि किसी व्यक्ति के पास किसी अनिवार्य विधिक प्रावधान का पालन करने या किसी निषेधात्मक कार्य से बचने की प्राकृतिक या अपरिहार्य असमर्थता हो।

ये सभी उक्त कथन रोमन विधि के सिद्धांत नेमो टेनेएटर एड इम्पोसिबिलि (कोई भी असंभव कार्य करने के लिए बाध्य नहीं है) के समान हैं, जो सामान्य बुद्धि और प्राकृतिक न्याय पर आधारित है और जिसे प्राचीनकाल से विधि में अपनाया व लागू किया जाता रहा है।

अतः यदि यह प्रतीत हो कि किसी विधि द्वारा निर्धारित औपचारिकताओं का पालन करना उन परिस्थितियों के कारण असंभव हो गया हो जो संबंधित व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर थीं, जैसे कि प्राकृतिक आपदा (दैवकृत्य) तो ऐसी परिस्थितियों को वैध कारण/बहाना माना जाएगा। (देखें – चंद्र किशोर झा बनाम महावीर प्रसाद [(1999) 8 एस. सी. सी 266 : ए.आई.आर 1999 एस. सी. 3558], हीरा टिक्को बनाम यू.टी चंडीगढ़ [(2004) 6 एस. सी. सी 765 : ए.आई.आर 2004 एस. सी. 3649] तथा हूदा बनाम डॉ॰ बाबेश्वर कनहार [(2005) 1 एस. सी. सी 191 : ए.आई.आर 2005 एस. सी. 1491])

10. जहाँ तक अपीलार्थियों का दूसरा तर्क है कि दिनांक 31.10.2019 के शासनादेश के अनुसार नियुक्ति की विधि पूरी तरह से बदल गई थी – इस पर प्रतिवादी-याची के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि जब रिट ए सं. 404/2022 की सुनवाई हो रही थी, उस समय राज्य ने स्वयं इस आधार को त्याग दिया था। इस संबंध में जो प्रासंगिक पैरा है, उसे निम्नवत् उद्धृत किया जा रहा है:-

“पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार करने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन पर यह स्पष्ट होता है कि प्रतिवादियों ने यह आधार छोड़ दिया था कि चयन प्रक्रिया 31 अक्टूबर 2019 के शासनादेश के अनुरूप नहीं थी। इसके अतिरिक्त, यह विधि का स्थिर सिद्धांत है कि कोई भी शासकीय या प्रशासनिक आदेश तब तक केवल भविष्यलक्षी होता है जब तक उसे विशेष रूप से भूतलक्षी रूप से लागू करने की बात न कही गई हो। वर्तमान मामले में चूँकि विज्ञापन 23 मई, 2018 को प्रकाशित किया गया था, अतः प्रतिवादियों द्वारा उपर्युक्त प्रस्ताव को त्यागना पूर्णतया उचित था।”

11. याचिकाकर्ता- प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि भले ही वह तर्क त्यागा न गया होता, तब भी यह निर्विवाद है कि विज्ञापन 23.05.2018 को प्रकाशित हुआ था, जो कि “31.10.2019” की तिथि से काफी पूर्व था, और उसी के अनुसार चयन प्रक्रिया प्रारम्भ की गई थी। उन्होंने आगे यह भी कहा कि किसी भी प्रशासनिक शासनादेश को केवल भविष्य के लिए ही लागू किया जा सकता है, जब तक कि उसे विशेष रूप से

3.इला कुलसचिव महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय, बरेली एवं अन्य बनाम फिरोज अहमद एवं अन्य 389
भूतलक्षी रूप में लागू करने का प्रावधान न हो।वर्तमान मामले में उक्त शासनादेश विज्ञापन के काफी बाद जारी हुआ था, अतः किसी भी स्थिति में वह शासनादेश इस मामले में लागू नहीं हो सकता था।

12. अपीलकर्ताओं तथा प्रत्यर्थी -याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं के तर्क सुनने के उपरांत, हम इस मत पर हैं कि जब विज्ञापन 23.05.2018 को प्रकाशित हुआ था तब 31.10.2019 को जारी शासनादेश का नियुक्ति प्रक्रिया पर कोई प्रभाव नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त, हमें यह भी प्रतीत होता है कि राज्य सरकार ने स्वयं रिट ए सं. 404/2022 की बहस के दौरान इस तर्क को छोड़ दिया था।जहाँ तक इस प्रश्न का संबंध है कि नियम 1978 के नियम 10 के अनुसार चयन समिति को तीन नाम भेजने थे, तो इतना कहना पर्याप्त होगा कि साक्षात्कार की तिथि पर कुल 7 अभ्यर्थियों में से केवल दो ही उपस्थित हुए थे, और इस प्रकार किसी भी विधि के अधीन चयन समिति को किसी असंभव कार्य – अर्थात् तीसरे नाम को सम्मिलित करने – के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। इस संदर्भ में “लेक्स नॉन काजिट एड इम्पोसिबिलिया” तथा “नेमो टेनेएटर एड इम्पोसिबिलि” (अर्थात् कानून असंभव कार्य करने के लिए बाध्य नहीं करता) के सिद्धांत पूर्णतः लागू होते हैं।हम यह भी अभिमत हैं कि दिनांक 11.07.2022 को रिट ए सं. 404/2022 में प्रतिपादित विधिक सिद्धांत जब किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दिया गया, तब उसे इस विशेष अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती।अतः हम स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि यह विशेष अपील पोषणीय ही नहीं थी।

13. हम यह भी मानते हैं कि जब साक्षात्कार हेतु केवल एक अभ्यर्थी ही उपस्थित हुआ, तो प्रबंधन समिति के लिए तीन से अधिक अभ्यर्थियों के नाम भेजना बिल्कुल असंभव था। ऐसी परिस्थितियों में, हम यह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि इस विशेष अपील में कोई दम नहीं है, और इसे विलंब के बिना खारिज किया जाता है। दिनांक 10.01.2022 के आदेश में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है, तथा उसे यथावत् बनाए रखा जाता है।

(2025) 3 ILRA 293

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद 12.03.2025

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति अरुण भंसाली,

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र,

विशेष अपील संख्या 996/2024

कुलसचिव महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय, बरेली एवं अन्य
बनाम

फिरोज़ अहमद एवं अन्य

...अपीलकर्तागण

... प्रत्यर्थीगण

अपीलकर्तागण के अधिवक्ता :

रोहित पाण्डेय की ओर से शांभवी तिवारी

प्रत्यर्थागण के अधिवक्ता :

विजेता सिंह, आलोक शुक्ला अपर मुख्य शासकीय अधिवक्ता राज्य

दीवानी विधि - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 - अध्याय आठ - नियम 5 - उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 - अध्याय चार - धारा 13(1)(e), 16(4) एवं 51 - महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय अध्यादेश - अध्यादेश 7(c)(3): - अंतः न्यायालीय अपील - रिट न्यायालय के आदेश के विरुद्ध - प्रत्यर्थी ने तीन वर्षीय एल.एल.बी. पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया - उक्त पाठ्यक्रम छह सेमेस्टरों में विभाजित है - प्रत्यर्थी समय-समय पर आयोजित सेमेस्टर परीक्षाओं में सम्मिलित हुआ - विश्वविद्यालय ने छात्र को अंकपत्र और डिग्री जारी करने से इंकार कर दिया - रिट याचिका दायर - विश्वविद्यालय द्वारा यह आपत्ति ली गई कि प्रत्यर्थी पाठ्यक्रम की निर्धारित समयसीमा से अधिक समय लेने के कारण अयोग्य था, यद्यपि उसे बैंक-पेपर परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दी गई थी और उसने वह परीक्षा उत्तीर्ण भी कर ली थी - रिट न्यायालय ने रिट याचिका स्वीकार की - विश्वविद्यालय को अंकपत्र और डिग्री जारी करने का निर्देश दिया - विशेष अपील दायर - न्यायालय का निष्कर्ष कि विश्वविद्यालय ने प्रवेश पत्र जारी करने तथा परीक्षा संपन्न कराने से पूर्व प्रत्यर्थी की पात्रता का समुचित परीक्षण नहीं किया - तथा प्रत्यर्थी ने संबंधित परीक्षा उत्तीर्ण कर एल.एल.बी. पाठ्यक्रम पूर्ण कर लिया - यह माना गया कि विश्वविद्यालय एक वैधानिक निकाय होने के नाते विद्यार्थी के भविष्य से अपनी सुविधा के अनुसार छेड़छाड़ नहीं कर सकता - फलस्वरूप, अपील असफल हुई एवं तदनुसार खारिज की जाती है। (अनुच्छेद - 18, 20, 22, 23, 25)

अपील खारिज। (ई-11)

उद्धृत वादों की सूची :

1. श्री कृष्ण बनाम कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, (1976) 1 एस.सी.सी 311
2. विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 313/2024 - श्री इक़तदारुद्दीन बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य - निर्णय दिनांक 03.05.2024
3. वंदना श्रीवास्तव बनाम प्राचार्य, एम.एल.एन. मेडिकल कॉलेज, 1986 ए.डब्ल्यू.सी 165 ए.एल.एल
4. ए.पी. क्रिश्चियन मेडिकल एजुकेशनल सोसाइटी एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य, (1986) 2 एस.सी.सी 667
5. केदार लाल वर्मा बनाम सचिव, हाई स्कूल एवं इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड एवं अन्य, ए.आई.आर 1980 ए.एल.एल

- 3.इला कुलसचिव महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय, बरेली एवं अन्य बनाम फिरोज अहमद एवं अन्य 391
6. सनातन गौड़ा बनाम बर्हामपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य, (1990) 3 एस.सी.सी 23
7. अशोक चंद सिंघवी बनाम जोधपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य, (1989) 1 एस.सी.सी 399
8. गुरु नानक देव विश्वविद्यालय बनाम संजय कुमार कटवाल एवं अन्य, (2009) 1 एस.सी.सी 610
9. श्री कृष्ण बनाम कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, (1976) 1 एस.सी.सी 311
10. मिथिलेश कुमार चौधरी बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2024 (5) ए.डब्ल्यू.सी 4206 ए.एल.एल
11. सुखपाल सिंह शर्मा बनाम कुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, 1982 ए.एल.एल एल.जे 1021

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र द्वारा प्रदत्त निर्णय)

1. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित, श्रीमती शांभवी तिवारी, अधिवक्ता (श्री रोहित पांडेय के पक्ष से), प्रत्यर्थी संख्या 1 (रिट याचिकाकर्ता) की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्रीमती विजेता सिंह तथा प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अपर मुख्य शासकीय अधिवक्ता राज्य की तर्कों को सुना एवं अभिलेख का अवलोकन किया गया।

चुनौती

2. प्रस्तुत अंतः न्यायालयीय अपील अपील दिनांक 30.09.2024 के उस आदेश की वैधता को चुनौती देती है, जिसके द्वारा माननीय एकल न्यायाधीश ने रिट-सी संख्या 36854/2023 (फिरोज अहमद बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य) को स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय को याचिकाकर्ता को आवश्यक अंकपत्र (मार्कशीट) तथा, यदि वह अन्यथा पात्र हो, तो डिग्री जारी करने का निर्देश दिया है।

तथ्यात्मक स्थिति

3. प्रत्यर्थी संख्या 1 (रिट याचिकाकर्ता) (आगे 'प्रत्यर्थी' के रूप में संदर्भित) ने शैक्षिक सत्र 2016-17 में क्लासिक कॉलेज ऑफ लॉ, बरेली में तीन वर्षीय एल.एल.बी. पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया, जो कि महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय, बरेली से संबद्ध है। उक्त पाठ्यक्रम छह सेमेस्टरों में विभाजित है। प्रत्यर्थी समय-समय पर आयोजित सेमेस्टर परीक्षाओं में सम्मिलित हुआ और वर्तमान अपील में विवाद छठे सेमेस्टर से संबंधित बैंक पेपर को लेकर है। प्रत्यर्थी उक्त बैंक पेपर परीक्षा में सम्मिलित हुआ और यहाँ तक कि वर्तमान अपील में स्थगन आवेदन के समर्थन में दाखिल शपथपत्र में किए गए कथनों के अनुसार, उसने वह परीक्षा उत्तीर्ण भी कर ली, किंतु उसका परिणाम इस आधार पर घोषित नहीं किया गया कि उसने पाठ्यक्रम की अधिकतम अवधि, अर्थात् छह वर्ष, पूर्ण कर ली थी। स्वीकार्य तथ्य यह है कि प्रतिवादी के अंक विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर अपलोड कर दिए गए थे, परन्तु उसे अंकपत्र जारी नहीं किया गया, और इसी कारण विश्वविद्यालय प्राधिकारियों को अंकपत्र जारी करने हेतु परमादेश की रिट जारी करने की मांग करते हुए उपर्युक्त याचिका दायर की गई।

माननीय एकल न्यायाधीश का आदेश

4. विद्वान एकल न्यायाधीश ने, **श्री कृष्ण बनाम कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, (1976) 1 एस.सी.सी 311** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए – जिसे आगे इस न्यायालय की डिवीजन बैंक द्वारा दिनांक 03.05.2024 को **विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 313 सन् 2024 (इक्तारुद्दीन बनाम उ०प्र राज्य एवं अन्य)** में विचारित किया गया था – विश्वविद्यालय के इस तर्क पर विचार किया, जो अध्यादेश 7(ग)(3) पर आधारित था, जिसके अनुसार विद्यार्थी को तीन वर्षीय एल.एल.बी. पाठ्यक्रम अधिकतम छह वर्षों की अवधि में उत्तीर्ण करना आवश्यक था।

विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह निर्णय दिया कि चूंकि विश्वविद्यालय ने शैक्षिक सत्र 2021-2022 समाप्त होने के पश्चात भी प्रत्यर्थी को वर्ष 2023 में छठे सेमेस्टर के बैंक पेपर में सम्मिलित होने की अनुमति प्रदान की, जबकि छह वर्ष की समयसीमा समाप्त हो चुकी थी, इसलिए परिणाम रोकना व्यायसंगत नहीं था।

अपीलकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत निवेदन

5. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने बलपूर्वक तर्क रखते हुए कहा कि अध्यादेश 7(ग)(3), जो इस विषय को नियंत्रित करता है, स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करता है कि यदि कोई अभ्यर्थी अधिकतम छह वर्षों की अवधि के भीतर पाठ्यक्रम उत्तीर्ण करने में असफल रहता है, तो उसे पाठ्यक्रम छोड़ चुका माना जाएगा और उसे दोबारा प्रवेश नहीं दिया जाएगा।

आगे यह प्रस्तुत किया गया कि प्रत्यर्थी को जारी किया गया औपबंधिक प्रवेश पत्र स्पष्ट रूप से यह दर्शाता था कि परिणाम अभ्यर्थी की पात्रता के अधीन घोषित किया जाएगा, और इसलिए जब विश्वविद्यालय ने प्रत्यर्थी की पात्रता की जांच की, तो उसे छठे सेमेस्टर के बैंक पेपर में सम्मिलित होने के लिए 'अयोग्य' पाया गया, अतः परिणाम को रोकना पूर्णतः उचित था, क्योंकि उसके प्रवेश के दिनांक से छह वर्षों की अधिकतम अवधि शैक्षणिक सत्र 2021-2022 में समाप्त हो चुकी थी, जबकि बैंक पेपर वर्ष 2023 में आयोजित हुआ।

आगे यह तर्क दिया गया कि इक्तारुद्दीन (उपर्युक्त) का निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **श्री कृष्ण (उपर्युक्त)** में दिए गए निर्णय का अनुसरण मात्र था, जो तथ्यों के आधार पर वर्तमान मामले से भिन्न है, क्योंकि उस मामले में संबंधित अध्यादेश में यह अनिवार्य था कि कॉलेज/विभागाध्यक्ष द्वारा एक प्रमाणपत्र जारी किया जाए जिसमें यह प्रमाणित हो कि अभ्यर्थी ने निर्धारित संख्या में शैक्षणिक वर्षों हेतु नियमित अध्ययन किया है – यह प्रमाणन अस्थायी होता और परीक्षा से पूर्व कभी भी वापस लिया जा सकता था।

प्रस्तुति यह है कि वर्तमान मामले में विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परीक्षाओं को नियंत्रित करने वाले अध्यादेश में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, और अध्यादेश 7(ग)(3) का साधारण एवं स्पष्ट पठन यह बताता है कि छह वर्षों की अधिकतम अवधि समाप्त होने पर अभ्यर्थी पाठ्यक्रम जारी रखने के लिए अयोग्य हो जाता है, और चूंकि प्रतिवादी को जारी प्रोविजनल एडमिट कार्ड प्रस्तावित है कि प्रतिवादी को जारी प्रोविजनल एडमिट कार्ड में यह स्पष्ट उल्लेख था कि परिणाम उसकी पात्रता के अधीन ही घोषित किया जाएगा, अतः प्रतिवादी का कोई दावा

3.इला कुलसचिव महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय, बरेली एवं अन्य बनाम फिरोज अहमद एवं अन्य 393
बनता ही नहीं था और इसलिए माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा जारी किया गया *मेंडेस* अध्यादेश के प्रतिकूल
हैं तथा उसे जारी करना एक त्रुटिपूर्ण आदेश है। अपने तर्कों के समर्थन में अधिवक्ता द्वारा निम्नलिखित निर्णयों
पर विश्वास किया गया है:-

(i). वंदना श्रीवास्तव बनाम प्रिंसिपल, एम.एल.एन. मेडिकल कॉलेज, 1986 ए.डब्ल्यू.सी 165 ए.एल.एल;

(ii). ए.पी. क्रिश्चियन मेडिकल एजुकेशनल सोसाइटी एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य, (1986) 2
एस.सी.सी 667;

(iii). केदार लाल वर्मा बनाम सचिव, हाई स्कूल एवं इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड एवं अन्य, ए.आई.आर 1980
ए.एल.एल 32.

प्रत्यर्थी (रिट याचिकाकर्ता) की ओर से प्रस्तुतियां

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि संबंधित परीक्षाओं के लिए फार्म भरने की तिथियाँ
26.05.2023 से 11.06.2023 तक घोषित की गई थीं; प्रतिवादी ने 28.05.2023 को फार्म भरा; 26.06.2023
को उसे औपबंधिक प्रवेश पत्र जारी किया गया; संबंधित परीक्षा 01.07.2023 को संपन्न हुई और परिणाम
30.09.2023 को घोषित हुआ। अतः विश्वविद्यालय प्राधिकारियों के पास यह जांचने के लिए पर्याप्त समय था
कि प्रत्यर्थी संबंधित पेपर में सम्मिलित होने हेतु पात्र था अथवा नहीं, और एक बार जब उन्होंने फार्म स्वीकार
कर लिया, शुल्क जमा करा लिया तथा उसे बैंक पेपर में सम्मिलित होने की अनुमति भी दे दी – जिसमें वह
सफल भी हो गया – तो अब यह कहकर परिणाम रोकना कि बाद में वह अयोग्य पाया गया, न्यायसंगत नहीं
है।

औपबंधिक प्रवेश पत्र (अपील में दिनांक 09.01.2025 को दायर पूरक शपथपत्र के परिशिष्ट एस. ए -3) में
दर्शाए गए प्रावधानों की व्याख्या करते हुए कहा गया कि अभ्यर्थी की पात्रता के अधीन परिणाम घोषित होने
संबंधी अनुच्छेद-4 को अन्य शर्तों के साथ पढ़ा जाना चाहिए – जो अभ्यर्थी द्वारा किसी भी प्रकार की जालसाजी
किए जाने की स्थिति से संबंधित हैं – और चूंकि अपीलकर्ताओं का यह मामला ही नहीं है कि प्रत्यर्थी ने कोई
जालसाजी की हो, इसलिए परिणाम रोका जाना अनुचित है।

अपने तर्कों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास किया गया है:-

(i). सनातन गौड़ा बनाम बर्हामपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य, (1990) 3 एस.सी.सी 23;

(ii). अशोक चंद सिंघवी बनाम जोधपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य, (1989) 1 एस.सी.सी 399;

(iii). गुरु नानक देव विश्वविद्यालय बनाम संजय कुमार कटवाल एवं अन्य, (2009) 1 एस.सी.सी 610;

(iv). श्री कृष्ण बनाम कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, (1976) 1 एस.सी.सी 311;

(v). मिथिलेश कुमार चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024 (5) ए.डब्ल्यू.सी 4206 ए.एल.एल.

अपीलकर्ताओं की पुनरावृत्ति में प्रस्तुतियां

7. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि फार्म ऑनलाइन प्रक्रिया के माध्यम से भरे जाते हैं और संबंधित कॉलेज ही उन्हें विश्वविद्यालय को अग्रसारित करता है। यदि कॉलेज ने गलती से प्रतिवादी का फार्म विश्वविद्यालय को भेज दिया, तो यह अध्यादेश 7(ग)(3) को निरस्त नहीं कर सकता, क्योंकि विश्वविद्यालय ने प्रत्यर्थी को सीधे परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति नहीं प्रदान की थी। परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति विश्वविद्यालय द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नहीं, बल्कि कॉलेज स्तर पर की गई जांच के आधार पर केवल औपबंधिक रूप में प्रदान की गई थी आगे यह भी निवेदन किया गया कि वर्तमान अपील में दायर शपथपत्र के पैरा 29 और 34 के संदर्भ में कहा गया है कि कॉलेज की ओर से की गई किसी भी त्रुटि से प्रत्यर्थी के पक्ष में यह अधिकार निर्मित नहीं हो सकता कि वह आगे पाठ्यक्रम जारी रखे, तथा मात्र परीक्षा में सम्मिलित होने की दी गई अनुमति से विश्वविद्यालय के विरुद्ध बिबंध लागू नहीं हो जाएगा।

चर्चा, विश्लेषण एवं निष्कर्ष

8. यह निर्विवाद है कि विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (अधिनियम, 1973) के प्रावधानों के अधीन संचालित होता है और उसे वैधानिक रूप से उन्हीं प्रावधानों के अनुरूप कार्य करना होता है। अधिनियम, 1973 का अध्याय चतुर्थ विश्वविद्यालय के विभिन्न पदाधिकारियों का वर्णन करता है, जिनमें कुलपति भी शामिल हैं, और उसकी धारा 13(1)(ड) के अनुसार, कुलपति विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को समय पर एवं विधिपूर्वक संपन्न कराने तथा संबंधित परीक्षाओं के परिणामों को शीघ्र प्रकाशित कराने हेतु उत्तरदायी होता है। संदर्भ हेतु धारा 13(1)(ड) नीचे उद्धृत है :-

“13. कुलपति के अधिकार एवं कर्तव्य.- कुलपति विश्वविद्यालय का मुख्य कार्यकारी एवं शैक्षणिक अधिकारी होगा तथा वह—

... ..

(e). विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को विधिवत एवं समय पर संपन्न कराने तथा उनके परिणामों को तुरंत प्रकाशित कराने और यह सुनिश्चित करने के लिए उत्तरदायी होगा कि विश्वविद्यालय का शैक्षणिक सत्र उचित तिथियों पर प्रारंभ एवं समाप्त हो।”

9. इसी प्रकार, अधिनियम, 1973 की धारा 16(4) में विश्वविद्यालय के कुलसचिव के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है तथा वह इस प्रकार उद्धृत है :-

“16.

कुलसचिव

.....

.....”

(4). कुलसचिव विश्वविद्यालय के अभिलेखों तथा सामान्य मुहर के समुचित संरक्षण के लिए उत्तरदायी होगा। वह कार्यकारी परिषद्, न्यायालय, शैक्षिक परिषद् तथा प्रवेश समिति का पदेन सचिव होगा, साथ ही विश्वविद्यालय के शिक्षकों की नियुक्ति हेतु गठित प्रत्येक चयन समिति का भी पदेन सचिव होगा, और उसे इन सभी प्राधिकरणों

के समक्ष उस प्रकार की सभी आवश्यक जानकारियाँ प्रस्तुत करनी होंगी जो उनके कार्यों के निष्पादन हेतु आवश्यक हों। वह ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन भी करेगा, जो अधिनियम के अंतर्गत विधिवत अधिनियमित संविधियों एवं अध्यादेशों द्वारा निर्धारित किए गए हों, अथवा समय-समय पर कार्यकारी परिषद् या कुलपति द्वारा अपेक्षित हों, परंतु इस उपधारा के आधार पर उसे मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं होगा।”

10. इस प्रकार, यह प्रत्यक्ष है कि विश्वविद्यालय के पदाधिकारी अधिनियम 1973 के प्रावधानों के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन एवं कार्यों का संपादन करने हेतु वैधानिक रूप से बाध्य हैं। ऐसे कार्य एवं कर्तव्य अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए संविधियों एवं अध्यादेशों में विनियमित हैं। अध्यादेश, अधिनियम की धारा 51 के अंतर्गत बनाए जाते हैं, जिसकी संबंधित उपधाराएँ नीचे उद्धृत हैं :-

“51. ऑर्डिनेंस (अध्यादेश).- (1) इस अधिनियम तथा संविधियों के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, अध्यादेश निम्नलिखित किसी भी विषय से संबंधित व्यवस्था कर सकते हैं...”जिस विषय का उपबंध इस अधिनियम अथवा विधियों (संविधियों) के अंतर्गत अध्यादेश द्वारा किया जाना है या किया जा सकता है, उसके लिए प्रावधान अध्यादेश द्वारा किया जाएगा।

(2). उपधारा (1) के प्रावधानों की सामान्यता को प्रभावित किए बिना, अध्यादेश निम्नलिखित विषयों के लिए व्यवस्था करेंगे, अर्थात् –

.....

(c) वे शर्तें जिनके अंतर्गत विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय की परीक्षाओं, उपाधियों (degrees) तथा डिप्लोमा में प्रवेश दिया जाएगा और जिनके आधार पर वे ऐसी उपाधियों एवं डिप्लोमा प्राप्त करने के पात्र होंगे;

.....

(m) परीक्षाओं का संचालन;”

11. विश्वविद्यालय के संबंधित अध्यादेश का शीर्षक है –

“एल.एल.बी. तीन वर्ष (छह सेमेस्टर) (शैक्षिक सत्र 2009-10 से लागू); (अध्यादेश: सामान्य नियम, परीक्षा विनियम तथा पाठ्यक्रम, संशोधनों सहित)” विश्वविद्यालय द्वारा प्रयुक्त अध्यादेश 7(ग)(3) इस प्रकार है –

“7. (ग) पूर्व-विद्यार्थी

.....”

“(3) किसी अभ्यर्थी को अधिकतम तीन प्रयासों तक पूर्व-विद्यार्थी / बैक पेपर के रूप में उस पेपर में उपस्थित होने की अनुमति दी जाएगी, इस शर्त के साथ कि उसे अधिकतम छह वर्षों की अवधि में एल.एल.बी. पाठ्यक्रम उत्तीर्ण करना होगा। यदि वह इस अवधि के भीतर परीक्षा उत्तीर्ण करने में असफल रहता है, तो उसे यह माना जाएगा कि उसने पाठ्यक्रम को त्याग दिया है और उसे पुनः प्रवेश नहीं दिया जाएगा।”

12. सुनवाई के दौरान, दिनांक 04.12.2024 को एक आदेश पारित किया गया, जिसमें अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता को यह बताने हेतु समय प्रदान किया गया कि प्रत्यर्थी को औपबंधिक प्रवेश पत्र किस दिनांक को जारी किया गया था तथा परीक्षाएँ किन-किन तिथियों को संपन्न हुईं। इसके अनुपालन में, एक पूरक शपथपत्र दाखिल किया गया, जिसमें यह बताया गया कि संबंधित परीक्षा फॉर्म 26.05.2023 से 11.06.2023 तक तथा उसके बाद 14.06.2023 से 15.06.2023 तक भरे गए; प्रत्यर्थी ने 28.05.2023 को परीक्षा फॉर्म भरा; परीक्षाएँ 01.07.2023 से प्रारम्भ हुईं, जिसके पूर्व सभी अभ्यर्थियों सहित प्रत्यर्थी को अस्थायी प्रवेश-पत्र जारी कर दिए गए थे। इसके पश्चात, द्वितीय पूरक शपथपत्र में अस्थायी प्रवेश-पत्र जारी होने की तिथि को 26.06.2023 के रूप में स्पष्ट किया गया।

13. अतः, यदि कुछ समय के लिए यह मान भी लिया जाए कि अपीलकर्ता द्वारा उठाया गया यह पक्ष सही है कि कॉलेज द्वारा प्रत्यर्थी का परीक्षा फॉर्म अधिकतम छह वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात् भूलवश या गलत रूप से स्वीकार कर लिया गया और विश्वविद्यालय को अग्रसारित कर दिया गया, तो भी हमारे मत में यह परिस्थिति अपीलकर्तागण को यह अधिकार प्रदान नहीं करती कि वे केवल औपबंधिक प्रवेश पत्र में उल्लिखित इस शर्त के आधार पर – कि परिणाम अभ्यर्थी की पात्रता के अधीन होगा – प्रत्यर्थी का परिणाम रोक सकें। अस्थायी प्रवेश-पत्र में की गई प्रासंगिक अभिलेखित शर्तें इस प्रकार हैं :-

- “(1). **नोट:** आपके द्वारा परीक्षा फार्म में दिए गए अहरता विवरण में भविष्य में कोई अनियमितता या कुटरचित तथ्य पाये जाने पर आपका परीक्षाफल निरस्त कर दिया जाएगा
- (2). इस प्रवेश-पत्र तथा एक वैध सरकारी द्वारा जारी फोटो पहचान प्रमाण साथ न लाने वाले छात्रों को परीक्षा में उपस्थित होने की अनुमति नहीं दी जाएगी।
- (3). यह प्रवेश-पत्र औपबंधिक है।
- (4). परिणाम उम्मीदवार की पात्रता के अधीन घोषित किया जाएगा।”

14. यद्यपि प्रवेश-पत्र को औपबंधिक बताया गया है, परंतु जब इस न्यायालय द्वारा अपीलकर्तागण के अधिवक्ता से यह विशेष रूप से पूछा गया कि क्या विश्वविद्यालय द्वारा बनाए गए किसी नियम आदि में औपबंधिक प्रवेश-पत्र जारी करने का प्रावधान है, तो उनका उत्तर नकारात्मक रहा। अतः हम औपबंधिक प्रवेश-पत्र जारी किए जाने के निहितार्थ का परीक्षण करते हैं और यह परखते हैं कि परिणाम रोके रखने का विश्वविद्यालय का रुख कितना उचित है।

15. उपर्युक्त सभी संकेतों/शर्तों का समग्र अध्ययन यह दर्शाता है कि यदि उम्मीदवार द्वारा आवेदन पत्र भरते समय उसकी पात्रता संबंधी कोई अनियमितता या जालसाजी पाई जाती है, तो उसका परिणाम निरस्त कर दिया जाएगा। प्रश्नगत बैंक पेपर परीक्षा से संबंधित तिथियों के क्रम से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा 28.05.2023 को ऑनलाइन माध्यम से फॉर्म भरने के बाद, चाहे वह फॉर्म संबंधित कॉलेज के पास लंबित रहा हो या विश्वविद्यालय को अग्रेषित कर दिया गया हो – दोनों के पास परीक्षा से पूर्व उसकी जाँच या पात्रता का

मूल्यांकन करने हेतु पर्याप्त समय उपलब्ध था, और इसी अवधि का उपयोग यह परखने में किया जा सकता था कि प्रत्यर्थी को परीक्षा में सम्मिलित होने दिया जाए या नहीं।

16. जब इस न्यायालय ने अपीलकर्तागण के अधिवक्ता से यह विशेष प्रश्न किया कि अध्यादेश 7(ग)(3) में निर्धारित अधिकतम अवधि के संदर्भ में प्रत्यर्थी की पात्रता की जाँच करने से विश्वविद्यालय को किसने रोका, तो उत्तर यह दिया गया कि परीक्षा में अत्यंत अधिक संख्या में अभ्यर्थी सम्मिलित होते हैं, इसलिए विश्वविद्यालय के लिए परीक्षा पूर्व उनकी पात्रता जाँचना संभव नहीं है, और एक बार परीक्षा समाप्त हो जाने के बाद ही उक्त प्रक्रिया की जाती है तथा तत्पश्चात औपबंधिक प्रवेश पत्र में दिए गए संकेतों के अनुसार यह निर्णय लिया जाता है कि संबंधित अभ्यर्थी का परिणाम घोषित किया जाए या नहीं।

17. इसके अलावा, परीक्षा नियंत्रक/वरिष्ठ सहायक के कार्यालय से दिनांक 25.02.2025 को जारी निर्देश न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए, जिनमें यह इंगित किया गया था कि प्रत्यर्थी का फॉर्म ऑनलाइन मोड से भरा गया था, तथा चूँकि एलएल.बी. पाठ्यक्रम के अभ्यर्थी नियमित विधार्थी होते हैं, अतः केवल पात्र अभ्यर्थियों के फॉर्म कॉलेज द्वारा अग्रेषित किए जाने चाहिए थे। उक्त निर्देशों से यह भी स्पष्ट हुआ कि परीक्षा फार्म में अभ्यर्थी की अपात्रता दर्शाने के लिए कोई कॉलम उपलब्ध ही नहीं है। फॉर्म 26.06.2023 को औपबंधिक प्रवेश पत्र जारी होने से लगभग चार सप्ताह पूर्व भरा गया था। यदि इस अवधि में कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय ने प्रत्यर्थी की पात्रता जाँचने में विफल रहते हुए औपबंधिक प्रवेश पत्र जारी कर दिया, तो ऐसी जाँच न किए जाने की स्थिति का लाभ उठाकर विश्वविद्यालय कोई प्रतिरक्षा नहीं ले सकता। इतना ही नहीं, औपबंधिक प्रवेश पत्र जारी होने के बाद भी परीक्षा प्रारंभ होने में लगभग एक सप्ताह का अंतर था। दिए गए निर्देशों को अपीलकर्तागण की ओर से दायर विभिन्न शपथपत्रों में दिए गए शपथ के बयानों के साथ पढ़ने पर यह परिलक्षित होता है कि विश्वविद्यालय, प्रत्यर्थी का फॉर्म अग्रेषित करने की गलती का ठीकरा कॉलेज पर फोड़ते हुए, केवल औपबंधिक प्रवेश पत्र में उल्लिखित नोट नंबर 4 के आधार पर अपने निर्णय को उचित ठहराने का प्रयास कर रहा है।

18. हम अपीलकर्तागण की ओर से प्रस्तुत तर्कों से सहमत नहीं हैं। विश्वविद्यालय, एक वैधानिक निकाय होने के नाते, किसी छात्र के करियर से अपनी सुविधानुसार छेड़छाड़ नहीं कर सकता। जब आवेदन पत्र स्पष्ट रूप से 'ऑनलाइन मोड' से भरे जाते हैं, तो विश्वविद्यालय अथवा कॉलेज के लिए यह बहुत सरल था, बल्कि आवश्यक था कि ऑनलाइन फार्म में ही एक विंडो/बॉक्स/स्पेस की व्यवस्था की जाती अथवा अन्य किसी प्रकार से उसी चरण पर उम्मीदवार की पात्रता जांच ली जाती, ताकि किसी उम्मीदवार के संबंध में या तो परीक्षा प्रक्रिया आगे बढ़ाई जाए या मामला वहीं समाप्त कर दिया जाए, जिससे भविष्य में ऐसी जटिलताओं से बचा जा सके, जैसी कि वर्तमान मामले में उत्पन्न हुई हैं। यदि विश्वविद्यालय अथवा कॉलेज ने अपने कार्य को इतनी लापरवाही से लिया और हर प्रकार से प्रतिवादी को बैंक पेपर परीक्षा में सम्मिलित होने दिया, तो वे अपने ही कार्य/त्रुटि/उदासीनता से कोई बचाव नहीं ले सकते। आगे, यह भी निर्विवाद है कि याची ने संबंधित परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है और सम्पूर्ण एल.एल.बी. पाठ्यक्रम पूर्ण कर लिया है।

19. अब अपीलकर्तागण की ओर से उद्धृत निर्णयों की चर्चा करते हैं। **वंदना श्रीवास्तव (उपर्युक्त)** में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने पिछले निर्णय **सुखपाल सिंह शर्मा बनाम कुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय, 1982 ए.एल.एल. एल.जे 1021** का संदर्भ लेते हुए यह कहा था कि विधि के विरुद्ध बिबंध नहीं हो सकता और न्यायालय विश्वविद्यालय को यह निर्देश देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता कि वह उन छात्रों का परिणाम घोषित करे जिनका प्रवेश अवैध था। यह निर्णय अपीलकर्ताओं के पक्ष में सहायक नहीं है, क्योंकि **वंदना श्रीवास्तव (उपर्युक्त)** का मामला ऐसा था, जिसमें संबंधित अभ्यर्थी को मेडिकल कॉलेज से प्रथम वर्ष एमबीबीएस पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु चयनित होने का पत्र प्राप्त हुआ था और 03.09.1985 को शारीरिक परीक्षण हेतु बुलाया गया था, तथा शीघ्र ही 11.09.1985 को उत्तर प्रदेश राज्य के अवर सचिव द्वारा संबंधित मेडिकल कॉलेज के प्राचार्य को एक तार भेजा गया जिसमें कहा गया कि अभ्यर्थी का परिणाम अनुसूचित जाति अभ्यर्थी मानते हुए गलत घोषित किया गया है, अतः उसका प्रवेश निरस्त किया जाता है। इसी आदेश को वंदना श्रीवास्तव ने रिट याचिका द्वारा चुनौती दी थी, जिसे इस न्यायालय ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि वह अनुसूचित जाति वर्ग की नहीं, बल्कि उच्च जाति की है, अतः उसका प्रवेश त्रुटिवश दे दिया गया था। वर्तमान मामले के तथ्य पूर्णतः भिन्न हैं और अध्यादेश 7(ग)(3) तथा उससे जुड़ी परिस्थितियों पर आधारित हैं – जैसे कि अंतिम सेमेस्टर में बैक पेपर हेतु परीक्षा फार्म का स्वीकार किया जाना, औपबंधिक प्रवेश पत्र जारी करना, प्रत्यर्थी को परीक्षा में सम्मिलित होने देना और इसके बावजूद, संबंधित पेपर में सफल होने के बाद भी केवल औपबंधिक प्रवेश पत्र में दी गई चौथी टिप्पणी के आधार पर परिणाम रोक लेना।

20 **ए.पी. क्रिश्चियन मेडिकल एजुकेशनल सोसाइटी (उपर्युक्त)** के मामले में यह निर्णय दिया गया था कि न्यायालय विश्वविद्यालय को उस संविधि की अवहेलना करने का निर्देश नहीं दे सकता, जिसके आधार पर विश्वविद्यालय का अस्तित्व है, तथा न ही उन विनियमों की अवहेलना करने का निर्देश दे सकता है जो स्वयं विश्वविद्यालय द्वारा बनाए गए हैं। इसमें यह भी कहा गया कि जिन छात्रों ने प्रवेश लिया है, उन्होंने न केवल वह धन गंवाया है जो उन्होंने प्रवेश प्राप्त करने में व्यय किया होगा, बल्कि उन्होंने अपने जीवन के एक या दो वर्ष का बहुमूल्य समय भी गंवा दिया है, जिससे उनका भविष्य करियर लगभग संकट में पड़ गया – किन्तु इसके लिए वे स्वयं ही उत्तरदायी हैं क्योंकि उन्होंने विश्वविद्यालय द्वारा पहले से जारी चेतावनियों के बावजूद कॉलेज में प्रवेश लिया और प्राप्त किया। समय-समय पर चेतावनियाँ जारी की थीं। वर्तमान वाद के तथ्य बिल्कुल भिन्न हैं, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विवाद उस स्थिति से उत्पन्न हुआ था जहाँ आंध्र प्रदेश सरकार ने संबंधित सोसाइटी को मेडिकल कॉलेज शुरू करने की अनुमति देने से इंकार कर दिया था और सरकार के इस निर्णय को चुनौती देने वाली रिट याचिका इसलिए खारिज कर दी गई थी कि मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया जैसे विशेषज्ञ निकाय द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के तहत कोई नया मेडिकल कॉलेज शुरू नहीं किया जाना चाहिए। उस मामले में, दारुस्सलाम एजुकेशनल ट्रस्ट द्वारा स्थापित मेडिकल कॉलेज के छात्रों को विश्वविद्यालय से संबद्धता न मिलने के बावजूद परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दे दी गई थी। ऐसे तथ्यों की पृष्ठभूमि में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सोसाइटी द्वारा दायर अपील तथा छात्रों द्वारा दायर रिट याचिकाएँ खारिज कर दी थीं। वर्तमान मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पूर्णतः अलग है क्योंकि यहाँ न तो कॉलेज चलाने पर कोई प्रतिबंध है और न पाठ्यक्रम पर कोई रोक आदि है। बल्कि प्रश्न यह है कि उपरोक्त

कारणों के आधार पर क्या विश्वविद्यालय अथवा उसका सम्बद्ध कॉलेज याचिकाकर्ता का परिणाम रोकने के लिए न्यायोचित है या नहीं।

21. केदार लाल वर्मा (उपर्युक्त) भी तथ्यों के आधार पर स्पष्ट रूप से भिन्न है। उस मामले में इस न्यायालय के एकल पीठ के समक्ष मामला था, जहाँ उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद ने यह बचाव लिया कि पूर्व में जारी की गई अंकतालिका में एक लिपिकीय त्रुटि थी तथा विनियमों के अनुसार विज्ञान विषय लेने वाले छात्र को प्रायोगिक एवं सिद्धांत – दोनों में 33% अंक प्राप्त करना अनिवार्य था और याची ने आवश्यक 24 अंकों के विरुद्ध सिद्धांत में केवल 19 अंक प्राप्त किए थे, इसलिए उसे “अनुत्तीर्ण” घोषित किया जाना सही था। प्रत्याशित प्रतिषेध (बिबन्ध) के आधार पर दिए गए तर्क को अस्वीकार करते हुए न्यायालय ने कहा कि प्राधिकारी द्वारा की गई भूल से उम्मीदवार को कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता।

22. वर्तमान वाद पूर्णतः भिन्न परिस्थिति से उत्पन्न हुआ है, जहाँ विश्वविद्यालय यह पक्ष ले रहा है कि याचिकाकर्ता के परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के बाद की गई जाँच में यह स्पष्ट हुआ कि कॉलेज ने अधिकतम समय-सीमा समाप्त हो जाने के बाद उसका प्रपत्र गलत तरीके से विश्वविद्यालय को अग्रेषित किया था। न्यायालय इससे पूर्व परीक्षा फार्म भरने की प्रक्रिया, औपबन्धिक प्रवेश पत्र जारी किए जाने, परीक्षा में सम्मिलित कराए जाने एवं याचिकाकर्ता द्वारा संपूर्ण पाठ्यक्रम उत्तीर्ण कर लेने जैसे सभी चरणों पर विचार कर चुका है – और विश्वविद्यालय तथा/या कॉलेज पर याचिकाकर्ता की पात्रता की जाँच पूर्व में ही सुनिश्चित करने का जो दायित्व था, उसका निर्वहन नहीं किया गया। अतः अब केवल इस आधार पर कि औपबन्धिक प्रवेश पत्र में परिणाम की घोषणा पात्रता पर निर्भर होने का उल्लेख था, परिणाम रोक लेना उचित नहीं है। उक्त चतुर्थ टिप्पणी को अन्य समस्त परिस्थितियों से पृथक् करके नहीं पढ़ा जा सकता।

23. गुरु नानक देव विश्वविद्यालय (उपर्युक्त) में, जिस पर प्रत्यर्थी ने विश्वास किया है, सर्वोच्च न्यायालय ने एक मामले से संबंधित गुरु नानक देव विश्वविद्यालय (उपर्युक्त) के मामले में, उम्मीदवार ने वर्ष 2004-2005 में सामान्य प्रवेश परीक्षा के माध्यम से प्रवेश लिया, उसे प्रथम सेमेस्टर की परीक्षा में शामिल होने की अनुमति दी गई, उसके द्वारा तथ्यों को छिपाने या गलत प्रस्तुत करने का कोई दोष नहीं पाया गया और यद्यपि प्रथम सेमेस्टर परीक्षा में प्रवेश लेने के बाद उसे उसकी अयोग्यता के बारे में अवगत कराया गया, फिर भी उसे आगे का पाठ्यक्रम जारी रखने दिया गया और उसने वर्ष 2007 में पाठ्यक्रम पूर्ण कर लिया। विश्वविद्यालय ने प्रारम्भ में उम्मीदवार का प्रवेश निरस्त कर दिया था, जिसे पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई। उच्च न्यायालय ने उस रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने श्री कृष्ण (उपर्युक्त) तथा सनातन गौड़ (उपर्युक्त) पर विश्वास करते हुए उम्मीदवार की अयोग्यता के आधार पर परिणाम रोकने की कार्यवाही को अनुचित माना और उम्मीदवार के पक्ष में मामला निस्तारित किया।

24. सनातन गौड़ (उपर्युक्त) में उम्मीदवार को विधि महाविद्यालय में प्रवेश दिया गया था, उसने दो वर्षों तक अध्ययन किया और उसे संबंधित परीक्षाओं में सम्मिलित होने दिया गया, तथा केवल परिणाम घोषित करने के

चरण पर ही विश्वविद्यालय ने उसकी कथित अयोग्यता को लेकर आपत्ति उठाई। मामले का निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उम्मीदवार के पक्ष में और विश्वविद्यालय के विरुद्ध किया तथा यहाँ तक निर्देश दिया कि विश्वविद्यालय स्पष्ट शब्दों में ऐसे नियम बनाए जिससे किसी नियम की बहुव्याख्याओं की संभावना न रहे और जिससे किसी विद्यार्थी के जीवन के अनेक वर्ष प्रभावित न हों। **अशोक चंद सिंघवी** (उपर्युक्त) भी इसी सिद्धांत पर निर्णय देने वाला सर्वोच्च न्यायालय का एक प्रामाणिक निर्णय है।

25. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, हमें माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती। फलस्वरूप, यह अपील असफल होती है और तदनुसार, **अस्वीकृत** की जाती है।

(2025) 3 ILRA 302

मूल अधिकार क्षेत्र

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाड़िया

रिट ए संख्या 6586 वर्ष 2024

शफीक अहमद

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

गौरव गौतम

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., कृष्णा विश्वकर्मा, राजेश कुमार सिंह, प्रणव मिश्रा कांत

(क) सेवा संबंधी विधि - अशासकीय सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्था - शिक्षा - उत्तर प्रदेश अशासकीय अरबी एवं फारसी मदरसा मान्यता नियमावली, 1987 (संशोधित 2016) - दिनांक 29.01.1996 के शासनादेश का नियम 8 (जिसमें पदों के सृजन हेतु राज्य की स्वीकृति आवश्यक है) - मदरसे में किसी शिक्षक की नियुक्ति/पदोन्नति हेतु वित्तीय स्वीकृति वापस लेने की वैधता - 30 वर्ष पूर्व प्रदत्त स्वीकृति केवल इस आधार पर वापस नहीं ली जा सकती कि पद सक्षम प्राधिकारी द्वारा सृजित नहीं किया गया था। (पैरा - 23)

याचिकाकर्ता वर्ष 1988 से तहतानिया (प्राथमिक स्तर) के सहायक अध्यापक के रूप में सेवा दे रहा है - वर्ष 1995 से राज्य कोष से वेतन प्राप्त कर रहा है - वर्ष 2021 में उसे फौकानिया (उच्च प्राथमिक स्तर) के सहायक अध्यापक के पद पर पदोन्नत किया गया - वित्तीय स्वीकृति प्रदान कर दी गई, किन्तु वेतन रोक दिया गया - प्रत्यर्थी संख्या 2 ने यह कहते हुए वित्तीय स्वीकृति वापस ले ली कि पद राज्य शासन की पूर्व अनुमति के बिना सृजित किया गया था। (पैरा - 4 से 14)

निर्णय: - याचिकाकर्ता समस्त परिणामी लाभों का हकदार है। 30 वर्ष पूर्व दी गई स्वीकृति इस आधार पर वापस नहीं ली जा सकती थी। पद सक्षम प्राधिकारी द्वारा सृजित न किए जाने के आधार पर स्वीकृति वापस नहीं ली जा सकती थी। याचिकाकर्ता की कोई गलती नहीं थी और उसके विरुद्ध न तो धोखाधड़ी एवं न ही किसी अनियमितता का कोई आरोप था। याचिकाकर्ता लगभग 30 वर्षों से सेवा दे रहा है। आक्षेपित आदेश निरस्त किया गया। (पैरा - 21, 23, 24)

याचिका स्वीकृति। (ई-7)

उल्लेखित प्रकरणों की सूची:

1. राधेश्याम यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, ए.आई.आर 2024 एस. सी 260
2. शिवानंदन सी.टी. एवं अन्य बनाम उच्च न्यायालय केरल एवं अन्य, (2023) एस. सी. सी ऑनलाइन एस. सी.994
3. राजेश कुमार एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2013) 4 एस. सी. सी 690

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पांडेया द्वारा प्रदत्त निर्णय

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता, प्रत्यर्थी संख्या 1 एवं 3 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी संख्या 2 के लिए अधिवक्ता श्री प्रणव मिश्र की तर्कों को सुना गया ।

2. पक्षकारों के अधिवक्ताओं की सहमति से वर्तमान याचिका को दायर स्तर पर ही निस्तारित किया जा रहा है।

3. याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर की है:-

(1) माननीय न्यायालय कृपया उत्प्रेषण के स्वरूप में रिट/आदेश/निर्देश जारी कर प्रतिवादी रजिस्ट्रार/निरीक्षक द्वारा दिनांक 28.03.2024 को पारित आदेश (जो रिट याचिका के परिशिष्ट संख्या-1 में संलग्न है) को निरस्त करने की कृपा करें;

(II) माननीय न्यायालय कृपया परमादेश के स्वरूप में रिट/आदेश/निर्देश जारी कर प्रत्यर्थागण को निर्देशित करें कि वे याचिकाकर्ता को मदरसा जामिया आलिया अरबिया, अलीनगर, मऊ के सहायक अध्यापक फौकानिया पद के लिए माह-दर-माह वेतन का नियमित भुगतान जारी रखें;

(III) माननीय न्यायालय कृपया परमादेश के स्वरूप में रिट/आदेश/निर्देश जारी कर प्रत्यर्थागण को यह निर्देशित करें कि वे याचिकाकर्ता को सहायक अध्यापक तहतानिया एवं सहायक अध्यापक फौकानिया के पदों के वेतन में अंतर की बकाया राशि उपयुक्त ब्याज सहित अदा करें;

4. रिट याचिका में वर्णित संक्षिप्त तथ्यों के अनुसार मदरसा जामिया आलिया अरबिया, अलीनगर, मऊ (जिसे आगे "मदरसा" कहा जाएगा) एक अशासकीय सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्था है, जो फ़ाज़िल (स्नातक स्तर) तक की शिक्षा प्रदान करती है। यह मदरसा 'जमीला आलिया अरबिया, मऊ' नामक संस्था द्वारा संचालित एवं प्रबंधित है, जिसका पंजीकरण संख्या 645/1982-83 दिनांक 14.09.1982 है, और जिसका नवीनीकरण 14.09.2019 को अगले पांच वर्षों के लिए किया गया है। उत्तर प्रदेश में मदरसों के समस्त कार्यकलाप, जिसमें शिक्षण एवं अशिक्षण स्टाफ की सेवाएँ शामिल हैं, उत्तर प्रदेश अशासकीय अरबी एवं फारसी मदरसा मान्यता नियमावली, 1987 के अनुसार संचालित होते हैं, जिसमें वर्ष 2016 में संशोधन किया गया था।

5. शिक्षा (बेसिक) के सहायक निदेशक द्वारा दिनांक 29.11.1990 की सूची अग्रेषित की गई, जिसमें उल्लेख किया गया कि 1 पद प्राचार्य का, 6 पद सहायक अध्यापक आलिया (मैट्रिक), 1 पद हेडमास्टर फौकानिया (कक्षा 6 से 8), 3 पद सहायक अध्यापक फौकानिया, 1 पद हेडमास्टर तहतानिया (कक्षा 1 से 5), 11 पद सहायक अध्यापक तहतानिया अर्थात् कुल 22 पद शिक्षण स्टाफ एवं 5 पद अशिक्षण स्टाफ, इस प्रकार कुल 27 पद स्वीकृत हैं तथा इन पर कार्य हो रहा है एवं वेतन प्राप्त हो रहा है।

6. विद्यार्थियों की संख्या में बढ़ोतरी को दृष्टिगत रखते हुए, प्रत्यर्था / प्रबंधन समिति द्वारा प्रबंधन ने अधिक शिक्षण स्टाफ के स्वीकृत होने का अनुरोध किया। संस्थान की स्वाभाविक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, निदेशक उर्दू/पश्चिमी भाषा उत्तर प्रदेश, लखनऊ ने पत्र दिनांक 28.9.1995 द्वारा जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, मऊ को मामले की जांच कर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए कहा। उक्त निर्देशों के अनुपालन में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, मऊ ने शिक्षा अधीक्षक नगर क्षेत्र, मऊ के माध्यम से मामले की जांच करवाई, जिन्होंने विधिवत कार्यवाही/पहल करते हुए मदरसे में अलिया के 7 सहायक अध्यापक पद तथा तहतानिया के 14 सहायक अध्यापक पदों की संस्तुति की। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, मऊ ने पत्र दिनांक 20.2.1996 द्वारा अपनी संस्तुति निदेशक, उर्दू/पश्चिमी भाषा, उ.प्र. लखनऊ को आवश्यक कार्यवाही हेतु भेज दी।

7. वर्तमान याचिकाकर्ता के संदर्भ में, वह वर्ष 1988 से संबंधित संस्थान में सहायक अध्यापक तहतानिया के पद पर कार्यरत थे और पदों के स्वीकृत होने के बाद उन्हें वर्ष 1995 से सहायक अध्यापक तहतानिया के पद पर राजकोष से वेतन प्राप्त होना प्रारंभ हुआ। उप निदेशक (उर्दू), निदेशक (उर्दू) लखनऊ की ओर से पत्र दिनांक 1.3.1996 द्वारा बेसिक शिक्षा अधिकारी को तहतानिया के 13 शिक्षकों के वेतन भुगतान हेतु आवश्यक कार्यवाही

करने के निर्देश दिए गए। उक्त सूची में याचिकाकर्ता का नाम भी सम्मिलित है। याचिका के पैरा 14 में आगे यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता वर्ष 1998 से मदरसे में सहायक अध्यापक तहतानिया के रूप में शिक्षण कार्य कर रहे थे, परंतु उन्हें दिसंबर 1995 से राज्य कोष से वेतन प्राप्त होना शुरू हुआ।

8 इम्तियाज़ अहमद, सहायक अध्यापक फ़ौक़ानिया, दिनांक 31.03.2021 को अधिवर्षता की आयु प्राप्त कर सेवानिवृत्त हो गए। उक्त रिक्त पद को भरने हेतु पदोन्नति की कार्यवाही प्रारंभ की गई।

9. याचिकाकर्ता पदोन्नति के लिए पूर्ण रूप से योग्य होने के कारण, प्रबंधन समिति ने याचिकाकर्ता को सहायक अध्यापक फ़ौक़ानिया के पद पर पदोन्नत कर दिया और याचिकाकर्ता ने 20.06.2021 को पदोन्नत पद पर कार्यभार ग्रहण कर लिया। सहायक अध्यापक फ़ौक़ानिया के पद पर याचिकाकर्ता की पदोन्नति तथा शमीम अनवर की सहायक अध्यापक तहतानिया के पद पर नियुक्ति से संबंधित समस्त अभिलेख एवं पत्रावलियाँ संस्थान के प्रबंधक द्वारा जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, मऊ / प्रत्यर्थी संख्या 3 को पत्र दिनांक 08.09.2021 के माध्यम से प्रेषित की गई। प्रत्यर्थी संख्या 3 ने उक्त पत्रावलियों को प्रत्यर्थी संख्या 2 / रजिस्ट्रार/निरीक्षक, उ.प्र. मदरसा शिक्षा बोर्ड, लखनऊ के समक्ष वित्तीय अनुमोदन हेतु पत्र दिनांक 13.09.2021 द्वारा अग्रेषित किया। प्रत्यर्थी संख्या 2 ने आदेश दिनांक 27.09.2021 द्वारा याचिकाकर्ता की सहायक अध्यापक फ़ौक़ानिया के पद पर पदोन्नति तथा शमीम अनवर की सहायक अध्यापक तहतानिया के पद पर नियुक्ति के संबंध में उनके कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से वित्तीय स्वीकृति प्रदान कर दी। उक्त आदेश का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

" अतः उपरोक्त स०अ० फ़ौक़ानिया के पद पर की गई पदोन्नति एवं स०अ० तहतानिया के पद पर की गई नियुक्ति को सारिणी में अंकित विवरण के अनुसार उनके कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से वेतन भुगतान की सहमति निम्नलिखित शर्तों प्रतिबन्धों के अधीन प्रदान की जाती है "

10 याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उपर्युक्त आदेश के बावजूद भी न तो याचिकाकर्ता को सहायक अध्यापक फ़ौक़ानिया के पद पर वेतन दिया गया और न ही शमीम अनवर को सहायक अध्यापक तहतानिया के पद पर वेतन दिया गया।

11 प्रत्यर्थीगण की निष्क्रियता से व्यथित होकर, शमीम अनवर ने इस माननीय न्यायालय की शरण ली और रिट -ए सं. 6429/2022 (शमीम अनवर बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य) दायर किया। उक्त रिट याचिका का निस्तारण इस माननीय न्यायालय द्वारा दिनांक 18.07.2022 को किया गया, जिसमें प्रतिवादी सं. 2 को यह निर्देश दिया गया कि आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से तीन माह के भीतर अंतिम निर्णय ले। चूँकि उक्त आदेश का अनुपालन नहीं हुआ, अतः शमीम अनवर द्वारा अवमानना प्रार्थना पत्र (दीवानी) सं. 6323/2023 दायर किया गया जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 13.09.2023 को पारित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 को 17.08.2022 के आदेश का पालन करने हेतु एक और अवसर प्रदान करते हुए निस्तारित कर दिया।

पुनः, उक्त आदेश का भी अनुपालन न होने पर, शमीम अनवर ने दूसरा अवमानना प्रार्थना पत्र (दीवानी) सं. 278/2024 दायर किया।

12. उपर्युक्त अवमानना प्रार्थना पत्र में आदेश पारित होने के पश्चात, प्रत्यर्थी सं. 2 ने दिनांक 02.02.2024 को अपना पूर्व आदेश दिनांक 27.09.2021 वापस लेते हुए एक नया आदेश पारित किया। उक्त आदेश द्वारा याचिकाकर्ता तथा शमीम अनवर के पक्ष में प्रदान की गई वित्तीय स्वीकृति को वापस ले लिया गया। आदेश दिनांक 02.02.2024 से व्यथित होकर, शमीम अनवर ने रिट -ए सं. 2745/2024 दायर की। उक्त रिट याचिका को विधिवत रूप से स्वीकार किया गया तथा इस न्यायालय ने दिनांक 23.02.2024 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.02.2024 के प्रभाव एवं प्रवर्तन पर स्थगन आदेश पारित कर दिया।

13. उपर्युक्त आदेश के अनुपालन में, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दिनांक 06.03.2023 को एक आदेश पारित किया गया, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 3 को इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 23.02.2024 के आदेश का पालन करने का निर्देश दिया गया। उक्त आदेश के बावजूद भी वेतन का भुगतान नहीं किया गया, फलस्वरूप इस न्यायालय ने दिनांक 14.03.2024 को एक आदेश पारित करते हुए प्रत्यर्थी संख्या 3 को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया। प्रत्यर्थी संख्या 3/जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, मऊ दिनांक 20.03.2024 को न्यायालय में उपस्थित हुए और अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 20.03.2024 का आदेश इस प्रकार है:-

(1) जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी श्री साहित्य निकाश सिंह आज दिनांक 14.03.2024 को पारित न्यायालय के आदेश के अनुपालन में व्यक्तिगत रूप से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए तथा उपस्थिति से छूट हेतु एक प्रार्थना पत्र अपने व्यक्तिगत शपथपत्र सहित प्रस्तुत किया।

(2) शपथपत्र में यह उल्लेख किया गया है कि सहायक अध्यापक, तहतानिया श्री शफीक अहमद को यद्यपि सहायक अध्यापक, फौकानिया (जूनियर हाई स्कूल) पद पर पदोन्नत किया गया था तथा अनुमोदन भी प्रदान किया गया था, फिर भी उन्हें पदोन्नति वाले पद का वेतन नहीं दिया गया, बल्कि उन्हें सहायक अध्यापक, तहतानिया पद का ही वेतन मिलता रहा और श्री शफीक अहमद की पदोन्नति तथा पूर्व में सहायक अध्यापक तहतानिया के पद पर उनकी निरंतरता का प्रश्न वर्तमान में उत्तर प्रदेश मंदरसा शिक्षा बोर्ड के समक्ष विचाराधीन है, जिसमें दिनांक 22 मार्च, 2024 निर्धारित है तथा आशा है कि बोर्ड द्वारा कुछ अंतिम आदेश पारित किए जाएंगे।

(3) यह तर्क दिया गया कि जब तक श्री शफीक अहमद, सहायक अध्यापक, फौकानिया को केवल सहायक अध्यापक, तहतानिया का ही वेतन मिल रहा है, यद्यपि उन्हें सहायक अध्यापक, फौकानिया पद का वित्तीय अनुमोदन प्रदान किया गया है, तब तक याचिकाकर्ता को वेतन का भुगतान नहीं किया जा सकता क्योंकि एक ही पद पर दो अध्यापकों को वेतन नहीं दिया जा सकता।

(4) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा अनुपालन शपथपत्र में उठाए गए तथ्यों का इस आधार पर विवाद किया गया है कि जब तक किसी नियुक्ति को निरस्त न किया जाए, तब तक स्वयं श्री शफीक अहमद भी सहायक अध्यापक, फौकानिया के पद का वेतन प्राप्त करने के हकदार थे और यदि प्रत्यर्थी अधिकारियों ने उन्हें उक्त पद का वेतन नहीं दिया और सहायक अध्यापक, तहतानिया पद का ही वेतन देते रहे, तो उसका नुकसान याचिकाकर्ता को नहीं भुगतना चाहिए।

(5) इस चरण पर राज्य की ओर से अधिवक्ता श्री राहुल मालवीय, ने यह निवेदन किया कि यह उचित एवं न्यायोचित होगा कि वेतन भुगतान का प्रश्न पुनः दिनांक 22.03.2024 के बाद लिया जाए, जिस दिन जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी न्यायालय के समक्ष दो अध्यापकों को वेतन भुगतान की स्थिति से अवगत कराने की बेहतर स्थिति में होंगे।

(6) यह मामला पुनः 16.04.2024 को बोर्ड पर सूचीबद्ध किया जाए, जिस दिन उपरोक्त अवलोकनों के आलोक में उचित अनुपालन शपथपत्र दाखिल किया जाएगा।

(7) यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि अगली तिथि तक बोर्ड द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया जाता है, तो याचिकाकर्ता का वेतन किसी भी स्थिति में आगे रोक नहीं जाएगा – चाहे श्री शफीक अहमद को सहायक अध्यापक, तहतानिया या फौकानिया पद का वेतन दिया जाए, यह जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी के विवेक पर निर्भर होगा, परंतु याचिकाकर्ता के वेतन भुगतान को रोकने का कोई विवेक जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी के पास नहीं होगा।

(8) जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी की व्यक्तिगत उपस्थिति को, उपर्युक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा यहां की गई टिप्पणियों के आलोक में अनुपालन शपथपत्र दायर करने की शर्त पर, माफ़ किया जाता है।

14. उपर्युक्त आदेश पारित होने के पश्चात दिनांक 28.03.2024 को प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया गया, जिसके द्वारा यह कहा गया कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति सहायक अध्यापक तहतानिया के रूप में स्वीकृत पद पर नहीं थी, अतः याची को सहायक अध्यापक तहतानिया पद पर दिया गया वित्तीय अनुमोदन तत्काल प्रभाव से वापस लिया जाता है। आगे यह भी आदेशित किया गया कि याचिकाकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति सहायक अध्यापक तहतानिया पद पर नियमों के विरुद्ध थी, अतः याचिकाकर्ता को सहायक अध्यापक फौकानिया पद पर दिया गया वित्तीय अनुमोदन भी वापस लिया जाता है।

15. यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 ने यह नहीं बताया है कि किस प्रकार याचिकाकर्ता की नियुक्ति सहायक अध्यापक तहतानिया के रूप में अस्वीकृत (गैर-स्वीकृत) पद के विरुद्ध थी। यह भी कहा गया है कि जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी ने अपने कथन में स्पष्ट रूप से कहा है कि मदरसे में उक्त पद वर्ष 1996 में बनाया गया था, परंतु उस समय पद सृजन के लिए 29.01.1996 की सरकारी आदेश के अनुसार

राज्य सरकार से अनुमति आवश्यक थी। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि पद सृजन में याचिकाकर्ता की कोई भूमिका नहीं थी। न ही ऐसा कोई आरोप है कि याचिकाकर्ता या प्रबंधन समिति ने कोई धोखाधड़ी की हो और याचिकाकर्ता की नियुक्ति किसी अवैध पद पर की हो। गैर-स्वीकृत पद पर नियुक्ति का कोई ठोस आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है। केवल आधार यह लिया गया है कि उक्त पद राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से सृजित नहीं किया गया था, और इसी आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **राधेश्याम यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, ए.आई.आर 2024 एस.सी 260** पर विश्वास किया है। उक्त निर्णय के आधार पर यह तर्क दिया गया है कि चूँकि याची की नियुक्ति को स्वीकृति प्राप्त थी और वह दिसंबर 1996 से फरवरी 2024 तक निरंतर वेतन प्राप्त करता रहा तथा उसकी नियुक्ति को वित्तीय स्वीकृति भी प्रदान की गई थी, ऐसे में 30 वर्ष से अधिक सेवाकाल पूरा कर लेने के बाद राज्य अब याचिकाकर्ता की नियुक्ति की स्वीकृति वापस लेने से विधिक रूप से रोका गया है।

17. प्रत्यर्थी संख्या 2 एवं 3 द्वारा एक प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल किया गया है। उक्त प्रत्युत्तर शपथपत्र के आधार पर प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि राज्य सरकार ने दिनांक 29.01.1996 का एक शासनादेश जारी किया था। उक्त शासनादेश के पैराग्राफ संख्या 8 में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि पदों के सृजन की अनुमति राज्य सरकार के स्तर पर ही दी जाएगी। दिनांक 20.02.1996 की जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी की संस्तुति को प्रत्यर्थीगण ने प्रत्युत्तर शपथपत्र में स्वीकार किया है। प्रत्युत्तर शपथपत्र के पैरा 8 में यह भी स्वीकार किया गया है कि सहायक अध्यापक तहतानिया के 13 पदों को स्वीकृति दिए जाने के बाद याचिकाकर्ता ने वेतन प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया था। याचिकाकर्ता के प्रमोशन हेतु प्रलेख (दस्तावेज) प्रस्तुत किए जाने को भी स्वीकार किया गया है, किन्तु पैरा 15 में यह कहा गया है कि दिनांक 27.09.2021 को याचिकाकर्ता के पदोन्नति को जो स्वीकृति दी गई थी वह इस शर्त पर दी गई थी कि वेतन भुगतान से पूर्व यह सुनिश्चित कर लिया जाए कि केवल उन व्यक्तियों को ही वेतन दिया जा रहा है जो स्वीकृत पदों पर कार्यरत हैं।

18. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात तथा समस्त अभिलेखों का अवलोकन करने पर यह स्थापित होता है कि याचिकाकर्ता की सहायक अध्यापक तहतानिया के पद पर नियुक्ति को स्वीकृति प्राप्त थी तथा उसे दिसंबर 1996 से फरवरी 2024 तक नियमित रूप से वेतन दिया जाता रहा। दिनांक 01.03.1996 का निदेशक उर्दू, उत्तर प्रदेश, लखनऊ का पत्र प्रत्यर्थीगण द्वारा विवादित नहीं है। प्रत्यर्थीगण का ऐसा कोई मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता को स्वीकृत पदों की निर्धारित संख्या से अधिक किसी पद पर नियुक्त किया गया था। प्रत्यर्थीगण द्वारा केवल यह आपत्ति उठाई गई है कि पद सृजन की शक्ति केवल राज्य सरकार के पास है, जबकि वर्तमान मामले में पद निदेशक उर्दू, उ.प्र. लखनऊ द्वारा राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के बिना सृजित किया गया।

19. अतः यह स्पष्ट है कि न तो प्रबंधन समिति और न ही याचिकाकर्ता द्वारा पद सृजन में कोई कपट किया गया है। यह पद सृजित हुआ था और दिसंबर 1995 से फरवरी 2024 तक याची तथा अन्य सहायक अध्यापकों को राज्य कोष से वेतन का भुगतान किया जाता रहा है। आक्षेपित आदेश में जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी द्वारा केवल यह आपत्ति उठाई गई है कि उक्त पद निदेशक, उर्दू द्वारा राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के बिना सृजित किया गया था। चुनौती दिए गए आदेश में प्रत्यर्थी संख्या 2 रजिस्ट्रार द्वारा केवल यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि याचिकाकर्ता की सहायक अध्यापक तहत्तानिया के रूप में नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा सृजित पद पर नहीं की गई थी। पद सृजन में याची या प्रबंधन समिति द्वारा किसी भी प्रकार के कपट या मिथ्या प्रस्तुतीकरण का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राधेश्याम के मामले में (उपर्युक्त) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शिवानंदन सी.टी. एवं अन्य बनाम हाई कोर्ट केरला एवं अन्य, (2023) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 994 के निर्णय की पुष्टि की है, जिसमें यह कहा गया था कि यदि विज्ञापित रिक्तियों से अधिक नियुक्ति भी कर दी गई हो, तो दो दशक बीत जाने के बाद ऐसी नियुक्ति को संरक्षित किया जाना चाहिए। इस संबंध में निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 29 में निम्नलिखित कहा गया है:

29. हाल ही में, इस न्यायालय ने विवेक कायस्थ (उपर्युक्त) में, संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय शिवानंदन सी.टी. तथा अन्य बनाम हाई कोर्ट ऑफ केरल एवं अन्य, (2023) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 994 का अनुसरण करते हुए, यह कहते हुए अपीलकर्ताओं की नियुक्ति को संरक्षित किया कि भले ही उनकी नियुक्तियाँ विज्ञापित रिक्तियों से अधिक थीं। इस न्यायालय ने निम्न प्रकार से कहा था :-

“32..... आज जब हम यह निर्णय दे रहे हैं, तब इन दोनों अपीलकर्ताओं ने लगभग 10 वर्षों तक न्यायिक अधिकारी के रूप में सेवा दे दी है। इस बीच उन्हें सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के अगले उच्च पद पर भी पदोन्नति मिल चुकी है। इनके चयन एवं नियुक्ति की प्रक्रिया (जिसका लाभ इन्हें मिला है) में, हमारे संज्ञान में ऐसी कोई बात नहीं लाई गई जो किसी पक्षपात, भाई-भतीजावाद अथवा कथित अनियमितता का संकेत देती हो। उच्च न्यायालय ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। राज्य आयोग पर दोषारोपण करते हुए उच्च न्यायालय ने यह दर्ज किया कि “.....रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह प्रतीत हो कि प्रत्यर्थीगण संख्या: 4 एवं 6 के चयन के पीछे कोई दुर्भावना थी.....”

“34. उच्च न्यायालय के अनुसार चूँकि अपीलकर्ता नियुक्ति/चयन प्राधिकारी द्वारा की गई एक अवैधता के लाभार्थी थे, अतः वे किसी भी प्रकार की समतामूलक राहत के अधिकारी नहीं थे। परंतु उच्च न्यायालय इस प्रश्न को आगे नहीं बढ़ा पाया, जबकि हमारे मत में उसे अवश्य ही ऐसा करना चाहिए था। उच्च न्यायालय ने यह कभी उत्तर नहीं दिया कि इस “अवैध” चयन तथा नियुक्ति के लिए कितना दोष उसके स्वयं (प्रशासनिक पक्ष) पर भी आता है। निस्संदेह, रिक्तियों को समय पर भरने के सभी सद्भावनापूर्ण प्रयासों के बावजूद, उच्च न्यायालय स्वयं इस दोष से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकता...।”

“36. इस चरण पर हमारे विचार हेतु यह भी महत्वपूर्ण है कि वर्तमान मामले में अपीलकर्ता लगभग 10 वर्षों से न्यायिक अधिकारी के रूप में कार्य कर रहे हैं। वे अब सिविल जज (सीनियर डिवीजन) हैं। इन न्यायिक अधिकारियों के पास अब न्यायिक सेवा का 10 वर्षों का समृद्ध अनुभव है। अतः वर्तमान अपीलकर्ताओं को उनके पदों से हटाना जनहित में नहीं होगा। सामान्यतः, उपर्युक्त कारकों का कोई महत्व नहीं होता जब स्वयं नियुक्ति को ही गलत ठहरा दिया जाए। परंतु हम यह भी अनदेखा नहीं कर सकते कि अपीलकर्ताओं की नियुक्ति उन अभ्यर्थियों की सूची से हुई थी जिन्होंने लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार सफलतापूर्वक उत्तीर्ण किया था तथा वे मेरिट सूची में थे। द्वितीयतः, किसी का भी यह कहना नहीं है कि अपीलकर्ताओं की नियुक्ति पक्षपात, भाई-भतीजावाद अथवा किसी ऐसी कार्रवाई के कारण हुई जिसे किसी भी प्रकार से “दोषपूर्ण” कहा जा सके। अंततः, वे अब दस वर्षों से न्यायाधीश के रूप में कार्य कर रहे हैं। अतः एक विशेष न्यायसंगतता अपीलकर्ताओं के पक्ष में प्रवाहित होती है।

हाल के एक संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय शिवानंदन सी.टी. एवं अन्य बनाम हाई कोर्ट केरला एवं अन्य, (2023) एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी. 994 में भी, यद्यपि इस न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया था कि केरल उच्च न्यायालय ने नियमों में मौलिक परिवर्तन करते हुए साक्षात्कार हेतु न्यूनतम अंक निर्धारित कर दिए थे जो मूल नियमों में नहीं थे और इसलिए मूल रूप से यद्यपि यह नियुक्ति स्वयं नियमों के उल्लंघन में थी, फिर भी यह देखते हुए कि इस चयन के अंतर्गत नियुक्त हुए व्यक्ति अब 6 वर्षों से अधिक समय से कार्य कर रहे हैं, यह कहा गया कि उन्हें उनके पद से हटाना जनहित में नहीं होगा।” (बल दिया गया)

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे यह भी कहा कि जब अपीलार्थी पद सृजन की प्रक्रिया का हिस्सा ही नहीं थे, तब उन्हें दोषी ठहराया जाकर कष्ट नहीं दिया जा सकता। संबंधित पैराग्राफ 30 इस प्रकार है:

30. वर्तमान मामले में अपीलार्थियों की स्थिति उन व्यक्तियों से भिन्न नहीं है जिनकी नियुक्तियाँ उपर्युक्त मामलों में संरक्षित की गई थीं। उनका कोई दोषपूर्ण आचरण नहीं था। वे प्रतिस्पर्धा से सद्भावपूर्वक आवेदन करने वाले थे। कथित गड़बड़ी, राज्य के अनुसार भी, विद्यालय तथा उसके प्रबंधक की ओर से हुई थी। यदि अपीलार्थियों को राहत न दी जाए तो यह न्याय का उपहास होगा। इससे उन्हें अत्यधिक हानि भी होगी।

21. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता का चयन एवं नियुक्ति सहायक अध्यापक तहतानिया के पद पर उस पद के विरुद्ध की गई थी, जो संस्थान में सृजित किया गया था। वह पद सक्षम प्राधिकारी द्वारा सृजित किया गया था या किसी अयोग्य व्यक्ति द्वारा—इस पद के सृजन या पद को स्वीकृत करने वाले अधिकारी की क्षमता में याचिकाकर्ता अथवा प्रबन्ध समिति की कोई भूमिका नहीं थी। पद सृजन से संबंधित दस्तावेजों के आधार पर ही राज्य प्राधिकारियों ने वितीय स्वीकृति प्रदान की तथा दिसंबर 1995 से याचिकाकर्ता को वेतन भुगतान किया। लगभग 30 वर्षों तक इस बात पर कोई विवाद या यह आरोप नहीं था कि याचिकाकर्ता को अस्वीकृत या गैर-स्वीकृत पद के विरुद्ध वेतन दिया जा रहा है। यह सक्षम प्राधिकारी के लिए पूर्णतः खुला था कि यदि वह चाहें तो वर्ष 1996 में ही वितीय स्वीकृति या वेतन भुगतान से इन्कार कर देते। परन्तु प्राधिकारियों ने यह संतुष्टि प्राप्त कर ली थी कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति स्वीकृत पद पर

ही है और निरंतर उसे वेतन दिया जाता रहा। अतः याचिकाकर्ता का किसी भी प्रकार से कोई दोष नहीं था। लगभग तीन दशक सेवा देने वाले याचिकाकर्ता के विरुद्ध किसी प्रकार की धोखाधड़ी या अनियमितता का कोई उल्लेख नहीं है।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राजेश कुमार एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2013) 4 एस.सी.सी 690 में यह निर्णय दिया है कि यदि कोई पक्ष निर्दोष हो तो, पुनर्मूल्यांकन में यदि वह मानदंड पर खरा न भी उतरे, तब भी उसकी नियुक्ति को संरक्षित किया जाना चाहिए। इसका प्रासंगिक पैराग्राफ 21 इस प्रकार है:

21. श्री राव की तर्क में पर्याप्त बल है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपीलकर्ता पूर्ण रूप से निर्दोष पक्ष हैं, जिन्होंने न तो किसी भी प्रकार से त्रुटिपूर्ण उत्तर-कुंजी के निर्माण में योगदान दिया और न ही विकृत परिणाम उत्पन्न होने में उनकी कोई भूमिका रही। अपीलकर्ताओं के विरुद्ध किसी प्रकार की धोखाधड़ी या कदाचार का कोई आरोप नहीं है, जबकि वे लगभग सात वर्षों से राज्य की सेवा कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में, यद्यपि आपसी योग्यता स्थिति अपीलकर्ताओं के लिए प्रासंगिक हो सकती है, तथापि केवल पुनर्मूल्यांकन के आधार पर उन्हें सेवा से हटाना अनिवार्य या अपरिहार्य परिणाम नहीं होना चाहिए। पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया उन अभ्यर्थियों को भी लाभ पहुँचा सकती है जिन्होंने गलत उत्तर-कुंजी के कारण नियुक्ति की आशा खो दी थी। ऐसे अभ्यर्थी, जो पुनर्मूल्यांकन के उपरांत अपनी योग्यता के आधार पर नियुक्ति-पत्र प्राप्त करने के अधिकारी पाए जाते हैं, वे अपनी योग्यता सूची में आपसी स्थिति के अनुसार नियुक्ति प्राप्त करेंगे।

23. अतः उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में, दिनांक 28.03.2024 का आक्षेपित आदेश अवैध है। लगभग 30 वर्ष पूर्व प्रदान की गई स्वीकृति को केवल इस आधार पर वापस नहीं लिया जा सकता कि पद सक्षम प्राधिकारी द्वारा सृजित नहीं किया गया था।

24. दिनांक 28.03.2024 का आक्षेपित आदेश इस प्रकार निरस्त किया जाता है। याचिकाकर्ता सभी परवर्ती लाभों का हकदार है।

(2025) 3 ILRA 310

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 12.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट - ए संख्या 10045/2020

शिवाकर सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

आकाश खरे, हरि ओम

प्रत्यर्थागण के अधिवक्ता:

अभिषेक श्रीवास्तव, बलेश्वर चतुर्वेदी, राज्य विधि अधिकारी (मुख्य शासकीय अधिवक्ता)

दीवानी विधि - सेवा विधि - कारावास की अवधि में बकाया वेतन - “नो वर्क नो पे”(कार्य नहीं तो , भुगतान नहीं) का सिद्धांत - याचिकाकर्ता को 23.01.2015 से 18.12.2018 तक कारावास में रखा गया था, जब उसके विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत एक निजी विद्युत उपभोक्ता की शिकायत पर भ्रष्टाचार निवारण विभाग द्वारा आपराधिक मामला दर्ज किया गया। आपराधिक मामला निगम/नियोजक के आग्रह पर आरंभ नहीं किया गया था। आक्षेपित आदेश के द्वारा, याचिकाकर्ता को 23.01.2015 से 18.12.2018 की अवधि का वेतन “नो वर्क नो पे” के सिद्धांत के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया।

निर्णय: “नो वर्क नो पे” (कार्य नहीं तो , भुगतान नहीं) के सिद्धांत में अपवाद केवल दुर्लभ परिस्थितियों में बनता है, जैसे कि जब नियोक्ता स्वयं कर्मचारी को कर्तव्य निर्वहन से रोक दे या उसमें बाधा उत्पन्न करे। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को कारावास की अवधि के दौरान बकाया वेतन पाने का कोई वैधानिक अधिकार नहीं है। निगम/नियोजक ने न तो किसी प्रकार की बाधा डाली और न ही याचिकाकर्ता को कार्य करने से रोका। इस अवधि का वेतन देना “नो वर्क नो पे” के सिद्धांत का उल्लंघन होगा तथा इससे याचिकाकर्ता को अनुचित लाभ और राज्य कोष को क्षति होगी। अतः बकाया वेतन की प्रार्थना अस्वीकार; तथापि उक्त अवधि को पेंशन हेतु सेवा की निरन्तरता मानने का अधिकार याचिकाकर्ता को प्राप्त होगा। (पैरा 11)

याचिका निरस्त। (ई-5)

उद्धृत वाद-सूची:

1. भारतीय रिज़र्व बैंक बनाम भोपाल सिंह पंचाल, 1994 एस. सी. सी (1) 541
2. राँचोदजी चतुरजी ठाकोर बनाम अधीक्षण अभियंता, गुजरात विद्युत मंडल, हिम्मतनगर (गुजरात) एवं अन्य, (1996) 11 एस. सी. सी603
3. भारत संघ एवं अन्य बनाम जयपाल सिंह, (2004) 1 एस. सी. सी121
4. राज नारायण बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2019) 5 एस. सी. सी 809
5. अनिल कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024 (6) ए. डी. जे 223

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भानोट द्वारा प्रदत्त)

संदर्भ: दीवानी विविध संशोधन आवेदन संख्या 11/2025 सुनवाई हुई।

संशोधन आवेदन स्वीकार किया जाता है।

दिनांक 06.02.2025 के आदेश में आवश्यक संशोधन समाहित कर दिया गया है। संशोधित आदेश निम्न प्रकार से पढ़ा जाए:

“1. श्री आकाश खरे, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, प्रत्यर्थी सं.1 के विद्वान शासकीय अधिवक्ता राज्य तथा श्री अभिषेक श्रीवास्तव, प्रत्यर्थी सं.2 एवं 3 के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता इस आदेश दिनांक 23.04.2020 से व्यथित है, जिसमें 23.01.2015 से 18.12.2018 की अवधि के वेतन बकाया का भुगतान अस्वीकार कर दिया गया है। आदेश में अंकित है कि उक्त अवधि में याचिकाकर्ता भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(ख) सहपठित धारा 13(1) के अंतर्गत दर्ज आपराधिक मामले में 23.01.2015 से 18.12.2018 तक कारावास में था। एफ.आई.आर. भ्रष्टाचार निवारण विभाग के पुलिस अधीक्षक एस.एस. चौधरी द्वारा एक निजी विद्युत उपभोक्ता की शिकायत पर दर्ज कराई गई थी। वेतन “नो वर्क नो पे” (कार्य नहीं तो, भुगतान नहीं) के सिद्धांत के अधीन अस्वीकृत किया गया है।

3. संक्षेप में, एफ.आई.आर. में अभियोजन का आरोप था कि याचिकाकर्ता ने विद्युत संयोजन के लिए उपभोक्ता से रिश्वत की मांग की थी। इस कारण याचिकाकर्ता 23.01.2015 से 18.12.2018 तक परीक्षण अवधि में कारावास में रहा। उक्त अवधि में याचिकाकर्ता ने कोई सेवा नहीं दी। निर्विवाद है कि उक्त आपराधिक मामला प्रतिवादी निगम की ओर से आरम्भ नहीं हुआ था। याचिकाकर्ता के नियोजक निगम ने न तो कोई बाधा खड़ी की और न ही उसे अपने पद पर कार्य करने से रोका। उक्त मामले में निगम/नियोजक द्वारा कोई विभागीय कार्यवाही भी प्रारम्भ नहीं की गई।

4. विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता, जिसने लगभग तीन वर्षों तक अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं किया, तथा उक्त अवधि में कोई कार्य नहीं किया, बकाया वेतन पाने का अधिकारी है, तथा क्या “नो वर्क नो पे” (कार्य नहीं तो, भुगतान नहीं) के सिद्धांत में इस मामले में शिथिलता बरती जा सकती है?

5. “नो वर्क नो पे” (कार्य नहीं तो, भुगतान नहीं) का सिद्धांत सेवा न्यायशास्त्र में सामान्य रूप से लागू होने वाला एक कल्याणकारी सिद्धांत है। इस सिद्धांत में केवल दुर्लभ परिस्थितियों में ही अपवाद स्वीकार्य है, जैसे कि जब नियोक्ता स्वयं कर्मचारी को उसके कर्तव्यों के निर्वहन से रोक दे या उसमें बाधा उत्पन्न करे।

6. इस विवाद पर प्रासंगिक न्यायिक निर्णयों का लाभ उपलब्ध है। सर्वोच्च न्यायालय ने रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया बनाम भोपाल सिंह पांचाल मामले में ऐसे कर्मचारी को बकाया वेतन देने के प्रश्न पर विचार किया, जिसे उसके नियोक्ता द्वारा कार्य से नहीं रोका गया था, और निम्नलिखित निर्णय दिया:

“हम पहले ही विनियम 39, 46 एवं 47 के प्रभाव पर प्रकाश डाल चुके हैं। ये विनियम सामूहिक रूप से यह स्पष्ट करते हैं कि यदि किसी कर्मचारी को किसी अपराध में गिरफ्तार किया जाता है, जैसा कि वर्तमान मामले में हुआ, तो उसकी अनुपस्थिति को उसकी नियंत्रण से परे परिस्थितियों के अंतर्गत नहीं माना जाएगा। ऐसी स्थिति में, जब उसे उक्त अवधि के दौरान निलंबित माना जाता है, तो वह निर्वाह भत्ता प्राप्त करने का अधिकारी होता है। तथापि, यदि उसे वेतन एवं भत्ते पाने का अधिकारी माना जाता है, तो प्रदत्त निर्वाह भत्ते को उसके वेतन एवं भत्तों के समायोजन में लिया जाएगा। सक्षम प्राधिकारी को यह निर्णय लेते समय कि ऐसे निलंबित कर्मचारी को वेतन-भत्ते दिए जाएँ या नहीं, तथा किस सीमा तक और क्या उक्त अवधि को ड्यूटी या अवकाश के रूप में माना जाए, प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक है।

केवल तभी, जब ऐसा कर्मचारी सभी दोषों से मुक्त करार दिया जाए एवं सक्षम प्राधिकारी द्वारा उस अवधि को ड्यूटी के रूप में मान्यता दी जाए, वह पूर्ण वेतन एवं भत्तों का अधिकारी होगा।

अन्य शब्दों में, उक्त विनियम बैंक को ही यह अधिकार देते हैं कि वह उस अवधि को ड्यूटी, अवकाश या अन्य रूप में माने। यह अधिकार चुनौती के योग्य नहीं है।

उक्त अवधि में कर्मचारी ने कोई कार्य नहीं किया। वह अपने ही कदाचार में संलिप्त होने के कारण अनुपस्थित था तथा बैंक उसके कर्तव्यों से दूर रहने के लिए किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं थी। अतः बैंक पर उस अवधि के वेतन एवं भत्ते देने का दायित्व नहीं डाला जा सकता। यह ‘नो वर्क, नो पे’ (कार्य नहीं तो , भुगतान नहीं)के सिद्धांत के विरुद्ध होगा तथा उन कर्मचारियों के लिए घोर अन्याय होगा जो कार्य करते हैं और वेतन प्राप्त करते हैं।

इतना ही नहीं, ऐसी अवधि में भी कर्मचारी विनियमों के आधार पर निर्वाह भत्ता प्राप्त करता रहता है। इन परिस्थितियों में, बैंक की यह शक्ति अचुनौतीपूर्ण है।” *(बल दिया गया)*

7. रणक्षोरजी चतुरजी ठाकुर बनाम सुप्रीटेंडेंट इंजीनियर, इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड, गुजरात हिम्मतनगर (गुजरात) एवं अन्य में सर्वोच्च न्यायालयने एक ऐसे कर्मचारी को बकाया वेतन देने से इंकार कर दिया, जो अपराध में संलिप्त था और यद्यपि बाद में बरी हो गया था:

“3. याचिकाकर्ता की सेवा में पुनर्नियोजन उच्च न्यायालय द्वारा पहले ही कर दिया गया है। एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या वह बकाया वेतन पाने का अधिकारी है? उसने स्वयं को अपराध में संलिप्त करके सेवा में अनुपस्थित स्थिति निर्मित की थी। यद्यपि बाद में उसे उन्मुक्त कर दिया गया, परन्तु उसकी सेवा समाप्ति उस दोषसिद्धि के आधार पर हुई थी जो कि प्रचलित वैधानिक नियमों के अधीन थी।

बकाया वेतन का प्रश्न तभी विचारणीय होता जब प्रतिवादियों ने विभागीय कार्यवाही की होती और वह विधि में अस्थिर पाई जाती तथा कर्मचारी को कार्य करने से अवैध रूप से रोका गया होता। ऐसे मामलों में कर्मचारी का आचरण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है और प्रत्येक मामले का निर्णय उसकी विशिष्ट परिस्थितियों के आधार पर होता है।

इस मामले में, चूँकि याचिकाकर्ता ने स्वयं को अपराध में संलिप्त किया था तथा दोषसिद्धि एवं कारावास के कारण सेवा देने में असमर्थ था, अतः वह बकाया वेतन पाने का अधिकारी नहीं है। एकल न्यायाधीश एवं खंडपीठ ने कोई विधिक त्रुटि नहीं की है।”

8. भारत संघ एवं अन्य बनाम जयपाल सिंह में सर्वोच्च न्यायालय ने **रणक्षोरजी चतुरजी ठाकुर (उपर्युक्त)** मामले पर आधारित होकर ऐसे कर्मचारी को बकाया वेतन से वंचित रखा, जिसे आरोपों से उन्मुक्त होने के उपरांत पुनः सेवा में लिया गया था, यह कहते हुए कि आपराधिक मामला विभाग की ओर से आरम्भ नहीं किया गया था:

“4. विषय-वस्तु एवं अभिलेखों पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर तथा हमारे ध्यान में लाए गए निर्णयों का अवलोकन करने पर यह स्थापित है कि विशेष अनुमति याचिका को प्रारम्भिक स्तर पर बिना विस्तृत कारणों के खारिज किए जाने से यह न्यायालय कोई विधिक घोषणा नहीं करता और न ही ऐसा आदेश बाध्यकारी पूर्व निर्णय माना जाता है।”

इसके विपरीत, अपीलकर्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे गुण-दोष के आधार पर तथा विशिष्ट रूप से अंकित कारणों के आधार पर दिए गए हैं और बाध्यकारी पूर्व निर्णय के रूप में भी कार्य करते हैं। उनका अवलोकन करने पर, हम [1996] 11 एस. सी. सी 603 (उपर्युक्त) में लिए गए दृष्टिकोण से पूर्णतः सम्मानपूर्वक सहमत हैं।

यदि अभियोजन विभाग या नियोक्ता के ही कहने पर आरंभ हुआ हो और अंततः अभियुक्त को बरी कर दिया गया हो, तो संभवतः भिन्न विचारणीय परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसके विपरीत, यदि एक नागरिक के रूप में कोई कर्मचारी अथवा सरकारी सेवक किसी आपराधिक मामले में फँस जाता है और परीक्षण न्यायालय द्वारा प्रारम्भिक दोषसिद्धि के बाद अपील में बाद में उसे बरी कर दिया जाता है, तो विभाग को सेवा से बाहर रखने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि कानून किसी दोषी व्यक्ति को सेवा में बनाए रखने की अनुमति नहीं देता।

फलस्वरूप, अपीलकर्ताओं द्वारा जिन कारणों पर भरोसा किया गया है, वे न केवल न्यायसंगत हैं, बल्कि औचित्य एवं विवेक के अनुरूप भी हैं। यद्यपि आदेश के पुनर्नियुक्ति से संबंधित भाग पर की गई आपत्ति स्वीकार्य नहीं है और उत्तरदाता को सेवा में पुनर्स्थापित किया जाना होगा, क्योंकि पूर्ववर्ती सेवा-समापन केवल आपराधिक अभियोजन एवं दोषसिद्धि के आधार पर ही था; तथापि अपीलकर्ताओं को इस अवधि के लिए बकाया वेतन (back wages) देने से रोकना उनके वैधानिक अधिकारों के अनुरूप है।

अपीलकर्ताओं को उस अवधि के लिए उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता, जब वे उत्तरदाता की सेवाओं का उपयोग नहीं कर पाए। उच्च न्यायालय द्वारा ऐसे सभी प्रासंगिक पहलुओं पर विचार किए बिना बकाया वेतन देने का आदेश देना गंभीर त्रुटि थी। फलस्वरूप, उच्च न्यायालय द्वारा बकाया वेतन भुगतान का निर्देश दिया गया भाग निरस्त किया जाता है।”

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत राज नारायण बनाम भारत संघ एवं अन्य⁴ का निर्णय उन तथ्यों पर आधारित था, जहाँ विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही भी प्रारंभ की गई थी और साथ ही आपराधिक लंबित मामले के कारण कर्मचारी कारावास में भी था। उस मामले में याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक कार्यवाही की आशंका में निलंबित किया गया था तथा बाद में विभागीय कार्यवाही समाप्त कर दी गई। उस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में निलंबन अवधि के बकाया वेतन का दावा किया गया और स्वीकृत किया गया था। इसलिए **राज नारायण (उपर्युक्त)** तथ्यात्मक रूप से भिन्न है तथा वर्तमान मामले में लागू नहीं होता।

10. इसी प्रकार, **अनिल कुमार सिंह बनाम उ.प्र.राज्य एवं अन्य** में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया निर्णय पूर्णतः **राज नारायण (उपर्युक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि पर आधारित है, अतः वर्तमान वाद में याचिकाकर्ता के पक्ष में सहायक नहीं है।

11. उपर्युक्त तथ्यात्मक एवं विधिक स्थिति के आलोक में “नो वर्क नो पे” (कार्य नहीं तो, भुगतान नहीं) के सिद्धांत में शिथिलता इस मामले में स्वीकार्य नहीं है। वस्तुतः इस सिद्धांत की अवहेलना कर बकाया वेतन प्रदान करना याचिकाकर्ता को अनुचित रूप से लाभान्वित करेगा तथा राज्य कोष को अन्यायपूर्ण क्षति पहुँचाएगा। अतः याचिकाकर्ता को कारावास अवधि के दौरान किसी भी बकाया वेतन का वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं है।

12. तदनुसार, बकाया वेतन प्रदान करने का प्रार्थना अस्वीकृत की जाती है।

13. इस सीमा तक आक्षेपित आदेश दिनांक 23.04.2020 में कोई त्रुटि नहीं पाई जाती।

14. तथापि, उक्त अवधि को पेंशन प्रयोजनों हेतु सेवा-निरंतरता के रूप में माना जाएगा।

15. उपर्युक्त निर्देशों के साथ, यह रिट याचिका अंततः निस्तारित की जाती है।

(2025) 3 ILRA 314

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल

बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या - 10 वर्ष 2025

अन्य संबद्ध मामलों सहित

आयुक्त, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

एस/एस जानकी इंडस्ट्रीज, नई बस्ती, बरेली

...विपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:

बिपिन कुमार पांडे, एसीएससी

विपक्षी के अधिवक्ता:

3.इला आयुक्त, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ बनाम एस/एस जानकी इंडस्ट्रीज नई बस्ती बरेली 415
ऋषि राज कपूर

दीवानी विधि- मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2003 - धारा 13 और 15- विपक्षी ने खरीदे गए माल को नहीं बेचा है और अंतिम स्टॉक था - जब तक कि कर निर्धारण वर्ष की अंतिम कर अवधि - जिसके दौरान कर देयता के समायोजन के बाद व्यवसाय बंद कर दिया गया है - ऐसे कर निर्धारण वर्ष के लिए कर आदेश को पारित करना - यदि आईटीसी की कोई अतिरिक्त राशि शेष है, तो केवल वैट अधिनियम की धारा 15 (5) लागू होगी और अन्यथा नहीं - उपलब्ध आईटीसी को केवल उस कर निर्धारण अवधि के लिए कर आदेश पारित करने के बाद वापस किया जा सकता है जिसमें कर देयता के समायोजन के बाद व्यवसाय बंद कर दिया गया था - एक बार जब विपक्षी - पंजीकृत डीलरों ने, कानून के संचालन द्वारा, अपना व्यवसाय बंद कर दिया, तो विपक्षी डीलर पर यह कर्तव्य था कि वह वैट अधिनियम की धारा 13 (6) के तहत परिकल्पित आईटीसी को डेबिट करे।

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मेसर्स सूरज किराना कंपनी बनाम आयुक्त वाणिज्यिक कर [बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या 767/2013, 28.10.2013 को निर्णीत]
2. ट्रेक्टर एंड फार्म इक्विपमेंट लिमिटेड बनाम सीसीई, मदुरई [2015 (320) ईएलटी 357 (मद.)]
3. श्री नवनीत कॉटन कंपनी बनाम गुजरात राज्य [(2024) 22 सेंटैक्स 51 गुजरात],
4. मैग्मा फिनकोर्प लिमिटेड बनाम तेलंगाना राज्य [(2019) 26 जीएसटीएल 7 तेलंगाना]
5. ईश्वरन ब्रदर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम सहायक आयुक्त (एसटी) (एफएसी) कोयंबटूर [(2023) 4 सेंटैक्स 135 (मद.)]
6. केंद्रीय उत्पाद शुल्क कलेक्टर, पुणे व अन्य बनाम दाइची करकरिया लिमिटेड व अन्य [(1999) 7 एससीसी 448]
7. आयशर मोटर्स लिमिटेड व अन्य बनाम यू.ओ.आई. व अन्य [एआईआर 1999 एससी 892]
8. ट्रेक्टर एंड फार्म इक्विपमेंट लिमिटेड बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त [(2014) 11 एमएडी सीके 103]
9. मेसर्स मैग्मा फिनकोर्प लिमिटेड बनाम तेलंगाना राज्य [एआईआर ऑनलाइन 2019 टीईएल 103]
10. बाबू परसु कैकाडी (मृत) एल.आर. के माध्यम से बनाम बाबू (मृत) एल.आर. के माध्यम से [(2004) 1 एससीसी 681]
11. मेसर्स फारूक एजेंसीज बनाम वाणिज्यिक कर आयुक्त [बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या 397/2013, 16.07.2013 को निर्णीत];
12. फिल्को ट्रेड सेंटर प्राइवेट लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. [2018 (17)जीएसटीएल3 (गुज.)]
13. यू.ओ.आई. एवं अन्य बनाम फिल्को ट्रेड सेंटर प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य [(2023) 1 एससीसी 562]
14. रेटेक फियोन फ्रिक्शन टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रधान आयुक्त [2022 (59) जीएसटीएल 6 (आल.)]

(माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल, द्वारा प्रदत्त)

1. राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री बिपिन कुमार पांडे, विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषि राज कपूर, श्री सुयश अग्रवाल और सुश्री तनीषा जहाँगीर मोनिर को सुना गया।

2. चूँकि इन संबंधित पुनरीक्षणों में शामिल मुद्दे समान हैं, इसलिए, पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से, इन्हें सामान्य आदेश द्वारा तय किया जा रहा है। बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या 10 वर्ष 2025 को इन पुनरीक्षणों में शामिल विवाद के समाधान के लिए एक प्रमुख वाद के रूप में लिया जाता है।

बिक्री / व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या - 10 वर्ष 2025:

3. वर्तमान पुनरीक्षण वाणिज्यिक कर न्यायाधिकरण, बरेली संभाग, बरेली द्वारा वैट अधिनियम की धारा 28(2)(ii) के अंतर्गत कर निर्धारण वर्ष 2017-18 के लिए द्वितीय अपील संख्या 211/2022 में पारित दिनांक 27.11.2024 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है।

4. उपरोक्त पुनरीक्षण को इस न्यायालय ने दिनांक 27.01.2025 के आदेश द्वारा निम्नलिखित विधिक प्रश्नों पर स्वीकार किया:-

“1. क्या वाद के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर वाणिज्यिक कर न्यायाधिकरण का यह मानना कानूनी रूप से उचित था कि विक्रेता उत्तर प्रदेश मूल्य वर्धित कर अधिनियम के प्रावधानों के साथ-साथ जीएसटी अधिनियम की धारा 140(1) और मूल्य वर्धित कर नियमों के नियम 21(1)(वाई) के अंतर्गत दावा किए गए आईटीसी के लाभ का अधिकार प्राप्त है?

2. क्या वाद के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर वाणिज्यिक कर न्यायाधिकरण का विक्रेता को आयकर का लाभ देने में कानूनी रूप से उचित था, जब विक्रेता ने 30.06.2017 को अपना व्यवसाय बंद कर दिया था?”

5. विद्वान एसीएससी का तर्क है कि विपक्षी एक व्यापारी है जो खाद्यान्न, दलहन, तिलहन आदि की खरीद-बिक्री का व्यवसाय करता है। विवादित निर्धारण वर्ष, अर्थात् 2017-18 में, विपक्षी ने 30.06.2017 को समापन स्टॉक घोषित किया था और 4,65,822/- रुपये का आईटीसी दावा किया था। निर्धारण प्राधिकारी ने दिनांक 11.02.2021 के आदेश द्वारा इनपुट टैक्स क्रेडिट (संक्षेप में, 'आईटीसी') को निरस्त कर दिया। दिनांक 11.02.2021 के आदेश से व्यथित होकर, विपक्षी ने प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दायर की, जिसे दिनांक 12.09.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। फिर भी, व्यथित महसूस करते हुए, विपक्षी ने वाणिज्यिक कर न्यायाधिकरण के समक्ष द्वितीय अपील प्रस्तुत की, जिसे 27.11.2024 के आक्षेपित निर्णय एवं आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया। अतः यह पुनरीक्षण।

6. उन्होंने आगे तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश माल एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 (जिसे आगे 'जीएसटी अधिनियम' कहा जाएगा) 01.07.2017 को लागू हुआ। चूँकि उत्तर प्रदेश मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2008 (जिसे आगे

3.इला आयुक्त, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ बनाम एस/एस जानकी इंडस्ट्रीज नई बस्ती बरेली 417

'वैट अधिनियम' कहा जाएगा) की अवधि 30.06.2017 तक थी, इसलिए कोई भी पंजीकृत व्यापारी, जिसका पूर्ववर्ती वैट अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण था, 30.06.2017 से समाप्त हो गया। दूसरे शब्दों में, सभी पंजीकृत व्यापारियों ने 30.06.2017 को वैट अधिनियम के अंतर्गत अपना व्यवसाय बंद कर दिया। एक बार जब वैट अधिनियम के तहत पंजीकृत व्यापारी ने कानून के तहत अपना व्यवसाय बंद कर दिया, तो व्यापारी को वैट अधिनियम की धारा 13(6) के अनुसार आईटीसी डेबिट करना आवश्यक था।

7. उन्होंने आगे कहा कि वैट अधिनियम के तहत पंजीकृत व्यापारी, वैट अधिनियम की धारा 13(1)(ए) में प्रदान की गई शर्तों के अनुसार ही आईटीसी का दावा कर सकते हैं, यदि खरीदे गए सामान को राज्य के अंदर या उसमें दी गई शर्त के अनुसार पुनर्विक्रय किया जाता है। प्रतिवादियों का यह स्वीकार किया गया मामला है कि खरीदे गए सामान को न तो उत्तर प्रदेश राज्य में, न ही अंतर-राज्यीय वाणिज्य व्यापार के दौरान और न ही भारत के क्षेत्र के बाहर माल के निर्यात के दौरान पुनर्विक्रय किया गया था।

8. उन्होंने आगे कहा कि वैट अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के नियम 21(1)(वाई) में भी यही प्रावधान है। उन्होंने आगे कहा कि कर निर्धारण प्राधिकारी ने खाते के सत्यापन पर पाया कि व्यापारी ने वैट अधिनियम की धारा 13(6) का अनुपालन नहीं किया है और इसलिए, आईटीसी को सही ढंग से डेबिट/रिवर्स कर दिया है। उन्होंने आगे कहा कि एक बार जब व्यापारी वैट अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन करने में विफल रहा है, तो कार्यवाही को अवैध नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत, न्यायाधिकरण ने स्वयं को गलत दिशा दी है और खाते की पुस्तकों का सामान्य रूप से सत्यापन किए बिना ही वैट अधिनियम की धारा 13 और 14 के साथ-साथ नियमों के नियम 21 का उल्लेख किया है और उसमें यह कहते हुए एक संक्षिप्त टिप्पणी की है कि अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

9. उन्होंने आगे दलील दी कि राज्य प्राधिकरण ने *मेसर्स फारूक एजेंसीज बनाम वाणिज्यिक कर आयुक्त* [बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या 397/2013, 16.07.2013 को निर्णीत] के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का विशेष रूप से उल्लेख किया है; जिसमें, इस न्यायालय ने माना कि चूंकि व्यापार कर अधिनियम के निहितार्थ वैट अधिनियम के लागू होने से समाप्त हो गए हैं, इसलिए यह मान लिया जाएगा कि व्यापारी ने पूर्ववर्ती अधिनियम के तहत अपना व्यवसाय बंद कर दिया है। इसी तरह, यह सादृश्य उस मामले पर भी लागू होगा जहाँ व्यापारी का व्यवसाय उस तारीख को बंद हो गया था जब नई कर व्यवस्था, अर्थात् जीएसटी अधिनियम, 01.07.2017 को लागू किया गया था, लेकिन न्यायाधिकरण ने इसे उचित महत्व नहीं दिया है। न्यायाधिकरण ने विपक्षी की अपीलों को स्वीकार करने में गलती की है।

10. इसके विपरीत, विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता, श्री ऋषि राज कपूर, आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हैं और तर्क देते हैं कि यह मानते हुए भी कि यदि विपक्षी का व्यवसाय बंद माना जाता है, तो वैट अधिनियम की धारा 15(5) के अनुसार, व्यवसाय जारी रखने के दौरान स्वीकार्य आईटीसी की अतिरिक्त राशि वापस की जानी चाहिए थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विपक्षी ने व्यवसाय बंद नहीं किया है और इसलिए, कर निर्धारण

प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश, जिसकी प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है, आक्षेपित आदेश द्वारा न्यायाधिकरण द्वारा उचित रूप से निरस्त किया गया है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **मेसर्स सूरज किराना कंपनी बनाम आयुक्त वाणिज्यिक कर** [बिक्री/व्यापार कर पुनरीक्षण संख्या 767/2013, 28.10.2013 को निर्णीत] में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है।

11. विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता श्री सुयश अग्रवाल ने तर्क दिया कि विपक्षी विधिवत पंजीकृत विक्रेता था और उसे वैध पंजीकरण प्रदान किया गया था, जो वैट अधिनियम की धारा 13 के तहत आईटीसी का दावा करने का हकदार है। विपक्षी ने अपना व्यवसाय कभी बंद नहीं किया है। लागू होने पर, जीएसटी अधिनियम विक्रेता के पंजीकरण को वैट अधिनियम से जीएसटी अधिनियम में स्थानांतरित करने का अधिकार देता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि जीएसटी अधिनियम की धारा 140 आईटीसी के लिए संक्रमणकालीन व्यवस्था को सशक्त बनाती है। एक बार जब नया जीएसटी अधिनियम मौजूदा पंजीकृत विक्रेता (वैट अधिनियम) को नए जीएसटी अधिनियम के साथ-साथ जीएसटी अधिनियम की धारा 140 के अनुसार उपयोग किए जाने वाले आईटीसी के लिए संक्रमणकालीन व्यवस्था को स्थानांतरित करने का अधिकार देता है, तो वैट अधिनियम के तहत शुरू की गई आईटीसी को उलटने वाली कार्यवाही कानूनन गलत है। उन्होंने आगे कहा कि मूल्यांकन प्राधिकारी के पास शेष आईटीसी को वापस करने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि इसका उपयोग दुरुपयोग या धोखाधड़ी से नहीं किया गया था और राजस्व के वाद में ऐसा नहीं है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने **ट्रैक्टर एंड फार्म इक्विपमेंट्स लिमिटेड बनाम सीसीई, मद्रास** [2015 (320) ईएलटी 357 (मद्रास)] में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया है। उन्होंने आगे कहा कि वैट अधिनियम के तहत उपलब्ध अप्रयुक्त आईटीसी का उपयोग नए जीएसटी अधिनियम के लिए उसी जीएसटी ट्रांस-1 फॉर्म को भरकर किया जा सकता है और इस लाभ से कानूनी रूप से इनकार नहीं किया जा सकता। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने **श्री नवनीत कॉटन कंपनी बनाम गुजरात राज्य** [(2024) 22 सेंटैक्स 51 गुजरात], **मैग्मा फिनकॉर्प लिमिटेड बनाम तेलंगाना राज्य** [(2019) 26 जीएसटीएल 7 तेलंगाना] और **ईश्वरन ब्रदर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम सहायक आयुक्त (एसटी) (एफएसी) कोयंबटूर** [(2023) 4 सेंटैक्स 135 (मद्रास)] के निर्णयों का हवाला दिया है।

12. उन्होंने आगे कहा कि आबकारी अधिनियम के तहत, मोडवैट का दावा अस्वीकार कर दिया गया था और अपीलीय न्यायालय द्वारा उसे स्वीकार कर लिया गया था, जिसके विरुद्ध राजस्व विभाग द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में अपील की गई थी, जिसे **कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज, पुणे एवं अन्य बनाम दाइची करकारिया लिमिटेड एवं अन्य** [(1999) 7 एससीसी 448] के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था।

13. उन्होंने आगे दलील दी कि एक निश्चित तिथि पर समापन स्टॉक, उसकी आईटीसी का उपयोग किया जा सकता है और विपक्षी को केवल इस आधार पर उसके वैध आईटीसी से वंचित नहीं किया जा सकता कि वह वस्तु नई व्यवस्था, यानी जीएसटी अधिनियम के तहत छूट प्राप्त है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने **फिल्को ट्रेड सेंटर प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ** [2018 (17) जीएसटीएल 3 (गुज.)] के निर्णय का हवाला दिया है, जिसके खिलाफ राजस्व विभाग ने **भारत संघ एवं अन्य बनाम फिल्को ट्रेड सेंटर प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य**

3.इला आयुक्त, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ बनाम एस/एस जानकी इंडस्ट्रीज नई बस्ती बरेली 419

[(2023) 1 एससीसी 562] में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की थी, जिसका निस्तारण कर दिया गया था। उन्होंने आगे दलील दी कि इस न्यायालय को **राटेक फियोन फ्रिक्शन टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रधान आयुक्त** [2022 (59) जीएसटीएल 6 (सभी)] के मामले में पूर्व-मौजूदा कानून के तहत अर्जित आईटीसी के संबंध में विचार करने का अवसर है, जिसका उपयोग ट्रांस-1 फॉर्म जमा करके किया जा सकता है, जिसे तकनीकी गड़बड़ी के कारण अपलोड नहीं किया जा सका, जहाँ इस न्यायालय ने पंजीकृत व्यापारियों के पक्ष में निर्णय सुनाया। उन्होंने आगे कहा कि न्यायाधिकरण ने, तथ्य और कानून का अंतिम न्यायालय होने के नाते, अपील को सही ढंग से स्वीकार किया है।

14. विपक्षी की विद्वान अधिवक्ता सुश्री तनीषा जहाँगीर मोनिर ने कहा कि न्यायाधिकरण ने अपील को सही ढंग से स्वीकार किया है। आईटीसी, जो उस अवधि के दौरान संचित हुई थी जिसका प्रत्यर्थी नई कर व्यवस्था में भी लाभ उठाने का हकदार था, उसे मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा गलत तरीके से रिवर्स कर दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि नई कर व्यवस्था, यानी जीएसटी अधिनियम के लागू होने के बाद, पंजीकृत व्यापारी नई कर व्यवस्था के तहत अप्रयुक्त/अदावा किए गए आईटीसी का लाभ लेने का हकदार है। उन्होंने आगे यह भी दलील दी कि जीएसटी अधिनियम की धारा 140 पंजीकृत विक्रेता को आईटीसी का क्रेडिट लेने का अधिकार देती है, जो पूर्ववर्ती अधिनियम, यानी वैट अधिनियम में अप्रयुक्त/संचित था। उन्होंने आगे दलील दी कि इसमें कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी ने वैट अधिनियम के दौरान वैध आईटीसी अर्जित की थी, जिसे मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा गलत तरीके से रिवर्स कर दिया गया था। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **आयशर मोटर्स लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य** [एआईआर 1999 एससी 892] में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, **ट्रैक्टर एंड फार्म इक्विपमेंट लिमिटेड बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त** [(2014) 11 एमएडी सीके 103] में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय और **मेसर्स मैग्मा फिनकोर्प लिमिटेड बनाम तेलंगाना राज्य** [एआईआर ऑनलाइन 2019 टीईएल 103] में तेलंगाना उच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया।

15. उन्होंने आगे दलील दी कि अर्जित आईटीसी का उपयोग 30.06.2017 तक कभी नहीं किया गया था और आईटीसी के वैध दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे दलील दी कि वैट अधिनियम के तहत कोई भी प्रावधान नई कर व्यवस्था, यानी जीएसटी अधिनियम के तहत अर्जित आईटीसी का लाभ उठाने पर रोक नहीं लगाता है।

16. इसके विपरीत, विद्वान एससीएससी सुश्री मोनिर द्वारा दिए गए तर्कों का खंडन करते हैं और प्रथम अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 27.01.2023 के आदेश (अनुलग्नक संख्या 2) का हवाला देते हैं और दलील देते हैं कि प्रथम अपीलीय प्राधिकारी द्वारा प्रत्यर्थी के खिलाफ स्पष्ट तथ्य दर्ज किए गए हैं। उन्होंने आगे दलील दी कि प्रत्यर्थी ने बंद स्टॉक के अनुसार अपनी खरीद पर आईटीसी का उपयोग किया। प्रत्यर्थी के विरुद्ध दिए गए उक्त तथ्य को न्यायाधिकरण द्वारा आक्षेपित आदेश में, प्रत्यर्थी की अपील स्वीकार करते समय, विशेष रूप से निरस्त नहीं किया गया है। इसलिए, न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश गलत है और निरस्त किए जाने योग्य है।

17. विद्वान एसीएससी ने आगे तर्क दिया है कि विपक्षी के अधिवक्ताओं द्वारा जिन उपरोक्त निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनका वाद के तथ्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और इस प्रकार, उद्धृत निर्णय विपक्षी के लिए कोई सहायक नहीं होंगे।

18. उन्होंने आगे तर्क दिया है कि जिस अन्य निर्णय पर भरोसा किया गया है, वह भी विपक्षी के लिए कोई सहायक नहीं है क्योंकि समान तथ्यों के आधार पर, **मेसर्स फारूक एजेंसीज (सुप्रा)** के वाद में उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र ने स्पष्ट रूप से माना है कि पंजीकृत व्यापारी ने कानून के प्रभाव में अपना व्यवसाय बंद कर दिया है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी विशेष तिथि से कोई नया अधिनियम लागू किया जा रहा है, तो पूर्ववर्ती अधिनियम के तहत पंजीकृत व्यापारी का व्यवसाय बंद माना जाएगा। उन्होंने आगे दलील दी कि **मेसर्स सूरज किराना कंपनी** (सुप्रा) का निर्णय बाद का है, जिसमें **मेसर्स फारूक एजेंसीज** (सुप्रा) में इस न्यायालय के निर्णय पर विचार नहीं किया गया है और इसलिए, यह भी विपक्षी के लिए कोई सहायक नहीं है।

19. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, न्यायालय ने अभिलेखों का अवलोकन किया।

20. इन मामलों में शामिल मुद्दा यह है कि क्या 01.07.2017 से नए जीएसटी अधिनियम के लागू होने के बाद, पंजीकृत विक्रेताओं को अंतिम स्टॉक होने के बावजूद उत्तर प्रदेश वैट अधिनियम के तहत अर्जित अप्रयुक्त आईटीसी का लाभ प्राप्त करने का अधिकार था।

21. वैट अधिनियम के तहत, खाद्यान्नों को कुछ शर्तों के अधीन, उनकी खरीद पर छूट दी गई थी और उनकी बिक्री पर कर लगाया जाना था। वैट अधिनियम की धारा 13(1)(ए) के तहत निर्धारित कुछ शर्तों को पूरा करने पर ही आईटीसी का लाभ उठाया जा सकता है। अप्रयुक्त आईटीसी को वैट अधिनियम की धारा 13 की उप-धाराओं के अनुसार डेबिट या आगे ले जाना होगा। नियम 21(1) के तहत भी यही राय व्यक्त की गई है। बेहतर मूल्यांकन के लिए, वैट अधिनियम की धारा 13 के कुछ प्रावधान नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

“धारा 13: इनपुट टैक्स क्रेडिट:-

(1) इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, निम्नलिखित खंडों में निर्दिष्ट और इस अधिनियम के अंतर्गत वैध पंजीकरण प्रमाणपत्र रखने वाले विक्रेताओं को, राज्य के भीतर से खरीदे गए और ऐसे खंडों में उल्लिखित कर योग्य वस्तुओं के संबंध में, उसमें दी गई शर्तों और निर्धारित अन्य शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन, संबंधित खंड द्वारा या उसके अंतर्गत प्रदान की गई सीमा तक, इनपुट टैक्स क्रेडिट के रूप में राशि का क्रेडिट दिया जाएगा:

(ए) कॉलम 2 में दी गई शर्तों के अधीन, कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी प्रत्येक विक्रेता को, गैर-वैट वस्तुओं, पूंजीगत वस्तुओं और कैप्टिव पावर प्लांट को छोड़कर सभी कर योग्य वस्तुओं के संबंध में, जहाँ ऐसी कर योग्य वस्तुएं इस अधिनियम के प्रारंभ होने की तिथि को या उसके बाद खरीदी जाती हैं, नीचे दी गई तालिका के कॉलम 3 में प्रदान की गई सीमा तक, इनपुट टैक्स क्रेडिट के रूप में राशि का क्रेडिट दिया जाएगा:

क्रम सं.	शर्तें	इनपुट टैक्स क्रेडिट की राशि की सीमा
(1)	(2)	(3)
1.	यदि खरीदे गए माल को पुनः बेचा जाता है (i) राज्य के अंदर, या (ii) अंतर-राज्यीय व्यापार के दौरान या प्रारंभ; या (iii) भारत के क्षेत्र से बाहर माल के निर्यात के दौरान।	इनपुट टैक्स की पूरी राशि।
2.	यदि खरीदे गए माल का उपयोग - (i) गैर-वैट माल को छोड़कर किसी भी माल के निर्माण में किया जाता है और जहाँ ऐसे निर्मित माल को भारत के क्षेत्र से बाहर निर्यात के दौरान बेचा जाता है; या (ii) गैर-वैट माल को छोड़कर किसी भी कर योग्य माल के निर्माण में किया जाता है और जहाँ ऐसे निर्मित माल को राज्य के अंदर या अंतरराज्यीय व्यापार या वाणिज्य के दौरान बेचा जाता है।	इनपुट टैक्स की पूरी राशि।
3.	यदि खरीदे गए माल - (i) राज्य के बाहर स्थानांतरित या प्रेषित किए गए हों, बिक्री के परिणामस्वरूप नहीं; या (ii) गैर-वैट माल को छोड़कर किसी भी कर योग्य माल के निर्माण में उपयोग किए गए हों और ऐसे निर्मित माल बिक्री के परिणामस्वरूप नहीं, बल्कि राज्य के बाहर स्थानांतरित या प्रेषित किए गए हों।	इनपुट टैक्स की आंशिक राशि, जो केंद्रीय बिक्री कर अधिनियम, 1956 की धारा 8 की उपधारा (1) के तहत निर्धारित दर से अधिक है उस क्रय मूल्य पर जिस पर विक्रेता ने पंजीकृत विक्रेता या राज्य सरकार को कर का भुगतान किया है।

(6) उप-धारा (5) में निर्दिष्ट परिस्थितियों में, इनपुट टैक्स की पूरी राशि और इनपुट टैक्स क्रेडिट की स्वीकार्य राशि के अंतर की राशि, व्यापारी द्वारा उसके द्वारा बनाए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट खाते में उस दिन डेबिट की जाएगी, जिस दिन:

- (i) माल, जिसके संबंध में इनपुट टैक्स की पूरी राशि का क्रेडिट दावा किया गया था; या
- (ii) माल, जिसके संबंध में इनपुट टैक्स की पूरी राशि का क्रेडिट दावा किया गया था; या
- (iii) जहाँ माल, जिसके संबंध में इनपुट टैक्स की पूरी राशि का क्रेडिट दावा किया गया था, का उपयोग या उपभोग किसी माल की पैकिंग में किया जाता है, ऐसे पैक किए गए माल को राज्य के बाहर भेजा जाता है; या विक्रेता द्वारा इस प्रकार बेचा या त्यागा गया हो जिसके लिए इनपुट टैक्स क्रेडिट की सुविधा अनुमेय नहीं है या ऐसी सुविधा इनपुट टैक्स की आंशिक राशि के लिए स्वीकार्य है:

बशर्ते कि जहाँ विक्रेता अपना व्यवसाय बंद कर देता है, वहाँ इनपुट टैक्स की पूरी राशि, जिसका दावा उप-धारा (4) के अंतर्गत किया गया था, निम्न के संबंध में-

- (i) विक्रेता द्वारा उसी रूप और स्थिति में धारित माल जिसमें उसे खरीदा गया था; या
- (ii) माल जिसका उपयोग विक्रेता द्वारा धारित किसी भी माल के निर्माण में किया गया है, (चाहे अर्ध-निर्मित या निर्मित अवस्था में);
- (iii) माल जिसका उपयोग या उपभोग विक्रेता द्वारा धारित किसी भी माल की पैकिंग में किया गया है, जिस दिन उसने व्यवसाय बंद किया है, उस दिन के समापन स्टॉक में, जिस कर अवधि के लिए व्यवसाय बंद किया गया है, कर रिटर्न जमा करने के लिए निर्धारित कर अवधि की समाप्ति से पहले, विक्रेता द्वारा अपने द्वारा बनाए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट के खाते में डेबिट किया जाएगा।”

22. वैट अधिनियम की धारा 13(1)(ए) के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अर्जित आईटीसी का उपयोग बिक्री पर, तालिका में उल्लिखित शर्तों के अधीन किया जा सकता है। आईटीसी का दावा केवल ऊपर उल्लिखित कुछ शर्तों को पूरा करने पर ही किया जा सकता है। वैट अधिनियम की धारा 13(6) और उत्तर प्रदेश वैट नियमावली के नियम 21(1)(वाई) में यह प्रावधान है कि यदि आईटीसी का उपयोग नहीं हुआ है और पंजीकृत व्यापारी ने अपना व्यवसाय बंद कर दिया है और अंतिम स्टॉक मौजूद है, तो व्यापारी को अप्रयुक्त आईटीसी डेबिट करना होगा। पंजीकृत व्यापारी को उक्त अवधि के लिए अर्जित आईटीसी का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

23. वैट अधिनियम की धारा 15(5) भी नीचे उद्धृत है:-

“धारा 15. देय कर की शुद्ध राशि और कर देयता से अधिक इनपुट टैक्स क्रेडिट का उपचार:

(5) उप-धारा (4) में निहित किसी भी बात के होते हुए भी जहाँ कोई व्यापारी यदि कोई व्यवसाय बंद कर देता है, तो उस कर निर्धारण वर्ष की अंतिम कर अवधि से संबंधित किसी भी अतिरिक्त स्वीकार्य इनपुट टैक्स क्रेडिट की राशि की वापसी, जिसके दौरान व्यवसाय बंद कर दिया गया है, ऐसे कर निर्धारण वर्ष के लिए कर आदेश पारित होने की तिथि के बाद नब्बे दिनों के भीतर की जाएगी।

3.इला आयुक्त, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ बनाम एस/एस जानकी इंडस्ट्रीज नई बस्ती बरेली 423

24. उपरोक्त धारा में स्वीकार्य आईटीसी की अतिरिक्त राशि की वापसी का प्रावधान है, यदि यह उस कर निर्धारण वर्ष की अंतिम कर अवधि से संबंधित कर देयता से अधिक है, जिसके दौरान व्यवसाय बंद कर दिया गया है।

25. इस वाद में, पक्षों के बीच यह स्वीकार किया गया है कि विपक्षी ने खरीदा हुआ माल नहीं बेचा है और अंतिम स्टॉक मौजूद था। कर निर्धारण वर्ष की अंतिम कर अवधि तक, जिसके दौरान कर देयता के समायोजन के बाद व्यवसाय बंद कर दिया गया है, ऐसे कर निर्धारण वर्ष के लिए कर देयता के समायोजन आदेश को दरकिनार करते हुए, यदि आईटीसी की कोई अतिरिक्त राशि शेष है, तो केवल वैट अधिनियम की धारा 15(5) लागू होगी, अन्यथा नहीं।

26. वैट अधिनियम की धारा 15 को सरलता से पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि उपलब्ध आईटीसी केवल उस कर निर्धारण अवधि के लिए कर निर्धारण आदेश पारित होने के बाद ही वापस किया जा सकता है जिसमें कर देयता के समायोजन के बाद व्यवसाय बंद कर दिया गया था। इस प्रकार, श्री ऋषि राज कपूर द्वारा उठाया गया तर्क धारा 15 के आधार पर अप्रयुक्त आईटीसी की वापसी के लिए कोई आधार नहीं रखता है। इसलिए, इसे अस्वीकार किया जाता है।

27. विपक्षी की ओर से दूसरा तर्क यह दिया गया है कि मूल्यांकन प्राधिकारी ने केवल इस बहाने आईटीसी को रिवर्स कर दिया है कि विचाराधीन वस्तु को नई व्यवस्था जीएसटी अधिनियम के तहत छूट दी गई है और इसलिए, आईटीसी को गलत तरीके से रिवर्स कर दिया गया है। उक्त तर्क का कोई आधार नहीं है। नए कर कानून, यानी जीएसटी, के लागू होने की तिथि से, वैट अधिनियम के तहत पंजीकृत व्यापारी ने अधिनियम के निहितार्थ के तहत अपना व्यवसाय बंद कर दिया है, जैसा कि इस न्यायालय ने मेसर्स फारूक एजेंसीज (सुप्रा) के वाद में माना है। एक बार जब पूर्ववर्ती वैट अधिनियम के तहत पंजीकृत व्यापारी ने अपना व्यवसाय बंद कर दिया, तो वे वैट अधिनियम की धारा 13(6) के अनुसार अप्रयुक्त आईटीसी को डेबिट करने के लिए बाध्य थे।

28. इस न्यायालय को मेसर्स फारूक एजेंसीज (सुप्रा) में इस बात पर विचार करने का अवसर मिला कि क्या व्यापार कर अधिनियम के तहत पंजीकृत व्यापारी को नए उत्तर प्रदेश वैट अधिनियम के लागू होने पर अपना व्यवसाय बंद कर दिया गया माना जाएगा और यह माना गया कि वैट अधिनियम के लागू होने के बाद, पूर्ववर्ती अधिनियम के पंजीकृत व्यापारी ने कानून के प्रभाव से अपना व्यवसाय बंद कर दिया था।

29. मेसर्स फारूक एजेंसीज (सुप्रा) में दिए गए निर्णय का प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत है:-

"इसमें कोई विवाद नहीं है कि करदाता ने व्यापार कर अधिनियम के तहत अपना कारोबार केवल 9 महीने की अवधि के लिए किया था अर्थात् 01 अप्रैल, 2007 से 31 दिसंबर, 2007 के बीच। 31 दिसंबर, 2007 को व्यापार कर अधिनियम भी वैट लागू होने के कारण लागू नहीं रहा क्योंकि 01.01.2008 से वैट लागू हो गया था।

मेरी राय में, करदाता द्वारा कारोबार, कर निर्धारण वर्ष के 9 महीने की समाप्ति के बाद, कानून के अनुसार, उत्तर प्रदेश व्यापार कर अधिनियम के तहत बंद हो गया। इसलिए, औसत कारोबार के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए वाद के तथ्यों में धारा 18 के प्रावधान लागू हुए। धारा 18 के तहत उल्लिखित सिद्धांत को लागू करते हुए, कर अधिकारियों ने पाया है कि कुल निर्धारित किया गया है कि करदाता का कारोबार 9 महीने की अवधि में 37.50 लाख रुपये से अधिक था और तदनुसार, व्यापार कर अधिनियम की धारा 3-एच के तहत 1% की दर से विकास कर की मांग की गई है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि करदाता ने अपना व्यवसाय बंद नहीं किया है। यह भी सच है कि व्यापार कर अधिनियम के निरस्त होने के कारण, उक्त अधिनियम के दायरे में किया गया व्यवसाय 31 दिसंबर, 2007 को समाप्त हो गया। 31 दिसंबर, 2007 के बाद व्यापार कर अधिनियम के तहत व्यवसाय बंद करना कानून के तहत हुआ था। इसमें भी कोई विवाद नहीं है कि 01.01.2008 से 31.03.2008 की अवधि के लिए करदाता का मूल्य वर्धित कर के तहत मूल्यांकन किया गया है और कर के भुगतान के लिए उसकी देयता उक्त अधिनियम के तहत ही निर्धारित की गई है। उत्तर प्रदेश व्यापार कर अधिनियम का प्रावधान 01.01.2008 से शुरू होने वाली उक्त अवधि के संबंध में अधिनियम लागू नहीं किया गया था।

30. विपक्षी के अधिवक्ता ने **मेसर्स सूरज किराना कंपनी** (सुप्रा) वाद में दिए गए निर्णय पर काफी हद तक भरोसा किया है, जिसमें भी इसी तरह के मुद्दे पर विचार किया गया था, और निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी:-

"यह विवादित नहीं है कि करदाता पुनरीक्षणकर्ता ने 31.12.07 के बाद अपना व्यवसाय बंद नहीं किया है और इसलिए अधिनियम की धारा 18 लागू नहीं होगी।"

31. **मेसर्स सूरज किराना कंपनी** (सुप्रा) वाद में उक्त निर्णय 28.10.2013 को सुनाया गया था और इसमें **मेसर्स फारूक एजेंसीज** (सुप्रा) वाद में दिए गए 16.07.2013 के पूर्व विस्तृत निर्णय पर विचार/नोटिस नहीं किया गया है। अतः **मेसर्स सूरज किराना कंपनी** (सुप्रा) का उपरोक्त निर्णय विपक्षी के लिए कोई सहायक नहीं है।

32. सर्वोच्च न्यायालय ने **बाबू परसु कैकाडी (मृत) उनके विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम बाबू (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से** [(2004) 1 एससीसी 681] के वाद में यह माना है कि यदि समन्वय पीठ के पूर्व के उदाहरण पर विचार नहीं किया गया है, तो वह पर इनक्यूरियम माना जाएगा। प्रासंगिक अनुच्छेदों को इस प्रकार उद्धृत किया गया है:-

"14. गहन विचार-विमर्श के बाद, हमारी राय है कि, पूर्वोक्त कारणों से; इस न्यायालय के धोंडीराम तोतोबा कदम (सुप्रा) के निर्णय में, समन्वय पीठ की पूर्व बाध्यकारी न्यायनिर्णय पर ध्यान नहीं दिया गया और अधिनियम की धारा 15 और 29 में निहित अनिवार्य प्रावधानों पर विचार नहीं किया गया। इसलिए, यह एक बाध्यकारी न्यायनिर्णय नहीं है।

15. हैल्सबरी के इंग्लैंड के कानून, चतुर्थ संस्करण खंड 26 में कहा गया है कि,

3.इला आयुक्त, वाणिज्य कर, उत्तर प्रदेश लखनऊ बनाम एस/एस जानकी इंडस्ट्रीज नई बस्ती बरेली 425

"एक निर्णय तब दिया जाता है जब न्यायालय अपने या किसी समन्वित अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय के किसी पूर्व निर्णय की अनदेखी करते हुए कार्य करता है, जो उसके समक्ष मामले को कवर करता है, जिस स्थिति में उसे यह तय करना होता है कि किस मामले का अनुसरण करना है या जब उसने हाईस ऑफ लॉर्ड्स के किसी निर्णय की अनदेखी करते हुए कार्य किया हो, जिस स्थिति में उसे उस निर्णय का अनुसरण करना होता है; या जब निर्णय किसी कानून या वैधानिक बल वाले नियम की शर्तों की अनदेखी करते हुए दिया जाता है।"

18. इसके अलावा, यह न्यायालय, धोंडीराम तोतोबा कदम (सुप्रा) में निर्णय देते समय, रामचंद्र केशव अडके (सुप्रा) में समन्वय पीठ के अपने पूर्व निर्णय से बाध्य था। हम पूर्व निर्णय का पालन करने के लिए बाध्य हैं, जो बाद के निर्णय की तुलना में इस बिंदु पर सटीक रूप से आधारित है, जो बिना किसी पर्याप्त तर्क के और अधिनियम के अनिवार्य प्रावधानों के संदर्भ के बिना दिया गया है।

33. **मेसर्स फारूक एजेंसीज** (सुप्रा) में इस न्यायालय ने विशेष रूप से माना है कि कानून के अनुसार, पंजीकृत विक्रेता का व्यवसाय बंद हो गया था और इसलिए, इसी तरह की उपमा इस वाद में लागू होगी। विपक्षी (पंजीकृत विक्रेता) ने कानून के अनुसार 30.06.2017 के बाद वैट अधिनियम के तहत अपना व्यवसाय बंद कर दिया।

34. लेकिन न्यायाधिकरण ने अपने विवेकानुसार, आक्षेपित आदेश में, विपक्षी की अपीलों को यह कहते हुए स्वीकार कर लिया है कि पुनरीक्षणकर्ता, अर्थात् **मेसर्स फारूक एजेंसीज** (सुप्रा) द्वारा उद्धृत निर्णय, वाद के तथ्य पर लागू नहीं होता।

35. न्यायाधिकरण, **मेसर्स फारूक एजेंसीज** (सुप्रा) के वाद में इस न्यायालय द्वारा दी गई कानूनी रूप से बाध्यकारी न्यायनिर्णय का पालन न करने में बुरी तरह विफल रहा। न्यायाधिकरण ने यह भी कहा कि वैट अधिनियम की धारा 13 और नियमों का नियम 21 भी विचाराधीन मुद्दे पर लागू नहीं होते। वैट अधिनियम की धारा 13 और वैट नियमावली का नियम 21, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, स्पष्ट रूप से पंजीकृत विक्रेताओं के अंतिम स्टॉक और अप्रयुक्त आईटीसी से निपटने की स्थिति पर विचार करते हैं, क्योंकि उन्होंने अपना व्यवसाय बंद कर दिया था, जैसा कि ऊपर कहा गया है।

36. इसके अलावा, विपक्षी ने अधिकरण के समक्ष कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि उन्होंने ट्रांस-1 भरा है। एक बार ट्रांस-1 फॉर्म न भरने के बाद, मूल्यांकन प्राधिकारी द्वारा शुरू की गई कार्यवाही को कानूनन गलत नहीं कहा जा सकता। एक बार जब वैट अधिनियम के तहत कारोबार 30.06.2017 को कानून के अनुसार बंद कर दिया गया, तो वैट अधिनियम की धारा 13 (6) के अनुसार आईटीसी को रिवर्स करना विक्रेता का कर्तव्य बन जाता है।

37. विपक्षी के अधिवक्ता द्वारा जिन कुछ निर्णयों पर भरोसा किया गया, वे उस अवधि से संबंधित थे जब तकनीकी खराबी के कारण ट्रांस-1 अपलोड नहीं हो पाया था, जहाँ न्यायालय ने आदेश पारित किए और कुछ टिप्पणियाँ की, जिन्हें न्यायनिर्णय नहीं माना जा सकता।

38. अन्य निर्णय, जिनका हवाला विपक्षी के अधिवक्ताओं ने दिया है, केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम/मोडवैट क्रेडिट से संबंधित हैं, लेकिन अधिवक्ता केंद्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम के तहत वैट अधिनियम के समान कोई प्रावधान नहीं दिखा सके। वैट अधिनियम की धारा 13(6), नियम 21 के साथ पढ़ने पर, विशेष रूप से यह प्रावधान करती है कि जब व्यवसाय बंद करने की तिथि पर समापन स्टॉक उपलब्ध है, तो अप्रयुक्त/संचित आईटीसी के साथ क्या व्यवहार किया गया है।

39. वैट अधिनियम के तहत एक विशिष्ट प्रावधान प्रदान किया गया है, जिसका, निश्चित रूप से, विपक्षी - पंजीकृत विक्रेता द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है, और न ही न्यायाधिकरण ने, तथ्य और विधि की अंतिम अदालत होने के नाते, विपक्षी - पंजीकृत विक्रेता के पक्ष में अपील स्वीकार करते समय इस बारे में एक शब्द भी चर्चा की।

40 इसके अलावा, वैट अधिनियम की धारा 13(6) में व्यवसाय बंद करने की तिथि पर अर्जित/अप्रयुक्त आईटीसी को डेबिट करने का प्रावधान है, लेकिन विपक्षी उक्त धारा का पालन करने में पूरी तरह विफल रहा। वैट अधिनियम की धारा 13(6) के तहत विपक्षी द्वारा किसी भी अनुपालन के अभाव में, विपक्षी के अधिवक्ता द्वारा दिए गए उपरोक्त अनुच्छेद संख्या 11 से 14 में दिए गए निर्णय उनके लिए किसी भी तरह से मददगार नहीं हैं।

41. एक बार जब विपक्षी - पंजीकृत विक्रेता, कानून के अनुसार, अपना व्यवसाय बंद कर देता है, तो विपक्षी विक्रेता का यह कर्तव्य था कि वह वैट अधिनियम की धारा 13(6) के तहत अपने आईटीसी को डेबिट करे। अधिकरण ने वैट अधिनियम की धारा 13(6) के प्रावधान की अनदेखी करके विपक्षी की अपील को स्वीकार करते हुए अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है।

42. वाद के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को देखते हुए, वाणिज्यिक कर न्यायाधिकरण द्वारा इन पुनरीक्षणों में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश कानून की दृष्टि में मान्य नहीं हो सकते।

43 तदनुसार, सभी पुनरीक्षणों को स्वीकार किया जाता है ।

44 वाणिज्यिक कर न्यायाधिकरण, बरेली संभाग, बरेली द्वारा इन पुनरीक्षणों में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश एतद्वारा निरस्त किए जाते हैं।

45 विधि के प्रश्नों का उत्तर राजस्व के पक्ष में और विपक्षी के विरुद्ध दिया जाता है।

(2025) 3 ILRA 324

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल,

रिट - कर संख्या 1287/2024

अन्य संबद्ध मामलों सहित

मेसर्स सोल्वी एंटरप्राइजेज

...याचिकाकर्ता

बनाम

अपर आयुक्त ग्रेड 2 व अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

आदित्य पांडे

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

लेन-देन के समय - क्रेता अर्थात् याचिकाकर्ता और विक्रेता दोनों पंजीकृत थे - विक्रेता डीलर का पंजीकरण शुरू से ही रद्द नहीं किया गया था - लेन-देन पंजीकृत था - विचाराधीन लेन-देन अधिनियम के तहत निर्धारित वैधानिक दस्तावेजों द्वारा पूरी तरह से कवर किया गया है - उसी आपूर्तिकर्ता ने अपने रिटर्न अर्थात् जीएसटीआर 01 और जीएसटीआर-3बी दाखिल किए हैं - एक बार जब विक्रेता लेन-देन के समय पंजीकृत हो गया - तो याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता - आक्षेपित आदेश रद्द कर दिया गया।

रिट याचिका स्वीकृत। (E-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. कर्नाटक राज्य बनाम ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड, 2023 लाइवर्लॉ (एससी) 187
2. मेसर्स राजशी प्रोसेसर्स रायबरेली अपने भागीदार अशोक कुमार लाखोटिया के माध्यम से बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, राज्य कर विभाग, लखनऊ के प्रधान सचिव के माध्यम से एवं अन्य - रिट कर संख्या 128/2024
3. मेसर्स शिव ट्रेडिंग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - रिट कर संख्या 1421/2022
4. मेसर्स रामा ब्रिक फील्ड बनाम अपर आयुक्त ग्रेड-2 एवं अन्य - रिट कर संख्या 909/2022

(माननीय न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल द्वारा प्रदत्त)

1. चूँकि उपरोक्त रिट याचिकाओं में समान मुद्दे शामिल हैं, इसलिए इन पर इस सामान्य निर्णय द्वारा एक साथ निर्णय लिया जा रहा है।

2. सुविधा के लिए, रिट टैक्स संख्या 1287 वर्ष 2024 के तथ्यों को नीचे दर्शाया जा रहा है:

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य पांडे और राज्य-प्रत्यर्थियों के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री आर.एस. पांडे और प्रत्यर्थी-बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष त्रिवेदी को सुना गया।

4. इस रिट याचिका के माध्यम से, निम्नलिखित प्रार्थना की गई है:-

"I. अपील संख्या जीएसटी - AD091222030324L/2022 वित्तीय वर्ष 2018-19 में प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 20.10.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो यू.पी.जी.एस.टी/सी.जी.एस.टी अधिनियम (रिट याचिका का अनुलग्नक संख्या 1) की धारा 74 के प्रावधानों के अंतर्गत है।

II. प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित/जारी दिनांक 12.09.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें (रिट याचिका का अनुलग्नक संख्या 4)।

III.

IV.

"

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता एक पंजीकृत व्यापारी है, जो स्क्रेप आदि की बिक्री और खरीद के व्यवसाय में लगा हुआ है, जिसके विरुद्ध प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा यूपीजीएसटी अधिनियम की धारा 74 के अंतर्गत कार्यवाही दिसंबर, 2018-19, वित्तीय वर्ष 2018-19 की कर अवधि के लिए नोटिस डीआरसी-01 दिनांक 29.07.2022 के माध्यम से शुरू की गई थी, जिसका याचिकाकर्ता द्वारा विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया गया था, हालाँकि, इस पर विचार किए बिना, दिनांक 12.09.2022 का आक्षेपित आदेश यूपीजीएसटी/सीजीएसटी अधिनियम की धारा 75(4) का उल्लंघन करते हुए पारित कर दिया गया। उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा एक अपील दायर की गई, जिसे दिनांक 20.10.2023 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने मेसर्स राधे इंटरनेशनल (जिसे आगे "विक्रेता" कहा जाएगा) नामक एक पंजीकृत व्यापारी से दिनांक 06.12.2018 के कर चालान के माध्यम से माल खरीदा था, जिसे विक्रेता ने जीएसटी पोर्टल से तैयार किया था।

7. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अधिकारियों को अधिनियम के तहत पूर्वव्यापी प्रभाव से पंजीकरण रद्द करने का अधिकार है, लेकिन इस मामले में, विचाराधीन लेनदेन की तारीख 06.12.2018 है और विक्रेता व्यापारी का पंजीकरण 29.01.2020 से रद्द कर दिया गया है।

8. विचाराधीन लेनदेन, अधिनियम के तहत निर्धारित वैधानिक दस्तावेजों द्वारा पूरी तरह से कवर किया गया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि केवल बाद के चरण में, यदि विक्रेता व्यापारी किसी घोषित व्यावसायिक स्थान पर नहीं पाया गया, या पंजीकरण रद्द कर दिया गया है, तो याचिकाकर्ता को इसके लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि विक्रेता डीलर ने अपना रिटर्न दाखिल किया, इसलिए जीएसटीआर-2ए स्वतः जनरेट हो गया, जिससे पता चलता है कि लेनदेन वास्तविक है। उन्होंने रिट याचिका को स्वीकार करने का अनुरोध किया।

9. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हैं और प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता माल की वास्तविक भौतिक गति के बारे में कोई भी ठोस सामग्री अभिलेख पर लाने में विफल रहा है और इसलिए, आक्षेपित आदेश सही रूप से पारित किया गया है।

10. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **कर्नाटक राज्य बनाम ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड, 2023 लाइवलाॅ (एससी) 187** के मामले में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा **रिट टैक्स संख्या 128/2024 (मेसर्स राजशी प्रोसेसर्स रायबरेली इसके पार्टनर अशोक कुमार लखोटिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, प्रधान सचिव, राज्य कर विभाग, लखनऊ और 2 अन्य) और रिट टैक्स संख्या 1421/2022 (मेसर्स शिव ट्रेडिंग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य)** में पारित निर्णयों को भी शामिल किया गया है के मामले में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। । **शिव ट्रेडिंग (सुप्रा)** के 28.11.2023 को दिए गए निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय में एस.एल.पी. (सी) संख्या 3345/2024 दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे दिनांक 12.02.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है। वह उपरोक्त रिट याचिकाओं को खारिज करने की प्रार्थना करते हैं।

11. उक्त निवेदन पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि **मेसर्स ईकॉम गिल कॉफी (सुप्रा)** का मामला वर्तमान वाद में लागू नहीं होता है क्योंकि इसमें विक्रेता पंजीकृत नहीं था और उसने अपना रिटर्न दाखिल नहीं किया था, न ही जीएसटीआर-2ए जनरेट किया गया था; जबकि वर्तमान मामले में, विक्रेता डीलर लेनदेन के समय एक पंजीकृत डीलर था और स्वतः जनित जीएसटीआर-2ए भरा गया था जो दर्शाता है कि विचाराधीन लेनदेन वास्तविक है।

12. इसके अलावा, विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा *मेसर्स राजशी प्रोसेसर्स रायबरेली (सुप्रा)* पर दिए गए निर्णय में यह भी कहा गया है कि कार्यवाही याचिकाकर्ता यानी क्रेता के स्थान पर सर्वेक्षण के बाद शुरू की गई थी, जिसमें दस्तावेजों में कुछ विसंगतियां पाई गई थीं। इसी आधार पर, विक्रेता के स्थान का निरीक्षण किया गया, जो अस्तित्व में नहीं पाया गया।

13. पक्षों की सुनवाई के बाद, न्यायालय ने अभिलेखों का अवलोकन किया।

14. इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा उस फर्म से खरीदारी की गई थी, जो लेनदेन के समय जीएसटी अधिनियम के तहत विधिवत पंजीकृत थी।

15. विचाराधीन मुद्दे के निर्णय के लिए, जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 16 और 74 प्रासंगिक होंगी, जो इस प्रकार हैं:-

“16. इनपुट टैक्स क्रेडिट लेने की पात्रता और शर्तें।

(1) प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति, ऐसी शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन, जो निर्धारित किए जा सकते हैं और धारा 49 में निर्दिष्ट तरीके से, उसे किसी भी आपूर्ति पर लगाए गए इनपुट टैक्स का क्रेडिट लेने का हकदार होगा, जो उसे माल या सेवाओं या दोनों की आपूर्ति पर लगाया जाता है, जो उसके व्यवसाय के दौरान या उसके आगे उपयोग के लिए उपयोग की जाती है या उपयोग किए जाने का इरादा है और उक्त राशि ऐसे व्यक्ति के इलेक्ट्रॉनिक क्रेडिट लेज़र में जमा की जाएगी।

(2) इस धारा में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, कोई भी पंजीकृत व्यक्ति उसे माल या सेवाओं या दोनों की आपूर्ति के संबंध में किसी भी इनपुट टैक्स के क्रेडिट का हकदार नहीं होगा, जब तक कि,

(ए) उसके पास इस अधिनियम के तहत पंजीकृत आपूर्तिकर्ता द्वारा जारी कर चालान या डेबिट नोट न हो, या ऐसे अन्य कर भुगतान दस्तावेज़ न हों जो विहित किए जा सकते हैं;

(बी) उसने माल या सेवाएँ या दोनों प्राप्त कर लिए हैं।

स्पष्टीकरण। इस खंड के प्रयोजनों के लिए, यह माना जाएगा कि पंजीकृत व्यक्ति ने माल प्राप्त कर लिया है, जहाँ माल आपूर्तिकर्ता द्वारा प्राप्तकर्ता या किसी अन्य व्यक्ति को ऐसे पंजीकृत व्यक्ति के निर्देश पर, चाहे वह एजेंट के रूप में कार्य कर रहा हो या अन्यथा, माल की आवाजाही से पहले या उसके दौरान, या तो माल के स्वामित्व के दस्तावेज़ों के हस्तांतरण के माध्यम से या अन्यथा वितरित किया जाता है;

(सी) धारा 41 के प्रावधानों के अधीन, ऐसी आपूर्ति के संबंध में लगाया गया कर वास्तव में सरकार को या तो नकद या उक्त आपूर्ति के संबंध में स्वीकार्य इनपुट टैक्स क्रेडिट के उपयोग के माध्यम से भुगतान किया गया है; और

(डी) उसने धारा 39 के तहत रिटर्न प्रस्तुत किया है: ए

बशर्त कि जहाँ किसी चालान के विरुद्ध माल लॉट या किशतों में प्राप्त किया जाता है, पंजीकृत व्यक्ति अंतिम लॉट या किशत की प्राप्ति पर क्रेडिट लेने का हकदार होगा:

इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि जहाँ प्राप्तकर्ता यदि आपूर्तिकर्ता, जिन आपूर्तियों पर रिवर्स चार्ज के आधार पर कर देय है, के अलावा, वस्तुओं या सेवाओं या दोनों के आपूर्तिकर्ता को आपूर्ति के मूल्य की राशि और उस पर देय कर सहित, आपूर्तिकर्ता द्वारा चालान जारी करने की तिथि से एक सौ अस्सी दिनों की अवधि के भीतर भुगतान करने में विफल रहता है, तो प्राप्तकर्ता द्वारा प्राप्त इनपुट टैक्स क्रेडिट के बराबर राशि, उस पर ब्याज सहित, उसके आउटपुट कर दायित्व में निर्धारित तरीके से जोड़ी जाएगी: यह भी प्रावधान है कि प्राप्तकर्ता, वस्तुओं या सेवाओं या दोनों की आपूर्ति के मूल्य की राशि और उस पर देय कर सहित, उसके द्वारा किए गए भुगतान पर इनपुट टैक्स क्रेडिट प्राप्त करने का हकदार होगा।

(3) जहाँ पंजीकृत व्यक्ति ने आयकर अधिनियम, 1961 (43 वर्ष 1961) के प्रावधानों के तहत पूंजीगत वस्तुओं और संयंत्र एवं मशीनरी की लागत के कर घटक पर मूल्यहास का दावा किया है, वहाँ उक्त कर घटक पर इनपुट टैक्स क्रेडिट की अनुमति नहीं दी जाएगी।

(4) कोई भी पंजीकृत व्यक्ति, वस्तुओं या सेवाओं या दोनों की आपूर्ति से संबंधित किसी चालान या डेबिट नोट के संबंध में इनपुट टैक्स क्रेडिट लेने का अधिकारी नहीं होगा, यदि वह चालान या उस डेबिट नोट से संबंधित चालान उस वित्तीय वर्ष से संबंधित है जिसके अंत के बाद **सितंबर माह की रिटर्न (धारा 39 के अंतर्गत)** दाखिल करने की नियत तिथि बीत चुकी हो, या संबंधित वार्षिक रिटर्न दाखिल की जा चुकी हो – जो भी पहले हो।

74. भुगतान न किए गए कर या कम भुगतान किए गए या गलती से वापस किए गए कर या धोखाधड़ी या जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को छिपाने के कारण गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट का निर्धारण।

(1) जहाँ उचित अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि कोई कर भुगतान नहीं किया गया है या कम भुगतान किया गया है या गलती से वापस किया गया है या जहाँ इनपुट टैक्स क्रेडिट धोखाधड़ी के कारण गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किया गया है, या कर से बचने के लिए जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को छिपाया गया है, तो वह उस व्यक्ति को नोटिस जिस पर कर देय है, जिसका भुगतान नहीं किया गया है या जिसका भुगतान बहुत कम किया गया है या जिसे वापसी गलती से की गई है, या जिसने इनपुट टैक्स क्रेडिट का गलत तरीके से लाभ उठाया है या उसका उपयोग किया है, जिसमें उससे कारण बताने की अपेक्षा की जाती है कि उसे नोटिस में निर्दिष्ट राशि का भुगतान क्यों नहीं करना चाहिए धारा 50 के तहत उस पर देय ब्याज और नोटिस में निर्दिष्ट कर के बराबर जुर्माना सहित।

(2) उचित अधिकारी उप-धारा (1) के अंतर्गत आदेश जारी करने के लिए उप-धारा (10) में निर्दिष्ट समय-सीमा से कम से कम छह महीने पहले नोटिस जारी करेगा।

(3) जहाँ उप-धारा (1) के अंतर्गत किसी अवधि के लिए नोटिस जारी किया गया है, वहाँ उचित अधिकारी कर से प्रभार्य व्यक्ति को एक विवरण दे सकता है, जिसमें उप-धारा (1) के अंतर्गत आने वाली अवधियों के अलावा, भुगतान न किए गए कर, कम भुगतान किए गए कर, गलत तरीके से वापस किए गए कर या गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट का विवरण शामिल हो।

(4) उप-धारा (3) के अंतर्गत विवरण की तामील धारा 73 की उप-धारा (1) के अंतर्गत नोटिस की तामील मानी जाएगी, बशर्ते कि उक्त विवरण में जिन आधारों का सहारा लिया गया है, धोखाधड़ी, या जानबूझकर

गलत बयानी, या कर चोरी के लिए तथ्यों को छिपाने के आधार को छोड़कर, उप-धारा (1) के अंतर्गत आने वाली अवधियों के अलावा अन्य अवधियों के लिए वही हैं जो पूर्व नोटिस में उल्लिखित हैं।

(5) कर से प्रभार्य व्यक्ति, उप-धारा (1) के अंतर्गत नोटिस की तामील से पहले, धारा 50 के अंतर्गत देय ब्याज सहित कर की राशि और ऐसे कर के पंद्रह प्रतिशत के बराबर जुर्माना, ऐसे कर के अपने स्वयं के निर्धारण या उचित अधिकारी द्वारा निर्धारित कर के आधार पर, अदा कर सकता है और ऐसे भुगतान के बारे में उचित अधिकारी को लिखित रूप में सूचित कर सकता है।

(6) उचित अधिकारी, ऐसी सूचना प्राप्त होने पर, उपधारा (1) के अंतर्गत कोई नोटिस नहीं देगा, इस प्रकार भुगतान किए गए कर या इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अंतर्गत देय किसी भी जुर्माने के संबंध में।

(7) जहाँ उचित अधिकारी की यह राय हो कि उपधारा (5) के अंतर्गत संदत्त राशि वास्तव में देय राशि से कम है, तो वह उपधारा (1) में दिए गए प्रावधान के अनुसार ऐसी राशि के संबंध में सूचना जारी करने के लिए आगे बढ़ेगा जो वास्तव में देय राशि से कम है।

(8) जहाँ उपधारा (1) के अंतर्गत कर से प्रभार्य कोई व्यक्ति, धारा 50 के अंतर्गत देय ब्याज और ऐसे कर के पच्चीस प्रतिशत के बराबर शास्ति सहित उक्त कर का भुगतान सूचना जारी होने के तीस दिनों के भीतर करता है, तो उक्त सूचना के संबंध में सभी कार्यवाहियाँ समाप्त मानी जाएँगी।

(9) उचित अधिकारी, कर से प्रभार्य व्यक्ति द्वारा किए गए अभ्यावेदन, यदि कोई हो, पर विचार करने के बाद, ऐसे व्यक्ति से देय कर, ब्याज और जुर्माने की राशि निर्धारित करेगा और एक आदेश जारी करेगा।
(10) उचित अधिकारी उप-धारा (9) के तहत आदेश जारी करेगा, उस वित्तीय वर्ष के लिए वार्षिक रिटर्न प्रस्तुत करने की नियत तिथि से पाँच वर्ष की अवधि के भीतर, जिससे अदत्त कर या कम भुगतान किया गया कर या गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किया गया इनपुट टैक्स क्रेडिट संबंधित है या गलत वापसी की तिथि से पाँच वर्ष के भीतर।

(11) जहाँ कोई व्यक्ति, जिसे उप-धारा (9) के तहत जारी आदेश प्राप्त हुआ है, आदेश के संप्रेषण के तीस दिनों के भीतर धारा 50 के तहत उस पर देय ब्याज और ऐसे कर के पचास प्रतिशत के बराबर जुर्माने सहित कर का भुगतान करता है, उक्त सूचना के संबंध में सभी कार्यवाही समाप्त मानी जाएगी।

स्पष्टीकरण 1. धारा 73 और इस धारा के प्रयोजनों के लिए, ?

(i) "उक्त सूचना के संबंध में सभी कार्यवाहियाँ" पद में धारा 132 के अंतर्गत कार्यवाहियाँ शामिल नहीं होंगी;

(ii) जहाँ उसी कार्यवाही के अंतर्गत सूचना कर भुगतान के लिए उत्तरदायी मुख्य व्यक्ति और कुछ अन्य व्यक्तियों को जारी की जाती है, और मुख्य व्यक्ति के विरुद्ध ऐसी कार्यवाहियाँ धारा 73 या धारा 74 के अंतर्गत समाप्त हो गई हैं, वहाँ धारा 122, 125, 129 और 130 के अंतर्गत दंड भुगतान के लिए उत्तरदायी सभी व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाहियाँ समाप्त मानी जाएँगी।

स्पष्टीकरण 2. इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, पद "छिपाना" का अर्थ उन तथ्यों या सूचनाओं की घोषणा न करना होगा जिन्हें कराधीन व्यक्ति को इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के

अंतर्गत प्रस्तुत विवरणी, विवरण, रिपोर्ट या किसी अन्य दस्तावेज़ में घोषित करना आवश्यक है, या उचित अधिकारी द्वारा लिखित रूप में माँगे जाने पर कोई जानकारी प्रस्तुत न करना होगा।"

16. जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 16 के अवलोकन से पता चलता है कि इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा केवल उसमें उल्लिखित शर्तों को पूरा करने पर ही किया जा सकता है। यह यह भी स्पष्ट करता है कि कोई भी पंजीकृत व्यक्ति किसी भी वस्तु या सेवा या दोनों की आपूर्ति के संबंध में किसी भी इनपुट टैक्स क्रेडिट का हकदार नहीं होगा।

17. जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74 की विषयवस्तु धोखाधड़ी या जानबूझकर गलत बयानी या तथ्य को छिपाने के कारण भुगतान न किए गए या कम भुगतान किए गए या गलत तरीके से वापस किए गए या गलत तरीके से प्राप्त या उपयोग किए गए इनपुट टैक्स क्रेडिट के निर्धारण का प्रावधान करती है।

18. इसके अलावा, जीएसटी अधिनियम, 2017 के नियम 36 में इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा करने के लिए आवश्यक दस्तावेज़ और शर्तें प्रदान की गई हैं, जो इस प्रकार हैं:-

"नियम 36. इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा करने के लिए दस्तावेज़ी आवश्यकताएँ और शर्तें।-

(1) इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ पंजीकृत व्यक्ति, जिसमें इनपुट सेवा वितरक भी शामिल है, द्वारा निम्नलिखित में से किसी भी दस्तावेज़ के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है, अर्थात्-

(ए) धारा 31 के प्रावधानों के अनुसार माल या सेवाओं या दोनों के आपूर्तिकर्ता द्वारा जारी किया गया चालान;

(बी) धारा 31 की उप-धारा (3) के खंड (एफ) के प्रावधानों के अनुसार जारी किया गया चालान, कर के भुगतान के अधीन;

(सी) आपूर्तिकर्ता द्वारा धारा 34 के प्रावधानों के अनुसार जारी किया गया डेबिट नोट

(डी) सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 या उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के तहत आयात पर एकीकृत कर के आकलन हेतु निर्धारित प्रवेश पत्र या कोई समान दस्तावेज़;

(ई) इनपुट सेवा वितरक चालान या इनपुट सेवा वितरक क्रेडिट नोट या कोई दस्तावेज़ जो किसी इनपुट सेवा वितरक द्वारा नियम 54 के उप-नियम (1) के प्रावधानों के अनुसार जारी किया गया हो।

(2) इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ किसी पंजीकृत व्यक्ति द्वारा तभी उठाया जाएगा जब अध्याय VI के प्रावधानों में निर्दिष्ट सभी लागू विवरण उक्त दस्तावेज़ में शामिल हों और संबंधित जानकारी, जैसा कि उक्त दस्तावेज़ में शामिल है, ऐसे व्यक्ति द्वारा फॉर्म जी.एस.टी.आर.-2 में प्रस्तुत की गई हो:

[बशर्ते कि यदि उक्त दस्तावेज़ में सभी निर्दिष्ट विवरण शामिल नहीं हैं, लेकिन लगाए गए कर की राशि, वस्तुओं या सेवाओं का विवरण, वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति का कुल मूल्य या दोनों, जी.एस.टी.आई.एन. आपूर्तिकर्ता और प्राप्तकर्ता तथा आपूर्ति स्थान के अंतर-राज्यीय आपूर्ति के मामले में, ऐसे पंजीकृत व्यक्ति द्वारा इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाया जा सकता है।]

(3) किसी पंजीकृत व्यक्ति द्वारा किसी भी कर के संबंध में कोई इनपुट टैक्स क्रेडिट नहीं लिया जाएगा, जिसका भुगतान किसी आदेश के अनुसरण में किया गया हो, जहाँ किसी भी मांग की पुष्टि किसी धोखाधड़ी, जानबूझकर गलत बयान या तथ्यों को छिपाने के कारण हुई हो।

[(4) किसी पंजीकृत व्यक्ति द्वारा चालान या डेबिट नोट के संबंध में लिया जाने वाला इनपुट टैक्स क्रेडिट, जिसका विवरण धारा 37 की उप-धारा (1) के तहत आपूर्तिकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है [फॉर्म जी.एस.टी.आर.-01 में या चालान प्रस्तुत करने की सुविधा का उपयोग करके] उपलब्ध पात्र क्रेडिट के [5 प्रतिशत] से अधिक नहीं होगा। चालान या डेबिट नोट के संबंध में, जिनका विवरण आपूर्तिकर्ताओं द्वारा धारा 37 की उपधारा (1) के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है [फॉर्म जी.एस.टी.आर.-01 में या चालान प्रस्तुत करने की सुविधा का उपयोग करके] उप-धारा (1) के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है।

[बशर्ते कि उक्त शर्त फरवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जून, जुलाई और अगस्त, 2020 की अवधि के लिए संचयी रूप से लागू होगी और सितंबर, 2020 की कर अवधि के लिए फॉर्म जी.एस.टी.आर.-3बी में रिटर्न उपरोक्त शर्त के अनुसार उक्त 11 महीनों के लिए इनपुट टैक्स क्रेडिट के संचयी समायोजन के साथ प्रस्तुत किया जाएगा:]

[इसके अलावा, यह शर्त अप्रैल, मई और जून, 2021 की अवधि के लिए संचयी रूप से लागू होगी और जून 2021 की कर अवधि या जून, 2021 को समाप्त होने वाली तिमाही के लिए फॉर्म जी.एस.टी.आर.-3बी में रिटर्न, जैसा भी मामला हो, उसे उपरोक्त शर्तों के अनुसार उक्त महीनों के लिए इनपुट टैक्स क्रेडिट का संचयी समायोजन प्रदान किया जाएगा:]”

19. जीएसटी अधिनियम, 2017 के पूर्वोक्त नियम 36 की विषय-वस्तु का अवलोकन करने पर यह प्रावधान है कि इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा करने के लिए आवश्यक दस्तावेज उपलब्ध कराए जाने चाहिए और उन्हें जीएसटीआर-3बी में दर्शाया जाना चाहिए।

20. जीएसटी अधिनियम, 2017 की पूर्वोक्त धारा 16 और 74 के साथ-साथ जीएसटी अधिनियम, 2017 के नियम 36 से यह स्पष्ट है कि प्रदत्त प्रावधानों के अनुसार, पंजीकृत व्यक्ति को इनपुट टैक्स क्रेडिट का कुछ लाभ शर्तों को पूरा करने पर प्रदान किया जाना चाहिए और साथ ही उसमें प्रदान किए जाने वाले आवश्यक दस्तावेज भी।

21. इसके अलावा, जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74 राज्य-प्राधिकारियों को पंजीकृत डीलर के खिलाफ कार्रवाई करने की शक्ति प्रदान करती है यदि आईटीसी ने धोखाधड़ी या जानबूझकर गलत तथ्य प्रस्तुत करने या धोखाधड़ी के माध्यम से गलत तरीके से लाभ उठाया है या उपयोग किया है, और न्यायनिर्णयन के बाद, उसे वसूल कर सकता है।

22. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के खिलाफ जीएसटी अधिनियम, 2017 की धारा 74 के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी क्योंकि विक्रेता डीलर का पंजीकरण बाद की तारीख यानी 29.01.2020 से रद्द कर दिया गया था, इस प्रकार, लेनदेन की तारीख निश्चित रूप से उससे पहले यानी 06.12.2018 को हुई थी।

23. इसके अलावा, अभिलेख से पता चलता है कि जीएसटी अधिकारियों को कार्यवाही शुरू होने की तारीख से पंजीकरण रद्द करने का अधिकार है, लेकिन अधिकारियों ने अपनी समझदारी से विक्रेता का पंजीकरण बाद की तारीख यानी 29.01.2020 से रद्द कर दिया।

24. राजस्व विभाग का यह मामला नहीं है कि जिस समय लेनदेन हुआ, उस समय विक्रेता पंजीकृत नहीं था और उसके पास जीएसटी अधिनियम के तहत वैध पंजीकरण नहीं था।

25. अभिलेख से पता चलता है कि आपूर्तिकर्ता ने अपने रिटर्न यानी जीएसटीआर-01 और जीएसटीआर-3बी दाखिल कर दिए हैं। यह सर्वविदित है कि जीएसटीआर-01 दाखिल करने के बाद, कर भुगतान के लिए जीएसटीआर-3बी भरने के लिए एक स्वचालित विंडो खुल जाएगी और जीएसटीआर-2ए को संबंधित माल के खरीदार द्वारा देखा जा सकता है। एक बार जब उक्त फॉर्म तैयार हो गया और उक्त तथ्य पर आक्षेपित आदेश पारित करते समय निम्न अधिकारियों द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया, तो अधिकारी इस तथ्य पर विचार करने में विफल रहे कि अधिनियम के तहत निर्धारित जीएसटीआर-3बी और जीएसटीआर-2ए, जो स्वतः भरे गए थे, के बारे में आक्षेपित आदेशों में एक भी शब्द नहीं कहा गया है। इसके विपरीत, याचिकाकर्ता के विरुद्ध यह टिप्पणी की गई है कि वह अभिलेख में कोई ठोस सामग्री पेश करने में विफल रहा है कि विक्रेता ने कर जमा किया है।

26. जिस समय लेन-देन हुआ, उस समय क्रेता अर्थात् याचिकाकर्ता और विक्रेता दोनों पंजीकृत थे, हालाँकि, बाद में, विक्रेता अस्तित्वहीन पाया गया और विक्रेता का पंजीकरण पूर्वव्यापी रूप से अर्थात् लेन-देन की तिथि से रद्द नहीं किया गया है।

27. राजस्व विभाग द्वारा उद्धृत **मेसर्स राजशी प्रोसेसर्स (सुप्रा)** का निर्णय इस आधार पर पारित किया गया है कि आपूर्तिकर्ता अस्तित्वहीन डीलर था और उसका पंजीकरण उसकी स्थापना की तिथि से ही रद्द कर दिया गया था, लेकिन वर्तमान मामले में, विक्रेता डीलर का पंजीकरण 29.01.2020 से रद्द कर दिया गया है, जिससे पता चलता है कि लेनदेन 06.12.2018 को हुआ था और उक्त तिथि को विक्रेता डीलर के पास वैध पंजीकरण था। इस प्रकार, उक्त तथ्यों के आधार पर, **मेसर्स राजशी प्रोसेसर्स (सुप्रा)** में पारित निर्णय राजस्व विभाग के लिए कोई सहायक नहीं है।

28. इसके अलावा, **शिव ट्रेडिंग (सुप्रा)** के निर्णय, जिसमें **ईकॉम गिल कॉफी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड (सुप्रा)** के 28.11.2023 को दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया गया है, को माननीय सर्वोच्च न्यायालय में

विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 3345/2024 दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे खारिज कर दिया गया है और दिनांक 28.11.2023 के आदेश की पुष्टि दिनांक 12.02.2024 के आदेश द्वारा की गई है। उक्त निर्णय में, जीएसटीआर-3B के निष्कर्ष पर ध्यान नहीं दिया गया और इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों पर उक्त निर्णय प्रत्यर्थियों के लिए कोई सहायक नहीं है।

29. इस न्यायालय ने **मेसर्स रामा ब्रिक फील्ड बनाम अपर आयुक्त ग्रेड-2 एवं 2 अन्य (रिट टैक्स संख्या 909/2022) के मामले में**, अनुच्छेद संख्या में 8, 9 और 10 में निम्नलिखित निर्णय दिया है:-

“8. इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता ने सम्पोषण का विकल्प चुना है जिसे प्रत्यर्थी प्राधिकारियों ने 1.10.2017 से 21.3.2019 की अवधि के लिए स्वीकार कर लिया है। याचिकाकर्ता द्वारा रोहित कोल ट्रेडर से दिखाई गई आक्षेपित खरीदारी मई 2018 से जून 2018 तक की है, जो उपरोक्त सम्पोषण अवधि के अंतर्गत आती है। याचिकाकर्ता ने अपने तर्क के समर्थन में कर चालान, ई-वे बिल, जी.आर., भुगतान रसीदें आदि जैसे साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं जिनसे पता चलता है कि खरीदारी पंजीकृत डीलर से की गई है। यह भी स्वीकार किया जाता है कि रोहित कोल ट्रेडर्स का पंजीकरण 24.10.2019 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया है, दूसरे शब्दों में, संबंधित लेनदेन के समय, विक्रेता यानी रोहित कोल ट्रेडर्स जी.एस.टी. अधिनियम के तहत पंजीकृत फर्म थी। याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि रोहित कोल ट्रेडर्स ने वित्तीय वर्ष 2018-19 के लिए अपना रिटर्न दाखिल कर दिया है, अर्थात् जीएसटीआर-1 और जीएसटीआर-3बी। यह सर्वविदित है कि जीएसटीआर-1 दाखिल करने के बाद, कर भुगतान हेतु फॉर्म जीएसटीआर 3बी दाखिल करने के लिए एक ऑटो पॉप-अप विंडो खुल जाएगी और फॉर्म जीएसटीआर 2ए को संबंधित माल के क्रेता द्वारा देखा जा सकता है। एक बार जब उक्त फॉर्म तैयार हो गया और उक्त तथ्य को संबंधित आदेश पारित करते समय अधीनस्थ प्राधिकारियों द्वारा आक्षेपित नहीं किया गया, तो यह स्पष्ट है कि लेन-देन के समय क्रेता और आपूर्तिकर्ता दोनों पंजीकृत थे। हालाँकि, बाद में यदि विक्रेता अर्थात् रोहित कोल ट्रेडर्स का अस्तित्व नहीं पाया गया, तो कार्यवाही शुरू की जा सकती है, लेकिन प्राधिकारी इस तथ्य पर विचार करने में विफल रहे हैं कि अधिनियम के तहत निर्धारित जीएसटीआर रिटर्न विक्रेता द्वारा दाखिल किया गया था, जिसके लिए आक्षेपित आदेश पारित करते समय एक भी शब्द नहीं कहा गया। इसके विपरीत, यह टिप्पणी की गई है कि याचिकाकर्ता यह दर्शाने के लिए कोई ठोस सामग्री अभिलेख पर लाने में विफल रहा है कि रोहित कोल ट्रेडर्स ने कर जमा किया है और इसलिए कार्यवाही को उचित माना गया।

9. जीएसटी व्यवस्था के तहत सभी विवरण जीएसटी विभाग के पोर्टल पर उपलब्ध हैं। अधिकारी यह अच्छी तरह से सत्यापित कर सकते थे कि जीएसटीआर-1 और जीएसटीआर 3बी दाखिल करने के बाद विक्रेता व्यापारी यानी रोहित कोल ट्रेडर्स द्वारा कितना कर जमा किया गया है, लेकिन अधिकारी ऐसा करने में विफल रहे हैं। इस प्रकार, उक्त तथ्यों को देखते हुए, आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि में कायम नहीं रह सकते।

10. ऊपर बताए गए तथ्यों के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और उसे अनुमति दी जाती है। आक्षेपित आदेश रद्द किए जाते हैं। मामला प्रथम अपीलिय प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है, जो कानून के अनुसार, शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो महीने की अवधि के भीतर, पक्षकारों को अनावश्यक स्थगन दिए बिना, एक नया आदेश पारित करेगा।

30. चूंकि विक्रेता प्रश्नगत लेनदेन के समय पंजीकृत था, इसलिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। इसके अलावा, अभिलेख से पता चलता है कि विक्रेता डीलर का पंजीकरण पूर्वव्यापी रूप से अर्थात् 29.01.2020 से रद्द कर दिया गया था, न कि इसके प्रारंभ से, जिससे पता चलता है कि याचिकाकर्ता और विक्रेता के बीच लेनदेन पंजीकृत था और उसके पक्ष में वैध पंजीकरण था।

31. जीएसटी व्यवस्था के तहत, सभी विवरण जीएसटी पोर्टल पर उपलब्ध हैं और इसलिए, अधिकारियों को यह सत्यापित करना चाहिए था कि क्या जीएसटीआर-1ए और जीएसटीआर-3बी दाखिल किए गए हैं, विक्रेता द्वारा कितना कर जमा किया गया है, लेकिन अधिकारी ऐसा करने में विफल रहे हैं।

32. इस प्रकार, मामलों के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मामलों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

33. तदनुसार, आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि में मान्य नहीं हो सकते और इन्हें एतद्वारा निरस्त किया जाता है।

34. रिट याचिकाएँ स्वीकार की जाती हैं। इस मामले को संबंधित प्राधिकारी को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर, सभी हितधारकों की सुनवाई के बाद, एक तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश पारित करके नए सिरे से निर्णय लेने हेतु वापस भेजा जाता है।

35. आक्षेपित आदेशों के अनुसरण में याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई कोई भी राशि संबंधित प्राधिकारी द्वारा पारित किए जाने वाले नए आदेशों के परिणाम के अधीन होगी।

(2025) 3 ILRA 332

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी,

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-।

रिट ए सं. 2359 वर्ष 2025

मुन्ना लाल

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री मोहम्मद नासिर, श्री मोहम्मद यासिर, श्री नवनीत यादव

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

दीवानी विधि- भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 - नियम 10(2) - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956- रिट याचिका - न्यायाधिकरण के आदेश को चुनौती - अनुशासनात्मक कार्यवाही - वर्ष 2013 में सेवा से बर्खास्तगी - याचिकाकर्ता ने दावा किया कि उसे बर्खास्तगी आदेश कभी प्राप्त नहीं हुआ - जिससे उसे नियम, 1991 के तहत अपील या पुनरीक्षण दायर करने से रोका गया - वर्ष 2016 में अभ्यावेदन - वर्ष 2016 में अस्वीकृति - वर्ष 2016 में पहली दावा याचिका - याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का आदेश - प्राधिकारी ने वर्ष 2017 में अभ्यावेदन को खारिज कर दिया - वर्ष 2018 में दूसरी दावा याचिका - न्यायाधिकरण ने देरी के आधार पर उक्त दावा याचिका को खारिज कर दिया - रिट याचिका - याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन की अस्वीकृति ने विलय के सिद्धांत को लागू करते हुए कार्रवाई के एक नए कारण को जन्म दिया- न्यायालय ने कहा कि, न्यायाधिकरण ने दावा याचिका को केवल समय सीमा के आधार पर खारिज करने में गलती की, बिना यह समझे कि याचिकाकर्ता ने अपने उपचारों का परिश्रमपूर्वक पालन किया था और विलय का सिद्धांत प्रभावी हो गया था - और चूंकि याचिकाकर्ता ने बर्खास्तगी आदेश की तामील के तुरंत बाद उपचारों का पालन किया, इसलिए वैधानिक नियमों की योजना की अनदेखी करके याचिकाकर्ता के दावे को समय-बाधित नहीं माना जा सकता - निर्णय दिया कि, केवल समय सीमा के आधार पर दावा याचिका को खारिज करना विलय के सिद्धांत के अनुप्रयोग के मददेनजर कानूनी रूप से अस्थिर है, जो वर्ष 2013 में पारित आदेश की आपूर्ति न करने के परिणामस्वरूप हुआ, जिससे नियमावली 1991 के नियम 25 के तहत अभ्यावेदन उत्पन्न हुआ - परिणामस्वरूप, रिट याचिका स्वीकार की जाती है - और मामले को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से तय करने के लिए न्यायाधिकरण को भेज दिया जाता है - तदनुसार निर्देश जारी किए जाते हैं। (अनुच्छेद - 28, 32, 35)

पुनर्विचार याचिका स्वीकृत। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. आयकर अपील संख्या 86/2015 (उमंग अग्रवाल बनाम आयकर आयुक्त, सेंट्रल सर्कल, इलाहाबाद,
2. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम राज्य सरकारी कर्मचारी परिसंघ, (2019) 3 सीएएल एलजे 351,
3. छज्जू राम बनाम नेकी, 1922 एससीसी ऑनलाइन पीसी 11: (1921-22) 49 आईए 144: एआईआर 1922 पीसी 112],

4. मोरन मार बासेलियोस कैथोलिकोस बनाम मार पोलोस अथानासियस, एआईआर 1954 एससी 526],
5. लिली थॉमस बनाम यू.ओ.आई., (2000) 6 एससीसी 224: 2000 एससीसी (सीआरआई) 1056,
6. मीरा भांजा बनाम निर्मला कुमारी चौधरी [(1995) 1 एससीसी 170],
7. परसियन देवी बनाम सुमित्री देवी (1997) 8 एससीसी 715 में रिपोर्ट किया गया,
8. तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार [एआईआर 1964 एससी 1372],
9. अरिबम तुलेश्वर शर्मा बनाम पिशाक शर्मा (1979) 4 एससीसी 389 में रिपोर्ट किया गया
10. शांति कंडक्टर्स (पी) लिमिटेड बनाम असम एसईबी (2020) 2 एससीसी 677,
11. पेरी कंसागरा बनाम स्मृति मदन कंसागरा (2019) 20 एससीसी 753,
12. एस. मुरली सुंदरम बनाम जोथीबाई कन्नन और अन्य, (2023) 13 एससीसी 515,
13. पंचम लाल पांडे बनाम नीरज कुमार मिश्रा एवं अन्य, एआईआर 2023 (एससी) 948,
14. मेसर्स टाटा स्टील लिमिटेड बनाम कमिशनर ट्रेड टैक्स, लखनऊ, 2024 (6) एडीजे 248,
15. मेसर्स एमएमआई टोबैको प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम इफ्तिखार आलम, 2024 (5) एडीजे 708,
16. राजेंद्र सिंह बनाम उपराज्यपाल, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह एवं अन्य, (2005) 13 एससीसी 289,
17. भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड एवं अन्य बनाम नेताजी क्रिकेट क्लब एवं अन्य, (2005) 4 एससीसी 741

[माननीय न्यायमूर्ति अताउल रहमान मसूदी द्वारा प्रदत्त]

1. याचिकाकर्ता की ओर से श्री मोहम्मद नासिर और श्री अभिषेक खरे और राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री प्रफुल्ल यादव को सुना गया।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश राज्य लोक सेवा अधिकरण द्वारा दावा याचिका संख्या 355/2018 में दिए गए दिनांक 12.07.2022 के निर्णय/आदेश का विरोध किया है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर दावा याचिका को खारिज कर दिया गया है। दावा याचिका मुख्य रूप से अत्यधिक विलंब के आधार पर खारिज की गई है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता के खिलाफ एक प्रमुख दंड के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, जो अंततः दिनांक 28.11.2013 के आदेश के पारित होने के साथ समाप्त हुई, जिसके तहत याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। सेवा से बर्खास्तगी का आदेश अनुशासनात्मक कार्यवाही की पृष्ठभूमि में पारित किया गया था, जो याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई प्रतीत होती है, जिसमें उसकी भागीदारी स्पष्ट है, फिर भी याचिकाकर्ता द्वारा समय-समय पर अपनाई गई प्रक्रिया के संबंध में आपत्तियां उठाई गई प्रतीत होती हैं। 28.11.2013 को अंतिम आदेश पारित होने के बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश अधीनस्थ श्रेणी के पुलिस अधिकारी (दंड एवं अपील) नियमावली, 1991 (जिसे आगे

चलकर "नियमावली, 1991" कहा जाएगा) के नियम 20 के अंतर्गत उपलब्ध वैधानिक अपील के उपाय का लाभ नहीं लिया है। चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा नियमावली, 1991 के नियम 20 के अंतर्गत अपील दायर नहीं की गई थी, इसलिए नियमावली, 1991 की धारा 23 के अंतर्गत पुनरीक्षण दायर करने का प्रश्न ही नहीं उठा। 28.11.2013 को बर्खास्तगी आदेश पारित होने की तिथि से लगभग ढाई वर्ष की अवधि के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा 25.04.2016 को एक अभ्यावेदन दायर किया गया, जो नियमावली, 1991 के नियम 25 के तहत राज्य को संबोधित था, और उपरोक्त अभ्यावेदन में, याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित विशिष्ट कथन प्रस्तुत किया:-

"उपरोक्त विदिवत दण्डादेश की प्रति याची को आज दिनांक तक प्राप्त नहीं कराई गई है। याची को सेवा हटाये जाने एवं अनुपस्थित अवधि दिनांक 09.05.10 से 03-02-13 तक कुल 1027 दिवस का कोई वेतन/भत्ता न दिए जाने (दोनों दण्ड) के आदेशों की कार्यवाही याची को अनुपस्थित समय में पूर्ण की गई है। याची को बचाव का अवसर भी प्रदान नहीं किया गया है। आक्षेपित आदेशों की प्रति प्राप्त न होने के कारण, याची पूर्व में किसी भी अधिकारी को अपील याचिका दायर नहीं की है। "

4. याचिकाकर्ता का यह स्पष्ट मामला था कि 28.11.2013 के आधार पर सेवा से बर्खास्तगी का आदेश उसे तामील नहीं कराया गया, जिससे वह नियमों के तहत निर्धारित वैधानिक अवधि के भीतर अपील या पुनरीक्षण का उपाय नहीं कर सका। ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त अभ्यावेदन दायर करने के तुरंत बाद, याचिकाकर्ता ने दावा याचिका संख्या 1511/2016 दाखिल करके उत्तर प्रदेश लोक सेवा अधिकरण का रुख किया, जिसमें दावा याचिका का अनुच्छेद संख्या 4(1) इस प्रकार है :-

"यह दावा याचिका दंड एवं अपील नियमावली, 1991 के नियम 14(1) के उपनियम क(1) के अंतर्गत दिनांक 28.11.2013 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त करने की मनमानी और भेदभावपूर्ण कार्यवाई के विरुद्ध है और 09.05.2010 से 03.02.2013 तक, अर्थात् 1027 दिनों की अवधि के लिए उसे कोई वेतन/भत्ता नहीं दिया गया। यह बताना प्रासंगिक है कि याचिकाकर्ता को ऐसा कोई दंड आदेश प्रदान नहीं किया गया है और रिट-ए संख्या 2359/2025 पृष्ठ संख्या 2/14 याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी की पूरी कार्यवाही याचिकाकर्ता के पीछे की गई थी। अनुपस्थिति में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कभी पारित किसी दंड आदेश की उपलब्धता के संबंध में, याचिकाकर्ता ने नोडल अधिकारी, फिरोजाबाद से अपने दिनांक 23.01.2016 के आवेदन के माध्यम से जानकारी मांगी और यह जानकारी पत्र दिनांक 09.02.2016 के माध्यम से उपलब्ध कराई गई, जिससे पता चलता है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने की पूरी कार्यवाही उसकी पीठ पीछे की गई थी। ऐसी स्थिति में, याचिकाकर्ता के पास विभाग के सर्वोच्च अधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था और इसलिए उसने विपक्षी संख्या 1 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जो अभी भी लंबित है। दिनांक 25.04.2016 के अभ्यावेदन की सत्य प्रति इस दावा याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है।

5. दावा याचिका के अनुच्छेद संख्या 4(1) से, जो ऊपर उद्धृत है, यह स्पष्ट है कि दिनांक 28.11.2013 के दंड आदेश की गैर-आपूर्ति का दावा याचिकाकर्ता द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत दावा याचिका में विशेष रूप से किया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा दायर दावा याचिका में निम्नलिखित राहतों की मांग की गई है:-

(i) विपक्षी पक्षों को निर्देश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता के दिनांक 25.04.2016 के अभ्यावेदन पर इस माननीय न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर विचार करें और निर्णय लें (जो अनुलग्नक संख्या 1 में निहित है)

(ii) विपक्षी पक्षों को निर्देश दिया जाए कि वे दिनांक 10.09.2013 के कारण बताओ नोटिस, दिनांक 28.11.2013 के आदेश को रद्द करें जिसके द्वारा अनुपस्थिति अवधि का वेतन 'कार्य नहीं तो वेतन नहीं' के रूप में रोक दिया गया था और दिनांक 28.11.2013 के आदेश को रद्द करें जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभों के साथ बर्खास्त कर दिया गया था (अनुलग्नक संख्या 2,4 और 5 में उल्लिखित)।

(iii) कोई भी राहत या लाभ जो यह माननीय न्यायाधिकरण उपयुक्त और उचित समझे, जिसमें आवेदन की लागत भी शामिल है, आवेदक को दिया जा सकता है।

6. याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई दो अलग-अलग राहतों की जांच विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र में की जानी चाहिए थी। विद्वान न्यायाधिकरण ने राहत खंड (ii) पर कोई राय व्यक्त करने के बजाय, राहत खंड (i) के आलोक में दावा याचिका का निस्तारण करने का विकल्प चुना, और 10.08.2016 को पारित आदेश इस प्रकार है:-

"1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। उसने अपनी प्रार्थना को 25.4.2016 (अनुलग्नक-1) के अभ्यावेदन के निपटारे तक सीमित रखा है, जो प्रतिपक्ष संख्या 1 के समक्ष 28.11.2013 के आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश के विरुद्ध दायर किया गया था।

2. याचिकाकर्ता की मुख्य शिकायत यह है कि उसे 28.11.2013 के आदेश द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्ष संख्या 1 के समक्ष 25.4.2016 का अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसका अभी तक निस्तारण नहीं हुआ है।

3. याचिकाकर्ता की प्रार्थना पूरी तरह से निरापद है। न्याय के हित में, विपक्षी पक्ष संख्या 1 को निर्देश दिया जाता है कि वह दिनांक 25.4.2016 (अनुलग्नक-1) के अभ्यावेदन का निस्तारण इस निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से दो माह के भीतर **युक्तिसंगत आदेश** पारित करते हुए तथा उसकी सूचना याचिकाकर्ता को प्रदान करते हुए करे।"

7. यह ध्यान देने योग्य है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने, उपरोक्त आदेश पारित करते समय, मुख्य आदेश दिनांक 28.11.2013 के विरुद्ध चुनौती के संबंध में, गुण-दोष के आधार पर कोई निर्णय नहीं लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि याचिकाकर्ता ने विशेष रूप से दंड आदेश न दिए जाने का अनुरोध किया था, जिसके संबंध में उसने राज्य सरकार के समक्ष नियमावली, 1991 के नियम 25 के अंतर्गत एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था। याचिकाकर्ता द्वारा राहत खंड (i) पर दिए गए निवेदन को स्वीकार करते हुए, न्यायाधिकरण ने दिनांक 25.04.2016 के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने हेतु एक सीमित निर्देश जारी करके दावा याचिका का निस्तारण कर दिया।

8. प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधिकरण ने ऐसा आदेश पारित करके अप्रत्यक्ष रूप से कुछ ऐसा करने का प्रयास किया है जो वह प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकता था, क्योंकि दिनांक 28.11.2013 के आदेश के विरुद्ध कारण सीमा अवधि द्वारा वर्जित था। यह न्यायाधिकरण के आदेश की सही समझ नहीं होगी। विद्वान न्यायाधिकरण ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि दंड का आदेश याचिकाकर्ता को सूचित नहीं किया गया था, इसलिए, दिनांक 25.04.2016 के अभ्यावेदन के निस्तारण का निर्देश न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करेगा।

9. पुलिस विभाग में अधीनस्थ रैंक के किसी अधिकारी के विरुद्ध की गई किसी भी दंडात्मक कार्रवाई के लिए, संबंधित नियमों के तहत तीन-स्तरीय उपाय प्रदान किए गए हैं।

10. सबसे पहले, नियमावली, 1991 के नियम 20 के अंतर्गत अपील का प्रावधान है, जिसका त्वरित संदर्भ के लिए नीचे उद्धरण दिया गया है:

"20. अपीलें.— (1) प्रत्येक पुलिस अधिकारी जिसके विरुद्ध नियम 4 के खंड (क) के उपखंड (i) से (iii) और खंड (ख) के उपखंड (i) से (iv) में उल्लिखित दंड का आदेश पारित किया गया है, ऐसे दंड के आदेश के विरुद्ध नीचे उल्लिखित प्राधिकारी के समक्ष अपील करने का हकदार होगा:—

(ए) उस पुलिस अधिकारी के समक्ष जो दंड आदेश पारित करने वाले पुलिस अधिकारी का तत्काल क्षेत्राधिकार वाला वरिष्ठ अधिकारी है;

(बी) पुलिस महानिदेशक के समक्ष जो अपील का निर्णय स्वयं कर सकते हैं या किसी अपर महानिदेशक को इसे तय करने के लिए नामित कर सकते हैं;

(सी) खंड (बी) के अंतर्गत पारित आदेश के विरुद्ध राज्य सरकार के समक्ष।]

(2) सूचीबद्ध किसी भी लघु दंड को लागू करने वाले आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाएगी नियम 4 के उप-नियम (2) और (3) में।

(3) अपील करने का इच्छुक प्रत्येक अधिकारी अलग से ऐसा करेगा।

(4) इन नियमों के अंतर्गत प्रस्तुत की गई प्रत्येक अपील में पुलिस अधिकारियों द्वारा अपील प्रस्तुत करने पर आधारित सभी सामग्री, कथन, तर्क शामिल होंगे, और यह अपने आप में पूर्ण होगी, लेकिन इसमें अपमानजनक या अनुचित भाषा नहीं होगी। प्रत्येक अपील के साथ अंतिम आदेश की एक प्रति संलग्न होगी जो अपील का विषय है।

(5) प्रत्येक अपील, चाहे अपीलकर्ता अभी भी सरकार की सेवा में हो या नहीं, जिले के पुलिस अधीक्षक के माध्यम से या जिला कार्य में कार्यरत न होने वाले पुलिस अधिकारियों के मामले में उस कार्यालय के प्रमुख के माध्यम से प्रस्तुत की जाएगी जिससे अपीलकर्ता संबंधित है या संबंधित था।

(6) अपील पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि वह उस तिथि से तीन महीने के भीतर प्रस्तुत न की जाए जिस संबंधित पुलिस अधिकारी को दंड के आदेश की सूचना दी गई थी:

बशर्ते कि अपीलीय प्राधिकारी, अपने विवेकानुसार, उचित कारण दर्शाने पर, उक्त अवधि को छह महीने तक बढ़ा सकता है।

(7) यदि प्रस्तुत अपील उप-नियम (4) के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करती है, तो अपीलीय प्राधिकारी अपीलकर्ता से ऐसे आदेश की सूचना मिलने के एक महीने के भीतर उक्त उप-नियम के प्रावधानों का अनुपालन करने की अपेक्षा कर सकता है और यदि अपीलकर्ता उपरोक्त अनुपालन करने में विफल रहता है, तो अपीलीय प्राधिकारी अपील का निस्तारण उस तरीके से कर सकता है जैसा वह उचित समझे।

(8) महानिदेशक या महानिरीक्षक, लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, या तो अपनी स्वयं की राय पर या किसी अपीलीय प्राधिकारी, जिसके समक्ष अपील लंबित है, के अनुरोध पर, उसे संबंधित रैंक के किसी भी आदेश अधिकारी को हस्तांतरित कर सकते हैं।

11. अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश से व्यथित व्यक्ति को नियमावली, 1991 के नियम 23 के अंतर्गत पुनरीक्षण दायर करने का एक और अवसर दिया जाता है, और उसे तत्काल संदर्भ के लिए नीचे पुनः प्रस्तुत किया जाता है:-

23. पुनरीक्षण - (1) कोई अधिकारी जिसकी अपील सरकार के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा खारिज कर दी गई है, वह अपील खारिज होने की तिथि से तीन महीने के भीतर, नीचे उल्लिखित अनुसार, उस प्राधिकारी के निकटवर्ती वरिष्ठ प्राधिकारी को पुनरीक्षण के लिए आवेदन प्रस्तुत करने का हकदार है जिसने उसकी अपील खारिज की है:-

(ए) उस पुलिस अधिकारी को, जो अपीलीय आदेश पारित करने वाले पुलिस अधिकारी का तत्काल क्षेत्राधिकार वाला वरिष्ठ प्राधिकारी है;

(बी) पुलिस महानिदेशक को, जो या तो स्वयं पुनरीक्षण पर निर्णय ले सकते हैं या किसी अपर महानिदेशक को इस पर निर्णय लेने के लिए नामित कर सकते हैं;

(सी) राज्य सरकार को आदेश के विरुद्ध खंड (ख) के तहत पारित।

ऐसे आवेदन पर पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब, घोर अनियमितता के परिणामस्वरूप, यह प्रतीत हो कि, भौतिक अन्याय या न्याय का हनन हुआ है:

परंतु पुनरीक्षण प्राधिकारी स्वप्रेरणा से, अपील में पारित किसी भी आदेश के अभिलेखों को मंगवा सकता है और उनकी जांच कर सकता है, जिसके विरुद्ध इस नियम के अंतर्गत कोई पुनरीक्षण नहीं किया गया है, ताकि वह ऐसे आदेश की वैधता या औचित्य या ऐसी प्रक्रिया की नियमितता के बारे में स्वयं को संतुष्ट कर सके और उसके संबंध में ऐसा आदेश पारित कर सके जैसा वह उचित समझे:

इसके अतिरिक्त, प्रथम परंतुक के अंतर्गत कोई भी आदेश, प्रभावित व्यक्ति को मामले में सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना, पारित नहीं किया जाएगा।

(2) अपील के लिए निर्धारित प्रक्रिया पुनरीक्षण के आवेदनों पर भी लागू होती है। किसी अपील को अस्वीकार करने वाले आदेश के संशोधन के लिए आवेदन के साथ मूल आदेश की एक प्रति और अपीलीय प्राधिकारी के आदेश की प्रति भी संलग्न की जाएगी।

12. नियमावली, 1991 के नियम 25 के अंतर्गत वैधानिक उपचार का एक और माध्यम प्रदान किया गया है, जिसे तत्काल संदर्भ के लिए नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

25. सरकार की शक्तियाँ। - इन नियमों में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, सरकार स्वप्रेरणा से या अन्यथा, किसी ऐसे मामले के अभिलेखों को मंगवा सकती है और उनकी जाँच कर सकती है जिसका निर्णय किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा इन नियमों द्वारा ऐसे प्राधिकारी को प्रदत्त किसी शक्ति के प्रयोग में किया गया हो, और जिसके विरुद्ध इन नियमों के अंतर्गत कोई अपील नहीं की गई हो और -

(ए) ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश की पुष्टि, संशोधन या संशोधन कर सकती है; या

(बी) निर्देश दे सकती है कि मामले में आगे की जाँच की जाए; या

(सी) आदेश द्वारा लगाए गए दंड को कम या बढ़ा सकता है; या

(डी) मामले में ऐसा अन्य आदेश दे सकता है जैसा वह उचित समझे:

बशर्त कि जहाँ ऐसे किसी आदेश द्वारा लगाए गए दंड को बढ़ाने का प्रस्ताव हो, वहाँ संबंधित पुलिस अधिकारी को प्रस्तावित वृद्धि के विरुद्ध कारण बताने का अवसर दिया जाएगा।

13. नियमावली, 1991 का नियम 25 एक अलग क्षेत्र में और एक निश्चित उद्देश्य के लिए, राज्य और पीड़ित व्यक्ति दोनों के लिए लागू होता है। नियम के दो पहलू स्पष्ट हैं। पहला, यह नियम नियमावली, 1991 के किसी अन्य नियम के तहत किसी भी परिकल्पित बात के होते हुए भी एक उपाय प्रदान करता है। दूसरा, यह प्रावधान राज्य द्वारा स्वप्रेरणा से या अन्यथा लागू किया जाता है, जहाँ अपील पीड़ित व्यक्ति द्वारा नहीं की जाती है। नियम 25 के तहत शक्तियाँ वैधानिक नियमों में उल्लिखित निश्चित उद्देश्यों के लिए प्रदान की गई हैं, जिनका व्यापक महत्व है।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में तर्क दिया है कि नियम 25, 1991 के तहत प्रस्तुत अभ्यावेदन दिनांक 25.04.2016 को सक्षम प्राधिकारी द्वारा गुण-दोष के आधार पर विस्तृत और तर्कपूर्ण आदेश पारित करके निर्णय लिया गया है। इस प्रकार, यह तर्क दिया जाता है कि एक बार जब राज्य द्वारा योग्यता के आधार पर आदेश पारित करके वैधानिक अभ्यावेदन का निर्णय ले लिया जाता है, तो विलय का सिद्धांत लागू होगा जहाँ तक वाद के कारण के विरुद्ध सीमा अवधि का संबंध है, जो प्रारंभ में उसे दिनांक 28.11.2013 के आदेश के विरुद्ध प्राप्त हुई थी, उसे दिनांक 05.06.2017 के आदेश में विलय कर दिया गया। यह तर्क दी गई है कि एक बार जब सक्षम प्राधिकारी ने अभ्यावेदन का गुण-दोष के आधार पर निर्णय ले लिया, तो मामले की उच्च स्तर पर पुनः जाँच की गई और पूरे मामले ने एक नया स्वरूप और ढाँचा ग्रहण कर लिया। ऐसा होने पर, विद्वान न्यायाधिकरण ने, मूल आदेश दिनांक 28.11.2013 की तिथि से प्रभावी सीमा अवधि के आधार पर दावा याचिका को खारिज करते हुए, त्रुटिपूर्ण निर्णय लिया, और इसलिए, न्यायाधिकरण द्वारा पारित किया गया आक्षेपित निर्णय केवल सीमा अवधि के आधार पर, कानून की एक स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 227/226 के आधार पर इस न्यायालय को प्रदत्त अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में हस्तक्षेप का आह्वान करता है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एस.एस. राठौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य: (1989) 4 एससीसी 582 मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है।

16. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने, अमोल कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण, 2021 एससीसी ऑनलाइन ऑल 457 मामले में दिए गए इस न्यायालय के खंडपीठ के निर्णय पर भरोसा करते हुए, तर्क दिया है कि एक बार जब नियमावली 1991 के नियम 25 के तहत उपाय को गैर-वैधानिक माना गया, तो विलय का सिद्धांत, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होगा।

17. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निर्देशों के आधार पर, आगे तर्क दिया है कि 18.11.2013 के आदेश की एक प्रति याचिकाकर्ता की पत्नी को 04.12.2013 को तामील कर दी गई थी, और अभ्यावेदन या दावा याचिका में इसके विपरीत किया गया कोई भी कथन पूरी तरह से निराधार है। यह भी तर्क दिया गया है कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा लिया गया दृष्टिकोण किसी भी अवैधता से ग्रस्त नहीं है और इस प्रकार दिया गया निर्णय पुष्टि योग्य है।

18. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार किया गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

19. दावेदार-याचिकाकर्ता का मामला यह है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 28.11.2013 को पारित बर्खास्तगी आदेश उसे तामील नहीं किया गया था। इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता ने नियमावली 1991 के नियम 25 के अंतर्गत दिनांक 25.04.2016 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया।

20. याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 25.04.2016 को प्रस्तुत अभ्यावेदन में, उसने एक विशिष्ट तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध पारित किसी दंडात्मक आदेश की उपलब्धता न होने के कारण, उसने दिनांक 23.01.2016 के अपने आवेदन के माध्यम से नोडल अधिकारी, फिरोजाबाद से जानकारी मांगी और जानकारी 09.02.2016 को उपलब्ध कराई गई। कोई विकल्प न होने पर, याचिकाकर्ता ने दिनांक 25.04.2016 को विभाग के उच्च अधिकारी को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया।

21. जब उक्त अभ्यावेदन पर निर्णय नहीं हुआ, तो उसने एक दावा याचिका संख्या 1511 वर्ष 2015 दायर की, जिसका निस्तारण 10.08.2016 के आदेश द्वारा किया गया, जिसमें राज्य सरकार को न्यायाधिकरण के आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से दो महीने की अवधि के भीतर उसके अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया।

22. यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसके अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के निर्देश के अलावा, याचिकाकर्ता ने कारण बताओ नोटिस दिनांक 10.09.2013, बर्खास्तगी आदेश दिनांक 28.11.2013 और एक अन्य आदेश दिनांक 28.11.2013 को रद्द करने का अनुरोध किया था, जिसके तहत अनुपस्थिति की अवधि का वेतन 'काम नहीं तो वेतन नहीं' के सिद्धांत पर रोक दिया गया था। उक्त अभ्यावेदन को दिनांक 05.06.2017 के आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था, जिसे उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण के समक्ष दावा याचिका संख्या 355 वर्ष 2018 दायर करके चुनौती दी गई थी। इस प्रकार दायर की गई उक्त याचिका को दिनांक 12.07.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा समय-सीमा के आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया था। उत्तर प्रदेश लोक सेवा (न्यायाधिकरण) अधिनियम, 1976 की धारा 4 के तहत निर्धारित एक वर्ष की अवधि की व्याख्या मूल आदेश दिनांक 28.11.2013 की तिथि से की गई थी।

23. यद्यपि न्यायाधिकरण द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि नियमावली, 1991 के नियम 25 में कोई समय-सीमा प्रदान नहीं की गई है, परंतु याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दावा याचिका केवल इस आधार पर अस्वीकृत की जाती है कि याचिकाकर्ता द्वारा यह अभ्यावेदन अपील/पुनरीक्षण के वैधानिक उपाय का लाभ उठाए बिना प्रस्तुत किया गया था। न्यायाधिकरण ने कहा कि अभ्यावेदन को गैर-वैधानिक माना गया, जिसके अस्वीकार होने पर याचिकाकर्ता को बाद की तारीख से परिसीमा अवधि का लाभ लेने का अधिकार नहीं होगा।

24. याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से दो बार न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाया है। एक बार, न्यायाधिकरण ने राज्य प्राधिकारियों को निर्देश दिया था कि वे दो महीने के भीतर अभ्यावेदन पर निर्णय लें। इस समय, यह उल्लेखनीय है कि न्यायाधिकरण अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के लिए निर्देश जारी करने के बजाय, लंबित अभ्यावेदन को गैर-वैधानिक मानने और दावा याचिका को समय सीमा के आधार पर खारिज करने के लिए स्वतंत्र था। लेकिन निर्देश जारी करते समय, ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधिकरण ने वैधानिक नियमों, विशेष रूप से नियमावली, 1991 के नियम-25 के व्यापक महत्व को समझ लिया है।

25. जब याचिकाकर्ता ने अपने अभ्यावेदन की अस्वीकृति के विरुद्ध दूसरी बार न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाया, तो दावा याचिका को मूल आदेश की तिथि से सीमा अवधि की गणना करके खारिज कर दिया गया, न कि विलय के परिणाम को देखते हुए, जिसे नियमावली, 1991 का नियम-25 लाने में सक्षम है। ऐसा प्रावधान राज्य के पास एक अवशिष्ट शक्ति के रूप में कार्य करता है, जो स्वतः संज्ञान लेकर उन कार्यों को रद्द कर सकता है जो कानून के अनुरूप नहीं हैं और अपवादस्वरूप, उपयुक्त मामलों में पीड़ित व्यक्ति को भी अधिकार क्षेत्र उपलब्ध है।

26. दूसरी दावा याचिका को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता था क्योंकि याचिकाकर्ता ने कानून के तहत उपलब्ध वैधानिक उपायों का लाभ नहीं उठाया था, क्योंकि 28.11.2013 का आदेश याचिकाकर्ता को 09.02.2016 तक उपलब्ध नहीं कराया गया था, जब उसने इसकी आपूर्ति के लिए नोडल अधिकारी, फिरोजाबाद से संपर्क किया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने तुरंत न्यायाधिकरण से संपर्क किया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। विलय का सिद्धांत निम्न प्राधिकारी के निर्णय को उच्च प्राधिकारी के निर्णय में समाहित करने के लिए लागू हुआ, जब किसी उपाय का अनुसरण किया गया और गुण-दोष के आधार पर विस्तृत रूप से विचार किया गया।

27. इस मामले में, दंड आदेश की आपूर्ति के अभाव में याचिकाकर्ता मूल बर्खास्तगी आदेश के खिलाफ अपील दायर नहीं कर सका, जो देरी से दिए जाने पर उसे नियमावली, 1991 के नियम 25 के तहत अभ्यावेदन करने के लिए खुला छोड़ दिया गया था और गुण-दोष के आधार पर उसका निर्णय किया गया था। एक बार जब सक्षम प्राधिकारी ने प्रतिवेदन पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय ले लिया, तो बर्खास्तगी आदेश अनिवार्य रूप से उस अभ्यावेदन पर निर्णय के साथ विलीन हो गया क्योंकि यह नियमों के तहत निर्धारित एक उपाय था।

28. अतः, यह निष्कर्ष निकलता है कि सीमा अवधि की गणना मूल बर्खास्तगी आदेश की तिथि से नहीं, बल्कि उस तिथि से की जानी चाहिए थी जब वैधानिक अभ्यावेदन पर निर्णय लिया गया था। न्यायाधिकरण ने दावा याचिका को केवल सीमा अवधि के आधार पर खारिज करने में गलती की, बिना यह समझे कि याचिकाकर्ता ने अपने उपायों का पूरी लगन से पालन किया था और विलय का सिद्धांत प्रभावी हो गया था।

29. कुन्हयाम्मद एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य [(2000) 6 एससीसी 359] में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि जब कोई उच्च प्राधिकारी किसी मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय करता है, तो निम्न प्राधिकारी के आदेश का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार, भारत संघ बनाम के. वी. जानकीरमन [(1991) 4 एससीसी 109] में, न्यायालय ने माना कि जब कोई प्रशासनिक प्राधिकारी किसी आदेश पर पुनर्विचार करता है, तो समय-सीमा की गणना मूल आदेश के बजाय निर्णय पर पुनर्विचार की तिथि से की जानी चाहिए।

30. न्यायाधिकरण द्वारा केवल समय-सीमा के आधार पर दावा याचिका को अस्वीकार करना प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन करता है। याचिकाकर्ता को अपने बर्खास्तगी आदेश की जानकारी तब तक नहीं थी जब तक उसे नोडल अधिकारी, फिरोजाबाद से सूचना नहीं मिली। प्रक्रिया का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि समय-सीमा किसी पक्ष के विरुद्ध तब तक लागू नहीं होती जब तक उसे प्रतिकूल आदेश की जानकारी न हो।

31. प्रत्यार्थियों द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि बर्खास्तगी आदेश कथित तौर पर याचिकाकर्ता की पत्नी को 04.12.2013 को दिया गया था, लेकिन अभिलेखों से यह स्थापित नहीं हुआ कि यह वास्तव में उसे दिया गया था। 2.5 वर्ष बाद, नोडल अधिकारी, फिरोजाबाद ने 09.02.2016 को अपेक्षित जानकारी प्रदान की, वह भी याचिकाकर्ता द्वारा 23.01.2016 को प्रस्तुत आवेदन पर। तत्पश्चात, न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्देश पर, प्रतिवेदन का योग्यता के आधार पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा 05.06.2017 को पारित एक विस्तृत आदेश द्वारा निर्णय लिया गया, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने 20.02.2018 को दावा याचिका दायर की, जिस पर कानून के तहत निर्धारित समय के भीतर विचार किया जाना चाहिए था।

32. चूँकि याचिकाकर्ता ने बर्खास्तगी आदेश की तामील के तुरंत बाद उपायों का पालन किया, इसलिए याचिकाकर्ता के दावे को वैधानिक नियमों की योजना की अनदेखी करके समय-बाधित नहीं माना जा सकता।

33. उपर्युक्त कारणों से, न्यायालय का मत है कि केवल सीमा अवधि के आधार पर दावा याचिका को अस्वीकार करना, विलय के सिद्धांत के अनुप्रयोग के मद्देनजर कानूनी रूप से अस्थिर है, जो वर्ष 2013 में पारित आदेश की गैर-पूर्ति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ, जिससे नियमावली 1991 के नियम 25 के तहत अभ्यावेदन को बढ़ावा मिला। दूसरे, याचिकाकर्ता को आदेश की तामील की प्रक्रियात्मक अनियमितताओं के

कारण अपने बर्खास्तगी आदेश को गुण-दोष के आधार पर चुनौती देने के अवसर से वंचित किया गया और अंत में, प्रतिकूल कार्रवाई से अनभिज्ञ पक्ष के विरुद्ध परिसीमा लागू नहीं हो सकती।

34. पूर्वगामी अनुच्छेदों के मददेनजर, न्यायाधिकरण द्वारा लिया गया दृष्टिकोण मान्य नहीं है और इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

35. तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है और आक्षेपित निर्णय एवं आदेश दिनांक 12.07.2022 को निरस्त किया जाता है। मामला इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर, गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए न्यायाधिकरण को भेजा जाता है, क्योंकि यह मामला 2013 से लंबित है। पक्षकार न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही में सहयोग करने का वचन देते हैं। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

(2025) 3 ILRA 340

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए संख्या - 18801/2024

अन्य संबंधित वाद

प्रियंकर उपाध्याय

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री आर.के. ओझा, श्री जी.के. सिंह, श्री प्रदीप चंद्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री शिवेंदु ओझा, श्री संकल्प नारायण, सुश्री आशा परिहार, श्री मनोज कुमार सिंह, अधिवक्तागण

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

श्री वी.के. उपाध्याय, श्री अजीत कुमार सिंह, श्री शशि प्रकाश सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री ऋत्विक् उपाध्याय, श्री हेम प्रताप सिंह, श्री मनोज कुमार सिंह, श्री पूर्णन्दु कुमार सिंह, श्री धनंजय अवस्थी, श्री राहुल जैन, अधिवक्तागण

क. सेवा विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट - द्वितीय रिट याचिका - पोषणीयता - इससे पहले, सीपीएफ योजना से जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में वापसी की मांग वाली रिट याचिका खारिज कर दी गई थी - बाद में दिल्ली उच्च न्यायालय ने एक अलग दृष्टिकोण से एक निर्णय पारित किया था, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने भी पुष्टि की थी - समान राहत के साथ द्वितीय याचिका को स्वीकार करने का आधार कहाँ तक हो सकता है? - अभिनिर्धारित किया गया कि याचिकाकर्ताओं ने गलत तरीके से घोषित किया है कि वर्तमान रिट याचिकाएँ माँगी गई राहत पर उनकी प्रथम रिट याचिकाएँ हैं। इसलिए, न्यायालय का विचार है कि वर्तमान रिट याचिकाओं में की गई घोषणा अभिलेख के विपरीत है - इसके अलावा, केवल इस आधार पर अभिनिर्धारित किया गया कि बाद में दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल पीठ द्वारा विधि की एक अलग व्याख्या की गई थी, जिसे सर्वोच्च न्यायालय तक ने पुष्टि की थी और चूँकि याचिकाकर्ता इन निर्णयों के बाद प्राधिकारियों से संपर्क कर रहे थे, इसलिए यह आधार नहीं बनता कि उक्त निर्णय याचिकाकर्ताओं पर लागू होता है, ताकि वह पिछला निर्णय आड़े न आए। (प्रस्तर 8 और 29)

ख. सेवा विधि - अंशदायी भविष्य निधि - दिनांक 01.05.1987 को कार्यालय ज्ञापन जारी किया गया था, जिसमें सीपीएफ योजना से जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में परिवर्तन करने का विकल्प दिया गया था, जिसकी कट ऑफ तिथि 09.07.1998 थी - पूर्व योजना में बने रहने का विकल्प निश्चित कट ऑफ तिथि से पहले दिया गया था - प्रभाव - जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में शामिल होने का दावा किया गया था - अनुमति - अभिनिर्धारित किया गया कि 09.07.1988 के बाद दिया गया कोई भी विकल्प मान्य नहीं होगा, हालाँकि, अभिलेख के आधार पर, किसी भी याचिकाकर्ता के पास ऐसा कोई वाद नहीं है कि उन्होंने उपरोक्त कट ऑफ तिथि के आधार पर पूर्व सीपीएफ योजना में बने रहने का विकल्प चुना है, बल्कि उनका दावा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा 09.04.1988 को योजना को अपनाने के बाद ही उत्पन्न हुआ था और उन्होंने नई कट ऑफ तिथि, यानी 09.07.1988 से पहले विकल्प दिया है, इसलिए, दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण में निर्णय का लाभ लागू नहीं होगा। [प्रस्तर 21 और 30(सी)]

सी. वस्तु-सम्बन्धी निर्णय और व्यक्तिगत निर्णय - श्रीमती शशि किरण के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की प्रयोज्यता, जो वस्तु सम्बन्धी निर्णय होने के कारण, अपेक्षित थी - अभिनिर्धारित किया गया कि दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय वस्तु सम्बन्धी न कि व्यक्तिगत निर्णय था, हालाँकि, प्रत्येक वाद के तथ्यों के अलग-अलग परिणाम हो सकते हैं। (प्रस्तर 26)

रिट याचिका खारिज। (ई-1)

उद्धृत वादों की सूची:

1. दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण एवं अन्य; 2022(7) एससीआर 957
2. नीरजा टीकू बनाम स्कूल ऑफ प्लानिंग एंड आर्किटेक्चर एवं अन्य; 2024:डीएचसी:2891

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

कोरम : माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

1. उपर्युक्त रिट याचिकाओं में याचिकाकर्तागण, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारी हैं और वे अंशदायी भविष्य निधि योजना (जिसे आगे "सीपीएफ योजना" कहा जाएगा) के लाभार्थी हैं।

2. भारत सरकार ने दिनांक 01.05.1987 को "केंद्र सरकार के कर्मचारियों का अंशदायी भविष्य निधि योजना से पेंशन योजना में परिवर्तन - चौथे केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों का कार्यान्वयन" विषय पर एक कार्यालय जापन जारी किया है। उक्त कार्यालय जापन की मुख्य विशेषताएं आगे पुनः प्रस्तुत की जा रही हैं:

"अधोहस्ताक्षरी को यह कहने का निर्देश हुआ है कि अंशदायी भविष्य निधि योजना (सीपीएफ योजना) द्वारा शासित केंद्र सरकार के कर्मचारियों को पेंशन योजना में आने के लिए पूर्व में बार-बार विकल्प दिए गए हैं। ऐसा अंतिम विकल्प कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के दिनांक 6 जून, 1985 के कार्यालय जापन संख्या एफ3(1)-पेंशन यूनिट/85 में दिया गया था। हालाँकि, कुछ केंद्रीय सरकारी कर्मचारी अभी भी सीपीएफ योजना के अंतर्गत कार्यरत हैं। चौथे केंद्रीय वेतन आयोग ने अब सिफारिश की है कि 1 जनवरी, 1986 को सेवा में रहे सभी सीपीएफ लाभार्थियों को उस तिथि से पेंशन योजना में शामिल माना जाना चाहिए, जब तक कि वे विशेष रूप से सीपीएफ योजना के अंतर्गत बने रहने का विकल्प न चुनें।

2. सावधानीपूर्वक विचार-विमर्श के बाद राष्ट्रपति यह निर्णय लेते हैं कि उक्त सिफारिश को स्वीकार किया जाएगा और आगे बताए गए तरीके से कार्यान्वित किया जाएगा।

3. सभी सीपीएफ लाभार्थी, जो 1.1.1986 को सेवा में थे और जो इन आदेशों के जारी होने की तिथि को अभी भी सेवा में हैं, पेंशन योजना में शामिल माने जाएंगे।

3.2. हालाँकि, उपर्युक्त श्रेणी के कर्मचारियों के पास, यदि वे चाहें तो, सीपीएफ योजना के अंतर्गत बने रहने का विकल्प होगा। यदि कर्मचारी सीपीएफ योजना के अंतर्गत बने रहना चाहते हैं, तो उन्हें संलग्न प्रपत्र में 30.09.1987 तक विकल्प का प्रयोग करके संबंधित कार्यालय प्रमुख को सूचित करना होगा। यदि उपरोक्त तिथि तक कार्यालय प्रमुख को कोई विकल्प प्राप्त नहीं होता है, तो कर्मचारियों को पेंशन योजना में शामिल माना जाएगा।

3.3. सीपीएफ लाभार्थी, जो 1.1.1986 को सेवा में थे, लेकिन अब सेवानिवृत्त हो चुके हैं और जिनके मामले में सेवानिवृत्ति लाभ भी सीपीएफ योजना के अंतर्गत दिए गए हैं, उनके पास पेंशन योजना के अंतर्गत अपने

सेवानिवृत्ति लाभों की गणना कराने का विकल्प होगा, बशर्त वे सरकार को अंशदायी भविष्य निधि में सरकार का अंशदान और सीपीएफ खाते के निपटान के समय उनके द्वारा प्राप्त ब्याज वापस कर दें। ऐसा विकल्प 30.09.1987 तक दिया जाना चाहिए।

3.4. सीपीएफ लाभार्थियों के मामले में, जो 1.1.1986 को सेवा में थे, लेकिन अब सेवानिवृत्त हो चुके हैं और जिनके मामले में सीपीएफ खाते में पहले से भुगतान नहीं किया गया है, उन्हें सेवानिवृत्ति लाभ उसी तरह दिए जाएंगे जैसे कि वे पेंशन योग्य प्रतिष्ठानों में कार्यरत हों, जब तक कि वे 30.09.1987 तक सीपीएफ योजना के अंतर्गत अपने सेवानिवृत्ति लाभों का निपटान करने का विशेष रूप से विकल्प नहीं चुनते हैं।

3.5 सीपीएफ लाभार्थियों के मामले में, जो 1.1.1986 को सेवा में थे, लेकिन अब उनकी मृत्यु हो गई है। सेवानिवृत्ति से पहले या सेवानिवृत्ति के बाद, मामले का निपटारा ऊपर प्रस्तर 3.3 या 3.4 के अनुसार किया जाएगा, जैसा भी मामला हो। ऐसे मामलों में विकल्प विधवा/विधुर द्वारा 30.09.1987 तक और विधवा/विधुर की अनुपस्थिति में परिवार के सबसे बड़े जीवित सदस्य द्वारा चुना जाएगा, जो अन्यथा पारिवारिक पेंशन योजना के अंतर्गत पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र होता यदि ऐसी योजना लागू होती।

3.6 एक बार चुना गया विकल्प अंतिम होगा।

3.7 प्रस्तर 3.3 और 3.5 में शामिल मामलों में, जिनमें अंशदायी भविष्य निधि में सरकारी अंशदान और सेवानिवृत्ति के समय प्राप्त ब्याज की वापसी शामिल है, राशि 30 सितंबर, 1987 तक वापस करनी होगी। यदि उक्त तिथि तक राशि वापस नहीं की जाती है, तो 30.9.1987 के बाद की विलंब अवधि के लिए उस पर 10% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज देय होगा।

3. उपरोक्त कार्यालय जापन के अनुसरण में, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के उप रजिस्ट्रार (प्रशासन) ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सचिव को एक पत्र लिखकर सीपीएफ योजना को सामान्य भविष्य निधि-सह-पेंशन योजना (जिसे आगे "जीपीएफ-सह-पेंशन योजना" कहा जाएगा) में बदलने के विषय पर आदेश की प्रतियां भेजने के लिए कहा है और तदनुसार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनु सचिव ने दिनांक 19.01.1988 के पत्र द्वारा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार सहित कई केंद्रीय विश्वविद्यालयों के रजिस्ट्रार को उपरोक्त मुद्दे पर एक कार्यालय जापन भेजा है। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कुलसचिव (प्रशासन) कार्यालय ने समुचित विचार-विमर्श के बाद दिनांक 09.04.1988 को "केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों का अंशदायी भविष्य निधि योजना से पेंशन योजना में परिवर्तन - चतुर्थ केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों का कार्यान्वयन" विषय पर एक कार्यालय जापन जारी किया। यह पत्र बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों के प्रमुखों को संबोधित था। पत्र की विषय-वस्तु, वर्तमान वादों के न्यायनिर्णयन के प्रयोजन हेतु प्रासंगिक होने के कारण, निम्नलिखित रूप में पुनः प्रस्तुत की जा रही है:

"मुझे आपको यह सूचित करने का निदेश हुआ है कि उपरोक्त विषय पर भारत सरकार के आदेशों को विश्वविद्यालय के कर्मचारियों पर लागू करने का निर्णय लिया गया है। तदनुसार, सीपीएफ/पीएफ योजना पर कार्यरत सभी विश्वविद्यालय कर्मचारी जो 1.1.1986 को सेवा में थे, पेंशन योजना में शामिल माने जाएंगे।

2. हालाँकि, उपर्युक्त श्रेणी के कर्मचारियों के पास, यदि वे चाहें तो पीएफ/सीपीएफ योजना के अंतर्गत बने रहने का विकल्प होगा। इस विकल्प का प्रयोग और सूचना संलग्न प्रपत्र में 9 जुलाई, 1988 तक इस कार्यालय को देनी होगी। यदि इस तिथि तक कोई विकल्प प्राप्त नहीं होता है, तो कर्मचारी को पेंशन योजना में शामिल माना जाएगा।

3. वे कर्मचारी जो 1.1.1986 से/उसके बाद कार्यरत हैं और जिनके मामले में सीपीएफ योजना के अंतर्गत सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान किया गया है, वे भी पेंशन योजना में शामिल होने के पात्र होंगे, बशर्ते वे विश्वविद्यालय का अंशदान और उस पर प्राप्त ब्याज वापस कर दें।

4. ऐसे कर्मचारियों के मामले में जो 1.1.1986 को सेवा में थे, लेकिन सेवानिवृत्ति से पहले या बाद में उनकी मृत्यु हो गई है, सीपीएफ लाभों को बनाए रखने या पेंशन योजना में शामिल होने का विकल्प विधवा/विधुर द्वारा, और विधवा/विधुर की अनुपस्थिति में परिवार के सबसे वरिष्ठ सेवारत सदस्य द्वारा चुना जाएगा, जो अन्यथा पारिवारिक पेंशन योजना के अंतर्गत पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र होता, यदि ऐसी योजना कर्मचारी पर लागू होती है।

5. सभी मामलों में विकल्प चुनने की अंतिम तिथि 9 जुलाई, 1988 होगी और एक बार विकल्प चुन लेने के बाद विकल्प अंतिम होगा।

6. भविष्य निधि में विश्वविद्यालय के अंशदान (उस पर ब्याज सहित) की वापसी से संबंधित मामलों में, राशि 9 जुलाई, 1988 तक वापस करनी होगी, अन्यथा इस तिथि के बाद की अवधि के लिए 10% प्रति वर्ष की दर से ब्याज देय होगा।

7. इस परिपत्र के प्रावधान विश्वविद्यालय में पुनर्नियोजित या अनुबंध के आधार पर नियुक्त कार्मिकों पर लागू नहीं होंगे।

8. निदेशकों/संकायाध्यक्षों/प्राचार्यों/प्रमुखों आदि से अनुरोध है कि वे इस परिपत्र की विषय-वस्तु को अपने नियंत्रणाधीन भविष्य निधि/अंशदायी भविष्य निधि में अंशदान करने वाले सभी कर्मचारियों, जिनमें अवकाश पर या विदेश सेवा पर कार्यरत कर्मचारी भी शामिल हैं, के ध्यान में लाएँ, ताकि बाद में इन आदेशों की अनभिज्ञता का दावा न किया जाए और कर्मचारियों के विकल्प समय पर इस कार्यालय में प्रस्तुत किए जा सकें।"

4. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, भारत सरकार के दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय ज्ञापन, जिसमें विकल्पों का प्रयोग करने की अंतिम तिथि 30.09.1987 निर्धारित की गई थी, को बाद में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा 09.04.1988 को अपनाया गया और विकल्पों का प्रयोग करने की अंतिम तिथि 09.07.1988 निर्धारित की गई।

5. इस स्तर पर, यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि दिल्ली विश्वविद्यालय ने 25.05.1987 की अधिसूचना द्वारा छठे वेतन आयोग की सिफारिश को स्वीकार कर लिया है, अर्थात् भारत सरकार द्वारा जारी दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय ज्ञापन के बहुत ही कम समय के भीतर और तदनुसार कट ऑफ तिथि, अर्थात् 30.09.1987 दिल्ली विश्वविद्यालय के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक होगी। हालाँकि, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के संबंध में, ऊपर उल्लिखित न्यायालय की दो तिथियाँ, अर्थात् 09.04.1988, जब बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने योजना को अपनाया और विकल्प के लिए अंतिम तिथि 09.07.1988 निर्धारित की गई, प्रासंगिक होंगी।

6. याचिकाकर्ताओं ने घोषित किया है कि ऊपर संदर्भित संचार के अनुसरण में उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित कट ऑफ तिथि, अर्थात् 09.07.1988 से पहले पूर्ववर्ती योजना, अर्थात् सीपीएफ योजना में बने रहने का विकल्प दिया है। यह भी अभिलेख में है कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने 09.07.1988 के बाद भी विकल्प प्रस्तुत करने की कट ऑफ तिथि को एक से अधिक बार बढ़ाया है और कुछ कर्मचारियों ने उसके बाद भी सीपीएफ योजना में बने रहने का विकल्प दिया है।

7. उपर्युक्त परिस्थितियों में, कई याचिकाकर्ताओं ने पहले रिट याचिकाएँ संख्या 32101/2004 और 28790/2004 दायर की थीं, जिनमें उन्होंने प्रार्थना की थी कि उन्हें सीपीएफ योजना से जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में वापस जाने की अनुमति दी जाए, अर्थात् सीपीएफ योजना में बने रहने का उनका विकल्प वापस ले लिया जाए। इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 12.08.2011 के आदेश द्वारा दोनों रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया और उक्त निर्णय का प्रासंगिक अंश यहाँ पुनः प्रस्तुत है:

"13. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से उपस्थित श्री वी.के. उपाध्याय ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के संयुक्त सचिव, डॉ. एन.के. जैन के प्रति-शपथपत्र पर भरोसा किया है। उन्होंने विश्वविद्यालय और केंद्र सरकार द्वारा उठाई गई आपतियों को दोहराया है। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने संयुक्त सचिव, भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय को दिनांक 8.8.2001 के पत्र द्वारा इस मामले को उठाया था ताकि योजना का विस्तार करने पर विचार किया जा सके और कट ऑफ तिथि के बारे में स्पष्ट दृष्टिकोण अधिसूचित किया जा सके ताकि संस्थान अपनी कट ऑफ तिथि स्वयं तय न करें। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने अपने पत्र दिनांक 22.9.2001 द्वारा यूजीसी को सूचित किया कि पहले इस मामले की जांच वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग) के परामर्श से की गई थी। मंत्रालय ने खेद व्यक्त किया था और यूजीसी और उसके द्वारा संचालित संस्थानों के कर्मचारियों को सीपीएफ से जीपीएफ योजना में बदलने के लिए एक और विकल्प की अनुमति देने में अपनी असमर्थता व्यक्त की थी।

इससे पहले मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने भी दिनांक 19.6.2000 के पत्र द्वारा वित्त मंत्रालय के परामर्श से विकल्प से संबंधित मामले की सूचना दी थी।

14. यूजीसी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने अपने दिनांक 24.12.2002 के पत्र द्वारा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति को विकल्प परिवर्तन के संबंध में एक पत्र भेजा था। मामले का परीक्षण करने के बाद, यूजीसी ने अपने दिनांक 23.9.2003 के पत्र द्वारा सूचित किया कि विकल्प केवल 30.9.1987 तक ही उपलब्ध थे, अतः विश्वविद्यालय के अनुरोध पर विचार नहीं किया जा सकता।

15. जहाँ तक भेदभाव का प्रश्न है, यूजीसी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने वर्ष 1988 और 1995 में यूजीसी की अनुमति के बिना, स्वयं ही तिथि बढ़ा दी थी। यूजीसी ने 23 सितंबर, 2003 के अपने पत्र द्वारा विश्वविद्यालय को सूचित किया कि परिवर्तन का एक और विकल्प स्वीकार नहीं किया जा सकता। असम विश्वविद्यालय के मामले में, जिन कर्मचारियों की भर्ती 1994 के बाद हुई थी और उस समय केवल सामान्य भविष्य निधि योजना ही उपलब्ध थी, असम विश्वविद्यालय ने गलती से कर्मचारियों को सामान्य भविष्य निधि (सीपीएफ) दे दिया, जो स्वीकार्य नहीं था। यूजीसी के संयुक्त सचिव डॉ. एम.के. जैन के प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 8 में कहा गया है कि कानपुर, बॉम्बे, गोरखपुर और रुड़की स्थित आईआईटी यूजीसी के दायरे में नहीं आते और दिल्ली विश्वविद्यालय को यूजीसी द्वारा तिथि बढ़ाने की कोई अनुमति नहीं दी गई थी। दिल्ली विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार को संबोधित दिनांक 25.5.1999 के डी.ओ. पत्र द्वारा, जिसकी एक प्रति सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों को भेजी गई थी, सीपीएफ से जीपीएफ में परिवर्तन की अंतिम तिथि 30.9.1987 बताई गई थी और ऐसे कर्मचारियों के लिए अंतिम तिथि के बाद सेवानिवृत्ति देयताओं के लाभ को अस्वीकृत व्यय माना जाना था। दिल्ली विश्वविद्यालय से यूजीसी को प्राप्त उत्तर के आधार पर, उन्होंने 3 सितंबर, 2002 को मानव संसाधन विकास मंत्रालय को सुझाव दिया कि दिल्ली विश्वविद्यालय के लिए 31.3.1998 तक के परिवर्तन को नियमित किया जाए या भारत सरकार यूजीसी को निर्देश दे कि यूजीसी द्वारा उन कर्मचारियों की पेंशन देयता न की जाए, जिन्होंने 30.9.1987 के बाद सीपीएफ से पेंशन योजना में अनियमित रूपांतरण की अनुमति दी है। इन पत्रों के संदर्भ में, मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 24.10.2002 को यूजीसी को सूचित किया कि चूँकि यूजीसी एक वित्त पोषण एजेंसी है और इसने स्वयं सीपीएफ से जीपीएस में रूपांतरण की सरकारी नीति को केंद्र सरकार और 100% रखरखाव अनुदान प्राप्त करने वाले डीम्ड विश्वविद्यालयों तक विस्तारित किया है, इसलिए दिल्ली विश्वविद्यालय के उन कर्मचारियों के लिए कोई विशेष सरकारी निर्देश आवश्यक नहीं हैं, जिन्होंने निर्धारित अंतिम तिथि के बाद सीपीएफ से जीपीएफ पेंशन योजना में रूपांतरण की अनुमति नहीं दी थी। यूजीसी ने विश्वविद्यालय को तिथियों के विस्तार की अनुमति नहीं दी थी। रूपांतरण को दिल्ली विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, जहाँ यूजीसी/भारत सरकार का कोई प्रतिनिधि नहीं है। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा कुछ कर्मचारियों को कट ऑफ तिथि के बाद सेवा विस्तार की अनुमति देना भारत सरकार और यूजीसी द्वारा दिए गए निर्देशों का उल्लंघन है।

16. इन तथ्यों से, हम पाते हैं कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विकल्प परिवर्तन हेतु कट ऑफ तिथि बढ़ाने के संबंध में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय को कभी कोई निर्णय नहीं दिया था। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग) से अनुरोध किया था, जो सीपीएफ से जीपीएफ योजना में परिवर्तन हेतु कट ऑफ तिथि बढ़ाने पर सहमत नहीं हुआ। सीपीएफ से जीपीएफ में परिवर्तन से संबंधित योजना को अधिसूचित करने वाले कार्यालय ज्ञापन संख्या 4/1/87 दिनांकित 1.5.1987 में कभी संशोधन नहीं किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति ने, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से किसी प्राधिकार के बिना और कार्यकारी परिषद के किसी प्रस्ताव के बिना, स्वयं ही अपने कुछ कर्मचारियों के लिए 31 दिसंबर, 1995 तक सेवा विस्तार की तिथि बढ़ा दी थी। उन्हें दिया गया परिवर्तन विश्वविद्यालय के कुलपति के अधिकारिता से बाहर था। प्रो. डी.के. राय की अध्यक्षता वाली समिति ने जीपीएफ में परिवर्तन के लिए एक और अवसर देने की सिफारिश की थी, जिसे कुलपति ने कार्यकारी परिषद की सिफारिशों के बिना ही स्वीकार कर लिया था और अंततः कार्यकारी परिषद ने अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा कुलपति के 20.3.2001 और 18.1.2002 के आदेशों को अनुमोदित करने में अपनी असमर्थता पर खेद व्यक्त किया। विश्वविद्यालय के कुलपति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और मानव संसाधन विकास मंत्रालय के निर्देशों के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकते थे क्योंकि विश्वविद्यालय पूरी तरह से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा वित्त पोषित है।

17. हमारा मत है कि कुलपति को कार्यकारी परिषद, जो वित्तीय अनुशासन के मामलों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा लिए गए निर्णयों से बाध्य है, की अनुमति के बिना, विकल्प के लिए तिथि बढ़ाने का कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि कार्यकारी परिषद, विश्वविद्यालय को पूरी तरह से वित्त पोषित करती है।

18. वर्तमान वाद में प्रश्न विकल्प की तिथि बढ़ाने का नहीं, बल्कि याचिकाकर्ता को सीपीएफ योजना में बने रहने का विकल्प वापस लेने की अनुमति देने का है। इस योजना के अंतर्गत सभी शिक्षकों/कर्मचारियों को जीपीएफ-ग्रेच्युटी-पेंशन योजना का लाभ दिया जाता था। केवल उन्हीं कर्मचारियों को यह लाभ नहीं दिया गया, जिन्होंने सीपीएफ योजना में बने रहने का विकल्प चुना था। कुलपति को अंतिम तिथि बढ़ाने का अधिकार देने के लिए केंद्रीय विश्वविद्यालय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1967 के नियम 3(iii) में संशोधन नहीं किया गया। कुलपति ने बिना किसी वैध प्राधिकार के स्वयं ही वर्ष 1988 और 1995 में अंतिम तिथि बढ़ा दी। याचिकाकर्ताओं ने इस अनधिकृत विस्तार नीति का भी लाभ नहीं उठाया। इसलिए, उन्हें आगे विस्तार का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है। यूजीडी और मानव संसाधन विकास मंत्रालय के निर्देशों का पालन करते हुए तिथि बढ़ाने में अपनी असमर्थता पर खेद व्यक्त करके कार्यकारी परिषद ने कोई गलती नहीं की है।

19. याचिकाकर्ता विश्वविद्यालय के शिक्षक और कर्मचारी हैं। उन्होंने अपने द्वारा चुने गए विकल्प के वित्तीय निहितार्थ को पूरी तरह से समझ लिया था। 5वें वेतन आयोग द्वारा 1.1.1996 से दिए गए लाभ उन्हें 30.9.1987 निर्धारित कट ऑफ तिथि समाप्त होने के लगभग नौ साल बाद जीपीएफ-ग्रेच्युटी-पेंशन योजना का विकल्प चुनने की अनुमति देने का आधार नहीं हो सकते थे।

20. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भेदभाव की शिकायत का पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया है। 1994 में नियुक्त गुवाहाटी विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को गलत तरीके से सीपीएफ योजना की पेशकश की गई थी और इस प्रकार उन सभी को त्रुटि सुधारने के लिए जीपीएफ योजना में लाया गया था। यूजीसी/एमएचआरडी द्वारा आईआईटी को कट ऑफ तिथि को आगे न बढ़ाने का निर्देश दिया गया था क्योंकि वे यूजीसी द्वारा वित्त पोषित नहीं हैं। उनके द्वारा लिया गया कोई भी निर्णय केंद्रीय विश्वविद्यालयों के शिक्षकों/कर्मचारियों के साथ भेदभाव नहीं माना जाएगा। यूजीसी और मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी स्पष्टीकरणों के खिलाफ दिल्ली विश्वविद्यालय ने अवैधानिक कार्य जारी रखा।

21. भारत संघ बनाम एम.के. सरकार, (2010) 2 एससीसी 59 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहां सीपीएफ योजना द्वारा शासित एक कर्मचारी ने कई अवसर दिए जाने के बावजूद पेंशन योजना का विकल्प नहीं चुना, उसकी सेवानिवृत्ति के 22 वर्ष बाद राशि वापस करने की इच्छा के साथ उसके अभ्यावेदन को पेंशन योजना में स्विच करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि उसका अनुरोध स्वीकार कर लिया जाता है, तो इसका प्रभाव उसे दोहरा लाभ प्राप्त करने की अनुमति देना होगा। इतने लंबे समय के बाद रिट याचिका दायर करने के लिए कोई आवर्ती या निरंतर कार्रवाई का कारण नहीं था। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब उसे विकल्प की उपलब्धता की सूचना या ज्ञान था, तो उसे यह तर्क देते हुए नहीं सुना जा सकता कि उसके पास विकल्प की लिखित सूचना नहीं थी।

22. हम यह भी पाते हैं कि यह रिट याचिका 5.8.2004 को विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद के 19/20 जुलाई, 2002 के निर्णय को चुनौती देते हुए दायर की गई थी, जिसे विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार ने 5.9.2002 को सूचित किया था, जीपीएफ-ग्रेजुएटी-पेंशन योजना के अंतर्गत आने वाले कर्मचारियों को नई पेंशन योजना में शामिल होने का प्रस्ताव दिया गया था और इस प्रकार वर्ष 2004 में याचिकाकर्ताओं, जिनमें से कई बहुत पहले सेवानिवृत्त हो चुके हैं, को अपना विकल्प बदलने और जीपीएफ-ग्रेजुएटी-पेंशन योजना में वापस आने का अवसर देने का कोई औचित्य नहीं था।”

8. उपरोक्त निर्णय पर आगे कोई आपत्ति नहीं की गई, इस प्रकार, यह अंतिम हो गया है। उपरोक्त परिस्थितियों में, समान राहत की मांग करने वाली वर्तमान रिट याचिकाओं को उसी मुद्दे पर दूसरी रिट याचिकाओं के रूप में घोषित किया जाना चाहिए था। हालाँकि, याचिकाकर्ताओं ने गलती से घोषित किया है कि वर्तमान रिट याचिकाएँ मांगी गई राहत पर उनकी पहली रिट याचिकाएँ हैं। इसलिए, न्यायालय का विचार है कि वर्तमान रिट याचिकाओं में की गई घोषणा अभिलेख के विपरीत है।

9. श्री आर.के. ओझा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री शिवेंदु ओझा, अधिवक्ता ने की; श्री जी.के. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री संकल्प नारायण, अधिवक्ता ने की; श्री प्रदीप चंद्र, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता सुश्री आशा परिहार, अधिवक्ता ने की और श्री मनोज कुमार सिंह, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने, दृढ़ता से तर्क प्रस्तुत किया है कि बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के कर्मचारियों

के संबंध में इसी तरह के मामले का न्यायनिर्णयन किया गया था और विधि को पहले एकल पीठ द्वारा और उसके बाद दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा और उसके बाद **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण और अन्य, 2022(7) एससीआर 957** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा साफ किया गया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का दृढ़ता से उल्लेख करते हुए तर्क दिया है कि याचिकाकर्ताओं का वाद उसमें याचिकाकर्ताओं के एक बैच, यानी एनसी बखशी बैच के वाद के समान है :

“15. दिनांक 01.05.1987 की अधिसूचना के अनुसार दो स्थितियों पर विचार किया गया था। पहली, वह मान्य प्रावधान जिसके अनुसार संबंधित कर्मचारी को सामान्य भविष्य निधि (जीपीएफ) में 'शामिल' माना गया था। दूसरी स्थिति वह थी जहाँ कट-ऑफ तिथि से पहले सीपीएफ के अंतर्गत बने रहने का सचेत विकल्प चुना गया था। आर.एन. विरमानी वाद के विद्वान एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने उचित ही अनुमति दी थी, क्योंकि कट-ऑफ तिथि तक कोई सचेत विकल्प नहीं चुना गया था। परिणामस्वरूप, संबंधित कर्मचारियों को जीपीएफ में 'शामिल' माना जाना चाहिए। तार्किक रूप से, यह बात मायने नहीं रखती कि संबंधित कर्मचारी ने खुद को सीपीएफ के अंतर्गत मानते हुए अंशदान करना जारी रखा या नहीं, भले ही अंशदान संबंधित प्राधिकारियों द्वारा किया गया हो। इसलिए कर्मचारियों के पक्ष में लाभ प्रदान करना उचित ही था और संपूर्ण अंशदान वापस करने का निर्देश दिया गया था। विश्वविद्यालय ने उस निर्णय के विरुद्ध अपील न करने का निर्णय लिया है और इस प्रकार मामला अंतिम रूप ले चुका है।”

सैद्धांतिक रूप से, इसी सिद्धांत का विस्तार यह होगा कि यदि कट-ऑफ तिथि से पहले कोई विकल्प नहीं चुना गया था, लेकिन कट-ऑफ तिथि बढ़ाए जाने के बाद विकल्प चुना गया था; और यदि कट-ऑफ तिथि के बाद किसी भी परिवर्तन की अनुमति नहीं दी जा सकती थी, तो एनसी बखशी वाद में विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णय भी बिल्कुल सही थे। परिणामस्वरूप, इस तथ्य के बावजूद कि संबंधित कर्मचारियों ने सीपीएफ के अंतर्गत बने रहने का विकल्प चुना था, ऐसे विकल्प का प्रयोग विधि की दृष्टि में अमान्य होगा। वास्तव में, एस.एल वर्मा वाद में निर्णय का यही अनुपात है। इस प्रकार, इन दोनों वादों का निर्णय विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ द्वारा सही ढंग से किया गया था। इसलिए, हम एन.सी. बखशी वाद में अपील को खारिज करते हैं।”

10. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने आगे दलील दी कि जैसे ही दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने दिल्ली विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के वाद में निर्णय सुनाया, याचिकाकर्ताओं ने संबंधित प्राधिकारियों से अनुरोध किया कि उन्हें भी इसी प्रकार का लाभ प्रदान किया जाए क्योंकि उन्होंने 30.09.1987 के बाद विकल्प चुने हैं, अर्थात् भारत सरकार द्वारा जारी 01.05.1987 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा निर्धारित विकल्प चुनने की अंतिम तिथि के बाद। ऐसे में सीपीएफ योजना को जारी रखने का उनका विकल्प अमान्य माना जाएगा और परिणामस्वरूप उन्हें जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में स्थानांतरित माना जाना चाहिए। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ताओं ने दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय और **दिल्ली**

विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के बाद भी अपना अनुरोध दोहराया है, लेकिन किसी न किसी कारण से उनके अभ्यावेदन लंबित रहे।

11. अभिलेख के अनुसार, उपरोक्त परिस्थितियों में, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कुछ समान स्थिति वाले कर्मचारियों ने रिट-ए संख्या 19158/2022 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसका निस्तारण दिनांक 29.11.2022 के आदेश द्वारा किया गया और संदर्भ के लिए उक्त आदेश को आगे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

"श्री आर.के. ओझा विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री शिवेंद्र ओझा ने की, संघ के विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद सिंह, विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता श्री हेमेंद्र प्रताप सिंह और प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री रिजवान अली अख्तर को सुना।

याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को सामान्य भविष्य निधि योजना के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं को सामान्य भविष्य निधि और पेंशन जारी करने का निर्देश देने की मांग करते हैं। इस संबंध में दिल्ली उच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर भरोसा किया गया है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय के 10.5.2022 के आदेश द्वारा पुष्टि की गई है।

गुण-दोष में प्रवेश किए बिना, जहाँ तक याचिकाकर्ताओं द्वारा किया गया दावा प्रथम दृष्टया तर्कसंगत है और वह अभी भी लंबित है तथा विश्वविद्यालय ने इसे 29.9.2022 को प्रत्यर्थी संख्या 1 को भेज दिया है, जिन्हें इस मामले में अंतिम निर्णय लेना है, याचिका को लंबित रखने या उस निर्णय के लंबित रहने तक प्रति-शपथपत्र मँगवाने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। तदनुसार, रिट याचिका का निस्तारण इस निर्देश के साथ किया जाता है कि याचिकाकर्ता इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थी संख्या 1 के समक्ष प्रस्तुत करें, तथा प्रत्यर्थी सही तथ्यों का सत्यापन करेगा और उचित तर्कपूर्ण आदेश, यथाशीघ्र, अधिमानतः याचिकाकर्ताओं द्वारा दर्शाई गई अनुपालन तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर, पारित करेगा। याचिकाकर्ताओं को देय पाई गई कोई भी राशि तीन महीने की अतिरिक्त अवधि के भीतर चुकाई जा सकती है, अन्यथा देय राशि की तिथि से लेकर उसके वास्तविक भुगतान की तिथि तक 8% की दर से ब्याज लगाया जा सकता है।

12. उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, भारत सरकार द्वारा मामले पर विचार किया गया और सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को संबोधित दिनांक 03.04.2023 के पत्र के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं की जीपीएफ-सह-पेंशन योजना का लाभ देने की प्रार्थना को यह मानते हुए खारिज कर दिया गया कि दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय केवल दिल्ली विश्वविद्यालय के कर्मचारियों पर लागू था और अन्य केंद्रीय विश्वविद्यालयों के कर्मचारियों पर नहीं और शिक्षा मंत्रालय, उच्च शिक्षा विभाग, भारत सरकार ने दिनांक 26.04.2023 को एक आदेश जारी किया है, जिसमें इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया है और साथ ही यह भी कहा गया है कि दिनांक 01.05.1987 का कार्यालय ज्ञापन दिल्ली विश्वविद्यालय पर लागू था क्योंकि इसे दिनांक 25.05.1987 की एक अलग अधिसूचना द्वारा

अपनाया गया था, लेकिन बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने इसे उक्त शर्तों में नहीं अपनाया है। इसकी व्याख्या यह होगी कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के उप-कुलसचिव (प्रशासन) द्वारा अपने कर्मचारियों से विकल्प आमंत्रित करने के लिए जारी किया गया दिनांक 09.04.1988 का पत्र, सामान्य भविष्य निधि-सह-पेंशन योजना को विधिक रूप से अपनाना नहीं माना जाएगा। वर्तमान रिट याचिकाओं में दिनांक 03.04.2023 और 26.04.2023 के उपरोक्त दो आदेशों को आक्षेपित किया गया है।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने तर्क प्रस्तुत किया है कि दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एक रैम निर्णय न कि एक व्यक्तिगत निर्णय था और इसके लिए उन्होंने नीरजा टीकू बनाम स्कूल ऑफ प्लानिंग एंड आर्किटेक्चर और अन्य, 2024: डीएचसी: 2891 के वाद में दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल पीठ द्वारा पारित निर्णय का हवाला दिया है कि दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय स्कूल ऑफ प्लानिंग एंड आर्किटेक्चर पर लागू होगा और इसलिए, समान समानता पर यह अन्य केंद्रीय विश्वविद्यालयों के समान स्थिति वाले कर्मचारियों पर भी लागू होगा और उन्होंने उक्त निर्णय के प्रस्तर 23 और 24 का हवाला दिया, जो इसके बाद पुनः प्रस्तुत हैं:

"23. सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के समय अध्ययन से यह स्पष्ट है कि जिन कर्मचारियों ने अंतिम तिथि अर्थात् 30.09.1987 से पहले विकल्प का प्रयोग नहीं किया था और उस तिथि के बाद विकल्प चुना था, उनके लिए ऐसा विकल्प विधिन अमान्य होगा। इसका अर्थ यह है कि यदि अंतिम तिथि से पहले विकल्प का प्रयोग नहीं किया गया था या अंतिम तिथि के बाद विकल्प चुना गया था, तो दोनों ही मामलों में कर्मचारियों पर सामान्य भविष्य निधि सह पेंशन योजना में शामिल होने का मान्य प्रावधान लागू होगा। मानित प्रावधान के प्रभाव के संबंध में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए, यह न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बॉम्बे राज्य बनाम पांडुरंग विनायक एवं अन्य, जो एआईआर 1953 एससी 244 में प्रतिवेदित किया गया है, में दिए गए निर्णय से बल प्राप्त करता है। संबंधित प्रस्तर नीचे उद्धृत हैं:

"12. ईस्ट एंड इवेलिंग्स कंपनी लिमिटेड बनाम फिन्सबरी बरो काउंसिल [ईस्ट एंड इवेलिंग्स कंपनी लिमिटेड बनाम फिन्सबरी बरो काउंसिल, 1952 एससी 109 (एचएल)] में, लॉर्ड एस्क्विथ ने नगर एवं ग्राम नियोजन अधिनियम, 1947 के प्रावधानों पर विचार करते हुए, इसी सिद्धांत का संदर्भ दिया और निम्नलिखित टिप्पणी की: (एससी पीपी 132-33) "यदि आपको किसी काल्पनिक स्थिति को वास्तविक मानने का आदेश दिया जाता है, तो आपको निश्चित रूप से, जब तक ऐसा करने से प्रतिबंधित न किया जाए, उन परिणामों और घटनाओं की भी वास्तविक रूप में कल्पना करनी चाहिए, जो, यदि वह कथित स्थिति वास्तव में अस्तित्व में थी, तो अनिवार्य रूप से उससे उत्पन्न हुई होंगी या उसके साथ हुई होंगी। ... विधि कहता है कि आपको एक निश्चित स्थिति की कल्पना करनी चाहिए; इसमें यह नहीं कहा गया है कि ऐसा करने के बाद, आपको उस स्थिति के अपरिहार्य परिणामों के बारे में अपनी कल्पना को विचलित करने का अवसर देना चाहिए।

24. वर्तमान वाद में, यदि उपरोक्त सिद्धांत को लागू किया जाए, तो यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने 07.12.1987 को सीपीएफ योजना जारी रखने का विकल्प चुना था, जो कि अंतिम तिथि 30.09.1987 के बाद का था। शशि किरण (पूर्वोक्त) वाद में सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, ऐसे विकल्प का प्रयोग विधि सम्मत नहीं होगा, ऐसी स्थिति में, दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय जापन के मान्य प्रावधान को उसका तार्किक निष्कर्ष दिया जाना चाहिए। इसमें, याचिकाकर्ता को जीपीएफ सह पेंशन योजना में शामिल माना जाएगा।”

14. इस स्तर पर, यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि योजना एवं वास्तुकला विद्यालय ने दिनांक 17.08.1987 को एक परिपत्र जारी किया था, जिसमें अपने कर्मचारियों द्वारा कट ऑफ तिथि अर्थात् 30.09.1987 को या उससे पहले विकल्प चुनने की प्रक्रिया शुरू की गई थी, इसलिए, उन्होंने कट ऑफ तिथि से पहले दिनांक 01.05.1987 का कार्यालय जापन अपनाया है और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का मामला तथ्यात्मक रूप से भिन्न है क्योंकि इसने दिनांक 09.04.1988 के पत्र के माध्यम से योजना को अपनाया है और विकल्प चुनने की कट ऑफ तिथि 09.07.1988 निर्धारित की गई थी, अर्थात्, ऊपर उल्लिखित दो तिथियों अर्थात् 01.05.1987 और 30.09.1987 के काफी बाद।

15. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने यह भी तर्क दिया कि मुकदमेबाजी के पहले दौर में पारित निर्णय आड़े नहीं आएगा क्योंकि बाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मुद्दे पर विधि घोषित और स्पष्ट किया गया था और इसका लाभ याचिकाकर्ताओं को इस तथ्यात्मक पहलू पर अभी भी दिया जा सकता है कि सीपीएफ योजना को जारी रखने के उनके विकल्प अमान्य थे क्योंकि यह भारत सरकार द्वारा जारी दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय जापन में उल्लिखित अंतिम तिथि, अर्थात् 30.09.1987 के बाद दी गई थी। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित तिथि का कोई विधिक परिणाम नहीं होगा।

16. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.के. उपाध्याय, जिनकी सहायता अधिवक्ता श्री ऋत्विक् उपाध्याय और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह, जिनकी सहायता प्रत्यर्थी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के अधिवक्ता श्री हेम प्रताप सिंह ने की, ने प्रस्तुत तर्क किया है कि जीपीएफ-सह-पेंशन योजना को अपनाया गया था और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के उप रजिस्ट्रार (प्रशासन) द्वारा जारी दिनांक 09.04.1988 का आदेश पर्याप्त था कि योजना को अपनाया गया और इसके लाभ भी बढ़ाए गए। किसी अन्य अधिसूचना को जारी करने या संबंधित अधिनियम, विधि या अध्यादेश में कोई संशोधन करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

17. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि जहां तक **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के कार्यान्वयन का संबंध है, यह याचिकाकर्ताओं के वाद में लागू नहीं होगा क्योंकि न केवल उनकी पिछली समान प्रार्थना को खारिज कर दिया गया था। यह भी तर्क दिया गया कि वर्तमान प्रकरणों के तथ्यात्मक पहलू अलग हैं, जो कि **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा नहीं था, क्योंकि दिल्ली विश्वविद्यालय ने दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय जापन को कट ऑफ तिथि अर्थात् 30.09.1987 से पहले ही पूरी तरह से अपना

लिया था और इसलिए, उक्त तिथि से पहले विकल्प प्रस्तुत करना आवश्यक था, जबकि याचिकाकर्ताओं के वाद में, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने कट ऑफ तिथि समाप्त होने के काफी बाद अर्थात् 09.04.1988 को योजना को अपनाया था और विकल्प के लिए अंतिम तिथि 09.07.1988 निर्धारित की गई थी।

18. श्री शशि प्रकाश श्री, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/ भारत के अपर सॉलिसिटर जनरल, जिनकी सहायता अधिवक्ता श्री मनोज कुमार सिंह और श्री पूर्णन्दु कुमार सिंह ने की, ने आक्षेपित आदेशों का समर्थन किया और कहा कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने जीपीएफ-सह-पेंशन योजना को कभी भी सही अर्थों में नहीं अपनाया है, क्योंकि उसने अपने विधि या अध्यादेश में संशोधन नहीं किया है, जैसा भी मामला हो, जबकि दिल्ली विश्वविद्यालय ने एक संशोधन द्वारा और भारत सरकार द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन में निर्धारित कट ऑफ तिथि तय करके योजना को अपनाया है, इसलिए, **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर अलग है। उन्होंने यह भी कहा कि उपरोक्त परिस्थितियों में, **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय जहां तक बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का संबंध है, लागू नहीं होता है और इस स्तर पर यदि याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना उनकी सेवानिवृत्ति के कई वर्षों बाद स्वीकार की जाती है और उनके द्वारा ब्याज सहित सीपीएफ राशि लौटाने के बाद भी उनकी पेंशन तय करने की मांग की जाती है, तब भी यह केंद्रीय खजाने पर एक बड़ा वित्तीय बोझ होगा और यह अन्य विश्वविद्यालयों और संस्थानों के लिए भी एक मिसाल बन जाएगा, जिससे बचना आवश्यक है।

19. प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने अपने तर्क दोहराए और आगे कहा कि भारत सरकार ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा दिनांक 09.04.1988 को जारी आदेश की प्रकृति पर कभी आपत्ति नहीं की है और चूंकि इस पर पहले ही कार्रवाई की जा चुकी है और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कई कर्मचारी पहले ही जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में शामिल हो चुके हैं, इसलिए इस स्तर पर इस पर कोई भी विवाद भारत सरकार द्वारा की गई एक चाल होगी और यह इस मुद्दे पर जारी कार्यालय ज्ञापन के उद्देश्य के भी विरुद्ध होगा।

20. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

21. वाद का तथ्यात्मक पहलू जो निर्विवाद प्रतीत होता है वह यह है कि भारत संघ ने दिनांक 01.05.1987 को कार्यालय ज्ञापन जारी किया था कि सीपीएफ लाभार्थी जो 01.01.1986 को सेवा में थे और कार्यालय ज्ञापन जारी करने की तिथि अर्थात् 01.05.1987 को भी सेवा में थे, उन्हें जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में शामिल माना जाएगा, सिवाय इसके कि उन्होंने 30.09.1987 तक सीपीएफ योजना में बने रहने के अपने विकल्प का प्रयोग किया हो और उक्त कार्यालय ज्ञापन की व्याख्या, जैसा कि **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा वर्तमान याचिकाकर्ताओं के वाद में कहा गया है, यह है कि कट ऑफ

तिथि अर्थात् 30.09.1987 के बाद सीपीएफ योजना में बने रहने के लिए दिया गया कोई भी विकल्प अमान्य होगा और याचिकाकर्ताओं के अनुसार, चूंकि उन्होंने 30.09.1987 को या उससे पहले अपना विकल्प नहीं दिया है, इसलिए, माना जाता है कि वे जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में शामिल हो गए हैं, जबकि उन्होंने उक्त तिथि के बाद विकल्प दिया था। न्यायालय को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा योजना को अपनाने की तिथि, अर्थात् 09.04.1988 और कट-ऑफ तिथि 09.07.1988 निर्धारित किए जाने के प्रभाव पर विचार करना होगा।

22. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने इस व्याख्या पर अपने तर्कों पर बल दिया कि याचिकाकर्ताओं ने कट ऑफ तिथि, अर्थात् 30.09.1987 के बाद भी सीपीएफ योजना में बने रहने का विकल्प दिया है, इसलिए उनके विकल्प अमान्य हैं और उन्हें पहले ही जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में शामिल माना जा चुका है और वे तैयार हैं कि यदि उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली जाती है, तो वे बहुत ही कम समय के भीतर उचित ब्याज सहित सीपीएफ में संघ का अंशदान वापस कर देंगे। विकल्प देने के लिए बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित तिथि 30.09.1987 के बाद की थी, इसलिए इसका कोई विधिक परिणाम नहीं होगा।

23. न्यायालय का विचार है कि जहाँ तक उपर्युक्त विधि की स्थिति का संबंध है, कोई विवाद नहीं है और जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है। इसलिए, जहाँ तक 30.09.1987 के बाद दिए गए विकल्प का संबंध है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है, विधि का पालन किया जाना चाहिए। हालाँकि, कुछ तथ्य वर्तमान वादों को अभी भी अलग करते हैं।

24. यह विवाद का विषय नहीं है कि वर्तमान वाद में, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने दिनांक 09.04.1988 की अधिसूचना द्वारा जीपीएफ-सह-पेंशन योजना को अपनाया, अर्थात् कट ऑफ तिथि, अर्थात् 30.09.1988 के काफी बाद और उसने सीपीएफ योजना में जारी रखने के विकल्प का प्रयोग करने के लिए कट ऑफ तिथि 09.07.1988 निर्धारित की है। इसलिए, यदि **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को वर्तमान तथ्यों में लागू किया जाता है, तो 09.07.1988 के बाद का कोई भी विकल्प अमान्य होगा। याचिकाकर्ताओं के वाद के अनुसार, उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा योजना को अपनाने की तिथि 09.04.1988 के बाद और निर्धारित कट ऑफ तिथि, अर्थात् 09.07.1988 से पहले सीपीएफ योजना में बने रहने का विकल्प चुना है।

25. यदि न्यायालय का यह मानना है कि इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना कि किसी विश्वविद्यालय या संस्थान ने दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय ज्ञापन को कट ऑफ तिथि, अर्थात् 30.09.1987 के बाद भी अपनाया है या नहीं, कट ऑफ तिथि को केवल 30.09.1987 ही माना जाएगा और उसके बाद निर्धारित कोई तिथि नहीं मानी जाएगी, तो यह दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय ज्ञापन के मूल उद्देश्य को ही विफल कर देगा, अर्थात् सीपीएफ योजना में बने रहने का विकल्प देना निरर्थक हो जाएगा। यह मुद्दा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष नहीं था क्योंकि निश्चित रूप से दिल्ली विश्वविद्यालय ने दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय ज्ञापन के कुछ ही दिनों

के भीतर उसी कट ऑफ तिथि, अर्थात् 30.09.1987 को निर्धारित करते हुए अधिसूचना जारी कर दी थी। जहां तक स्कूल ऑफ प्लानिंग एंड आर्किटेक्चर का संबंध है, **नीरजा टीकू (पूर्वोक्त)** में दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल पीठ द्वारा पारित एक बाद के निर्णय में भी तथ्यात्मक स्थिति यही थी।

26. जहाँ तक इस तर्क का संबंध है कि **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय 'इन रेम' या 'इन पर्सोनाम' है, न्यायालय का मानना है कि यह निर्णय 'इन रेम' था, न कि 'इन पर्सोनाम', जैसा कि दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने भी **नीरजा टीकू (पूर्वोक्त)** में कहा था, हालाँकि, प्रत्येक वाद के तथ्य अलग-अलग हो सकते हैं।

27. अब न्यायालय भारत संघ की इस आपति पर विचार करेगा कि भारत सरकार द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा उचित प्रक्रिया के अनुसार नहीं अपनाया गया। इस संबंध में, न्यायालय का मानना है कि आपति का कोई विधिक आधार नहीं है क्योंकि ऐसी आपति मुकदमेबाजी के पहले दौर में कभी नहीं उठाई गई थी और इस पर पहले ही कार्रवाई की जा चुकी है और इसका लाभ भी दिया जा चुका है। इसलिए, न्यायालय का यह भी मत है कि तथ्यों या विधि के आधार पर भेद किए बिना, भारत संघ का यह रुख कि **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अन्य विश्वविद्यालयों पर लागू नहीं होगा, एक सही विधिक दृष्टिकोण नहीं होगा।

28. वित्तीय निहितार्थ के संबंध में कोई भी आपति भी अपोषणीय है क्योंकि यह भारत सरकार का कार्यालय ज्ञापन था जिसने यह ध्यान रखा होगा कि दिनांक 01.05.1987 के उक्त कार्यालय ज्ञापन के बाद यह संभव था कि सभी लाभार्थी कर्मचारी जीपीएफ-सह-पेंशन योजना में शामिल हो सकते हैं।

29. न्यायालय ने यह भी ध्यान दिया कि याचिकाकर्ताओं की इसी तरह की प्रार्थना को इस न्यायालय ने दिनांक 12.08.2011 के निर्णय के द्वारा पहले ही खारिज कर दिया था और केवल इस आधार पर कि बाद में दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल पीठ द्वारा विधि की एक अलग व्याख्या की गई थी, जिसकी पुष्टि खण्ड पीठ द्वारा की गई थी और उसके बाद **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी और चूंकि याचिकाकर्ता इन निर्णयों के बाद निर्णयों से संपर्क कर रहे थे, इसलिए यह आधार नहीं बनता कि उक्त निर्णय याचिकाकर्ताओं पर लागू होता है, ताकि पहले का निर्णय आड़े न आए।

30. उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह है कि:

(क) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कर्मचारियों का वाद वास्तव में दिल्ली विश्वविद्यालय के कर्मचारियों से भिन्न है।

(ख) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने भारत सरकार द्वारा दिनांक 09.04.1988 की अधिसूचना द्वारा जारी दिनांक 01.05.1987 के कार्यालय ज्ञापन को अपनाया है, अर्थात् मूल कट-ऑफ तिथि अर्थात् 30.09.1987 के काफी बाद, और विकल्प प्रस्तुत करने के लिए नई कट-ऑफ तिथि अर्थात् 09.07.1988 निर्धारित की है और चूंकि उक्त अधिसूचना को चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को लागू करते समय, उपर्युक्त तिथियों ने इसे विशिष्ट बना दिया है।

(ग) यदि **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि को उपरोक्त तिथियों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान प्रकरणों के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू किया जाता है, तो एकमात्र व्याख्या यह होगी कि 09.07.1988 के बाद दिया गया कोई भी विकल्प मान्य नहीं होगा, हालांकि, अभिलेख के आधार पर, किसी भी याचिकाकर्ता के पास ऐसा कोई मामला नहीं है कि उन्होंने उपरोक्त कट ऑफ तिथि के आधार पर पूर्ववर्ती सीपीएफ योजना में बने रहने का विकल्प चुना है, बल्कि उनका दावा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा 09.04.1988 को योजना को अपनाने के बाद ही जन्म लिया गया था और उन्होंने नई कट ऑफ तिथि, अर्थात् 09.07.1988 से पहले विकल्प दिया था, इसलिए, **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में निर्णय का लाभ वर्तमान याचिकाकर्ताओं पर लागू नहीं होगा। कोई भी अन्य व्याख्या अपनाने की तिथि और उसके बाद की कट ऑफ तिथि को निरर्थक बना देगी।

(घ) याचिकाकर्ताओं या प्रत्यर्थी-बनारस हिंदू विश्वविद्यालय या यहां तक कि भारत संघ का यह वाद नहीं है कि दिनांक 01.05.1987 का कार्यालय ज्ञापन किसी विशेष विश्वविद्यालय द्वारा विशिष्ट रूप से अपनाए बिना सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों पर स्वतः लागू था और इसके अलावा यह मुद्दा **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष नहीं था।

31. उपर्युक्त परिस्थितियों में, इस न्यायालय का विचार है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा मांगी गई राहत प्रदान नहीं की जा सकती। यद्यपि आक्षेपित आदेश, उनमें उल्लिखित आधारों पर विधिक रूप से पोषणीय नहीं हैं, क्योंकि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने योजना को अपनाया है और **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** *इन रेम न कि इन पर्सोनाम* निर्णय है, फिर भी चूंकि न्यायालय का यह मत है कि **दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम श्रीमती शशि किरण (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का लाभ वर्तमान प्रकरणों की दी गई परिस्थितियों में प्रदान नहीं किया जा सकता, क्योंकि तथ्यों के आधार पर और जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, अलग-अलग हैं, इसलिए, वर्तमान याचिकाओं में आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है।

32. तदनुसार सभी रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं।

(2025) 3 ILRA 354

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट,

रिट-ए संख्या 20509/2024

गोविंद प्रसाद निषाद

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्रेयस श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

के.आर. सिंह, अशोक कुमार, सी.एस.सी.

अ. सेवा कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - परमादेश -नियुक्ति - भूमि अधिग्रहण के बदले में किया गया दावा - दिनांक 21.09.1981 का शासनादेश, जिसे बाद में अवैध घोषित कर दिया गया, जिस पर भरोसा किया गया - अनुज्ञेयता - यह माना गया कि गोरखपुर विकास प्राधिकरण में भूमि स्वामियों को रोजगार प्रदान करने हेतु स्वतंत्र नीति बनाने हेतु कोई वैध प्राधिकार निहित नहीं है। दिनांक 21.09.1981 के शासनादेश की शर्तों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है - राज्य प्राधिकारियों को कानून का उल्लंघन करने के लिए बाध्य करने हेतु परमादेश जारी नहीं किया जा सकता है। न्यायिक अनुशासन और विधि का नियम न्यायालय को ऐसा करने से रोकता है। (अनुच्छेद 8 और 9)

रिट याचिका खारिज की जाती है। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. रवींद्र कुमार बनाम जिला मजिस्ट्रेट एवं अन्य; 2005(2) एडब्ल्यूसी 1650

(न्यायमूर्ति माननीय अजय भनोट द्वारा प्रस्तुत)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री श्रेयस श्रीवास्तव और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री त्रिलोकी सिंह की सहायता से विद्वान अधिवक्ता श्री के.आर. सिंह को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता का दावा है कि वह गोरखपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अपनी भूमि के अधिग्रहण के बदले में नियुक्ति का हकदार है। यह मामला तीन दशकों से भी अधिक समय से लंबित है। यह न्यायालय इस विवाद को इस स्तर पर समाप्त करना और गुण-दोष के आधार पर इस मुद्दे का निर्णय करना उचित समझता है।

3. याचिकाकर्ता का दावा इस आधार पर किया गया है कि 31.07.1989 को जिला मजिस्ट्रेट और गोरखपुर विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष द्वारा ग्रीन कार्ड जारी किया गया था, जिसमें दर्ज किया गया था कि श्रीमती अतवारी देवी और उनके परिवार के सदस्य विकास प्राधिकरण में रोजगार के हकदार हैं।

4. गोरखपुर प्रत्यर्थी गोरखपुर विकास प्राधिकरण ने प्रति-शपथपत्र में दावा किया है कि याचिकाकर्ता ने 21.09.1981 के शासनादेश के आधार पर गोरखपुर विकास प्राधिकरण में रोजगार का दावा किया है। उपरोक्त शासनादेश के माध्यम से, राज्य सरकार ने उन भूमि मालिकों को रोजगार देने का फैसला किया था जिनकी भूमि वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए अधिग्रहित की गई थी। शपथपत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भूमि मालिकों को उनकी भूमि के अधिग्रहण के बदले में रोजगार देने के लिए शासनादेश के अलावा विकास प्राधिकरण की कोई स्वतंत्र नीति या अलग योजना नहीं थी। प्रति-शपथपत्र में उक्त कथनों का याचिकाकर्ता द्वारा विशेष रूप से खंडन नहीं किया गया है। तदनुसार, प्रति-शपथपत्र में किए गए खंडन को खारिज कर दिया जाता है।

5. उक्त शासनादेश दिनांक 21.09.1981 को इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **रवींद्र कुमार बनाम जिला मजिस्ट्रेट एवं अन्य, 2005(2) एडब्ल्यूसी 1650** में इस प्रकार अवैध घोषित किया गया था:

"20. यह एक सामान्य नियम है कि सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्तियाँ खुले विज्ञापन के माध्यम से आवेदन आमंत्रित करके और पूर्णतः योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए ताकि प्रत्येक नागरिक को नियुक्ति के मामले में समान अवसर प्राप्त हो। किसी भी सार्वजनिक रोजगार या नियुक्ति के मामले में इस नियम का पालन किया जाना चाहिए। न तो राज्य सरकार, न ही उसकी संस्थाएँ और न ही कोई सार्वजनिक प्राधिकरण नियुक्ति के इस सामान्य नियम से विचलित हो सकता है और यदि कोई अन्य प्रक्रिया या तरीका अपनाया जाता है, तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन होगा, जो राज्य के अधीन किसी भी पद या किसी अन्य रोजगार में नियुक्ति के मामले में सभी नागरिकों को समान अवसर सुनिश्चित और गारंटी देता है। हालाँकि, सार्वजनिक रोजगार या नियुक्ति के सामान्य नियम के कुछ अपवाद भी हैं जिन्हें आमतौर पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के रूप में जाना जाता है, जो पूरी तरह से मानवीय आधार पर और न्याय के हित में विकसित किया गया है। यह यह नियम कुछ आकस्मिकताओं को पूरा करने और सेवा में मृत्यु को प्राप्त हुए कर्मचारी के आश्रित को नियुक्ति देने के लिए बनाया गया था ताकि उसके परिवार को अभावग्रस्त होने से बचाया जा सके।

21. भूमि अधिग्रहण अधिनियम एक स्व-निहित संहिता है और यह अधिग्रहण के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के साथ-साथ मूल्यांकन के आकलन और उस व्यक्ति के बाजार मूल्य के अनुसार उचित एवं न्यायसंगत मुआवजे के भुगतान का प्रावधान करता है जिसकी भूमि अधिग्रहित की जाती है। इसके अतिरिक्त, धारा 23(1-ए) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि से 12% की दर से भूमि हित का बाजार मूल्य भी दिया जाता है। इसके अलावा, अधिनियम की धारा 23(2) के तहत भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण के कारण व्यक्ति को हुई परेशानी और असुविधा या कठिनाइयों के लिए ऐसे बाजार मूल्य पर 30% की राशि भी क्षतिपूर्ति के रूप में दी जाती है। इसलिए, जिस व्यक्ति की भूमि अधिग्रहित की जाती है, उसे न केवल भूमि के बाजार मूल्य के अनुसार पर्याप्त मुआवजा मिलता है, बल्कि मुआवजे की राशि पर (क) अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना की तिथि से 12% ब्याज भी मिलता है, साथ ही क्षतिपूर्ति की राशि भी मिलती है, जो मुआवजे की राशि का 30% है। न तो भूमि अधिग्रहण अधिनियम और न ही विनियमों में यह प्रावधान है कि भूमि अधिग्रहण की स्थिति में भूमिधारक के परिवार के किसी एक सदस्य को मुआवजे की राशि के अतिरिक्त रोजगार दिया जाएगा। इसलिए, किसी वैधानिक प्रावधान या किसी वादे के अभाव में, याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी अधिकार के रूप में नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता है और न ही प्रत्यर्थी ऐसी नियुक्ति कर सकता है।

22. भूमि अधिग्रहण अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके अंतर्गत 28.12.1974 का परिपत्र जारी किया जा सके। भूमि अधिग्रहण के लिए जो भी मुआवजा दिया जाना है, वह भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अंतर्गत ही प्रदान किया जाता है, जो एक स्व-निहित संहिता है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम में उल्लिखित न किए गए किसी अन्य लाभ का प्रावधान करने वाला कोई भी शासनादेश भूमि अधिग्रहण अधिनियम में निहित संसद की मंशा के अनुरूप नहीं होगा। इसलिए ऐसा कोई भी शासनादेश भूमि अधिग्रहण अधिनियम का उल्लंघन होगा और इसलिए अमान्य होगा। ऐसा शासनादेश संविधान के अनुच्छेद 16 का भी उल्लंघन करेगा, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है।

23. इसके अलावा, हमारी राय में, उपरोक्त शासनादेश पूरी तरह से अव्यवहारिक है। अभिलेखों से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के हिस्से में केवल 12 बिस्वा और 10 बिसवांसी ज़मीन थी, जिसे अधिग्रहित किया गया था। इस प्रकार, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता की केवल लगभग आधा बीघा ज़मीन ही अधिग्रहित की गई। यदि 28.12.1974 के परिपत्र की शाब्दिक व्याख्या की जाए, तो इसका अर्थ यह होगा कि यदि किसी व्यक्ति की एक वर्ग गज ज़मीन भी अधिग्रहित की जाती है, तो उसके परिवार के किसी एक सदस्य को रोजगार देना होगा। यह पूरी तरह से अनुचित और मनमाना होगा।

24. इस देश में उपलब्ध नौकरियों की संख्या बहुत सीमित है और संविधान के अनुच्छेद 16 का उल्लंघन करते हुए इस तरह से नौकरियां नहीं दी जा सकती हैं।

25. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हम अपने द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार देते हैं:

1. जिस व्यक्ति की भूमि अधिग्रहित की गई है (कानून के तहत दिए गए मुआवजे के अतिरिक्त) उसके परिवार के एक सदस्य को रोजगार प्रदान करने वाले सरकारी आदेश/परिपत्र अमान्य हैं।
2. जिस अधिग्रहणकर्ता निकाय के लाभ के लिए भूमि अधिग्रहित की गई है, वह ऐसे सरकारी आदेश/परिपत्र से बाध्य नहीं है।
3. अधिग्रहणकर्ता निकाय को उक्त आदेश/सरकारी परिपत्र के अनुसार दावे पर विचार करने का निर्देश देते हुए कोई रिट जारी नहीं की जा सकती।
6. दलीलों के आदान-प्रदान के बाद इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित तथ्य स्थापित हुए हैं।
7. राज्य सरकार ने दिनांक 21.09.1981 के आदेश द्वारा यह प्रावधान किया था कि जिस परिवार की भूमि अधिग्रहित की गई है, उसके सदस्य संबंधित विभाग में रोजगार के हकदार होंगे। याचिकाकर्ता की भूमि गोरखपुर विकास प्राधिकरण द्वारा अधिग्रहित की गई थी। गोरखपुर विकास प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को ग्रीन कार्ड जारी किया और उसे स्पष्ट रूप से 21.09.1981 के शासनादेश के अनुसरण में ऐसी रोजगार का आश्वासन दिया। जिन भूमि स्वामियों की भूमि अधिग्रहित की गई है, उनके लिए गोरखपुर विकास प्राधिकरण द्वारा कोई अलग या स्वतंत्र नीति लागू नहीं की जा रही है। ग्रीन कार्ड याचिकाकर्ता को दिनांक 21.09.1981 के शासनादेश से परे अधिकार नहीं दे सकता। 21.09.1981 के शासनादेश को इस न्यायालय की विद्वान पूर्ण पीठ ने **रवींद्र कुमार (सुप्रा)** में रद्द कर दिया है।
8. न्यायालय को यह दर्शाया गया है कि गोरखपुर विकास प्राधिकरण में कोई वैध अधिकार निहित नहीं है कि वह भूस्वामियों को 21.09.1981 के सरकारी आदेश की शर्तों से परे रोजगार प्रदान करने के लिए एक स्वतंत्र नीति बनाए।
9. इस परिप्रेक्ष्य में, याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2 गोरखपुर विकास प्राधिकरण को उक्त ग्रीन कार्ड (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2) के अनुसरण में याचिकाकर्ता को रोजगार प्रदान करने हेतु परमादेश देने की प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि ऐसा करना **रवींद्र कुमार (सुप्रा)** मामले में पूर्ण पीठ के निर्णय के विपरीत होगा। राज्य के अधिकारियों को कानून के उल्लंघन में कार्य करने के लिए बाध्य करने हेतु परमादेश जारी नहीं किया जा सकता। न्यायिक अनुशासन और विधि का नियम न्यायालय को ऐसा करने से रोकता है।
10. पूर्वोक्त चर्चा के परिप्रेक्ष्य में, रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है और खारिज की जाती है।

धर्म पाल सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थागण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

डॉ. कमलेश कुमार, राकेश कुमार

प्रत्यर्थागण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 227, 20(2)-दोहरे खतरे का सिद्धांत-प्रत्यर्था संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दोहरे खतरे की दलील लागू नहीं होती, क्योंकि प्रत्यर्था को पहले किसी भी मामले में न तो दोषी ठहराया गया था और न ही बरी किया गया था, जिसमें तथ्यों का एक ही सेट था--- विद्वान अवर न्यायालय ने धारा 279, 304ए भा.द.सं. के अंतर्गत संज्ञान लेने के बजाय धारा 302 भा.द.सं. के बजाय धारा 304, 323, 325 भा.द.सं. के अंतर्गत संज्ञान लिया है जो विधि के अनुसार है और दोहरे खतरे के सिद्धांत द्वारा वर्जित नहीं है--- विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.03.2024 का आक्षेपित आदेश एतद्वारा अपास्त किया जाता है क्योंकि यह अनुच्छेद 20(2) द्वारा वर्जित नहीं है- (प्रस्तर 23, 25-27) --याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-15)

उद्धृत वादों की सूची:

टीपी गोपालकृष्णन बनाम केरल राज्य (2022) 14 एससीसी 323

(माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता डॉ. कमलेश कुमार, प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री शशि भूषण राय, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए.-I श्री रतन सिंह को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 65/2023 (संजीव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, अमरोहा द्वारा पारित दिनांक 13.03.2024 के आक्षेपित आदेश और मुकदमा अपराध संख्या 453/2017 (राज्य बनाम संजीव) अंतर्गत धारा 304, 323, 325 भा.द.सं., थाना-अमरोहा देहात, जिला-अमरोहा से उत्पन्न वाद संख्या 2319/2019 में विद्वान अपर सिविल जज (एसडी)/अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम, अमरोहा द्वारा पारित दिनांक 05.01.2023 के आदेश को अपास्त करने की प्रार्थना की है।

3. संक्षेप में कहा जाए तो याचिकाकर्ता धर्मपाल सिंह, जो कि प्रथम सूचनाकर्ता है, ने प्रत्यर्थी संख्या 2 संजीव के विरुद्ध 15.12.2017 को मुकदमा अपराध संख्या 453/2017 धारा 279, 304ए भा.द.सं., थाना-अमरोहा देहात जिला-ज्योतिभाफुले नगर के तहत एक एफआईआर दर्ज कराई थी जिसमें अभिकथन किया था कि 29.11.2017 को प्रत्यर्थी संख्या 2 संजीव उसके घर आया और लगभग 6:00 बजे शाम को उसके बेटे कपिल को अपनी मोटरसाइकिल पर एक पार्टी में शामिल होने के लिए अपने साथ ले गया। उसी रात 9:30 बजे प्रत्यर्थी संख्या 2 ने याचिकाकर्ता को फोन किया और बताया कि कपिल को चोटें आई हैं और उसे डॉक्टर गर्ग अस्पताल में भर्ती कराया गया है। याचिकाकर्ता अपनी पत्नी राजवती और अपने बेटे संजीव कुमार के साथ अस्पताल गए और अपने बेटे को खून से लथपथ पाया। प्रत्यर्थी संख्या 2 संजीव अस्पताल में मौजूद था।

4. इसके बाद, कपिल को ग्लोकल अस्पताल और फिर कोठीवाल अस्पताल और उसके बाद मुरादाबाद के अतुल जैन अस्पताल रेफर कर दिया गया, जहाँ कपिल ने अंतिम सांस ली।

5. मृतक का पंचायतनामा 15.12.2017 को किया गया और शव परीक्षण 16.12.2017 को किया गया। एफआईआर 15.12.2017 को मुकदमा अपराध संख्या 453/2017 अंतर्गत धारा 279, 304ए भा.द.सं., पीएस-अमरोहा देहात जिला-ज्योतिभाफुले नगर में दर्ज की गई थी।

6. जब इसकी विवेचना चल रही थी, याचिकाकर्ता ने उसी घटना का अभिकथन करते हुए प्रत्यर्थी संख्या 2 संजीव और दो अज्ञात के विरुद्ध धारा 302 भा.द.सं. के अंतर्गत नई एफआईआर दर्ज करने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अमरोहा के न्यायालय में धारा 156(3) द.प्र.सं. के अंतर्गत दिनांक 04.01.2018 को एक प्रार्थना पत्र दिया। उक्त प्रार्थना पत्र को दिनांक 18.01.2018 को स्वीकृत कर प्रभारी अधिकारी, थाना अमरोहा देहात को वाद दर्ज करने का निर्देश दिया गया। इस प्रकार, प्रत्यर्थी क्रमांक 2 संजीव और दो अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध दिनांक 08.02.2018 को मुकदमा अपराध संख्या 27/2018, धारा 302 भारतीय दंड संहिता, थाना अमरोहा देहात, जिला अमरोहा के अंतर्गत एक और एफ.आई.आर. दर्ज की गई।

7. चूँकि दोनों एफ.आई.आर. में अभिकथन एक ही घटना से संबंधित थे, इसलिए दोनों मुकदमा अपराध संख्याओं अर्थात् मुकदमा अपराध संख्या 453/2017 और 27/2018 की विवेचना को सीडी संख्या 13 दिनांक 26.02.2018 के माध्यम से एक साथ जोड़ दिया गया।

8. हालाँकि, विवेचना अधिकारी ने मुकदमा अपराध संख्या 453/2017 में धारा 279, 304ए भा.द.सं., थाना-अमरोहा देहात, जिला-अमरोहा के अंतर्गत 01.03.2018 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया, लेकिन धारा 302 भा.द.सं. के अंतर्गत साक्ष्य के अभाव में, इसलिए, मुकदमा अपराध संख्या 27/2018 धारा 302 भा.द.सं. के अंतर्गत इसमें विलय कर दिया गया।

9. व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने 22.06.2018 को द.प्र.सं. की धारा 173(8) और 190(1)(बी) के अंतर्गत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अमरोहा के समक्ष मुकदमा अपराध संख्या 27/2018 धारा 302 भा.द.सं. की आगे की विवेचना के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया।

10. विद्वान मजिस्ट्रेट ने अभिलेख पर मौजूद संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के बाद 08.05.2019 को मामले की आगे की विवेचना करने का निर्देश देते हुए आवेदन को स्वीकृति दे दी। विवेचना अधिकारी ने आगे की विवेचना पूरी करने के बाद 18.11.2019 को अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।

11. पुनः, याचिकाकर्ता ने असंतुष्ट होकर, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर उचित आदेश पारित करने के लिए प्रथम अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अमरोहा के समक्ष उक्त अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ दिनांक 02.04.2022 को एक आवेदन दायर किया।

12. विद्वान अपर सिविल जज, (एस.डी.)/अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-1, अमरोहा ने अपने आदेश दिनांक 05.01.2023 के द्वारा दिनांक 18.11.2019 की अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया और धारा 304, 323, 325 भा.द.सं. के अंतर्गत संज्ञान लिया और प्रत्यर्थी संख्या 2 को धारा 302 भा.द.सं. के बजाय विचारण का सामना करने के लिए तलब किया।

13. अब, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने दिनांक 05.01.2023 के आदेश से व्यथित होकर अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, अमरोहा के न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 65/2023 संजीव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य दायर किया, जिसे दिनांक 13.03.2024 के आक्षेपित आदेश के द्वारा स्वीकार किया गया।

14. अतः, याचिकाकर्ता/प्रथम सूचनाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत दिनांक 05.01.2023 और 13.03.2024 के आदेशों को चुनौती दी है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अपराध की गंभीरता और प्रत्यर्थी संख्या 2 के विरुद्ध किये गए अभिकथनों पर विचार नहीं किया है और दिनांक 05.01.2023 और 13.03.2024 के आक्षेपित आदेश यांत्रिक और सतही ढंग से पारित कर दिए हैं तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत संज्ञान नहीं लिया है।

16. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त तर्क का इस आधार पर खंडन किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के विरुद्ध शुरू की गई कार्यवाही दोहरे खतरे के सिद्धांत द्वारा वर्जित है, इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 2 पर एक ही अपराध के लिए दो बार अभियोजित नहीं किया जा सकता।

17. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख के अवलोकन से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता प्रथम सूचनाकर्ता है, जिसने अपने पुत्र कपिल को खो दिया, जो प्रत्यर्थी क्रमांक 2 संजीव द्वारा चलाई जा रही मोटरसाइकिल पर पीछे बैठा था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, मौत का कारण आकस्मिक चोट के कारण कोमा था। प्रत्यर्थी क्रमांक 2 के विरुद्ध 15.12.2017 को धारा 279 और 304ए भा.द.सं. के अंतर्गत एफआईआर दर्ज की गई थी। उक्त एफआईआर में विवेचना लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता/सूचनाकर्ता ने उसी घटना के लिए धारा 302 भा.द.सं. के अंतर्गत एक और एफआईआर दर्ज करने के लिए 04.01.2018 को धारा 156(3) द.प्र.सं. के अंतर्गत एक आवेदन दिया। उक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया गया और प्रत्यर्थी क्रमांक 2 के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 27/2018, धारा 302 भा.द.सं. के अंतर्गत, थाना-अमरोहा देहात जिला-ज्योतिभाफुले नगर, दर्ज कर ली गई। चूंकि दोनों एफआईआर एक ही घटना से संबंधित थीं, इसलिए उनकी विवेचना को एक साथ जोड़ दिया गया और आरोप पत्र केवल मुकदमा अपराध संख्या 453/2017 में धारा 279 और 304ए भा.द.सं. के अंतर्गत दायर किया गया और चूंकि हत्या करने का कोई सामग्री नहीं मिली, इसलिए मुकदमा अपराध संख्या 27/2018 की विवेचना को मुकदमा अपराध संख्या 453/2017 में सम्मिलित कर दिया गया। विलंबित चरण में, याचिकाकर्ता ने धारा 302 भा.द.सं. के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 27/2018 में धारा 173(8) और 190(1)(बी) के अंतर्गत आगे की विवेचना की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया, जिसे अनुमति दे दी गई और विवेचना अधिकारी को मामले की आगे की विवेचना करने का निर्देश दिया गया। मुकदमा अपराध संख्या 27/2018 में आगे की विवेचना के बाद, एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। अंतिम रिपोर्ट से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने उचित आदेश पारित करने के लिए पुनः प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें विद्वान अपर सिविल जज सीनियर डिवीजन/मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अमरोहा ने अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया और धारा 302 भा.द.सं. के स्थान पर धारा 304, 323, 325 भा.द.सं. के अंतर्गत संज्ञान लेते हुए प्रत्यर्थी संख्या 2 को विचारण का सामना करने के लिए तलब किया। उक्त समन आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 13.03.2024 के आदेश द्वारा अनुमति प्रदान की गई और दिनांक 05.01.2023 के समन आदेश को अपास्त कर दिया गया।

18. समस्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, यह स्पष्ट होता है कि दोनों एफआईआर एक ही घटना से संबंधित हैं, जो 29.11.2017 को घटित हुई थी। चूंकि प्रत्यर्थी संख्या 2 पर एक ही घटना के लिए दो

अलग-अलग एफआईआर में अभियोजन चलाया गया था, इसलिए दोनों एफआईआर की विवेचना को एक साथ जोड़ दिया गया था, लेकिन अंततः धारा 279, 304 ए भा.द.सं. के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 453/2017 में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन के आधार पर और अपराध की गंभीरता को देखते हुए, धारा 279 और 304 ए भा.द.सं. के बजाय धारा 304, 323 और 325 भा.द.सं. के अंतर्गत संज्ञान लिया गया था।

19. आक्षेपित आदेश दिनांक 13.03.2024 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दायर पुनरीक्षण को इस आधार पर स्वीकृति दी गई थी कि पुनरीक्षणवादी पर एक ही अपराध के लिए दो बार अभियोजन चलाया गया था, जो दोहरे खतरे के सिद्धांत द्वारा वर्जित है।

20. इस समय, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20(2) का संदर्भ लेना आवश्यक है, जो दोहरे खतरे के सिद्धांत की बात करता है। अनुच्छेद इस प्रकार है:

"किसी भी व्यक्ति पर एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार अभियोजन नहीं चलाया जाएगा और उसे दंडित नहीं किया जाएगा।"

21. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20 के उपखंड (2) को सरलता से पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि उक्त प्रावधान केवल तभी दूसरे अभियोजन पर रोक लगाता है, जब अभियुक्त पर पहले भी उसी अपराध के लिए अभियोजन चलाया जा चुका हो और उसे दंडित किया जा चुका हो। लेकिन यह खंड बाद के विचारण पर रोक नहीं लगाता है, यदि पिछले और बाद के विचारण में अपराधों के तत्व अलग-अलग हों।

22. हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टीपी गोपालकृष्णन बनाम केरल राज्य (2022) 14 एससीसी 323 प्रस्तर 29 में अभिनिर्धारित किया है कि "इस खंड के लागू होने की तीन शर्तें हैं। सबसे पहले, किसी न्यायालय या सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायिक न्यायाधिकरण के समक्ष पहले कार्यवाही होनी चाहिए जिसमें व्यक्ति पर अभियोजन चलाया गया हो। उक्त अभियोजन वैध होना चाहिए और शून्य या निष्फल नहीं होना चाहिए। दूसरे, पिछली कार्यवाही में दोषसिद्धि या बरी होने का आदेश दूसरी कार्यवाही के समय उसी अपराध और उन्हीं तथ्यों के संबंध में लागू होना चाहिए, जिसके लिए पहली कार्यवाही में उस पर अभियोजन चलाया गया था और उसे दंडित किया गया था। तीसरे, बाद की कार्यवाही एक नई कार्यवाही होनी चाहिए, जहाँ उस पर दूसरी बार उसी अपराध और उन्हीं तथ्यों के लिए अभियोजन चलाया जाना और दंडित किया जाना अपेक्षित हो। दूसरे शब्दों में, यह खंड तब लागू नहीं होता जब बाद की कार्यवाही पिछली कार्यवाही की मात्र निरंतरता हो, उदाहरण के लिए, जहाँ ऐसी बरी या दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील उत्पन्न होती है। दोहरे खतरे की दलील को कायम रखने के लिए, यह दर्शाया जाना चाहिए कि इस खंड की सभी पूर्वोक्त शर्तें पूरी होती हैं।

25. इस मामले में पूर्वोक्त सिद्धांत को लागू करते हुए, यह उचित रूप से कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दोहरे खतरे की दलील लागू नहीं होती, क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 2 संजीव को पहले ऐसे किसी मामले में न तो दोषी ठहराया गया था और न ही बरी किया गया था जिसमें तथ्यों का वही सेट था। इसलिए, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश विधि के गलत अनुप्रयोग पर आधारित है।

26. मामले का विश्लेषण करने के बाद, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों एफआईआर में विवेचना को एक साथ जोड़ दिया गया था और धारा 279 और 304 ए भा.द.सं. के अंतर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था, लेकिन बाद में अपराध की गंभीरता को देखते हुए, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट- I / एसीजेएम- I, अमरोहा द्वारा धारा 304, 323, 325 भा.द.सं. के अंतर्गत 05.01.2023 को संज्ञान लिया गया था, जिसमें मुकदमा अपराध संख्या 27/2018 दिनांक 18.11.2019 में प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट को अलग रखा गया था।

27. मुकदमा अपराध संख्या 253/2017 में धारा 279, 304 ए भा.द.सं. के अंतर्गत संज्ञान लेने के बजाय विद्वान अवर न्यायालय ने धारा 302 भा.द.सं. के बजाय धारा 304, 323, 325 भा.द.सं. के अंतर्गत संज्ञान लिया है

28. तदनुसार, विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, अमरोहा द्वारा पारित दिनांक 13.03.2024 का आदेश एतद्वारा अपास्त किया जाता है क्योंकि यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 20(2), दोहरे खतरे के सिद्धांत द्वारा वर्जित नहीं है। दिनांक 05.01.2023 के आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। विचारण न्यायालय को प्रत्यर्थी संख्या 2 के विरुद्ध विधि के अनुसार कार्यवाही करने का निर्देश दिया जाता है।

29. याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

(2025) 3 ILRA 361

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अजहर हुसैन इदरीसी

आपराधिक अपील संख्या 186/1993

राम भरोसे और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रत्यर्थी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री अपुल मिश्रा, श्री देवेन्द्र प्रताप, श्री विवेक शुक्ला

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

ए.जी.ए., श्री अश्वनी त्रिपाठी, श्री बृजेश सहाय (सीनियर एडवोकेट), श्री जय सिंह यादव, श्री जितेंद्र सिंह, श्री प्रदीप कुमार मिश्रा, श्री रघुवंशी मिश्रा, श्री विनय सरन (सीनियर एडवोकेट)

आपराधिक विधि - भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 302, 147, 148 और 149 - परिस्थिजन्य साक्ष्यों के आधार पर सज़ा - प्रॉपर्टी विवाद को लेकर हत्या का आरोप - लाश बरामद नहीं हुई - चश्मे का फ्रेम और खून से सनी छड़ी की बरामदगी संदिग्ध - फॉरेंसिक रिपोर्ट मौजूद नहीं - अभियोजन पक्ष के मुख्य गवाह मुकर गए - दुश्मनी को मकसद के तौर पर पेश किया गया, लेकिन लगातार गवाही से यह साबित नहीं हुआ - हालात की कड़ी टूटी हुई है - विचारण न्यायालय ने सज़ा देने में गलती की - फैसला, आरोपी के अपराध की ओर इशारा करने वाले पक्के साक्ष्यों की कड़ी के अभाव में, सज़ा कायम नहीं रखी जा सकती - बरी करने का निर्देश दिया गया - अपील मंज़ूर। (पैरा 11 से 15, और 22)

अभिनिर्धारित

इस मुद्दे पर कानून यह है कि परिस्थिति की कड़ी इतनी पूरी होनी चाहिए कि इस नतीजे से बचने का कोई रास्ता न हो, कि सभी इंसानी संभावनाओं के हिसाब से, अपराध आरोपी ने ही किया है और वे आरोपी के दोषी होने के अलावा किसी भी दूसरी परिकल्पना पर कोई सफाई देने में असमर्थ होने चाहिए और यह उसकी बेगुनाही से मेल नहीं खाना चाहिए, जैसा कि माननीय सुप्रीम कोर्ट ने शरद बिरदीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1984 4 एससीसी 116 के मामले में अभिनिर्णीत किया था। (पैरा 11)

ऊपर की गई चर्चा से हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि इस मामले में बाबू सिंह का शव मौजूद नहीं है। साक्ष्य मिटाने का आरोप अभियोजन साबित नहीं कर पाया और इसलिए, परिस्थिति की पहली कड़ी ही गायब और टूटी हुई है; ऐसे हत्या का मकसद भी गायब है क्योंकि यह सामने आया है कि उसके पिता ने बंटवारे का केस दायर किया था और हिस्से निर्धारित गए थे और सभी आरोपी इस पर सहमत थे। घटना से एक दिन पहले हुई अभिकथित हाथापाई का ज़िक्र भी प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं किया गया था, जबकि अगर ऐसी कोई हाथापाई घटना से एक दिन पहले हुई होती तो ऐसा ज़रूर किया जाना चाहिए था। मौके से सामान, यानी बाबू सिंह का आधा टूटा चश्मा और खून से सना डंडा मिलना भी शक के दायरे में है और पी.डब्ल्यू.-3 दुर्वासा ने अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट में डंडे का ज़िक्र नहीं किया था और किसी भी हाल में, उसे केमिकल जांच के लिए नहीं भेजा गया था और अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने माना कि उसने टूटा हुआ चश्मे का फ्रेम मौके से उठाया था और उसे नहीं पता कि वह विवेचक को किसने दिया था और उसने वह विवेचक को नहीं दिया था, इसलिए, मौके से उस आधे टूटे हुए फ्रेम का मिलना भरोसे के लायक नहीं है। कोई हथियार बरामद नहीं हुआ, और इसलिए, खाली कारतूस को भी अपराध से नहीं जोड़ा जा सकता है। इसलिए, हम पाते हैं कि अभियोजन अपना केस साबित

करने में बुरी तरह नाकाम रहा है; इस मामले में परिस्थिति की कड़ी पूरी नहीं है, इसलिए, सज़ा का फैसला अपास्त किया जाना चाहिए। (पैरा 22)

अपील स्वीकार की जाती है।(ई-14)

उद्धृत वादों की सूची

1. शरद बिरदीचंद सारडा बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1984 4 एससीसी 116
2. अंजन कुमार शर्मा बनाम असम राज्य, (2017) 14 एससीसी 359
3. प्रदीप कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2023) 5 एससीसी 350
4. लक्ष्मण प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2023) 6 एससीसी 399
5. अब्दुल नासिर बनाम केरल राज्य, 2025 लाइवलाॅ (एससी) 61
6. दर्शन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2024) 3 एससीसी 164
7. श्रीनिवास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 (10) एडीजे 202 (डीबी); 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 87

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला, और माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अजहर हुसैन इदरीसी, न्यायमूर्ति द्वारा प्रदत्त)

1. मैंने अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अपुल मिश्रा और श्री विवेक शुक्ला, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री विनय सरन (जिनकी मदद श्री प्रदीप कुमार मिश्रा और श्री अश्विनी त्रिपाठी कर रहे थे) और उत्तर प्रदेश राज्य के सरकारी अधिवक्ता श्री राहुल अस्थाना की दलीलें सुनीं और रिकॉर्ड का परिशीलन किया।

2. यह आपराधिक अपील, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष जज ई.सी. एक्ट, बदायूं द्वारा सत्र विचारण संख्या 176/87 में 28.01.1993 को दिए गए फैसले और आदेश के खिलाफ दायर की जा रही है, जिसमें अपीलकर्ताओं - राम भरोसे और बांके को धारा 302 सपठित धारा 149 आईपीसी के तहत उम्रकैद और धारा 148 आईपीसी के तहत 5 साल की कड़ी कैद की सज़ा सुनाई गई है, और अपीलकर्ताओं - शिशु पाल, योगेंद्र, भूप सिंह, शिव लाल और अशोक उर्फ रोहताश को धारा 302 आईपीसी सपठित धारा 149 आईपीसी के तहत उम्रकैद और धारा 147 आईपीसी के तहत 3 साल की कड़ी कैद की सज़ा सुनाई गई है।

3. आदेश दिनांक 05.03.2025 के तहत, अपील अपीलकर्ता संख्या 1-राम भरोसे, विक्रम सिंह के बेटे और अपीलकर्ता संख्या 5-शिव लाल, कुंडल सिंह के बेटे के संबंध में खत्म हो गई है। अब अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 2- शिशुपाल, लटूरी सिंह के बेटे, अपीलकर्ता संख्या 3-योगेंद्र, लटूरी सिंह के बेटे, अपीलकर्ता संख्या 4-भूप सिंह, महेंद्र सिंह के बेटे, अपीलकर्ता संख्या 6-बांके, नीता के बेटे और अपीलकर्ता संख्या 7-अशोक उर्फ रोहितश, रघुबीर सिंह के बेटे के संबंध में ही बाकी है।

4. अभियोजन की कथानक, संक्षेप में, यह है कि शिकायतकर्ता दुर्वासा, जो रायपुर गांव की रहने वाली है, की शादी कुराव, पुलिस स्टेशन उझानी के रहने वाले बाबू सिंह से हुई थी। शिकायतकर्ता अपने माता-पिता की इकलौती बेटी थी। शिकायतकर्ता के माता-पिता पहले ही मर चुके थे, जिस वजह से सारी चल और अचल संपत्ति दुर्वासा को विरासत में मिली थी, जिसके कारण दुर्वासा के पिता के परिवार के दूसरे सदस्यों की उससे दुश्मनी थी क्योंकि वे दुर्वासा को विरासत में मिली ज़मीन पर कब्ज़ा करना चाहते थे, लेकिन वे अपने मकसद में कामयाब नहीं हो पाए। इसलिए भूप सिंह और दूसरे लोग किसी भी तरह से दुर्वासा और उसके पति को नुकसान पहुंचाने का मौका ढूंढते रहते थे। 15.04.1984 को रात करीब 8.00 बजे बाबू सिंह गांव बहोलिया में रुद्धर मुराव के घर एक लगन समारोह में गए। थोड़ी दूर बाद छोटे, राम भरोसे, शिशु पाल, योगेंद्र, भूप सिंह, हरिनंदन सिंह, अशोक और शिव लाल भी उनके पीछे-पीछे गए, उनके साथ बांके मेहतर भी था, जो भूप सिंह का नौकर था। उनमें से राम भरोसे के पास लाइसेंस बंदूक थी, बांके मेहतर के पास गंडासा था और बाकी लोगों के पास लाठियां थीं। शिकायतकर्ता का पति बाबू सिंह सुबह तक अपने घर नहीं लौटा। सुबह शिकायतकर्ता को कुछ शक हुआ और उसने अपने बेटे जोगपाल सिंह को बाबू सिंह के बारे में पता लगाने के लिए बहोलिया गांव में रुद्धर मुराव के पास भेजा। रुद्धर मुराव ने बताया कि बाबू सिंह लगन सेरेमनी में नहीं आया था। इसलिए वह वहां नहीं पहुंच सका। फिर जोगपाल सिंह, ढकन सिंह, उदियावीर और ओमकार सिंह जंगल में तलाश करने लगे और उन्हें ठकुरी के खेत के पास रास्ते पर कुछ खून पड़ा मिला। वहां एक खाली कारतूस भी मिला। और ढूंढने पर कुछ आग दिखी, फिर ऊपर बताए गए सभी लोग आग के पास पहुंचे। जब वे वहां पहुंचे, तो उन्होंने देखा कि एक चिता जल रही थी और वहां एक चश्मे का फ्रेम भी पड़ा था। उन्हें यकीन हो गया कि बाबू सिंह का ऊपर बताए गए लोगों ने मर्डर कर दिया है और मर्डर के साक्ष्य मिटाने के लिए उसे जला दिया है। शिकायतकर्ता दुर्वासा के कहने पर जोगपाल सिंह से एक तहरीर लिखवाई गई। 16.04.1984 को दोपहर करीब 12.15 बजे मूसाझाग पुलिस स्टेशन में एक एफआईआर दर्ज की गई। इसके बाद, पुलिस स्टेशन में धारा 147, 148, 302 के साथ धारा 149 और 201 आईपीसी के तहत मामला दर्ज किया गया और अन्वेषण अधिकारी ने विवेचना शुरू की, जिसने मामले की विवेचना की और विवेचना पूरी होने के बाद आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ चार्जशीट दाखिल की।

5. अभियोजन ने कुल नौ गवाहों की परीक्षा की है, जिनके नाम हैं, अम्बा सहाय-पी.डब्ल्यू.1, सुखपाल-पी.डब्ल्यू.2, दुर्वासा-पी.डब्ल्यू.3, ओमकार बेटे चिराउंजी-पी.डब्ल्यू.4, ओमकार बेटे हमीर सिंह-पी.डब्ल्यू.5, जोगपाल सिंह-पी.डब्ल्यू.6, राम भरोसे बेटे भीम-पी.डब्ल्यू.7, मिश्री लाल, रिटायर्ड एस.आई., विवेचक- पी.डब्ल्यू.8 और हेड कांस्टेबल- चरण लाल शर्मा-पी.डब्ल्यू.9।

6. अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए हैं, जैसे, लिखित रिपोर्ट- प्रदर्श का-1, चिक एफ.आई.आर.- प्रदर्श का-2, नक्शा नज़री प्रदर्श का-3 और का-4, फर्द (3) प्रदर्श का-5 से का-8, एफ.आई.आर.प्रदर्श का-9, पुलिस रिपोर्ट- प्रदर्श का-10, नक्शा नज़री प्रदर्श का-II, फर्द (6) प्रदर्श का-12 से का-16-ए. जनरल डायरी की कॉपी- प्रदर्श का-17 और चार्जशीट- प्रदर्श का-18 और का-19. अभियोजन पक्ष ने सामाग्री प्रदर्श भी पेश किए

हैं, जैसे चश्मे का टूटा हुआ फ्रेम प्रदर्श 1, मुड़ा हुआ - प्रदर्श - 2, खाली कारतूस- प्रदर्श 3, खून लगी मिट्टी- प्रदर्श 4, सादी मिट्टी प्रदर्श -5, हड्डियां- प्रदर्श 6 और राख- प्रदर्श 7।

7. अपील करने वालों के अधिवक्ता का कहना है कि यह बिना किसी शक के परिस्थितिजन्य साक्ष्यों का मामला है और परिस्थितियों की कड़ी पूरी तरह से टूटी हुई है, इसलिए आरोपी अपील करने वालों को उन पर लगाए गए आरोपों के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। आगे यह भी कहा गया है कि असल में यह बिना साक्ष्यों का मामला है। विचारण न्यायालय ने साफ तौर पर यह पाया है कि अभियोजन आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 201 आईपीसी के तहत आरोप साबित करने में बुरी तरह नाकाम रहा है और सभी को धारा 201 आईपीसी के तहत आरोप से बरी कर दिया गया है। इसलिए, साफ तौर पर मृतक बाबू सिंह की हत्या साबित नहीं हो सकी, इसलिए पूरा अभियोजन सिर्फ गलत अनुमान पर आधारित है। आगे यह भी कहा गया है कि पी.डब्ल्यू-1-अंबा सहाय, पी.डब्ल्यू-2-सुखपाल, पी.डब्ल्यू-4-ओमकार बेटे चिराउंजी और पी.डब्ल्यू-5 ओमकार बेटे हमीर सिंह मुकर गए और सामानों की बरामदगी, यानी चश्मे का आधा टूटा हुआ फ्रेम और खून से सनी हुई छड़ी (मुड़ी हुई) जो कथित तौर पर मृतक बाबू सिंह की थी, वह भी साबित नहीं हुई। आगे यह भी कहा गया है कि हालांकि एक खाली कारतूस, खून से सनी मिट्टी, हड्डी और चिता से राख की बरामदगी दिखाई गई है, लेकिन कोई हथियार बरामद नहीं हुआ और इस तरह, खाली कारतूस (प्रदर्श-6) की कथित बरामदगी का कोई मतलब नहीं है। खून से सनी मिट्टी को केमिकल जांच के लिए फॉरेंसिक लैब में नहीं भेजा गया, और इसलिए यह पता नहीं चला कि वह खून इंसान का था या नहीं, इसके अलावा शव भी बरामद नहीं हुई और कथित तौर पर उसे चिता पर जला दिया गया था। इसी तरह, खून से सनी छड़ी (मुड़ी हुई) की बरामदगी भी कोई मायने नहीं रखती क्योंकि उसे भी केमिकल जांच के लिए फॉरेंसिक लैब में नहीं भेजा गया था। आगे यह भी कहा गया है कि हालांकि पी.डब्ल्यू-8-जांच अधिकारी, मिश्री लाल ने कहा है कि हड्डियां और खून केमिकल जांच के लिए भेजे गए थे, लेकिन रिकॉर्ड में ऐसी कोई रिपोर्ट नहीं है और इस तरह, यह साबित नहीं हुआ कि हड्डियां, राख या खून कथित मृतक बाबू सिंह, शिकायतकर्ता के पति के थे। यह भी कहा गया है कि मकसद के बारे में विरोधाभासी बयान है क्योंकि शिकायतकर्ता को विरासत में मिली संपत्ति को हत्या का मकसद बताया गया है, जबकि पी.डब्ल्यू-3-दुरवासा, शिकायतकर्ता, जिसे संपत्ति विरासत में मिली थी, ने विरोधाभासी बयान दिया कि उसके पिता ने बंटवारे के लिए एक मुकदमा दायर किया था, हालांकि, यह मामला सुलझ गया था क्योंकि आरोपी व्यक्तियों को बंटवारे पर कोई आपत्ति नहीं थी। उन्होंने आगे बताया कि मृतक बाबू सिंह के बेटे पी.डब्ल्यू-6 जोगपाल सिंह के बयान में भी यह बात सामने आई है कि बंटवारे के लिए एक मुकदमा दायर किया गया था और हिस्से तय किए गए थे और बंटवारे के बाद कोई और मुकदमा दायर नहीं किया गया था। इसलिए, यह कहा गया है कि मकसद भी साबित नहीं हुआ है। आगे यह कहा गया है कि परिस्थितियों की कड़ी शुरू से ही पूरी तरह से टूटी हुई है, इसलिए अपील करने वाले-आरोपी को दोषी ठहराने और सजा सुनाने का विचारण न्यायालय का फैसला कायम नहीं रह सकता और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

8. इसके उलट, शिकायतकर्ता के अधिवक्ता श्री विनय सरन ने कहा कि पी.डब्ल्यू-3-दुर्वासा, जो शिकायतकर्ता हैं, ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को साफ तौर पर साबित कर दिया है और बताया कि जब उनके पति बाबू सिंह,

रुद्दर मुराव के बुलावे पर बहोलिया गांव गए थे, तो आरोपी व्यक्ति, जिनका मृतक के साथ केस चल रहा था, उनके पीछे गए थे। आरोपी राम भरोसे के पास लाइसेंस बंदूक थी, बांके मेहतर के पास गंडासा था और दूसरे लोग लाठियां लिए हुए थे और पी.डब्ल्यू.-3-दुर्वासा, शिकायतकर्ता ने उन्हें अपने पति के पीछे जाते हुए देखा था और जब उन्हें डर लगा, तो उन्होंने अपने बेटे जोगपाल सिंह को बहोलिया गांव में रुद्दर मुराव के घर भेजा, जहां उसने पाया कि बाबू सिंह वहां नहीं पहुंचे थे। इसके बाद वह दूसरों के साथ मिलकर अपने पति को ढूंढने लगीं और ठकुरी के खेत के पास खून से सनी मिट्टी और खाली कारतूस मिला। ढूंढते समय कुछ आग भी दिखी और जब वे आग के पास पहुंचे, तो उन्होंने देखा कि एक चिता जल रही थी और उनके पति के चश्मे का एक टूटा हुआ फ्रेम वहां पड़ा था और उन्होंने साफ तौर पर कहा कि चूंकि उनके और आरोपी व्यक्तियों के बीच केस चल रहा था और दुश्मनी के कारण, उन्होंने उनके पति का मर्डर कर दिया और उनकी लाश जला दी। उन्होंने उन लोगों के नाम भी बताए जिन्होंने आरोपी व्यक्तियों को उनके पति के पीछे जाते हुए देखा था और इसलिए, यह कहा जाता है कि आखिरी बार देखे जाने का साक्ष्य साफ तौर पर साबित हो गया है। इसलिए, अधिवक्ता ने कहा कि चार गवाहों का मुकर जाना कोई मायने नहीं रखता। पी.डब्ल्यू.-3-शिकायतकर्ता ने बताया कि पुलिस ने मृतक के चश्मे का आधा टूटा हुआ फ्रेम और खून से सनी छड़ी के साथ-साथ खून से सनी मिट्टी, खाली कारतूस, जली हुई हड्डियां और राख बरामद की है, इसलिए यह साबित होता है कि बाबू सिंह का मर्डर हुआ था और लाश जलाकर साक्ष्य भी मिटा दिए गए हैं। यह कहा जाता है कि इस मामले में, हालात की कड़ी पूरी है और आरोपी व्यक्तियों को दोषी ठहराने में कोई दखल देने की ज़रूरत नहीं है।

9. राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री राहुल अस्थाना ने भी सूचनाकर्ता की ओर से पेश हुए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को अपनाते हुए अपील का विरोध किया है।

10. हमने विरोधी दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड देखे हैं।

11. इस मुद्दे पर कानून यह है कि परिस्थितियों की श्रृंखला इतनी पूरी होनी चाहिए कि इस नतीजे से बचने का कोई रास्ता न हो, कि सभी मानवीय संभावनाओं के अनुसार, अपराध आरोपी ने किया था और वे आरोपी के अपराध के अलावा किसी अन्य परिकल्पना पर स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होने चाहिए और उसकी बेगुनाही के साथ असंगत होने चाहिए जैसा कि माननीय सुप्रीम कोर्ट ने **शरद बिरदीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1984 4 एससीसी 116** के मामले में अभिनिर्धारित किया है। इसके सुसंगत पैराग्राफ 153, 154, 155 और 156 नीचे दिए गए हैं:-

“153. इस फैसले का बारीकी से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि किसी आरोपी के खिलाफ केस पूरी तरह से साबित होने से पहले ये शर्तें पूरी होनी चाहिए:

(1) जिन हालात से जुर्म का नतीजा निकाला जाना है, वे पूरी तरह से साबित होने चाहिए। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस कोर्ट ने बताया था कि संबंधित हालात 'होने चाहिए' या 'ज़रूर होने चाहिए' न कि 'हो सकते हैं' साबित होने चाहिए। 'साबित हो सकता है' और 'साबित होना चाहिए' या 'ज़रूर साबित होना चाहिए'

के बीच न केवल ग्रामर का बल्कि कानूनी फर्क भी है, जैसा कि इस कोर्ट ने शिवाजी सहबराव बोबाडे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1973) 2 एससीसी 793 : 1973 एससीसी (क्रि0) 1033 : 1973 क्रि0 एल.जे. 1783] में कहा था, जहां यह अवलोकन किया गया था: [एससीसी पैरा 19, पेज 807: एससीसी (Cri) पेज 1047] "निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि आरोपी दोषी होना चाहिए, न कि सिर्फ दोषी हो सकता है, इससे पहले कि कोई कोर्ट उसे दोषी ठहराए और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच मानसिक दूरी बहुत ज्यादा है और यह अस्पष्ट अंदाजों को पक्के नतीजों से अलग करती है।"

(2) इस तरह से साबित हुए तथ्य सिर्फ आरोपी के दोषी होने की हाइपोथिसिस के साथ ही मेल खाने चाहिए, यानी, उन्हें किसी दूसरी हाइपोथिसिस पर एक्सप्लेन नहीं किया जा सकता सिवाय इसके कि आरोपी दोषी है.

(3) परिस्थिति निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति के होने चाहिए.

(4) उन्हें साबित होने वाली हाइपोथिसिस को छोड़कर हर संभावित हाइपोथिसिस को खारिज कर देना चाहिए. और

(5) साक्ष्यों की एक ऐसी पूरी चेन होनी चाहिए जो आरोपी की बेगुनाही के साथ मेल खाने वाले नतीजे के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावनाओं में यह काम आरोपी ने ही किया होगा।

154. ये पाँच सुनहरे सिद्धांत, अगर हम ऐसा कह सकते हैं, तो परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित मामले को साबित करने का पंचशील बनाते हैं।

155. यह ध्यान देना दिलचस्प हो सकता है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर निर्भर आपराधिक मामले में साक्ष्य के तरीके के बारे में, कॉर्पस डेलिक्ट (पर्याप्त साक्ष्य के बिना दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।) की अनुपस्थिति में, उसी के साक्ष्य के बारे में स्टेटमेंट ऑफ लॉ गैसोन, जे. (और 3 और जजों द्वारा सहमति) ने किंग बनाम हॉरी में इस प्रकार दिया था:

उसे दोषी ठहराए जाने से पहले, मौत का तथ्य ऐसे हालात से साबित होना चाहिए जो अपराध होने को नैतिक रूप से पक्का कर दें और वाजिब शक के लिए कोई गुंजाइश न छोड़ें: परिस्थितिजन्य साक्ष्य इतने ठोस और जबरदस्त होने चाहिए कि जूरी को यकीन हो जाए कि हत्या के अलावा किसी और तर्कसंगत परिकल्पना से तथ्यों को समझाया नहीं जा सकता।

156. लॉर्ड गोडार्ड ने 'नैतिक रूप से पक्का' शब्द को "ऐसे हालात जो अपराध होने को पक्का कर दें" से थोड़ा बदल दिया।

(जोर दिया गया)

12. ऊपर बताई गई कानूनी स्थिति का अब तक लगातार पालन किया जा रहा है। हालांकि, कुछ हाल के फैसलों का भी ज़िक्र किया जा सकता है:-

(i) अंजन कुमार शर्मा बनाम असम राज्य, (2017) 14 एससीसी 359

(ii) प्रदीप कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2023) 5 एससीसी 350

(iii) लक्ष्मण प्रसाद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2023) 6 एससीसी 399

(iv) अब्दुल नासिर बनाम केरल राज्य, 2025 लाइव लॉ (एससी) 61

13. दर्शन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2024) 3 एससीसी 164 में तीन जजों की बेंच ने पैराग्राफ 9 और 37 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है:-

“9. इस घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अभियोजन का केस परिस्थितिजन्य के साक्ष्यों पर आधारित है। परिस्थितिजन्य के साक्ष्यों पर आधारित केस में आम तरीका यह है कि जिन हालात से जुर्म का नतीजा निकालने की कोशिश की जा रही है, उन्हें मजबूती से साबित किया जाना चाहिए; कि वे परिस्थितिजन्य एक निश्चित रुझान वाले होने चाहिए जो बिना किसी गलती के आरोपी के जुर्म की ओर इशारा करते हों; कि सभी परिस्थिति मिलकर एक ऐसी पूरी चेन बनाएं कि इस नतीजे से बचने का कोई रास्ता न हो, कि सभी इंसानी संभावनाओं के अनुसार, अपराध आरोपी ने ही किया था और वे आरोपी की बेगुनाही के अलावा किसी और अनुमान पर समझाए जाने में असमर्थ होने चाहिए जो उसके जुर्म के साथ मेल न खाता हो।

37. इस पृष्ठभूमि में, हमें आगे जाने और अभियोजन द्वारा साबित करने की कोशिश की जा रही दूसरी परिस्थितियों के बारे में साक्ष्यों पर विचार करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि एक भी परिस्थिति को मजबूती से साबित करने में नाकाम रहने से परिस्थितियों की चेन टूट सकती है। परिस्थितियों की चेन में कोई गैप नहीं हो सकता। जब सज़ा पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित होती है, तो परिस्थितियों की चेन में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। अगर चेन में कोई रुकावट है, तो आरोपी को संदेह का लाभ मिलेगा। अगर चेन में कुछ परिस्थितियों को किसी दूसरी सही वजह से समझाया जा सकता है, तो भी आरोपी को संदेह का लाभ मिलेगा।”

(जोर दिया गया)

14. इसी तरह का विचार इस कोर्ट की कई डिवीजन बेंच ने भी अपनाया है, जिसमें श्रीनिवास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 (10) एडीजे 202 (डीबी); 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 87 का मामला भी शामिल है, जिसमें हममें से एक (जस्टिस विवेक कुमार बिरला) भी सदस्य हैं।

15. शरद बिरदीचंद सारडा (सुप्रा) के फैसले पर माननीय सुप्रीम कोर्ट के हाल के फैसले अब्दुल नासिर बनाम केरल राज्य (सुप्रा) में भी विचार किया गया है, जिसमें माननीय सुप्रीम कोर्ट ने यह माना है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित मामलों में साक्ष्यों की जांच और मूल्यांकन करते समय अदालतों को निम्नलिखित सिद्धांतों का पालन करना चाहिए। उक्त फैसले का पैराग्राफ 30 इस प्रकार है:-

“30. हम उन सिद्धांतों को प्रतिपादित करना आवश्यक समझते हैं जिनका न्यायालयों को परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामलों में साक्ष्य का मूल्यांकन और मूल्यांकन करते समय पालन करना चाहिए, जो इस प्रकार हैं:

(i). प्रत्येक अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष के गवाह की गवाही पर सावधानीपूर्वक चर्चा और विश्लेषण किया जाना चाहिए। प्रत्येक गवाह के साक्ष्य का समग्र रूप से मूल्यांकन किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई भी महत्वपूर्ण पहलू नज़रअंदाज़ न हो।

(ii) परिस्थितिजन्य साक्ष्य वह साक्ष्य है जो किसी तथ्य के निष्कर्ष से जुड़ने के लिए किसी अनुमान पर निर्भर करता है। इस प्रकार, प्रत्येक गवाह की गवाही से निकाले जा सकने वाले उचित अनुमानों को रेखांकित किया जाना चाहिए।

(iii) अपराध सिद्ध करने वाले परिस्थितिजन्य साक्ष्य की प्रत्येक कड़ी की सावधानीपूर्वक जाँच की जानी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या प्रत्येक परिस्थिति व्यक्तिगत रूप से सिद्ध होती है और क्या सामूहिक रूप से, वे एक अटूट शृंखला बनाते हैं जो केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप हैं और उसकी निर्दोषता के साथ पूरी तरह से असंगत हैं।

(iv) निर्णय में विशिष्ट साक्ष्यों को स्वीकार या अस्वीकार करने के औचित्य को व्यापक रूप से स्पष्ट किया जाना चाहिए, और यह दर्शाया जाना चाहिए कि साक्ष्यों से निष्कर्ष तार्किक रूप से कैसे निकाला गया। इसमें स्पष्ट रूप से यह बताया जाना चाहिए कि साक्ष्यों का प्रत्येक अंश दोष के समग्र आख्यान में किस प्रकार योगदान देता है।

(v). निर्णय में यह प्रतिबिम्बित होना चाहिए कि दोष का निष्कर्ष, यदि कोई हो, परिस्थितियों के उचित और सावधानीपूर्वक मूल्यांकन के बाद निकाला गया है ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि क्या वे किसी अन्य उचित परिकल्पना के साथ संगत हैं।

(जोर दिया गया)

16. अवर न्यायालय ने सभी आरोपियों को धारा 201 आईपीसी के तहत आरोप से दोषमुक्त कर दिया है, धारा 201 आईपीसी के तहत उनकी दोषमुक्ति को चुनौती नहीं दी जा सकती है। यह परिस्थितियों की पहली कड़ी है जिससे यह संदेह से परे साबित नहीं होता कि वास्तव में चिता से बरामद हड्डियाँ और राख बाबू सिंह की हैं, जो सूचक के पति हैं, जिनकी कथित तौर पर आरोपियों द्वारा हत्या कर दी गई थी। यह ध्यान देने योग्य है कि खून से सनी मिट्टी की कोई जाँच नहीं की गई थी या कम से कम कोई रिपोर्ट रिकॉर्ड में नहीं है, हालाँकि जाँच अधिकारी, पीडब्लू-8 मिश्री लाल ने कहा था कि खून से सनी मिट्टी को रासायनिक जाँच के लिए भेजा गया था। बेशक, हथियार की कोई बरामदगी नहीं हुई है, इसलिए खाली कारतूस (प्रदर्श-6) की बरामदगी अपना महत्व खो देती है क्योंकि बाबू सिंह की हत्या में इसका इस्तेमाल भी साबित नहीं होता क्योंकि चिता से या मौके पर कोई गोली या पैलेट बरामद नहीं हुई थी। बाबू सिंह की हत्या का आरोप सिद्ध न होने पर, बाबू सिंह की हत्या का आरोप भी सिद्ध नहीं होता है।

17. अभियोजन पक्ष ने बाबू सिंह की हत्या को घटनास्थल से बाबू सिंह के दाहिने आँख के चश्मे के आधे टूटे फ्रेम और खून से सनी टूटी हुई छड़ी (मुड़ी हुई) की बरामदगी से जोड़कर साबित करने की कोशिश की है। चश्मे के आधे टूटे फ्रेम की बरामदगी का ज़ापन प्रदर्श का-8, दिनांक 16.04.1984 है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा गया है कि वह चिता के पास पड़ा था और उसे विवेचकद्वारा घटनास्थल से बरामद किया गया दिखाया गया

है, जबकि सूचक पीडब्ल्यू-3-दुर्वासा ने कहा था कि वह मौके से चश्मे का आधा टूटा फ्रेम अपने साथ ले गई थी और उसने उसे दीवानजी (जांच अधिकारी) को नहीं सौंपा था और उसे यह नहीं पता था कि उसे विवेचक को किसने दिया है, इसलिए, मृतक के चश्मे के आधे टूटे फ्रेम की मौके से बरामदगी भी संदिग्ध हो जाती है।

18. जहाँ तक कथित रूप से मृतक बाबू सिंह की खून से सनी हुई छड़ी की बरामदगी का संबंध है, मृतक बाबू सिंह के पुत्र, पी.डब्ल्यू.-6, जोगपाल सिंह ने कहा कि बाबू सिंह की छड़ी में कोई विशेष निशान नहीं था। इसके अलावा, खून से सनी हुई छड़ी की रासायनिक जाँच भी नहीं की गई थी, इसलिए खून से सनी हुई छड़ी की बरामदगी यह दर्शाने के लिए पर्याप्त नहीं है कि चिता पर जलाया गया शव मृतक का था और आरोपी अपराध में शामिल थे।

19. जहाँ तक उद्देश्य का प्रश्न है, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पी.डब्ल्यू.-3 दुर्वासा को अपने पिता की संपत्ति उत्तराधिकार में मिली है। अपनी जिरह में, उसने कहा है कि अभियुक्तों के साथ कोई भूमि विवाद नहीं था। उसने आगे कहा है कि उसके पिता ने बंटवारे के लिए एक वाद दायर किया था ताकि अलग-अलग हिस्से किए जा सकें, जिस पर सभी अभियुक्त सहमत हो गए हैं और इस संबंध में अभियुक्तों के साथ कोई और मुकदमा नहीं हुआ है और उसके पिता की मृत्यु के बाद, उसका नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज कर दिया गया था और अभियुक्तों ने इस संबंध में कोई आपत्ति नहीं जताई है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में ऐसा कोई आरोप नहीं था कि पिछली रात मृतक और अभियुक्तों या किसी अन्य व्यक्ति के बीच कोई हाथापाई हुई थी, हालाँकि, उसके और पी.डब्ल्यू.-6- जोगपाल द्वारा बयान देते समय यह दावा किया गया था कि पिछली रात 15.04.1984 को हुई हाथापाई के संबंध में एक एनसीआर दर्ज की गई थी और यही कारण था कि अभियुक्तों द्वारा बाबू सिंह की हत्या कर दी गई थी। इसके अलावा, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, बाबू सिंह के पुत्र पी.डब्ल्यू.-6- जोगपाल सिंह ने भी कहा था कि बंटवारे के बाद हिस्सों का सीमांकन हो गया था और कोई अन्य मुकदमा लंबित नहीं था। इसलिए, हमारा मानना है कि यह कहानी बाद में विकसित की गई थी। संबंधित पुलिस स्टेशन मूसाझाग, जिला बदायूं है, जबकि एनसीआर 15.04.1984 को एक अलग पुलिस स्टेशन, अर्थात् पुलिस स्टेशन सिविल लाइंस, बदायूं में दर्ज की गई थी, जिसकी एक प्रति विवेचक को सौंप दी गई थी। हम पाते हैं कि अगर बाबू सिंह की कथित हत्या से ठीक एक दिन पहले ऐसी कोई घटना हुई होती, तो यह प्राथमिकी में उल्लेखित होने वाला पहला तथ्य होना चाहिए था। इसलिए, स्पष्ट रूप से यह कहानी बाद में बाबू सिंह की हत्या के पीछे किसी तरह का मकसद बताने के लिए गढ़ी गई है।

20. पी.डब्ल्यू.-1 अम्बा सहाय और पी.डब्ल्यू.-2 सुखपाल को अभियुक्तों द्वारा मृतक बाबू सिंह के शव को चिता पर जलाने के गवाह बताया गया था। उन्होंने इससे इनकार किया और उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया और उनकी पूछताछ से कुछ भी सामने नहीं आया। पी.डब्ल्यू.-4 ओंकार पुत्र चिरौंजी को भी पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया क्योंकि उसने कहा था कि पुलिस ने अभियुक्त बांके को हिरासत/गिरफ्तार नहीं किया था और मृतक बाबू सिंह की लाठी उसकी उपस्थिति में बरामद नहीं हुई थी। पी.डब्ल्यू.-5 ओंकार पुत्र हमीर सिंह को भी पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। अपनी जिरह में पी.डब्ल्यू.-6 जोगपाल सिंह पुत्र मृतक बाबू सिंह ने कहा था कि वह

अपने भाई आलोक और माँ दुर्वासा (सूचनाकर्ता पी.डब्ल्यू.-पी.डब्ल्यू.-3) के साथ अपने पिता मृतक बाबू सिंह को विदा करने के लिए दरवाजे तक गया था। हालाँकि, उनके सगे भाई आलोक से अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पूछताछ नहीं की गई। गौरतलब है कि जोगपाल सिंह (पीडब्लू) ने बताया कि वह 16 अप्रैल को किसी रिश्तेदारी में गए थे और उनके भाई आलोक प्राथमिकी दर्ज कराने थाने नहीं गए थे, हालाँकि वह और उनका भाई आलोक घटना के दिन गाँव में मौजूद थे।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि एक ओर, कथित तौर पर उसके पिता की 15 अप्रैल को हत्या कर दी गई थी, जबकि 16 तारीख को ही जब वह बहोलिया गाँव में रुद्धर मुराव के घर गया और पाया कि बाबू सिंह वहाँ नहीं पहुँचा है, तो उसने घर लौटकर अपनी माँ को इसकी सूचना दी और उसके बाद वह किसी रिश्तेदार से मिलने गाँव से निकल गया, जो एक ऐसे बेटे के लिए बिल्कुल अप्रत्याशित है जिसका पिता लापता है और उसने चिता देखी थी। जहाँ तक मृतक के टूटे हुए चश्मे की बरामदगी का सवाल है, जिरह में उसने कहा है कि उसे याद नहीं है कि उसकी माँ उसे पुलिस स्टेशन ले गई थी या नहीं, जब वह रिपोर्ट दर्ज कराने गई थी। उसने आगे कहा है कि पूरा शरीर राख में बदल गया था और कुछ हड्डियाँ बची थीं, लेकिन उसे पुलिस ने उसकी मौजूदगी में बरामद नहीं किया। इसलिए, उसके बयान से परिस्थितियों की श्रृंखला को पूरा करने के लिए कुछ भी सामने नहीं आया। पी.डब्ल्यू.-7 राम भरोसे पुत्र भीम ने कहा था कि उसने अभियुक्तों को बाबू सिंह को गालियाँ देते और धमकी देते देखा था कि वह रायपुर की ज़मीन की ओर मुँह न करे, वरना उसे मार दिया जाएगा। हालाँकि, वह नामित गवाह नहीं था और उसने जिरह में कहा कि वह बयान देने के लिए खुद आया था। पी.डब्ल्यू.-8 मिश्री लाल, जाँच अधिकारी ने अपनी जिरह में कहा था कि सूचनाकर्ता ने उसे कभी नहीं बताया कि घटना से एक दिन पहले बाबू सिंह और अभियुक्तों के बीच कोई विवाद/झगड़ा हुआ था।

21. हमने धारा 313 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए अभियुक्तों के बयानों का भी अध्ययन किया है। कोई भी आपत्तिजनक बात सामने नहीं आई।

22. उपरोक्त चर्चा से, हमारा यह मत है कि वर्तमान मामले में बाबू सिंह का शव नहीं मिला है। साक्ष्य नष्ट करने का आरोप अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध नहीं किया गया और इसलिए, परिस्थितियों की पहली कड़ी ही गायब और टूटी हुई है; इस तरह की हत्या करने का मकसद भी गायब है क्योंकि एक बार यह सामने आ जाता है कि उसके पिता ने बंटवारे के लिए मुकदमा दायर किया था और हिस्से किए गए थे और सभी आरोपी व्यक्ति इस पर सहमत हो गए थे। घटना से एक दिन पहले हुई कथित हाथापाई की घटना भी प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज नहीं की गई थी, जो वास्तव में तब दर्ज की जानी चाहिए थी जब घटना से एक दिन पहले ऐसी कोई हाथापाई हुई होती। घटनास्थल से बाबू सिंह का आधा टूटा हुआ चश्मा और खून से सनी छड़ी जैसी वस्तुओं की बरामदगी भी संदिग्ध है और पी.डब्ल्यू.-3-दुर्वासा ने अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट में छड़ी का उल्लेख नहीं किया था और किसी भी स्थिति में, उसे रासायनिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था और अपनी जिरह में उसने स्वीकार किया कि उसने मौके से टूटे हुए चश्मे का फ्रेम लिया था और वह नहीं जानती कि उसे किसने जांच अधिकारी को सौंपा है और उसने उसे जांच अधिकारी को नहीं सौंपा था, इसलिए, मौके से उक्त आधे टूटे हुए फ्रेम की बरामदगी विश्वास करने योग्य नहीं है। कोई हथियार बरामद नहीं हुआ था, और इसलिए, खाली

कारतूस को भी अपराध से नहीं जोड़ा जा सका। इसलिए, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष अपना मामला साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है; वर्तमान मामले में परिस्थितियों की शृंखला पूरी नहीं है, इसलिए, दोषसिद्धि का निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है।

23. तदनुसार, वर्तमान अपील **स्वीकार** की जाती है। अवर न्यायालय द्वारा दिनांक 28.01.1993 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश, जिसमें अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया था और दण्डित किया गया था, को एतद्वारा अपास्त किया जाता है और अपीलकर्ताओं को उनके विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से बरी किया जाता है। उनके जमानत बांड निरस्त किए जाते हैं। उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है।

24. इस निर्णय की प्रति आवश्यक अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2025) 3 ILRA 370

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद अज़हर हुसैन इदरीसी

आपराधिक अपील संख्या- 1954/1993

गेंदन लाल

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री प्रवीण कुमार श्रीवास्तव, श्री वीरेन्द्र कुमार कोरी, श्री राज कुमार वैश, श्री पी.के. श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

अपर शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 164 और 313 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 307 - आयुध अधिनियम, 1959 - धारा 25 और 25(ए)(1) - आपराधिक अपील - दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध - प्रथम सूचना रिपोर्ट - अभिकथन किया कि अपीलकर्ता ने पुरानी दुश्मनी के कारण, विचारण की कार्यवाही के दौरान न्यायालय कक्ष के अंदर गोली मारकर घायल कर दिया - विवेचना - हथियार की बरामदगी

हुई - आरोप पत्र - विचारण - विचारण के दौरान, अभियोजन पक्ष के पाँच साक्षीगण ने वाद का समर्थन किया और अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई - अपील - न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के अपराध को ठोस रूप से स्थापित किया है, जिसने विचारण कार्यवाही के दौरान एक कार्यरत न्यायालय कक्ष के भीतर पीड़ित पर नजदीक से गोली चलाई थी - अभियुक्त को घटनास्थल पर तुरंत हथियार और गोला-बारूद के साथ गिरफ्तार कर लिया गया - पी.डब्लू. 1 (प्रत्यक्षदर्शी) और पी.डब्लू.2 की गवाही, पुष्टिकारी चिकित्सा और जाँच साक्ष्यों के साथ, अभियोजन पक्ष के कथन की पुष्टि करता है - इन परिस्थितियों को देखते हुए, किसी विशिष्ट व्यक्ति से साक्षी के रूप में परीक्षित न करने का कोई परिणाम नहीं निकलता - अपील में गुण-दोष का अभाव है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है - अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलकर्ता की दोषसिद्धि बरकरार रखी जाती है - आजीवन कारावास की सजा के संबंध में, यह देखा गया है कि अपराध दिनदहाड़े न्यायालय कक्ष में पूरे सत्र के दौरान किया गया था, जबकि पीठासीन अधिकारी मंच पर बैठकर बयान दर्ज कर रहे थे - यह एक असाधारण वाद है, जिसके लिए अधिकतम सजा दी जानी चाहिए, जैसा कि विचारण न्यायालय ने सही प्रदान किया है - परिणामस्वरूप, आजीवन कारावास की सजा, अन्य लगाए गए दंडों के साथ, बरकरार रखी जाती है - अपीलकर्ता को तत्काल संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है - अपील खारिज। (प्रस्तर - 35, 36, 39, 40, 45, 46)

आपराधिक अपील खारिज। (ई-11)

उद्धृत वादों की सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम फूल सिंह 2022 (4) एडीजे 397 (डीबी),
2. कर्नाटक राज्य बनाम सुवर्णम्मा, (2015) 1 एससीसी 323,
3. गजू बनाम उत्तराखंड राज्य, (2012) 9 एससीसी 532,
4. बालू सुदाम खालदे बनाम महाराष्ट्र राज्य 2023 13 एससीसी 365,
5. रक्षपाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2025 (2) एडीजे 462 (डीबी),
6. नीरज शर्मा बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2024) 3 एससीसी 125,
7. कप्तान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (1) एडीजे 106 (डीबी),
8. पहलवान सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (6) एएलजे 166,
9. शाहजा उर्फ शाहजान इस्माइल मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2023) 12 एससीसी 558,
10. बबन शंकर दफल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 137,
11. धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 एससीसी 759,
12. जयबालन बनाम केन्द्र शासित प्रदेश पांडिचेरी, 2010 (68) एससीसी 308 (एससी),
13. सतबीर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 13 9 एससीसी 790,
14. पुलिचेरला नागराजू उर्फ नागराजा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 एससीसी 444,

15. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. रायप्पा एवं अन्य, (2006) 4 एससीसी 512,
16. अप्पाभाई और अन्य बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1988 एससी 696,
17. दरिया सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1965 एससी 328, मसलती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1965 एससी 202,
18. कृष्णा मोची एवं अन्य बनाम बिहार राज्य (2002) 6 एससीसी 81,
19. अनिल कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विधि (इला) 2015 8 274,
20. रवि करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विधि (इला) 2019 11 333,
21. रामेश्वर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विधि (इला) 2022 7 215

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला द्वारा प्रदत्त)

1. यह आपराधिक अपील विशेष/अपर सत्र न्यायाधीश, शाहजहांपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 373/1986 में पारित दिनांक 25.10.1993 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसमें अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अंतर्गत आजीवन कारावास तथा आयुध अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत तीन वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी, तथा सभी सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. दिनांक 10.11.1993 के आदेश द्वारा अपीलार्थी को जमानत पर रिहा कर दिया गया।

3. अभियोजन पक्ष की कहानी संक्षेप में यह है कि शिकायतकर्ता और अभियुक्तगण ग्राम खरकरी, थाना कटरा, जिला शाहजहांपुर के निवासी थे। अभियुक्त गेंदन लाल, सह-अभियुक्त करण लाल का मौसेरा भाई था और वह ग्राम मधरा, थाना बीसलपुर, जिला पीलीभीत का निवासी था। दोनों पक्षों में पूर्व से रंजिश थी, जिसके कारण दोनों पक्षों के एक-एक व्यक्ति की हत्या कर दी गई थी। घायल राम भरोसे शिकायतकर्ता राजा राम के चाचा थे। एक एफआईआर बालक राम की हत्या के लिए अभियुक्त पक्षों के खिलाफ दर्ज की गई थी और दूसरी एफआईआर मुन्ना लाल (अभियुक्त करण लाल के भाई) की हत्या के लिए शिकायतकर्ता पक्ष के खिलाफ दर्ज की गई थी। दोनों वाद जिला एवं सत्र न्यायाधीश- I की न्यायालय में लंबित थे। मुन्ना लाल की हत्या के उक्त वाद में राम भरोसे, घायल और उसके भाई बृजपाल और महेंद्रपाल और एक राम सरन अभियुक्त थे।

4. अभियोजन पक्ष का संस्करण यह है कि 16.6.1986 को दोपहर 12.30 बजे जिला एवं सत्र न्यायाधीश- I, शाहजहांपुर की न्यायालय में थाना सदर बाजार के क्षेत्राधिकार में मुन्ना लाल (अभियुक्त करण लाल के भाई) की हत्या का विचारण चल रहा था, जिसमें घायल राम भरोसे (पीडब्लू 2), महेंद्र पाल, बृज पाल और राम सरन अभियुक्तगण के रूप में कठघरे में खड़े थे। मुन्ना लाल की हत्या के वाद में अभियुक्त करण लाल शिकायतकर्ता था और उसकी गवाही एक साक्षी दफेदार के साथ न्यायालय में अंकित हो रही थी। अभियुक्त गेंदन लाल भी

उक्त न्यायालय कक्ष में उपस्थित था, जिसे अभियुक्त करण लाल ने अपनी उंगलियों से कुछ इशारा किया। उसके संकेत पर, अभियुक्त गेंदन लाल ने 315 बोर का एक देशी तमंचा निकाला और घायल रामभरोसे लाल (पी.डब्लू 2) पर गोली चला दी, जो उसकी पीठ पर लगी। इसके बाद अभियुक्त गेंदन लाल ने न्यायालय कक्ष से भागने का प्रयास किया, लेकिन शिकायतकर्ता राजा राम और कोर्ट मोहररि राम शंकर ने उसे उसकी देशी तमंचे सहित पकड़ लिया, जिसमें एक खाली कारतूस भी था। इसके अलावा, अभियुक्त गेंदन लाल की दाहिनी जेब से पाँच ज़िंदा कारतूस भी बरामद किए गए। शिकायतकर्ता राजा राम और कोर्ट मोहररि राम शंकर उसे थाने ले गए। थाने ले जाते समय लिखित रिपोर्ट, जो कि प्रदर्श क-1 है, तैयार की गई। अभियुक्त गेंदन लाल और घायल रामभरोसे लाल को संबंधित थाने ले जाया गया। इसके बाद, पीडब्लू 4 आरक्षी ओम प्रकाश शर्मा द्वारा 16.6.1986 को दोपहर 12.50 बजे एक चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क-5) तैयार की गई और उन्होंने उक्त घटना की जीडी प्रविष्टि भी की, जिसे मुकदमा अपराध संख्या 298/1986 और 299/1986 (प्रदर्श क-6) के रूप में दर्ज किया गया।

5. शिकायतकर्ता की लिखित रिपोर्ट के आधार पर, दो अभियुक्तगण गेंदन लाल और करण लाल के खिलाफ एस.टी. संख्या 373/86 धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। अभियुक्त करण लाल पर धारा 307 सहपठित धारा 34 भा.द.सं. के अंतर्गत भी आरोप लगाए गए थे, जबकि अभियुक्त गेंदन लाल पर एस.टी. संख्या 374/86 में आयुध अधिनियम की धारा 25 (ए) (1) के अंतर्गत भी आरोप लगाए गए थे। सह-अभियुक्त करण लाल को बाद में विचारण न्यायालय ने उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से मुक्त कर दिया था।

6. अभियोजन मामले को स्थापित करने के लिए, पांच साक्षीगण, अर्थात् पीडब्लू 1 राजा राम, पीडब्लू 2 राम भरोसे लाल, पीडब्लू 3 डॉ. अमरलाल को परीक्षित किया और पीडब्लू 4 आरक्षी ओम प्रकाश शर्मा, थाना माल खाना, सदर, शाहजहाँपुर, पी.डब्ल्यू.5 एस.आई विजेंद्र प्रसाद सिंह यादव, थाना विसलपुर को प्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में परीक्षित किया गया।

7. उपरोक्त के अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष ने कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए, जिन्हें विचारण के दौरान निम्नानुसार प्रदर्शित किया गया:

(i) एफआईआर प्रदर्श क-5; (ii) लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1; (iii) देशी पिस्तौल, ज़िंदा और खाली कारतूस की बरामदगी ज़ापन और अभियुक्त की गिरफ्तारी प्रदर्श क-2; (iv) खून से सने कपड़ों की बरामदगी ज़ापन प्रदर्श क-3; (v) एक्स-रे रिपोर्ट प्रदर्श क-8; (vi) चोट रिपोर्ट प्रदर्श क-4; (vii) आरोप-पत्र (मूल) प्रदर्श क-10 और का-11; (viii) जिला मजिस्ट्रेट की अनुमति प्रदर्श क-9; और (ix) नक्शा-नजरी प्रदर्श क-7।

8. हमने श्री राज कुमार वैश के साथ-साथ अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. श्रीवास्तव और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान ए.जी.ए. श्री ओम प्रकाश द्विवेदी को सुना।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वैश के तर्क मुख्य रूप से यह हैं कि यह दोषपूर्ण विवेचना का प्रकरण है; अभियोजन पक्ष ने अपने सर्वश्रेष्ठ साक्षी अर्थात् आरक्षी/हेड मुहर्निर रमा शंकर द्विवेदी को रोक रखा है, जिन्होंने न्यायालय कक्ष के अंदर ही अभियुक्त गेंदन लाल को गिरफ्तार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और हथियार और कारतूसों की फर्द बरामदगी के भी साक्षी थे; बरामद और इस्तेमाल किए गए हथियार और बरामद और इस्तेमाल किए गए कारतूसों के संबंध में कोई बैलिस्टिक विशेषज्ञ रिपोर्ट नहीं है, जो उन्हें किए गए अपराध से जोड़ती हो; फर्द बरामदगी पर अपीलकर्ताओं के हस्ताक्षर नहीं लिए गए थे; अपीलकर्ता की न्यायालय कक्ष के अंदर उपस्थिति अपने आप में यह इंगित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि उसने कोई हमला या अपराध किया था क्योंकि अभियोजन पक्ष की कहानी को साबित करने के लिए न्यायालय कक्ष के किसी अन्य कर्मचारी को परीक्षित नहीं किया गया था; पीडब्लू 1 और पीडब्लू 2 हितबद्ध साक्षी हैं क्योंकि सूचनाकर्ता पीडब्लू 1 राजाराम घायल का भतीजा है और पीडब्लू 2 राम भरोसे लाल स्वयं घायल हैं और विपक्षी से संबंधित हैं, जिनके साथ अपीलकर्ता पक्ष का क्रॉस आपराधिक वाद चल रहा था, पीडब्लू2, घायल ने कहा है कि उसे पीछे से बन्दूक से चोट मारी गई थी और उसने अभियुक्त को चोट लगने के बाद देखा था, इसलिए, यह अपने आप में यह साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि अपीलकर्ता हमलावर था; पीडब्लू5, विवेचना अधिकारी ने दलील दी है कि उसने न्यायालय कक्ष में मौजूद पीठासीन अधिकारी का बयान दर्ज किया था लेकिन दुर्भाग्य से बयान दर्ज होने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गई, इसलिए, धारा 161 द.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज पीठासीन अधिकारी के बयान का संदर्भ होना चाहिए था, जो निर्णय में जगह नहीं पाता है। अंत में यह दलील दी गई है कि अपीलकर्ता का कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है, और अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है, इसलिए, किसी भी स्थिति में, वर्तमान वाद में अधिकतम सजा गलत तरीके से दी गई है और चूंकि उसे कुछ समय के लिए विचारण के दौरान जेल में रखा गया था, इसलिए सजा को तदनुसार संशोधित किया जाए।

10. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **अनिल कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विधि (इला) 2015 8 274; रवि करण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विधि (इला) 2019 11 333; और रामेश्वर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विधि (इला) 2022 7 215** वाद में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

11. इसके विपरीत, विद्वान एजीए ने दलील दी कि घटना की तिथि, समय और स्थान पर कोई विवाद नहीं है। पीठासीन अधिकारी के डाइस पर बैठे हुए, साक्षीगण के बयान दर्ज किए जा रहे थे, और चलती न्यायालय में जघन्य अपराध हुआ। उन्होंने आगे दलील दी कि नज़दीक से गोलीबारी हुई थी क्योंकि शरीर पर जलने और गोदने के निशान थे। पीडब्लू 2 राम भरोसे लाल स्वयं घायल और पीड़ित हैं और उनकी उपस्थिति संदेह में नहीं है। सूचनाकर्ता राजाराम भी एक क्रॉस केस में न्यायालय कक्ष में मौजूद थे और घायल राम भरोसे लाल के भतीजे होने के नाते उनसे संबंधित हैं। यह दलील दी गई कि पीडब्लू 3 डॉ. अमर लाल ने पीड़ित को लगी चोट को विधिवत प्रमाणित किया था और उनकी गवाही को जिरह में भी खारिज नहीं किया जा सका। उन्होंने आगे दलील दी कि यह तुरंत एफआईआर दर्ज करने का मामला है। घटना 16.6.1986 को दोपहर 12:30 बजे हुई थी और रिपोर्ट दोपहर 12:50 बजे दर्ज की गई, यानी 20 मिनट बाद और थाना की दूरी न्यायालय परिसर से

केवल आधा किलोमीटर है। अभियुक्त को मौके पर ही गिरफ्तार कर लिया गया था और वर्तमान वाद में मुख्य साक्षी घायल पीड़ित स्वयं है, जिसके शरीर में अभी भी गोली लगी हुई है और उसकी एकमात्र गवाही ही अपीलकर्ता को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त थी।

12. हमने अभिलेख का अवलोकन किया है और प्रतिद्वंदी दलीलों पर विचार किया है।

13. आगे बढ़ने से पहले, संबंधित साक्षीगण के साथ-साथ घायल साक्षीगण पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय के विभिन्न प्रासंगिक निर्णयों का संदर्भ लेना उचित होगा।

14. **कृष्णा मोची एवं अन्य बनाम बिहार राज्य (2002) 6 एससीसी 81** वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक विचारण में साक्ष्यों का मूल्यांकन करते समय आपराधिक न्यायालयों द्वारा अपनाए जाने वाले यथार्थवादी दृष्टिकोण पर बल दिया, जिसका प्रस्तर 32 इस प्रकार उद्धृत है:

"32. साक्ष्यों का मूल्यांकन करते समय न्यायालय को जीवन की इन वास्तविकताओं को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए और अवास्तविक दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए। मैं देखता हूँ कि हाल के दिनों में अभियुक्तों को आसानी से बरी करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। वाद में उठाए गए छोटे-मोटे मुद्दों के आधार पर, एक संक्षिप्त निर्णय द्वारा, बरी करने का आदेश पारित करना बहुत आसान है ताकि निस्तारण के मानदंड को प्राप्त किया जा सके। प्रत्येक वाद में कुछ विसंगतियाँ अवश्य होती हैं, जिन्हें न्यायालय को तब तक महत्व नहीं देना चाहिए जब तक कि वे अभियोजन पक्ष के मामले को भौतिक रूप से प्रभावित न करें। यदि बताई गई विसंगतियाँ कंकड़-पत्थरों के दायरे में हों, तो न्यायालय को उन पर पैर रखना चाहिए, लेकिन यदि वे पत्थर के समान हों, तो न्यायालय को उन्हें लांघने का प्रयास नहीं करना चाहिए। आजकल जब अपराध बढ़ रहे हैं, मानवता पीड़ित है और समाज इससे इतना प्रभावित है, न्यायालयों के कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गई हैं। अब "सौ दोषी बरी हो जाएँ, लेकिन एक भी निर्दोष दोषी न हो" वाली कहावत, व्यवहार में, दुनिया भर में बदल रही है और न्यायालय यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हो गई हैं कि "गलत दोषसिद्धि से समाज पीड़ित होता है और गलत बरी होने से भी उतना ही पीड़ित होता है।" मुझे लगता है कि इस न्यायालय ने हाल के दिनों में समय-समय पर इन तथ्यों पर गंभीरतापूर्वक ध्यान दिया है....."

(बल दिया गया)

15. **मसालती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1965 एससी 202** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 14 में निम्नलिखित टिप्पणी की:

"14. लेकिन हमारा मानना है कि यह तर्क देना अनुचित होगा कि साक्षीगण द्वारा दिए गए साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपातपूर्ण या हितबद्ध साक्षीगण का साक्ष्य है। ... ऐसे साक्ष्य को केवल इस आधार पर यांत्रिक रूप से अस्वीकार करना कि वह पक्षपातपूर्ण है, अनिवार्य रूप से न्याय की विफलता का कारण बनेगा।"

(बल दिया गया)

16. दरिया सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1965 एससी 328 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि संबंधित साक्षी का अर्थ आवश्यक रूप से हितबद्ध साक्षी नहीं है या उसके समतुल्य नहीं है। किसी साक्षी को हितबद्ध तभी कहा जा सकता है जब उसे मुकदमे के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त होता हो; किसी सिविल वाद में डिक्री से, या किसी आपराधिक विचारण में किसी व्यक्ति को दंडित होते देखने से, जिसका प्रस्तर 6 इस प्रकार उद्धृत है:

"6. सिद्धांततः, यह तर्क स्वीकार करना कठिन है कि यदि किसी साक्षी को मृतक का रिश्तेदार दिखाया जाता है और यह भी दिखाया जाता है कि वह हमलावर के प्रति पीड़ित की शत्रुता को साझा करता है, तो उसके साक्ष्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि उसकी पुष्टि भौतिक विवरणों से न हो जाए।

17. अप्पाभाई एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1988 एससी 696 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 11 में निम्नलिखित टिप्पणी की:

"11.....अनुभव हमें याद दिलाता है कि सभ्य लोग आमतौर पर तब असंवेदनशील होते हैं जब उनकी उपस्थिति में भी कोई अपराध होता है। वे पीड़ित और निगरानीकर्ता, दोनों से दूरी बना लेते हैं। जब तक यह अपरिहार्य न हो, वे स्वयं को न्यायालय से दूर रखते हैं। वे सोचते हैं कि सिविल विवाद जैसा अपराध दो व्यक्तियों या पक्षों के बीच होता है और उन्हें इसमें शामिल नहीं होना चाहिए। आम जनता की इस प्रकार की उदासीनता वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन यह हर जगह मौजूद है, चाहे वह ग्रामीण जीवन हो, कस्बों में हो या शहरों में। जाँच एजेंसी को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में आने वाली इस बाधा को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। इसलिए, न्यायालय को स्वतंत्र साक्षी के अभाव में अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने के बजाय, अभियोजन पक्ष के बयान के व्यापक पहलुओं पर विचार करना चाहिए और फिर अभियुक्त द्वारा सुझाई गई संभावना, यदि कोई हो, को ध्यान में रखते हुए सत्य के मूल तत्व की खोज करनी चाहिए। हालाँकि, न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि ध्यान रखें कि किसी गंभीर अपराध के साक्षी सामान्य तरीके से प्रतिक्रिया नहीं दे सकते। न ही वे एक समान प्रतिक्रिया देते हैं। किसी जघन्य अपराध या गंभीर प्रकृति के कृत्य से भयभीत साक्षी अलग तरह से प्रतिक्रिया दे सकते हैं। सामान्य परिस्थितियों में उनका आचरण सामान्य प्रकार का नहीं हो सकता। इसलिए, न्यायालय केवल इसलिए उनके साक्ष्य को अस्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि उन्होंने असामान्य तरीके से व्यवहार किया या प्रतिक्रिया दी..."

(बल दिया गया)

18. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. रायप्पा एवं अन्य (2006) 4 एससीसी 512 वाद में भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया गया है, जिसमें यह देखा गया है कि आजकल यह लगभग एक चलन बन गया है कि जनता,

विशेष रूप से आपराधिक वादों में, न्यायालय में उपस्थित होने और गवाही देने से कतराती है और इसी कारण से वाद वर्षों-वर्षों तक खिंचते रहते हैं, जिसका प्रस्तर 6 इस प्रकार उद्धृत है:

"6.....अब तक, यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत बन चुका है कि किसी ऐसे साक्षी की गवाही, जो अन्यथा विश्वास उत्पन्न करती हो, इस आधार पर खारिज नहीं की जा सकती कि वह मृतक का रिश्तेदार होने के कारण एक हितबद्ध साक्षी है। एक निकट संबंधी जो एक स्वाभाविक साक्षी है, उसे हितबद्ध साक्षी नहीं कहा जा सकता। हितबद्ध शब्द का तात्पर्य यह है कि संबंधित व्यक्ति का, चाहे वह शत्रुता के कारण हो या किसी अन्य कारण से, अभियुक्त को किसी न किसी रूप में दोषी ठहराए जाने में कोई प्रत्यक्ष हित अवश्य होना चाहिए।"
(बल दिया गया)

19. पुलिचेरला नागराजू @ नागराज रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2006) 11 एससीसी 444 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 16 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

"16. इस वाद में, हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने पीडब्लू 1 और पीडब्लू 2 के साक्ष्य को केवल इसलिए खारिज कर दिया क्योंकि वे मृतक के भाई और पिता होने के नाते हितबद्ध साक्षी थे। लेकिन यह सर्वविदित है कि किसी साक्षी के साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वह मृतक का पक्षधर है, हितबद्ध है या उससे निकट संबंधी है, यदि अन्यथा वह विश्वसनीय और विश्वसनीय पाया जाता है। इसके लिए केवल अधिक सावधानी और सतर्कता से जांच की आवश्यकता है, ताकि न तो दोषी बच सके और न ही निर्दोष को गलत तरीके से दोषी ठहराया जा सके। यदि ऐसी सावधानीपूर्वक जांच में साक्ष्य विश्वसनीय और संभावित पाया जाता है, तो उस पर कार्रवाई की जा सकती है। यदि यह असंभाव्य या संदिग्ध पाया जाता है, तो इसे अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। जहाँ साक्षी का अभियुक्त को झूठा फंसाने का कोई उद्देश्य हो, वहाँ उसकी गवाही को स्वीकार करने से पहले उसके भौतिक विवरणों की पुष्टि होनी चाहिए।"
(बल दिया गया)

20. सतबीर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 13 एससीसी 790 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 26 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

"26. अब यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि केवल इसलिए कि साक्षी स्वतंत्र नहीं हैं, अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता। यदि अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन साक्षीगण द्वारा किया गया है और उनके बयानों को खारिज करने का कोई ठोस कारण नहीं दिखाया गया है, तो दोषसिद्धि का निर्णय निश्चित रूप से उसी के आधार पर किया जा सकता है....."
(बल दिया गया)

21. **जयबालन बनाम यू.टी., पांडिचेरी, 2010 (68) एससी 308 (एससी)** वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 21 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

"21. हमारा सुविचारित मत है कि जिन प्रकरणों में न्यायालय को हितबद्ध साक्षीगण के साक्ष्य पर विचार करने के लिए कहा जाता है, ऐसे साक्षीगण के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए। न्यायालय को हितबद्ध साक्षीगण द्वारा दिए गए साक्ष्य का मूल्यांकन और स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए, लेकिन न्यायालय को ऐसे साक्ष्य पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास संगति की तलाश करना होना चाहिए। किसी साक्षी के साक्ष्य को केवल इसलिए नजरअंदाज या खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि वह पीड़ित के निकट संबंधी व्यक्ति के मुँह से निकला है।"

(बल दिया गया)

22. **धरणीधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 7 एससीसी 759** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसा कोई कठोर नियम नहीं है कि परिवार के सदस्य कभी भी घटना के सच्चे साक्षी नहीं हो सकते हैं और वे हमेशा न्यायालय के समक्ष झूठी गवाही देंगे। यह हमेशा किसी दिए गए वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा, जिसके प्रस्तर 12 और 13 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"12. ऐसा कोई कठोर नियम नहीं है कि परिवार के सदस्य कभी भी घटना के सच्चे साक्षी नहीं हो सकते हैं और वे हमेशा न्यायालय के समक्ष झूठी गवाही देंगे। यह हमेशा किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। जयबालन बनाम पांडिचेरी संघ राज्य क्षेत्र [(2010)1 एससीसी 199] के मामले में, इस न्यायालय को यह विचार करने का अवसर मिला कि क्या इच्छुक साक्षीगण के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है। न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि किसी इच्छुक साक्षी के साक्ष्य पर विचार करते समय पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण लागू नहीं किया जा सकता है। ऐसे साक्ष्य को केवल इसलिए नजरअंदाज या खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि वह पीड़ित के करीबी रिश्तेदार से आया है। न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

"23. हमारा यह सुविचारित मत है कि जिन मामलों में न्यायालय को हितबद्ध साक्षीगण के साक्ष्य पर विचार करने के लिए कहा जाता है, ऐसे साक्षीगण के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए। न्यायालय को हितबद्ध साक्षीगण द्वारा दिए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने और उसे स्वीकार करने में सावधानी बरतनी चाहिए, लेकिन न्यायालय को ऐसे साक्ष्य पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास एकरूपता की तलाश करना होना चाहिए। किसी साक्षी के साक्ष्य को केवल इसलिए नजरअंदाज या खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि वह पीड़ित के निकट संबंधी व्यक्ति के मुँह से निकला है।

.....

13. इसी प्रकार का विचार इस न्यायालय ने राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [एआईआर 2010 एससी 917] में व्यक्त किया था, जहाँ न्यायालय ने विधि के इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया था कि मृतक का निकट संबंधी, स्वतः, हितबद्ध साक्षी नहीं बन जाता। हितबद्ध साक्षी वह होता है जो किसी व्यक्ति को प्रतिशोध या

दुश्मनी के कारण या विवादों के कारण दोषसिद्धि दिलाने में रुचि रखता है और न्यायालय के समक्ष केवल इसी इरादे से गवाही देता है, न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए नहीं। हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य की सराहना से संबंधित विधि सुस्थापित है, जिसके अनुसार, हितबद्ध साक्षी के बयान को खारिज नहीं किया जा सकता, बल्कि उसे स्वीकार करने से पहले उसकी सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए।

14. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, यह स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में न्यायालय द्वारा कथित हितबद्ध साक्षीगण के बयानों पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यह सावधानी से किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि आपराधिक न्याय प्रशासन को उन व्यक्तियों द्वारा कमजोर न किया जाए, जो मृतक के निकट संबंधी हैं। जब उनके बयानों की पुष्टि अन्य साक्षीगण, विशेषज्ञ साक्ष्यों और वाद की परिस्थितियों से होती है, तो स्पष्ट रूप से अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करने वाले साक्ष्यों की श्रृंखला पूरी हो जाती है, तो हमें कोई कारण नहीं दिखता कि तथाकथित 'हितधारक साक्षीगण' के बयान पर न्यायालय भरोसा क्यों न कर सके।

(बल दिया गया)

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बबन शंकर दफल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 137** में दिए गए एक हालिया निर्णय में, साक्षी की गवाही के संबंध में, जिसे केवल पीड़ित के साथ संबंध के कारण खारिज नहीं किया जाना चाहिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 27 और 28 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

"27. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का एक तर्क यह है कि घटना के सभी प्रत्यक्षदर्शी मृतक के निकट संबंधी थे और विवेक के लिए अभियोजन पक्ष को कुछ अन्य स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शियों को भी परीक्षित करना चाहिए था, जो दुर्भाग्यपूर्ण घटना के समय मौजूद थे। विचारण न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया था, लेकिन उच्च न्यायालय ने इस तरह के दृष्टिकोण को सही ढंग से खारिज कर दिया है और माना है कि केवल इसलिए कि कुछ और स्वतंत्र साक्षी भी थे, जो घटनास्थल पर पहुँचे थे, रिश्तेदारों के साक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। विधि कहीं भी यह नहीं कहता कि हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज कर दिया जाना चाहिए। विधि केवल यह सुनिश्चित करता है कि उनके साक्ष्य की सावधानीपूर्वक और सावधानी से जाँच की जानी चाहिए। इस न्यायालय ने अपने निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई साक्षी रिश्तेदार है, तो केवल इसी आधार पर उसकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता।"

28. आपराधिक प्रकरणों में, साक्षीगण, विशेषकर पीड़ित के निकट संबंधियों की विश्वसनीयता की अक्सर जाँच की जाती है। हालाँकि, रिश्तेदार होने का मतलब यह नहीं है कि कोई साक्षी स्वतः ही "हितबद्ध" या पक्षपाती हो जाता है। "हितबद्ध" शब्द उन साक्षीगण को संदर्भित करता है जिनका परिणाम में व्यक्तिगत हित होता है, जैसे बदला लेने की इच्छा या दुश्मनी या व्यक्तिगत लाभ के कारण अभियुक्त को झूठा फंसाना। दूसरी ओर, एक "संबंधी" साक्षी वह होता है जो अपराध स्थल पर स्वाभाविक रूप से मौजूद हो सकता है, और उसकी गवाही

को केवल पीडित से उसके संबंध के कारण खारिज नहीं किया जाना चाहिए। न्यायालयों को उनके बयानों की विश्वसनीयता, सुसंगतता और सुसंगतता का आकलन करना चाहिए, न कि उन्हें अविश्वसनीय करार देना चाहिए।
(बल दिया गया)

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **शाहजा उर्फ शाहजान इस्माइल मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2023) 12 एससीसी 558** में दिए गए एक हालिया निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रत्यक्ष साक्ष्य का मूल्यांकन एक कठिन कार्य है और आपराधिक वाद में प्रत्यक्ष साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए न्यायिक रूप से विकसित सिद्धांतों का सारांश दिया गया है, जिसके प्रस्तर 29 और 30 इस प्रकार उद्धृत हैं:

"29. प्रत्यक्ष साक्ष्य का मूल्यांकन एक कठिन कार्य है। प्रत्यक्ष साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए कोई निश्चित या सीधा सूत्र नहीं है। आपराधिक वाद में प्रत्यक्ष साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए न्यायिक रूप से विकसित सिद्धांतों को इस प्रकार गिनाया जा सकता है:

29.1 किसी साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय, यह दृष्टिकोण होना चाहिए कि क्या समग्र रूप से पढ़े गए साक्षी के साक्ष्य में सत्यता की झलक दिखाई देती है। एक बार यह धारणा बन जाने के बाद, न्यायालय के लिए निस्संदेह यह आवश्यक है कि वह साक्ष्य की और अधिक विशेष रूप से समग्र रूप से साक्ष्य में बताई गई कमियों, कमियों और दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए जांच करे और उनका मूल्यांकन करके पता लगाए कि क्या यह साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के विरुद्ध है और क्या साक्ष्य का पूर्व मूल्यांकन इस हद तक विकृत है कि वह विश्वास करने योग्य नहीं है।

29.2. यदि जिस न्यायालय के समक्ष साक्षी साक्ष्य देता है, उसे साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के बारे में राय बनाने का अवसर मिला था, तो अपीलीय न्यायालय, जिसे यह लाभ नहीं मिला है, को विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन को उचित महत्व देना होगा और जब तक कि पर्याप्त और ठोस कारण न हों, तब तक मामूली भिन्नताओं या तुच्छ विवरणों के आधार पर साक्ष्य को अस्वीकार करना उचित नहीं होगा।

29.3 जब किसी प्रत्यक्षदर्शी का विस्तृत परीक्षण किया जाता है, तो उसके द्वारा कुछ विसंगतियाँ निकालना पूरी तरह संभव है। लेकिन न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल तभी जब किसी साक्षी के साक्ष्य में विसंगतियाँ उसके कथन की विश्वसनीयता के साथ इतनी असंगत हों कि न्यायालय उसके साक्ष्य को खारिज करने के लिए उचित हो।

29.4. मामले के मूल से न जुड़े तुच्छ मुद्दों पर छोटी-मोटी विसंगतियाँ, साक्ष्य से यहाँ-वहाँ संदर्भ से हटकर वाक्यों को लेकर अति-तकनीकी दृष्टिकोण, मामले की जड़ तक न जाकर विवेचना अधिकारी द्वारा की गई किसी तकनीकी त्रुटि को महत्व देना, सामान्यतः साक्ष्य को समग्र रूप से अस्वीकार करने की अनुमति नहीं देता।

29.5. किसी घटना के वर्णन में आने वाले मात्र अंतरों (दो साक्षीगण के साक्ष्यों के बीच या एक ही साक्षी के दो बयानों के बीच) पर अत्यधिक गंभीर दृष्टिकोण अपनाना न्यायिक जाँच के लिए एक अवास्तविक दृष्टिकोण है।

29.6. सामान्यतः किसी साक्षी से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि उसके पास फोटोग्राफिक मेमोरी हो और वह किसी घटना के विवरण को याद रख सके। ऐसा नहीं है कि मानसिक स्क्रीन पर कोई वीडियो टेप दोबारा चलाया जा रहा हो।

29.7. आमतौर पर ऐसा होता है कि साक्षी घटनाओं से अभिभूत हो जाता है। साक्षी उस घटना का पूर्वानुमान नहीं लगा सकता जिसमें अक्सर आश्चर्य का तत्व होता है। इसलिए मानसिक क्षमताओं से विवरणों को आत्मसात करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

29.8. अवलोकन क्षमता व्यक्ति-दर-व्यक्ति भिन्न होती है। एक व्यक्ति जो देख सकता है, वह दूसरा नहीं देख सकता। कोई वस्तु या गति एक व्यक्ति के मन में अपनी छवि अंकित कर सकती है जबकि दूसरे के लिए वह अनदेखी रह सकती है।

29.9. सामान्यतः लोग किसी बातचीत को ठीक से याद नहीं कर पाते और न ही अपने द्वारा प्रयुक्त या सुने गए शब्दों को दोहरा पाते हैं। वे केवल बातचीत का मुख्य आशय ही याद रख पाते हैं। किसी साक्षी से मानव टेप रिकॉर्डर होने की अपेक्षा करना अवास्तविक है।

29.10. किसी घटना के सटीक समय या घटना की समयावधि के संबंध में, आमतौर पर लोग पूछताछ के समय अचानक अनुमान लगा लेते हैं। और ऐसे मामलों में लोगों से बहुत सटीक या विश्वसनीय अनुमान लगाने की उम्मीद नहीं की जा सकती। फिर, यह व्यक्तियों की समय-बोध पर निर्भर करता है जो हर व्यक्ति में अलग-अलग होती है।

29.11. आमतौर पर किसी साक्षी से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह घटनाओं के क्रम को सटीक रूप से याद रखे जो एक के बाद एक या कम समय में घटित होती हैं। बाद में पूछताछ के दौरान साक्षी भ्रमित हो सकता है या उलझन में पड़ सकता है।

29.12. एक साक्षी, भले ही पूरी तरह से सच्चा हो, न्यायालय के माहौल और अधिवक्ता द्वारा की गई कड़ी जिरह से घबरा सकता है और घबराहट के कारण तथ्यों को मिला सकता है, घटनाओं के क्रम के बारे में भ्रमित हो सकता है, या अचानक कल्पना से विवरण भर सकता है। साक्षी का अवचेतन मन कभी-कभी मूर्ख दिखने या अविश्वास किए जाने के डर से ऐसा करता है, हालाँकि साक्षी अपने द्वारा देखी गई घटना का सच्चा और ईमानदार विवरण दे रहा होता है।

29.13. एक पूर्व कथन, भले ही साक्ष्य से असंगत प्रतीत हो, आवश्यक रूप से विरोधाभासी होने के लिए पर्याप्त नहीं है। जब तक पूर्व कथन में बाद के कथन को बदनाम करने की क्षमता न हो, तब तक, भले ही बाद वाला कथन कुछ हद तक पूर्व कथन से भिन्न हो, उस साक्षी का खंडन करना सहायक नहीं होगा।

[देखें भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, 1983 क्रि एलजे 1096 : एआईआर 1983 एससी 753, लीला राम बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 1999 एससी 3717, और तहसीलदार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1959 एससी 1012]

30. सरल शब्दों में कहें तो, प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य के मूल्य का आकलन करते समय, दो मुख्य विचारणीय बिंदु होते हैं: क्या वाद की परिस्थितियों में, घटनास्थल पर या ऐसी परिस्थितियों में उनकी उपस्थिति पर विश्वास करना संभव है जो उनके द्वारा बताए गए तथ्यों को उनके द्वारा प्रमाणित करना संभव बनाती हैं, और दूसरा,

क्या उनके साक्ष्य में कुछ भी स्वाभाविक रूप से असंभव या अविश्वसनीय है। इन दोनों विचारों के संबंध में, उन साक्षीगण से प्राप्त या अन्य साक्ष्यों द्वारा स्थापित परिस्थितियाँ, जो उनकी उपस्थिति को असंभव बनाती हैं या उनके कथनों की सत्यता को बदनाम करती हैं, उस मूल्य को प्रभावित करेंगी जो न्यायालय उनके साक्ष्य को प्रदान करेगा। यद्यपि ऐसे मामलों में जहाँ अभियुक्त का तर्क मात्र इनकार है, फिर भी अभियोजन पक्ष के साक्षीगण के साक्ष्य की जाँच उसके गुण-दोष के आधार पर की जानी चाहिए। जहाँ अभियुक्त कोई निश्चित तर्क प्रस्तुत करता है या कोई सकारात्मक तर्क प्रस्तुत करता है जो अभियोजन पक्ष के तर्क से असंगत है, वहाँ अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के मूल्य का आकलन करते समय ऐसे तर्क या मामले की प्रकृति और उससे संबंधित संभावनाओं को भी ध्यान में रखना होगा।

(बल दिया गया)

25. पहलवान सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (6) एएलजे 166 के प्रस्तर 48 को नीचे उद्धृत किया गया है:

"48. इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों के मद्देनजर, अब यह विधि की एक स्थापित स्थिति है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में न्यायालय द्वारा हितबद्ध साक्षीगण के बयानों पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यह सावधानी से किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि मृतक के निकट संबंधी व्यक्तियों द्वारा आपराधिक न्याय प्रशासन को कमजोर न किया जाए।" जब उनके बयानों की पुष्टि अन्य साक्ष्यों, विशेषज्ञ साक्ष्यों और मामले की परिस्थितियों से होती है, जो स्पष्ट रूप से अभियुक्तों के अपराध की ओर इशारा करते हुए साक्ष्यों की श्रृंखला को पूरा करती हैं, तो कोई कारण नहीं है कि तथाकथित 'हितधारक साक्षीगण' के बयानों पर न्यायालय भरोसा न कर सके। यह विश्वास करना कठिन होगा कि निकट संबंधी वास्तविक अपराधी को छोड़ देंगे और निर्दोष व्यक्तियों को केवल इसलिए झूठा फंसारेंगे क्योंकि उनकी अभियुक्तों से दुश्मनी है।

(बल दिया गया)

26. जहाँ तक घायल साक्षी की गवाही का संबंध है, इस न्यायालय ने कप्तान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2020 (1) एडीजे 106 (डीबी) में, प्रस्तर 20 में, निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"20. साक्ष्यों की गहन जाँच से पता चलता है कि (पीडब्लू-1) विमला देवी और (पीडब्लू-2) राम सिंगार पांडे के बयान स्पष्ट, ठोस और विश्वसनीय हैं।" उनसे जिरह की गई, लेकिन वे अभियोजन पक्ष के कथन पर अड़े रहे और ऐसा कोई तथ्य, विरोधाभास या असंगति सामने नहीं आ सकी, जिससे उनकी गवाही पर कोई संदेह उत्पन्न हो। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि घटना के बाद, मृतक और घायलों को अस्पताल ले जाया गया और उन्हें वहीं भर्ती कराया गया और उसी रात मृतक राम निवास राव की मृत्यु हो गई, यह स्पष्ट है कि घटना की प्रथम सूचना रिपोर्ट बिना किसी अनावश्यक देरी के दर्ज की गई थी। (पीडब्लू-1) विमला देवी का कथन (पीडब्लू-2) राम सिंगार पांडे की गवाही से पुष्ट होता है और चिकित्सीय साक्ष्यों से पूरी तरह मेल खाता है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि (पीडब्लू-2) राम सिंगार पांडे ने स्वयं उसी घटना में चोटें झेली थीं। जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 9एससीसी 719 में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक घायल अभियुक्त

की गवाही को दी गई विशेष साक्ष्य स्थिति को दोहराया। यह तथ्य कि साक्षी को घटना के समय और स्थान पर चोटें आईं, उसकी इस गवाही को समर्थन देता है कि वह घटना के दौरान मौजूद था। यदि घायल साक्षी से लंबी जिरह की जाती है और उसकी गवाही को खारिज करने के लिए कुछ भी नहीं निकाला जा सकता है, तो इस पर भरोसा किया जाना चाहिए। कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य, (2006) 12 एससीसी 459 के वाद में भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक अपील संख्या 513-514/2014 बालेश्वर महतो और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, 9.1.2017 को निर्णीत, में विधि को इस प्रकार दोहराया है:

"28. घटना के दौरान स्वयं घायल हुए साक्षी के साक्ष्य को दिए जाने वाले महत्व के प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा विस्तार से चर्चा की गई है। जहां घटना का कोई साक्षी स्वयं घटना में घायल हुआ हो, ऐसे साक्षी की गवाही को आम तौर पर बहुत विश्वसनीय माना जाता है, क्योंकि वह एक ऐसा साक्षी होता है जो अपराध स्थल पर अपनी उपस्थिति की अंतर्निहित गारंटी के साथ आता है और किसी को झूठा फंसाने के लिए अपने वास्तविक हमलावर(ओं) को छोड़ने की संभावना नहीं है।

"एक घायल साक्षी को बदनाम करने के लिए ठोस सबूत की आवश्यकता होती है।" [देखें रामलंगन सिंह बनाम बिहार राज्य [(1973) 3 एससीसी 881: 1973 एससीसी (क्रि) 563: एआईआर 1972 एससी 2593], मलखान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। [(1975) 3 एससीसी 311: 1974 एससीसी (क्रि) 919: एआईआर 1975 एससी 12], मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य [(1983) 3 एससीसी 470: 1983 एससीसी (क्रि) 681], अप्पाभाई बनाम गुजरात राज्य [1988 सप्प एससीसी 241: 1988 एससीसी (क्रि) 559: एआईआर 1988 एससी 696], बोंक्य बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1995) 6 एससीसी 447: 1995 एससीसी (क्रि) 1113], भाग सिंह [(1997) 7 एससीसी 712: 1997 एससीसी (क्रि) 1163], मोहर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2002) 7 एससीसी 606: 2003 एससीसी (क्रि) 121] (एससीसी पृ. 606बी-सी), दिनेश कुमार बनाम राजस्थान राज्य [(2008) 8 एससीसी 270: (2008) 3 एससीसी (क्रि) 472], विष्णु बनाम राजस्थान राज्य [(2009) 10 एससीसी 477: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 302], अन्नारेड्डी संबाशिवा रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य [(2009) 12 एससीसी 546: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 630] और बलराजे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2010) 6 एससीसी 673: (2010) 3 एससीसी (क्रि) 211] 29. इस मुद्दे पर निर्णय करते समय, एक समान दृष्टिकोण जरनैल सिंह बनाम पंजाब राज्य [(2009) 9 एससीसी 719 : (2010) 1 एससीसी (क्रि) 107] में लिया गया था, जहाँ इस न्यायालय ने एक घायल अभियुक्त की गवाही को दी गई विशेष साक्ष्य स्थिति को दोहराया और अपने पूर्व निर्णयों पर भरोसा करते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला: (एससीसी पृष्ठ 726-27, प्रस्तर 28-29)

"28. दर्शन सिंह (पीडब्लू 4) एक घायल साक्षी था। डॉक्टर ने उसकी जाँच की थी। उसकी गवाही को हल्के में नहीं लिया जा सकता था। उसने घटना का पूरा विवरण दिया था क्योंकि वह उस समय मौजूद था जब हमलावर ट्यूबवेल पर पहुँचे थे। शिवलिंगप्पा कल्लयनप्पा बनाम कर्नाटक राज्य [1994 सप्प (3) एससीसी 235: 1994 एससीसी (क्रि) 1694] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि घायल साक्षी के बयान पर भरोसा

किया जाना चाहिए जब तक कि प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को खारिज करने के मजबूत आधार न हों। इस कारण से कि घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति स्थापित हो जाती है यदि यह साबित हो जाता है कि उक्त घटना के दौरान उसे चोट लगी थी।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशन चंद [(2004) 7 एससीसी 629: 2004 एससीसी (क्रि) 2021] में इसी तरह के विचार को दोहराया गया है जिसमें कहा गया है कि मुहर लगे साक्षी की गवाही की अपनी प्रासंगिकता और प्रभावकारिता होती है। यह तथ्य कि साक्षी को घटना के समय और स्थान पर चोटें आईं, उसकी गवाही का समर्थन करता है कि वह घटना के दौरान मौजूद था। यदि घायल साक्षी से लंबी जिरह की जाती है और उसकी गवाही को खारिज करने के लिए कुछ भी नहीं निकाला जा सकता है, तो इस पर भरोसा किया जाना चाहिए (देखें कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य [(2006) 12 एससीसी 459: (2007) 2 एससीसी (क्रि) 214])। इस प्रकार, हमारा विचार है कि दर्शन सिंह (पीडब्लू 4) के साक्ष्य पर अवर न्यायालयों ने सही ढंग से भरोसा किया है।"

30. इस बिंदु पर विधि को इस आशय के संक्षेप में कहा जा सकता है कि घायल साक्षी की गवाही को विधि में एक विशेष दर्जा दिया गया है। यह इस तथ्य के परिणामस्वरूप है कि साक्षी को लगी चोट अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की अंतर्निहित गारंटी है और क्योंकि साक्षी अपने वास्तविक हमलावर को केवल अपराध के लिए किसी तीसरे पक्ष को झूठा फंसाने के लिए दंडित किए बिना नहीं जाने देना चाहेगा। इस प्रकार, घायल साक्षी के बयान पर भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि उसके साक्ष्य को बड़े विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर खारिज करने के लिए मजबूत आधार न हों।" इसी निर्णय में, पहले के कई उदाहरणों के आधार पर, चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्ष साक्ष्य के बीच संबंधों पर भी चर्चा की गई थी, जो इस प्रकार हैं: "33. हरियाणा राज्य बनाम भागीरथ [(1999) 5 एससीसी 96: 1999 एससीसी (क्रि) 658] में यह इस प्रकार माना गया था: (एससीसी पृष्ठ 101, प्रस्तर 15)

"15. किसी चिकित्सीय साक्षी द्वारा दी गई राय विषय पर अंतिम शब्द नहीं होनी चाहिए। ऐसी राय का परीक्षण न्यायालय द्वारा किया जाएगा। यदि राय तर्क या वस्तुनिष्ठता से रहित है, तो न्यायालय उस राय को मानने के लिए बाध्य नहीं है। आखिरकार, राय वह होती है जो किसी व्यक्ति के मन में किसी तथ्यात्मक स्थिति के बारे में बनती है। यदि एक डॉक्टर एक राय बनाता है और दूसरा डॉक्टर उन्हीं तथ्यों पर अलग राय बनाता है, तो न्यायाधीश के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उस राय को अपनाए जो अधिक वस्तुनिष्ठ या संभाव्य हो। इसी प्रकार, यदि एक डॉक्टर द्वारा दी गई राय संभाव्यता के अनुरूप नहीं है, तो न्यायालय केवल इसलिए उस राय को मानने के लिए बाध्य नहीं है क्योंकि वह डॉक्टर द्वारा कही गई है। निःसंदेह, उन व्यक्तियों द्वारा दी गई राय को उचित महत्व दिया जाना चाहिए जो उस विशेष विषय के विशेषज्ञ हैं।"

शिवलिंगप्पा कल्लयनप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 सप्प (3) एससीसी 235: 1994 एससीसी (क्रि) 1694 में, न्यायालय ने माना है कि घायल साक्षी के बयान पर भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए मजबूत आधार न हों, इस कारण से कि घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति स्थापित हो जाती है यदि यह साबित हो जाता है कि उक्त घटना के दौरान उसे चोट लगी थी।

यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इस बिंदु पर विधि को इस आशय के साथ संक्षेपित किया जा सकता है कि घायल साक्षी की गवाही को विधि में एक विशेष दर्जा दिया गया है। यह इस तथ्य के परिणामस्वरूप है कि साक्षी को लगी चोट अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की अंतर्निहित गारंटी है और क्योंकि साक्षी अपने वास्तविक हमलावर को केवल अपराध के लिए किसी तीसरे पक्ष को झूठा फंसाने के लिए दंडित किए बिना नहीं छोड़ना चाहेगा। इस प्रकार, घायल साक्षी के बयान पर तब तक भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि उसके साक्ष्य में बड़े विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसे अस्वीकार करने के ठोस आधार न हों।'

(बल दिया गया)

27. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नीरज शर्मा बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2024) 3 एससीसी 125 में आपराधिक विचारण में घायल साक्षी के महत्व के संबंध में दिए गए एक हालिया निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 22 और 23 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

"22. आपराधिक विचारण में घायल साक्षी के महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बताया जा सकता। जब तक बचाव पक्ष द्वारा ऐसे साक्षी पर संदेह करने के लिए बाध्यकारी परिस्थितियाँ या साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाएँ, इसे आपराधिक विचारण में एक अत्यंत मूल्यवान साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।"

23. बालू सुदाम खालदे बनाम महाराष्ट्र राज्य 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 355 के मामले में, इस न्यायालय ने उन सिद्धांतों का सारांश प्रस्तुत किया जिन्हें किसी घायल चश्मदीद साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

"26. जब किसी घायल चश्मदीद साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाना हो, तो न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित विधिक सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक है:

(क) घटना के समय और स्थान पर घायल चश्मदीद साक्षी की उपस्थिति पर तब तक संदेह नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके बयान में कोई ठोस विरोधाभास न हो।

(ख) जब तक साक्ष्य द्वारा अन्यथा स्थापित न हो जाए, यह विश्वास किया जाना चाहिए कि एक घायल साक्षी वास्तविक अपराधियों को भागने नहीं देगा और अभियुक्तों को झूठा फंसाने नहीं देगा।

(ग) घायल साक्षी के साक्ष्य का साक्ष्यात्मक मूल्य अधिक होता है और जब तक कोई ठोस कारण न हो, उनके बयानों को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए।

(घ) घायल साक्षी के साक्ष्य पर उसके स्वाभाविक आचरण में किसी प्रकार की छेड़छाड़ या मामूली विरोधाभास के कारण संदेह नहीं किया जा सकता।

(ङ) यदि घायल साक्षी के साक्ष्य में कोई अतिशयोक्ति या अप्रासंगिक अलंकरण हो, तो ऐसे विरोधाभास, अतिशयोक्ति या अलंकरण को घायल साक्षी के साक्ष्य को, न कि संपूर्ण साक्ष्य से हटा दिया जाना चाहिए।

(च) अभियोजन पक्ष के कथन के व्यापक आधार को ध्यान में रखा जाना चाहिए और समय बीतने के साथ स्मृति-हानि के कारण सामान्यतः आने वाली विसंगतियों को हटा दिया जाना चाहिए।

(बल दिया गया)

28. समन्वय पीठ के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसके हम में से एक (न्यायमूर्ति वी.के. बिड़ला) **रक्षपाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2025 (2) एडीजे 462 (डीबी)** वाद में सदस्य थे, जिसमें विधि पर व्यापक रूप से विचार किया गया था।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **'बालू सुदाम खालदे बनाम महाराष्ट्र राज्य' 2023 13 एससीसी 365** वाद में घायल साक्षी के साक्ष्य पर विचार करने के लिए दिशानिर्देशों पर फिर से विचार किया है, जिसका प्रासंगिक प्रस्तर 26 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

"26. जब किसी घायल प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाना हो, तो न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित विधिक सिद्धांतों को ध्यान में रखना आवश्यक है:

26.1. घटना के समय और स्थान पर घायल प्रत्यक्षदर्शी की उपस्थिति पर तब तक संदेह नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके बयान में कोई ठोस विरोधाभास न हो।

26.2. जब तक साक्ष्य द्वारा अन्यथा सिद्ध न हो जाए, यह अवश्य माना जाना चाहिए कि घायल साक्षी वास्तविक अपराधियों को बच निकलने और अभियुक्तों को झूठा फंसाने नहीं देगा।

26.3. घायल साक्षी के साक्ष्य का साक्ष्यात्मक मूल्य अधिक होता है और जब तक कोई ठोस कारण न हो, उसके बयानों को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए।

26.4. घायल साक्षी के साक्ष्य पर उसके स्वाभाविक आचरण में किसी प्रकार की छेड़छाड़ या मामूली विरोधाभास के कारण संदेह नहीं किया जा सकता।

26.5. यदि घायल साक्षी के साक्ष्य में कोई अतिशयोक्ति या अप्रासंगिक अलंकरण हो, तो ऐसे विरोधाभास, अतिशयोक्ति या अलंकरण को घायल के साक्ष्य से निकाल दिया जाना चाहिए, लेकिन संपूर्ण साक्ष्य को नहीं।

26.6. अभियोजन पक्ष के कथन के व्यापक आधार को ध्यान में रखा जाना चाहिए और समय बीतने के साथ स्मृति-हानि के कारण सामान्यतः आने वाली विसंगतियों को दूर किया जाना चाहिए।

(बल दिया गया)

30. ऊपर वर्णित विधि के अलावा, विवेचना में त्रुटि के प्रभाव से संबंधित विधि का भी संदर्भ लिया जा सकता है।

31. विवेचना में त्रुटि के प्रभाव से संबंधित विधि पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **गजू बनाम उत्तराखंड राज्य, (2012) 9 एससीसी 532** में निम्नलिखित शब्दों में चर्चा की है और उसका सारांश प्रस्तुत किया है:

"20. दोषपूर्ण विवेचना के संबंध में, इस न्यायालय ने दयाल सिंह बनाम उत्तरांचल राज्य, (2012) 8 एससीसी 263 में, विवेचना अधिकारी द्वारा की गई चूक और चूक के मामलों और ऐसे मामलों में न्यायालय के कर्तव्य पर विचार करते हुए, निम्नलिखित निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 280-83, पैरा 27-36)

"27. अब, हम ऐसे मामलों में न्यायालय के कर्तव्य पर विचार कर सकते हैं। सती प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1972) 3 एससीसी 613 में, इस न्यायालय ने कहा कि यह सर्वमान्य है कि यदि पुलिस अभिलेख संदिग्ध हो जाते हैं और जाँच-पड़ताल सतही हो जाती है, तो यह न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है कि वह देखे कि क्या न्यायालय में दिए गए साक्ष्य पर भरोसा किया जाना चाहिए और ऐसी खामियों को नज़रअंदाज़ किया जाना चाहिए। विवेचना में जानबूझकर त्रुटि होने की संभावना को देखते हुए, इस न्यायालय ने धनज सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2004) 3 एससीसी 654 में यह निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 657, पैरा 5)

'5. दोषपूर्ण विवेचना के मामले में न्यायालय को साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। लेकिन केवल त्रुटि के आधार पर किसी अभियुक्त को बरी करना उचित नहीं होगा; ऐसा करना विवेचना अधिकारी के हाथों में खेलने के समान होगा यदि विवेचना जानबूझकर त्रुटिपूर्ण हो।

28. चूक और चूक के मामलों से निपटते हुए, पारस यादव बनाम बिहार राज्य, (1999) 2 एससीसी 126 में न्यायालय ने पिछले निर्णयों के अनुरूप यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि यदि जाँच एजेंसी द्वारा लापरवाही या अन्य किसी कारण से चूक या चूक की जाती है, तो अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की ऐसी चूकों के अलावा भी विवेचना की जानी आवश्यक है ताकि यह पता लगाया जा सके कि उक्त साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं। अधिकारियों का दूषित आचरण न्यायालयों द्वारा साक्ष्यों के मूल्यांकन में बाधा नहीं बनना चाहिए, अन्यथा जानबूझकर की गई शरारत जारी रहेगी और शिकायतकर्ता पक्ष को न्याय नहीं मिलेगा।

29. ज़ाहिरा हबीबुल्लाह शेख (5) बनाम गुजरात राज्य, (2006) 3 एससीसी 374 में, न्यायालय ने आपराधिक विचारण में साक्षीगण की भूमिका के महत्व पर ध्यान दिया। विचारण की गुणवत्ता के महत्व और प्राथमिकता को बेंथम के शब्दों से देखा जा सकता है, जिन्होंने कहा है कि साक्षी न्याय की आँखें और कान होते हैं। न्यायालय ने चेतावनी जारी की कि ऐसी स्थितियों में, एक ओर न्यायालय की ज़िम्मेदारी ज़्यादा होती है और दूसरी ओर, न्यायालयों को उन व्यक्तियों से गंभीरता से निपटना चाहिए जो सुनियोजित विवेचना में शामिल हैं। न्यायालय ने कहा कि: (एससीसी पृष्ठ 398, पैरा 42)

'42. साक्षी, पीड़ित या सूचनाकर्ता के साथ छेड़छाड़ पर रोक लगाने के लिए विधायी उपाय आज की तात्कालिक और अपरिहार्य आवश्यकता बन गए हैं। ऐसे आचरण जो न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही में साक्ष्य प्रस्तुत करने को अवैध रूप से प्रभावित करते हैं, उनसे गंभीरता और कठोरता से निपटा जाना चाहिए। केवल अभियुक्त के हितों की रक्षा के लिए कोई अनावश्यक चिंता नहीं होनी चाहिए। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह समाज की आवश्यकताओं के साथ अन्याय होगा। इसके विपरीत, निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने के प्रयास होने चाहिए जहाँ अभियुक्त और अभियोजन पक्ष दोनों को उचित व्यवहार मिले। न्याय के समुचित प्रशासन में जनहित को उतना ही महत्व दिया जाना चाहिए, यदि उससे अधिक नहीं, जितना कि व्यक्तिगत अभियुक्त के हित को। इसमें न्यायालयों की महत्वपूर्ण भूमिका है।' (मूल में बल)

30. समय बीतने के साथ, विधि भी विकसित हुआ और न्यायालय के कथन ने इस बात पर बल दिया कि किसी आपराधिक वाद में, कार्यवाही का भाग्य हमेशा पूरी तरह से पक्षकारों के हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता। अपराध एक सार्वजनिक अपराध है, जो सार्वजनिक अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लंघन करता है, जो समय रूप से समुदाय को प्रभावित करता है और सामान्य रूप से समाज के लिए हानिकारक है।

31. उपरोक्त सिद्धांत को दोहराते हुए, इस न्यायालय ने एनएचआरसी बनाम गुजरात राज्य, (2009) 6 एससीसी 767 में निम्नलिखित निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 777-78, पैरा 6)

'6. ...'35. ... निष्पक्ष विचारण की अवधारणा में अभियुक्त, पीड़ित और समाज के हितों का परिचित त्रिकोण शामिल है और यह समुदाय ही है जो राज्य और अभियोजन एजेंसियों के माध्यम से कार्य करता है। समाज के हितों को पूरी तरह से तिरस्कार और अवांछित व्यक्ति के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। न्यायालयों का हमेशा से यह सर्वोपरि कर्तव्य माना गया है कि वे न्याय प्रशासन में जनता का विश्वास बनाए रखें - जिसे अक्सर 'विधि की गरिमा' की पुष्टि और उसे बनाए रखने का कर्तव्य कहा जाता है। न्याय के समुचित प्रशासन को हमेशा एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखा गया है, न कि किसी विशेष मामले के निर्धारण तक सीमित, बल्कि भविष्य में भी न्यायालय के रूप में कार्य करने की उसकी क्षमता की रक्षा करना, जैसा कि उसके समक्ष मामले में है। यदि किसी आपराधिक न्यायालय को न्याय प्रदान करने में एक प्रभावी साधन बनना है, तो पीठासीन न्यायाधीश को एक दर्शक और मात्र रिकॉर्डिंग मशीन न बनकर, विचारण में भागीदार बनकर, बुद्धिमत्ता, सक्रिय रुचि प्रदर्शित करनी चाहिए और सही निष्कर्ष पर पहुँचने, सत्य का पता लगाने, और पक्षों और जिस समुदाय की वह सेवा करता है, दोनों के प्रति निष्पक्षता और निष्पक्षता के साथ न्याय करने के लिए आवश्यक सभी प्रासंगिक सामग्री प्राप्त करनी चाहिए। आपराधिक न्याय करने वाली अदालतें कार्यवाही के संबंध में हुए किसी भी कष्टप्रद या दमनकारी आचरण को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकतीं, भले ही निष्पक्ष सुनवाई अभी भी संभव हो, सिवाय इसके कि ऐसा करने से न्यायाधीशों की निष्पक्ष और स्वतंत्र निर्णायक के रूप में छवि और प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचने का जोखिम हो।" (जाहिरा हबीबुल्लाह मामला, एससीसी पृष्ठ 395, प्रस्तर 35)

32. कर्नाटक राज्य बनाम के. यारप्पा रेड्डी, (1999) 8 एससीसी 715 में, इस न्यायालय को दोषपूर्ण विवेचना के इसी प्रकार के प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला कि क्या विवेचना अधिकारी द्वारा स्टेशन हाउस डायरी में किसी भी प्रकार की हेराफेरी अभियोजन पक्ष के मामले के विरुद्ध मानी जा सकती है। इस न्यायालय ने प्रस्तर 19 में निम्नलिखित निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 720)

'19. लेकिन क्या उपरोक्त निष्कर्ष (कि थाने की डायरी असली नहीं है) का इस मामले के अन्य साक्ष्यों पर कोई अपरिहार्य प्रभाव पड़ सकता है? यदि विवेचना करने पर अन्य साक्ष्य विश्वसनीय और स्वीकार्य पाए जाते हैं, तो क्या न्यायालय को विवेचना अधिकारी द्वारा विवेचना करने या रिकॉर्ड इतनी बेईमानी से तैयार करने में प्रदर्शित षड्यंत्रों से प्रभावित होना चाहिए? यह एक मार्गदर्शक सिद्धांत हो सकता है कि चूंकि किसी आपराधिक विचारण में न्यायिक जाँच का एकमात्र क्षेत्र विवेचना नहीं है, इसलिए प्रकरण में न्यायालय का निष्कर्ष केवल विवेचना की सत्यनिष्ठा पर निर्भर नहीं रह सकता। यह लगभग तय है कि यदि विवेचना अवैध या संदिग्ध भी हो, तो भी शेष साक्ष्यों की उसके प्रभाव से स्वतंत्र रूप से जाँच की जानी चाहिए। अन्यथा आपराधिक मुकदमा विवेचना अधिकारियों के प्रभुत्व के स्तर तक गिर जाएगा। आपराधिक मुकदमों में न्यायालय को विवेचना अधिकारियों द्वारा की गई कार्रवाई पर प्रभुत्व और श्रेष्ठता प्राप्त होनी चाहिए। मामले में विवेचना अधिकारियों द्वारा की गई गलतियों के लिए आपराधिक न्याय को शिकार नहीं बनाया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों

में, यदि न्यायालय को विश्वास हो जाता है कि घटना के किसी साक्षी की गवाही सत्य है, तो न्यायालय उस पर कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र है, भले ही मामले में विवेचना अधिकारी की भूमिका संदिग्ध हो।

33. राम बली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 10 एससीसी 598 में, कर्नल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1995) 5 एससीसी 518 के निर्णय को दोहराया गया था और इस न्यायालय ने टिप्पणी की थी कि: (राम बली मामला, एससीसी पृष्ठ 604, पैरा 12)

'12. ... दोषपूर्ण विवेचना के मामले में न्यायालय को साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। लेकिन केवल दोष के आधार पर किसी अभियुक्त को बरी करना उचित नहीं होगा; ऐसा करना विवेचना अधिकारी के हाथों में खेलने के समान होगा यदि विवेचना जानबूझकर दोषपूर्ण हो।'

34. जहाँ हमारी दंड न्याय प्रणाली किसी अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई और दोषी सिद्ध होने तक निर्दोष मानने की सुरक्षा प्रदान करती है, वहीं यह भी मानती है कि आपराधिक विचारण का उद्देश्य अभियुक्त और समाज, सभी के साथ न्याय करना और अभियोजन पक्ष को अपना अपराध सिद्ध करने का उचित अवसर प्रदान करना है। तभी विधि-व्यवस्था बनी रह सकती है। न्यायालय केवल यह सुनिश्चित करने का कार्य ही नहीं करते कि किसी निर्दोष को दंड न मिले, बल्कि यह भी सुनिश्चित करते हैं कि कोई दोषी व्यक्ति बच न पाए। ये दोनों ही न्यायाधीश के सार्वजनिक कर्तव्य हैं। विचारण के दौरान, विद्वान पीठासीन न्यायाधीश से निष्पक्ष और सही दृष्टिकोण से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। जहाँ अभियोजन पक्ष किसी सतही या जानबूझकर की गई दोषपूर्ण विवेचना के आधार पर विचारण को दिशाहीन करने का प्रयास करता है, वहाँ न्यायालय को अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ऐसे प्रयास के बावजूद, निर्णायक प्रक्रिया बाधित न हो। 'निष्पक्ष सुनवाई' के इस उद्देश्य को वास्तव में प्राप्त करने के लिए, न्यायालय को न्याय करने और समाज के हितों की रक्षा करने में कोई कसर नहीं छोड़नी चाहिए।

(बल दिया गया)

32. कर्नाटक राज्य बनाम सुवर्णम्मा, (2015) 1 एससीसी 323 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि "यह भी सर्वमान्य है कि यद्यपि जाँच एजेंसी से निष्पक्ष और कुशल होने की अपेक्षा की जाती है, फिर भी उसकी ओर से कोई भी चूक अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज करने का आधार नहीं बन सकती, जब अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य मौजूद हों।"

(बल दिया गया)

33. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम फूल सिंह 2022 (4) एडीजे 397 (डीबी) में, जिसके हम में से एक (न्यायमूर्ति वी.के. बिड़ला) सदस्य थे, समन्वय पीठ ने विवेचना में दोष के प्रभाव से संबंधित विधि पर भी विचार किया है।

34. हम पाते हैं कि वर्तमान वाद में अभियुक्त गेंदन लाल ने चलती न्यायालय में बड़ी संख्या में लोगों की मौजूदगी में पी.डब्लू. 2 राम भरोसे लाल, जो पीड़ित भी है और सूचनाकर्ता राजा राम का सगा चाचा है, को बन्दूक से गोली मारकर चोट पहुंचाई है। राम भरोसे लाल की पीठ पर चोट आई और जब अभियुक्त गेंदन लाल ने भागने की कोशिश की तो उसे पुलिस आरक्षी राम शंकर की मदद से सूचनाकर्ता राजा राम ने मौके पर ही यानी न्यायालय कक्ष के अंदर ही पकड़ लिया। उसके हाथ से 315 बोर का देशी तमंचा बरामद किया गया, जिसमें एक खाली कारतूस और उसकी दाहिनी जेब से पांच जिंदा कारतूस मिले। निर्विवाद रूप से, यह भी साक्ष्य में आया है कि अभियुक्त गेंदन लाल, करण लाल का रिश्तेदार था, जो एक हत्या के प्रकरण में अभियुक्त था, जिसका बयान उसके खिलाफ लंबित एक सत्र परीक्षण में पहले ही दर्ज किया जा चुका था और अभिकथन यह है कि उसने गेंदन लाल को गोली चलाने का संकेत दिया था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि केवल बरामदगी ज़ापन की तैयारी, जैसा कि अभिकथन किया गया है, थाना में, जो न्यायालय परिसर से आधा किलोमीटर दूर है, अपने आप में अभियोजन पक्ष की कहानी पर कोई संदेह पैदा नहीं करेगा, क्योंकि गोलीबारी की घटना चलती न्यायालय के अंदर हुई थी, जिसमें पीठासीन अधिकारी डायस पर थे।

35. यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि ऐसी परिस्थितियों में, किसी भी तरह की घबराहट से बचने के लिए, अभियुक्त गेंदन लाल को उसके हाथ में अपराध में प्रयुक्त हथियार के साथ मौके पर गिरफ्तार किया गया, साथ ही मौके पर बरामद हथियार भी और तुरंत थाना ले जाया गया, जो न्यायालय परिसर से केवल आधा किलोमीटर दूर था। साक्ष्य में आया है कि एक क्रॉस केस भी था, जिसमें वर्तमान वाद में सूचनाकर्ता राजा राम, उपरोक्त वाद में सूचनाकर्ता था और अपना बयान दर्ज कराने के लिए उपस्थित था। करण लाल दूसरे वाद में सूचनाकर्ता था और उसका बयान पहले ही दर्ज किया जा चुका था और एक साक्षी दफेदार का बयान दर्ज किया जा रहा था। दोनों साक्षीगण पीडब्लू 1 और पीडब्लू 2 की उपस्थिति स्पष्ट रूप से साबित होती है और कमोबेश अभियुक्त पक्ष की ओर से भी स्वीकार की जाती है। पुरानी दुश्मनी भी स्वीकार की गई है क्योंकि दोनों पक्षों की ओर से हत्याएं की गई हैं, जिसमें न्यायालय में मौजूद सभी अभियुक्तगण के करीबी रिश्तेदार शामिल थे।

36. पीडब्लू 1 राजा राम ने स्वीकार किया है कि बृज पाल और महेंद्र पाल उसके सगे भाई थे। उनके पिता बालक राम की हत्या कर दी गई थी, जिसमें करण लाल अभियुक्त था और उसी दिन, करण लाल के भाई मुन्ना लाल की भी हत्या कर दी गई थी। ये हत्याएं 11.11.1984 को हुई थीं और इन दोनों हत्याओं के कारण दोनों मौजूद थे क्योंकि क्रॉस सत्र विचारण चल रहा था, इसलिए पीडब्लू 1 राजा राम की उपस्थिति संदेह से परे साबित होती है और पीडब्लू 2 राम भरोसे लाल की उपस्थिति, जो स्वयं पीड़ित है, विवाद में नहीं है। पीड़ित पीडब्लू 2 राम भरोसे लाल ने स्पष्ट रूप से कहा था कि विद्वान न्यायाधीश डायस पर बैठे थे और पेशकार बयान दर्ज कर रहे थे और हेड कांस्टेबल भी मौजूद थे। वह अभियुक्तों के कठघरे के पास बैठा था। अभियुक्त गेंदन लाल पीछे से आया और वह उसे नहीं देख सका। करण लाल अभियुक्त गेंदन लाल को देख रहा था। पीडब्लू 2 राम भरोसे लाल ने गेंदन लाल को उस पर गोली चलाते देखा और इसके बाद वह विद्वान न्यायाधीश के कक्ष की दिशा में भाग गया। पीडब्लू 2 राम भरोसे लाल, पीड़ित ने खुद भी उपस्थित अभियुक्तों के बीच

दुश्मनी साबित कर दी है पीडब्लू 2, पीड़ित रामभरोसे लाल दस दिनों तक अस्पताल में भर्ती रहे और जब उनका बयान दर्ज किया, गया तब भी गोली उनके शरीर के अंदर थी।

37. अपनी जिरह में, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि उन पर गोली चलाए जाने के तुरंत बाद, उन्होंने गेंदन लाल को ऐसा करते देखा था और जब अभियुक्त गेंदन लाल विद्वान न्यायाधीश के कक्ष की ओर भागा, तभी उसे पकड़ा गया। उन्होंने इस बात का स्पष्ट रूप से खंडन किया था कि किसी और ने उन पर गोली चलाई थी और स्पष्ट रूप से कहा था कि अभियुक्त गेंदन लाल ने उन पर गोली चलाई थी। डॉक्टर ने राम भरोसे लाल को लगी चोटों को साबित कर दिया है और स्पष्ट रूप से कहा है कि ये चोटें 16.6.1986 को दोपहर 12:30 बजे किसी बन्दूक से लगी होंगी और शरीर पर जलने के निशान, कालापन और गोदने के निशान थे, इसलिए यह पीछे से की गई नज़दीकी गोलीबारी का मामला था। विवेचना अधिकारी एसआई वी.पी सिंह यादव ने स्पष्ट रूप से कहा था कि उन्होंने कुंवर सावल सिंह, विद्वान सत्र न्यायाधीश, जिनकी न्यायालय में यह घटना हुई थी, का बयान दर्ज किया था। उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का पूरी तरह से समर्थन किया था, जिसे उनकी जिरह में खारिज नहीं किया जा सका।

38. हम आगे पाते हैं कि अभियुक्त गेंदन लाल ने धारा 313 द.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज अपने बयान में पक्षों के बीच दुश्मनी की बात स्वीकार की है और यह कि करण लाल न्यायालय कक्ष के अंदर था। अपने बयान में, उसने अभियुक्त करण लाल के साथ अपने संबंधों से इनकार किया, हालाँकि, हम पाते हैं कि पेपर बुक के पृष्ठ 39 पर उसने स्वीकार किया था कि अभियुक्त करण लाल उसका चचेरा भाई (मौसेरा भाई) है और वह घटना के समय न्यायालय कक्ष के अंदर मौजूद था। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उसने दुश्मनी की बात स्वीकार की है और अपने भाई करण लाल, जो एक क्रॉस केस में अभियुक्त था, की ओर से पैरवी करने के उद्देश्य से न्यायालय कक्ष में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। यही सुझाव अभियुक्त करण लाल को भी दिया गया था और इसलिए, अभियोजन पक्ष का यह मामला कि अभियुक्त गेंदन लाल, अभियुक्त करण लाल का करीबी रिश्तेदार था, मौके पर मौजूद था और अभियुक्त पक्ष और सूचनाकर्ता पक्ष के बीच पुरानी दुश्मनी थी, विवाद में नहीं है।

39. इसलिए, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को संदेह से परे स्पष्ट रूप से साबित कर दिया है। न्यायालय कक्ष के अंदर हत्या का प्रयास हुआ था। उपर्युक्त विधि के मद्देनजर, अपीलकर्ता को दोषी ठहराने के लिए घायल-पीड़ित-साक्षी की एकमात्र गवाही ही पर्याप्त है। वर्तमान मामले में, दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे, एक, पीडब्लू1 राजा राम, जो सूचनाकर्ता है और जिसकी न्यायालय कक्ष में उपस्थिति विवाद का विषय नहीं है, जो घायल साक्षी का रिश्तेदार है और दूसरा, पीडब्लू2 घायल राम भरोसे लाल है जो स्वयं पीड़ित है और जब उसका बयान दर्ज किया गया और उसे लगी चोटें विधिवत सिद्ध हुईं, तब भी उसके शरीर में गोली लगी हुई थी। अभियुक्त गेंदन लाल के हाथों से हथियार बरामद किया गया था, जिसे न्यायालय कक्ष के अंदर ही घटनास्थल से गिरफ्तार किया गया था। विद्वान पीठासीन अधिकारी का बयान भी दर्ज किया गया, जो दुर्भाग्यवश, न्यायालय में इस बयान को दर्ज करने से पहले ही साक्षी के रूप में

मर गए। इसलिए, घायलों और अभियुक्तों की उपस्थिति विवाद का विषय नहीं है। दूसरे शब्दों में, तिथि, समय और स्थान विवाद का विषय नहीं है। घायल पीड़ित पीडब्लू2 राम भरोसे लाल का स्पष्ट बयान है कि पीठासीन अधिकारी डायस पर बैठे थे और पीडब्लू5 विजेंद्र प्रसाद सिंह यादव, विवेचना अधिकारी का बयान है कि पीठासीन अधिकारी कुंवर सांवल सिंह, जो घटना के समय डायस पर बैठे थे, का बयान उनके चैम्बर में दर्ज किया गया था। इसलिए, धारा 161 द.प्र.सं. के अंतर्गत दर्ज पीठासीन अधिकारी के बयान पर ध्यान न देना कोई परिणाम नहीं देगा।

40. पीड़ित राम भरोसे लाल, जो घायल साक्षी पीडब्लू2 भी है, को 0.75 सेमी x 0.5 सेमी गहराई का प्रवेश घाव हुआ है, जिसे मापा नहीं जा सका, कमर के विभाजन से सिर्फ 3.5 सेमी ऊपर कालापन, गोदना और झुलसा हुआ है। यह निस्संदेह शरीर का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यदि यह चोट हृदय या फेफड़े या किसी अन्य महत्वपूर्ण अंग के करीब होती, तो उसे चोट पहुंचाने से निश्चित रूप से मृत्यु हो जाती, जो खुले न्यायालय में हत्या का अपराध होता।

41. इन परिस्थितियों में, किसी व्यक्ति विशेष को साक्षी के रूप में पेश न करना कोई मायने नहीं रखता।

42. हमने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किये गए निर्णय का अध्ययन किया है।

43. उपर्युक्त चर्चा के आधार पर, हम पाते हैं कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं।

44. अतः, हम पाते हैं कि वर्तमान अपील में गुण-दोष का अभाव है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है। अपीलकर्ता गेंदन लाल की दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है।

45. जहाँ तक आजीवन कारावास की सजा का संबंध है, हम पाते हैं कि घटना दिनदहाड़े चलती न्यायालय के अंदर हुई थी, जब डायस पर पीठासीन अधिकारी द्वारा बयान अंकित किए जा रहे थे। हमारा विचार है कि यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें विचारण न्यायालय द्वारा अधिकतम सजा दी गई है और इसलिए, हम अन्य दंडों के साथ-साथ आजीवन कारावास की सजा की भी पुष्टि करते हैं।

46. चूँकि अपीलकर्ता गेंदन लाल जमानत पर है, इसलिए उसके जमानत बंधपत्र रद्द किए जाते हैं और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। उसे निर्देश दिया जाता है कि वह तीन सप्ताह के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करके दण्डित दंड भुगतें।

47. अवर न्यायालय का अभिलेख तत्काल संबंधित न्यायालय को भेजा जाए।

48. रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा इस आदेश की एक प्रति संबंधित न्यायालय को अनुपालन हेतु प्रेषित की जाए तथा अभियुक्त के आत्मसमर्पण न करने की स्थिति में विधि अनुसार कार्यवाही की जाए।

(2025) 3 ILRA 391

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकित: इलाहाबाद 21.01.2025 और 05.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा,

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा

दाण्डिक अपील संख्या 2696 वर्ष 1981

और

दाण्डिक अपील संख्या 660 वर्ष 1984

देवेंद्र कुमार @ झुन्ना एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

सरकार

...प्रत्यर्थी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री एस.एस. तिवारी, श्री अजय कुमार पांडे, श्री के.के. श्रीवास्तव, श्री रोशन खान, श्री सतीश त्रिवेदी

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

डी.जी.ए., श्री मयंक भूषण

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302-घटना के दो घंटे बाद ही एफआईआर दर्ज की गई - घायल गवाह के साक्ष्य को उच्च स्थान पर रखा गया - अभियोजन पक्ष के अनुसार प्रत्येक अभियुक्त को विशिष्ट हथियार दिया गया है - अभियुक्त व्यक्तियों को उद्देश्य से प्रेरित किया गया था - जीवित बचे आरोपियों ने सह-आरोपियों के साथ गोलबन्द बनाई थी - क्रूर हमला - मारने के इरादे से किया गया और घातक हमला किया गया - तत्काल मृत्यु हो गई - आक्षेपित आदेश में कोई कानूनी या तथ्यात्मक त्रुटि नहीं है - विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के साक्ष्य को खारिज कर दिया है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत. (ई-9)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सत्य देव @ भूरे बनाम उत्तर प्रदेश सरकार AIR 2020 (SC) 4526
2. चंदन बनाम सेंट (दिल्ली प्रशासन) 2024 लाइव लॉ (एससी) 288

(माननीय न्यायमूर्ति आर.एम.एन. मिश्रा, द्वारा पारित)

1. सप्तम अपर सत्र न्यायाधीश, (गैर-महानगरीय क्षेत्र) कानपुर नगर द्वारा एस.टी. संख्या 75/1977 और एस.टी. संख्या 304/1977 में पारित निर्णय व आदेश दिनांकित 19.11.1981 के विरुद्ध आपराधिक अपील संख्या 2696/1981 प्रस्तुत की गई है, तथा दोनों सत्र मुकदमों में एस.टी. संख्या 75/1977 में पारित निर्णय व आदेश दिनांकित 18.01.1984 के विरुद्ध आपराधिक अपील संख्या 660/1984 प्रस्तुत की गई है। सभी नौ अपीलकर्ताओं को धारा 147, 148, 302/149, 325/149 और 323/149 भारतीय दंड संहिता, थाना डेरापुर, कानपुर के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया है।
2. एस.टी. संख्या 75/1977 में अपीलकर्ता देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना, जिया लाल उर्फ दादू, अवधेश और श्रीमती राम प्यारी और एस.टी. संख्या 304/1977 में अभियुक्त राम प्रताप, भुनेश्वर, भानु प्रताप उर्फ ललुना, शिव दास और कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन को धारा 302/149 भा.दं.सं. के तहत आरोप के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। उन्हें धारा 325/149 दं.प्र.सं. के तहत भी आरोप के लिए दोषी पाया गया, जिसके लिए उन्हें एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। उन्हें धारा 323/149 भा.दं.सं. के तहत छह महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। अभियुक्त देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना, शिव दास, कृष्ण कुमार छुट्टन को धारा 147 भा.दं.सं. के तहत आरोप के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई तथा अभियुक्त राम प्रताप, अवधेश, भुनेश, दादू और ललुना को धारा 148 भा.दं.सं. के तहत एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई।
3. अभियुक्ता श्रीमती राम प्यारी को धारा 302/149 भारतीय दंड संहिता के तहत आजीवन कारावास, धारा 325/149 भारतीय दंड संहिता के तहत एक वर्ष के साधारण कारावास, धारा 323/149 भारतीय दंड संहिता के तहत छह माह के कारावास और धारा 147 भारतीय दंड संहिता के तहत एक वर्ष के साधारण कारावास की सजा सुनाई गई। सभी सजाएँ साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया।
4. विद्वान चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, कानपुर देहात द्वारा एस.टी. संख्या 75/1977 में पारित निर्णय व आदेश दिनांकित 18.01.1984 के विरुद्ध आपराधिक अपील संख्या 660/1984 प्रस्तुत की गई, जिसके तहत अपीलार्थी राजमुन को धारा 148, 302/149, 325/149 एवं 323/149 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया था। अभियुक्त राजमुन को धारा 302/149 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत आजीवन कारावास, धारा 148 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत एक वर्ष के कठोर कारावास, धारा 325/149 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत

एक वर्ष के कठोर कारावास तथा धारा 323/149 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत छह माह के कठोर कारावास की सजा सुनाई जाती है।

5. दोनों आपराधिक अपीलें, थाना डेरापुर, कानपुर में भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 302/149, 323/149 और 325/149 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 118/1976 में एक ही अपराध के लिए अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई हैं। चूँकि दोनों आपराधिक अपीलें एक ही घटना और अपराध से उत्पन्न हुई हैं और सभी अपीलकर्ताओं को मुकदमे के दौरान सह-अभियुक्त के रूप में आरोपित किया गया है, इसलिए दोनों अपीलों को एक साथ मिला दिया गया है और एक ही निर्णय द्वारा उनका निर्णय किया जा रहा है। अपीलकर्ताओं को उनकी संबंधित आपराधिक अपीलों में इस न्यायालय के निर्देश पर इन आपराधिक अपीलों के आदेशों द्वारा जमानत पर रिहा किया गया था।

6. अपीलकर्ताओं की ओर से विद्वान न्यायमित्र श्री अजय कुमार पांडे, सरकार की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री राहुल अस्थाना को सुना गया तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

7. अभियोजन पक्ष के प्रकरण से प्राप्त संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 29.06.1976 को दिन में लगभग 12:00 बजे, जब मृतक शिव नारायण जो कि सूचक लालाराम का भाई था, अपनी दुकान से खाना खाने के लिए अपने घर जा रहा था, अभियुक्तगण अर्थात् अवधेश, राम प्रताप, भुनेश्वर भाले (बरछाई) से लैस थे, दादू, ललौना, राजमुन (तब्बल) लिए हुए थे, शिव दास, झुन्ना, छुट्टन और श्रीमती राम प्यारी लाठी लेकर आए थे, जो सभी सूचक के गांव के थे, उन्होंने मृतक को रोक लिया और अपने-अपने हथियारों से उस पर हमला करना शुरू कर दिया। मृतक ने शोर मचाया, सूचक और मृतक की पत्नी श्रीमती विमला मृतक को बचाने के लिए मौके पर पहुंचे। अभियुक्तगणों ने सूचक और मृतक की पत्नी श्रीमती विमला की भी पिटाई की। इस बीच, गवाह जगदीश नारायण, राम चंदर, नन्हे, अशर्फी लाल, महादेव ने आरोपियों को ललकारा, जिस पर वे पूर्व दिशा की ओर भाग गए। मृतक की मौके पर ही मौत हो गई। सूचक लाला राम और श्रीमती विमला को भी चोटें आईं। सूचक द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपराध का कारण यह बताया गया है कि वह गाँव के राम गोपाल की हत्या के प्रकरण में गवाह था, जिसने पहले हुए एक हत्या के प्रकरण में अभियुक्त राम प्रताप और अन्य के खिलाफ गवाही दी थी। सत्र न्यायालय ने राम प्रताप और अन्य को दोषी ठहराया और उन्हें 20 साल के कारावास की सजा सुनाई गई। उच्च न्यायालय के अपीलीय आदेश से दोषियों को जमानत पर रिहा कर दिया गया था, इस कारण अभियुक्त सूचक और उसके परिवार के सदस्यों के प्रति द्वेष रखते थे।

8. लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-3 लाला राम पीडब्लू-2 द्वारा पुलिस स्टेशन, डेरापुर में दर्ज कराई गई थी, जो चिलौली गांव से छह मील दूर है, जहां हत्या दोपहर 2:15 बजे हुई थी। इसके आधार पर चिक एफआईआर प्रदर्श क-22 पीडब्लू-9 हेड मोहर्रिर राम राज सिंह द्वारा तैयार की गई थी। उन्होंने रिपोर्ट संख्या 18 दिनांक 29.06.1976 को दोपहर 02:15 बजे रोजनामचा में भी प्रविष्टि की, जिसकी प्रतिलिपि प्रदर्श क-23 है। लाला

राम के शरीर पर मिली चोटों को भी रोजनामचा में अंकित किया गया था। प्रकरण की जांच पीडब्लू-8 एस.आई. श्री राम सिंह को सौंपी गई। वह तुरंत अपराध स्थल के लिए रवाना हुए। उन्होंने मृतक के मृत शरीर पर जांच रिपोर्ट प्रदर्श क-5 तैयार की। शिव नारायण के शव पर मिले रक्तरंजित धोती प्रदर्श-2, श्री प्रदर्श-3, बनियान प्रदर्श-क-4 को कब्जे में लेकर सीलबंद लिफाफे में रख दिया गया तथा फर्द प्रदर्श-क-11 तैयार की गई। उन्होंने फर्द प्रदर्श क-12 के तहत शव के पास मिले खून से सने लाठी प्रदर्श 5 और बरछी प्रदर्श 6 के ब्लेड को भी कब्जे में लिया। लाठी के तीन टुकड़े किए गए और दोनों को सीलबंद लिफाफे में रखा गया। इसके बाद विवेचक ने अभियुक्त राम प्रताप, भुनेश आदि के घरों की तलाशी ली लेकिन अभियुक्त नहीं मिले। तलाशी के फर्द प्रदर्श क-13 से क-17 तैयार किए गए। इसके बाद विवेचक ने शव प्रदर्श क-18 का चित्र, पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-19 और क-20 क्रमशः, और चालान प्रदर्श क-21 तैयार किया। शव को कपड़े की चादर में सील कर दिया गया शव भेजे जाने के बाद वहाँ पहुँचे पी.डब्लू. 7 उपनिरीक्षक श्री माता प्रसाद ने जाँच का कार्यभार संभाला था। उन्होंने एस.आई. श्री राम सिंह की उपस्थिति में घटनास्थल से खून आलूदा मिट्टी प्रदर्श 7 और सादा मिट्टी प्रदर्श 8 भी एकत्रित की थी और इस संबंध में फर्द प्रदर्श क-8 तैयार की गई थी। एस.आई. श्री राम सिंह सीलबंद बंडलों के साथ थाने लौट आए। एस.आई. श्री माता प्रसाद ने गवाहों के बयान दर्ज किए और नक्शा नजरी प्रदर्श क-7 तैयार किया। उन्होंने घायल श्रीमती विमला देवी और लाला राम को प्रदर्श क-1/1 और क-2/1 पत्र के साथ चिकित्सा परीक्षण के लिए भेजा।

9. पी.डब्लू.9 हेड मोहर्रिर श्री राम राज सिंह ने 29.6.1976 को प्रातः 10:15 बजे रिपोर्ट संख्या 34 पर रोजनामचा में प्रविष्टि की थी, जब उपनिरीक्षक श्री राम सिंह पाँच सीलबंद बंडलों के साथ थाने लौटे थे। रोजनामचा की प्रति प्रदर्श क-24 है। रोजनामचा की प्रविष्टि, रिपोर्ट संख्या 11, जिसकी प्रति प्रदर्श क-25 है, के अनुसार, ये बंडल कांस्टेबल श्री कोमल सिंह के माध्यम से मुख्य चिकित्सा अधिकारी कार्यालय में 22.7.1976 को रासायनिक परीक्षक, आगरा को भेजने के लिए भेजे गए थे। श्री कोमल सिंह द्वारा दायर हलफनामे प्रदर्श क-28 के अनुसार, वे 22.7.1976 को इन बंडलों को पूरी सील के साथ लाए थे। मुख्य चिकित्सा अधिकारी, कानपुर के कार्यालय के लिपिक श्री विक्रम सिंह ने शपथ पत्र प्रदर्श क-27 दाखिल किया है कि उन्हें ये पाँच बंडल प्राप्त हुए थे और उन्होंने उन्हें उसी दिन रासायनिक परीक्षक, आगरा को भेज दिया था। रासायनिक परीक्षक, आगरा की रिपोर्ट प्रदर्श क-29 के अनुसार, खून आलूदा मिट्टी, कमीज़, धोती, बनियान, बरछी का ब्लेड और लाठी के टुकड़े खून से सने पाए गए। सीरम विशेषज्ञ प्रदर्श क-30 की रिपोर्ट के अनुसार, खून आलूदा मिट्टी और बनियान में समूह "0" का मानव रक्त था, बरछी और लाठी पर रक्त विघटित हो गया था।

10. घायल श्रीमती विमला देवी की जांच डॉ. सुरेन्द्र सिंह (पी.डब्लू.-1) द्वारा 29.6.1976 को रात्रि 8 बजे की गई, जब उन्होंने उनके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं और चोट रिपोर्ट प्रदर्श क-1 तैयार की।

1. पीठ पर 8 सेमी x 2 सेमी का चोट का निशान, दाएं स्कैपुला क्षेत्र के नीचे, दिशा में तिरछा।
2. दाहिने हाथ पर दाहिनी कोहनी के जोड़ के ठीक नीचे 7 सेमी x 2 सेमी का चोट का निशान।

3. दाहिने हाथ पर 6 सेमी x 2 सेमी का चोट का निशान, पार्श्वक पहलू पर दाहिनी कलाई के जोड़ से लगभग 4 सेमी ऊपर।
4. दाहिने अग्रबाहु पर कलाई के जोड़ से लगभग 8 सेमी ऊपर मध्य भाग में 9 सेमी x 5 सेमी क्षेत्र में तीन चोट के निशान।
5. दाहिने घुटने के जोड़ से लगभग 8 सेमी ऊपर दाहिनी जांघ पर 6 सेमी x 2 सेमी का चोट का निशान।

चोट संख्या 1, 2, 3 और 5 सामान्य पाई गईं और चोट संख्या 4 को निगरानी में रखा गया, जिसके लिए एक्स-रे कराने की सलाह दी गई। डॉक्टर के अनुसार, चोटें लगभग आधे दिन पुरानी थीं और किसी कुंद हथियार जैसे लाठी से लगी हो सकती हैं।

11. डॉ. आर. प्रकाश पी.डब्ल्यू.3, रेडियोलॉजिस्ट ने 29.6.76 को श्रीमती विमला देवी के दाहिने अग्रबाहु का एक्स-रे लिया था और उन्होंने पाया कि दाहिने रेडियस का निचला 1/3 भाग फ्रैक्चर है जिसके लिए उन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रदर्श केए-4 जारी की थी।

12. डॉ. सुरेन्द्र सिंह पी.डब्ल्यू.1 ने भी 8.30 बजे लाला राम की जांच की और चोट रिपोर्ट प्रदर्श क-2 जारी की, उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:-

1. पीठ के दाहिनी ओर दाहिने स्कैपुलर क्षेत्र के नीचे 6 सेमी x 2 सेमी का चोट का निशान, दिशा में तिरछा।
2. दाहिने ऊपरी हाथ पर 8 सेमी x 1 1/2 सेमी का चोट का निशान, पार्श्वक पहलू पर कंधे के जोड़ से लगभग 7 सेमी नीचे।
3. दाहिनी जांघ पर घुटने के जोड़ से लगभग 10 सेमी ऊपर पार्श्व पहलू पर 6 सेमी x 1 1/2 सेमी का चोट का निशान।

13. उनके अनुसार, ये चोटें भी लगभग आधे दिन पुरानी थीं और संभवतः 29.6.76 को दोपहर 12 बजे लगी होंगी। चोटें साधारण थीं और किसी कुंद वस्तु से लगी थीं।

14. मृतक का शव कांस्टेबल श्री सुभान अली और कांस्टेबल राम पाल सिंह के माध्यम से 29.6.1976 को विधिवत सीलबंद करके शवगृह भेजा गया था, जिसके लिए कांस्टेबल श्री सुभान अली ने अपना हलफनामा प्रदर्श क-26 दाखिल किया है। उन्होंने पोस्टमार्टम के समय चिकित्सा अधिकारी के समक्ष शव की पहचान भी की थी।

15. डॉ. बी.के. जैन पी.डब्ल्यू.-6 ने 30.6.1976 को शाम 4.30 बजे मृतक शिव नारायण के शव का पोस्टमार्टम किया था। उन्होंने पाया कि मृतक की आयु लगभग 40 वर्ष थी। मृत्यु लगभग एक दिन पहले हुई थी। शव में कठोरता आ गई थी और सड़न अभी शुरू हुई थी। उन्होंने शव पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व चोटें पाईं;

- (i) 6.5 सेमी x 4 सेमी x 4 सेमी का कटा हुआ घाव, सिर के आगे और बीच में नाक के पुल से 6 सेमी ऊपर गहरी मस्तिष्क गुहा, नीचे-नीचे ललाट की हड्डी कटी हुई। घाव से मस्तिष्क का पदार्थ बाहर निकला हुआ।
- (ii) 3 सेमी x 1.5 सेमी x सिर के दाहिनी ओर सामने दाहिनी भौंह के ऊपर 4 सेमी नीचे हड्डी का कटा हुआ घाव।
- (iii) दाहिनी आंख की भौंह के ठीक बाहर, दाहिनी ओर के चेहरे पर 2 सेमी x 1 सेमी x मांसपेशी में गहरा घाव।
- (iv) दाहिने कान से 11 सेमी ऊपर दाहिनी ओर सिर पर 3 सेमी x 1.5 सेमी x नीचे की ओर कटी हुई हड्डी का घाव।
- (v) दाहिने कान के ऊपर 4 सेमी. x 1.5 सेमी. x दाहिनी ओर सिर के नीचे कटी हुई हड्डी का घाव।
- (vi) 4 सेमी x 2 सेमी x दाहिनी ओर सिर के नीचे कटी हुई हड्डी, चोट संख्या (v) के पीछे 3 सेमी
- (vii) दाहिने कान के पीछे 3 1/2 सेमी. पर सिर के पीछे 10 सेमी. x 6.5 सेमी. x ओसीसीपिटल हड्डी का कटा हुआ घाव।
- (viii) बाएं कंधे के पीछे और बाएं हाथ के बाहरी हिस्से पर 13 सेमी x 6 सेमी का घिसा हुआ घाव।
- (ix) बायीं कोहनी के पीछे 6 सेमी x 4.5 सेमी का घिसा हुआ घाव।
- (x) बाएं पैर के सामने के भाग में मध्य भाग में 2 सेमी x 1 सेमी x मांसपेशी में गहरा घाव।
- (xi) दाहिनी कोहनी के पीछे 9 सेमी x 6 सेमी का घिसा हुआ घाव।
- (xii) बाईं ओर पीठ पर 19 सेमी x 4 सेमी का तिरछा चोट
- (xiii) दाहिने स्कैपुलर क्षेत्र और पीठ के मध्य तिरछे भाग पर 21 सेमी x 5 सेमी का चोट।
- (xiv) बाएं नितंब पर 12 सेमी x 6 सेमी का चोट।

16. आंतरिक परीक्षण में, चिकित्सा अधिकारी ने पाया कि चोट संख्या 1 से 7 के कारण ललाट, कनपटी और दाहिनी पार्श्विका तथा पश्चकपाल हड्डियाँ कटी हुई थीं। मस्तिष्क कटकर बाहर आ रहा था। पेट खाली था। छोटी आंत में थोड़ा पचा हुआ भोजन और बड़ी आंत में मल था। डॉक्टर की राय में, मृत्यु का कारण मृत्युपूर्व चोटों के कारण आघात और रक्तस्राव था। डॉ. जैन ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्शक-6 तैयार की और उसे प्रमाणित किया।

17. जांच पूरी करने के बाद, सब इंस्पेक्टर श्री माता प्रसाद पी.डब्ल्यू.7 ने अभियुक्त जिया लाल उर्फ दादू, राजमुन, अवधेश, देवेंद्र और श्रीमती राम प्यारी के खिलाफ आरोप पत्र प्रदर्शक-9 को 28.8.1976 को प्रस्तुत किया। उन्हें मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कानपुर देहात द्वारा आदेश दिनांक 26.3.1977 के तहत सत्र न्यायालय में अपना विचारण कराने के लिए सुपुर्द किया गया था। पुलिस धारा 81 दं.प्र.सं. के तहत उद्घोषणा जारी करने और राम प्रताप, भुनेश, ललौना उर्फ भानु प्रकाश और शिव दास की चल संपत्तियों की कुर्की के साथ-साथ कुर्की के वारंट जारी करने के बावजूद अन्य आरोपियों को गिरफ्तार नहीं कर सकी और परिणामस्वरूप, अभियुक्त राम प्रताप, भुनेश, भानु प्रकाश उर्फ ललौना, कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन के खिलाफ फरार के रूप में आरोप पत्र प्रदर्शक-10 प्रस्तुत किया गया। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपने दिनांक 28.10.1977 के आदेश के तहत उन पर सत्र न्यायालय में मुकदमा चलाने का आदेश दिया था।

18. दोनों सत्र मुकदमों को एकीकृत कर दिया गया और एस.टी. संख्या 75/1977 को प्रमुख मामला बनाया गया। राजमुन को छोड़कर सभी अभियुक्तों पर भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 302/149, 325/149 और 323/149 के तहत आरोप लगाए गए, जिनमें उन्होंने खुद को निर्दोष बताया। मुकदमे के दौरान, अभियुक्त राजमुन को जमानत मिल गई और उसके प्रकरण को एस.टी. संख्या 75/1977 से आदेश दिनांकित 22.7.1980 के तहत एस.टी. संख्या 75/1977 के तहत अलग करना पड़ा। अभियुक्तों पर भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 325/149, 302/149, 323/149 और 148 के अंतर्गत आरोप लगाए गए।

19. अपने प्रकरण के समर्थन में अभियोजन पक्ष ने कुल नौ गवाहों की परीक्षा ली। इनमें से डॉ. सुरेन्द्र सिंह पी.डब्लू. 1, डॉ. आर. प्रकाश, रेडियोलॉजिस्ट, पी.डब्लू. 3 और डॉ. बी.के. जैन पी.डब्लू. 6 चिकित्सा अधिकारी हैं और अभियोजन पक्ष का मामला बताते समय उनके साक्ष्य का उल्लेख पहले ही ऊपर किया जा चुका है। उप-निरीक्षक श्री माता प्रसाद पी.डब्लू. 7 और उप-निरीक्षक श्री राम सिंह पी.डब्लू.-8 विवेचक हैं और पी.डब्लू.-9 हेड मोहरीर श्री राम राज सिंह एक औपचारिक गवाह हैं जिन्होंने चेक एफ.आई.आर. तैयार की थी और रोजनामचा में प्रविष्टियां की थीं। पी.डब्लू.-2 श्री लाला राम, मृतक का भाई, पी.डब्लू.-4 श्रीमती विमला देवी, मृतक की पत्नी और पी.डब्लू.-5 जगदीश प्रसाद प्रत्यक्षदर्शी हैं। अभियुक्तगण ने अपने बचाव में पांच गवाहों से भी परीक्षा ली, जिनमें अभियुक्त राम प्रताप भी शामिल है, जिसकी उसके अनुरोध पर परीक्षा ली गई।

20. अब हम अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षित चरमदीय गवाहों के साक्ष्य का उल्लेख कर सकते हैं।

21. अभियोजन पक्ष का समर्थन करते हुए, मृतक शिव नारायण के भाई श्री लाला राम पी.डब्लू.2 ने यह बयान दिया है कि उनके गाँव के राम गोपाल की हत्या कर दी गई थी और अभियुक्त राम प्रताप, भुनेश, अवधेश, दादू, राजमुन व अन्य पर उस हत्या का मुकदमा चलाया गया था, जिसके लिए उन्होंने गवाही दी थी और इन अभियुक्तों को सत्र न्यायालय द्वारा दोषी ठहराकर 20 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। उनके भाई की हत्या के समय, इन अभियुक्तों को उनकी अपील के लंबित रहने के दौरान माननीय उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा किया गया था। ये अभियुक्त उनसे और उनके परिवार के सदस्यों से दुश्मनी रखते थे।

22. साक्षी ने आगे यह भी बयान दिया कि लगभग एक वर्ष आठ महीने पहले, लगभग 12 बजे दोपहर को उसका भाई शिव नारायण अपनी दुकान से लौट रहा था। वह भी उसके पीछे-पीछे आ रहा था। जब उसका भाई जगदीश नारायण के घर के सामने पहुंचा तो अभियुक्त राम प्रताप, भुनेश, अवधेश, बरछी (भाला) लेकर, अभियुक्त दादू, राजमुन ललौना, तब्बल लेकर और अभियुक्त शिव दास, झुन्ना, छुट्टन और श्रीमती राम प्यारी, लाठियां लेकर वहां आ गए। वह यह नहीं देख सका कि वे किस तरफ से आए थे। अभियुक्तों ने उसके भाई पर बरछी, तब्बल और लाठियों से हमला करना शुरू कर दिया। उसके भाई ने शोर मचाया। साक्षी उसे बचाने के लिए दौड़े। उसके भाई की पत्नी श्रीमती विमला देवी भी वहां आ गई। जगदीश नारायण, नन्हे, अशर्फी लाल, महादेव, राम चंदर भी आ गए थे। अभियुक्तों ने साक्षी और श्रीमती विमला देवी पर लाठियों से हमला किया।

साक्षी के हस्तक्षेप करने पर अभियुक्त पूर्व दिशा की ओर भाग गया। उसके भाई की मौके पर ही मृत्यु हो गई। श्रीमती विमला को भी चोटें आई थीं। साक्षी ने आगे यह भी बयान दिया कि उसने रिपोर्ट प्रदर्श क-3 तैयार की थी और वह थाना डेरापुर गया था, जहाँ इसे दर्ज किया गया था। उसने घटना के समय मृतक द्वारा पहने गए कपड़े शर्ट, धोती और बनियान प्रदर्श 1 से 3 के रूप में पहचान की। उसने आगे यह भी बयान दिया कि घटना के समय, खून जमीन पर गिरा हुआ था जहाँ उसका भाई घातक चोट के बाद गिर गया था। उसने आगे यह भी बयान दिया कि शव के पास एक लाठी और बरछी का ब्लेड मिला था, जो खून से सना हुआ था। साक्षी ने यह भी कहा कि अभियुक्त ललौना अभियुक्त राम प्रताप का सगा भाई था और अभियुक्त शियोदास अभियुक्त राम प्रताप का चचेरा भाई था। झुन्ना और छुट्टन भी राम प्रताप के रिश्तेदार थे। अन्य सभी अभियुक्त राम प्रताप के पक्ष के हैं और उनके समर्थक थे।

23. अपने जिरह में, गवाह ने कहा है कि जगदीश नारायण, जो इस प्रकरण में अभियोजन पक्ष का गवाह था, अभियुक्त राम प्रताप आदि के खिलाफ पहले के हत्या के मुकदमे का सूचक था और उक्त हत्या के मुकदमे का मृतक राम गोपाल, जगदीश नारायण का भाई था। अभियुक्त राम प्रताप गाँव का प्रधान था लेकिन उसे नहीं पता था कि वह लाडपुर पाड़ के एक स्कूल में प्रिंसिपल था या नहीं। उन्होंने यह भी कहा कि उनके भाई की हत्या से पहले भी, अभियुक्तों ने उनका घेराव करने की कोशिश की थी। उन्होंने यह भी दावा किया कि उन्होंने पुलिस अधीक्षक कानपुर को एक सूचना भेजी थी, लेकिन प्रकरण को आगे नहीं बढ़ाया गया। उन्होंने स्वीकार किया कि श्री कालिका ने उनके, उनके भाई रज्जन और गवाह जगदीश नारायण के खिलाफ धारा 307 भा.दं.सं. के तहत शिकायत दर्ज की थी, जिन्होंने दावा किया था कि यह एक झूठी शिकायत थी और इसे खारिज कर दिया गया था। उन्होंने स्वीकार किया कि हृदय नारायण के खिलाफ धारा 324 भा.दं.सं. के तहत एक प्रकरण में वह एक गवाह के रूप में पेश हुए थे।

24. उन्होंने आगे कहा कि उनकी दुकान घटनास्थल से लगभग एक फर्लांग दूर सड़क किनारे थी। गाँव की ओर आते समय, कुछ हिस्सों में दोनों ओर खेत थे, खलियान थे। हालाँकि, दुकान आबादी में थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि दुकान से उनके घर तक रास्ते में कोई झाड़ियाँ थीं। गवाहों ने आगे कहा कि उनका भाई जगदीश नारायण के भाई राम गोपाल की हत्या का चश्मदीद गवाह नहीं था, लेकिन उसका भाई इस प्रकरण में पैरवी करता था। उन्होंने आगे कहा कि उनका भाई उन पर गवाही देने और सच्चाई बताने के लिए दबाव डालता था। उन्होंने स्वीकार किया कि इस तथ्य का उल्लेख उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं किया था, लेकिन उन्होंने दावा किया कि उन्होंने इसके बारे में जाँच अधिकारी को बताया था। हालाँकि, धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत उनके बयान में इसका कोई उल्लेख नहीं था। गवाह पुलिस अधीक्षक को अभियुक्तों द्वारा घेराव करने के प्रयासों के संबंध में आवेदन देने की तारीख या महीना नहीं बता सका और न ही उन घटनाओं के गवाहों के नाम बता सका। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने एफआईआर में इसका कोई जिक्र नहीं किया था। उन्हें याद नहीं कि उन्होंने जाँच अधिकारी को इस बारे में बताया था या नहीं, लेकिन उन्होंने आवेदन की प्रति उन्हें नहीं दी। उन्होंने यह भी गवाही दी कि चिलौली गाँव में उनका और उनके भाई का एक ही घर था और वे दोनों संयुक्त रूप से रहते थे। घटना के समय ज़मीन उनके पिता के नाम थी। हालाँकि उनके पिता की मृत्यु 3-4

साल पहले हो गई थी, लेकिन उनके भाई की हत्या के बाद चकबंदी के दौरान ही उनके चक अलग कर दिए गए थे। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने रूरा में एक अलग घर बनवाया था और मृतक ने बब्बू शुक्ला से अपने नाम से ज़मीन खरीदी थी, लेकिन उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वे और उनका भाई इस प्रकरण की घटना से पहले से अलग रह रहे थे। उन्होंने स्वीकार किया कि रूरा में भी उनका राशन कार्ड था, जबकि उनके भाई का चिलौली गाँव में राशन कार्ड था। उनकी पान और सिगरेट आदि की एक छोटी सी दुकान थी। उन्होंने स्वीकार किया कि उन पर और उनके भाई पर शिवदत्त बाजपेयी ने मुकदमा चलाया था। यह एक झूठा मामला था और उन्हें बरी कर दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि रिपोर्ट लिखने से पहले उन्हें बरछाई की लाठी और ब्लेड का ध्यान नहीं आया था, लेकिन रिपोर्ट लिखने के बाद जब वे घर से बाहर निकले तो उन्हें इसका एहसास हुआ। उन्होंने रिपोर्ट दर्ज कराने से पहले इसे रिपोर्ट में शामिल करना ज़रूरी नहीं समझा। उन्होंने दावा किया कि उनकी पीठ और कमर पर चोटें आई थीं। हालाँकि अस्पताल पुलिस स्टेशन से सिर्फ 40 मीटर की दूरी पर था, फिर भी रिपोर्ट दर्ज होने के तुरंत बाद उन्हें मेडिकल जाँच के लिए नहीं भेजा गया। वे जाँच अधिकारी के साथ आए थे और देर शाम उनकी मेडिकल जाँच हुई।

25. पी.डब्लू-1 ने यह भी बताया कि घटना के समय जगदीश बाबा घटनास्थल से 12-14 कदम की दूरी पर थे। उन्होंने और नन्हे ने, जो उतनी ही दूरी पर थे, अभियुक्तों को मृतक को पीटने से मना किया था। अभियुक्तों ने जगदीश पर हमला करने का प्रयास नहीं किया था। मारपीट केवल आधे मिनट तक हुई थी। तब्बल लगभग 4 अंगुल चौड़ा था और कुल्हाड़ी (कुल्हाड़ी) के आकार का था। सभी तब्बल एक ही आकार के थे। सभी अभियुक्तों ने चारों ओर से वार किया था। बल्लम 4-5 अंगुल के आकार का था। घटना के बाद श्रीमती विमला देवी रोई थीं, परन्तु उन्होंने अपने पति का सिर गोद में नहीं लिया था, न ही शव को गले लगाया था। श्रीमती विमला देवी या साक्षी के कपड़े मृतक के खून से सने नहीं थे। गवाही देने के कारण उत्पन्न रंजिश के अतिरिक्त अभियुक्त अन्य कारणों से भी उनसे रंजिश रखता था। राम प्रताप ने भी धारा 379 भा.दं.सं. के तहत मामला दर्ज कराया था जिसमें उन्हें बरी कर दिया गया था। उनके पास चुलौली में तीन घर थे। एक घर बेच दिया गया था। उनके पास अभियुक्त दादू के घर से सटा हुआ एक घर है, और तीसरे घर में उनकी दुकान थी। राम गोपाल की हत्या के समय, उसके माता-पिता फाटक वाला घर में रहते थे और चूँकि वे अच्छे स्वास्थ्य में नहीं थे, इसलिए वह उनके साथ उसी घर में रहता था। लेकिन आम तौर पर, वह अभियुक्त दादू के घर से सटे घर में रहता था। अभियुक्त दादू की ओर से अपने जिरह में गवाह ने स्वीकार किया है कि दादू के घर में, केवल दो सदस्य थे, अभियुक्त दादू और उनकी माँ श्रीमती राम प्यारी। दादू की उनके साथ कोई दुश्मनी नहीं थी, सिवाय राम गोपाल की हत्या के प्रकरण में उनके खिलाफ गवाही देने के। उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि दादू और उनके भाई को सजा दिलाने के उद्देश्य से फंसाया गया था

26. पी.डब्लू-4 विमला देवी, जो मृतक शिव नारायण की पत्नी हैं। उन्होंने अपने साक्ष्य में कहा कि घटना चार वर्ष चार माह पूर्व दोपहर के समय हुई थी, वह अपने घर में थीं और अपनी लगभग ढाई वर्ष की नवजात बच्ची को सुलाने का प्रयास कर रही थीं। जब उन्होंने अपने पति शिव नारायण की चीखें सुनीं, जो चिल्ला रहे थे कि उन्हें मारा जा रहा है, तो वह घर से बाहर भागीं। उन्होंने अभियुक्तों के चिल्लाने की आवाज भी सुनी।

जब साक्षी व अन्य लोग दादू के घर के दरवाजे पर पहुंचे, तो अभियुक्तगण श्रीमती राम प्यारी और झुन्ना, जो साक्ष्य के समय न्यायालय में उपस्थित थे, ने उन्हें पीटना शुरू कर दिया। उन्होंने देखा कि अभियुक्तगण दादू उर्फ जिया लाल, ललौना, शिव दास, भुनेश, अवधेश, राम प्रताप, छुट्टन, झुन्ना और श्रीमती राम प्यारी तथा राजमन उसके पति पर हमला कर रहे थे। ललौना, दादू और राजमन के पास तबबल थे, जबकि भुनेश, अवधेश और राम प्रताप के पास बरछाई थी, शेष अभियुक्त लठैत थे। उसने यह भी बयान दिया कि उसका देवर लाला राम पश्चिम दिशा से आया था। अभियुक्त शियो दास और छुट्टन ने लाला राम पर हमला किया था। उसके पति पर जगदीश नारायण के दरवाजे के सामने हमला किया गया था और जगदीश नारायण और नन्हे जगदीश के घर के सामने मौजूद थे। 4-5 अन्य अभियुक्त जो उसके गांव के नहीं थे, वे भी आए थे। जब अभियुक्त पूर्व दिशा की ओर भागे तो उन सभी ने शोर मचाया। उसका पति मौके पर गिर गया था और तुरंत मर गया था। उसके हाथ पर, उसके ऊपरी पैर पर, उसकी पीठ पर और कुछ अन्य स्थानों पर चोटें आई थीं, जो श्रीमती राम प्यारी और झुन्ना के कारण आई थीं। उसका देवर लाला राम पुलिस स्टेशन डेरापुर में रिपोर्ट दर्ज कराने गया था सब इंस्पेक्टर ने शव की जांच की और शव को घटनास्थल से भेज दिया। इसके बाद एक अन्य सब इंस्पेक्टर वहां पहुंचे जिन्होंने गवाह और उसके बहनोई के बयान दर्ज किए। अस्पताल में उसकी मेडिको लीगल जांच की गई और उसके दाहिने हाथ पर एक अस्थायी मुद्रा बनाई गई, रात के 9:00 बजे थे, इसलिए उसे एक पुलिस कर्मी के साथ उसके घर वापस भेज दिया गया। पुलिस उसे अगले दिन सुबह रुसला अस्पताल ले गई; लेकिन बिजली कटौती के कारण उसके हाथ का एक्स-रे नहीं हो सका। इसके बाद वह उस जगह गई जहां पोस्टमार्टम हो रहा था। उसे उसके बहनोई (जेठ) ने एक व्यक्ति के साथ शास्त्री नगर स्थित उसके मायके भेज दिया। उसके बाद किसी तारीख को उसके हाथ का एक्स-रे कराया गया। अभियुक्त अपने पति से दुश्मनी रखता था क्योंकि वह अपने बड़े भाई राम गोपाल की हत्या में गवाह था।

27. साक्षी ने अपनी जिरह में कहा कि उसकी जानकारी में अभियुक्तों की कोई और दुश्मनी नहीं थी, सिवाय इसके कि उसके पति के भाई ने राम गोपाल की हत्या के मुकदमें में अभियुक्त राम प्रताप आदि के विरुद्ध गवाही दी थी। उसने यह भी बताया कि उसका पति खेती-बाड़ी करता था और उसने सड़क किनारे एक दुकान लगा रखी थी। उसका पति और लाला राम एक ही मकान में संयुक्त रूप से रहते थे और ज़मीन पर संयुक्त रूप से खेती करते थे। सड़क किनारे वाली दुकान भी दोनों भाइयों की थी। उसके सास-ससुर फाटक वाला मकान में रहते थे, लेकिन खाना केवल घटनास्थल के पास स्थित उनके घर में ही बनता था। कभी-कभी, उसका पति दुकान पर ही सोता भी था।

28. पी.डब्ल्यू-4 ने आगे कहा कि उसे और लाला राम को जगदीश के घर के सामने नहीं पीटा गया था। उसे याद नहीं आ रहा कि उसने जाँच अधिकारी को जगदीश नारायण के घर के सामने उनकी पीटाई के बारे में बताया था या नहीं, हालाँकि जाँच अधिकारी के सामने उसका बयान यह है कि गवाह लाला राम और उसे खुद जगदीश नारायण के घर के सामने पीटा गया था। जब लाला राम मृतक को बचाने आया, तो पश्चिम दिशा से चार-पाँच व्यक्ति आए और लाला राम चार-पाँच कदम पीछे हट गया। वह फिर आगे बढ़ा, इस पर अभियुक्त

भाग गए। जब लाला राम पीछे मुड़ा, तो उसका मुँह पश्चिम दिशा की ओर था और वह बाने और छोटे के घर तक गया था जो एक-दूसरे से सटे हुए थे।

29. पी.डब्लू.-4 ने आगे बताया कि बरछी नुकीली नहीं थी, बल्कि चपटी थी और 4-5 अंगुल लंबी और एक-दो अंगुल चौड़ी थी। तबबल 4-5 अंगुल चौड़ा और 2-3 अंगुल गहरा था। घटनास्थल पर पहुँचने के बाद आधे मिनट तक मारपीट हुई। उसने अपने पति के शव को गले नहीं लगाया था, बल्कि उसके पास बैठकर रोई थी। उसके कपड़ों पर उसके खून के धब्बे नहीं थे।

30. इसके बाद उसने बताया कि उसके पति सुबह 7:30 बजे शौच के बाद लाला राम के साथ दुकान पर गए थे। दुकान में मिट्टी डाली जा रही थी। उसने खुद बताया था कि उसके पति बिना कुछ खाए दुकान पर गए थे। उसने अपनी 10 और 8 साल की बेटियों को दुकान पर यह बताने के लिए भेजा था कि सुबह 11:30 बजे खाना तैयार है। लाला राम की पत्नी उन दिनों अपने मायके गई हुई थी। शिव दास और छुट्टन ने लाला राम की पिटाई की थी, जब वह दुकान की तरफ से आ रहा था। उसे याद नहीं कि उसने यह बात जाँच अधिकारी को बताई थी या नहीं, लेकिन दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत उसके बयान में यह नहीं लिखा है कि लाला राम को शिव दास और छुट्टन ने पीटा था।

31. साक्षी ने बचाव पक्ष के इस आरोप का खंडन किया कि उसके पति पर हमला उस समय हुआ जब वह शौच के लिए जा रहा था या अंधेरे में आराम करने के बाद लौट रहा था। उसने बचाव पक्ष के इस आरोप का भी खंडन किया कि उसने अपने देवर के कहने पर झूठी गवाही दी थी। उसने स्पष्ट किया कि उसने स्वयं घटना देखी थी। उसके पाँच बच्चे हैं और वह झूठ नहीं बोल सकती, उसके बच्चे उसके सामने हैं। श्रीमती राम प्यारी उस समय स्वस्थ थीं, लेकिन अब वह वृद्ध हो गई हैं। उसने इस आरोप का भी खंडन किया कि उसने अपनी चोटें झूठी बनवाई हैं। घटना वाले दिन तेज धूप थी। साक्षी और उसके देवर व पति के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण थे। लाठी और पोला उसके पति के मृत शरीर के पास पड़े थे जो उत्तर दिशा की ओर पड़ा था। वह एक पुलिया के पास लेटा हुआ था, उसके पैर पूर्व की ओर और सिर पश्चिम की ओर था।

32. अंतिम प्रत्यक्षदर्शी पी.डब्लू.-5 जगदीश नारायण ने बयान दिया था कि वह अपने घर के सामने बैठा था। नन्हे तिवारी उसके साथ बैठा था। उसने बयान दिया कि लगभग दोपहर के समय, मृतक पश्चिम दिशा से आ रहा था और उसके घर की ओर बढ़ रहा था और साक्षी के घर के सामने पहुँचा ही था कि अभियुक्तगण, राजमुन के साथ, अभियुक्त दादू के घर से बाहर आए और मृतक पर अपने हथियारों से हमला कर दिया। साक्षी ने अभियुक्तगण के पास वही हथियार होने का आरोप लगाया जो अन्य प्रत्यक्षदर्शियों पी.डब्लू.-2 लाला राम और पी.डब्लू.-4 विमला देवी के बयानों में दर्शाए गए हैं।

33. गवाह के अनुसार जब मृतक ने शोर मचाया तो उसकी पत्नी श्रीमती विमला देवी घर से बाहर आई और जब वह अभियुक्त दादू के घर के पास पहुंची तो श्रीमती राम प्यारी ने उन पर हमला कर दिया। लाला

राम मृतक के पीछे आ रहा था। उसने अभियुक्तों को चुनौती दी, जिस पर छोटे के दरवाजे के पास शिव दास और छुट्टन ने उस पर हमला कर दिया। महादेव, अशर्फी, राम चंदर भी पश्चिम की ओर से आए थे। इन लोगों के साथ-साथ गवाह नन्हे ने भी अभियुक्तों से हत्या न करने को कहा। शिव नारायण उर्फ रज्जन ने उसे छोड़ देने की विनती की, जिस पर अभियुक्त पूर्व दिशा की ओर भाग गए। शिव नारायण की मौके पर ही मृत्यु हो गई थी। उसने यह भी कहा था कि नन्हे, महादेव, अशर्फी और राम चंदर ने अभियुक्तों के साथ मिलीभगत की है और वे चाहते हैं कि अभियुक्त बरी हो जाएं। सूचक लाला राम पुलिस के साथ लगभग 03:30 बजे वापस आया, गवाह ने पंचायतनामा पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए, उन्होंने यह भी कहा कि सब इंस्पेक्टर ने पंचायतनामा के बाद घटनास्थल का दौरा किया और उनके बयान दर्ज किए। जिरह में गवाह ने कहा है कि वह अपने भाई राम गोपाल की हत्या में एक चश्मदीद गवाह और सूचक था। राज नारायण उस प्रकरण में चश्मदीद गवाह नहीं है और नन्हे वर्तमान प्रकरण में एक गवाह राज नारायण का सगा भाई है। राम स्वरूप राम गोपाल की हत्या के प्रकरण में गवाह था, उसने अपने भाई राम गोपाल की हत्या के प्रकरण में चश्मदीद बयान दिया था। वह उस प्रकरण में भी सूचक था, जिसमें राम प्रताप, भुनेश, अवधेश, जिया लाल उर्फ दादू, राजमोन के अलावा, रामेश्वर और जगन्नाथ (कुल सात व्यक्ति) पर उसके भाई की हत्या का मुकदमा चलाया गया था। पांच को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और दो को दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। गवाहों ने स्वीकार किया कि 20 साल पहले दादू के पिता मुन्नी लाल और गवाह के चचेरे भाई हर प्रसाद के बीच दादू के वर्तमान कब्जे वाले मकान को लेकर मुकदमा हुआ था, जिसमें हर प्रसाद हार गया था। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि वह दादू का मकान हड़पना चाहता था और कहा कि उसके परिवार में गवाह के अलावा कोई नहीं है।

34. उन्होंने आगे बताया कि घटना के लगभग एक घंटे पहले से वह अपने घर की देहरी पर बैठे थे और नन्हे चार-पाँच कदम दूर चबूतरे पर बैठा था। रास्ते से कई लोग गुज़र रहे थे। उन्होंने दावा किया कि हत्या से डेढ़ या दो घंटे पहले, अभियुक्त अलग-अलग तरीके से दादू के घर में गए थे और अपने हथियार लेकर आए थे। उन्होंने अभियुक्तों से पूछा था कि वे हथियार लेकर क्यों जा रहे हैं। उन्हें कुछ भी गड़बड़ होने का संदेह नहीं था। उन्होंने आगे बताया कि हालाँकि वह अभियुक्तों से डर गए थे, लेकिन उन्होंने किसी अन्य गाँव वाले या नन्हे को अभियुक्तों के जमावड़े के बारे में नहीं बताया था। उन्होंने शिव नारायण को दस-पंद्रह कदम की दूरी से आते देखा था, लेकिन उन्होंने उसे पुकारकर आगाह नहीं किया। वह यह सोचकर अपनी देहरी में ही रहे कि अगर उन्हें कोई खतरा हुआ तो वह घर के अंदर चले जाएँगे। जब अभियुक्तों ने शिव नारायण पर हमला करना शुरू किया, तो उन्होंने केवल अभियुक्तों को ऐसा करने से मना किया और अपनी जान बचाने का कोई और प्रयास नहीं किया। विमला देवी को दादू के दरवाजे के सामने, अपने पति से सात-आठ कदम की दूरी पर, पीटा गया। बरछी का फल लगभग चार अंगुल लंबा और तीन अंगुल चौड़ा था। तबबल पाँच अंगुल का, कुल्हाड़ी की तरह गोल था।

35. उसने यह भी गवाही दी कि मृतक महाजन था जबकि गवाह ब्राह्मण है। मृतक के पास कुछ ज़मीन थी और वह खुद खेती करता था। मृतक के पास रात में फसल की रखवाली के लिए कोई आम का पेड़ नहीं था। उसके खेत गाँव के दो या तीन तरफ़, लगभग 6 से 8 फ़र्लांग की दूरी पर स्थित थे।

36. गवाह ने यह भी कहा कि लाला राम के भाई चुन्नी की बचपन में ही मृत्यु हो गई थी और सावित्री नाम की एक महिला ने चकबंदी अधिकारियों के समक्ष आपत्ति दर्ज कराई थी, जिसे खारिज कर दिया गया था। उसने आगे बताया कि राम गोपाल की हत्या के बाद से ही अभियुक्त राम प्रताप उपद्रव मचा रहा था। उसने स्वीकार किया कि वह लाला राम द्वारा निष्पादित फाटक वाला हाउस के बैनामे का गवाह था और उसने धारा 145 दं.प्र.सं. के अंतर्गत कार्यवाही में साक्ष्य दिया था, जिसमें अभियुक्त राम प्रताप को विपक्षी पक्षकार बनाया गया था। उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने चुनाव में अभियुक्त राम प्रताप का विरोध किया था।

37. पी.डब्लू.-6 डॉ. बी.के. जैन ने कहा है कि चोट संख्या 2, 4, 5, 6 और 7 किसी भारी धारदार हथियार, जिसमें तब्लू भी शामिल है, से लगी हो सकती हैं और चोट संख्या 3 और 10 किसी धारदार हथियार से लगी हो सकती हैं जिसकी धार लगभग 2 से.मी. हो। ऐसे उपकरणों में बल्लम और बरछी भी शामिल हैं। उनकी राय में, चोट संख्या 8, 9 और 14 किसी कुंद हथियार, जैसे लाठी, से लगी हो सकती हैं। इन चोटों से तत्काल मृत्यु संभव थी और ये चोटें 29.06.1976 को दोपहर लगभग 12:00 बजे लगी होंगी।

38. डॉ. बी.के. जैन पीडब्लू-6 ने अपनी जिरह में कहा है कि उनके द्वारा दी गई मृत्यु का समय, कठोरता और विघटन के आधार पर है। उन्होंने कहा कि कठोरता ऊपरी अंगों में 18 से 36 घंटों के बीच हुई और कठोरता के गुजर जाने के बाद विघटन शुरू होता है। उन्होंने समय का अनुमान इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए लगाया है कि यह जून का महीना था और कानपुर की जलवायु थी। उन्होंने रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं किया था कि शरीर के किस हिस्से में विघटन शुरू हुआ था। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें कोई छिद्रित या भेदने वाला घाव नहीं मिला था और बरछी और बल्लम छेदने के हथियार थे। उन्होंने इस बात से इंकार किया कि मृत्यु 36 घंटे पहले हो सकती है। चोट संख्या 1, 2, 4, 5, 6 और 7 काटी गई थीं। उन्होंने मोदी की इस टिप्पणी से सहमति जताई कि घाव का आकार और माप आमतौर पर चोटों को मोड़ने में इस्तेमाल किए गए हथियार के अनुरूप होता है। उन्होंने यह भी बताया कि चोटें संख्या 11, 12, 13, 14 और 8 शरीर के पिछले हिस्से पर थीं और ये किसी खुरदरी और सख्त सतह पर गिरने के कारण हो सकती हैं।

39. उपनिरीक्षक श्री माता प्रसाद पीडब्लू-7 ने कहा है कि उन्होंने नक्शा नजरी या केस डायरी में वह स्थान नहीं दर्शाया है जहां से गवाहों ने घटना देखी थी। उन्होंने अलग से वे स्थान भी नहीं दिखाए हैं जहां लाला राम और श्रीमती विमला देवी पर हमला किया गया था। उन्होंने स्वीकार किया कि अभियुक्त राम प्रताप के चाचा श्री राजेश्वर प्रसाद दीक्षित द्वारा आवेदन दिनांकित 02.07.1976 को उन्हें जांच के लिए भेजा गया था और राम अंधार और शीतल प्रसाद द्वारा शपथ पत्र भी दायर किए गए थे। उन्हें जांच के दौरान पता चला था कि अभियुक्त शियो दास चीनी का व्यापारी था और आपूर्ति निरीक्षक का बयान भी उसके द्वारा दर्ज किया गया

था। गवाह ने अपने जिरह के दौरान न्यायालय द्वारा की गई जांच में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 82 दं.प्र.सं. के तहत अभियुक्त राम प्रताप, भुनेश और ललौना के खिलाफ 09.07.1976 को जारी की गई उद्घोषणा को भी साबित किया, उन्होंने यह भी गवाही दी कि उन्होंने इन अभियुक्तों की संपत्ति की कुर्की फर्द प्रदर्श सी-2 के तहत 05.09.1981 को की थी। अभियुक्त राम प्रताप, भुनेश, ललौना शियो दास के खिलाफ जारी वारंट और प्रदर्श 3 से 7 और उनके द्वारा की गई रिपोर्ट भी उनके द्वारा साबित की गई है। उन्होंने अभियुक्त शियो दास की संपत्ति की कुर्की की फर्द प्रदर्श सी-10 को भी साबित कर दिया है और उनकी अनुपालन रिपोर्ट सी-9/1 और सी-9/2 भी साक्षी द्वारा साबित कर दी गई है। अभियुक्त छुट्टन की संपत्ति भी फर्द सी-11 के तहत 05.09.1976 को कुर्क की गई थी। अभियुक्त के अधिवक्ता द्वारा की गई जिरह में उन्होंने कहा कि उन्होंने कुर्क की गई संपत्ति की बिक्री की कोई रिपोर्ट तैयार नहीं की थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि अभियुक्तगण के घरों की तलाशी नहीं ली गई या अभियुक्त राम प्रताप फरार नहीं हुआ।

40. अपने आगे के प्रतिपरीक्षण में, साक्षी ने कहा है कि लाला राम ने उसे यह नहीं बताया था कि मृतक शिव नारायण राम गोपाल की हत्या के प्रकरण में पैरवी करता था, या वह लाला राम से गवाही देने के लिए कहता था। लाला राम ने उसे यह भी नहीं बताया था कि उसने इस हत्या से पहले पुलिस अधीक्षक को कोई आवेदन दिया था। लाला राम ने अपने बयान में यह भी नहीं कहा था कि अभियुक्त द्वारा लाठी और बरछी का ब्लेड मौके पर छोड़ दिया गया था। उसने यह भी नहीं बताया था कि मृतक आगे चल रहा था, जबकि वह उसके पीछे चल रहा था। श्रीमती विमला देवी ने उसे बताया था कि जगदीश नारायण के घर के सामने उस पर और लाला राम पर भी हमला हुआ था। उसने यह भी नहीं बताया था कि श्रीमती रमा प्यारी और छुन्ना ने उसे पीटा था, न ही उसने यह बताया था कि लाला राम को छुट्टन और शिव दास ने पीटा था। श्रीमती विमला देवी ने उसके सामने यह भी नहीं कहा था कि अभियुक्त ने कहा था कि मृतक को मृत्युदंड दिया जाना चाहिए अन्यथा वह भी राम गोपाल जैसा बयान देगा।

41. अभियोजन पक्ष ने अपर सत्र न्यायाधीश, कानपुर श्री एम. वहाजुद्दीन द्वारा पारित निर्णय दिनांकित 21.12.1972 की प्रमाणित प्रति भी दाखिल की है, जिसमें अभियुक्तगण राम प्रताप, भुनेश, जिया लाल, अवधेश तथा राजमुन सहित तीन अन्य, जिनका मामला पृथक कर दिया गया है, को धारा 302/149 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत दोषी करार देते हुए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, साथ ही राम गोपाल की हत्या के लिए धारा 147/148 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत सजा भी सुनाई गई थी।

42. अभियोजन साक्ष्य के समापन पर अभियुक्तगणों से धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत पूछताछ की गई, जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि अभियुक्त राम प्रताप, अवधेश, भुनेश और दादू (तथा राजमुन, जिसका प्रकरण अलग कर दिया गया था) पर एस.टी. संख्या 76/76 के तहत राम गोपाल की हत्या का मुकदमा चलाया गया था और सत्र न्यायालय द्वारा उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, किन्तु उन्होंने दावा किया कि अपील में उनकी सजा घटाकर छह वर्ष कर दी गई थी। अभियुक्तगणों ने यह भी स्वीकार किया कि मृतक के भाई लाला राम ने उस प्रकरण में गवाही दी थी, किन्तु उन्होंने इस बात से इनकार किया कि मृतक ने उस

प्रकरण में पैरवी की थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि अभियुक्त राम प्रताप, अवधेश, भुनेश और ललौना सगे भाई हैं और शिव दास उनका चचेरा भाई है। श्रीमती राम प्यारी ने कहा कि अभियुक्त छुट्टन और झुन्ना राम प्रताप आदि से सम्बन्धित थे। उन्होंने दावा किया कि उनका और उनके पुत्र दादू का अन्य अभियुक्तों से कोई सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि राम गोपाल की हत्या के समय से ही उनकी अभियुक्तों से दुश्मनी थी। उन्होंने स्वीकार किया कि 29.06.1976 को राम गोपाल की हत्या के लिए सज़ा पाए अभियुक्त अपनी अपील लंबित रहने तक ज़मानत पर थे। उन्होंने 29.06.1976 को दोपहर लगभग 12 बजे जगदीश नारायण के घर के सामने शिव नारायण की हत्या करने या मृतक को बचाने की कोशिश करने पर श्रीमती विमला देवी या लाला राम को चोट पहुँचाने से इनकार किया।

43. अभियुक्त अवधेश, राम प्रताप और भुनेश सगे भाई हैं। सूचक लाला राम ने शिव नारायण उर्फ रज्जन की हत्या के संबंध में थाने में झूठी रिपोर्ट दर्ज कराई थी। यह मामला उसके नाना के परिवार से दुश्मनी के कारण दर्ज किया गया था। राम गोपाल की हत्या के प्रकरण में दोषी ठहराए जाने के बाद वह अपील में जमानत पर था। उसे विधि विज्ञान प्रयोगशाला (FSL) की रिपोर्ट के परिणाम की जानकारी नहीं है। गवाहों ने उसके विरुद्ध झूठी गवाही दी है। अभियुक्त ने अपने बचाव में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया, जो उसके इनकार का कारण है।

44. अभियुक्त झुन्ना उर्फ देवेन्द्र कुमार ने धारा 113 दं.प्र.सं. के तहत अपने बयान में दावा किया है कि वह और उसके पिता झुन्ना उर्फ कृष्ण कुमार अपनी चचेरी बहन की मृत्यु के कारण मोटरसाइकिल पर सवार होकर औररी गाँव गए थे और घटना के एक दिन बाद वे वापस लौटे थे। अभियुक्त कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन ने झुन्ना उर्फ देवेन्द्र कुमार के बयान का समर्थन किया है।

45. अभियुक्त भानु प्रकाश उर्फ ललौना ने कहा है कि उसका भाई राम प्रताप ग्राम प्रधान था, इसलिए वह निर्दोष है। पुलिस अंतिम रिपोर्ट लगाना चाहती थी, लेकिन सूचक राजाराम ने उसे अपने पक्ष में कर लिया। इसलिए उसने 28.02.1977 को आत्मसमर्पण कर दिया था। उसने दावा किया कि पुलिस ने उसकी संपत्ति की कुर्की को फर्जी तरीके से दिखाया था।

46. अभियुक्त शिव दास ने दावा किया है कि वह चीनी का खुदरा विक्रेता है और घटना के दिन डेरापुर गया था, और घटना के समय वह गाँव में मौजूद नहीं था। उसने 28.02.1977 को आत्मसमर्पण कर दिया जब पुलिस ने राजा राम के साथ साँठगाँठ कर दी। अभियुक्त दादू ने कहा कि वह एक गरीब आदमी है और जगदीश से दुश्मनी के कारण उसे गलत तरीके से फँसाया गया है, जिसके साथ उसके पिता का मुकदमा था। भुनेश ने कहा कि वह राम प्रताप का भाई है जो गाँव के प्रधान थे और गाँव में एक पार्टी-गुट था। उसने दावा किया कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन वह झाऊ लाल के दामाद बुद्धि के साथ सुबह 06:30 बजे चकबंदी न्यायालय में प्रकरण की पैरवी करने गया था और पूरा दिन वहीं रहा और शाम को वापस आ गया।

47. अभियुक्त राम प्रताप ने दावा किया था कि उसे झूठा फंसाया गया है। वह लाडपुर पंथ स्थित एक निजी विद्यालय का प्रधानाचार्य था और विद्यालय भवन की रिपोर्ट के सिलसिले में वह 27.06.1976 से 30.06.1976 के बीच प्रतिदिन प्रातः 07:30 बजे वहाँ जाता था और सायं 06:00 बजे वापस आता था। घटना के दिन और समय पर वह विद्यालय में उपस्थित था।

48. अभियुक्त अवधेश ने यह भी कहा है कि उसे दुश्मनी के कारण फंसाया गया था।

49. अभियुक्तों ने अपने बचाव में पाँच गवाह पेश किए और कुछ दस्तावेज़ भी दाखिल किए। अभियुक्त राम प्रताप ने भी धारा 315 दं.प्र.सं. के तहत एक आवेदन दायर करने के बाद स्वयं का परीक्षण किया। अभियुक्त राम प्रताप ने गवाही दी कि वह एम.ए. बी.एड. है और जनता विद्यालय, लाडपुर पंथ का प्रधानाचार्य है। उसकी सूचना देने वाले लाला राम और प्रत्यक्षदर्शी जगदीश नारायण से पुरानी दुश्मनी थी। उसने इस बात से इनकार किया कि वह शिव नसरीन उर्फ रज्जन की हत्या करने वाले व्यक्तियों में शामिल था। उसने यह भी कहा कि यह कहना गलत है कि शिव नारायण की हत्या दोपहर 12:00 बजे जगदीश नारायण के घर के सामने की गई थी। उसने आगे कहा कि 29.06.1976 और 28.10.1977 के बीच, वह गाँव में रहा था और चिलौली गाँव के लाडपुर पंथ स्थित स्कूल में बच्चों को पढ़ाता था और ग्राम प्रधान का काम देखता था। वे मई 1972 से आज तक चिलौली गाँव के ग्राम प्रधान रहे। उन्होंने यह भी बताया कि उन्होंने स्कूल भवन की मरम्मत के संबंध में कैशमेमो आदि की प्रतियां जाँच अधिकारी को सौंप दी थीं।

50. उसने जिरह में बताया कि राम गोपाल की हत्या के मुकदमें में उसे भी अभियुक्त राम गोपाल, अवधेश, रमेश, दादू और राजमुन के साथ दोषी ठहराया गया था और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा अपील में सजा को घटाकर छह वर्ष के कठोर कारावास कर दिया गया था। शिव नारायण की हत्या के समय, वे माननीय उच्च न्यायालय में अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत पर थे। उसने यह भी स्वीकार किया कि लाला राम ने राम गोपाल की हत्या के प्रकरण में गवाही दी थी और जगदीश नारायण उस मुकदमें में सूचक था। हालाँकि, उसने इस बात से इनकार किया कि शिव नारायण ने पहले हत्या के मुकदमे में पैरवी की थी। जिस स्कूल का वह प्रधानाचार्य था, वह 14 किलोमीटर दूर था और जून के महीने में वह बंद रहता था। वह मरम्मत के काम के सिलसिले में वहाँ जाता था, जहाँ फूस बंगला (फूस का बंगला) बनाया जा रहा था। किसी भी रजिस्टर में उसकी उपस्थिति दर्ज नहीं की गई थी।

51. अपने बचाव पक्ष के तर्क के समर्थन में, अभियुक्त राम प्रताप ने डी.डब्ल्यू.-3 शीतल प्रसाद से पूछताछ की, जिसने दावा किया कि वह ललुआपुर गाँव स्थित जनता विद्यालय का प्रबंधक था। विद्यालय भवन की मरम्मत का काम चल रहा था और मरम्मत कार्य की देखरेख राम प्रताप कर रहे थे, जो उस समय विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। मरम्मत कार्य 27.06.1976 को शुरू हुआ था। उसने यह भी गवाही दी कि प्रदर्श ख-1 पर दिनांक 22.07.1976 अंकित है। मरम्मत का लेखा-जोखा राम प्रताप द्वारा रखा जाता था और विद्यालय उसके आवासीय भवन में स्थित था।

52. डी.डब्लू.-2 सिद्ध नाथ, जिसने गवाही दी कि वह ग्राम औरंदी, थाना सिकंदरा, जिला कानपुर देहात का प्रधान था। उसने यह भी गवाही दी कि इस प्रकरण के अभियुक्त छुट्टन और झुन्ना 27 जून से 30 जून 1976 के बीच सुबह से शाम तक उसके गाँव में आते रहे। छुट्टन और झुन्ने को इस मुकदमें में झूठा फंसाया गया है।

53. डी.डब्लू.-4 राजेशधर द्विवेदी, आपूर्ति निरीक्षक, जिन्होंने गवाही दी थी कि अभियुक्त शिव शंकर घटना के दिनांक और समय पर मौके पर मौजूद नहीं थे। शिव दास चिलौली गाँव में चीनी और अनाज के खुदरा विक्रेता थे और 29.06.1976 को वह शिव लाल के स्टॉक के सत्यापन के लिए चिलौली गाँव गए थे और उन्होंने प्रदर्श क-9 के रूप में चिह्नित रजिस्टर पर एक हस्ताक्षर किया था। उन्होंने प्रदर्श क-2 के रूप में अपना हस्ताक्षर भी साबित किया है। वह सत्यापन के बाद सुबह 08:30 बजे घटनास्थल पर पहुँचे। शिव दास उनके साथ डेरापुर गए थे। वह डेरापुर में सुबह 11:00 बजे बस से उतरे और फिर वे उसी दिन अलग हो गए। शिव दास समय-समय पर शाम 04:00 बजे तक उनसे संपर्क करते रहे।

54. डी.डब्लू.-1 रामेश्वर ने बयान दिया था कि सुबह जब वह लगभग 4:30-5:00 बजे उठा तो उसने अपने दरवाजे के सामने बहुत शोरगुल सुना। वह रात को घर के आँगन में सोया था, बाहर आकर उसने देखा कि जगदीश और लाला राम शियो नारायण उर्फ रज्जन लेटे हुए थे। रज्जन का घर उसके घर के पूर्व दिशा में है। वह मौके पर पहुँचा तो देखा कि रज्जन की मौत हो चुकी थी। शोरगुल सुनकर रज्जन की पत्नी और कई ग्रामीण वहाँ पहुँच गए। उसने लाला राम से घटना के बारे में पूछताछ की और बताया कि उसने कुछ बोलने की कोशिश की लेकिन जगदीश उसे ले गया। पुलिस 2-3 घंटे बाद पहुँची और उसने पुलिस को जो कुछ भी देखा था, बताया। वह उस दिन लगभग 05:00 बजे उठा। सब इंस्पेक्टर ने उससे पूछताछ की थी वर्ष 1971 में गांव में राम गोपाल की हत्या कर दी गई थी और उस मुकदमें में गवाह को भी दोषी करार देकर सजा सुनाई गई थी।

55. सप्तम अपर सत्र न्यायाधीश, (गैर-महानगरीय क्षेत्र) कानपुर नगर ने अभियोजन एवं बचाव पक्ष के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार करने तथा अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों के अवलोकन के पश्चात अभियुक्तगण देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना, जिया लाल उर्फ दादू, अवधेश, श्रीमती राम प्यारी के विरुद्ध धारा 147, 148, 302/149, 323/149 एवं 325/149 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत धारा 1977 के अन्तर्गत दोषसिद्धि का निर्णय पारित किया तथा उपरोक्तानुसार दण्डित किया। सभी दण्डादेश साथ-साथ चलने के निर्देश दिए गए।

56. अभियुक्त राजमुन एस.टी. संख्या 75/1977 की कार्यवाही के दौरान फरार हो गया था और दिनांक 22.07.1980 के आदेश के तहत विद्वान ट्रायल कोर्ट ने उसके मामले को सह-अभियुक्तों से अलग कर दिया था। बाद में अभियुक्त राजमुन को गिरफ्तार कर लिया गया और एस.टी. संख्या 75ए, 1977 के तहत उस पर अलग से मुकदमा चलाया गया। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने 01.07.1983 को उस पर भारतीय दंड संहिता

की धारा 148, 302/149, 323/149, 323/149 के तहत आरोप लगाए और उसे आरोपों को पढ़कर सुनाया गया और हिंदी में समझाया गया। उसने खुद को निर्दोष बताया और विचारण की मांग की।

57. अभियोजन पक्ष ने अपने प्रकरण के समर्थन में प्रकरण के सूचक लाला राम, मृतक की पत्नी पी.डब्लू.-2 श्रीमती विमला देवी, पी.डब्लू.-3 जगदीश नारायण को गवाहों के रूप में परीक्षण किया। पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू.-3 के बयान दर्ज करने के बाद, अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता श्री के.जी. प्रधान ने अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख में रखे गए दस्तावेजों को प्रमाणित करने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मृतक शिव नारायण की मृत्यु के तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि मृतक के शव का पोस्टमार्टम किया गया था। उन्होंने अभिलेख में दर्ज किसी भी दस्तावेज की प्रामाणिकता पर कोई सवाल या विवाद नहीं किया। उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के सभी दस्तावेजों की प्रामाणिकता स्वीकार की और किसी भी औपचारिक गवाह से जिरह नहीं करना चाहते थे।

58. इस अवसर पर विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष का मामला सिद्ध हो चुका है क्योंकि किसी भी औपचारिक गवाह से पूछताछ की कोई आवश्यकता या अनिवार्यता नहीं थी। अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने अभियोजन पक्ष के अनुरोध का विरोध नहीं किया और तदनुसार अभियोजन पक्ष का साक्ष्य बंद कर दिया गया।

59. विद्वान ट्रायल जज ने अभियोजन और बचाव पक्ष की दलीलों को सुनने और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य की सराहना करने के बाद, अभियुक्त अपीलकर्ता राजमुन को एस.टी. संख्या 75 ए, 1977 में धारा 302/149, 323/149, 325/149 और 148 भा.दं.सं. के तहत आरोप के लिए दोषी ठहराए जाने का फैसला दर्ज किया और धारा 302/149 भा.दं.सं. के तहत आरोप के लिए आजीवन कारावास, धारा 148 भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास, धारा 325/149 भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास और धारा 323/149 भा.दं.सं. के अंतर्गत आरोप के लिए छह महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई।

60. अभियुक्त राजमुन ने धारा 313 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अपने बयान में कहा कि उसे रामगोपाल की हत्या के मुकदमे में सह-अभियुक्तों के साथ दोषी ठहराया गया था और उसे 20 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी, लेकिन उच्च न्यायालय ने इस सजा को घटाकर छह वर्ष के कारावास में बदल दिया था। मृतक शिव नारायण पहले हुए हत्या के मुकदमे का पैरोकार नहीं था।

61. उल्लेखनीय है कि वर्तमान आपराधिक अपील में अपीलकर्ता संख्या 2 जिया लाल उर्फ दादू अपीलकर्ता संख्या 4 श्रीमती राम प्यारी, अपीलकर्ता संख्या 5 राम प्रताप, अपीलकर्ता संख्या 6 भुनेश, अपीलकर्ता संख्या 7 भानु प्रकाश उर्फ लालूना और अपीलकर्ता संख्या 8 शिव दास की आपराधिक अपील संख्या 2696/1981 लंबित

रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी, इसलिए इस न्यायालय के आदेश से उनके खिलाफ अपील खारिज कर दी गई थी।

62. यह अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 1 देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना, अपीलकर्ता संख्या 4 अवधेश और अपीलकर्ता संख्या 9 कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन के सम्बन्ध में आपराधिक अपील संख्या 2696/1981 में तथा एकमात्र अपीलकर्ता राजमुन के सम्बन्ध में आपराधिक अपील संख्या 660/1984 में लागू है।

63. इस प्रकार संक्षेप में, दस दोषियों/अपीलकर्ताओं में से छह अपीलकर्ताओं की उनकी संबंधित अपीलों के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई है और चार अपीलकर्ता जीवित हैं।

64. अपीलकर्ता अवधेश और देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना ने किशोर होने का तर्क दिया था। इस न्यायालय ने आदेश दिनांकित 14.07.2023 द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता संख्या 1 (देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना पुत्र किशन कुमार) और अभियुक्त-अपीलकर्ता संख्या 3 (अवधेश चंद्र पुत्र प्रेम नारायण) की किशोरता का निर्धारण किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 के अंतर्गत सक्षम न्यायालय/प्राधिकरण द्वारा आज से एक माह के भीतर किया जाने का आदेश दिया। जिला न्यायाधीश, कानपुर देहात और पुलिस अधीक्षक, कानपुर देहात इस आदेश की सूचना प्राप्त होने के एक सप्ताह के भीतर किशोर न्याय बोर्ड को सभी प्रासंगिक कागजात की प्रतियां उपलब्ध कराएंगे। महानिबंधक यह सुनिश्चित करेंगे कि इस आदेश की एक प्रति अनुपालन हेतु चार दिनों के भीतर जिला न्यायाधीश, कानपुर देहात को भेज दी जाए।

65. न्यायालय के आदेश दिनांकित 14.07.2023 के अनुपालन में किशोर न्याय बोर्ड, रमाबाई नगर, कानपुर देहात ने एक रिपोर्ट दिनांकित 25.08.2023 प्रस्तुत की थी, जिसमें कहा गया था कि घटना के समय अपीलकर्ता संख्या 3 अवधेश किशोर था। इसी प्रकार, पत्र दिनांकित 25.09.2023 द्वारा प्रधान न्यायाधीश, किशोर न्याय बोर्ड, कानपुर देहात ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने कहा है कि घटना दिनांक 29.06.1976 के समय अपीलकर्ता संख्या 1 देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना किशोर था। इन तथ्यों के आधार पर, यह स्पष्ट है कि आपराधिक अपील संख्या 2696/1981 में जीवित बचे चार अपीलकर्ताओं में से अपीलकर्ता संख्या 1 देवेंद्र कुमार झुन्ना और अपीलकर्ता संख्या 3 अवधेश घटना के समय किशोर थे।

66. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि एफआईआर संस्करण के अनुसार यह सूचक लाला राम है जिसके साथ अभियुक्तगण द्वेष रखते थे तथा शत्रुता रखते थे, क्योंकि उसने पीडब्लू-5 जगदीश नारायण के भाई राम गोपाल की हत्या के मुकदमे में वर्तमान प्रकरण में कुछ अभियुक्तगणों के विरुद्ध गवाही दी थी।

67. पी.डब्लू-3 लाला राम ने प्रकरण में प्रत्यक्षदर्शी की भूमिका निभाई है और यदि वह मृतक शिव नारायण की हत्या के समय मौके पर मौजूद था, तो अभियुक्त अपीलकर्ताओं के लिए उसे छोड़ने का कोई कारण नहीं

था। पी.डब्लू-3 लाला राम के शरीर पर पाई गई चोटें सामान्य प्रकृति की हैं और बनावटी हो सकती हैं। तथाकथित प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य में यह तथ्य सामने आया है कि तीन व्यक्तियों ने मृतक पर बरछी (स्पेयर) से हमला किया था, जो एक नुकीला हथियार होता है, लेकिन मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट में कोई छिद्रित घाव नहीं पाया गया। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में दर्शाई गई मृत्यु का अनुमानित समय यह दर्शाता है कि घटना उसी दिन तड़के हुई थी।

68. उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विद्वान विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के गवाहों के साक्ष्य पर विचार नहीं किया है और उनके साक्ष्य को सरसरी तौर पर दरकिनार कर दिया है, जबकि यह स्थापित विधि है कि बचाव पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य के समान ही महत्व दिया जाना चाहिए।

69. उन्होंने आगे दलील दी कि पीडब्लू-5 जगदीश नारायण एक बेहद दिलचस्पी वाला गवाह है। वह राम गोपाल की हत्या के मुकदमे के साथ-साथ शिव नारायण उर्फ रज्जन की हत्या के मुकदमे में भी गवाह रहा है। वह पहले हत्या के मुकदमे में मृतक राम गोपाल का सगा भाई है और वर्तमान अपील में कुछ अपीलकर्ता पहले हत्या के मुकदमे में अभियुक्त और दोषी थे। हालांकि बाद में उच्च न्यायालय ने उनकी सजा कम कर दी थी। इसलिए पीडब्लू-5 के पास अपने भाई की हत्या के कारण उनसे गहरी दुश्मनी के कारण शिव नारायण की हत्या के मुकदमे में वर्तमान अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने की मांग करने का हर कारण है। कुछ आरोपियों ने घटना के समय अन्यत्र मौजूद होने और अन्यत्र मौजूद होने के पुख्ता सबूत पेश किए हैं, लेकिन सभी आरोपियों के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज करते समय विद्वान विचारण न्यायालय ने इसे नजरअंदाज कर दिया है। पीडब्लू-4 मृतक की पत्नी विमला देवी का व्यवहार बेहद अस्वाभाविक है क्योंकि पी.डब्लू-1 और पी.डब्लू-4 दोनों ने स्वीकार किया है कि उन्होंने मृतक को गले लगाने या छूने की कोशिश नहीं की, यहाँ तक कि जब अभियुक्तों द्वारा बेरहमी से हमला करने के बाद उसे मौके पर ही छोड़ दिया गया था, क्योंकि वह उसे मरा हुआ समझ रही थी। मृतक के कपड़ों पर खून का कोई धब्बा नहीं पाया गया।

70. डीडब्लू-5 मृतक राम प्रताप ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना घटना की तिथि को तड़के घटित हुई थी और इसे गलती से दोपहर 12:00 बजे घटित होना दिखाया गया है। उन्होंने कहा है कि उन्होंने मृतक शिव नारायण को मृत पड़ा देखा था, जब वे लगभग 05:00 बजे शोरगुल सुनकर घटनास्थल पर पहुंचे और उन्हें गवाहों ने बताया कि लगभग एक घंटे पहले उनकी हत्या कर दी गई थी। उनके और सूचक लाला राम और गवाह जगदीश नारायण के बीच पुरानी दुश्मनी है। गांव की पार्टीबंदी के कारण उन्हें इस प्रकरण में झूठा फंसाया गया है। वे 29.06.1997 से 28.10.1977 तक ग्राम प्रधान रहे हैं। तथ्य के गवाहों लाला राम, श्रीमती विमला देवी और जगदीश नारायण की जिरह में बयानों के सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर, उनका दावा कि उन्होंने घटना देखी थी, अत्यधिक संदिग्ध हो जाता है। वास्तव में, मृतक की 29.06.1976 को तड़के अंधेरे में हत्या कर दी गई थी और किसी भी प्रत्यक्षदर्शी ने घटना नहीं देखी थी और बाद में पुलिस के साथ विचार-विमर्श के बाद पूर्व दुश्मनी के कारण आरोपियों के नाम एफआईआर में दर्ज किए गए थे। सूचक पक्ष के पास आरोपियों को झूठा फंसाने का मजबूत मकसद था और इसी वजह से पीडब्लू-5 जगदीश नारायण, मृतक

राम गोपाल के भाई, जो पहले हत्या के प्रकरण में मृत थे, को वर्तमान प्रकरण में प्रत्यक्षदर्शी के रूप में पेश किया गया है। यह सामान्य कानून है कि पक्षपातपूर्ण गवाहों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक और करीबी जांच की आवश्यकता होती है। कोई भी गवाह स्वतंत्र नहीं है। अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार घटना के समय कई व्यक्ति उपस्थित थे, लेकिन अभियोजन पक्ष के प्रकरण के समर्थन में कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट के लेखक श्री जैन का कथन प्रत्यक्षदर्शी के विवरण के अनुरूप नहीं है तथा प्रत्यक्षदर्शी के विवरण के साथ चिकित्सीय असंगति की स्थिति में संदेह का लाभ अपीलकर्ताओं को दिया जा सकता है।

71. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने दलील दी कि यह दिनदहाड़े हत्या का मामला है और मृतक के सगे भाई द्वारा घटना के दो घंटे बाद ही एफआईआर दर्ज कराई गई। चिक एफआईआर के अनुसार घटनास्थल से पुलिस स्टेशन की दूरी 6 मील है। इसलिए, एफआईआर अत्यंत तत्परता से दर्ज की गई है जो अभियोजन पक्ष के संस्करण की प्रामाणिकता को पुष्ट करती है। अभियुक्तों के पास अपराध करने का मजबूत मकसद था। पीडब्लू-2 और 4, जो मृतक के भाई और पत्नी हैं, मृतक को बचाने की कोशिश करते समय अभियुक्तों द्वारा किए गए हमले में खुद घायल हो गए थे। इसलिए, चोटें डॉक्टर के साक्ष्य से साबित होती हैं जिन्होंने मेडिको लीगल परीक्षा की, इसलिए, मौके पर उनकी उपस्थिति पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। मृतक को 14 बाहरी चोटें आई थीं और मृतक की आंतरिक जांच में भी गंभीर चोटें पाई गईं, जो इस तथ्य की पुष्टि करती है कि मृतक पर जानलेवा हमला करने में कई लोग शामिल थे। विवेचक को मौके पर खून से सना ब्लेड और बरछी मिला।

72. उन्होंने आगे तर्क दिया कि प्रत्यक्षदर्शियों से जिरह के दौरान भी ऐसा कोई तथ्य सामने नहीं आया जिससे अभियोजन पक्ष के प्रकरण की प्रामाणिकता पर उचित संदेह उत्पन्न हो। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्त अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि दर्ज की है और उन्हें विधि के अनुसार दण्डित किया है। आक्षेपित निर्णय अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों के समुचित मूल्यांकन पर आधारित हैं। अपीलकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत तर्क में आक्षेपित निर्णयों में कोई महत्वपूर्ण त्रुटि नहीं दिखाई जा सकी। आक्षेपित निर्णयों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और वे इस माननीय न्यायालय द्वारा पुष्टि किए जाने योग्य हैं।

73. हमने पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों के आलोक में अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन किया है।

74. वर्तमान प्रकरण में घटना की तिथि और समय 29.06.1976 को दिन में 12:00 बजे बताया गया है और सूचक लाला राम के कहने पर उसी दिन दोपहर 02:15 बजे थाना डेरापुर, कानपुर में एफआईआर दर्ज की गई थी। चिक एफआईआर प्रदर्श क-22 में लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस स्टेशन और घटनास्थल के बीच की दूरी छह मील दर्शाई गई है। सूचक मृतक का सगा भाई है और अन्य प्रत्यक्षदर्शियों विमला देवी (घायल और मृतक की पत्नी), शिव नारायण, जगदीश, नन्हे, अशर्फी लाल और राम चंद के साथ एक प्रत्यक्षदर्शी भी

है। विमला देवी को भी घटना में सामान्य और गंभीर चोटें आईं, जिनसे मुकदमे के दौरान पी.डब्लू.-4 के रूप में पूछताछ की गई। प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को कि एफआईआर घटना के दो घंटे बाद दर्ज की गई थी, यह माना जा सकता है कि प्रकरण में एफआईआर बिना किसी अनुचित देरी के अत्यंत तत्परता से दर्ज की गई है जो एफआईआर में विश्वसनीयता बढ़ाती है और यह अभियोजन पक्ष के संस्करण में किसी भी तरह के अलंकरण, विचार या कढ़ाई की संभावना को खारिज करती है। रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह सुझाव दे कि एफआईआर पूर्व समय पर है। सूचक लाला राम और शिव नारायण की पत्नी विमला देवी की भी सरकारी डॉक्टर, पीडब्लू-1 डॉ. सुरेंद्र सिंह ने पीएस डेरापुर में 29.06.1976 को लगभग 08:00 बजे से 08:30 बजे तक जांच की थी, उनकी मेडिको लीगल परीक्षा पुलिस प्रकरण के रूप में की गई थी और उनकी चोट की रिपोर्ट की प्रामाणिकता के बारे में कोई संदेह नहीं उठाया जा सकता है जिससे पता चलता है कि श्रीमती विमला देवी को उनकी मेडिको लीगल जांच के समय उनके शरीर पर पांच चोटें आई थीं मुखबिर लाला राम को भी तीन चोटें आईं, जो उसकी चिकित्सीय जाँच रिपोर्ट में सामान्य पाई गईं। घायल गवाह के साक्ष्य को अन्य गवाहों के साक्ष्य की तुलना में अधिक महत्व दिया जाता है, क्योंकि घटनास्थल पर घायल गवाह के शरीर की उपस्थिति अन्य गवाहों की तुलना में अधिक संभावित प्रतीत होती है। अभियोजन पक्ष के कथन में प्रत्येक अभियुक्त को विशिष्ट हथियार दिया गया है और यह तथ्य गवाहों के साक्ष्य से सिद्ध हो चुका है।

75. एफआईआर विवरण और तथ्यों के गवाहों अर्थात् पीडब्लू-1 सुरेंद्र सिंह, पीडब्लू-2 लाला राम, पीडब्लू-4 विमला देवी और पीडब्लू-5 जगदीश नारायण के साक्ष्य के अनुसार, यह तथ्य सिद्ध है कि घटना के समय अभियुक्तगण देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना, शिव दास, कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन और राम प्यारी लाठी से लैस थे, राम प्रताप, अवधेश और भुनेश बरछाई (एक नुकीला तेज धार वाला हथियार) से लैस थे, दादू, ललौना और राजमुन तब्बल (एक भारी तेज धार वाला हथियार) से लैस थे, जिन्होंने मृतक शिव नारायण उर्फ रज्जन को पीडब्लू-5 जगदीश नारायण के घर के सामने गांव में सार्वजनिक रास्ते पर घेरकर हमला किया। अभियुक्तगण अपराध करने के लिए एक विशेष उद्देश्य से प्रेरित थे, क्योंकि इस घटना दिनांक 29.06.1976 से पूर्व गांव के राम गोपाल की हत्या कर दी गई थी, जिसमें अभियुक्त राम प्रताप व अन्य भी अभियुक्त थे तथा सूचक लाला राम ने उस हत्या के प्रकरण में राम प्रताप व अन्य के विरुद्ध गवाही दी थी, जिसमें राम प्रताप व अन्य को दोषी ठहराया गया था तथा बीस वर्ष के कारावास की सजा सुनाई गई थी, तत्पश्चात उन्हें जमानत पर रिहा कर दिया गया था। एफआईआर में ही यह तथ्य दर्ज है कि अभियुक्त राम प्रताप व अन्य रंजिश के कारण सूचक व उसके परिवार के सदस्यों के साथ मिले हुए थे। घटना के समय मृतक अपने घर भोजन करने जा रहा था, तभी अभियुक्त हमलावरों ने उसे घेर लिया तथा अभियुक्तों द्वारा सुनियोजित तरीके से पहुंचाई गई घातक चोटों के कारण उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई।

76. मृतक शिव नारायण की पोस्टमार्टम रिपोर्ट से पता चलता है कि उसके शरीर पर चौदह चोटें थीं, जिनमें से सिर और चेहरे के विभिन्न हिस्सों पर आठ घाव पाए गए हैं। मृतक के सिर पर छह घाव और बाएँ पैर के अग्रभाग पर एक घाव था, अन्य चोटें घर्षण और चोट के हैं। आंतरिक परीक्षण में, ललाट, दाएँ कनपटी और

दाएँ पार्श्विका और पश्चकपाल हड्डियों में कट पाया गया। डॉक्टर ने यह भी कहा कि मृत्यु का कारण मृत्युपूर्व चोटों के कारण सदमा और रक्तस्राव था। इस प्रकार, चिकित्सीय साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि मृतक शिव नारायण की चोटें मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं और सभी अभियुक्तों ने दिनांक, समय और घटना के समय अपने-अपने हथियारों से सुनियोजित तरीके से हत्या करने के इरादे से सशस्त्र होकर काम किया था।

77. पी.डब्लू.-6 डा. वी.के. जैन ने अपने साक्ष्य द्वारा मृतक शिव नारायण की पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्शक-6 सिद्ध किया था। उन्होंने अपने साक्ष्य में कहा है कि उन्होंने 30.06.1976 को सायं 04:40 बजे मृतक शिव नारायण का पोस्टमार्टम किया था, जिसके शरीर पर चौदह चोटें थीं, उसका पेट खाली था, छोटी आंत में अर्धपचा भोजन तथा बड़ी आंत में मल पाया गया था। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि मृतक के शरीर पर पाई गई चोट संख्या 1,2,3,4,5,6 तथा 7 किसी भारी धारदार हथियार से लगी थीं, जिसमें तबबल भी शामिल है। चोट संख्या 3 तथा 10 भी किसी धारदार हथियार से लगी हो सकती हैं, जिसकी धार लगभग 2 सेमी. चौड़ी हो, जिसमें बल्लम तथा बरछाई भी शामिल हो सकती है। चोट संख्या 8,9,11 तथा 14 संभवतः लाठी से लगी हों। मृतक के शरीर पर पाई गई चोटें सामान्य प्रकृति में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं। मृतक के शरीर पर पाई गई ऐसी चोटों से तत्काल मृत्यु संभावित थी। जिरह में उन्होंने कहा कि तबबल एक भारी तेज धार वाला हथियार है और उन्हें तबबल से कोई छिद्रित या भेदने वाला घाव नहीं मिला, बरछाई और बल्लम भेदने वाले हथियार हैं। चोट संख्या 1,2,3,13,14 और 8 कठोर सतह पर गिरने से हो सकती हैं। इसलिए, चिकित्सा साक्ष्य से भी घटना का तरीका और तरीके, और मृतक और घायल गवाहों लाला राम और विमला देवी के शरीर पर पाई गई चोटें साबित होती हैं और इस प्रकरण में तथ्य के गवाहों/चश्मदीद गवाहों की शपथ ली गई गवाही की चिकित्सा साक्ष्य से पुष्टि होती है। डॉक्टर ने अपनी गवाही में राय दी है कि मृतक के शरीर पर पाई गई चोटें ज्यादातर तबबल जैसे किसी भारी तेज धार वाले हथियार से लगी थीं अभियुक्तों की ओर से जिरह के दौरान पी.डब्लू.-4 विमला देवी के इस कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि अवधेश, प्रेम नारायण और मुनेश नामक तीन अभियुक्तों द्वारा ली गई बरछाइयाँ चपटी थीं, नुकीली नहीं। अतः अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों के आधार पर, यह नहीं माना जा सकता कि केवल इस तथ्य के आधार पर कि मृतक के शरीर पर कोई छिद्रित अंग नहीं पाया गया था, उन अभियुक्तों की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता, जिनके बारे में कहा गया था कि वे बरछाइयाँ लेकर आए थे, या दूसरे शब्दों में, केवल इसी आधार पर घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति को खारिज किया जा सकता है।

78. पी.डब्लू.-5 जगदीश नारायण ने अपने साक्ष्य में यह प्रमाणित किया है कि घटना उनके घर के सामने घटित हुई थी और उन्होंने घटना देखी थी। यह तथ्य प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही वर्णित है कि जगदीश नारायण का घर घटनास्थल के सामने स्थित है और इस कारण से उनका घटनास्थल पर उपस्थित होना स्वाभाविक है क्योंकि उन्हें घटनास्थल का प्रत्यक्षदर्शी माना जाता है और केवल कुछ अभियुक्तों से पूर्व रंजिश के आधार पर उनके साक्ष्य को नकारा नहीं जा सकता।

79. विद्वान विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के इस तर्क को सही ढंग से खारिज कर दिया है कि घटना तड़के अंधरे में हुई थी और किसी भी गवाह ने घटना नहीं देखी थी और अभियुक्तों का नाम पार्टीबंदी और इस

घटना से कुछ साल पहले हुई राम गोपाल की हत्या के कारण रंजिश के कारण प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज है। सूचक लाला राम ने अपनी गवाही में कहा है कि अभियुक्त उसे और उसके परिवार के सदस्यों को मारने की योजना बना रहे थे, क्योंकि उसने राम गोपाल की हत्या के प्रकरण में उनके खिलाफ गवाही दी थी। अभियुक्त आपस में रिश्तेदार हैं और ग्राम प्रधान राम प्रताप से जुड़े हैं। मृतक दोपहर में अपनी दुकान से खाना खाने घर जा रहा था और गवाह उसके पीछे था। वह यह नहीं देख सका कि अभियुक्त किस दिशा से आ रहे हैं, उन्होंने अपने-अपने हथियारों से उसके भाई पर हमला कर दिया और उसकी चीख सुनकर वह उसकी ओर दौड़ा। इसी बीच मृतक की पत्नी विमला देवी और गवाह भी वहाँ पहुँच गए। अभियुक्तों ने उस पर और विमला देवी पर लाठियों से हमला किया और गवाहों के हस्तक्षेप करने पर वे पूर्व दिशा की ओर भाग गए। केवल इस तथ्य के कारण कि सूचक, जिसके साथ अभियुक्तों की गहरी दुश्मनी थी, को घटना में साधारण चोटें पहुँचाकर बख्श दिया गया और उस पर खतरनाक हथियारों से हमला नहीं किया गया, उसकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि उसने अपने साक्ष्य में कहा कि उसे और उसकी भाभी विमला देवी को गवाहों ने बचाया था। पी.डब्लू- 4 विमला देवी और पी.डब्लू- 5 जगदीश नारायण ने भी घटना का प्रत्यक्षदर्शी विवरण दिया है और अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन किया है। पी.डब्लू- 5 जगदीश नारायण की प्रत्यक्षदर्शी के रूप में जाँच की गई है और उसके साक्ष्य में यह तथ्य भी सामने आया है कि वर्तमान मुकदमे में कुछ अभियुक्तों को उसके भाई राम गोपाल की हत्या के प्रकरण में अदालत द्वारा दोषी ठहराया गया था और सजा सुनाई गई थी। इस गवाह को बचाव पक्ष का सुझाव दिया गया है कि उसने ग्राम प्रधान चुनाव में अभियुक्त राम प्रताप का विरोध किया था और इसी कारण से वह चुनाव में उसके निर्वाचित होने के बाद उसके विरोध में था।

80. जहाँ तक मकसद का सवाल है, मुखबिर पीडब्लू-1 लाला राम, जो मृतक का सगा भाई है, के खिलाफ अभियुक्त व्यक्तियों पर विशेष रूप से आरोप लगाया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने चंदन बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) 2024 लाइव लॉ (एससी) 288 में हाल ही में दिए गए निर्णय सहित कई निर्णयों में यह माना है कि जब प्रत्यक्ष साक्ष्य अपराध को स्थापित करते हैं, तो अभियुक्त की ओर से मकसद का अभाव या अनुपस्थिति महत्वपूर्ण होती है।

81. परीक्षण के दौरान प्रस्तुत साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन और अपील के तहत निर्णय का सूक्ष्मता से अवलोकन करने के बाद, हम इस विचार से सहमत हैं कि अभियोजन पक्ष जीवित अभियुक्तों देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना, कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन, राजमुन और अवधेश के खिलाफ उचित संदेह के साथ अपना मामला साबित करने में सफल रहा है। यह तथ्य उचित संदेह से परे साबित होता है कि जीवित अभियुक्तों ने घटना की तारीख और समय पर सह-अभियुक्तों के साथ मिलकर गोलबंदी की थी और सभा के सामान्य आपत्ति के अभियोजन में उन्होंने मृतक को मारने के इरादे से अपने संबंधित हथियारों से समन्वित तरीके से उस पर क्रूरता से हमला किया और उसके शरीर पर घातक चोटें पहुँचाईं, जो मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं और घटना में लगी चोटों के कारण उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। यह तथ्य भी संदेह से परे साबित होता है कि सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में जीवित अभियुक्तों और सह-अभियुक्तों ने सूचक लाला राम और मृतक की पत्नी श्रीमती विमला देवी पर हमला किया अतः, जीवित अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 302/149, 325/149 और 323/149, 147 के अंतर्गत आरोप सिद्ध होते हैं और अभियुक्त अवधेश के विरुद्ध धारा 148 के अंतर्गत

आरोप भी सिद्ध होते हैं। अतः, हमें विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश, जिसके तहत जीवित अभियुक्तों और सह-अभियुक्तों को उपरोक्त आरोपों में दोषी ठहराया गया था, में कोई विधिक या तथ्यात्मक त्रुटि नहीं मिलती। अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ताओं के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को संदेह से परे सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिया है।

82. किशोर न्याय बोर्ड, कानपुर देहात द्वारा की गई जांच में अभियुक्तगण/अपीलकर्ता देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश घटना की तिथि को किशोर पाये गये तथा किशोर न्याय बोर्ड की रिपोर्ट के आधार पर उन्हें घटना की तिथि को किशोर माना गया।

83. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सत्य देव उर्फ भूरे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य AIR 2020 (SC) 4526 उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील के चरण में अभियुक्त द्वारा किए गए किशोर होने के दावे पर विचार किया गया, जहां घटना 11.12.1981 को घटित हुई थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के विभिन्न प्रावधानों पर विचार किया और पैराग्राफ 15 में निहित वैधानिक प्रावधानों पर गहन विचार करने के बाद कहा कि किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 के नियम 12 और 98 के साथ 2000 के अधिनियम की धाराओं 2(के), 2(एल), 7-ए, 20 और 49 के संयुक्त वाचन से यह स्पष्ट है कि सभी व्यक्ति जो 1-4-2001 से पहले भी अपराध की तिथि पर अठारह वर्ष से कम आयु के थे, उन्हें किशोर माना जाएगा, यदि किशोर होने का दावा करने वाला अभियुक्त अपराध की तिथि पर 18 वर्ष से कम आयु का था, तो वह किशोर के रूप में माना जाने का हकदार है और उसे 2000 के अधिनियम के अनुसार लाभ दिया जाएगा, इस तथ्य के बावजूद कि अभियुक्त अपराध की तिथि पर किशोर होने के लाभ का हकदार नहीं था, इस अपराध के घटित होने के बाद किशोर न्याय अधिनियम, 1986 पारित किया गया।

84. तदनुसार, वर्तमान प्रकरण में विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर अर्थात् देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश के साथ किशोर न्याय (बालकों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के प्रावधानों के तहत कार्यवाही की जाएगी, इस तथ्य के बावजूद कि घटना वर्ष 1976 में घटित हुई थी और प्रकरण के विचारण के दौरान किशोर न्याय अधिनियम, 1986 अधिनियमित और लागू किया गया था।

85. परिणामस्वरूप, विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित उपरोक्त आरोप के लिए जीवित अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है, अतः किशोर अभियुक्तों देवेन्द्र उर्फ झुन्ना और अवधेश को दी गई सजा निरस्त की जाती है। अपीलकर्ता कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन और राजमुन को दी गई सजा की पुष्टि की जाती है।

86. तथापि, पूर्वोक्त कारणों के आधार पर, अभियुक्त देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश को संबंधित किशोर न्याय बोर्ड द्वारा घटना की तिथि पर विधि के उल्लंघन में किशोर माना गया है, अतः उक्त आरोपों में उनकी दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता है, किन्तु उनकी सजा को अपास्त किया जाता है।

87. उपरोक्त निर्णय के आलोक में अपीलार्थी देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश के विरुद्ध किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 15 के अंतर्गत कार्यवाही की जाएगी, जो निम्नानुसार है:-

15. आदेश जो किशोर के बारे में पारित किया जा सकेगा-

(1) जहां बोर्ड का जांच करने पर यह समाधान हो जाता है कि किशोर ने अपराध किया है, वहीं तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी तत्पतिकूल बात के होते हुए भी, वह बोर्ड, यदि वह ऐसा करना ठीक समझता है, तो,-

(क) किशोर को उसके विरुद्ध समुचित जांच करने के पश्चात् और माता-पिता या संरक्षक या किशोर को परामर्श देने के पश्चात् उपदेश या भर्त्सना के पश्चात् गर जाने देने का निदेश दे सकेगा;

(ख) किशोर को सामूहिक परामर्श और ऐसे ही क्रियाकलापों में भाग लेने का निदेश दे सकेगा

(ग) किशोर को सामुदायिक सेवा करने का आदेश दे सकेगा

(घ) किशोर के माता-पिता को या स्वयं किशोर को जुर्माने का सदाय करने का आदेश दे सकेगा यदि वह चौदह वर्ष से अधिक आयु का है और धन अर्जित करता है

(ङ) किशोर को सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ने और माता-पिता, संरक्षक या अन्य योग्य व्यक्ति की देखरेख में रखने का निदेश, ऐसे माता-पिता, संरक्षक या अन्य योग्य व्यक्ति द्वारा किशोर के सदाचार और उसकी भलाई के लिए उस बोर्ड की अपेक्षानुसार प्रतिभू सहित या रहित, तीन वर्ष से अनधिक की कालावधि के लिए, बंधपत्र निष्पादित किए जाने पर, दे सकेगा

(च) किशोर को सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ने और सदाचार और उसकी भलाई के लिए किसी योग्य संस्था की देखरेख में रखने का निदेश तीन वर्ष से अनधिक कालावधि के लिए दे सकेगा

(छ) किशोर को तीन वर्ष की अवधि के लिए विशेष गृह में भेजने के लिए निदेश देने वाला आदेश कर सकेगा [2006 के अधिनियम 33 की धारा 12 द्वारा खंड (छ) के स्थान पर प्रतिस्थापित (22-8-2006 से)]

परंतु यदि बोर्ड का यह समाधान हो जाता है कि अपराध की प्रकृति और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएं, ऐसा करना समीचीन है, तो बोर्ड रोक आदेश की अवधि को ऐसी अवधि तक घटा सकेगा जो वह ठीक समझे।

(2) बोर्ड किशोर पर किसी परीक्षा अधिकारी या मान्यता प्राप्त स्वैच्छिक संगठन की माफर्त या अन्यथा सामाजिक अन्वेषण रिपोर्ट अभिप्राप्त करेगा और ऐसा आदेश पारित करने के पूर्व ऐसी रिपोर्ट के निष्कर्षों पर विचार करेगा।

(3) जहां उपधारा (1) के खंड (घ), खंड (ङ) या खंड (च) के अधीन आदेश किया जाता है वहां बोर्ड, यदि उसकी यह राय है कि ऐसा करना किशोर के तथा लोकिहत में समीचीन है, तो अतिरिक्त आदेश कर सकेगा कि विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर आदेश में नामित परीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में, तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी कालावधि के दौरान रहेगा, जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकेगा जिन्हें वह विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के लिए सम्यक् पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझ :

परन्तु यदि तत्पश्चात् किसी समय बोर्ड को परिवीक्षा अधिकारी से रिपोर्ट की प्राप्ति पर या अन्यथा यह प्रतीत होता है कि विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर पर्यवेक्षण की कालावधि के दौरान सदाचारी नहीं रहा है अथवा वह योग्य संस्था, जिसकी देखरेख में किशोर को रखा गया था, अब किशोर का सदाचार या भलाई सुनिश्चित करने के लिए असमर्थ है या रजामंद नहीं है तो वह ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को विशेष गृह को भेजे जाने का आदेश कर सकेगा।

(4) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश करते समय बोर्ड किशोर को तथा, यथास्थिति, माता-पिता, संरक्षक या अन्य योग्य व्यक्ति या योग्य संस्था को, जिसकी देखरेख में किशोर रखा गया है, आदेश के निबंधन और शर्त समझा देगा और तत्काल उस पर्यवेक्षण आदेश की प्रतिलिपि, यथास्थिति, किशोर के माता-पिता, संरक्षक या अन्य योग्य व्यक्ति या योग्य संस्था को और यदि कोई प्रतिभू हो तो उन्हें और परिवीक्षा अधिकारी को देगा।

इसके प्रतिस्थापन से पूर्व, खंड (छ) इस प्रकार था:-(छ) किशोर को विशेष गृह में भेजने का निर्देश देने वाला आदेश देना, -(i) सत्रह वर्ष से अधिक किन्तु अठारह वर्ष से कम आयु के किशोर की दशा में कम से कम दो वर्ष की अवधि के लिए; (ii) किसी अन्य किशोर की दशा में उस अवधि के लिए जब तक वह किशोर न रह जाए: परन्तु बोर्ड, यदि उसका समाधान हो जाता है कि अपराध की प्रकृति और प्रकरण की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा करना समीचीन है, तो वह, कारणों को लेखबद्ध करके, रहने की अवधि को ऐसी अवधि तक कम कर सकेगा जितनी वह ठीक समझे।"

88. चूंकि अपीलार्थी देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश कई दशक पहले वयस्क हो चुके हैं, इसलिए उन्हें विशेष एवं किशोर गृह में रखने से कानून का कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

89. इसके अतिरिक्त अपीलार्थीगण देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश को संबंधित न्यायालय में 50,000/- रुपये का जुर्माना जमा करने का निर्देश दिया जाता है, जो मृतक शिव नारायण की पत्नी विमला देवी-पीडब्लू-4 को प्रतिकर के रूप में देय होगा तथा उसकी मृत्यु की स्थिति में उक्त धनराशि उसके कानूनी उत्तराधिकारियों को विचारण न्यायालय की संतुष्टि तक भुगतान कर दी जाएगी।

90. अपीलकर्ता देवेन्द्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश के संबंध में अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है, क्योंकि विचारण न्यायालय द्वारा उन्हें दी गई सजा खट्ट कर दी गई है और उनके साथ किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 15 के तहत कार्रवाई की गई है। दोषी कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन और राजमुन के संबंध में अपील खारिज की जाती है।

91. चूंकि अभियुक्त कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन और राजमुन के संबंध में निचली अदालत द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि इस निर्णय द्वारा वर्तमान अपील में की गई है और अपील के लंबित रहने के दौरान उन्हें जमानत पर रिहा किया गया है, इसलिए उन्हें निर्देश दिया जाता है कि वे निचली अदालत द्वारा दो सप्ताह के भीतर दिए गए फैसले में दी गई सजा को पूरा करने के लिए निचली अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण करें और उनके उपस्थित न होने की स्थिति में निचली अदालत उनके खिलाफ उचित प्रक्रिया जारी

करके उनकी गिरफ्तारी सुनिश्चित करेगी और उनके उपस्थित होने पर उन्हें निचली अदालत द्वारा दी गई और इस अदालत द्वारा पुष्टि की गई सजा को भुगतने के लिए जेल हिरासत में भेज दिया जाएगा।

92. इस निर्णय की एक प्रति अधीनस्थ न्यायालय/सेशन न्यायाधीश को आवश्यक अनुपालन हेतु भेजी जाए।

93. यह न्यायालय विद्वान न्यायमित्र श्री अजय कुमार पाण्डेय द्वारा प्रदान की गई बहुमूल्य सहायता और कड़ी मेहनत की सराहना करता है। हम उनकी फीस 25,000/- रुपये निर्धारित करते हैं, जो उन्हें उच्च न्यायालय विधिक सेवा प्राधिकरण, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा भुगतान की जाएगी। उच्च न्यायालय के विद्वान रजिस्ट्रार जनरल इस भुगतान की देखरेख करेंगे।

आपराधिक अपील संख्या - 2696 वर्ष 1981

अपीलकर्ता:- देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना एवं अन्य

प्रत्यर्थी:- उत्तर प्रदेश सरकार

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: अजय कुमार पांडे, अरविंद कुमार त्रिपाठी, आशीष कुमार, के.के. श्रीवास्तव, रोशन खान, सतीश त्रिवेदी
प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:- मयंक भूषण नाथ त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा,

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा।

आपराधिक विविध सुधार आवेदन संख्या 4/2025:

पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

निर्णय दिनांकित 21.1.2025 के प्रथम पृष्ठ पर माननीय न्यायमूर्तियों अर्थात् "माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा" और "माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा" के नाम अब "माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा" और "माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा, जे." पढ़े जाएंगे। तदनुसार, आवेदन स्वीकार किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 415

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 3376 वर्ष 2010 और

आपराधिक अपील संख्या 3122 वर्ष 2010, 3168 वर्ष 2010 और 3507 वर्ष 2010

रामसुजान

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रत्यर्थी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री कमलेश्वर सिंह, श्री राज करण यादव, श्री जितेन्द्र सिंह

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

अपराधिक कानून - सामान्य उद्देश्य -हितबद्ध गवाहों की गवाही - पहचान परेड में अस्पष्ट देरी - धारा 302/149, 148 भारतीय दण्ड संहिता और 10/12 डकैती के तहत दोषसिद्धि प्रभावित क्षेत्र अधिनियम - विवाह समारोह पर हमलावरों द्वारा हमला किया गया जिसके परिणामस्वरूप छह लोगों की मौत हो गई और अन्य घायल हो गए - शुरुआत में प्राथमिकी अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज की गई - अभियोजन पक्ष की कहानी बाद में गवाहों के बयानों और पहचान परेड के माध्यम से नामित आरोपियों को फंसाने के लिए विकसित हुई - गवाहों के बयान दर्ज करने में देरी - बयान और टीआईपी का आयोजन अस्पष्टीकृत रहा - घटना के चार महीने से अधिक समय बाद टीआईपी आयोजित किया गया - वैधता - चार महीने से अधिक की देरी - संतोषजनक ढंग से स्पष्ट नहीं किया गया - अभिरक्षा और पारगमन के दौरान गवाहों को आरोपियों को दिखाए जाने के बाद पहचान - दोषसिद्धि के लिए विश्वसनीय साक्ष्य नहीं - गवाहों को प्रशिक्षित करने और अनुचित जांच के आरोप - विचारण न्यायालय ने कई आरोपों के तहत आरोपियों को दोषी ठहराया - उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के मामले में गंभीर विसंगतियाँ पाईं, जिनमें प्रारंभिक चरणों में नामों का खुलासा न करना, गवाही में विरोधाभास, पहचान में देरी और उद्देश्य का अभाव शामिल है - अभियोजन पक्ष संदेह से परे दोष सिद्ध करने में विफल रहा - दोषसिद्धि रद्द कर दी गई और अपीलकर्ताओं को बरी कर दिया गया। (अनुच्छेद 52, 54, 56 से 61, 66 और 67)

अभिनिर्धारित

अपीलकर्ताओं का आरोप एक महीने से अधिक समय बाद आयोजित पहचान परेड के आधार पर लगाया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने राजेश गोविंद जगेशा बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर 2000 एससी 160 के मामले में यह माना है कि जहाँ आरोपी की गिरफ्तारी के पाँच सप्ताह के अत्यधिक विलंब के बाद पहचान परेड की गई थी और विलंब का कोई विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं था, ऐसे पहचान परेड के आधार पर आरोपी को आरोपित करना उचित नहीं था और आरोपी संदेह का लाभ पाने का हकदार था... (पैरा 52)

वे तथ्य जो किसी अभियुक्त व्यक्ति की पहचान स्थापित करते हैं, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत सुसंगत हैं। सामान्य नियम के अनुसार, किसी गवाह का मूल साक्ष्य न्यायालय में प्रस्तुत किया गया कथन होता है। मुकदमे में पहली बार अभियुक्त व्यक्ति की पहचान मात्र का साक्ष्य अपने स्वभाव से ही कमज़ोर चरित्र का होता है। दोषसिद्धि के लिए साक्ष्य में सामान्यतः यह स्पष्ट होना चाहिए कि कैसे और किन परिस्थितियों में उसने उस विशेष अभियुक्त व्यक्ति को चुना और अभियुक्त ने संबंधित अपराध में जो भूमिका

निभाई उसका विवरण भी उचित विशिष्टता के साथ दिया जाना चाहिए। इसलिए, पूर्व परीक्षण पहचान का उद्देश्य उस साक्ष्य की विश्वसनीयता का परीक्षण करना और उसे मजबूत करना प्रतीत होता है। तदनुसार विवेक का एक सुरक्षित नियम माना जाता है कि आम तौर पर न्यायालय में गवाहों की शपथ गवाही की पुष्टि की तलाश की जाए, ताकि अभियुक्तों की पहचान जो उनके लिए अजनबी हैं, पहले की पहचान कार्यवाही के रूप में की जा सके। हालाँकि, इस सामान्य नियम के अपवाद हो सकते हैं, जब, उदाहरण के लिए, न्यायालय किसी विशेष गवाह से प्रभावित हो, जिसकी गवाही पर वह बिना किसी अन्य पुष्टि के, सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकती है।

पहचान परेड विवेचना के चरण से संबंधित हैं। ये आम तौर पर जाँच के दौरान आयोजित की जाती हैं जिसका मुख्य उद्देश्य गवाहों को अपराध से संबंधित उन व्यक्तियों की पहचान करने में सक्षम बनाना है, जिन्हें वे पहले से नहीं जानते थे। इससे विवेचना अधिकारियों को अभियोजन पक्ष के गवाहों की नेकनीयती के बारे में संतुष्टि मिलती है और साथ ही न्यायालय में उनकी गवाही की पुष्टि के लिए साक्ष्य भी पेश किए जाते हैं। पहचान की कार्यवाही अपने कानूनी प्रभाव में बस यही कहती है: कुछ व्यक्तियों को जेल या किसी अन्य स्थान पर लाया जाता है और वे यह स्पष्ट या निहित बयान देते हैं कि कुछ व्यक्ति जिन्हें वे इंगित करते हैं, वे ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें वे अपराध में शामिल मानते हैं। ये ठोस साक्ष्य नहीं हैं। ये परेड अनिवार्य रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 द्वारा शासित होती हैं। यही कारण है कि इस मामले में पहचान परेड एक मजिस्ट्रेट की निगरानी में आयोजित की गई प्रतीत होती है। पहचान परेड के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, इन्हें आयोजित करने वाले मजिस्ट्रेटों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे किसी भी अनुचितता के संदेह को दूर करने और गवाही में त्रुटि की संभावना को कम करने के लिए हर संभव सावधानी बरतें। इसलिए, उन्हें कार्यवाही में पूरी रुचि लेनी चाहिए और दो बातों को ध्यान में रखना चाहिए: (i) कि किसी अभियुक्त का जीवन और स्वतंत्रता उनकी सतर्कता और सावधानी पर निर्भर हो सकती है और (ii) न्याय पहचान के साथ ही होना चाहिए। ये कार्यवाहियाँ पहचानकर्ताओं के लिए पहचान करना असंभव नहीं बनानी चाहिए, क्योंकि उनके पास, एक नियम के रूप में, उस व्यक्ति की केवल क्षणिक झलक ही होती है जिसकी उन्हें पहचान करनी है। सामान्यतः, मजिस्ट्रेट को पहचान के समय अभियुक्त द्वारा उठाई गई प्रत्येक आपत्ति और अभियुक्त के प्रति निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए उनके द्वारा उठाए गए कदमों को नोट करना चाहिए, ताकि पहचान के साक्ष्य के मूल्य का आकलन करने वाली न्यायालय उस साक्ष्य के मूल्यांकन में उन्हें ध्यान में रख सके। यह ध्यान में रखा जा सकता है कि पहचान करने की शक्ति पहचान करने वाले व्यक्ति की अवलोकन शक्ति और स्मृति के अनुसार भिन्न होती है और प्रत्येक मामला अपने तथ्यों पर निर्भर करता है, लेकिन पहचान के मूल्यांकन में दो कारक बुनियादी महत्व के प्रतीत होते हैं। अभियुक्त की पहचान करने वाले व्यक्तियों को अपराध के बाद और पहचान से पहले उसे देखने का कोई अवसर नहीं मिलना चाहिए और दूसरा यह कि उनसे कोई गलती न हो या की गई गलतियाँ नगण्य हों। पहचान का मूल्य भी बिना किसी देरी के किया जाना चाहिए। अभियुक्तों के साथ शामिल व्यक्तियों की संख्या यथोचित रूप से बड़ी होनी चाहिए और उनका आचरण और सामान्य रूप-रंग स्पष्ट रूप से भिन्न नहीं होना चाहिए। इसलिए, पहचान संबंधी साक्ष्य की न्यायालय द्वारा गहन और सावधानीपूर्वक जाँच की जानी चाहिए। (पैरा-60)

राजेश गोविंद के मामले में सर्वोच्च न्यायालय जगेशा बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2000 सर्वोच्च न्यायालय 160 ने माना है कि पहचान परेड के लिए पेश किए गए संदिग्ध के शारीरिक स्वरूप में कोई बदलाव नहीं किया जाना चाहिए। जहाँ एफआईआर दर्ज करते समय संदिग्ध दाढ़ी और लंबे बालों वाला था और परेड में दाढ़ी और लंबे बालों वाला कोई व्यक्ति शामिल नहीं था, लेकिन गवाह ने संदिग्ध की पहचान उसके बदले हुए रूप के बाद भी की, तो इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि गवाह ने गिरफ्तारी की तारीख और पहचान परेड के बीच आरोपी को देखा हो। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में यह भी माना कि ऐसी परेड आयोजित करने में देरी अभियोजन पक्ष के लिए घातक है, जहाँ देरी को उचित ठहराने वाला कोई उचित कारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया हो। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना है कि जहाँ गवाहों की प्रत्यक्ष गवाही स्पष्ट, ठोस और विश्वसनीय है, वहाँ उद्देश्य का प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता है। (पैरा-61)

उपरोक्त विचार के मद्देनजर, हमारा यह मत है कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं के विरुद्ध मामले को संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत गवाहों के बयान दर्ज होने से लेकर न्यायालय में दर्ज उनके बयानों तक, किसी भी गवाह ने किसी भी आरोपी की कोई विशेष विशेषता नहीं बताई। सभी गवाहों ने बदमाशों को बहुत कम समय के लिए देखा था। आरोपियों की पहचान परेड 4 से 7 महीने बाद हुई। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि गवाहों ने आरोपियों की सही पहचान की थी। ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय को ऐसे साक्ष्यों के आधार पर उनकी दोषसिद्धि दर्ज नहीं करनी चाहिए थी। (अनुच्छेद 67)

अपीलें स्वीकार की जाती हैं। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. राजेश गोविंद जगेशा बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर 2000 एससी 160
2. अशर्फी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (इलाहाबाद) 1961 एआईआर (इलाहाबाद) 153
3. मोहम्मद सज्जाद उर्फ राजू उर्फ सलीम बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (आपराधिक अपील संख्या 1953/2010)

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ द्वारा सुनाया गया)

2. उपर्युक्त आपराधिक अपीलें विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र) अधिनियम, बांदा द्वारा विशेष सत्र परीक्षण संख्या 53/2023, राज्य बनाम अनुराग मिश्रा एवं अन्य; विशेष सत्र परीक्षण संख्या 74/2023, राज्य बनाम रामजी बनाम अन्य और विशेष सत्र परीक्षण संख्या 76/2003, राज्य बनाम छोटा उर्फ राजेश एवं अन्य के विरुद्ध दायर की गई हैं, जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है और धारा 148 भारतीय दण्ड संहिता के तहत एक वर्ष के कठोर कारावास और 500 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर दो महीने का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतना होगा। अपीलकर्ताओं को आगे धारा 302

भारतीय दण्ड संहिता सपठित धारा 149 भारतीय दण्ड संहिता के तहत आजीवन कारावास और 5,000/- जुर्माने की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतना होगा।

3. अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि सूचनाकर्ता, छेदी लाल द्विवेदी ने एफआईआर दर्ज कराई थी जिसमें कहा गया था कि 22.01.2003 को उनके साढ़ू (साधु) के बेटे संतोष उर्फ छोटा गौतम की बारात जिला बांदा से जिला पन्ना, मध्य प्रदेश में वंश प्रताप पाठक के घर गई थी। अगले दिन यानी 23.01.2023 को सुबह लगभग 7 बजे बारात के सदस्य, यानी छेदी लाल, सूचनाकर्ता, मदन मोहन, निरंजन वर्मा, सुधीर कुमार पांडे, राम सुंदर द्विवेदी, शैलेंद्र तिवारी, नीलू द्विवेदी, ब्रेजनेव कुमार उर्फ गुड्डू द्वारा संचालित एक मार्शल कार में कालिंजर किले में नीलकंठ महादेव मंदिर के दर्शन के लिए रवाना हुए। पहली जीप के पीछे दूसरी मार्शल जीप में अशोक कुमार तिवारी, उनकी बेटी श्वेता, गंधर्व सिंह बुंदेला, पुनीत तिवारी, शिखर पांडे, उम्र लगभग 3 वर्ष, कुमारी राशि पांडे, उम्र लगभग 5 वर्ष और कुमारी पूजा बुंदेला, उम्र लगभग 11 वर्ष, उनके साथ थे और गाड़ी को पिंटू चौरसिया चला रहे थे। जब वे लगभग सुबह 9:00 बजे दो वाहनों में वापस लौट रहे थे, तो उन्हें बदमाशों ने घेर लिया और दोनों चालकों ने डर के मारे वाहन रोक दिए। सभी व्यक्तियों को वाहनों से बाहर आने और पीछे मुड़कर भागने का निर्देश दिया गया। जब उपरोक्त व्यक्ति पीछे मुड़कर पहाड़ी की ओर भागने लगे, तो बदमाशों ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया और पीछे से राइफलों और बंदूकों से गोलीबारी की। सूचनाकर्ता खुद को बचाने के लिए जमीन पर गिर पड़ा और ऊँचाई से लुढ़कता हुआ नीचे आ गया। बदमाशों की गोलीबारी में राम सुंदर द्विवेदी, शैलेंद्र उर्फ शालू, अशोक कुमार तिवारी, कुमारी श्वेता तिवारी, गंधर्व उर्फ बुंदेला, सुधीर कुमार पांडे की मृत्यु हो गई। पुनीत तिवारी, मदन मोहन और ब्रेजनेव कुमार उर्फ गुड्डू घायल हो गए। घायलों को दो वाहनों में बांदा अस्पताल ले जाया गया। ऊँचाई से गिरने और लुढ़कने के कारण सूचनाकर्ता को भी चोटें आईं।

4. पुलिस को दी गई उपरोक्त रिपोर्ट के आधार पर, 5 अज्ञात आरोपियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई। विवेचना अधिकारी ने मामले की विवेचना किया और औपचारिकताएं पूरी करने के बाद, अनुराग मिश्रा, राम सुजान, रामजी उर्फ राम लाल, राज करण उर्फ पप्पू, छोटा उर्फ राजपाल और कुबेर सिंह के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। अवर न्यायालय ने उनके खिलाफ धारा 148, 307/149, 302/149, 504 भारतीय दण्ड संहिता और 10/12 डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम के तहत आरोप तय किए। सभी आरोपियों ने आरोपों से इनकार किया और विचारण की मांग की।

5. अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने पी.डब्ल्यू.-1, सूचनाकर्ता छेदी लाल; पी.डब्ल्यू.-2, ब्रेजनेव उर्फ गुड्डन; पी.डब्ल्यू.-3, निरंजन; पी.डब्ल्यू.-4, राजा; पी.डब्ल्यू.-5, दीनदयाल साहू; पी.डब्ल्यू.-6, कांस्टेबल बारे लाल; पी.डब्ल्यू.-7, डॉ. बी.के. सक्सेना; पी.डब्ल्यू.-8, डॉ. रऊफ सिद्दिकी; पी.डब्ल्यू.-9, निरीक्षक तुलसी राम शाक्यवार; पी.डब्ल्यू.-10, उपनिरीक्षक महेंद्र सिंह यादव; पी.डब्ल्यू.-11, उपनिरीक्षक रवींद्र कुमार मिश्रा; पी.डब्ल्यू.-12, कांस्टेबल 236 बारे लाल; पी.डब्ल्यू.-13, कांस्टेबल शिव वरदान; पी.डब्ल्यू.-14, उप-निरीक्षक चंद्रभान सिंह; पी.डब्ल्यू.-15, बाल मुकुंद पांडे; पी.डब्ल्यू.-16, राम नारायण, संयुक्त

सचिव विकास प्राधिकरण; पी.डब्ल्यू.-17, एस.डी.एम., नंदन चक्रवर्ती; पी.डब्ल्यू.-18, हेड कांस्टेबल जगदीश बाबू और पी.डब्ल्यू.-19, उप-निरीक्षक, रामदास चौधरी को पेश किया।

6. अभियुक्तों के बयान धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने खुद को निर्दोष बताया और कहा कि उन्हें इस मामले में दुश्मनी के कारण फंसाया गया है। बचाव पक्ष ने डी.डब्ल्यू.1, सीता राम पटेल, डी.डब्ल्यू.-2, सूरज चतुर्वेदी और पी.डब्ल्यू.-3, माता प्रसाद पटेल को पेश किया।

7. पी.डब्ल्यू.-1 ने अपनी मुख्य परीक्षा में प्राथमिकी की विषय-वस्तु दोहराई। उसने आगे बताया कि जब दो वाहनों को बदमाशों ने रोका, तो उनमें से एक राइफल लेकर आया और उसे वाहनों की ओर तान दिया। उसने सभी को वाहनों से बाहर आने को कहा। उक्त बदमाश पप्पू यादव था जो न्यायालय में मौजूद था। इसके बाद चार बदमाश दोनाली बंदूकों से लैस होकर आए और अन्य के पास एकनाली बंदूकें थीं। उन सभी ने मुखबिर और उसके साथियों को भागने का निर्देश दिया क्योंकि वे उन्हें सबक सिखाना चाहते थे। सभी ने एक साथ गोलीबारी शुरू कर दी और उनमें से चार, पप्पू, अरुण मिश्रा, राम सुजान और विजय उर्फ छोटा, न्यायालय में मौजूद हैं। छह लोग, अशोक तिवारी, गंधर्व सिंह बुंदेला, शैलेंद्र उर्फ शालू, राम सुंदर द्विवेदी और सुधीर कुमार पांडे और कुमारी श्वेता तिवारी, गोली लगने से मौके पर ही मर गए। मदन मोहन, पुनीत, ब्रेजनेव उर्फ गुड्डन घायल हो गए। इसके बाद, निरंजन वर्मा और झाड़ियों में छिपे दो झाड़वर बाहर आए और मृतकों और घायलों को दोनों वाहनों में अस्पताल ले गए। बाद में, घायल मदन मोहन और पुनीत तिवारी की भी इलाज के दौरान मौत हो गई।

8. पी.डब्ल्यू.-1, बिना किसी पंजीकरण संख्या वाली जीप में पुलिस स्टेशन गया। रास्ते में उसकी मुलाकात राजा गौतम और प्रभा शंकर त्रिपाठी से हुई, जो बारात में भी आए थे। उसने उन्हें घटना की जानकारी दी। उसने दुकान और प्रभा शंकर त्रिपाठी से कागज और कलम लिया और प्रार्थना पत्र लिखा। उसने स्वयं अपने मौखिक बयान पर प्राथमिकी दर्ज कराई और जिला जेल, बांदा में अभियुक्तों की पहचान की। उसकी चोटों की चिकित्सकीय जाँच की गई और विवेचना अधिकारी द्वारा उसका बयान दर्ज किया गया।

9. जिरह में, पी.डब्ल्यू.-1 ने बताया कि वह अपने तीन भाइयों में सबसे बड़ा है। उसके सास-ससुर का घर अटारा के पास सिमरिया कुशल में है। संतोष गौतम उसका सगा साढ़ू नहीं है। अशोक कुमार तिवारी, संतोष गौतम का साढ़ू, सुधीर कुमार का मामा और उसके बड़े भाई सुधीर कुमार पांडे का साला है और तिंदवारी में रहता है जो उसकी नानी का घर है। उसकी माँ एक शिक्षिका थी और वहीं रहती थी। सुधीर कुमार पांडे का अपने माता-पिता के साथ रिश्ता सामान्य था। उसने सुधीर के पिता द्वारा किसी दूसरी महिला को रखने के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की और सुधीर को कोई संपत्ति देने के लिए तैयार नहीं था। उन्होंने इस बात से भी अनभिज्ञता जताई कि अशोक कुमार तिवारी ने सुधीर की मदद की थी। संतोष गौतम और उनके भाई अशोक गौतम के बीच मामूली विवाद था। अशोक गौतम कालिंजर में हुई शादी में नहीं आए थे। उन्होंने न तो जांच अधिकारी को घटना का कारण बताया और न ही थाने के दीवान को संतोष कुमार गौतम और अशोक कुमार

गौतम के बीच हुए विवाद के बारे में बताया। उन्होंने सिर्फ इतना बताया कि संतोष गौतम और उनके भाई अशोक कुमार गौतम के बीच कुछ विवाद चल रहा है।

वे आपस में बातचीत नहीं करते और अशोक कुमार गौतम शादी में नहीं आए थे। एफआईआर दर्ज होने के बाद एक कांस्टेबल उन्हें मेडिकल परीक्षण के लिए ले गया। वह 23.01.2003 को पूरे दिन थाने में रहे। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत उनका बयान तुरंत दर्ज किया गया। नीलकंठ महादेव मंदिर में दर्शन करने जाने का कार्यक्रम पिछली रात गवाह गोपाल की मौजूदगी में बनाया गया था, जो उनके साथ मोटरसाइकिल पर आया था। वह 15-20 मिनट बाद अपने छोटे भाई वीरेंद्र पांडे के साथ मंदिर पहुँच गए थे।

वे उसके साथ मंदिर के अंदर गए और वापस भी उसके साथ ही आए। उसने इस बात से इनकार किया कि गोपाल मंदिर में तब आया जब पी.डब्ल्यू.-1 और उसके साथी गोपाल और वीरेंद्र को जीप में ले गए थे और वे भी उनकी जीप में बैठे थे। गोपाल और वीरेंद्र उनसे पहले मोटरसाइकिल पर निकल गए थे। जब बदमाशों की धमकी पर जीपें रोकी गईं, तो गोपाल कहीं दिखाई नहीं दिया और न ही कोई अन्य व्यक्ति वहां मौजूद था। थाने में दर्ज कराई गई रिपोर्ट में उसने घबराहट और डर के कारण मिथलेश नारायण गर्ग, दिनेश तिवारी और अपने छोटे भाई का नाम नहीं लिखा था। उसने कु. डिम्पी तिवारी और पुष्कर सौरभ का नाम लिखा था, लेकिन अगर एफआईआर में इसका उल्लेख नहीं है, तो वह कारण नहीं बता सकता है। उसने एफआईआर में इसका उल्लेख नहीं किया था। मिथलेश कुमार गर्ग, वाहन का चालक था, लेकिन उसने कहा कि ब्रेजनेव कुमार उसे चला रहा था। उसने विवेचना अधिकारी को इस तथ्य की जानकारी दी या नहीं, यह स्पष्ट नहीं है। मुख्य परीक्षा में, पी.डब्ल्यू.-1 ने कहा कि कमलेश गर्ग वाहन का चालक था, लेकिन उसे मिथलेश गर्ग चला रहा था। मिथलेश गर्ग, घायलों को घटनास्थल से अपने वाहन में निरंजन वर्मा और बिंदेश के साथ लाया था। बहेरी से कालिंजर तक, वाहन संख्या यू.पी. 90 ए 7133 को ब्रेजनेव उर्फ गुड्डन लाया गया था। मिथलेश कुमार गर्ग उसका रिश्तेदार नहीं है और निरंजन वर्मा चालक नहीं है। मिथलेश गर्ग उनके बचपन के दोस्त थे, जिन्होंने बताया कि उन्हें गाड़ी चलाना नहीं आता, इसलिए ब्रेजनेव उर्फ गुड्डन ने गाड़ी चलाई। इस घटना में गुड्डन घायल हो गया और उसके बाद मिथलेश गर्ग गाड़ी लेकर आया। गाड़ी लालजी कुरील की है और इसे ब्रेजनेव @ गुड्डन ने किराए पर लिया था। ब्रेजनेव के साथ स्थायी चालक मिथलेश नारायण गर्ग भी था, जिसके पास ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और उसके दाहिने हाथ पर गोली लगने से चोट लगी थी।

10. पी.डब्ल्यू.-1 ने जांच अधिकारी को आरोपी (पप्पू) द्वारा पहली बार बंदूक तानने के बारे में नहीं बताया, बल्कि उसने बताया कि एक बदमाश राइफल लेकर बाहर आया था। उसने पप्पू को नहीं पहचाना, इसलिए वह उसका नाम नहीं बता सका। पहचान परेड के बाद उसे पता चला कि उक्त बदमाश का नाम पप्पू था। वह यह नहीं बता सका कि पहचान परेड कब हुई थी। पहचान परेड में वह पप्पू की पहचान नहीं कर सका क्योंकि उसके चेहरे पर कई जगह पैच लगे हुए थे। उसने उसे न्यायालय में देखने पर ही पहचाना। नीलू ने पप्पू की पहचान की जो 19.02.2024 को न्यायालय में आया था और उसने बताया कि यह बदमाश पप्पू है। पहचान परेड के बाद उसे पता चला कि ये वही आरोपी हैं जो दुर्घटना में शामिल थे। पप्पू यादव, इस घटना में शामिल है। पहचान परेड के दौरान, आरोपियों के नाम बताए गए और कहा गया कि इन लोगों की पहचान की जानी है। उसने कई आरोपियों के नाम अखबारों में भी देखे थे। संतोष अपनी शादी से 3-4 साल पहले अपने गाँव आया

करता था। वह अपने बड़े भाई अशोक को नहीं जानता। संतोष के पिता, लाला राम किशोर की हत्या उसके सगे फूफा, बुद्ध विलास ने की थी। बुद्ध विलास की हत्या अशोक ने की थी और इंद्रप्रकाश इस घटना में घायल हो गया था। उसने इस बात की जानकारी से इनकार किया कि अशोक को उपरोक्त हत्या के मामले में फांसी की सजा सुनाई गई थी और राष्ट्रपति द्वारा दया याचिका पर उसे क्षमादान दिया गया था।

उन्होंने इस बात की जानकारी से भी इनकार किया कि अशोक को मध्य प्रदेश में डकैती के एक मामले में सात साल की सजा हुई थी और वह लगभग 2-3 साल पहले ही रिहा हुआ है। उन्होंने इस बात की जानकारी से भी इनकार किया कि बुद्ध विलास का बेटा संतू गिरोह का सदस्य था। उनके भाई मदन मोहन की रास्ते में ही मौत हो गई थी। उनके दाहिने घुटने और बाएं पैर पर खरोंचें आई थीं। आरोपियों की पहचान परेड एक साथ नहीं हुई थी। 14.05.200 को अनुराग और राम सुजान की पहचान हुई और 5.07.2003 को विजय और पप्पू की पहचान हुई। किसी अन्य आरोपी की पहचान नहीं हुई। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि अनुराग मिश्रा और राम सुजान को कालिंजर ले जाया गया और पुलिस ने वहां उनकी तस्वीरें लीं। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि पुलिस ने उनसे उनकी पहचान करवाई थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि वह दूसरी जीप में थे और उनके साथ कोई घटना नहीं हुई।

12. पी.डब्ल्यू.-2, ब्रेज़नेव उर्फ गुड्डन, ने बताया कि 23.01.2003 को प्रातः 9:00 बजे, घटना कालिंजर किले की ढलान पर, पुलिस के पास हुई। वह 22.01.2003 को महोत्रा गाँव से एक बारात में बहेरी गाँव आया था। 23.01.2003 को प्रातः 7:00 बजे, वह अन्य लोगों के साथ दो मार्शल जीपों में कालिंजर गया। दोनों जीपों में 18-20 यात्री थे। एक मार्शल जीप वह चला रहा था जिसमें छेदी लाल, निरंजन वर्मा, सुधीर कुमार पांडे, नीलू, शीलू और मदन मोहन बैठे थे। उसकी जीप आगे थी। दूसरी मार्शल जीप पिंटू चौरसिया चला रहा था। कालिंजर किले में नीलकंठ महादेव मंदिर के दर्शन करने के बाद, वे लगभग सुबह 9:00 बजे बहेड़ी के लिए वापस चल पड़े। उनकी जीप आगे थी जबकि दूसरी जीप पीछे थी। किले की ढलान पर, एक व्यक्ति राइफल लिए खड़ा था। उसने जीप की ओर इशारा किया और उसे जीप रोकने को कहा, जिसे उसने डर के मारे रोक दिया। इसके बाद, 4-5 लोग बंदूकों से लैस होकर और आ गए। उन्होंने यात्रियों को जीप से नीचे उतारा और उन्हें दौड़कर ढलान पर चढ़ने को कहा। जब यात्री और पी.डब्ल्यू.-1 तेजी से भागने लगे, तो बदमाशों ने पीछे से गोलीबारी शुरू कर दी और लोग गिरने लगे। उसके दाहिने हाथ में चोट लग गई और वह पहाड़ी से कूद गया। गोली लगने से घायल होने के कारण, सुधीर कुमार पांडे, अशोक कुमार तिवारी, गंधर्व सिंह बुंदेला, राम सुंदर द्विवेदी, शीलू और कुमारी श्वेता की मृत्यु हो गई। वह घायल हो गए। मदन मोहन और पिंटू भी घायल हो गए और उन्हें अस्पताल ले जाया गया। निरंजन वर्मा को भी चोटें आईं। पी.डब्ल्यू.-2 ने अनुराग मिश्रा, राम सुजान और अंत में पप्पू यादव की पहचान की, जिन्होंने वाहनों को रुकवाया था।

13. जिरह में, पी.डब्ल्यू.-2 ने बताया कि दूसरा वाहन 4-6 कदम की दूरी पर था। उसने एक बदमाश को राइफल के साथ आते देखा और उसके बाद 4-5 अन्य बदमाश आए। उसने 5-6 बदमाशों को देखा जिनके चेहरे खुले हुए थे। पहाड़ी से कूदते समय उसके हाथ में चोटें आईं और गिरने के बाद उसके पैरों में भी चोटें आईं। घटना के बाद, विवेचना अधिकारी ने उसका बयान दर्ज किया। उसने इस बात से इनकार किया कि पुलिस

राम सुजान को थाने लाई थी और उसके बाद गवाहों को थाने बुलाकर उनके बयान दर्ज किए गए। उसने आगे बताया कि घटना के 2-3 दिन बाद उसे पता चला कि पप्पू गिरोह इस घटना में शामिल है। बदमाशों की पहचान के लिए वह दो बार जेल गया। उसने पहली बार उनकी पहचान की, दूसरी बार नहीं। दूसरी बार, उसने पप्पू उर्फ जयकरण की पहचान की। उस समय उसे उसका नाम नहीं पता था, लेकिन न्यायालय में पहली बार उसका नाम सुना। वह यह नहीं बता सका कि उसे कब गोली लगी, और कितने अन्य लोगों को भी गोली लगी, और न ही वह यह बता सका कि किन बदमाशों ने गोलीबारी की और किनने नहीं। बदमाशों के भागने के बाद, वह घटनास्थल पर पहुँचा जहाँ पुलिस बल पहुँच चुका था। पीएसी कैंप मुख्य सड़क पर था।

14. पी.डब्ल्यू.-3, निरंजन वर्मा ने बताया कि लगभग 20-22 लोग दर्शन के लिए कालिंजर किले गए थे। एक वाहन ब्रेज़नेव उर्फ गुड्डन चला रहा था और नीलू, शीलू, छेदी लाल, मिथलेश और मदन मोहन भी अपनी जीप में थे। जब एफआईआर में बताई गई घटना हुई, तब उनकी जीप आगे थी। बदमाशों द्वारा गोली चलाने के बाद, वह गिर गए और 20-25 फीट नीचे पहाड़ी से लुढ़कते हुए झाड़ियों में छिप गए। बदमाशों के जाने के बाद, वह बाहर आए और घायलों को अस्पताल ले गए। मदन मोहन और पुनीत तिवारी की अस्पताल ले जाते समय रास्ते में ही मौत हो गई। सभी बदमाशों की उम्र लगभग 25, 30 और 35 वर्ष थी। परीक्षण पहचान परेड में, उसने पप्पू, विजय, अनुराग और राम सुजान की पहचान की। पप्पू की पी.डब्ल्यू.-3 ने स्पष्ट रूप से पहचान की और उसने राम लखन और राम सुजान की भी पहचान की।

15. जिरह में, पी.डब्ल्यू.-3 ने कहा कि मार्शल जीप ब्रेज़नेव ने किराए पर ली थी और उसे मिथलेश चला रहा था। जब वे नरेंनी अस्पताल आए, तो जीप पिंटू चौरसिया चला रहा था। उसने कहा कि पहले एक बदमाश आया और उसके बाद 4-5 अन्य आए। वह गिन नहीं सका कि वहाँ कितने बदमाश थे। उन्होंने अपने चेहरे नहीं ढके थे। उसकी जीप में ग्यारह लोग बैठे थे, जिन पर पीछे से गोली चलाई गई। सबसे पहले, राम सुजान ने अपनी डबल बैरल बंदूक से गोली चलाई, उसके बाद पप्पू ने कहा कि उन सभी को जल्दी से मार डालो। इसके बाद, सभी ने गोली चला दी। उसने इस बात से इनकार किया कि वह मौके पर मौजूद नहीं था और ब्रेज़नेव उर्फ गुड्डन का दोस्त होने के कारण वह इस न्यायालय के समक्ष झूठा बयान दे रहा है। उन्होंने कहा कि उन्होंने विवेचना अधिकारी को बताया था कि राइफल तानने वाला पहला बदमाश पप्पू था और अगर विवेचना अधिकारी ने अपने बयान में इसका ज़िक्र नहीं किया, तो वह इसका कारण नहीं बता सकते। घटना के बाद, कालिंजर किले के लोगों ने उन्हें बताया कि जिस व्यक्ति ने सबसे पहले राइफल तान दी थी, वह पप्पू था। वह जेल में पप्पू को नहीं पहचान सके, क्योंकि पहचान परेड में पेश किए गए सभी लोगों पर चिप्पी चिपका दी गई थी। चूँकि वह अब न्यायालय में है, इसलिए उसने उसकी पहचान कर ली है। उन्होंने विवेचना अधिकारी को बताया था कि पहली गोली राम सुजान ने अपनी दोनाली बंदूक से चलाई थी, लेकिन अगर बयान में इसका ज़िक्र नहीं है, तो वह इसका कारण नहीं बता सकते हैं।

16. पी.डब्ल्यू.-4, राजा ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि 23.10.2003 को प्रातः लगभग 9:00 बजे वह अपने भाई फुल्ला से मिलने कालिंजर किले गया था, जो वहाँ पुरातत्व विभाग में कार्यरत है। जब वह अपने

भाई फुल्ला से मिलने के बाद वापस आ रहा था, तो उसने किले से दो मार्शल जीपों को नीचे उतरते देखा। जब गाड़ियाँ पातालगंगा के ऊपर पुलिया पर पहुँचीं, तो उसने गोलीबारी की आवाज़ सुनी। 7-8 व्यक्ति गोलीबारी कर रहे थे। उसने पप्पू को पहचान लिया, जो न्यायालय में मौजूद था। वह दूसरों को नहीं पहचान सका क्योंकि उनकी पीठ उसके सामने थी। पी.डब्ल्यू.-4 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। जिरह में उसने कहा कि उसने सभी बदमाशों को दूर से देखा था। पप्पू के पास राइफल थी और उसने विवेचना अधिकारी को पप्पू के अलावा किसी का नाम नहीं बताया था। उसने आगे बताया कि जिरह में उसने पप्पू, छोटा और अनुराग को पहचान लिया था, लेकिन उसने उन्हें पहले नहीं देखा था। वे उसके गाँव के ही हैं। वे घटना में शामिल नहीं थे। उसने इस संबंध में विवेचना अधिकारी को कभी कोई बयान नहीं दिया।

17. पी.डब्ल्यू.-5, दीन दयाल शाहू ने बताया कि वह कालिंजर किले में स्नान करने गया था और लौटते समय किले के सातवें द्वार के पास उसकी मुलाकात राजा और फुल्ला से हुई। उसने दो जीपों को आते देखा और जैसे ही जीपें रास्ते में पुलिया के पास पहुँचीं, पप्पू, राइफल से लैस झाड़ियों से बाहर आया। उसने यात्रियों को जीप से नीचे उतारा। पप्पू के साथ छोटा, अनुराग, ध्यान, विजय और अन्य लोग थे जिन्हें वह नहीं पहचानता था। पप्पू ने जीप में सवार सभी लोगों को बाहर आकर पहाड़ी के ऊपर भागने का निर्देश दिया और जब वे भागने लगे तो पप्पू और उसके साथियों ने पीछे से उन पर गोलीबारी शुरू कर दी। पाँच लोगों की मौत पर ही मौत हो गई, जिनमें एक लड़की भी शामिल थी, और दो घायल हो गए। इसके बाद, उसने बताया कि लड़की पाँच लोगों के अलावा मरने वाली छठी व्यक्ति थी। जिरह में उसने बताया कि आरोपी, बबलू यादव का बेटा ध्यान, न्यायालय में मौजूद नहीं है। उसके बड़े भाई नीलकांत के साले (साधु) की हत्या कर दी गई थी और अज्ञात आरोपियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई थी। घटना के समय, वह डर गया और झाड़ियों में छिप गया। कुल 8-10 बदमाश थे और उनमें उसके द्वारा बताए गए लोग भी शामिल थे। वह यह नहीं बता सकता कि उसके बयान में अन्य आरोपियों के नाम कैसे बताए गए, जबकि जांच अधिकारी ने उसे इस बारे में कभी सूचित ही नहीं किया। एक जीप पर नंबर प्लेट लगी थी जबकि दूसरी पर नंबर प्लेट नहीं थी। घटना के बाद वह सतना चला गया और 20-22 दिन बाद वापस आया। इस दौरान उसने घटना के बारे में किसी को कुछ नहीं बताया। विवेचना अधिकारी उसके घर आए थे और उन्होंने उसे घटना की जानकारी दी। पप्पू अपने भाई नीलकांत की हत्या में शामिल नहीं था।

ध्यान पप्पू का चचेरा भाई है। उसने पुलिस का मुखबिर होने से इनकार किया और कालिंजर किले में नहाने की झूठी कहानी गढ़ी। उसने बताया कि आरोपियों ने लगभग 10-11 फायर किए। कुछ बदमाशों के चेहरे छिपे हुए थे, जबकि कुछ के चेहरे खुले थे। वह राजा माली के साथ छिपा हुआ था और फुल्लू की पप्पू से दुश्मनी है, वह उसके खिलाफ बयान दे रहा है। पप्पू अपने भाई नीलकांत की हत्या में शामिल नहीं था। ध्यान पप्पू का चचेरा भाई है। उसने इस बात से इनकार किया कि वह पुलिस का मुखबिर है और उसने कालिंजर किले में नहाने की झूठी कहानी गढ़ी है। उसने बताया कि आरोपियों ने लगभग 10-11 फायर किए। कुछ बदमाशों के चेहरे छिपे हुए थे, जबकि कुछ के चेहरे खुले थे। वह राजा माली और फुल्लू के साथ एक घंटे तक छिपा रहा। उसने इस बात से इनकार किया कि पप्पू से दुश्मनी के कारण वह उसके खिलाफ बयान दे रहा है।

19. पी.डब्ल्यू.-6, कांस्टेबल, बारे लाल, ने थाने में सूचक द्वारा दिए गए आवेदन को प्रमाणित किया।

20. पी.डब्ल्यू.-7, डॉ. वी.के. सक्सेना ने मृतक मदन मोहन, पुनीत पुत्र अशोक कुमार, कुमारी श्वेता तिवारी पुत्री अशोक कुमार द्विवेदी, साहिलेंद्र उर्फ शीलू द्विवेदी पुत्र मदन मोहन और गंधर्व सिंह बुंदेला की पोस्टमार्टम रिपोर्ट पेश की।

21. पी.डब्ल्यू.-8, डॉ. रऊफ सिद्दीकी, ने साबित किया कि उन्होंने मृतक सुधीर कुमार पांडे और राम सुंदर द्विवेदी के शव का पोस्टमार्टम किया था।

22. पी.डब्ल्यू.-9, तुलसीराम ने साबित किया कि कथित अपराध के समय वह पुलिस स्टेशन- कालिंजर किला में एस.एच.ओ. के पद पर तैनात थे और उन्होंने इस मामले की विवेचना की। उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा कि 23.01.2003 को, जब विवादित मामला पुलिस स्टेशन में दर्ज किया गया था, तब वह एस.एच.ओ., पुलिस स्टेशन-कालिंजर के पद पर तैनात थे। उन्होंने स्वयं एफआईआर की प्रति प्राप्त करने के बाद विवेचना शुरू की। उन्होंने घटनास्थल की जाँच की और अभियुक्तों की तलाशी ली। शवों की जाँच-पड़ताल करवाई और जाँच रिपोर्ट तैयार करवाई। उन्होंने इस संबंध में दस्तावेज़ों को निचली न्यायालय के समक्ष प्रमाणित किया और उन्हें प्रदर्शित करवाया। उन्होंने साइट प्लान तैयार करने, घटनास्थल से खून से सनी और सादी मिट्टी इकट्ठा करने, खाली कारतूसों की बरामदगी, आवश्यक ज़ापन तैयार करने, मृतकों के सामान की बरामदगी और उनकी बरामदगी के ज़ापन तैयार करने की भी पुष्टि की। 24.01.2003 को उन्हें मुखबिर से पता चला कि विवादित घटना पप्पू यादव गिरोह द्वारा की गई थी; 25.01.2003 को उन्होंने गवाहों सौरभ गौतम, झाड़वर पिंटू चौरसिया, गुड़िया, बुडेला आदि के बयान दर्ज किए, जिन्होंने घटना को देखते हुए गवाही दी। इसमें शामिल दो वाहन उनके मालिकों को सौंप दिए गए। उन्होंने आवश्यक पर्चा तैयार किया। 4.02.2003 को उन्होंने गवाहों फुल्लु माली और राजा के बयान दर्ज किए, जिन्होंने पप्पू उर्फ कमल यादव, छोटा, विजय यादव, जयकरण उर्फ पप्पू, संता यादव, राम सुजान यादव, कुबेर सिंह ठाकुर, चिम्पा और दो अन्य लोगों के साथ हुई घटना का प्रत्यक्षदर्शी विवरण दिया। उन्होंने आगे कहा कि इससे पहले जनता के गवाहों ने उपरोक्त व्यक्तियों के नाम लिए थे। उन्होंने दीन दयाल साहू का बयान दर्ज किया, जिन्होंने कहा कि उन्होंने पप्पू गैंग के सदस्यों को अपराध करते देखा था। उन्होंने अनुराग मिश्रा और राम जी उर्फ राम लखन का भी नाम लिया, जिसके बाद उनका तबादला कर दिया गया। अपनी जिरह में, पी.डब्ल्यू.-9 ने कहा कि मुखबिर का बयान उसी दिन शाम लगभग 4:00 बजे दर्ज किया गया था। उनसे तीन सवाल पूछे गए, जिनके जवाब में उन्होंने बताया कि वह अपने साले (साधु) के बेटे की बारात में आए थे; उनके जीजा और उनके जीजा के बड़े भाई अशोक के बीच दुश्मनी चल रही है। उनके बीच एक छोटा सा पारिवारिक विवाद था और अशोक बारात में नहीं आया था। उन्होंने घटना के बारे में कुछ नहीं बताया और कहा कि 24 जनवरी, 2003 को उन्हें मुखबिर से पता चला कि पप्पू यादव इस घटना में शामिल है। उस समय आरोपी के खिलाफ कोई साक्ष्य नहीं था। वह पप्पू यादव को उनके नाम से जानते थे और घटना से पहले उन्होंने उनका चालान किया था और एक अन्य घटना के संबंध में उनसे पूछताछ की थी। वह राम सुजान को भी जानता था जिसके खिलाफ थाने में मामला लंबित है। पीएसी कैंप घटनास्थल से डेढ़

किलोमीटर की दूरी पर स्थित था। संतोष गौतम और अशोक गौतम के बीच दुश्मनी की बात उसे मुखबिर के बयान और प्रथम सूचना रिपोर्ट में पता चली, लेकिन उसने इसे अपराध का मकसद नहीं माना क्योंकि अन्य जानकारीयों उसे पता चली थीं। घटना के समय उसके पास पप्पू गिरोह के सदस्यों की सूची नहीं थी, लेकिन वे थाने में मौजूद थे। घटना से पहले, उसे यह जानकारी नहीं थी कि पप्पू ने कोई और अपराध किया था। उसने 14.02.2003 को दीन दयाल साहू का बयान दर्ज किया। बयान दर्ज होने और घटना घटित होने से पहले, वह दीन दयाल से कभी नहीं मिला था। दीन दयाल साहू ने बताया कि सभी आरोपी बंदूकों से लैस होकर बाहर आए थे। गवाह फुल्लू ने घटना को देखने वाले व्यक्ति के रूप में दीन दयाल का नाम लिया। उन्होंने यह भी कहा कि राजा माली ने भी घटना देखी थी। आरोपियों के नाम फुल्लू माली, राजा माली और दीन दयाल के बयानों से प्रकाश में आए। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि राजा माली और दीन दयाल उनके द्वारा स्थापित गवाह हैं। पी.डब्ल्यू.-9 ने इस बात से इनकार किया कि उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि राजा माली और दीन दयाल की घटना से पहले पप्पू यादव से कोई दुश्मनी थी या नहीं। फुल्लू ने पप्पू उर्फ कमाल, छोटा, विजय यादव, जयकरण, राम सुजान, कुबेर, राम नारायण के नाम बताए और राजा माली ने पप्पू यादव, छोटा, विजय यादव, जयकरण, राम सुजान और कुबेर के नाम बताए। दोनों गवाहों ने राम लखन उर्फ राम जी का नाम नहीं लिया। पी.डब्ल्यू.-9 ने इस बात से इनकार किया कि उसने इस मामले में राम लखन उर्फ राम जी को झूठा गिरफ्तार किया और फंसाया है। उस समय राम लखन का कोई आपराधिक इतिहास उसके थाने में दर्ज नहीं था। विवादित घटना से पहले, पप्पू यादव गिरोह ने कोई जघन्य अपराध नहीं किया था। घटना से पहले, पप्पू यादव की माँ और बहन का एक आपराधिक मामले में चालान किया गया था। निरंजन ने यह बयान नहीं दिया कि राइफल दिखाकर गाड़ी रुकवाने वाला पहला बदमाश पप्पू था। गवाह छेदी लाल ने उसे यह नहीं बताया कि मिथलेश गर्ग एक गाड़ी चला रहा था, बल्कि उसने बताया कि उस समय गुड्डन पुत्र मदन मोहन उसे चला रहा था। पी.डब्ल्यू. 9 ने अपनी जिरह में आगे कहा कि उसे गवाहों दीन दयाल साहू, फुल्लू और राजा के कालिंजर किले से बाहर आने का स्थान नहीं बताया गया और वे छिपे हुए हैं क्योंकि सूचना बाद में मिली। उसने बाद में कोई नक्शा नज़री तैयार नहीं की थी। उन्होंने आगे बताया कि 03.07.2003 को सुबह लगभग 9:00 बजे वह अभियुक्त राम सुजान के घर गए थे और उनके घर में तोड़फोड़ की और उनके भाई राम जियावन को गिरफ्तार कर लिया और 02.08.2003 तक हवालात में रखा। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उन्होंने इन लोगों को झूठे मामले में फंसाने की धमकी दी थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि 03.08.2003 को राम जियावन ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, बांदा के समक्ष पी.डब्ल्यू.-9 द्वारा उन्हें पहुँचाई गई चोटों के चिकित्सीय परीक्षण के संबंध में हलफनामा दिया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि राम जियावन के पिता ने घटना के संबंध में उच्च अधिकारियों और मानवाधिकार आयोग को आवेदन दिया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने राम जियावन और राम सुजान को झूठा फंसाया था।

23. पी.डब्ल्यू.-10, विवेचना अधिकारी, महेंद्र सिंह ने अपने द्वारा की गई विवेचना के भाग को सिद्ध किया। पी.डब्ल्यू.-10 ने बताया कि उन्होंने इस मामले की विवेचना 05.04.2003 को अपने हाथ में ली थी। उन्हें अभियुक्त छोटा की टीकमगढ़ में गिरफ्तारी की सूचना मिली और उन्होंने अपना बयान दर्ज कराया। उन्होंने अपने बयान में इस मामले में अपनी संलिप्तता स्वीकार की। उन्होंने आगे बताया कि 10.05.2003 को उन्हें

पता चला कि पप्पू उर्फ कमल यादव के हथियार 09.05.2003 को बरकोला से बरामद किए गए हैं। इसके बाद, वह अजयगढ़ गया और कमल यादव गिरोह से संबंधित एक फैक्ट्री निर्मित राइफल, एक डीबीबीएल बंदूक, एक और डीबीबीएल बंदूक फैक्ट्री निर्मित 12 बोर, एसबीबीएल बंदूक 12 बोर, एक देशी राइफल और कई जिंदा कारतूस बरामद किए। मुकदमा अपराध संख्या 88/2003, धारा 25/27 आर्म्स एक्ट के तहत और मुकदमा अपराध संख्या 90/2003, धारा 212/216 भारतीय दण्ड संहिता के तहत दर्ज किया गया। अभियुक्तों नंदू उर्फ रजौली और ददुआ उर्फ ददू के बयान भी दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने पप्पू यादव उर्फ कमल यादव के रूप में उपरोक्त हथियारों की बरामदगी की बात स्वीकार की। 14.05.2003 को अनुराग मिश्रा और राम सुजान की पहचान परेड की कार्यवाही की गई और इसका विवरण केस डायरी में दर्ज किया गया। उनके खिलाफ पर्याप्त साक्ष्य मिलने पर उन्होंने अवर न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल किया। अभियुक्त जयकरण उर्फ पप्पू का बयान 24.05.2003 को जिला जेल में दर्ज किया गया और 31.05.2003 को उसे पुलिस रिमांड पर लेने के लिए प्रार्थना पत्र दिया, तब उसका बयान दर्ज किया गया। 05.06.2003 को अभियुक्त चिम्पा उर्फ राजनारायण की कथित तौर पर हत्या कर दी गई और इस आशय की प्रविष्टि केस डायरी में दर्ज की गई। 10.06.2003 को अभियुक्त जयकरण की पहचान परेड कराई गई और गवाहों ने उसकी पहचान की। 11.06.2003 को अभियुक्त पप्पू, विजय और राम लखन उर्फ राम जी के बयान केंद्रीय जेल, सतना में दर्ज किए गए। उन्होंने कथित अपराध में अपनी संलिप्तता स्वीकार की। मृतक के कपड़े एफएसएल, आगरा भेजे गए। जयकरण उर्फ पप्पू के खिलाफ न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल किया गया। आरोपी कमल, विजय और राम लखन उर्फ राम जी को सतना जेल से बांदा स्थानांतरित करने के लिए प्रार्थना पत्र दिया गया। उनकी पहचान परेड कराने के लिए भी प्रार्थना पत्र दिया गया। पहचान परेड कराई गई और उसका विवरण केस डायरी में दर्ज किया गया। 15.07.2003 को सूचक छेदी लाल, नीलू, बृजनेव, निरंजन वर्मा, बृजेंद्र कुमार और पुष्कर सौरभ के बयान दर्ज किए गए। 18.07.2003 को अभियुक्त अनुराग मिश्रा, कमल, विजय, राम जी उर्फ राम लखन के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया। 30.07.2003 को अभियुक्त छोटा उर्फ राजेश के बांदा आने पर उसने अपनी पहचान परेड कराने के लिए प्रार्थना पत्र दिया। उसका विवरण केस डायरी में दर्ज किया गया। अपनी जिरह में, पी.डब्ल्यू.-10 ने कहा कि गवाहों के बयान पूर्ववर्ती विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए थे। किसी भी गवाह ने यह नहीं कहा कि वे घटना से पहले अभियुक्तों को जानते थे। उन्होंने अपराध के मकसद का पता लगाने के लिए ही दूसरी बार उनके बयान दर्ज किए। उन्होंने राजा माली, फुल्लू माली और दीन दयाल साहू के बयान दर्ज नहीं किए क्योंकि उनके बयान पहले ही विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किए जा चुके थे। जब उन्होंने इस मामले की विवेचना अपने हाथ में ली, तब आरोपियों के नाम प्रकाश में आ चुके थे और इसलिए उन्होंने किसी अन्य दिशा में विवेचना नहीं की। उन्हें कथित अपराध करने में सूचनाकर्ता के बड़े भाई अशोक का कोई मकसद नहीं मिला। ऐसा कोई साक्ष्य नहीं था जो अशोक को इस अपराध से जोड़ सके। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि 31.05.2003 को थाना प्रभारी, धर्मपुर, अशोक चौरसिया द्वारा खींची गई पप्पू उर्फ कमल की तस्वीर उन्हें दी गई थी। उन्होंने यह भी इनकार किया कि उन्होंने गवाहों को यह तस्वीर दिखाने के बाद पप्पू उर्फ कमल की पहचान परेड करवाई थी। पप्पू उर्फ कमल, विजय और राम लखन 3.07.2003 को बांदा कोर्ट में थे। उन्हें याद नहीं कि वे बापर्दा थे या नहीं। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने 3 जुलाई 2003 को ही गवाहों से आरोपियों की पहचान करवा ली थी। नन्हू और ददू इस मामले में आरोपी नहीं हैं और न ही उन्हें पुलिस

मुठभेड़ में गिरफ्तार किया गया था। उन्हें सामान्यतः गिरफ्तार किया जाता था। 10.06.2003 को गवाह- गुड्डन उर्फ ब्रेजनेव, नीलू और पुष्कर ने परीक्षण पहचान परेड में भाग लिया, उसके बाद, उनके बयान दर्ज किए गए। पहचान के बाद उन्हें आरोपियों के नामों के बारे में बताया गया। परीक्षण पहचान के बाद, उन्होंने गवाहों से पूछा कि वे आरोपियों के नाम कैसे जानते हैं, तब उन्होंने बताया कि परीक्षण पहचान की कार्यवाही के दौरान उन्हें उनके नाम पता चले। उन्होंने आरोपी, अनुराग मिश्रा की भी परीक्षण पहचान परेड में पहचान कराई और गवाहों के बयान दर्ज किए। गवाहों ने आरोपियों के नाम बताए थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि गवाहों को परीक्षण पहचान परेड से पहले आरोपियों के नामों के बारे में बताया गया था।

24. पी.डब्ल्यू.-11 ने साबित किया कि पी.डब्ल्यू.-10 के स्थानांतरण के बाद उसने इस मामले की शेष जाँच की। पी.डब्ल्यू.-11 ने बताया कि 16.02.2003 को वह पुलिस स्टेशन- कालिंजर में एस.एच.ओ. के पद पर तैनात था। उससे पहले इस मामले की विवेचना पी.डब्ल्यू.-9, तुलसी राम कर रहे थे। उनके स्थानांतरण के बाद, उन्होंने विवेचना का कार्यभार संभाला। उसने केस डायरी में पहले दिए गए पर्चों का अवलोकन किया। उसने जेल में अभियुक्त अनुराग मिश्रा का बयान दर्ज किया, जिसमें उसने कथित अपराध करना स्वीकार किया। उसने गिरोह के हथियारों की बरामदगी के संबंध में अपना बयान दर्ज किया। इसके बाद, अभियुक्त पप्पू की संपत्ति कुर्क कर ली गई। उसे रिमांड पर लिया गया। आरोपी पप्पू को हथकड़ी लगाकर बापर्दा उसके घर ले जाया गया, जहाँ उसके घर में रखे एक बक्से से एक 12 बोर की सिंगल बैरल बंदूक और दो जिंदा कारतूस बरामद किए गए।

उसने स्वीकार किया कि उसने अपने साथियों पप्पू और अन्य के साथ मिलकर इसी बंदूक की मदद से कथित अपराध को अंजाम दिया था। आरोपी पप्पू को बापर्दा देखकर मोहल्ले के लोगों ने अपने घरों के दरवाजे और खिड़कियाँ बंद कर लीं और अंदर चले गए। रास्ते में मिले अनिल, श्याम सुंदर और खरिका ने बयान देने से इनकार कर दिया क्योंकि अनुराग मिश्रा के कस्बा में भय व्याप्त हो गया था। वह बरामद बंदूक का लाइसेंस नहीं दिखा सके। घटनास्थल से बरामद बंदूक और कारतूसों को सील कर दिया गया और सर्वमोहर बनायी गयी। उन्होंने न्यायालय के समक्ष अभियुक्तों से बरामद हथियारों को साबित किया। उन्होंने मृतक की जाँच रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों पर उप-निरीक्षक आर.एन. लाल के हस्ताक्षर साबित किए। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने राम सुजान, अनुराग मिश्रा, पप्पू और अन्य के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया और उसके बाद, उनका कालिंजर थाने से तबादला कर दिया गया। इससे पहले जाँच पी.डब्ल्यू.-10, महेंद्र सिंह यादव द्वारा की गई थी। जिरह के दौरान पी.डब्ल्यू.-11 ने कहा कि उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि उप-निरीक्षक आर.एन. लाल सेवानिवृत्त हुए हैं या नहीं। अभियुक्त अनुराग मिश्रा चित्रकूट जेल में बंद है जहाँ उसने स्वीकार किया कि उसने कथित अपराध किया था। उसके पास अनुराग मिश्रा के खिलाफ कोई अन्य साक्ष्य नहीं था। उन्होंने कहा कि जब उन्होंने 28.02.2003 को आरोपी अनुराग मिश्रा को अभिरक्षा में लिया, तो उन्होंने उसकी निशानदेही पर हथियारों की बरामदगी करवाई। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने हथियारों की फर्जी बरामदगी दिखाई थी। उन्होंने कहा कि कस्बा, कालिंजर और आसपास के इलाके में आरोपी अनुराग मिश्रा का बहुत आतंक है, और इसलिए, उसकी निशानदेही पर हथियारों की बरामदगी के समय कोई भी उसके खिलाफ बयान देने को तैयार नहीं हुआ

था। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें याद नहीं है कि आरोपी अनुराग मिश्रा इस मामले से पहले किसी अन्य मामले में शामिल था या नहीं।

25. पी.डब्ल्यू.-12, बारे लाल ने साबित किया कि वह पुलिस स्टेशन- कालिंजर किला में कांस्टेबल क्लर्क के पद पर तैनात था और उसने अभियुक्त अनुराग मिश्रा की निशानदेही पर एसबीबीएल बंदूक की बरामदगी का फर्द तैयार किया था।

26. पी.डब्ल्यू.-13, शिव बरदानी ने साबित किया कि उसने अभियुक्त अनुराग मिश्रा से एसबीबीएल बंदूक, कारतूसों सहित, बरामद कराई थी। अनुराग मिश्रा को उपरोक्त उद्देश्य के लिए बांदा जेल से लाया गया था।

27. पी.डब्ल्यू.-14, उप-निरीक्षक चंद्रभान सिंह ने बताया कि उन्होंने शस्त्र अधिनियम की धारा-25 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 18/2003 पंजीकृत किया और अभियुक्त अनुराग मिश्रा की निशानदेही पर बरामद एसबीबीएल बंदूक के संबंध में विवेचना की।

28. पी.डब्ल्यू.-15, मुकुंद पांडे ने साबित किया कि शस्त्र अधिनियम की धारा-25 के अंतर्गत मामले की रिपोर्ट उनके द्वारा सी.पी. सिंह के मौखिक निर्देश पर दर्ज की गई थी।

29. पी.डब्ल्यू.-16, राम नारायण ने साबित किया कि उसने 10.06.2003 को नगर मजिस्ट्रेट के रूप में कार्यरत रहते हुए अभियुक्त जयकरण उर्फ पप्पू की पहचान परेड करवाई थी। उसकी पहचान गवाहों, बृजेंद्र कुमार और नीलू ने की थी। उसने अपने द्वारा तैयार किए गए पहचान पत्र को साबित किया। पी.डब्ल्यू.-16 ने बताया कि 10.06.2003 को वह जिला बांदा में नगर मजिस्ट्रेट के रूप में तैनात था। जब उसने अभियुक्त जयकरण उर्फ पप्पू की पहचान परेड करवाई, तो उसकी उपस्थिति में ही उसकी पहचान परेड करवाई गई। समान शारीरिक विशेषताओं वाले दस जेल कैदियों को अभियुक्त जयकरण उर्फ पप्पू के साथ खड़ा किया गया और बृजेंद्र कुमार और नीलू ने उसकी पहचान की। पहचान पत्र तैयार किया गया जिस पर उसकी लिखावट और हस्ताक्षर मौजूद हैं। हालाँकि, उन्होंने कहा कि पहचान पत्र में इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि आरोपी पप्पू उर्फ जयकरण के चेहरे पर किन जगहों पर चिप्पी लगाई गई थी। पहली बार गुड्डन उर्फ ब्रेजनेव ने जयकरण को नहीं पहचाना। पुष्कर उर्फ सौरभ ने भी उसे नहीं पहचाना। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि पुलिस के निर्देश पर पहचान परेड अवैध रूप से की गई थी।

30. पी.डब्ल्यू.-17, नंदन चक्रवर्ती ने बताया कि वह 14.05.2003 को जिला-बांदा में परगना मजिस्ट्रेट के रूप में तैनात थे और उन्होंने अभियुक्त अनुराग मिश्रा और राम सुजान की पहचान परेड कराई थी। गवाहों ने उनकी पहचान कराई और पहचान जापन तैयार कर उस पर हस्ताक्षर कराए। अभियुक्त छोटा उर्फ राजेश की पहचान 06.08.2003 को हुई और उन्होंने पहचान जापन तैयार कराया। अनुराग मिश्रा की पहचान गवाहों ने

की। उन्होंने अपनी जिरह में स्वीकार किया कि उन्होंने 05.07.2003 को छेदी लाल, निरंजन वर्मा और बृजेन्द्र कुमार द्वारा अभियुक्त विजय यादव, राम लखन की पहचान कराई थी। पी.डब्ल्यू-17 ने बताया कि 05.07.2003 को उसने अभियुक्तों पप्पू उर्फ कमल, विजय यादव, राम लखन उर्फ राम जी की पहचान परेड करवाई थी, जिनकी पहचान छेदी लाल, निरंजन वर्मा, बृजेन्द्र कुमार और नीलू ने सही ढंग से की थी। जिरह में, उसने कहा कि उसे नहीं पता कि पहचान परेड के लिए समन भेजे गए थे या नहीं। फर्द में यह उल्लेख नहीं है कि अभियुक्त राम लखन से मिलते-जुलते व्यक्तियों को राम लखन के साथ खड़ा करके पहचान परेड करवाई गई थी

31. पी.डब्ल्यू-18, कांस्टेबल, जगदीश बाबू ने थाने में रखे पहचान-पंजिका को प्रमाणित किया। उसने अपने बयान में कहा कि 14.05.2003 को जब अभियुक्त अनुराग मिश्रा और राम सुजान की पहचान परेड कराई गई, तब वह बांदा में परगना मजिस्ट्रेट के रूप में उपस्थित था। उनके साथ समान कद-काठी और वजन के नौ व्यक्तियों को पहचान के लिए रखा गया था। पहचान के बाद उसने फर्द पर अपने हस्ताक्षर किए। 06.08.2003 को अभियुक्त छोटा उर्फ राजेश की पहचान जिला कारागार, बांदा में ए.पी.ओ. डी.के. मिश्रा की उपस्थिति में की गई। गवाहों, छेदी लाल, पुष्कर उर्फ सौरभ ने अभियुक्त छोटा उर्फ राजेश की पहचान की। उसने फर्द पर अपने हस्ताक्षर और लिखावट प्रमाणित की। जिरह में, उन्होंने बताया कि अभियुक्त अनुराग मिश्रा को 29.01.2003 को जेल ले जाया गया और 14.05.2003 को उनकी पहचान परेड कराई गई। अनुराग मिश्रा की सभी गवाहों ने स्पष्ट रूप से पहचान की। उन्होंने स्वीकार किया कि पहचान जापान में अनुराग मिश्रा के साथ पहचान परेड के लिए रखे गए जेल कैदियों की संख्या का कोई उल्लेख नहीं है। उन्होंने कहा कि अनुराग मिश्रा के मामले में अपनाई गई पहचान परेड अभियुक्त छोटा उर्फ राजेश की पहचान परेड में भी अपनाई गई थी।

32. पी.डब्ल्यू-19, राम दास चौधरी ने साबित किया कि उन्होंने मृतक पुनीत उर्फ लाल की जांच रिपोर्ट तैयार कराई तथा उसके शव को पोस्टमार्टम के लिए भेजा।

33. गवाहों के बयान धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने बताया कि उन्हें पुलिस मुठभेड़ के एक झूठे मामले में गिरफ्तार करके थाने लाया गया था और थाने में गवाहों ने उनकी पहचान कराई थी। अभियुक्त छोटा ने बताया कि उसे सतना जेल से वारंट "बी" पर बांदा लाया गया था और ट्रांजिट के दौरान गवाहों ने उसकी पहचान कराई थी। अभियुक्त रामजी उर्फ राम लखन ने भी ऐसा ही बयान दिया। अभियुक्त अनुराग मिश्रा ने बताया कि उसके दुश्मनों से दुश्मनी के चलते उसके खिलाफ फर्जी बरामदगी दिखाई गई और उसे झूठा फंसाया गया। अभियुक्त पप्पू ने भी बताया कि उसे पुलिस अभिरक्षा में लिया गया था और उसके बाद गवाहों को दिखाया गया। वह निर्दोष है और उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

34. डी.डब्ल्यू-1, सीताराम ने बताया कि वह घटना की तिथि को अपने खेत में मौजूद था तथा घटना की तिथि को ऐसी कोई घटना नहीं घटित हुई।

35. डी.डब्ल्यू.-2 ने साबित किया कि वह 23.01.2003 को सुबह लगभग 9:00 बजे से 10:00 बजे तक अपने खेत में रहा। राम सुजान के छोटे भाई को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और उसकी पिटाई कर दी। राम सुजान ने इस संबंध में उच्च अधिकारियों को प्रार्थना-पत्र दिया और इसलिए पुलिस उससे नाराज़ थी। उसने राम सुजान को 30.01.2003 को सुबह 8:00 बजे गाँव में देखा जब वह अपनी फसलों को पानी दे रहा था।

35. डी.डब्ल्यू. 3, ममता पटेल ने भी इस तथ्य की गवाही दी कि राम सुजान 23.01.2003 को प्रातः 07:00 बजे से 10:00 बजे तक अपने खेत की सिंचाई कर रहे थे।

36. विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य पर विचार करने के बाद दिनांक 20.04.2010 के निर्णय और सजा के आदेश द्वारा अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया और सजा सुनाई और इसलिए अपीलकर्ताओं द्वारा उपर्युक्त अपीलें पेश की गई हैं।

37. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 23.01.2003 की कथित घटना के संबंध में दिनांक 23.01.2003 को प्रातः 09.30 बजे पांच अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जो लगभग प्रातः 09:00 बजे, पुलिस स्टेशन से 4 किलोमीटर की दूरी पर स्थित एक स्थान पर घटित हुई थी।

38. शिकायतकर्ता पी.डब्ल्यू.-1, छेदीलाल से विचारण न्यायालय में पूछताछ की गई और उसके अनुसार प्रथम सूचना रिपोर्ट में पांच अज्ञात बदमाशों का उल्लेख किया गया है, जबकि जांच के दौरान विवेचना अधिकारी ने 9 व्यक्तियों को आरोपी बनाया है, जिससे वर्तमान मामले में कई निर्दोष व्यक्तियों को झूठे मामले में फंसाए जाने की संभावना है।

39. घटना में शामिल मुख्य व्यक्ति के बयान में, लेकिन न्यायालय के समक्ष अपने बयान में उसने पहली बार पांच आरोपियों के नाम लिए, जबकि उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में और साथ ही जांच अधिकारी द्वारा धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में आरोपियों के नामों का उल्लेख नहीं किया था।

40. जिरह के दौरान, पी.डब्ल्यू. 1 ने बताया कि सन्दीप पुत्र सन्तोष गौतम का विवाह हुआ था तथा सन्तोष गौतम और उसके सगे भाई अशोक गौतम के मध्य विवाद था तथा उनमें आपस में बातचीत नहीं थी, इसलिए अशोक गौतम अपने पुत्र के विवाह में सम्मिलित नहीं हुआ था।

41. पी.डब्ल्यू. 2, ब्रेज़नेव उर्फ गुड्डू से विचारण न्यायालय में पूछताछ की गई और उसने बताया कि लगभग 5 से 6 अभियुक्तों ने उपरोक्त अपराध में भाग लिया था।

42. पी.डब्ल्यू.3, निरंजन वर्मा, का विचारण न्यायालय में परीक्षण किया गया और उन्होंने पहले तो कहा कि 4-5 अभियुक्त थे, लेकिन उसके बाद उन्होंने कहा कि 7 अभियुक्त थे जिन्होंने उपरोक्त अपराध में भाग लिया था।

43. पी.डब्ल्यू.4, राजा, का विचारण न्यायालय में परीक्षण किया गया, लेकिन उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया, इसलिए उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया।

44. पी.डब्ल्यू.5, दीन दयाल साहू का विचारण न्यायालय में परीक्षण किया गया, जिन्होंने कहा कि 8-10 अभियुक्त उपरोक्त अपराध में शामिल थे।

45. पी.डब्ल्यू.5, दीन दयाल साहू ने अनुराग मिश्रा, पप्पू यादव और छोटा का नाम लिया है, क्योंकि उनसे उनकी पूर्व दुश्मनी थी।

46. पी.डब्ल्यू.9, तुलसी राम शाक्यवाल, से अवर न्यायालय में पूछताछ की गई और उन्होंने बताया कि 4.2.2002 को उनके द्वारा धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत फुल्लू माली और राजा माली का बयान दर्ज किया गया था, जिसमें उन्होंने अभियुक्तों पप्पू उर्फ कोमल, छोटा, विजय यादव, जय करण, संता, राम सुजान, कुबेर सिंह, चिम्पा और 2 अज्ञात व्यक्तियों के नाम लिए थे, लेकिन अनुराग मिश्रा का नाम नहीं लिया था। इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि ये दोनों गवाह फुल्लू माली और राजा माली 14 दिनों तक चुप क्यों रहे और उन्होंने किसी को भी उपरोक्त घटना के बारे में क्यों नहीं बताया।

47. पी.डब्ल्यू.5, दीन दयाल साहू का बयान घटना के लगभग 22 दिन बाद 14.3.2003 को धारा 161 सी.आर.पी.सी. के तहत दर्ज किया गया था और उनके बयान दर्ज करने में देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

50. 4.02.2002 को धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत फुल्लू माली और राजा माली के बयान दर्ज किए गए, जिसमें पहली बार छोटा उर्फ राजेश और राम सुजान को आरोपी बनाया गया। धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज पी.डब्ल्यू.-5, दीन दयाल के बयान में, अनुराग मिश्रा का नाम पहली बार प्रकाश में आया और अभियोजन पक्ष ने कथित चश्मदीद गवाह फुल्लू माली को अवर न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया और पी.डब्ल्यू.4 राजा माली ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया, इसलिए अभियोजन पक्ष की कहानी इस हद तक विश्वसनीय नहीं है।

51. दिनांक 14.5.03 को जिला कारागार, बांदा में पहचान परेड आयोजित की गई थी और यह सुझाव दिया गया था कि अपीलकर्ता, राम सुजान की तस्वीर पुलिस स्टेशन पर ली गई थी और इसे गवाह द्वारा पहचाना गया था।

52. अपीलकर्ताओं को एक महीने से अधिक समय बाद आयोजित पहचान परेड के आधार पर आरोपित किया गया है। राजेश गोविंद जगेशा बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर 2000 एससी 160 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जहाँ अभियुक्त की गिरफ्तारी के पाँच सप्ताह के अत्यधिक विलंब के बाद पहचान परेड आयोजित की गई थी और विलंब का कोई विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं था, ऐसे में ऐसी पहचान परेड के आधार पर अभियुक्त को आरोपित करना उचित नहीं था और अभियुक्त संदेह का लाभ पाने का हकदार था। संदर्भ हेतु, उपरोक्त निर्णय का पैराग्राफ संख्या 4 नीचे उद्धृत है:-

“इस न्यायालय ने आंध्र प्रदेश राज्य बनाम डॉ. एम. वी. रमण रेड्डी एवं अन्य, एआईआर (1991) एससी 1938 में यह माना कि जहाँ पहचान परेड आयोजित करने में अस्पष्टीकृत देरी होती है, वहाँ अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त की पहचान के संबंध में दिए गए साक्ष्य को पूर्णतः विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है और ऐसे मामले में अभियुक्त संदेह के लाभ का हकदार है। इस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा पहचान परेड आयोजित करने में देरी के लिए दिया गया स्पष्टीकरण विश्वसनीय नहीं है। अभियुक्त संख्या 1 और 2 की गिरफ्तारी की तारीख से पाँच सप्ताह और अभियुक्त संख्या 3 और 4 की गिरफ्तारी की तारीख से तीन सप्ताह से अधिक समय तक बॉम्बे जैसे शहर में मजिस्ट्रेट की अनुपलब्धता को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बॉम्बे शहर में कई मजिस्ट्रेट उपलब्ध हैं और जांच एजेंसी परेड से एक निर्दिष्ट मजिस्ट्रेट को बुलाने के लिए बाध्य नहीं थी। उच्च न्यायालय का यह मानना उचित नहीं था कि विशेष कार्यकारी मजिस्ट्रेट की कथित कठिनाइयों के कारण परेड समय से पहले नहीं हो सकती। बचाव पक्ष को यह साबित करने की आवश्यकता नहीं थी कि आयोजित परेड कानूनी कमियों से ग्रस्त थी क्योंकि, निश्चित रूप से, आपराधिक मामले में साक्ष्य का भार कभी नहीं बदलता क्योंकि अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक अभियोजन पक्ष द्वारा सभी उचित संदेहों से परे अन्यथा साबित नहीं कर दिया जाता। ऐसे मामलों में जहाँ किसी व्यक्ति पर अपराध करने का आरोप है और वह गवाहों को पहले से ज्ञात नहीं है, जाँच एजेंसी के लिए यह अनिवार्य है कि वह गवाहों को कथित अपराध करने वाले व्यक्ति की पहचान करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से पहचान परेड आयोजित करे। यदि अभियुक्त ज्ञात है या शिकायत में उसका पर्याप्त वर्णन किया गया है, जिससे न्यायालय के मन में उसकी संलिप्तता के बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है, तो पहचान परेड का अभाव घातक नहीं हो सकता है। ऐसे मामले में जहाँ अभियुक्त व्यक्ति को घटना के तुरंत बाद मौके पर ही गिरफ्तार कर लिया जाता है, ऐसी परेड आवश्यक नहीं हो सकती है। मुकदमे में पहली बार अभियुक्त व्यक्ति की पहचान करने का साक्ष्य, अपने स्वभाव से ही, स्वाभाविक रूप से, कमजोर चरित्र का होता है। इस न्यायालय ने बुधेन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [1970] 2 एससीसी 128 में यह माना कि दोषसिद्धि के लिए साक्ष्य में सामान्यतः यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि कैसे और किन परिस्थितियों में शिकायतकर्ता या गवाहों ने आरोपी व्यक्ति को चुना और ऐसे व्यक्तियों ने संबंधित अपराध में उचित विशिष्टता के साथ क्या भूमिका निभाई। पहचान परेड को पुष्टि के लिए विवेक का एक सुरक्षित नियम माना जाता है। हालाँकि पहचान परेड का आयोजन ठोस साक्ष्य नहीं हो सकता है, फिर भी ऐसी कार्यवाही का उपयोग पुष्टि के लिए किया जाता है ताकि यह माना जा सके कि न्यायालय में लाए गए व्यक्ति की अपराध में संलिप्तता है या नहीं। पहचान परेड का आयोजन विवेक का एक नियम है, इसलिए इसका कानून की स्थापित स्थिति के अनुसार और शीघ्रता से सख्ती

से पालन किया जाना आवश्यक है। यदि कोई देरी हुई है, तो अभियोजन पक्ष द्वारा उसका संतोषजनक स्पष्टीकरण दिया जाना चाहिए।

53. अभियोजन पक्ष की ओर से उपस्थित विद्वान एजीए-प्रथम ने अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का कड़ा विरोध किया है। उन्होंने तर्क दिया है कि यह आठ निर्दोष व्यक्तियों की नृशंस हत्या का मामला है। केवल पहचान परेड कराने में देरी के आधार पर आरोपी को सभी आरोपों से मुक्त नहीं किया जा सकता। उन्होंने राजेश गोविंद जगेशा (सुप्रा) के मामले का भी हवाला दिया है और तर्क दिया है कि मामला अपने तथ्यों पर आधारित है और केवल पहचान परेड कराने में देरी पहचान को अस्वीकार करने का एकमात्र कारण नहीं हो सकती है।

54. प्रतिद्वंदी तर्कों को सुनने के बाद, हम वर्तमान मामले में पाते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा अपराध का कोई उद्देश्य निर्दिष्ट, आरोपित या सिद्ध नहीं किया गया है। अभियोजन पक्ष के मामले से यह स्पष्ट है कि छह व्यक्तियों की हत्या करने के बाद, बदमाशों ने कुछ भी नहीं लूटा, यदि उन्हें डकैत माना जाए। इसलिए, अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों की पहचान परेड करवाई।

55. इस मामले पर विचार करने से पहले, पहचान परेड कराने से संबंधित प्रासंगिक प्रावधानों पर एक नज़र डालना आवश्यक है।

56. उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमावली के अनुच्छेद 116 में संदिग्धों की पहचान परेड कराने की प्रक्रिया का प्रावधान है, जिसका उल्लेख नीचे किया गया है। इससे स्पष्ट है कि छह व्यक्तियों की हत्या करने के बाद, यदि बदमाशों को डकैत माना जाए, तो उन्होंने कुछ भी लूटा नहीं था। अतः अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों की पहचान परेड कराई।

“संदिग्धों की पहचान परेड.- ऐसे सभी मामलों में जिनमें किसी भी स्तर पर संदिग्धों की गवाह द्वारा पहचान के लिए परेड कराने की संभावना हो, विवेचना अधिकारी को अपनी विवेचना की शुरुआत से ही यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाने चाहिए कि पहचान की कार्यवाही शुरू होने से पहले गवाहों को संदिग्धों से मिलने का कोई अवसर न मिले। ऐसी कार्यवाही, जहाँ तक संभव हो, शासनादेश नियमावली और इन विनियमों के अनुच्छेद 31 के प्रावधानों के तहत जेल में आयोजित होने तक स्थगित कर दी जानी चाहिए, जिसके समुचित पालन के लिए, जहाँ तक पुलिस का संबंध है, लोक अभियोजक जिम्मेदार होगा। जब पहचान की कार्यवाही जेलों में नहीं हो सकती, क्योंकि किसी अन्य कारण से संदिग्धों को गिरफ्तार करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं हैं, तो विवेचना अधिकारी को ऊपर उल्लिखित निर्देशों का पालन करना चाहिए, जहाँ तक वे लागू हो सकें। ऐसे मामलों में कार्यवाही एक मजिस्ट्रेट के समक्ष होनी चाहिए, जैसा कि जेलों में होने पर होता या यदि कोई मजिस्ट्रेट उपलब्ध नहीं है, तो दो सम्मानित और निष्पक्ष व्यक्तियों के समक्ष होनी चाहिए, जिन्हें उन्हें यह सुनिश्चित करने के लिए कहा जाएगा कि कार्यवाही गवाहों और अभियुक्तों, दोनों के लिए निष्पक्ष है। किसी भी

महत्वपूर्ण मामले में, जब जेलों में न होने वाली पहचान संबंधी कार्यवाही के लिए कोई मजिस्ट्रेट उपलब्ध न हो, तो किसी राजपत्रित पुलिस अधिकारी को उपस्थित होने की व्यवस्था करनी चाहिए।

57. जेल मैनुअल के पैराग्राफ संख्या 416 में पहचान परेड परीक्षण आयोजित करने की प्रक्रिया का प्रावधान है, जो नीचे उद्धृत है:-

“ 443. विचाराधीन कैदियों के मामले में प्रक्रिया, जिनकी बाद में पहचान की जानी है (क) जब किसी विचाराधीन कैदी को, जिसे बाद में गवाहों द्वारा पहचान के लिए पेश किया जाना हो, जेल में भर्ती कराया जाता है, तो पुलिस अधीक्षक या निरीक्षक के पद से नीचे का कोई पुलिस अधिकारी, प्रवेश के समय या उसके तुरंत बाद जेल को लिखित रूप से सूचित करेगा कि कैदी को पहचान के लिए पेश किया जाएगा: बशर्ते कि जिन कैदियों की पहचान की जानी है, उन्हें पहचान परेड में शामिल होने के लिए नहीं चुना जाएगा।

(ख) जब ऐसी सूचना प्राप्त हो जाए, तो जेल अधीक्षक कैदी को अपना भेष बदलने या अपना रूप इस तरह बदलने से रोकने के लिए निर्देश जारी करेगा जिससे उसकी पहचान मुश्किल हो जाए। ऐसे कैदियों को दोषी ठहराए जाने या रिहा होने तक अपने बाल उसी स्थिति में रखने होंगे, उदाहरण के लिए, यदि कैदी क्लीन शेव है तो उसे दाढ़ी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और इसके विपरीत। पहचान परेड के समय कैदी वही कपड़े पहनेगा जो उसने प्रवेश के समय पहने थे। यदि वह अपने कपड़े नहीं पहन सकता है तो उसे उसी तरह के कपड़े पहनने होंगे, उदाहरण के लिए, यदि वह खेतिहर मजदूर है तो उसे शहरी व्यक्ति के सफेद कपड़े नहीं पहनने चाहिए या इसके विपरीत संदेह के सभी मामलों में पहचान करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश लिए जाने चाहिए। कार्यवाही शुरू होने से पहले, अभियोजन निरीक्षक और बचाव पक्ष के अधिवक्ता, जिन्हें उपस्थित रहने की अनुमति होगी, स्वयं को संतुष्ट कर सकते हैं कि इस पैराग्राफ के सभी नियमों का पूरी तरह से पालन किया गया है। इस कार्यवाही में एक जेल अधिकारी भी उपस्थित रहेगा जो पहचान करने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गए किसी भी आदेश का पालन करेगा।

(ग) पहचान किए जाने वाले कैदी को यथासंभव उसके समान पोशाक, स्वरूप और रूप-रंग वाले कैदियों के बीच रखा जाएगा और उसे अपना चेहरा या कद-काठी छिपाने की अनुमति नहीं दी जाएगी जिससे पहचान में बाधा उत्पन्न हो: बशर्ते कि जिन कैदियों की पहचान की जानी है, उन्हें पहचान परेड में आपस में घुलने-मिलने के लिए नहीं चुना जाएगा।

(घ) जब किसी कैदी की पहचान करनी हो, जिसके हाथ में बेड़ियाँ हों, तो उसके साथ परेड में शामिल कैदियों को उन कैदियों में से चुना जाना चाहिए जो बेड़ियाँ पहने हों। इसके विपरीत, यदि जिस कैदी की पहचान की जानी है, उसके हाथ में बेड़ियाँ नहीं हैं, तो उसके साथ परेड में शामिल किसी भी कैदी के हाथ में बेड़ियाँ नहीं होनी चाहिए। जहाँ यह अव्यावहारिक हो, वहाँ परेड में शामिल सभी कैदियों को, चाहे उनके हाथ में बेड़ियाँ हों या नहीं, कमर तक कम्बल से ढकने की विधि अपनाई जा सकती है।

ध्यान दें- मजिस्ट्रेटों द्वारा पहचान और आचरण संबंधी कार्यवाही के संबंध में आगे के प्रावधान शासनादेश नियमावली के पैराग्राफ 842 और उच्च न्यायालय के सामान्य नियम (आपराधिक) के अध्याय 8, नियम 9 और अवध दंड नियम के अध्याय 8, नियम 11 में दिए गए हैं।

58. सामान्य नियमावली (आपराधिक) 1976 में संदिग्धों की पहचान संबंधी कार्यवाही का एक ज़ापन भी दिया गया है, जो इस प्रकार है:-

रोपी का नाम, माता-पिता और निवास, उसके द्वारा दिया गया बयान यदि कोई हो और उसके हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान	अपराध	कोई भी विशिष्ट चिह्न प्रभावित करने की संभावना	कॉलम 3 के संबंध में कार्यवाही करने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा उठाया गया कदम (यदि कोई हो)	जेल में प्रवेश की तिथि (या जमानत पर)	गवाह का नाम माता-पिता निवास
1	2	3	4	5	6

“निम्नलिखित अभियुक्तों की पहचान कार्यवाही का ज़ापन दिनांक पर

जिस व्यक्ति/व्यक्तियों की पहचान की जानी थी, उन्हें अन्य विचाराधीन कैदियों/व्यक्तियों के साथ मिला दिया गया था। सभी को एक गोले में खड़ा किया गया। उन्हें वही कपड़े पहनाए गए जिनमें उन्हें मूल रूप से जेल में

भर्ती कराया गया था (स्तंभ 4 में उल्लिखित परिवर्तनों को छोड़कर)। कोई बेड़ियाँ नहीं थीं। अभियुक्तों को अपनी इच्छानुसार स्थान बदलने का विकल्प दिया गया था

लेकिन उन्हें न तो अपना चेहरा या कद छिपाने की अनुमति थी ताकि पहचान में बाधा आए और न ही अपने कपड़े बदलने की। गवाहों को एक-एक करके बुलाया गया और उनसे उस व्यक्ति या व्यक्तियों को पहचानने के लिए कहा गया जिनकी वे पहचान करने आए थे और उस कृत्य का उल्लेख करने के लिए कहा गया जिसके लिए उन्होंने उनकी पहचान की थी। यह सुनिश्चित करने के लिए हर संभव सावधानी बरती गई कि कोई भी अगला गवाह किसी भी तरह से पिछले गवाह से संवाद न करे। कार्यवाही का परिणाम इस प्रकार था:

उस व्यक्ति का नाम या विवरण जिसे गवाह ने उस अपराध में निभाई गई भूमिका के विवरण के साथ पहचाना (जैसा कि गवाह ने अपने शब्दों में देखा)	आरोपी का नाम सही पहचाना गया	गलत व्यक्ति की ओर इशारा किया गया (यदि कोई हो)	गवाह द्वारा दिया गया कोई अन्य बयान	मजिस्ट्रेट ने गवाह के आचरण के बारे में टिप्पणी की	गवाह के हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान
7	8	9	10	11	12

कार्यवाही का संचालन करने वाले मजिस्ट्रेट की निम्नलिखित बिंदुओं पर टिप्पणियाँ: (1) क्या जेल अधीक्षक को अभियुक्त को जेल लॉक-अप में प्रवेश देते समय सूचित किया गया था कि उसकी पहचान बाद में की जाएगी? (2) कार्यवाही के उचित संचालन को सुनिश्चित करने के लिए जेल अधिकारियों द्वारा उठाए गए कदम। (3) अभियुक्त की ओर से प्रस्तुत आवेदन (आवेदनों) पर, यदि कोई हो, कैसे कार्रवाई की गई? (4) अभियुक्त की ओर से उपस्थित अधिवक्ता का नाम, यदि कोई हो, और क्या जापन पर उनके हस्ताक्षर लिए गए हैं। (5) क्या अभियुक्त के अधिवक्ता ने, यदि उपस्थित थे, कोई अन्य बिंदु बताया जो आपके द्वारा नोट नहीं किया गया हो? (6) कोई अन्य बिंदु। दिनांक 20 मजिस्ट्रेट

ध्यान दें - यह ध्यान रखना बहुत उपयोगी है कि क्या गवाह उस व्यक्ति का नाम जानता था जिसे वह पहचानने आया था या उसने उसका वर्णन केवल उस व्यक्ति के रूप में किया था जो डकैती के समय दरवाजे पर खड़ा था। गवाह से सामान्य रूप से नहीं पूछा जाना चाहिए।

"जिसे भी तुम जानते हो, उसे पहचानो"

59. इस न्यायालय की खंडपीठ ने अशर्फी एवं अन्य बनाम राज्य (इलाहाबाद) उत्तर प्रदेश 1961 एआईआर (इलाहाबाद) 153 के मामले में, पैराग्राफ 33 से आगे स्वीकार्य पहचान साक्ष्य के लिए आवश्यक शर्तों पर बहुत विस्तार से विचार किया है, जो नीचे उद्धृत हैं:-

“33. स्वीकार्य पहचान साक्ष्य के लिए आवश्यक शर्तें:

न्यायालय इस नियम का पालन करने के लिए बाध्य है कि किसी अभियुक्त व्यक्ति की पहचान से संबंधित साक्ष्य ऐसा होना चाहिए जिससे किसी निर्दोष व्यक्ति की पहचान होने की संभावना को उचित निश्चितता के साथ बाहर रखा जा सके। मध्य प्रदेश राज्य बनाम मनका, 1980 एमएफसी 216 के हालिया मामले में, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने कुछ भारतीय अंग्रेजी और अमेरिकी फैसलों की जांच के बाद यह निर्णय दिया:

"पहचान से संबंधित साक्ष्यों की पूरी तरह से जाँच की जानी चाहिए, और अभियुक्तों को सभी संदेहों का लाभ दिया जाना चाहिए; लेकिन अगर पूरी तरह से जाँच के बाद भी रिकॉर्ड में ऐसा कुछ नहीं दिखता जिससे पहचान के गवाहों की गवाही पर संदेह हो, तो न्यायालय को केवल ऐसे साक्ष्यों के आधार पर दोषसिद्धि देने से नहीं हिचकिचाना चाहिए, क्योंकि इस बात की पूरी संभावना है कि ईमानदार हालांकि गलत पहचान हो सकती है।"

हम माननीय सदस्यों से ससम्मान सहमत हैं।

निम्नलिखित बारह प्रश्न उठ सकते हैं और न्यायालय को साक्ष्य स्वीकार करने से पहले इनका संतोषजनक उत्तर देना होगा:-

- (1) क्या पहचानकर्ता अभियुक्त को पहले से जानता था?
- (2) क्या उसने उसे अपराध की पहचान के परीक्षण के बीच देखा था?
- (3) क्या परीक्षण में अनावश्यक देरी हुई थी?
- (4) क्या मजिस्ट्रेट ने यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त सावधानियां बरतीं कि परीक्षण निष्पक्ष हो?
- (5) प्रकाश की स्थिति क्या थी?
- (6) पहचानकर्ता की दृष्टि की स्थिति क्या थी?
- (7) उसकी मानसिक स्थिति क्या थी?
- (8) उसे अपराधियों को देखने का क्या अवसर मिला?
- (9) उसने क्या गलतियाँ कीं?
- (10) क्या अभियुक्त के चेहरे या आचरण में कोई ऐसी बात थी जिसने उसे प्रभावित किया?
- (11) उसी अपराध के संबंध में आयोजित अन्य पहचान परीक्षणों में पहचानकर्ता का प्रदर्शन कैसा रहा?
- (12) क्या पहचान प्रमाण की मात्रा पर्याप्त थी?

60. ऐसे तथ्य जो किसी अभियुक्त की पहचान स्थापित करते हैं, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत प्रासंगिक हैं। सामान्य नियम के अनुसार, किसी गवाह का मूल साक्ष्य न्यायालय में दिया गया कथन होता है। मुकदमे में पहली बार अभियुक्त की पहचान मात्र का साक्ष्य, स्वभाव से ही दुर्बल होता है। दोषसिद्धि के लिए साक्ष्य में सामान्यतः यह स्पष्ट होना चाहिए कि उसने कैसे और किन परिस्थितियों में उस विशिष्ट

अभियुक्त को चुना और अभियुक्त ने संबंधित अपराध में उचित विशिष्टता के साथ क्या भूमिका निभाई। इसलिए, पूर्व परीक्षण पहचान का उद्देश्य उस साक्ष्य की विश्वसनीयता का परीक्षण करना और उसे सुदृढ़ करना प्रतीत होता है। तदनुसार, यह विवेक का एक सुरक्षित नियम माना जाता है कि सामान्यतः न्यायालय में गवाहों की शपथ-आधारित गवाही की पुष्टि के लिए अभियुक्तों की पहचान, जो उनके लिए अजनबी हैं, पूर्व पहचान कार्यवाही के रूप में, की जाए। हालाँकि, इस सामान्य नियम के अपवाद भी हो सकते हैं, उदाहरण के लिए, जब न्यायालय किसी विशेष गवाह से प्रभावित हो, जिसकी गवाही पर वह बिना किसी पुष्टिकरण के, सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकती है। पहचान परेड जाँच चरण से संबंधित होती है। ये आम तौर पर जाँच के दौरान आयोजित की जाती हैं, जिसका मुख्य उद्देश्य गवाहों को अपराध से संबंधित उन व्यक्तियों की पहचान करने में सक्षम बनाना होता है, जिन्हें वे पहले से नहीं जानते थे। इससे विवेचना अधिकारियों को अभियोजन पक्ष के गवाहों की नेकनीयती के बारे में संतुष्टि मिलती है और न्यायालय में उनकी गवाही की पुष्टि के लिए साक्ष्य भी प्रस्तुत किए जाते हैं। पहचान कार्यवाही अपने कानूनी प्रभाव में बस यही कहती है: कि कुछ व्यक्तियों को जेल या किसी अन्य स्थान पर लाया जाता है और वे स्पष्ट या विवक्षित बयान देते हैं कि जिन व्यक्तियों की ओर वे इशारा करते हैं, वे ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें वे अपराध में शामिल मानते हैं।

वे ठोस साक्ष्य नहीं हैं। ये परेड अनिवार्य रूप से धारा 162, दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा शासित हैं। यही कारण है कि इस मामले में पहचान परेड एक मजिस्ट्रेट की देखरेख में आयोजित की गई प्रतीत होती है। पहचान परेड के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, उन्हें आयोजित करने वाले मजिस्ट्रेटों से अपेक्षा की जाती है कि वे किसी भी अनुचितता के संदेह को खत्म करने और गवाही में त्रुटि की संभावना को कम करने के लिए सभी संभव सावधानियाँ बरतें। इसलिए, उन्हें दो बातों को ध्यान में रखते हुए, कार्यवाही में बुद्धिमानी से रुचि लेनी चाहिए: (i) कि एक अभियुक्त का जीवन और स्वतंत्रता उनकी सतर्कता और सावधानी पर निर्भर हो सकती है और (ii) कि न्याय पहचान के साथ किया जाना चाहिए। उन कार्यवाहियों को पहचानकर्ताओं के लिए इसे असंभव नहीं बनाना चाहिए, जिनके पास, एक नियम के रूप में, उस व्यक्ति की केवल क्षणभंगुर झलक होती है सामान्यतः, मजिस्ट्रेट को पहचान के समय अभियुक्त द्वारा उठाई गई प्रत्येक आपत्ति और अभियुक्त के प्रति निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए उनके द्वारा उठाए गए कदमों को नोट करना चाहिए, ताकि पहचान के साक्ष्य के मूल्य का आकलन करने वाली न्यायालय उस साक्ष्य के मूल्यांकन में उन्हें ध्यान में रख सके। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि पहचान करने की शक्ति पहचान करने वाले व्यक्ति की अवलोकन शक्ति और स्मृति के अनुसार भिन्न होती है और प्रत्येक मामले अपने तथ्यों पर निर्भर करता है, लेकिन पहचान के मूल्यांकन में दो कारक बुनियादी महत्व के प्रतीत होते हैं। किसी अभियुक्त की पहचान करने के लिए आवश्यक व्यक्तियों को अपराध के बाद और पहचान से पहले उसे देखने का पूरा अवसर नहीं मिलना चाहिए और दूसरी बात यह कि उनसे कोई गलती नहीं होनी चाहिए या की गई गलतियाँ नगण्य होनी चाहिए। पहचान को मूल्यवान मानते हुए, बिना किसी देरी के उसे स्वीकार किया जाना चाहिए। अभियुक्त के साथ मिले व्यक्तियों की संख्या यथोचित रूप से अधिक होनी चाहिए और उनका आचरण और सामान्य रूप-रंग एक-दूसरे से बहुत भिन्न नहीं होना चाहिए। इसलिए, पहचान संबंधी साक्ष्य की न्यायालय द्वारा गहन और सावधानीपूर्वक जाँच की जानी चाहिए।

61. राजेश गोविंद जगेशा बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2000 सर्वोच्च न्यायालय 160 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि पहचान परेड के लिए पेश किए गए संदिग्ध व्यक्ति की शारीरिक बनावट में कोई बदलाव नहीं किया जाना चाहिए। जहाँ प्राथमिकी दर्ज करते समय संदिग्ध व्यक्ति दाढ़ी और लंबे बालों वाला था और परेड में दाढ़ी और लंबे बालों वाला कोई भी व्यक्ति शामिल नहीं था, लेकिन गवाह ने संदिग्ध व्यक्ति की बदली हुई बनावट के बाद भी उसकी पहचान की, तो इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि गवाह ने उक्त अभियुक्त को गिरफ्तारी की तारीख और पहचान परेड के बीच देखा हो। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना कि ऐसी परेड आयोजित करने में देरी अभियोजन पक्ष के लिए घातक है, जहाँ देरी को उचित ठहराने वाला कोई उचित कारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना है कि जहाँ गवाहों की प्रत्यक्ष गवाही स्पष्ट, ठोस और विश्वसनीय है, वहाँ उद्देश्य का प्रश्न महत्वहीन है।

62. मामले के निर्विवाद तथ्य यह हैं कि छह व्यक्तियों, अर्थात् राम सुन्दर द्विवेदी, शैलेन्द्र उर्फ शीलू, अशोक कुमार तिवारी, कुमारी श्वेता, गंधर्व सिंह बुंदेला और सुधीर कुमार पाण्डेय की मौके पर ही मृत्यु हो गई तथा दो व्यक्तियों अर्थात् पुनीत तिवारी और मदन मोहन की अस्पताल ले जाते समय मृत्यु हो गई। इस मामले में एकमात्र घायल गवाह ब्रेज़नेव उर्फ गुड्डन है, जिसे अवर न्यायालय में पी.डब्ल्यू.-2 के रूप में पेश किया गया था। पाँच बदमाशों के खिलाफ दर्ज प्राथमिकी में किसी को भी आरोपी नहीं बनाया गया था। कुल आठ अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र दायर किया गया था और उनमें से दो, कमल उर्फ पप्पू और विजय, की सुनवाई के दौरान मृत्यु हो गई। केवल चार अपीलकर्ताओं, राम सुजान, अनुराग मिश्रा, छुट्टा उर्फ राजेश और राम जी उर्फ रामलखन, पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें दोषी ठहराया गया। अपीलकर्ता, अनुराग मिश्रा को अवर न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 504, 307/149; डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम की धारा 10/12 और शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत सभी आरोपों से बरी कर दिया और शेष तीन अपीलकर्ताओं को डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम की धारा 504, 307, 149 और धारा 10/12 के तहत आरोपों से बरी कर दिया। दो आरोपियों, जयकरण उर्फ पप्पू और कुबेर सिंह को सभी आरोपों से बरी कर दिया गया। प्रत्यक्षदर्शी गवाह, पी.डब्ल्यू.-1 और घायल गवाह, पी.डब्ल्यू.-2, को किसी भी अभियुक्त-अपीलकर्ता पर गोली चलाने में कोई विशिष्ट भूमिका नहीं सौंपी गई है, न ही उनके कब्जे से हथियारों की कोई आपत्तिजनक बरामदगी हुई है और न ही उनकी ओर से कोई संकेत दिया गया है। पी.डब्ल्यू. 4 को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। अपराध का कोई उद्देश्य नहीं था। संतोष गौतम, जिनके बेटे की शादी होने वाली थी, का अपने भाई अशोक कुमार गौतम के साथ विवाद घटना का कारण हो सकता है, लेकिन इस संबंध में अवर न्यायालय के समक्ष कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

63. हम आगे पाते हैं कि प्राथमिकी में पाँच लोगों को आरोपी बनाया गया था, जबकि विवेचना के दौरान इस मामले में नौ लोगों को आरोपी बनाया गया था, लेकिन आरोप पत्र केवल आठ के खिलाफ ही दाखिल किया गया था। पी.डब्ल्यू.-1 ने प्राथमिकी में या दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज अपने बयान में किसी भी आरोपी का नाम नहीं लिया। पी.डब्ल्यू.-1 ने विवेचना अधिकारी के समक्ष कहा कि उसका सगा भाई, अशोक कुमार गौतम, उससे बातचीत नहीं करता, इसलिए वह उसके बेटे की शादी में शामिल नहीं हुआ। बताया

जाता है कि आरोपियों ने धमकी दी थी कि दोनों वाहनों में सवार सभी यात्रियों को सबक सिखाया जाएगा। विवेचना अधिकारी ने इस मामले में अशोक कुमार गौतम की संलिप्तता की संभावना की बिल्कुल भी जाँच नहीं की है। घटना में शामिल अभियुक्तों की संख्या में विसंगति है जो गवाहों के बयानों से स्पष्ट है। जहाँ पी.डब्ल्यू.-1 ने प्राथमिकी में और न्यायालय के समक्ष भी पाँच व्यक्तियों को आरोपित किया, वहीं पी.डब्ल्यू.-2 ने 4-5 व्यक्तियों को आरोपित किया जो बंदूकों से लैस होकर घटनास्थल पर आए और वाहनों को रोका। पी.डब्ल्यू.-3 ने बताया कि सबसे पहले एक बदमाश आया और उसके बाद 4-5 अन्य आए। पी.डब्ल्यू.-4 ने बताया कि 7-8 व्यक्ति गोलीबारी कर रहे थे, जबकि पी.डब्ल्यू.-5 ने बताया कि कुल 8-10 बदमाश थे। अतः यह स्पष्ट है कि इस मामले में शामिल अभियुक्तों के नामों के अलावा, अभियुक्तों की संख्या में भी विसंगति है।

64. स्पष्टतः, घटना 23.01.2003 को घटित हुई थी और अभियुक्तों कमल, विजय और राम जी उर्फ रामलखन की पहचान परेड 15.07.2003 को की गई थी। अभियुक्त छोटा उर्फ राजेश की पहचान परेड 6.08.2003 को की गई थी। अभियुक्त अनुराग मिश्रा और राम सुजान की पहचान परेड 14.05.2003 को की गई थी। अभियुक्त जयकरण उर्फ पप्पू की पहचान परेड 10.06.2003 को की गई थी।

65. सिटी मजिस्ट्रेट, पी.डब्ल्यू.-16, जिन्होंने अपनी उपस्थिति में पहचान परेड करवाई थी, ने न्यायालय के समक्ष स्वीकार किया कि वह यह नहीं बता सकते कि अभियुक्त पप्पू उर्फ जयकरण के चेहरे पर किस स्थान पर चिप्पी लगाई गई थी। उन्होंने केवल इतना बताया कि समान शारीरिक बनावट वाले दस जेल कैदियों को पहचान के लिए एक साथ खड़ा किया गया था, लेकिन यह नहीं बताया कि क्या उन्हें सामान्य नियम (आपराधिक), 1976 के अनुसार एक घेरे में खड़ा होने के लिए कहा गया था।

जेल मैनुअल और सामान्य नियम (आपराधिक) के तहत यह प्रावधान है कि जेल अधीक्षक यह सुनिश्चित करेगा कि जिन अभियुक्तों की पहचान की जानी है, वे अपना रूप इस तरह न बदलें कि उनकी पहचान मुश्किल हो जाए। पहचान परेड के समय बाल और दाढ़ी एक ही स्थिति में होनी चाहिए और अभियुक्त को वही कपड़े पहनने चाहिए जो उसने कथित अपराध के समय पहने थे। सभी अभियुक्तों को अन्य विचाराधीन कैदियों/व्यक्तियों के साथ एक घेरे में खड़ा होना आवश्यक है और उन्हें अपना स्थान बदलने की अनुमति नहीं होती है। मृतक की पहचान परेड कराने वाले विवेचना अधिकारी पी.डब्ल्यू.-10 और पी.डब्ल्यू.-11 या अभियुक्तों की पहचान परेड कराने में शामिल मजिस्ट्रेट पी.डब्ल्यू.-16 और पी.डब्ल्यू.-17 के बयानों में इन अनिवार्य शर्तों के पालन का कोई प्रमाण नहीं है। इस मामले में अभियोजन पक्ष की ओर से अभियुक्तों की पहचान परेड कराने में 4 से 7 महीने की देरी के संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। अभियोजन पक्ष के पास ऐसा कोई साक्ष्य भी नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि परीक्षण पहचान परेड से पहले की अवधि के दौरान, अभियुक्तों को सार्वजनिक रूप से नहीं देखा गया था और उन्हें हमेशा किसी की नज़रों से दूर रखा गया था। अभियुक्त छोटा को वारंट बी पर सतना जेल से बांदा लाया गया था और इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि उसे रास्ते में बापर्दा रखा गया था।

66. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने मोहम्मद सज्जाद उर्फ राजू उर्फ सलीम बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (आपराधिक अपील संख्या 1953/2010) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ संख्या 15 से 18 का हवाला दिया है और तर्क दिया है कि किसी भी गवाह ने अभियुक्त की शारीरिक बनावट, ऊँचाई, वजन आदि के बारे में कोई बयान नहीं दिया, जो इस मामले में अभियुक्त की संलिप्तता का संकेत मिलता। इस संदर्भ के लिए, निम्नलिखित सुसंगत पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:-

“15. इस मामले में, इस तथ्य के अलावा कि पहचान परेड परीक्षण में देरी हुई थी, एक खास बात यह है कि संबंधित अभियोजन पक्ष के किसी भी गवाह ने उन चार व्यक्तियों, खासकर अभियुक्त, में से किसी के भी पहचान चिह्न या विशेष लक्षण या विशेषताओं का खुलासा नहीं किया था। इसके अलावा, उन अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति में वास्तव में कोई घटना या अपराध नहीं हुआ था और न ही कोई विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई थीं जो उनका ध्यान संबंधित अभियुक्तों के लक्षण या विशेष गुणों को दर्ज करने के लिए आकर्षित करतीं। जैसा कि अभिकथित है, उनकी आकस्मिक मुलाकात रात में हुई थी जो मात्र कुछ क्षणों के लिए हुई थी।

16. सुभाष बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1987 (3) एससीसी 331) में देरी के पहलुओं के साथ-साथ पहचान के लिए किसी विशेष विशेषताओं की अनुपस्थिति और उसके प्रभाव पर इस न्यायालय द्वारा पैराग्राफ 8 और 9 में निम्नानुसार विचार किया गया था:-

8. इस त्रुटि के अलावा, हम यह भी पाते हैं कि शिव शंकर को तुरंत पहचान परेड के लिए नहीं बुलाया गया। पहचान परेड उसकी गिरफ्तारी के तीन हफ्ते बाद हुई और पहचान परेड में देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया। इसलिए, इस बात पर संदेह की गुंजाइश है कि क्या पहचान परेड में देरी इसलिए की गई ताकि पहचान करने वाले गवाह उसे पुलिस बंदीकक्ष या जेल परिसर में देख सकें और उसके चेहरे के हाव-भाव पता लगा सकें।

9. इन सब बातों के अलावा, यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि घटना की तारीख, जब गवाहों ने शिवशंकर को कुछ मिनटों के लिए देखा था, और परीक्षण पहचान परेड की तारीख के बीच काफी लंबा समय बीत चुका था। यह निस्संदेह सच है कि तीनों गवाहों ने पहचान परेड में शिवशंकर की सही पहचान की थी, लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि इस अंतराल में लगभग 4 महीने बीत चुके थे। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि न तो प्रदर्श खा-1 में और न ही विवेचना के दौरान अपने बयानों में, प्रत्यक्षदर्शियों ने शिवशंकर के बारे में कोई विस्तृत विवरण दिया है।

सत्र न्यायाधीश के समक्ष गवाही देते समय उन्होंने कहा कि शिवशंकर लंबे कद का व्यक्ति था और उसका रंग "सांवला" था। अगर इन्हीं विशेषताओं के कारण गवाह पहचान परेड में शिवशंकर को पहचान पाए, तो उन्होंने निश्चित रूप से सबसे पहले शिवशंकर के बारे में बताया होगा क्योंकि उस समय उनकी याददाश्त ताज़ा रही होगी।

इस प्रकार, प्रदर्श खा-1 शिव शंकर के किसी भी वर्णनात्मक विवरण या जांच के दौरान गवाहों के बयानों में के अभाव में, पहचान परेड में गवाहों द्वारा शिव शंकर की पहचान के आधार पर कार्रवाई करना और यह मानना सुरक्षित और उचित नहीं होगा कि वह राम बाबू के हमलावरों में से एक था। जैसा कि मुथुस्वामी बनाम मद्रास राज्य(एआईआर 1954 एससी 4) में बताया गया है, जहाँ घटना के लगभग ढाई महीने बाद पहचान परेड

आयोजित की गई थी, वहाँ प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा अभियुक्त की पहचान पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं होगा। एक अन्य मामले, मोहम्मद अब्दुल हफीज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (एआईआर 1983 एससी 367) में, यह माना गया कि जहाँगवाहों ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभियुक्त का कोई विवरण नहीं दिया था, वहाँ सत्र परीक्षण में अभियुक्त की उनकी पहचान को न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषसिद्धि देने के लिए सुरक्षित रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में पहचान परेड आयोजित होने से पहले लगभग 4 महीने का लंबा अंतराल था और यह स्वीकार करना कठिन है कि इस समय अंतराल के बावजूद गवाहों के मन में अभियुक्त की स्पष्ट छवि बन गई और वे पहचान परेड में उसे सही ढंग से पहचान पाए।

17. इसी प्रकार, मुशीर खान बनाम मध्य प्रदेश राज्य 2010 (2) एससीसी 748) मामले में इस न्यायालय ने पहचान से संबंधित साक्ष्य को खारिज करते हुए विलंब के मुद्दे पर विचार किया था:

8. जहां तक ए-5 की पहचान का सवाल है, यह बहुत ही विलंबित चरण में हुई है, अर्थात् उसकी पहचान 24-1-2001 को हुई और घटना 29-11-2000 की है, जबकि ए-5 को 22-12-2000 को गिरफ्तार किया गया था। इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि उसकी पहचान परेड 24-1-2001 को क्यों हुई, जो गिरफ्तारी की तारीख से एक महीने से अधिक समय के बाद और घटना की तारीख से लगभग 3 महीने बाद हुई है। अवर न्यायालयों या उच्च न्यायालय को ऐसी विलंबित टीआई परेड पर भरोसा नहीं करना चाहिए था जिसके लिए अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया हो।

18. इस मामले में किसी भी गवाह ने पहचान के लिए कोई ऐसा लक्षण नहीं बताया जिससे पुष्टि हो सके। पहचान परेड गिरफ्तारी के 25 दिन बाद हुई थी। उनकी मुलाकात भी रात में हुई थी, बिना किसी विशेष अवसर के कि वे किसी भी आरोपी के चेहरे के भावों पर ध्यान दें, जो उनके दिमाग में छप जाएँ और भविष्य में उन्हें पहचान सकें। यह मुलाकात भी कुछ मिनटों के लिए ही हुई थी।

इन परिस्थितियों में, हमारे विचार से, इस तरह की पहचान का सरलीकरण अभियोजन पक्ष के पूरे मामले का आधार नहीं बन सकता है या उसे आधार नहीं माना जा सकता है। अभियुक्त 8 सरस्वती सिंह द्वारा व्यक्त किया गया संदेह भी अपीलकर्ता के विरुद्ध दोष सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं था। इसलिए, हम अपीलकर्ता को संदेह का लाभ देते हैं और मानते हैं कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के विरुद्ध अपना मामला साबित करने में विफल रहा है।

67. उपरोक्त विचार के दृष्टिगत, हमारा मानना है कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं के विरुद्ध मामले को संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है। धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत गवाहों के बयान दर्ज होने से लेकर न्यायालय में दर्ज उनके बयानों तक, किसी भी गवाह ने किसी भी आरोपी की कोई विशेष विशेषता नहीं बताई। सभी गवाहों ने बदमाशों को बहुत कम समय के लिए देखा था। आरोपियों की पहचान परेड 4 से 7 महीने बाद हुई। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि गवाहों ने आरोपी की सही पहचान की थी। ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय को ऐसे सबूतों के आधार पर उनकी दोषसिद्धि नहीं सुनानी चाहिए थी।

68. इस मामले में यह स्वीकार किया जाता है कि एक अभियुक्त को एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरित किया गया था। साक्ष्य में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि अभियुक्तों को पारगमन की प्रक्रिया में बापदा रखा गया था।

69. अशर्फी एवं अन्य (उपर्युक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा पहचान साक्ष्य स्वीकार करने के लिए आवश्यक अधिकांश शर्तें अभियोजन पक्ष द्वारा पूरी नहीं की गई हैं।

70. सभी अपीलकर्ता अवर न्यायालय के फैसले की तारीख से लगभग चौदह साल जेल में बिता चुके हैं। उनके खिलाफ कोई विश्वसनीय साक्ष्य न होने पर भी वे पहले भी जेल में रहे होंगे।

71. सभी आपराधिक अपीलें स्वीकार की जाती हैं। यदि अपीलकर्ता किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं, तो उन्हें तत्काल रिहा किया जाए।

72. इस फैसले की सूचना अवर न्यायालय को दी जाए और अवर न्यायालय का अभिलेख दो सप्ताह के भीतर वापस किया जाए

(2025) 3 ILRA 441

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1449/2024

आकाश एवं अन्य

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... प्रत्यर्थी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अजय कुमार वशिष्ठ

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, श्री इंद्र कुमार सिंह

आपराधिक कानून - बलात्कार का प्रयास - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376 - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 18 - धारा 376 भारतीय दण्ड संहिता और धारा 18 पाँस्को के तहत समन आदेश पारित - आरोप है कि पुनरीक्षणकर्ताओं ने नाबालिग पीड़िता को जबरन पकड़ लिया, उसकी छाती दबाई और उसके कपड़े उतारने का प्रयास किया - बलात्कार करने के दृढ़ संकल्प का संकेत देने वाला कोई कार्य नहीं - माना गया कि केवल छूने या कपड़े उतारने का कार्य, बिना किसी और प्रत्यक्ष कृत्य या यौन संबंध बनाने के इरादे के, 'बलात्कार का प्रयास' करने के लिए पर्याप्त नहीं है - धारा 376 भारतीय दण्ड संहिता और धारा 18 पाँस्को के तहत समन संशोधित किया जाता है। (पैरा 21, 24, 25, 27, 29)

आपराधिक कानून - लज्जा भंग - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 354बी - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012, धारा 7, 9(एम), 10 - कथित कृत्य यौन हमला और गंभीर यौन हमला है - पीड़ित 18 वर्ष से कम आयु की नाबालिग लड़की है - धारा 354बी भारतीय दण्ड संहिता और धारा 9/10 पाँस्को के तहत समन जारी करने के लिए प्रथम दृष्टया पर्याप्त सामग्री - माना गया कि बलात्कार के गंभीर अपराध के लिए समन जारी करने में विचारण न्यायालय ने गलती की; उचित प्रावधानों के तहत संशोधित समन जारी करने को बरकरार रखा गया। (प्रस्तर 18, 23, 26, 28)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 200 और 202 - अभियुक्त को समन - मजिस्ट्रेट को आरोपों की प्रकृति और सहायक सामग्री पर न्यायिक विचार करने की आवश्यकता है - यह जाँच किए बिना कि आरोपित अपराध सिद्ध होता है या नहीं, शिकायतकर्ता के बयान का केवल पुनरुत्पादन स्वीकार्य नहीं है - पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में समन आदेश का पुनर्मूल्यांकन उचित है। (प्रस्तर 16, 21)

अभिनिर्धारित:

आरोपी पवन और आकाश के विरुद्ध धारा 376 भारतीय दण्ड संहिता और धारा 18 पाँस्को अधिनियम के तहत आरोप लगाए गए हैं। आरोपी पवन और आकाश के विरुद्ध धारा 376 भारतीय दण्ड संहिता और धारा 18 पाँस्को अधिनियम के तहत अपराध का आरोप लगाया गया है और मुख्य आरोपी पवन के पिता आरोपी अशोक के विरुद्ध धारा 504 और 506 भारतीय दण्ड संहिता के तहत अपराध का आरोप लगाया गया है। उपरोक्त आदेश में, अवर न्यायालय ने आरोपी पवन और आकाश को धारा 376 भारतीय दण्ड संहिता के तहत समन किया है, लेकिन उक्त आरोप पाँस्को अधिनियम की धारा 18 के साथ सहयोजित है, जिसमें अपराध करने के प्रयास के लिए दंड का प्रावधान है। इस प्रकार, इन आरोपियों के विरुद्ध धारा 376/511 भारतीय दण्ड संहिता लगाने के बजाय, अवर न्यायालय ने धारा 376 के साथ सहयोजित पाँस्को अधिनियम की धारा 18 लगाई है। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने इन आरोपियों के विरुद्ध प्रथम दृष्टया बलात्कार के प्रयास या पाँस्को अधिनियम के दायरे में प्रवेशात्मक यौन उत्पीड़न के प्रयास का मामला पाया है। (प्रस्तर 18)

भारतीय दंड संहिता की धारा 354 (बी) किसी भी महिला के वस्त्रहरण के इरादे से उस पर हमला करने या आपराधिक बल का प्रयोग करने के लिए सज़ा का प्रावधान करती है, जो तीन साल से कम नहीं होगी, लेकिन

सात साल तक बढ़ सकती है, और जुर्माना भी देना होगा। भारतीय दंड संहिता की धारा 354 किसी महिला की लज्जा भंग करने के इरादे से उस पर आपराधिक बल का प्रयोग करने के लिए सज़ा का प्रावधान करती है, जो एक साल से कम नहीं होगी, लेकिन पाँच साल तक बढ़ सकती है। (प्रस्तर 19)

भारतीय दंड संहिता की धारा 376 में बलात्कार के लिए सज़ा का प्रावधान किया गया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 376 (एबी) बारह वर्ष से कम आयु की महिला के साथ बलात्कार के लिए सज़ा का वर्णन करती है, कारावास बीस वर्ष से कम नहीं होगा, लेकिन आजीवन कारावास तक बढ़ सकता है, जिसका अर्थ उस व्यक्ति के शेष प्राकृतिक जीवनकाल के लिए कारावास और जुर्माना या दोनों होगा। (प्रस्तर 20)

मामले के तथ्यों पर गहन विचार और सूक्ष्म जांच के बाद, यह न्यायालय इस विचार पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष के अनुसार केवल यह तथ्य कि दो आरोपियों पवन और आकाश ने पीड़िता के स्तनों को पकड़ा और उनमें से एक आकाश ने उसके पायजामे का नाड़ा तोड़ दिया और उसे पुलिया के नीचे खींचने की कोशिश की और इस बीच राहगीरों/गवाहों के हस्तक्षेप पर आरोपी व्यक्ति पीड़िता को छोड़कर मौके से भाग गए, यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं है कि आरोपियों के खिलाफ धारा 376, 511 भारतीय दण्ड संहिता या धारा 376 भारतीय दण्ड संहिता के साथ पॉक्सो अधिनियम की धारा 18 का मामला बनाया गया है। (प्रस्तर 26)

पूर्वोक्त विवेचना के आधार पर, यह न्यायालय यह पाता है कि पुनरीक्षणकर्ता पवन और आकाश के विरुद्ध बलात्कार के प्रयास के अपराध के संबंध में, आक्षेपित समन आदेश में अवर न्यायालय का निष्कर्ष पोषणीय नहीं है और इसके बजाय, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 354(बी) के साथ पॉक्सो अधिनियम की धारा 9/10 के तहत मामूली अपराध के लिए समन किया जाना चाहिए। आलोचना आदेश तदनुसार संशोधित किया जाता है। अवर न्यायालय को संशोधित धाराओं के तहत पुनरीक्षणकर्ता पवन और आकाश के संबंध में नया समन आदेश जारी करने का निर्देश दिया जाता है। (प्रस्तर 29)

पुनरीक्षण आवेदन आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. लाल कुमार सिंह एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र के सेंट
2. रेक्स बनाम जेम्स लॉयड (1836) 7सी और पी 817:173 ईआर 141

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा, द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो अधिनियम, कासगंज द्वारा परिवाद संख्या 23/2022, थाना पटियाली, जिला कासगंज में पारित दिनांक 23.06.2023 के समन आदेश के विरुद्ध तत्काल आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत

किया गया है। जिसके तहत पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 और 2 अर्थात् आकाश और पवन को पॉक्सो अधिनियम की धारा 18 के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत आरोप का सामना करने के लिए समन किया गया है, और पुनरीक्षणकर्ता संख्या 3 अशोक को भी धारा 504 और 506 के तहत आरोप के लिए समन किया गया है।

2. वशिष्ठ, पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार, प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री इंद्र कुमार सिंह तथा राज्य प्रत्यर्थी के विद्वान ए.जी.ए. को सुना तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

3. संक्षेप में मामले का तथ्यात्मक सार यह है कि सूचनाकर्ता "X" (पहचान छुपाई गई) ने विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो अधिनियम की अदालत में धारा 156(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत दिनांक 12.01.2022 को एक आवेदन दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि 10.11.2021 को शाम लगभग 05:00 बजे वह अपनी लगभग 14 वर्षीय नाबालिग बेटी के साथ अपनी ननद के घर से लौट रही थी। आरोपी पवन, आकाश और अशोक उसे कीचड़ भरी सड़क पर रास्ते में मिले और उससे पूछा कि वह कहाँ से आ रही है, क्योंकि वे उसके सह-ग्रामीण हैं। जब उसने कहा कि वह अपनी ननद के घर से आ रही है, तो आरोपी पवन ने उसकी बेटी को यह आश्वासन देते हुए लिफ्ट की पेशकश की कि वह उसे उसके घर छोड़ देगा और उसके आश्वासन पर भरोसा करते हुए, उसने अपनी बेटी को अपनी मोटरसाइकिल पर उसके साथ जाने की अनुमति दे दी। आरोपी व्यक्तियों ने कीचड़ भरे रास्ते पर अपनी मोटरसाइकिल रोक दी थी, उसके गाँव जाते समय उन्होंने उसके स्तनों को पकड़ना शुरू कर दिया और आकाश ने उसे घसीटा और पुलिया के नीचे ले जाने की कोशिश की और उसकी पजामी का नाड़ा तोड़ दिया। गवाह सतीश और भूरे, जो पीछे ट्रैक्टर पर आ रहे थे, उसकी बेटी की चीखें सुनकर मौके पर पहुँचे। आरोपी व्यक्तियों ने उन पर देसी पिस्तौल तानकर जान से मारने की धमकी दी और मौके से भाग गए। जब प्रार्थिया पवन के घर शिकायत करने आई, तो उसके पिता अशोक ने उसके साथ गाली-गलौज की और जान से मारने की धमकी दी। वह अगले दिन एफआईआर दर्ज कराने थाने गई, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं हुई।

4. अवर न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 21.03.2022 के तहत प्रार्थना-पत्र को परिवाद माना और मामले को परिवाद के रूप में आगे बढ़ाया। अवर न्यायालय ने शिकायतकर्ता के बयान धारा 200 दण्ड प्रक्रिया संहिता और उसके गवाह सतीश के बयान धारा 202 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज करने के बाद, आरोपी पवन और आकाश को धारा 376 भारतीय दण्ड संहिता के साथ पॉक्सो अधिनियम की धारा 18 के तहत और आरोपी अशोक को धारा 504 और 506 भारतीय दण्ड संहिता के तहत समन किया। समन आदेश से व्यथित होकर, आरोपी व्यक्तियों ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान पुनरीक्षण दायर किया है।

5. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2 का मौसेरा भाई और पुनरीक्षणकर्ता संख्या 3 का भतीजा है। पुनरीक्षणकर्ता संख्या 2, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 3 का

पुत्र है, अतः दोनों पुत्र और पिता हैं। चूँकि पुनरीक्षणकर्ता परिवार के ही सदस्य हैं, इसलिए उनके द्वारा इस प्रकार की घटना का घटित होना स्वाभाविक नहीं लगता है। वास्तव में, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 की माता श्रीमती रंजना ने दिनांक 17.10.2021 को थाना पटियाली, जिला काशगंज में मुकदमा अपराध संख्या 209/2021, धारा 354(बी), 504/506 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत राजीव, शैलेंद्र, सुखवीर और विदेश नामक चार व्यक्तियों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज कराई है। उक्त प्राथमिकी में, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 आकाश की माँ रंजना ने आरोप लगाया है कि नामजद आरोपियों ने 04.11.2021 को सुबह लगभग 11:00 बजे उसके साथ छेड़छाड़ की और उसके कपड़े फाड़ दिए, जब वह अपने बेटे आकाश के साथ क्यारी (बीज बोने की जगह) बनाने के लिए अपने खेत में गई थी। उन्होंने उसके बेटे के साथ मारपीठ भी की और उसके साथ दुर्व्यवहार किया। पीड़िता, जो पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 की माँ है, ने धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत अपने बयान में प्राथमिकी के संस्करण का समर्थन किया है और नामजद आरोपियों के खिलाफ धारा 354, 504, 506 भारतीय दण्ड संहिता के तहत आरोप पत्र दायर किया गया है।

6. उन्होंने आगे दलील दी कि चूँकि सुखवीर, जो उक्त पुलिस मामले में सूचनाकर्ता "X" (पहचान छुपाई गई) का साला है और वर्तमान मामले में पीड़िता का सगा चाचा है, उक्त मामले में आरोपी है, इसलिए सूचनाकर्ता और पीड़िता ने अपने परिवार के सदस्य सुखवीर को बचाने के लिए, इस झूठे आपराधिक मामले में पुनरीक्षणकर्ताओं को दुर्भावनापूर्वक फँसाया है। वर्तमान प्राथमिकी, पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 की माँ के कहने पर दर्ज किए गए पूर्व मामले के प्रत्युत्तर के रूप में, सुखवीर और अन्य के विरुद्ध उक्त पुलिस मामले में आरोपपत्र दाखिल होने के बाद दर्ज की गई है।

7. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि वर्तमान प्राथमिकी केवल उक्त प्राथमिकी के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध प्रतिशोध लेने के लिए दर्ज की गई है। यह अत्यधिक असंभावना है कि जहाँ दोनों पक्षों के बीच पूर्व और हाल ही में दुश्मनी थी, वहाँ पीड़िता की माँ अपनी बेटी को पूर्व मामले में सूचनाकर्ता पक्ष के विरुद्ध आरोपपत्र दाखिल होने के बाद भी, सूचनाकर्ता के बेटे और एक रिश्तेदार के साथ जाने की अनुमति देगी।

8. उन्होंने आगे दलील दी कि अवर न्यायालय इस तथ्य को समझने में विफल रही है कि आरोपी पवन और आकाश के विरुद्ध धारा 376 भारतीय दंड संहिता के तहत कोई अपराध नहीं बनता है, भले ही शिकायत के बयान को उसके मूल रूप में लिया जाए, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत मामला धारा 354, 354(बी) भारतीय दंड संहिता और पॉक्सो अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों की सीमा से आगे नहीं जाता है।

9. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि न तो शिकायतकर्ता और न ही पीड़िता ने पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ बलात्कार का कोई आरोप लगाया है, फिर भी दो आरोपियों को अन्य बातों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत भी समन किया गया है। यह तथ्य ही दर्शाता है कि समन आदेश बिना सोचे-समझे और लापरवाही से पारित किया गया था। इस मामले में धारा 375 के तहत अपराध

के तत्व नहीं बनता है। उन्होंने अंत में दलील दी कि समन आदेश रद्द किया जाना चाहिए और कम से कम मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए अवर न्यायालय में भेजा जाना चाहिए और पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उन्मोचन के लिए आवेदन दायर किया जाना चाहिए।

10. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आरोप तय करने के चरण में विचारण न्यायालय को जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य और सामग्री को सावधानीपूर्वक जांचना और तौलना नहीं चाहिए। क्योंकि उस चरण में अभियुक्तों पर मुकदमा चलाने के लिए केवल प्रथम दृष्टया मामला ही पता लगाना होता है। किसी परिवाद मामले में अभियुक्तों को समन करने के चरण में कोई लघु सुनवाई नहीं की जा सकती है। अवर न्यायालय ने मुख्य अभियुक्तों को आईपीसी की धारा 376 सह पठित पाँक्सो अधिनियम की धारा 18 के तहत समन किया है जो आईपीसी की धारा 376/511 के तहत अपराध के समान है।

11. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **लाल कुमार सिंह एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले की मदद लिया है जिसमें बॉम्बे उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के खिलाफ एक आपराधिक अपील दायर की, जिसमें संबंधित विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा प्रक्रिया जारी करने के आदेश और विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत आपराधिक पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने के आदेश के खिलाफ आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा दायर आपराधिक रिट याचिका को खारिज कर दिया गया था।

12. माननीय न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में निम्नलिखित टिप्पणी की:-

आदेशिका जारी करने का आदेश कोई कोरी औपचारिकता नहीं है। मजिस्ट्रेट को यह विचार करना आवश्यक है कि मामले में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है या नहीं। ऐसी राय बनाने का विवरण आदेश में ही दिया जाना आवश्यक है। यदि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनने के निष्कर्ष पर पहुँचते समय कोई कारण नहीं दिया जाता है, तो आदेश रद्द किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदेश में विस्तृत कारण शामिल करना आवश्यक नहीं है। सुनील भारती मित्तल बनाम केंद्रीय जाँच ब्यूरो (2015) 4 एससीसी 609 का मामला, इस प्रकार है: -

51. दूसरी ओर, संहिता की धारा 204 आदेशिका जारी करने से संबंधित है, यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में, कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। यह धारा आपराधिक कार्यवाही शुरू करने से संबंधित है। यदि मजिस्ट्रेट (2015) 4 एससीसी 609 किसी मामले का संज्ञान लेते हुए (यह शिकायत प्राप्त करने वाला मजिस्ट्रेट हो सकता है या जिसे धारा 192 के तहत स्थानांतरित किया गया है), अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री (अर्थात् शिकायत, शिकायतकर्ता और उसके गवाहों की परीक्षा, यदि उपस्थित हों, या जांच रिपोर्ट, यदि कोई हो) पर विचार करने के बाद, यह सोचता है कि किसी अपराध के संबंध में कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करेगा।

52. आदेशिका जारी करने या न करने के संबंध में व्यापक विवेकाधिकार दिया गया है और इसका न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को केवल इसलिए अदालत में नहीं घसीटा जाना चाहिए क्योंकि शिकायत दर्ज की गई है। यदि प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो मजिस्ट्रेट को आदेशिका जारी करनी चाहिए और इसे केवल इसलिए अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे लगता है कि इससे दोषसिद्धि होने की संभावना नहीं है।

53. हालाँकि, धारा 204 में उल्लिखित शब्द "कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार" अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। ये शब्द स्पष्ट रूप से सुझाव देते हैं कि उचित विचार-विमर्श के बाद ही यह राय बनाई जानी चाहिए कि उक्त अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है और ऐसी राय बनाने का उल्लेख आदेश में ही किया जाना चाहिए। यदि आदेश में कोई कारण नहीं दिया गया है, तो आदेश रद्द किया जा सकता है जबकि इस निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है, हालाँकि आदेश में विस्तृत कारण शामिल करना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त, यदि दिया गया कारण स्पष्ट रूप से गलत साबित होता है, तो आदेश कानूनन अमान्य होगा।"

29. अशोक मल बाफना (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय ने भी ऐसा ही दृष्टिकोण अपनाया है।

30. वर्तमान मामले में, प्रक्रिया जारी करने के आदेश के समर्थन में कोई कारण न होने के बावजूद, वास्तव में, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश से यह स्पष्ट है कि ऐसा कोई आदेश पारित ही नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिलेखों के आधार पर यह मान लिया है कि आज्ञापत्र जारी करने का आदेश दिया गया था। हम पाते हैं कि ऐसा दृष्टिकोण कानूनन पोषणीय नहीं है। अतः अपील स्वीकार किए जाने योग्य है।

13. आईपीसी की धारा 375 बलात्कार को इस प्रकार परिभाषित करती है:-

किसी पुरुष को "बलात्कार" करने वाला कहा जाता है यदि वह-

1. किसी महिला की योनि, मुँह, मूत्रमार्ग या गुदा में किसी भी सीमा तक अपना लिंग प्रवेश कराता है या उसे अपने साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या
2. किसी भी सीमा तक, किसी भी वस्तु या शरीर के किसी भाग को, जो लिंग नहीं है, किसी महिला की योनि, मूत्रमार्ग या गुदा में डालता है या उसे अपने साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या

3. किसी महिला के शरीर के किसी भाग को इस प्रकार से छेड़ता है कि योनि, मूत्रमार्ग, गुदा या ऐसी महिला के शरीर के किसी भाग में प्रवेश हो जाए या उसे अपने साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या

4. किसी महिला की योनि, गुदा, मूत्रमार्ग पर अपना मुँह लगाता है या उसे अपने साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है, निम्नलिखित सात में से किसी भी विवरण के अंतर्गत आने वाली परिस्थितियों में:

पहला- उसकी इच्छा के विरुद्ध।

दूसरा- उसकी सहमति के बिना।

तीसरा- उसकी सहमति से, जब उसकी सहमति उसे या उसके हित में किसी अन्य व्यक्ति को मृत्यु या क्षति के भय में डालकर प्राप्त की गई हो।

चौथा- उसकी सहमति से, जब पुरुष जानता है कि वह उसका पति नहीं है और उसकी सहमति इसलिए दी गई है क्योंकि वह मानती है कि वह कोई दूसरा पुरुष है जिससे वह विधिपूर्वक विवाहित है या होने का विश्वास करती है।

पाँचवाँ- उसकी सहमति से, जब ऐसी सहमति देते समय, मानसिक अस्वस्थता या नशे के कारण या उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य के माध्यम से किसी नशे में डालने वाले या अस्वास्थ्यकर पदार्थ के सेवन के कारण, वह उस चीज़ की प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ हो जिसके लिए वह सहमति दे रही है।

छठा- उसकी सहमति से या बिना सहमति के, जब वह अठारह वर्ष से कम आयु की हो।

सातवाँ- जब वह सहमति व्यक्त करने में असमर्थ हो।

स्पष्टीकरण:-

1. इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "योनि" में वृहत् भगोष्ठ भी शामिल होंगे।

2. सहमति का अर्थ है एक स्पष्ट स्वैच्छिक समझौता जब महिला शब्दों, हाव-भावों

या किसी भी प्रकार के मौखिक या अशाब्दिक संचार द्वारा, किसी विशिष्ट यौन क्रिया में भाग लेने की इच्छा व्यक्त करती है;

बशर्ते कि कोई महिला जो प्रवेश के कार्य का शारीरिक रूप से विरोध नहीं करती है, उसे

केवल इस तथ्य के आधार पर, यौन गतिविधि के लिए सहमति देने वाली नहीं माना जाएगा।

अपवाद

1. कोई चिकित्सीय प्रक्रिया या हस्तक्षेप बलात्कार नहीं माना जाएगा।

2. किसी पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ यौन संबंध या यौन कृत्य, यदि पत्नी पंद्रह वर्ष से कम आयु की न हो, बलात्कार नहीं माना जाएगा।

14. पॉक्सो अधिनियम की धारा 18, अपराध करने के प्रयास के लिए दंड का प्रावधान करती है। जो कोई इस अधिनियम के तहत दंडनीय किसी अपराध को करने का प्रयास करता है या ऐसे अपराध को करवाता है, और ऐसे प्रयास में, अपराध करने की दिशा में कोई कार्य करता है, उसे उस अपराध के लिए प्रदान की गई किसी भी प्रकार की कारावास से, जिसकी अवधि आजीवन कारावास की आधी या, जैसा भी मामला हो, उस अपराध के लिए प्रदान की गई कारावास की सबसे लंबी अवधि की आधी हो सकती है, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।

15. पॉक्सो अधिनियम की धारा 7 यौन हमले को परिभाषित करती है। जो कोई भी यौन इरादे से बच्चे की योनि, लिंग, गुदा या स्तन को छूता है या बच्चे को ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति की योनि, लिंग, गुदा या स्तन को छूने देता है, या यौन इरादे से कोई अन्य कार्य करता है जिसमें प्रवेश के बिना शारीरिक संपर्क शामिल होता है, उसे यौन हमला कहा जाता है।

16. पॉक्सो अधिनियम की धारा 8 यौन हमले के लिए दंड का प्रावधान करती है। जो कोई भी यौन हमला करता है, उसे किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि तीन वर्ष से कम नहीं होगी, लेकिन जो पाँच वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माना भी देना होगा।

17. वर्तमान मामले में, विद्वान अवर न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश में यह पाया है कि पीड़िता के प्राथमिक विद्यालय, जहाँ से उसने चौथी कक्षा उत्तीर्ण की है, द्वारा जारी किए गए शैक्षणिक दस्तावेजों के अनुसार, उसकी जन्मतिथि 12.02.2002 अंकित है। जबकि कथित घटना 10.11.2021 को घटित हुई थी, अतः पीड़िता घटना के दिन 11 वर्ष से अधिक आयु की थी और इस प्रकार वह नाबालिग थी। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि पीड़िता घटना के दिन नाबालिग नहीं थी, बल्कि उन्होंने वर्तमान मामले में पुनरीक्षणकर्ता संख्या 1 की माँ द्वारा शिकायतकर्ता के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध दर्ज कराई गई एक पूर्व घटना के आधार पर झूठे आरोप लगाने का तर्क दिया है।

18. आरोपी पवन और आकाश के खिलाफ आईपीसी की धारा 376 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 18 का आरोप लगाया गया है। आरोपी पवन और आकाश के खिलाफ आईपीसी की धारा 376 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 18 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया है और आरोपी अशोक, जो मुख्य आरोपी पवन का पिता है, के खिलाफ आईपीसी की धारा 504 और 506 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया है। इस आदेश में अवर न्यायालय ने आरोपी पवन और आकाश को आईपीसी की धारा 376 के तहत समन किया है, लेकिन उक्त आरोप पॉक्सो अधिनियम की धारा 18 के साथ जुड़ा हुआ है, जिसमें अपराध करने के प्रयास के लिए दंड का प्रावधान है। इस प्रकार, अवर न्यायालय ने इन आरोपियों के खिलाफ आईपीसी की धारा 376/511 लगाने के बजाय पॉक्सो अधिनियम की धारा 18 के साथ धारा 376 लगाई है। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने इन आरोपियों के खिलाफ प्रथम दृष्टया बलात्कार के प्रयास या पॉक्सो अधिनियम के दायरे में प्रवेशात्मक यौन उत्पीड़न के प्रयास का मामला पाया है।

1. वर्तमान मामले में, अभियुक्त पवन और आकाश के विरुद्ध आरोप यह है कि उन्होंने पीड़िता के स्तनों को पकड़ा और आकाश ने पीड़िता का निचला वस्त्र नीचे करने का प्रयास किया और इस उद्देश्य से उन्होंने उसके निचले वस्त्रों की डोरी तोड़ दी और उसे पुलिया के नीचे खींचने का प्रयास किया, लेकिन गवाहों के हस्तक्षेप के कारण वे पीड़िता को छोड़कर घटनास्थल से भाग गए। यह तथ्य यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि अभियुक्तों ने पीड़िता के साथ बलात्कार करने का निश्चय किया था, क्योंकि इन तथ्यों के अलावा, पीड़िता के साथ बलात्कार करने की उनकी कथित इच्छा को बढ़ावा देने के लिए उनके द्वारा किया गया कोई अन्य कार्य नहीं बताया गया है।

22. वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता और पीड़िता के बयान से पुनरीक्षणकर्ताओं के विरुद्ध आरोप यह प्रकट होता है कि अभियुक्त पवन ने पीड़िता को अपनी मोटरसाइकिल पर पीछे बैठा लिया था। जब पीड़िता घटना के दिन और समय अपनी बेटी के साथ रास्ते में थी, तब अभियुक्त पवन और आकाश ने पीड़िता के साथ शिकायत दर्ज कराई। पीड़िता को आश्वासन देने पर उन्होंने रास्ते में पुलिया के पास मोटरसाइकिल रोक दी, उसके स्तन पकड़ लिए और आकाश ने उसे पुलिया के नीचे खींचने की कोशिश की और उसकी पजामी का नाड़ा तोड़ दिया। उसकी चीखें सुनकर, गवाह सतीश और भूरा, जो पीछे से ट्रैक्टर पर आ रहे थे, मौके पर पहुँचे और आरोपियों को चुनौती दी। वे गवाहों को जान से मारने की धमकी देकर भाग गए और उन पर देशी पिस्तौल तान दी। आरोपी अशोक, जो आरोपी पवन का पिता है, के खिलाफ आरोप है कि जब घटना के बाद शिकायतकर्ता पीड़िता के साथ उसके घर गई, तो उसने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और धमकी दी। इसी कारण से आरोपी अशोक को केवल धारा 504 और 506 आईपीसी के तहत आरोप के लिए बुलाया गया है, और उसके खिलाफ छेड़छाड़ या बलात्कार के प्रयास का कोई आरोप नहीं लगाया गया है।

23. शिकायत में या धारा 200/202 सीआरपीसी के तहत दर्ज गवाहों के बयान में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि नाबालिग पीड़िता के निचले वस्त्र का नाड़ा तोड़ने के बाद आरोपी आकाश खुद बेचैन हो गया। आकाश के खिलाफ विशेष आरोप यह है कि उसने पीड़िता को पुलिया के नीचे खींचने की कोशिश की और उसकी पजामी का नाड़ा तोड़ दिया। गवाहों ने यह भी नहीं बताया कि आरोपी के इस कृत्य के कारण पीड़िता नग्न हो गई या उसके कपड़े उतर गए। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि आरोपी ने पीड़िता के साथ यौन उत्पीड़न करने की कोशिश की।

24. अभियुक्त पवन और आकाश के विरुद्ध लगाए गए आरोप और मामले के तथ्य इस मामले में बलात्कार के प्रयास का अपराध नहीं गठित करते हैं। बलात्कार के प्रयास का आरोप लगाने के लिए अभियोजन पक्ष को यह स्थापित करना होगा कि यह तैयारी के चरण से आगे बढ़ गया था। तैयारी और अपराध करने के वास्तविक प्रयास के बीच का अंतर मुख्यतः दृढ़ संकल्प की अधिक मात्रा में होता है।

25. **रेक्स बनाम जेम्स लॉयड (1836) 7सी और पी 817: 173 ईआर 141** में जूरी के समक्ष आरोप का सारांश प्रस्तुत करते हुए, न्यायमूर्ति पैटरसन ने कहा:

"बलात्कार करने के इरादे से किए गए हमले के लिए कैदी को दोषी ठहराने के लिए, आपको यह सुनिश्चित करना होगा कि जब कैदी ने अभियोक्त्री को पकड़ा, तो उसने न केवल उसके शरीर पर अपनी वासनाओं को तृप्त करने की इच्छा की थी, बल्कि वह ऐसा हर हाल में और उसकी ओर से किसी भी प्रतिरोध के बावजूद भी करना चाहता था।"

एक्सप्रेस बनाम शंकर, (1881) आईएलआर 5 बॉम्बे 403 में अभियुक्त पर बलात्कार के प्रयास का आरोप लगाया गया था। यहाँ एम. मैलिल जे. की टिप्पणियाँ, जो नीचे उद्धृत हैं, अत्यंत प्रासंगिक हैं:

"हमारा मानना है कि इस देश में अभद्र हमलों को अक्सर बलात्कार के प्रयासों में, और उससे भी अधिक बार बलात्कार में बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाता है; और हमारा मानना है कि बलात्कार के प्रयास के लिए दोषसिद्धि तब तक नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि न्यायालय इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि अभियुक्त का आचरण हर हाल में और सभी प्रतिरोधों के बावजूद अपनी वासनाओं को तृप्त करने के दृढ़ संकल्प को दर्शाता है।"

26. मामले के तथ्यों पर गहन विचार और सूक्ष्म परीक्षण के बाद, यह न्यायालय इस राय पर है कि अभियोजन पक्ष के अनुसार, केवल यह तथ्य कि दो आरोपी पवन और आकाश ने पीड़िता के स्तनों को पकड़ा और उनमें से एक, आकाश ने उसके पायजामे का नाड़ा तोड़ दिया और उसे पुलिया के नीचे खींचने की कोशिश की और इस बीच, राहगीरों/गवाहों के हस्तक्षेप पर, आरोपी व्यक्ति पीड़िता को छोड़कर मौके से भाग गए, यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं है कि आरोपियों के खिलाफ धारा 376, 511 आईपीसी या धारा 376 आईपीसी के साथ पॉक्सो अधिनियम की धारा 18 का मामला बनाया गया है।

27. मामले के तथ्यों के आधार पर, अभियुक्त पवन और आकाश के विरुद्ध प्रथम दृष्टया बलात्कार के प्रयास का आरोप नहीं बनता है, बल्कि उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 354(बी) के तहत मामूली आरोप के तहत समन किया जा सकता है, अर्थात् किसी महिला के कपड़े उतारने या उसे नग्न होने के लिए मजबूर करने के इरादे से उस पर हमला या दुर्व्यवहार करना। पॉक्सो अधिनियम की धारा 9 में बाल पीड़िता पर गंभीर यौन हमले के लिए दंड का प्रावधान है, जिसमें धारा 9(एम) के अनुसार, जो कोई भी बारह वर्ष से कम उम्र के बच्चे पर यौन हमला करता है, उसे गंभीर यौन हमला करने वाला माना जाता है। धारा 10 में सात वर्ष तक के कारावास की सजा का प्रावधान है, जो पाँच वर्ष से कम नहीं होगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

28. पॉक्सो अधिनियम की धारा 10 में प्रावधान है कि जो कोई भी गंभीर यौन उत्पीड़न करेगा, उसे कम से कम पांच वर्ष की कैद और सात वर्ष तक की कैद की सजा दी जाएगी और साथ ही जुर्माना भी देना होगा।

29. पूर्वोक्त विवेचना के आधार पर, यह न्यायालय पाता है कि आक्षेपित समन आदेश में पुनरीक्षणकर्ता पवन और आकाश के संबंध में बलात्कार के प्रयास के अपराध के संबंध में अवर न्यायालय का निष्कर्ष पोषणीय नहीं

हैं और इसके बजाय उन्हें पॉक्सो अधिनियम की धारा 9/10 के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 354(बी) के तहत मामूली अपराध के लिए समन किया जाना चाहिए। आक्षेपित समन आदेश तदनुसार संशोधित किया जाता है। अवर न्यायालय को संशोधित धाराओं के तहत पुनरीक्षणकर्ता पवन और आकाश के संबंध में नया समन आदेश जारी करने का निर्देश दिया जाता है।

30. इस प्रकार, पुनरीक्षण आदेश आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 449

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1965/2024

राजेन्द्र सिंह

..... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... प्रत्यर्थीगण

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:

श्री जितेंद्र कुमार सिंह, श्री सृजन पांडे

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

जी.ए., श्री सौरभ चतुर्वेदी, श्री आई.के. चतुर्वेदी

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397 सहपठित धारा 401 दं.प्र.सं. के अंतर्गत आपराधिक पुनरीक्षण - धारा 156(3) के अंतर्गत परिवाद - प्राथमिकी दर्ज करने के निर्देश हेतु प्रार्थना पत्र की अस्वीकृति - के विरुद्ध पुनरीक्षण - आरोप है कि मृतक (पुनरीक्षणकर्ता के भाई) की हत्या आवास योजना की राशि और संपत्ति में भागदारी की मांग को लेकर रिश्तेदारों द्वारा की गई थी - पुलिस रिपोर्ट मुख्य उद्देश्य के बारे में मौन - मजिस्ट्रेट ने केवल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया - निर्णय दिया गया कि जहाँ प्रार्थना पत्र प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का खुलासा करता है, वहाँ न्यायालय को प्रारंभिक जाँच के बिना प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश देना चाहिए - प्रार्थनापत्र की विषय-वस्तु में उद्देश्य, धमकी और अपराध करने के तरीके का खुलासा हुआ - उचित तर्क के बिना न्यायालय द्वारा अस्वीकृति अवैध - जब बयान, सूचनाकर्ता और अभियुक्त

अलग हों तो दूसरी प्राथमिकी पर रोक नहीं - पुनरीक्षण स्वीकृत - मजिस्ट्रेट ने प्रार्थना पत्र पर नए सिरे से पुनर्विचार करने का निर्देश दिया। (अनुच्छेद 29 से 32, 36, 37, 38 और 40)

अभिनिर्धारित:

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ललिता कुमारी (पूर्वोक्त) मामले में दिए गए अपने संविधान पीठ के निर्णय में अभिनिर्धारित किया था कि यदि सूचना से किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा होता है, तो धारा 154 दं.प्र.सं. के तहत एफआईआर दर्ज करना अनिवार्य है और ऐसी स्थिति में किसी भी विवेचना की अनुमति नहीं है। यह भी माना गया है कि यदि प्राप्त सूचना से किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं होता है, लेकिन विवेचना की आवश्यकता का संकेत मिलता है, तो प्रारंभिक विवेचना केवल यह पता लगाने के लिए की जा सकती है कि क्या संज्ञेय अपराध का खुलासा हुआ है या नहीं... (पैरा 29)

इस न्यायालय का मानना है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने ललिता कुमारी (पूर्वोक्त) मामले में दिए गए अपने निर्णय में दो श्रेणियां बनाई थीं; पहली, जहाँ सूचना की विषय-वस्तु संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करती है और दूसरी, जहाँ स्पष्ट रूप से विषय-वस्तु संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा नहीं करती, बल्कि जाँच की आवश्यकता का संकेत देती है। पहली स्थिति में, किसी प्रारंभिक जाँच की आवश्यकता नहीं है और प्राथमिकी दर्ज करना अनिवार्य है, लेकिन दूसरी स्थिति में, पुलिस द्वारा प्रारंभिक जाँच का निर्देश दिया जा सकता है। (अनुच्छेद 30)

वर्तमान मामले के तथ्यों पर गौर करने पर, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दायर प्रार्थना-पत्र की विषयवस्तु स्पष्ट रूप से संज्ञेय अपराध के घटित होने का प्रमाण देती है। इसलिए, ललिता कुमारी (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के मद्देनजर, न्यायालय को पुलिस रिपोर्ट मांगने की कोई आवश्यकता नहीं थी। पुनरीक्षणकर्ता के मामले में, यद्यपि पुलिस रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया गया था कि धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दायर उसके प्रार्थनापत्र में लगाए गए आरोप सिद्ध नहीं हुए हैं, लेकिन साथ ही, प्रतिपक्ष संख्या 3 के साथ अपराध करने के उद्देश्य से भी इनकार नहीं किया गया है। (पैरा 31)

मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि विद्वान विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा को पुलिस रिपोर्ट को सत्य नहीं मानना चाहिए था क्योंकि धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दायर प्रार्थना-पत्र की विषयवस्तु एक संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करती है, इसलिए, न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दायर प्रार्थनापत्र को खारिज करते हुए स्पष्ट कानूनी त्रुटि की थी। (पैरा 32)

इस न्यायालय की खंडपीठ ने देवकली (पूर्वोक्त) के मामले में दिनांक 26.02.2020 को दिए गए अपने निर्णय में कहा था कि जहां, घटना का अलग कथानक एक अलग परिवादकर्ता द्वारा अलग-अलग आरोपियों के समूह

के आधार पर रिपोर्ट किया जाता है, तो उक्त कथानक की विवेचना करनी होगी और उक्त कथानक को उसी अपराध की दूसरी प्रथम सूचना रिपोर्ट नहीं कहा जा सकता है, इसलिए, दूसरे कथानक के आधार पर, दूसरी एफआईआर दर्ज की जानी चाहिए और विवेचना की जानी चाहिए और सक्षम न्यायालय के समक्ष आगे की पुलिस रिपोर्ट दायर की जानी चाहिए...(पैरा 37)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त कानून से यह पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि जहाँ घटना का भिन्न कथानक किसी भिन्न परिवादकर्ता द्वारा भिन्न अभियुक्तों के समूह के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है, वहाँ उसी घटना के लिए दूसरी प्रथम सूचना रिपोर्ट कानून के अंतर्गत अनुमन्य है।

पुनरीक्षण प्रार्थनापत्र स्वीकृत। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य 2014 (2) एससीसी 1
2. उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश और अन्य (2004) 13 एससीसी 292
3. सुरेन्द्र कौशिक और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य (2013) 5 एससीसी 148
4. आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 24812/2019 (देवकली बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश एवं अन्य)
5. टी.टी. एंटनी बनाम केरल के न्यायाधीश, (2001) 6 एससीसी 181
6. अवधेश कुमार झा बनाम बिहार के न्यायाधीश, (2016) 3 एससीसी 8

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सृजन पांडे और श्री जितेंद्र कुमार सिंह, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता और विपक्षीगण संख्या 2 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सौरभ चतुर्वेदी की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई. के. चतुर्वेदी को सुना गया।

2. वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण दं.प्र.सं. की धारा 397 सपठित धारा 401 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दायर किया गया है, जिसमें विद्वान विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 71/2024 राजेंद्र सिंह बनाम विनोद सिंह एवं अन्य में पारित दिनांक 11.03.2024 के आदेश को चुनौती दी गई है। इसके द्वारा, पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 156(3) के अंतर्गत पुलिस को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश देने के लिए दायर प्रार्थना-पत्र को अस्वीकार कर दिया गया।

3. मामले के तथ्य संक्षेप में यह हैं कि पुनरीक्षणकर्ता के भाई, अर्थात् वीरेंद्र सिंह और उनकी पत्नी, 07.11.2023 की सुबह अपने घर में मृत पाए गए। पुनरीक्षणकर्ता ने थाना पैलानी, जिला बांदा की पुलिस को सूचित किया कि उसकी बहन कृष्णा देवी, उसके चचेरे भाई विनोद सिंह और संजय सिंह ने उसके भाई और उसके भाई की पत्नी को जहर दिया है, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। पुलिस ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की, हालाँकि पुलिस ने शवों को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि मृत्यु का कारण ज्ञात नहीं हो सका है और इसलिए विसरा सुरक्षित रखा गया है।

4. चूँकि पुलिस ने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की, पुनरीक्षणकर्ता प्राथमिकी दर्ज कराने थाने गया, लेकिन उसे बल प्रयोग करके थाने से भगा दिया गया। इसके बाद, पुनरीक्षणकर्ता 21.12.2023 को पुलिस अधीक्षक, बांदा के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने 22.12.2023 को पंजीकृत डाक के माध्यम से पुलिस अधीक्षक, बांदा को एफआईआर दर्ज करने के लिए अपना प्रार्थना-पत्र भी भेजा।

5. चूँकि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा किए गए उपरोक्त प्रयासों के बावजूद पुलिस ने प्राथमिकी दर्ज नहीं की, इसलिए उसने दिनांक 26.02.2024 को विद्वान विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा की अदालत में एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया। उक्त प्रार्थना पत्र में पुनरीक्षणकर्ता ने कहा था कि उसके भाई वीरेंद्र सिंह को प्रधानमंत्री आवास योजना के अंतर्गत एक मकान स्वीकृत हुआ था और उसके खाते में 1,20,000/- रुपये जमा हो गए थे। पुनरीक्षणकर्ता की बहन कृष्णा देवी, पुनरीक्षणकर्ता के चचेरे भाई विनोद सिंह और प्रधान प्रतिनिधि संजय सिंह, वीरेंद्र सिंह पर मकान की आधी ज़मीन और प्रधानमंत्री आवास योजना के अंतर्गत प्राप्त राशि में से 60,000/- रुपये उन्हें देने का दबाव बना रहे थे। प्रार्थना-पत्र में आगे कहा गया है कि कृष्णा देवी, विनोद सिंह और संजय सिंह ने वीरेंद्र सिंह को धमकी दी है कि वह पांच-छह दिनों के भीतर जमीन और पैसा उन्हें सौंप दे, अन्यथा वे उसे जान से मार देंगे। प्रार्थनापत्र में आगे कहा गया है कि कृष्णा देवी, विनोद सिंह और संजय सिंह ने 6.11.2023 की रात को वीरेंद्र सिंह और उनकी पत्नी को जहर देकर मार डाला। पुनरीक्षणकर्ता ने धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दायर अपने प्रार्थनापत्र के माध्यम से प्रार्थना की कि संबंधित पुलिस थाना को मामले में एफआईआर दर्ज करने और विनोद सिंह, कृष्णा देवी और संजय सिंह के खिलाफ पर्याप्त दंडात्मक कार्यवाही करने का निर्देश दिया जाए।

6. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने धारा 156(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त प्रार्थना पत्र पर सम्बन्धित थाने से आख्या मांगी। थाना प्रभारी, पैलानी, जिला बांदा ने आख्या प्रस्तुत की, जिसमें बताया गया कि शवों के पोस्टमार्टम के पश्चात् उनके विसरा को सुरक्षित रख लिया गया है तथा विवेचना हेतु विधि विज्ञान प्रयोगशाला (एफ.एस.एल.) भेज दिया गया है। प्रार्थना पत्र में लगाए गए अन्य आरोप पुलिस द्वारा सिद्ध नहीं पाए गए।

7. विद्वान विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा ने धारा 156(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र को आक्षेपित आदेश दिनांक

11.03.2024 द्वारा अस्वीकार कर दिया। पुनरीक्षणकर्ता ने 14.04.2024 को इस न्यायालय के समक्ष तत्काल आपराधिक पुनरीक्षण दायर करके उपरोक्त आदेश दिनांक 11.03.2024 को चुनौती दी। तत्काल पुनरीक्षण को इस न्यायालय ने दिनांक 29.04.2024 के आदेश के तहत स्वीकार किया और विपक्षी पक्षकार संख्या 2 अर्थात विनोद सिंह को नोटिस जारी किया गया। तत्पश्चात, पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दिनांक 29.04.2024 के आदेश में सुधार के लिए एक प्रार्थना-पत्र दाखिल किया गया और उक्त प्रार्थना-पत्र को आपराधिक विविध सुधार प्रार्थनापत्र संख्या 1/2024 के रूप में पंजीकृत किया गया। इस न्यायालय ने दिनांक 02.05.2024 के आदेश के तहत सुधार प्रार्थनापत्र को अनुमति दी और इस प्रकार, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को नोटिस के स्थान पर, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 से 4 को नोटिस जारी किए गए। इस पुनरीक्षण के आदेश-पत्र में उपलब्ध तामील रिपोर्ट के अनुसार, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 अर्थात श्री विनोद सिंह को इस पुनरीक्षण की सूचना 07.05.2024 को दी गई थी।

8. ऐसा प्रतीत होता है कि विपक्षी पक्षकार संख्या 2 अर्थात विनोद सिंह को इस आपराधिक पुनरीक्षण की सूचना तामील होने के बाद, श्रीमती कृष्णा देवी, जो इस आपराधिक पुनरीक्षण में विपक्षी पक्षकार संख्या 3 हैं, द्वारा धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत एक प्रार्थनापत्र दायर किया गया था, जिसमें उन्होंने दावा किया था कि वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता अर्थात श्री राजेंद्र सिंह और कुछ अन्य व्यक्तियों ने उनके भाई, वीरेंद्र सिंह और उनकी पत्नी को जहर दिया है और इसलिए, श्री राजेंद्र सिंह और अन्य व्यक्तियों के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाए और उन्हें संबंधित अपराध के लिए दंडित किया जाए।

9. इस स्तर पर एक बहुत ही आश्चर्यजनक तथ्य जो ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि श्रीमती कृष्णा देवी अर्थात विपक्षी पक्षकार संख्या 3 ने धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दायर अपने प्रार्थनापत्र में यह नहीं बताया है कि किस तारीख को उन्होंने एफआईआर दर्ज करने के लिए पुलिस थाना पैलानी, जिला बांदा की पुलिस से संपर्क किया था। और प्रार्थनापत्र में, उसने केवल इतना कहा है कि जब पुलिस द्वारा एफआईआर दर्ज नहीं की गई, तो उसने 16.04.2024 को पंजीकृत डाक के माध्यम से पुलिस अधीक्षक, बांदा को प्रार्थनापत्र भेजा है। यह भी उल्लेखनीय है कि वीरेंद्र सिंह और उनकी पत्नी 7.11.2023 की सुबह मृत पाए गए थे और श्रीमती कृष्णा देवी ने पहली बार एफआईआर दर्ज करने के लिए अपना प्रार्थनापत्र पुलिस अधीक्षक, बांदा को 16.04.2024 यानी लगभग पांच महीने बाद भेजा था। हालाँकि, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बांदा ने श्रीमती कृष्णा देवी द्वारा दायर प्रार्थना-पत्र पर फिर से पुलिस थाना पैलानी, जिला बांदा की पुलिस से एक रिपोर्ट मांगी और इस बार भी, पुलिस ने लगभग एक समान रिपोर्ट प्रस्तुत की जो पहले समय पर प्रस्तुत की गई थी। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बांदा के समक्ष न तो कृष्णा देवी और न ही संबंधित थाने की पुलिस ने यह खुलासा किया कि पूर्व में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दायर एक प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया गया था और उनके प्रार्थनापत्र पर पारित आदेश आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1965/2024 का विषय-वस्तु है।

10. विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत प्रार्थना पत्र दाखिल करने में देरी की बात पर विचार किए बिना और यह भी विचार बिना कि श्रीमती कृष्णा देवी ने किस तारीख को पहली बार इस जुर्म के बारे में प्राथमिकी दर्ज कराने की कोशिश की, सीधे 03.07.2024 को एक

आदेश पारित किया, जिसके तहत थाना परिसर ऑफिसर, पुलिस थाना पैलानी, जिला बांदा को श्रीमती कृष्णा देवी की दी गई प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश दिया गया। दिनांक 03.07.2024 के आदेश के अनुसार, पुलिस थाना पैलानी, जिला बांदा में मौजूदा पुनरीक्षणकर्ता यानी राजेंद्र सिंह, ब्रज विलास सिंह, ब्रज किशोर सिंह और मनमोहन सिंह के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 328 और 302 के तहत एफआईआर सं. 0150/2024 पंजीकृत किया गया था।

11. श्री आई.के. चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जो प्रतिपक्ष सं. 2 से 4 की ओर से पेश हुए, ने एक शुरुआती आपत्ति उठाई है, यानी क्योंकि जिस अपराध के बारे में बात हो रही है, उसके संबंध में एक एफआईआर पहले ही एफआईआर सं. 0150/2024 के तौर पर पंजीकृत हो चुकी है, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता करने वाला खुद एक आरोपी है, इसलिए यह पुनरीक्षणकर्ता अपनी अहमियत खो चुका है, क्योंकि उसी अपराध के संबंध में दूसरी एफआईआर नहीं हो सकती है।

12. पुनरीक्षणकर्ता की ओर से पेश हुए अधिवक्ता श्री सृजन पांडे ने तर्क दिया है कि अगर धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत एक प्रार्थना पत्र इस निवेदन के साथ दाखिल की जाती है कि संबंधित पुलिस थाना को एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दिया जाए, तो प्रार्थना पत्र से निपटने वाली न्यायालय यह देखने के लिए बाध्य है कि क्या प्रार्थना पत्र की अन्तर्वस्तु से कोई संज्ञेय अपराध पता चलता है और अगर संज्ञेय अपराध पता चलता है, तो न्यायालय संबंधित पुलिस थाना को अपराध के संबंध में प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश देने के लिए बाध्य है। आगे यह तर्क दिया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल किए गए प्रार्थना पत्र की अन्तर्वस्तु से साफ तौर पर एक संज्ञेय अपराध का पता चलता है और मामले में दाखिल की गई पुलिस रिपोर्ट में भी कहा गया है कि विसरा सुरक्षित रखा गया है और एफएसएल को भेजा गया है। कृष्णा देवी भी मृतक की प्रॉपर्टी में हिस्सा चाहती हैं, इसलिए न्यायालय के पास धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल की गई पुनरीक्षणकर्ता की प्रार्थना पत्र को अस्वीकार करने का कोई मौका नहीं था, लेकिन विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा ने बिना कोई ठोस वजह बताए, बिल्कुल मनमाने तरीके से उस प्रार्थना पत्र को अस्वीकार कर दिया था।

13. पुनरीक्षणकर्ता की तरफ से पेश हुए अधिवक्ता ने कहा है कि एक बार जब दं.प्र.सं. के धारा 156(3) के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र की अन्तर्वस्तु, साफ शब्दों में, संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करता है, तो न्यायालय को पुलिस को अपनी रिपोर्ट जमा करने का निर्देश देने की कोई ज़रूरत नहीं है और इस मामले में पुलिस की दाखिल की गई रिपोर्ट में भी यह आया था कि प्रतिपक्ष सं. 3 यानी कृष्णा देवी भी मृतक की प्रॉपर्टी में हिस्सा चाहती थी, इसलिए न्यायालय के पास प्रतिपक्ष सं. 2 से 4 द्वारा अपराध किए जाने की संभावना को खारिज करने का कोई मौका नहीं था, ऐसे में न्यायालय पुनरीक्षणकर्ता की दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र को अस्वीकार नहीं कर सकता था।

14. पुनरीणकर्ता की तरफ से पेश हुए अधिवक्ता ने अपनी दलीलों को मज़बूत करने के लिए, **नलिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य 2014 (2) एससीसी 1** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के निर्णय की मदद लिया है और कहा है कि एक बार जब दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र की अन्तर्वस्तु, साफ शब्दों में, संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करता है, तो न्यायालय को पुलिस को अपनी रिपोर्ट जमा करने का निर्देश देने की कोई ज़रूरत नहीं है और न्यायालय को सीधे संबंधित पुलिस थाना को एफआईआर दर्ज करने और मामले की विवेचना करने का निर्देश देना चाहिए।

15. पुनरीक्षणकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि उसी घटना से संबंधित दूसरी एफ.आई.आर. के संबंध में कानून माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों की शृंखला के माध्यम से पहले ही स्पष्ट कर दिया गया था, जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया था कि उसी घटना के संबंध में दूसरी एफ.आई.आर. दर्ज की जा सकती है यदि सूचनाकर्ता पहली एफ.आई.आर. के सूचनाकर्ता से अलग व्यक्ति हो, सूचनाकर्ता द्वारा घटना का दिया गया कथानक पहली एफ.आई.आर. में सूचनाकर्ता द्वारा दिए गए कथानक से अलग हो और आरोपी अलग व्यक्ति हो। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामले में सूचनाकर्ता पुनरीक्षणकर्ता है जबकि पहले से दर्ज एफ.आई.आर. में सूचनाकर्ता श्रीमती कृष्णा देवी हैं। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दायर प्रार्थनापत्र में घटना के संबंध में दिया गया कथानक श्रीमती द्वारा दिए गए कथानक से पूरी तरह अलग है। पहले से दर्ज एफआईआर में कृष्णा देवी और दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के तहत पुनरीणकर्ता द्वारा दायर प्रार्थनापत्र में अपराध के आरोपी, श्रीमती कृष्णा देवी द्वारा दर्ज एफआईआर में आरोपी से अलग व्यक्ति हैं।

16. पुनरीक्षणकर्ता के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सृजन पांडे ने **उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश और अन्य (2004) 13 एससीसी 292** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, **सुरेन्द्र कौशिक और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2013) 5 एससीसी 148** के मामले में दिए गए निर्णय और इस न्यायालय के खंडपीठ द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 24812/2019 (देवकली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 58 अन्य) में दिए गए दिनांक 26.02.2020 के निर्णय और आदेश की मदद लिया है और प्रस्तुत किया है कि उक्त निर्णयों में, यह स्पष्ट रूप से माना गया था कि एक ही घटना के संबंध में दूसरी एफआईआर दर्ज की जा सकती है यदि सूचनाकर्ता अलग-अलग व्यक्ति हैं, दोनों मामलों में घटना के कथानक अलग-अलग हैं और अपराध के लिए आरोपी व्यक्ति अलग हैं।

17. पुनरीणकर्ता की तरफ से पेश हुए अधिवक्ता ने ज़ोर देकर कहा है कि मामले के खास तथ्य, साफ शब्दों में, यह दिखाते हैं कि श्रीमती कृष्णा देवी द्वारा दर्ज कराई गई एफआईआर किसी भी तरह से उन्हें उस जुर्म की सज़ा से बचाने की एक चाल है, क्योंकि यह पुनरीणकर्ता ही था जिसने घटना की तारीख पर ही एफआईआर दर्ज कराने की कार्रवाई शुरू कर दी थी और उसने तुरंत दं.प्र.सं. के धारा 156 (3) के तहत अर्ज़ी भी दी थी। इसलिए, यह न्याय के हित में होगा कि यह न्यायालय इस पुनरीक्षण को अनुमति दे और दिनांक 11.03.2024 के विवादित आदेश को रद्द कर दे, साथ ही विद्वान विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र

अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा को निर्देश दे कि वे पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 156(3) के तहत दायर प्रार्थनापत्र पर नए सिरे से विचार करें और संबंधित पुलिस थाना को एफ.आई.आर. दर्ज करने का निर्देश जारी करें।

18. श्री आई.के. चतुर्वेदी, जो प्रतिपक्ष सं. 2 से 4 की ओर से पेश हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता हैं, ने तर्क दिया है कि एक बार एक घटना के संबंध में एफआईआर दर्ज हो जाने के बाद, उसी घटना के लिए दूसरी एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकती है। श्री आई.के. चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने **टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और **अवधेश कुमार झा बनाम बिहार राज्य, (2016) 3 एससीसी 8** मामले में दिए गए निर्णय की मदद लिया है।

19. श्री आई.के. चतुर्वेदी, जो प्रतिपक्ष सं. 2 से 4 की तरफ से पेश हुए अधिवक्ता हैं, ने यह भी कहा है कि पुनरीक्षणकर्ता ने खुद, कुछ दूसरे लोगों की मदद से, वीरेंद्र सिंह और उनकी पत्नी को ज़हर दिया था और इसलिए, सिर्फ़ खुद को बचाने के लिए, वह किसी भी तरह अपनी एफआईआर दर्ज करवाने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने आगे कहा है कि 11.03.2024 के आक्षेपित आदेश में न तो कोई गैर-कानूनी बात है और न ही कोई कमी है, इसलिए यह आपराधिक पुनरीक्षण इस न्यायालय द्वारा खारिज किया जा सकता है।

20. मैंने पक्षकारों की तरफ से पेश हुए अधिवक्ताओं की विरोधी दलीलों पर विचार किया है और इस आपराधिक पुनरीक्षण के अभिलेख में मौजूद प्रपत्र को देखा है।

21. इस आपराधिक पुनरीक्षण में उठाए गए कानूनी मुद्दों पर फैसला करने से पहले, यह न्यायालय मामले के कुछ तथ्यों पर विचार करना सही समझता है जो नीचे दिए गए हैं:

22. वीरेंद्र सिंह और उनकी पत्नी 7.11.2023 की सुबह अपने घर में मरे हुए पाए गए। पुनरीक्षणकर्ता उसी दिन प्रतिपक्ष सं. 2 से 4 के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराने के लिए संबंधित पुलिस थाना गए, लेकिन पुलिस ने उन्हें थाने से निकाल दिया। पुनरीक्षणकर्ता तुरंत 21.12.2023 को बांदा के पुलिस अधीक्षक के सामने पेश हुए और 22.12.2023 को रजिस्टर्ड पोस्ट से एफआईआर दर्ज कराने के लिए एक प्रार्थना पत्र भेजी। क्योंकि पुलिस ने एफआईआर दर्ज नहीं की थी, इसलिए पुनरीक्षणकर्ता ने तुरंत 26.02.2024 को धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत एक प्रार्थना पत्र दाखिल की। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र को 11.03.2024 के आदेश से अस्वीकार कर दिया गया था। पुनरीक्षणकर्ता ने 11.03.2024 के आदेश को आपराधिक पुनरीक्षण सं. 1965 ऑफ़ 2024 फ़ाइल करके चैलेंज किया, जिसे इस न्यायालय ने मान लिया और 29.04.2024 के आदेश के ज़रिए प्रतिपक्ष सं. 2 को नोटिस जारी किया गया। इस पुनरीक्षण का नोटिस प्रतिपक्ष सं. 2 को 07.05.2024 को सर्व किया गया।

23. विपक्षी पक्ष सं. 2 को इस पुनरीक्षण की सूचना तामील होने तक विपक्षी पक्ष सं. 2 से 4 की ओर से पूर्ण चुप्पी रही तथा विपक्षी पक्ष सं. 2 को इस पुनरीक्षण की सूचना तामील होने के पश्चात विपक्षी पक्ष सं. 3 ने दिनांक 10.05.2024 को विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बांदा के समक्ष पुनरीक्षणकर्ता एवं तीन अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध उसी घटना के लिए एफ.आई.आर. दर्ज करने हेतु प्रार्थनापत्र पत्र दाखिल किया। विपक्षी पक्ष सं. 3 ने यह नहीं बताया कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156(3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत दाखिल प्रार्थना पत्र पहले ही खारिज कर दिया गया था। इसके अलावा विपक्षी पक्ष सं. 3 ने दिनांक 10.05.2024 को दाखिल अपने प्रार्थनापत्र पत्र में यह नहीं बताया कि एफ.आई.आर. दर्ज कराने हेतु वह वास्तव में किस तारीख को संबंधित पुलिस थाने गई थी। और प्रार्थना पत्र में कहा गया है कि उसने 16.04.2024, यानी घटना की तारीख से लगभग पांच महीने बाद को पुलिस अधीक्षक, बांदा को एफआईआर दर्ज करने के लिए एक प्रार्थना पत्र दी थी।

24. ऊपर बताए गए तथ्य, साफ तौर पर, दिखाते हैं कि प्रतिपक्ष सं. 3 लगभग पाँच महीने तक चुप रही और जब धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत पुनरीक्षणकर्ता की अर्जी खारिज कर दी गई और इस न्यायालय ने अस्वीकरण आदेश के खिलाफ आपराधिक पुनरीक्षण पर विचार किया, तो प्रतिपक्ष सं. 3 ने धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत एक प्रार्थना पत्र दाखिल की और उस प्रार्थना पत्र को मंजूरी दे दी गई और नतीजतन, पुलिस थाना पैलानी, ज़िला बांदा में एफआईआर सं. 0150/2024 के तहत एक एफआईआर दर्ज की गई।

25. इस न्यायालय के पास 03.07.2024 को बांदा के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास किए गए आदेश पर कोई टिप्पणी करने का कोई मौका नहीं है, जिसके तहत, प्रतिपक्ष सं. 3 की धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र को मंजूरी दे दी गई थी और एफआईआर दर्ज कर ली गई थी, लेकिन ऊपर बताए गए तथ्य, पहली नज़र में दिखाते हैं कि सब कुछ कानून के हिसाब से नहीं किया गया है।

26. अब यह न्यायालय इस मुद्दे पर विचार करने जा रहा है कि क्या पुनरीक्षणकर्ता की धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र की अन्तर्वस्तु किसी संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करता है या नहीं। पुनरीक्षणकर्ता की धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र के संबंधित प्रस्तर नीचे दिए गए हैं:

"2. यह कि प्रार्थी/वादी के बड़े भाई बीरेन्द्र सिंह पुत्र शिवनरायन सिंह के नाम प्रधान मंत्री आवास योजना के तहत कालोनी बनवाने हेतु एक लाख बीस हजार रुपये मिला था। प्रार्थी के परिवारिक चचेरा भाई विनोद सिंह और मेरी सगी बहन कृष्णा देवी ने प्रधान प्रतिनिधि संजय सिंह के कहने पर गुण्डई व दबंगई के दम पर अनर्गल तरीके से कालोनी की जमीन पर आधा हिस्सा बीरेन्द्र सिंह से माँग रहे थे।

3. यह कि प्रार्थी/चादी के बड़े भाई बीरेन्द्र सिंह से परिवारिक चचेरा भाई विनोद सिंह और सगी बहन कृष्णा देवी व प्रधान प्रतिनिधि संजय सिंह ने बीरेन्द्र सिंह को प्रधानमंत्री आवास का मिला आधा रूपया मु० 60,000/- उक्त तीनों लोग मांग रहे थे, लेकिन बीरेन्द्र सिंह ने कालोनी की जमीन का आधा हिस्सा व प्रधानमंत्री आवास का मिला आधा रूपया देने से इन्कार कर दिया।

4. यह कि तभी विनोद सिंह की बीरेन्द्र सिंह की घरौनी आबादी की जमीन गाटा संख्या 97 में प्रधान प्रतिनिधि संजय सिंह जो रिस्ते में विनोद सिंह का सगा भनेज दामाद ने अनर्गल (गलत) तरीके से नाम चढ़वा दिया। लेकिन जानकारी होने पर बीरेन्द्र सिंह ने एतराज किया, जिसका प्रार्थना पत्र साथ में संलग्न है।

5. यह कि उक्त तीनों विनोद सिंह और कृष्णा देवी व संजय सिंह ने बीरेन्द्र सिंह से कहा कि अभी 5-6 दिन का समय है, तुम्हारे पास कालोनी की आधी जमीन व कालोनी बनाने हेतु मिला आधा 60 हजार रुपया हमें दे दो नहीं तो तुम्हें हम लोग जान से मार देंगे।

6. यह कि उक्त तीनों (विनोद सिंह और कृष्णा देवी व प्रधान प्रतिनिधि संजय सिंह) ने योजना बनाकर योजनाबद्ध तरीके से मुझ प्रार्थी के बड़े भाई बीरेन्द्र सिंह व भाभी शान्ती देवी पत्नी बीरेन्द्र सिंह निवासी ग्राम लसडा थाना पैलानी जनपद बाँदा को दिनांक 06.11.2023 की रात में जहर खिलाकर मार / दिया है, जिनके पोस्टमार्टम की रिपोर्ट साथ में संलग्न है।

7. यह कि वादी के बड़े भाई बीरेन्द्र सिंह ने यह बातें करने के पूर्व दिनांक 02.11.2023 के पहले बताया था, इसलिये प्रार्थी को पूर्ण विश्वास हो गया है कि इन्होंने ने ही जहर खिलाकर प्रार्थी के बड़े भाई बीरेन्द्र सिंह को मार दिया।

8. यह कि प्रार्थी / वादी को दिनांक 07.11.2023 को सुबह लगभग 6 बजे हमारी बहन कृष्णा देवी ने अपने बचने के लिये कि मैं न फंसू इसलिये मेरे घर आकर बताया कि भैया बीरेन्द्र व भाभी शान्ती देवी खत्म हो गये हैं। प्रार्थी मौके पर गया और देखा तो दोनों खत्म हो चुके थे। पोस्टमार्टम रिपोर्ट बिसरा प्रिजर्व की विवेचना हेतु रिपोर्ट भेजी जा चुकी है।

9. यह कि प्रार्थी/वादी की बहन कृष्णा देवी और विनोद सिंह ने मृतक बीरेन्द्र सिंह का कालोनी बनवाने हेतु घर में रखा रुपया 35000/- व चाँदी की पायल एक जोड़ी वजन लगभग 100 ग्राम और कान के सुई धागा सोने के वजन लगभग 5 ग्राम व बीरेन्द्र / सिंह व उसकी पत्नी के मोबाइल व बैंक की पास बुक और आधार कार्ड व अन्य कागजात चोरी कर लूट कर ले गये।

10. यह कि मुझ प्रार्थी/वादी को उक्त तीनों लोगों ने (विनोद सिंह और कृष्णा देवी व प्रधान प्रतिनिधि संजय सिंह धमकी दिया है कि जैसे उन दोनों को जहर खिलाकर मार दिया है, उसी तरह तुम्हें भी जहर खिलाकर जान से मार देंगे अगर तुमने हमारे खिलाफ कानूनी कार्यवाही किया, क्योंकि प्रधान प्रतिनिधि थाने से लेकर उच्चाधिकारियों व राजनीति में पकड़ बनाये हुये हैं। तभी मौके पर खडे बृजविलाश व मनमोहन सिंह पुत्रगण सुरजपाल सिंह व गांव व पड़ोस के तमाम व्यक्तियों ने उक्त लोगों से विरोध करते हुए कहा कि तुम लोग गलत कर रहे हो।"

27. दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के तहत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दाखिल की गई प्रार्थना पत्र की ऊपर बताई गई बातें साफ तौर पर संज्ञेय अपराध के होने और विरेंद्र सिंह और उनकी पत्नी को जहर देकर मारने के प्रतिपक्ष सं. 2 से 4 के मकसद को दिखाती हैं। पुनरीक्षणकर्ता ने अपनी प्रार्थना पत्र के प्रस्तर सं. 10 में साफ तौर पर कहा था कि विनोद सिंह, कृष्णा देवी और संजय सिंह ने उन्हें यह कहकर धमकी दी है कि वे उन्हें भी जहर देकर मार देंगे, जैसा उन्होंने विरेंद्र सिंह और उनकी पत्नी के साथ किया था। एक बार जब यह न्यायालय पाता है कि संज्ञेय अपराध के होने की कहानी प्रार्थना पत्र में मकसद के साथ है और इसके अलावा प्रार्थी का

यह पक्का दावा है कि आरोपियों ने संजेय अपराध किया है, तो इसमें कोई शक नहीं रह जाता कि दं.प्र.सं. के धारा 156(3) के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र की बातें संजेय अपराध के होने का खुलासा करती हैं। विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा ने पुनरीक्षणकर्ता की दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र पर पुलिस रिपोर्ट मांगी और पैलानी, जिला बांदा के पुलिस थाना के थानाध्यक्ष ने यह पुलिस रिपोर्ट पेश की:

"सादर निवेदन है आवेदक श्री राजेन्द्र सिंह पुत्र शिवनारायन सिंह नि० लसडा थाना पैलानी जनपद बांदा के प्रा०पत्र की विवेचना मुझ उ०नि० द्वारा की गयी तो वाक्यात इस प्रकार पाये गये कि आवेदक राजेन्द्र सिंह उपरोक्त का भाई वीरेन्द्र सिंह व भाभी शान्ति देवी को प्रधानमंत्री आवास योजना के अन्तर्गत आवास लगभग 6 माह पूर्व मिला था, जिसकी दो किस्त क्रमशः 40 हजार, 70 हजार रुपये प्राप्त हो चुका है। कालोनी का दीवाल चारो तरफ खड़ी है। अभी छथ नहीं पड़ी है शेष 10 हजार रुपये मकान कम्पलीट होने के पश्चात मिलता है। मात्र वही धन शेष है। आवास का प्राप्त धन में से आधा पैसा ग्राम प्रधान प्रतिनिधि व विनोद सिंह के द्वारा माँगने की बात की जाँच से पुष्टि नहीं हुई तथा जेवर पैसा मकान से लेने व चुराने की बात असत्य है क्योंकि घटना के तत्काल बाद स्थानीय पुलिस दिनांक 07.11.2023 को पंचायतनामा की कार्यवाही हेतु मौके पर जाकर पंचायतनामा की कार्यवाही की गयी थी बाद पंचायतनामा, पोस्टमार्टम होने के उपरान्त दोनों मृतकों की पीएम रिपोर्ट में बिसरा प्रिजर्व किया गया है। पंचायतनामा की कार्यवाही मुझ उ०नि० द्वारा ही की गयी थी। घटनास्थल का निरीक्षण से पाया गया कि खुले खण्डहर कच्चा मकान के अन्दर प्लास्टिक पन्नी लगी हुई थी जिसके अन्दर दोनों मृतकों का शव पड़ा था मौके की विवेचना पडताल एवं निरीक्षण से वहां पर ऐसी कोई वस्तु का रखना या होना नहीं पाया गया था क्योंकि खुल्ला बिना दरवाजे का पूरा मकान था प्लास्टिक पन्नी के अन्दर चारपाई के नीचे टीन में थोड़ा सा आटा था। देखने से बहुत गरीब प्रतीत होते थे। उस वक्त वहां मौजूद लोगो द्वारा आर्थिक तंगी की बात बतायी गयी थी। गांव के लोगो का कहना था कि इनके कोई औलाद नहीं थी व आर्थिक तंगी आदि से परेशान होकर वीरेन्द्र की पत्नी शान्ति देवी ने जहर खा लिया था। जिसकी सूचना वीरेन्द्र सिंह ने रात में ही अपने आस पास एवं आवेदक राजेन्द्र को भी दिया लेकिन उस समय कोई उसे बचाने के लिए प्रयास नहीं किया जिससे शान्ति देवी का पति वीरेन्द्र भी निराश होकर हडबडाहट में स्वयं भी जहर खा लिया था। चूँकि आवेदक राजेन्द्र मृतक वीरेन्द्र व उसकी पत्नी शान्तिदेवी से अलग रहते थे। राजेन्द्र की शादी भी नहीं हुई है। आवेदक ने अपने भाई एवं बहन को बचाने का कुछ भी प्रयास नहीं किया था आवेदक की बहन कृष्णा देवी पुत्री शिवनारायन अपने मायके पिता के साथ रहती थी पिता की मृत्यु के पश्चात अपने भाई वीरेन्द्र के सानिध्य में रहती है। चूँकि कृष्णा की शादी के पश्चात ही पति का देहान्त हो गया था ऐसी स्थिति में वह अपने ससुराल नहीं जाती थी। मायके में ही बनी रहती थी। मृतक वीरेन्द्र की कोई औलाद न होने के कारण उसकी सम्पत्ति लगभग 9 बीघा जमीन व कृष्णा भी अपने जीवन यापन के लिए कुछ हिस्सा चाहती है। उक्त सम्पत्ति को आवेदक अपनी बहन कृष्णा को नहीं देना चाहता है। चूँकि आवेदक राजेन्द्र अपने भाग की लगभग पूरी जमीन बेच दिया है मात्र 2-3 बीघा बची है। अब आवेदक चाहता है कि मृतक भाई वीरेन्द्र की पूरी 9 बीघा जमीन मुझे अकेले प्राप्त हो जाये परन्तु इस बात से उसकी बहन कृष्णा संतुष्ट नहीं है और अन्य विपक्षीयता भी इस बात से सहमत नहीं है। आवेदक द्वारा गांवदारी के कारण मनगढ़न्त कहानी बनाकर विपक्षीयता पर असत्य आरोप

लगाकर प्राप्पत्र अन्तर्गत धारा 156(3) दं.प्र.सं. दिया गया है। जाँच से प्राप्पत्र में लगाये गये आरोपों की पुष्टि नहीं हुई है।"

28. थानाध्यक्ष, पुलिस थाना पैलानी, जिला बांदा द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त पुलिस रिपोर्ट में हालांकि यह कहा गया है कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल अपने प्रार्थना पत्र में लगाए गए आरोप साबित नहीं पाए गए हैं, लेकिन साथ ही, यह भी कहा गया है कि मृतक नौ बीघा कृषि भूमि का मालिक था और दोनों यानी पुनरीक्षणकर्ता और विपक्षी पक्ष संख्या 2 यानी श्रीमती कृष्णा देवी उस जमीन को अपने कब्जे में लेना चाहते थे। मामले में प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट की सामग्री से, विचाराधीन अपराध के किए जाने में श्रीमती कृष्णा देवी की मिलीभगत से इनकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उनका भी मकसद था।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ललिता कुमारी (पूर्वोक्त)** के मामले में दिए गए अपने संविधान पीठ के निर्णय में माना था कि एफ.आई.आर. का पंजीकरण अगर जानकारी से किसी संज्ञेय अपराध का पता चलता है, तो धारा 154 दं.प्र.सं. के तहत विवेचना करना ज़रूरी है और ऐसी स्थिति में कोई विवेचना की इजाज़त नहीं है। आगे यह भी माना गया है कि अगर मिली जानकारी से किसी संज्ञेय अपराध का पता नहीं चलता, लेकिन विवेचना की ज़रूरत का संकेत मिलता है, तो शुरुआती विवेचना सिर्फ़ यह पता लगाने के लिए की जा सकती है कि संज्ञेय अपराध का पता चला है या नहीं। त्वरित जानकारी के लिए, **ललिता कुमारी (पूर्वोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च के फ़ैसले का पैराग्राफ 120 नीचे दिया गया है:

"120. उपरोक्त चर्चा को देखते हुए, हम मानते हैं:

120.1. अगर जानकारी से किसी संज्ञेय अपराध का पता चलता है और ऐसी स्थिति में कोई शुरुआती विवेचना नहीं की जा सकती, तो संहिता की धारा 154 के तहत एफआईआर दर्ज करना ज़रूरी है।

120.2. अगर मिली जानकारी से किसी संज्ञेय अपराध का पता नहीं चलता, लेकिन सिर्फ़ शुरुआती विवेचना की ज़रूरत का पता चलता है, तो यह पता लगाने के लिए विवेचना की जा सकती है कि संज्ञेय अपराध का पता चला है या नहीं।

120.3. अगर विवेचना में किसी संज्ञेय अपराध के होने का पता चलता है, तो एफआईआर ज़रूर दर्ज की जानी चाहिए। ऐसे मामलों में जहां शुरुआती विवेचना परिवाद बंद करने पर खत्म होती है, ऐसे बंद करने की एंट्री की एक कॉपी तुरंत और एक हफ्ते के अंदर पहले बताने वाले को दी जानी चाहिए। इसमें परिवाद बंद करने और आगे कार्रवाई न करने के कारण संक्षेप में बताए जाने चाहिए।

120.4. अगर संज्ञेय अपराध का पता चलता है तो पुलिस अधिकारी अपराध दर्ज करने की अपनी ड्यूटी से बच नहीं सकता। अगर पुलिस अधिकारी को मिली जानकारी से किसी संज्ञेय अपराध का पता चलता है, तो जो अधिकारी एफआईआर दर्ज नहीं करते हैं, उनके खिलाफ कार्रवाई की जानी चाहिए।

120.5. शुरुआती विवेचना का मकसद मिली जानकारी की सच्चाई को वेरिफाई करना नहीं है, बल्कि सिर्फ़ यह पता लगाना है कि क्या जानकारी से कोई संज्ञेय अपराध पता चलता है।

120.6. किस तरह की और किन मामलों में शुरुआती विवेचना की जानी है, यह हर मामले के तथ्य और परिस्थितियां पर निर्भर करेगा। जिन मामलों में शुरुआती विवेचना की जा सकती है, उनकी श्रेणी नीचे दी गई है:

(a) शादी के झगड़े/पारिवारिक झगड़े

(b) वाणिज्यिक अपराध

(c) चिकित्सकीय उपेक्षा से जुड़े हुए के मामले

(d) भ्रष्टाचार से जुड़े हुए मामले

(e) ऐसे मामले जहाँ आपराधिक वाद शुरू करने में बहुत ज्यादा देरी/लापरवाही होती है, जैसे, देरी का कारण ठीक से बताए बिना मामले की रिपोर्ट करने में 3 महीने से ज्यादा की देरी। ऊपर बताई गई बातें सिर्फ उदाहरण हैं और उन सभी शर्तों को पूरा नहीं करतीं जिनके लिए शुरुआती विवेचना की ज़रूरत हो सकती है।

120.7. आरोपी और परिवाद करने वाले के अधिकारों को सुनिश्चित करते हुए और उनकी रक्षा करते हुए, शुरुआती विवेचना समय पर होनी चाहिए और किसी भी हालत में यह आम तौर पर पंद्रह दिन से ज्यादा नहीं होनी चाहिए और खास मामलों में, सही कारण बताकर छह हफ्ते का समय दिया जाता है। ऐसी देरी की बात और उसके कारण जनरल डायरी एंट्री में दिखाए जाने चाहिए।

120.8. क्योंकि जनरल डायरी/स्टेशन डायरी/डेली डायरी पुलिस थाना में मिली सभी जानकारी का अभिलेख होती है, इसलिए हम निर्देश देते हैं कि संज्ञेय अपराधों से जुड़ी सभी जानकारी, चाहे उससे एफआईआर दर्ज हो या विवेचना हो, ज़रूरी तौर पर और ध्यान से उस डायरी में दिखाई जानी चाहिए और शुरुआती विवेचना करने का फैसला भी, जैसा कि ऊपर बताया गया है, उसमें दिखना चाहिए।”

30. इस न्यायालय ने पाया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने ललिता कुमारी (पूर्वोक्त) के वाद में दिए अपने निर्णय में दो श्रेणी बनाई थीं; पहली, जहां जानकारी का तथ्य संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करता है और दूसरी, जहां तथ्य, साफ शब्दों में, संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा नहीं करता, लेकिन विवेचना की ज़रूरत बताता है। पहले दृष्टिकोण में, किसी भी शुरुआती विवेचना की ज़रूरत नहीं है और एफआईआर का पंजीकरण ज़रूरी है, लेकिन दूसरे दृष्टिकोण में, पुलिस द्वारा शुरुआती विवेचना का निर्देश दिया जा सकता है।

31. अब इस वाद के तथ्य को देखने पर, यह बिल्कुल साफ है कि धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दाखिल की गई प्रार्थना पत्र का तथ्य साफ तौर पर संज्ञेय अपराध का होना दिखाता है, इसलिए, ललिता कुमारी (पूर्वोक्त) के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को देखते हुए, न्यायालय को पुलिस रिपोर्ट मांगने की कोई ज़रूरत नहीं थी। पुनरीक्षणकर्ता के मामले में, हालांकि पुलिस रिपोर्ट में यह कहा गया था कि धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल की गई उनकी प्रार्थना पत्र में लगाए गए आरोप साबित नहीं हुए हैं, लेकिन साथ ही, अपोज़िट पार्टी सं. 3 के साथ अपराध करने के मकसद को खारिज नहीं किया गया है।

32. वाद के दिए गए तथ्य और परिस्थितियों को देखते हुए, इस न्यायालय का मानना है कि विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा को पुलिस रिपोर्ट को सच नहीं मानना चाहिए था, क्योंकि धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र के तथ्य से एक संज्ञेय अपराध का खुलासा होता है। इसलिए, न्यायालय ने, पुनरीक्षणकर्ता की धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल की गई प्रार्थना पत्र को खारिज करते हुए, कानून की साफ गलती की थी।

33. अब यह न्यायालय इस मामले से जुड़े दूसरे मुद्दे पर विचार करने जा रहा है, कि क्या उसी घटना के लिए दूसरी एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दिया जा सकता है। इस न्यायालय का मानना है कि उसी घटना के लिए दूसरी एफआईआर दर्ज करने के संबंध में कानून, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नीचे दिए गए फैसलों की एक श्रृंखला में साफ किया गया था:

34. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने टी.टी. एंटनी (पूर्वोक्त) के मामले में दिए गए अपने निर्णय में कहा था कि किसी संज्ञेय अपराध के होने के बारे में सिर्फ पहली जानकारी ही धारा 154 दं.प्र.सं. की आवश्यक तत्वों को पूरा करती है। इसलिए, उस जानकारी को एफआईआर के तौर पर दर्ज किया जाना चाहिए और उसी संज्ञेय अपराध या उसी घटना या एक या ज्यादा संज्ञेय अपराधों को जन्म देने वाली घटना के बारे में बाद की जानकारी पर दूसरी एफआईआर नहीं हो सकती है। आसानी से देखने के लिए, टी.टी. एंटनी (पूर्वोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के प्रस्तर सं. 18 और 19 नीचे दिए गए हैं:

“18. धारा 154 दं.प्र.सं. के उपधारा (1) के तहत दी गई जानकारी को आमतौर पर प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) के नाम से जाना जाता है, हालांकि इस शब्द का प्रयोग संहिता में नहीं किया गया है। यह एक बहुत ज़रूरी प्रपत्र है। और जैसा कि इसके निकनेम से पता चलता है, यह किसी संज्ञेय अपराध की सबसे पहली जानकारी होती है जिसे पुलिस थाने के थाना प्रभारी द्वारा दर्ज किया जाता है। यह आपराधिक कानून को शुरू करता है और विवेचना की शुरुआत को इंगित करता है, जो धारा 169 या 170 दं.प्र.सं., जैसा भी मामला हो, के तहत राय बनाने और धारा 173 दं.प्र.सं. के तहत पुलिस रिपोर्ट भेजने के साथ समाप्त होती है। यह प्रबल संभावना है और ऐसा अक्सर नहीं होता है कि एक पुलिस थाने के थाना प्रभारी को एक ही घटना के बारे में एक या एक से ज्यादा संज्ञेय अपराध से जुड़ी एक से ज्यादा सूचना दी जाती हैं। ऐसे मामले में उसे उन सभी को थाना परिसर डायरी में एंटर करने की ज़रूरत नहीं है और यह धारा 154 दं.प्र.सं. में इंप्लाइड है। फोन कॉल या क्रिप्टिक टेलीग्राम से कोई अस्पष्ट जानकारी मिलने पर, इस मकसद के लिए रखी गई थाना की डायरी में सबसे पहले जो जानकारी किसी पुलिस थाना के थाना प्रभारीद्वारा दर्ज की जाती है, वह प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) होती है, जिसे दं.प्र.सं. की धारा 154 के तहत माना जाता है। संज्ञेय अपराध की विवेचना शुरू होने के बाद, एफआईआर में बताए गए तथ्यों से पता चली और पुलिस अधिकारी द्वारा थाना की डायरी में दर्ज की गई, या विवेचना के दौरान उनके ध्यान में आने वाले दूसरे संज्ञेय अपराध की जानकारी, जुबानी या लिखकर दी गई बाकी सभी जानकारी, दं.प्र.सं. की धारा 162 के तहत आने वाले बयान होंगे। ऐसी किसी भी जानकारी/बयान को ठीक से एफआईआर नहीं माना जा सकता और उसे दोबारा थाना डायरी में दर्ज नहीं किया जा सकता,

क्योंकि यह असल में दूसरी एफआईआर होगी और यह दं.प्र.सं. की योजना के मुताबिक नहीं हो सकती है। एक ऐसा मामला लें जहां एफआईआर में भा.दं.सं. की धारा 307 या 326 के तहत संज्ञेय अपराध का जिक्र है और विवेचना एजेंसी को विवेचना के दौरान पता चलता है या नई जानकारी मिलती है कि पीड़ित की मौत हो गई है, तो भा.दं.सं. की धारा 302 के तहत कोई नई एफआईआर दर्ज करने की ज़रूरत नहीं है, जो ठीक नहीं होगा; ऐसे मामले में पहली एफआईआर में कानून के प्रावधान में बदलाव करना सही तरीका है। आइए एक अलग परिस्थिति पर विचार करें जिसमें (एच) अपनी पत्नी (डब्ल्यू) को मारने के बाद पुलिस को बताता है कि उसे किसी अनजान व्यक्ति ने मारा है या यह जानते हुए कि (डब्ल्यू) को उसकी माँ या बहन ने मारा है, एच ज़िम्मेदारी लेता है और विवेचना के दौरान सच्चाई का पता चलता है; इसके लिए (एच) - असली अपराधी - के खिलाफ नई एफआईआर करने करने की ज़रूरत नहीं है, जिसे रिपोर्ट में धारा 173(2) या 173(8) दं.प्र.सं. के तहत, जैसा भी मामला हो, आरोपित किया जा सकता है। बेशक, विवेचना अधिकारी के लिए संबंधित मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट भेजना उचित है, इससे पहले भी कि जिस व्यक्ति पर आरोपी होने का शक है, उसके खिलाफ विवेचना की जा रही है।

19. दं.प्र.सं. की योजना यह है कि किसी पुलिस थाने के प्रभारी को, किसी संज्ञेय अपराध के होने का पता चलने पर, एफआईआर दर्ज होने के आधार पर दं.प्र.सं. के धारा 156 या 157 के अनुसार विवेचना शुरू करनी होती है। विवेचना पूरी होने और इकट्ठा किए गए सबूतों के आधार पर, उसे दं.प्र.सं. के धारा 169 या 170 के तहत, जैसा भी मामला हो, एक राय बनानी होती है, और दं.प्र.सं. के धारा 173(2) के तहत संबंधित मजिस्ट्रेट को अपनी रिपोर्ट भेजनी होती है। हालांकि, ऐसी रिपोर्ट दाखिल करने के बाद भी, अगर उसके पास और जानकारी या सामाग्री आती है, तो उसे नई एफआईआर पंजीकृत करने की ज़रूरत नहीं है; उसे आम तौर पर न्यायालय की इजाज़त से आगे विवेचना करने का अधिकार है, और जहां आगे विवेचना के दौरान उसे और साक्ष्य, चाहे वो मौखिक हों या दस्तावेजी, मिलते हैं, तो उसे उन्हें एक या ज़्यादा और रिपोर्ट के साथ भेजना ज़रूरी है; दं.प्र.सं. के धारा 173 के उपधारा (8) का यही मतलब है।

35. बाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन जजों की पीठ ने टी.टी. एंटनी (पूर्वोक्त) वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार किया था, जो उपकार सिंह (पूर्वोक्त) वाद में दिया गया था। और यह माना गया था कि जहां, सूचनाकर्ता पहली एफआईआर के सूचनाकर्ता से अलग व्यक्ति है, घटना का कथानक अलग है और आरोपी अलग हैं, तो उसी घटना के संबंध में दूसरी एफआईआर पुलिस द्वारा पंजीकृत कर उसकी विवेचना की जा सकती है। तुरंत जानकारी के लिए, उपकार सिंह (पूर्वोक्त) वाद में दिए गए निर्णय के संबंधित पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

“1. इस अपील में अनुमति प्रदान करते समय इस न्यायालय को टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य [(2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रिमिनल) 1048] के मामले में इस न्यायालय के फैसले के सही होने पर शक था, इसलिए इस मामले को एक बड़ी पीठ द्वारा सुनवाई के लिए भारत के माननीय चीफ जस्टिस को भेज दिया गया, इन परिस्थिति में यह अपील अब अन्तिम निपटारे और टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य

[(2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रिमिनल) 1048] के मामले में बताए गए कानून के सही होने पर विचार करने के लिए हमारे सामने है।

16. ऊपर दिए गए फ़ैसले को ध्यान से पढ़ने के बाद, हमें नहीं लगता कि इस न्यायालय ने टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य [(2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रिमिनल) 1048] ने किसी पीड़ित व्यक्ति को इस मामले की तरह प्रति-वाद दाखिल करने से रोक दिया है। यह इस न्यायालय द्वारा ऊपर बताए गए मामले टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य [(2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रिमिनल) 1048] के निर्णय के पैरा 27 में की गई टिप्पणियों से साफ है, जिसमें दं.प्र.सं. की धाराओं 154, 156 और 173(2) के दायरे पर चर्चा करते हुए, न्यायालय ने यह कहा था: (एससीसी पेज 200) “हमारे विचार में, दूसरी या लगातार एफआईआर के आधार पर नई विवेचना का मामला, जो प्रति-वाद नहीं है, उसी या उससे जुड़े संज्ञेय अपराध के संबंध में दाखिल किया गया है, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह उसी संव्यवहार के दौरान किया गया था और जिसके संबंध में पहली एफआईआर के अनुसार या तो विवेचना चल रही है या धारा 173(2) के तहत अन्तिम रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को भेज दी गई है, इस बात की संभावना हो सकती है कि दं.प्र.सं. की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए एक उचित मामला हो।” (ज़ोर दिया गया)

17. ऊपर दिए गए उद्धरण में जिन शब्दों पर ज़ोर दिया गया है, उनसे यह साफ है कि इस न्यायालय ने टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य [(2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रिमिनल) 1048] के मामले में प्रति-वाद के तौर पर परिवाद दर्ज करने को संहिता के दायरे से बाहर नहीं रखा है। हमारी राय में, इस न्यायालय ने उस मामले में सिर्फ यह माना था कि वाद दर्ज होने के बाद, उसी परिवादकर्ता या दूसरों द्वारा उसी आरोपी के खिलाफ कोई और परिवाद करना, संहिता के तहत मना है क्योंकि इस बारे में विवेचना पहले ही शुरू हो चुकी होगी और उसी आरोपी के खिलाफ आगे की परिवाद, मूल परिवाद में बताए गए तथ्यों में सुधार होगी, इसलिए संहिता के धारा 162 के तहत वर्जित होगी। हमारी राय में, इस न्यायालय द्वारा पाई गई यह रोक, पहली परिवाद में आरोपी द्वारा या उसकी ओर से उस घटना का अलग कथानक पेश करने पर लागू नहीं होती है।

18. इस न्यायालय ने कारी चौधरी बनाम सीता देवी [(2002) 1 एससीसी 714: 2002 एससीसी (क्रि) 269] में कानून के इस पहलू पर चर्चा करते हुए कहा था: (एससीसी पृष्ठ 717, पैरा 11)

“11. विद्वान अधिवक्ता ने एक और दलील दी कि एक बार एफआईआर सं. 135 के तहत शुरू हुई कार्रवाई अन्तिम रिपोर्ट के साथ खत्म हो गई, तो पुलिस को दूसरी एफआईआर दर्ज करने और उसे एफआईआर सं. 208 के तौर पर नामित करने का कोई अधिकार नहीं था। बेशक, कानूनी स्थिति यह है कि एक ही मामले में एक ही आरोपी के खिलाफ दो एफआईआर नहीं हो सकती हैं। लेकिन जब एक ही घटना के बारे में अलग-अलग कथानक होते हैं, तो वे आम तौर पर दो अलग-अलग एफआईआर का रूप ले लेते हैं और एक ही विवेचना एजेंसी दोनों के तहत विवेचना कर सकती है। इसके अलावा, न्यायालय में जमा की गई रिपोर्ट, जिसे एफआईआर सं. 208/1998 बताया गया है, को पुलिस द्वारा विवेचना के दौरान की गई नये तथ्य की खोज के बारे में न्यायालय में जमा की गई जानकारी के तौर पर माना जाना चाहिए कि एफआईआर सं. 135 में जिन लोगों का नाम नहीं है, वे असली दोषी हैं। सिर्फ इस आधार पर कि एफआईआर सं. 135 में अन्तिम रिपोर्ट लगा दी गई थी, उस कार्रवाई को रद्द करना, कम से कम कहे तो, बहुत टेक्निकल है। हर विवेचना का आखिरी मकसद यह

पता लगाना है कि क्या जिन अपराधों का आरोप लगाया गया है, वे सही हैं, किया गया है और, अगर किया है, तो किसने किया है।”
(ज़ोर दिया गया)

19. बिहार राज्य बनाम जे.ए.सी. सलदान्हा [(1980) 1 एससीसी 554 : 1980 एससीसी (क्रिमिनल) 272 : एआईआर 1980 SC 326] में, इस न्यायालय ने पुलिस अधिनियम के धारा 3 और संहिता के धारा 173(8) पर विचार करते हुए कहा: (एससीसी पेज 568, पैरा 19)

“19. धारा 156(3) के तहत मजिस्ट्रेट को आगे की विवेचना का निर्देश देने की शक्ति साफ तौर पर एक स्वतंत्र शक्ति है और यह राज्य सरकार की शक्ति के साथ टकराव में नहीं है, जैसा कि पहले बताया गया है। धारा 156(3) के तहत मजिस्ट्रेट को दी गई शक्ति का प्रयोग मजिस्ट्रेट विवेचना अधिकारी द्वारा रिपोर्ट जमा करने के बाद भी कर सकता है, जिसका मतलब है कि मजिस्ट्रेट के पास विवेचना अधिकारी के निष्कर्ष को न मानने और आगे की विवेचना का निर्देश देने का अधिकार होगा। यह प्रावधान किसी भी तरह से विवेचना अधिकारी की रिपोर्ट जमा करने के बाद भी मामले की आगे की विवेचना करने की शक्ति पर असर नहीं डालता है, जैसा कि धारा 173(8) में प्रावधान है। इसलिए, हाई न्यायालय यह मानने में गलत था कि अधिनियम के धारा 3 के तहत पुलिस अधीक्षक की शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार के पास मामले की आगे की विवेचना का निर्देश देने की शक्ति नहीं थी। इस निष्कर्ष पर पहुंचने में हमने धारा 156(2) में शामिल इस प्रावधान पर विचार नहीं किया है कि किसी पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी द्वारा की गई विवेचना, जिसमें पुलिस अधिकारी से उच्चतर रैंक का अधिकारी भी शामिल है, ऐसे अधिकारी से इस आधार पर सवाल नहीं किया जा सकता कि ऐसे विवेचना अधिकारी के पास विवेचना करने का अधिकार नहीं था; नहीं तो वह नियम प्रत्यर्थी 1 की ओर से उठाए गए तर्क का एक छोटा जवाब होता।

20. इससे साफ पता चलता है कि अगर संबंधित पुलिस ने प्रति-परिवाद दर्ज करने से मना कर दिया, तो मजिस्ट्रेट किसी भी स्तर पर पुलिस को उनके नोटिस में लाई गई परिवाद दर्ज करने और उसकी विवेचना करने का निर्देश दे सकते हैं।

21. ऊपर बताई गई बातों से यह साफ है कि किसी परिवाद से उत्पन्न परिवाद के मामले में भी, अगर आगे की विवेचना में यह पाया जाता है कि परिवाद में बताई गई साजिस से बड़ी साजिश थी, तो न्यायालय में पूर्व विवेचना, जिसके आखिर में दूसरी परिवाद हो, की इजाज़त है।

22. राम लाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली एडमिनिस्ट्रेशन) [(1979) 2 एससीसी 322 : 1979 एससीसी (क्रि0) 479] में इस न्यायालय के निर्णय को देखने से यह भी पता चलता है कि जिन मामलों में पहले से परिवाद दर्ज है, वहां भी प्रति-परिवाद की जा सकती है, लेकिन यह आगे कहता है कि जिन मामलों में पहली परिवाद दर्ज है और विवेचना शुरू हो गई है, वहां भी विवेचना के दौरान इकट्ठा की गई सामाग्री के आधार पर उसी परिवादी द्वारा आगे परिवाद दर्ज करना संभव है। बेशक, राम लाल नारंग वाद [(1979) 2 एससीसी 322 : 1979 एससीसी (क्रि0) 479] में बताए गए कानून के इस बड़े प्रस्थापना पर हमें इस मामले की मदद लेने ज़रूरत नहीं है। इतना कहना काफी है कि राम लाल नारंग वाद [(1979) 2 एससीसी 322 : 1979 एससीसी (क्रि0) 479] में हुई चर्चा उसी लाइन पर है जैसी कि कारी चौधरी [(2002) 1 एससीसी 714 : 2002 एससीसी

(क्रि0) 269] और बिहार राज्य बनाम जे.ए.सी. सलदान्हा [(1980) 1 एससीसी 554 : 1980 एससीसी (क्रि0) 272 : एआईआर 1980 एससी 326] के फैसलों में पाई गई है। हालाँकि, यह विचार किया जाना दिया जाना चाहिए कि टी.टी. एंटनी वाद [(2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (सीआरआइ) 1048], राम लाल नारंग वाद [(1979) 2 एससीसी 322: 1979 एससीसी (सीआरआइ) 479] पर ध्यान दिया गया था, लेकिन अदालत ने किसी भी तरह से कोई राय व्यक्त नहीं की।

23. जो भी हो, अगर इस न्यायालय ने टी.टी. एंटनी वाद [(2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रि0) 1048] में जो कानून बनाया है, उसे मान लिया जाए कि उसी घटना के बारे में प्रति-परिवाद के तौर पर दूसरा परिवाद करना संहिता के तहत वर्जित है, तो हमारी राय में, इसके के गंभीर परिणाम होंगे। यह नीचे दिए गए काल्पनिक उदाहरण से साफ हो जाएगा, यानी अगर असली आरोपी ने किसी अपराध के बारे में पहली बार में ही झूठी परिवाद दर्ज करा दी और उसे इलाके की पुलिस ने दर्ज कर लिया, तो ऐसे अपराध का पीड़ित व्यक्ति उस घटना के बारे में अपनी बात बताते हुए परिवाद दर्ज कराने से रोक दिया जाएगा, और इस तरह वह असली आरोपी को सजा दिलाने के अपने कानूनी अधिकार से वंचित हो जाएगा। यह इस संहिता का मकसद नहीं हो सकता है।

24. हम पहले ही देख चुके हैं कि टी.टी. एंटनी वाद [(2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रि0) 1048] में इस न्यायालय ने पीड़ित व्यक्ति के प्रति-परिवाद दाखिल करने के कानूनी अधिकार पर विचार नहीं किया था, इसके उलट, उस निर्णय में पाई गई बातों से यह साफ पता चलता है कि प्रति-परिवाद दाखिल करना उचित है।

36. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सुरेंद्र कौशिक (पूर्वोक्त) के मामले में दिए गए अपने निर्णय में कहा था कि उसी घटना के बारे में दूसरी एफआईआर तब दर्ज कर उसकी विवेचना की जा सकती है, जब पहली एफआईआर के सूचनाकर्ता से अलग किसी व्यक्ति ने किसी संज्ञेय अपराध के होने के बारे में जानकारी दी हो, घटना का कथानक पहली एफआईआर में दिए गए कथानक से अलग हो और आरोपी पहली एफआईआर में दिए गए आरोपी से अलग हों। आसानी से देखने के लिए, सुरेंद्र कौशिक (पूर्वोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के सुसंगत पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

“16. उपकार सिंह [उपकार सिंह बनाम वेदराक्षस, (2004) 13 एससीसी 292 : 2005 एससीसी (क्रि0) 211] में तीन जजों की पीठ टी.टी. एंटनी [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रि0) 1048] में बताए गए कानून के सही होने से जुड़े मुद्दे पर विचार कर रही थी। बड़ी पीठ ने इस बात पर विचार दिया कि इसमें पहले प्रत्यर्थी ने 20-5-1995 को सुबह 10.00 बजे गांव फहीमपुर कलां में सिखेरा पुलिस थाना में अपील करने वाले और कुछ दूसरे लोगों के खिलाफ कुछ आरोप लगाते हुए एक परिवाद दर्ज कराई थी। उस परिवाद के आधार पर, पुलिस ने भा.दं.सं. की धारा 452 और 307 के तहत मुकदमा दर्ज किया था। अपील करने वाले ने इस संबंध में परिवाद दर्ज कराई थी उसी घटना में प्रत्यर्थियों के खिलाफ, उनके और उनके परिवार के सदस्यों के खिलाफ भा.दं.सं. की धारा 506 और 307 के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप लगाया गया था। चूंकि संबंधित पुलिस ने उस परिवाद पर विचार नहीं दिया, इसलिए उन्होंने मजबूरी में,

न्यायिक मजिस्ट्रेट के सामने इस संहिता की धारा 156(3) के तहत एक याचिका दायर की, जिन्होंने पहली नज़र में मामला पाते हुए, संबंधित पुलिस थाना को उस परिवाद में आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ अभियोग दर्ज करने और उसकी विवेचना करके रिपोर्ट जमा करने का निर्देश दिया। उस निर्देश के आधार पर, धारा 147, 148, 149 और 307 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय अपराधों के लिए क्राइम सं. 48-A/1995 दर्ज किया गया था।

17. मजिस्ट्रेट के निर्देश को चुनौती देते हुए, विद्वान सेशन जज के समक्ष एक पुनरीक्षण पेश किया गया, जिन्होंने उक्त निर्देश को रद्द कर दिया। विद्वान सेशन जज द्वारा पारित आदेश से असंतुष्ट होकर, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष एक आपराधिक विविध याचिका दायर की गई और उच्च न्यायालय ने राम मोहन गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1990) 27 ऑल में अपने पहले के निर्णय का पालन करते हुए पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। इस मुद्दे से निपटने के दौरान, इस न्यायालय ने टी.टी. एंटनी [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रि) 1048] और नोट किया कि इसे कैसे समझा गया था: (उपकार सिंह वाद [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292 : 2005 एससीसी (क्रि) 211], एससीसी पेज 296, पैरा 11)

“11. टी.टी. एंटनी [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रि) 1048] में सर्वोच्च न्यायालय के इस टिप्पणी को प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने ऐसी संहिता के तौर पर समझा है जो एक ही घटना से पैदा होने वाली दूसरी परिवाद दाखिल करने पर रोक लगाता है। यह उसी आधार पर है और टी.टी. एंटनी वाद में दिए गए निर्णय की मदद लेते हुए है। [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048] हमारे सामने यह तर्क दिया गया है कि एक बार एक पक्षकार की परिवाद पर एफआईआर दर्ज होने के बाद प्रति-परिवाद के तौर पर दूसरी एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकती और उस दूसरी परिवाद के आधार पर कोई विवेचना नहीं की जा सकती है।”

18. ऐसा अवलोकन करने के बाद, न्यायालय ने माना कि टी.टी. एंटनी [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048] का फैसला वास्तव में कानून का ऐसा प्रस्ताव निर्धारित नहीं करता है जैसा कि प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इसमें समझा है। पीठ ने टी.टी. एंटनी [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048] और इस प्रकार समझाया: (उपकार सिंह वाद [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292: 2005 एससीसी (क्रि) 211], एससीसी पृष्ठ 297, पैरा 16) “16. उपरोक्त निर्णय को ध्यानपूर्वक पढ़ने के बाद, हमें नहीं लगता कि इस न्यायालय ने टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048] में एक पीड़ित व्यक्ति को वर्तमान मामले की तरह प्रति-परिवाद दायर करने से रोक रखा है।”

इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, उपकार सिंह मामले में पीठ ने [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292: 2005 एससीसी (क्रि) 211] टी.टी. एंटनी [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048] का जिक्र किया है जिसमें निम्नानुसार कहा गया है कि: (उपकार सिंह मामला [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292: 2005 एससीसी (क्रि) 211], एससीसी पृष्ठ 297, अनुच्छेद 16)

“16.... ‘27.... दूसरी या लगातार एफआईआर के आधार पर नई विवेचना का मामला, जो एक ही या संबंधित संज्ञेय अपराध के संबंध में दायर किया गया है, जो कथित तौर पर एक ही संव्यवहार के दौरान किया गया है और जिसके संबंध में पहली एफआईआर के अनुसार या तो विवेचना चल रही है या धारा 173 (2) के तहत अंतिम रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को भेज दी गई है, धारा 482 [संहिता की] या संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त मामला हो सकता है (टी.टी. एंटनी वाद [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048], एससीसी पृष्ठ 200)” (जोर दिया गया है)

इसके बाद, तीन जजों की पीठ [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292 : 2005 एससीसी (क्रि0) 211] ने यह फैसला सुनाया: (उपकार सिंह वाद [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292 : 2005 एससीसी (क्रि0) 211], एससीसी पेज 297-98, पैरा 17)

“17.... हमारी राय में, इस न्यायालय ने उस वाद में सिर्फ यह माना कि परिवाद दर्ज होने के बाद, उसी परिवादकर्ता या दूसरों द्वारा उसी आरोपी के खिलाफ कोई और परिवाद करना, संहिता के तहत वर्जित है क्योंकि इस बारे में विवेचना पहले ही शुरू हो चुकी होगी और उसी आरोपी के खिलाफ आगे की परिवाद, मूल परिवाद में बताए गए तथ्य में सुधार के बराबर होगा, इसलिए संहिता की धारा 162 के तहत वर्जित होगी। हमारी राय में, इस न्यायालय द्वारा देखी गई यह रोक, यह नियम पहली परिवाद में आरोपी की तरफ से की गई जवाबी परिवाद या उसकी तरफ से कही गई घटना का अलग कथानक बताने पर लागू नहीं होगा।

19. ध्यान रहे, उपकार सिंह वाद [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292 : 2005 एससीसी (क्रि0) 211] में दिए गए निर्णय में कारी चौधरी बनाम सीता देवी [कारी चौधरी बनाम सीता देवी, (2002) 1 एससीसी 714 : 2002 एससीसी (क्रि) 269] का जिक्र किया गया था, जिसमें निम्नवत राय व्यक्त की गई थी: (उपकार सिंह वाद [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292 : 2005 एससीसी (क्रि) 211], एससीसी पेज 298, पैरा 18)

“18.... ‘11.... एक ही वाद में एक ही आरोपी के खिलाफ दो एफआईआर नहीं दर्ज हो सकती हैं। लेकिन जब एक ही घटना के बारे में अलग-अलग कथानक होते हैं, तो वे आम तौर पर दो अलग-अलग एफआईआर का रूप लेते हैं और एक ही विवेचना एजेंसी दोनों के तहत विवेचना कर सकती है।’ (कारी चौधरी वाद [कारी चौधरी बनाम सीता देवी, (2002) 1 एससीसी 714 : 2002 एससीसी (क्रि0) 269], एससीसी पेज 717, पैरा 11)” (जोर दिया गया) बिहार राज्य बनाम जेएसीमें दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया गया था। सलदान्हा [(1980) 1 एससीसी 554 : 1980 एससीसी (क्रि0) 272] जिसमें यह बताया गया है कि संहिता की धारा 156(3) के तहत मजिस्ट्रेट की आगे की विवेचना का निर्देश देने की शक्ति साफ तौर पर एक स्वतंत्र शक्ति है और पुलिस अधिनियम की धारा 3 के तहत बताई गई राज्य सरकार की शक्ति के विरोध में नहीं है।

20. यह ध्यान देने वाली बात है कि न्यायालय ने राम लाल नारंग [राम लाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली एडमिनिस्ट्रेशन), (1979) 2 एससीसी 322 : 1979 एससीसी (क्रि0) 479] में उल्लिखित राय पर भी विचार किया और निम्नानुसार कहा: (उपकार सिंह वाद [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292 : 2005 एससीसी (क्रि0) 211], एससीसी पेज 299, पैरा 22)

22. **राम लाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) [राम लाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1979) 2 एससीसी 322 : 1979 एससीसी (क्रि0) 479]** में इस न्यायालय के निर्णय को देखने से यह भी पता चलता है कि जिन मामलों में पहले से परिवाद दर्ज है, वहां भी प्रति-परिवाद दर्ज की जा सकती है, लेकिन यह आगे बढ़कर यह भी मानता है कि जिन मामलों में पहली परिवाद दर्ज की गई है और विवेचना शुरू हो गई है, वहां भी विवेचना के दौरान इकट्ठा की गई जानकारी के आधार पर उसी परिवादकर्ता द्वारा आगे की परिवाद दर्ज करना संभव है। बेशक, राम लाल नारंग वाद [राम लाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1979) 2 एससीसी 322 : 1979 एससीसी (क्रि0) 479] में बताए गए कानून के इस बड़े प्रस्ताव पर हमें इस मामले में मदद लेने की ज़रूरत नहीं है। इतना कहना काफी है कि राम लाल नारंग वाद में हुई चर्चा नारंग वाद [राम लाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1979) 2 एससीसी 322: 1979 एससीसी (क्रि) 479] उसी पंक्ति में है जैसा कि कारी चौधरी [कारि चौधरी बनाम सीता देवी, (2002) 1 एससीसी 714: 2002 एससीसी (क्रि) 269] और बिहार राज्य बनाम जे.ए.सी. सलदान्हा [(1980) 1 एससीसी 554: 1980 एससीसी (क्रि) 272] में दिए गए निर्णयों में पाया गया है। हालांकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि टी.टी. एंटनी वाद [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048], राम लाल नारंग वाद [राम लाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (1979) 2 एससीसी 322: 1979 एससीसी (सीआरआइ) 479] पर गौर किया गया लेकिन न्यायालय ने किसी भी तरफ कोई राय व्यक्त नहीं की। आगे बताते हुए, न्यायालय ने उपकार सिंह वाद [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292 : 2005 एससीसी (क्रि0) 211] में (पैरा 23 में) कहा कि अगर इस न्यायालय द्वारा टी.टी. एंटनी [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181 : 2001 एससीसी (क्रि0) 1048] में बनाए गए कानून को मान लिया जाए, जिसके अनुसार उसी घटना के संबंध में प्रति-परिवाद के तौर पर दूसरी परिवाद करना संहिता के तहत मना है, तो इसके गंभीर नतीजे होंगे क्योंकि असली आरोपी पहला मौका पाकर झूठी परिवाद दर्ज करा सकता है और उसे अधिकार क्षेत्र की पुलिस से दर्ज करवा सकता है और फिर इससे पीड़ित को परिवाद दर्ज कराने से रोका जा सकेगा।

21. **पांडुरंग चंद्रकांत म्हात्रे [पांडुरंग चंद्रकांत म्हात्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 10 एससीसी 773: (2010) 1 एससीसी (क्रि) 413]**, न्यायालय ने टी.टी. एंटनी [टी.टी. एंटनी बनाम केरल राज्य, (2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048], रमेश बाबूराव देवस्कर बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2007) 13 एससीसी 501: (2009) 1 एससीसी (क्रि) 212] और विक्रम बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2007) 12 एससीसी 332: (2008) 1 एससीसी (क्रि) 362] के मामले पर विचार करके राय दी कि एक संज्ञेय अपराध के होने के संबंध में प्रारंभिक सूचना को प्रथम सूचना रिपोर्ट माना जाना चाहिए और यह आपराधिक कानून को गति प्रदान करता है और उस आधार पर विवेचना शुरू होती है। हालांकि एफआईआर से घटनाओं का पूरा ब्यौरा होने की उम्मीद नहीं की जाती है, फिर भी पुलिस को दी गई जानकारी में, संहिता की धारा 154(1) के तहत एफआईआर होने के लिए, घटना की कुछ ज़रूरी और काम की जानकारी होनी चाहिए। किसी संज्ञेय अपराध के होने के बारे में एक गुप्त जानकारी, चाहे वह जानकारी कैसी भी हो और उसकी जानकारी की जानकारी कुछ भी हो, उसे एफआईआर नहीं माना जा सकता। ऐसा कहने के बाद, पीठ ने सवाल उठाया कि क्या पीडब्ल्यू 5 द्वारा दी गई जनरल डायरी में दर्ज घटना के बारे में जानकारी, संहिता की धारा 154 के तहत एफआईआर है और अगर ऐसा है, तो क्या यह संहिता की धारा 162 के तहत आएगी। यह ध्यान देने वाली बात है कि तथ्यों का विश्लेषण करते हुए, न्यायालय

ने यह राय दी कि स्थिति को नियंत्रित करने के लिए पुलिस को घटनास्थल पर जल्दी जाने के लिए दी गई जानकारी ज़रूरी नहीं कि एफआईआर ही हो।

22. बाबूभाई [बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य, (2010) 12 एससीसी 254 : (2011) 1 एससीसी (क्रि0) 336] में इस न्यायालय ने (पैरा 21 में), पहले के फैसलों को देखने के बाद, यह राय दी कि न्यायालय को दोनों एफआईआर को जन्म देने वाले तथ्य और परिस्थिति की विवेचना करनी होगी और यह पता लगाने के लिए एक जैसा होने का टेस्ट लागू करना होगा कि क्या दोनों एफआईआर एक ही घटना से जुड़ी हैं या उन घटनाओं के बारे में हैं जो एक ही संव्यवहार के दो या उससे ज़्यादा भाग हैं। अगर जवाब हाँ में है, तो दूसरी एफआईआर रद्द की जा सकती है। हालांकि, अगर इसके उलट साबित होता है, जहां दूसरी एफआईआर में कथानक अलग है और वे दो अलग-अलग घटनाओं/क्राइम के बारे में हैं, तो दूसरी एफआईआर की इजाज़त है। अगर पहली एफआईआर में आरोपी उसी घटना के बारे में अलग कथानक या प्रति-परिवाद के साथ सामने आता है, तो दोनों एफआईआर पर विवेचना की जानी चाहिए।

23. यह ध्यान देने वाली बात है कि बाबूभाई वाद [बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य, (2010) 12 एससीसी 254 : (2011) 1 एससीसी (क्रि0) 336] में, न्यायालय ने यह राय दी थी कि हाई न्यायालय इस नतीजे पर सही पहुँचा था कि दूसरी एफआईआर रद्द की जा सकती है क्योंकि दोनों एफआईआर में आरोप एक ही घटना से जुड़े थे जो एक ही जगह पर बहुत करीब से हुई थी और इसलिए, वे एक ही संव्यवहार के दो भाग थे।

24. ऊपर दिए गए फैसलों से यह साफ है कि एक ही घटना के लिए दो एफआईआर दर्ज करना उचित नहीं है। एक जैसा होने के सिद्धान्त को एक सीमित मतलब दिया गया है। इसमें एक ही या जुड़े हुए संज्ञेय अपराध से जुड़ी प्रति-परिवाद दर्ज करना शामिल नहीं है। संहिता के तहत वाद दर्ज होने के बाद उसी परिवाद करने वाले और दूसरों द्वारा उसी आरोपी के खिलाफ कोई और परिवाद करने पर रोक है, क्योंकि उस बारे में विवेचना पहले ही शुरू हो चुकी होगी और आगे परिवाद दर्ज करने की इजाज़त देने से असली परिवाद में बताए गए तथ्यों में सुधार होगा। जैसा कि उपकार सिंह [उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश, (2004) 13 एससीसी 292 : 2005 एससीसी (क्रि0) 211] में तीन जजों की पीठ ने और साफ किया है, यह रोक पहली एफआईआर में आरोपी द्वारा एक ही घटना के अलग-अलग कथानक का आरोप लगाने वाले आरोपों को आच्छादित नहीं करती है। इस तरह, एक ही घटना के बारे में अलग-अलग कथानक अलग-अलग रूप ले सकते हैं और उस स्थिति में, दो एफआईआर दर्ज करना सही है।

37. इस न्यायालय की खण्डपीठ ने 26.02.2020 को देवकली (पूर्वोक्त) मामले में दिए गए अपने निर्णय में कहा था कि जहां, घटना का अलग कथानक एक अलग परिवादकर्ता द्वारा अलग आरोपियों के सेट के साथ रिपोर्ट किया जाता है, तो उस कथानक की विवेचना करनी होगी और उस कथानक को उसी अपराध की दूसरी एफआईआर नहीं कहा जा सकता, इसलिए, दूसरे कथानक के आधार पर, दूसरी एफआईआर दर्ज करके विवेचना करनी होगी और आगे की पुलिस रिपोर्ट सक्षम न्यायालय के सामने दाखिल करनी होगी। आसानी से देखने के लिए, देवकली (पूर्वोक्त) मामले में दिए गए निर्णय के संबंधित पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

“हमने विरोधी दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख को ध्यान से पढ़ा है। मामले के असल पहलू पर बात करने से पहले, इस मुद्दे पर कानून पर ध्यान देना सही होगा।

उपकार सिंह के मामले (ऊपर) में, सर्वोच्च न्यायालय की तीन जजों की पीठ ने अपने निर्णय के पैराग्राफ 23, 24 और 25 में, जैसा कि बताया गया है, यह कहा था:-

"23. जो भी हो, अगर टी.टी. एंटनी के मामले में इस न्यायालय के बनाए कानून को मान लिया जाए कि उसी घटना के बारे में दूसरी परिवाद को प्रति-परिवाद के तौर पर दाखिल करना संहिता के तहत मना है, तो हमारी राय में, ऐसे नतीजे के गंभीर नतीजे होंगे। यह नीचे दिए गए काल्पनिक उदाहरण से साफ हो जाएगा, यानी अगर असली आरोपी ने किसी जुर्म के बारे में पहला मौका लेते हुए झूठी परिवाद दर्ज करा दी और उसे इलाके की पुलिस ने रजिस्टर कर लिया, तो ऐसे जुर्म का पीड़ित व्यक्ति उस घटना के बारे में अपनी बात बताते हुए परिवाद दर्ज कराने से रोक दिया जाएगा, और इसके बाद वह असली आरोपी को सज़ा दिलाने के अपने कानूनी अधिकार से वंचित हो जाएगा। यह संहिता का मकसद नहीं हो सकता।

24. हम पहले ही देख चुके हैं कि टी.टी. एंटनी के वाद में इस न्यायालय ने पीड़ित व्यक्ति के काउंटर क्लेम दाखिल करने के कानूनी अधिकार पर विचार नहीं किया, इसके उलट, उस निर्णय में मिली बातों से यह साफ पता चलता है कि प्रति-परिवाद दाखिल करने की इजाज़त है।

25. इस मामले में, 20 मई, 1995 को हुई घटना के बारे में यह देखा गया है कि अपील करने वाले और पहले रैस्पोंडेंट ने अलग-अलग बयान देते हुए अलग-अलग शिकायतें दर्ज कराई हैं, लेकिन रैस्पोंडेंट की परिवाद संबंधित पुलिस ने दर्ज कर ली थी, लेकिन अपील करने वाले की परिवाद दर्ज नहीं की गई थी, इसलिए उसकी प्रार्थना पर मजिस्ट्रेट का संबंधित पुलिस को वाद दर्ज करने और उसकी विवेचना करके रिपोर्ट देने का निर्देश देना सही था। हमारी राय में, अपर सत्र न्यायाधीश जज और हाई न्यायालय दोनों ने यह नतीजा निकालने में गलती की कि यह संहिता की धारा 161 या 162 के तहत आता है, जिसका, हमारी राय में, संबंधित सवाल से कोई लेना-देना नहीं है। संहिता की धारा 161 या 162 किसी वाद के रजिस्ट्रेशन के बारे में नहीं बताती है, यह सिर्फ विवेचना के दौरान पुलिस द्वारा दर्ज किए जाने वाले बयान और उसके सबूतों की वैल्यू के बारे में बताती है।

पी. श्रीकुमार के वाद (ऊपर) में, उपकार सिंह के वाद (ऊपर) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को देखने के बाद, पैराग्राफ 30, 31 और 32 में, जैसा कि बताया गया है, सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला सुनाया:-

"30. कानून के ऊपर बताए गए सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, जब हम इस मामले के तथ्यों की विवेचना करते हैं, तो हम पाते हैं कि अपील करने वाले द्वारा रैस्पोंडेंट सं. 3 के खिलाफ दाखिल की गई दूसरी एफआईआर, हालांकि उसी घटना से जुड़ी थी जिसके लिए रैस्पोंडेंट सं. 2 ने अपील करने वाले, रैस्पोंडेंट सं. 3 और तीन बैंक अधिकारियों के खिलाफ पहली एफआईआर दाखिल की थी, फिर भी दूसरी एफआईआर, रैस्पोंडेंट सं. 3 के खिलाफ एक काउंटर-परिवाद की तरह होने के कारण, कानूनी तौर पर मेंटेनेबल थी और इसकी मेरिट के आधार पर ट्रायल के लिए एंटरटेन की जा सकती थी।

31. दूसरे शब्दों में, कानून में दूसरी एफआईआर दाखिल करने पर कोई रोक नहीं है और एक बार दाखिल हो जाने के बाद, ऐसी एफआईआर पर ध्यान दिया जा सकता है और मेरिट के आधार पर ट्रायल किया जा सकता है। कानून।

32. इसकी वजह यह है कि पहली बात, दूसरी एफआईआर उसी व्यक्ति ने दाखिल नहीं की, जिसने पहली एफआईआर दाखिल की थी। अगर ऐसा होता, तो स्थिति कुछ अलग होती। यहां ऐसा नहीं था; दूसरी बात, यह

अपील करने वाले ने रेस्पॉण्डेंट सं. 3 के खिलाफ प्रति-परिवाद के तौर पर दाखिल की थी; तीसरी बात, पहली एफआईआर पांच लोगों के खिलाफ एक ही तरह के आरोपों पर आधारित थी, जबकि दूसरी एफआईआर पहली एफआईआर में लगाए गए आरोपों से अलग आरोपों पर आधारित थी; और आखिर में, हाई न्यायालय ने दूसरी एफआईआर/चार्जशीट रद्द करते समय इस न्यायालय के दो ऊपर बताए गए फैसलों में उपकार सिंह (ऊपर) और सुरेंद्र कौशिक (ऊपर) के मामलों में बताए गए कानून की रोशनी में मामले में उठने वाले मुद्दे की विवेचना नहीं की और सिर्फ इस न्यायालय के ऊपर बताए गए तीन फैसलों का हवाला दिया, जिनमें इस न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के तहत अंदरूनी शक्तियों के इस्तेमाल से जुड़े कानून के आम सिद्धांत तय किए हैं। ऊपर देखे गए निर्णयों से यह स्पष्ट है कि जहां घटना का एक अलग संस्करण एक अलग परिवादकर्ता द्वारा अलग-अलग आरोपियों के साथ रिपोर्ट किया जाता है, तो उक्त संस्करण की विवेचना करनी होगी और उक्त संस्करण को उसी अपराध की दूसरी प्रथम सूचना रिपोर्ट नहीं माना जा सकता है। इसके तार्किक परिणाम के रूप में, विवेचना के बाद अलग-अलग पुलिस रिपोर्ट भी प्रस्तुत करनी होगी, क्योंकि नकारात्मक रिपोर्ट की स्थिति में, सूचना देने वाले को विरोध याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार होगा। ऊपर देखी गई कानूनी स्थिति के मद्देनजर, यह पाया गया कि दो प्रथम सूचना रिपोर्ट, अर्थात्, वाद क्राइम सं. 78 ऑफ 2019 और 133 ऑफ 2019, ने घटना के अलग-अलग संस्करण दिए, जिसमें आरोपी व्यक्तियों का अलग-अलग समूह था, हमने अपने आदेश दिनांक 04.02.2020 द्वारा, विशेष रूप से विद्वान ए.जी.ए. की आवश्यकता थी। राज्य-प्रतिवादियों का एक डिटेल्ड एफिडेविट दाखिल करना, जिसमें यह बताया गया हो कि क्या उन गवाहों का बयान, जिन्होंने वाद क्राइम सं. 133/2019 में लिए गए बयान के सपोर्ट में घटना के बारे में बयान दिया है, उस वाद के सपोर्ट में गवाह के तौर पर अभिलेख किया गया था या उनका बयान उन आरोपियों के बयान के तौर पर अभिलेख किया गया था जो वाद क्राइम सं. 78/2019 में बताई गई घटना से वाकिफ थे। हमारे निर्देश के अनुसार, श्री राज कुमार त्रिपाठी, सर्कल ऑफिसर (सिटी), जिला सोनभद्र का एक कंप्लायंस एफिडेविट, तारीख 20.02.2020, आज दाखिल किया गया है।

कम्प्लायंस एफिडेविट के पैराग्राफ 4, 5 और 6 में यह कहा गया है:-

"4. जहां तक इस माननीय न्यायालय के सवाल का सवाल है कि क्या वाद क्राइम सं. 133 ऑफ 2019 में दिए गए बयान के सपोर्ट में घटना के बारे में जिन गवाहों के बयान दिए गए थे, उनके बयान प्रॉसिक्यूशन के गवाह के तौर पर अलग से अभिलेख किए गए थे या उनके बयान घटना से वाकिफ आरोपी व्यक्तियों के तौर पर अभिलेख किए गए थे, यह विनम्रतापूर्वक कहा जाता है कि निधि दत्त, देव दत्त, प्रमोद, ओम प्रकाश, अशर्फी, राकेश और धर्मेंद्र जैसे गवाहों के बयान वाद क्राइम सं. 133 ऑफ 2019 में दिए गए बयान के सपोर्ट में घटना के बारे में अलग से गवाह के तौर पर अभिलेख नहीं किए गए थे, हालांकि उनके बयान वाद क्राइम सं. 78 ऑफ 2019 की घटना से वाकिफ आरोपी व्यक्तियों के तौर पर अभिलेख किए गए हैं, जो 18.07.2019 के पर्चा/CD सं. 2 और 3 में साफ है। 5. कि जहां तक इस माननीय न्यायालय के इस सवाल का सवाल है कि क्या वाद क्राइम सं. 133 of 2019 में घटना के हिसाब से अलग साइट प्लान तैयार किया गया था या नहीं, तो यह विनम्रतापूर्वक कहा जाता है कि वाद क्राइम सं. 133 of 2019 की घटना के संबंध में कोई अलग साइट प्लान तैयार नहीं किया गया था, हालांकि, असल में, वाद क्राइम सं. 78 of 2019

में घटना के हिसाब से साइट प्लान 17.07.2019 को तैयार किया गया था, जो 17.07.2019 के पर्चा/CD-1 से साफ है। 6. यह विनम्रतापूर्वक कहा जाता है कि असल में, वाद क्राइम सं. 133 of 2019 के गवाहों के बयान अलग-अलग अभिलेख नहीं किए गए थे क्योंकि दोनों घटनाओं की तारीख, समय और जगह एक ही थी, जो वाद क्राइम सं. 133 of 2019 और वाद क्राइम सं. 78 of 2019 के तौर पर रजिस्टर्ड थीं। 2019, इसलिए, विवेचना ऑफिसर ने वाद क्राइम सं. 133 of 2019 में लिए गए कथानक के सपोर्ट में गवाहों के बयान अलग से अभिलेख नहीं किए हैं और वाद क्राइम सं. 133 of 2019 में घटना के कथानक के संबंध में कोई नक्शा नज़री अलग से तैयार नहीं किया गया है।" अनुपालन शपथपत्र में लिए गए स्टैंड से, यह साफ हो जाता है कि वाद क्राइम सं. 133 of 2019, पुलिस थाना घोरावल, जनपद सोनभद्र की एक स्वतंत्र वाद के तौर पर अलग से विवेचना नहीं की गई है।

क्योंकि वाद क्राइम सं. 133 of 2019 में घटना का एक अलग कथानक पेश किया गया है, जिसमें वाद क्राइम सं. 78 of 2019 में पेश किए गए कथानक से अलग आरोपियों का एक अलग ग्रुप है, इसलिए ऊपर बताई गई लीगल पोजीशन को देखते हुए, इसकी एक अलग वाद के तौर पर विवेचना होनी चाहिए थी।

ऊपर बताए गए कारणों से, पिटीशन सफल होती है और नीचे बताई गई हद तक मंजूर की जाती है। राज्य के प्रतिवादी 2 और 3, यानी पुलिस अधीक्षक और सर्किल अधिकारी (शहर), सोनभद्र यह पक्का करेंगे कि वाद क्राइम सं. 133/2019 की विवेचना एक अलग मामले के तौर पर की जाए और उस मामले में, कानून के मुताबिक, आज से तीन महीने के अंदर एक अलग पुलिस रिपोर्ट जमा की जाए।

38. माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय की डिवीज़न पीठ द्वारा बनाए गए ऊपर दिए गए कानून से यह पहले ही साफ हो गया था कि जहाँ, घटना का अलग कथानक एक अलग परिवादकर्ता द्वारा अलग आरोपियों के ग्रुप के साथ रिपोर्ट किया जाता है, तो उसी घटना के लिए दूसरी एफआईआर कानून के तहत मंजूर है।

39. अब माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा बनाए गए ऊपर दिए गए कानून को इस मामले के तथ्य और परिस्थिति में लागू करते हुए, यह साफ है कि एफआईआर सं. 0150/2024 में सूचनाकर्ता श्रीमती कृष्णा देवी हैं, जबकि पुनरीक्षणकर्ता ने न्यायालय में धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत एक और प्रार्थनापत्र दाखिल किया है। श्रीमती कृष्णा देवी द्वारा दाखिल की गई एफआईआर और पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत दाखिल की गई प्रार्थनापत्र में, घटना का कथानक बिल्कुल अलग है। श्रीमती कृष्णा देवी द्वारा दर्ज की गई एफआईआर में अपराध के आरोपी, दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के तहत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर प्रार्थनापत्र में आरोपियों से अलग हैं। इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए उपरोक्त कानून को देखते हुए, दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के तहत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर प्रार्थनापत्र के आधार पर एफआईआर दर्ज करने में कोई रोक/रुकावट नहीं है।

40. उपरोक्त बातों को देखते हुए, **अनुमति** प्रदान की जाती है। आपराधिक प्रकीर्ण वाद सं. 71/2024 (राजेंद्र सिंह बनाम विनोद सिंह और अन्य) में विद्वान विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित क्षेत्र एक्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा द्वारा पारित दिनांक 11.03.2024 का आक्षेपित आदेश, **अपास्त** किया जाता है।

41. विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित एरिया एक्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश जज, बांदा को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, धारा 156(3) दं.प्र.सं. के तहत पुनरीक्षणकर्ता के प्रार्थना पत्र पर नए सिरे से विचार करें और फैसला करें।

42. चूंकि, प्रतिपक्ष सं. 3 यानी श्रीमती कृष्णा देवी की एफआईआर पहले ही दर्ज हो चुकी है और विवेचना विवेचना रही है, इसलिए उम्मीद है कि विद्वान विशेष न्यायाधीश (डकैती प्रभावित एरिया एक्ट)/अपर सत्र न्यायाधीश, बांदा इस आदेश की प्रमाणित प्रति पेश करने की तारीख से एक महीने के अंदर धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के तहत पुनरीक्षणकर्ता के प्रार्थना पत्र पर सुनवाई करेंगे और फैसला करेंगे।

(2025) 3 ILRA 473

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष दिनांक: इलाहाबाद 04.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ल,

के समक्ष

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4747 वर्ष 2023

बलधीर

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिवादी

पुनरीक्षणकर्ता के वकील: अजय कुमार तिवारी, संगम लाल केशारवानी

प्रतिवादियों के वकील: सरकारी वकील

आपराधिक विधि – मादक पदार्थ एवं मनोरोगी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धारा 60(3) एवं 63(1) - वाहन की ज़बती - मुकदमे की समाप्ति की पूर्व शर्त - विशेष न्यायाधीश द्वारा रिहाई आवेदन खारिज करने और वाहन ज़ब्त करने के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण - धारा 8/21 एनडीपीएस अधिनियम के तहत अपराध के संबंध में ज़ब्त की गई इनोवा कार - मुकदमे की समाप्ति से पहले वाहन ज़ब्त - निर्णय: मुकदमे की समाप्ति और दोष सिद्ध होने से पहले ज़बती अनुचित है। एनडीपीएस अधिनियम की धारा 63(1) अनिवार्य करती है= कि ज़बती का आदेश केवल तभी दिया जा सकता है जब आरोपी को दोषी ठहराया गया हो, बरी किया गया हो या रिहा

किया गया हो। - ट्रायल कोर्ट ने रिहाई आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर विचार किए बिना यांत्रिक रूप से वाहन ज़ब्त करने में गलती की। - आदेश रद्द - पुनरीक्षण आवेदन स्वीकार किया गया। (पैरा 13 से 16, 18, 19 और 20)

निर्णय:

इस न्यायालय ने पाया कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 60 (3) के तहत ट्रायल कोर्ट को मादक पदार्थ या मनोरोगी पदार्थ ले जाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाहन को ज़ब्त करने का अधिकार दिया गया है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 63 में जब्ती की प्रक्रिया का प्रावधान है और इसमें यह कहा गया है कि किसी भी वस्तु की जब्ती एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 60 के तहत तब की जा सकती है जब आरोपी को दोषी ठहराया गया हो, बरी किया गया हो या रिहा किया गया हो। (पैरा 13)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम की उपरोक्त धारा 60(3) और 63(1) पर विचार किया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बिस्वजीत डे (उपरोक्त) मामले में अपने फैसले में स्पष्ट रूप से कहा था कि मादक पदार्थ या मनोरोगी पदार्थ ले जाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाहन को केवल मुकदमे की समाप्ति पर ही ज़ब्त किया जा सकता है, अर्थात् जब आरोपी को दोषी ठहराया जाता है, बरी किया जाता है या रिहा किया जाता है... (पैरा 14)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बिस्वजीत डे (उपरोक्त) मामले में निर्धारित कानून बहुत स्पष्ट है और यह प्रावधान करता है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 के तहत दंडनीय अपराधों के मामलों में, मादक पदार्थ या मनोरोगी पदार्थ ले जाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाहन को केवल मुकदमे की समाप्ति पर ही ज़ब्त किया जा सकता है। (पैरा 15)

इस मामले में शामिल दूसरे मुद्दे के संबंध में कि क्या एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 के तहत दंडनीय अपराध के आरोपी, जो अपराध में प्रयुक्त वाहन का मालिक है, मुकदमे के दौरान वाहन की रिहाई का दावा कर सकता है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बिस्वजीत डे (उपरोक्त) मामले में अपने फैसले में स्पष्ट रूप से कहा है कि सामान्यतः जहां आरोपी स्वयं वाहन का मालिक है, वहां उक्त वाहन उसके पक्ष में नहीं छोड़ा जाना चाहिए, लेकिन ट्रायल कोर्ट वाहन की रिहाई के मामले पर अपने गुण-दोष के आधार पर विचार करने और निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है क्योंकि कोई निश्चित सूत्र नहीं है... (पैरा 17)

इस न्यायालय का मानना है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बिस्वजीत डे (उपरोक्त) मामले में दिए गए अपने फैसले में विभिन्न परिस्थितियों का वर्गीकरण करते हुए यह माना है कि सामान्यतः जहां आरोपी स्वयं मादक पदार्थ या मनोरोगी पदार्थ ले जाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाहन का मालिक है, वहां निचली अदालत आरोपी के पक्ष में वाहन नहीं छोड़ सकती है। साथ ही, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा है कि फैसले में की गई चर्चा को एक कठोर सूत्र के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए और यदि मामले के तथ्य इसकी मांग

करते हैं तो निचली अदालत अलग दृष्टिकोण अपना सकती है। इस प्रकार, इस न्यायालय का मत है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी स्पष्ट रूप से कहा है कि जहां वाहन का मालिक स्वयं एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध का आरोपी है, वहां वाहन को छोड़ने के मामले का निर्णय निचली अदालत को अपने गुण-दोष के आधार पर करना चाहिए। (पैरा 18)

पुनरीक्षण आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

आपराधिक अपील संख्या 87/2025 (बिश्वजीत डे बनाम असम राज्य), विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 13370/2024 से उत्पन्न।

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ल, द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री संगम लाल केशरवानी और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता श्री बृजेंद्र प्रताप सिंह की दलीलें सुनी गईं।
2. यह आपराधिक पुनरीक्षण याचिका सहारनपुर न्यायालय संख्या 12 के विद्वान विशेष न्यायाधीश (एन.डी.पी.एस.)/अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा दिनांक 20.06.2023 को पारित निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा पंजीकरण संख्या HR78-3205 वाली अपनी इनोवा कार को छुड़ाने के लिए दायर आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था और वाहन को राज्य सरकार के पक्ष में जब्त कर लिया गया था।
3. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि याचिकाकर्ता पंजीकरण संख्या HR78-3205 वाली इनोवा कार का पंजीकृत मालिक है। याचिकाकर्ता जब उक्त वाहन में यात्रा कर रहा था, तब पुलिस ने उससे दस ग्राम स्मैक बरामद की। पुलिस ने पुलिस स्टेशन गंगोह, जिला सहारनपुर में एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 8/21 के तहत मामला संख्या 509/2021 दर्ज किया। जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ साक्ष्य एकत्र करने के बाद, एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 8/21 के तहत दंडनीय अपराध के संबंध में सक्षम न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल किया।
4. याचिकाकर्ता ने पंजीकरण संख्या HR78-3205 वाली उपरोक्त इनोवा कार को अपने पक्ष में छुड़ाने के लिए आवेदन किया। पुलिस ने वाहन को छुड़ाने के आवेदन पर यह कहते हुए आपत्ति जताई कि याचिकाकर्ता एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 के तहत दंडनीय अपराध करने का आदी है और उसने प्रतिबंधित पदार्थों की बिक्री से अर्जित धन से यह वाहन खरीदा था।

5. माननीय विशेष न्यायाधीश (एन.डी.पी.एस.)/अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 12, सहारनपुर ने 20.06.2023 को एक आदेश पारित किया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा वाहन को छुड़ाने के लिए दायर आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया और साथ ही उक्त वाहन को जब्त कर लिया गया।

6. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने यह तर्क दिया है कि मादक पदार्थ या मनोरोगी पदार्थ ले जा रहे वाहन को एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 60(3) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए जब्त किया जा सकता है, लेकिन उक्त शक्ति का प्रयोग एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 63(1) के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया जाना चाहिए। उन्होंने आगे यह भी तर्क दिया है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 63(1) स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करती है कि वाहन सहित किसी भी वस्तु को जब्त करने की शक्ति का प्रयोग केवल आरोपी के दोषी ठहराए जाने, बरी होने या रिहा होने के बाद ही किया जा सकता है, अर्थात् मुकदमे की समाप्ति पर ही। जबकि वर्तमान मामले में मुकदमा अभी समाप्त नहीं हुआ है, इसलिए निचली अदालत द्वारा संबंधित वाहन को जब्त करने का आदेश प्रथम दृष्टया अस्थिर है।

7. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 13370/2024 से संबंधित **आपराधिक अपील संख्या 87/2025 (बिस्वजीत डे बनाम असम राज्य)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा जताते हुए कहा है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 के तहत दंडनीय अपराध के संबंध में जब्त किए गए किसी भी वाहन को मुकदमे की समाप्ति के बाद ही जब्त किया जा सकता है, अर्थात् जब आरोपी को दोषी ठहराया जाता है, बरी किया जाता है या बरी कर दिया जाता है, जबकि याचिकाकर्ता के मामले में मुकदमा अभी तक समाप्त नहीं हुआ है, इसलिए निचली अदालत द्वारा संबंधित वाहन को जब्त करने का आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है।

8. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने यह भी तर्क दिया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बिस्वजीत डे** (उपरोक्त) मामले में दिए गए फैसले में स्पष्ट रूप से कहा है कि सामान्यतः, जहां आरोपी स्वयं मादक पदार्थ या मनोरोगी पदार्थ ले जाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाहन का मालिक है, वाहन को आरोपी मालिक के पक्ष में नहीं छोड़ा जा सकता है, लेकिन इस संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं है और इसलिए, निचली अदालत को वाहन को छोड़ने के लिए दायर आवेदन पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार करना होगा, जबकि वर्तमान मामले में, संबंधित वाहन को सीधे जब्त कर लिया गया था और याचिकाकर्ता द्वारा वाहन को छोड़ने के लिए दायर आवेदन पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया गया है।

9. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता ने इस पुनरीक्षण का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि पुनरीक्षणकर्ता स्वयं पंजीकरण संख्या HR78-3205 वाली इनोवा कार का स्वामी है और उसे उक्त वाहन में दस ग्राम स्मैक ले जाते हुए गिरफ्तार किया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि पुलिस ने निचली अदालत के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसमें यह दर्शाया गया था कि पुनरीक्षणकर्ता

एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 के तहत दंडनीय अपराध करने का आदी है और वास्तव में, विचाराधीन वाहन प्रतिबंधित पदार्थों की बिक्री से अर्जित धन से खरीदा गया था और उक्त वाहन का उपयोग एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 के तहत दंडनीय अपराध करने के लिए भी किया जा रहा था, इसलिए निचली अदालत ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 60(3) के तहत शक्ति का सही प्रयोग किया और इस प्रकार विचाराधीन वाहन को ज़ब्त कर लिया।

10. राज्य की ओर से पेश हुए विद्वान A.G.A. ने जोरदार बहस की है कि 20.06.2023 के विवादित आदेश में न तो कोई गैर-कानूनी बात है और न ही कोई कमी है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिवीजन याचिका इस कोर्ट द्वारा खारिज किए जाने योग्य है।

11. मैंने पार्टियों की ओर से पेश हुए विद्वान वकीलों की दलीलें सुनी हैं और रिवीजन का रिकॉर्ड देखा है।

12. मामले पर मेरिट के आधार पर विचार करने से पहले, नारकोटिक ड्रग या साइकोट्रॉपिक पदार्थ ले जाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाहन की ज़बती के संबंध में N.D.P.S. एक्ट, 1985 के तहत किए गए प्रावधानों पर एक नज़र डालना उचित होगा। आसान संदर्भ के लिए, N.D.P.S. एक्ट, 1985 की धारा 60 और धारा 63 नीचे दी गई हैं:

60. अवैध ड्रग्स, पदार्थों, पौधों, वस्तुओं और वाहनों की ज़बती की देयता।—

(1) जब भी इस अधिनियम के तहत दंडनीय कोई अपराध किया जाता है, तो वह नारकोटिक ड्रग, साइकोट्रॉपिक पदार्थ, नियंत्रित पदार्थ, अफीम पोस्ट, कोका पौधा, भांग का पौधा, सामग्री, उपकरण और बर्तन जिनके संबंध में या जिनके माध्यम से ऐसा अपराध किया गया है, उन्हें ज़ब्त किया जा सकता है।

(2) कोई भी मादक ड्रग या साइकोट्रॉपिक पदार्थ या नियंत्रित पदार्थ जो कानूनी रूप से उत्पादित, अंतर-राज्य आयात, अंतर-राज्य निर्यात, भारत में आयात, परिवहन, निर्मित, कब्जे में रखा गया, इस्तेमाल किया गया, खरीदा या बेचा गया हो, साथ ही, या इसके अलावा, कोई भी नारकोटिक ड्रग या साइकोट्रॉपिक पदार्थ या नियंत्रित पदार्थ जो उप-धारा के तहत ज़ब्त किए जाने योग्य है। (1) और ऐसे कंटेनर, पैकेज और कवर जिनमें कोई नारकोटिक ड्रग या साइकोट्रॉपिक पदार्थ या नियंत्रित पदार्थ, सामग्री, उपकरण या बर्तन पाए जाते हैं, जो उप-धारा (1) के तहत ज़ब्त किए जा सकते हैं, और ऐसे कंटेनर या पैकेज की अन्य सामग्री, यदि कोई हो, तो वह भी इसी तरह ज़ब्त की जा सकेगी।

(3) कोई भी जानवर या गाड़ी जिसका इस्तेमाल किसी नारकोटिक ड्रग या साइकोट्रॉपिक पदार्थ या कंट्रोल्ड सब्सटेंस, या उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के तहत ज़ब्त किए जाने लायक किसी भी चीज़ को ले जाने में किया गया हो, उसे ज़ब्त किया जा सकता है, जब तक कि जानवर या गाड़ी का मालिक यह साबित न कर दे कि उसका इस्तेमाल मालिक की जानकारी या मिलीभगत के बिना किया गया था, उसके एजेंट, यदि कोई हो,

और जानवर या गाड़ी के इंचार्ज व्यक्ति की जानकारी के बिना, और उन सभी ने ऐसे इस्तेमाल को रोकने के लिए सभी ज़रूरी सावधानियां बरती थीं।

63. ज़ब्त करने की प्रक्रिया.—(1) इस अधिनियम के तहत अपराधों के ट्रायल में, चाहे आरोपी दोषी ठहराया जाए, बरी किया जाए या आरोपमुक्त किया जाए, कोर्ट यह तय करेगा कि इस अधिनियम के तहत ज़ब्त की गई कोई वस्तु या चीज़ धारा 60 या धारा 61 या धारा 62 के तहत ज़ब्त किए जाने योग्य है या नहीं और, यदि वह यह तय करता है कि वस्तु ज़ब्त किए जाने योग्य है, तो वह तदनुसार ज़ब्त का आदेश दे सकता है। (2) जहाँ इस एक्ट के तहत ज़ब्त की गई कोई वस्तु या चीज़ सेक्शन 60 या सेक्शन 61 या सेक्शन 62 के तहत ज़ब्त किए जाने लायक लगती है, लेकिन जिस व्यक्ति ने उससे जुड़ा अपराध किया है, वह मालूम नहीं है या मिल नहीं रहा है, तो कोर्ट ऐसी ज़िम्मेदारी की जाँच कर सकता है और फैसला कर सकता है, और उसी के अनुसार ज़ब्त का आदेश दे सकता है:

बशर्ते कि किसी वस्तु या चीज़ को ज़ब्त करने का कोई आदेश, ज़ब्त की तारीख से एक महीने की अवधि समाप्त होने तक, या ऐसे किसी भी व्यक्ति को सुने बिना नहीं दिया जाएगा, जो उस पर किसी अधिकार का दावा करता है और उसके दावे के संबंध में जो भी सबूत वह पेश करता है:

बशर्ते कि यदि कोई ऐसा लेख या वस्तु, जो मादक दवा, साइकोट्रोपिक पदार्थ, नियंत्रित पदार्थ, अफीम पोस्त, कोका पौधा या भांग के पौधे के अलावा है, जल्दी और स्वाभाविक रूप से खराब होने वाली है, या यदि न्यायालय की राय है कि इसकी बिक्री इसके मालिक के लाभ के लिए होगी, तो वह किसी भी समय इसे बेचने का निर्देश दे सकता है; और इस उप-धारा के प्रावधान, जहाँ तक संभव हो, बिक्री से प्राप्त शुद्ध आय पर लागू होंगे।

13. यह कोर्ट पाता है कि एन.डी.पी.एस. एक्ट, 1985 की धारा 60 (3) ट्रायल कोर्ट को नशीली दवा या साइकोट्रोपिक पदार्थ ले जाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाहन को ज़ब्त करने का अधिकार देती है। एन.डी.पी.एस. एक्ट, 1985 की धारा 63 ज़ब्त की प्रक्रिया बताती है और इसमें यह बताया गया है कि किसी भी चीज़ की ज़ब्त एन.डी.पी.एस. एक्ट, 1985 की धारा 60 के तहत तब की जा सकती है जब आरोपी दोषी पाया जाए या बरी हो जाए या उसे छोड़ दिया जाए।

14. माननीय सुप्रीम कोर्ट ने **बिस्वजीत डे (सुप्रा)** मामले में दिए गए अपने फैसले में एन.डी.पी.एस. एक्ट, 1985 की उपरोक्त धारा 60(3) और 63(1) पर विचार किया था और साफ तौर पर कहा था कि नशीली दवा या साइकोट्रोपिक पदार्थ ले जाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाहन को केवल ट्रायल खत्म होने पर ही ज़ब्त किया जा सकता है, यानी जब आरोपी को दोषी ठहराया जाए या बरी किया जाए या रिहा किया जाए। आसानी से समझने के लिए, **बिस्वजीत डे (सुप्रा)** मामले में दिए गए फैसले का पैराग्राफ 21 नीचे दिया गया है:

“21. एन.डी.पी.एस. एक्ट को पढ़ने पर, इस कोर्ट का यह मानना है कि ज़ब्त किए गए वाहनों को ट्रायल कोर्ट सिर्फ ट्रायल खत्म होने पर ही ज़ब्त कर सकता है, जब आरोपी को दोषी ठहराया जाए, बरी किया जाए या रिहा किया जाए। इसके अलावा, अगर कोर्ट को लगता है कि वाहन ज़ब्त करने लायक है, तो उसे ज़ब्त

का आदेश देने से पहले उस व्यक्ति को सुनवाई का मौका देना होगा, जो ज़ब्त किए गए वाहन पर किसी अधिकार का दावा कर सकता है। हालाँकि, अगर ज़ब्त किए गए वाहन का मालिक यह साबित कर दे कि वाहन का इस्तेमाल आरोपी व्यक्ति ने मालिक की जानकारी या मिलीभगत के बिना किया था और उसने आरोपी व्यक्ति द्वारा ज़ब्त किए गए वाहन के ऐसे इस्तेमाल को रोकने के लिए सभी ज़रूरी सावधानियाँ बरती थीं, तो ज़ब्त किया गया वाहन ज़ब्त करने लायक नहीं होगा।”

15. माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा **बिस्वजीत डे (सुप्रा)** के मामले में दिया गया कानून बहुत स्पष्ट है और इसमें कहा गया है कि एन.डी.पी.एस एक्ट, 1985 के तहत दंडनीय अपराधों के मामलों में, नशीली दवा या साइकोट्रोपिक पदार्थ ले जाने में इस्तेमाल किए गए वाहन को केवल ट्रायल खत्म होने के बाद ही ज़ब्त किया जा सकता है।

16. इस मामले में, पार्टियों के बीच यह माना गया है कि विचाराधीन अपराध का ट्रायल अभी तक पूरा नहीं हुआ है, इसलिए, जिस आदेश से रजिस्ट्रेशन नंबर HR78-3205 वाली इनोवा कार को ज़ब्त किया गया था, वह साफ तौर पर गैर-कानूनी है।

17. जहाँ तक इस मामले में शामिल दूसरे मुद्दे का सवाल है कि क्या ऐसे मामले में जहाँ एन.डी.पी.एस. एक्ट, 1985 के तहत दंडनीय अपराध का आरोपी, जो अपराध में इस्तेमाल किए गए वाहन का मालिक है, ट्रायल के दौरान वाहन को छुड़ाने का दावा कर सकता है, माननीय सुप्रीम कोर्ट ने **बिस्वजीत डे (सुप्रा)** के मामले में दिए गए अपने फैसले में साफ तौर पर कहा था कि आम तौर पर जहाँ आरोपी खुद वाहन का मालिक होता है, तो उस वाहन को उसके पक्ष में रिहा नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन ट्रायल कोर्ट वाहन को रिहा करने के मामले पर अपने गुणों के आधार पर विचार करने और फैसला करने के लिए स्वतंत्र है क्योंकि कोई सीधा-सादा फॉर्मूला नहीं है। आसान संदर्भ के लिए, **बिस्वजीत डे (सुप्रा)** के मामले में दिए गए फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

“29. हालाँकि गाड़ियों से ड्रग्स/पदार्थों को कई स्थितियों में ज़ब्त किया जा सकता है, फिर भी मोटे तौर पर चार ऐसे हालात होते हैं जिनमें किसी गाड़ी से ड्रग्स या पदार्थ ज़ब्त किए जाते हैं। पहला, जहाँ गाड़ी का मालिक ही वह व्यक्ति होता है जिससे प्रतिबंधित ड्रग्स/पदार्थ बरामद किए जाते हैं। दूसरा, जहाँ प्रतिबंधित सामान मालिक के एजेंट यानी मालिक द्वारा रखे गए ड्राइवर या क्लीनर के कब्जे से बरामद किया जाता है। तीसरा, जहाँ गाड़ी आरोपी ने चुराई है और ऐसी चोरी की गाड़ी से प्रतिबंधित सामान बरामद होता है। चौथा, जहाँ गाड़ी के किसी तीसरे पक्ष के कब्जे वाले व्यक्ति (किराए के साथ या बिना किराए के) से प्रतिबंधित सामान ज़ब्त/बरामद किया जाता है, बिना पुलिस के किसी आरोप के कि प्रतिबंधित सामान मालिक की जानकारी और मिलीभगत से गाड़ी में रखा और ले जाया जा रहा था। पहले दो मामलों में, गाड़ी के मालिक और/या उसके एजेंट को निश्चित रूप से आरोपी बनाया जाएगा। तीसरे और चौथे मामले में, गाड़ी के मालिक और/या उसके एजेंट को आरोपी नहीं बनाया जाएगा।

30. इस कोर्ट का मानना है कि क्रिमिनल कानून को हवा में नहीं, बल्कि हर केस के तथ्यों पर लागू किया जाना चाहिए। नतीजतन, सिर्फ पहले दो मामलों में ही गाड़ी को सुपरदारी पर तब तक रिलीज़ नहीं किया जा सकता जब तक आरोपी-मालिक रिवर्स बर्डन ऑफ प्रूफ साबित नहीं कर देता। हालांकि, तीसरे और चौथे मामलों में, जहां चार्जशीट में मालिक और/या उसके एजेंट के खिलाफ कोई आरोप नहीं लगाया गया है, गाड़ी को आम तौर पर अंतरिम रूप से सुपरदारी पर रिलीज़ कर देना चाहिए, बशर्ते मालिक एक बॉन्ड दे कि वह कोर्ट के निर्देश पर गाड़ी पेश करेगा और/या अगर कोर्ट को आखिर में लगता है कि गाड़ी ज़ब्त करने की ज़रूरत है, तो वह रिलीज़ की तारीख पर कोर्ट द्वारा तय की गई गाड़ी की कीमत का भुगतान करेगा।

31. यह कोर्ट साफ करता है कि ऊपर बताई गई चर्चा को एक पक्का फॉर्मूला नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि ट्रायल कोर्ट मामले के तथ्यों के आधार पर अलग राय अपना सकते हैं, अगर मामले के तथ्य ऐसा करने की ज़रूरत बताते हैं।"

18. यह कोर्ट पाता है कि माननीय सुप्रीम कोर्ट ने **बिस्वजीत डे (सुप्रा)** के मामले में दिए गए उपरोक्त फैसले में अलग-अलग स्थितियों को कैटेगरी में बांटा था और कहा था कि आम तौर पर जहां आरोपी खुद नशीली दवा या साइकोट्रॉपिक पदार्थ ले जाने के लिए इस्तेमाल किए गए वाहन का मालिक है, वहां ट्रायल कोर्ट आरोपी के पक्ष में वाहन को रिहा नहीं कर सकता, लेकिन साथ ही, माननीय सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा था कि फैसले में की गई चर्चा को कोई पक्का फॉर्मूला नहीं माना जाना चाहिए और अगर मामले के तथ्य ऐसा चाहते हैं तो ट्रायल कोर्ट अलग राय ले सकता है। इसलिए, इस कोर्ट का मानना है कि माननीय सुप्रीम कोर्ट ने भी साफ तौर पर कहा था कि गाड़ी को छोड़ने के मामले में फैसला ट्रायल कोर्ट को ही करना है, जहां गाड़ी का मालिक खुद एन.डी.पी.एस एक्ट के तहत सज़ा पाने वाले अपराधी का आरोपी है, और यह फैसला मामले की खूबियों के आधार पर होगा।

19. यह कोर्ट आगे पाता है कि ट्रायल कोर्ट ने अपने 20.06.2023 के आदेश से रजिस्ट्रेशन नंबर HR78-3205 वाली इनोवा कार को ज़ब्त करते समय, रिवीजनिस्ट द्वारा उस गाड़ी को छोड़ने के लिए दायर की गई एप्लीकेशन पर उसके अपने गुणों के आधार पर विचार नहीं किया है, इसलिए, रिवीजनिस्ट द्वारा गाड़ी को छोड़ने के लिए दायर की गई एप्लीकेशन पर सभी संबंधित पार्टियों को सुनवाई का मौका देने के बाद ट्रायल कोर्ट द्वारा नए सिरे से विचार किया जाना चाहिए।

20. उपरोक्त कारणों को देखते हुए, यह रिवीजन स्वीकार किया जाता है। विद्वान स्पेशल जज (एन.डी.पी.एस.)/अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 12, सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 20.06.2023 का आदेश, जो केस क्राइम नंबर 509 ऑफ 2021, एन.डी.पी.एस. एक्ट, 1985 की धारा 8/21 के तहत है, उसे रद्द किया जाता है।

21. विद्वान स्पेशल जज (एन.डी.पी.एस.)/एडिशनल डिस्ट्रिक्ट एंड सेशन जज, कोर्ट नंबर 12, सहारनपुर को निर्देश दिया जाता है कि वे रिवीजनिस्ट द्वारा वाहन यानी इनोवा कार जिसका रजिस्ट्रेशन नंबर HR78-3205 है, को छोड़ने के लिए दायर की गई एप्लीकेशन पर उसके गुणों के आधार पर, माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा बिस्वजीत डे (सुप्रा) के मामले में तय किए गए कानून के अनुसार, सख्ती से पुनर्विचार करें।

(2025) 3 ILRA 480

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ल,

के समक्ष

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 6045 वर्ष 2024

प्रवीण कुमार अग्रवाल

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

... प्रतिवादी

पुनरीक्षणकर्ता के वकील: पद्मकार पांडे

प्रतिवादियों के वकील: सरकारी वकील

आपराधिक कानून - पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत दोषसिद्धि - अनुपस्थिति के कारण अपील खारिज होना - आत्मसमर्पण के बिना पुनरीक्षण की स्वीकार्यता - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय 18वीं, भाग 3 का नियम 3(4) - पुनरीक्षण दाखिल करने से पहले आत्मसमर्पण की अनिवार्यता - आत्मसमर्पण से छूट मांगने वाला कोई आवेदन दाखिल नहीं किया गया - अवलोकन: आत्मसमर्पण प्रमाण पत्र दाखिल करने की आवश्यकता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 और 401 के विपरीत नहीं है - दोषी को या तो हिरासत में होना चाहिए या असाधारण परिस्थितियों के आधार पर छूट मांगनी चाहिए - अनुपालन या औचित्य के अभाव में पुनरीक्षण शक्तियों के तहत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए - हालांकि, नियमों के अनुपालन पर नया पुनरीक्षण दाखिल करने की स्वतंत्रता दी गई है - निर्णय: पुनरीक्षण स्वीकार्य नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है। (पैरा 20, 21, 23, 24, 25, 27, 28, 30, 32, 33 और 34)

निर्णय:

धारा 397 दंड प्रक्रिया संहिता और धारा 401 दंड प्रक्रिया संहिता में यह प्रावधान नहीं है कि यदि अभियुक्त को दोषी ठहराए जाने और उसकी अपील खारिज होने के बाद संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया

जाता है, तो उच्च न्यायालय आपराधिक पुनरीक्षण याचिका पर सुनवाई करने से इनकार कर देगा। हालांकि, यह उल्लेखनीय है कि आपराधिक पुनरीक्षण याचिका एक विवेकाधीन याचिका है और आपराधिक पुनरीक्षण याचिका पर सुनवाई करना या उसे अस्वीकार करना उच्च न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है। (पैरा 21)

1952 के नियमों के भाग तृतीय के अध्याय XVIII के नियम 3(4) में यह प्रावधान है कि जिस मामले में कारावास की सजा दी गई है, उसमें पुनरीक्षण याचिका में आवेदक के अधिवक्ता या स्वयं आवेदक द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रमाण पत्र भी होना चाहिए, जिसमें यह उल्लेख हो कि अभियुक्त जमानत पर नहीं था या यदि वह जमानत पर था, तो उसने जमानत पर आत्मसमर्पण कर दिया है। 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 2 में आगे यह प्रावधान है कि यदि अपील याचिका, पुनरीक्षण आवेदन या अन्य आवेदन को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन के समक्ष यदि पीठ को यह प्रतीत होता है कि उसके साथ आवश्यक दस्तावेज (यदि कोई हों) संलग्न नहीं हैं, या वह अन्यथा सही क्रम में नहीं है, या उसे समय पर प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो वह उसे स्वीकार करने से इनकार कर सकती है, उसे अस्वीकार कर सकती है, या ऐसा कोई अन्य आदेश पारित कर सकती है जिसे वह उचित समझे। (पैरा 23)

1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 3(4) में नियम बनाने वाले प्राधिकरण द्वारा प्रयुक्त भाषा का सरसरी तौर पर अध्ययन करने से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि यदि किसी व्यक्ति को दोषी ठहराया गया है और उसे कारावास की सजा सुनाई गई है, तो पुनरीक्षण के लिए आवेदन दाखिल करते समय, उसे पुनरीक्षण के साथ एक प्रमाण पत्र दाखिल करना होगा जिसमें यह बताया गया हो कि या तो वह जमानत पर नहीं था या यदि वह जमानत पर था, तो उसने जमानत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। नियम बनाने वाले प्राधिकरण ने जानबूझकर "प्रमाणपत्र भी शामिल होना चाहिए" शब्दों का प्रयोग किया है ताकि यह स्पष्ट हो जाए कि याचिकाकर्ता को अपनी पुनरीक्षण याचिका को वैध बनाने के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष अनिवार्य रूप से आत्मसमर्पण का प्रमाण पत्र दाखिल करना होगा और यदि उक्त आवश्यकता पूरी नहीं होती है, तो उच्च न्यायालय को 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 2 में दिए गए प्रावधानों के अनुसार पुनरीक्षण याचिका को अस्वीकार करने का विवेकाधिकार होगा। इसके अलावा, 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII का उपरोक्त नियम 2 उच्च न्यायालय को यह विवेकाधिकार भी देता है कि असाधारण परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय याचिकाकर्ता को ऐसा प्रमाण पत्र दाखिल करने से छूट देने के अनुरोध पर विचार कर सकता है। (पैरा 24)

इस न्यायालय का मत है कि 1952 के नियमों के भाग तृतीय के अध्याय XVIII के नियम 2 और नियम 3(4) धारा 397 Cr.P.C. और धारा 401 Cr.P.C. में दिए गए प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं, और यदि इन्हें एक साथ पढ़ा जाए, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि सामान्यतः याचिकाकर्ता को आपराधिक पुनरीक्षण याचिका दायर करते समय एक प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना होता है जिसमें यह बताना होता है कि वह मुकदमे और अपील के दौरान जमानत पर नहीं था या यदि वह जमानत पर था, तो उसने अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। लेकिन असाधारण परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता उच्च न्यायालय के समक्ष उन असाधारण परिस्थितियों

को प्रस्तुत कर सकता है और ऐसे प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने से छूट मांग सकता है। लेकिन यदि ऐसी छूट का दावा नहीं किया गया है, तो संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण किए बिना दोषी द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जाएगा। (पैरा 25)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विवेक राय (उपरोक्त) मामले में दिए गए अपने फैसले में स्पष्ट रूप से कहा था कि यह एक सर्वविदित प्रथा है कि आम तौर पर दोषसिद्धि और कारावास की सजा के खिलाफ पुनरीक्षण याचिका अपील खारिज होने और दोषी व्यक्ति को हिरासत में लिए जाने के बाद दायर की जाती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में आगे कहा था कि झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा अपनी प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए बनाए गए नियम, जिनमें यह प्रावधान है कि धारा 397 दंड प्रक्रिया संहिता और धारा 401 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आपराधिक पुनरीक्षण याचिका दायर करने के लिए दोषी को पहले संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करना होगा और उसके बाद ही उच्च न्यायालय द्वारा उसकी आपराधिक पुनरीक्षण याचिका पर विचार किया जा सकता है, किसी भी तरह से धारा 397 दंड प्रक्रिया संहिता और 401 दंड प्रक्रिया संहिता में किए गए प्रावधानों के विपरीत नहीं हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में यह भी कहा था कि उच्च न्यायालय के पास यह विवेकाधिकार होता है कि असाधारण परिस्थितियों में, यदि दोषी आत्मसमर्पण से छूट चाहता है, तो वह उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन कर सकता है और उस आवेदन पर विचार किया जा सकता है तथा उच्च न्यायालय द्वारा इस विवेकाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। (पैरा 30)

अब, यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 और धारा 401 के अंतर्गत आपराधिक पुनरीक्षण के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, इंदौर द्वारा दिए गए उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, 1952 के नियमों के भाग तृतीय के अध्याय 18वीं के नियम 2 और नियम 3(4) के आशय पर विचार करेगा। यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235, 248 और 353 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि किसी अभियुक्त को दोषी ठहराए जाने पर उसे संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करना होगा और उसकी उपस्थिति में न्यायालय सजा के संबंध में निर्णय लेगा। दंड प्रक्रिया संहिता की विभिन्न धाराओं में किए गए प्रावधानों पर एक साथ विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि दोषसिद्धि के बाद, दोषी के लिए परीक्षण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करना अनिवार्य है और यदि उसने आत्मसमर्पण नहीं किया है, तो संबंधित न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह दोषी के आत्मसमर्पण को सुनिश्चित करे। (पैरा 32)

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के नाम से नियम बनाए थे। नियम 2 को भाग III के अध्याय XVIII के नियम 3(4) के साथ पढ़ने पर स्पष्ट रूप से यह प्रावधान है कि दोषी को आपराधिक पुनरीक्षण के साथ एक प्रमाण पत्र दाखिल करना होगा, जिसमें यह प्रमाणित हो कि या तो वह जमानत पर नहीं था, या यदि वह जमानत पर था, तो उसने न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। यदि उक्त प्रमाण पत्र पुनरीक्षण के साथ संलग्न नहीं है, तो पुनरीक्षण वैध नहीं होगा और उच्च न्यायालय द्वारा खारिज किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि नियम बनाने वाले प्राधिकरण ने भाग III के अध्याय XVIII

के नियम 3(4) में जानबूझकर "प्रमाण पत्र भी संलग्न होना चाहिए" शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे पुनरीक्षणकर्ता के लिए नियम के तहत आवश्यकताएं अनिवार्य हो जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि जब तक दोषी, धारा 397 Cr.P.C. के साथ धारा 401 Cr.P.C. के तहत आपराधिक पुनरीक्षण दाखिल करते समय, यह प्रमाण पत्र संलग्न नहीं करता है, तब तक पुनरीक्षण मान्य नहीं होगा। यदि वह आत्मसमर्पण का प्रमाण पत्र देता है, तो आपराधिक पुनरीक्षण याचिका उचित नहीं होगी और उच्च न्यायालय द्वारा उस पर विचार नहीं किया जाएगा। हालांकि, यदि नियम 2 को 1952 के नियमों के भाग तृतीय के अध्याय XVIII के नियम 3(4) के साथ पढ़ा जाए, तो असाधारण परिस्थितियों के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता द्वारा समर्पण से छूट मांगने के लिए आवेदन दाखिल करने की गुंजाइश रहती है, और यदि उक्त छूट के लिए प्रार्थना की जाती है, तो उच्च न्यायालय उक्त छूट मांगने वाले आवेदन पर विचार कर सकता है और आवश्यक आदेश पारित कर सकता है। (पैरा 34)

उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, विशेष रूप से 1952 के नियमों के भाग तृतीय के अध्याय XVIII के नियम 2 और नियम 3(4) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, और आगे यह ध्यान में रखते हुए कि धारा 397 Cr.P.C. के साथ पढ़ी जाने वाली पुनरीक्षण की विधि धारा 401 Cr.P.C. के तहत प्रदान किया गया पुनरीक्षण एक विवेकाधीन विधि है, यह न्यायालय इस पुनरीक्षण पर विचार करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने से इनकार करता है। (पैरा 36)

पुनरीक्षण याचिका खारिज। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. विवेक राय और अन्य बनाम झारखंड उच्च न्यायालय, रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से और अन्य, (2015) 12 एससीसी 86
2. आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1912/2024, देवनारायण बनाम प्रतीक गोयनका
3. बिहारी प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2000) 10 एससीसी 346

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ल, द्वारा सुनाया गया)

1. हमने रिवीजनिस्ट की ओर से पेश हुए विद्वान सीनियर एडवोकेट श्री प्रकाश नाइक, जिनकी सहायता श्री तपन थट्टे और श्री पद्माकर पांडे ने की, राज्य की ओर से पेश हुए विद्वान एडिशनल गवर्नमेंट एडवोकेट श्री ब्रजेंद्र प्रताप सिंह और विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री सुशील कुमार शुक्ला और श्री आर.के. सिंह चंदेल को सुना।

2. यह रिवीजन सेक्शन 397 सीआर.पी.सी के साथ सेक्शन 401 सीआर.पी.सी के तहत दायर किया गया है, जिसमें विद्वान सेशंस जज द्वारा क्रिमिनल अपील नंबर 105 ऑफ 2022 और क्रिमिनल अपील नंबर 177 ऑफ 2022 में 21.8.2024 को दिए गए फैसले और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत रिवीजन करने वाले यानी क्रिमिनल अपील नंबर 105 ऑफ 2022 की अपील अपीलीय अदालत में अपीलकर्ता की गैरमौजूदगी के कारण खारिज कर दी गई थी और क्रिमिनल अपील नंबर 177 ऑफ 2022 को स्वीकार कर लिया गया था और ट्रायल कोर्ट द्वारा 26.8.2022 के आदेश के तहत लगाया गया जुर्माना 32,31,50,000/- रुपये से बढ़ाकर 64,63,00,000/- रुपये कर दिया गया था।

मामले के संक्षिप्त तथ्य

3. विपक्षी पार्टी नंबर 2 ने एक शिकायत केस दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि याचिकाकर्ता ने नेगोशिएबल इंस्ट्रुमेंट्स एक्ट, 1881 (जिसे इसके बाद '1881 का एक्ट' कहा जाएगा) की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध किया है। याचिकाकर्ता ट्रायल कोर्ट के सामने पेश हुआ और उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया। बाद में, शिकायत केस नंबर 6352/2016 का फैसला 26.8.2022 के फैसले और आदेश द्वारा किया गया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को 1881 के एक्ट की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और उसे दो साल की साधारण कैद के साथ 32,31,50,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया। रिविजनिस्ट ने ट्रायल कोर्ट के 26.8.2022 के उपरोक्त आदेश के खिलाफ अपील दायर की और उस अपील को क्रिमिनल अपील नंबर 105 ऑफ 2022 नंबर दिया गया। विपक्षी पार्टी नंबर 2 ने भी ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित 26.8.2022 के आदेश को क्रिमिनल अपील नंबर 177 ऑफ 2022 दायर करके चुनौती दी, जिसमें ट्रायल कोर्ट द्वारा लगाए गए जुर्माने की रकम बढ़ाने की प्रार्थना की गई थी।

4. ऊपर बताई गई दोनों क्रिमिनल अपीलों, यानी क्रिमिनल अपील नंबर 105 ऑफ 2022 और क्रिमिनल अपील नंबर 177 ऑफ 2022, आपस में जुड़ी हुई थीं और अपीलीय अदालत ने दोनों की सुनवाई एक साथ की।

5. ट्रायल कोर्ट ने मौजूदा याचिकाकर्ता को अपील दायर करने तक अंतरिम जमानत दी थी, और इसलिए, अपील दायर करने के बाद, उसने अपीलीय कोर्ट में ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई सज़ा के अमल को निलंबित करने के लिए एक आवेदन दायर किया और उस आवेदन पर, अपीलीय कोर्ट ने 20.9.2022 को आदेश पारित किया, जिसमें अपीलकर्ता को जुर्माने की रकम का 50% यानी 16,15,50,000/- रुपये जमा करने का निर्देश दिया गया और यह भी कहा गया कि जुर्माने की उक्त 50% रकम जमा करने के बाद सज़ा को निलंबित करने की याचिका पर विचार किया जाएगा। मौजूदा याचिकाकर्ता ने 20.9.2022 के उक्त आदेश का पालन नहीं किया और उसने धारा 482 सीआर.पी.सी. के तहत इस कोर्ट में याचिका दायर करके इसे चुनौती दी।

6. आखिरकार, अपीलीय अदालत ने 21.8.2024 के एक ही फैसले और आदेश से उपरोक्त दोनों आपराधिक अपीलों, यानी आपराधिक अपील नंबर 105 ऑफ 2022 और आपराधिक अपील नंबर 177 ऑफ 2022 का फैसला किया।

7. अपीलीय अदालत ने 21.8.2024 के अपने फैसले और आदेश में यह पाया था कि अपीलकर्ता यानी वर्तमान रिवीजनकर्ता अपीलीय अदालत के सामने लगातार अनुपस्थित रहा है, इसलिए अपील को डिफॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया था। विद्वान अपीलीय अदालत ने 21.8.2024 के आदेश के तहत आपराधिक अपील संख्या 177/2022 को स्वीकार कर लिया था, जिसके तहत ट्रायल कोर्ट द्वारा 26.8.2022 को पारित आदेश के माध्यम से वर्तमान रिवीजनकर्ता पर लगाया गया जुर्माना 32,31,50,000/- रुपये से बढ़ाकर 64,63,00,000/- रुपये कर दिया गया था।

विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से प्रस्तुतियाँ

8. विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री सुशील कुमार शुक्ला ने शुरू में ही इस रिवीजन की सुनवाई योग्यता के बारे में एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई है, इस आधार पर कि रिवीजन करने वाले ने इलाहाबाद हाई कोर्ट रूल्स, 1952 (जिसे इसके बाद '1952 के नियम' कहा जाएगा) के पार्ट III के चैप्टर XVIII के नियम 3(4) के प्रावधानों का पालन नहीं किया है, जिसके तहत यह अनिवार्य है कि दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ दायर अपील खारिज होने के बाद, दोषी व्यक्ति को संबंधित अदालत के सामने सरेंडर करना होगा और उसके बाद वह सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ पढ़े गए सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत एक आपराधिक रिवीजन दायर कर सकता है, जिसमें एक सर्टिफिकेट लगाना होगा जिसमें यह बताया गया हो कि या तो रिवीजन करने वाला जमानत पर नहीं था या उसकी अपील खारिज होने के बाद, उसने संबंधित अदालत के सामने सरेंडर कर दिया है, लेकिन इस रिवीजन में ऐसा कोई सर्टिफिकेट नहीं लगाया गया है। श्री सुशील कुमार शुक्ला, जो विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील हैं, ने यह भी कहा है कि यहां तक कि याचिकाकर्ता ने भी, यह आपराधिक रिवीजन दाखिल करते समय, अनिवार्य प्रमाण पत्र दाखिल करने से छूट मांगने के लिए कोई आवेदन दाखिल नहीं किया है, जिसमें यह बताया गया हो कि या तो याचिकाकर्ता जमानत पर नहीं था या अपील खारिज होने के बाद, उसने संबंधित अदालत के सामने आत्मसमर्पण कर दिया है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपराधिक रिवीजन सुनवाई योग्य नहीं है और इस तरह, इस अदालत द्वारा खारिज किए जाने योग्य है।

9. विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री सुशील कुमार शुक्ला ने यह दलील दी है कि 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 3(4) में यह प्रावधान है कि आपराधिक रिवीजन में रिवीजन करने वाले के वकील या रिवीजन करने वाले द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रमाण पत्र होना चाहिए जिसमें यह बताया गया हो कि आरोपी जमानत पर नहीं था या यदि वह जमानत पर था, तो उसने आत्मसमर्पण कर दिया था। यह भी दलील दी गई है कि रिवीजन करने वाले को ट्रायल कोर्ट ने 1881 के अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया था और उसे दो साल की साधारण कारावास की सजा सुनाई गई थी, लेकिन रिवीजन करने वाले ने दोषसिद्धि के आदेश के अनुसार संबंधित अदालत के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया है। दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ रिवीजन करने वाले द्वारा दायर अपील भी 21.08.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी, लेकिन संबंधित अदालत के सामने आत्मसमर्पण करने के बजाय, रिवीजन करने वाले ने सीधे यह आपराधिक रिवीजन दायर कर दिया।

10. विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से पेश हुए वकील ने यह तर्क दिया है कि 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII के नियम 3(4) में नियम बनाने वाली अथॉरिटी द्वारा इस्तेमाल की गई भाषा के अनुसार, आरोपी के लिए संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर करना और उसके बाद ट्रायल कोर्ट के आदेश और अपील कोर्ट द्वारा दिए गए आदेश के खिलाफ, इस कोर्ट में सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत क्रिमिनल रिवीजन फाइल करना ज़रूरी है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि माननीय सुप्रीम कोर्ट के साथ-साथ देश भर के अलग-अलग हाई कोर्ट में भी आम चलन यह है कि एक बार जब किसी व्यक्ति को ट्रायल कोर्ट द्वारा दोषी ठहराया जाता है और उसकी अपील खारिज कर दी जाती है, तो उसे संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर करना होता है और उसके बाद ही उसे सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत क्रिमिनल रिवीजन फाइल करने की अनुमति दी जा सकती है या वह कानून के तहत उपलब्ध कोई अन्य उपाय अपना सकता है।

11. विपक्षी पार्टी नंबर 2 के वकील ने इस कोर्ट के सामने ज़ोर देकर कहा कि रिवीजनिस्ट किसी भी तरह कोर्ट के सामने सरेंडर करने से बचने की कोशिश कर रहा है, हालांकि, ट्रायल कोर्ट द्वारा दोषी ठहराए जाने के बाद यह ज़रूरी है कि वह संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर करे और अगर वह सरेंडर नहीं करता है, तो ट्रायल कोर्ट की यह ज़िम्मेदारी है कि वह उसका सरेंडर सुनिश्चित करे। आगे यह भी कहा गया है कि मूल सिद्धांत यह है कि एक बार जब किसी व्यक्ति को दोषी ठहराया जाता है और दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ उसकी अपील खारिज कर दी जाती है, तो उसे अदालतों द्वारा पारित आदेशों का सम्मान करना चाहिए और संबंधित अदालत के सामने सरेंडर करना चाहिए, उसके बाद ही हाई कोर्ट सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के तहत अपने विवेकाधीन अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा।

12. विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री सुशील कुमार शुक्ला ने माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा **विवेक राय और अन्य बनाम झारखंड हाई कोर्ट, रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से और अन्य, (2015) 12 SCC 86** के मामले में दिए गए फैसले और मध्य प्रदेश हाई कोर्ट, इंदौर द्वारा **क्रिमिनल रिवीजन नंबर 1912 ऑफ 2024, देवनारायण बनाम प्रतीक गौयनका** में 28.5.2024 को दिए गए फैसले पर भरोसा किया है। विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से यह तर्क दिया गया है कि उपरोक्त फैसलों में तय किया गया कानून यह अनिवार्य बनाता है कि रिवीजन करने वाले को पहले संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर करना चाहिए और उसके बाद ही हाई कोर्ट द्वारा उसके रिवीजन पर विचार किया जा सकता है और सुना जा सकता है।

13. विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि वैसे भी, रिवीजन करने वाले ने, यह रिवीजन दाखिल करते समय, नियम 1952 के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 3(4) के तहत अनिवार्य आवश्यकताओं का पालन करने से छूट मांगने के लिए कोई आवेदन दाखिल नहीं किया है, इसलिए, इस न्यायालय के पास रिवीजन करने वाले को संबंधित न्यायालय के सामने सरेंडर करने से छूट देने और रिवीजन पर विचार करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने का कोई अवसर नहीं है।

संशोधनवादी की ओर से प्रस्तुतियाँ

14. रिवीजन करने वाले की ओर से पेश हुए विद्वान सीनियर एडवोकेट श्री प्रकाश नाइक ने यह दलील दी है कि 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 3(4) में दिए गए प्रावधान रिवीजन की सामग्री के संबंध में हैं, लेकिन कहीं भी यह प्रावधान नहीं है कि यदि उसमें यह उल्लेख करने वाला प्रमाण पत्र कि या तो रिवीजन करने वाला जमानत पर नहीं था या यदि वह जमानत पर था, तो उसने संबंधित अदालत के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था, आपराधिक रिवीजन के साथ संलग्न नहीं किया जाता है, तो हाई कोर्ट रिवीजन पर विचार नहीं करेगा, इसलिए, विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति, अपने आप में, गलत है और खारिज किए जाने योग्य है।

15. रिवीजन करने वाले की ओर से पेश हुए विद्वान सीनियर एडवोकेट श्री प्रकाश नाइक ने यह तर्क दिया है कि रिवीजन करने वाले के लिए उपलब्ध रिवीजन के उपाय से संबंधित मुख्य प्रावधान धारा 397 सीआर.पी.सी. है और उक्त धारा में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि रिवीजन करने वाले को पहले संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर करना होगा और उसके बाद ही हाई कोर्ट उसके रिवीजन पर विचार कर सकता है, इसलिए, भले ही 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 3(4) के तहत आवश्यकताएं पूरी न हों, यह कोर्ट इस आधार पर मौजूदा आपराधिक रिवीजन पर विचार करने से इनकार नहीं कर सकता कि अपील खारिज होने के बाद, रिवीजन करने वाले ने संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर नहीं किया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि दोषसिद्धि और सज़ा के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर अपील को अपीलीय अदालत ने केवल पुनरीक्षणकर्ता की अपीलीय अदालत के सामने लगातार अनुपस्थिति के कारण खारिज कर दिया था, यानी अपील को अभियोजन की कमी के कारण खारिज कर दिया गया था, जबकि यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि दोषसिद्धि और सज़ा के आदेश के खिलाफ दायर अपील का फैसला उसके अपने गुणों के आधार पर किया जाना चाहिए और इसे अभियोजन की कमी के कारण खारिज नहीं किया जा सकता है।

16. रिवीजन करने वाले की ओर से पेश हुए विद्वान सीनियर एडवोकेट श्री प्रकाश नाइक ने माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा **बिहारी प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2000) 10 SCC 346** के मामले में दिए गए फैसले पर भरोसा किया है और यह प्रस्तुत किया है कि माननीय सुप्रीम कोर्ट ने उक्त फैसले में स्पष्ट रूप से कहा था कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो हाई कोर्ट को केवल इसलिए रिवीजन के लिए आवेदन खारिज करने का अधिकार देता हो क्योंकि दोषी ने आत्मसमर्पण नहीं किया है।

17. रिवीजन करने वाले की ओर से पेश हुए विद्वान सीनियर एडवोकेट ने इस तरह अपनी दलीलें खत्म कीं और कहा कि विपक्षी पार्टी नंबर 2 की ओर से इस क्रिमिनल रिवीजन की सुनवाई योग्यता के बारे में उठाई गई शुरुआती आपत्ति पूरी तरह गलत है और इस कोर्ट द्वारा खारिज किए जाने लायक है, और आगे रिवीजन को मंजूर किया जाए और मामले को अपीलीय कोर्ट में वापस भेजा जाए ताकि वह रिवीजन करने वाले द्वारा दायर अपील पर मेरिट के आधार पर विचार करे और फैसला करे।

तर्कों और निष्कर्षों का विश्लेषण

18. मैंने पार्टियों की ओर से पेश हुए विद्वान वकीलों की दलीलें सुनी हैं और इस कोर्ट के सामने पार्टियों द्वारा दाखिल किए गए दस्तावेज़ देखे हैं।

19. रिवीजन करने वाले ने यह क्रिमिनल रिवीजन सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ सेक्शन 401के2. अपील या आवेदन स्वीकार करने के मोशन पर कोर्ट का आदेश :- जहाँ बेंच जिसके सामने अपील की याचिका या रिवीजन के लिए आवेदन या अन्य आवेदन को स्वीकार करने के लिए मोशन किया जाता है, यह पाती है कि इसके साथ ज़रूरी कागज़ात, यदि कोई हों, नहीं हैं, या यह अन्यथा ठीक नहीं है या समय पर पेश नहीं किया गया है, तो वह इसे लेने से मना कर सकती है या इसे खारिज कर सकती है या ऐसा कोई अन्य आदेश पारित कर सकती है जैसा वह उचित समझे। तहत दाखिल किया है। आसानी के लिए, सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. और सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. नीचे दिए गए हैं:-

“397. रिवीजन की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए रिकॉर्ड मंगाना—(1) हाई कोर्ट या कोई भी सेशन जज अपने या अपने स्थानीय अधिकार क्षेत्र में स्थित किसी भी निचली क्रिमिनल कोर्ट के सामने किसी भी कार्यवाही का रिकॉर्ड मंगवा सकता है और उसकी जांच कर सकता है, ताकि वह किसी भी फैसले, सज़ा या आदेश की सही होने, कानूनी होने या उचित होने के बारे में खुद को संतुष्ट कर सके, और ऐसी निचली कोर्ट की किसी भी कार्यवाही की नियमितता के बारे में भी जांच कर सके, और जब वह ऐसा रिकॉर्ड मंगवाता है, तो वह यह निर्देश दे सकता है कि किसी भी सज़ा या आदेश का पालन रोक दिया जाए, और यदि आरोपी हिरासत में है, तो उसे रिकॉर्ड की जांच होने तक ज़मानत पर या अपने बॉन्ड पर रिहा कर दिया जाए।

स्पष्टीकरण—इस उप-धारा और धारा 398 के प्रयोजनों के लिए, सभी मजिस्ट्रेट, चाहे वे कार्यकारी हों या न्यायिक, और चाहे वे मूल या अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहे हों, सेशन जज से नीचे माने जाएंगे।

(2) उप-धारा (1) द्वारा दी गई रिवीजन की शक्तियों का प्रयोग किसी अपील, जांच, मुकदमे या अन्य कार्यवाही में पारित किसी भी अंतरिम आदेश के संबंध में नहीं किया जाएगा।

(3) यदि इस धारा के तहत किसी व्यक्ति ने हाई कोर्ट या सेशन जज के पास कोई आवेदन किया है, तो उसी व्यक्ति का कोई और आवेदन उनमें से दूसरे द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा।

“401. हाई कोर्ट की रिवीजन की शक्तियां—(1) किसी भी कार्यवाही के मामले में, जिसका रिकॉर्ड हाई कोर्ट ने खुद मंगवाया है या जो किसी और तरह से उसके संज्ञान में आता है, हाई कोर्ट अपने विवेक से, सेक्शन 386, 389, 390 और 391 द्वारा अपील कोर्ट को या सेक्शन 307 द्वारा सेशन कोर्ट को दी गई किसी भी शक्ति का इस्तेमाल कर सकता है, और, जब रिवीजन कोर्ट के जज राय में बराबर बंटे होते हैं, तो मामले का निपटारा सेक्शन 392 में बताए गए तरीके से किया जाएगा।

(2) इस सेक्शन के तहत कोई भी आदेश आरोपी या किसी अन्य व्यक्ति के नुकसान में तब तक नहीं दिया जाएगा, जब तक उसे खुद या अपने वकील के ज़रिए अपना बचाव करने का मौका न दिया गया हो।

(3) इस सेक्शन में किसी भी बात को हाई कोर्ट को बरी करने के फैसले को सज़ा में बदलने का अधिकार देने वाला नहीं माना जाएगा।

(4) जहाँ इस कोड के तहत अपील की जा सकती है और कोई अपील नहीं की जाती है, तो उस पार्टी की तरफ से रिवीजन की कोई भी कार्यवाही स्वीकार नहीं की जाएगी, जो अपील कर सकती थी।

(5) जहाँ इस संहिता के तहत अपील की जा सकती है, लेकिन किसी व्यक्ति ने हाई कोर्ट में रिवीजन के लिए आवेदन किया है और हाई कोर्ट को लगता है कि यह आवेदन इस गलतफहमी में किया गया था कि वहाँ अपील नहीं की जा सकती और न्याय के हित में ऐसा करना ज़रूरी है, तो हाई कोर्ट रिवीजन के आवेदन को अपील याचिका मान सकता है और उसी के अनुसार कार्रवाई कर सकता है।”

20. ऊपर बताई गई धारा 397 सीआर.पी.सी. में यह प्रावधान है कि हाई कोर्ट या कोई भ्रमशंस जज अपने या अपने स्थानीय अधिकार क्षेत्र में स्थित किसी भी निचली आपराधिक अदालत के सामने किसी भी कार्यवाही का रिकॉर्ड मंगवा सकता है और उसकी जांच कर सकता है, ताकि वह खुद संतुष्ट हो सके; किसी भी फैसले, सज़ा या आदेश की सही होने, कानूनी होने या उचित होने के बारे में, जो दर्ज किया गया हो या पास किया गया हो, और ऐसी निचली अदालत की किसी भी कार्यवाही की नियमितता के बारे में, और जब ऐसा रिकॉर्ड मंगवाया जाता है, तो यह निर्देश दे सकता है कि किसी भी सज़ा या आदेश का पालन रोक दिया जाए, और यदि आरोपी हिरासत में है तो उसे रिकॉर्ड की जांच होने तक अपने बॉन्ड पर जमानत पर रिहा कर दिया जाए।

21. सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. और सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. में यह नहीं कहा गया है कि अगर आरोपी, दोषी ठहराए जाने और उसकी अपील खारिज होने के बाद, संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर नहीं करता है, तो हाई कोर्ट क्रिमिनल रिवीजन पर सुनवाई करने से मना कर देगा। हालांकि, यह ध्यान देने वाली बात है कि क्रिमिनल रिवीजन का उपाय एक विवेकाधीन उपाय है और यह हाई कोर्ट के विवेक पर निर्भर करता है कि वह क्रिमिनल रिवीजन पर सुनवाई करे या उसे खारिज कर दे।

22. इलाहाबाद हाई कोर्ट ने अपनी प्रक्रिया को रेगुलेट करने के लिए इलाहाबाद हाई कोर्ट रूल्स, 1952 बनाए थे। आसानी से समझने के लिए, 1952 के रूल्स के पार्ट III के चैप्टर XVIII के रूल 2 और रूल 3 नीचे दिए गए हैं:-

2. अपील या आवेदन स्वीकार करने के मोशन पर कोर्ट का आदेश :- जहाँ बेंच जिसके सामने अपील की याचिका या रिवीजन के लिए आवेदन या अन्य आवेदन को स्वीकार करने के लिए मोशन किया जाता है, यह पाती है कि इसके साथ ज़रूरी कागज़ात, यदि कोई हों, नहीं हैं, या यह अन्यथा ठीक नहीं है या समय पर पेश नहीं किया गया है, तो वह इसे लेने से मना कर सकती है या इसे खारिज कर सकती है या ऐसा कोई अन्य आदेश पारित कर सकती है जैसा वह उचित समझे।

अगर उसे लगता है कि ऐसी याचिका या आवेदन सही है, समय पर पेश किया गया है और उसके साथ ज़रूरी कागज़ात भी हैं, तो वह--

(i) अपील की याचिका के मामले में उसे मंजूर करने और नोटिस जारी करने का आदेश दे सकता है; और

(ii) रिवीजन के आवेदन या अन्य आवेदन के मामले में उसे खारिज कर सकता है या नोटिस जारी करने का निर्देश दे सकता है या ऐसा कोई और आदेश दे सकता है जो उसे सही लगे:

बशर्त कि इस नियम में दी गई कोई भी बात बेंच को [कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर, 1973 की धारा 384 के तहत] किसी भी अपील याचिका को खारिज करने से नहीं रोकेगी, या किसी आवेदन का नोटिस जारी करने की ज़रूरत नहीं होगी, अगर ऐसे आवेदन का नोटिस पहले ही दूसरी पार्टी या उसके वकील को दिया जा चुका है।

“3. अपील याचिका या रिवीजन आवेदन या अन्य आवेदन की सामग्री :- (1) प्रत्येक अपील याचिका या रिवीजन आवेदन या अन्य आवेदन के साथ मामले का तारीख/घटनावार सारांश होना चाहिए और उसमें आगे निम्नलिखित बातें बताई जाएंगी--

(a) हर अपीलकर्ता या आवेदक का नाम और, अगर अपील या रिवीजन राज्य की ओर से नहीं है, तो पता;

(b) हर विरोधी पक्ष का नाम और, अगर विरोधी पक्ष राज्य नहीं है, तो उपलब्ध होने पर पता;

(c) जिस कोर्ट के आदेश के खिलाफ अपील या रिवीजन दायर किया गया है, उस कोर्ट का नाम और उस कोर्ट के पीठासीन अधिकारी का नाम;

(d) उस कोर्ट द्वारा पारित आदेश की प्रकृति, जिसमें दी गई सज़ा भी शामिल है, यदि कोई हो;

(e) कानून के वे प्रावधान जो उस अपराध को परिभाषित करते हैं जिसके लिए आरोपी व्यक्ति को उस न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया या बरी किया गया या जिसके तहत उस न्यायालय द्वारा उसके साथ कार्रवाई की गई;

(f) उस आदेश पर आपत्ति का आधार या आधार, जिन्हें क्रम से संख्या दी गई हो, जिसके विरुद्ध अपील या पुनरीक्षण दायर किया गया है;

(g) मांगी गई राहत; और इस पर अपीलकर्ता या आवेदक, जैसा भी मामला हो, या उसकी ओर से किसी वकील द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे।

(2) अगर वकील किसी जजमेंट पर भरोसा कर रहे हैं, तो उनके पास उसकी तीन फोटोकॉपी तैयार होनी चाहिए, दो जजों के लिए और एक दूसरी पार्टी के लिए।

(3) अपीलीय आदेश या बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील की याचिका या अपील या रिवीजन में पास किए गए आदेश के रिवीजन के लिए आवेदन में उस कोर्ट का नाम और विवरण भी बताया जाएगा जिसने पहली बार मामले की सुनवाई की थी और उसके द्वारा पास किए गए आदेश की प्रकृति भी बताई जाएगी।

(4) जिस मामले में कारावास की सज़ा दी गई है, उस मामले में अपील की याचिका या रिवीजन की अर्ज़ी में अपील करने वाले या अर्ज़ी देने वाले के वकील द्वारा साइन किया हुआ एक सर्टिफिकेट भी होना चाहिए, जिसमें यह बताया गया हो कि आरोपी ज़मानत पर नहीं था या, अगर वह ज़मानत पर था, तो उसने सरेंडर

कर दिया है। जिस मामले में जिस कोर्ट के फैसले के खिलाफ अपील की गई है, उसने क्रिमिनल प्रोसीजर कोड, 1973 की धारा 389 की उप-धारा (3) के तहत ज़मानत दी है, तो यह बात अपील की याचिका में बताई जाएगी, जिसमें यह भी बताया जाएगा कि ऐसी ज़मानत कितने समय के लिए दी गई है।

23. 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 3(4) में यह प्रावधान है कि जिस मामले में कारावास की सज़ा दी गई है, उस मामले में रिवीजन की अर्जी में आवेदक के वकील या आवेदक द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रमाण पत्र भी होना चाहिए, जिसमें यह बताया गया हो कि आरोपी जमानत पर नहीं था या, यदि वह जमानत पर था, तो उसने आत्मसमर्पण कर दिया है। 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII का नियम 2 आगे यह प्रावधान करता है कि जहाँ बेंच जिसके सामने अपील की याचिका या रिवीजन के लिए आवेदन या अन्य आवेदन को स्वीकार करने के लिए प्रस्ताव किया जाता है, यह पाती है कि इसके साथ आवश्यक कागजात, यदि कोई हों, नहीं हैं, या यह अन्यथा क्रम में नहीं है या इसे समय के भीतर प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो वह इसे प्राप्त करने से इनकार कर सकती है या इसे खारिज कर सकती है या ऐसा कोई अन्य आदेश पारित कर सकती है जैसा वह उचित समझे।

24. 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 3(4) में नियम बनाने वाले अथॉरिटी द्वारा इस्तेमाल की गई भाषा को सिर्फ़ पढ़ने से यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह एक ज़रूरी शर्त है कि अगर किसी व्यक्ति को दोषी ठहराया गया है और उसे जेल की सज़ा सुनाई गई है, तो रिवीजन के लिए अर्जी दाखिल करते समय, उसे रिवीजन के साथ एक सर्टिफिकेट भी देना होगा जिसमें यह लिखा हो कि या तो वह जमानत पर नहीं था या अगर वह जमानत पर था, तो उसने सरेंडर कर दिया था। नियम बनाने वाली अथॉरिटी ने जानबूझकर "इसमें एक सर्टिफिकेट भी होना चाहिए" शब्दों का इस्तेमाल किया था ताकि यह बिल्कुल साफ़ हो जाए कि रिवीजन करने वाले को अपना रिवीजन सही तरीके से करने के लिए, संबंधित कोर्ट के सामने अपने सरेंडर का सर्टिफिकेट अनिवार्य रूप से फाइल करना होगा और अगर यह शर्त पूरी नहीं होती है, तो 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII के नियम 2 में दिए गए प्रावधानों के अनुसार हाई कोर्ट के पास रिवीजन को खारिज करने का अधिकार होगा। इसके अलावा, 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII का उपरोक्त नियम 2 हाई कोर्ट को यह अधिकार भी देता है कि असाधारण परिस्थितियों में, हाई कोर्ट रिवीजन करने वाले को ऐसे सर्टिफिकेट फाइल करने से छूट देने के अनुरोध पर विचार कर सकता है।

25. इस कोर्ट का मानना है कि 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII के नियम 2 और नियम 3(4) सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. और सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. में दिए गए प्रावधानों के खिलाफ नहीं हैं और अगर उन्हें एक साथ पढ़ा जाए, तो यह नतीजा निकलता है कि आम तौर पर, रिवीजन करने वाले को, क्रिमिनल रिवीजन फाइल करते समय, एक सर्टिफिकेट फाइल करना होता है जिसमें यह बताया गया हो कि या तो वह ट्रायल और अपील के दौरान बेल पर नहीं था या अगर वह बेल पर था, तो उसने सरेंडर कर दिया था, लेकिन खास हालात में, रिवीजन करने वाला आगे आकर उन खास हालात को हाई कोर्ट के सामने दिखा सकता है और

ऐसे सर्टिफिकेट फाइल करने से छूट मांग सकता है, लेकिन अगर ऐसी छूट नहीं मांगी गई है, तो संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर किए बिना दोषी द्वारा फाइल किए गए रिवीजन पर हाई कोर्ट विचार नहीं करेगा।

26. माननीय सुप्रीम कोर्ट ने बिहारी प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य के मामले में, (2000) 10 SCC 346 में एक फैसला सुनाया था और कहा था कि क्रिमिनल प्रोसीजर कोड में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि हाई कोर्ट के रिवीजनल जूरिस्टिक्शन का इस्तेमाल करने के लिए, जिस व्यक्ति को दोषी ठहराया गया है और जिसकी अपील खारिज कर दी गई है, उसे संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर करना होगा।

27. मैंने माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा बिहारी प्रसाद सिंह (उपरोक्त) के मामले में दिए गए फैसले को ध्यान से पढ़ा है और इससे पता चलता है कि जो मामला माननीय सुप्रीम कोर्ट के सामने था, वह पटना हाई कोर्ट से आया था और यह पाया गया कि पटना हाई कोर्ट में ऐसा कोई नियम नहीं है जिसके तहत किसी दोषी को आपराधिक रिवीजन दायर करने से पहले संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर करना पड़े और साथ ही, क्रिमिनल प्रोसीजर कोड में भी ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि अगर किसी दोषी ने सरेंडर नहीं किया है, तो हाई कोर्ट उसकी रिवीजन याचिका पर विचार नहीं करेगा। अब, जब माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए उपरोक्त फैसले को 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 2 और नियम 3(4) के साथ देखा जाता है, तो यह साफ़ हो जाता है कि इलाहाबाद हाई कोर्ट में लागू नियम यह अनिवार्य बनाते हैं कि इलाहाबाद हाई कोर्ट में क्रिमिनल रिवीजन याचिका दायर करने से पहले एक दोषी को संबंधित कोर्ट में सरेंडर करना होगा।

28. 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 3(4) को देखते हुए, इस न्यायालय का मत है कि माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा बिहारी प्रसाद सिंह (उपरोक्त) के मामले में दिया गया उपरोक्त फैसला याचिकाकर्ता के लिए किसी काम का नहीं है।

29. माननीय सुप्रीम कोर्ट ने विवेक राय और अन्य बनाम झारखंड हाई कोर्ट, रजिस्ट्रार जनरल और अन्य के मामले में दिए गए अपने फैसले, (2015) 12 SCC 86 में यह माना था कि झारखंड हाई कोर्ट के नियम 159, जिसमें यह प्रावधान है कि सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ पढ़े गए सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत आपराधिक रिवीजन याचिका दायर करने से पहले एक दोषी को सक्षम अदालत के सामने सरेंडर करना होगा, सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. और सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. में किए गए प्रावधानों के साथ असंगत नहीं है। विवेक राय (उपरोक्त) के मामले में माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:-

“2. संबंधित नियम इस प्रकार है:

“159. आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 397 और 401 के तहत दोषसिद्धि और कारावास की सज़ा से उत्पन्न पुनरीक्षण के मामले में, याचिकाकर्ता यह बताएगा कि क्या याचिका के साथ संबंधित आदेश की प्रमाणित प्रति संलग्न है। यदि उसने आत्मसमर्पण नहीं किया है, तो याचिका के साथ एक निश्चित अवधि के भीतर आत्मसमर्पण करने की अनुमति मांगने वाला एक आवेदन संलग्न होगा। पर्याप्त कारण बताए जाने

पर, बेंच ऐसा समय और ऐसी शर्तें दे सकती है जो उसे उचित लगे। जब तक याचिकाकर्ता संबंधित अदालत में हिरासत में आत्मसमर्पण नहीं कर देता, तब तक ऐसी किसी भी पुनरीक्षण याचिका को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध नहीं किया जाएगा।"

X X X X X X X X

6. हमें नियम की वैधता को चुनौती देने में कोई दम नहीं लगता। यह एक जानी-मानी प्रथा है कि आम तौर पर सज़ा और फैसले के खिलाफ़ रिवीजन तब दायर किया जाता है जब अपील खारिज हो जाती है और दोषी व्यक्ति को कोर्ट में ही हिरासत में ले लिया जाता है। इस नियम का मकसद यह पक्का करना है कि जिस व्यक्ति को दो अदालतों ने दोषी ठहराया है, वह कानून का पालन करे और भागे नहीं। इसलिए इस प्रावधान को किसी भी तरह से मनमाना नहीं कहा जा सकता। यह प्रावधान कोर्ट की प्रक्रिया को रेगुलेट करने के लिए है और याचिकाकर्ताओं द्वारा बताए गए सीआर.पी.सी. के मूल प्रावधानों से किसी भी तरह से टकराव नहीं करता है।

7. सुप्रीम कोर्ट रूल्स, 1966 में भी ऐसा ही एक प्रोविजन है। के.एम. नानावटी बनाम स्टेट ऑफ़ बॉम्बे मामले में इस कोर्ट ने सुप्रीम कोर्ट रूल्स के ऑर्डर XXI रूल 6 के वैसे ही प्रोविजन के दायरे और असर पर विचार किया था, जो उस समय लागू था और जो इस प्रकार था:

"14... 'जहां याचिकाकर्ता को कारावास की सज़ा सुनाई गई है, वहां याचिका में यह बताया जाएगा कि क्या याचिकाकर्ता ने आत्मसमर्पण कर दिया है। जब तक अदालत अन्यथा आदेश न दे, याचिका पर तब तक सुनवाई नहीं होगी जब तक याचिकाकर्ता अपनी सज़ा के लिए आत्मसमर्पण नहीं कर देता।"

यह देखा गया कि यह नियम केवल इस कोर्ट और हाई कोर्ट्स की पहले से चली आ रही प्रथा को ही पक्का करता है। इसके अलावा, यह सवाल भी उठाया गया कि क्या यह नियम संविधान के आर्टिकल 161 का उल्लंघन करता है, जो राज्यपाल को सज़ा निलंबित करने की शक्ति देता है, क्योंकि उस मामले में, राज्यपाल ने सज़ा निलंबित कर दी थी, लेकिन फिर भी नियम के तहत दोषी को सरेंडर करना ज़रूरी था। इस कोर्ट ने माना कि राज्यपाल की शक्ति कोर्ट की प्रक्रिया को नियंत्रित नहीं कर सकती और अगर मामला इस कोर्ट में सुना जाना है, तो जब तक यह कोर्ट छूट नहीं देता, नियम ही लागू होगा। हम इस मामले में उस सवाल से संबंधित नहीं हैं। उस फैसले में प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

"14. यह नियम पिछले साल सुप्रीम कोर्ट के नियमों में शामिल किया गया था और इसने सिर्फ़ इस कोर्ट की पहले से चली आ रही प्रथा को पक्का किया, जो हाई कोर्ट में भी प्रचलित है। यह प्रथा एक बहुत ही सही सिद्धांत पर आधारित है जिसे बहुत पहले 1870 में हाई कोर्ट ऑफ़ जुडिकेचर, नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविंसेस की फुल बेंच ने R. v. बिसेशर प्रसाद के मामले में मान्यता दी थी। उस मामले में सज़ा का कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। आरोपी के खिलाफ़ सिर्फ़ एक वारंट जारी किया गया था और क्योंकि वारंट तामील नहीं हो पाया था, इसलिए एक उद्घोषणा जारी की गई थी और उसे सरेंडर करने के लिए मजबूर करने के मकसद से आरोपी की संपत्ति कुर्क करने का आदेश दिया गया था। वारंट की वैधता को हाई कोर्ट में चुनौती दी गई थी।

हाई कोर्ट ने उसकी याचिका पर तब तक सुनवाई करने से मना कर दिया जब तक वह सरेंडर नहीं कर देता, क्योंकि उसे कानूनी रूप से गठित अथॉरिटी की अवमानना करने वाला माना गया था। हाई कोर्ट के आदेश के बाद आरोपी व्यक्ति ने सरेंडर कर दिया और उसके सरेंडर करने के बाद, हाई कोर्ट ने मामले पर उसके गुणों के आधार पर सुनवाई की। लेकिन जैसा कि ऊपर बताया गया है, आर्टिकल 145 के तहत बनाए गए नियम सिर्फ आर्टिकल 142 के तहत इस कोर्ट की शक्तियों की मदद के लिए हैं और विचार करने वाला मुख्य सवाल यह है कि क्या आर्टिकल 161 के तहत गवर्नर द्वारा पारित सस्पेंशन का आदेश तब लागू हो सकता है जब इस कोर्ट में हाई कोर्ट के फैसले और आदेश के खिलाफ अपील के लिए स्पेशल लीव देने के लिए अर्जी दी गई हो। जैसे ही याचिकाकर्ता ने अपील के लिए स्पेशल लीव की याचिका दायर की, मामला इस कोर्ट में विचाराधीन हो गया। यह कोर्ट अपने नियमों के तहत याचिकाकर्ता से इस कोर्ट द्वारा सुनवाई से पहले शर्त के तौर पर अपनी सज़ा के सामने सरेंडर करने पर ज़ोर दे सकता था, हालांकि यह कोर्ट उस नियम से छूट दे सकता था और सही मामले में उसे उस नियम के लागू होने से छूट दे सकता था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि इस कोर्ट के पास सज़ा पर रोक लगाने की शक्ति है और अपील के लिए विशेष अनुमति याचिका के निपटारे तक ज़मानत देने की शक्ति भी है। नियमों के आर्डर 21 का नियम 28 उस अवधि को कवर नहीं करता है, लेकिन फिर भी संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत कोर्ट की ऐसी शक्ति पर कोई विवाद नहीं था जो इस मामले में पूरा न्याय करने के लिए ज़रूरी है और इस कोर्ट के लिए यह खुला रहेगा कि विशेष अनुमति याचिका लंबित होने पर भी वह अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करके किसी भी मामले में कोई भी आदेश दे सकता है जो पूरा न्याय करने के लिए ज़रूरी है।

XXXXXXXXXXXXXX

10. आगे सिर्फ यह दलील दी गई है कि कोर्ट की केस को लिस्ट करने का निर्देश देने की स्वाभाविक शक्ति, जिसमें सरेंडर की शर्त से छूट दी गई थी, उसे खत्म कर दिया गया है। यह बताया गया है कि सुप्रीम कोर्ट के नियमों में भी सरेंडर के बिना लिस्टिंग पर रोक तब लागू नहीं होती, जब कोर्ट अन्यथा निर्देश दे। ऐसा अपवाद विवादित नियम में नहीं मिलता है।

11. हाई कोर्ट के विद्वान वकील ने भी इस बात पर विवाद नहीं किया है कि यह नियम असाधारण स्थितियों में सरेंडर की शर्त से छूट देने की हाई कोर्ट की स्वाभाविक शक्ति को प्रभावित नहीं करता है। इसलिए, यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि एडमिशन के लिए रिवीजन याचिका पोस्ट करने पर रोक उस स्थिति पर भी लागू होती है, जहाँ याचिकाकर्ता की अर्जी पर, मामला बनने पर, कोर्ट अपनी स्वाभाविक शक्ति का इस्तेमाल करते हुए, मामले की प्रकृति और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, सरेंडर से छूट देना उचित समझता है। इस प्रकार, संबंधित सुप्रीम कोर्ट नियमों में पाया गया अपवाद कि यदि कोर्ट सरेंडर से छूट देता है और मामले को लिस्ट करने का निर्देश देता है, तो यह नियम कोर्ट के इस तरह के अधिकार क्षेत्र के इस्तेमाल में बाधा नहीं बन सकता, इसे विवादित नियम में मान लिया जाना चाहिए।

30. माननीय सुप्रीम कोर्ट ने विवेक राय (ऊपर बताया गया) के मामले में दिए गए फैसले में साफ तौर पर यह पाया था कि यह एक आम चलन है कि आमतौर पर सज़ा और जेल की सज़ा के खिलाफ रिवीजन

अपील खारिज होने के बाद दायर की जाती है और दोषी व्यक्ति को हिरासत में ले लिया जाता है। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में आगे कहा था कि झारखंड हाई कोर्ट द्वारा अपनी प्रक्रिया को रेगुलेट करने के लिए बनाए गए नियम, जिनमें यह प्रावधान है कि सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. को सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के साथ पढ़कर क्रिमिनल रिवीजन फाइल करने के लिए, दोषी को पहले संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर सीआर.पी.सी. करना होगा और उसके बाद ही हाई कोर्ट उसके क्रिमिनल रिवीजन पर विचार कर सकता है, ये नियम सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. और 401 सीआर.पी.सी. में किए गए प्रावधानों के साथ किसी भी तरह से असंगत नहीं हैं। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में यह भी कहा था कि हाई कोर्ट के पास हमेशा यह विवेक होता है कि अगर असाधारण परिस्थितियों में, दोषी सरेंडर से छूट चाहता है, तो वह हाई कोर्ट में एक आवेदन दायर कर सकता है और उस आवेदन पर हमेशा विचार किया जा सकता है और हाई कोर्ट द्वारा विवेक का प्रयोग किया जा सकता है।

31. इंदौर में मध्य प्रदेश हाई कोर्ट ने 28.5.2024 के अपने फैसले में, **क्रिमिनल रिवीजन नंबर 1912 ऑफ 2024, देवनारायण बनाम प्रतीक गोयनका** मामले में, मध्य प्रदेश हाई कोर्ट रूल्स एंड ऑर्डर्स के चैप्टर X के रूल 48 पर विचार किया था, जो 1952 के रूल्स के पार्ट III के चैप्टर XVIII के रूल 3(4) के समान है, जिसमें यह प्रावधान है कि एक दोषी, सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ पढ़े गए सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत क्रिमिनल रिवीजन फाइल करते समय, यह घोषणा देगा कि वह हिरासत में है या सजा के बाद उसने सरेंडर कर दिया है और यह माना गया था कि दोषी के लिए सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ पढ़े गए सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत क्रिमिनल रिवीजन का उपाय अपनाने से पहले सरेंडर करना अनिवार्य है। यह भी माना गया है कि खास परिस्थितियों में, हाई कोर्ट के पास किसी दोषी को सरेंडर से छूट देने का अधिकार है, लेकिन इसके लिए दोषी को हाई कोर्ट के सामने यह साबित करना होगा कि कुछ खास परिस्थितियां हैं जिनमें उसे सरेंडर से छूट दी जानी चाहिए। **देव नारायण (उपरोक्त)** के मामले में इंदौर में मध्य प्रदेश हाई कोर्ट द्वारा दिए गए फैसले के संबंधित पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:-

“5. इस प्रकार, ऊपर बताए गए फैसले में, इस कोर्ट ने माना है कि क्रिमिनल रिवीजन फाइल करने के लिए सरेंडर करने या जेल में रहने की कोई ज़रूरत नहीं है। दूसरी ओर, जहां तक दीपक साहू (ऊपर बताया गया) मामले में ग्वालियर बेंच द्वारा दिए गए फैसले का सवाल है, यह माना गया है कि दोषसिद्धि के खिलाफ रिवीजन याचिका तभी स्वीकार्य होगी जब उसमें इस आशय की घोषणा हो कि दोषी व्यक्ति हिरासत में है या दोषसिद्धि के बाद उसने सरेंडर कर दिया है, सिवाय उन मामलों के जहां निचली अदालत ने सज़ा को सस्पेंड कर दिया हो। दीपक साहू (ऊपर बताया गया) के संबंधित पैरा 1,5,6,7,8,9 और 10 इस प्रकार हैं:-

“1. 19-1-2012 को इस कोर्ट के सामने यह सवाल उठा कि क्या यह क्रिमिनल रिवीजन सुनवाई योग्य है, इस बात के बावजूद कि याचिकाकर्ताओं ने फैसले के समय निचली अदालत के सामने सरेंडर नहीं किया है और अभी भी हिरासत में नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, अगर दोषी व्यक्ति हिरासत में नहीं है या अपनी सज़ा के बाद सरेंडर नहीं किया है और निचली अदालत ने उसकी सज़ा को सस्पेंड नहीं किया है, तो क्या रिवीजन सुनवाई योग्य होगा।

X X X X X X X X X X

5. बिहारी प्रसाद (उपरोक्त) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने पैरा 3 में यह कहा:

“3. क्रिमिनल प्रोसीजर कोड के प्रावधानों के तहत ऐसी कोई ज़रूरत नहीं है, हालांकि इस देश के कई हाई कोर्ट ने अपने-अपने हाई कोर्ट के नियमों में ऐसा प्रावधान किया है। लेकिन हमें बताया गया है कि पटना हाई कोर्ट के नियमों में ऐसा कोई नियम नहीं है। इस स्थिति में, हाई कोर्ट का सिर्फ इस आधार पर रिवीजन की अर्जी खारिज करना सही नहीं था कि आरोपी ने सरेंडर नहीं किया है।

(जोर दिया गया)

6. इस पैराग्राफ को सिर्फ पढ़ने से पता चलता है कि सुप्रीम कोर्ट ने राय दी कि क्रिमिनल प्रोसीजर कोड में ऐसी कोई ज़रूरत नहीं है जो आरोपी के लिए सज़ा के बाद सरेंडर करना ज़रूरी बनाती हो। हालांकि, सुप्रीम कोर्ट ने राय दी कि कुछ हाई कोर्ट ने अपने नियमों में ऐसे प्रावधान किए हैं। किशोर विरवानी (ऊपर बताया गया) मामले में इस कोर्ट ने माना कि इसमें कोई शक नहीं है कि ऐसा कोई नियम नहीं है जो याचिकाकर्ता को हाई कोर्ट में रिवीजन फाइल करने से पहले सरेंडर करने के लिए मजबूर करे। हालांकि, इस फैसले को ध्यान से पढ़ने पर पता चलता है कि हाई कोर्ट के नियम का संबंधित प्रावधान इस कोर्ट के ध्यान में विशेष रूप से नहीं लाया गया था। नियम 48 इस प्रकार है:-

“48. दोषसिद्धि के खिलाफ अपील या रिवीजन याचिका के मेमोरेण्डम में, उन मामलों को छोड़कर जिनमें निचली अदालत ने सज़ा को निलंबित कर दिया है, यह घोषणा होनी चाहिए कि दोषी व्यक्ति हिरासत में है या दोषसिद्धि के बाद उसने सरेंडर कर दिया है।

(जोर दिया गया)

“7. मूल सवाल यह है कि ऊपर बताए गए नियम 48 के अनुसार, क्या रिवीजन फाइल करने से पहले दोषी व्यक्ति के लिए सरेंडर करना अनिवार्य है।

8. इस कोर्ट की राय में, नियम 48 में इस्तेमाल की गई भाषा से यह बिल्कुल साफ है कि आरोपी के लिए यह घोषणा करना अनिवार्य है कि वह हिरासत में है या सज़ा के बाद उसने सरेंडर कर दिया है। नियम में एकमात्र अपवाद यह है कि जब निचली अदालत ने सज़ा को निलंबित कर दिया हो। दूसरे शब्दों में, उन मामलों को छोड़कर जिनमें निचली अदालत ने खुद सज़ा को निलंबित कर दिया था, बाकी सभी मामलों में यह घोषणा करनी होगी कि दोषी व्यक्ति हिरासत में है या सज़ा के बाद उसने सरेंडर कर दिया है। इस प्रकार, ऐसे डिक्लेरेशन देने के संबंध में नियम बनाने वालों का इरादा साफ और स्पष्ट है। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि एक आरोपी ऐसा डिक्लेरेशन तभी दे सकता है जब वह हिरासत में हो या सज़ा के बाद सरेंडर कर दे। इसलिए, इसमें कोई शक नहीं कि नियम का इरादा यह है कि सज़ा के बाद सरेंडर करना होगा या हिरासत में रहना होगा, सिवाय उन मामलों के जहाँ कोर्ट ने सज़ा को सस्पेंड कर दिया हो। “शैल” शब्द का इस्तेमाल इसे अनिवार्य बनाने के लिए किया गया है। यह कानूनी व्याख्या का एक अच्छा सिद्धांत है कि जब किसी कानून के शब्द स्पष्ट, सादे

और बिना किसी अस्पष्टता के हों, तो कोर्ट परिणामों की परवाह किए बिना उस अर्थ को लागू करने के लिए बाध्य हैं। नेल्सन मोटिस बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (1992) 4 SCC 711 : AIR 1992 SC 1981।

9. सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि “अगर कानून के शब्द अपने आप में सटीक और साफ हैं, तो उन शब्दों को उनके स्वाभाविक और सामान्य अर्थ में समझाने के अलावा और कुछ ज़रूरी नहीं हो सकता। ऐसे मामलों में शब्द खुद ही कानून बनाने वाले के इरादे को सबसे अच्छे से बताते हैं।” (पेज 50, प्रिंसिपल्स ऑफ स्टैच्यूटरी इंटरप्रीटेशन) (12वां एडिशन 2010, जस्टिस जी.पी. सिंह द्वारा)। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी राय दी कि जब भाषा साफ और स्पष्ट हो और उसका केवल एक ही अर्थ निकलता हो, तो किसी कानून की व्याख्या का सवाल ही नहीं उठता, कानून खुद ही सब कुछ बताता है। इस कानूनी स्थिति को देखते हुए, मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि नियम 48 आरोपी के लिए सज़ा के बाद सरेंडर करने या हिरासत में रहने के बारे में घोषणा करना अनिवार्य बनाता है।

10. चूंकि, खास तौर पर नियम 48 को किशोर (ऊपर बताया गया) मामले में इस कोर्ट के ध्यान में नहीं लाया गया था, इसलिए वह फैसला इस पहलू पर साफ तौर पर अलग है। ऊपर दिए गए एनालिसिस के आधार पर, यह माना जाता है कि सज़ा के खिलाफ रिवीजन याचिका तभी स्वीकार्य होगी जब उसमें यह घोषणा हो कि दोषी व्यक्ति हिरासत में है या सज़ा के बाद उसने सरेंडर कर दिया है, सिवाय उन मामलों के जहां निचली अदालत ने सज़ा को सस्पेंड कर दिया हो।

(जोर दिया गया)

32. अब, यह कोर्ट माननीय सुप्रीम कोर्ट और इंदौर में मध्य प्रदेश हाई कोर्ट द्वारा दिए गए उपरोक्त फैसलों की रोशनी में, सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ पढ़े गए सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत आपराधिक रिवीजन के मामले में, 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 2 और नियम 3(4) के मकसद पर विचार करेगा। यह स्पष्ट है कि सेक्शन 235, 248 और 353 सीआर.पी.सी. साफ तौर पर यह बताते हैं कि किसी आरोपी को दोषी ठहराए जाने पर, उसे संबंधित कोर्ट के सामने सरेंडर करना होगा और उसकी मौजूदगी में, कोर्ट सज़ा के संबंध में फैसला लेगा। अगर क्रिमिनल प्रोसीजर कोड की अलग-अलग धाराओं में किए गए प्रावधानों पर एक साथ विचार किया जाए, तो यह साफ ज़ाहिर है कि सज़ा सुनाए जाने के बाद, दोषी के लिए ट्रायल कोर्ट के सामने सरेंडर करना ज़रूरी है और अगर उसने सरेंडर नहीं किया है, तो संबंधित कोर्ट का यह कर्तव्य है कि वह दोषी को अपने सामने सरेंडर करवाए।

33. इलाहाबाद हाई कोर्ट ने इलाहाबाद हाई कोर्ट रूल्स, 1952 नाम से नियम बनाए थे। 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII के रूल 3(4) के साथ पढ़े जाने वाले रूल 2 में साफ तौर पर कहा गया है कि एक दोषी को क्रिमिनल रिवीजन के साथ एक सर्टिफिकेट फाइल करना होगा, जिसमें यह सर्टिफाई किया गया हो कि या तो वह बेल पर नहीं था या अगर वह बेल पर था, तो उसने कोर्ट के सामने सरेंडर कर दिया था और अगर वह सर्टिफिकेट रिवीजन के साथ नहीं होता है, तो वह सही नहीं माना जाएगा और हाई कोर्ट उसे रिजेक्ट कर सकता है। यह ध्यान देने वाली बात है कि 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम

3(4) में नियम बनाने वाली अथॉरिटी ने जानबूझकर "इसमें एक सर्टिफिकेट भी होना चाहिए" शब्दों का इस्तेमाल किया था, ताकि इस नियम के तहत ज़रूरतों को रिवीजन करने वाले के लिए अनिवार्य बनाया जा सके, जिसका मतलब है कि जब तक दोषी, सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ पढ़े गए सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत क्रिमिनल रिवीजन फाइल करते समय यह सर्टिफिकेट नहीं देता कि उसने सरेंडर कर दिया है, तब तक क्रिमिनल रिवीजन सही नहीं माना जाएगा और हाई कोर्ट उसे स्वीकार नहीं करेगा। हालांकि, अगर 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII के नियम 2 को नियम 3(4) के साथ पढ़ा जाए, तो इससे रिवीजनिस्ट को कुछ खास परिस्थितियों के आधार पर सरेंडर से छूट के लिए एप्लीकेशन फाइल करने का मौका मिलता है और अगर ऐसी छूट मांगी जाती है, तो हाई कोर्ट छूट मांगने वाली उस एप्लीकेशन पर विचार कर सकता है और ज़रूरी आदेश दे सकता है।

34. अब इस मामले के तथ्यों पर आते हैं, रिकॉर्ड से यह साफ है कि ट्रायल कोर्ट द्वारा दोषी ठहराए जाने के बाद रिवीजनिस्ट ने सरेंडर नहीं किया और अपीलीय कोर्ट में अपनी अपील पेंडिंग रहने के दौरान भी उसने सरेंडर नहीं किया। रिवीजन करने वाले ने, सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ पढ़े जाने वाले सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत यह क्रिमिनल रिवीजन फाइल करते समय, 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII के नियम 3(4) के तहत ज़रूरी सर्टिफिकेट नहीं लगाया है कि उसने सरेंडर कर दिया है, इसलिए यह क्रिमिनल रिवीजन सही नहीं है और इस तरह, 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII के नियम 2 में दिए गए प्रावधानों को देखते हुए, इस क्रिमिनल रिवीजन पर विचार नहीं किया जा सकता और इसे खारिज किया जा सकता है।

35. यह भी ध्यान देने वाली बात है कि जब रिवीजन करने वाले ने, यह क्रिमिनल रिवीजन फाइल करते समय, अपने सरेंडर से छूट नहीं मांगी है और न ही उन परिस्थितियों के बारे में बताया है जिनमें वह सरेंडर करने की स्थिति में नहीं है, तो इस कोर्ट के लिए इस मुद्दे पर विचार करने का कोई मौका नहीं है कि क्या रिवीजन करने वाले को सरेंडर से छूट दी जा सकती है।

36. ऊपर बताए गए तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, खासकर 1952 के नियमों के भाग III के अध्याय XVIII के नियम 2 और नियम 3(4) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए और यह भी ध्यान में रखते हुए कि सेक्शन 397 सीआर.पी.सी. के साथ पढ़े जाने वाले सेक्शन 401 सीआर.पी.सी. के तहत दिया गया रिवीजन का उपाय एक विवेकाधीन उपाय है, यह कोर्ट इस रिवीजन पर विचार करने के लिए अपने विवेक का इस्तेमाल करने से इनकार करता है।

37. ऊपर बताए गए कारणों को देखते हुए, इस रिवीजन पर विचार नहीं किया जा सकता और इसे खारिज किया जाता है।

38. हालांकि, क्योंकि रिवीजन करने वाले द्वारा दायर क्रिमिनल रिवीजन को सिर्फ इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII के नियम 3(4) के तहत ज़रूरी शर्तों का पालन नहीं किया गया है, इसलिए यह कोर्ट रिवीजन करने वाले को 1952 के नियमों के पार्ट III के चैप्टर XVIII के उपरोक्त नियम 3(4) की शर्तों का पालन करने और नया रिवीजन दायर करने की छूट देता है।

(2025) 3 ILRA 496

अपीलीय क्षेत्राधिकार, दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 26.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन

के समक्ष

प्रथम अपील से आदेश संख्या 12/2011

और

प्रथम अपील आदेश संख्या 529/2011 और 10/2011

अविनाश शर्मा

...अपीलकर्ता

बनाम

सोभान लाल और अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील: विवेक राज सिंह, अविनाश चंद्र

प्रतिवादियों के वकील: राजेंद्र जायसवाल, राजेश कुमार शर्मा, वकार हाशिम

आपराधिक कानून - मोटर दुर्घटना दावे - मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण (एमएसीपी) - वाहन स्वामी की जिम्मेदारी - चालक लाइसेंस की वैधता - दुर्घटना दिनांक 28.12.2006 - चोटों के लिए दावा दायर किया गया - न्यायाधिकरण ने चालक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस न होने के कारण मालिक को मुआवजे के लिए उत्तरदायी ठहराया - मालिक वैध चालक होने का प्रमाण प्रस्तुत करने में विफल रहा - मालिक का यह दावा कि वैध लाइसेंस किसी अन्य चालक के पास था, खारिज कर दिया गया - न्यायाधिकरण ने आरोप पत्र पर सही ढंग से भरोसा किया जिसमें बिना लाइसेंस वाले चालक का उल्लेख था - अपीलकर्ता द्वारा वैध चालक साबित करने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया गया - अपील खारिज कर दी गई। (पैरा 6, 7, 13, 16, 23 और 25)

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 102, 105, 106 और 114 - प्रमाण का भार - जब कोई तथ्य किसी एक पक्ष के संज्ञान में हो, तो उसे सिद्ध करने का भार उसी पक्ष पर होता है - गवाह के रूप में उपस्थित न होने पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाता है। (पैरा 17, 23)

मोटर दुर्घटना दावे – वाहन मालिक की देयता – मालिक द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत न करना – वाहन मालिक द्वारा चालक की पहचान बताने या वैध ड्राइविंग लाइसेंस साबित करने में विफल रहने पर मालिक को उत्तरदायी ठहराया जाता है – आरोप पत्र के साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि चालक के पास वैध लाइसेंस नहीं था। (पैरा 13, 16)

निर्णय:

इस संबंध में न्यायालय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (जिसे आगे "अधिनियम, 1872" कहा गया है) की धारा 102 का संदर्भ ले सकता है, जिसमें कहा गया है कि किसी मुकदमे या कार्यवाही में साक्ष्य का भार उस व्यक्ति पर होता है जो दोनों पक्षों द्वारा कोई साक्ष्य न दिए जाने की स्थिति में असफल हो जाएगा। (पैरा 18)

अधिनियम, 1872 की धारा 105 में भारतीय दंड संहिता के किसी सामान्य अपवाद या उसी संहिता के किसी अन्य भाग या अपराध को परिभाषित करने वाले किसी कानून में निहित किसी विशेष अपवाद या परंतुक के अंतर्गत किसी परिस्थिति के अस्तित्व को सिद्ध करने का भार आरोपी व्यक्ति पर निर्धारित किया गया है और न्यायालय ऐसी परिस्थितियों के अभाव को मान लेगा। (पैरा 18)

अधिनियम, 1872 की धारा 106 में कहा गया है कि जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में हो, तो उस तथ्य को सिद्ध करने का भार उसी व्यक्ति पर होता है। (पैरा 19)

इस प्रकार, श्री सिराजू द्वारा वाहन चलाए जाने की जानकारी केवल अपीलकर्ता को ही थी और अतः इस तथ्य को सिद्ध करने का भार उन्हीं पर था। यद्यपि, अपीलकर्ता की ओर से कोई भी गवाह माननीय न्यायाधिकरण के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ, जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि वाहन श्री सिराजू द्वारा चलाया जा रहा था, अर्थात् वह चालक जिसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था।

(पैरा 20)

अधिनियम, 1872 की धारा 114 दृष्टांत (जी) के अनुसार, यदि कोई पक्ष गवाह के रूप में उपस्थित होने और अपना पक्ष रखने से परहेज करता है तथा दूसरे पक्ष द्वारा जिरह के लिए स्वयं को प्रस्तुत नहीं करता है, तो यह अनुमान लगाया जाता है कि उसके द्वारा प्रस्तुत मामला सही नहीं है।

(पैरा 21)

जैसा कि ऊपर पहले ही बताया गया है, विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष ऐसा कोई साक्ष्य नहीं था जिससे यह संकेत मिले कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन वाहन का चालक श्री सिराजू था, जिसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था, विशेषकर तब जब वाहन के मालिक ने लिखित बयान दाखिल करते समय चालक का नाम छुपाया था। अतः, जय देव सिंह (उपरोक्त) का निर्णय इस मामले में लागू नहीं होगा।

(पैरा 25)

अपील खारिज। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम जय देव सिंह और अन्य, 2010 (28) एलसीडी 499
2. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम ज्ञान चंद और अन्य, (1997) 7 एससीसी 558

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन, द्वारा सुनाया गया)

1. हमने अपीलकर्ता की ओर से विद्वान वकील श्री अविनाश चंद्र और प्रतिवादी नंबर 1 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री राजेश कुमार शर्मा की दलीलें सुनीं।

2. अपीलकर्ता के वकील का कहना है कि फर्स्ट अपील फ्रॉम ऑर्डर नंबर - 12 ऑफ 2011 (जिसे इसके बाद "फर्स्ट अपील" कहा जाएगा), फर्स्ट अपील फ्रॉम ऑर्डर नंबर - 529 ऑफ 2011 (जिसे इसके बाद "सेकंड अपील" कहा जाएगा) और फर्स्ट अपील फ्रॉम ऑर्डर नंबर - 10 ऑफ 2011 (जिसे इसके बाद "थर्ड अपील" कहा जाएगा) में शामिल मुद्दे एक जैसे हैं। इसलिए, कोर्ट सभी अपीलों की सुनवाई एक साथ कर रहा है। सुविधा के लिए, फर्स्ट अपील नंबर 12 ऑफ 2011 के तथ्यों को लिया जा रहा है।

3. पहली अपील नंबर 12/2011, MACP नंबर 74/2007 में 24.09.2010 को दिए गए फैसले और आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जिसमें सोबरन लाल बनाम अविनेश शर्मा और अन्य शामिल हैं, दूसरी अपील MACP नंबर 75/2007 में 17.02.2011 को दिए गए फैसले और आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जिसमें अविनेश शर्मा बनाम विनोद कुमार और अन्य शामिल हैं और तीसरी अपील MACP नंबर 73/2007 में 24.09.2010 को दिए गए फैसले और आदेश के खिलाफ दायर की गई है। ये सभी फैसले और आदेश माननीय मोटर दुर्घटना दावा ट्रिब्यूनल, लखीमपुर खीरी (जिसे इसके बाद "ट्रिब्यूनल" कहा जाएगा) द्वारा पारित किए गए हैं।

4. बिना किसी फालतू डिटेल के, यह बताया गया है कि 28.12.2006 को एक एक्सीडेंट हुआ था। क्लेम याचिका दावेदारों ने उस एक्सीडेंट में लगी चोटों के लिए दायर की थी।

5. विरोधी पार्टियों की ओर से पेश हुए वकील ने साफ तौर पर कहा कि इसमें शामिल एकमात्र सवाल उस गाड़ी के ड्राइवर से जुड़ा है जिससे एक्सीडेंट हुआ था।

6. यह तर्क दिया गया है कि जैसा कि माननीय ट्रिब्यूनल ने पाया है कि जिस वाहन से दुर्घटना हुई, उसके ड्राइवर के पास वैलिड ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, इसलिए, क्लेम वाहन के मालिक, यानी अपीलकर्ता के खिलाफ मंजूर किया गया है।

7. अपीलकर्ता के वकील श्री अविनाश चंद्र ने यह तर्क दिया है कि माननीय ट्रिब्यूनल ने मुद्दा नंबर 2 बनाया था, जो यह था कि "क्या कथित दुर्घटना के समय, संबंधित वाहन से जुड़े सभी कागजात वैध और प्रभावी थे और कथित वाहन के ड्राइवर के पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस था और यदि हाँ, तो इसका क्या असर होगा।"

8. माननीय ट्रिब्यूनल ने बताया है कि हालांकि गाड़ी के मालिक/अपीलकर्ता की ओर से श्री सिराजू के ड्राइविंग लाइसेंस की फोटोकॉपी पेपर नंबर 43 C के तहत फाइल की गई है, फिर भी दर्ज किए गए क्रिमिनल केस में फाइल की गई चार्जशीट से यह सामने आया कि गाड़ी का ड्राइवर श्री गुरुपेज सिंह @ गुरुपेश सिंह था, जो कथित घटना के समय गाड़ी चला रहा था और दुर्घटना की तारीख को उसके पास कोई वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था।

9. अपीलकर्ता के वकील श्री अविनाश चंद्र का तर्क है कि एक बार जब वाहन के मालिक यानी अपीलकर्ता ने लिखित बयान और "फेहरिस्त" (दस्तावेजों की सूची) के साथ श्री सिराजू का ड्राइविंग लाइसेंस भी जमा कर दिया था, जो ड्राइविंग लाइसेंस वैध था, तो विद्वान ट्रिब्यूनल ने उक्त ड्राइविंग लाइसेंस को वाहन के ड्राइवर का लाइसेंस न मानकर और चार्जशीट पर भरोसा करके यह निष्कर्ष निकालने में स्पष्ट रूप से गलती की है कि श्री गुरुपेज सिंह @ गुरुपेश सिंह ही वाहन के ड्राइवर थे और उनके पास कोई वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और वाहन के मालिक के खिलाफ दावा स्वीकार कर लिया गया है। यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम ज्ञान चंद और अन्य - (1997) 7 SCC 558

10. इस संबंध में, नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम जय देव सिंह और 2 अन्य - 2010 (28) LCD 499 के मामले में इस कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया गया है, यह तर्क देने के लिए कि इस कोर्ट ने माना है कि चार्जशीट की सामग्री या धारा 161 Cr.PC के तहत दर्ज बयान या फर्स्ट इंफॉर्मेशन रिपोर्ट को ठोस सबूत के तौर पर नहीं लिया जा सकता है और इसलिए यह तर्क दिया गया है कि माननीय ट्रिब्यूनल ने श्री गुरुपेश सिंह के खिलाफ दायर चार्जशीट पर भरोसा करके यह मानने में साफ तौर पर गलती की है कि वह वाहन का ड्राइवर था।

11. दूसरी ओर, प्रतिवादी नंबर 1 की ओर से पेश हुए विद्वान वकील श्री राजेश कुमार शर्मा ने यह तर्क दिया है कि विद्वान ट्रिब्यूनल ने अपने फैसले में साफ तौर पर कहा है कि लिखित बयान दाखिल करते समय, गाड़ी के मालिक ने यह नहीं बताया कि गाड़ी का ड्राइवर कौन था। आगे यह तर्क दिया गया कि हालांकि श्री सिराजू का ड्राइविंग लाइसेंस फाइल किया गया था, फिर भी वाहन के मालिक ने ऐसा कोई सबूत पेश नहीं किया जिससे यह पता चले कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन वास्तव में श्री सिराजू ही वाहन चला रहे थे और इस प्रकार ऐसा कोई सबूत नहीं था जिससे यह पता चले कि श्री सिराजू वाहन के ड्राइवर थे और परिणामस्वरूप, विद्वान ट्रिब्यूनल ने यह मानने में कोई गलती नहीं की है कि श्री सिराजू को उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन वाहन का ड्राइवर नहीं कहा जा

सकता, बल्कि पुलिस द्वारा दायर चार्जशीट के आधार पर ड्राइवर श्री गुरपेश सिंह थे, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन वाहन के ड्राइवर के पास कोई प्रभावी और वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था।

12. हमने विरोधी पार्टियों की ओर से पेश हुए विद्वान वकीलों की बात सुनी और रिकॉर्ड देखे।

13. रिकॉर्ड देखने से पता चलता है कि 28.12.2006 को एक दुर्घटना हुई थी जिसमें याचिकाकर्ताओं को चोटें आईं, जिसके लिए उन्होंने विद्वान ट्रिब्यूनल के सामने उपरोक्त दावा याचिका दायर की।

14. गाड़ी के मालिक ने एक लिखित बयान दाखिल किया, जिसमें हैरानी की बात यह है कि उस दिन गाड़ी चला रहे ड्राइवर का नाम नहीं बताया गया। गाड़ी के मालिक द्वारा दाखिल किए गए डॉक्यूमेंट्स की लिस्ट में, श्री सिराजू का ड्राइविंग लाइसेंस दाखिल किया गया था। संयोग से, न तो गाड़ी के मालिक और न ही किसी अन्य व्यक्ति ने उस ड्राइविंग लाइसेंस को साबित करने के लिए या यह बताने के लिए कोई सबूत पेश किया कि उस दिन गाड़ी कौन चला रहा था। सम्मानित ट्रिब्यूनल ने मामले के इस पहलू पर विचार किया है और श्री गुरपेश सिंह @ गुरपेश सिंह के खिलाफ दायर चार्जशीट के आधार पर यह माना है कि वह उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन गाड़ी का ड्राइवर था और उसके पास वैध और प्रभावी ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था, और इसलिए, गाड़ी के मालिक को दावेदार को मुआवजा देने के लिए ज़िम्मेदार ठहराया गया है।

15. लिखित बयान को देखने पर, जिसकी एक कॉपी अपील के साथ एनेक्सर 2 के तौर पर भी फाइल की गई है, पता चलता है कि लिखित बयान में यह बताया गया है कि 15. लिखित बयान को देखने पर, जिसकी एक कॉपी अपील के साथ एनेक्सर 2 के तौर पर भी फाइल की गई है, पता चलता है कि लिखित बयान में यह बताया गया है कि गाड़ी एक अनुभवी और क्वालिफाइड ड्राइविंग लाइसेंस होल्डर चला रहा था, लेकिन हैरानी की बात है कि उस लिखित बयान में ड्राइवर का नाम नहीं बताया गया है। गाड़ी एक अनुभवी और क्वालिफाइड ड्राइविंग लाइसेंस होल्डर चला रहा था, लेकिन हैरानी की बात है कि उस लिखित बयान में ड्राइवर का नाम नहीं बताया गया है।

16. डॉक्यूमेंट्स की लिस्ट के साथ, श्री सिराजू का ड्राइविंग लाइसेंस भी फाइल किया गया था, लेकिन किसी ने भी पेश होकर उस ड्राइविंग लाइसेंस को साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया, न ही गाड़ी के मालिक/अपीलकर्ता ने कोई सबूत दिया कि उस मनहूस दिन, सच में श्री सिराजू ही गाड़ी चला रहे थे। पुलिस द्वारा फाइल की गई चार्जशीट में यह सामने आया कि श्री गुरपेश सिंह @ गुरपेश सिंह गाड़ी के ड्राइवर थे। इस प्रकार, विद्वान ट्रिब्यूनल के सामने केवल पुलिस द्वारा दायर चार्जशीट ही थी, जिसमें बताया गया था कि गाड़ी का ड्राइवर असल में श्री गुरपेश सिंह @ गुरपेश सिंह था, जो गाड़ी चला रहा था, और गाड़ी के मालिक द्वारा यह साबित करने के लिए कोई सबूत पेश नहीं किया गया कि असल में श्री सिराजू गाड़ी का ड्राइवर था, इसलिए, यह सामने आता है कि विद्वान ट्रिब्यूनल ने सही निष्कर्ष निकाला है कि गाड़ी का ड्राइवर असल में श्री गुरपेश सिंह @ गुरपेश सिंह था, जिसके पास उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था।

17. इस संबंध में, कोर्ट एविडेंस एक्ट, 1872 (जिसे इसके बाद "एक्ट, 1872" कहा जाएगा) की धारा 102 का हवाला दे सकता है, जिसमें कहा गया है कि किसी मुकदमे या कार्यवाही में सबूत का बोझ उस व्यक्ति पर होता है जो हार जाएगा अगर दोनों तरफ से कोई सबूत नहीं दिया जाता है।

18. एक्ट, 1872 की धारा 105 में यह प्रावधान है कि इंडियन पीनल कोड में दिए गए किसी भी जनरल एक्सेप्शन या उसी कोड के किसी दूसरे हिस्से में या अपराध को परिभाषित करने वाले किसी भी कानून में दिए गए किसी खास एक्सेप्शन या शर्त के तहत आरोपी व्यक्ति को उस परिस्थिति के होने का सबूत देना होगा और कोर्ट ऐसी परिस्थितियों के न होने का अनुमान लगाएगा।

19. एक्ट, 1872 की धारा 106 में कहा गया है कि जब कोई तथ्य किसी व्यक्ति की खास जानकारी में हो, तो उस तथ्य को साबित करने का बोझ उसी व्यक्ति पर होता है।

20. इस प्रकार, श्री सिराजु द्वारा चलाए जा रहे वाहन की जानकारी पूरी तरह से अपीलकर्ता को ही थी और इसलिए, यह साबित करने का बोझ उसी पर था। हालाँकि, अपीलकर्ता की ओर से किसी भी गवाह ने विद्वान ट्रिब्यूनल के सामने यह साबित करने के लिए पेश नहीं किया कि वाहन श्री सिराजु यानी उस ड्राइवर द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस था।

21. 1872 के एक्ट की धारा 114 उदाहरण (g) को ध्यान में रखते हुए, अगर कोई पार्टी गवाह के कटघरे में आने और अपना केस बताने से बचती है और दूसरी तरफ से क्रॉस-एग्जामिनेशन के लिए खुद को पेश नहीं करती है, तो यह माना जाएगा कि उसके द्वारा बताया गया केस सही नहीं है।

22. इस संबंध में, **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम ज्ञान चंद और अन्य - (1997) 7 SCC 558** मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का जिक्र करना सही रहेगा, जिसमें यह कहा गया है:-

10.....ट्रिब्यूनल और हाई कोर्ट दोनों ने यह साफ तौर पर माना है कि रेस्पॉण्डेंट नंबर 1, जिसे रेस्पॉण्डेंट नंबर 9, यानी इंश्योर्ड व्यक्ति ने गाड़ी चलाने की इजाजत दी थी, उसके पास कोई ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था। रेस्पॉण्डेंट नंबर 9, यानी इंश्योर्ड व्यक्ति का यह मामला नहीं था कि उसे नहीं पता था कि जिस रेस्पॉण्डेंट नंबर 1 को गाड़ी दी जा रही थी, उसके पास वैलिड लाइसेंस नहीं है। असल में, जब वह अपना केस साबित करने के लिए गवाह के कटघरे में नहीं आया, तो उसके खिलाफ यह गलत नतीजा निकालना ज़रूरी था कि उसने गाड़ी एक बिना लाइसेंस वाले ड्राइवर, रेस्पॉण्डेंट नंबर 1 को चलाने के लिए दी थी..... (कोर्ट द्वारा जोर दिया गया)

23. ऊपर बताए गए फैसले को देखने से यह पता चलता है कि अगर अपीलकर्ता यह दावा कर रहा था कि गाड़ी श्री सिराजु चला रहे थे जिनके पास वैलिड ड्राइविंग लाइसेंस था, तो उन्हें अपना केस साबित करने के लिए गवाह

के कटघरे में आना चाहिए था और ऐसा न करने पर उनके खिलाफ यह गलत नतीजा निकाला जाना ज़रूरी था कि गाड़ी एक बिना लाइसेंस वाले ड्राइवर द्वारा चलाई जा रही थी।

24. जहाँ तक **जय देव सिंह (सुप्रा)** मामले में इस कोर्ट के फैसले की बात है, तो यह कहना काफी होगा कि उस मामले में, माननीय ट्रिब्यूनल के सामने, गाड़ी के मालिक ने एक एप्लीकेशन फाइल की थी, जिसमें मालिक ने ड्राइवर का नाम श्री अनुज कुमार बाजपेयी बताया था, जिसके पास वैलिड ड्राइविंग लाइसेंस था, लेकिन माननीय ट्रिब्यूनल ने मामले के उस पहलू पर विचार नहीं किया, बल्कि चार्जशीट में बताए गए ड्राइवर के नाम पर विचार किया।

25. जैसा कि ऊपर बताया गया है, विद्वान ट्रिब्यूनल के सामने ऐसा कोई सबूत नहीं था जिससे यह पता चले कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन गाड़ी का ड्राइवर श्री सिराजु था, जिसके पास वैलिड ड्राइविंग लाइसेंस था, खासकर तब जब गाड़ी के मालिक ने लिखित बयान दाखिल करते समय ड्राइवर का नाम छिपाया था। इस प्रकार, **जय देव सिंह (उपरोक्त)** का फैसला इस मामले में लागू नहीं होगा।

26. ऊपर बताई गई बातों को ध्यान में रखते हुए, दखल देने का कोई मामला नहीं बनता है। इसलिए, अपील खारिज की जाती है।

(2025) 3 ILRA 500

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष दिनांक: इलाहाबाद 26.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ,

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र,

के समक्ष

आयकर अपील संख्या 86/2015

उमंग अग्रवाल

...अपीलकर्ता

बनाम

आयकर आयुक्त, केंद्रीय सर्किल और अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील: राकेश रंजन अग्रवाल, सुयश अग्रवाल

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी., शुभम अग्रवाल

कर कानून - आयकर अधिनियम, 1961 - धारा 143 और 263 - न्यायाधिकरण के आदेश के विरुद्ध - करदाता ने 14.03.2002 को 5,71,000/- रुपये का अग्रिम कर अदा किया। विभाग द्वारा 04.09.2002 को तलाशी अभियान चलाया गया, जिसमें खाता बही और अन्य दस्तावेज जब्त किए गए। वित्तीय वर्ष 2001-2002 (मूल्यांकन वर्ष 2002-2003) के लिए रिटर्न दाखिल करने की नियत तिथि 31.10.2002 थी। हालांकि, जब्त की गई सामग्री और पुस्तकें विभाग से 05.07.2004 को प्राप्त हुईं। करदाता ने लेखापरीक्षा रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद 01.09.2004 को रिटर्न दाखिल किया। 30.09.2004 को ब्लॉक मूल्यांकन आदेश पारित किया गया। 29.03.2006 को नियमित मूल्यांकन आदेश पारित किया गया। 16.08.2005 को सीआईटी के समक्ष चुनौती दी गई। यह मानते हुए स्वीकार किया गया कि धारा के प्रावधान 158 - बीबी(1)(सी) करदाता के पक्ष में लागू होगा - न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती दी गई, निर्धारण अधिकारी को कुछ निर्देशों के साथ आदेश में संशोधन किया गया - न्यायाधिकरण ने मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों की जांच करने में विफल रहा, लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए 'अस्तित्वहीन' निष्कर्ष को अंतिम मान लिया, जो केवल एक टिप्पणी थी, और इसके परिणामस्वरूप ऐसा प्रतीत होता है कि करदाता पर दो बार कर लगाया गया, अर्थात् नियमित कार्यवाही और संबंधित अवधि के लिए ब्लॉक मूल्यांकन में - विवादित आदेश रद्द किया गया, मामला वापस भेजा गया। (पैरा 4, 10, 15)

अपील की अनुमति. (ई13)

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र, द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ता की ओर से श्री मनीष गोयल और श्री राकेश रंजन अग्रवाल, दोनों वरिष्ठ अधिवक्ताओं, जिनकी सहायता श्री सुयश अग्रवाल और श्री नितिन कुमार केसरवानी कर रहे थे, तथा आयकर विभाग की ओर से प्रतिवादी श्री आशीष अग्रवाल, विद्वान अधिवक्ता, की दलीलें सुनी गईं।

2. आयकर अधिनियम, 1961 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 260-ए के तहत यह अपील करदाता द्वारा दिनांक 25.08.2014 के निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण, इलाहाबाद बेंच, इलाहाबाद ने आईटीए संख्या 464/एएलएडी./2005 को 01.04.1996 से 04.09.2002 की अवधि के लिए आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए अधिनियम की धारा 263 के तहत आदेश में संशोधन किया है और निर्धारण अधिकारी को कुछ निर्देश दिए हैं।

3. यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि न्यायाधिकरण ने इस न्यायालय द्वारा दिनांक 16.05.2014 को पारित आदेश के अनुसार अपील का निर्णय किया है, जिसके द्वारा आयकर अपील संख्या 422/2006 [आयकर आयुक्त (केंद्रीय), कानपुर बनाम श्री उमंग अग्रवाल] को स्वीकार कर लिया गया था और मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया गया था। करदाता, वापसी के आदेश में की गई कुछ टिप्पणियों से असंतुष्ट होकर, दिनांक 16.05.2014 के आदेश की समीक्षा हेतु एक सिविल विविध समीक्षा

आवेदन संख्या 203788/2014 दायर किया। हालांकि, समीक्षा आवेदन के लंबित रहने के दौरान और उसमें कोई अंतरिम आदेश पारित न होने के कारण, वापसी के आदेश को प्रभावी कर दिया गया और परिणामस्वरूप, न्यायाधिकरण ने इस अपील में चुनौती दिए गए आदेश द्वारा अपील का निर्णय किया। हमने उपरोक्त समीक्षा आवेदन को आज ही कुछ टिप्पणियों के साथ खारिज कर दिया है, जिनके आलोक में हम इस अपील का निर्णय इसके गुण-दोष के आधार पर करेंगे।

4. अपील के उत्पन्न होने के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि करदाता ने 14.03.2002 को 5,71,000/- रुपये का अग्रिम कर अदा किया था, विभाग द्वारा 04.09.2002 को एक तलाशी अभियान चलाया गया जिसमें आवेदक की खाता बही और अन्य दस्तावेज जब्त किए गए। वित्तीय वर्ष 2001-2002 (मूल्यांकन वर्ष 2002-2003) के लिए रिटर्न दाखिल करने की नियत तिथि 31.10.2002 थी, हालांकि, चूंकि विभाग द्वारा उक्त नियत तिथि से पहले खाता बही जब्त कर ली गई थी और जब्त की गई सामग्री और बही विभाग से 05.07.2004 को प्राप्त हुई थी, इसलिए करदाता ने लेखापरीक्षा रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद 01.09.2004 को 1961 के अधिनियम की धारा 143 के तहत रिटर्न दाखिल किया, जिसके बाद 30.09.2004 को ब्लॉक मूल्यांकन आदेश पारित किया गया; नियमित मूल्यांकन आदेश 29.03.2006 को पारित किया गया था, जिसे 16.08.2005 को अपील के माध्यम से सीआईटी (केंद्रीय) कानपुर के समक्ष चुनौती दी गई थी। अपील 26.06.2006 को करदाता के पक्ष में स्वीकार कर ली गई, जिसमें यह माना गया कि धारा 158-बीबी(1)(सीए) के प्रावधान करदाता के पक्ष में लागू होंगे।

5. दिनांक 19.01.2018 के आदेश द्वारा इस अपील को जापन में उल्लिखित विधि संबंधी प्रश्नों के आधार पर स्वीकार किया गया था, जो नीचे दिए गए हैं:-

“(i) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर आईटीएटी का यह मानना सही था कि मूल्यांकन वर्ष 2002-03 के लिए 01.09.2004 को दाखिल किया गया रिटर्न अमान्य था, इस बात को अनदेखा करते हुए कि रिटर्न दाखिल करने में देरी अपीलकर्ता की नहीं बल्कि विभाग की थी, क्योंकि विभाग ने अधिनियम की धारा 132 के तहत 04.09.2002 को की गई तलाशी की तारीख को जब्त की गई सामग्री और लेखा पुस्तकों की फोटोकॉपी 05.07.2004 को उपलब्ध कराई थी?

(ii) क्या आयकर आयोग (आईटीएटी) ने मूल्यांकन वर्ष 2002-03 के लिए अग्रिम कर भुगतान की गई 5,71,000/- रुपये की राशि तक राहत प्रदान करने में सही निर्णय लिया, जबकि उसने इस बात को नजरअंदाज कर दिया कि 01.09.2004 को दाखिल किए गए रिटर्न को अधिनियम की धारा 143/148 के तहत दिनांक 29.03.2006 के आदेश द्वारा नियमित कर दिया गया था और मूल्यांकन अधिकारी के दिनांक 29.03.2006 के गणना प्रपत्र के अनुसार धारा 234ए (5,51,611/- रुपये), 234बी (10,25,118/- रुपये) और 234सी (73,418/- रुपये) के तहत कुल 16,50,147/- रुपये का ब्याज लगाया गया था?

6. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने निवेदन किया कि ट्रिब्यूनल ने अपील को इस कारण खारिज कर दिया है कि इस न्यायालय ने दिनांक 16.05.2014 के आदेश द्वारा दिनांक 01.09.2004 को दाखिल आयकर रिटर्न (आईटीआर) को अमान्य घोषित कर दिया था, जबकि मामले के तथ्यों के अनुसार, जब्त की गई खाता-पुस्तकों और अन्य सामग्रियों को दिनांक 05.07.2004 को करदाता के पक्ष में जारी कर दिया गया था, इससे पहले करदाता के लिए रिटर्न दाखिल करने का कोई अवसर नहीं था। उनका निवेदन है कि यदि ट्रिब्यूनल ने मामले के सभी महत्वपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों का विश्लेषण किया होता, तो परिणाम करदाता के पक्ष में होता। उन्होंने विवादित निर्णय के पैराग्राफ 8.3 का हवाला देते हुए निवेदन किया कि चूंकि ट्रिब्यूनल इस न्यायालय के निर्णय से आगे नहीं जा सकता था, इसलिए करदाता के पास पुनर्विचार याचिका और साथ ही यह अपील दाखिल करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था, और दोनों को घटित घटनाओं की श्रृंखला सहित सभी तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में देखा और तय किया जाना चाहिए।

7. इसके विपरीत, विभाग के विद्वान वकील श्री आशीष अग्रवाल ने प्रस्तुत किया कि निर्धारण अधिकारी ने 30.09.2004 के अपने आदेश द्वारा 01.04.1996 से 04.09.2002 की ब्लॉक अवधि के लिए मूल्यांकन किया था, जिसमें स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया था कि जब्त सामग्री इलाहाबाद जांच विंग द्वारा 09.09.2003 को सौंपी गई थी, जिसके बाद 05.12.2003 के एक आदेश द्वारा करदाता को जब्त सामग्री का निरीक्षण करने और उसकी फोटोकॉपी प्राप्त करने के लिए कहा गया था। मूल्यांकन आदेश में आगे यह भी दर्ज है कि निरीक्षण और फोटोकॉपी का कार्य 01.04.1996 से 04.09.2002 तक किया गया था। 31.12.2003 से 28.05.2004 के दौरान जब्त किए गए सीपीयू और फ्लॉपी डिस्क के प्रिंट आउट करदाता के अधिकृत प्रतिनिधि और दो गवाहों की उपस्थिति में लिए गए। 08.06.2004 को करदाता को धारा 158-बीसी के तहत एक नोटिस जारी किया गया, जिसमें उसे निर्धारित प्रपत्र में अपनी कुल आय का सही और सटीक विवरण तैयार करने और उसे बीस दिनों के भीतर विभाग के कार्यालय में जमा करने के लिए कहा गया था। यह नोटिस करदाता को 09.06.2004 को तामील किया गया था। करदाता ने रिटर्न दाखिल करने के लिए समय बढ़ाने का अनुरोध किया, जिसे उसे 45वें दिन यानी 24.07.2004 तक बढ़ा दिया गया था, हालांकि, उस तारीख तक कोई रिटर्न दाखिल नहीं किया गया था। श्री अग्रवाल ने आगे निवेदन किया कि करदाता कार्यवाही में असहयोगी था और उसने निरीक्षण एवं फोटोकॉपी के कार्य में काफी समय लगाया, जो लगभग पाँच महीने तक चला। निर्धारण अधिकारी द्वारा दिनांक 30.09.2004 के आदेश में की गई गणनाओं का हवाला देते हुए यह तर्क दिया गया कि आकलन वर्ष 2002-2003 में करदाता की कुल आय 1,08,03,703 रुपये दिखाई गई थी, जिसमें उसकी घोषित आय 53,27,810 रुपये और अघोषित आय 54,75,893 रुपये थी। तदनुसार, ब्लॉक आकलन विधि के अनुसार किया गया था। अधिनियम की धारा 263 के तहत दिनांक 16.08.2005 को पारित आदेश का हवाला देते हुए यह तर्क दिया गया है कि सीआईटी (केंद्रीय) कानपुर ने धारा 139 के तहत रिटर्न को अमान्य पाया और आकलन वर्ष 2002-2003 के लिए अघोषित आय के पुनर्निर्धारण के सीमित मुद्दे पर दिनांक 30.09.2004 के आकलन आदेश को रद्द कर दिया। निवेदन यह है कि उक्त आदेश को इस न्यायालय द्वारा मामले के सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद रद्द किया गया था और चूंकि इस न्यायालय ने मामले को अपीलीय न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया था, इसलिए

न्यायाधिकरण तदनुसार कार्य करने के लिए बाध्य था और यदि उसने अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया है, तो उससे कोई त्रुटि नहीं हुई है।

8. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की बात सुनने के बाद, हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि आज ही समीक्षा आवेदन पर निर्णय लेते समय, दिनांक 16.05.2014 के आदेश में धारा 139 के तहत आयकर याचिका को 'अस्तित्वहीन' घोषित करने के संबंध में इस न्यायालय की टिप्पणी के बारे में हमने निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

“14. इस न्यायालय की इस टिप्पणी के संबंध में कि अधिनियम की धारा 139 के तहत दायर आईटीआर 'अस्तित्वहीन' हो गई है, हम पाते हैं कि यह इस न्यायालय का निर्णय या निष्कर्ष नहीं था, अन्यथा मामले को अपीलीय न्यायाधिकरण को वापस भेजने की कोई आवश्यकता नहीं थी। समीक्षाधीन आदेश के आंतरिक पृष्ठ संख्या 5 पर अंकित उक्त टिप्पणी को या तो विभाग की ओर से दिया गया तर्क माना जा सकता है, या यदि नहीं, तो इसे एक टिप्पणी माना जा सकता है। वास्तव में यह अपील पर निर्णय लेते समय न्यायालय द्वारा की गई एक आकस्मिक टिप्पणी थी। और इसलिए, जब मामले को अपीलीय न्यायाधिकरण को वापस भेजा गया, तो यह नहीं कहा जा सकता कि इस न्यायालय ने धारा 139 के तहत आईटीआर के संबंध में कोई अंतिम राय व्यक्त की थी।

“15. मामले के तथ्यों में यह देखना होगा कि रिटर्न दाखिल करने की नियत तिथि यानी 31.10.2002 कब समाप्त हो गई थी, लेकिन उससे पहले 01.09.2002 को करदाता की खाता-पुस्तकें और अन्य सामग्री जब्त कर ली गई थी। जब ब्लॉक मूल्यांकन किया जा रहा था, तब क्या जब्त की गई सामग्री करदाता को वापस सौंपे जाने के बाद विलंबित रिटर्न दाखिल करना आवश्यक था? या यदि रिटर्न दाखिल किया गया, तो क्या ऐसा करना उसके मामले के लिए घातक हो सकता है? या क्या करदाता को रिटर्न दाखिल करने से रोका गया था, जबकि उसे निरीक्षण की सुविधा दी गई थी? मामले के विशिष्ट तथ्यों में नियमित कार्यवाही और ब्लॉक मूल्यांकन कार्यवाही के बीच का अंतर्संबंध एक ऐसा प्रश्न है जो करदाता द्वारा कथित रूप से सामना किए गए दोहरे दंड के मुद्दे का निर्णय करने के लिए प्रासंगिक है, जैसा कि उसकी ओर से तर्क दिया गया है।

9. हमने पुनर्विचार आवेदन पर निर्णय देते हुए आदेश में यह भी कहा है कि इस अपील का निर्णय इसके गुण-दोष के आधार पर किया जाएगा, लेकिन इस न्यायालय द्वारा आयकर रिपोर्ट (आईटीआर) को 'अस्तित्वहीन' घोषित करने संबंधी टिप्पणी के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए।

10. उपरोक्त के मद्देनजर, हमारा मानना है कि न्यायाधिकरण द्वारा आयकर रिपोर्ट (आईटीआर) को 'अस्तित्वहीन' घोषित करने को करदाता के विरुद्ध निर्णय के रूप में मानना उचित नहीं था, और इसलिए, जब हम विवादित निर्णय के 'पैराग्राफ 8.3' का अध्ययन करते हैं, तो हमें श्री गोयल के इस तर्क में बल मिलता है कि न्यायाधिकरण ने मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों की जांच करने में विफल रहा है, बल्कि आयकर

रिपोर्ट (आईटीआर) को अंतिम मान लिया है, जिसका परिणाम यह प्रतीत होता है कि करदाता पर दो बार कर लगाया गया है, अर्थात् नियमित कार्यवाही में और संबंधित अवधि के लिए ब्लॉक मूल्यांकन से संबंधित कार्यवाही में। हम विवादित निर्णय के 'पैराग्राफ 8.3' का उल्लेख कर सकते हैं, जो इस प्रकार है:-

"8.3. यह सर्वमान्य तथ्य है कि जब 04.09.2002 को तलाशी ली गई थी, तब आकलन वर्ष 2002-2003 के लिए रिटर्न दाखिल करने की नियत तिथि तलाशी की तिथि पर नहीं थी और आकलन वर्ष 2002-2003 के लिए धारा 139(1) के तहत रिटर्न दाखिल करने की नियत तिथि 31.10.2002 थी और उक्त अवधि तलाशी की तिथि पर समाप्त नहीं हुई थी। यह भी निर्विवाद तथ्य है कि करदाता ने तलाशी के बाद राजस्व अधिकारियों से जब्त की गई पुस्तकों और अन्य दस्तावेजों की प्रतियां प्राप्त करने के लिए आवेदन किया था और पंचनामा आदि तैयार करने के बाद, जब्त किए गए दस्तावेजों की प्रतियां 05.07.2004 को करदाता को उपलब्ध कराई गई थीं। यद्यपि आकलन वर्ष 2002-2003 के लिए 01.09.2004 को दाखिल किया गया आयकर रिटर्न धारा 139(1) के तहत अमान्य था, जैसा कि माननीय उच्च न्यायालय ने भी माना था, लेकिन तथ्य यह है कि ऐसे अमान्य रिटर्न को दाखिल करने में हुई देरी पूरी तरह से करदाता की गलती नहीं थी। किसी भी स्थिति में, ऐसा कारण धारा 139(1) के तहत प्रासंगिक नहीं हो सकता है। चूंकि माननीय उच्च न्यायालय ने पहले ही यह माना है कि आकलन वर्ष 2002-2003 का रिटर्न अमान्य था, इसलिए आगे किसी निष्कर्ष की आवश्यकता नहीं होगी। यह भी स्वीकृत तथ्य है कि निपटान आयोग के समक्ष करदाता का आवेदन पहले ही खारिज किया जा चुका है। इसलिए, ऐसा कोई आवेदन लंबित नहीं था और निपटान आयोग के समक्ष आवेदन दाखिल करने का इस मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वित्तीय वर्ष 2001-2002 के लिए जब्त किए गए सीपीयू की बाद में पंचनामा के अनुसार जांच की गई और करदाता ने बाद में आकलन वर्ष 2002-03 के लिए रिटर्न भी दाखिल किया और विवादित राशि 53,27,810 रुपये निश्चित है। इसलिए, आयकर अधिनियम की धारा 263 के तहत इस मामले पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह तथ्य है कि जब मूल्यांकन अधिकारी ने 30.09.2004 को ब्लॉक आकलन आदेश तैयार किया, तो आकलन वर्ष 2002-2003 के लिए रिटर्न की जानकारी मूल्यांकन अधिकारी को थी क्योंकि इसे 01.09.2004 को दाखिल किया गया था।

11. उपरोक्त उद्धृत विवादित निर्णय के अनुच्छेद 8.3 में न्यायाधिकरण ने स्वयं यह माना है कि 'अस्तित्वहीन' रिटर्न दाखिल करने में देरी के लिए केवल करदाता ही जिम्मेदार नहीं था। उक्त टिप्पणी का संपूर्ण विवाद पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, क्योंकि नियमित मूल्यांकन और ब्लॉक मूल्यांकन की कार्यवाही के वित्तीय निहितार्थों की जांच संपूर्ण तथ्यात्मक स्थिति के संदर्भ में की जानी चाहिए।

12. दोनों ही महत्वपूर्ण प्रश्न 'अस्तित्वहीन' होने के निष्कर्ष और करदाता पर इसके प्रभाव के इर्द-गिर्द घूमते हैं। चूंकि हम संतुष्ट हैं और समीक्षा आवेदन पर निर्णय देते हुए उपरोक्त उद्धृत आदेश में पहले ही यह मान चुके हैं कि उक्त टिप्पणी केवल एक टिप्पणी थी, न कि इस न्यायालय द्वारा निकाला गया कोई निष्कर्ष/तर्क/निष्कर्ष, इसलिए हम मामले को अपीलीय न्यायाधिकरण को मामले की खूबियों पर नए सिरे से विचार करने के लिए वापस भेजना उचित समझते हैं।

13. परिणामस्वरूप, हम दोनों प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देते हैं कि न्यायाधिकरण द्वारा धारा 139(1) के अंतर्गत निर्धारण वर्ष 2002-2003 के लिए दिनांक 01.09.2004 को दाखिल किए गए आयकर रिटर्न को 'अस्तित्वहीन' मानना त्रुटिपूर्ण है और नियत तिथि यानी 31.10.2002 से पहले 04.09.2002 को की गई तलाशी, 05.07.2004 को करदाता के पक्ष में सामग्री की रिहाई, उसके बाद 01.09.2004 को रिटर्न दाखिल करना और इसके वित्तीय परिणामों पर उनके अपने गुणों के आधार पर विचार किया जाना चाहिए, न कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 16.05.2014 के आदेश में की गई 'अस्तित्वहीन' टिप्पणी के आधार पर।

14. परिणामस्वरूप, अपील सफल होती है और स्वीकार की जाती है।

15. दिनांक 25.08.2014 के विवादित आदेश को रद्द किया जाता है और मामले को आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण, इलाहाबाद बेंच, इलाहाबाद को वापस भेजा जाता है ताकि करदाता के पूरे मामले पर विधिवत रूप से नए सिरे से विचार किया जा सके। न्यायाधिकरण अपील की कार्यवाही को पुनः शुरू करेगा और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से चार माह की अवधि के भीतर अभिलेखों के आधार पर पक्षों को सुनवाई का पूरा अवसर प्रदान करने के बाद उसका निपटारा करेगा।

16. न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ, :- मैं सहमत हूँ।

(2025) 3 ILRA 505

अपीलीय क्षेत्राधिकार,

दीवानी पक्ष,

दिनांक: इलाहाबाद, 26.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ,

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र,

के समक्ष

आयकर अपील संख्या 422 वर्ष 2006

आयकर आयुक्त (केंद्रीय) कानपुर

...अपीलकर्ता

बनाम

श्री उमंग अग्रवाल

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील: एस.सी. सी.एस.सी., आर.के. उपाध्याय

प्रतिवादी के वकील: आर.आर. अग्रवाल, सुयश अग्रवाल

कर कानून - आयकर अधिनियम, 1961 - धारा 139, 143, 158-बीबी(1)(सीए), 15-बीबी, 158-बीसी और 263 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 47 - नियम 1 - धारा 114 और 151-पुनर्विचार याचिका - उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध - जिसके द्वारा न्यायालय ने आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को रद्द करते हुए आयकर अपील को स्वीकार कर लिया था और मामले को कुछ टिप्पणियों के साथ न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया था - पुनर्विचार की मांग करते हुए - इस आधार पर कि न्यायालय प्रमुख कानूनी और तथ्यात्मक मुद्दों को संबोधित करने में विफल रहा - और विशेष रूप से, धारा 139 के तहत आयकर रिटर्न दाखिल करने में देरी कर अधिकारियों द्वारा खाता बही जब्त करने के कारण हुई थी, और इसलिए, रिटर्न को "अस्तित्वहीन" घोषित करना अन्यायपूर्ण था - आयकर विभाग ने पुनर्विचार का अनुचित बताते हुए विरोध किया, यह दावा करते हुए कि उचित प्रक्रिया का पालन किया गया था और रिटर्न को सही ढंग से 'अस्तित्वहीन' माना गया था - न्यायालय ने स्पष्ट किया कि, आदेश 17 नियम 1 और सीपीसी की धारा 114 के तहत पुनर्विचार क्षेत्राधिकार का सख्त दायरा यह है कि पुनर्विचार केवल रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि होने पर ही अनुमत है, न कि संभवतः त्रुटिपूर्ण लेकिन तर्कसंगत निर्णय की पुनर्विचार या सुधार के लिए - यह माना गया कि पुनर्विचार अपील का छिपा हुआ रूप नहीं है - और आईटीआर को "अस्तित्वहीन" कहने वाली पिछली टिप्पणी इसकी नहीं थी अंतिम निष्कर्ष नहीं बल्कि एक संक्षिप्त टिप्पणी या आकस्मिक टिप्पणी - इसलिए, विचाराधीन आदेश में स्पष्ट रूप से कोई त्रुटि नहीं है रिकॉर्ड में - इस न्यायालय को आदेश की समीक्षा करने के लिए राजी करने हेतु, पुनर्विचार याचिका खारिज की जाती है। (पैरा 6, 12, 13, 14, 15, 16, 17)

पुनर्विचार याचिका खारिज। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. आयकर अपील संख्या 86/2015 (उमंग अग्रवाल बनाम आयकर आयुक्त, केंद्रीय सर्कल, इलाहाबाद)
2. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम राज्य परिसंघ सरकारी कर्मचारी, (2019) 3 कलकत्ता लॉ जज 351
3. छज्जू राम बनाम नेकी, 1922 एससीसी ऑनलाइन पीसी 11 : (1921-22) 49 आईए 144 : एआईआर 1922 पीसी 112]
4. मोरन मार बेसेलियोस कैथोलिकोस बनाम मार पौलोस अथानासियस, एआईआर 1954 एससी 526]
5. लिली थॉमस बनाम भारत संघ, (2000) 6 एससीसी 224 : 2000 एससीसी (क्रिमिनल) 1056
6. मीरा भांजा बनाम निर्मला कुमारी चौधरी [(1995) 1 एससीसी 170],
7. परसियन देवी बनाम सुमित्री देवी की रिपोर्ट (1997) 8 एससीसी 715,
8. तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम सरकार। एपी के [एआईआर 1964 एससी 1372],
9. अरिबाम तुलेश्वर शर्मा बनाम पिशाक शर्मा की रिपोर्ट (1979) 4 एससीसी 389,
10. शांति कंडक्टर्स (पी) लिमिटेड बनाम असम एसईबी (2020) 2 एससीसी 677,
11. पेरी कंसग्रा बनाम स्मृति मदन कंसग्रा (2019) 20 एससीसी 753,

12. एस. मुरली सुंदरम बनाम ज्योतिबाई कन्नन और अन्य, (2023) 13 एससीसी 515,
13. पंचम लाल पांडे बनाम नीरज कुमार मिश्रा और अन्य, एआईआर 2023 (एससी) 948,
14. मेसर्स टाटा स्टील लिमिटेड बनाम कमिशनर ट्रेड टैक्स, लखनऊ, 2024 (6) एटीजे 248,
15. मेसर्स एम.एम.आई. टोबैको प्राइवेट लिमिटेड और अन्य। इफितखार आलम बनाम, 2024 (5) ए.डी.जे. 708,
16. राजेंद्र सिंह बनाम लेफ्टिनेंट गवर्नर, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और अन्य, (2005) 13 एस.सी.सी. 289,
17. भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड और अन्य बनाम नेताजी क्रिकेट क्लब और अन्य, (2005) 4 एस.सी.सी. 741।

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र, द्वारा सुनाया गया)

सिविल विविध समीक्षा आवेदन संख्या 203788/2014 पर आदेश

1. हमने समीक्षा याचिकाकर्ता की ओर से श्री मनीष गोयल और श्री राकेश रंजन अग्रवाल, दोनों वरिष्ठ अधिवक्ताओं, जिनकी सहायता श्री सुयश अग्रवाल और श्री नितिन कुमार केसरवानी कर रहे थे, तथा प्रतिवादी-आयकर विभाग की ओर से श्री आशीष अग्रवाल, विद्वान अधिवक्ता, की दलीलें सुनीं।
2. करदाता की ओर से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 151 के साथ आदेश 17वें नियम 1 के तहत दायर इस आवेदन में दिनांक 16.05.2014 के अंतिम निर्णय और आदेश की समीक्षा की मांग की गई है, जिसके द्वारा इस न्यायालय ने आयकर अपील संख्या 422/2006 [आयकर आयुक्त (केंद्रीय), कानपुर बनाम श्री उमंग अग्रवाल, इलाहाबाद] को स्वीकार करते हुए आयकर अपीलीय न्यायाधिकरण, इलाहाबाद द्वारा आईटीआर संख्या 464/ALLd/05 में दिनांक 26.05.2006 को पारित आदेश को ब्लॉक अवधि के लिए निरस्त कर दिया था। 01.04.1996 से 04.09.2002 तक के मामले को कुछ टिप्पणियों के साथ न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया गया।

आवेदक-करदाता की ओर से प्रस्तुतियाँ

3. आवेदक/करदाता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने प्रस्तुत किया कि अभिलेख में स्पष्ट त्रुटि है, क्योंकि इस न्यायालय ने न तो उस महत्वपूर्ण विधि प्रश्न का उत्तर दिया है, जिस पर 15.05.2012 को अपील स्वीकार की गई थी, और न ही मामले के महत्वपूर्ण तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार किया है। उनका निवेदन है कि करदाता ने 14.03.2002 को 5,71,000/- रुपये का अग्रिम कर अदा किया था, और विभाग द्वारा 04.09.2002 को एक तलाशी अभियान चलाया गया था, जिसमें आवेदक की खाता-पुस्तकों और अन्य दस्तावेजों को जब्त किया गया था। उनके अनुसार, वित्तीय वर्ष 2001-2002 (मूल्यांकन वर्ष 2002-2003) के लिए रिटर्न दाखिल करने की नियत तिथि 31.10.2002 थी, हालांकि, उक्त नियत तिथि से पहले विभाग द्वारा खाता बही जब्त कर ली गई थी और जब्त की गई सामग्री और बहीखाते विभाग से 05.07.2004 को प्राप्त हुए थे, इसलिए आवेदक ने लेखापरीक्षा रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद आयकर अधिनियम, 1961 (संक्षेप

में 'अधिनियम') की धारा 143 के तहत 01.09.2004 को रिटर्न दाखिल किया, जिसके बाद 30.09.2004 को ब्लॉक मूल्यांकन आदेश पारित किया गया; नियमित मूल्यांकन आदेश 29.03.2006 को पारित किया गया, जिसे 16.08.2005 को अपील के माध्यम से सीआईटी (केंद्रीय) कानपुर के समक्ष चुनौती दी गई। 26.06.2006 को अपील आवेदक/करदाता के पक्ष में स्वीकार कर ली गई, जिसमें यह माना गया कि धारा 158-बीबी(1)(सीए) के प्रावधान करदाता के पक्ष में लागू होंगे। श्री गोयल आगे निवेदन करते हैं कि इस न्यायालय ने समीक्षाधीन आदेश पारित करते समय मामले के इस महत्वपूर्ण पहलू को नजरअंदाज करने में घोर त्रुटि की है कि करदाता नियत तिथि से पहले रिटर्न दाखिल करने में असमर्थ था। इसका कारण उक्त तिथि से पहले खतों की पुस्तकों और अन्य सामग्रियों की जब्ती थी और दस्तावेजों को 05.07.2004 को जारी कर दिया गया था। इस न्यायालय ने 01.09.2004 को दाखिल किए गए आयकर रिटर्न को अमान्य घोषित करके गलती की है। निवेदन यह है कि यदि इस न्यायालय ने उपरोक्त पहलू पर विचार किया होता, जैसा कि अपील में निर्णय सुरक्षित रखे जाने के बाद प्रस्तुत लिखित तर्कों के माध्यम से जोर देकर कहा गया है, तो आदेश करदाता के पक्ष में होता, न कि उसके विरुद्ध। इस दलील के समर्थन में कि यह न्यायालय न्याय के उल्लंघन को रोकने के लिए त्रुटियों को सुधारने में सक्षम है और न्याय के हित में उचित मामलों में अपने ही आदेश की समीक्षा करने में संकोच नहीं करना चाहिए, निम्नलिखित प्राधिकारियों पर भरोसा किया गया है:

(i) राजेंद्र सिंह बनाम लेफ्टिनेंट गवर्नर, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और अन्य, (2005) 13 एससीसी 289;

(ii) भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड और अन्य बनाम नेताजी क्रिकेट क्लब और अन्य, (2005) 4 एससीसी 741।

सूचना प्रौद्योगिकी विभाग की ओर से प्रस्तुतियाँ

4. इसके विपरीत, विभाग के विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष अग्रवाल ने निवेदन किया कि यह पुनर्विचार याचिका विचारणीय नहीं है, क्योंकि इस न्यायालय ने एक सुविचारित आदेश पारित किया है और पुनर्विचार की आड़ में आवेदक इस न्यायालय से अपने ही निर्णय पर अपील करने की अपेक्षा कर रहा है। किसी प्रावधान या अन्य तथ्यात्मक पहलुओं की प्रयोज्यता के संबंध में प्रस्तुत तर्क के गुण-दोष पर, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि निर्धारण अधिकारी ने 30.09.2004 के अपने आदेश द्वारा 01.04.1996 से 04.09.2002 की अवधि के लिए मूल्यांकन किया था, जिसमें स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया था कि जब्त सामग्री इलाहाबाद जांच शाखा द्वारा 09.09.2003 को सौंपी गई थी, जिसके बाद 05.12.2003 के एक आदेश द्वारा करदाता को जब्त सामग्री का निरीक्षण करने और उसकी फोटोकॉपी प्राप्त करने के लिए कहा गया था। मूल्यांकन आदेश में आगे यह भी दर्ज है कि 31.12.2003 से 28.05.2004 तक निरीक्षण और फोटोकॉपी का कार्य किया गया, जब्त किए गए सीपीयू और फ्लॉपी के प्रिंट आउट करदाता के अधिकृत प्रतिनिधि और दो गवाहों की उपस्थिति में लिए गए, 08.06.2004 को करदाता को धारा 158-बीसी के तहत एक नोटिस जारी किया गया जिसमें उसे निर्धारित प्रपत्र में अपनी कुल आय का सही और सटीक विवरण तैयार करने और उसे बीस दिनों के भीतर विभाग के कार्यालय में जमा करने के लिए कहा गया; यह नोटिस करदाता को 09.06.2004 को तामील किया गया; करदाता ने

रिटर्न दाखिल करने के लिए समय बढ़ाने का अनुरोध किया, जो उसे 45वें दिन यानी 24.07.2004 तक दिया गया, हालांकि, उस तिथि तक कोई रिटर्न दाखिल नहीं किया गया। श्री अग्रवाल ने आगे निवेदन किया कि करदाता कार्यवाही में असहयोगी था और उसने निरीक्षण एवं फोटोकॉपी के कार्य में काफी समय लगाया, जो लगभग पाँच महीने तक चला। निर्धारण अधिकारी द्वारा दिनांक 30.09.2004 के आदेश में की गई गणनाओं का हवाला देते हुए यह तर्क दिया गया कि आकलन वर्ष 2002-2003 में करदाता की कुल आय 1,08,03,703 रुपये दिखाई गई थी, जिसमें उसकी घोषित आय 53,27,810 रुपये और अघोषित आय 54,75,893 रुपये थी। तदनुसार, ब्लॉक आकलन विधि के अनुसार किया गया था। अधिनियम की धारा 263 के तहत पारित दिनांक 16.08.2005 के आदेश का हवाला देते हुए यह तर्क दिया गया है कि सीआईटी (केंद्रीय) कानपुर ने धारा 139 के तहत रिटर्न को अमान्य पाया और आकलन आदेश दिनांक 30.09.2004 को आकलन वर्ष 2002-2003 के लिए अघोषित आय के पुनर्निर्धारण के सीमित मुद्दे पर निरस्त कर दिया गया था। निवेदन यह है कि उक्त आदेश को इस न्यायालय ने मामले के सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद रद्द कर दिया था और चूंकि इस न्यायालय ने मामले को अपीलीय न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया था, इसलिए आदेश की समीक्षा एक उपाय नहीं है और यदि करदाता समीक्षा के लिए मांगे गए आदेश से असंतुष्ट था, तो उसे अपील दायर करनी चाहिए थी। समीक्षा के दायरे के संबंध में, विभाग के विद्वान वकील ने निम्नलिखित प्राधिकारियों पर भरोसा जताया है:-

- (i) एस. मुरली सुंदरम बनाम ज्योतिबाई कन्नन और अन्य, (2023) 13 एससीसी 515;
- (ii) पंचम लाल पांडे बनाम नीरज कुमार मिश्रा और अन्य, एआईआर 2023 (एससी) 948;
- (iii) मेसर्स टाटा स्टील लिमिटेड बनाम कमिश्नर ट्रेड टैक्स, लखनऊ, 2024 (6) एडीपी 248;
- (iv) मेसर्स एम.एम.आई. टोबैको प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम इफ्तिखार आलम, 2024 (5) एडीपी 708।

आवेदक-करदाता की ओर से प्रतिउत्तर में प्रस्तुतियाँ

5. अपील के उपाय के संबंध में, श्री गोयल का निवेदन है कि संहिता की धारा 114 और आदेश 1VLI नियम 1 के अनुसार, पुनर्विचार तब संभव है जब अपील की जा सकती हो लेकिन दायर न की गई हो या जब कोई अपील न हो। उनका निवेदन है कि चूंकि इस न्यायालय के अंतिम आदेश के विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अधिनियम के तहत कोई अपील का प्रावधान नहीं है और केवल अपील दायर करने के लिए विशेष अनुमति प्रदान करने के माध्यम से ही सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपील पर विचार किया जा सकता है, इसलिए यह एक ऐसा मामला है जहां कोई वैधानिक अपील नहीं है और अतः आदेश के पुनर्विचार की मांग करना उचित था। इसके अलावा, वह यह निवेदन करता है कि आवेदक पर इस मामले में दो बार कर लगाया गया है, अर्थात् उसे नियमित मूल्यांकन कार्यवाही के साथ-साथ ब्लॉक मूल्यांकन के लिए भी कर भुगतान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया गया है और चूंकि इस न्यायालय ने, समीक्षाधीन आदेश में, आयकर अधिनियम की धारा 139 के तहत दायर आयकर याचिका को "अस्तित्वहीन" घोषित कर दिया था, इसलिए जब इस न्यायालय द्वारा पारित पुनर्विचार आदेश को लागू किया गया, तो अपीलीय न्यायाधिकरण ने दिनांक 25.08.2014 के आदेश द्वारा यह कहते हुए अपील खारिज कर दी कि चूंकि उच्च न्यायालय पहले ही आयकर याचिका को अस्तित्वहीन घोषित

कर चुका है, इसलिए इसे अस्तित्वहीन ही माना जाएगा। निवेदन यह है कि दिनांक 25.08.2014 के पश्चात आदेश को चुनौती देते हुए, आवेदक-करदाता ने आयकर अपील संख्या 86/2015 (इस समीक्षा आवेदन से संबंधित) दायर की है, और इसलिए न केवल दिनांक 16.05.2014 के आदेश की समीक्षा की जानी चाहिए और उसे रद्द किया जाना चाहिए, बल्कि अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 25.08.2014 के परिणामी आदेश और उससे संबंधित अपील को भी स्वीकार किया जाना चाहिए।

चर्चा और निष्कर्ष

6. सबसे पहले, हम संहिता के आदेश 162 के नियम 1 के अनुसार समीक्षा आवेदन के दायरे का वर्णन करना चाहेंगे। उक्त प्रावधान संहिता के प्रक्रियात्मक भाग में है और इसके मूल भाग के संबंध में, धारा 114 प्रासंगिक प्रावधान है। यदि हम श्री गोयल के इस निवेदन को स्वीकार भी कर लें कि अपीलीय न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केवल सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति दिए जाने के बाद ही स्वीकार की जाती है, और इसलिए, स्वाभाविक रूप से, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अधिनियम के अंतर्गत कोई वैधानिक अपील का प्रावधान नहीं है, तो भी किसी भी कारण से समीक्षा आवेदन की स्वीकार्यता के बावजूद, जिसमें वैधानिक अपील के उपाय की अनुपलब्धता भी शामिल है, ऐसे आवेदन पर संहिता के आदेश 162 के नियम 1 के अनुसार विचार किया जाना चाहिए। उक्त नियम में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि नए और महत्वपूर्ण मामलों या साक्ष्यों की खोज होने पर समीक्षा की मांग की जा सकती है, जो उचित सावधानी बरतने के बावजूद आवेदक के संज्ञान में नहीं थे या आदेश पारित होने के समय उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किए जा सके, या अभिलेख में स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाली किसी गलती या त्रुटि के कारण, या किसी अन्य पर्याप्त कारण से।

7. सर्वोच्च न्यायालय ने एस. मुरली सुंदरम (उपरोक्त) मामले में, पेरी कंसग्रा बनाम स्मृति मदन कंसग्रा (2019) 20 एससीसी 753 पर भरोसा करते हुए, यह टिप्पणी की कि आदेश 47 नियम 1 के साथ धारा 114 सीपीसी के तहत आवेदन में समीक्षा क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, समीक्षा न्यायालय अपने ही आदेश पर अपील नहीं करता है; मामले की पुनर्विचार सुनवाई कानून में अनुमेय नहीं है; समीक्षा अपील का छिपा हुआ रूप नहीं है; समीक्षा की शक्ति का प्रयोग किसी गलती को सुधारने के लिए किया जा सकता है, न कि किसी अन्य दृष्टिकोण को प्रतिस्थापित करने के लिए; ऐसी शक्तियों का प्रयोग शक्ति के प्रयोग से संबंधित कानून की सीमाओं के भीतर ही किया जा सकता है; यह पूरी तरह से अनुचित है और उस निर्णय को फिर से लिखने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करता है जिसके द्वारा विवाद का अंतिम निर्णय हो चुका है। इसे संक्षेप में इस प्रकार कहा गया:

“(i) समीक्षा कार्यवाही अपील के रूप में नहीं होती और इसे विधिवत रूप से आदेश 47 नियम 1 सी.पी.सी. के दायरे में ही सीमित रखा जाना चाहिए।

(ii) समीक्षा की शक्ति का प्रयोग तब किया जा सकता है जब अभिलेख में स्पष्ट रूप से कोई त्रुटि पाई जाए। लेकिन अभिलेख में स्पष्ट त्रुटि ऐसी होनी चाहिए जो केवल अभिलेख को देखने मात्र से ही स्पष्ट हो जाए और उन बिंदुओं पर लंबे तर्क-वितर्क की आवश्यकता न हो जहां दो मत हो सकते हैं।

- (iii) समीक्षा की शक्ति का प्रयोग इस आधार पर नहीं किया जा सकता कि निर्णय गुण-दोष के आधार पर त्रुटिपूर्ण था।
- (iv) समीक्षा की शक्ति का प्रयोग किसी भी पर्याप्त कारण के लिए भी किया जा सकता है जो इतना व्यापक हो कि उसमें न्यायालय या यहां तक कि किसी अधिवक्ता द्वारा तथ्य या कानून की गलत धारणा भी शामिल हो।
- (v) "अदालत की इस कार्रवाई से किसी पर कोई बोझ नहीं पड़ेगा" सिद्धांत का हवाला देते हुए समीक्षा के लिए आवेदन करना आवश्यक हो सकता है।"

8. शांति कंडक्टर्स (पी) लिमिटेड बनाम असम एसईबी (2020) 2 एससीसी 677 में यह माना गया कि धारा 114 सीपीसी के साथ पढ़े गए आदेश 47 नियम 1 के तहत समीक्षा का दायरा सीमित है और समीक्षा की आड़ में याचिकाकर्ता को उन प्रश्नों को फिर से उठाने और उन पर पुनर्विचार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जिन पर पहले ही विचार किया जा चुका है और निर्णय लिया जा चुका है; कि एक त्रुटि जो स्वतः स्पष्ट नहीं है और जिसे तर्क प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, उसे रिकॉर्ड के आधार पर स्पष्ट त्रुटि नहीं कहा जा सकता है जो न्यायालय को आदेश 47 नियम 1 सीपीसी के तहत अपनी समीक्षा शक्ति का प्रयोग करने का औचित्य प्रदान करती है।

9. पंचम लाल पांडे (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि समीक्षा का प्रावधान दिए गए निर्णय की शुद्धता की जांच करना नहीं है, बल्कि आदेश/रिकॉर्ड में स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाली किसी भी त्रुटि को सुधारना है, बिना इस बात पर विचार किए कि क्या व्यक्त की गई राय से भिन्न कोई अन्य राय संभव है। **मेसर्स टाटा स्टील लिमिटेड (उपरोक्त)** मामले में, इस न्यायालय ने **अरिबम तुलेश्वर शर्मा बनाम पिशक शर्मा (1979) 4 एससीसी 389** पर भरोसा किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि समीक्षा शक्ति और अपीलीय शक्ति मूल रूप से भिन्न हैं। जबकि अपीलीय शक्ति न्यायालयों को चुनौती दिए गए निर्णय या आदेश में सभी प्रकार की त्रुटियों को सुधारने में सक्षम बनाती है, समीक्षा शक्ति ऐसा नहीं करती है। **पारसियन देवी बनाम सुमित्रा देवी (1997) 8 एससीसी 715** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि सीपीसी, 1908 के आदेश 47 नियम 1 के तहत शक्ति किसी त्रुटिपूर्ण निर्णय को "पुनर्विचार और सुधार" करने की अनुमति नहीं देती है। **थुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार [एआईआर 1964 एससी 1372 : (1964) 5 एससीआर 174]** (एससीआर पृष्ठ 186 पर) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि एक मात्र त्रुटिपूर्ण निर्णय और एक ऐसे निर्णय के बीच एक वास्तविक अंतर है, जिसे 'स्पष्ट त्रुटि' से दूषित कहा जा सकता है, हालांकि यह हमेशा स्पष्ट रूप से व्यक्त करने योग्य नहीं हो सकता है। समीक्षा किसी भी तरह से अपील का छिपा हुआ रूप नहीं है, जिसके द्वारा गलत निर्णय पर पुनर्विचार किया जाता है और उसे सुधारा जाता है, बल्कि यह केवल स्पष्ट त्रुटि के लिए ही लागू होती है। इसी तरह का दृष्टिकोण **मीरा भंजा बनाम निर्मला कुमारी चौधरी [(1995) 1 एससीसी 170]** में भी अपनाया गया था।

10. **लिली थॉमस बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2000) 6 एससीसी 224 : 2000 एससीसी (क्रिमिनल) 1056** में यह देखा और माना गया है कि समीक्षा की शक्ति का प्रयोग किसी गलती को सुधारने के लिए किया जा सकता है, न कि किसी राय को प्रतिस्थापित करने के लिए। ऐसी शक्तियों का प्रयोग शक्ति के प्रयोग से संबंधित कानून की सीमाओं के भीतर ही किया जा सकता है। उक्त निर्णय में आगे यह भी कहा गया है कि आदेश 47 नियम 1 सीपीसी में प्रयुक्त शब्द "कोई अन्य पर्याप्त कारण" का अर्थ "एक ऐसा कारण होना चाहिए जो कम से कम नियम में निर्दिष्ट कारणों के समान आधारों पर पर्याप्त हो", जैसा कि **छज्जू राम बनाम नेकी, 1922 एससीसी ऑनलाइन पीसी 11 : (1921-22) 49 आईए 144 : एआईआर 1922 पीसी 112]** में माना गया था और **मोरन मार बेसेलियोस कैथोलिकोस बनाम मार पौलोस अथानासियस, एआईआर 1954 एससी 526]** में अनुमोदित किया गया था।

11. **मेसर्स एम.एम.आई. टोबैको प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में, हममें से एक (क्षितिज शैलेंद्र, न्यायमूर्ति) ने इस विषय पर उपर्युक्त प्राधिकारियों का लाभप्रद रूप से उल्लेख किया और यह टिप्पणी की कि चूंकि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 114, समीक्षा के लिए मूल प्रावधान होने के नाते, स्पष्ट रूप से "न्यायालय इस पर ऐसा आदेश दे सकता है" शब्दों का प्रयोग करती है, इसलिए समीक्षा आवेदन को स्वीकार या अस्वीकार करने की शक्ति किसी विशेष मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायालय के विवेक पर निर्भर करती है और न्यायालय प्रत्येक मामले और स्थिति में आवेदन को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है।

12. हममें से एक (शेखर बी. सराफ, न्यायमूर्ति) ने सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर भरोसा करते हुए, **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम राज्य सरकार कर्मचारी संघ (2019) 3 कलकत्ता विधि न्यायालय 351** में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ के लिए एक निर्णय सुनाया और निर्णय/आदेश की समीक्षा के लिए उभरते सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए कहा कि समीक्षा की शक्ति काफी सीमित है और यह आदेश 142 नियम 1 सीपीसी के तहत सिद्धांतों द्वारा शासित होगी। आगे यह भी कहा गया कि तीसरी शर्त "किसी अन्य पर्याप्त कारण से" को पहली दो शर्तों के दायरे में पढ़ा जाना चाहिए और जो त्रुटि स्वतः स्पष्ट नहीं है और जिसे तर्क प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, वह रिकॉर्ड में स्पष्ट त्रुटि नहीं है। आगे यह भी कहा गया कि समीक्षा याचिका को "अपील का छिपा हुआ रूप" नहीं माना जा सकता।

13. आवेदक की ओर से उद्धृत निर्णयों, अर्थात् **राजेंदर सिंह (उपरोक्त)** और **भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (उपरोक्त)** के संबंध में, यद्यपि यह सत्य है कि न्याय के हित में उचित मामलों में न्यायालयों को अपने ही आदेश की समीक्षा करने में संकोच नहीं करना चाहिए, सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ऐसा केवल तभी किया जा सकता है जब अभिलेख में स्पष्ट त्रुटि हो और संहिता के आदेश 17वें नियम 1 में प्रयुक्त शब्द "पर्याप्त कारण" इतने व्यापक हैं कि उनमें न्यायालय द्वारा तथ्य या कानून की गलत धारणा भी शामिल है। हमें वर्तमान मामले के तथ्यों के संदर्भ में बार में उद्धृत प्राधिकारियों द्वारा निर्धारित अनुपात पर विचार करना होगा और हम पाते हैं कि इस न्यायालय ने आयकर अपील संख्या 422/2006 का निर्णय करते हुए दिनांक 16.05.2014 के आदेश द्वारा, यद्यपि 15.05.2012 को तैयार किए गए कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न

का उल्लेख किया, परन्तु उसका उत्तर देने से इसलिए परहेज किया क्योंकि उसने अपने समक्ष चुनौती दिए गए आदेश को निरस्त करने के बाद मामले को अपीलीय न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया था।

धारा 139 के तहत आईटीआर, या यह स्थापित नहीं है

14. इस न्यायालय की इस टिप्पणी के संबंध में कि अधिनियम की धारा 139 के तहत दायर आईटीआर अमान्य हो गया था, दिनांक 16.05.2014 के संपूर्ण आदेश का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के बाद, हम पाते हैं कि अमान्य होने की टिप्पणी इस न्यायालय का अंतिम निर्णय या निष्कर्ष नहीं था; अन्यथा मामले को अपीलीय न्यायाधिकरण को वापस भेजने की कोई आवश्यकता नहीं थी। आदेश के आंतरिक पृष्ठ संख्या 5 पर अंकित उक्त टिप्पणी को या तो विभाग की ओर से दिया गया तर्क माना जा सकता है, या यदि नहीं, तो इसे एक आकस्मिक टिप्पणी माना जा सकता है। वास्तव में, यह अपील पर निर्णय लेते समय न्यायालय द्वारा की गई एक आकस्मिक टिप्पणी थी, और इसलिए, जब मामले को अपीलीय न्यायाधिकरण को वापस भेजा गया, तो यह नहीं कहा जा सकता कि इस न्यायालय ने धारा 139 के तहत आईटीआर को अमान्य घोषित करने के संबंध में कोई अंतिम राय व्यक्त की थी।

15. मामले के तथ्यों के आधार पर यह देखना होगा कि रिटर्न दाखिल करने की नियत तिथि, यानी 31.10.2002, कब समाप्त हो गई थी, जबकि उससे पहले 01.09.2002 को करदाता की खाता-पुस्तकें और अन्य सामग्री जब्त कर ली गई थी। जब ब्लॉक असेसमेंट किया जा रहा था, तब क्या जब्त की गई सामग्री करदाता को वापस सौंपे जाने के बाद विलंबित रिटर्न दाखिल करना आवश्यक था? या यदि रिटर्न दाखिल किया गया, तो क्या ऐसा करना उसके मामले के लिए घातक साबित हो सकता था? या क्या निरीक्षण की सुविधा दिए जाने के बावजूद करदाता को रिटर्न दाखिल करने से रोका गया था? मामले के विशिष्ट तथ्यों में नियमित कार्यवाही और ब्लॉक असेसमेंट कार्यवाही के बीच का अंतर्संबंध एक ऐसा प्रश्न है जो करदाता द्वारा कथित रूप से सामना किए जा रहे दोहरे दंड के मुद्दे का निर्णय करने के लिए प्रासंगिक है, जैसा कि उसकी ओर से तर्क दिया गया है।

समीक्षा का आधार बनने के मूल प्रश्न का उत्तर न देना

16. हमारा मत है कि यदि आयकर अधिनियम की धारा 158-बीबी के किसी खंड/उपखंड की प्रयोज्यता के संबंध में तैयार किए गए विधि के मूल प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय द्वारा अपील पर निर्णय करते समय नहीं दिया गया था, तो यह स्वयं आदेश की समीक्षा का आधार नहीं हो सकता, क्योंकि न्यायालय ने इस बिंदु को पुनर्विचार के बाद अपील में निर्णय के लिए खुला छोड़ दिया था, अर्थात् विधि के मूल प्रश्न के तत्वों को पुनर्विचार के आदेश के अनुसार अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पुनः निर्धारित किया जाना था। अतः, जब श्री गोयल यह निवेदन करते हैं कि अपीलीय न्यायाधिकरण ने पुनर्विचार के बाद धारा 139 के तहत आईटीआर को "अस्तित्वहीन" घोषित करने के संबंध में इस न्यायालय के निष्कर्ष को स्वीकार कर लिया है, और इसलिए न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को भी इसी आधार पर रद्द कर दिया जाना चाहिए, तो हमारा मत है कि वर्तमान समीक्षा याचिका और उससे संबंधित अपील का निर्णय दो अलग-अलग और स्वतंत्र कार्यवाहियों के दायरे को ध्यान में रखते

हुए किया जाना चाहिए, अर्थात् एक समीक्षा याचिका है और दूसरी वैधानिक अपील है, और अतः हम तदनुसार निर्णय करेंगे।

निष्कर्ष

17. उपर्युक्त प्राधिकारियों द्वारा समीक्षा के दायरे पर निर्धारित अनुपात को लागू करते हुए, हम पाते हैं कि न केवल दिनांक 30.09.2004 का ब्लॉक मूल्यांकन आदेश, बल्कि दिनांक 29.03.2006 का मूल्यांकन आदेश और उसके बाद पारित आदेश, अर्थात् दिनांक 16.08.2005 और 26.06.2006 को पारित आदेशों में भी उन सामग्रियों पर चर्चा की गई है जो प्राधिकारियों/ट्रिब्यूनल के समक्ष उपलब्ध थीं।

केवल इस न्यायालय द्वारा कार्यवाही के अभिलेख की किसी भी प्रकार से व्याख्या करने मात्र से, हमें अभिलेख में कोई ऐसी स्पष्ट त्रुटि नहीं दिखती जो हमारी समीक्षा क्षेत्राधिकार के प्रयोग को उचित ठहराती हो। साथ ही, दिनांक 16.05.2014 के आदेश का उन कार्यवाही पर क्या प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप पुनर्विचार के बाद दिनांक 25.08.2014 का आदेश पारित हुआ, इसका विचार संबंधित आयकर अपील संख्या 86/2015 (उमंग अग्रवाल बनाम आयकर आयुक्त, केंद्रीय सर्कल, इलाहाबाद) पर निर्णय करते समय किया जाना चाहिए, लेकिन किसी भी स्थिति में, हमारा यह सुविचारित मत है कि दिनांक 16.05.2014 के आदेश में ऐसी कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं है जो इस न्यायालय को आदेश की समीक्षा करने और दिनांक 16.05.2014 के अपने आदेश में लिए गए दृष्टिकोण से भिन्न कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करे।

18. उपरोक्त टिप्पणियों के आधार पर, पुनर्विचार याचिका अस्वीकृत की जाती है।

19. न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ, मैं सहमत हूँ।

(2025) 3 ILRA 512

अपीलीय क्षेत्राधिकार, दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 06.03.2025

माननीय मुख्य न्यायाधीश अरुण भंसाली, और

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र,

के समक्ष

विशेष अपील संख्या 75/2025

श्रीमती रेनू

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील: विनय कुमार सिंह

प्रतिवादियों के वकील: आदर्श भूषण, अंकित गौड़ (एस.सी.)

सिविल कानून - अपीलकर्ता ने पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की, जामिया उर्दू से अदीब-ए-महिर पूरा किया - ए.एन.एम. के लिए दो वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम के संबंध में विज्ञापन प्रकाशित किया गया - पात्रता मानदंड के अनुसार उम्मीदवार को उत्तर प्रदेश बोर्ड या समकक्ष बोर्ड से इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण होना चाहिए - अपीलकर्ता ने आवेदन किया, चयनित हुई - प्रशिक्षण के दौरान अपीलकर्ता को एक पत्र मिला जिसमें उसके नाम के आगे दर्ज विवरणों को सही करने के लिए कहा गया अन्यथा उसे परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी जाएगी - उसके नाम के आगे 'बोर्ड मान्य नहीं' लिखा था - उसने संबंधित अधिकारियों से संपर्क किया और बताया कि अदीब-ए-महिर उत्तर प्रदेश के इंटरमीडिएट के समकक्ष नहीं है। बोर्ड - उसने दावा किया कि प्रतिवादियों का रुख 9.09.1983 और 13.09.1994 के सरकारी आदेशों के विपरीत था - याचिका दायर की गई, खारिज कर दी गई - विवादित आदेश - निर्णय दिया गया कि 17.08.2013 का सरकारी आदेश, जो सहायक शिक्षक (उर्दू) की नियुक्ति से संबंधित था, उक्त पद पर नियुक्ति के लिए विज्ञापन प्रस्तुत करने के लिए लागू नहीं होता है, 1983 और 1984 के सरकारी आदेशों में प्रदान की गई समतुल्यता केवल उन लोगों तक सीमित है जिन्होंने 11.08.1997 से पहले डिग्री प्राप्त की थी और उन पदों के लिए भी, जिन्होंने 1997 के बाद डिग्री प्राप्त की है, वे पात्र नहीं हैं - इस प्रकार, याचिकाकर्ता के प्रमाण पत्र को इंटरमीडिएट के समतुल्य नहीं माना जा सकता है। (पैरा 2, 3, 16)

अपील खारिज. (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

यूपी के और अन्य. बनाम मोहम्मद इश्तियाक अंसारी, विशेष दोषपूर्ण अपील सं. 268 का 2014 में फैसला हुआ

(माननीय मुख्य न्यायाधीश अरुण भंसाली, और
माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र, द्वारा दिया गया)

1. यह अपील विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 06.01.2025 को पारित आदेश के विरुद्ध है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया गया है। याचिकाकर्ता सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य चिकित्सा संकाय, लखनऊ द्वारा दिनांक 03.05.2024 को जारी आदेश से व्यथित है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को सत्र 2023-24 के लिए सहायक नर्स एवं दाई/महिला स्वास्थ्यकर्म (नया पाठ्यक्रम) (संक्षेप में 'ए.एन.एम.') पाठ्यक्रम की अंतिम परीक्षा में बैठने से रोक दिया गया था।

2. अपीलकर्ता ने वर्ष 2010 में पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की और जामिया उर्दू, अलीगढ़ से अदीब-ए-माहिर की उपाधि प्राप्त की। उत्तर प्रदेश के चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग के महानिदेशक (प्रशिक्षण) द्वारा दिनांक 13.05.2022 को ए.एन.एम. के लिए दो वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम के संबंध

में एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया था, जो उत्तर प्रदेश के विभिन्न प्रशिक्षण केंद्रों में आयोजित किया जाना था। उक्त विज्ञापन/सूचना में, अन्य विवरणों के साथ, पात्रता मानदंड में यह निर्धारित किया गया है कि उम्मीदवार को उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा बोर्ड या समकक्ष बोर्ड से इंटरमीडिएट परीक्षा (10+2) उत्तीर्ण होना चाहिए।

3. अपीलकर्ता ने दो वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए आवेदन किया और दावा किया कि उसने विज्ञापन में निर्धारित अनुसार आवेदन पत्र भरा था। मेरिट सूची तैयार की गई और अपीलकर्ता का चयन हो गया। इसके बाद उसे सत्र 2023-24 के लिए पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया गया और उसे एक प्रशिक्षण केंद्र आवंटित किया गया। हालांकि, प्रशिक्षण के दौरान 08.05.2024 को, प्रतिवादी संख्या 4 के माध्यम से अपीलकर्ता को 03.05.2024 का एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें अपीलकर्ता को 10.05.2024 तक अपने नाम के आगे उल्लिखित विवरणों या त्रुटियों को सुधारने के लिए कहा गया था, अन्यथा उसे और उक्त पत्र में उल्लिखित अन्य उम्मीदवारों को परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी जाएगी। उनके नाम के आगे 'बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं' की कमी बताई गई थी। याचिका में यह प्रस्तुत किया गया कि जब अपीलकर्ता ने संबंधित अधिकारियों से संपर्क किया, तो उन्हें बताया गया कि अदीब-ए-माहिर की उपाधि उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से प्राप्त इंटरमीडिएट के समकक्ष नहीं है। अपीलकर्ता ने दावा किया कि प्रतिवादियों का यह रुख राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 09.09.1983 और 13.09.1994 के सरकारी आदेशों के विपरीत है और जामिया उर्दू, अलीगढ़ विधिवत मान्यता प्राप्त है, इसलिए अदीब-ए-माहिर की योग्यता के आधार पर अपीलकर्ता को मान्यता देने से इनकार करना उचित नहीं है। जब प्रतिवादियों ने इस दलील को स्वीकार नहीं किया, तो दिनांक 03.05.2024 के पत्र पर सवाल उठाने के लिए रिट याचिका दायर की गई। माननीय एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रतिवादियों ने दिनांक 13.08.2013 के एक सरकारी आदेश पर भरोसा करते हुए यह दर्शाया कि जिन लोगों ने वर्ष 1997 के बाद अदीब-ए-माहिर का प्रमाण पत्र प्राप्त किया है, वे इंटरमीडिएट के समकक्ष होने के पात्र नहीं हैं और दिनांक 17.08.2013 का सरकारी आदेश चुनौती के अधीन नहीं है।

4. माननीय एकल न्यायाधीश ने विवादित आदेश में, पूरक प्रति-शपथपत्र के साथ संलग्न दिनांक 17.08.2013 के सरकारी आदेश का अवलोकन करने के बाद, यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ता किसी भी राहत का हकदार नहीं है और फलस्वरूप, रिट याचिका खारिज कर दी।

5. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने निवेदन किया कि दिनांक 17.08.2013 के सरकारी आदेश के आधार पर माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका खारिज करना उचित नहीं है, क्योंकि यह आदेश सहायक शिक्षक (उर्दू) के पद पर नियुक्ति से संबंधित दिशानिर्देश थे और ए.एन.एम. प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रवेश पर लागू नहीं होते हैं। इसलिए, विवादित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।

6. यह तर्क दिया गया कि दिनांक 09.09.1983 और 13.09.1994 के सरकारी आदेशों में स्पष्ट रूप से अदीब-ए-माहिर को इंटरमीडिएट (10+2) परीक्षा के समकक्ष माना गया है और चूंकि जामिया उर्दू एक मान्यता प्राप्त

बोर्ड है, इसलिए दिनांक 03.05.2024 का वह आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अमान्य घोषित किया गया है, मान्य नहीं हो सकता। इस संबंध में इस न्यायालय के एक खंडपीठ के फैसले का हवाला दिया गया, जो उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य बनाम मोहम्मद इश्तियाक अंसारी विशेष अपील संख्या 268/2014 में दिनांक 11.03.2014 को दिया गया था।

7. प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने चुनौती दिए गए आदेश का समर्थन किया। उन्होंने तर्क दिया कि अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 9.09.1983 और 13.09.1994 के सरकारी आदेशों पर भरोसा करना पूरी तरह से गलत है, क्योंकि उनका अदीब-ए-माहिर को इंटरमीडिएट परीक्षा के समकक्ष मानने से कोई संबंध नहीं है। उक्त सरकारी आदेशों का दायरा केवल उर्दू के ज्ञान तक ही सीमित है, इससे अधिक कुछ नहीं। इसलिए, इस संबंध में उठाया गया तर्क निराधार है। आगे यह भी तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता ने प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के लिए आवेदन करते समय महत्वपूर्ण तथ्यों को छुपाया था, क्योंकि नामांकन पत्र में उसने उत्तर प्रदेश से इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण होने की जानकारी दी थी। इलाहाबाद उच्च विद्यालय एवं माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा दी गई मान्यता तथ्यात्मक रूप से गलत थी, क्योंकि वह अलीगढ़ के जामिया उर्दू से अदीब-ए-माहिर उत्तीर्ण होने के आधार पर समकक्षता का दावा कर रही थी। इसलिए, नामांकन फॉर्म में उसका दावा उसकी मार्कशीट से मेल नहीं खाता था। 3 मई 2024 के पत्र में यह सही ढंग से दर्शाया गया था कि 'बोर्ड मान्य नहीं है', जिसका अर्थ यह था कि नामांकन फॉर्म में दिया गया विवरण उसकी मार्कशीट से मेल नहीं खाता था।

8. यह तर्क दिया गया है कि भले ही दिनांक 17.08.2013 का सरकारी आदेश ए.एन.एम. के प्रशिक्षण पर लागू न हो, फिर भी 1983 और 1994 के दो सरकारी आदेशों के माध्यम से मांगी गई समतुल्यता का कोई आधार नहीं है और इस प्रकार, अपीलकर्ता योग्य न होने के कारण, अपील खारिज किए जाने योग्य है।

9. हमने पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया है।

10. दिनांक 13.05.2022 के विज्ञापन (अनुलग्नक-3) में अन्य बातों के साथ-साथ शैक्षणिक योग्यता निम्नानुसार बताई गई है:-

"माध्यमिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश अथवा समकक्ष बोर्ड की (10+2)इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की हो।"

11. उपरोक्त के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उम्मीदवार को उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा बोर्ड या समकक्ष बोर्ड से इंटरमीडिएट परीक्षा (10+2) उत्तीर्ण होना आवश्यक था। अपीलकर्ता ने नामांकन फॉर्म (अनुलग्नक-5) भरते समय अपने इंटरमीडिएट बोर्ड का नाम 'उत्तर प्रदेश उच्च विद्यालय एवं इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड, इलाहाबाद' बताया। यह स्वीकार किया जाता है कि यह जानकारी तथ्यात्मक रूप से गलत थी क्योंकि अपीलकर्ता ने उत्तर प्रदेश उच्च विद्यालय एवं इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की

थी। इसके बजाय अपीलकर्ता ने वर्ष 2018 में जामिया उर्दू, अलीगढ़ से अदीब-ए-महिर उत्तीर्ण होने का दावा किया। यह स्पष्ट है कि नामांकन फॉर्म में की गई घोषणा तथ्यात्मक रूप से गलत थी और इसलिए, प्रतिवादियों द्वारा 03.05.2024 के अपने पत्र में 'बोर्ड मान्य नहीं' लिखकर इस कमी को दर्शाना उचित था, क्योंकि अपीलकर्ता द्वारा नामांकन फॉर्म में घोषित बोर्ड उसके मार्कशीट से मेल नहीं खाता था, इसलिए, इस आधार पर 03.05.2024 के पत्र जारी करने पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती।

12. यह दलील कि चूंकि अदीब-ए-महिर को 1983 और 1994 के सरकारी आदेशों द्वारा इंटरमीडिएट परीक्षा के समकक्ष घोषित किया गया है, इसलिए प्रतिवादियों को अपीलकर्ता को योग्य मानना चाहिए और उसे परीक्षा में बैठने और अपना प्रशिक्षण जारी रखने की अनुमति देनी चाहिए, स्पष्ट रूप से निराधार है। दिनांक 09.09.1983 के सरकारी आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

" मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि राज्यपाल महोदय जामिया उर्दू, अलीगढ़ द्वारा प्रदत्त निम्नलिखित परीक्षाओं को उनके सम्मुख अंकित स्थिति के अनुसार राज्याधीन सेवाओं में सीधी भर्ती के प्रयोजनों के लिए मान्यता दिये जाने की स्वीकृति सहर्ष प्रदान करते हैं।

प्रमाण-पत्र का नाम

मान्यता का स्वरूप

1-अदीब

जिन पदों पर हाई स्कूल /मैट्रिकुलेशन स्तर का

उर्दू का ज्ञान आवश्यक हो, उन पर नियुक्त के प्रयोजनों के लिए मान्यता।

2-अदीब-ए-महिर

ऐसे पदों पर नियुक्त के प्रयोजनों के लिए मान्यता

जिन पर इंटरमीडिएट स्तर का उर्दू का ज्ञान आवश्यक हो।

भवदीय

बाल कृष्ण चतुर्वेदी, "

13. उपरोक्त सरकारी आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि अदीब-ए-महिर को उन पदों पर नियुक्ति के लिए मान्यता देने की अनुमति दी गई है, जिन पर मध्यवर्ती स्तर के उर्दू ज्ञान की आवश्यकता है। यह मान्यता केवल उन्हीं पदों तक सीमित थी, जहाँ मध्यवर्ती स्तर के उर्दू ज्ञान की आवश्यकता है। उक्त सरकारी आदेश को सभी प्रयोजनों के लिए अदीब-ए-महिर को मध्यवर्ती परीक्षाओं के समकक्ष मानने के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता।

14. इसी प्रकार, दिनांक 13.09.1994 के सरकारी आदेश में यह प्रावधान किया गया था कि जामिया उर्दू, अलीगढ़ से अदीब-ए-कामिल को अदीब-ए-महिर के साथ उर्दू भाषा पढ़ाने के लिए सहायक शिक्षकों के पद पर नियुक्ति के लिए मान्यता दी जा रही है और इसे उर्दू विषय के साथ मध्यवर्ती / बी.ए. उर्दू के समकक्ष माना जाएगा। दी गई सीमित समतुल्यता केवल उर्दू भाषा तक ही सीमित थी और वह भी केवल मध्यवर्ती स्तर पर

उर्दू भाषा के ज्ञान से संबंधित योग्यता तक ही सीमित थी, न कि सभी उद्देश्यों के लिए मध्यवर्ती के समकक्ष।

15. **मोहम्मद इशितयाक अंसारी (उपरोक्त)** मामले में डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा करना भी अनुचित है, क्योंकि उक्त फैसला 'उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क' के पद के लिए पात्रता से संबंधित है, जिसमें आवश्यकता बोर्ड ऑफ हाई स्कूल की इंटरमीडिएट परीक्षा में उर्दू को एक विषय के रूप में उत्तीर्ण होना था, और इसलिए, उक्त फैसला इस मामले पर लागू नहीं होगा जहां उर्दू का ज्ञान प्रशिक्षण में प्रवेश के लिए निर्धारित मापदंडों में से एक नहीं है।

16. उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए, यद्यपि अपीलकर्ता के वकील द्वारा प्रस्तुत इस तर्क में कुछ सच्चाई हो सकती है कि दिनांक 17.08.2013 का सरकारी आदेश, जो उर्दू शिक्षण के लिए सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति से संबंधित था, वर्तमान अधिसूचना/विज्ञापन पर लागू नहीं होता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि उर्दू भाषा के सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए भी, 1983 और 1994 के सरकारी आदेशों में दी गई समकक्षता केवल उन लोगों तक सीमित है जिन्होंने 11.08.1997 से पहले डिग्री प्राप्त की है और इन पदों के लिए भी, अब वे लोग पात्र नहीं हैं जिन्होंने 1997 के बाद डिग्री प्राप्त की है।

17. चाहे जो भी हो, उपरोक्त चर्चाओं के आलोक में, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि जामिया उर्दू अलीगढ़ से प्राप्त अदीब-ए-माहिर उत्तर प्रदेश के इंटरमीडिएट (10+2) के समकक्ष है। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड या समकक्ष बोर्ड के समक्ष दायर याचिका को खारिज करने में कोई त्रुटि नहीं है।

18. अपील में कोई सार नहीं है, इसलिए इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 517

अपीलीय क्षेत्राधिकार, दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 10.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी,

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

के समक्ष

विशेष अपील संख्या 89/2025

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

प्रोफेसर बिमल जायसवाल और अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के वकील: सी.एस.सी.

प्रतिवादियों के वकील: निलया गुप्ता, अनुराग कुमार सिंह

सिविल विधि - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 - अध्याय VIII - नियम 5 - उत्तर प्रदेश अनुसूचित जाति विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 - धारा 8(1), 12(12), 30(2), 31 और 66-ए - उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 - धारा 3(1)(सी) - उत्तर प्रदेश किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी अधिनियम, 2002 - धारा 13 और 113(1) - अदालत के भीतर अपील - रिट न्यायालय के आदेश के विरुद्ध - एक प्रोफेसर पर आरक्षित ओबीसी पद पर नियुक्ति में अनियमितताओं और उसके बाद प्रशासनिक कदाचार के आरोप लगाए गए। राज्य सरकार ने जांच के लिए एक समिति का गठन किया - रिट याचिका में चुनौती दी गई - रिट न्यायालय ने याचिका स्वीकार करते हुए कहा कि उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के तहत राज्य सरकार को जांच करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। - विशेष अपील - न्यायालय ने माना, - राज्य सरकार को प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में जांच गठित करने का अधिकार है - हालांकि, लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा जांच समिति का नेतृत्व करना सही नहीं है - इसलिए, रिट न्यायालय का निर्णय उस हद तक रद्द किया जाता है जहां तक इसने राज्य सरकार के जांच करने के अधिकार को नकार दिया है, - और दिनांक 08.01.2025 के कार्यालय ज्ञापन को रद्द कर दिया गया, जिसमें राज्य सरकार को अधिनियम की धारा 8 के तहत जांच समिति का पुनर्गठन करने की अनुमति दी गई थी - विशेष अपील, आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (पैरा - 21, 22, 25)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नीरज अवस्थी और अन्य: (2006) 1 एससीसी 667,
2. निशिथ राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (2018) 3 ऑल लॉ जज 683,
3. आनंद कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 311
4. राकेश रंजन वर्मा बनाम बिहार राज्य: 1992 अनुपूरक 2 एससीसी 343,
5. श्रीमती रेखा यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2012 एलसीडी 1017

(माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी और माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा सुनाया गया)

1. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री कुलदीप पति त्रिपाठी, जिनके साथ अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री निशांत शुक्ला उपस्थित थे, प्रतिवादी संख्या 1 के अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित, वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनके साथ अधिवक्ता श्री निलया गुप्ता उपस्थित थे, और लखनऊ विश्वविद्यालय के अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह की दलीलें सुनी गईं।

2. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय VIII नियम 5 के अंतर्गत दायर इस अंतर-न्यायालय अपील के माध्यम से अपीलकर्ताओं - उत्तर प्रदेश राज्य और उच्च शिक्षा विभाग के विशेष सचिव ने इस न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ द्वारा रिट-ए संख्या 913/2025 में दिनांक 27.01.2025 को पारित निर्णय और आदेश की वैधता को चुनौती दी है।

3. उपर्युक्त रिट याचिका प्रो. बिमल जायसवाल - इस विशेष अपील में प्रतिवादी संख्या 1 - द्वारा दायर की गई थी, जिसमें राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 08.01.2025 के कार्यालय आदेश की वैधता को चुनौती दी गई थी। इस आदेश के तहत राज्य सरकार ने दिनांक 03.12.2024 को एक अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत शिकायत में लगाए गए आरोपों की जांच के लिए एक समिति का गठन किया था। ये आरोप वर्ष 2005 में अन्य पिछड़ा वर्ग (गैर-क्रीमी लेयर श्रेणी) के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित सहायक प्रोफेसर के पद पर प्रतिवादी संख्या 1 की नियुक्ति, परीक्षा केंद्रों के निर्धारण में अनियमितताओं, शिक्षकों की नियुक्ति में अनियमितताओं, अंक प्रदान करने में हेराफेरी/धांधली और शोधार्थियों के शोषण आदि से संबंधित थे। समीक्षा का गठन इस प्रकार है: -

i. कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	अध्यक्ष
ii. श्री डी.पी. शाही, संयुक्त सचिव, उच्च शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार	सदस्य
iii. रजिस्ट्रार, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ	सदस्य
iv. क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी, लखनऊ	सदस्य

समिति को जांच करने और 15 दिनों के भीतर सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया है।

4. उपरोक्त आदेश को रिट न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी गई कि राज्य सरकार को राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के प्रावधानों के तहत ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है। रिट न्यायालय ने राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 12 (12) और 66-ए का हवाला देते हुए यह माना कि उपरोक्त प्रावधानों में से कोई भी राज्य सरकार को राज्य विश्वविद्यालय के शिक्षक की नियुक्ति और कार्य से संबंधित आरोपों की जांच करने का अधिकार नहीं देता है।

5. रिट न्यायालय ने रिट याचिका स्वीकार कर ली और दिनांक 08.01.2025 के कार्यालय आदेश को रद्द कर दिया, साथ ही सक्षम प्राधिकारी को प्रासंगिक नियमों के तहत कानून के अनुसार, यदि आवश्यक हो, तो नया आदेश पारित करने का अधिकार दिया।

6. उपरोक्त आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए, अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित माननीय सहायक न्यायालय श्री कुलदीप पति त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है कि प्रतिवादी संख्या 1, प्रोफेसर सिया राम जायसवाल के पुत्र हैं, जो लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में कार्यरत थे। प्रतिवादी संख्या 1 को अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित पद पर नियुक्ति प्राप्त हुई। प्रोफेसर के पुत्र होने के नाते, प्रतिवादी संख्या 1

ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए आरक्षण का लाभ लेने के पात्र नहीं थे। उन्होंने यह तथ्य छिपाकर नियुक्ति प्राप्त की कि उनके पिता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे और इस प्रकार उन्होंने आरक्षण का गलत लाभ उठाया।

7. माननीय सहायक न्यायालय ने प्रस्तुत किया है कि उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम 1973 की धारा 8 (1) राज्य सरकार को ऐसी परिस्थितियों में जांच गठित करने का अधिकार देती है। रिट याचिका को खारिज करते समय रिट न्यायालय ने इस प्रावधान पर विचार नहीं किया। उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **स्टेट ऑफ यू.पी. बनाम नीरज अवस्थी और अन्य: (2006) 1 एससीसी 667, निशित राय बनाम स्टेट ऑफ यू.पी.: (2018) 3 ऑल.एल.जे. 683**, और आनंद कुमार मिश्रा बनाम स्टेट ऑफ यू.पी.: 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 311 के मामलों में दिए गए निर्णयों पर भरोसा जताया है।

8. लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह ने यह तर्क दिया है कि राज्य सरकार को राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 8 (1) के तहत जांच गठित करने का अधिकार है और इस प्रकार उन्होंने अपीलकर्ताओं का समर्थन किया है।

9. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 1 का प्रतिनिधित्व कर रहे वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित ने यह तर्क दिया है कि यद्यपि यह निर्विवाद है कि प्रतिवादी संख्या 1 के पिता प्रोफेसर थे और वर्ष 2003 में सहायक प्रोफेसर के पद पर उनकी प्रारंभिक नियुक्ति त्रुटिपूर्ण हो सकती है, लेकिन बाद में सहायक प्रोफेसर के पद पर प्रतिवादी संख्या 1 की सेवाएं स्थायी कर दी गईं और उचित समय पर उन्हें प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया। उनकी प्रारंभिक नियुक्ति के संबंध में न तो प्रतिवादी संख्या 1 की सेवाओं की स्थायीकरण के समय और न ही प्रोफेसर के पद पर उनकी नियुक्ति के समय कोई आपत्ति उठाई गई थी। प्रतिवादी संख्या 1 की नियुक्ति के लगभग 12 साल बाद यह कार्रवाई एक ऐसे वकील द्वारा प्रस्तुत शिकायत के आधार पर शुरू की गई है, जिसका प्रतिवादी संख्या 1 की नियुक्ति से कोई संबंध नहीं है और जो केवल नाममात्र का ऋणदाता प्रतीत होता है।

10. श्री दीक्षित ने यह तर्क दिया है कि लखनऊ विश्वविद्यालय एक स्वायत्त निकाय है। विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद को किसी भी प्रोफेसर के विरुद्ध शिकायत पर कार्रवाई करने का अधिकार है, जबकि राज्य सरकार को ऐसा कोई अधिकार नहीं है। **श्री दीक्षित ने राकेश रंजन वर्मा बनाम बिहार राज्य: 1992 अनुपूरक 2 एससीसी 343 और श्रीमती रेखा यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2012 एलसीडी 1017** के मामलों में दिए गए निर्णयों का हवाला दिया है।

11. अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) श्रेणी के उम्मीदवार उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की धारा 3(1)(सी) में निहित प्रावधानों के अनुसार आरक्षण के पात्र हैं, जो इस प्रकार हैं:-

“3. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण.—(1) लोक सेवाओं और पदों में, सीधी भर्ती के चरण में, उन रिक्तियों का निम्नलिखित प्रतिशत आरक्षित होगा जिन पर उप-धारा (5) में निर्दिष्ट रोस्टर के अनुसार अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के नागरिकों के लिए भर्तियां की जानी हैं।

(क) अनुसूचित जातियों के मामले में	इक्कीस प्रतिशत;
(ख) अनुसूचित जनजातियों के मामले में	दो प्रतिशत;
(ग) अन्य पिछड़े वर्गों के नागरिकों के मामले में	सत्ताईस प्रतिशत
- बशर्ते कि खंड (ग) के अधीन आरक्षण अनुसूची द्वितीय में निर्दिष्ट अन्य पिछड़े वर्गों के नागरिकों पर लागू नहीं होगा।

* * *

12. उपर्युक्त अधिनियम के साथ संलग्न अनुसूची II इस प्रकार है:-

1. निम्नलिखित का पुत्र या पुत्री—

- (क) भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय वन सेवा या अन्य केंद्रीय सेवा का सदस्य, चाहे वह किसी राज्य सेवा से सीधे भर्ती किया गया हो या पदोन्नत किया गया हो; या
- (ख) उत्तर प्रदेश सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा), उत्तर प्रदेश पुलिस सेवा या अन्य राज्य सेवा का कोई सदस्य, जिसकी ऐसी सेवा में सीधी भर्ती हुई हो; या
- (ग) भारत सरकार के किसी विभाग या मंत्रालय या ऐसे विभाग या मंत्रालय के अधीन शैक्षिक, अनुसंधान या अन्य संस्थानों का ऐसा समूह ए/श्रेणी I अधिकारी, जो उप-श्रेणी (क) में शामिल नहीं है; या
- (घ) राज्य सरकार के किसी विभाग या संस्थान का ऐसा समूह ए/श्रेणी I अधिकारी, जो उप-श्रेणी (ख) में शामिल नहीं है; या
- (ङ) रक्षा बलों या अर्धसैनिक बलों का कोई अधिकारी, जो कर्नल या समकक्ष रैंक से नीचे का न हो।

बशर्ते कि ऐसे सदस्य या कर्मचारी या अधिकारी की वेतन से होने वाली आय दस हजार रुपये या उससे अधिक प्रति माह हो, उनका जीवनसाथी कम से कम स्नातक हो और वह या उनका जीवनसाथी शहरी क्षेत्र में मकान मालिक हो।

2. डॉक्टर, सर्जन, इंजीनियर, वकील, आर्किटेक्ट, चार्टर्ड अकाउंटेंट, मीडिया और सूचना पेशेवर, प्रबंधन और अन्य सलाहकार, फिल्म कलाकार और अन्य फिल्म पेशेवर, शैक्षणिक संस्थान या

कोचिंग संस्थान चलाने वाले या शेयर या स्टॉक ब्रोकर या मनोरंजन व्यवसाय में लगे व्यक्ति का पुत्र या पुत्री;

बशर्ते कि लगातार तीन वित्तीय वर्षों के लिए सभी स्रोतों से उनकी औसत आय दस लाख रुपये प्रति वर्ष से कम न हो, उनका जीवनसाथी कम से कम स्नातक हो और उनके परिवार के पास कम से कम बीस लाख रुपये की अचल संपत्ति हो।

3. किसी व्यवसायी का पुत्र या पुत्री जिसकी लगातार तीन वित्तीय वर्षों के लिए औसत आय दस लाख रुपये प्रति वर्ष से कम न हो, उनका जीवनसाथी कम से कम स्नातक हो और उनके परिवार के पास कम से कम बीस लाख रुपये की अचल संपत्ति हो।

4. किसी उद्योगपति का पुत्र या पुत्री, जिसकी इकाइयों के संचालन में निवेश का स्तर दस करोड़ रुपये से अधिक है और ऐसी इकाइयाँ कम से कम पाँच वर्षों से वाणिज्यिक उत्पादन में लगी हुई हैं और उसकी पत्नी कम से कम स्नातक है।

5. उत्तर प्रदेश भूमि जोत सीमा अधिनियम, 1960 के तहत निर्धारित सीमा के भीतर भूमि रखने वाले व्यक्ति का पुत्र या पुत्री, जिसकी कृषि के अलावा अन्य स्रोतों जैसे वेतन, व्यवसाय या उद्योग आदि से एक वित्तीय वर्ष में लाख रुपये की आय हो और उसकी पत्नी कम से कम स्नातक हो।

6. उपर्युक्त श्रेणियों में से किसी में भी शामिल न होने वाले व्यक्ति का पुत्र या पुत्री, जिसकी सभी स्रोतों से लगातार तीन वित्तीय वर्षों की औसत आय दस लाख रुपये प्रति वर्ष से कम न हो, उसकी पत्नी कम से कम स्नातक हो और उसके परिवार के पास कम से कम बीस लाख रुपये की चल संपत्ति हो।

13. रिट याचिका की एक प्रति विशेष अपील के साथ संलग्न है, जिसके अवलोकन से पता चलता है कि रिट याचिका के पैरा-12 (i) में यह निवेदन किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 1 'कलवार' (जैसवाल जाति) से संबंधित है, जिसे अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के रूप में मान्यता प्राप्त है। हालांकि, प्रतिवादी संख्या 1 ने अपनी नियुक्ति के समय अपने पिता की स्थिति के बारे में कुछ भी नहीं बताया है और न ही यह निवेदन किया है कि वह आरक्षण अधिनियम, 1994 की अनुसूची II में उल्लिखित किसी भी श्रेणी में नहीं आता है।

14. रिट याचिका में चुनौती दिए गए दिनांक 08.01.2015 के कार्यालय आदेश के सरसरी तौर पर अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि ओबीसी के लिए आरक्षित पद पर प्रतिवादी संख्या 1 की नियुक्ति के संबंध में शिकायत के अलावा... (गैर-क्रीमी लेयर) के अलावा, परीक्षा केंद्रों के निर्धारण, शिक्षकों की नियुक्ति, अंक देने में हेराफेरी/धांधली और शोधार्थियों के शोषण आदि के संबंध में भी उनके खिलाफ शिकायतें हैं।

15. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 का अध्याय-तीसरा "निरीक्षण और जांच" से संबंधित है। अध्याय-तीसरे में आने वाली राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 8 में निम्नलिखित प्रावधान हैं:

“(1) राज्य सरकार को विश्वविद्यालय या उसके किसी घटक महाविद्यालय या विश्वविद्यालय द्वारा संचालित किसी संस्थान, जिसमें उसके भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ, कार्यशालाएँ और उपकरण शामिल हैं, तथा विश्वविद्यालय या ऐसे महाविद्यालयों या संस्थानों द्वारा संचालित परीक्षाओं, शिक्षण और अन्य कार्यों का निरीक्षण कराने का अधिकार होगा, या विश्वविद्यालय या ऐसे महाविद्यालय या ऐसे संस्थान के प्रशासन और वित्त से संबंधित किसी मामले के संबंध में इसी प्रकार से जाँच कराने का अधिकार होगा।

(2) जहाँ राज्य सरकार उप-धारा (1) के अधीन निरीक्षण या जाँच कराने का निर्णय लेती है, तो वह रजिस्ट्रार के माध्यम से विश्वविद्यालय को इसकी सूचना देगी, तथा कार्यपालिका परिषद द्वारा नामित कोई व्यक्ति विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में ऐसे निरीक्षण या जाँच में उपस्थित हो सकता है और उसे इस रूप में सुने जाने का अधिकार होगा। बशर्ते कि ऐसी किसी भी जांच या पूछताछ में विश्वविद्यालय की ओर से कोई भी कानूनी व्यवसायी उपस्थित न हो, पैरवी न करे या कार्य न करे।

(3) उपधारा (1) के अधीन निरीक्षण या जाँच करने के लिए नियुक्त व्यक्ति या व्यक्तियों को शपथ पर साक्ष्य लेने, गवाहों की उपस्थिति अनिवार्य करने और दस्तावेजों एवं भौतिक वस्तुओं को प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करने के उद्देश्य से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी मुकदमे की सुनवाई करते समय सिविल न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी, और उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 345 और 346 के अर्थ में सिविल न्यायालय माना जाएगा, और उनके समक्ष कोई भी कार्यवाही भारतीय दंड संहिता की धारा 193 और 228 के अर्थ में न्यायिक कार्यवाही मानी जाएगी।

(4) राज्य सरकार ऐसे निरीक्षण या जाँच के परिणाम के संबंध में कुलपति को संबोधित करेगी, और कुलपति कार्यकारी परिषद को राज्य सरकार के विचार और उस पर की जाने वाली कार्रवाई के संबंध में राज्य सरकार द्वारा दिए गए सुझाव से अवगत कराएंगे।

(5) कुलपति तब राज्य सरकार द्वारा निर्धारित समय के भीतर कार्यपालिका परिषद द्वारा की गई या प्रस्तावित कार्रवाई की रिपोर्ट राज्य सरकार को प्रस्तुत करेंगे।

(6) यदि विश्वविद्यालय अधिकारी उचित समय के भीतर राज्य सरकार की संतुष्टि के अनुरूप कार्रवाई नहीं करते हैं, तो सरकार विश्वविद्यालय अधिकारियों द्वारा दिए गए किसी भी स्पष्टीकरण

पर विचार करने के बाद ऐसे निर्देश जारी कर सकती है, जैसा वह उचित समझे, और विश्वविद्यालय अधिकारी ऐसे निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य होंगे।

(7) राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन कराए गए प्रत्येक निरीक्षण या जांच की रिपोर्ट की एक प्रति, उपधारा (5) के अधीन कुलपति से प्राप्त प्रत्येक संचार की एक प्रति, उपधारा (6) के अधीन जारी किए गए प्रत्येक निर्देश की एक प्रति, और ऐसे निर्देशों के अनुपालन या गैर-अनुपालन के संबंध में प्राप्त प्रत्येक रिपोर्ट या सूचना की एक प्रति कुलाधिपति को भेजेगी।

(8) उपधारा (6) के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यदि कुलाधिपति इस धारा की उपधारा (7) में निर्दिष्ट किसी दस्तावेज या सामग्री पर विचार करने पर, जिसमें इस अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले की गई किसी जांच की रिपोर्ट भी शामिल है, यह राय रखता है कि कार्यपालिका परिषद अपने कार्यों को पूरा करने में विफल रही है या उसने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया है, तो वह उसे लिखित स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद, यह आदेश दे सकता है कि उक्त कार्यपालिका परिषद को निरस्त करते हुए, एक तदर्थ निष्पादन परिषद, जिसमें कुलपति और ऐसे अन्य व्यक्ति शामिल हों जिनकी संख्या दस से अधिक न हो, जिन्हें कुलाधिपति इस संबंध में नियुक्त करे, जिसमें निरस्त कार्यपालिका परिषद का कोई सदस्य भी शामिल हो, ऐसी अवधि के लिए, जो कुलाधिपति समय-समय पर निर्दिष्ट करे, दो वर्ष से अधिक न होने की अवधि के लिए, और उपधारा (11) के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के अधीन कार्यपालिका परिषद की सभी शक्तियों और कार्यों का प्रयोग और निष्पादन करेगी।

(9) धारा 20 की कोई बात उपधारा (8) के अधीन गठित तदर्थ कार्यपालिका परिषद की संरचना पर लागू नहीं होगी।

(10) उपधारा (8) के अधीन आदेश जारी होने पर, कार्यपालिका परिषद के उन सभी सदस्यों का कार्यकाल समाप्त हो जाएगा, जिनमें पदेन सदस्य भी शामिल हैं, और ऐसे सभी सदस्य अपने पद त्याग देंगे।

(11) उपधारा (8) के अधीन आदेश के लागू रहने की अवधि के दौरान, इस अधिनियम के प्रावधान निम्नलिखित संशोधनों के अधीन प्रभावी होंगे, अर्थात् -

(क) धारा 20 में, उपधारा (5) के बाद, निम्नलिखित उपधारा जोड़ी जाएगी:

(6) कार्यपालिका परिषद की बैठक कम से कम दो माह में एक बार आयोजित की जाएगी;

(ख) धारा 21 की उपधारा (1) में, 'इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन' शब्दों के स्थान पर 'और कुलाधिपति के नियंत्रण के अधीन' शब्द जोड़े गए माने जाएंगे;

(ग) धारा 24 की उपधारा (2) में, 'और न्यायालय की कुल सदस्यता के कम से कम एक-चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित लिखित अनुरोध पर' शब्द हटाए गए माने जाएंगे।

(12) उपधारा (8) के तहत किसी आदेश की अवधि समाप्त होने के बाद, धारा 20 के प्रावधानों के अनुसार एक नई कार्यपालिका परिषद का गठन किया जाएगा।

(13) उपधारा (8) के तहत आदेश के संचालन की अवधि के दौरान, इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार निर्मित कोई भी कानून, अध्यादेश, विनियम या अन्य नियम, जिसे उपधारा (11) के प्रावधानों के आधार पर संशोधित माना जाता है, ऐसी अवधि की समाप्ति के बावजूद, इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार संशोधित, निरस्त या रद्द किए जाने तक लागू रहेगा।

16. उपर्युक्त वैधानिक प्रावधान का सरसरी तौर पर अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि राज्य सरकार को राज्य विश्वविद्यालय के प्रशासन और वित्त से संबंधित किसी भी मामले की जांच कराने का अधिकार है। किसी शिक्षक की नियुक्ति में की गई कोई भी अवैधता और किसी शिक्षक द्वारा अपने कार्य में की गई कोई भी अवैधता/अनियमितता, विश्वविद्यालय के प्रशासन से संबंधित मामले हैं। अवैध तरीके से नियुक्त शिक्षक को वेतन का भुगतान विश्वविद्यालय के वित्त से संबंधित मामला है। इसलिए, राज्य सरकार को राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 8 (1) के तहत किसी शिक्षक की अवैध नियुक्ति के आरोपों के साथ-साथ उसके द्वारा अपने कर्तव्यों के पालन में की गई अनियमितताओं के संबंध में जांच कराने का अधिकार है।

17. रिट न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता की ओर से यह निवेदन किया गया कि राज्य सरकार को राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 66-ए और 12(2) के तहत ऐसी जांच का आदेश देने का अधिकार नहीं है और इस निवेदन के समर्थन में केस-कानून प्रस्तुत किए गए। रिट न्यायालय ने इस निवेदन को सही माना क्योंकि उपर्युक्त वैधानिक प्रावधान ऐसी स्थिति पर लागू नहीं होते। हालांकि, राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 8 के प्रावधान रिट न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किए गए थे, इसलिए रिट न्यायालय ने इस पर ध्यान नहीं दिया। चूंकि राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 8 में निहित प्रावधान का प्रभाव और दायरा विशुद्ध रूप से एक कानूनी प्रश्न है, इसलिए इसे इस अंतर-न्यायालय अपील में पहली बार उठाया जा सकता है और इस पर विचार किया जा सकता है। प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वकील ने इस विशेष अपील में पहली बार इस बिंदु को उठाए जाने पर कोई आपत्ति नहीं उठाई, जो कि उचित था।

18. **आनंद कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**, 2022 एससीसी ऑनलाइन ऑल 311 के मामले में, मुद्दा उत्तर प्रदेश किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी अधिनियम, 2002 की धारा 13 के तहत राज्य सरकार की शक्तियों के दायरे से संबंधित था, जो इस प्रकार है:-

“13 (1) राज्य सरकार को विश्वविद्यालय, उसके भवनों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, कार्यशालाओं और उपकरणों सहित, तथा विश्वविद्यालय द्वारा संचालित या किए गए सभी अन्य कार्यों, परीक्षाओं, शिक्षण और अन्य सभी कार्यों का निरीक्षण कराने का अधिकार होगा, जैसा वह निर्देशित करे, या विश्वविद्यालय के प्रशासन और वित्त से संबंधित किसी भी मामले के संबंध में इसी प्रकार जांच कराने का अधिकार होगा।

(2) यदि राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन निरीक्षण या जाँच कराने का निर्णय लेती है, तो वह रजिस्ट्रार के माध्यम से विश्वविद्यालय को इसकी सूचना देगी, और कार्यकारी परिषद द्वारा नामित कोई भी व्यक्ति विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में ऐसे निरीक्षण या जाँच में उपस्थित हो सकता है और उसे इस रूप में सुनवाई का अधिकार होगा: बशर्ते कि कोई भी व्यक्ति ऐसे निरीक्षण या जाँच में विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित न हो, पैरवी न करे या कानूनी व्यवसायी के रूप में कार्य न करे।

(3) उपधारा (1) के अधीन निरीक्षण या पृष्ठछाँच करने के लिए नियुक्त व्यक्ति या व्यक्तियों को शपथ पर साक्ष्य लेने, गवाहों की उपस्थिति अनिवार्य करने और दस्तावेजों एवं भौतिक वस्तुओं को प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करने के प्रयोजनों हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी मुकदमे की सुनवाई करते समय सिविल न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी, और उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 345 और 346 के अर्थ में सिविल न्यायालय माना जाएगा, और उनके समक्ष कार्यवाही दंड संहिता, 1860 की धारा 193 और 228 के अर्थ में न्यायिक कार्यवाही मानी जाएगी।

(4) राज्य सरकार ऐसे निरीक्षण या जांच के परिणाम के संबंध में कुलपति को संबोधित करेगी, और कुलपति कार्यकारी परिषद को राज्य सरकार के विचार और उस पर की जाने वाली कार्रवाई के संबंध में राज्य सरकार द्वारा दिए गए सुझावों से अवगत कराएंगे।

(5) इसके बाद कुलपति, राज्य सरकार द्वारा निर्धारित समय के भीतर, कार्यकारी परिषद द्वारा की गई या प्रस्तावित की जाने वाली कार्रवाई की रिपोर्ट राज्य सरकार को प्रस्तुत करेंगे।

(6) यदि विश्वविद्यालय अधिकारी उचित समय के भीतर राज्य सरकार की संतुष्टि के अनुरूप कार्रवाई नहीं करते हैं, तो राज्य सरकार, विश्वविद्यालय अधिकारियों द्वारा दिए गए किसी भी स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद, ऐसे निर्देश जारी कर सकती है, जैसा वह उचित समझे, और विश्वविद्यालय अधिकारी ऐसे निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य होंगे।

(7) राज्य सरकार उप-धारा (1) के अधीन कराए गए निरीक्षण या जांच की प्रत्येक रिपोर्ट, उप-धारा (5) के अधीन कुलपति से प्राप्त प्रत्येक संचार, उप-धारा (6) के अधीन जारी किए गए प्रत्येक निर्देश, और ऐसे निर्देशों के अनुपालन या गैर-अनुपालन के संबंध में प्राप्त प्रत्येक रिपोर्ट या सूचना की एक प्रति कुलाधिपति को भेजेगी।

19. उत्तर प्रदेश किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी अधिनियम, 2002 की धारा 13 (1) की शब्दावली राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 8 (1) के समान है। उपरोक्त प्रावधान की व्याख्या करते हुए, इस न्यायालय ने यह माना कि:-

“23. धारा 13 के संबंध में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्य सरकार को विश्वविद्यालय, उसके भवनों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, कार्यशालाओं और उपकरणों सहित, तथा विश्वविद्यालय द्वारा संचालित या किए गए सभी कार्यों, परीक्षाओं, शिक्षण और अन्य सभी कार्यों का निरीक्षण कराने का अधिकार है, जैसा वह निर्देशित करे, या विश्वविद्यालय के प्रशासन और वित्त से संबंधित किसी भी मामले के संबंध में इसी प्रकार की जांच कराने का अधिकार है। “विश्वविद्यालय द्वारा संचालित या किए गए सभी अन्य कार्यों” और “विश्वविद्यालय के प्रशासन और वित्त से संबंधित किसी भी मामले के संबंध में इसी प्रकार की जांच कराने” शब्दों के प्रयोग को देखते हुए, इस प्रावधान का दायरा काफी व्यापक है। “विश्वविद्यालय”। इसमें प्रयुक्त शब्द “प्रशासन” का व्यापक अर्थ है, जिसमें विश्वविद्यालय में की गई कोई भी अवैध नियुक्ति शामिल है, लेकिन जैसा कि प्रावधान से स्पष्ट है, इसमें परिकल्पित निरीक्षण या जांच विश्वविद्यालय के कामकाज में शामिल व्यक्ति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए। यदि धारा 13 के अंतर्गत कोई कार्रवाई की जानी है, तो पूरी प्रक्रिया उक्त धारा में ही दी गई है। राज्य सरकार द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र सहित अभिलेखों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि ऐसी कोई प्रक्रिया अपनाई गई थी। उदाहरण के लिए, धारा 13 की उपधारा (2) में कहा गया है कि यदि राज्य सरकार उपधारा (1) के अंतर्गत निरीक्षण या जांच कराने का निर्णय लेती है, तो वह रजिस्ट्रार के माध्यम से विश्वविद्यालय को इसकी सूचना देगी। कार्यकारी परिषद द्वारा नामित कोई भी व्यक्ति विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में ऐसे निरीक्षण या जांच में उपस्थित हो सकता है और उसे इस रूप में सुनवाई का अधिकार होगा। उपधारा (4) में ऐसे निरीक्षण या जांच की रिपोर्ट को कुलपति को संबोधित करने का प्रावधान है, जो बदले में इसे कार्यकारी परिषद के समक्ष राज्य सरकार द्वारा की जाने वाली कार्रवाई पर दी गई सलाह के साथ प्रस्तुत करेंगे। की गई कार्रवाई की रिपोर्ट उपधारा (5) के अंतर्गत कुलपति द्वारा राज्य सरकार को प्रस्तुत की जानी है। इस प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। फिर भी, राज्य सरकार को अधिनियम 2002 की धारा 13 के तहत निरीक्षण या जांच कराने और उपधारा (6) के तहत विश्वविद्यालय को निर्देश जारी करने की व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं, यदि विश्वविद्यालय कार्रवाई करने में विफल रहता है, और

विश्वविद्यालय प्राधिकरण ऐसे निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य हैं, और इस मामले में इसने दिनांक 02.06.2020 का आदेश जारी करने से पहले विश्वविद्यालय से रिपोर्ट मांगी थी।

(जोर दिया गया)

20. हम **आनंद कुमार मिश्रा (उपरोक्त)** मामले में इस न्यायालय की एकल न्यायाधीश पीठ द्वारा व्यक्त किए गए उपरोक्त मत से सहमत हैं, जिसमें यह मत भी शामिल है कि राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 8(1) के तहत परिकल्पित जांच विश्वविद्यालय के संचालन में शामिल व्यक्ति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए।

21. राज्य सरकार ने लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति की अध्यक्षता में एक जांच समिति नियुक्त की है। राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 31 में प्रावधान है कि विश्वविद्यालय के शिक्षकों की नियुक्ति विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा की जाएगी। राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 30(2) के अनुसार, कुलपति कार्यकारी परिषद के अध्यक्ष होते हैं।

22. इन परिस्थितियों में, कुलपति को जांच समिति का अध्यक्ष या सदस्य भी नहीं बनाया जाना चाहिए था। इसलिए, यह मानते हुए कि राज्य सरकार को प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में जांच गठित करने का अधिकार है, हमारा यह मत है कि जांच समिति का गठन, जहां तक इसकी अध्यक्षता लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा की जा रही है, सही नहीं है और राज्य सरकार को एक नई समिति का गठन करना चाहिए जिसमें **आनंद कुमार मिश्रा (उपरोक्त)** में निर्धारित कानून के अनुसार लखनऊ विश्वविद्यालय के कामकाज में शामिल कोई भी व्यक्ति सदस्य नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 8 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करेगी।

23. माननीय सहायक सरकारी वकील द्वारा उद्धृत अन्य दो निर्णय, अर्थात् **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नीरज अवस्थी एवं अन्य तथा निशित राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त)**, राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम या उससे मिलते-जुलते किसी अन्य वैधानिक प्रावधान से संबंधित नहीं हैं, इसलिए वे निर्णय वर्तमान अपील के निर्णय के लिए प्रासंगिक नहीं हैं।

24. प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत **राकेश रंजन वर्मा बनाम बिहार राज्य और श्रीमती रेखा यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त)** के मामलों में दिए गए निर्णय भी राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम या उससे मिलते-जुलते किसी अन्य वैधानिक प्रावधान से संबंधित नहीं हैं, इसलिए वे निर्णय भी वर्तमान अपील के निर्णय के लिए प्रासंगिक नहीं हैं।

25. तदनुसार, विशेष अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। रिट न्यायालय द्वारा दिनांक 10.05.2022 को पारित निर्णय एवं आदेश, रिट-ए संख्या 9049/2020 में, इस हद तक निरस्त किया जाता है कि इसमें यह कहा गया है कि राज्य सरकार को प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में जांच कराने का कोई अधिकार नहीं है। हालाँकि, दिनांक 08.01.2025 को जारी कार्यालय जापन, जिसके द्वारा जांच समिति का गठन किया गया था, इस कारण निरस्त किया जाता है कि विश्वविद्यालय के कुलपति जांच समिति के अध्यक्ष/सदस्य नहीं हो सकते। राज्य सरकार को विश्वविद्यालय के कामकाज से असंबंधित व्यक्तियों से मिलकर एक नई जांच समिति गठित करने और राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 8 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए नए सिरे से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता होगी।

26. मुकदमे का खर्च पक्षकार स्वयं वहन करेंगे।

(2025) 3 ILRA 527

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.03.2025

मौजूदगी में

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,

रिट याचिका संख्या 2154 वर्ष 2025

दिनेश कुमार कुरेल

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के वकील: सुदीप कुमार, राजन मिश्रा, उमेश चंद्र त्रिपाठी

उत्तरदाताओं के लिए वकील: सी.एस.सी., राज कुमार उपाध्याय (आर.के. उपाध्याय)

ए. सेवा कानून-अनुशासनात्मक कार्यवाही - प्रारंभिक जांच पर निर्भरता- प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन - याचिकाकर्ता ने दिनांक 06.11.2024 के अनुशासनात्मक आदेश को चुनौती दी, जिसके तहत प्रारंभिक जांच के निष्कर्षों के आधार पर संचयी प्रभाव से तीन वेतन वृद्धियों को रोकने का दंड लगाया गया था। न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता प्रारंभिक जांच से जुड़ा नहीं था, और आरोपों को साबित करने के लिए नियमित जांच के दौरान कोई गवाह या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए गए थे। जांच में जिन अतिरिक्त सामग्रियों पर भरोसा किया गया था, वे न तो याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराई गईं और न ही उसे उनका खंडन करने का मौका दिया गया। न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि गवाहों की जांच और जिरह सहित पूर्ण अनुशासनात्मक जांच

किए बिना, प्रारंभिक जांच पर निर्भरता प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। न्यायालय ने माना कि जांच कार्यवाही और विवादित दंड आदेश गंभीर प्रक्रियात्मक चूक और प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन के कारण दूषित हैं। (पैरा 1 से 29)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य (2013)4 एससीसी 301
2. सत्येंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2024) एससीसी ऑनलाइन एससी 3325
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर, द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुदीप कुमार और प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा श्री आर.के. उपाध्याय, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता की बात सुनी गई।
2. याचिकाकर्ता द्वारा इस रिट याचिका में उठाई गई शिकायत उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दिनांक 06.01.2024 को पारित आदेश से संबंधित है, जिसके तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के समापन पर संचयी प्रभाव से तीन वेतन वृद्धियों को स्थायी रूप से रोक दिया गया है।
3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान विवाद हरचंदपुर-सिरसाघाट सड़क की प्रगति से संबंधित है, जिसकी लंबाई 0.968 किलोमीटर है, जिसे संबंधित मंत्री की अध्यक्षता में हुई समीक्षा बैठक में पूर्ण दिखाया गया था।
4. यह प्रस्तुत किया गया है कि केंद्रीय लोक निर्माण विभाग, लखनऊ के मुख्य अभियंता द्वारा 13.10.2022 को की गई जांच में पाया गया कि सड़क का 47 मीटर भाग अधूरा था और काम अभी भी शेष था। तदनुसार, अधिकारियों को गलत जानकारी देने के कारण याचिकाकर्ता और इसके लिए जिम्मेदार अन्य व्यक्तियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई।
5. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को 16.11.2022 को आरोप पत्र सौंपा गया था जिसमें चार आरोप थे और प्रतिवादियों ने उक्त आरोपों के समर्थन में 13.10.2022 को की गई प्रारंभिक जांच का भी हवाला दिया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता प्रारंभिक जांच से कभी भी जुड़ा नहीं था और इस तथ्य में कोई संदेह नहीं है कि जांच कार्यवाही के दौरान याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों का

निर्धारण करने के लिए कोई और कदम नहीं उठाए गए कि विवादित सड़क की पूरी लंबाई पूरी हुई थी या नहीं और क्या याचिकाकर्ता गलत जानकारी देने का दोषी था।

6. यह कहा गया है कि क्या प्रारंभिक जांच रिपोर्ट सरकारी कर्मचारी के खिलाफ आरोप लगाने का आधार हो सकती है, इस प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय ने निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य, 2013 (4) एससीसी 301 के मामले में विचार किया था, जहां यह माना गया है कि अनुशासनात्मक जांच में दर्ज साक्ष्य का उपयोग नियमित जांच में नहीं किया जा सकता है क्योंकि दोषी व्यक्ति इससे जुड़ा नहीं होता है और प्रारंभिक जांच में जांच किए गए व्यक्तियों से जिरह करने का अवसर नहीं दिया जाता है।

7. उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान जांच रिपोर्ट और विवादित दंड आदेश की ओर दिलाया है, जिसमें बताया गया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को प्रमाणित करने के लिए जांच समिति की रिपोर्ट पर अत्यधिक भरोसा किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि जांच 15.02.2023 को समाप्त हुई और उसके बाद, जांच अधिकारी ने स्वतः संज्ञान लेते हुए प्रतिवादियों को माप पुस्तिका (मेजरमेंट बुक) और अन्य सामग्री प्रस्तुत करने का निर्देश दिया, जो उन्हें 09.05.2023 को सौंपी गई थी। इस प्रकार प्रस्तुत अतिरिक्त सामग्री याचिकाकर्ता को न तो दी गई और न ही उसे अतिरिक्त सामग्री का सामना करने का कोई अवसर दिया गया। जांच अधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उक्त सामग्री और माप पुस्तिका (मेजरमेंट बुक) की सामग्री पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध किया, जिसके परिणामस्वरूप विवादित दंड आदेश पारित हुआ। यह कहा गया कि जांच पूरी तरह से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए आगे बढ़ी और इसलिए इसे रद्द किया जाना चाहिए।

8. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी वकील ने कार्यकारी अभियंता, प्रांतीय खंड, पीडब्लू डी., रायबरेली से प्राप्त लिखित निर्देशों के आधार पर रिट याचिका का विरोध किया है, जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच कार्यवाही कानून के अनुसार की गई है और उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 में निहित सभी प्रावधानों का पालन किया गया है तथा याचिकाकर्ता को सुनवाई का पूरा अवसर दिया गया है। उन्होंने आगे कहा है कि जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को सुनवाई का पूरा अवसर दिया और उसके बाद ही दंड का आदेश पारित किया तथा निवेदन किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई जांच कार्यवाही में कोई खामी नहीं है और रिट याचिका को खारिज करने की प्रार्थना की है।

9. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की बात सुनी और अभिलेखों का अवलोकन किया।

10. इस न्यायालय के समक्ष विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के स्वर्णिम सिद्धांत का पालन करते हुए की गई है, जिसमें याचिकाकर्ता को सुनवाई का पूरा अवसर दिया गया है या नहीं?

11. यह पाया गया है कि याचिकाकर्ता पर आरोप है कि रायबरेली जिले में 0.968 किलोमीटर लंबी हरचंदपुर-सिरसाघाट सड़क के चौड़ीकरण और सुदृढ़ीकरण के कार्य के पूरा होने के संबंध में उच्च अधिकारियों को गलत सूचना दी गई थी, जहां 47 मीटर सड़क का निर्माण पूरा नहीं हुआ था, जबकि उच्च अधिकारियों को इसके विपरीत सूचित किया गया था कि पूरी सड़क का निर्माण हो चुका है।

12. उपरोक्त सूचना के आधार पर प्रारंभिक जांच की गई और प्रारंभिक जांच रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई। यह कहा गया है कि यद्यपि याचिकाकर्ता प्रारंभिक जांच से कभी जुड़ा नहीं था, लेकिन प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रति याचिकाकर्ता को सौंप दी गई थी क्योंकि प्रतिवादियों द्वारा आरोपों के समर्थन में उसी पर भरोसा करने की कोशिश की जा रही थी।

13. यह देखा गया है कि आरोपों के समर्थन में कोई अन्य ठोस सबूत नहीं था और केवल प्रारंभिक जांच रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता को उन आरोपों का दोषी मान लिया गया था।

14. उपरोक्त परिस्थितियों में, इस न्यायालय का यह मत है कि शिकायत में लगाए गए आरोपों की सत्यता की जांच करने के लिए नियमित जांच करने का निर्णय लेने से पहले प्रारंभिक जांच की गई थी और आरोपों के सही पाए जाने पर ही कदाचार के लिए जिम्मेदार सरकारी कर्मचारी के खिलाफ नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का निर्णय लिया जाता है।

15. उपर्युक्त परिस्थितियों में, प्रारंभिक जांच की भूमिका सीमित होती है, जो आरोपों की सत्यता की जांच से शुरू होती है और सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने या न करने संबंधी सिफारिशें देने तक ही सीमित रहती है। जब किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का निर्णय लिया जाता है, तो अभियोजन पक्ष का यह दायित्व होता है कि वह अनुशासनात्मक कार्यवाही/जांच के दौरान उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करे। जांच का मूल उद्देश्य ही यही है कि सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध सिद्ध किए जाने वाले साक्ष्य और सामग्री की जांच की जाए। यह साक्ष्य दस्तावेजी साक्ष्य, मौखिक साक्ष्य या कोई अन्य भौतिक साक्ष्य हो सकता है जो सरकारी कर्मचारी की दोषसिद्धि की ओर ले जाए। यह उद्देश्य प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप भी है, क्योंकि सरकारी कर्मचारी को उन सामग्री और साक्ष्यों का खंडन करने और अस्वीकार करने का अधिकार है, जिनके आधार पर आरोप सिद्ध किए जाने का प्रयास किया जा रहा है। किसी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान जब सामग्री प्रस्तुत की जाती है, तो उसे आरोपों का खंडन करने और उसमें प्रस्तुत सामग्री की सत्यता के प्रश्न को उठाने का पर्याप्त अवसर मिलता है, जिससे उसे जांच में अपना बचाव करने का पूरा अवसर मिलता है, जो कि ऐसी जांच का उद्देश्य और लक्ष्य है।

16. यदि किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध प्रारंभिक जांच रिपोर्ट पर भरोसा किया जाना हो, तो इसका उपयोग तभी किया जा सकता है जब वह सरकारी कर्मचारी प्रारंभिक जांच में शामिल रहा हो। यदि वह प्रारंभिक जांच

में शामिल नहीं था, तो प्रारंभिक जांच में सिद्ध हुए सभी तथ्यों को नियमित जांच में भी सिद्ध करना होगा। केवल दोषी सरकारी कर्मचारी को प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रति देना ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन नहीं होगा। जिन व्यक्तियों के बयान प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए हैं, उन्हें भी जांच में उपस्थित करना होगा ताकि याचिकाकर्ता उनसे जिरह कर सके। इसी कारण से यह मूल नियम अपनाया जाना चाहिए कि सभी आरोप अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान प्रस्तुत सामग्री के आधार पर ही सिद्ध किए जाएं।

17. इस मामले के इस पहलू पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2013) 4 एससीसी 301 के मामले में भी विचार किया था।

18. आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि निर्मला जे. झाला (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों पर सत्येंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3325 के मामले में न्यायालय द्वारा भरोसा किया गया है। सत्येंद्र सिंह (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

“14. रूप सिंह नेगी के मामले में, इस न्यायालय ने यह माना कि मात्र दस्तावेज़ प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं है, दस्तावेज़ी साक्ष्यों की सामग्री को गवाहों की जांच द्वारा सिद्ध किया जाना चाहिए। इसका प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

“14. इसमें कोई संदेह नहीं है कि विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध होने चाहिए। जांच अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह पक्षों द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर विचार करते हुए निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी आरोपियों के विरुद्ध जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता। उक्त दस्तावेजों को सिद्ध करने के लिए किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई।” प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज़ प्रस्तुत किए और उनकी सामग्री को साबित नहीं किया। जांच अधिकारी ने अन्य बातों के अलावा एफआईआर पर भरोसा किया, जिसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता था।

15. हमने पहले ही देखा है कि जांच अधिकारी ने जिस एकमात्र बुनियादी सबूत पर भरोसा किया है, वह अपीलकर्ता द्वारा पुलिस के समक्ष दिया गया कथित इकबालिया बयान है। अपीलकर्ता के अनुसार, उसे पुलिस स्टेशन में प्रताड़ित किया गया था और उसे जबरन उस इकबालिया बयान पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था। चूंकि अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी है, इसलिए उक्त इकबालिया बयान साबित होना चाहिए था। यह दिखाने के लिए कुछ सबूत रिकॉर्ड पर लाए जाने चाहिए थे कि उसने बैंक ड्राफ्ट बुक चुराई थी। यह स्वीकार किया जाता है कि कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं था। यहां तक कि कोई अप्रत्यक्ष सबूत भी नहीं था। रिपोर्ट का लहजा दर्शाता है कि जांच अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था, अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई सबूत नहीं बचा था।

.....

19. नरिंदर मोहन आर्य मामले [(2006) 4 एससीसी 713 : 2006 एससीसी (एल एंड एस) 840] में प्रतिवादी के विरुद्ध पारित निर्णय और डिक्री अंतिम हो चुकी थी। उक्त मुकदमे में, अनुशासनात्मक कार्यवाही की जांच रिपोर्ट पर विचार किया गया, और यह माना गया कि यह किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं थी। उपरोक्त स्थिति में अपीलकर्ता ने अनुशासनात्मक कार्यवाही की वैधता पर सवाल उठाते हुए एक रिट याचिका दायर की, जिसे खारिज कर दिया गया। इस न्यायालय ने माना कि जब जालसाजी जैसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर ऐसे साक्ष्य के आधार पर पहुंचा जाता है जो कानून की दृष्टि में अस्तित्वहीन हैं, तो सिविल न्यायालय को मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा। इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि यदि अभिलेख में कुछ साक्ष्य मौजूद हों तो जांच अधिकारी निष्कर्ष पर पहुंच सकता है। ...”

(जोर दिया गया)

15. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा मामले में भी यही दृष्टिकोण दोहराया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने यह माना था कि एकतरफा जांच में भी, जांच अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की जांच करे ताकि यह पता चल सके कि क्या अप्रतिबंधित साक्ष्य आरोपों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। सरोज कुमार सिन्हा मामले में प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:-

“28. अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला जांच अधिकारी एक स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उससे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि होने की अपेक्षा नहीं की जाती है। उनका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी, यह देखने के लिए कि क्या अप्रतिबंधित साक्ष्य आरोपों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि कोई मौखिक साक्ष्य नहीं लिया गया है, इसलिए दस्तावेज़ सिद्ध नहीं हुए हैं, और प्रतिवादियों के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध मानने के लिए उन्हें ध्यान में नहीं लिया जा सकता था।

...

33. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, इस मामले में न केवल प्रतिवादी को उन दस्तावेजों तक पहुंच से वंचित किया गया है जिन पर उसके खिलाफ आरोप लगाए जाने थे, बल्कि उसे बिना सुने ही दोषी ठहराया गया है क्योंकि जांच अधिकारी ने जांच के संचालन के लिए कोई तारीख तय नहीं की। दूसरे शब्दों में, प्रतिवादी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में एक भी गवाह की जांच नहीं की गई है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने सही ही कहा है कि पूरी कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पूर्ण उल्लंघन और निष्पक्षता की पूर्ण अवहेलना करते हुए संचालित की गई है, जिससे कार्यवाही दूषित हो गई है। प्रतिवादी को कार्यवाही के किसी भी चरण में आरोप पत्र में लगाए गए आरोपों के विरुद्ध स्पष्टीकरण देने का कोई अवसर नहीं मिला।

(जोर दिया गया)

16. **निर्मला जे. झाला** के मामले में, इस न्यायालय ने यह माना कि प्रारंभिक जांच में दर्ज साक्ष्य का उपयोग नियमित जांच के लिए नहीं किया जा सकता है क्योंकि दोषी व्यक्ति इससे जुड़ा नहीं होता है और प्रारंभिक जांच में जांचे गए व्यक्तियों से जिरह करने का अवसर नहीं दिया जाता है। उसका प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:—

42. इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने अमलेंदु घोष बनाम उत्तर पूर्वी रेलवे [AIR 1960 SC 992] मामले में यह माना कि किसी विशेष कथित दुराचार के संबंध में प्रारंभिक जांच का उद्देश्य केवल किसी विशेष तथ्य का पता लगाना और प्रथम दृष्टया यह जानना है कि क्या कथित दुराचार किया गया है और प्रारंभिक जांच में दर्ज निष्कर्षों के आधार पर कोई दंडात्मक आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। इसका उपयोग केवल यह देखने के लिए किया जा सकता है कि क्या दोषी के खिलाफ नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही की आवश्यकता है।

43. इसी प्रकार चंपकलाल चिमनलाल शाह बनाम भारत संघ [एआईआर 1964 एससी 1854] मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने इसी प्रकार का मत देते हुए कहा कि प्रारंभिक जांच को नियमित जांच के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। प्रारंभिक जांच भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के प्रावधानों द्वारा शासित नहीं है। प्रारंभिक जांच एकतरफा की जा सकती है, क्योंकि यह केवल सरकार की संतुष्टि के लिए होती है, हालांकि आमतौर पर निष्पक्षता के लिए, ऐसी जांच में भी सरकारी कर्मचारी से स्पष्टीकरण मांगा जा सकता है। लेकिन उस स्तर पर, उसे सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि जांच केवल सरकार की इस संतुष्टि के लिए होती है कि क्या नियमित जांच की जानी चाहिए। न्यायालय ने आगे कहा:

“12. ...अतः दोनों जाँचों में कोई भ्रम नहीं होना चाहिए और केवल तभी जब सरकार किसी सरकारी कर्मचारी पर अनुच्छेद 311 में उल्लिखित तीन प्रमुख दंडों में से कोई एक दंड देने के उद्देश्य से विभागीय जाँच करती है, तभी सरकारी कर्मचारी उस अनुच्छेद के संरक्षण का हकदार होता है [उससे पहले नहीं]।”

44. नारायण दत्तात्रेय रामतीर्थखर बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1997) 1 एससीसी 299 : 1997 एससीसी (एल एंड एस) 152 : एआईआर 1997 एससी 2148] में इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया और निम्नानुसार निर्णय दिया:

“... प्रारंभिक जांच का आरोप पत्र जारी होने के बाद की गई जांच से कोई संबंध नहीं है। प्रारंभिक जांच का उद्देश्य केवल यह पता लगाना है कि क्या दोषी के खिलाफ अनुशासनात्मक जांच शुरू की जानी चाहिए। नियमों के तहत नियमित जांच हो जाने के बाद, प्रारंभिक जांच का महत्व समाप्त हो जाता है और चाहे प्रारंभिक जांच कानून के अनुसार सख्ती से की गई हो या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए की गई हो, इसका कोई महत्व नहीं रह जाता।”

45. उपरोक्त के आलोक में यह स्पष्ट है कि प्रारंभिक जांच में दर्ज साक्ष्य का उपयोग नियमित जांच में नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोषी व्यक्ति इससे संबंधित नहीं है, और ऐसी जांच में जांचे गए व्यक्तियों को जिरह करने का अवसर नहीं दिया गया है। ऐसे साक्ष्य का उपयोग प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा।

19. उपरोक्त कारणों से ही प्रारंभिक जांच में याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध मानने के लिए केवल इसी आधार पर सामग्री पर भरोसा किया गया है और इस प्रकार यह न्यायालय पाता है कि जांच कार्यवाही स्वयं ही दूषित हो गई है।

20. उपरोक्त के अतिरिक्त, यह देखा गया है कि जांच समाप्त होने के बाद, जांच अधिकारी ने माप पुस्तिका के रूप में अतिरिक्त सामग्री मांगी थी और ऐसी सामग्री 09.05.2023 को सौंप दी गई थी। अतिरिक्त सामग्री को जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया था, न ही माप पुस्तिका की प्रतियां याचिकाकर्ता को कभी दी गईं, न ही उसे अतिरिक्त सामग्री से अवगत कराया गया, और केवल जांच रिपोर्ट तैयार करके अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सौंप दी गई।

21. तदनुसार, जांच के दौरान दोषी सरकारी कर्मचारी को उसके विरुद्ध प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री से अवगत न कराना, पूरी कार्यवाही को दूषित करता है, क्योंकि दोषी सरकारी कर्मचारी को अपना बचाव करने और सामग्री पर भरोसा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया, और उसे पहले सामग्री दिए बिना ही उसे सुनवाई का निष्पक्ष अवसर प्रदान करना, सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के सुनहरे नियम का उल्लंघन है, और इस आधार पर भी जांच दूषित मानी जाती है।

22. याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत दलीलों पर विचार करते हुए कि जांच रिपोर्ट और याचिकाकर्ता पर लगाए गए आरोपों को चुनौती देने वाले सभी आधारों को कारण बताओ नोटिस के जवाब में उठाने के बावजूद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने विवादित आदेश पारित करते समय उठाए गए आधारों पर विचार नहीं किया और अत्यंत यांत्रिक तरीके से, जांच रिपोर्ट पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ता के विरुद्ध दंड का आदेश पारित कर दिया।

23. विशेष रूप से, याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए जवाब के पैरा V में कहा गया था कि तीन सदस्यीय समिति द्वारा की गई प्रारंभिक जांच अपने आप में पूर्ण नहीं थी और याचिकाकर्ता को शामिल किए बिना की गई थी, इसलिए जांच अधिकारी उस पर भरोसा नहीं कर सकते थे। उपरोक्त आपत्तियां उठाने के बावजूद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उक्त आपत्तियों पर विचार नहीं किया और विवादित आदेश पारित कर दिया।

24. यह देखा गया है कि कारण बताओ नोटिस जारी करने का मूल उद्देश्य जांच रिपोर्ट पर आपत्तियां प्राप्त करना है, और जब भी ऐसी आपत्तियां उठाई जाती हैं, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी उनमें से प्रत्येक पर विचार करने के लिए बाध्य है और उचित विचार-विमर्श और कारणों के बाद उन्हें स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। यदि कोई आपत्ति उठाई जाती है और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उस पर विचार नहीं किया जाता है, तो यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित ऐसे आदेश को मनमाना ठहराने का एक आधार होगा, क्योंकि यह उसके द्वारा संचालित कार्यवाही में निष्पक्षता के मूल सिद्धांत का उल्लंघन करता है।

25. इस तरह की विस्तृत प्रक्रिया प्रदान करने का एक मुख्य कारण दोषी सरकारी कर्मचारी को ऐसी कार्यवाही में अपना बचाव करने का पूरा अवसर प्रदान करना है। वह या तो अपने पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत करके अपना बचाव कर सकता है जो यह दर्शाता है कि आरोप झूठे हैं या वह अनुशासनात्मक जांच में प्रस्तुत सामग्री की सत्यता को चुनौती दे सकता है जो आरोपों की सत्यता को चुनौती दे सकती है। दोनों ही स्थितियों में, जांच अधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए यह मूलभूत आवश्यकता है कि वे दोषी सरकारी कर्मचारी द्वारा उठाई गई सभी आपत्तियों पर ध्यानपूर्वक विचार करें और उचित विचार-विमर्श के बाद ही वे दोषी सरकारी कर्मचारी द्वारा उठाई गई आपत्तियों को कारण बताते हुए स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं।

26. वर्तमान मामले में यह देखा गया है कि दोषी सरकारी कर्मचारी द्वारा तीन सदस्यीय समिति द्वारा की गई प्रारंभिक जांच के संबंध में विशिष्ट आपत्तियां उठाए जाने के बावजूद, विवादित आदेश पारित करते समय उन पर कोई विचार नहीं किया गया। यह बात स्वयं विवादित आदेश को अवैध और मनमाना बनाती है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के योग्य बनाती है।

27. उपरोक्त कारणों से, यह न्यायालय पाता है कि दिनांक 23.06.2023 की जांच रिपोर्ट और दिनांक 06.11.2024 के विवादित दंड आदेश में गंभीर खामियां हैं।

28. उपरोक्त परिस्थितियों में और याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों तथा उक्त अवधि के दौरान व्यतीत हुए समय को ध्यान में रखते हुए, मामले को जांच अधिकारी को वापस भेजना उचित नहीं होगा। यह न्यायालय आगे पाता है कि प्रारंभिक जांच रिपोर्ट के अतिरिक्त प्रतिवादियों द्वारा आरोपों के समर्थन में कोई अन्य ठोस सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है, इसलिए मामले को नए सिरे से जांच के लिए जांच अधिकारी को वापस भेजना उचित नहीं होगा।

29. उपरोक्त के आलोक में, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। दिनांक 06.11.2024 और 19.10.2024 के विवादित आदेशों को निरस्त किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 534

मूल क्षेत्राधिकार, दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 26.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, के समक्ष

रिट याचिका संख्या 5027/2021

ओमपाल सिंह, सिंचाई पर्यवेक्षक

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

....प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के वकील: अतिप्रिया गौतम, गौरव बिशन, लाल चंद्र श्रीवास्तव, नीरज श्रीवास्तव, विजय गौतम (वरिष्ठ अधिवक्ता)

उत्तरदाताओं के लिए वकील: सी.एस.सी.

ए. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - परमादेश - उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 - उत्तर प्रदेश पेंशन और सत्यापन के लिए अर्हता सेवा अध्यादेश, 2020 - उत्तर प्रदेश पेंशन और सत्यापन के लिए अर्हता सेवा अधिनियम, 2021 - पूर्वव्यापी संशोधन का प्रभाव - दायरा और सीमाएं - विधायी शक्ति का प्रयोग उस निर्णय को रद्द करने के लिए नहीं किया जा सकता जिसके तहत पक्षों के अधिकार स्पष्ट हो चुके हैं - कार्यपालिका आदेश या यहां तक कि कानून द्वारा पक्षों के बीच अंतिम हो चुके परमादेश को रद्द करना अस्वीकार्य है - या यहां तक कि कानून द्वारा भी - यदि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा परमादेश जारी किया जाता है जिसमें मुकदमे के पक्षकार अधिकारियों को कुछ करने या न करने का आदेश दिया जाता है, तो विधायिका द्वारा कानून में किया गया बाद का संशोधन पक्षों के बीच अंतिम हो चुके परमादेश को रद्द नहीं कर सकता। जिस कानून के आधार पर वह परमादेश जारी किया गया है, उसकी वर्तमान स्थिति को विधायिका द्वारा कानून में संशोधन करके बदला जा सकता है, लेकिन यह ऐसा परिवर्तन होगा जो पक्षों के बीच भविष्य के लेन-देन को नियंत्रित करेगा। ऐसा निर्णय जो पक्षों के बीच अंतिम हो चुका है और जिसके परिणामस्वरूप परमादेश जारी किया गया है, उसे कानून में बाद में किए गए संशोधन द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता है। किसी दिए गए कानूनी स्थिति के संबंध में पक्षों के बीच अंतिम हो चुके फैसले को केवल पीड़ित पक्ष द्वारा अपील के माध्यम से ही रद्द किया जा सकता है (पैरा 16, 17)

बी. रिट याचिका संख्या 14563/2018 में दिनांक 14.02.2020 को परमादेश जारी किया गया था, जिसमें अधिकारियों को निर्देश दिया गया था कि याचिकाकर्ता की पेंशन को कार्य प्रभार प्रतिष्ठान में शामिल होने की तिथि यानी 21.04.1980 से उनकी सेवाओं को जोड़कर पुनः निर्धारित किया जाए और उक्त तरीके से पुनः

निर्धारण के साथ पेंशन प्रदान करने के लिए आवश्यक आदेश पारित किए जाएं। उस फैसले को अंतिम रूप दे दिया गया था और कोई अपील दायर नहीं की गई थी। विवादित आदेश में यह माना गया कि धारा 3 के तहत अध्यादेश के लागू होने पर उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 14.02.2020 को रिट याचिका संख्या 14563/2018 में जारी किया गया परमादेश स्वतः ही निरस्त हो गया। निर्णय: कोई भी परमादेश, जो अंतर-पक्षकार अंतिम हो चुका है, उसे कभी भी विधान द्वारा निरस्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह संविधान के तहत न्यायालयों को सौंपी गई राज्य की न्यायिक शक्ति का विधायिका द्वारा अतिक्रमण होगा। उत्तर प्रदेश अध्यादेश, 2020 और उत्तर प्रदेश अधिनियम, 2021 के बाद के अधिनियमन से, जिसमें उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3(8) में पूर्वव्यापी संशोधन किया गया था, उक्त अंतिम निर्णय को रद्द नहीं किया जा सकता था। न्यायालय ने विवादित आदेश को निरस्त कर दिया और राज्य पर ₹50,000 का जुर्माना लगाया (पैरा 17, 19, 30)।

स्वीकृत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुलीर द्वारा सुनाया गया)

1. यह रिट याचिका अधीक्षण अभियंता, सिंचाई कार्य प्रभाग-I, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ द्वारा दिनांक 28.01.2021 को पारित आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसमें याचिकाकर्ता की पेंशन पुनर्निर्धारण की मांग को खारिज कर दिया गया है, जिसमें कार्य प्रभारित कर्मचारी के रूप में उनकी सेवाओं को उनकी नियमित सेवा में जोड़ा गया है। उपरोक्त मांग इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 14563/2018 में दिनांक 14.02.2020 को जारी परमादेश पर आधारित है। परमादेश के प्रवर्तन में मांग को खारिज करने का आधार उत्तर प्रदेश पेंशन योग्यता सेवा एवं सत्यापन अध्यादेश, 2020 (संक्षेप में, 'अध्यादेश') का पश्चात लागू होना है, जिसके बारे में अधीक्षण अभियंता का कहना है कि यह परमादेश को निरस्त करता है। इस अध्यादेश को बाद में उत्तर प्रदेश पेंशन पात्रता और सत्यापन अधिनियम, 2021 (संक्षेप में, '2021 का अधिनियम') द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है, जिसमें अध्यादेश के लगभग समान प्रावधान हैं।

2. याचिकाकर्ता सिंचाई विभाग, जल संसाधन विभाग में सिंचाई पर्यवेक्षक थे। उनकी अंतिम तैनाती कार्यकारी अभियंता, गंगा नहर प्रभाग, मुजफ्फर नगर के कार्यालय में थी। वे 31.07.2017 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से सेवानिवृत्त हुए।

3. याचिकाकर्ता को प्रारंभ में 21.04.1980 को कार्यपालक अभियंता, केंद्रीय गंगा नहर प्रभाग-II, अलीगढ़ द्वारा कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में चौकीदार के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें कार्यपालक अभियंता द्वारा दिनांक 28.04.1983 को पारित आदेश द्वारा कार्य पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त किया गया। मुख्य अभियंता, केंद्रीय गंगा नहर परियोजना, अलीगढ़ ने याचिकाकर्ता को सिंचाई पर्यवेक्षक (सींच पर्यवेक्षक) के पद पर पदोन्नत किया और उन्हें नियमित प्रतिष्ठान में तैनात किया। अधीक्षण अभियंता, बैराज निर्माण प्रभाग, आगरा द्वारा दिनांक

20 जनवरी, 2004 को पारित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाओं को नियमित किया गया। उन्हें 4000-6000 रुपये के वेतनमान में रखा गया। याचिकाकर्ता इस समय बैराज निर्माण प्रभाग, आगरा में तैनात थे। याचिकाकर्ता का वेतन कार्यकारी अभियंता, मुजफ्फर नगर गंगा नहर प्रभाग, मुजफ्फर नगर द्वारा दिनांक 31.01.2017 के आदेशानुसार 38,100 रुपये निर्धारित किया गया था, जिसमें 01.07.2016 को देय वार्षिक वेतन वृद्धि भी शामिल थी। 31.07.2017 को उनकी सेवानिवृत्ति के समय, याचिकाकर्ता का अंतिम वेतन 39,200 रुपये था।

4. याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति पर, उनकी पेंशन गलत तरीके से निर्धारित की गई थी, जैसा कि याचिकाकर्ता का कहना है, नियमितीकरण की तिथि यानी 20.01.2004 से उनकी सेवानिवृत्ति तक केवल 13 वर्षों की सेवा की गणना की गई थी। प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 1980 से 2004 तक कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में दी गई 24 वर्षों की सेवा को ध्यान में नहीं रखा।

5. अनावश्यक विवरणों को छोड़कर, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी, अवकाश नकदीकरण, पेंशन का रूपांतरण आदि सभी नियमितीकरण के बाद दी गई सेवा अवधि के आधार पर गणना की गई थी। उन्हें 10,187/- रुपये प्रति माह की पेंशन स्वीकृत की गई थी। पेंशन प्रदान करने से संबंधित याचिकाकर्ता की अर्हक सेवा की गणना के उद्देश्य से कार्य प्रभार प्रतिष्ठान में दी गई 24 वर्षों की पूरी अवधि को शामिल नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता ने उपरोक्त रुख को पूरी तरह से अवैध मानते हुए, इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 14563/2018 दायर की, जिसमें प्रार्थना की गई कि प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता की अर्हक सेवा की गणना के उद्देश्य से कार्य प्रभार प्रतिष्ठान में दी गई सेवा अवधि को ध्यान में रखने का आदेश देने के लिए परमादेश जारी किया जाए। यह भी प्रार्थना की गई कि उनके पेंशन भुगतान आदेश को उचित रूप से संशोधित किया जाए और पेंशन के बकाया का ब्याज सहित भुगतान करने का निर्देश दिया जाए। उपरोक्त रिट याचिका पर इस न्यायालय द्वारा सुनवाई की गई और **प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2019) 7 एससीसी 354** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, दिनांक 14.02.2020 के आदेश द्वारा प्रतिवादियों को निम्नलिखित शब्दों में परमादेश जारी किया गया:

"उपरोक्त कारणों से, प्रतिवादी संख्या 4-कार्यकारी अभियंता, गंगा नहर मंडल, मुजफ्फरनगर को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता की पेंशन को कार्य प्रभार कर्मचारी के रूप में कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से जोड़कर पुनः निर्धारित करें। अर्थात् 21.04.1980 से याचिकाकर्ता की सेवा अवधि को जोड़कर पेंशन का पुनर्निर्धारण करें और पुनर्निर्धारण के बाद पेंशन प्रदान करने के लिए आवश्यक आदेश इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर पारित किया जाए।

तदनुसार, रिट याचिका को लागत के संबंध में कोई आदेश दिए बिना स्वीकार किया जाता है।"

6. दोनों पक्षों के बीच यह सर्वविदित है कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 14.02.2020 को रिट-ए संख्या 14563/2018 में जारी किया गया परमादेश आपसी रूप से अंतिम हो गया था और उक्त निर्णय के विरुद्ध

कोई अपील नहीं की गई थी। याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.03.2020 को इस न्यायालय के दिनांक 14.02.2020 के निर्णय की प्रति के साथ एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे अधीक्षण अभियंता, सिंचाई कार्य प्रभाग-I, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ को भेजा गया, जो इस न्यायालय द्वारा जारी परमादेश को क्रियान्वित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी थे। आवेदन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली। इसके बाद दिनांक 13.08.2020 को एक अन्य आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें इस न्यायालय द्वारा जारी परमादेश के अनुपालन का अनुरोध किया गया। याचिकाकर्ता ने अधीक्षण अभियंता, कार्यकारी अभियंता, मुजफ्फर नगर गंगा नहर प्रभाग, मुजफ्फर नगर और मुख्य अभियंता, नागरिक सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को दिए गए आवेदनों के समान ही आवेदन किए। कार्यकारी अभियंता, मुजफ्फर नगर गंगा नहर प्रभाग, मुजफ्फर नगर ने 26.08.2020 के पत्र के माध्यम से (जिसकी एक प्रति याचिकाकर्ता को भेजी गई थी) उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य स्थायी वकील और मुजफ्फर नगर के माननीय जिला सरकारी वकील से राय मांगी कि क्या उन्हें 14.02.2020 के हमारे निर्णय और आदेश के अनुसार याचिकाकर्ता की पेंशन पात्रता निर्धारित करने के लिए सेवा की कार्यभार अवधि को जोड़ना अनिवार्य है।

7. याचिकाकर्ता का यह विशेष रूप से निवेदन है कि उच्च न्यायालय के मुख्य स्थायी वकील और मुजफ्फर नगर के जिला सरकारी वकील से प्राप्त कानूनी राय के आधार पर, मुजफ्फर नगर गंगा नहर प्रभाग, मुजफ्फर नगर के कार्यकारी अभियंता ने सिंचाई कार्य प्रभाग-I, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ के अधीक्षण अभियंता को एक पत्र लिखा, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति 02.04.1981 को हुई थी और उन्होंने 02.04.1981 से 23.01.2004 तक कार्यभार प्रतिष्ठान में निरंतर कार्य किया। यह भी कहा गया कि उनकी सेवाओं को 24.01.2004 को सिंचाई पर्यवेक्षक के पद पर नियमित कर दिया गया था। कार्यकारी अभियंता के पत्र में आगे कहा गया कि याचिकाकर्ता ने कार्यभार प्रतिष्ठान में कुल 22 वर्ष 9 माह और 21 दिन और उसके बाद नियमित प्रतिष्ठान में 13 वर्ष 6 माह और 8 दिन कार्य किया। कार्यकारी अभियंता के पत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य स्थायी वकील और मुजफ्फर नगर के माननीय जिला सरकारी वकील की दिनांक 26.08.2020 की कानूनी राय के मद्देनजर, याचिकाकर्ता कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में दी गई सेवाओं को शामिल करने के बाद अपने वेतन के पुनर्निर्धारण का हकदार है। यह पत्र कार्यपालक अभियंता द्वारा अधीक्षण अभियंता को दिनांक 13.10.2020 के पत्र के माध्यम से भेजा गया था, जो अभिलेख में भी मौजूद है। इन तथ्यों का उल्लेख रिट याचिका के अनुच्छेद 19 में किया गया है। इस न्यायालय द्वारा दिनांक 14.02.2020 को रिट-ए संख्या 14563/2018 में जारी परमादेश का पालन करने के बजाय, अधीक्षण अभियंता ने याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया, और पेंशन पात्रता के निर्धारण हेतु अर्हक सेवा की गणना के लिए कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में उसकी सेवा अवधि को नजरअंदाज कर दिया, तथा अध्यादेश की धारा 2 और 3 के प्रावधानों का हवाला दिया। अधीक्षण अभियंता द्वारा पारित विवादित आदेश में यह टिप्पणी की गई है कि सेवा नियमों (उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के संदर्भ में) के तहत कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में दी गई सेवाओं को अध्यादेश की धारा 2 और 3 के अनुसार अर्हता सेवा नहीं माना जाएगा, इसलिए याचिकाकर्ता का दावा, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 14.02.2020 को रिट-ए संख्या 14563/2018 में दिए गए निर्णय और आदेश के अनुसार, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

8. इस आदेश से असंतुष्ट होकर, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

9. इस न्यायालय ने 25.03.2021 को निम्नलिखित आदेश के अनुसार एक नोटिस जारी किया:

“माननीय स्थायी वकील ने सभी प्रतिवादियों की ओर से नोटिस स्वीकार कर लिया है। उन्होंने प्रतिवाद दाखिल करने के लिए चार सप्ताह का समय मांगा है, जिसे प्रदान किया जाता है। याचिकाकर्ता को इसके बाद एक सप्ताह का समय प्रत्युत्तर दाखिल करने के लिए दिया जाएगा। मामले को तुरंत सूचीबद्ध किया जाए।”

10. प्रतिवादियों की ओर से 09.05.2022 को एक प्रतिवाद दाखिल किया गया। प्रतिवादी संख्या 1, अर्थात् राज्य सरकार की ओर से एक अलग संक्षिप्त प्रतिवाद दाखिल किया गया। यह हलफनामा उत्तर प्रदेश सरकार के सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग में अवर सचिव विचित्र नारायण द्वारा दाखिल किया गया है। राज्य सरकार की ओर से दाखिल किए गए उनके हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 3 में यह कहा गया है:

3. उत्तर प्रदेश, लखनऊ स्थित सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग के मुख्य अभियंता (प्रतिवादी संख्या 3), गंगा सिंचाई भवन, तेलिबाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ स्थित मुख्य अभियंता (शारदा सहायक) (प्रतिवादी संख्या 4), मेरठ जिला, मेरठ स्थित सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग के मुख्य अभियंता (गंगा) (प्रतिवादी संख्या 5), सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ जिला, मेरठ स्थित सिंचाई कार्य प्रभाग-I के अधीक्षण अभियंता (प्रतिवादी संख्या 6), मेरठ मंडल, गंगा नहर, मेरठ जिला, मेरठ स्थित कार्यकारी अभियंता (प्रतिवादी संख्या 7), मुजफ्फरनगर मंडल, गंगा नहर, जिला, मुजफ्फरनगर स्थित कार्यकारी अभियंता (प्रतिवादी संख्या 8) और बागपत जिला, बागपत स्थित मुख्य कोषाधिकारी (प्रतिवादी संख्या 9) याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए मुद्दों का उत्तर देने के लिए एकमात्र सक्षम प्राधिकारी हैं। मुजफ्फरनगर मंडल, गंगा नहर, जिला, मुजफ्फरनगर स्थित कार्यकारी अभियंता (प्रतिवादी संख्या 9) नंबर 8) को इस मामले में उचित जवाब/प्रतिवाद दाखिल करने और सभी उचित कानूनी कदम उठाने का निर्देश दिया गया है।

11. अतः यह स्पष्ट है कि सरकार का संपूर्ण रुख दिनांक 09.05.2022 के प्रतिवाद हलफनामे में व्यक्त किया गया है, जो प्रतिवादी संख्या 2 से 9, यानी सरकार के विभिन्न अधिकारियों की ओर से है, जिन्हें रिट याचिका में याचिकाकर्ता के दावे का उत्तर देने के लिए सक्षम घोषित किया गया है। जब यह मामला 26.09.2024 को इस न्यायालय के समक्ष आया, तो निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:

“इस मामले का उल्लेख सुबह के पहले घंटे में किया गया था, जिसमें इस न्यायालय के संज्ञान में सबसे चौंकाने वाला तथ्य लाया गया था कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट-ए संख्या 14563/2018 में न्यायालय द्वारा 14.02.2020 को पारित निर्णय और आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता की कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवाओं को उसकी नियमित सेवा में जोड़ने का निर्देश दिया गया था, को प्रथम श्रेणी सिंचाई अधीक्षण अभियंता, मेरठ ने दिनांक 28.01.2021 के विवादित आदेश द्वारा अमान्य घोषित कर दिया है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील

ने बताया कि रिट-ए संख्या 14563/2018 में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 14.02.2020 को पारित निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं की गई है, न ही इसे निरस्त, संशोधित या पुनरीक्षित किया गया है। यह दोनों पक्षों के बीच अंतिम हो चुका है। फिर भी विवादित आदेश उत्तर प्रदेश पेंशन अर्हता सेवा एवं सत्यापन अध्यादेश, 2020 पर भरोसा करते हुए यह मानता है कि इस न्यायालय का निर्णय अमान्य हो चुका है। अध्यादेश की धारा 3 के मद्देनजर यह अमान्य है।

यहां प्रस्तुत असाधारण तथ्यों को देखते हुए, सुनवाई के समय ही इस मामले पर तत्काल विचार किया गया।

राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी वकील श्री एस.सी. उपाध्याय को निर्देश प्राप्त करने के लिए 24 घंटे का समय दिया जाता है।

प्रथम दृष्टया, विवादित आदेश अमान्य और घोर अवमानना का कृत्य है, क्योंकि रिट याचिका संख्या 14563/2018 में पारित निर्णय दोनों पक्षों के बीच अंतिम हो चुका है, जिसे विधायी रूप से निरस्त नहीं किया जा सकता।

अधीक्षण अभियंता, जिन्होंने विवादित आदेश पारित किया है, **सोमवार, यानी 30.09.2024** तक यह स्पष्ट करें कि याचिकाकर्ता को विवादित आदेश को रद्द करने के साथ-साथ आवश्यक राहत प्रदान करने के अलावा, उन पर व्यक्तिगत रूप से दंडात्मक जुर्माना क्यों न लगाया जाए और उनके खिलाफ अलग से अवमानना का मामला दर्ज करने का निर्देश क्यों न दिया जाए।

सोमवार, यानी 30.09.2024 को सुबह 10 बजे सुनवाई होगी।

यह आदेश अधीक्षण अभियंता, सिंचाई कार्य प्रभाग-I, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मेरठ के माध्यम से रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा 24 घंटे के भीतर सूचित किया जाए।

12. अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए अधीक्षण अभियंता, सिंचाई कार्य प्रभाग-I, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ ने दिनांक 28.09.2024 को माननीय मुख्य स्थायी वकील को लिखित निर्देश भेजे, जिसका प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"प्रकरण के सम्बन्ध में अधिशासी अभियन्ता मु० नगर खण्ड गंगा नहर मुजफ्फरनगर (पैरोकार अधिकारी) ने अभिलेखों के आधार पर अपने पत्रांक 4758 / मुखगनमु /कोर्ट केस /दिनांक 28.09.2024 आख्या उपलब्ध करायी है। जिसके क्रम में अवगत कराना है कि वादी ने मा० न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 14.02.2020 को संलग्न कर दिनांक 05.03.2020 को अधिशासी अभियन्ता मु० नगर खण्ड गंगा नहर मुजफ्फरनगर/अधीक्षण अभियन्ता प्रथम मण्डल सिंचाई कार्य मेरठ / प्रमुख अभियन्ता सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग उ०प्र० लखनऊ को प्रत्यावेदन दिया। पुनः दिनांक 13.08.2020 को वादी द्वारा अनुस्मारक प्रेषित किया गया दिनांक 28.08.2020 का अधिशासी अभियन्ता मु० नगर खण्ड गंगा नहर मुजफ्फरनगर द्वारा मुख्य स्थायी अधिवक्ता से विधिक राय मांगी गयी।

दिनांक 18.06.2020 को अधिशासी अभियन्ता मु० नगर खण्ड गंगा नहर मुजफ्फरनगर ने अधीक्षण अभियन्ता प्रथम मण्डल सिंचाई कार्य मेरठ को मार्गदर्शन हेतु पत्र लिखा दिनांक 13.10.2020 को अधिशासी अभियन्ता मु० नगर खण्ड गंगा नहर मुजफ्फरनगर पुनः अनुस्मारक भेजा, परन्तु उच्चाधिकारियों द्वारा कोई मार्गदर्शन देने से पूर्व ही 21.10.2020 (छायाप्रतिसंलग्न-2) को अध्यादेश जारी हो गया जिसकी धारा-3 किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के होते हुए भी इस अध्यादेश के प्रारम्भ होने के पूर्व उ०प्र० रिटायरमेंट बेंनेफिट रूल्स 1961 के नियम-3 के उप नियम (8) के सम्बन्ध में या तद्धीन कृत या की गयी तात्पर्यित कोई कार्यवाही, इस अध्यादेश के उपबन्धों के अधीन किये जाने हेतु और सदैव से कृत या की गयी समझी जायेगी। और यह उतनी ही विधिमान्य होगी तथा सदैव से विधिमान्यकृत समझी जायेगी, मानों इस अध्यादेश के उपबन्ध दिनांक 01 अप्रैल 1961 से समस्त सरवान समयों पर प्रवत थे।"

अतः उच्चाधिकारी कार्यालय प्रमुख अभियन्ता (कार्यप्रभारित अधिष्ठान प्रकोष्ठ) गंगा सिंचाई भवन तेलीबाग सिंचाई विभाग उ०प्र० लखनऊ के पत्रांक 1508 / कप्रअप्र / दिनांक 26.11.2020 (छायाप्रति संलग्न 3) में दिये गये निर्देशानुसार कि पुरानी पेंशन योजना से अच्छादित याचियों के प्रत्यावेदन का निस्तारण उ०प्र० शासन विधायी अनुभाग-01 के अधिसूचना संख्या 1877/79-वी०-1-2020-2 (क) 20-2020 दिनांक 20.10.2020 द्वारा निर्गत उ०प्र० पेंशन हेतु अर्हकारी सेवा तथा विधिमान्यकरण अध्यादेश 2020 में निहित प्राविधानों के अनुसार नियुक्ति अधिकारी/सक्षम अधिकारी द्वारा प्रत्यावेदन को निस्तारित करने के आदेश है जो उचित माध्यम से कार्यालय को प्राप्त है। इसके अनुक्रम में दिनांक 28.01.2021 को श्री अमिताभ कुमार तत्कालीन अधीक्षण अभियन्ता प्रथम मण्डल सिंचाई कार्य मेरठ द्वारा वादी का प्रत्यावेदन आदेश पारित कर निरस्त किया गया। उक्त अध्यादेश विभिन्न वादों में Under Challenge है जिसके कारण वादी का क्रम कन्सीडर नहीं किया जा सका। वादी के केम को कन्सीडर करने के लिए और मा० न्यायालय के आदेशों की अनुपालन हेतु शासन से व्यक्तिगत समन्वय स्थापित कर निर्देश लिये जा रहे हैं। सादर अवगत कराना है कि शासन द्वारा दिये गये निर्देशों का अनुपालन कर दिया जायेगा।"

(अदालत द्वारा जोर दिया गया)

13. दिनांक 30.09.2024 को जब याचिका पर सुनवाई हुई, तो श्री एस.सी. उपाध्याय, विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा उपर्युक्त लिखित निर्देश न्यायालय के समक्ष रखे गए। पक्षों द्वारा हलफनामे का आदान-प्रदान करने के बाद, याचिका सुनवाई के लिए स्वीकार कर ली गई, जिसकी कार्यवाही तुरंत शुरू हुई। निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

14. हमने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री लाल चंद्र श्रीवास्तव और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री एस.सी. उपाध्याय की दलीलें सुनीं।

15. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें ध्यानपूर्वक सुनीं, अभिलेखों का अवलोकन किया और विवादित आदेश का भी अध्ययन किया।

16. यह एक ऐसा सिद्धांत है जो पूरी तरह से स्थापित है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक बार किसी न्यायालय, विशेषकर संवैधानिक न्यायालय द्वारा, दोनों पक्षों के बीच दिया गया निर्णय अंतिम हो जाता है और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा एक परमादेश जारी किया जाता है जिसमें उन अधिकारियों को आदेश दिया जाता है, जो विवाद के पक्षकार थे, कि वे कुछ करें या न करें, तो विधायिका द्वारा कानून में किया गया कोई भी बाद का संशोधन उस परमादेश को रद्द नहीं कर सकता जो पक्षों के बीच अंतिम हो चुका है। जिस कानून के आधार पर वह परमादेश जारी किया गया है, उसकी स्थिति को बदला जा सकता है, निस्संदेह विधायिका द्वारा विधायिका द्वारा कानून में संशोधन करके, लेकिन यह एक ऐसा परिवर्तन होगा जो पक्षों के बीच भविष्य के लेन-देन को नियंत्रित करेगा। हो सकता है कि उन्हीं तथ्यों और समान कारण के आधार पर, जिसके कारण उच्च न्यायालय द्वारा दो पक्षों के बीच परमादेश जारी किया गया था, कानून में संशोधन के बाद, इसे बदले हुए कानून की शर्तों पर प्रदान न किया जाए। हालांकि, इसका यह अर्थ नहीं है कि इस न्यायालय द्वारा अंतरपक्षीय निर्णय के माध्यम से जारी किया गया परमादेश निरर्थक हो जाएगा क्योंकि संशोधित कानून के तहत, यदि मामले की सुनवाई होती, तो वह परमादेश जारी नहीं किया जा सकता था। दूसरे शब्दों में कहें तो, एक ऐसा निर्णय जो दोनों पक्षों के बीच अंतिम हो चुका है और जिसके परिणामस्वरूप परमादेश जारी किया गया है, उसे कानून में बाद में किए गए संशोधन द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता है, या दूसरे शब्दों में, वस्तुतः निरस्त नहीं किया जा सकता है। रिट-ए संख्या 14563/2018 में 14.02.2020 को दोनों पक्षों के बीच दिए गए निर्णय द्वारा जारी किए गए परमादेश में मुजफ्फर नगर गंगा नहर प्रभाग, मुजफ्फर नगर के कार्यकारी अभियंता को याचिकाकर्ता की पेंशन को कार्य प्रभार प्रतिष्ठान में कार्यभार ग्रहण करने की तिथि, अर्थात् 21.04.1980 से जोड़कर पुनः निर्धारित करने और उक्त तरीके से पुनः निर्धारण के साथ पेंशन प्रदान करने के लिए आवश्यक आदेश पारित करने का दायित्व दिया गया था, जो इस न्यायालय के निर्णय की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने के दो महीने के भीतर किया जाना था।

17. अध्यादेश 20.10.2020 को लागू हुआ और यदि हम विवादित आदेश में दिए गए तर्क को स्वीकार करते हैं, तो यह संविधान के तहत न्यायालयों के माध्यम से राज्य द्वारा प्रयोग की जाने वाली न्यायिक शक्ति का हनन करेगा और इसे संविधान के विरुद्ध एक अज्ञात प्राधिकरण के अधीन कर देगा। यदि बाद में जारी किए गए किसी अध्यादेश या सक्षम विधायिका के अधिनियम द्वारा, संवैधानिक न्यायालय के किसी ऐसे निर्णय को, जो दोनों पक्षों के बीच अंतिम हो चुका है, विवादित आदेश की तरह रद्द कर दिया जाता है, तो हम न्यायालय के उन निर्णयों की विधायी समीक्षा के सिद्धांत को स्वीकार कर रहे होंगे जो पक्षों के बीच अंतिम हो चुके हैं। संविधान में ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है। किसी दिए गए विधि के अनुसार पक्षों के बीच अंतिम हो चुके निर्णय को केवल पीड़ित पक्ष द्वारा अपील दायर करके, कानून के तहत उपलब्ध उच्च न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करके ही रद्द किया जा सकता है। यह सच है कि कुछ मामलों में, यदि किसी अंतिम निर्णय के विरुद्ध, यहाँ तक कि संवैधानिक न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध भी, उच्च न्यायालय में अपील की जाती है, और अपील लंबित रहने के दौरान, विधायिका पूर्वव्यापी रूप से कानून में संशोधन करती है, तो पूर्वव्यापी कानून के विरुद्ध ज्ञात अपवादों के अधीन रहते हुए, पक्षों के अधिकारों का निर्णय संशोधित कानून के अनुसार किया जा सकता

है, जिसके परिणामस्वरूप अपील में वह स्थिति भिन्न हो सकती है जो कानून में संशोधन न होने की स्थिति में होती। यह उस प्रकार का मामला नहीं है जिसमें रिट-ए संख्या 14563/2018 में इस न्यायालय के फैसले के विरुद्ध अपील लंबित रहते हुए, जिस कानून के आधार पर फैसला सुनाया गया था, उसमें पूर्वव्यापी संशोधन किया गया हो। यह स्वीकार किया जाता है कि रिट-ए संख्या 14563/2018 का फैसला पक्षों के बीच अंतिम हो गया था और प्रतिवादियों द्वारा अपीलीय प्रक्रियाओं का सहारा नहीं लिया गया था।

18. अतः, केवल इस तथ्य से कि अब कानून में संशोधन हो चुका है, इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 14563/2018 में दिए गए परमादेश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जो पक्षों के बीच अंतिम हो चुका है। इसे अध्यादेश या 2021 के अधिनियम, जो इसके बाद लागू हुआ है, के संदर्भ के बिना निष्पादित किया जाना चाहिए। विवादित आदेश, जो इस न्यायालय द्वारा 14.02.2020 को रिट-ए संख्या 14563/2018 में जारी किए गए परमादेश को अध्यादेश की धारा 3 द्वारा निरस्त मानता है, को अमान्य माना जाना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि किसी प्रशासनिक प्राधिकरण का कोई आदेश, या सरकार का कोई कार्यकारी आदेश, या यहाँ तक कि कोई कानून, जहाँ तक इसका प्रभाव संवैधानिक न्यायालय के किसी निर्णय को निरस्त करने का है, जो पक्षों के बीच दिया गया हो, अमान्य और शून्य है। अध्यादेश की धारा 3 इस प्रकार है:

3. वैधता - किसी भी न्यायालय के किसी भी निर्णय, आदेश या डिक्री के बावजूद, उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3 के उप-नियम (8) के तहत या उसके संबंध में इस अध्यादेश के प्रारंभ होने से पहले किया गया या किया जाने वाला कोई भी कार्य और की गई या की जाने वाली कोई भी कार्रवाई, इस अध्यादेश के प्रावधानों के तहत किया गया या किया गया माना जाएगा और हमेशा वैध माना जाएगा, मानो इस अध्यादेश के प्रावधान 1 अप्रैल, 1961 से सभी महत्वपूर्ण समयों पर लागू थे।

19. यह पूर्वव्यापी संशोधन उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 (संक्षेप में, '1961 के नियम') के नियम 3(8) में परिवर्तन लाता है, जिसे संभवतः **प्रेम सिंह** (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को प्रभावित करने वाला माना जा सकता है। **प्रेम सिंह** मामले में दिया गया निर्णय 1961 के नियमों के नियम 3(8) के आधार पर लिया गया है, जैसा कि अध्यादेश और 2021 के अधिनियम द्वारा संशोधन से पहले लागू था। इसलिए, अध्यादेश और फिर 2021 के अधिनियम के लागू होने के बाद लाए गए या सुने गए किसी भी मामले को, यदि **प्रेम सिंह** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून द्वारा समर्थित करने का प्रयास किया जाता है, तो अध्यादेश और 2021 के अधिनियम के प्रावधानों के संदर्भ में ही निर्णयित किया जाना चाहिए। इसी अर्थ में अध्यादेश और 2021 के अधिनियम की धारा 3 में "किसी भी न्यायालय के किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद" शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि अध्यादेश या 2021 के अधिनियम की धारा 3 को इस न्यायालय द्वारा संवैधानिक रूप से वैध शक्ति प्रयोग के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस रिट याचिका के दायरे में रहते हुए हम इस बारे में कुछ नहीं कह सकते और न ही कहने की आवश्यकता है। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि अध्यादेश की धारा 3 या 2021 के अधिनियम में संबंधित प्रावधान की वैधता को चुनौती देने के मामले में, संभवतः संवैधानिक न्यायालय के

निर्णय का विधायी रूप से घोर उल्लंघन माना जाएगा। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह हमारा विषय नहीं है क्योंकि यह प्रश्न उठता ही नहीं है। यहाँ एक अंतिम निर्णय और इस न्यायालय द्वारा 14.02.2020 को रिट-ए संख्या 14563/2018 में याचिकाकर्ता और प्रतिवादियों के बीच जारी किया गया एक परमादेश है, जिसके विरुद्ध प्रतिवादियों ने कभी अपील नहीं की है। उनका कहना है कि परमादेश अमान्य है क्योंकि अध्यादेश की धारा 3 परमादेश को निरस्त कर देती है। कोई भी निदेशक आदेश, जो दोनों पक्षों के बीच अंतिम हो चुका है, उसे कभी भी विधायी द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा करना राज्य की न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण होगा, जो संविधान के तहत न्यायालयों को सौंपी गई है। अधीक्षण अभियंता का यह सोचना पूरी तरह से गलत है कि इस न्यायालय का एक निदेशक आदेश, जो दोनों पक्षों के बीच अंतिम हो चुका है, अध्यादेश के लागू होने पर स्वतः ही रद्द हो जाएगा।

20. यह सिद्धांत कि विधायी शक्ति का प्रयोग उस निर्णय को रद्द करने के लिए नहीं किया जा सकता जिसके तहत पक्षों के अधिकार स्पष्ट हो चुके हैं और उच्च न्यायालय द्वारा जारी परमादेश में समाहित हैं, सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा **मदन मोहन पाठक और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (1978) 2 एससीसी 50** में समर्थित है। मदन मोहन पाठक (उपरोक्त) में यह कहा गया था:

“27. उद्देश्यों और कारणों के विवरण से पता चलता है कि विवादित अधिनियम का उद्देश्य उन समझौतों को रद्द करना था जो निगम और तृतीय-श्रेणी एवं चतुर्थ-श्रेणी के कर्मचारियों के बीच 24 जनवरी और 6 फरवरी, 1974 को हुए थे, और जिन्हें कलकत्ता उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा वास्तव में मान्यता दी गई थी। यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या यह वास्तव में विधायी शक्ति का प्रयोग था या अपीलीय प्राधिकारी के समान किसी शक्ति का प्रयोग था, जो न्यायालयों द्वारा मान्यता प्राप्त संपत्ति के अधिकार में परिवर्तित हो चुके मामले के गुण-दोषों पर विचार कर रहा था। इस न्यायालय ने श्रीमती इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण [1975 Supp SCC 1 : AIR 1975 SC 2299 : (1976) 2 SCR 347] मामले में निर्णय दिया है कि संवैधानिक संशोधन भी संसद को न्यायिक शक्ति ग्रहण करने का अधिकार नहीं दे सकता। वहाँ निर्धारित परीक्षणों में से एक यह था कि क्या निर्णय उस प्रकार का है जिसमें पक्षों को सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक है, या दूसरे शब्दों में, इसमें कम से कम अर्ध-न्यायिक प्रक्रिया शामिल है, जो संसद करती है। अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए, अनुसरण नहीं करेगा। अधिनियम की धारा 11(2) के तहत केंद्र सरकार द्वारा लिया गया निर्णय, उसमें उल्लिखित मामलों पर संतुष्टि का परिणाम है और इसमें अर्ध-न्यायिक प्रक्रिया निहित होगी जहां किसी समझौते की शर्तों की समीक्षा या संशोधन किया जाना हो। लेकिन, यहाँ अपनाई गई विधायी प्रक्रिया के अनुसार ऐसा करना आवश्यक नहीं है। किसी भी स्थिति में, उच्च न्यायालय के निर्णय का आधार बन चुके ऐसे समझौते को रद्द करने के लिए विधायी प्रक्रिया अपनाना अनुचित होगा। यदि विधान किसी निर्णय के आधार को हटा भी सकता है, तो उसे किसी वर्ग के सामान्य अधिकारों में परिवर्तन करके ऐसा करना होगा, न कि निगम और उसके कर्मचारियों के बीच हुए दो विशिष्ट समझौतों को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 18 के दायरे से बाहर करके, जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा वैध और लागू करने योग्य माना गया था। इस प्रकार का चयनात्मक अपवर्जन अनुच्छेद 14 का उल्लंघन भी कर सकता है।

31. इस अधिनियम का उद्देश्य, वास्तव में, निगम के तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के पक्ष में हुए समझौतों को मान्यता देने वाले कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय की वैधता को समाप्त करना था। उस निर्णय के अंतर्गत प्राप्त अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19 से स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होते हैं। मैं अपने विद्वान भाई भगवती से पूर्णतः सहमत हूँ कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय को प्रभावी करना, संविधान के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत किसी अधिकार को लागू करने के समान नहीं है। यह संभव है कि संविधान के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत कोई अधिकार, निर्णय की प्रवर्तनीयता से जुड़ जाए। फिर भी, इन दोनों को, अधिकारों के पृथक समूह के रूप में देखा जा सकता है। यदि, निर्णय द्वारा प्रदत्त अधिकार को स्वतंत्र रूप से निरस्त करने का प्रयास किया जाता है, तो मेरे विचार में अधिनियम की धारा 3 न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण करने के कारण अमान्य होगी।

32. मैं यह कहना चाहूंगा कि भले ही इस अधिनियम का वास्तविक उद्देश्य कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा जारी परमादेश के परिणाम को रद्द करना हो, फिर भी इस धारा में इस उद्देश्य का उल्लेख बिल्कुल नहीं है। संभवतः इसका कारण यह है कि उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार और उसके आदेशों की प्रभावशीलता संविधान के अनुच्छेद 226 से ही प्राप्त होती है। संसद के किसी साधारण अधिनियम द्वारा इन्हें बदला नहीं जा सकता। भले ही अधिनियम की धारा 3 कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के आधार को, बिना उल्लेख किए, एक कानून के रूप में अधिनियमित करके समाप्त करने का प्रयास करती हो, फिर भी मेरा मानना है कि जहां राज्य के विरुद्ध नागरिक के अधिकारों का प्रश्न है, वहां हमें ऐसी व्याख्या अपनानी चाहिए जो उन अधिकारों का समर्थन करे। इसलिए, मेरी पसंदीदा व्याख्या के अनुसार, जो अधिकार किसी निर्णय में निहित हो गए थे और उच्च न्यायालय के परमादेश का आधार बने थे, उन्हें इस अप्रत्यक्ष तरीके से समाप्त नहीं किया जा सकता।

21. इस सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों की एक बाद की संविधान पीठ ने **कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण, री, 1993 अनुपूरक (1) एससीसी 96 (2)** में संक्षेप में प्रतिपादित किया है। कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण (उपरोक्त) में, सिद्धांत को इस प्रकार बताया गया था:

“76. इन निर्णयों से जो सिद्धांत उभरता है, वह यह है कि विधायिका न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आधार को बदल सकती है और इस प्रकार सामान्य रूप से कानून को बदल सकती है, जिसका प्रभाव व्यक्तियों के एक वर्ग और घटनाओं पर व्यापक रूप से पड़ेगा। हालांकि, यह किसी एक पक्ष के निर्णय को रद्द नहीं कर सकती और केवल उनके अधिकारों और दायित्वों को प्रभावित नहीं कर सकती। विधायिका द्वारा ऐसा कार्य करना राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने और अपीलीय न्यायालय या न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करने के समान है।”

22. यह मुद्दा सर्वोच्च न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष **एस.आर. भगवत और अन्य बनाम मैसूर राज्य, (1995) 6 एससीसी 16** में विचार के लिए आया। एस.आर. भगवत (उपरोक्त) में, सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए, माननीय न्यायाधीशों ने कहा:

"12. इस न्यायालय के अनेक निर्णयों से यह सर्वविदित है कि पक्षों के बीच बाध्यकारी न्यायिक निर्णय को किसी भी विधायी शक्ति की सहायता से, ऐसे प्रावधान को अधिनियमित करके अप्रभावी नहीं बनाया जा सकता जो सारतः ऐसे निर्णय को निरस्त करता हो, और यह उस विधायी अधिनियम के दायरे में नहीं आता जो निर्णय के आधार या नींव को विस्थापित करता हो और संबंधित व्यक्तियों के एक वर्ग पर समान रूप से लागू होता हो। ऐसे अधिनियम द्वारा कवर किए जाने वाले संपूर्ण विषय से संबंधित व्यक्तियों पर पूर्वव्यापी प्रभाव पड़ता हो। हम इनमें से केवल दो निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं।"

13. इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण मामले में [1993 अनुपूरक (1) एससीसी 96 (2) : 1991 अनुपूरक (2) एससीआर 497] कर्नाटक कावेरी बेसिन सिंचाई संरक्षण अध्यादेश, 1991 की वैधता पर निर्णय दिया था। इस अध्यादेश के द्वारा एक वैधानिक न्यायाधिकरण द्वारा पारित अंतरिम आदेश को, जो इस न्यायालय के 26-4-1991 के निर्णय द्वारा समर्थित था और जिसमें यह निर्णय दिया गया था कि न्यायाधिकरण को अंतरिम राहत प्रदान करने के प्रश्न पर विचार करने का अधिकार है, क्योंकि यह विशेष रूप से उसे संदर्भित किया गया था, निरस्त करने का प्रयास किया गया था। संविधान पीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति सावंत ने कहा कि उक्त प्रावधान असंवैधानिक और अधिकार क्षेत्र से बाहर थे। रिपोर्ट के पैराग्राफ 76 में निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं: (एससीसी पृष्ठ 142)

"इन निर्णयों से जो सिद्धांत उभरता है, वह यह है कि विधायिका न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आधार को बदल सकती है और इस प्रकार सामान्य रूप से कानून को बदल सकती है, जिसका प्रभाव व्यक्तियों और घटनाओं के एक वर्ग पर व्यापक रूप से पड़ेगा। हालांकि, यह किसी एक पक्ष के निर्णय को रद्द नहीं कर सकती और केवल उनके अधिकारों और दायित्वों को प्रभावित नहीं कर सकती। विधायिका द्वारा ऐसा कार्य करना राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने और अपीलीय न्यायालय या न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करने के समान है।"

जी.सी. कानूनगो बनाम उड़ीसा राज्य [(1995) 5 एससीसी 96 : जेटी (1995) 4 एससी 589] के मामले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने न्यायमूर्ति वेंकटचला के माध्यम से विचार करते हुए मध्यस्थता (उड़ीसा द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1991 की वैधता पर विचार किया, जिसका उद्देश्य 1984 संशोधन अधिनियम के तहत गठित विशेष मध्यस्थता न्यायाधिकरणों द्वारा अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिए गए निर्णयों को निरस्त करना था। इन प्रावधानों को अधिकार क्षेत्र से बाहर और अवैध घोषित करते हुए, न्यायमूर्ति वेंकटचला ने रिपोर्ट के अनुच्छेद 28 में निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं: (एससीसी पृष्ठ 114)

इस प्रकार, विवादित 1991 संशोधन अधिनियम, 1984 संशोधन अधिनियम के तहत गठित विशेष मध्यस्थता न्यायाधिकरणों द्वारा, उसी अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिए गए निर्णयों को निरस्त करने का प्रयास करता है। जब 1984 संशोधन अधिनियम के तहत विशेष मध्यस्थता न्यायाधिकरणों द्वारा राज्य की न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिए गए निर्णयों को, जिन्हें न्यायालय के नियमों या न्यायालयों के निर्णयों और आदेशों में समाहित नहीं माना जा सकता, 1991 संशोधन अधिनियम द्वारा निरस्त करने का

प्रयास किया जाता है, तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्य विधानमंडल की विधायी शक्ति का दुरुपयोग विवादित 1991 संशोधन अधिनियम को अधिनियमित करके विशेष मध्यस्थता न्यायाधिकरणों के निर्णयों को निरस्त या रद्द करने के लिए किया गया है, और ऐसा करके स्वयं को न्यायिक शक्ति प्रदान की गई है। (देखें कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण, री [1993 अनुपूरक (1) एससीसी 96 (2) : 1991 अनुपूरक (2) एससीआर) 497])। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राज्य विधानमंडल ने 1991 के संशोधन अधिनियम को अधिनियमित करके न्यायिक प्राधिकरण को सौंपी गई न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण किया है, जिसके परिणामस्वरूप संविधान के एक मूलभूत सिद्धांत - विधि के शासन - का उल्लंघन हुआ है। अतः, जब 1991 का संशोधन अधिनियम, 1984 के संशोधन अधिनियम के तहत प्रदत्त न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते हुए विशेष मध्यस्थता न्यायाधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों को राज्य की न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण करके रद्द कर देता है, तो हमारे पास इसे असंवैधानिक घोषित करने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता, क्योंकि यह सुस्थापित और निर्विवाद कानूनी स्थिति है कि किसी विधायिका के पास पूर्व न्यायिक निर्णयों को अप्रभावी बनाने की कोई विधायी शक्ति नहीं है, केवल ऐसा कानून बनाकर जो पूर्व न्यायिक निर्णयों को अमान्य और बाध्यकारी न घोषित करता हो। क्योंकि यदि ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जाता है, तो वह विधायी शक्ति नहीं होगी, बल्कि न्यायिक शक्ति होगी जो राज्य की न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण करती है, जो 1984 के संशोधन अधिनियम के तहत विशेष मध्यस्थता न्यायाधिकरण जैसे न्यायिक न्यायाधिकरण में निहित है। इसके अलावा, जहां 1991 संशोधन अधिनियम के तहत निरस्त किए जाने वाले मध्यस्थता पुरस्कार वे हैं जो राज्य द्वारा स्वयं 1984 संशोधन अधिनियम के तहत गठित विशेष मध्यस्थता न्यायाधिकरणों द्वारा उन मध्यस्थता विवादों का निर्णय करने के लिए दिए गए थे जिनमें राज्य एक पक्ष था। इसे ऐसे मध्यस्थता निर्णयों को रद्द करने की अनुमति नहीं दी जा सकती जो इसके विरुद्ध गए हों, अपनी विधायी शक्ति का सहारा लेकर ऐसी अनुमति प्रदान करने के द्वारा जिससे राज्य को, कम से कम, अपनी विधायी शक्ति का दुरुपयोग करने की अनुमति मिल सके।

15. हम प्रारंभ में ही यह ध्यान देने योग्य हैं कि वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने किसी भी ऐसे कानून को निरस्त नहीं किया है जिसे विवादित प्रावधानों द्वारा पूर्वव्यापी रूप से किसी दोष को दूर करके पुनः अधिनियमित करने का प्रयास किया गया हो। यह ऐसा मामला है जहां मौजूदा कानून की व्याख्या करते हुए उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं को कुछ लाभ दिए थे। विवादित प्रावधानों को एक नए कानून में शामिल करके उस परमादेश आदेश को निरस्त करने का प्रयास किया गया था। हमारी राय में यह स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य विधायी प्रक्रिया होगी।

17. इस स्तर पर हम संक्षेप में बता सकते हैं कि याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम के विवादित प्रावधानों पर सीमित आपत्ति जताई है, क्योंकि वे उन्हें उच्च न्यायालय की खंडपीठ के आदेशों के अनुसार दी जाने वाली स्वतः पदोन्नति से प्राप्त होने वाले मौद्रिक लाभों से वंचित करते हैं, जो पक्षों के बीच अंतिम हो चुके हैं। हमने उपरोक्त धारा को उसके प्रासंगिक उप-धाराओं सहित उद्धृत किया है, जिसमें संबंधित खंडों के विवादित प्रावधानों को रेखांकित करके दर्शाया गया है। याचिकाकर्ताओं का तर्क है कि धारा 4 की उप-धारा (2), (3) और (8) के रेखांकित भाग स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय की खंडपीठ के बाध्यकारी निर्णय के अंतर्गत आते हैं और उक्त

बाध्यकारी निर्णय के साथ स्पष्ट रूप से विरोधाभास में हैं। चूंकि हम धारा 11(2) को छोड़कर अधिनियम के अन्य प्रावधानों से संबंधित नहीं हैं, इसलिए हम सीधे धारा 11 पर आते हैं। उक्त प्रावधान अधिनियम के अधिभावी प्रभाव से संबंधित है। यह इस प्रकार है:

“अधिभावी प्रभाव.— (1) इस अधिनियम के प्रावधान या इसके अंतर्गत जारी किए गए किसी आदेश का प्रभाव, किसी भी कानून या आदेश में निहित किसी भी असंगत बात के बावजूद प्रभावी होगा, चाहे वह कानून का बल रखने वाला हो या भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक के तहत बनाए गए नियम हों या किसी आबंटिती की सेवा शर्तों को विनियमित करने वाला कोई प्रावधान हो या ऐसे किसी कानून, नियम या प्रावधान के आधार पर जारी किया गया कोई आदेश हो।

(2) किसी न्यायालय या अन्य सक्षम प्राधिकारी के किसी निर्णय, आदेश या डिक्री में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत आने वाले मामलों में किसी सिविल सेवक को प्राप्त होने वाले अधिकारों का निर्धारण इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार किया जाएगा, और तदनुसार, सिविल सेवकों की पदोन्नति या पदोन्नति के लिए विचार करने और ऐसी पदोन्नति के परिणामस्वरूप वेतन और भत्तों के भुगतान का निर्देश देने वाले किसी भी निर्णय, आदेश या डिक्री की समीक्षा की जाएगी और इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार आदेश दिए जाएंगे।

18. धारा 11 की उपधारा (2) पर एक नज़र डालने से ही स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी कर्नाटक राज्य, जो उच्च न्यायालय की खंडपीठ के उसके विरुद्ध दिए गए निर्णय में पक्षकार था, ने अपनी विधायी शक्ति का सहारा लेकर उस निर्णय के बाध्यकारी प्रभाव से बचने का प्रयास किया था। किसी भी न्यायालय या सक्षम प्राधिकारी के वे निर्णय, आदेश और डिक्री जो राज्य के विरुद्ध अंतिम हो चुके थे, उन्हें धारा 11 की उपधारा (2) के विवादित प्रावधानों को अधिनियमित करके निरस्त करने का प्रयास किया गया था। ऐसा प्रयास अनुमत विधायी प्रक्रिया नहीं कहा जा सकता। अतः, धारा 11(2) को राज्य विधानमंडल द्वारा सक्षम न्यायालयों के राज्य के विरुद्ध दिए गए बाध्यकारी निर्णयों को विधायी रूप से निरस्त करने का प्रयास माना जाना चाहिए। यह निःसंदेह सत्य है कि यदि कर्नाटक राज्य के विरुद्ध कोई निर्णय अपील में लंबित था और अंतिम नहीं हुआ था, तो वह अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों पर भरोसा कर सकता था, जिन्हें अधिनियम की धारा 1 की उपधारा (2) द्वारा पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया था, चाहे ऐसा भरोसा कितना भी सार्थक क्यों न हो। लेकिन जब ऐसा निर्णय अंतिम हो चुका था, जैसा कि वर्तमान मामले में है, जब उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी-राज्य को स्पष्ट रूप से निर्देश दिया था कि यदि संबंधित याचिकाकर्ताओं को पदोन्नति के लिए योग्य पाया जाता है तो उन्हें पदोन्नति की अनुमानित तिथियां दी जाएं और ऐसी स्थिति में उन्हें वित्तीय लाभों सहित सभी परिणामी लाभ दिए जाएं, तो राज्य ऐसे निर्णय को रद्द करने के लिए अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता था। एक बार जब यह निर्णय अंतिम हो गया था और कर्नाटक राज्य ने संभवतः इसलिए इस न्यायालय के समक्ष इसे चुनौती देना उचित नहीं समझा क्योंकि इसी तरह के अन्य मामलों में इस न्यायालय ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों को बरकरार रखा था, तो यह समझ से परे है कि इस तरह के परमादेश के बाध्यकारी प्रभावों को रद्द करने के लिए विधायी शक्ति का प्रयोग कैसे किया जा सकता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि धारा 11 की उपधारा (2) न केवल निर्णयों के बाध्यकारी प्रभाव को दरकिनार और निरस्त करने का प्रयास करती है,

बल्कि राज्य को ऐसे निर्णयों और आदेशों की समीक्षा करने और विवादित अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नए आदेश पारित करने का अधिकार भी प्रदान करती है। वर्तमान मामले में प्रतिवादी-राज्य ने विवादित अधिनियम की धारा 11 की उपधारा (2) को अधिनियमित करके उच्च न्यायालय के बाध्यकारी निर्णय को स्पष्ट रूप से निरस्त या रद्द करने का प्रयास किया है और संबंधित कानूनों और संविधान के तहत कार्य करने वाले विभिन्न अधिकारियों को सौंपी गई न्यायिक शक्ति का अतिक्रमण किया है। विधायी शक्ति का ऐसा प्रयोग स्वीकार्य नहीं है।

23. यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि **एस.आर. भगवत** का मामला कर्नाटक राज्य सिविल सेवा (पदोन्नति, वेतन एवं पेंशन विनियमन) अधिनियम, 1973 की धारा 11(2) और धारा 4 की उपधारा (2), (3) एवं (8) की वैधता को चुनौती देने से संबंधित था। उपरोक्त सिद्धांत कर्नाटक पदोन्नति, वेतन एवं पेंशन अधिनियम की वैधता को चुनौती देने के संदर्भ में प्रतिपादित किए गए थे। फिर भी, उक्त निर्णय में यह सिद्धांत स्पष्ट रूप से समर्थित है कि किसी कार्यकारी आदेश या यहाँ तक कि कानून द्वारा पक्षों के बीच अंतिम हो चुके परमादेश को रद्द करना अस्वीकार्य है।

24. इन्हीं सिद्धांतों को **मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम स्टेट ऑफ केरल और अन्य (2019) 13 एससीसी 185** में फिर से प्रतिपादित किया गया था, जिसमें एक ऐसे कानून की वैधता को चुनौती दी गई थी, जिसने न्यायालय के उस फैसले को रद्द करने का प्रयास किया था जो अंतिम हो चुका था।

25. इन सिद्धांतों को **मद्रास बार एसोसिएशन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य (2022) 12 एससीसी 455** में संक्षेप में बताया गया था, जहाँ न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव ने कहा था:

“50. इस देश में विधायी अधिभावन की अनुमति इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त तथा अन्य निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार होनी चाहिए, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न है:

50.1. न्यायालय के निर्णयों का प्रभाव निर्णय के आधार को निरस्त करने वाले विधायी अधिनियम द्वारा रद्द किया जा सकता है। ऐसा कानून पूर्वव्यापी हो सकता है। पूर्वव्यापी संशोधन तर्कसंगत होना चाहिए, मनमाना नहीं, और संविधान के अंतर्गत प्रदत्त मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। [लोहिया मशीन्स लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (1985) 2 एससीसी 197 : 1985 एससीसी (टैक्स) 245]

50.2. किसी वैधीकरण कानून की वैधता निर्धारित करने का मानदंड यह है कि दोष की ओर इशारा करने वाला निर्णय तब पारित नहीं किया जाता, यदि वैधीकरण कानून द्वारा प्रस्तावित परिवर्तित स्थिति निर्णय सुनाए जाने के समय न्यायालय के समक्ष मौजूद होती। दूसरे शब्दों में, जिस दोष की ओर इशारा किया गया है, उसे इस प्रकार दूर किया जाना चाहिए था कि दोष की ओर इशारा करने वाले निर्णय का आधार ही समाप्त हो जाए।

50.3. किसी अधिनियम द्वारा परमादेश को निरस्त करना अनुचित विधायी प्रक्रिया होगी।

(देखें: एस.आर. भगवत [एस.आर. भगवत बनाम मैसूर राज्य, (1995) 6 एससीसी 16 : 1995 एससीसी (कानून एवं न्याय) 1334])। यहाँ तक कि अंतरिम निर्देशों को भी विधायी वीटो द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता (देखें:

कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण [कावेरी जल विवाद न्यायाधिकरण, इन रे, 1993 अनुपूरक (1) एससीसी 96 (2)] और भारतीय चिकित्सा परिषद बनाम केरल राज्य [भारतीय चिकित्सा परिषद बनाम केरल राज्य, (2019) 13 एससीसी 185]]।

50.4. संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन और विधायिका द्वारा न्यायिक शक्ति में हस्तक्षेप करना शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत, विधि के शासन और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

(अदालत द्वारा जोर दिया गया)

26. डॉ. जया ठाकुर बनाम भारत संघ और अन्य, (2023) 10 एससीसी 276 में, मद्रास बार एसोसिएशन (उपरोक्त) में स्थापित सिद्धांत और, अन्य प्रकार से भी, विधान द्वारा परमादेश को रद्द करने की अस्वीकार्यता के संबंध में स्थापित कानून को स्पष्ट रूप से अनुमोदित किया गया है। डॉ. जया ठाकुर (उपरोक्त) में यह कहा गया है:

“**114.** इस प्रकार, यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने यह माना है कि इस न्यायालय के निर्णयों के प्रभाव को किसी विधायी अधिनियम द्वारा निरस्त किया जा सकता है जो निर्णय के आधार को हटा देता है। यह भी माना गया है कि ऐसा कानून पूर्वव्यापी हो सकता है। हालांकि, यह माना गया है कि पूर्वव्यापी संशोधन उचित होना चाहिए, मनमाना नहीं होना चाहिए और संविधान के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। यह माना गया है कि इंगित दोष को इस प्रकार दूर किया जाना चाहिए कि दोष इंगित करने वाले निर्णय का आधार हटा दिया जाए। हालांकि, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि किसी अधिनियम द्वारा परमादेश को निरस्त करना एक अस्वीकार्य विधायी अभ्यास होगा। इस न्यायालय ने आगे माना है कि संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन और विधायिका द्वारा न्यायिक शक्ति में हस्तक्षेप शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत, कानून के शासन और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

116. जैसा कि ऊपर चर्चा की जा चुकी है, इस न्यायालय ने विशेष रूप से यह आदेश जारी किया है कि द्वितीय प्रतिवादी को कोई और विस्तार नहीं दिया जाएगा। भारत संघ और प्रतिवादी 2 दोनों ही इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका (सिविल) संख्या 1374/2020 [कॉमन कॉज़ (2021) [कॉमन कॉज़ बनाम भारत संघ, (2023) 10 एससीसी 321]] की कार्यवाही में पक्षकार थे। पक्षकारों को जारी किया गया आदेश उन पर बाध्यकारी था। इसलिए, हम पाते हैं कि प्रतिवादी 1 इस न्यायालय द्वारा 8-9-2021 को कॉमन कॉज़ (2021) [कॉमन कॉज़ बनाम भारत संघ, (2023) 10 एससीसी 321] में दिए गए निर्णय के माध्यम से जारी किए गए आदेश का उल्लंघन करते हुए 17-11-2021 और 17-11-2022 के आदेश जारी नहीं कर सकता था।

27. सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ के अधीक्षण अभियंता, सिंचाई कार्य प्रभाग-I द्वारा पारित विवादित आदेश कानून की सर्वमान्य स्थिति के विपरीत है। अधीक्षण अभियंता ने विवादित आदेश पारित करते हुए यह माना है कि अध्यादेश की धारा 3 के लागू होने पर इस न्यायालय द्वारा दिनांक 14.02.2020 को रिट-ए संख्या

14563/2018 में जारी किया गया परमादेश स्वतः ही निरस्त हो गया है। स्पष्ट रूप से अध्यादेश का ऐसा प्रभाव कभी नहीं हो सकता था और परमादेश, जो दोनों पक्षों के बीच अंतिम हो चुका था, अधीक्षण अभियंता सहित प्रतिवादियों पर अभी भी लागू है। उन्होंने विवादित आदेश इतने स्पष्ट रूप से अवैध दृष्टिकोण से पारित किया है कि इसे हल्के में नहीं लिया जा सकता। उन्होंने अध्यादेश के बाद में लागू होने के कारण यह कहकर इस न्यायालय के परमादेश का उल्लंघन किया है कि वे आदेश से मुक्त हैं, जो कि कानून के बिल्कुल विपरीत है।

28. हमने दिनांक 26.09.2024 के अपने आदेश द्वारा अधीक्षण अभियंता को सूचित किया था कि उनके द्वारा पारित विवादित आदेश इतना अवैध था कि उस पर दंडात्मक जुर्माना लगाया जा सकता था और उन्हें इसके विरुद्ध कारण बताना चाहिए। हमने यह भी कहा था कि उनके द्वारा पारित लिखित आदेश, अर्थात् विवादित आदेश, के माध्यम से पक्षों के बीच जारी परमादेश का उल्लंघन करने के लिए उनके खिलाफ अवमानना का मामला अलग से दर्ज किया जा सकता है। दिनांक 28.09.2024 को अधीक्षण अभियंता द्वारा विद्वान मुख्य स्थायी वकील को दिए गए लिखित निर्देशों में, जो हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए, उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि उन्होंने ऐसा अवैध आदेश क्यों पारित किया जिससे वे इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 14563/2018 में जारी परमादेश का उल्लंघन करने के दोषी हो गए। उन्होंने यह भी स्पष्ट नहीं किया कि उन्हें जुर्माने से क्यों मुक्त किया जाना चाहिए।

29. इन परिस्थितियों में, विवादित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और निरस्त किए जाने योग्य है तथा याचिकाकर्ता परमादेश प्राप्त करने का हकदार है, जिसमें प्रतिवादियों को आदेश दिया जाए कि वे उसकी पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों की गणना के उद्देश्य से कार्य प्रभार प्रतिष्ठान में उसकी सेवाओं को उसकी नियमित सेवाओं के साथ जोड़ें।

30. परिणामस्वरूप, यह याचिका सफल होती है और इसे 50,000 रुपये की लागत सहित स्वीकार किया जाता है। सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ के अधीक्षण अभियंता, सिंचाई कार्य प्रभाग-I द्वारा दिनांक 28.01.2021 को पारित आदेश को रद्द किया जाता है। प्रतिवादी संख्या 1 से 9 तक प्रत्येक को यह सुनिश्चित करने के लिए परमादेश जारी किया जाता है कि याचिकाकर्ता की सेवाएँ, 1980 से 2004 तक कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में, पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के अनुदान के लिए उसकी अर्हक सेवा की गणना के उद्देश्य से गिनी जाएँ। याचिकाकर्ता की संशोधित पेंशन और सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों की पात्रता का निर्धारण प्रतिवादियों द्वारा इस आदेश की सूचना के आठ सप्ताह के भीतर किया जाएगा और उसकी पेंशन और सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के संशोधन के कारण सभी बकाया राशि उक्त अवधि के भीतर याचिकाकर्ता को भुगतान की जाएगी। याचिकाकर्ता इस आदेश की सूचना प्रतिवादियों को दिए जाने की तिथि से आठ सप्ताह की समाप्ति पर संशोधित मासिक पेंशन का हकदार होगा। राज्य द्वारा याचिकाकर्ता को उपरोक्त आठ सप्ताह की अवधि के भीतर लागत का भुगतान किया जाएगा और राज्य चाहे तो दिनांक 28.01.2021 के विवादित आदेश पारित करने वाले अधिकारी से लागत वसूल कर सकता है।

31. इस निर्णय की सूचना उत्तर प्रदेश सरकार के सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, लखनऊ के अतिरिक्त मुख्य सचिव, वित्त विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के अतिरिक्त मुख्य सचिव, मुख्य अभियंता, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ और मुख्य अभियंता (शारदा सहायक) गंगा सिंचाई भवन, तेलिबाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को सिविल जज (वरिष्ठ श्रेणी), लखनऊ के माध्यम से, मुख्य अभियंता (गंगा), सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ, अधीक्षण अभियंता, सिंचाई कार्य प्रभाग-I, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, मेरठ और कार्यकारी अभियंता, मेरठ प्रभाग, गंगा नहर, मेरठ को सिविल जज (वरिष्ठ श्रेणी), मेरठ के माध्यम से, कार्यकारी अभियंता, मुजफ्फर नगर प्रभाग, गंगा नहर, जिला मुजफ्फरनगर को सिविल जज (वरिष्ठ श्रेणी), मुजफ्फरनगर के माध्यम से और मुख्य कोषागार अधिकारी, बागपत, जिला बागपत को सिविल जज के माध्यम से दी जाए। (वरिष्ठ विभाग), बागपत, रजिस्ट्रार द्वारा (अनुपालन)।

(2025) 3 ILRA 550

मूल क्षेत्राधिकार,

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 28.03.2024

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, के समक्ष

रिट याचिका संख्या 6716/2024

राज कुमार सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

विकास सिंह, अक्षय कुमार सिंह, महेंद्र बहादुर सिंह, पलक जावा, एस.एम. सिंह रायकवार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., राज कुमार उपाध्याय

ए. सेवा कानून- पेंशन- सिविल सेवा विनियमों के नियम 351-ए के तहत पेंशन की रोक- पर्यवेक्षण में ढिलाई के आरोप के परिणामस्वरूप कैदियों का भाग जाना- क्या यह "गंभीर दुराचार" है- समान परिस्थितियों वाले कर्मचारियों के बीच दंड में भेदभाव- पूर्व निर्णयों की प्रयोज्यता- याचिकाकर्ता, एक सेवानिवृत्त जेल अधीक्षक, ने सिविल सेवा विनियमों के नियम 351-ए के तहत तीन वर्षों के लिए अपनी पेंशन में 10% की कटौती के आदेश को चुनौती दी, जो उनके कार्यकाल के दौरान दो कैदियों के भाग जाने की घटना के बाद हुआ था। उन पर अधीनस्थों पर ढिलाई का आरोप था। न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता ने जेल की स्थिति के बारे में सक्रिय रूप से चिंता व्यक्त की थी और घटना के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार नहीं थे। आरोप गंभीर दुराचार की

श्रेणी में नहीं आता था। इसके अलावा, दंड भेदभावपूर्ण था क्योंकि समान परिस्थितियों वाले अधिकारियों को कम दंड मिला था। सुरेंद्र पांडे मामले में पूर्व निर्णय को लागू करते हुए, आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया और ब्याज सहित पूरी पेंशन का भुगतान करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 1 से 25)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सुरेंद्र पांडे, पूर्व उप-जेलर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2007) 2 ए.डी.जे. 531
2. भारत सरकार और अन्य बनाम न्यायमूर्ति अहमद (1979) ए.आई.आर.सी. 1022
3. एसटी.आर.सी. और अन्य बनाम अब्दुल गफूर (2006) 3 ई.सी.सी. 1985
4. एम.एम. मल्होत्रा बनाम भारत सरकार और अन्य संयुक्त न्यायालय (2005) 9 एस.सी. 506

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा प्रदत्त)

1. हमने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अक्षय कुमार सिंह, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अनिरुद्ध सिंह और प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के. उपाध्याय की दलीलें सुनीं।

2. यह याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर की गई है:

“(i) दिनांक 21.06.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए सर्टिओरारी प्रकृति का रिट निर्देश या आदेश जारी किया जाए।

(ii) याचिकाकर्ता को बिना किसी कटौती के पूर्ण पेंशन का भुगतान करने के लिए विपक्षी पक्षों को आदेश देने के लिए मैडमस प्रकृति का रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।

(iii) विपक्षी पक्षों को 09.05.2002 से समय-वेतनमान, 09.05.2008 से प्रथम पदोन्नति वेतनमान, 09.05.2020 से तृतीय पदोन्नति वेतनमान (तृतीय एसीपी) का लाभ प्रदान करने और याचिकाकर्ता के वेतन के पुनर्निर्धारण के बाद देय तिथियों से वेतन के बकाया का भुगतान करने के लिए मैडमस प्रकृति का रिट निर्देश या आदेश जारी किया जाए।”

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग (प्रतिवादी संख्या 3) द्वारा उप जेलर के पद पर नियुक्त किया गया था और उन्होंने 09.05.1994 को कार्यभार ग्रहण किया। उन्हें

17.05.2010 के आदेश द्वारा जेलर के पद पर पदोन्नत किया गया और उसके बाद 19.05.2016 के आदेश द्वारा जेल अधीक्षक के पद पर पदोन्नत किया गया। याचिकाकर्ता ने 01.07.2017 को इटावा जिले में जेल अधीक्षक के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। इटावा में जेल अधीक्षक के रूप में याचिकाकर्ता की सेवा के दौरान, उन पर आरोप लगा कि दो दोषी कैदी जेल से फरार हो गए और बाद में याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच शुरू की गई। इसके बाद, 11.11.2019 को आरोप पत्र जारी किया गया। आरोप पत्र में केवल एक ही आरोप है। मूल रूप से याचिकाकर्ता पर आरोप है कि उनका अधीनस्थ अधिकारियों पर ढीला नियंत्रण था, जिसके कारण वे जेल में आवश्यक सुरक्षा उपायों में भी लापरवाही बरतते थे, जिसके परिणामस्वरूप दो कैदी फरार हो गए। याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.02.2020 को अपने उत्तर पत्र के माध्यम से आरोप पत्र का विधिवत उत्तर देते हुए अपने ऊपर लगे आरोपों का खंडन किया। जांच रिपोर्ट 30.07.2020 को प्रस्तुत की गई।

4. याचिकाकर्ता 30.11.2021 को सेवानिवृत्त हो गए थे और उसके बाद सिविल सेवा विनियम (जिसे आगे 'सीएसआर' कहा गया है) के नियम 351-ए के अनुसार अनुमति ली गई थी। दिनांक 11.01.2022 के आदेश द्वारा सीएसआर के नियम 351-ए के तहत जांच जारी रखने की अनुमति दी गई थी। विभागीय कार्यवाही पूरी हो गई और दिनांक 11.01.2022 को याचिकाकर्ता की पेंशन से 15 प्रतिशत राशि की कटौती का आदेश पारित किया गया।

5. याचिकाकर्ता के साथ तीन अधिकारियों, एक जेलर और दो उप-जेलरों के खिलाफ भी आरोप पत्र दायर किए गए थे, लेकिन उन्हें चेतावनी/निंदा की मामूली सजा दी गई है।

6. याचिकाकर्ता ने दिनांक 11.01.2022 के आदेश संख्या 1690A/22-1-200(12)/2019 को रिट याचिका संख्या 3035/2022 दायर करके चुनौती दी है। उक्त रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, राज्य सरकार ने दिनांक 25.05.2022 के आदेश द्वारा दिनांक 11.01.2022 के आदेश को वापस ले लिया है और मामले को **प्रतिवादी संख्या 3 को सुरेंद्र पांडे पूर्व उप जेलर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2007(2) ए.डी.जे. 531** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के आलोक में निर्णय लेने के लिए संदर्भित किया है।

7. दिनांक 11.01.2022 का आक्षेपित आदेश वापस ले लिया गया था, इसलिए दिनांक 19.09.2022 के आदेश द्वारा याचिका भी स्वीकार कर ली गई थी। चूंकि प्रतिवादी संख्या 3 को आदेश पारित करने के लिए कोई समयबद्ध निर्देश नहीं दिया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता ने सिविल विविध समीक्षा आवेदन संख्या 76/2023 दायर किया, जिसे दिनांक 12.04.2023 के आदेश द्वारा निपटा दिया गया था, जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 को छह सप्ताह के भीतर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था। उन्होंने आगे बताया कि इसके बाद, दिनांक 21.06.2023 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया, जिसमें तीन वर्षों की अवधि के लिए पेंशन कटौती को 15 प्रतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया। दिनांक 21.06.2023 का आदेश याचिकाकर्ता को दिनांक 12.07.2023 के पत्र के साथ सूचित किया गया था।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश को मुख्य रूप से तीन आधारों पर चुनौती दी है।
9. सर्वप्रथम, उन्होंने यह निवेदन किया कि जेल अधीक्षक के पद पर कार्यभार ग्रहण करने के बाद याचिकाकर्ता ने दिनांक 20.07.2017 को जेल महानिदेशक को पत्र संख्या 1242/ahda-14-2017 लिखकर इटावा जिला जेल की सुरक्षा संबंधी दयनीय स्थिति के बारे में सूचित किया था, परन्तु इस संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की गई। अतः, कथित घटना के लिए उन्हें उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।
10. दूसरे, उन्होंने यह तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के साथ-साथ इटावा जिला जेल के एक जेलर, राम कुबेर सिंह और दो उप-जेलर, जगदीश प्रसाद और सिब्ते हसन जाफरी भी इसी घटना के लिए दोषी पाए गए थे, लेकिन जेलर राम कुबेर सिंह को केवल चेतावनी दी गई, जगदीश प्रसाद को निंदात्मक प्रविष्टि की सजा दी गई, जबकि सिब्ते हसन जाफरी को भविष्य में अधिक सतर्कता से काम करने की चेतावनी दी गई। उन्होंने दृढ़ता से कहा कि यह याचिकाकर्ता के साथ पूर्णतः भेदभाव का मामला है, क्योंकि वह जेल प्रभारी थे और उनका कर्तव्य केवल पर्यवेक्षण का था, जबकि अन्य आरोपित कर्मचारी इस घटना के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार हैं। इसलिए, सजा के मामले में, उन्हें याचिकाकर्ता से अधिक कठोर सजा दी जानी चाहिए थी और वर्तमान मामले में अन्य आरोपित कर्मचारियों को बहुत मामूली सजा दी गई है, जिसे सजा भी नहीं कहा जा सकता।
11. उन्होंने आगे कहा कि उत्तर प्रदेश जेल नियमावली के प्रावधानों के अनुसार, जेलर जेल का मुख्य अनन्य अधिकारी होता है। वह सभी भवन निर्माण कार्यों की निगरानी और यह सुनिश्चित करने के लिए भी जिम्मेदार होगा कि सभी जेल भवनों की मरम्मत अच्छी स्थिति में की जाए। जिला जेलों में, बैरकों को बंद करना और खोलना जेलर, उप जेलर, सहायक जेलर और अन्य अधिकारियों की सामान्य देखरेख में किया जाएगा। उन्होंने आगे कहा कि यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि जेल नियमावली के अंतर्गत जिम्मेदार अधिकारियों को केवल मामूली सजा दी गई है। उन्होंने यह भी कहा कि जिस तरीके से आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, वह भेदभावपूर्ण है।
12. अंत में, उन्होंने कहा कि इस न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 3035/2022 में दिनांक 27.05.2022 को पारित अंतरिम आदेश के माध्यम से **सुरेंद्र पांडे (उपरोक्त)** मामले में इस न्यायालय के निर्णय के आलोक में मामले का निर्णय करने का निर्देश दिया है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक बताया कि याचिकाकर्ता का मामला **सुरेंद्र पांडे (उपरोक्त)** मामले के समान तथ्यों पर आधारित है और उस मामले में, इस न्यायालय ने कानून के प्रावधानों पर विचार करने के बाद यह माना है कि अक्षमता, दूरदर्शिता की कमी और अनिर्णय को सीएसआर के नियम 351ए के तहत कदाचार नहीं कहा जा सकता है और इसलिए, इसके आधार पर कोई दंड अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता है और तदनुसार आक्षेपित आदेश को अपास्त किया गया है।
13. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क का पुरजोर विरोध किया और कहा कि याचिकाकर्ता के खिलाफ उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1999

के नियम 7 के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही उसके कर्तव्य निर्वहन में लापरवाही और अधीनस्थ अधिकारियों और कैदियों पर ढीला नियंत्रण रखने के कारण शुरू की गई थी, लेकिन वे इस तथ्यात्मक तर्क और इस तथ्य का खंडन नहीं कर सके कि इसी तरह के विवाद का निर्णय इस न्यायालय द्वारा **सुरेंद्र पांडे (उपरोक्त)** के मामले में किया जा चुका है।

14. मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिपक्षों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का पहला तर्क इटावा जिला जेल की दयनीय स्थिति से संबंधित है, जिसके लिए उन्होंने समय-समय पर कई पत्र लिखे हैं और प्रति-हलफनामे में इस तथ्य का कोई खंडन नहीं है। अतः यह स्पष्ट है कि इटावा जिला जेल की स्थिति ठीक नहीं थी और साथ ही वहां सुरक्षा अधिकारियों की संख्या भी कम थी। सीसीटीवी कैमरा भी काम नहीं कर रहा था।

16. अवलोकन से यह भी स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता द्वारा जेल की दयनीय स्थिति के बारे में जेल महानिदेशक को सूचित किए जाने के बावजूद, उचित सुरक्षा के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

17. अतः याचिकाकर्ता को किसी भी निष्क्रियता और कर्तव्य में लापरवाही के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है, साथ ही इस तथ्य के लिए भी कि उन्होंने जेलों की स्थिति में सुधार के लिए कई पत्र लिखे हैं, जिन पर ध्यान नहीं दिया गया है।

18. अब हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दूसरी दलील पर आते हैं, जो याचिकाकर्ता को दी गई सज़ा में भेदभाव से संबंधित है। मैंने उ.प्र. जेल मैनुअल के प्रावधानों को पढ़ा है। उन्हें पढ़ने से यह बिल्कुल साफ़ है कि जेल की सुरक्षा में मुख्य भूमिका अन्य अधीनस्थ अधिकारियों को सौंपी गई है, और अधीक्षक की भूमिका केवल पर्यवेक्षी प्रकृति की है। अन्य आरोपी कर्मचारियों, यानी जेलर और डिप्टी जेलर पर, याचिकाकर्ता द्वारा जारी आदेशों को लागू करने की कहीं अधिक ज़िम्मेदारी है। यह बेहद हैरानी की बात है कि मौजूदा मामले में उन्हें बहुत कम सज़ा अधिनिर्णीत की गई है।

19. अतः, यह याचिकाकर्ता के साथ पूर्णतः भेदभाव का मामला है। किसी भी परिस्थिति में, याचिकाकर्ता को अन्य आरोपित कर्मचारियों की तुलना में अधिक दंड नहीं दिया जा सकता।

20. अब न्यायालय के समक्ष कानूनी मुद्दा यह है कि क्या पर्यवेक्षण की कमी सीएसआर के नियम 351-ए के अंतर्गत कदाचार के दायरे में आती है या नहीं।

21. यही मुद्दा और तथ्य **सुरेंद्र पांडे (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय के समक्ष थे। उस मामले में एक कैदी जेल परिसर से भाग गया था और याचिकाकर्ता को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर ढीला नियंत्रण रखने का दोषी पाया गया था, जिसके परिणामस्वरूप कैदी जेल से भागने में सफल रहा। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

“6. याचिकाकर्ता के विरुद्ध दंड का आदेश सिविल सेवा विनियमों के विनियम 351-ए के तहत पारित किया गया था और उसका प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया गया है:-

351-ए. राज्यपाल को पेंशन या उसके किसी भाग को स्थायी रूप से या एक निश्चित अवधि के लिए रोकने या वापस लेने का अधिकार सुरक्षित है, और पेंशन से सरकार को हुए किसी भी आर्थिक नुकसान की पूरी या आंशिक वसूली का आदेश देने का भी अधिकार है, यदि विभागीय या न्यायिक कार्यवाही में यह पाया जाता है कि पेंशनभोगी गंभीर दुराचार का दोषी है, या दुराचार या लापरवाही से सरकार को आर्थिक नुकसान पहुंचाया है, अपनी सेवा के दौरान, जिसमें सेवानिवृत्ति के बाद पुनर्नियोजन पर दी गई सेवा भी शामिल है.....”

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जोर देकर कहा कि याचिकाकर्ता दोनों कैदियों के भाग जाने के लिए बिल्कुल भी ज़िम्मेदार नहीं था और याचिकाकर्ता पर केवल यही आरोप लगाया गया था कि उसका अपने अधीनस्थों पर नियंत्रण ढीला था, जिसके परिणामस्वरूप उक्त घटना घटी। उनके अनुसार, यह सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351-ए के प्रावधानों के अंतर्गत आने वाला गंभीर दुराचार नहीं है और अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने **यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम जे. अहमद (AIR 1979 SC 1022)**, **उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य बनाम अब्दुल गफूर (2006 (3) ESC 1985)** और **एम.एम. मल्होत्रा बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य (JT 2005 (9) SC 506)** के निर्णयों का हवाला दिया।

8. अतः, इस याचिका में विचारणीय एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता पर सिविल सेवा विनियमों के विनियम 351-ए के प्रावधानों के अंतर्गत दंड लगाया जा सकता था, भले ही यह मान लिया जाए कि याचिकाकर्ता अपने अधीनस्थों पर ढीला नियंत्रण रखने के आरोप का दोषी था, जिसके परिणामस्वरूप दो कैदी गोंडा जिला जेल से भाग गए थे। विनियम 351-ए स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करता है कि राज्यपाल को पेंशन या उसके किसी भाग को स्थायी रूप से या एक निर्दिष्ट अवधि के लिए रोकने या वापस लेने का अधिकार सुरक्षित है और पेंशन से वसूली का आदेश देने का भी अधिकार है, यदि विभागीय या न्यायिक कार्यवाही में पेंशनभोगी को अपनी सेवा के दौरान 'गंभीर दुराचार का दोषी' पाया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने जमील अहमद (उपरोक्त) मामले में यह टिप्पणी की कि किसी ज़िम्मेदार पद पर आसीन अधिकारी से उच्चतम अपेक्षाओं को पूरा करने में विफलता या नेतृत्व की योग्यता या गुणों की कमी को कर्तव्यनिष्ठा बनाए रखने में विफलता नहीं माना जाएगा, क्योंकि यदि ऐसा होता तो औसत दर्जे का प्रत्येक अधिकारी दुराचार का दोषी होता। उक्त मामले में अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों में अक्षमता, दूरदर्शिता की कमी और अनिर्णय की कमी का संकेत

मिला, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि व्यक्तिगत चरित्र या व्यक्तिगत क्षमता में ये कमियां अनुशासनात्मक कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए कदाचार नहीं होंगी।

एम.एम. मल्होत्रा (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की:-

बैट्स लॉ ऑफ मास्टर एंड सर्वेंट (चौथा संस्करण) (पृष्ठ 63 पर) में वर्णित "दुराचार" में "सकारात्मक कार्य शामिल हैं, न कि केवल लापरवाही या विफलताएँ"। बैलेन्टाइन लॉ डिक्शनरी (148वां संस्करण) में इस शब्द की परिभाषा इस प्रकार है: "किसी स्थापित और निश्चित नियम का उल्लंघन, जहाँ आवश्यकता के अलावा कोई विवेक नहीं बचता, यह निश्चित कानून का उल्लंघन है, एक निषिद्ध कार्य है। यह लापरवाही से भिन्न है।"

9. अब्दुल गफूर (उपरोक्त) मामले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने उपरोक्त निर्णयों पर ध्यान देते हुए पाया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध यह आरोप कि उसने रात 10:30 बजे डिपो में आई बस की जाँच नहीं करवाई, कदाचार नहीं है, क्योंकि उसकी निष्क्रियता या कर्तव्य में चूक बस में आग लगने का मुख्य कारण नहीं हो सकती। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के विरुद्ध केवल यही आरोप लगाया गया है कि उसका अपने अधीनस्थों पर नियंत्रण ढीला था, जिसके परिणामस्वरूप दो कैदी भाग गए। जाँच रिपोर्ट से यह संकेत नहीं मिलता कि याचिकाकर्ता इन दो कैदियों के भागने के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार था। नियम 351-ए के तहत दंड याचिकाकर्ता पर तभी लगाया जा सकता था जब वह गंभीर कदाचार का दोषी होता। उपरोक्त निर्णयों के आलोक में यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता गंभीर कदाचार का दोषी था। अतः, 21 जून, 2003 का आदेश मान्य नहीं है।

10. विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत यह दलील कि इस न्यायालय को सजा की मात्रा में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, वर्तमान मामले में विचारणीय नहीं है, क्योंकि उपरोक्त कार्य के लिए सिविल सेवा विनियमों के विनियम 351-ए के तहत सजा नहीं दी जा सकती थी। अतः, रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। दिनांक 21 जून, 2003 का आदेश रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता को देय तिथि से भुगतान तिथि तक 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित पेंशन की शेष राशि का भुगतान किया जाएगा।"

22. वर्तमान मामले में भी, याचिकाकर्ता पर अधीनस्थ कर्मचारियों पर ढीला नियंत्रण रखने का आरोप लगाया गया है, जिसके परिणामस्वरूप दो कैदी भाग गए। इसे कदाचार नहीं कहा जा सकता और इस न्यायालय द्वारा **सुरेंद्र पांडे (उपरोक्त)** मामले में दिए गए निर्णय के अनुसार, सीएसआर के नियम 351-ए के तहत कोई दंड नहीं दिया जा सकता।

23. इसलिए, मामले के तथ्यों और **सुरेंद्र पांडे (उपरोक्त)** मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात के आलोक में, याचिकाकर्ता को कोई दंड नहीं दिया जा सकता। तदनुसार, दिनांक 21.06.2023 का आक्षेपित आदेश मान्य नहीं है और इसे निरस्त किया जाता है।

24. यह निर्देश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता को देय तिथि से वास्तविक भुगतान तिथि तक 9% की दर से ब्याज सहित पेंशन की पूरी कटौती राशि का भुगतान किया जाए।

25. रिट याचिका सभी परिणामी लाभों सहित **स्वीकृत** की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

26. प्रार्थना संख्या (iii) के संबंध में, याचिकाकर्ता को इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ दो सप्ताह के भीतर प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता दी जाती है। यदि ऐसा कोई अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जाता है, तो प्रतिवादी संख्या 1 को निर्देश दिया जाता है कि वह कानून के अनुसार, अधिकतम आठ सप्ताह की अवधि के भीतर उस पर विचार करे और निर्णय ले।

(2025) 3 ILRA 556

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति, सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए संख्या 7114 / 2023

रजनीश कुमार पाण्डेय

.....याची

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री संतोष कुमार पाण्डेय, श्री श्रवण कुमार त्रिपाठी, श्री जी. के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

ए.एस.जी.आई., श्री कुणाल रवि सिंह

सेवा विधि - नियमितीकरण - विश्वविद्यालय अध्यापक - नियमित चयन के बिना नियुक्ति - उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 - धारा 2(19) और 31(3)(ग) [उत्तर प्रदेश अधिनियम 23, 2004 द्वारा प्रतिस्थापित] - इलाहाबाद विश्वविद्यालय अधिनियम, 2005 - धारा 3(यू), 3(डब्ल्यू), 29, 31 और 45 - विश्वविद्यालय अधिनियम - खंड 15(2) और 15(7)(iv) - याचिकाकर्ता को प्रारंभ में 1992 में अनुसन्धान अध्येता (जेआरएफ/एसआरएफ) के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्होंने अधिनियम के पैरा 10.02 के अंतर्गत अंशकालिक अध्यापक के रूप में माने जाने की मांग की। उन्होंने केंद्रीय अधिनियम के अंतर्गत निर्मित

विश्वविद्यालय अधिनियम के खंड 15(7)(iv) के अंतर्गत नियमितीकरण की मांग की। *अभिनिर्धारित किया:* अधिनियम के खंड 15(2) में व्याख्याता पद पर नियुक्ति के लिए चयन समिति की अनिवार्य संरचना निर्धारित की गई है, जिसमें संकाय के डीन, विभागाध्यक्ष और अकादमिक परिषद द्वारा अनुशंसित पैनल से कार्यकारी परिषद द्वारा नियुक्त तीन विषय विशेषज्ञ शामिल होने चाहिए। याचिकाकर्ता के मामले पर विचार करने वाली चयन समिति निर्धारित संरचना के अनुरूप नहीं थी और इसलिए खंड 15(2) के अंतर्गत इसे नियमित चयन समिति नहीं माना जा सकता था। परिणामस्वरूप, खंड 15(7)(iv) के अंतर्गत मिलने वाला लाभ—जो चयन समिति के आगे संदर्भ के बिना स्थायी नियुक्ति की अनुमति देता है — याचिकाकर्ता को नहीं दिया जा सकता था। न्यायालय ने माना कि खंड 15(7)(iv) के अंतर्गत आवश्यक शर्तें पूरी नहीं हुईं, और इसलिए, याचिकाकर्ता का नियमितीकरण का दावा अस्वीकृत कर दिया गया। (पैरा 26, 31)

निरस्त। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शर्मशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संतोष कुमार पाण्डेय से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी. के. सिंह और प्रतिवादी संख्या 2 से 6 के विद्वान अधिवक्ता श्री कुणाल रवि सिंह को सुना गया।
2. याचिकाकर्ता ने स्पष्ट शब्दों में यह नहीं बताया है कि उसने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कैसे प्रवेश किया, अर्थात् उसने यह स्पष्ट रूप से नहीं बताया है कि उसे प्रारंभ में 1992 में दर्शनशास्त्र विभाग में अनुसन्धान अध्येता (जेआरएफ/एसआरएफ) के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता ने इस संबंध में कोई अभिलेख संलग्न नहीं किया है, हालांकि बहस के दौरान कुछ अन्य दस्तावेजों का हवाला दिया गया था जिनसे यह संकेत मिलता है कि वह उक्त विभाग में अनुसन्धान अध्येता था।
3. रिट याचिका में दिए गए कथनों की शुरुआत इस दावे से होती है कि याचिकाकर्ता और अन्य समान रूप से स्थित शोधार्थियों को अधिसूचना दिनांक 18.01.1992 के माध्यम से विभाग में उनके अपने कर्तव्यों के अतिरिक्त कक्षाएं सौंपी गई थीं, और उन्होंने घोषणा की है कि 19.01.1992 के बाद उन्हें नियमित आधार पर शिक्षण कार्य सौंपा गया था। संदर्भ के लिए, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग के प्रमुख द्वारा जारी अधिसूचना दिनांक 18.01.1992 का उल्लेख नीचे किया गया है :-

“सभी जेआरएफ, एसआरएफ और शोधार्थियों को विभाग में अपने अन्य कर्तव्यों के अतिरिक्त, समय सारणी के अनुसार कक्षाओं में भाग लेना अनिवार्य है।”
4. याचिकाकर्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इस बात पर बल दिया गया है कि कक्षाओं में निर्देश प्रदान करने के द्वारा याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम,

1973 की धारा 2(19) के अंतर्गत परिभाषित 'अध्यापक' होगा। संदर्भ के लिए, उक्त उपबंध नीचे उद्धृत किया गया है:

“2 (19) "अध्यापक" अध्याय XI-क को छोड़कर इस अधिनियम के उपबंधों के सम्बन्ध में किसी विश्वविद्यालय में या संस्थान में या विश्वविद्यालय के घटक या सम्बद्ध या सहयुक्त महाविद्यालय में उस विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित किसी भी विषय या पाठ्यक्रम में शिक्षण प्रदान करने या मार्गदर्शन देने या अनुसन्धान करने के लिए नियोजित व्यक्ति से अभिप्रेत है और उसमें प्राचार्य अथवा निदेशक सम्मिलित है।”

5. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अधिनियम के पैरा 10.02 और उसके उस उपबंध का भी हवाला दिया है जिसमें कहा गया है कि शोध अध्येता या शोध सहायक के रूप में कार्यरत व्यक्तियों को 'अंशकालिक अध्यापक' के रूप में कार्य करने के लिए कहा जा सकता है। अतः उन्होंने यह तर्क दिया कि चूंकि याचिकाकर्ता ने 18.01.1992 की अधिसूचना के तुरंत बाद 19.01.1992 से कक्षाएं लेना शुरू कर दिया था, इसलिए उन्हें भी 'अंशकालिक अध्यापक' माना जाएगा। संदर्भ के लिए, उक्त पैराग्राफ को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“10.02 विश्वविद्यालय के अध्यापकों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित वेतनमानों के अनुसार पूर्णकालिक आधार पर विषयों में की जाएगी:

बशर्ते कि अंशकालिक व्याख्याताओं की नियुक्ति उन विषयों में की जा सकती है जिनमें अकादमिक परिषद की राय में शिक्षण के हित में या अन्य कारणों से ऐसे व्याख्याताओं की आवश्यकता हो। ऐसे अंशकालिक व्याख्याताओं को सामान्यतः उस पद के प्रारंभिक वेतनमान के आधे से अधिक वेतन नहीं दिया जाएगा जिस पर उनकी नियुक्ति की गई है। शोध अध्येता या शोध सहायक के रूप में कार्यरत व्यक्तियों को अंशकालिक व्याख्याता के रूप में कार्य करने के लिए कहा जा सकता है।”

6. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता 1992 से 'अंशकालिक अध्यापक' थे और इसलिए, चूंकि वे कट-ऑफ तिथि (31.12.1997) के भीतर आते हैं, इसलिए वे चयन समिति के संदर्भ के बिना स्थायी नियुक्ति के पात्र थे। इसके लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अधिनियम 1973 की धारा 31(3)(ग) का हवाला दिया है, जिसे उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 23 / 2004 (20.05.2004 से प्रभावी) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। संदर्भ के लिए, 20.05.2004 को प्रतिस्थापित धारा 31(3)(ग) नीचे उद्धृत की गई है:

“31(3)(ग) :- विश्वविद्यालय का कोई भी अध्यापक, जिसे उस नियुक्ति के लिए तत्समय प्रवृत्ति उपबंधों के अनुसार अल्पकालिक या अंशकालिक प्रबन्ध के माध्यम से चयन समिति को निर्देश के बिना 31 दिसम्बर, 1997 को या उसके आस-पास प्रवक्ता/अंशकालिक प्रवक्ता के रूप में नियुक्त किया गया था, कार्यपरिषद् कुच मूल नियुक्ति प्रदान की जा सकेगी, बशर्ते उसी विभाग में उसी कॉडर एवं ग्रेड में कोई मूल नियुक्ति उपलब्ध हो, यदि वह अध्यापक -

- (i) 31 दिसम्बर, 1997 को उस रूप में लगातार उस प्रारम्भिक नियुक्ति के समय से अल्पकालिक/अंशकालिक प्रबन्ध के रूप में सेवा करता आ रहा है;
- (ii) प्रारम्भिक नियुक्ति की तारीख पर प्रवृत्त सुसंगत परिनियमों के उपबंधों के अधीन पद पर नियमित नियुक्ति हेतु अपेक्षित अर्हताओं को रखता था;
- (iii) कार्यपरिषद् द्वारा नियमित नियुक्ति हेतु उपयुक्त पाया गया हो, यथा पूर्वोल्लिखित अल्पकालिक/अंशकालिक नियुक्ति के माध्यम से नियुक्त अध्यापक, जो इस खण्ड के अधीन मूल नियुक्ति को प्राप्त नहीं करता है, उस तारीख पर उस पद को धारित करना बन्द कर देगा जिसे कार्यपरिषद् विनिर्दिष्ट कर सकेगी।”

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दस्तावेजों का हवाला देते हुए आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता और समान स्थिति वाले व्यक्तियों ने उपरोक्त उपबंधों के अनुसार अपने नियमितीकरण के लिए आवेदन किया था और उनकी शिकायतों पर विचार करने के लिए कार्यकारी परिषद् के निर्णयों दिनांक 10.06.2004 और 19.12.2004 द्वारा एक समिति का गठन भी किया गया था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बाद कोई प्रगति नहीं हुई और उपयुक्तता का निर्धारण करने के उद्देश्य से फिर से एक समिति का गठन करने का संकल्प लिया गया। यह ध्यान देने योग्य है कि 23.06.2005 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय अधिनियम, 2005 लागू हुआ, जिसमें 'शिक्षक' (धारा 3(प)) और 'विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त शिक्षक' (धारा 3(ब)) की अलग-अलग परिभाषाएँ हैं। संदर्भ के लिए, दोनों धाराएँ नीचे उद्धृत हैं:

“3(प) “शिक्षक” से विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त या मान्यताप्राप्त आचार्य, उपाचार्य या प्राध्यापक अभिप्रेत हैं; 3(ब) “विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त शिक्षक” से विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे किसी महाविद्यालय या संस्था में शिक्षा देने और अनुसंधान का संचालन करने के लिए विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त शिक्षक अभिप्रेत है;”

8. आगे यह तर्क दिया गया कि एक ओर तो नियमितीकरण का मामला लंबित रखा गया और दूसरी ओर नई चयन प्रक्रिया शुरू कर दी गई। याचिकाकर्ता ने इसे चुनौती दी है। रिट याचिका के पैराग्राफ 25 में यह खुलासा किया गया है कि “नियमितीकरण का दावा लंबित रखा गया और नई चयन प्रक्रिया शुरू कर दी गई, जिसके परिणामस्वरूप चयन को चुनौती देते हुए रिट याचिकाएं दायर की गईं, हालांकि उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 28.03.2014 के माध्यम से इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया कि कुछ अध्यापकों की नियुक्ति वर्ष 2000 के बाद हुई थी और अध्यादेश संख्या 44 को चुनौती नहीं दी गई थी।” याचिकाकर्ता ने न तो उक्त रिट याचिका का विवरण दिया है और न ही आदेश दिनांक 28.03.2014 की प्रति पत्रवाली पर रखी है, जो गुमराह करने का प्रयास प्रतीत होता है। उक्त आदेश की एक प्रति बाद में विश्वविद्यालय द्वारा दिनांक 13.07.2023 को दायर किए गए प्रति-शपथपत्र के साथ एक संलग्नक के रूप में प्रस्तुत की गई।

9. मैंने उक्त निर्णय का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, क्योंकि विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता ने इस पर बहुत अधिक भरोसा किया था, और इसमें नियमितीकरण के लिए विचार के मुद्दे को खारिज कर दिया गया था। उक्त निर्णय से निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं:-

“क. याचिकाकर्ता ने पहले एक भी रिट याचिका दायर नहीं की है, बल्कि उसने 2 अन्य याचिकाकर्ताओं के साथ मिलकर 3 रिट याचिकाएं रिट याचिका संख्या 64494/2008, 63695/2010 और 18243/2012 दायर की हैं।
ख. उपर्युक्त आदेश दिनांक 28.03.2014 में तीनों रिट याचिकाओं का विवरण दिया गया है, जिसके द्वारा तीनों रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया था और उसका प्रासंगिक भाग निम्नलिखित है :-

रिट ए संख्या 63695/2010

डॉ. उमाकांत, रजनीश कुमार पाण्डेय, डॉ. सतीश कुमार सिंह, डॉ. प्रेम चंद्र मिश्रा और डॉ. पंकज मिश्रा द्वारा द्वितीय रिट याचिका संख्या 63695/2010 दायर की गई है। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय को याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण के दावे पर विचार करने का आदेश देने के लिए परमादेश रिट की मांग करते हैं, जो कार्यकारी परिषद द्वारा 29.10.2009 को आयोजित बैठक में लिए गए निर्णय और कार्यकारी परिषद द्वारा 07.08.2010 की बैठक में कुलपति द्वारा दिए गए आश्वासन के अनुसार है।

रिट ए संख्या 18243/2012

डॉ. उमाकांत, रजनीश कुमार पाण्डेय, डॉ. सतीश कुमार सिंह, डॉ. प्रेम चंद्र मिश्रा और डॉ. पंकज मिश्रा, जिन्होंने रिट याचिका संख्या 63695/2010 दायर की थी, ने विज्ञापन दिनांक 14.02.2012 को रद्द करने और उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 31 (3) (ग) के अंतर्गत उल्लिखित कट-ऑफ तिथि अर्थात् 31.12.1997 को मनमाना और अमान्य घोषित करने के लिए यह रिट याचिका दायर की है। याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 04.10.2002 के परिपत्र को भी रद्द करने की प्रार्थना की है।

ग. प्रमुख रिट याचिका संख्या 64494/2008 के संदर्भ में निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे दिया गया है:-

रिट ए संख्या 64494/2008

“इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने कुलपति के आदेश दिनांक 03.12.2008 को रद्द करने और विश्वविद्यालय के प्रतिवादियों को अध्यादेश संख्या 44 के उपबंधों का अनुपालन करने और याचिकाकर्ताओं को कम से कम तीन वर्षों की अवधि के लिए बिना किसी नए साक्षात्कार/चयन का सामना किए अतिथि संकाय व्याख्याता के रूप में बने रहने की अनुमति देने का निर्देश देने के लिए परमादेश जारी करने की प्रार्थना की है और उन्हें तदनुसार वेतन का भुगतान किया जाए।

हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि केंद्रीय विश्वविद्यालय के असंशोधित अध्यादेश संख्या 44 में यह उपबंध है कि अतिथि संकाय व्याख्याता शैक्षणिक वर्ष की समाप्ति तिथि के बाद अपना कार्यकाल जारी नहीं रख सकेंगे, किन्तु यदि शैक्षणिक इकाई चाहे तो वह पहले से चयनित अतिथि संकाय व्याख्याता को अगले शैक्षणिक सत्र

में चयन की नई प्रक्रिया का सहारा लिए बिना अपना कार्यकाल जारी रख सकती है, किन्तु यह विस्तार लगातार तीन वर्षों से अधिक नहीं होगा।

वर्तमान रिट याचिका में अध्यादेश संख्या 44 को चुनौती नहीं दी गई है। उसमें उल्लिखित किसी भी शर्त पर किसी भी आधार पर प्रश्न नहीं उठाया गया है। याचिका में प्रार्थना की गई है कि याचिकाकर्ताओं को 22.09.2007 को हुए चयन के आधार पर तीन वर्ष तक पद पर बने रहने की अनुमति दी जाए। यह तीन वर्ष की अवधि निश्चित रूप से वर्ष 2010 में समाप्त हो जाएगी। इसलिए, व्यावहारिक रूप से, यह रिट याचिका निष्प्रभावी हो गई है, भले ही विश्वविद्यालय ने यह कहा हो कि अध्यादेश संख्या 44 में स्वयं 20.01.2009 को संशोधन किया गया था।

हम इस न्यायालय की खंड पीठ के डॉ. कीर्ति राजे सिंह बनाम इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं अन्य 2010 (6) एडीजे 860 (डीबी) में प्रतिवेदित के मामले में दिए गए निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अतिथि संकाय व्याख्याता को नियमित चयनित उम्मीदवारों के शामिल होने तक जारी रहने या नियमितीकरण का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है।

उपरोक्त आदेश पारित होने के पश्चात, अधिवक्ता श्री के. सी. शुक्ला उपस्थित हुए और उन्होंने बताया कि याचिकाकर्ताओं ने अतिरिक्त अनुतोष के लिए दिनांक 07.08.2013 और दिनांक 22.07.2013 को संशोधन आवेदन दाखिल किए हैं, अर्थात् प्रतिवादियों को निर्देश देने के लिए परमादेश याचिका कि वे नियमित चयनित उम्मीदवार के कार्यभार ग्रहण करने तक याचिकाकर्ताओं के कामकाज में हस्तक्षेप न करें। संशोधन आवेदनों की प्रति न्यायालय को सौंप दी गई है, जिसे अभिलेख में ले लिया गया है। कार्यालय उपरोक्त संशोधन आवेदनों का पता लगाकर उन्हें अभिलेख में शामिल करे।

याचिकाकर्ताओं ने 2008 के बाद किस तिथि तक काम किया है, इसका कोई उल्लेख नहीं है। अध्यादेश संख्या 44, जैसा कि उस समय लागू था, पर संशोधन आवेदनों में भी कोई प्रश्न नहीं उठाया गया है। अतिथि व्याख्याता के अधिकारों की जांच डॉ. कीर्ति राजे सिंह (उपरोक्त) के मामले में पहले ही की जा चुकी है। इसी कारण से, संशोधन आवेदन के अंतर्गत की गई प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।”

10. उपरोक्त निर्णय में याचिकाकर्ता द्वारा नियमितीकरण पर विचार करने के अनुरोध को स्पष्ट शब्दों में खारिज कर दिया गया है, इसलिए याचिकाकर्ता को इसकी प्रति प्रस्तुत करनी चाहिए थी। चूंकि उसने ऐसा नहीं किया, इसलिए याचिका को इस आधार पर खारिज किया जा सकता है कि उसने निष्पक्ष भाव से इस न्यायालय में याचिका दायर नहीं की है। “निष्पक्ष भाव” से याचिका दायर करने के सिद्धांत के संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा के. जयराम एवं अन्य बनाम बेंगलोर विकास प्राधिकरण एवं अन्य (2022) 12 एससीसी 815 में दिया गया निर्णय प्रासंगिक होगा और इसके प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

“10. यह सर्वविदित है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जाने वाला क्षेत्राधिकार असाधारण, न्यायसंगत और विवेकाधीन है, और यह अनिवार्य है कि रिट न्यायालय में याचिका दायर करने वाला याचिकाकर्ता निष्पक्ष होकर न्यायालय के समक्ष सभी तथ्य बिना कुछ छिपाए या दबाए प्रस्तुत करे। वादी का दायित्व है कि वह मुकदमे से संबंधित सभी तथ्यों का उल्लेख करे। यदि वह दूसरे

पक्ष पर लाभ प्राप्त करने के लिए किसी महत्वपूर्ण या प्रासंगिक सामग्री को छुपाता है, तो वह न्यायालय के साथ-साथ विपक्षी पक्षों के साथ भी धोखाधड़ी का दोषी होगा, जिसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।”

14. यहाँ यह बताना आवश्यक है कि एक ही विषय से संबंधित कई मुकदमों को रोकने के लिए और उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि विभिन्न न्यायिक मंचों के माध्यम से असंगत आदेश प्राप्त करने के खतरे को रोकने के लिए, जिसमें तथ्यों को छुपाकर, या तो चुप रहकर या झूठे बयान देने के दायित्व से बचने के लिए, पक्षों को विवाद के विषय से संबंधित सभी अधिनियम कार्यवाही और मुकदमेबाजी का विवरण देना होगा, चाहे वे अतीत के हों या वर्तमान के, जो उनके संज्ञान में हो। यदि विवाद के पक्षों के अनुसार, कोई अधिनियम कार्यवाही या अदालती मुकदमा लंबित नहीं था या नहीं है, तो उन्हें विवाद को विधि के अनुसार हल करने के लिए अपनी याचिका में अनिवार्य रूप से इसका उल्लेख करना होगा।”

11. प्रत्युत्तर शपथपत्र का निम्नलिखित भाग प्रासंगिक होगा कि याचिकाकर्ता ने निर्णय दिनांक 28.03.2014 का खुलासा न करने के लिए स्पष्टीकरण देने के बजाय, उसमें दिए गए किसी भी निष्कर्ष का हवाला दिए बिना, यह कहकर गुमराह करने का प्रयास किया कि उक्त निर्णय वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है। प्रत्युत्तर शपथपत्र का पैरा 8 नीचे उद्धृत है :-

“8. यहाँ यह बताना प्रासंगिक है कि प्रतिवादी संख्या 2 से 6 इस माननीय न्यायालय के निर्णय दिनांक 28.03.2014 के रिट ए 63695/2010 पर गलत तरीके से भरोसा कर रहे हैं, क्योंकि उक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है, क्योंकि न्यायालय ने माना था कि अध्यादेश 44 के खंड 6-ज के उपबंधों को चुनौती नहीं दी गई थी, जिसमें यह उपबंध था कि अतिथि व्याख्याता तीन वर्ष से अधिक समय तक नहीं रह सकते हैं, इसलिए वर्ष 2010 में दायर की गई रिट याचिका निष्फल हो गई थी।

माननीय न्यायालय ने आगे यह भी कहा है कि “9 अक्टूबर, 2000 के शासनादेश को दरकिनार करते हुए, राज्य ने विश्वविद्यालय के उन अध्यापकों को कार्यकारी परिषद द्वारा स्थायी नियुक्ति प्रदान करने का निर्णय लिया, जिन्हें 31 दिसंबर, 1997 को या उससे पहले अंशकालिक व्याख्याता के रूप में नियुक्त किया गया था”। खंडपीठ ने स्थायी अधिवक्ता के इस तर्क को भी अभिलिखित किया कि “स्थायी अधिवक्ता के अनुसार, 31 दिसंबर, 1997 की यह तिथि 9 अक्टूबर, 2000 के शासनादेश के संदर्भ में चुनी गई है, क्योंकि 2000 के बाद विश्वविद्यालय शासनादेश के अनुसार अंशकालिक व्याख्याता के रूप में नियुक्ति की पेशकश नहीं कर सकता है और उस तिथि तक पूर्व नियुक्तियों के लगभग 3 वर्ष की सेवा पूरी हो जाएगी, जिससे निरंतरता का कुछ आभास हो सके या उन्हें स्थायी नियुक्ति की पेशकश का अधिकार मिल सके।”

12. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उपरोक्त तथ्यों को छिपाने का प्रयास करते हुए कहा है कि याचिकाकर्ता के मामले पर अब राज्य अधिनियम की धारा 31(3)(ग) के अनुसार विचार किया जाना चाहिए, क्योंकि यह स्वीकार किया गया था कि वह 19.01.1992 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में

अंशकालिक व्याख्याता के रूप में कार्यरत थे। इसके लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार द्वारा जारी कार्यालय आदेश दिनांक 05.09.2019 और शुद्धिपत्र दिनांक 30.07.2019 का हवाला दिया है, जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता सहायक प्रोफेसर के रूप में पूर्ण वेतन/पारिश्रमिक का पात्र होगा। हालांकि, बिना किसी आधार के, कार्यकारी परिषद के समक्ष पुनः प्रस्तुत किए बिना और याचिकाकर्ता को सूचित किए बिना, कार्यालय आदेश दिनांक 05.04.2019 और शुद्धिपत्र दिनांक 30.07.2019 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार द्वारा जारी एक बाद के आदेश दिनांक 14.02.2020 द्वारा वापस ले लिया गया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कार्यकारी परिषद की 55^{वीं} बैठक के एजेंडा संख्या IV का भी उल्लेख किया है, जो दिनांक 10.04.2019 को (याचिकाकर्ता के संबंध में) आयोजित की गई थी, और यह भी बताया कि इसे अनुमोदित किया गया था और यह अभी भी अस्तित्व में है।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तीन सदस्यीय समिति की रिपोर्ट दिनांक 17.12.2018 का भी हवाला दिया है, जिसमें विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता को गठित चयन समिति के दिनांक 22.09.2007 द्वारा विभाग में 8 रिक्त पदों के विरुद्ध 'अतिथि संकाय' के पद पर चयनित किया गया था, जिसे तत्कालीन कुलपति द्वारा 25.09.2007 को विधिवत अनुमोदित किया गया था। चयन समिति में अध्यक्ष और दो अन्य सदस्य शामिल थे।

14. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता ने उपरोक्त आदेश दिनांक 14.02.2020 के विरुद्ध रिट याचिका संख्या 3177/2020 के माध्यम से इस न्यायालय में याचिका दायर की थी, जिसका निस्तारण आदेश दिनांक 28.11.2022 द्वारा किया गया था, जिसमें आक्षेपित आदेश को इस टिप्पणी के साथ रद्द कर दिया गया था कि अब नियमितीकरण का मुद्दा, यदि आवश्यक हो, तो केंद्रीय अधिनियम के अंतर्गत गठित विश्वविद्यालय के परिनियम 15(7)(iv) के अनुसार मात्र कार्यकारी परिषद द्वारा ही तय किया जाएगा। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उक्त निर्णय के निम्नलिखित भाग का उल्लेख किया है। यह ध्यान देने योग्य है कि पूर्ववर्ती मुकदमे (याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर 3 रिट याचिकाओं में पारित निर्णय दिनांक 28.03.2014) के परिणाम को उस समन्वय पीठ के संज्ञान में नहीं लाया गया था :-

“25. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, केंद्रीय अधिनियम के लागू होने की तिथि तक याचिकाकर्ता ने विश्वविद्यालय के नियमित कर्मचारी के रूप में कोई बेहतर अधिकार या दर्जा प्राप्त नहीं किया था। याचिकाकर्ता द्वारा दावा किए जा रहे अधिकारों से निपटने के लिए कार्यकारी परिषद द्वारा पारित प्रथम प्रस्ताव 08.12.2011 का है। इसने कुलपति को वर्तमान याचिकाकर्ता सहित कुछ शिक्षण संकाय के नियमितीकरण के मामलों की जांच के लिए समिति गठित करने का अधिकार दिया। वह दस्तावेज़ स्वयं स्पष्ट करता है कि याचिकाकर्ता ने उस तिथि तक नियमित शिक्षण संकाय के रूप में कोई दर्जा प्राप्त नहीं किया था। एक बार जब यह तथ्य अभिलेख के आधार पर स्पष्ट हो जाता है, तो यह कहना गलत नहीं होगा कि याचिकाकर्ता केंद्रीय अधिनियम की धारा 5(घ) के अंतर्गत स्वतः नियमितीकरण का पात्र था। इस अतिरिक्त तर्क के संबंध में कि सभी अध्यापकों

को नियमित करने के लिए कार्यकारी परिषद का एक पूर्व प्रस्ताव उपलब्ध था, कार्यकारी परिषद या समिति के प्रस्तावों (जो अब याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित मामले का आधार हैं) में इसका कोई संदर्भ नहीं है।

26. फिर भी, याचिकाकर्ता द्वारा नियमित चयन समिति द्वारा 22.09.2007 को अतिथि संकाय के रूप में नियुक्ति का दावा करने पर स्वतः नियमितीकरण का दावा खारिज हो जाता है। यह नियुक्ति याचिकाकर्ता को केंद्रीय अधिनियम लागू होने के बाद प्राप्त हुई थी। यदि याचिकाकर्ता राज्य अधिनियम के अंतर्गत पूर्व नियमितीकरण का दावा करता है, तो वह बाद में उसी विश्वविद्यालय में अतिथि संकाय के रूप में नियुक्ति का अनुरोध नहीं कर सकता था। उस पद पर नियुक्ति प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता के लिए उस तिथि से पहले उसे प्रदत्त किसी भी उच्च पद का दावा करना अब संभव नहीं है।

27. केंद्रीय अधिनियम के अंतर्गत निर्मित परिनियम 15.7(IV) के अनुसार, अस्थायी पद पर नियुक्त शिक्षण संकाय को बाद में नियमित किया जा सकता है यदि ऐसा पद स्थायी रूप से रिक्त हो जाता है या उसी पद और श्रेणी का कोई अन्य स्थायी पद उसी कैडर में उपलब्ध हो जाता है। उस स्थिति में, कार्यकारी परिषद नियमित चयन समिति से आगे परामर्श किए बिना ऐसे अध्यापक को संबंधित विभाग में स्थायी आधार पर नियुक्त कर सकती है।

28. परिनियमों के परिनियम 15.7(iv) की भाषा में महत्वपूर्ण अंतर के कारण, निरंतरता के दावे पर और विचार करने की आवश्यकता होगी। चयन समिति ने अपने प्रस्ताव दिनांक 17.12.2018 में स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि याचिकाकर्ता ने 19.1.1992 को अपनी प्रारंभिक नियुक्ति के बाद से विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में निरंतर अध्यापन कार्य किया है। समिति ने यह भी पाया कि नियुक्ति 'राज्य अधिनियम' के अंतर्गत की गई थी और उस समय चयन समिति के गठन में कोई त्रुटि नहीं थी।

29. अब मात्र यही विचारणीय प्रश्न शेष है कि क्या याचिकाकर्ता को प्रारंभ में जिस पद पर नियुक्त किया गया था, वह पद स्थायी रूप से रिक्त हो गया था और उपलब्ध था, या दर्शनशास्त्र विभाग में उसी रैंक और श्रेणी का कोई अन्य स्थायी पद उपलब्ध हुआ था। स्पष्टतः, समिति ने अपने प्रस्ताव दिनांक 17.12.2018 में इस विषय पर विचार नहीं किया है। परिणामस्वरूप, कार्यकारी परिषद ने भी इस मुद्दे पर विचार नहीं किया है।

30. तदनुसार, विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.02.2020 को रद्द किया जाता है। यदि आवश्यक हो, तो कार्यकारी परिषद द्वारा इस मामले की जांच की जानी चाहिए कि क्या वह पद जिस पर याचिकाकर्ता को वर्ष 1992 में प्रारंभ में नियुक्त किया गया था, स्थायी आधार पर रिक्त हो गया था और (वर्तमान में) उपलब्ध है, या क्या दर्शनशास्त्र विभाग में उसी वेतन और ग्रेड का कोई अन्य पद स्थायी रूप से रिक्त है जिस पर याचिकाकर्ता को केंद्रीय अधिनियम के अंतर्गत गठित विश्वविद्यालय के नियम 15.7(IV) के अनुसार नियमित किया जा सकता है। कार्यकारी परिषद द्वारा यह प्रक्रिया आज से दो माह की अवधि के भीतर पूरी की जाए।”

15. उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, 12.01.2023 को एक समिति का गठन किया गया और उसकी रिपोर्ट 23.03.2023 को आयोजित कार्यकारी परिषद की बैठक में एजेंडा संख्या 06/2013 के अंतर्गत प्रस्तुत की गई, जिसमें इसे स्वीकार कर लिया गया और यह संकल्प लिया गया कि याचिकाकर्ता किसी भी क्षमता में अध्यापन कार्य जारी नहीं रखेगा।

16. आदेश दिनांक 07.04.2023 और संकल्प को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है। संदर्भ के लिए, याचिकाकर्ता को सूचित किए गए आक्षेपित आदेश को निम्नलिखित रूप में पुनः प्रस्तुत किया गया है :-

“क्रमांक 05/आर/1185/2023 दिनांक 07 अप्रैल, 2023

सेवा में,

डॉ. रजनीश कुमार पाण्डेय,

दर्शनशास्त्र विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय।

विषय:- माननीय उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 3177/2020 में पारित आदेश दिनांक 28 नवंबर, 2022 के अनुपालन में

महोदय,

उच्च न्यायालय के दिनांक 28 नवंबर, 2023 के आदेश के अनुसरण में कार्यालय आदेश संख्या 05/आर/23/2023, दिनांक 12 जनवरी, 2023 के अंतर्गत एक समिति का गठन किया गया था। समिति की रिपोर्ट को 23 मार्च, 2023 को आयोजित कार्यकारिणी की बैठक में एजेंडा संख्या 06/73 के अंतर्गत रखा गया था, जिसमें समिति की रिपोर्ट पर उचित विचार-विमर्श के बाद, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आपने कभी भी नियमित चयन समिति का सामना नहीं किया है और इसलिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 15(7) (iv) सहित किसी भी उपबंध के अंतर्गत आपके नियमितीकरण के दावे पर विचार करना संभव नहीं है , कार्यकारिणी ने निम्नानुसार संकल्प लिया है :-

संकल्प संख्या 06/73:

डॉ. रजनीश कुमार पाण्डेय के मामले में रिट याचिका संख्या 3177/2020 पर उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 28.11.2022 के अनुसरण में, कार्यालय आदेश संख्या 05/आर/23/2023 दिनांक 12 जनवरी, 2023 के माध्यम से एक समिति का गठन किया गया, जिसमें माननीय न्यायमूर्ति शिशिर कुमार (पूर्व न्यायाधीश, इलाहाबाद उच्च न्यायालय) (समिति के अध्यक्ष), प्रो. पंकज कुमार, डीन कॉलेज विकास (सदस्य) और डॉ. हरिबंश सिंह, सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग (संयोजक) शामिल थे।

समिति की रिपोर्ट कार्यकारी परिषद के सचिव द्वारा कार्यकारी परिषद के सदस्य के समक्ष पढ़ी गई। रिपोर्ट के आधार पर यह बात सामने आई है कि डॉ. रजनीश कुमार पाण्डेय के नियमितीकरण के दावे को उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम 1973 (अर्थात् पुराना अधिनियम) और नए अधिनियम की धारा 5(घ), धारा 45(2) और परिनियम 15(7)(iv) के लागू होने के कारण अस्वीकार कर दिया गया है।

जहां तक डॉ. रजनीश कुमार पाण्डेय को भुगतान का प्रश्न है, यह स्पष्ट है कि उन्हें मात्र अतिथि संकाय का दर्जा प्राप्त है, इसलिए उन्हें भुगतान यूजीसी के उन मानदंडों के अनुसार किया जाएगा जो अतिथि संकाय को

भुगतान के लिए लागू होते हैं, उस अवधि के लिए जब से तत्कालीन कुलपति द्वारा उनका भुगतान रोक दिया गया था, तब से लेकर आज तक।

विस्तृत चर्चा के पश्चात, कार्यकारी परिषद ने सर्वसम्मति से समिति की रिपोर्ट को स्वीकृति दे दी और यह भी संकल्प लिया कि डॉ. रजनीश कुमार पाण्डेय अब इलाहाबाद विश्वविद्यालय में किसी भी पद पर अध्यापन कार्य नहीं करेंगे।

यह आपकी जानकारी के लिए है।

सादर,

एस डी.

07.04.2023

रजिस्ट्रार”

1. यह तर्क कि याचिकाकर्ता पर पुराने अधिनियम के अंतर्गत अभी भी विचार किया जा सकता है, पहले ही खारिज किया जा चुका है क्योंकि उसका मामला समन्वय पीठ द्वारा निर्णय दिनांक 28.11.2022 में की गई टिप्पणी से बेहतर नहीं हो सकता है कि अब उस पर मात्र अधिनियम की धारा 15.7 (iv) के अंतर्गत स्थायी नियुक्ति के लिए विचार किया जा सकता है। संदर्भ के लिए, उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 27 नीचे उद्धृत किया गया है:-

“27. केंद्रीय अधिनियम के अंतर्गत निर्मित परिनियम 15.7(IV) के अनुसार, अस्थायी पद पर नियुक्त शिक्षण संकाय को बाद में नियमित किया जा सकता है यदि ऐसा पद स्थायी रूप से रिक्त हो जाता है या उसी पद और श्रेणी का कोई अन्य स्थायी पद उसी केंद्र में उपलब्ध हो जाता है। उस स्थिति में, कार्यकारी परिषद नियमित चयन समिति से आगे परामर्श किए बिना ऐसे अध्यापक को संबंधित विभाग में स्थायी आधार पर नियुक्त कर सकती है।

28. परिनियमों के परिनियम 15.7(iv) की भाषा में महत्वपूर्ण अंतर के कारण, निरंतरता के दावे पर और विचार करने की आवश्यकता होगी। चयन समिति ने अपने प्रस्ताव दिनांक 17.12.2018 में स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि याचिकाकर्ता ने 19.1.1992 को अपनी प्रारंभिक नियुक्ति के बाद से विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में निरंतर अध्यापन कार्य किया है। समिति ने यह भी पाया कि नियुक्ति 'राज्य अधिनियम' के अंतर्गत की गई थी और उस समय चयन समिति के गठन में कोई त्रुटि नहीं थी।”

18. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी उल्लेख किया है कि इससे पहले, तीन सदस्यीय समिति का गठन किया गया था और एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी जिस पर कार्यकारी परिषद ने अपनी बैठक दिनांक 17.12.2018 में विचार किया था, जिसमें चयन समिति की बैठक दिनांक 22.09.2007 के कार्यवृत्त में उल्लेख किया गया था कि याचिकाकर्ता विभाग में 8 रिक्तियों के विरुद्ध चयनित उम्मीदवारों में से एक था और याचिकाकर्ता की नियुक्ति के लिए सिफारिश की गई थी और इस न्यायालय के निर्णय दिनांक 28.11.2022

के बाद, उक्त रिपोर्ट को बरकरार रखा गया था और याचिकाकर्ता चयन समिति के समक्ष उपस्थित हो चुका है, इसलिए, आक्षेपित आदेश में दिए गए कारण अधिनियम रूप से अस्थिर हैं।

19. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अधिनियम 2005 की धारा 45 का हवाला दिया है, जिसमें 'संक्रमणकालीन उपबंध' दिए गए हैं, और इसके खंड-2 का उल्लेख करते हुए कहा है कि दी गई परिस्थितियों में, चूंकि अध्यादेश नहीं बनाए गए हैं, इसलिए याचिकाकर्ता के मामले पर अभी भी कानून के उपबंधों के अनुसार विचार किया जा सकता है और अध्यादेश 'अधिनियम 2005 / केंद्रीय अधिनियम' के प्रारंभ होने से ठीक पहले उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के उपबंधों के अंतर्गत बनाया गया था। संदर्भ के लिए, धारा 45 का उपखंड 2 नीचे उद्धृत किया गया है:

"45. संक्रमणकालीन उपबंध.—

(1)

(2) उस समय तक जब तक कि धारा 29 की उपधारा (2) के अधीन प्रथम अध्यादेश नहीं बनाए जाते हैं ऐसे मामलों की बाबत जो इस अधिनियम और परिनियम के अधीन अध्यादेश द्वारा उपबंधित किए जाने हैं, इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (1973 का राष्ट्रपति का अधिनियम 10) के उपबंधों के अधीन बनाए गए परिनियमों और अध्यादेशों के सुसंगत उपबंध वहां तक लागू होंगे जहां तक वे इस अधिनियम और परिनियमों के उपबंधों से असंगत नहीं हैं।

20. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने पी. के. मलिक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2005 (6) एडब्ल्यूसी 5945 (एफबी); पंकज कुमार बनाम इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं अन्य, (1993) 1 यूपीएलबीईसी 544; मानश्याम वर्मा एवं अन्य बनाम इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं अन्य, रिट ए संख्या 50303 / 2015 दिनांक 18.12.2017 को निर्णय लिया गया; डॉ. राजेंद्र बहादुर सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (6) एडीजे 602 (एलबी); डॉ. संगीता श्रीवास्तव बनाम इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं अन्य, 2002 (3) एडब्ल्यूसी 2088 और स्वतंत्र बाला शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1994 (4) एडब्ल्यूसी 3142 में इस न्यायालय के निर्णयों पर भी भरोसा जताया है।

21. इसके विपरीत, प्रतिवादी 2 से 6 के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि:-

(क) कार्यकारी परिषद की 53^{वाँ} बैठक दिनांक 20.12.2018 को तीन सदस्यीय समिति की रिपोर्ट को स्वीकृति नहीं दी गई, बल्कि अध्यक्ष को अधिनियम जांच कराने के लिए अधिकृत किया गया क्योंकि उन्होंने उक्त बैठक के एजेंडा संख्या 19/53 और उसके प्रस्ताव का हवाला दिया, जो नीचे उद्धृत है:

कार्यकारी परिषद ने 08.12.2011 को आयोजित अपनी बैठक में, "अध्यक्ष की अनुमति से कोई अन्य मद" के अंतर्गत निम्नलिखित मद पर विचार करते हुए, निम्नलिखित मुद्दे उठाए और निम्नानुसार संकल्प लिया गया: निम्नलिखित मुद्दे उभरे और उन पर निर्णय लिया गया:-

(i) कुछ सदस्यों ने कार्यकारी परिषद संकल्प संख्या 03/15 दिनांक 20.06.2010 और संकल्प संख्या 01/16 दिनांक 07.08.2010 के अनुसरण में प्राचीन इतिहास विभाग के डॉ. माणिक चंद्र और अन्य अतिथि संकाय/

अंशकालिक व्याख्याताओं के प्रत्यावेदन पर की गई कार्रवाई के संबंध में मुद्दा उठाया। यह संकल्प लिया गया कि कुलपति को मामलों की जांच के लिए एक समिति गठित करने का अधिकार दिया जाए। कार्यकारी परिषद के उपरोक्त निर्णय के अनुसरण में, आपसे अनुरोध है कि अतिथि संकाय/अंशकालिक व्याख्याताओं के संबंध में रजिस्ट्रार को तत्काल एक सूचना भेजें और कृपया इसे माननीय कुलपति को एक समिति गठित करने के लिए प्रस्तुत करें।”

(बी) हालांकि इस बात से अस्वीकार नहीं किया गया कि 05.04.2019 को एक बाद का कार्यालय आदेश जारी किया गया था, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की अंशकालिक व्याख्याता के रूप में सेवा की निरंतरता को स्वीकृति दी गई थी और इसे कार्यकारी परिषद की 55^{वीं} बैठक में अनुमोदित किया गया था।

(ग) विद्वान अधिवक्ता ने प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 30, 42 और 49 का भी हवाला दिया है, जो नीचे उद्धृत हैं:-

“30. याचिका के पैराग्राफ 30 की सामग्री गलत है। यह निवेदन किया जाता है कि परिनियम 15(7)(IV) पर भरोसा करना स्पष्ट रूप से अनुचित है। परिनियम 15 चयन समिति और उसकी संरचना से संबंधित है। इसके अतिरिक्त, परिनियम 15(7)(IV) के लागू होने के लिए एक नियमित चयन समिति की सिफारिश आवश्यक है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को अतिथि संकाय के लिए चयन समिति के अतिरिक्त किसी भी नियमित चयन समिति का सामना नहीं करना पड़ा है, और किसी भी नियमित चयन समिति द्वारा उसके नाम की सिफारिश नहीं की गई है।

राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 31 (3) (ग) के संबंध में न्यायालय ने रिट ए संख्या 3177 / 2020 में स्पष्ट रूप से कहा कि याचिकाकर्ता ने 2007 में अतिथि संकाय के रूप में नियुक्ति प्राप्त करने के बाद राज्य अधिनियम के अंतर्गत उपलब्ध उच्च दर्जे के किसी भी दावे को खो दिया था।

इसी प्रकार, अधिनियम 2005 की धारा 46 (2) (ख) भी लागू नहीं होती, क्योंकि याचिकाकर्ता के मामले में इस धारा की आवश्यक शर्तें पूरी नहीं होतीं। नियमित चयन समिति द्वारा कभी भी उनके नाम की सिफारिश नहीं की गई और न ही किसी चयन समिति की सिफारिश के बाद याचिकाकर्ता को विश्वविद्यालय में अंशकालिक व्याख्याता के रूप में नियुक्त किया गया।

यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि समिति चयन समिति नहीं थी। तीन सदस्यीय समिति ने कभी भी चयन समिति के रूप में कार्य नहीं किया क्योंकि यह परिनियम 15 की आवश्यकता को पूरा नहीं करती थी।

42. याचिका के पैराग्राफ 42 में उल्लिखित बातें गलत हैं। यह निवेदन किया जाता है कि याचिकाकर्ता का किसी भी समय चयन नहीं हुआ था। याचिकाकर्ता प्रारंभ में 1997 तक जेआरएफ स्कॉलर थे और बाद में 2007 में अतिथि संकाय के रूप में नियुक्त हुए। इन दो अवसरों के अतिरिक्त, याचिकाकर्ता को विश्वविद्यालय द्वारा किसी भी अन्य पद पर कभी नियुक्त नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त, आदेश दिनांक 05.04.2019 में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि निरंतरता/नियमितीकरण याचिकाकर्ता के विभाग की नियमित चयन समिति के समक्ष प्रस्तुत होने पर निर्भर करेगा। याचिकाकर्ता को अभी तक ऐसी चयन समिति के समक्ष प्रस्तुत होना बाकी है। चयन प्रक्रिया में कोई अनियमितता नहीं है, बल्कि यह तथ्य है कि याचिकाकर्ता के लिए चयन प्रक्रिया कभी शुरू ही नहीं की गई। प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता के अधिकार को कभी स्वीकार नहीं किया है।

49. यह निवेदन किया जाता है कि रिट याचिका के पैराग्राफ 50 की सामग्री गलत है। यह निवेदन किया जाता है कि याचिकाकर्ता के नियमितीकरण के दावे पर रिट याचिका संख्या 64494/2008 में दिए गए निर्णय के आलोक में विचार नहीं किया जा सकता है, जिसमें न्यायालय ने यह माना था कि कुलपति या कार्यकारी परिषद को याचिकाकर्ता द्वारा दावा की गई नियमितीकरण समिति गठित करने का कोई अधिनियम अधिकार नहीं था।

इसके अतिरिक्त, राज्य अधिनियम के आधार पर किसी भी दावे को न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 3177/2020 में खारिज कर दिया है। न्यायालय ने मात्र परिनियम 15.7 (IV) की प्रयोज्यता के प्रश्न का ही निस्तारण करने का प्रयास किया, जो याचिकाकर्ता के मामले में स्पष्ट रूप से लागू नहीं होता है। परिनियम 15.7 (IV) के लागू होने के लिए नियमित चयन समिति की सिफारिश आवश्यक है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को 2007 में अतिथि संकाय के लिए गठित चयन समिति के अतिरिक्त किसी भी नियमित चयन समिति का सामना नहीं करना पड़ा है, और धारा 15(2) के अंतर्गत गठित किसी भी नियमित चयन समिति द्वारा उनके नाम की सिफारिश नहीं की गई है।

न्यायालय ने अपने आदेश में स्पष्ट किया कि नियमितीकरण मात्र परिनियम 15(7)(IV) के आधार पर ही देखा जा सकता है और इसी आधार पर विश्वविद्यालय को दो महीने के भीतर प्रक्रिया पूरी करने का निर्देश दिया। इस प्रकार, विश्वविद्यालय के लिए मात्र परिनियम 15(7)(IV) की प्रयोज्यता का निर्धारण करना शेष था, जो एक समिति के गठन द्वारा किया गया। समिति ने इस मुद्दे की नए सिरे से जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि याचिकाकर्ता के मामले में परिनियम 15(7)(IV) लागू नहीं होती है।

(घ) विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया है कि कार्यालय आदेश दिनांक 05.04.2019 में चयन समिति का उल्लेख था, हालांकि यह 'अधिनियम 2005' और कानून के अनुरूप नहीं था। अध्यादेश के अभाव में, अधिनियम 2005 और कानून के उपबंधों का पालन करना आवश्यक था। अधिनियम 2005 की धारा 45 में भी ऐसा कोई उपबंध नहीं है जो अधिनियम 2005 और कानून के अनुरूप हो और इस प्रकार, बैठक दिनांक 22.09.2007 के कार्यवृत्त में उल्लिखित चयन समिति, व्याख्याता की नियुक्ति के लिए चयन समिति के संबंध में कानून के पैरा 15.2 के अनुरूप नहीं थी।

22. मैंने दोनों पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की बात सुनी और अभिलेख का अध्ययन किया।

23. उपरोक्त संदर्भित प्रतिपक्षी प्रस्तुतियों और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से, विचारणीय एकमात्र मुद्दा यह है कि यद्यपि याचिकाकर्ता इस न्यायालय के समक्ष स्वच्छ नीयत से प्रस्तुत नहीं हुआ है, फिर भी क्या याचिकाकर्ता को कानून के पैरा 15(7)(iv) के अनुसार नियमित किया जा सकता है। संदर्भ के लिए, कानून के पैरा 15(2) (व्याख्याता के लिए चयन समिति) और 15(7)(iv) नीचे उद्धृत हैं:

“15. चयन समितियाँ :-

(1).....

(2) नीचे दी गई तालिका के स्तंभ 1 में निर्दिष्ट पदों पर नियुक्ति के लिए चयन समिति में कुलपति, आगंतुक का एक नामित व्यक्ति और उक्त तालिका के स्तंभ 2 में संबंधित प्रविष्टि में निर्दिष्ट व्यक्ति शामिल होंगे:

व्याख्याता :-

(i) संकाय के डीन/विभागाध्यक्ष।

(ii) संबंधित विषय/क्षेत्र के तीन विशेषज्ञ, जिनकी नियुक्ति कार्यकारी परिषद द्वारा अकादमिक परिषद द्वारा अनुशंसित पैनल में से की जाएगी।

(3).....

(4).....

(5).....

(6).....

(7) अस्थायी पदों पर नियुक्तियाँ नीचे दिए गए तरीके से की जाएँगी:

(i).....

(ii).....

(iii).....

(iv) जहाँ किसी अध्यापक को किसी विभाग में नियमित चयन समिति की सिफारिश पर अस्थायी पद पर नियुक्त किया गया हो, और बाद में वह पद स्थायी रूप से रिक्त हो जाए या उसी विभाग में समान रैंक और ग्रेड का कोई अन्य स्थायी पद उपलब्ध हो जाए, तो कार्यकारी परिषद ऐसे अध्यापक को नियमित चयन समिति के समक्ष पुनः परामर्श किए बिना उस विभाग में स्थायी आधार पर नियुक्त कर सकती है।”

24. उपर्युक्त खंड में यह उपबंध है कि याचिकाकर्ता को स्थायी आधार पर नियुक्ति के लिए तभी विचार किया जा सकता है, जब याचिकाकर्ता (अध्यापक) को नियमित चयन समिति की सिफारिश पर नियुक्त किया गया हो, और मात्र तभी उसे स्थायी आधार पर अध्यापक की नियुक्ति के लिए नियमित चयन समिति के पास नहीं भेजा जा सकता है।

25. अब न्यायालय को यह जांच करनी होगी कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर विचार करने के लिए दिनांक 22.09.2007 को गठित चयन समिति विधिवत गठित की गई थी या नहीं।

26. इस संदर्भ में, विश्वविद्यालय के अधिनियम की खंड 15 (2) प्रासंगिक होगी, जिसमें व्याख्याता के पद के लिए चयन समिति के गठन का भी उल्लेख किया गया था कि इसमें संकाय के डीन, विभागाध्यक्ष और संबंधित विषय/क्षेत्र के तीन विशेषज्ञ शामिल होने चाहिए, जिन्हें कार्यकारी परिषद द्वारा अकादमिक परिषद द्वारा अनुशंसित पैनल में से नियुक्त किया जाना था, हालांकि, उपरोक्त संदर्भित चयन समिति का गठन उपरोक्त संदर्भित चयन समिति के गठन के विवरण के अनुसार नहीं था।

27. उपर्युक्त दस्तावेजों में न्यायालय अधिनियम, 2005 की धारा 45 के प्रभाव पर भी ध्यान देता है और इसके लिए न्यायालय अधिनियम, 2005 की धारा 29 का उल्लेख करता है, जो अध्यादेश बनाने के लिए अधिकृत है।

इस स्तर पर यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि अधिनियम, 2005 की धारा 29(2) के अंतर्गत विश्वविद्यालय द्वारा निर्मित अध्यादेश 09.02.2008 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया था।

28. व्याख्याता के पद पर नियुक्ति के लिए चयन समिति का गठन विधि के खंड-15(2) के अनुसार होगा और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, दिनांक 17.12.2018 को गठित '3 सदस्यीय समिति' में उल्लिखित समिति का गठन शर्त को पूरा नहीं करता है, इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि याचिकाकर्ता का विधिवत चयन हुआ था और अतः, परिनियम 15.7(iv) में निर्धारित शर्त, कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति नियमित चयन समिति की सिफारिश पर नहीं हुई थी, इसलिए ऐसी कोई छूट नहीं दी जा सकती जिसके अंतर्गत ऐसे अध्यापक को नियमित चयन समिति के आगे संदर्भ के बिना स्थायी आधार पर नियुक्त किया जा सके।

29 इस संबंध में, अधिनियम 2005 की धारा 45(2) के उपबंधों पर ध्यान दिया जाता है कि चयन समिति के मुद्दे पर अध्यादेश बनने तक, पूर्ववर्ती अधिनियम 1973 और उसके अधिनियम तथा अध्यादेश के कोई भी उपबंध लागू नहीं होंगे, यदि वे अधिनियम 2005 और उसके अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, दिनांक 17.12.2018 को गठित 3 सदस्यीय चयन समिति की संरचना, व्याख्याता के चयन के उद्देश्य से अधिनियम के पैरा 15(2) में दी गई चयन समिति की संरचना के अनुरूप थी, इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि स्थायी नियुक्ति के लिए विचारार्थ याचिकाकर्ता को चयन समिति का सामना करने से छूट देने हेतु परिनियम 15(7)(iv) के अंतर्गत निर्धारित सभी शर्तें पूरी होती हैं। दिनांक 17.12.2018 की चयन समिति उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 31 और उसकी उपधारा के अनुसार गठित नहीं की गई है, इसलिए आक्षेपित आदेश में दिए गए कारण का अधिनियम और तथ्यात्मक आधार है, अतः हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं है।

30. उपरोक्त परिस्थितियों में, न्यायालय याचिकाकर्ता के आचरण पर भी ध्यान देता है कि वह इस न्यायालय के समक्ष स्वच्छ नीयत से उपस्थित नहीं हुआ है और चूंकि याचिकाकर्ता नियमित चयन समिति के आगे संदर्भ के बिना स्थायी आधार पर नियुक्ति के लिए खंड 15.7(iv) के अनुसार योग्य नहीं था और चूंकि इस खंड की आवश्यक शर्तें उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए स्थायी आधार पर नियुक्ति के लिए उसके दावे पर विचार नहीं किया जा सकता है।

31. उपरोक्त के दृष्टिगत, न्यायालय का यह मत है कि याचिकाकर्ता स्वच्छ नीयत से इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ है, अतः इस रिट याचिका को लागत सहित खारिज किया जा सकता है, हालांकि न्याय के हित में, लागत माफ किया जाता है और रिट याचिका में गुण-दोष की कमी के कारण इसे तदनुसार निरस्त किया जाता है

(2025) 3 ILRA 570

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति, अब्दुल मुईन

रिट ए संख्या 7393 / 2000

सरवर हुसैन

.....याची

बनाम

प्रबंध निदेशक उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड, लखनऊ

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री के.सी. जौहरी, श्री मनीष जौहरी, श्री मोहित जौहरी, श्री सुबोध कुमार वर्मा, श्री यू.पी. मिश्रा, श्री वी.पी. मिश्रा

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

श्री मोहम्मद मंसूर अहमद, श्री शिशिर जैन

ए. सेवा विधि - अनुशासनात्मक कार्यवाही - अनुपातहीन दंड - भारत का संविधान, अनुच्छेद 14 - सह-दोषियों के बीच भेदभाव - ऐसे मामलों में जहां एक ही घटना में कई व्यक्ति शामिल हों, दंड लगाते समय सह-दोषियों के बीच समानता बनाए रखना आवश्यक है; किसी एक दोषी पर अनुपातहीन दंड लगाना जबकि अन्य को बख्श दिया जाए या हल्का दंड दिया जाए, अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है और अनुशासनात्मक कार्यवाही को अमान्य कर देता है - अनुशासनात्मक प्राधिकारी अनुपातहीन दंड नहीं लगा सकता, अर्थात् गंभीर अपराधों के लिए कम दंड और कम गंभीर अपराधों के लिए कठोर दंड नहीं दे सकता (पैरा 33, 34)

बी. सेवा विधि - अनुशासनात्मक कार्यवाही - नैसर्गिक न्याय - कारण बताओ नोटिस के उत्तर पर विचार न करना - बर्खास्तगी आदेश अमान्य - सेवा न्यायशास्त्र का यह एक स्थापित सिद्धांत है कि जब कोई दोषी कर्मचारी जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर जारी किए गए कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत करता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे जवाब पर विचार करे और यदि उठाए गए तर्क अस्वीकृत किए जा रहे हैं तो उसके कारण दर्ज करे। वर्तमान मामले में, यद्यपि याचिकाकर्ता ने 25.04.2004 को जांच रिपोर्ट और प्रक्रिया में विसंगतियों को इंगित करते हुए विस्तृत जवाब प्रस्तुत किया, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने मात्र जवाब की प्राप्ति को नोट किया लेकिन उस पर विचार करने में विफल रहा, जिससे बर्खास्तगी आदेश विधि की दृष्टि से अस्थिर हो गया। कर्मचारी के जवाब पर विचार न करना उचित अवसर से वंचित करना है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। बर्खास्तगी आदेश रद्द। (पैरा 35, 36)

सी. सेवा विधि - भारत का संविधान, अनुच्छेद 226 - बर्खास्तगी आदेश रद्द - याचिकाकर्ता की मृत्यु के कारण पुनर्विचार के लिए मामला वापस भेजना उचित नहीं - उच्च न्यायालय की सजा में संशोधन करने की शक्ति - सजा का प्रतिस्थापन - असाधारण और दुर्लभ मामलों में, उच्च न्यायालय स्वयं ठोस कारणों के साथ उचित सजा लगा सकता है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता की रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई और उसके विधिक उत्तराधिकारियों ने उसकी जगह ली; इसलिए, न्यायालय ने मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेजना उचित नहीं पाया। संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए और उसी घटना में शामिल अन्य व्यक्तियों को दी गई सजा को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने याचिकाकर्ता पर एक वेतन वृद्धि को स्थायी रूप से रोक देने और एक निंदा की सजा लगाई। रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई; आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश रद्द किया गया; और याचिकाकर्ता पर प्रतिस्थापित सजा लगाई गई। (पैरा 39, 40, 42)

अनुमति दी गई। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मुईन द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शिशिर जैन को सुना।

2. वर्तमान याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता, जो अब दिवंगत है और जिसके स्थान पर उसके विधिक उत्तराधिकारियों ने स्थान लिया है, ने प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.09.2000 को चुनौती दी है, जिसकी एक प्रति याचिका के संलग्नक-16 में संलग्न है।

आगे की प्रार्थना यह है कि याचिकाकर्ता को निर्वाह भत्ता का भुगतान किया जाए।

3. चूंकि याचिकाकर्ता सरवर हुसैन का निधन हो चुका है, इसलिए सुविधा के लिए सरवर हुसैन को ही याचिकाकर्ता के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

4. आदेश दिनांक 16.09.2000 के माध्यम से याचिकाकर्ता, जो अब दिवंगत हैं, को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है।

5. मामले के तथ्य एक संकीर्ण दायरे में घूमते हैं क्योंकि याचिकाकर्ता स्टोर कीपर के रूप में काम कर रहा था जब उसे आरोप पत्र दिनांक 20.07.1999 जारी किया गया था, जिसकी एक प्रति याचिका के संलग्नक-8 में है।

6. आरोपपत्र में लगाए गए आरोप यह थे कि सीतापुर स्थित ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स में निगम के बचत खाते से चेक संख्या 482371 के माध्यम से 56,000/- रुपये निकाले गए। चेक एस.पी. सिंह नामक एक अज्ञात व्यक्ति के नाम पर जारी किया गया था, जबकि उसे कोई राशि देय नहीं थी। प्रारंभिक जांच में यह पता चला कि याचिकाकर्ता ने चेक चुराया था और उसके बाद श्री पी.के. गर्ग और श्री अतुल मेहरोत्रा के हस्ताक्षर किए थे और चेक प्रस्तुत किए जाने पर उक्त राशि निकाल ली गई थी।

7. याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समर्थन में, प्रतिवादियों ने प्रारंभिक जांच रिपोर्ट, हस्तलेख विशेषज्ञ की रिपोर्ट और यूनिट के लेखा दस्तावेजों को उसके विरुद्ध पढ़े जाने वाले दस्तावेजों के रूप में प्रस्तुत किया था।

8. याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसके जवाब में उसने 25.04.2000 को अपना जवाब प्रस्तुत किया, जिसकी एक प्रति याचिका के संलग्नक-15 में है।

9. अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आक्षेपित आदेश दिनांक 16.09.2000 के माध्यम से जांच रिपोर्ट पर विचार करने के बाद याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया और इसलिए यह याचिका दायर की गई है।

10. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा सजा आदेश को चुनौती देते समय उठाए गए आधार और पूरक शपथपत्र के आधार पर याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए विधिक आधार निम्नलिखित हैं:

(क) आक्षेपित निष्कासन आदेश दिनांक 16.09.2000 के अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि कारण बताओ नोटिस दिनांक 16.02.2000 के जवाब में याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए किसी भी आधार पर आक्षेपित आदेश पारित करते समय विचार नहीं किया गया है।

(ख) इस पूरे घटनाक्रम में शामिल व्यक्तियों को दी गई सजा में असमानता।

11. इस आधार को विस्तार से समझाते हुए, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रारंभिक जांच रिपोर्ट दिनांक 07.11.1998, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के संलग्नक-5 में संलग्न है, तीन अधिकारियों की मिलीभगत को दर्शाती है: श्री पी.के. गर्ग, जो परियोजना प्रबंधक थे और जिन्होंने मुख्यालय की अनुमति के बिना संबंधित बैंक खाता (जो एक बचत बैंक खाता था) खोला था; श्री बी.बी.एल. गुप्ता, जो सहायक लेखाकार थे और चेक बुक एवं चेक जारी करने के रजिस्टर के प्रभारी भी थे, जिन्हें कार्यालय सहायक श्री मोहम्मद यूनूस ने चेक संख्या 482371 (अर्थात् पूरे मामले में शामिल चेक) के गुम होने की सूचना दी थी, लेकिन श्री गुप्ता ने उक्त रजिस्टर में कोई पृष्ठांकन नहीं किया था; और श्री मोहम्मद यूनूस, जो कार्यालय सहायक थे और जिन्होंने श्री बी.बी.एल. गुप्ता को चेक के गुम होने की सूचना दी थी, जिसके बारे में प्रारंभिक जांच रिपोर्ट में ही यह देखा गया कि श्री बी.बी.एल. गुप्ता द्वारा दिए गए बयान सही प्रतीत नहीं होते हैं और उन्होंने अपनी गलतियों को छिपाने का प्रयास किया है।

12. यह दावा किया गया है कि उपर्युक्त तीनों व्यक्ति उस पूरी घटना में सक्रिय रूप से शामिल थे जिसके परिणामस्वरूप 56,000/- रुपये की राशि निकाली गई थी।

13. प्रस्तुति यह है कि जाहिर तौर पर प्रतिवादी निगम के लिए कोई बचत बैंक खाता नहीं खोला जा सकता था और यदि परियोजना प्रबंधक श्री पी.के. गर्ग ने उक्त बचत बैंक खाता खोला था, और यह स्वीकार किया जाता है कि यह मुख्यालय से किसी भी अनुमोदन के बिना खोला गया था, जैसा कि प्रारंभिक जांच रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से दर्ज है, तो यह पूरी घटना में 56,000/- रुपये की राशि निकालने का पहला कृत्य प्रतीत होता है, जिसमें सहायक लेखाकार श्री बी.बी.एल. गुप्ता और कार्यालय सहायक श्री मोहम्मद यूनुस की सक्रिय मिलीभगत थी। लेकिन मात्र याचिकाकर्ता को ही सेवा से बर्खास्तगी की कड़ी सजा दी गई है, जबकि श्री बी.बी.एल. गुप्ता को एक वेतन वृद्धि स्थायी रूप से रोक कर और निंदा की सजा दी गई है, जबकि श्री पी.के. गर्ग के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

14. यह भी तर्क दिया गया है कि प्रारंभ में श्री मोहम्मद यूनुस को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, लेकिन श्री मोहम्मद यूनुस द्वारा *रिट याचिका संख्या 6544 (एसएस) 2000 (मोहम्मद यूनुस खान बनाम उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड)*, दायर करके बर्खास्तगी आदेश को चुनौती देने पर, इस न्यायालय ने उक्त आदेश दिनांक 04.09.2012 को रद्द कर दिया और मामले को नियुक्ति प्राधिकारी को कम सजा पर विचार करने के लिए वापस भेज दिया, जिसके परिणामस्वरूप मोहम्मद यूनुस पर एक वेतन वृद्धि को स्थायी रूप से रोक देने का दंड लगाया गया है।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के *राजेंद्र यादव बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य : (2013) 3 एससीसी 73* और *लखनऊ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एवं अन्य बनाम राजेंद्र सिंह : (2013) 12 एससीसी 372* के मामलों में दिए गए निर्णयों पर भरोसा करते हुए यह तर्क दिया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सजा में समानता होनी चाहिए क्योंकि समान परिस्थितियों वाले सभी व्यक्तियों को समान रूप से दंडित किया जाना चाहिए और सजा में कोई भेदभाव नहीं हो सकता है।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एक अन्य आधार यह है कि इस मामले में जांच की कोई तिथि, समय या स्थान तय नहीं किया गया है, जिससे पूरी जांच कार्यवाही के साथ-साथ बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश भी अमान्य हो जाता है।

17. दूसरी ओर, प्रतिवादी निगम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शिशिर जैन ने प्रति-शपथपत्र में दिए गए कथनों के आधार पर तर्क दिया है कि इस पूरे मामले में याचिकाकर्ता की सक्रिय भूमिका स्पष्ट रूप से सामने आई है, जैसा कि हस्तलेख विशेषज्ञ की रिपोर्ट से स्पष्ट है। रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि जिस चेक से 56,000/- रुपये की राशि निकाली गई थी, उस पर याचिकाकर्ता की हस्तलेख और जाली हस्ताक्षर थे। इस प्रकार, श्री पी.के. गर्ग, बी.बी.एल. यादव और श्री मोहम्मद यूनुस जैसे अन्य व्यक्तियों के साथ उनकी तुलना

नहीं की जा सकती, जिनकी भूमिका प्रारंभिक जांच रिपोर्ट में ही स्पष्ट रूप से बताई गई है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि चूंकि याचिकाकर्ता स्वयं मुख्य दोषी था, इसलिए उसे दी गई सजा, अर्थात् बर्खास्तगी, उचित है और चूंकि अन्य व्यक्तियों पर लगाए गए आरोप अलग थे, इसलिए तुलना का कोई अवसर नहीं है। हालांकि, श्री जैन ने श्री बी.बी.एल. गुप्ता और श्री मोहम्मद यूनुस को दी गई सजाओं और श्री पी.के. गर्ग के विरुद्ध कोई कार्रवाई न किए जाने पर आपत्ति नहीं जताई।

18. बर्खास्तगी आदेश में याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार न करने के संबंध में, श्री शिशिर जैन का तर्क है कि याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी-निगम द्वारा जारी किए गए कारण बताओ नोटिस के जवाब में कुछ भी नया नहीं बताया था और इसलिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा सरवर हुसैन द्वारा दिए गए जवाब पर विचार न करने में कोई त्रुटि नहीं हुई थी।

19. श्री जैन का यह भी तर्क है कि जांच रिपोर्ट के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई के बार-बार अवसर दिए गए थे, लेकिन याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि वह किसी न किसी बहाने से उक्त तिथियों पर उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए जांच अधिकारी द्वारा जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने में कोई त्रुटि नहीं हुई है।

20. निर्वाह भत्ते के संबंध में, प्रतिवादी-निगम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शिशिर जैन ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता को निलंबित किए जाने के बाद, उसे निर्वाह भत्ता प्राप्त करने के लिए किसी अन्य व्यवसाय या पेशे में संलग्न न होने का प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक था, लेकिन वह ऐसा करने में विफल रहा और इसलिए उसे निर्वाह भत्ता का भुगतान नहीं किया गया।

21. मैंने विरोध करने वाले पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की बात सुनी और अभिलेख का परीक्षण किया।

22. याचिकाकर्ता जब स्टोर कीपर के रूप में कार्यरत था, तब निगम के ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स में स्थित बचत खाते से चेक संख्या 482371 के माध्यम से 56,000/- रुपये निकाले गए। प्रारंभिक जांच में यह पता चला कि याचिकाकर्ता ने चेक चुराया था और उसके बाद उस पर श्री पी.के. गर्ग और श्री अतुल मेहरोत्रा के हस्ताक्षर किए थे। बैंक में चेक प्रस्तुत किए जाने पर उक्त राशि निकाल ली गई थी।

23. चेक पर हस्तलेख और हस्ताक्षर को प्रतिवादियों द्वारा हस्तलेख विशेषज्ञ की रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता के रूप में विधिवत निर्धारित किया गया था।

24. एक प्रारंभिक जांच की गई, जिसकी रिपोर्ट दिनांक 07.11.1998 को तैयार की गई।

25. रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि परियोजना प्रबंधक श्री पी.के. गर्ग ने मुख्यालय की अनुमति के बिना संबंधित बैंक खाता खोला था। संयोगवश, जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह एक बचत खाता था और जाहिर है कि किसी निगम के लिए बचत खाता नहीं खोला जा सकता। सहायक लेखाकार श्री बी.बी.एल. गुप्ता, जो चेक बुक और चेक जारी करने के रजिस्टर के प्रभारी भी थे, को कार्यालय सहायक श्री मोहम्मद यूनुस ने चेक संख्या 482371 अर्थात् पूरे मामले से संबंधित चेक के गुम होने की सूचना दी थी, लेकिन श्री गुप्ता ने रजिस्टर में कोई पृष्ठांकन नहीं किया था। उन्होंने श्री मोहम्मद यूनुस द्वारा चेक के गुम होने की सूचना दिए जाने से भी अस्वीकार किया, जो प्रारंभिक जाँच में गलत पाया गया और श्री गुप्ता ने चतुराई से अपनी गलतियों और सही तथ्यों को छिपाया था।

26. प्रारंभिक जांच, यदि उस प्रारंभिक जांच रिपोर्ट को याचिकाकर्ता के विरुद्ध जारी की गई आरोपपत्र दिनांक 26.03.1999 का हिस्सा न बनाया गया होता, तो यह एक प्रारंभिक जांच ही रह जाती। याचिकाकर्ता पर आरोप था कि उसने चेक पर फर्जी हस्ताक्षरों के आधार पर बैंक से धोखाधड़ी करके 56,000/- रुपये निकाले थे, जिसे उक्त प्रारंभिक जांच रिपोर्ट और हस्तलेख विशेषज्ञ की रिपोर्ट के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया गया था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादियों का मानना था कि उक्त प्रारंभिक रिपोर्ट को याचिकाकर्ता के विरुद्ध पढ़ा जाना चाहिए।

27. जांच रिपोर्ट दिनांक 19.01.2000 प्रस्तुत की गई जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप सिद्ध पाए गए और जिसमें एक बार फिर प्रारंभिक जांच रिपोर्ट पर दृढ़ता से भरोसा किया गया था।

28. याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसके लिए उसने एक जवाब प्रस्तुत किया, लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा अपने जवाब में दिए गए कारणों पर विचार किए बिना, बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश पारित कर दिया।

29. याचिकाकर्ता के तर्क का मुख्य आधार प्रारंभिक जांच रिपोर्ट है, जैसा कि ऊपर पहले ही बताया जा चुका है, जो परियोजना प्रबंधक श्री पी.के. गर्ग की मिलीभगत को दर्शाती है, जिन्होंने मुख्यालय की स्वीकृति के बिना संबंधित बैंक खोला था, और सहायक लेखाकार और चेक बुक तथा चेक जारी करने के रजिस्टर के प्रभारी श्री बी.बी.एल. गुप्ता ने उक्त चेक के गुम होने के बारे में कोई पृष्ठांकन नहीं किया था।

30. याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रारंभिक जांच रिपोर्ट और विभागीय जांच रिपोर्ट के आलोक में जांच करने पर यह स्पष्ट होता है कि श्री पी.के. गर्ग ने मुख्यालय से बिना किसी अनुमति के बचत बैंक खाता खोला था, श्री बी.बी.एल. गुप्ता ने खोए हुए चेक को चेक बुक और चेक जारी करने के रजिस्टर में दर्ज नहीं किया था, और याचिकाकर्ता ने चेक पर जाली हस्ताक्षर किए थे। इन सभी कार्रवाइयों के परिणामस्वरूप बैंक से 56,000/- रुपये निकाले गए। इस प्रकार, याचिकाकर्ता उस पूरे घटनाक्रम का मात्र एक हिस्सा था, जिसकी शुरुआत श्री पी.के.

गर्ग द्वारा अनधिकृत बचत बैंक खाता खोलने से हुई और जिसका अंत 56,000/- रुपये की धोखाधड़ीपूर्ण निकासी के साथ हुआ।

31. यह स्वीकार किया जाता है कि श्री बी.बी.एल. गुप्ता को एक वेतन वृद्धि स्थायी रूप से रोके जाने और निंदा की सजा दी गई है। श्री पी.के. गर्ग के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई है। श्री मोहम्मद यूनुस के विरुद्ध जारी बर्खास्तगी आदेश को इस न्यायालय ने निर्णय और आदेश दिनांक 04.09.2012 द्वारा रद्द कर दिया था और इसे प्रतिवादियों को वापस भेजे जाने पर, श्री मोहम्मद यूनुस पर एक वेतन वृद्धि स्थायी रूप से रोके जाने की सजा लगाई गई थी, जबकि मात्र याचिकाकर्ता को ही सेवा से बर्खास्तगी की बड़ी सजा दी गई है।

32. जैसा कि ऊपर बताया गया है, उपर्युक्त सभी व्यक्ति एक ही घटना का हिस्सा थे और परिणामस्वरूप, इस पूरी घटना में शामिल व्यक्तियों को दी गई सजा में स्पष्ट रूप से भेदभाव हुआ है, जिसमें श्री बी.बी.एल. गुप्ता और श्री मोहम्मद यूनुस को एक वेतन वृद्धि स्थायी रूप से रोक कर दंडित किया गया है, जबकि श्री पी.के. गर्ग के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई है।

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राजेंद्र यादव (उपरोक्त)** के मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"8. हमने अपीलकर्ता और कांस्टेबल अर्जुन पाठक के संबंध में हमारे समक्ष प्रस्तुत जांच रिपोर्ट का अध्ययन किया है। जांच से अर्जुन पाठक की भूमिका स्पष्ट रूप से सामने आती है। अर्जुन पाठक ने ही धन की मांग की थी और उसे प्राप्त किया था, हालांकि जांच में अपीलकर्ता की मौन स्वीकृति सिद्ध हुई थी। अर्जुन पाठक पर लगाया गया आरोप अपीलकर्ता पर लगाए गए आरोप से अधिक गंभीर था। अपीलकर्ता और अन्य दो व्यक्ति, साथ ही अर्जुन पाठक, एक ही घटना में शामिल थे। यह पाए जाने के बाद कि अर्जुन पाठक की भूमिका अधिक गंभीर थी और वास्तव में उसी ने धन की मांग की थी और उसे प्राप्त किया था, उसे अपेक्षाकृत हल्की सजा दी गई। वहीं दूसरी ओर, अपीलकर्ता, जिसने निष्क्रिय भूमिका निभाई थी, को सेवा से बर्खास्तगी की अधिक गंभीर सजा दी गई, जो हमारी राय में उचित नहीं है।

9. समानता का सिद्धांत उन सभी पर लागू होता है जो समान स्थिति में हैं; यहाँ तक कि दोषी पाए गए व्यक्तियों पर भी। दोषी पाए गए व्यक्ति भी समान व्यवहार का दावा कर सकते हैं, यदि वे यह साबित कर सकें कि एक ही घटना में शामिल होने पर सजा देते समय उनके साथ भेदभाव किया गया था। सजा देते समय सह-अपराधियों के बीच भी समानता बनाए रखनी चाहिए। एक ही लेन-देन या घटना में शामिल सह-अपराधियों की संलिप्तता की तुलना करते समय सजा असंगत नहीं होनी चाहिए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी असंगत सजा नहीं दे सकता, अर्थात् गंभीर अपराधों के लिए कम सजा और कम गंभीर अपराधों के लिए कड़ी सजा नहीं दे सकता।

10. उपरोक्त सिद्धांत इस न्यायालय के कुछ निर्णयों में लागू होता देखा गया है। सबसे पुराना निर्णय पुलिस महानिदेशक बनाम जी. दासयान [(1998) 2 एससीसी 407 : 1998 एससीसी (एल एंड एस) 557] का है, जिसमें पुलिस कांस्टेबल दासयान, दो अन्य कांस्टेबलों और एक हेड कांस्टेबल पर समान दुराचार का आरोप

लगाया गया था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दो अन्य कांस्टेबलों को दोषमुक्त कर दिया, लेकिन दासयान को सेवा से बर्खास्तगी और हेड कांस्टेबल को अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा सुनाई। न्याय के हित में, इस न्यायालय ने सह-दोषियों के बीच सजा में समानता के सिद्धांत को लागू करते हुए, दासयान की बर्खास्तगी के स्थान पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दिया। न्यायालय ने माना कि अन्यथा यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हो सकता है।

11. शैलेश कुमार हर्षदभाई शाह मामले [(2006) 6 एससीसी 548 : 2006 एससीसी (एल एंड एस) 1486] में, सिद्ध कदाचार के आधार पर कर्मचारी को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। हालांकि, कुछ अन्य कर्मचारियों, जिनके विरुद्ध समान आरोप थे, को स्वेच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का लाभ उठाने की अनुमति दी गई थी। ऐसी परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने निर्देश दिया कि कर्मचारी को भी समान माना जाए और उसे उसी महीने से स्वेच्छिक सेवानिवृत्ति का लाभ दिया जाए जिस महीने से अन्य कर्मचारियों को यह लाभ दिया गया था।

12. हमारा मानना है कि उपर्युक्त निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर भी लागू होते हैं। हमने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा सह-दोषी अर्जुन पाठक को अपेक्षाकृत हल्की सजा देना और साथ ही अपीलकर्ता को कड़ी सजा देना विधिक रूप से स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वे सभी एक ही घटना में शामिल थे। इसलिए, हम अपीलकर्ता पर लगाए गए बर्खास्तगी के दंड को रद्द करते हुए अपील को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हैं और उसे तत्काल सेवा में बहाल करने का आदेश देते हैं। अतः, अपीलकर्ता को उस तिथि से बहाल किया जाए जिस तिथि से अर्जुन पाठक को बहाल किया गया था और उसे वे सभी परिणामी लाभ दिए जाएं जो अर्जुन पाठक को दिए गए थे। तदनुसार आदेश दिया जाता है। हालांकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।”

34. इसी प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राजेंद्र सिंह (उपरोक्त)** के मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

“17. यदि दोनों प्रकार के मामलों में पूर्ण समानता हो, तो अलग-अलग दंड लगाना उचित नहीं होगा क्योंकि किसी एक मामले में कोई/अधिक दंड लगाना भेदभावपूर्ण होगा और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित समानता के सिद्धांत का उल्लंघन होगा। यह राजेंद्र यादव मामले [राजेंद्र यादव बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2013) 3 एससीसी 73 : (2013) 1 एससीसी (एल एंड एस) 476 : (2013) 2 स्केल 416] का निर्णय है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। दूसरी ओर, यदि कुछ अंतर हो, तो अलग-अलग दंड दिया जा सकता है और उसकी मात्रा क्या होनी चाहिए, यह अपीलीय प्राधिकारी पर छोड़ दिया जाना चाहिए। हालांकि, ऐसा दंड दुराचार की गंभीरता के अनुरूप होना चाहिए और अत्यधिक असंगत नहीं हो सकता। ओबेट्टी (पी) लिमिटेड मामले [ओबेट्टी (पी) लिमिटेड बनाम मोहम्मद शफीक खान, [2005] 8 एससीसी 46 : 2005 एससीसी (एल एंड एस) 1075] भले ही दोनों समूहों के कर्मचारियों द्वारा किए गए दुराचार की प्रकृति समान हो, फिर भी एक समूह द्वारा अपराध स्वीकार करने और नरमी बरतने की अपील करने से उन्हें दूसरे समूह के उन कर्मचारियों की तुलना में कम सजा मिलनी चाहिए जिन्होंने आरोपों से अस्वीकार किया, जिसके परिणामस्वरूप

उनके विरुद्ध की गई पूर्ण जांच में अंततः आरोप सिद्ध हो गए। ऐसी स्थिति में, दोषी कर्मचारियों पर अधिक जुर्माना लगाया जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आरोपों का खंडन करने का जोखिम उठाने वाले कर्मचारी बाद में यह कहकर पल्ला नहीं झाड़ सकते कि उनके मामले में सजा उन कर्मचारियों पर लगाई गई सजा से अधिक नहीं हो सकती जिन्होंने शुरू में ही बिना शर्त माफी मांगकर आरोपों को स्वीकार कर लिया था।

18. हमारे अनुसार, यह ओबेट्टी (पी) लिमिटेड [ओबेट्टी (पी) लिमिटेड बनाम मोहम्मद शफीक खान, (2005) 8 एससीसी 46 : 2005 एससीसी (एल एंड एस) 1075] और राजेंद्र यादव [राजेंद्र यादव बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2013) 3 एससीसी 73 : (2013) 1 एससीसी (एल एंड एस) 476 : (2013) 2 स्केल 416] मामलों की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या होगी।”

35. मामले का एक अन्य पहलू यह है कि याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट सौंपे जाने के बाद, उसे कारण बताओ नोटिस जारी कर जवाब देने को कहा गया। याचिकाकर्ता ने जांच रिपोर्ट और जांच प्रक्रिया में विसंगतियों को उजागर करते हुए विस्तृत जवाब प्रस्तुत किया, लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा 25.04.2004 को जवाब प्रस्तुत किए जाने का उल्लेख करने के बावजूद उस पर विचार नहीं किया और याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया।

36. यह विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि जब कोई जवाब प्रस्तुत किया जाता है, तो संबंधित प्राधिकारी को संबंधित कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत जवाब पर विचार करना आवश्यक होता है। इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। **राज कुमार मेहरोत्रा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले में, जो (2005) 12 एससीसी 256 में प्रतिवेदित है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

“5. अन्य उठाए गए मुद्दों पर विचार किए बिना, हमारा यह मत है कि प्रतिवादी प्राधिकारी द्वारा अपीलकर्ता पर दंड लगाने का आक्षेपित आदेश मान्य नहीं है। यदि हम यह मान भी लें कि मामूली दंड से संबंधित नियम 55-क लागू था, न कि गंभीर दंड से संबंधित नियम 55, तब भी नियम 55-क के अनुसार, कारण बताओ नोटिस के अंतर्गत दिए गए प्रत्यावेदन पर विचार किए बिना आदेश पारित नहीं किया जा सकता। आक्षेपित आदेश में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि अपीलकर्ता द्वारा कारण बताओ नोटिस के जवाब में उठाए गए विभिन्न मुद्दों में से किसी पर भी वास्तव में विचार किया गया था। प्रतिवादी प्राधिकारी ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी के स्वतः संज्ञान के अतिरिक्त आरोपों को सिद्ध मानने का कोई कारण नहीं दिया है। अतः, आदेश मान्य नहीं है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।”

37. इसी प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ओरिक्स फिशरीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य (2010) 13 एससीसी 427 में प्रतिवेदित के मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

“40. मेसर्स क्रांति एसोसिएट्स (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद निर्णय के पैरा 51 में कुछ सिद्धांत तैयार किए हैं जो नीचे दिए गए हैं।

क. भारत में न्यायिक प्रवृत्ति सदैव से यही रही है कि प्रशासनिक निर्णयों में भी, यदि ऐसे निर्णय किसी को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं, तो उनके कारणों को दर्ज किया जाए।

ख एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण को अपने निष्कर्षों के समर्थन में कारण दर्ज करने होंगे।

ग कारणों को दर्ज करने पर जोर देने का उद्देश्य न्याय के व्यापक सिद्धांत की पूर्ति करना है, जिसके अनुसार न्याय न मात्र किया जाना चाहिए बल्कि होता हुआ प्रतीत भी होना चाहिए।

घ कारणों को दर्ज करना न्यायिक और अर्ध-न्यायिक या यहां तक कि प्रशासनिक शक्ति के किसी भी संभावित मनमाने प्रयोग पर एक वैध रोक के रूप में भी कार्य करता है।

ङ कारण इस बात का आश्वासन देते हैं कि निर्णय लेने वाले व्यक्ति ने प्रासंगिक आधारों पर विवेक का प्रयोग किया है और बाहरी विचारों को नजरअंदाज किया है।

च. न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और यहां तक कि प्रशासनिक निकायों द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने के समान ही तर्क-वितर्क निर्णय लेने की प्रक्रिया का एक अपरिहार्य घटक बन गया है।

छ. कारण उच्च न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं।

ज विधि के शासन और संवैधानिक प्रशासन के प्रति प्रतिबद्ध सभी देशों में न्यायिक क्षेत्र में प्रचलित प्रवृत्ति प्रासंगिक तथ्यों पर आधारित तर्कसंगत निर्णयों के पक्ष में है। यह न्यायिक निर्णय लेने की प्रक्रिया का मूल आधार है, जो इस सिद्धांत को पुष्ट करता है कि तर्क ही न्याय की आत्मा है।

झ. आजकल न्यायिक या अर्ध-न्यायिक निर्णय उतने ही भिन्न हो सकते हैं जितने कि उन्हें देने वाले न्यायाधीश और अधिकारी। इन सभी निर्णयों का एक ही उद्देश्य होता है, और वह है तर्क के आधार पर यह सिद्ध करना कि संबंधित कारकों पर वस्तुनिष्ठ रूप से विचार किया गया है। यह न्याय व्यवस्था में वादियों के विश्वास को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है।

ञ न्यायिक जवाबदेही और पारदर्शिता दोनों के लिए तर्क पर जोर देना आवश्यक है।

ट. यदि कोई न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण अपनी निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है, तो यह जानना असंभव है कि निर्णय लेने वाला व्यक्ति पूर्व उदाहरणों के सिद्धांत के प्रति या क्रमिक विकास के सिद्धांतों के प्रति वफादार है।

ठ. निर्णयों के समर्थन में दिए गए कारण ठोस, स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। दिखावटी कारण या मात्र खानापूति के लिए दिए गए कारण वैध निर्णय प्रक्रिया के समान नहीं माने जाने चाहिए।

ड इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग पर रोक लगाने के लिए पारदर्शिता अत्यंत आवश्यक है। निर्णय लेने में पारदर्शिता न मात्र न्यायाधीशों और निर्णयकर्ताओं को त्रुटियों से बचाती है, बल्कि उन्हें व्यापक जांच के दायरे में भी लाती है। (देखें डेविड शापिरो, न्यायिक स्पष्टता का बचाव (1987), हार्वर्ड लॉ रिव्यू 731737 में)।

ढ. निर्णय लेने में निष्पक्षता के व्यापक सिद्धांत से कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता उत्पन्न होती है, इसलिए यह आवश्यकता अब वस्तुतः मानवाधिकारों का एक घटक है और इसे स्ट्रासबर्ग विधिशास्त्र का हिस्सा माना जाता है। देखें (1994) 19 ईएचआरआर 553, पृष्ठ 562, पैरा 29 और आन्या बनाम ऑक्सफोर्ड

विश्वविद्यालय, 2001 ईडब्लूसीए सिव 405, जिसमें न्यायालय ने मानवाधिकारों पर यूरोपीय सम्मेलन के अनुच्छेद 6 का उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया है कि "न्यायिक निर्णयों के लिए पर्याप्त और विवेकपूर्ण कारण दिए जाने चाहिए"।

ण. सभी सामान्य विधि क्षेत्राधिकारों में, निर्णय भविष्य के लिए मिसाल कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए, विधि के विकास के लिए, निर्णय के कारणों को बताना अनिवार्य है और वस्तुतः "सम्यक प्रक्रिया" का एक हिस्सा है।

41. इस मामले में अपीलीय आदेश में कारण बताए गए हैं। हालांकि, मूल आदेश में कारणों की अनुपस्थिति की भरपाई अपीलीय आदेश में कारणों के प्रकटीकरण से नहीं की जा सकती।"

38. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश विधिक रूप से अमान्य है और गुण-दोष के आधार पर इसे रद्द किया जाना चाहिए।

39. उपरोक्त आधार पर दंड आदेश रद्द किए जाने के परिणामस्वरूप मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को पुनः भेजकर नया आदेश पारित किया जाता है। हालांकि, इस मामले में याचिकाकर्ता की 24.12.2010 को वर्तमान याचिका लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई और उनके विधिक उत्तराधिकारियों ने उनकी जगह ले ली है। अतः, ऐसी परिस्थितियों में इस न्यायालय द्वारा मामले को पुनः भेजना उचित नहीं पाया गया है।

40. इस संदर्भ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ एवं अन्य: 1995(6) एस.सी.सी. 749** मामले में दिए गए निर्णय का उल्लेख करना उचित होगा, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि असाधारण और दुर्लभ मामलों में, उच्च न्यायालय स्वयं उचित दंड लगा सकता है और इसके समर्थन में ठोस कारण बता सकता है। फलस्वरूप, भारत के संविधान की अनुच्छेद 226 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए और इसी मामले में अन्य व्यक्तियों को दिए गए दंड पर विचार करते हुए, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि याचिकाकर्ता पर एक वेतन वृद्धि को स्थायी रूप से रोक देने और एक निंदा का दंड लगाया जाना चाहिए और परिणामस्वरूप उक्त दंड याचिकाकर्ता के लिए बर्खास्तगी आदेश की तिथि, अर्थात् 16.09.2000 से प्रभावी माना जाए।

41. याचिकाकर्ता को 18.03.1999 को निलंबित किए जाने के बाद से निर्वाह भत्ता नहीं मिलने की शिकायत के संबंध में, प्रतिवादियों ने बताया है कि याचिकाकर्ता निर्वाह भत्ता प्राप्त करने के लिए किसी अन्य व्यवसाय या पेशे में संलग्न न होने का आवश्यक प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने में विफल रहा है। प्रमाण पत्र के अभाव में और निलंबन आदेश में स्पष्ट रूप से प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने का प्रावधान होने के बावजूद, याचिकाकर्ता द्वारा ऐसा कोई प्रमाण पत्र प्रस्तुत न किए जाने के कारण, निर्वाह भत्ता के भुगतान के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है।

42. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका **आंशिक रूप से स्वीकार की जाती** है। आक्षेपित आदेश दिनांक 16.09.2020, जिसकी प्रति याचिका के संलग्नक-16 में संलग्न है, रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता पर एक वेतन वृद्धि को स्थायी रूप से रोकने और निंदा की सजा अब 16.09.2000 से प्रभावी होगी। इसके बाद की कार्रवाई की जाएगी।

(2025) 3 ILRA 580

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए संख्या 19031 / 2024

के साथ अन्य मामले सम्बद्ध

राधेश्याम शुक्ला एवं अन्य

.....याचीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री नवल किशोर मिश्रा

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

ए. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - न्यायिक पुनर्विलोकन - पेंशन का रूपांतरण - 15 वर्ष का सूत्र - नीतिगत मामला - हस्तक्षेप का दायरा - कॉमन कॉज़ का मामला - पेंशन का रूपांतरण एक विकल्प है और इसे स्वेच्छा से चुना जाता है, और रूपांतरण की मांग करना अनिवार्य या बाध्यकारी नहीं है, और नीतिगत मामला होने के कारण, इसे न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन नहीं किया जा सकता है, सिवाय इसके कि यह दुर्भावनापूर्ण, अत्यंत मनमाना, कानून के विपरीत या तर्कहीन हो। (पैरा 12)

बी. सेवा विधि - उत्तर प्रदेश सिविल पेंशन रूपांतरण नियम, 1941 - पेंशन - रूपांतरण का विकल्प - रूपांतरण के बाद एकमुश्त राशि का लाभ - 15 वर्ष का सूत्र अपनाया गया - प्रभाव - अधिसूचना द्वारा अवधि को 15 वर्ष तक बढ़ाया गया - वैधता को चुनौती दी गई - निर्णय, इससे न तो किसी पक्ष के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और न ही किसी पक्ष को कोई अनुचित लाभ मिलता है - मात्र इस आधार पर कि सरकार को

12 से 15 वर्ष पहले रूपांतरित राशि में कुछ अतिरिक्त राशि प्राप्त हुई है, अधिसूचना को रद्द करने का आधार नहीं होगा, क्योंकि यह एक तर्कहीन निर्णय नहीं है, यहां तक कि यदि ब्याज दर की गणना की जाए तो वह भी बहुत कम होगी - अशोक कुमार अग्रवाल के मामले पर भरोसा किया गया। (पैरा 15 और 17)

रिट याचिका निरस्त की जाती है। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अशोक कुमार अग्रवाल एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2025:एचसी:6439-डीबी
2. 'कॉमन कॉज़' एक पंजीकृत सोसायटी एवं अन्य बनाम भारत संघ; (1987) 1 एससीसी 142
3. फोरम ऑफ रिटायर्ड आईपीएस ऑफिसर्स (फोरिप्सो) बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, एआईआर ऑनलाइन, 2019 डेल 508
4. आर. गांधी बनाम भारत संघ एवं अन्य; (1999) सुप 1 एससीआर
5. वेलफेयर एसोसिएशन ऑफ एब्जॉर्ड सेंट्रल गवर्नमेंट एम्प्लॉइज इन पब्लिक एंटरप्राइजेज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य; (1991) 2 एससीसी 265
6. भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, पूर्व कर्मचारी संघ एवं अन्य बनाम अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, बॉम्बे एवं अन्य; (1993) 3 स्केल 424
7. टी.आर. सिंगल एवं अन्य बनाम स्टेट ऑफ पंजाब एवं अन्य; (2003) 2 आईएलआर पंजाब और हरियाणा 254

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री नवल किशोर मिश्रा, प्रवीण तिवारी, भगवान दत्त पाण्डेय, राजेश त्रिपाठी, विजय कुमार राय, राम कृष्ण यादव, अशोक कुमार यादव, प्रशांत सिंह, अनुराग शुक्ला, सतीश चंद्र तिवारी, बृजेंद्र कुमार श्रीवास्तव, सुरेश सिंह, राजेश कुमार, विनोद कुमार सिंह, चंद्र भान गुप्ता, छेदा लाल वर्मा, रजनीश कुमार श्रीवास्तव, अनिल कुमार शर्मा और सुश्री दुर्गा तिवारी, राज्य के लिए विद्वान ए.सी.एस.सी. श्री आशीष कुमार नागवंशी और श्री राजेश कुमार तिवारी के साथ अन्य संबंधित रिट याचिकाओं को सुना।

2. ये रिट याचिकाओं का समूह हैं। सभी याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश सरकार के उच्च शिक्षा विभाग से कई वर्ष पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके हैं और पेंशन प्राप्त कर रहे हैं। उन्होंने उत्तर प्रदेश सिविल पेंशन रूपांतरण नियम, 1941 के अंतर्गत अपनी-अपनी पेंशन को रूपांतरित करके एकमुश्त राशि का लाभ प्राप्त किया है।

3. याचिकाकर्तागण इस बात से क्षुब्ध हैं कि उनकी रूपांतरण राशि लगभग 10 से 12 वर्षों में वसूल हो चुकी है, जबकि एक कार्यालय जापन दिनांक 8 दिसंबर 2008 के अनुसार पेंशन से वसूली 15 वर्षों तक जारी रखने का निर्देश दिया गया है। इस प्रकार सरकार को रूपांतरण राशि से कहीं अधिक राशि प्राप्त हुई है। सभी याचिकाकर्तागण ने उक्त कार्यालय जापन दिनांक 8 दिसंबर 2008 को इस आधार पर चुनौती दी है कि उनके अनुसार रूपांतरण राशि ऋण नहीं थी, इसलिए मात्र यथार्थ राशि ही वसूल की जा सकती थी, उससे अधिक नहीं।

4. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्तागण ने यह भी तर्क दिया है कि ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके अंतर्गत कार्यालय जापन दिनांक 8.12.2008 के माध्यम से बिना किसी आधार के विनिमय मूल्य की वसूली के लिए वर्षों की संख्या 15 वर्ष तक निर्धारित की जा सके, और यह अवधि अत्यधिक और मनमानी भी थी।

5. इस न्यायालय ने पहले याचिकाकर्तागण के अधिवक्तागण को अशोक कुमार अग्रवाल एवं 48 अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2025: एचसी:6439-डीबी मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित नवीन निर्णय का अध्ययन करने के लिए कहा था, जिसमें पंजाब नेशनल बैंक के कर्मचारियों (अर्थात् याचिकाकर्तागण) के संबंध में इसी प्रकार के तर्कों को खारिज कर दिया गया था। संदर्भ के लिए, उसका प्रासंगिक भाग नीचे दिया गया है :-

“इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद, कर्मचारी और नियोक्ता के बीच एक बाध्यकारी अनुबंध अस्तित्व में आ जाता है, जिसके अनुसार 15 वर्षों के बाद मूल पेंशन बहाल की जानी है। पेंशन रूपांतरण नीति को स्पष्ट रूप से स्वीकार करने के बाद, सेवानिवृत्त कर्मचारी के लिए बाद में यह तर्क देना उचित नहीं है कि पूर्ण पेंशन की बहाली की अवधि 15 वर्षों से घटाकर 10 वर्ष कर दी जाए। चाहे 10 वर्ष या 11 वर्ष की समाप्ति पर एकमुश्त राशि बराबर हो या न हो, यह निर्णायक या महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि सेवानिवृत्त कर्मचारी द्वारा पेंशन रूपांतरण के प्रावधान को स्वीकार करने पर दोनों पक्षों पर किस प्रकार का दायित्व उत्पन्न होता है। कर्मचारी ने स्पष्ट रूप से इस नीति का लाभ उठाया है, इसलिए वह बाद में इससे मुक्त नहीं सकता या इसके नियमों में संशोधन की मांग नहीं कर सकता। यह तर्क कि तालिका या आंकड़े पर्याप्त रूप से प्रकट नहीं किए गए थे, भी स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि चार्ट में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पेंशन रूपांतरण कैसे निर्धारित किया जाना है और वह अवधि जिसके बाद मूल पेंशन बहाल की जानी है। यदि कर्मचारियों को इस बारे में कोई शंका थी, तो वे उचित स्पष्टीकरण मांग सकते थे। प्रस्ताव स्वीकार करने से पहले। एक बार जब याचिकाकर्ता नीति से सहमत हो जाते हैं और प्रस्ताव स्वीकार कर लेते हैं, तो बाद में उनका इससे मुक्त होना या इसकी गणना में रूपांतरण की मांग करना स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य होगा।

यह रिट याचिका में गुण-दोष की कमी है और इसलिए इसे निरस्त किया जाता है।

हमारे द्वारा लिया गया दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा “कॉमन कॉज़”, एक पंजीकृत सोसायटी एवं अन्य बनाम भारत संघ, (1987) 1 सुप्रीम कोर्ट केसेस, 142, आर. गांधी बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1999) 8 एससीसी 106 में दिए गए निर्णय के साथ-साथ दिल्ली उच्च न्यायालय के फोरम रिटायर्ड आईपीएस ऑफिसर्स (फोरिप्सो) बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन डेल 6610 और पंजाब

और हरियाणा उच्च न्यायालय के शिला देवी बनाम पंजाब राज्य के सीडब्ल्यूपी संख्या 9426/2023 में दिए गए निर्णय से समर्थित है।”

6. उपरोक्त निर्णय के संबंध में, याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्तागण ने यह प्रस्तुत किया है कि उनके मामले में रूपांतरित राशि की वापसी के उद्देश्य से 15 वर्षों की अवधि के संबंध में कोई अनुबंध या विशिष्ट नियम नहीं था।

7. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अधिवक्तागण ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है और कहा है कि यह मुद्दा पहले ही सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'कॉमन कॉज़' ए रजिस्टर्ड सोसाइटी एवं अन्य बनाम भारत संघ, (1987) 1 एससीसी 142 में निर्णीत किया जा चुका है।

8. मैंने उपरोक्त प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया।

9. इस बात पर कोई विशेष विवाद नहीं है कि सभी याचिकाकर्तागण को उनकी संबंधित पेंशन के रूपांतरण के बाद एकमुश्त राशि का लाभ मिला है, उस समय जब वे क्रमशः सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुके थे और उनकी पेंशन निर्धारित की गई थी। उत्तर प्रदेश सिविल पेंशन रूपांतरण नियम, 1941 के प्रासंगिक नियम नीचे दिए गए हैं :-

"4. उक्त नियम-3 के प्रावधानों तथा एतास्मिन् पश्चात् विनिर्दिष्ट शर्तों के अध्यधीन और प्रभाव को पूरा करने के लिए बजट प्रावधान अस्तित्व के भी, किसी सरकारी सेवक जिसको ये नियम लागू होते हैं, को पेंशन, जो सिविल, नियमावली के अधीन उसको स्वीकृत किया गया है, के 40% से अनधिक किसी भाग के एकमुश्त अदायगी के लिए राशिकृत करने की अनुमति दी जा सकेगी, परन्तु
(क) विदेशी मुद्रा में है अतः अप्रासंगिक है अतः मुद्रित नहीं
(ख) जब पेंशन रुपये में संदेय हो, तब

(I) राशिकरण के बाद पेंशन का अवशेष किसी व्यक्ति के मामलें में 20 रु० प्रतिमाह अब छठे वेतन आयोग की संस्तुतियों के अनुसार रु० 2100/- से कम नहीं होगा, तथा

(II) साधारणतया राशिकृत मूल्य नीचे विनिर्दिष्ट उद्देश्यों में से एक या अधिक पर व्यय किया जाएगा, यथा-

(1) गृह यह गृहस्थल का सन्निर्माण पुर्ननिर्माण या क्रय

(2) ऋण का परिसमापन

(3) बच्चों या आश्रितों की शिक्षा

(4) विवाह सम्बन्धी व्यय, और

(5) किसी व्यवसाय या उपक्रम को प्रारम्भ करना।

परन्तु यह और कि पूर्ववर्ती परन्तुक के खण्ड क तथा ख के प्रयोजनों के लिए पेंशन की धनराशि की संगणना करने में इसमें भारत या किसी अन्य सरकार के राजस्व से आवेदक को संदेय किसी अन्य स्थायी पेंशन या पेंशनरो के राशिकृत भाग को जोड़ा जा सकेगा।

टिप्पणी- ऐसे सरकारी सेवक, जिसे 1 अप्रैल, 1948 को या के बाद भर्ती किया गया है, तथा सरकारी सेवक, जो उस तिथि के पहले से सेवा में थे किन्तु जिसने नियम 16 के प्रथम परन्तुक के अधीन 40% राशि अंशदायी भविष्य निधि पेंशन बीमा नियमावली, 1948 का चुनाव किया है, को इस नियम के अधीन तथा विहित पेंशन के आधे से अनाधिक किसी भाग के बदले उस परन्तुक के अधीन उसे संदेय वास्तविक पेंशन के 40% से अनाधिक किसी भाग की एकमुश्त अदायगी के लिए राशिकृत करने की अनुमति दी जा सकेगी, यदि वह उस नियमावली के नियम 19 के प्रथम परन्तुक के अधीन अपने को वास्तव में संदेय पेंशन को आहरित करने का चुनाव करता है।

(2) उ०प्र० उदारीकृत पेंशन नियमावली, 1961 के अध्यक्ष, सरकारी सेवक के मामले में, उसको वास्तव में संदेय पेंशन के भाग, जिसे एकमुश्त अदायगी के लिए राशिकृत किया जा सकता है, का निर्धारण उक्त नियमावली के नियम 9 के अनुसार किया जाएगा।

5. साधारणतया सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 353 के अधीन स्वीकृत अनुकम्पा भत्ता के राशिकरण को अनुज्ञात किया जाएगा, किन्तु राज्य सरकार ऐसे भत्ता के राशिकरण को स्वीकृत कर सकेगी, यदि उसे समाधान है कि राशिकरण राशिकरणकर्ता के परिवार के स्थायी लाभ के लिए होगा।

6. जब तर्क अन्यथा निदेश न दिया जाये, आवेदन-पत्र इस नियमावली के भाग दो में वर्णित प्रक्रिया के अनुसार निम्नलिखित को सम्बोधित किये जायेंगे -

(क) ऐसे पेंशनभोगियों के मामले जो भारतीय कोषागारों से अपनी पेंशन आहरित, करते हो या जो ऐसे कालोनी के, जिनका कोई लेखा महालेखाकार, केन्द्रीय राजस्व में हो, निवासी होते हुए स्थानीय कोषागारों से अपनी पेंशन आहरित करते हों, यथास्थिति, राज्य सरकार को या राशिकरण कराने की स्वीकृति देने के लिए सशक्त प्राधिकारी को; और (ख) समस्त अन्य पेंशन भोगियों के मामले में, भारत के उच्चायुक्त को।

*[7. (1) कोई राशिकरण तब तक स्वीकृत नहीं किया जायेगा जब तक कि पेंशनभोगी ने सक्षम चिकित्सीय प्राधिकारी से इस आशय का एक प्रमाण-पत्र प्रस्तुत नहीं कर दिया है कि उसका शारीरिक स्वास्थ्य तथा जीवन काल की प्रत्यासा ऐसी है जो राशिकरण को न्यायोचित ठहराये। भारत में संदेय पेंशन के सम्बन्ध में राज्य सरकार या राशिकरण स्वीकर्ता प्राधिकारी को भी हो, अपने स्वविवेक निर्णय पर दूसरा चिकित्सीय प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगी या चिकित्सीय परिषद् के समक्ष पेंशन भोगी को उपस्थित होने का निर्देश दे सकेगी।

[परन्तु चिकित्सा परीक्षा और सक्षम चिकित्सा प्राधिकारी से प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होगा, जहाँ पेंशनभोगी, जिनमें यह पेंशन भोगी है जो स्वेच्छा से, अनिवार्य रूप से या अशक्त होने पर सेवानिवृत्त हुआ हो. अपने/अपनी सेवानिवृत्ति के दिनांक से या पेंशन भुगतान आदेश के जारी होने के दिनांक से, इसमें जो भी पश्चातवर्ती हो, एक वर्ष के भीतर विहित प्रपत्र 'क' में राशिकरण के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत करें।

(2) यदि आवेदक अपनी चिकित्सा परीक्षा के सम्बन्ध में पूछे गये किसी लिखित या मौखिक प्रश्न के उत्तर में अपनी जानकारी में ऐसा कोई कथन करता है जिसे मिथ्या पाया जाये या किसी तात्त्विक तथ्य को जानबूझ कर छिपाता है तो, यथास्थिति राज्य सरकार या राशिकरण स्वीकृत करने के लिए सशक्त प्राधिकारी वास्तविक भुगतान किये जाने के पूर्व किसी भी समय ऐसी स्वीकृति करे रद्द कर सकता है और ऐसे किसी कथन या तथ्य के छिपाने को सिविल सर्विस रेगुलेशन के अनुच्छेद 351 के प्रयोजनार्थ गम्भीर कदाचार भी माना जायेगा।

[8. राशिकरण पर संदेय एकमुश्त धनराशि वह धनराशि होगी। जिसे राष्ट्रपति द्वारा विहित सारणी या आरणियों या वर्तमान मूल्य के अनुसार लेखा अधिकारी द्वारा स्वीकृत की जायें। इस नियम के प्रयोजन, के लिए चिकित्सीय की आयु मामले में ऐसी आयु मानी जायेगी जो वास्तविक आयु से कम नहीं है, जैसा कि प्रमाणित करने वाले चिकित्सीय प्राधिकारी निर्देश दें।]

फिर भी नियम-7 के उप-नियम (1) परन्तुक के अन्तर्गत आने वाले मामलों में अर्थात् ऐसे राशिकरण के मामले में, जिसमें चिकित्सा परीक्षा आवश्यक नहीं है, लेखा अधिकारी से राशिकरण कराने पर देय एकमुश्त धनराशि पर रिपोर्ट माँगना आवश्यक नहीं होगा। उक्त धनराशि की गणना राशिकरण स्वीकृत करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपने स्तर पर ऊपर निर्दिष्ट वर्तमान मूल्य की सारिणी या सारिणियों और विभागाध्यक्ष/कार्यालयाध्यक्ष सभी प्रकार से पूर्ण आवेदन-पत्र की प्राप्ति के दिनांक के पश्चात् पड़ने वाले अगले जन्म के दिनांक को पेंशनभोगी की आयु के अनुसार की जायेगी। लेखाधिकारी उक्त प्राधिकारी से द्वारा स्वीकृति आदेश प्राप्त करने के पश्चात् सम्बद्ध कोषागार को भुगतान के लिए प्राधिकार जारी करने के पूर्व राशिकरण के मूल्य की गणना की शुद्धता की जाँच करेगा और यह भी देखेगा कि राशिकृत भाग पेंशन के '[40%]' से अधिक न हो।

9. ऐसे मामलों में, जिनमें आवेदन- पत्र राज्य सरकार को नियम 6 के खण्ड (क) के अधीन राशिकरण स्वीकृत करने के लिए सशक्त प्राधिकारी को सम्बोधित हो, एकमुश्त धनराशि रुपयों में देय होगी।

----- एकमुश्त धनराशि के सपरिवर्तन के लिए, जहाँ सपरिवर्तन का प्रश्न उत्पन्न हो, विनियम दर ऐसी दर होगी जो नियम-10 में उल्लिखित दिनांक पर लागू हों।

10. (1) नियम 7 के उप-नियम (1) के परन्तुक के अधीन आने वाले मामलों को छोड़कर, राशिकरण, जब स्वीकृत हो जाये, आदेश में विनिर्दिष्ट किये जानें वाले दिनांक से, जो साधारणतया आदेश के दिनांक से पन्द्रह दिन पश्चात् का दिनांक होगा प्रभावी होगा और समस्त गणना उस दिनांक के निर्देश से की जायेगी।

टिप्पणी-विशेष मामलों में स्वीकृति प्राधिकारी इस नियम में उल्लिखित दिनांक से पूर्व के किसी दिनांक से, किन्तु यह स्वीकृत आदेश के दिनांक से पूर्व का नहीं होगा, राशिकरण की अनुमति दे सकता है। तब समस्त गणना ऐसे पूर्ववर्ती दिनांक से की जायेगी।

(2) नियम 7 के उप-नियम (1) के परन्तुक के अधीन मामलों में, अर्थात् बिना चिकित्सा परीक्षा के पेंशन के राशिकरण के मामलों में राशिकरण उस दिनांक से प्रभावी होगा जब सभी प्रकार से पूर्ण आवेदन-पत्र विभागाध्यक्ष/कार्यालयाध्यक्ष के पास पहुँचे और समस्त गणना उस दिनांक के निर्देश से और नियम-8 के अनुसार की जायेगी।

11. (1) नियम 7 के उप-नियम (1) के परन्तुक के अधीन मामलों को छोड़कर पेंशनभोगी यदि वह ऐसा चाहे, यथास्थिति, राज्य सरकार या राशिकरण स्वीकृत करने के लिए सशक्त प्राधिकारी या भारत के उच्चायुक्त को

लिखित नोटिस द्वारा, जिससे कि वह उस दिनांक के जब राशिकरण अन्तिम हो जाये, पूर्व उक्त प्राधिकारी के पास पहुँचे, अपने आवेदन-पत्र को वापस ले सकता है।

(2) यदि वह खण्ड (1) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अपना आवेदन वापस नहीं लेता तो राशिकरण अन्तिम हो जायेगा, पेंशन के राशिकृत भाग को प्राप्त करने का अधिकार समाप्त हो जायेगा और राशिकृत मूल्य को प्राप्त करने का हक उस तिथि से प्रोद्भूत होगा, जिससे राशिकरण प्रभावी हों। राशिकृत मूल्य का भुगतान, सथासम्भव, उस तिथि से किया जायेगा जब से राशिकरण प्रभावी हो, किन्तु वास्तविक भुगतान की तिथि चाहे जो हो, संदत्त धनराशि तथा पेंशन पर प्रभाव नहीं होगा, मानों राशिकृत मूल्य उस तिथि को अदा किया गया था, जिसको राशिकरण अन्तिम हो गया था। यदि पेंशन का राशिकृत भाग उस तिथि के बाद आहरित किया गया है जिस पर राशिकरण आत्यन्तिक हो जाता है, तो आहरित धनराशि को राशिकरण में संदेय धनराशि में कम कर लिया जाएगा।

[(3) नियम-7 के उप-नियम (1) के परन्तुक के अधीन आने वाले मामले में, पेंशनभोगी को अपना आवेदन-पत्र वापस लेने का हक नहीं होगा और राशिकरण उस दिनांक को अन्तिम हुआ समझा जायेगा जब राशिकरण के लिये आवेदन-पत्र, जो से पूर्ण हो, सभी प्रकार विभागाध्यक्ष/कार्यालयाध्यक्ष को प्राप्त हो जाये।

12. राशिकरण को जिसके लिए एक बार आवेदन किया गया था, स्वीकृत किया गया था तथा प्रभावी किया गया था, को विखण्डित नहीं किया जा सकता, अर्थात् राशिकृत पेंशन के भाग को उसके पंजीकृत भाग के प्रतिदाय पर प्रत्यावर्तित नहीं किया जा सकता।

[13. यदि पेंशनभोगी की मृत्यु राशिकरण अन्तिम हो जाने के दिनांक या उसके पश्चात् किन्तु राशिकरण का मूल्य प्राप्त करने के पूर्व हो आये, तो इस मूल्य का भुगतान उसके विधिक उत्तराधिकारी को किया जायेगा।

टिप्पणी-नियम-7 के उप-नियम (1) के परन्तुक के अधीन आने वाले बिना चिकित्सा परीक्षा के राशिकरण के मामलों में, राशिकरण उस दिनांक को अन्तिम हो जाता है जब उसका पूर्ण आवेदन-पत्र विभागाध्यक्ष/कार्यालयाध्यक्ष द्वारा प्राप्त हो जाये। यदि ऐसे मामले में, पेंशनभोगी की मृत्यु राशिकृत मूल्य प्राप्त करने के पूर्व उक्त दिनांक हो या उसके पश्चात् हो जाये तो इस मूल्य का भुगतान उसके विधिक उत्तराधिकारी को किया जायेगा।"

10. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्तागण को यह अवसर दिया गया था कि वे अपनी पेंशन को एकमुश्त राशि प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध कर सकते हैं, जब भी उनकी संबंधित पेंशन निर्धारित की जाए, जिसका उपयोग अधिमानतः उपरोक्त उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है (नियम 1941 का नियम 4 देखें)। हालांकि, किसी भी याचिकाकर्ता ने यह घोषित नहीं किया है कि उन्होंने उक्त राशि का उपयोग किसी भी उल्लिखित उद्देश्य या किसी अन्य सहायक उद्देश्य के लिए किया है। यद्यपि न्यायालय इस स्तर पर ऐसे किसी विवाद में नहीं पड़ रहा है, फिर भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पेंशन के बदले पेंशन प्राप्त करने का उद्देश्य पेंशनभोगियों के लिए लाभकारी था, ताकि वे अपने लाभ के लिए एकमुश्त राशि प्राप्त कर सकें और इसके लिए उनकी पेंशन से कुछ निश्चित वर्षों तक, जो कि अब 15 वर्ष है, एक निश्चित राशि काटी जा सके।

11. सभी याचिकाकर्ता इस न्यायालय में बेहद विलंबित अवस्था में आने के दोषी हैं। आक्षेपित अधिसूचना वर्ष 2008 की है और वे वर्ष 2024 में, अर्थात् 16 वर्षों से अधिक समय बाद, इस न्यायालय में आए हैं। संभवतः

वे तटस्थता की स्थिति में हैं और ऐसा इसलिए किया है क्योंकि कुछ अन्य उच्च न्यायालयों ने उनके राज्य के पेंशनभोगियों द्वारा वसूली के वर्षों की संख्या को चुनौती देने पर आगे की वसूली पर रोक लगा दी थी, जिसका बाद में इस न्यायालय और समन्वय पीठों ने भी अनुसरण किया और कुछ अंतरिम आदेश पारित किए।

12. सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 1987 में "कॉमन कॉज़" ए रजिस्टर्ड सोसाइटी एवं अन्य बनाम भारत संघ, 1987 एससीसी (1) 142 में प्रतिवेदित के मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि पेंशन का रूपांतरण एक विकल्प है और इसे स्वेच्छा से चुना जाता है, और रूपांतरण की मांग करना अनिवार्य या बाध्यकारी नहीं है, और यह एक नीतिगत मामला होने के कारण, दुर्भावनापूर्ण या अत्यंत मनमाना या कानून के विपरीत या तर्कहीन होने के अतिरिक्त न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन नहीं किया जा सकता है, और यह अभिनिर्धारित किया कि:-

“पेंशन में रूपांतरण से कुछ लाभ मिलते हैं। पेंशन में रूपांतरण कराने वाले पेंशनभोगी को एकमुश्त राशि मिलती है, जो आमतौर पर उसे जीवित रहने पर किस्तों में मिलती। पेंशन में रूपांतरण से दो लाभ निश्चित रूप से प्राप्त होते हैं—(1) एकमुश्त राशि की उपलब्धता, और (2) जोखिम का कम होना। कई राज्य सरकारों ने पहले ही 15 वर्ष के नियम को स्वीकार करते हुए योजनाएं बनाई हैं। इस न्यायालय के लिए नागरिक पेंशनभोगियों के मामले में 15 वर्ष के फार्मूले में रूपांतरण करना उचित नहीं होगा।”

13. इसी प्रकार, नई दिल्ली उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने फोरम ऑफ रिटायर्ड आईपीएस ऑफिसर्स (फोरिप्सो) बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर ऑनलाइन, 2019 डेल 508 में इसी तरह के तर्क पर विचार किया और छठे वेतन आयोग की सिफारिशों और अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ इसे नकार दिया :-

“हम पेंशनभोगियों के लिए सबसे अनुकूल शर्तें चाहते हैं, लेकिन कुछ सीमाएं हैं और विभिन्न और कुछ हद तक परस्पर विरोधी कारकों का मूल्यांकन करने के लिए न्यायालय नहीं बल्कि क्षेत्र के विशेषज्ञ ही सबसे उपयुक्त निर्णायक हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि न्यायालयों के पास क्षेत्राधिकार नहीं है और यदि पीड़ित पेंशनभोगियों/कर्मचारियों के साथ अन्याय हुआ है तो उन्हें राहत नहीं दी जा सकती, लेकिन ऐसे हस्तक्षेप के लिए न्यायालय को इस ठोस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि कोई गंभीर त्रुटि हुई है, जिसके कारण न्याय सुनिश्चित करने के लिए न्यायालय का हस्तक्षेप अनिवार्य हो जाता है। ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने से हर तरह की समस्याएं और गंभीर परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि ये बेहद जटिल और कठिन मामले हैं जिनमें विभिन्न परस्पर विरोधी हितों को संतुलित करना आवश्यक है, जिसमें कुछ हद तक उपलब्ध वित्तीय संसाधन भी शामिल होंगे।”

14. इस न्यायालय की खंडपीठ ने अशोक कुमार अग्रवाल (उपरोक्त) मामले में भी उपर्युक्त निर्णयों का संज्ञान लिया है और याचिकाकर्तागण द्वारा रूपांतरित राशि को लौटाने के लिए 15 वर्ष की अवधि निर्धारित करने

संबंधी आपत्तियों को अस्वीकृत कर दिया है, इसलिए **अशोक कुमार अग्रवाल (उपरोक्त)** में प्रतिपादित सिद्धांत वर्तमान मामले में भी लागू होता है और भिन्न दृष्टिकोण अपनाने की कोई परिस्थिति नहीं है।

15. आक्षेपित अधिसूचना 1941 के नियमों के प्रावधानों के अंतर्गत जारी की जा रही है, और इसमें मात्र राशि के रूपांतरण की विधि और उसकी अवधि निर्धारित की गई है, जो अब 15 वर्ष है। मात्र इस आधार पर कि सरकार को 12 से 15 वर्ष पहले रूपांतरित राशि से अधिक राशि प्राप्त हुई है, अधिसूचना को रद्द करना उचित नहीं होगा, क्योंकि यह एक तर्कहीन निर्णय नहीं है, और यदि ब्याज दर की गणना भी की जाए तो वह बहुत कम होगी।

16. न्यायालय ने यह भी ध्यान में रखा है कि एक रिट याचिका में याचिकाकर्तागण ने उल्लेख किया है कि उन्होंने अपने रूपांतरण के अंतर्गत एकमुश्त राशि के रूप में 1 लाख से 7 लाख रुपये से अधिक का भुगतान किया है, लेकिन यह स्वयं किसी अधिसूचना को रद्द करने का आधार नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने 12 या 15 वर्ष पूर्व ली गई एकमुश्त राशि का लाभ मात्र 1941 के नियमों में वर्णित विशिष्ट उद्देश्यों पर खर्च करने के लिए ही नहीं उठाया है, और उन्होंने यह भी खुलासा नहीं किया है कि क्या यह राशि उक्त उद्देश्य के लिए या किसी अन्य सहायक उद्देश्य के लिए उपयोग की गई थी। यह मामला नहीं है कि 15 वर्षों तक रूपांतरित राशि की वापसी के कारण राज्य को पर्याप्त लाभ हुआ है।

17. न्यायालय ने **आर. गांधी बनाम भारत संघ एवं अन्य (1999) सप्प 1 एससीआर** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक अन्य निर्णय का भी संज्ञान लिया है, जिसमें **कॉमन कॉज (उपरोक्त)** का अनुसरण करते हुए कहा गया है कि "**कॉमन कॉज (उपरोक्त)** के निर्णय को इस न्यायालय के सभी बाद के निर्णयों में रूपांतरण की तिथि से 15 वर्ष के रूप में समझा गया है और हम इससे सम्मानपूर्वक सहमत हैं। यह न तो किसी भी पक्ष के अधिकारों को प्रभावित करता है और न ही किसी पक्ष को कोई अनुचित लाभ प्रदान करता है" और तदनुसार, उसमें आक्षेपित जापन को बरकरार रखा गया था, जिसके द्वारा यह निर्णय लिया गया था कि रूपांतरित पेंशन 15 वर्षों की अवधि के लिए वसूल की जाएगी। सर्वोच्च न्यायालय ने **वेलफेयर एसोसिएशन ऑफ एब्जॉर्ड सेंट्रल गवर्नमेंट एम्प्लॉइज इन पब्लिक एंटरप्राइजेज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य (1991) 2 एससीसी 265** के साथ-साथ **भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड पूर्व कर्मचारी संघ एवं अन्य बनाम चेयरमैन और प्रबंध निदेशक, भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड, बॉम्बे एवं अन्य, (1993) 3 स्केल 424** के मामले में भी **कॉमन कॉज (उपरोक्त)** का अनुसरण किया है। (यह भी देखें: टी.आर. सिंगल एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2003) 2 आईएलआर पंजाब और हरियाणा 254, और शिला देवी एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य और परिवर्तित 807 याचिकाएं, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा 27.11.2024 को निर्णीत की गई, जिसमें पेंशन के रूपांतरित भाग की वसूली के लिए 15 वर्ष निर्धारित करने की नीति को भी बरकरार रखा गया था।)

18. न्यायालय ने यह भी ध्यान में रखा है कि याचिकाकर्तागण की रूपांतरित राशि 12 लाख से 14 लाख रुपये के बीच है और किस्त 11,000 रुपये से 14,000 रुपये प्रति माह के बीच है, जो अत्यधिक नहीं है। याचिकाकर्तागण ने अपनी-अपनी पेंशन राशि का भी खुलासा नहीं किया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि अन्य लाभों के प्रयोजन के लिए, रूपांतरित राशि को ध्यान में रखे बिना पेंशन राशि की गणना की जाती है, और तदनुसार, सभी रिट याचिकाएं **निरस्त** की जाती हैं और सभी रिट याचिकाओं में पारित अंतरिम आदेश रद्द किए जाते हैं।

19. इस आदेश की एक प्रति उत्तर प्रदेश सरकार के प्रधान सचिव (वित्त) लखनऊ को भेजी जाए।

20. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को आवश्यक कदम उठाने होंगे।

(2025) 3 ILRA 588

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति, जसप्रीत सिंह

रिट बी संख्या 1043 / 2024

चंदन सिंह @ चंद्र पाल सिंह

.....याची

बनाम

उप-संचालक चकबन्दी, सीतापुर एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री मोहम्मद असलम खान

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री दिग्विजय सिंह, श्री दिलीप कुमार पाण्डेय

ए. सिविल विधि - उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 - धारा 171 - विवाद स्वर्गीय रुदा सिंह के नाम पर दर्ज कृषि भूखंडों से संबंधित था, जिनकी 1979 में बिना वसीयत किए मृत्यु हो गई थी। 1984 में, एक राजस्व न्यायालय ने उनकी भूमि को ग्राम सभा के अधीन कर दिया, यह घोषणा करते हुए कि उनका कोई विधिक उत्तराधिकारी नहीं है। याचिकाकर्ता ने, स्वयं को उनका भतीजा बताते हुए, 1995 में शुरू हुई चकबन्दी कार्यवाही के दौरान इसे चुनौती दी। याचिकाकर्ता 1984 के आदेश को समय पर चुनौती देने में विफल रहा। याचिकाकर्ता के रिश्तेदारी के साक्ष्य (ग्राम प्रधान द्वारा जारी एक अदिनांकित प्रमाण पत्र) में

प्रामाणिकता और पुष्टि का अभाव था। उसकी पहचान, आयु और दावों में विसंगतियां थीं। उसका नाम दर्ज होने के तुरंत बाद उसने तीसरे पक्ष के पक्ष में दान विलेख निष्पादित किए, जिससे भूमि हड़पने का संदेह पैदा हुआ। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि याचिकाकर्ता रुदा सिंह के साथ कोई वैध संबंध स्थापित करने में विफल रहा। प्रस्तुत एकमात्र प्रमाण (प्रधान प्रमाण पत्र) का कोई विधिक मूल्य नहीं था। इस प्रकार, न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि उप-संचालक चकबन्दी के निष्कर्ष वैध विधिक और तथ्यात्मक तर्क पर आधारित थे। (पैरा 1 से 71)

रिट याचिका निरस्त की जाती है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

- वर्तमान याचिका में निहित विवाद को समझने के लिए, याचिकाकर्ता के वाद के कारण को जन्म देने वाले प्रासंगिक तथ्यों पर आगे ध्यान दिया जा रहा है।
- यह विवाद गांव पारा, परगना, तहसील और जिला सीतापुर में स्थित भूखंड संख्या 100, 318 और 443 से संबंधित है, जिनका कुल क्षेत्रफल 4.3120 हेक्टेयर है। ये भूखंड खाता संख्या 218 का हिस्सा हैं, जो आधार वर्ष की खतौनी में रुदा सिंह के नाम भूमिधर के रूप में दर्ज है।
- रुदा सिंह का निधन वर्ष 1979 में हुआ था और वे अपने भतीजे (भंजे) अर्थात् याचिकाकर्ता को छोड़ गए थे, जो श्रीमती सीता सिंह (रुदा सिंह की बहन और फकीरे सिंह की दूसरी पत्नी) के पुत्र थे। याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 (संक्षेप में, 'अधिनियम 1950') की धारा 171 के अंतर्गत अधिमान्य उत्तराधिकारी होने के आधार पर विवादित संपत्ति में अधिकार का दावा किया।
- अभिलेख से पता चलता है कि वर्ष 1984 में, कुछ कार्यवाही अंतर्गत धारा 194 अधिनियम 1950 उप-जिला अधिकारी, सीतापुर की न्यायालय में शुरू किया गया और अपने आदेश दिनांक 17.09.1984 द्वारा उक्त मामले का निर्णय करते हुए यह पाया गया कि श्री रुदा सिंह की मृत्यु बिना वसीयत के हुई थी। चूंकि उनका कोई विधिक उत्तराधिकारी नहीं था, इसलिए संबंधित भूखंडों को ग्राम सभा के नाम पर दर्ज करने का आदेश दिया गया।
- याचिकाकर्ता का कहना है कि जब उन्हें आदेश दिनांक 17.09.1984 के बारे में पता चला, तो उन्होंने अपर आयुक्त, लखनऊ मंडल, लखनऊ के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की। उक्त पुनरीक्षण याचिका संख्या 78/2018 के माध्यम से याचिकाकर्ता ने आदेश को चुनौती दी थी, लेकिन अपर आयुक्त के समक्ष उपरोक्त कार्यवाही के दौरान, उक्त न्यायालय ने पाया कि अधिनियम 1953 की धारा 11(1) के अंतर्गत एक अपील

बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के समक्ष लंबित थी, इसलिए पुनरीक्षण न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 22.02.2022 द्वारा पुनरीक्षण याचिका को समाप्त कर दिया।

6. याचिकाकर्ता का यह भी कहना है कि विचाराधीन गांव को अधिनियम 1953 की धारा 4 के अंतर्गत 22.07.1995 को अधिसूचित किया गया था। याचिकाकर्ता ने अधिनियम 1953 की धारा 9-क(2) के अंतर्गत चकबन्दी अधिकारी के समक्ष आपत्ति दर्ज कराई थी, जिसमें उसने स्वर्गीय रुदा सिंह (मामाजी, याचिकाकर्ता के मामा) के उत्तराधिकार के आधार पर विवादित भूखंडों पर अपना अधिकार जताया था। अपने दावे के समर्थन में, याचिकाकर्ता ने ग्राम प्रधान द्वारा जारी एक प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता स्वर्गीय रुदा सिंह का भतीजा (भांजा) है और श्रीमती सीता सिंह (याचिकाकर्ता की माता) स्वर्गीय रुदा सिंह की सगी बहन थीं।

7. चकबन्दी अधिकारी ने अपने आदेश दिनांक 04.01.2016 द्वारा याचिकाकर्ता की आपत्तियों को स्वीकार कर लिया। राज्य और ग्राम सभा ने चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.01.2016 से असंतुष्ट होकर अधिनियम 1953 की धारा 11(1) के अंतर्गत अपील दायर की। साथ ही, मोहम्मद इमरान खान, हरि शंकर और श्रीमती रुखसाना ने भी अपील दायर की। बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी ने संबंधित पक्षों की सुनवाई के बाद आदेश दिनांक 08.05.2023 द्वारा सभी अपीलों को खारिज कर दिया।

8. इस बीच, याचिकाकर्ता के पक्ष में चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.01.2016 के अनुसरण में, चकबन्दी अधिकारी ने अपने आदेश दिनांक 09.06.2023 द्वारा याचिकाकर्ता का नाम चकबन्दी अधिकारियों द्वारा रखे गए अभिलेखों में शामिल कर लिया। उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी नियमावली, 1954 (संक्षेप में, 'नियमावली 1954') के नियम 109 के अंतर्गत कार्यवाही में चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित इस आदेश दिनांक 09.06.2023 को राज्य और ग्राम सभा, मोहम्मद इमरान खान, हरि शंकर और श्रीमती प्रेमा देवी ने अपील दायर करके चुनौती दी। उक्त सभी अपीलों बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा खारिज कर दी गईं।

9. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, उप-संचालक, चकबन्दी के समक्ष आठ पुनरीक्षण याचिकाएँ दायर की गईं। एक याचिका राज्य द्वारा, दूसरी ग्राम सभा द्वारा दायर की गई। मोहम्मद इमरान खान द्वारा अलग पुनरीक्षण याचिका, श्रीमती रुखसाना द्वारा अलग पुनरीक्षण याचिका और हरि शंकर द्वारा दो अलग पुनरीक्षण याचिकाएँ दायर की गईं। सभी पुनरीक्षण याचिकाएँ आपस में संबंधित थीं और आदेश दिनांक 17.09.2024 द्वारा इनका निस्तारण किया गया है। उप-संचालक चकबन्दी ने राज्य और ग्राम सभा द्वारा दायर पांच पुनरीक्षण याचिकाओं को स्वीकार कर लिया, जिनमें पारित आदेश दिनांक 04.01.2016 अंतर्गत धारा 9-क(2) अधिनियम 1953, चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 09.06.2023 अंतर्गत नियम 109, नियमावली, 1954 और बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.05.2023 तथा 03.08.2023 को निरस्त कर दिए गए। परिणामस्वरूप, पुनरीक्षण याचिका संख्या 173, 248, 267, 118 और 119 को स्वीकार कर लिया गया तथा

पुनरीक्षण याचिका संख्या 190, 253 और 254 को खारिज कर दिया गया। इसी पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता ने इस याचिका को दायर करके उप-संचालक चकबन्दी के निर्णय दिनांक 17.09.2024 को चुनौती दी है।

10. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री शादाब खान और मोहम्मद असलम खान से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मोहम्मद आरिफ खान ने यह तर्क दिया कि उप-संचालक चकबन्दी ने राज्य और ग्राम सभा के पुनरीक्षणों को स्वीकार करने में अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है, क्योंकि आदेश तथ्यों की गलत व्याख्या से ग्रस्त है।

11. यह तर्क दिया गया कि उप-संचालक चकबन्दी के आदेश में बताए गए कारणों से यह स्पष्ट होता है कि पुनरीक्षण की अनुमति देते समय न्यायालय के मन में जो आधार थे, वे विधिक रूप से मान्य नहीं हैं।

12. यह कहा गया कि पुनरीक्षण न्यायालय ने पाया है कि ग्राम प्रधान द्वारा जारी मृत्यु प्रमाण पत्र पर भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह ऐसे व्यक्ति द्वारा जारी किया गया था जिसे ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था। आगे यह तर्क दिया गया कि उप-संचालक, चकबन्दी विभाग द्वारा यह गलत धारणा है कि उप-जिला अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.09.1984 को याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी, जबकि उप-संचालक, चकबन्दी विभाग ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती देते हुए पुनरीक्षण याचिका दायर की थी, जिसे अपर आयुक्त के आदेश दिनांक 22.02.2022 द्वारा समाप्त कर दिया गया था, क्योंकि संबंधित गाँव चकबन्दी प्रक्रिया के अधीन था और राज्य एवं ग्राम सभा द्वारा दायर अपीलें बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के समक्ष लंबित थीं।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को प्रथम दृष्टया आदेश दिनांक 17.09.1984 की जानकारी नहीं थी, लेकिन जैसे ही उसे जानकारी मिली, उसने आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती दी, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता ने आदेश को चुनौती नहीं दी थी। एक बार आदेश को चुनौती दी जा चुकी थी, लेकिन चकबन्दी की कार्यवाही के कारण कार्यवाही समाप्त हो गई, इसलिए कम से कम याचिकाकर्ता के संबंध में आदेश दिनांक 17.09.1984 को अंतिम नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त, विधि के अनुसार, गाँव को चकबन्दी प्रक्रिया के अंतर्गत रखा गया था, इसलिए उक्त आदेश याचिकाकर्ता के हित में बाधा नहीं बन सकता।

14. आगे यह तर्क दिया गया कि जब याचिकाकर्ता ने अधिनियम 1953 की धारा 9-क(2) के अंतर्गत अपनी आपत्तियां दर्ज की थीं, जिसमें चकबन्दी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी ने याचिकाकर्ता के स्वर्गीय रुदा सिंह के भतीजे (भांजा) होने के दावे को बरकरार रखा था, तब तक रुदा सिंह का एक भी वारिस जीवित था, और अधिनियम 1950 की धारा 171 में दिए गए उत्तराधिकार के क्रम के आलोक में, संपत्ति राज्य में निहित नहीं हो सकती थी।

15. यह तर्क भी दिया गया कि याचिकाकर्ता के पीठ पीछे की गई कोई भी कार्यवाही उसके विरुद्ध लागू नहीं की जा सकती और एक बार जब मामला अधिनियम 1953 की धारा 9-क(2) के अंतर्गत चकबन्दी अधिकारी द्वारा अपने हाथ में ले लिया जाता है, तो उक्त कार्यवाही ही मूल कार्यवाही बन जाती है जिसमें पक्षों के अधिकारों का निर्णय किया जाना आवश्यक होता है। याचिकाकर्ता और रूदा सिंह के रिश्ते पर विचार किए बिना और यह माने बिना कि रूदा सिंह का तब तक कोई उत्तराधिकारी नहीं था, संपत्ति को राज्य में निहित करने का आदेश पारित करना, उप-संचालक चकबन्दी के क्षेत्राधिकार से स्वतः ही बाहर है।

16. यह तर्क भी दिया गया कि अधिनियम 1950 की धारा 194 के अंतर्गत 1984 में शुरू की गई कार्यवाही में याचिकाकर्ता पक्षकार नहीं था, इसलिए ऐसी कार्यवाही में पारित कोई भी आदेश याचिकाकर्ता पर बाध्यकारी नहीं हो सकता। उप-संचालक चकबन्दी द्वारा यह कहना कि आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए याचिकाकर्ता को कोई अधिकार नहीं है, एक त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण है, क्योंकि ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए याचिकाकर्ता और स्वर्गीय रूदा सिंह के रिश्ते को अमान्य साबित करने के लिए ठोस कारण दर्ज किए जाने चाहिए थे, और यह कहना आवश्यक नहीं है कि ऐसा नहीं किया गया है।

17. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपनी प्रस्तुतियों को पुष्ट करने के लिए आगे बताया कि आदेश दिनांक 17.09.1984 में परिणत हुई कथित कार्यवाही दिखावटी थी, क्योंकि अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त, 1984 की कार्यवाही में कथित रूप से जारी की गई उद्घोषणा विधि के अनुसार नहीं थी, साथ ही यह भी स्पष्ट है कि उक्त उद्घोषणा ग्राम प्रधान को दी गई थी और/या किसी अन्य व्यक्ति को नहीं।

18. यह तर्क भी दिया गया कि जहां ग्राम प्रधान एक प्रतिवादी और हितधारक पक्ष थे, वहां अधिनियम 1950 की धारा 194 के अंतर्गत कोई भी आदेश पारित करने से पूर्व कम से कम यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए था कि वास्तविक प्रभावित पक्षों को नोटिस दिया गया था या नहीं। हालांकि, इस मामले में, यह स्पष्ट होता है कि अभिलेख में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि ग्राम प्रधान के अतिरिक्त, उक्त नोटिस किसी भी निजी पक्ष को दिया गया था, जो कार्यवाही में भाग ले रहे थे, और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि याचिकाकर्ता तो पक्षकार भी नहीं था। इसलिए, उक्त कार्यवाही जिस पर राज्य और उप-संचालक चकबन्दी ने भरोसा किया है, वह मामले का समर्थन करने के लिए निराधार है। फलस्वरूप, उप-संचालक चकबन्दी द्वारा पारित आदेश विधि की दृष्टि से गलत था।

19. अंत में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि जब चकबन्दी अधिकारी ने याचिकाकर्ता को स्वर्गीय रूदा सिंह का भतीजा मानते हुए कार्यवाही का निर्णय कर दिया था, तो ऐसी परिस्थितियों में प्रश्नगत संपत्ति को राज्य के अधीन करने का कोई औचित्य नहीं था। यह एक अलग स्थिति हो सकती है जहां याचिकाकर्ता के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्ति भी रूदा सिंह के भतीजे होने का दावा करते हुए कार्यवाही का विरोध करते, लेकिन इसे मात्र भतीजों के बीच का विवाद माना जा सकता है। हालांकि, इससे उप-संचालक चकबन्दी की इस उत्तरदायित्व

से मुक्ति नहीं मिलती कि उन्होंने यह ध्यान नहीं दिया कि यदि एक भी विधिक उत्तराधिकारी उपलब्ध होता, तो भी भूमि राज्य के अधीन नहीं की जा सकती थी। इसलिए, उप-संचालक चकबंदी द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.09.1984 न्यायिक जांच में खरा नहीं उतरता और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

20. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता डॉ. कृष्णा सिंह ने याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क का खंडन किया और उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने संपूर्ण तथ्य नहीं बताए हैं और न ही विवादित संपत्ति के संबंध में समय-समय पर पारित प्रासंगिक दस्तावेजों और आदेशों के साथ-साथ याचिकाकर्ता द्वारा तीसरे पक्ष के पक्ष में निष्पादित कुछ बाद की घटनाओं, जैसे कि उपहार विलेखों को अभिलेख पर प्रस्तुत किया है।

21. अपने तर्कों को विस्तार से बताते हुए, विद्वान स्थायी अधिवक्ता डॉ. सिंह ने प्रस्तुत किया कि प्रारंभ में उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 (संक्षेप में, 'अधिनियम 1901') की धारा 34 के अंतर्गत वाद संख्या 174 में 19.07.1979 को निर्णय लिया गया था, जिसमें रुदा सिंह के नाम पर दर्ज भूखंड संख्या 190-क का नाम हटाकर पहलवान सिंह के पुत्र नत्थू सिंह के नाम कर दिया गया था, जिन्होंने वसीयत के आधार पर दावा किया था। रुदा सिंह की शेष भूमि बद्री सिंह के तीनों पुत्रों रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह के नाम कर दी गई थी, जिन्होंने रुदा सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में उनके भतीजे (रुदा सिंह की सगी बहन के बच्चे) होने का दावा किया था।

22. प्रधान द्वारा दायर एक आवेदन पर, अधिनियम 1950 की धारा 194 के अंतर्गत कार्यवाही इस आधार पर शुरू की गई कि रुदा सिंह का कोई उत्तराधिकारी नहीं था, इसलिए भूमि ग्राम सभा के अधीन होनी चाहिए। तत्कालीन ग्राम प्रधान के कहने पर शुरू की गई उक्त कार्यवाही का रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह (जिन्होंने रुदा सिंह की सगी बहन के पुत्र होने का दावा किया) ने विरोध किया, हालांकि, उप-जिला अधिकारी, सीतापुर ने यह निर्णय दिया कि रुदा सिंह का कोई वैध उत्तराधिकारी नहीं था और आदेश दिनांक 17.09.1984 द्वारा भूमि को राज्य/ग्राम सभा के अधीन करने का निर्देश दिया गया। तब से, भूमि ग्राम सभा के नाम पर ही दर्ज है।

23. वर्ष 1995 में ग्राम में चकबंदी की कार्यवाही प्रारंभ होने पर, चंदन सिंह (याचिकाकर्ता) ने अधिनियम 1953 की धारा 9-क(2) के अंतर्गत आपत्ति दर्ज कराई और रुदा सिंह का भतीजा होने का दावा करते हुए उत्तराधिकार के आधार पर भूमि पर अधिकार का दावा किया। हालांकि, बाद में चंदन सिंह कार्यवाही में अनुपस्थित रहे और एकपक्षीय आदेश दिनांक 11.04.2008 पारित किया गया। इसके बाद, अखिलेश कुमार द्वारा भूमि बहाली के लिए एक आवेदन दिया गया, जिसे 01.08.2012 को स्वीकार कर लिया गया और उसके बाद कार्यवाही को पुनः शुरू किया गया तथा चकबंदी अधिकारी ने 09.08.2012 को विवादक विरचित किए।

24. आगे यह भी बताया गया कि इससे पहले चंदन सिंह ने 9.12.2004 को रूदा सिंह के उत्तराधिकारी होने के नाते प्रश्नगत भूमि पर अधिकार का दावा करते हुए अपनी आपत्तियां दर्ज कराई थीं, लेकिन भूमि की बहाली के बाद चंदन सिंह ने 19.06.2013 को रूदा सिंह की एक अपंजीकृत वसीयत के आधार पर आपत्तियों का एक और समूह दायर किया।

25. आगे यह भी निवेदन किया गया कि चकबन्दी अधिकारी ने आदेश दिनांक 04.01.2016 पारित करते समय पूर्व के मुकदमे से संबंधित अभिलेख में उपलब्ध सामग्री को नजरअंदाज करने में गलती की, जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि याचिकाकर्ता मात्र ग्राम प्रधान द्वारा जारी प्रमाण पत्र के आधार पर रूदा सिंह का भतीजा होने के नाते अधिकारों का दावा नहीं कर सकता था, जिसकी कोई वैधता नहीं थी। इसके अतिरिक्त, चकबन्दी अधिकारी ने पूर्व आदेश दिनांक 19.07.1979 और आदेश दिनांक 17.09.1984 के प्रभाव पर भी विचार नहीं किया, जो विचाराधीन संपत्ति से संबंधित थे और उक्त आदेश अभी भी अपरिवर्तित थे।

26. यह भी आग्रह किया गया कि प्रेमा देवी द्वारा दायर अपील के बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के समक्ष लंबित रहने के दौरान, उसने राज्य और ग्राम सभा को पक्षकार बनाया और इस बात पर जोर दिया कि उक्त भूमि राज्य में निहित की जाए। यह भी तर्क दिया गया कि अधिनियम 1950 की धारा 194 के अंतर्गत कार्यवाही में पारित आदेश को अपर आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण में चुनौती नहीं दी गई थी, जिसे आदेश दिनांक 22.02.2022 द्वारा समाप्त कर दिया गया था। यह तर्क दिया गया कि अपर आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण में आदेश दिनांक 25.11.2017 को चुनौती दी गई थी, जो मात्र एक परिणामी आदेश था, लेकिन मुख्य आदेश दिनांक 17.09.1984 को कभी चुनौती नहीं दी गई थी और इस हद तक याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सही प्रस्तुति नहीं दी है, बल्कि रिट याचिका के पैरा-6 में उनके निवेदन और प्रस्तुतियाँ दोनों अभिलेख के विरुद्ध हैं। इस प्रकार, बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी ने आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती दिए जाने के आधार पर अपील को खारिज करने में घोर त्रुटि की है।

27. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे यह भी कहा कि उपरोक्त पृष्ठभूमि में राज्य और ग्राम सभा ने उप-संचालक चकबन्दी के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिन्होंने तथ्यों पर ध्यान देने के बाद और विशेष रूप से यह देखते हुए कि आदेश दिनांक 17.09.1984 को कभी चुनौती नहीं दी गई थी और साथ ही यह तथ्य भी कि याचिकाकर्ता रूदा सिंह का भतीजा था, यह साबित करने के लिए कोई विचारणीय सामग्री नहीं थी, पुनरीक्षण याचिकाओं को स्वीकार कर लिया और उप-संचालक, चकबन्दी का आदेश दिनांक 17.09.2024 त्रुटिपूर्ण नहीं है।

28. डॉ. सिंह ने आगे बताया कि वर्तमान याचिकाकर्ता की पहचान भी संदिग्ध है, क्योंकि चंदन सिंह पुत्र फकीरे ने चकबन्दी अधिकारी के समक्ष आपत्ति दर्ज कराई थी और चंदन सिंह द्वारा दाखिल वकालतनामा में उनके हस्ताक्षरों में विसंगति थी। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह भी बताने का प्रयास किया कि चंदन सिंह के आधार कार्ड में दर्ज जन्मतिथि उनके डाइविंग लाइसेंस में दर्ज जन्मतिथि से भिन्न है।

29. आगे यह भी बताया गया कि प्रेमा सिंह द्वारा दायर अपील में, वर्तमान याचिकाकर्ता चंदन सिंह ने चंद्र पाल सिंह के उपनाम का इस्तेमाल किया और चंदन सिंह उर्फ चंद्र पाल सिंह द्वारा निष्पादित पावर ऑफ अटॉर्नी के आधार पर राम कुमार शुक्ला पुत्र शारदा प्रसाद शुक्ला, निवासी कोरैया, उदयपुर के माध्यम से प्रस्तुत हुए, जबकि राम कुमार शुक्ला ने चंद्र पाल सिंह की ओर से वकालतनामा दाखिल किया था, न कि चंदन सिंह की ओर से।

30. आगे यह भी प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि भूमि पहले से ही राज्य के स्वामित्व में थी, चंदन सिंह ने राज्य या ग्राम सभा को पक्षकार नहीं बनाया और बाद में ही डीजीसी (राजस्व) ने राज्य और ग्राम सभा को पक्षकार बनाने के लिए आवेदन किया। इसके अतिरिक्त, जैसे ही चकबन्दी अधिकारी द्वारा चंदन सिंह उर्फ चंद्र पाल सिंह का नाम रुदा सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में दर्ज करने का आदेश पारित किया गया, उन्होंने तुरंत प्रश्नगत भूमि के संबंध में राम कुमार शुक्ला और उनके परिवार के सदस्यों को दान विलेख निष्पादित कर दिए। महत्वपूर्ण बात यह है कि राम कुमार शुक्ला वही व्यक्ति हैं जिनके पुत्र ने चकबन्दी अधिकारी के समक्ष अलग से आपत्तियां दर्ज कराई थीं और चंदन सिंह ने भी राम कुमार शुक्ला के पक्ष में अपना अधिकार पत्र निष्पादित किया था, जिन्होंने चंदन सिंह की ओर से प्रेमा देवी की अपील में भाग लिया था। इससे स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि व्यक्तियों का गुट बनाकर सरकारी भूमि पर अतिक्रमण करने का प्रयास किया गया था।

31. एक और तथ्य यह बताया गया कि राम कुमार शुक्ला और उनके परिवार के सदस्यों के पक्ष में निष्पादित दान-पत्रों पर चंद्रिका प्रसाद के पुत्र देवकर प्रसाद ने गवाही दी थी, जो वही व्यक्ति है जिसने इस याचिका में याचिकाकर्ता के पैरोकार के रूप में शपथपत्र दाखिल किया है। यह बताया गया कि चंदन सिंह द्वारा राम कुमार शुक्ला और उनके परिवार के सदस्यों के पक्ष में दान-पत्र निष्पादित करने के बाद, उन्हें इस याचिका को दायर करने का कोई अधिकार नहीं रह जाता है। यह भी कहा गया कि राम कुमार शुक्ला का लगभग 16 मामलों का लंबा आपराधिक इतिहास है और वह संबंधित क्षेत्र में आतंक का अड्डा रखता है। वह सरकारी जमीन पर कब्जा करने के लिए भी उत्तरदायी है और वर्तमान याचिकाकर्ता को वह मोहरे के रूप में इस्तेमाल कर रहा है।

32. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर यह निवेदन किया गया कि उप-संचालक, चकबन्दी ने संपूर्ण पृष्ठभूमि पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि चंदन सिंह, रुदा सिंह का भतीजा था, यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने उस पूर्व आदेश दिनांक 17.09.1984 को कभी चुनौती नहीं दी थी, जिसके द्वारा भूमि राज्य के अधीन आ गई थी, और वह आदेश यथावत बना रहा, अतः उसे कोई चुनौती नहीं दी गई। इस प्रकार, अप्रत्यक्ष रूप से चकबन्दी कार्यवाही में याचिकाकर्ता द्वारा भूमि पर अतिक्रमण करना उचित नहीं था।

33. यह भी तर्क दिया गया कि चकबन्दी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी ने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि चंदन सिंह ने प्रारंभ में उत्तराधिकार के आधार पर अधिनियम 1953 की धारा 9-क(2) के अंतर्गत अपनी आपत्तियां दर्ज की थीं और बाद में रुदा सिंह की वसीयत के आधार पर आपत्तियों का एक और समूह

दायर किया था, जबकि उक्त वसीयत सम्पूर्ण कार्यवाही में कभी सामने नहीं आई और उसका आचरण भी संदिग्ध था और याचिकाकर्ता का रुदा सिंह के साथ संबंध स्थापित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था।

34. उपरोक्त सभी कारणों से, याचिकाकर्ता, जो कि राज्य की संपत्ति पर कब्जा करने और उसे हड़पने के लिए बनाया गया एक मोहरा मात्र है, का संपत्ति में कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, इसलिए, रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

35. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने प्रत्युत्तर में यह भी कहा कि राम कुमार शुक्ला के किसी भी आपराधिक इतिहास को याचिकाकर्ता के अधिकार को बदनाम करने के लिए उसके विरुद्ध नहीं पढ़ा जा सकता है और न ही इसका याचिकाकर्ता और रुदा सिंह के संबंधों पर कोई प्रभाव पड़ सकता है।

36. उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने उस आदेश को चुनौती दी थी जिसके द्वारा प्रश्नगत भूमि राज्य के अधीन कर दी गई थी, लेकिन गांव में हुए चकबंदी कार्यों के कारण पुनरीक्षण याचिका समाप्त कर दी गई थी। इसलिए, यह कहना सही नहीं है कि याचिकाकर्ता ने आदेश को चुनौती नहीं दी थी और उप-संचालक चकबंदी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष गलत हैं और अभिलेख में उपलब्ध तथ्यों के विपरीत हैं। अतः, रिट याचिका स्वीकार की जाए।

37. निजी प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री श्रास्वत श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया कि चूंकि विवादित संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में निजी प्रतिवादी संख्या 5 का कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं है, इसलिए वे कोई प्रतिवाद दाखिल नहीं करना चाहते। अतः उक्त कारणवश निजी प्रतिवादी संख्या 5 को कोई प्रस्तुति करने की आवश्यकता नहीं है।

38. न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की बात सुनी और अभिलेख में उपलब्ध सामग्री का भी परिशीलन किया।

39. यह निर्विवाद तथ्य है कि विवादित संपत्ति रुदा सिंह के नाम पर दर्ज थी। यह भी निर्विवाद है कि रुदा सिंह का निधन 12.01.1979 को हुआ था। उनकी मृत्यु के बाद दो प्रकार के दावे किए गए, पहला दावा पहलवान सिंह के पुत्र नत्थू सिंह ने रुदा सिंह द्वारा निष्पादित वसीयत के आधार पर किया, और दूसरा दावा बट्टी के तीन पुत्र रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह ने किया, जिन्होंने रुदा सिंह के भतीजे (भांजा) होने का दावा किया।

40. याचिकाकर्ता ने अपने प्रत्युत्तर शपथपत्र में इस रिश्ते का खुलासा किया है, जिसमें उन्होंने बताया है कि भुज्जा सिंह के पुत्र रुदा सिंह की दो बहनें थीं, श्रीमती सीता सिंह और श्रीमती पार्वती सिंह। वर्तमान याचिकाकर्ता

फकीरे सिंह का पुत्र है, जिसने श्रीमती सीता सिंह (रूदा सिंह की बहन) से दूसरा विवाह किया था। दूसरी बहन, श्रीमती पार्वती सिंह का विवाह बट्टी सिंह से हुआ था और इस प्रकार बट्टी के पुत्र रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह ने रूदा सिंह के भतीजे होने के नाते उनकी संपत्ति पर दावा किया था।

41. राज्य द्वारा दायर किए गए संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र के परिशीलन से यह पता चलता है कि अधिनियम 1901 की धारा 34 के अंतर्गत उत्पत्तिवर्तन कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसमें पहलवान सिंह के पुत्र नत्थू सिंह का नाम रूदा सिंह के वसीयतदार के रूप में दर्ज किया गया था, जबकि बट्टी सिंह के पुत्र रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह को रूदा सिंह (भांजा) के भतीजे होने के नाते उत्तराधिकार के आधार पर दर्ज किया गया था।

42. इस स्तर पर यह ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि यह रूदा सिंह की संपत्ति से संबंधित पहला मुकदमा है जो 1979 में शुरू हुआ था। उस समय याचिकाकर्ता के रूदा सिंह का भतीजा होने का कोई उल्लेख नहीं था। श्रीमती सीता सिंह ने भी अपने पुत्र (यदि चंदन सिंह नाबालिग होता) की ओर से कार्यवाही का विरोध नहीं किया। इसके अतिरिक्त, रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह ने भी कार्यवाही का विरोध करते हुए यह खुलासा नहीं किया कि उनका एक और भतीजा (श्रीमती सीता सिंह का पुत्र) भी था। कहा जाता है कि मुकदमे के इस पहले दौर का विरोध श्रीमती पार्वती सिंह (रूदा सिंह की दूसरी बहन) के कथित बच्चों ने किया था। अधिनियम 1901 की धारा 34 के अंतर्गत कार्यवाही में आदेश दिनांक 19.07.1979 पारित होने के बाद, राज्य के अनुरोध पर अधिनियम 1950 की धारा 194 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई, जिसका निर्णय 17.09.1984 को हुआ और भूमि राज्य के अधीन आ गई।

43. महत्वपूर्ण बात यह है कि नत्थू सिंह, जिन्होंने वसीयत के आधार पर रूदा सिंह की संपत्ति पर अधिकार का दावा किया था, और श्रीमती पार्वती सिंह के तीन पुत्रों, रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह ने आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती नहीं दी। स्वाभाविक रूप से यह तर्क निकलता है कि यदि किसी पक्ष का अधिकार समाप्त हो जाता है, तो पीड़ित पक्ष आपत्ति अवश्य उठाएगा। हालांकि, इस मामले में, रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह ने अधिनियम 1950 की धारा 194 के अंतर्गत कार्यवाही का विरोध किया, जिसका निर्णय आदेश दिनांक 17.09.1984 द्वारा राज्य के पक्ष में हुआ, लेकिन उन्होंने आगे की किसी भी कार्यवाही में उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी। इस प्रकार, रूदा सिंह की संपत्ति में रुचि रखने वाले और रूदा सिंह तथा उनके भतीजों के वसीयतदार होने के नाते अपना दावा उठाने वाले व्यक्तियों ने आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती नहीं दी और स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उन्होंने राज्य के पक्ष में अपने अधिकारों का त्याग कर दिया।

44. इस बात में कोई विवाद नहीं है कि 17.09.1984 से प्रश्नगत भूमि राज्य के नाम पर दर्ज रही और उस समय राज्य के नाम पर राजस्व अभिलेखों में दर्ज उक्त आदेश या प्रविष्टि को चुनौती देने के लिए कोई भी व्यक्ति आगे नहीं आया।

45. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता यह स्पष्ट नहीं कर सके कि वर्तमान याचिकाकर्ता, जो स्वयं को रूदा सिंह का भतीजा (भांजा) बताता है, ने 1979 में रूदा सिंह की मृत्यु के बाद या आदेश दिनांक 17.09.1984 के बाद भी अपना दावा क्यों नहीं प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता ने मात्र अस्पष्ट रूप से यह कहा कि जैसे ही उसे उक्त आदेश की जानकारी हुई, उसने उसे चुनौती दी, हालांकि अभिलेख में उपलब्ध सामग्री से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 17.09.1984 को बिल्कुल भी चुनौती नहीं दी।

46. अभिलेख से पता चलता है कि रिट याचिका के पैरा-6 में याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित कहा है:-

“6. आदेश की जानकारी होने पर याचिकाकर्ता ने अपर आयुक्त-प्रथम, लखनऊ मंडल, लखनऊ के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की। पुनरीक्षण याचिका लंबित रहने के दौरान, 22.7.1995 को उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम (जिसे आगे अधिनियम कहा गया है) की धारा 4 के अंतर्गत गांव को अधिसूचित किया गया और कार्यवाही बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के समक्ष लंबित थी, अतः 22.2.2022 को सीतापुर के उप-जिला अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.9.1984 के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को समाप्त करने का आदेश पारित किया गया। अपर आयुक्त (न्यायिक-प्रथम), लखनऊ मंडल, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.2.2022 की एक प्रति संलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है।”

47. उपरोक्त पैराग्राफ के संदर्भ में, यदि अपर आयुक्त द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.02.2022 (संलग्नक संख्या 1) का अवलोकन किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि उक्त पुनरीक्षण याचिका वर्ष 2018 में आदेश दिनांक 25.11.2017 के विरुद्ध दायर की गई थी, जो मात्र एक परिणामी आदेश था जिसके अंतर्गत राज्य के नाम पर उत्परिवर्तन प्रविष्टि की गई थी। हालांकि, आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती दिए बिना आदेश दिनांक 25.11.2017 को चुनौती देने से याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं मिल सकता है। इस तथ्य के आलोक में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह निराधार तर्क कि याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती दी थी, निराधार प्रतीत होता है और न्यायालय के समक्ष उपलब्ध अभिलेखों से इसकी कोई पुष्टि नहीं होती है।

48. इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि याचिकाकर्ता द्वारा राज्य द्वारा दायर संक्षिप्त प्रतिवाद शपथपत्र के जवाब में अपना प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल करने के बावजूद (जिसमें यह कहा गया था कि याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती नहीं दी है), याचिकाकर्ता को यह बताने का अवसर उपलब्ध था कि क्या उक्त आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती दी गई थी, और यदि हां, तो पुनरीक्षण याचिका की प्रति याचिकाकर्ता के पास उपलब्ध सर्वोत्तम साक्ष्य हो सकती थी, लेकिन इसे अभिलेख में प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसे देखते हुए और इस न्यायालय के समक्ष कोई भी सामग्री प्रस्तुत न किए जाने के कारण, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह निराधार तर्क कि याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 17.09.1984 को चुनौती दी थी, महत्वहीन हो जाता है, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि इसे इस न्यायालय के समक्ष गलत तरीके से और अभिलेख की जांच किए बिना प्रस्तुत किया गया है।

49. उपरोक्त तथ्यों को देखने का एक और तरीका है। जब याचिकाकर्ता को पता था कि विचाराधीन गाँव 1995 से ही चकबंदी प्रक्रिया के अधीन था और उसने अधिनियम 1953 की धारा 9-क(2) के अंतर्गत दो अलग-अलग आपतियाँ दर्ज कराई थीं, एक उत्तराधिकार के आधार पर 2004 में और दूसरी रूदा सिंह की वसीयत के आधार पर 2013 में, तो चकबंदी अधिकारी द्वारा उसकी आपतियों को स्वीकार किए जाने के बाद ही 2017 में अपर आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर करने का उसका क्या औचित्य था, और वह भी परिणामी आदेश को चुनौती देते हुए, न कि प्राथमिक आदेश दिनांक 17.09.1984 को? इसके अतिरिक्त, उसे पता था कि चकबंदी अधिकारी के समक्ष उसकी आपतियाँ स्वीकार कर ली गई थीं, फिर भी उसने चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश के बारे में अपर आयुक्त के न्यायालय को सूचित नहीं किया। मात्र डीजीसी (राजस्व) ने ही न्यायालय को सूचित किया कि एक अपील लंबित है जिसके कारण अपर आयुक्त ने कार्यवाही समाप्त कर दी। यह याचिकाकर्ता द्वारा अपनाई गई एक चाल प्रतीत होती है और उक्त तथ्य याचिकाकर्ता के पक्ष में नहीं जा सकता।

50. इस तथ्य के आलोक में, अपर आयुक्त द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.02.2022, जिसमें आदेश दिनांक 25.11.2017 को चुनौती दी गई थी, न कि आदेश दिनांक 17.09.1984 को, याचिकाकर्ता के पक्ष में नहीं आ सकता और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की प्रस्तुति का मूल आधार ही खो जाता है।

51. पुनरावृत्ति के जोखिम पर, यह देखा गया है कि 1979 से लेकर 2018 तक चंदन सिंह द्वारा कभी भी कोई चुनौती नहीं दी गई और न ही याचिका में, न ही प्रतिउत्तर शपथपत्र में, और न ही इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए तर्कों के दौरान इस संबंध में कोई ठोस स्पष्टीकरण दिया गया है।

52. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता चंदन सिंह द्वारा अधिनियम 1953 की धारा 9-क(2) के अंतर्गत दायर की गई दो अलग-अलग आपतियों के कारणों और उद्देश्य को स्पष्ट नहीं कर सके, बल्कि उन्हें छिपाते रहे। अधिनियम 1953 की धारा 9-क(2) के अंतर्गत दिनांक 09.12.2004 को दायर की गई पहली आपति की एक प्रति राज्य द्वारा दायर संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र के पृष्ठ 40-41 पर अभिलेख में प्रस्तुत की गई है, जिसमें चंदन सिंह उर्फ चंद्र पाल सिंह पुत्र फकीरे सिंह की आयु 50 वर्ष बताई गई है। इसके अतिरिक्त, उक्त आपतियों में दी गई वंशावली याचिकाकर्ता द्वारा इस न्यायालय के समक्ष दायर किए गए प्रतिउत्तर शपथपत्र में दी गई वंशावली से बिल्कुल भिन्न है। साथ ही, याचिकाकर्ता द्वारा अभिलेख में प्रस्तुत आधार कार्ड चंदन सिंह उर्फ चंद्र पाल सिंह के नाम पर है, जबकि उनकी जन्मतिथि 20.08.1973 बताई गई है। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि यदि याचिकाकर्ता का नाम चंदन सिंह उर्फ चंद्र पाल सिंह था, लेकिन दाखिल की गई पहचानों में चंदन सिंह का उल्लेख नहीं है और नाम "चंद्र पाल सिंह" के रूप में दिखाया गया है, जबकि जन्मतिथि पूरी तरह से भिन्न है। अर्थात्, यदि अधिनियम 1953 की धारा 9-क(2) के अंतर्गत उनकी आपतियों में उल्लिखित जन्मतिथि को देखा जाए, तो 2004 में उनकी आयु 50 वर्ष दिखाई गई है, जिसका अनिवार्य रूप से अर्थ है कि उनकी जन्मतिथि लगभग 1954 के आसपास होनी चाहिए। यदि आधार कार्ड को ध्यान में रखा जाए, तो उनकी जन्मतिथि 20.08.1973 है, और इन दोनों के बीच 20 वर्षों का भारी अंतर है।

53. इसके अतिरिक्त, चंदन सिंह द्वारा शारदा प्रसाद शुक्ला के पुत्र राम कुमार शुक्ला के पक्ष में निष्पादित पावर ऑफ अटॉर्नी में भी 'चंदन सिंह उर्फ चंद्र पाल सिंह' शब्द का प्रयोग किया गया है। राज्य द्वारा दायर संक्षिप्त प्रतिवाद के पृष्ठ 199 पर प्रस्तुत वकालतनामा में भी चंद्र पाल सिंह के नाम से हस्ताक्षर दर्शाए गए हैं, जबकि राज्य द्वारा दायर संक्षिप्त प्रतिवाद के पृष्ठ 193 पर प्रस्तुत पावर ऑफ अटॉर्नी में उनका पूरा नाम चंदन सिंह उर्फ चंद्र पाल सिंह लिखा है। इसी संदर्भ में, याचिकाकर्ता द्वारा 19.06.2013 को दायर आपतियों को देखें, जो संक्षिप्त प्रतिवाद के पृष्ठ 200 पर है, तो इससे यह स्पष्ट होता है कि चंदन सिंह ने वसीयत के आधार पर रूदा सिंह की संपत्ति में अधिकार का दावा किया था। हालांकि, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता से इस संबंध में पूछे जाने के बावजूद कोई उचित उत्तर नहीं दिया गया। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस दस्तावेज़ को संक्षिप्त प्रतिवाद शपथपत्र के साथ अभिलेख पर रखा गया था और उसके बाद याचिकाकर्ता ने प्रतिवाद शपथपत्र के जवाब में अपना प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल किया था, लेकिन उपरोक्त विसंगतियों के लिए कहीं भी कोई खंडन या स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था, जो अभिलेख पर स्पष्ट रूप से उपलब्ध हैं।

54. उपरोक्त संदर्भ में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत पहली प्रस्तुति कि उप-संचालक चकबन्दी के मन में विवादित आदेश पारित करते समय एकमात्र कारण यह था कि आदेश दिनांक 17.09.1984 अभी भी बरकरार है और उसे चुनौती नहीं दी गई थी, गलत साबित होती है और इसे खारिज कर दिया जाता है।

55. अब, आदेश दिनांक 17.09.1984 के बाद, जिसके द्वारा भूमि राज्य के अधीन आ गई थी, क्या चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा कोई भिन्न दृष्टिकोण अपनाया जा सकता था, इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है। यह निर्विवाद है कि एक बार जब किसी गाँव को चकबंदी प्रक्रिया के अंतर्गत लाया जाता है, तो कोई भी पीड़ित पक्ष आपत्ति उठा सकता है, जिस पर प्राधिकारियों द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है। इस स्थिति में, जब गाँव चकबंदी प्रक्रिया के अंतर्गत आया, तो याचिकाकर्ता ने उत्तराधिकार के आधार पर अपनी आपत्तियाँ दर्ज कीं।

56. उत्तराधिकार के आधार पर अधिकार का दावा करने के लिए याचिकाकर्ता का यह अनिवार्य कर्तव्य था कि वह यह सिद्ध करे कि वर्ष 1979 में रूदा सिंह की मृत्यु के समय, अधिनियम 1950 की धारा 171 के अनुसार उत्तराधिकार के वरीयता क्रम में कौन-कौन से उत्तराधिकारी उपस्थित और जीवित थे, और याचिकाकर्ता ही अन्य उत्तराधिकारियों पर वरीयता का दावा कैसे कर सकता है, या याचिकाकर्ता ही एकमात्र जीवित उत्तराधिकारी था। इसके लिए याचिकाकर्ता और रूदा सिंह के बीच संबंध को नए पारिवारिक वृक्ष और उत्तराधिकारियों की मृत्यु तिथि के साथ स्थापित करना आवश्यक था ताकि रूदा सिंह की मृत्यु के समय वास्तविक वरीयता प्राप्त उत्तराधिकारी का निर्धारण किया जा सके।

57. उपरोक्त तथ्य को सिद्ध करने के लिए याचिकाकर्ता ने मात्र एक प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया है, जिसकी एक प्रति याचिका के संलग्नक संख्या 5 के रूप में संलग्न की गई है। इस दस्तावेज़ के अतिरिक्त याचिकाकर्ता द्वारा कोई अन्य अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है।

58. उक्त प्रमाण पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि यह जयदेवी द्वारा जारी किया गया है, जिन्हें प्रधान बताया गया है। हालांकि, उक्त अभिलेख पर कोई तिथि नहीं है। प्रमाण पत्र में कहा गया है कि प्रधान जयदेवी प्रमाणित करती हैं कि सीतापुर तहसील और जिला, परगना जिले के ग्राम पारा निवासी भुज्जा सिंह के पुत्र रुदा सिंह का निधन हो गया है। उनके दो भाई भंगत सिंह और उज्जगर सिंह थे, जिनकी कोई संतान नहीं थी और जिनका निधन हो गया। रुदा सिंह की दो बहनें भी थीं, जिनमें पार्वती सिंह थीं, जिनकी कोई जीवित संतान नहीं थी और पार्वती सिंह का भी निधन हो गया था। दूसरी बहन सीता सिंह का भी निधन हो गया था। उनका एक पुत्र चंदन सिंह उर्फ चंद्र पाल सिंह था, जो रुदा सिंह का सगा भतीजा है और रुदा सिंह का वैध उत्तराधिकारी है। रुदा सिंह का कोई अन्य उत्तराधिकारी नहीं है।

59. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता यह साबित नहीं कर सके कि प्रधान को ऐसा प्रमाण पत्र जारी करने का अधिकार कैसे हो सकता है। यदि प्रमाण पत्र पर ध्यान भी दिया जाए, तो यह पाया जाएगा कि इस पर कोई तिथि नहीं है और यह अस्पष्ट है। प्रधान जयदेवी द्वारा जारी किए गए उक्त प्रमाण पत्र में उल्लिखित तथ्यों का कोई प्रमाण नहीं है। उक्त प्रमाण पत्र में उल्लिखित किसी भी व्यक्ति की मृत्यु तिथि का कोई उल्लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त, जिस तरीके से उक्त प्रमाण पत्र तैयार किया गया है, वह तथ्यों और इसकी प्रासंगिकता और स्वीकार्यता दोनों ही दृष्टियों से विश्वास का पात्र नहीं है।

60. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता यह साबित नहीं कर सके कि वास्तव में जब रुदा सिंह की मृत्यु 1979 में हुई थी, तब किसी भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा कोई मृत्यु प्रमाण पत्र जारी नहीं किया गया था और न ही परिवार रजिस्टर से कोई प्रासंगिक प्रविष्टियाँ अभिलेख में लाई गई थीं। ऐसे में किस प्रावधान के अंतर्गत ऐसे प्रमाण पत्र को संलग्नक संख्या 5 के रूप में अभिलेख में लाया गया और इस पर कैसे भरोसा किया जा सकता है और इसे निष्कर्ष का आधार कैसे बनाया जा सकता है, विशेषकर तब जब कथित प्रमाण पत्र में मृत्यु तिथि का उल्लेख नहीं है, जिस पर याचिकाकर्ता स्वर्गीय रुदा सिंह के साथ अपने संबंध को स्थापित करने के लिए अत्यधिक भरोसा कर रहा है। रुदा सिंह के दो भाइयों की मृत्यु तिथि का भी कोई उल्लेख नहीं है। यह इस कारण से महत्वपूर्ण है कि याचिकाकर्ता द्वारा अपने प्रत्युत्तर शपथपत्र में दिए गए वंशावली चार्ट में दो भाइयों, भंगत सिंह और उज्जगर सिंह के नाम का उल्लेख नहीं है। दोनों बहनों के विवाह की तिथि और मृत्यु की तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है, और यह इस कारण से महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या चंदन सिंह, रुदा सिंह की कथित बहन सीता सिंह का पुत्र था, और यह सब 1979 में रुदा सिंह की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार का निर्धारण करने के लिए आवश्यक था।

61. याचिकाकर्ता के लिए यह साबित करना अत्यंत महत्वपूर्ण था कि रुदा सिंह के परिवार के सदस्य कौन थे और 1979 में रुदा सिंह की मृत्यु के समय उनके कौन-कौन से विधिक उत्तराधिकारी जीवित थे। इस महत्वपूर्ण जानकारी के अभाव में, साथ ही रुदा सिंह की दोनों बहनों की शादी कब और किससे हुई थी, और रुदा सिंह की मृत्यु की तिथि को उनके कौन-कौन से भतीजे (यदि कोई थे) पैदा हुए थे और जीवित थे, यह जानना भी

आवश्यक था। इन सभी बातों के आधार पर ही रुदा सिंह की संपत्ति के सही उत्तराधिकारी का निर्धारण किया जा सकता था।

62. इसके अतिरिक्त, अभिलेख में उपलब्ध सामग्री से यह भी पता चलता है कि याचिकाकर्ता की आयु में उसके अपने दस्तावेजों के अनुसार भारी अंतर है। उसके आधार कार्ड के अनुसार याचिकाकर्ता का जन्म वर्ष 1973 में हुआ था, जबकि वर्ष 2004 में चकबन्दी न्यायालय में दायर आपत्तियों में उसकी आयु 50 वर्ष बताई गई है, जिसके अनुसार याचिकाकर्ता का जन्म लगभग 1954 में हुआ होगा। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के स्वयं के अनुसार उसकी जन्मतिथि में दो दशकों का व्यापक अंतर है और इसी कारण से याचिकाकर्ता द्वारा रुदा सिंह का उत्तराधिकारी होने और 1979 में एकमात्र उत्तराधिकारी के रूप में जीवित रहने के दावे की सत्यता अत्यधिक संदिग्ध और संदेहास्पद हो जाती है, और इसके विपरीत कोई साक्ष्य न होने के कारण यह संदेह और भी बढ़ जाता है।

63. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता इस तथ्य से अस्वीकार नहीं कर सके कि याचिकाकर्ता द्वारा संबंध स्थापित करने के लिए कोई भी महत्वपूर्ण अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया गया। किसी भी सामान्य रिश्तेदार, परिवार के सदस्य, मित्र या परिवार को जानने वाले किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया और यहां तक कि रिट याचिका दायर करने तक भी, संबंध का कोई भी प्रमाण स्थापित करने के लिए कोई अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया गया। इस संबंध में ठोस साक्ष्यों के अभाव में और जिस तरह से कार्यवाही का विरोध किया गया है, उसे देखते हुए, अर्थात् कि दो प्रकार की आपत्तियां, एक वर्ष 2004 में और दूसरी वर्ष 2013 में चकबन्दी अधिकारी के समक्ष, और वह भी पूरी तरह से विपरीत आधार पर, अर्थात् वर्ष 2004 की आपत्तियों में अधिनियम 1950 की धारा 171 के अनुसार उत्तराधिकार का दावा करना और फिर वर्ष 2013 में वसीयत के आधार पर संपत्ति में अधिकार का दावा करना, साथ ही यह तथ्य कि उक्त वसीयत 1979 से कभी भी सार्वजनिक नहीं हुई है।

64. इसके अतिरिक्त, चंदन सिंह ने शारदा प्रसाद के पुत्र राम कुमार शुक्ला के पक्ष में एक पावर ऑफ अटॉर्नी निष्पादित की थी, जिसने याचिकाकर्ता के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के रूप में कार्यवाही का विरोध किया था। यह तथ्य, साथ ही वर्ष 2016 में चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश के अनुसार राम कुमार शुक्ला का नाम दर्ज होने के तुरंत बाद याचिकाकर्ता द्वारा राम कुमार शुक्ला के परिवार के सदस्यों के पक्ष में दान-पत्र निष्पादित करने की घटना, और यह तथ्य कि यह याचिका देवकर प्रसाद नामक पैरोकार के माध्यम से दायर की गई थी, जो उक्त दान-पत्रों में साक्षी थे, और बाद में याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर किया गया जिसमें उनका नाम चंदन सिंह और जन्म तिथि 20.08.1973 बताई गई है। इसके अतिरिक्त, अभिलेख से पता चलता है कि रिट याचिका याचिकाकर्ता के रूप में चंदन सिंह उर्फ चंद्र पाल सिंह के नाम से दायर की गई थी। हालांकि, शपथपत्र पर फोटो सत्यापन में याचिकाकर्ता का नाम चंद्र पाल सिंह है। फोटो पहचान पत्र में भी नाम चंद्र पाल सिंह ही दर्ज है। आश्चर्य की बात यह है कि याचिकाकर्ता का नाम चंदन सिंह है और चंद्र पाल सिंह उपनाम प्रतीत होता है, हालांकि, उसकी फोटो पहचान उपनाम से है, न कि उसके असली नाम से। उपनाम का

प्रयोग नाम के पूरक के रूप में किया जाता है, लेकिन यह असली नाम का स्थान नहीं ले सकता। इससे संदेह भी उत्पन्न होता है क्योंकि राज्य ने अपने संक्षिप्त प्रतिवाद में इसे एक आधार बनाया है और याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवाद दाखिल करते समय या बहस के दौरान इसका कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

65. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की अंतिम प्रस्तुतियों पर आते हुए, जिसमें यह तर्क दिया गया था कि यदि रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह को भतीजा मान भी लिया जाए, तब भी भूमि राज्य के स्वामित्व में नहीं आ सकती और इस पहलू पर उप-संचालक, चकबन्दी ने ध्यान नहीं दिया है।

66. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह प्रस्तुति भी भ्रामक है, क्योंकि अधिनियम 1950 की धारा 194 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू होने के बाद, रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह ने कार्यवाही का विरोध किया था और अपनी आपत्तियां दर्ज कराई थीं। गुण-दोष के आधार पर आदेश दिनांक 17.09.1984 पारित होने के बाद, उन्होंने आदेश को आगे चुनौती नहीं दी। एक बार यह निष्कर्ष निकल जाने पर कि आदेश दिनांक 17.09.1984 एक सक्षम न्यायालय द्वारा पारित किया गया था और उक्त आदेश को आगे चुनौती नहीं दी गई थी, यह संबंधित पक्षों पर बाध्यकारी था और इस हद तक याचिकाकर्ता के लिए रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह का पक्ष लेना उचित नहीं है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता को अधिनियम 1950 की धारा 194 के अंतर्गत कार्यवाही पर प्रश्न उठाने का अधिकार नहीं है, यह आरोप लगाने के लिए कि कोई उचित उद्घोषणा नहीं थी और मात्र प्रधान को ही नोटिस दिया गया था। यह तथ्य गलत है, जैसा कि आदेश दिनांक 17.09.1984 से स्पष्ट होता है, जिसमें कहा गया है कि संबंधित पक्षों को नोटिस जारी किए गए थे और उन्होंने अपनी आपत्तियां दर्ज कराई थीं। एक बार जब पक्षकार उपस्थित होकर अपनी आपत्तियां दर्ज करा चुके थे और मामले का विरोध कर चुके थे, तो नोटिस की तामील में अनियमितता का मुद्दा महत्वहीन हो जाता है।

67. चूंकि रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह में से किसी ने भी इस प्रकार की कोई आपत्ति नहीं उठाई, इसलिए याचिकाकर्ता को अप्रत्यक्ष रूप से किसी आदेश को चुनौती देने या तामील के तरीके पर कोई आपत्ति उठाने का लाभ नहीं दिया जा सकता, क्योंकि यह आपत्ति रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह से संबंधित थी, जिन्होंने इसे नहीं उठाया। अतः, उक्त निवेदन भी इस न्यायालय को स्वीकार्य नहीं है।

68. उपरोक्त प्रस्तुतियों को खारिज करने का एक और कारण यह है कि याचिकाकर्ता ने यह खुलासा नहीं किया कि रुदा सिंह की मृत्यु के समय, याचिकाकर्ता (जिस पर भंजा होने का आरोप है) के अतिरिक्त, रुदा सिंह की बहन पार्वती सिंह के तीन अन्य भतीजे भी थे। इसके अतिरिक्त, रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह ने भी 1979 में याचिकाकर्ता को रुदा सिंह का भंजा नहीं बताया था। सम्पूर्ण कार्यवाही के दौरान, चाहे रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह हों या याचिकाकर्ता, किसी ने भी तथ्यों का खुलासा नहीं किया। प्रत्येक पक्ष दूसरे को बेदखल करने की कोशिश कर रहा था, जबकि याचिकाकर्ता या रघुबर सिंह, मंगल सिंह और भरत सिंह यदि वास्तव में रुदा सिंह के भतीजे होते तो इसका खुलासा हो जाता। महत्वपूर्ण तथ्यों का खुलासा न करना भी इस बात को पुष्ट करता है कि वे रुदा सिंह के परिवार के सदस्य या वारिस नहीं थे।

69. अंत में, अधिनियम 1950 की धारा 194 के अंतर्गत मूल कार्यवाही में 17.09.1984 को एक आदेश पारित किया गया था और यदि उसे चुनौती नहीं दी गई थी, तो याचिकाकर्ता के लिए उसे चुनौती देना अनिवार्य था, और चूंकि इसे चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए चकबन्दी प्राधिकारी इसे अनदेखा नहीं कर सकते थे। अतः, इस हद तक, चकबन्दी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेशों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस त्रुटि को उप-संचालक चकबन्दी द्वारा सुधार दिया गया था।

70. अतः जिस घुमावदार तरीके से अलग-अलग समय पर अनेक दावे प्रस्तुत किए गए हैं, और याचिकाकर्ता द्वारा उत्तराधिकार के आधार पर दावा करने तथा कथित वसीयत (जो कभी अभिलेख में नहीं रखी गई) के आधार पर दावा करने तथा रुदा सिंह के अन्य भतीजों (यदि वे वास्तव में थे) का खुलासा न करने तथा मृत्यु की तिथि बताए बिना ही यह सुविधाजनक रूप से कहने कि रुदा सिंह के सभी संबंधित व्यक्ति (भाई-बहन) मर चुके हैं, ये सभी बातें संदेह और आशंका पैदा करती हैं जिन्हें ठोस साक्ष्यों से स्पष्ट या दूर नहीं किया जा सकता। अतः, चकबन्दी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के निष्कर्ष मान्य नहीं हैं और इन सभी कारणों से उप-संचालक चकबन्दी ने इन्हें उचित रूप से खारिज कर दिया है।

71. उपरोक्त विस्तृत चर्चाओं के आलोक में, न्यायालय की स्पष्ट राय है कि उप-संचालक, चकबन्दी द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.09.2024 विधि की दृष्टि से गलत नहीं है, अतः याचिका में गुण-दोष की कमी है और इसे तदनुसार निरस्त किया जाता है। अंतरिम आदेश समाप्त किया जाता है। लागत माफ कर दी गई है।

(2025) 3 ILRA 602

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

रिट सी संख्या 605 / 2025

थॉट्सोल इंफोटेक प्राइवेट लिमिटेड

.....याची

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सुशांत

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

श्रीमती अर्चना सिंह, श्री नमन अग्रवाल, श्री वरद नाथ, श्री विवेक कुमार सिंह, ए.एस.जी.आई.

ए. सिविल विधि - एमएसएमईडी अधिनियम 2006 - धारा 11 - सार्वजनिक खरीद नीति, 2012 - एमएसएमई वरीयता - क्लाउड सेवा संविदा - संविदा की प्रकृति - अधिमान्य व्यवहार - याचिकाकर्ता ने तृतीय प्रतिवादी एक पंजीकृत एमएसई को हाइड्रोकार्बन महानिदेशालय द्वारा क्लाउड सेवा संविदा दिए जाने को चुनौती दी, जबकि याचिकाकर्ता सबसे कम बोली लगाने वाला था - चुनौती इस दावे पर आधारित थी कि तृतीय प्रतिवादी कोर क्लाउड इंफ्रास्ट्रक्चर का वास्तविक प्रदाता नहीं था, जिसे अमेज़न वेब सर्विसेज द्वारा प्रदान किया जाना था, और प्रतिवादी ने मात्र मध्यस्थ के रूप में कार्य किया - यह अभिनिर्धारित किया गया कि संविदा में सेवाओं के अतिरिक्त माल की पर्याप्त आपूर्ति शामिल थी, और इस प्रकार यह मिश्रित प्रकृति का था - सार्वजनिक खरीद नीति 2012 के अंतर्गत एमएसई वरीयता मात्र तभी उपलब्ध है जब वस्तुएं और सेवाएं एमएसई द्वारा स्वयं उत्पादित की जाती हैं - व्यापारियों, मध्यस्थों और एजेंटों को एमएसई नीति के लाभों से बाहर रखा गया था - तृतीय प्रतिवादी एमएसई लाभों का वैध रूप से दावा नहीं कर सकता था क्योंकि उसने क्लाउड सेवाओं या इंफ्रास्ट्रक्चर का उत्पादन नहीं किया था, बल्कि मात्र एडब्ल्यूएस की सेवाओं को सुगम बनाया था - इस प्रकार, संविदा का आवंटन एमएसई वरीयता के बहाने तृतीय प्रतिवादी द्वारा किया गया व्यवहार मनमाना और एमएसएमई नीति के विपरीत था, और याचिकाकर्ता राहत पाने का पात्र था। (पैरा 1 से 92)

रिट याचिका को अनुमति दी जाती है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. इस याचिका में राष्ट्रीय डेटा भंडार के उन्नयन के लिए क्लाउड सेवाओं को किराए पर लेने का संविदा, याचिकाकर्ता की सबसे कम बोली के बावजूद, हाइड्रोकार्बन महानिदेशालय द्वारा तृतीय प्रतिवादी कंपनी को दिए जाने को चुनौती दी गई है। याचिकाकर्ता का कहना है कि पंजीकृत लघु एवं मध्यम उद्यम (एमएसई) होने के कारण तृतीय प्रतिवादी को दिया गया अधिमान्य व्यवहार, जबकि संविदा का एक बड़ा हिस्सा गैर-एमएसई अर्थात् अमेज़न वेब सर्विसेज (एडब्ल्यूएस) द्वारा निष्पादित किया जाना है, लागू एमएसई नीति और उसके उद्देश्यों के विपरीत है और इस प्रकार पूरी तरह से तर्कहीन और मनमाना है।

2. भारत सरकार के पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अंतर्गत हाइड्रोकार्बन महानिदेशालय (जिसे आगे 'डीजीएच' कहा जाएगा) की स्थापना 1993 में हुई थी। इसका उद्देश्य पेट्रोलियम गतिविधियों के पर्यावरण, सुरक्षा, तकनीकी और वाणिज्यिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए तेल और प्राकृतिक गैस संसाधनों के सुचारु प्रबंधन को बढ़ावा देना था। डीजीएच को तेल एवं प्राकृतिक गैस क्षेत्र में प्राकृतिक खोज एवं उत्पादन (ई एंड पी) डेटा के प्रबंधन का भी दायित्व सौंपा गया था।

3. ई एंड पी डेटा भारत सरकार के स्वामित्व में है और एक राष्ट्रीय संपत्ति है। पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस (संशोधन) नियम, 2006 में किए गए संशोधन के अनुसार, भारत में प्रत्येक ई एंड पी ऑपरेटर को भारत में पेट्रोलियम संचालन के परिणामस्वरूप पहले से प्राप्त या भविष्य में प्राप्त होने वाले सभी डेटा को केंद्र सरकार या उसकी नामित एजेंसी को निःशुल्क उपलब्ध कराना अनिवार्य है। मंत्रालय द्वारा 2017 में जारी ई एंड पी डेटा नीति में राष्ट्रीय डेटा भंडार (संक्षेप में 'एनडीआर') के माध्यम से डेटा के संकलन, प्रकटीकरण, साझाकरण, सुलभता और प्रसार के लिए एक ढांचा तैयार करने की परिकल्पना की गई है। यह भारत सरकार द्वारा 28.2.2014 को लिए गए नीतिगत निर्णय के अनुरूप था। एनडीआर को औपचारिक रूप से 28.6.2017 को सार्वजनिक किया गया। यह वर्तमान में नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश स्थित ओआईडीबी भवन में कार्यरत है।

4. डीजीएच ने 22.3.2024 को जीईएम पोर्टल (सरकारी ई-मार्केटप्लेस संक्षेप में 'जीईएम') पर राष्ट्रीय डेटा भंडार को क्लाउड प्लेटफॉर्म पर अपग्रेड करने के लिए क्लाउड सेवा किराए पर लेने हेतु संविदाएं जारी कीं (जिसे आगे 'क्लाउड संविदा' कहा गया है)। याचिकाकर्ता और तृतीय प्रतिवादी दोनों तकनीकी रूप से क्लाउड संविदा के लिए योग्य पाए गए और उनकी वित्तीय बोलियों के मूल्यांकन के बाद याचिकाकर्ता को परियोजना के लिए सबसे प्रतिस्पर्धी दरें प्रस्तुत करने के कारण एल1 (सबसे कम बोली लगाने वाला) के रूप में चुना गया। याचिकाकर्ता के एल1 (सबसे कम बोली लगाने वाला) होने के बावजूद, क्लाउड संविदा याचिकाकर्ता को नहीं दिया गया। इसका कारण यह है कि तृतीय प्रतिवादी एक पंजीकृत एमएसई है और लागू प्रावधानों के अनुसार उसे याचिकाकर्ता की वित्तीय बोली के बराबर अपनी वित्तीय बोली लगाने का विकल्प दिया गया है।

5. सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम विकास अधिनियम, 2006 (जिसे आगे 'अधिनियम 2006' कहा गया है) और इसके अंतर्गत जारी किए गए नीतिगत दस्तावेजों पर डीजीएच द्वारा 26.12.2024 को तृतीय प्रतिवादी को क्लाउड संविदा प्रदान करने के लिए भरोसा किया गया है।

6. तृतीय प्रतिवादी को क्लाउड संविदा दिए जाने से असंतुष्ट याचिकाकर्ता, जो एक गैर-एमएसई उद्यम है, ने यह याचिका दायर की है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता का कहना है कि क्लाउड संविदा के लिए सबसे कम बोली लगाने वाला होने के नाते उसे ही यह संविदा दिया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप, डीजीएच को याचिकाकर्ता के पक्ष में क्लाउड संविदा देने का आदेश देने की प्रार्थना की गई है।

7. रिट याचिका पर 10.1.2025 को सुनवाई हुई और प्रतिवादियों को उचित निर्देश प्राप्त करने के लिए समय दिया गया। डीजीएच ने 21.1.2025 को इस मामले में एक संक्षिप्त प्रतिवाद शपथपत्र दाखिल किया। तृतीय प्रतिवादी का प्रतिवाद शपथपत्र भी 27.1.2025 को दाखिल किया गया। मामले की विस्तृत सुनवाई हुई और इस न्यायालय ने 31.1.2025 को निम्नलिखित आदेश पारित किए:-

"आज जब इस मामले पर सुनवाई हुई, तो याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे.एस.आई. दीपक ने न्यायालय के समक्ष लिखित रूप में प्रस्तुति दी जिसमें दस्तावेजों को संलग्न किया गया था ताकि यह दिखाया जा सके कि संविदा का एक बड़ा हिस्सा अमेज़ॅन वेब सर्विस की ओर से किए गए कार्य से संबंधित है और तृतीय प्रतिवादी द्वारा प्रदान की गई सेवा मात्र आकस्मिक है और अमेज़ॅन वेब सर्विस को आवंटित हिस्से की तुलना में नगण्य रूप से छोटी है।

लिखित प्रस्तुति के साथ संलग्न चार्ट, हालांकि, रिट याचिका का हिस्सा नहीं है और न ही इसके समर्थन में कोई शपथपत्र है। इसके अभाव में न्यायालय के लिए ऐसी सामग्री पर संज्ञान लेना कठिन होगा।

इस प्रकार की टिप्पणी का सामना करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने स्थगन की मांग की है क्योंकि वे ऐसे दस्तावेजों को अभिलेख पर लाने के लिए एक अतिरिक्त शपथपत्र दाखिल करने का आशय रखते हैं।

ऐसा शपथपत्र तीन दिनों के भीतर दाखिल किया जाए।

इसके बाद प्रतिवादीगण के पास जवाब प्रस्तुत करने के लिए तीन दिन का समय होगा।

यह मामला 7 फरवरी, 2025 को एक बार फिर नवीन सूची में सूचीबद्ध हो।

नियोक्ता की ओर से उपस्थित श्रीमती अर्चना सिंह ने कहा कि तृतीय प्रतिवादी को पहले ही कार्य आदेश जारी किया जा चुका है। हालांकि, यह तथ्य अभिलेख में उपलब्ध नहीं है।

हम प्रतिवादियों को भी तीन दिनों के भीतर ऐसी सामग्री अभिलेख पर लाने की अनुमति देते हैं।

मामले के तथ्यों में विचारणीय विवाद्यों को ध्यान में रखते हुए, हम यह प्रावधान करते हैं कि तृतीय प्रतिवादी के पक्ष में संविदा का कोई भी समझौता वर्तमान रिट याचिका के परिणाम के अधीन रहेगा।"

8. याचिकाकर्ता ने यह साबित करने के लिए एक पूरक शपथपत्र दायर किया कि क्लाउड संविदा दो अलग-अलग संस्थाओं, अर्थात् सी.एस.पी. (क्लाउड सेवा प्रदाता) और प्रबंधित सेवा प्रदाता (एमएसपी) द्वारा निष्पादित किया जाना है। क्लाउड संविदा का प्रमुख हिस्सा सीएसपी द्वारा निष्पादित किया जाना है। एमएसपी अर्थात् तृतीय प्रतिवादी द्वारा मात्र आकस्मिक या सहायक सेवाएं प्रदान की जानी हैं। यह विशेष रूप से दावा किया गया है कि क्लाउड संविदा के लिए वित्तीय व्यय का 97% सीएसपी इस मामले में एडब्ल्यूएस को आवंटित किया गया है, जबकि एमएसपी को मात्र 3% प्राप्त होता है। याचिकाकर्ता के अनुसार, क्लाउड संविदा सेवा मुख्य रूप से सीएसपी द्वारा निष्पादित की जानी है, इसलिए एमएसपी की एमएसई के रूप में स्थिति क्लाउड संविदा प्रदान करने के लिए एक प्रासंगिक विचारणीय बिंदु नहीं हो सकती है। प्रतिवादियों ने दावे का खंडन करते हुए जवाबी शपथपत्र दायर किए, जिसके बाद रिट याचिका की सुनवाई समाप्त हो गई।

संविदा

9. आगे बढ़ने से पहले क्लाउड संविदा की प्रमुख विशेषताओं पर संक्षेप में ध्यान देना उचित होगा। क्लाउड संविदा के लिए बोलियां डीजीएच द्वारा जीईएम पोर्टल पर आमंत्रित की गई थीं। बोली अभिलेख में क्लाउड संविदा के लिए प्रस्ताव का अनुरोध शामिल था। बोली अभिलेख के विभिन्न खंडों में क्लाउड संविदा के कार्यान्वयन में अपनाई जाने वाली विधि और कार्यप्रणाली निर्दिष्ट की गई है। बोली अभिलेख के खंड 4.2 में बोली का

उद्देश्य राष्ट्रीय डेटा भंडार (एनडीआर 1.0) का उन्नयन बताया गया है। इसमें दर्ज है कि यह बोली अभिलेख (भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय) एमईआईटीवाई के प्रबंधित सेवा प्रदाता (संक्षेप में 'एमएसपी') / सूचीबद्ध क्लाउड सेवा प्रदाता (संक्षेप में 'सीएसपीएस') की नियुक्ति के लिए जारी किया जा रहा है, जो एनडीआर 2.0 अनुप्रयोगों को क्लाउड प्लेटफॉर्म पर होस्ट करने के लिए आवश्यक क्लाउड आईटी अवसंरचना प्रदान करेंगे। एनडीआर 2.0 की आवश्यकता के व्यापक कारण, जैसा कि बोली अभिलेख में उल्लेख किया गया है, नीचे दिए गए हैं:-

“(क) वर्तमान संविदा समाप्त हो रहा है और हार्डवेयर और अन्य बुनियादी ढांचे को बदलने की आवश्यकता है।

(ख) एनडीआर डेटा तक कभी भी, कहीं भी, किसी भी डिवाइस से पहुंच सुनिश्चित करने के लिए वर्चुअल डेटा रूम की स्थापना करना, ताकि वैश्विक स्तर पर इसकी व्यापक उपस्थिति दर्ज की जा सके।

(ग) प्रभावी और संपर्क रहित डेटा वितरण के लिए एप्लिकेशन के माध्यम से उपयोग किए जाने वाले कच्चे/प्री-स्टैक भूकंपीय डेटा को ऑफलाइन संग्रहीत किया जाता है।

(घ) प्रतिबंधित क्षेत्रों का अधिकांश भाग विद्युत एवं तेल परिवहन ई एंड पी गतिविधियों के लिए खोल दिया गया है, जिससे संभावित रूप से बड़ी मात्रा में ई एंड पी डेटा उत्पन्न होगा।

(ङ) उद्योग की अपेक्षाओं को पूरा करने और ई एंड पी बिड राउंड को प्रभावी ढंग से संचालित करने के लिए एप्लिकेशन स्टैक को बेहतर सुविधाओं और बेहतर उपयोगकर्ता अनुभव की आवश्यकता है।”

10. मूलतः क्लाउड संविदा के अंतर्गत निम्नलिखित कार्यो को निष्पादित करने की परिकल्पना की गई है:-

“क. कंप्यूट सेवाएं, स्टोरेज - वीएम/वीडीआई से संलग्न, डेटा स्थानांतरण/डेटा आउट शुल्क, डेटाबेस और एनालिटिक्स, सुरक्षा/अन्य घटक

ख. भंडारण - ई एंड पी श्रेणी के डेटा और सीडीएन सेवाओं के लिए ब्लॉब/ऑब्जेक्ट/हॉट/आरचिव

ग. सहायता सेवाएं

घ. एक बार का प्रवास”

11. खंड 'क' और 'ख' में शामिल सेवाओं में मुख्य रूप से कंप्यूटिंग सेवाएं और स्टोरेज शामिल हैं। ये सेवाएं सीएसपी द्वारा प्रदान की जाएंगी। खंड 'ग' और 'घ' में शामिल क्लाउड संविदा के शेष भाग में सहायक सेवाएं और वर्तमान डेटा का माइग्रेशन शामिल है, जिसे एमएसपी द्वारा सीएसपी के स्वामित्व वाले सॉफ्टवेयर पर किया जाएगा।

12. संविदा में डीजीएच को क्रेता के रूप में परिभाषित किया गया है, जबकि बोली अभिलेख के खंड 34 में 'सेवा' को इस प्रकार निर्दिष्ट किया गया है:-

"सेवा" से तात्पर्य क्रेता या उसकी नामित एजेंसियों के हितधारकों, क्रेता या उसकी नामित एजेंसियों के कर्मचारियों और पेशवरों को प्रदान की जाने वाली सेवा से है, जिसमें चयनित बोलीदाता द्वारा निर्मित, प्राप्त, स्थापित, प्रबंधित और संचालित मूर्त और अमूर्त संपत्तियों का उपयोग किया जाता है, जिसमें सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उपकरण भी शामिल हैं।"

13. बोलीदाता को जीईएम पोर्टल पर दो बोलियां जमा करनी थीं, अर्थात् पूर्व-योग्यता और तकनीकी बोली तथा (ख) वित्तीय बोली।

14. मूल्यांकन प्रक्रिया और मानदंड संविदा अभिलेख के खंड 6 में निर्दिष्ट किए गए हैं। खंड 6.1.2 में यह निर्दिष्ट किया गया है कि मात्र उन्हीं योग्य संविदाकर्ताओं की वित्तीय संविदाएं खोली जाएंगी जिन्होंने पूर्व-योग्यता और तकनीकी मूल्यांकन मानदंडों को पूरा किया हो। संविदा अभिलेख में सीएसपी और एमएसपी द्वारा किए जाने वाले कार्यों की प्रकृति को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है:-

"इस बोली दस्तावेज़ में परिभाषित प्रबंधित सेवाएँ, सीएसपी द्वारा उपभोक्ता को प्रदान की जाने वाली वह क्षमता है जिसके अंतर्गत उपभोक्ता प्रदाता द्वारा समर्थित प्रोग्रामिंग भाषाओं, लाइब्रेरी, एपीआई, सेवाओं और उपकरणों का उपयोग करके बनाए गए या प्राप्त किए गए एप्लिकेशन को क्लाउड इन्फ्रास्ट्रक्चर पर तैनात कर सकता है। उपभोक्ता/एमएसपी अंतर्निहित क्लाउड इन्फ्रास्ट्रक्चर सहित नेटवर्क, सर्वर, ऑपरेटिंग सिस्टम या स्टोरेज का प्रबंधन या नियंत्रण नहीं करता है, लेकिन तैनात किए गए एप्लिकेशन और संभवतः एप्लिकेशन होस्टिंग वातावरण के कॉन्फिगरेशन सेटिंग्स पर उसका नियंत्रण होता है।

जहां भी लागू हो, बोलीदाता को प्रबंधित सेवा के लिए दिए गए संदर्भ लिंक का पालन करना होगा। यदि बोलीदाता प्रबंधित सेवा की आवश्यकता का पालन नहीं करता है, तो क्रेता बोलीदाता को अस्वीकार कर सकता है।"

15. बोली अभिलेख के खंड 13.4.4 में प्रबंधित सहायता सेवा/हेल्पडेस्क की सेवा का उल्लेख है। खंड के उपखंड 1 से 4 तक 13.4.4 भी प्रासंगिक हैं और इन्हें आगे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"1. बोलीदाता किसी भी समय (दिन में 24 घंटे, सप्ताह में 7 दिन) फोन, चैट और ईमेल सहायता सहित सभी संभावित माध्यमों से क्रेता को सेवा सहायता प्रदान करने के लिए सक्षम संसाधनों का एक समूह/टीम बनाए रखेगा, जिसमें प्रावधान, कॉन्फिगरेशन, अनुकूलन, रखरखाव, सुरक्षा, प्रदर्शन, समस्या निवारण आदि शामिल हैं।

2. बोलीदाता को सेवा हेल्पडेस्क का विवरण (हेल्पलाइन संख्या, ईमेल पता, समस्या निवारण विवरण आदि सहित) प्रदान करना होगा। यह सेवा हेल्पडेस्क एकमात्र संपर्क बिंदु होगा और एनडीआर 2.0 सेटअप और संचालन में सहायता के लिए हर समय उपलब्ध होना चाहिए। बोलीदाता यह सुनिश्चित करेगा कि प्रस्तावित टीम सभी कार्यों को पेशेवर और समयबद्ध तरीके से पूरा करे।

3. यदि बोलीदाता एक एमएसपी है, तो उसे संविदा की पूरी अवधि के दौरान प्रस्तावित सीएसपी के साथ निरंतर समर्थन समझौता करना होगा, ताकि संविदा अवधि के दौरान संपूर्ण समाधान के सुचारु संचालन के लिए बोलीदाता को सीएसपी से आवश्यक सभी सहायता उपलब्ध हो सके। बोलीदाता यह सुनिश्चित करने के लिए उत्तरदायी होगा कि बोलीदाता और सीएसपी के बीच समझौते का स्तर इस संबंध में कोई बाधा न बने।

4. सीएसपी और बोलीदाता यह सुनिश्चित करेंगे कि एनडीआर 1.0 से एनडीआर 2.0 में माइग्रेशन सफलतापूर्वक हो और सेवा का उपयोग करते हुए इसे सर्वोत्तम संभव/इष्टतम तरीके से अनुकूलित किया जाए। इस आरएफपी में परिभाषित सफल माइग्रेशन के दौरान किसी भी विसंगति/विलंब/चुनौती की स्थिति में, सीएसपी और बोलीदाता की उत्तरदायित्व होगी कि वे क्रेता पर बिना किसी अतिरिक्त लागत के आवश्यक पेशेवर सेवा उपलब्ध कराएं।”

16. बोलीदाता से वर्तमान एनडीआर 1.0 अनुप्रयोगों, प्रक्रियाओं, अनुप्रयोगों और डेटाबेस के सुचारु माइग्रेशन के चरणों और अनुप्रयोगों तथा डेटा के बीच किसी भी अंतरनिर्भरता की संपूर्ण संरचना को समझने की अपेक्षा की जाती है। बोलीदाता चयनित एप्लिकेशन सेवा प्रदाता के समन्वय और डीजीएच के परामर्श से क्लाउड प्लेटफॉर्म पर सभी सुरक्षा उपायों/स्केलेबिलिटी/एक्सेसिबिलिटी के साथ अपने एप्लिकेशन की तैनाती के लिए उत्तरदायी होगा। खंड 16.3.2 उत्तरदायित्व मैट्रिक्स निर्दिष्ट करता है। इसमें तालिका 19 शामिल है जो प्रत्येक हितधारक की उत्तरदायित्व को निर्दिष्ट करती है। प्रबंधित सेवा प्रदाता को बोली जमा करते समय सीएसपी द्वारा प्रारूप 'क' में एक प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक है, जिसके अनुसार वे (सीएसपी) सेवा की 99.5% उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए उत्तरदायी हैं, सिवाय अभिलेखीय भंडारण के लिए जिसकी उपलब्धता 99% होनी चाहिए। बोली अभिलेख में सीएसपी द्वारा एक प्रमाण पत्र की भी परिकल्पना की गई है जिसमें यह प्रमाणित किया गया है कि वह तालिका 25 में सूचीबद्ध सभी सेवाओं के लिए एकल बिंदु समर्थन और समाधान तथा एकल कंसोल बिलिंग प्रदान करने के लिए उत्तरदायी होगा। सीएसपी को यह भी पुष्टि करनी होगी कि बोलीदाता (एमएसपी) द्वारा प्रस्तावित प्लेटफॉर्म सेवा प्रत्यक्ष रूप से प्रबंधित सेवा है, जिसमें सीएसपी रनटाइम, मिडलवेयर, ऑपरेटिंग सिस्टम, वर्चुअलाइजेशन, सर्वर, स्टोरेज, नेटवर्किंग, लाइसेंस और उनके अपग्रेड, पैच आदि का प्रबंधन करता है। सीएसपी से एक और घोषणा की आवश्यकता थी कि मूल्य सूची (सामग्री का बिल) में सूचीबद्ध सभी सेवाएं संविदा अवधि के दौरान उपलब्ध रहेंगी। यदि कोई सेवा अप्रचलित हो जाती है, तो उसी सेवा का समकक्ष या उच्चतर संस्करण समान या कम लागत पर प्रदान किया जाना था। प्रारूप क के खंड 5, 6 और 7 प्रासंगिक हैं और इन्हें आगे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“5. हम पुष्टि करते हैं कि हम बोलीदाता के साथ मिलकर परियोजनाओं के लिए आवश्यक सभी क्लाउड सेवाओं की निगरानी और प्रबंधन सुनिश्चित करने की दिशा में काम करेंगे, जिसमें एक ही कंसोल के माध्यम से मॉनिटरिंग डैशबोर्ड और लॉगिंग शामिल है।

6. हम पुष्टि करते हैं कि हम परियोजना की संपूर्ण अवधि के दौरान (बोलीदाता का नाम) को सभी आवश्यक सहायता और तकनीकी सहयोग प्रदान करेंगे। हमारी तकनीकी टीम, जिसमें तकनीकी समाधान आर्किटेक्ट और खाता प्रबंधक शामिल हैं, इस संविदा की अवधि के दौरान क्रेता को सभी आवश्यक सहायता

(जैसे समाधान डिजाइन की समीक्षा, आर्किटेक्चर की समीक्षा, लागत अनुकूलन, स्केलेबिलिटी, परिचालन उत्कृष्टता, उच्च प्रदर्शन, सुरक्षा संबंधी सुझाव, स्थिरता आदि में सहायता) प्रदान करेगी।

7. हम क्लाउड द्वारा प्रदत्त सभी कार्यक्षमताओं को सुरक्षित, प्रमाणित और अधिकृत एपीआई के रूप में प्रदान करने के लिए सहमत हैं ताकि मानवीय त्रुटियों से जुड़ी चुनौतियों को समाप्त किया जा सके, महत्वपूर्ण डेटाबेस के साथ मैनुअल मानवीय अंतःक्रिया से बचा जा सके और ग्राहकों को व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुसार अपने वातावरण में एपीआई को एकीकृत करने की सुविधा प्रदान की जा सके।”

17. खंड 16.4.3 में प्रारूप सीपी-3: वाणिज्यिक प्रस्ताव (सामग्री का बिल) शामिल है। बोलीदाता को अपने वाणिज्यिक प्रस्ताव में खंड 'क' और 'ख' में सीएसपी कार्य/सेवाओं पर प्रतिशत के आधार पर दी जाने वाली छूट और खंड 'ग' और 'घ' में एमएसपी द्वारा प्रदान की जाने वाली अन्य सेवाओं का विवरण देना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं:-

“क. कंप्यूट सेवा, वीएम/वीडीआई से जुड़ी स्टोरेज, डेटा ट्रांसफर/डेटा आउट शुल्क, डेटाबेस और एनालिटिक्स, सुरक्षा/अन्य घटक;

ख. ई एंड पी श्रेणी के डेटा और सीडीएन सेवा के लिए स्टोरेज, ब्लॉब/ऑब्जेक्ट/हॉट/आरचिव खंड क और ख में निर्धारित कार्यों का निष्पादन सीएसपी द्वारा किया जाना है;

ग. इसमें सहायता सेवा की लागत निर्दिष्ट है;

जबकि घ. में हार्ड डिस्क से क्लाउड में एक बार के माइग्रेशन के शुल्क शामिल हैं।”

18. इस बोली में एमएसई को खरीद में वरीयता देने का प्रावधान भी शामिल था, जो इस प्रकार है:-

“1. लघु एवं मध्यम उद्यमों (एमएसईएस) को क्रय वरीयता: लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय द्वारा जारी सार्वजनिक क्रय नीति आदेश, 2012 दिनांक 23.03.2012 और संबंधित मंत्रालय द्वारा जारी अनुवर्ती आदेशों/अधिसूचनाओं में परिभाषित एमएसईएस को क्रय वरीयता दी जाएगी। यदि कोई बोलीदाता सेवा के लिए क्रय वरीयता का लाभ उठाना चाहता है, तो उसे प्रस्तावित सेवा का सेवा प्रदाता होना चाहिए। इस संबंध में प्रासंगिक अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तावित सेवा के लिए बोली के साथ अपलोड किए जाने चाहिए। यदि एल-1 एक एमएसई नहीं है और एमएसई सेवा प्रदाता ने संबंधित नीति में परिभाषित क्रय वरीयता मार्जिन/मूल्य बैंड के एल-1 + 15% के भीतर मूल्य उद्धृत किया है, तो एल-1 की बोली मूल्य की स्वीकृति के अधीन, 100% ऑर्डर मात्रा ऐसे एमएसई बोलीदाता को आवंटित की जाएगी।

लघु एवं मध्यम उद्यम आदेश, 2012 और सार्वजनिक खरीद नीति (मेक इन इंडिया को प्राथमिकता) आदेश, 2017 के समवर्ती अनुप्रयोग के अनुपालन हेतु ओएम संख्या 1 4 2021 पीपीडी दिनांक 18.05.2023।”

19. संविदा में संशोधन के लिए 25.7.2024 को एक संशोधन प्रकाशित किया गया था, जिसमें लघु एवं मध्यम उद्यमों (एमएसई) पर खरीद वरीयता की प्रयोज्यता को स्पष्ट किया गया था। संशोधन का खंड 4 वर्तमान उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक है और इसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“4. लघु एवं मध्यम उद्यमों (एमएसई) को क्रय वरीयता: लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय द्वारा दिनांक 23.03.2012 को जारी लघु एवं मध्यम उद्यम (एमएसई) सार्वजनिक क्रय नीति आदेश, 2012 और संबंधित मंत्रालय द्वारा जारी इसके बाद के आदेशों/अधिसूचनाओं में परिभाषित एमएसई को क्रय वरीयता दी जाएगी। यदि बोलीदाता क्रय वरीयता का लाभ उठाना चाहता है, तो माल की आपूर्ति के लिए बोली लगाने के मामले में बोलीदाता प्रस्तावित उत्पाद का निर्माता होना चाहिए। व्यापारी लघु एवं मध्यम उद्यम सार्वजनिक क्रय नीति के दायरे से बाहर हैं। सेवा के लिए बोली के संबंध में, बोलीदाता प्रस्तावित सेवा का सेवा प्रदाता होना चाहिए। इस संबंध में प्रासंगिक अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तावित उत्पाद या सेवा के संबंध में बोली के साथ अपलोड किए जाने चाहिए। यदि एल-1 एक एमएसई नहीं है और एमएसई विक्रेता ने संबंधित नीति में परिभाषित क्रय वरीयता/मूल्य बैंड के एल-1+ 15% मार्जिन के भीतर मूल्य उद्धृत किया है, तो ऐसे विक्रेता को एल-1 मूल्य के बराबर मूल्य उद्धृत करने का अवसर दिया जाएगा और संविदा मान्य होगा। कुल मूल्य के 100% के प्रतिशत के लिए पुरस्कृत किया गया।”

20. याचिकाकर्ता की ओर से एक पूरक शपथपत्र दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि क्लाउड संविदा के लिए कुल बोली राशि 37.92 करोड़ रुपये में से 35.83 करोड़ रुपये 'क' और 'ख' मदों के अंतर्गत सीएसपी से माल और सेवाओं की खरीद के लिए आवंटित किए जाने थे, जबकि एमएसपी द्वारा प्रदान की जाने वाली आकस्मिक सेवाओं के लिए क्रमशः 89.57 लाख रुपये और 1.19 करोड़ रुपये निर्धारित किए गए थे। अतः यह दावा किया गया है कि संविदा मूल्य के लिए देय राशि का 97% प्रतिवादी संख्या 3 के सीएसपी अर्थात 'एडब्ल्यूएस' को आवंटित किया जाना था, जबकि तृतीय प्रतिवादी को उत्पादों और सेवाओं की स्थापना/सेटअप/कमीशनिंग/रखरखाव से संबंधित आकस्मिक सेवाओं के लिए कुल संविदा मूल्य का मात्र 3% ही प्राप्त होना था। याचिकाकर्ता यह भी प्रस्तुत करता है कि तृतीय प्रतिवादी उन माल और सेवाओं का मूल आपूर्तिकर्ता नहीं है जो डीजीएच द्वारा जारी संविदा की पूर्ति के लिए आवश्यक हैं।

21. याचिकाकर्ता द्वारा 4.2.2025 को दायर किए गए पूरक शपथपत्र के साथ एक चार्ट भी संलग्न किया गया है, जिसके अनुसार याचिकाकर्ता की बोली में सीएसपी घटक 97.21% है जबकि एमएसपी घटक 2.79% है, वहीं तृतीय प्रतिवादी के लिए सीएसपी घटक 97.12% है जबकि एमएसपी घटक 2.88% है।

22. हम याचिकाकर्ता के इस तर्क का भी उल्लेख कर सकते हैं कि यद्यपि संविदा स्पष्ट रूप से एनडीआर के उन्नयन के लिए क्लाउड सेवा किराए पर लेने का है, लेकिन इसका अधिकांश भाग माल उपलब्ध कराने से संबंधित है, जिससे यह एक कार्य संविदा बन जाता है। आरएफपी के खंड 12.16 और 13.2.2 पर भरोसा किया गया है, जिसमें कहा गया है कि लाइसेंस और सॉफ्टवेयर डीजीएच की ओर से खरीदे जाएंगे और डीजीएच के स्वामित्व में होंगे तथा डीजीएच के नाम पर पंजीकृत होंगे।

23. यह दावा किया गया है कि माल में लाइसेंस और सॉफ्टवेयर जैसे अमूर्त उत्पाद भी शामिल हैं। एमएसई आदेश का हवाला देते हुए यह तर्क दिया गया है कि लाइसेंस जैसे अमूर्त उत्पादों को भी माल माना जाना चाहिए। अतः यह निवेदन किया गया है कि चूंकि संविदा में माल और सेवा दोनों शामिल हैं, इसलिए इसे कार्य संविदा माना जाना चाहिए, जिसके अंतर्गत उचित नियामक एमएसई योजना के अंतर्गत तृतीय प्रतिवादी को अधिमान्य व्यवहार नहीं दिया जा सकता।

एमएसएमई योजना

24. सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के संवर्धन, विकास और प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने तथा उनसे संबंधित मामलों के लिए अधिनियम 2006, 2.10.2006 को लागू हुआ। इससे पहले लघु उद्योग क्षेत्र को उद्योग (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1951 की धारा 11ख के अंतर्गत परिभाषित किया गया था। उक्त अधिनियम, 1951 की धारा 29ख में लघु उद्योग के लिए विशेष रूप से विनिर्माण हेतु आरक्षित माल को अधिसूचित किया गया था। हालांकि, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के संबंध में एक विस्तृत विधिक ढांचा उपलब्ध नहीं था, जिसके कारण अधिनियम संख्या 27 / 2006 को लागू किया गया। अधिनियम, 2006 की धारा 7 और 8 के अंतर्गत कुछ उद्यमों को सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के रूप में वर्गीकृत किया गया। अधिनियम, 2006 के अध्याय (iv) में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के संवर्धन, विकास और प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने का विनियमन किया गया। धारा 9 में ऐसे उद्यमों के संवर्धन एवं विकास के लिए उपायों का प्रावधान किया गया। धारा 10 में ऋण सुविधाएं प्रदान करने का प्रावधान है। धारा 11 में खरीद वरीयता नीति पर विचार किया गया है जिससे हम वर्तमान मामले में संबंधित हैं।

25. धारा 11 के अंतर्गत प्राप्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों (एमएसएमई) के लिए आदेश दिनांक 23.3.2012 द्वारा सार्वजनिक खरीद नीति 2012 लागू की गई। 2012 के आदेश के खंड 3 में यह प्रावधान था कि प्रत्येक केंद्रीय मंत्रालय या विभाग या सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम को वित्तीय वर्ष 2012-13 से लघु एवं मध्यम उद्यमों से खरीद का वार्षिक लक्ष्य निर्धारित करना होगा, जिसका उद्देश्य तीन वर्षों की अवधि में एमएसई द्वारा उत्पादित उत्पादों और प्रदान की गई सेवाओं की कुल वार्षिक खरीद का न्यूनतम 20% प्राप्त करना होगा। तीन वर्ष की अवधि के बाद, अर्थात् 1.4.2015 से, न्यूनतम 20% का समग्र खरीद लक्ष्य अनिवार्य कर दिया गया। 2012 के आदेश के खंड 6 में एमएसएमई के लिए संविदाओं में मूल्य उद्धरण में वरीयता देने का प्रावधान था, जो इस प्रकार है:-

“संविदाओं में मूल्य उद्धरण - (1) संविदा में, भाग लेने वाले लघु एवं मध्यम उद्यम जो एल1+15 प्रतिशत के मूल्य बैंड के भीतर मूल्य उद्धृत करते हैं, उन्हें अपनी आवश्यकता का एक हिस्सा एल1 मूल्य तक कम करके आपूर्ति करने की अनुमति दी जाएगी, ऐसी स्थिति में जहां एल1 मूल्य किसी अन्य लघु एवं मध्यम उद्यम से है, और ऐसे लघु एवं मध्यम उद्यम को कुल संविदा मूल्य के 20 प्रतिशत तक आपूर्ति करने की अनुमति दी जाएगी।

(2) यदि एक से अधिक लघु एवं मध्यम उद्यम हों, तो आपूर्ति को आनुपातिक रूप से (प्रविष्ट मात्रा के अनुसार) साझा किया जाएगा।”

26. सार्वजनिक खरीद नीति को मंत्रालय द्वारा कार्यालय जापन दिनांक 25.3.2022 के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। कुछ अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्नों की विस्तृत व्याख्या की गई है। प्रश्न संख्या 18, 21, 32, 47 और 48 पर भरोसा किया गया है, जिन्हें नीचे दिया गया है:-

“प्रश्न संख्या 18: क्या यह नीति कार्यों/व्यापारिक गतिविधियों पर भी लागू होती है?

उत्तर: यह नीति मात्र लघु एवं मध्यम उद्यमों द्वारा उत्पादित माल और प्रदान की गई सेवाओं की खरीद के लिए है। हालांकि, व्यापारी/वितरक/एकमात्र एजेंट/कार्य संविदाकर्ता, लघु एवं मध्यम उद्यमों के लिए सार्वजनिक खरीद नीति आदेश, 2012 के दायरे से बाहर हैं।

प्रश्न संख्या 21: क्या एल1+15% बैंड के भीतर कीमत उद्धृत करने वाले एमएसई को संविदा के लिए पूरी आपूर्ति दी जा सकती है, यदि संविदा मद को विभाजित/बॉटल नहीं जा सकता है?

उत्तर: यदि संविदा मद को विभाजित या अलग नहीं किया जा सकता है, तो एमएसई को संविदा मूल्य की पूरी आपूर्ति के लिए एल1+15% के दायरे में मूल्य उद्धृत करने वाले एमएसई को सरकारी खरीद को बढ़ावा देने की नीति की भावना को ध्यान में रखते हुए ठेका दिया जा सकता है।

प्रश्न संख्या 32: क्या कार्य संविदा सेवा का हिस्सा है? कार्य और सेवा में क्या अंतर है?

उत्तर: एमएसई के लिए सार्वजनिक खरीद नीति के दायरे में कार्य संविदा शामिल नहीं हैं। इसकी परिभाषा जीएफआर नियम 130, 143, 177 और 197 में उपलब्ध है।

प्रश्न संख्या 47: क्या संयुक्त उद्यम एमएसई के लिए सार्वजनिक खरीद नीति आदेश, 2012 के लाभ उठा सकते हैं?

उत्तर: नहीं, उद्यम पंजीकरण (और पहले यूएएम के अंतर्गत) के अंतर्गत संयुक्त उद्यमों के पंजीकरण का कोई प्रावधान नहीं है। जैसा कि ऊपर क्रमांक 3 में उल्लेख किया गया है, एमएसई के लिए सार्वजनिक खरीद नीति आदेश, 2012 के लाभ उन एमएसई द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं जो उद्यम पंजीकरण पोर्टल पर पंजीकृत हैं।

प्रश्न संख्या 48: क्या विदेशी कंपनी के साथ संघ एमएसई के लिए सार्वजनिक खरीद नीति आदेश, 2012 का लाभ उठा सकते हैं?

उत्तर: नहीं, उद्यम पंजीकरण (और पहले यूएएम के अंतर्गत) में कंसोर्टियम के पंजीकरण का कोई प्रावधान नहीं है। जैसा कि ऊपर क्रमांक 3 में उल्लेख किया गया है, एमएसई के लिए सार्वजनिक खरीद नीति आदेश, 2012 के लाभ उन एमएसई द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं जो उद्यम पंजीकरण पोर्टल पर पंजीकृत हैं।”

27. एमएसई के लिए सार्वजनिक खरीद नीति आदेश 2012 के अंतर्गत माल और सेवाओं की परिभाषा के संबंध में 9.11.2016 को एक और स्पष्टीकरण जारी किया गया है, जिसमें माल और सेवाओं को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है:-

"माल" में सभी वस्तुएं, सामग्री, वस्तु, पशुधन, फर्नीचर, फिक्स्चर, कच्चा माल, अतिरिक्त पुर्जे, उपकरण, मशीनरी, औजार, औद्योगिक संयंत्र, वाहन, विमान, जहाज, रेलवे रोलिंग स्टॉक असेंबली, सब-असेंबली, सहायक उपकरण, एकीकृत उत्पादन प्रक्रिया में शामिल मशीनों का समूह या माल या अमूर्त उत्पादों की ऐसी अन्य श्रेणियां जैसे प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, लाइसेंस, पेटेंट या अन्य बौद्धिक संपदाएं (लेकिन पुस्तकालय के लिए पुस्तकें, प्रकाशन, पत्रिकाएं आदि शामिल नहीं हैं), जो किसी खरीददार संस्था द्वारा खरीदी या अन्यथा प्राप्त की गई हों, शामिल हैं। माल की खरीद में कुछ छोटे कार्य या कुछ सेवाएं शामिल हो सकती हैं, जो ऐसी माल की आपूर्ति के लिए आकस्मिक या परिणामी हों, जैसे परिवहन, बीमा, स्थापना, चालू करना, प्रशिक्षण और रखरखाव;

"सेवा" से तात्पर्य माल या कार्यों के अतिरिक्त खरीद की किसी भी विषयवस्तु से है, सिवाय उन सेवाओं के जो सेवा से संबंधित या परिणामी हों, और इसमें भौतिक, रखरखाव, व्यावसायिक, बौद्धिक, प्रशिक्षण, परामर्श और सलाहकार सेवाएं या किसी खरीद संस्था द्वारा इस प्रकार वर्गीकृत या घोषित की गई कोई अन्य सेवा शामिल है, लेकिन इसमें इस संबंध में जारी किसी विधि, नियम, विनियम या आदेश के अंतर्गत किसी व्यक्ति की नियुक्ति शामिल नहीं है; "खरीद की विषयवस्तु" से तात्पर्य माल, सेवाओं या कार्यों या इनके संयोजन के रूप में खरीद की किसी भी वस्तु से है;"

28. भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग के खरीद नीति निर्णय द्वारा दिनांक 13.1.2023 को एक और कार्यालय ज्ञापन जारी किया गया, जिस पर द्वितीय प्रतिवादी ने अत्यधिक भरोसा किया। यह स्पष्टीकरण जीईएम पोर्टल से प्राप्त एक संदर्भ के आधार पर जारी किया गया था, जिसमें कार्य और सेवा की परिभाषा को लेकर खरीदारों के बीच भ्रम की स्थिति को दूर करने का प्रयास किया गया था। इस आदेश के खंड 2(घ) को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"2.(घ) माल और सेवा के लिए मिश्रित अनुबंधों के मामले में। यदि माल का क्रय मूल्य पर्याप्त है और सेवा का प्रावधान आकस्मिक है, तो ऐसे क्रय को माल के क्रय के रूप में माना जाना चाहिए। इसी प्रकार, यदि सेवा का क्रय मूल्य महत्वपूर्ण है और माल की आपूर्ति संविदा का आकस्मिक हिस्सा है, तो ऐसे क्रय को सेवा के क्रय के रूप में माना जा सकता है।"

29. एमएसई के लिए अनिवार्य उपरोक्त वैधानिक योजना के संदर्भ में ही याचिकाकर्ता का तर्क है कि एमएसएमई होने के कारण तृतीय प्रतिवादी को क्लाउड संविदा प्रदान नहीं किया जा सकता है।

याचिकाकर्ता की प्रस्तुति

30. उपरोक्त तथ्यों के आलोक में याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित आधारों पर तृतीय प्रतिवादी को संविदा दिए जाने को चुनौती दी है:-

"प्रतिवादी संख्या 3 एमएसई आदेश के लाभों का दावा करने का पात्र नहीं है क्योंकि उसे इसके अंतर्गत लाभ प्राप्त करने से बाहर रखा गया है। कार्यालय जापन संख्या एफ. संख्या 1(3)/2018-एमए दिनांक 25.03.2022 में दिए गए स्पष्टीकरण के आधार पर एमएसई आदेश, जिसमें प्रश्न संख्या 18 के उत्तर में कहा गया है कि एमएसई आदेश मात्र एमएसई द्वारा उत्पादित माल और प्रदान की गई सेवाओं की खरीद के लिए है, और व्यापारी/वितरक/एकमात्र एजेंट/कार्य संविदा एमएसई आदेश के दायरे से बाहर है;

एमएसई आदेश के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने के लिए, एक पात्र एमएसई बोलीदाता को यह साबित करना होगा कि उत्पादित सभी वस्तुएं और प्रदान की जा रही सेवाएं एमएसई द्वारा ही उत्पादित और प्रदान की जा रही हैं। प्रतिवादी संख्या 3, आरएफपी के अंतर्गत आपूर्ति की गई माल का मूल निर्माता नहीं है;

प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जारी संविदा की मूल आवश्यकता क्लाउड स्टोरेज और कंप्यूट समाधान की उपलब्धता है, जो गूगल, माइक्रोसॉफ्ट और अमेज़न जैसी कुछ ही कंपनियों द्वारा प्रदान की जाती है। यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रतिवादी संख्या 3 (या याचिकाकर्ता) के पास उपर्युक्त कंपनियों द्वारा प्रदान किए गए तरीके से क्लाउड समाधान विकसित करने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचा नहीं है;

प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने भी यह स्वीकार किया है कि क्लाउड इन्फ्रास्ट्रक्चर की आपूर्ति क्लाउड सेवा प्रदाता (सीएसपी) द्वारा की जाती है। इसलिए, संविदा और प्रस्तुत बोलियों की प्रकृति से यह स्पष्ट है कि क्लाउड स्टोरेज और कंप्यूट इन्फ्रास्ट्रक्चर का मूल प्रदाता सीएसपी है, न कि याचिकाकर्ता या प्रतिवादी संख्या 3. अतः, प्रतिवादी संख्या 3 एमएसई आदेश के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने के लिए अपात्र है, क्योंकि वह क्लाउड स्टोरेज इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माता नहीं है, बल्कि सीएसपी ही उक्त इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माता है।

आरएफपी के अंतर्गत लाइसेंस और सॉफ्टवेयर "माल" हैं: आरएफपी के खंड 12.16 और 13.2.2 में कहा गया है कि लाइसेंस और सॉफ्टवेयर प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से खरीदे जाने हैं और उनके स्वामित्व में हैं तथा उनके नाम पर पंजीकृत हैं। सामान्य वित्तीय नियम, 2017 ("जीएफआर") के नियम 143 के अंतर्गत दी गई "माल" की गैर-विस्तृत परिभाषा में सॉफ्टवेयर और लाइसेंस जैसे अमूर्त उत्पाद भी शामिल हैं। एमएसएमई (एमए डिवीजन) के निदेशक ने कार्यालय जापन दिनांक 09.11.2016 के माध्यम से स्पष्ट किया है कि एमएसई आदेश के संदर्भ में लाइसेंस जैसे अमूर्त उत्पादों को भी माल के रूप में माना जाना चाहिए। इसलिए, लाइसेंस और सॉफ्टवेयर (माल होने के नाते) सीएसपी से उत्पन्न होते हैं और अतः प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 को "माल" प्रदान नहीं की जा रही है।

प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रदान की जा रही "सेवाएं", यदि कोई हो, तो सीएसपी द्वारा आपूर्ति किए गए माल के लिए आकस्मिक हैं;

संपूर्ण आरएफपी को चार शीर्षों में विभाजित किया जा सकता है - कंप्यूट सेवाएं और भंडारण; सहायता सेवाएं; और माइग्रेशन (एक बार)। यह ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त श्रेणियां प्रतिवादी संख्या द्वारा परिभाषित और मानकीकृत हैं। आरएफपी के खंड 16.4.2 और 16.4.3 में उल्लिखित बीओएम में 2. बीओएम आरएफपी

की पूर्ति के लिए आवश्यक माल और सेवाओं के विभिन्न घटकों को निर्धारित करता है और सेवाओं के दायरे को समझने के उद्देश्य से एक व्यापक अभिलेख के रूप में कार्य करता है;

यह प्रस्तुत किया जाता है कि शीर्ष 'क' और 'ख' के अंतर्गत सभी कंप्यूटर सेवाएँ और भंडारण सेवाएँ सीएसपी द्वारा प्रदान की जा रही हैं, जबकि उपरोक्त के शीर्ष 'सी' और 'डी' के अंतर्गत सेवाएँ मात्र वर्तमान डेटा के समर्थन और माइग्रेशन से संबंधित हैं (जिसके लिए सीएसपी के स्वामित्व वाले सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जाता है, जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए पूरक शपथपत्र दिनांक 15.01.2025 से प्रमाणित होता है);

यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ खंड 13.4.4 और 13.4.6 में समाहित हैं और स्पष्ट रूप से स्थापित करती हैं कि ये सेवाएँ लाइसेंस, सॉफ्टवेयर आदि के रूप में वास्तविक माल की आपूर्ति के लिए विशुद्ध रूप से आकस्मिक और परिणामी हैं, और सीएसपी द्वारा आपूर्ति किए जा रहे उत्पादों की स्थापना / कमीशनिंग / प्रशिक्षण / रखरखाव से संबंधित हैं;

यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 3 के सीएसपी ने कहा है कि प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा दी जा रही सेवाएँ सीएसपी की प्रत्यक्ष रूप से प्रबंधित सेवा हैं, जिसमें वह रनटाइम, मिडलवेयर, ऑपरेटिंग सिस्टम, वर्चुअलाइजेशन, सर्वर, स्टोरेज, नेटवर्किंग, लाइसेंस के साथ-साथ उनके अपग्रेड, पैच आदि का प्रबंधन स्वयं करता है, और यह कि वह सभी आवश्यक क्लाउड सेवाओं की निगरानी और प्रबंधन सुनिश्चित करने की दिशा में काम करने के लिए प्रतिवादी संख्या 3 का समर्थन करेगा, और यह कि उसकी तकनीकी टीम परियोजना की पूरी अवधि के दौरान प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा चुने गए सभी आवश्यक सहायता और तकनीकी सहायता प्रदान करेगी;

अंत में, यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादी संख्या 3 की वित्तीय बोली से पता चलता है कि उद्धृत राशि का लगभग 97% सीएसपी को भुगतान किया जाना है, जबकि बोलीदाता को मात्र शेष 3% सहायक सेवाओं के लिए प्राप्त होता है। प्रतिवादी संख्या 3 अपने सीएसपी द्वारा प्रदान की जाने वाली माल और सेवाओं का व्यापारी/वितरक है। सीएसपी आरएफपी में उल्लिखित माल और अधिकांश सेवाओं का मूल प्रदाता है, और प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायक सेवाएँ उक्त माल की आपूर्ति के लिए मात्र सहायक हैं, जिससे ऐसी सभी सेवाएँ माल की आपूर्ति के दायरे में ही आ जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में, प्रतिवादी संख्या 3 की एकमात्र भूमिका प्रतिवादी संख्या 2 और सीएसपी के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करना है और इसलिए वह केवल एक व्यापारी/वितरक है;

आरएफपी से उत्पन्न संविदा प्रकृति में मिश्रित है, और इसलिए यह एक कार्य संविदा है, भले ही यह मान लिया जाए कि प्रतिवादी संख्या 3 सेवाएँ प्रदान कर रहा है, यह प्रस्तुत किया जाता है कि आरएफपी से उत्पन्न संविदा प्रकृति में मिश्रित होगा, और इसके आधार पर, संविदा को एक कार्य संविदा माना जाएगा;

यदि यह मान भी लिया जाए (हालांकि स्वीकार नहीं किया गया है) कि प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा सेवाएँ प्रदान की जा रही हैं, तो यह निवेदन किया जाता है कि एक बार किसी विशेष सीएसपी द्वारा लाइसेंस जारी किए जाने के बाद उक्त सेवाएँ और वस्तुएं अविभाज्य हो जाएंगी, और परिणामस्वरूप सेवाएँ भी ऐसे सॉफ्टवेयर/प्लेटफॉर्म को संचालित करने और संभालने के लिए प्रशिक्षित कर्मियों द्वारा प्रदान की जाएंगी। संक्षेप में, संविदा भी मिश्रित प्रकृति का है क्योंकि संविदा का दायरा सीएसपी के सॉफ्टवेयर के बिना निष्पादित नहीं

किया जा सकता है, क्योंकि दो सीएसपी (वर्तमान मामले में अमेज़ॅन और माइक्रोसॉफ्ट) के बीच क्रॉस कार्यक्षमता तकनीकी रूप से संभव नहीं है;

याचिकाकर्ता बॉम्बे उच्च न्यायालय के स्टर्लिंग एंड विल्सन प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य, एआईआर2017बॉम्बे24 के निर्णय पर भरोसा करते हुए कहता है कि सेवाओं के साथ माल की आपूर्ति से जुड़े संविदा मिश्रित संविदा होते हैं, जिन्हें कार्य संविदा माना जाना चाहिए, और ऐसे संविदा एमएसई आदेश के दायरे में नहीं आएंगे;

यह भी तर्क दिया गया है कि माननीय उच्च न्यायालय ने राहुल सिंह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया 2017 एससीसीऑनलाइनऑल 3579 के मामले में, एमएसएमईडी अधिनियम, 2006 की धारा 11 की भाषा का आकलन करने पर, यह माना कि वरीयता नीतियां मात्र एमएसई द्वारा उत्पादित और प्रदान की गई माल और सेवाओं की खरीद के लिए जारी की जा सकती हैं, और इसके दायरे में कार्य संविदा की प्रकृति के असाइनमेंट शामिल नहीं हैं;

यह कि माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय और बॉम्बे उच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय विशेष रूप से कराधान के संदर्भ में नहीं थे जैसा कि आरोप लगाया गया है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन्हें चुनौती नहीं दी गई है और/या रद्द नहीं किया गया है, इसलिए ये विधिक रूप से बने हुए हैं और वर्तमान संदर्भ में पूरी तरह से लागू होते हैं।”

प्रतिवादीगण का जवाब

31. डीजीएच के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका का विरोध मुख्य रूप से इस आधार पर किया है कि विचाराधीन संविदा कार्य संविदा नहीं बल्कि सेवा संविदा है। उनका तर्क है कि क्लाउड संविदा के लिए जारी किए गए संविदा प्रस्ताव (आरएफपी) में उल्लिखित शर्त के अनुसार याचिकाकर्ता ने संविदा को सेवा संविदा के रूप में स्वीकार किया है और अब वह इसे कार्य संविदा होने का दावा नहीं कर सकता। यह निवेदन किया गया है कि कोन एलिवेटर इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य (2014) 7 एससीसी 1 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करना अनुचित है, क्योंकि यह एक कराधान विधि से संबंधित है और वर्तमान मामले में लागू नहीं होता। यह भी तर्क दिया गया है कि कार्य संविदा की अवधारणा कराधान कानूनों में वित्तीय उद्देश्यों के लिए उत्पन्न होती है और इसका मुख्य उद्देश्य निर्माण परियोजनाओं को विनियमित करना है, न कि वर्तमान उद्देश्यों के लिए। यह भी तर्क दिया गया है कि क्लाउड सेवा प्रदान करने के लिए विचाराधीन संविदा को परामर्श सेवा की खरीद के रूप में वर्गीकृत किया गया है और इसे कार्य संविदा नहीं माना जा सकता। क्लाउड सेवा संविदा को कार्य संविदा से भिन्न प्रकृति का बताया गया है। इसके अतिरिक्त, डीजीएच का कहना है कि तृतीय प्रतिवादी ने एडब्ल्यूएस के साथ मिलकर अपनी बोली जमा की है और एमएसई के रूप में उसकी पंजीकृत स्थिति पर सवाल नहीं उठाया जा सकता क्योंकि वह एमएसएमई के रूप में विधिवत पंजीकृत है। यह भी कहा गया है कि एडब्ल्यूएस एमईआईटीवाई द्वारा अनुमोदित क्लाउड सेवा प्रदाता है और क्लाउड माइग्रेशन आदि जैसे कई महत्वपूर्ण कार्य इसके द्वारा किए जाने हैं। प्रतिवादियों का तर्क है कि प्रतिवादी संख्या 3 को व्यापारी का दर्जा नहीं दिया जा सकता।

32. आगे यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा एमएसपी के रूप में प्रदान की गई सेवाएं महत्वपूर्ण हैं और इसके मूल्यवर्धन का कोई विकल्प नहीं है। एमएसई आदेश पर भरोसा करते हुए यह प्रस्तुत किया गया है कि विचाराधीन संविदा 'कार्य संविदा' नहीं है और चूंकि तृतीय प्रतिवादी उद्यम के अंतर्गत पंजीकृत है, इसलिए एमएसएमई के लाभ वैध रूप से इसके लिए उपलब्ध हैं। यह निवेदन किया गया है कि तृतीय प्रतिवादी एडब्ल्यूएस का नेटवर्क भागीदार है, न कि उसका एजेंट, जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा आरोप लगाया गया है। डीजीएच ने आगे प्रस्तुत किया है कि तृतीय प्रतिवादी को संविदा दिए जाने के बाद एक प्रारंभिक बैठक आयोजित की गई थी और उसके द्वारा प्रदर्शन बैंक गारंटी आदि प्रस्तुत की गई थी। पट्टे की लाइन की मांग के लिए कुछ आदेश भी 13.2.2005 को दिए गए थे।

33. तृतीय प्रतिवादी का तर्क है कि संविदा शर्तों के अनुसार डीजीएच द्वारा उसे संविदा सही तरीके से दिया गया है, जिसके अंतर्गत वह भारत सरकार द्वारा जारी एमएसई खरीद आदेश, 2012 के लाभ का पात्र है। यह आरोप लगाया गया है कि आरएफपी से उत्पन्न संविदा एक कार्य संविदा नहीं है; प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रदान की गई सेवा की मात्रा न्यायिक जांच के दायरे से बाहर है; और एमएसई अधिनियम के अंतर्गत कार्य संविदा के अंतर की प्रयोज्यता अनुचित है। चयनित ठेकेदार का तर्क है कि पंजीकृत एमएसएमई के रूप में उसकी स्थिति को चुनौती नहीं दी गई है और न ही 27.05.2024 के शुद्धिपत्र को चुनौती दी गई है, जो संविदा में एमएसई के पक्ष में खरीद संदर्भ खंड को लागू करता है। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया है कि संविदा एक सेवा संविदा है और इसे कार्य संविदा नहीं कहा जा सकता है। इसके बाद यह तर्क दिया गया है कि आरएफपी के खंड 13.4.4 के अनुसार, एमएसपी (प्रतिवादी संख्या 3) संविदा की पूरी अवधि के लिए सूचीबद्ध सीएसपी (एडब्ल्यूएस) के साथ एक के बाद एक समर्थन समझौता करने के लिए बाध्य था। यह भी तर्क दिया गया है कि संविदा खंड में उल्लिखित लाइसेंस किसी भी सामान की खरीद के लिए नहीं है, बल्कि यह मात्र आईटी सेवा संविदा में मानक भाषा का उपयोग है। संविदा प्रस्ताव में बोलीदाता द्वारा सीएसपी से सॉफ्टवेयर लाइसेंस की बिक्री या खरीद का कोई प्रावधान नहीं है।

34. तृतीय प्रतिवादी का तर्क है कि वह सीएसपी से क्लाउड इंफ्रास्ट्रक्चर नहीं खरीदता है और ऐसा क्लाउड इंफ्रास्ट्रक्चर मुख्य रूप से उपयोग के लिए भुगतान पर आधारित है, जहां भुगतान तकनीक के उपयोग के लिए होता है। हालांकि, तकनीक की कोई बिक्री या खरीद नहीं होती है। यह भी कहा गया है कि क्लाउड संविदा में माल का कोई हस्तांतरण नहीं है। प्रतिवादी का यह भी तर्क है कि संविदा में प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रदान की गई सेवा की मात्रा न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर है। इसके बाद यह कहा गया है कि 'सेवा प्रदाता' वाक्यांश याचिकाकर्ता की स्वयं की अवधारणा है, जो संविदा दस्तावेज में कहीं भी नहीं मिलती है। मात्र एमएसपी ही संविदा के लिए उत्तरदायी है और सीएसपी मात्र संविदा का एक पक्ष है और एमएसपी संविदा के निष्पादन में सहायक भूमिका निभाता है। यह भी कहा गया है कि एमएसपी और सीएसपी के बीच वितरित कार्य की मात्रा और उनके बीच धन का प्रवाह, एमएसई आदेश दिए जाने या न दिए जाने पर स्वतः ही कोई प्रभाव नहीं डालेगा। प्रतिवादियों ने आगे आरोप लगाया कि जब तक संविदा प्राधिकारी की ओर से मनमानी, विकृति या दुर्भावना का

आरोप नहीं लगाया जाता है, संविदा अभिलेख के लेखक को इसकी आवश्यकता को समझने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति माना जाता है और न्यायालयों को न्यायिक संयम बरतना चाहिए।

35. तृतीय प्रतिवादी की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि कार्य संविदा की अवधारणा कराधान विधि के संदर्भ में उत्पन्न होती है और क्लाउड सेवा प्रदान करने वाले संविदा के मामले में यह लागू नहीं होती। अंत में यह निवेदन किया गया कि किसी भी प्रकार से यह नहीं कहा जा सकता कि तृतीय प्रतिवादी द्वारा प्रदत्त सेवाएं सीएसपी द्वारा प्रदान की जा रही सेवा का आकस्मिक हिस्सा हैं। यह भी अस्वीकार किया गया कि तृतीय प्रतिवादी द्वारा निष्पादन में मूल्यवर्धन नगण्य है या तृतीय प्रतिवादी मध्यस्थ/एजेंट/व्यापारी के रूप में कार्य करता है।

36. हमने याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुशांत चंद्र से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे. साई दीपक; प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक कुमार सिंह से सहायता प्राप्त विद्वान ए.एस.जी.आई. श्री एस.पी. सिंह; प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री अर्चना सिंह; प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्तागण श्री वरद नाथ और श्री नमन अग्रवाल से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना की प्रस्तुतियों को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

37. इस याचिका में उठाए गए विवाद को समझने के लिए, तृतीय प्रतिवादी को दिए गए संविदा की प्रकृति के संबंध में स्पष्टता आवश्यक है। न्यायालय में उठाए गए अधिकांश तर्क स्वयं क्लाउड संविदा की प्रकृति से संबंधित हैं। क्या यह सेवाओं का संविदा है या इसमें माल भी शामिल है जिससे यह एक कार्य संविदा बन जाता है; यदि यह सेवाओं का संविदा है तो भी संविदा में प्रमुख कार्य कौन करता है; क्या एमएसपी विचाराधीन संविदा में एक एजेंट है या अधीनस्थ भागीदार; क्या एमएसपी का एमएसएमई के रूप में दर्जा संविदा प्रदान करने के लिए एक प्रासंगिक विचारणीय बिंदु हो सकता है, जबकि सीएसपी को मूल रूप से पूरा करना है जो एमएसएमई नहीं है; क्या संविदा प्रदान करने के लिए तृतीय प्रतिवादी को अधिमान्य व्यवहार देना उस नीतिगत उद्देश्य के अनुरूप है जिसके लिए अधिनियम 2006 अधिनियमित किया गया है, आदि ऐसे प्रश्न हैं जिन पर वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर विचार किया जाना आवश्यक है।

38. याचिकाकर्ता ने तृतीय प्रतिवादी द्वारा दायर अनुपालन दस्तावेज़ की प्रति संलग्न की है, जिसमें क्लाउड डेटा माइग्रेशन सेवाओं में सीएसपी की भूमिका निर्दिष्ट है। खंड 6 पर भरोसा किया गया है, जिसमें निर्दिष्ट है कि एडब्ल्यूएस डेटा माइग्रेशन परियोजना के लिए उपयुक्त समाधान प्रदान करने हेतु पोर्टफोलियो डेटा ट्रांसफर सेवा प्रदान करता है। एडब्ल्यूएस को ऑनलाइन डेटा ट्रांसफर और ऑफलाइन डेटा ट्रांसफर पर आधारित डेटा माइग्रेशन समाधान का उपयोग करना है। वर्तमान डेटा को डीजीएच से एडब्ल्यूएस पर क्लाउड आधारित एनडीआर 2.0 में माइग्रेट करने के लिए सीएसपी द्वारा डेटा माइग्रेशन सेवाएं उपलब्ध कराई जानी हैं।

39. याचिकाकर्ता के अनुसार, संविदा अभिलेख के खंड 12.16 और 13.2.2 में यह प्रावधान है कि लाइसेंस और सॉफ्टवेयर डीजीएच की ओर से खरीदे जाएंगे और डीजीएच के नाम पर पंजीकृत और स्वामित्व में होंगे। याचिकाकर्ता ने सामान्य वित्तीय नियम, 2007 के नियम 143 के अंतर्गत माल की परिभाषा का हवाला देते हुए कहा है कि इसमें सॉफ्टवेयर और लाइसेंस जैसे अमूर्त उत्पाद भी शामिल हैं। हमारा ध्यान एमएसएमई निदेशक के कार्यालय ज्ञापन दिनांक 19.11.2016 की ओर भी दिलाया गया है, जिसके अनुसार एमएसई आदेश के संदर्भ में लाइसेंस जैसे अमूर्त उत्पादों को भी माल के रूप में माना जाना चाहिए। याचिकाकर्ता इस खंड पर भरोसा करते हुए दावा करता है कि एमएसई आदेश के अनुसार माल के रूप में माने जाने वाले लाइसेंस और अन्य अमूर्त उत्पाद सीएसपी द्वारा डीजीएच को आपूर्ति किए जा रहे हैं, न कि प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा। याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत खंड 12.16 इस प्रकार है:-

“12.16.

उपकरण/लाइसेंस का स्वामित्व

1. इस संविदा अवधि के दौरान बोलीदाता द्वारा आपूर्ति किए गए सॉफ्टवेयर लाइसेंस, प्रक्रियाओं और दस्तावेजों का स्वामित्व क्रेता के पास रहेगा।

2. हालांकि, संविदा की अवधि के दौरान उपकरण, परिसंपत्तियाँ/घटकों के उपयोग से उत्पन्न होने वाले या उससे संबंधित सभी जोखिम और दायित्व बोलीदाता द्वारा वहम किए जाएंगे।”

40. इसी प्रकार, खंड 13.2 का उपखंड 2 (गतिविधियों का व्यापक दायरा) निम्नानुसार है:-

“2. सभी लाइसेंस/एप्लिकेशन/सॉफ्टवेयर/ रूट एक्सेस/एडमिन यूजरनेम/एडमिन अकाउंट आदि क्रेता के नाम पर पंजीकृत होंगे।”

41. संविदा अभिलेख में क्रेता डीजीएच है। भारत सरकार के एमएसएमई विभाग द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन दिनांक 9.11.2016 में माल और सेवाओं को परिभाषित किया गया है। कार्यालय ज्ञापन में निहित माल की परिभाषा माल और सेवाओं को स्पष्ट करने के लिए जारी की गई है। सार्वजनिक खरीद नीति (एमएसएमई), 2012 में ऐसी अन्य श्रेणियों की वस्तुएं या अमूर्त उत्पाद जैसे प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, लाइसेंस, पेटेंट या अन्य अमूर्त संपत्तियां (पुस्तकें आदि को छोड़कर) शामिल हैं, जिन्हें खरीद करने वाली संस्था द्वारा खरीदा या अन्यथा प्राप्त किया जाता है।

42. याचिकाकर्ता की ओर से बॉम्बे हाई न्यायालय के खंडपीठ के स्टर्लिंग एंड विल्सन मामले में दिए गए निर्णय के साथ-साथ इस न्यायालय के राहुल सिंह मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा जताया गया है, जिसमें कोने एलिवेटर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों पर भरोसा जताते हुए यह माना गया है कि एमएसएमई व्यवस्था का लाभ वर्क्स कॉन्ट्रैक्ट के मामले में नहीं दिया जा सकता है।

43. याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत दलील का खंडन विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना ने किया है, जिन्होंने तर्क दिया है कि अनुच्छेद 366 का खंड (29)(क) कोने एलिवेटर इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) के निर्णय का आधार है, जिसे आगे उद्धृत किया गया है:-

“366. परिभाषाएं -

इस संविधान में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, निम्नलिखित पदों के निम्नलिखित अर्थ हैं, अर्थात् :- (29क) माल की बिक्री या खरीद पर कर में शामिल है-

(29क) “माल के क्रय या विक्रय पर कर” के अंतर्गत-

(क) वह कर है जो नकदी, आस्थगित संदाय या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए किसी माल में संपत्ति के ऐसे अंतरण पर है जो किसी संविदा के अनुसरण में न करके अन्यथा किया गया है;

(ख) वह कर है जो माल में संपत्ति के (चाहे वह माल के रूप में हो या किसी अन्य रूप में) ऐसे अंतरण पर है जो किसी संकर्म संविदा के निष्पादन में अंतर्वलित है;

(ग) वह कर है जो अवक्रय या किस्तों में संदाय की पद्धति से माल के परिदान पर है;

(घ) वह कर है जो नकदी, आस्थगित संदाय या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए किसी माल का किसी प्रयोजन के लिए उपयोग करने के अधिकार के (चाहे वह विनिर्दिष्ट अवधि के लिए हो या नहीं) अंतरण पर है;

(ङ) वह कर है जो नकदी, आस्थगित संदाय या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए किसी माल के प्रदाय पर है जो किसी अनिगमिते संगम या व्यक्ति-निकाय द्वारा अपने किसी सदस्य को किया गया है;

(च) वह कर है, जो ऐसे माल के, जो खादय या मानव उपभोग के लिए कोई अन्य पदार्थ या कोई पेय है (चाहे वह मादक हो या नहीं) ऐसे प्रदाय पर है, है, जो किसी सेवा के रूप में या सेवा के भाग के रूप में या किसी भी अन्य रीति से कि से किया गया है है और ऐसा प्रदाय या सेवा नकदी, आस्थगित संदाय या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के प्रतिफल के लिए की गई है और माल के ऐसे अंतरण, परिदान या प्रदाय के बारे में यह समझा जाएगा कि वह उस व्यक्ति द्वारा, जो ऐसा अंतरण, परिदान या प्रदाय कर रहा है, उस माल का विक्रय है, और उस व्यक्ति द्वारा, जिसको ऐसा अंतरण, परिदान या प्रदाय किया जाता है, उस माल का क्रय है;”

44. यह प्रस्तुति की गई है कि धारा (29)(क) कराधान विधि को विनियमित करने के उद्देश्य से लागू की गई थी और एमएसएमई अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के प्रयोजनों के लिए इसका कोई महत्व नहीं है। इस प्रयोजन के लिए विद्वान अधिवक्ता ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य सूक्ष्म, लघु उद्यम सुविधा परिषद एवं अन्य (2023) एससीसी ऑनलाइन कलकत्ता 1700 के निर्णय पर भरोसा जताया है। कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंडपीठ के स्टर्लिंग और विल्सन मामले में दिए गए निर्णय के साथ-साथ इस न्यायालय के राहुल सिंह मामले में दिए गए निर्णय सहित विभिन्न निर्णयों का हवाला देते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:-

“60. इस प्रकार, उपरोक्त चर्चाओं के संदर्भ में, याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों में कई उच्च न्यायालयों द्वारा कोने एलिवेटर (उपरोक्त) के सिद्धांत को गलत तरीके से लागू किया गया था, जैसा कि ऊपर

चर्चा की गई है। मेरी विनम्र राय में, विधि का सही सिद्धांत यह है कि एक बार जब कोई उद्यम, जो अन्यथा अधिनियम के दायरे में आता है, धारा 8(1) के अंतर्गत पंजीकृत हो जाता है, तो उस पर एमएसएमई अधिनियम के प्रावधान लागू होने चाहिए, जिसमें इसकी धारा 18 भी शामिल है, जो परिषद को इस संबंध में विवादों को हल करने का अधिकार प्रदान करती है।

62. इस प्रकार, निर्माण अनुबंधों को उक्त अधिनियम के दायरे से बाहर रखने का कृत्रिम भेद, एमएसएमई अधिनियम की योजना में ही निहित नहीं है। यह अवधारणा राजस्व न्यायशास्त्र से ली गई है, जिसका एमएसएमई अधिनियम के अंतर्गत दिए जाने वाले लाभों से कोई संबंध नहीं है। इस संदर्भ में इस अवधारणा को लागू करना अप्रासंगिक और अनुपयुक्त है।”

विश्लेषण

45. दोनों पक्षों द्वारा क्लाउड संविदा को कार्य संविदा मानने और इस कारण एमएसई नीति की अनुपयोगिता के संबंध में प्रस्तुत दलीलों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले भाग में क्लाउड संविदा के तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार किया जाएगा ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि यह मात्र सेवा संविदा है या इसमें माल की आपूर्ति भी शामिल है। दूसरे भाग में तृतीय प्रतिवादी के उद्यम के रूप में एमएसई पंजीकरण के आधार पर क्लाउड संविदा प्रदान करने के लिए एमएसई नीति की प्रयोज्यता के प्रश्न पर विचार किया जाएगा।

46. हमने बोलीदाता द्वारा क्रेता को प्रदान की जाने वाली सेवाओं का पता लगाने के लिए क्लाउड संविदा की विभिन्न धाराओं को पहले ही निकाल लिया है। डीजीएच निर्विवाद रूप से संविदा के अंतर्गत क्रेता है। तृतीय प्रतिवादी ने स्वीकार किया है कि वह बोलीदाता/एमएसपी है और उसने अपने सीएसपी के रूप में एडब्ल्यूएस के साथ साझेदारी की है।

47. क्लाउड संविदा में यह प्रावधान है कि विभिन्न लाइसेंस और सॉफ्टवेयर डीजीएच (अर्थात् क्रेता) की ओर से खरीदे जाएंगे और डीजीएच के नाम पर पंजीकृत होंगे। ऊपर उद्धृत खंड 12.16 और 13.2.2 स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि बोलीदाता को संविदा के हिस्से के रूप में क्रेता (डीजीएच) को विभिन्न लाइसेंस और सॉफ्टवेयर प्रदान करने होंगे। सामग्री विवरण (बीओएम) भी दर्शाता है कि विभिन्न लाइसेंस और सॉफ्टवेयर क्लाउड संविदा का हिस्सा हैं जिन्हें बोलीदाता द्वारा डीजीएच को हस्तांतरित किया जाना है।

48. एमएसएमई निदेशक ने अपने कार्यालय ज्ञापन दिनांक 9.11.2016 (ऊपर उद्धृत) में स्पष्ट किया है कि लाइसेंस जैसे अमूर्त उत्पादों को भी माल माना जाना चाहिए। सामान्य वित्तीय नियम, 2017 का नियम 143 भी सॉफ्टवेयर और लाइसेंस जैसे अमूर्त उत्पादों को माल के रूप में परिभाषित करता है। अतः, बोली अभिलेख से स्पष्ट है कि तृतीय प्रतिवादी को दिया गया संविदा, यद्यपि सेवा संविदा के रूप में वर्णित है, लेकिन इसमें क्रेता डीजीएच को माल की आपूर्ति भी शामिल है।

49. तब हमारे विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि क्या क्लाउड संविदा में माल को शामिल करने मात्र से ही संविदा स्वयं एक कार्य संविदा बन जाता है, जिससे वह एमएसई व्यवस्था के दायरे से बाहर हो जाता है।

50. इस संबंध में, कोन एलिवेटर इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया जाता है। उक्त निर्णय के पैरा 46 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांतों को रेखांकित किया है:-

"46. इस समय यह कहना उचित होगा कि चार अवधारणाएँ स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई हैं। वे हैं:

(i) कार्य संविदा एक अविभाज्य संविदा है, लेकिन विधिक कल्पना के अनुसार, इसे दो भागों में विभाजित किया गया है, एक माल की बिक्री के लिए और दूसरा श्रम और सेवाओं की आपूर्ति के लिए;

(ii) किसी संविदा को कार्य संविदा के रूप में मानने के लिए "प्रमुख प्रकृति परीक्षण" या "इरादे की डिग्री परीक्षण" या "अत्यधिक महत्वपूर्ण घटक परीक्षण" की अवधारणा लागू नहीं होती है;

(iii) संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (29-क) में प्रयुक्त शब्द "कार्य संविदा" में सभी प्रकार के कार्य संविदा शामिल हैं और इसे मात्र श्रम और सेवा प्रदान करने वाले अनुबंधों की एक ही प्रजाति को कवर करने के लिए संकीर्ण रूप से नहीं समझा जाना चाहिए; और

(iv) एक बार जब पक्षों के बीच हुए संविदा में कार्य संविदा की सभी विशेषताएं पूरी हो जाती हैं, तो संविदा में शामिल कोई भी अतिरिक्त दायित्व संविदा की प्रकृति को नहीं बदलेगा।"

51. सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया है कि किसी संविदा को कार्य संविदा मानने के लिए 'प्रमुख प्रकृति परीक्षण', या 'इरादे की डिग्री परीक्षण' या 'अति महत्वपूर्ण घटक परीक्षण' जैसी अवधारणाएँ लागू नहीं होतीं। एक बार किसी संविदा में कार्य संविदा की सभी विशेषताएँ पूरी हो जाने पर, उसमें शामिल कोई भी अतिरिक्त दायित्व संविदा की प्रकृति को नहीं बदलता। अतः न्यायालय ने लिफ्ट की स्थापना और उसके पुर्जों की आपूर्ति को कार्य संविदा माना है।

52. याचिकाकर्ता की ओर से भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम कमिशनर ऑफ ट्रेड टैक्स, यूपी लखनऊ 2016 एससीसी ऑनलाइन ऑल 4398 के निर्णय पर भी भरोसा जताया गया है, जिसमें यह तर्क दिया गया है कि चूंकि संविदा में सेवाओं के अतिरिक्त माल की आपूर्ति भी शामिल है, इसलिए यह एक कार्य संविदा होगा और इसलिए, इसे सेवाओं का संविदा नहीं माना जाएगा ताकि एमएसएमई अधिनियम के प्रावधान लागू हो सकें।

53. इस मामले पर गहन विचार-विमर्श करने के बाद हमने पाया कि 'कार्य संविदा' की अवधारणा मुख्य रूप से कराधान कानूनों को विनियमित करने के उद्देश्य से बनाई गई है। खंड (29क) को संविधान (छियालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1982 द्वारा 2.2.1983 से प्रभावी रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 366 में जोड़ा गया था। उद्देश्यों और कारणों का विवरण उस संदर्भ को स्पष्ट करता है जिसमें इस प्रावधान को लागू किया

जाना आवश्यक था। संदर्भ को बेहतर ढंग से समझने के लिए, हम इसे नीचे पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैं:-

“उद्देश्यों और कारणों का विवरण

भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अनुसरण में अधिनियमित विक्रय कर विधि और संविधान के लागू होने के बाद पारित विक्रय कर संबंधी विधि इस आधार पर बनाए गए थे कि विधायी सूचियों में प्रविष्टियों की व्यापक व्याख्या के नियम को ध्यान में रखते हुए, “माल की बिक्री” अभिव्यक्ति को व्यापक अर्थ दिया जाएगा। हालांकि, गैन्नन डंकरली मामले (एआईआर 1958 एससी 560) में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संविधान की सातवीं अनुसूची में प्रयुक्त “माल की बिक्री” अभिव्यक्ति का वही अर्थ है जो माल विक्रय अधिनियम, 1930 में है। यह निर्णय निर्माण अनुबंधों से संबंधित था। 2. बाद के कई निर्णयों के माध्यम से, सर्वोच्च न्यायालय ने गैन्नन डंकरली मामले के निर्णय के आधार पर, विभिन्न अन्य लेन-देनों को, जो सार रूप में विक्रय के समान हैं, विक्रय कर के लिए उत्तरदायी नहीं माना है। इन निर्णयों के परिणामस्वरूप, संघ सूची की धारा 92क या राज्य सूची की धारा 54 के अंतर्गत बिक्री कर लगाने के लिए किसी लेन-देन में निम्नलिखित तत्व होने चाहिए, अर्थात्, संविदा करने के लिए सक्षम पक्ष, आपसी सहमति और संविदा के एक पक्ष से दूसरे पक्ष को कीमत के बदले माल का स्वामित्व हस्तांतरण। 3. इस स्थिति के कारण कर से बचने के कई तरीके उपलब्ध हो गए हैं। इसका एक उदाहरण अंतर-राज्यीय माल हस्तांतरण की प्रथा है, अर्थात्, एक राज्य में स्थित प्रधान कार्यालय या मुख्य इकाई से दूसरे राज्य में स्थित शाखा या एजेंट को माल का हस्तांतरण या इसके विपरीत, या माल का माल पर हस्तांतरण, ताकि केंद्रीय बिक्री कर अधिनियम के अंतर्गत अंतर-राज्यीय बिक्री पर बिक्री कर के भुगतान से बचा जा सके। किसी निर्माण संविदा के मामले में, यदि संविदा में सामग्री की बिक्री को श्रम लागत से अलग माना जाता है, तो सामग्री की बिक्री कर योग्य होगी। हालांकि, अविभाज्य निर्माण संविदा के मामले में, संविदा के निष्पादन में शामिल माल के स्वामित्व के हस्तांतरण पर बिक्री कर लगाना संभव नहीं है, क्योंकि यह माना गया है कि सामग्री की बिक्री नहीं होती है और उनका स्वामित्व चल संपत्ति के रूप में हस्तांतरित नहीं होता है। हालांकि व्यावहारिक रूप से किराया-खरीद समझौते में क्रेता को किराया-खरीद की तिथि पर ही माल मिल जाती है, लेकिन यह माना गया है कि बिक्री तभी होती है जब क्रेता बहुत बाद में खरीद का विकल्प चुनता है, और इसलिए खरीद का विकल्प चुने जाने के समय ऐसी लेनदेन में शामिल माल का मात्र मूल्यहास मूल्य ही बिक्री कर के लिए निर्धारित होता है। इसी प्रकार, जबकि किसी पंजीकृत क्लब या व्यक्तियों के अन्य संघ (कॉर्पोरेट दर्जा प्राप्त क्लब या संघ) द्वारा अपने सदस्यों को की गई बिक्री कर योग्य है, वहीं किसी गैर-निगमित क्लब या संघ द्वारा अपने सदस्यों को की गई बिक्री कर योग्य नहीं है, क्योंकि विधि की दृष्टि से ऐसे क्लब या संघ का अपने सदस्यों से कोई अलग अस्तित्व नहीं है। एसोसिएटेड होटल्स ऑफ इंडिया मामले (एआईआर 1972 एससी 1131) में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी होटल व्यवसायी द्वारा होटल में ठहरे व्यक्ति को भोजन या पेय पदार्थ की आपूर्ति में कोई बिक्री शामिल नहीं है। 4. न्यू इंडिया शुगर मिल्स मामले (एआईआर 1963 एससी 1207) में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि नियंत्रण आदेश के अंतर्गत निर्देश के अनुसरण में नियंत्रित माल के हस्तांतरण में, विक्रेता की स्वेच्छा या आपसी सहमति का तत्व अनुपस्थित है, और इसलिए, माल बिक्री अधिनियम, 1930 में परिभाषित बिक्री नहीं है। हालांकि,

ऑयल एंड नेचुरल गैस कमीशन बनाम बिहार राज्य (एआईआर 1976 एससी 2478) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय को नियंत्रित माल के हस्तांतरण पर विक्रय कर लगाने की देयता के संबंध में अपने पूर्व निर्णयों पर विचार करने का अवसर मिला। सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि जहां कोई वैधानिक बाध्यताएं हों, वहां विधि को ही सर्वसम्मति प्रदान करने और सर्वसम्मति की विधि निर्धारित करने वाला माना जाना चाहिए। विष्णु एजेंसीज बनाम वाणिज्यिक कर अधिकारी (एआईआर 1978 एससी 449) मामले में, सात में से छह न्यायाधीशों ने न्यू इंडिया शुगर मिल्स मामले के निर्णय को रद्द करने में सहमति व्यक्त की, जबकि सातवें न्यायाधीश ने इस मामले को भिन्न माना। अतः, इस मामले को किसी भी संदेह से परे रखना वांछनीय समझा गया। 5. राज्यों द्वारा माल की बिक्री पर कर लगाने की शक्ति और केंद्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 से संबंधित विभिन्न समस्याओं को भारत के विधि आयोग को संदर्भित किया गया था। आयोग ने अपनी इकसठवीं रिपोर्ट में इन मामलों पर विचार किया और अन्य बातों के साथ-साथ संविधान में कुछ संशोधनों की सिफारिश की, यदि प्रशासनिक नीति के रूप में पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में उल्लिखित प्रकृति के लेन-देन पर कर लगाने का निर्णय लिया जाता है। 6. फिल्मों के पट्टे के माध्यम से भी बिक्री कर से बचा जा रहा है। किसी फिल्म के संबंध में मुख्य अधिकार उसके दोहन से संबंधित है और एक निश्चित अवधि के लिए दोहन के बाद, अधिकांश मामलों में, फिल्म का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। इसलिए, यह देखा गया है कि फिल्म की सीधी बिक्री का सहारा लेने के बजाय, मात्र दोहन के अधिकार का पट्टा या हस्तांतरण किया जाता है। 7. राज्य सरकारों से, जिन्हें बिक्री कर से प्राप्त राजस्व आवंटित किया गया है, ऐसी रिपोर्टें प्राप्त हुई हैं कि अंतर-राज्यीय माल बिक्री पर लगने वाले केंद्रीय बिक्री कर की बड़े पैमाने पर चोरी माल की एक राज्य से दूसरे राज्य में खेप भेजने के बहाने की जा रही है, और स्थानीय बिक्री कर का दुरुपयोग कार्य अनुबंधों, किराया-खरीद लेनदेन, फिल्मों के पट्टे आदि के माध्यम से हो रहा है। यद्यपि संसद इन लेन-देनों पर कर लगा सकती है, लेकिन चूंकि बिक्री पर कर को सदैव से ही राज्यों को आवंटित किए जाने वाले राजस्व का एक मद माना जाता रहा है, इसलिए इन लेन-देनों के संबंध में भी, जो बिक्री के समान हैं, यह माना जाता है कि वही नीति अपनाई जानी चाहिए। 8. उपरोक्त मामलों के अतिरिक्त, उत्तरी भारत कैंटरर्स (इंडिया) लिमिटेड बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल (एआईआर 1978 एससी 1591) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के परिणामस्वरूप एक नई समस्या उत्पन्न हो गई है। राज्य इस आधार पर आगे बढ़ रहे हैं कि एसोसिएटेड होटल्स ऑफ इंडिया का मामला मात्र होटल व्यवसायी द्वारा होटल में ठहरे व्यक्ति को भोजन या पेय पदार्थ की आपूर्ति पर लागू होता है और रेस्तरां द्वारा खाद्य पदार्थों की बिक्री पर कर लगाया जा सकता है। लेकिन दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय को पलटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त मामले में यह माना है कि होटल या रेस्तरां में भोजन परोसना बिक्री कर लगाने के उद्देश्य से भोजन की बिक्री नहीं है, बल्कि इसे मानवीय आवश्यकता की पूर्ति या मानव की शारीरिक जरूरतों को पूरा करने के लिए दी जाने वाली सेवा माना जाना चाहिए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि रेस्तरां में आने वाले ग्राहक से पूरे भोजन का शुल्क लिया जाता है या प्रत्येक व्यंजन के अनुसार अलग-अलग। 9. इसलिए, अनुच्छेद 366 में "माल की बिक्री या खरीद पर कर" की परिभाषा को शामिल करने के लिए संविधान में उपयुक्त संशोधन करने का प्रस्ताव है, जिसमें एक नया खंड (29क) जोड़ा जाएगा।"

54. श्री सक्सेना के इस तर्क में हमें पर्याप्तता नजर आती है कि अनुच्छेद 366 में खंड (29क) को शामिल करने का उद्देश्य पूरी तरह से भिन्न है और वर्तमान विवाद में इसकी प्रासंगिकता बहुत कम है, क्योंकि इस खंड का उद्देश्य एमएसई व्यवस्था के दायरे और सीमा को निर्धारित करना नहीं है। कोने एलिवेटर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी कराधान संबंधी मुद्दे के संदर्भ में था। यद्यपि इसके सिद्धांतों को बॉम्बे उच्च न्यायालय ने स्टर्लिंग एंड विल्सन (उपरोक्त) और इस न्यायालय ने राहुल सिंह (उपरोक्त) मामले में लागू किया है, फिर भी इस पहलू पर, हम कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन (उपरोक्त) मामले में दिए गए तर्क को काफी महत्वपूर्ण पाते हैं। हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन (उपरोक्त) मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश ने उस संदर्भ का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 366 में खंड (29क) को शामिल किया गया था। भारत के संविधान के अनुच्छेद 366 का खंड (29क) और साथ ही कोने एलिवेटर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, लिमिटेड (उपरोक्त) मामले को एमएसई व्यवस्था के उद्देश्य और प्रावधानों की व्याख्या के लिए पूरी तरह से आधार नहीं बनाया जा सकता है। हमारे विचार में, क्लाउड संविदा प्रदान करने के लिए एमएसई व्यवस्था की प्रयोज्यता का निर्धारण अधिनियम 2006 के प्रावधानों के साथ-साथ सार्वजनिक खरीद नीति आदेश, 2012 और उसके अंतर्गत जारी स्पष्टीकरणों के संदर्भ में किया जाना चाहिए।

55. एमएसई व्यवस्था का उद्देश्य सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के विकास को बढ़ावा देना और उनकी प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाना है। अधिनियम 2006 की उत्पत्ति और इसके उद्देश्यों की विस्तृत जांच माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लाइफकेयर इनोवेशन्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ 2025 आईएनएससी 269 के मामले में अपने हालिया निर्णय में की है। पैरा 13 में न्यायालय ने एमएसएमई योजना की उत्पत्ति का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया है:-

“13. लघु एवं मध्यम उद्यमों (एमएसएमई) को पहली बार वैधानिक मान्यता, उनके संरक्षण, प्रोत्साहन और विशेष लाभों के प्रावधान के लिए लघु एवं सहायक औद्योगिक उपक्रमों को विलंबित भुगतान पर ब्याज अधिनियम, 1993 के माध्यम से प्रावधान किए गए थे। अधिनियम 1993 को वर्तमान सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम विकास अधिनियम के अंतर्गत व्यापक और आशाजनक व्यवस्था द्वारा 2006 में निरस्त कर दिया गया था, जिसने न केवल धारा 7 के अंतर्गत उद्यमों के विभिन्न वर्ग बनाए, बल्कि उद्यमों के वर्गीकरण के संबंध में केंद्र सरकार को सलाह देने के लिए एक सलाहकार समिति, धारा 3 के अंतर्गत एमएसएमई के लिए एक राष्ट्रीय बोर्ड की स्थापना भी की, जिसके कार्य धारा 5 और 6 में दिए गए हैं, जिनमें अन्य बातों के अतिरिक्त, “सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों के प्रोत्साहन और विकास को प्रभावित करने वाले कारकों से निपटना और केंद्र सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों की समीक्षा करना” और “केंद्र सरकार द्वारा संदर्भित मामलों पर सिफारिशें करना शामिल है जो सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों के प्रोत्साहन और विकास को सुगम बनाने और उनकी प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने के लिए आवश्यक या उपयुक्त हैं”। अधिनियम की धारा 9 केंद्र सरकार को ऐसे उपाय अपनाने में सक्षम बनाती है जो लघु एवं मध्यम उद्यमों (एमएसएमई) के संवर्धन, विकास और प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है। धारा 10 इन एमएसएमई के लिए प्रगतिशील ऋण सुविधाओं

की बात करती है। धारा 11 क्रय वरीयता नीति का प्रावधान है। धारा 11 हमारे लिए महत्वपूर्ण है। इस प्रावधान के अंतर्गत, केंद्र या राज्य सरकारें अपने मंत्रालयों, विभागों, सहायता प्राप्त संस्थानों या सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों द्वारा लघु एवं मध्यम उद्यमों द्वारा उत्पादित और प्रदान की जाने वाली माल और सेवाओं की खरीद के संबंध में वरीयता नीतियों को अधिसूचित करती हैं। संदर्भ के लिए धारा 11 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“धारा 11. खरीद वरीयता नीति.— लघु एवं मध्यम उद्यमों के संवर्धन एवं विकास को सुगम बनाने के लिए, केंद्र सरकार या राज्य सरकार समय-समय पर आदेश द्वारा अपने मंत्रालयों या विभागों, जैसा भी मामला हो, या अपने सहायता प्राप्त संस्थानों और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों द्वारा लघु एवं मध्यम उद्यमों द्वारा उत्पादित एवं प्रदान की गई माल एवं सेवाओं की खरीद के संबंध में वरीयता नीतियां अधिसूचित कर सकती है।”

56. न्यायालय ने अधिनियम 2006 की धारा 11 के प्रावधानों के साथ-साथ एमएसई आदेश 2012 की जांच करते हुए पैरा 1.1 में निम्नलिखित अवलोकन किया है:-

“1.1 लघु एवं मध्यम उद्यमों (एमएसई) के संवर्धन एवं विकास से संबंधित विधिक व्यवस्था का अध्ययन करने के बाद, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि क्रय आदेश 2012 विधि के समान प्रभावी है और प्रवर्तनीय है। यद्यपि अधिनियम और क्रय आदेश 2012 किसी व्यक्तिगत एमएसई के लिए 'प्रवर्तनीय अधिकार' सृजित नहीं करते, फिर भी इसके अंतर्गत गठित वैधानिक प्राधिकारियों और प्रशासनिक निकायों पर प्रवर्तनीय कर्तव्य लागू होते हैं। वे उत्तरदायित्वशाली हैं और न्यायिक समीक्षा के अधीन हैं। हमने यह भी स्पष्ट किया है कि इन मामलों में न्यायिक समीक्षा का दायरा, वैधानिक कर्तव्य के पालन हेतु परमादेश जारी करने की न्यायिक समीक्षा की मानक शक्ति से कहीं अधिक होना चाहिए और यह जांच करनी चाहिए कि कर्तव्य धारक, प्राधिकारियों और निकायों का गठन उचित है या नहीं और क्या वे प्रभावी और कुशल ढंग से कार्य कर रहे हैं। संस्थागत अखंडता सुनिश्चित करके हम अपने संस्थागत उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं।”

(हमारे द्वारा जोर दिया गया)

57. अधिनियम 2006 का उद्देश्य लघु एवं मध्यम उद्यम (एमएसई) के संवर्धन और विकास को सुगम बनाना तथा उसकी प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाना है। अधिनियम की धारा 11 क्रय वरीयता नीति का प्रावधान करती है। इसमें एमएसएमई द्वारा उत्पादित माल और सेवाओं की क्रय में एमएसएमई के लिए वरीयता नीतियों का उल्लेख है। नीति का उद्देश्य एमएसई द्वारा उत्पादित माल और प्रदान की जाने वाली सेवाओं को बढ़ावा देना है। इसी उद्देश्य से एमएसई व्यवस्था के अंतर्गत सरकारी विभागों द्वारा एमएसई से न्यूनतम क्रय का प्रावधान है और एमएसई को न्यूनतम बोलीदाता द्वारा दी गई कीमत के बराबर बोली लगाने की अनुमति है, बशर्ते ऐसी बोली एल1+15% की सीमा के भीतर हो।

58. एमएसई व्यवस्था का एक निश्चित उद्देश्य है। इसका लक्ष्य अधिनियम 2006 के अंतर्गत पंजीकृत एमएसई इकाइयों द्वारा उत्पादित माल और प्रदान की जाने वाली सेवाओं को बढ़ावा देना है। खरीद नीति संबंधित सरकार द्वारा तैयार की जाएगी। अधिनियम 2006 की धारा 11 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि माल और सेवाओं की खरीद में वरीयता नीति एमएसई इकाइयों द्वारा उत्पादित माल और प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए होगी।

59. यह ज्ञात हुआ है कि विभिन्न परिस्थितियों में एमएसएमई प्रावधानों की प्रयोज्यता के संबंध में संबंधित मंत्रालय के समक्ष कई संदेह उठाए गए थे। इन चिंताओं के समाधान हेतु एक कार्यालय जापन दिनांक 25.3.2022 जारी किया गया है, जो याचिका के संलग्नक 11 में संलग्न है। प्रश्न संख्या 18 (पैरा 24 में उद्धृत) के उत्तर में मंत्रालय ने स्पष्ट किया है कि एमएसई नीति मात्र एमएसई द्वारा उत्पादित माल और प्रदान की गई सेवाओं की खरीद के लिए है। व्यापारी/वितरक/एकल एजेंट/कार्य संविदा को एमएसई आदेश, 2012 के सार्वजनिक खरीद नीति के दायरे से बाहर रखा गया है।

60. मंत्रालय द्वारा दी गई व्याख्या स्पष्ट है और धारा 11 के अनुरूप है। खरीद की नीति मात्र लघु एवं मध्यम उद्यमों द्वारा उत्पादित माल या लघु एवं मध्यम उद्यमों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिए है।

61. चूंकि खरीद नीति लघु एवं मध्यम उद्यम (एमएसई) द्वारा उत्पादित माल या प्रदान की गई सेवाओं के लिए है, इसलिए मंत्रालय ने स्पष्ट किया है कि व्यापारी/वितरक/एकमात्र एजेंट/कार्य संविदा एमएसई आदेश, 2012 के दायरे से बाहर हैं।

62. प्रश्न संख्या 32 (ऊपर उद्धृत) के उत्तर में भी मंत्रालय द्वारा स्थिति स्पष्ट की गई है और यह स्पष्ट किया गया है कि निर्माण संविदा सार्वजनिक खरीद नीति के दायरे में नहीं आते हैं। इसके लिए सामान्य वित्तीय नियम, 2017 के खंड 143 का हवाला दिया गया है।

63. प्रश्न संख्या 48 (ऊपर उद्धृत) के उत्तर में मंत्रालय ने स्पष्ट किया है कि विदेशी कंपनी से मिलकर बने संघ के पंजीकरण का कोई प्रावधान नहीं है।

64. जब हम अधिनियम 2006 के उद्देश्य और प्रावधानों का विश्लेषण एमएसई के लिए सार्वजनिक खरीद नीति आदेश, 2012 और मंत्रालय द्वारा कार्यालय जापन दिनांक 25.3.2022 के माध्यम से जारी स्पष्टीकरण के साथ करते हैं, तो यह स्पष्ट है कि एमएसएमई व्यवस्था का लाभ मात्र विधिवत पंजीकृत एमएसई इकाई को उसके द्वारा उत्पादित माल और उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिए ही दिया जा सकता है।

65. एमएसई नीति/व्यवस्था का उद्देश्य एमएसई द्वारा उत्पादित माल या प्रदान की गई सेवाओं को बढ़ावा देना है, इसलिए इस नीति का लाभ व्यापारियों/वितरकों/एकल एजेंट/ठेकेदारों या उन परिस्थितियों में नहीं मिलेगा जहां विदेशी कंपनी के संघ द्वारा माल का उत्पादन या सेवाएं प्रदान की जाती हैं। अतः, जहां पंजीकृत एमएसएमई

माल का उत्पादक या सेवा प्रदाता नहीं है, बल्कि मात्र प्रमुख भागीदार की सहायता कर रहा है, वहां एमएसएमई नीति लागू नहीं होगी।

66. आगे बढ़ने से पहले, हम श्री अमित सक्सेना के इस तर्क पर ध्यान दे सकते हैं कि संविदात्मक मामलों में हस्तक्षेप करने के मामले में इस न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार अत्यंत सीमित है। इस उद्देश्य के लिए विद्वान अधिवक्ता ने एग्माटेल इंडिया (पी) लिमिटेड बनाम रिसोर्सिस टेलीकॉम (2022) 5 एससीसी 362 के पैरा 24 से 26 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी पर भरोसा किया है, जिसे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“24. संविदात्मक मामलों में न्यायिक समीक्षा का दायरा, और विशेष रूप से संविदा दस्तावेज की व्याख्या की प्रक्रिया के संबंध में, इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में चर्चा का विषय रहा है। इस विषय पर अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि गैलेक्सी ट्रांसपोर्ट एजेंसीज [गैलेक्सी ट्रांसपोर्ट एजेंसीज बनाम न्यू जे.के. रोडवेज, फ्लीट ओनर्स एंड ट्रांसपोर्ट कन्ट्रैक्टर्स, (2021) 16 एससीसी 808 : 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 1035] में इस न्यायालय के तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ अफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर [अफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम नागपुर मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2016) 16 एससीसी 818] के उक्त निर्णय पर भी विचार किया गया है; और इस न्यायालय ने सैनिकों और उपकरणों के परिवहन के लिए वाहनों की आपूर्ति हेतु जारी संविदा में बोलीदाताओं द्वारा धारित किए जाने वाले वाहनों की श्रेणी से संबंधित पात्रता शर्त की संविदा आमंत्रित करने वाले प्राधिकरण द्वारा की गई व्याख्या में उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप को अस्वीकृत कर दिया है।

25. इस न्यायालय ने इस विषय पर विभिन्न निर्णयों का हवाला देते हुए निम्नलिखित विधिक सिद्धांतों को बताया: (गैलेक्सी ट्रांसपोर्ट एजेंसीज मामला [गैलेक्सी ट्रांसपोर्ट एजेंसीज बनाम न्यू जे.के. रोडवेज, फ्लीट ओनर्स और ट्रांसपोर्ट कन्ट्रैक्टर्स, (2021) 16 एससीसी 808 : 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 1035], एससीसी पैरा 14-20)

“14. कई निर्णयों में, इस न्यायालय ने यह माना है कि संविदा अभिलेख तैयार करने वाला प्राधिकरण ही इसकी आवश्यकताओं को समझने और सराहने के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति है, और इसलिए, न्यायिक समीक्षा कार्यवाही में किसी न्यायालय द्वारा इसकी व्याख्या पर पुनर्विचार नहीं किया जाना चाहिए। अफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम नागपुर मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड [अफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम नागपुर मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2016) 16 एससीसी 818] में, इस न्यायालय ने कहा: (एससीसी पृष्ठ 825, पैराग्राफ 15)

‘15. हम यह जोड़ना चाहेंगे कि किसी परियोजना का स्वामी या नियोक्ता, जिसने संविदा अभिलेख तैयार किए हैं, उसकी आवश्यकताओं को समझने और उनकी व्याख्या करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति है। संवैधानिक न्यायालयों को संविदा दस्तावेजों की इस समझ और व्याख्या का सम्मान करना चाहिए, जब तक कि संविदा शर्तों की समझ या व्याख्या या उनके अनुप्रयोग में कोई दुर्भावना या विकृति न हो। यह संभव है कि किसी परियोजना का स्वामी या नियोक्ता संविदा दस्तावेजों की ऐसी व्याख्या दे जो संवैधानिक न्यायालयों को स्वीकार्य न हो, लेकिन यह अपने आप में दी गई व्याख्या में हस्तक्षेप करने का कारण नहीं है।’

15. भारत कोकिंग कोल लिमिटेड बनाम एमआर देव प्रभा [भारत कोकिंग कोल लिमिटेड बनाम एमआर देव प्रभा, (2020) 16 एससीसी 759] के निर्णय में, "प्राधिकार की व्याख्या के प्रति सम्मान" शीर्षक के अंतर्गत, इस न्यायालय ने कहा: (एससीसी पृष्ठ 776, पैराग्राफ 50-52)

'50. अंत में, हम एक और मूलभूत समस्या पर विचार करना आवश्यक समझते हैं। यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी 1 मात्र एनआईटी की शर्तों को लागू करवाना चाहता है। इस प्रक्रिया में संविदात्मक शर्तों की व्याख्या अंतर्निहित है। हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि वाणिज्य के क्षेत्र में अनुबंधों की न्यायिक व्याख्या, कानूनों की व्याख्या से भिन्न होती है।

51. वर्तमान तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि बीसीसीएल और सी1-इंडिया ने एनआईटी की धाराओं का सहारा लिया है, चाहे वह प्रतिवादी 6 द्वारा प्रदर्शन बैंक गारंटी प्रस्तुत करने में हुई देरी को माफ करने के लिए हो या तकनीकी खराबी के आधार पर नीलामी फिर से शुरू करने के उनके निर्णय के लिए। चूंकि बीसीसीएल ने ही ये दस्तावेज तैयार किए हैं, इसलिए वह इनकी आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से समझ सकता है और इनकी व्याख्या कर सकता है। [अफकॉन्स इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड बनाम नागपुर मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन लिमिटेड, (2016) 16 एससीसी 818]

52. उच्च न्यायालय को इस समझ को स्वीकार करना चाहिए था, जब तक कि यह स्पष्ट रूप से विकृत या दुर्भावनापूर्ण न हो। चूंकि बीसीसीएल द्वारा इन खंडों की व्याख्या तर्कसंगत थी और बेतुकी नहीं थी, इसलिए मात्र संविदात्मक व्याख्या पर मतभेद के आधार पर उच्च न्यायालय को यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए था कि अपीलकर्ता ने अवैधता कारित किया है।'

16. इसके अतिरिक्त, सिल्पी कंस्ट्रक्शंस कॉन्ट्रैक्टर्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया [सिल्पी कंस्ट्रक्शंस कॉन्ट्रैक्टर्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, (2020) 16 एससीसी 489] के हालिया निर्णय में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित कहा: (एससीसी पृष्ठ 501-02, पैरा 20)

'20. उपर्युक्त निर्णयों में प्रतिपादित विधि का सार संयम और सावधानी बरतना है; राज्य संस्थाओं से जुड़े संविदा मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप को उचित ठहराने के लिए सर्वोपरि जनहित की आवश्यकता है; न्यायालयों को विशेषज्ञों की राय को तब तक महत्व देना चाहिए जब तक कि निर्णय पूरी तरह से मनमाना या अनुचित न हो; न्यायालय उचित प्राधिकारी पर अपील न्यायालय की तरह कार्य नहीं करता; न्यायालय को यह समझना चाहिए कि संविदा जारी करने वाला प्राधिकारी ही उसकी आवश्यकताओं का सर्वोत्तम निर्णायक होता है, इसलिए न्यायालय का हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिए। संविदा या संविदा जारी करने वाला और संविदा अभिलेख तैयार करने वाला प्राधिकारी ही दस्तावेजों की व्याख्या करने का सर्वोत्तम निर्णायक होता है। यदि दो व्याख्याएँ संभव हों तो अभिलेख तैयार करने वाले की व्याख्या को स्वीकार किया जाना चाहिए। न्यायालय मात्र मनमानी, अतार्किकता, पूर्वाग्रह, दुर्भावना या विकृति को रोकने के लिए ही हस्तक्षेप करेगा। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए हम वर्तमान मामले पर विचार करेंगे।'

17. इन निर्णयों के अनुसार और यह देखते हुए कि इस मामले में संविदा प्राधिकारी की व्याख्या को अनुचित नहीं कहा जा सकता, डिवीजन बेंच को अपनी व्याख्या देकर और एनआईटी की शर्त संख्या 31 में प्रयुक्त शब्द "दोनों" को उचित महत्व न देकर इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। इसी कारण, डिवीजन बेंच का यह निष्कर्ष [न्यू जे.के. रोडवेज बनाम राज्य (जम्मू और कश्मीर केंद्र शासित प्रदेश), 2020 एससीसी

ऑनलाइन जम्मु और कश्मीर 733] कि जे.के. रोडवेज को गलत तरीके से अपात्र घोषित किया गया था, रद्द किया जाता है।

18. एनआईटी की शर्त संख्या 27 के अनुसार कम से कम 5 वर्ष का कार्य अनुभव, जिसका मूल्य 2 करोड़ रुपये से कम न हो, अनिवार्य है। इस संबंध में यह कहना पर्याप्त होगा कि चार सदस्यीय विशेषज्ञ निकाय, संविदा खोलने वाली समिति ने स्पष्ट रूप से पाया कि हमारे समक्ष अपीलकर्ता ने इस पात्रता शर्त को पूरा किया है। अतः, इस न्यायालय को प्रस्तुत दस्तावेजों के मूल्यांकन में जाए बिना, यह सर्वविदित है कि जब तक संविदा प्राधिकारी की ओर से मनमानी या दुर्भावना का आरोप न लगाया जाए, किसी विशेष संविदा का विशेषज्ञ मूल्यांकन, विशेषकर तकनीकी मूल्यांकन के मामले में, रिट न्यायालय द्वारा प्रश्नचिह्नित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, जगदीश मंडल बनाम उड़ीसा राज्य [जगदीश मंडल बनाम उड़ीसा राज्य, (2007) 14 एससीसी 517] में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 531-32, पैरा 22)

'22. प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा का उद्देश्य मनमानी, अतार्किकता, अनुचितता, पक्षपात और दुर्भावना को रोकना है। इसका उद्देश्य यह जांचना है कि कोई विकल्प या निर्णय "विधिक रूप से" लिया गया है या नहीं, न कि यह जांचना कि कोई विकल्प या निर्णय "उचित" है या नहीं। संविदाओं या ठेकों के आवंटन से संबंधित मामलों में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते समय कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना चाहिए। संविदा एक वाणिज्यिक लेन-देन है। संविदाओं का मूल्यांकन और ठेकों का आवंटन मूलतः वाणिज्यिक कार्य हैं। निष्पक्षता और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत यहाँ लागू नहीं होते। यदि ठेके के आवंटन से संबंधित निर्णय सद्भावनापूर्ण और जनहित में हैं, तो न्यायालय न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप नहीं करेंगे, भले ही प्रक्रियात्मक अनियमितता, मूल्यांकन में त्रुटि या संविदाकर्ता के प्रति पूर्वाग्रह सिद्ध हो जाए। न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग जनहित की कीमत पर निजी हित की रक्षा करने या संविदात्मक विवादों का निपटारा करने के लिए नहीं किया जा सकता। शिकायत करने वाला संविदाकर्ता या ठेकेदार सदैव दीवानी न्यायालय में हर्जाना मांग सकता है। काल्पनिक शिकायतों, आहत स्वाभिमान और व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता के आधार पर असफल संविदाकर्ताओं द्वारा तकनीकी/प्रक्रियात्मक उल्लंघन या स्वयं के प्रति किसी पूर्वाग्रह जैसी छोटी-छोटी बातों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने और न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करके न्यायालयों को हस्तक्षेप करने के लिए राजी करने के प्रयासों का विरोध किया जाना चाहिए। इस प्रकार के हस्तक्षेप, चाहे अंतरिम हों या अंतिम, सार्वजनिक कार्यों को वर्षों तक रोक सकते हैं, हजारों-लाखों लोगों को राहत और सहायता मिलने में देरी कर सकते हैं और परियोजना की लागत को कई गुना बढ़ा सकते हैं। इसलिए, न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए संविदा या संविदात्मक मामलों में हस्तक्षेप करने से पहले, न्यायालय को स्वयं से निम्नलिखित प्रश्न पूछने चाहिए:

(i) क्या प्राधिकरण द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया या लिया गया निर्णय दुर्भावनापूर्ण है या किसी को लाभ पहुंचाने के इरादे से लिया गया है; या

क्या अपनाई गई प्रक्रिया या लिया गया निर्णय इतना मनमाना और तर्कहीन है कि न्यायालय कह सकता है: "यह निर्णय ऐसा है कि कोई भी उत्तरदायी प्राधिकरण उचित रूप से और प्रासंगिक विधि के अनुसार कार्य करते हुए इस तक नहीं पहुंच सकता था";

(ii) क्या इससे जनहित प्रभावित होता है?

यदि उत्तर नकारात्मक हैं, तो अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। संविदाकर्ता/ठेकेदार को ब्लैकलिस्ट करने या दंडात्मक कार्रवाई करने या राज्य द्वारा दी जाने वाली सहायता (स्थलों/दुकानों का आवंटन, लाइसेंस, डीलरशिप और फ्रेंचाइजी का अनुदान) के वितरण से संबंधित मामले अलग हैं, क्योंकि इनमें कार्रवाई में उच्च स्तर की निष्पक्षता की आवश्यकता हो सकती है।

1. इसी प्रकार, मॉटेकार्लो लिमिटेड बनाम एनटीपीसी लिमिटेड [मॉटेकार्लो लिमिटेड बनाम एनटीपीसी लिमिटेड, (2016) 15 एससीसी 272] में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित कहा: (एससीसी पृष्ठ 288, पैरा 26)

‘26. हम उपरोक्त विधि कथन से आदरपूर्वक सहमत हैं। हमारे पास ऐसा करने के कारण हैं। वर्तमान परिदृश्य में, अत्यंत जटिल तकनीकी विषयों के लिए संविदाएँ जारी की जाती हैं और प्रस्ताव आमंत्रित किए जाते हैं। इसके लिए कार्य की प्रकृति और उसके उद्देश्य की समझ और सराहना आवश्यक है। प्रतिस्पर्धी वाणिज्यिक क्षेत्र में यह सर्वविदित है कि संविदा आमंत्रण के अंतर्गत प्राप्त तकनीकी बोलियों की तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा गहन जाँच की जाती है और कभी-कभी स्वामी संगठन से असंबंधित तृतीय-पक्षों से भी सहायता ली जाती है। इससे निष्पक्षता सुनिश्चित होती है। बोलीदाता की विशेषज्ञता और तकनीकी क्षमता का मूल्यांकन विशेषज्ञों द्वारा किया जाना चाहिए। वित्तीय मूल्यांकन के मामलों में सलाहकारों की नियुक्ति की जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि तकनीकी क्षमता और वित्तीय व्यवहार्यता में आशावाद हो और वे व्यावहारिक और यथार्थवादी हों। यह एक बहुआयामी और जटिल दृष्टिकोण है; जो प्रकृति में अत्यंत तकनीकी है। सार्वजनिक संपदा की नीलामी वाली संविदाएँ एक अलग श्रेणी में आती हैं। जिस संविदा की हम चर्चा कर रहे हैं, वह किसी आवंटन योजना के समान नहीं है। जिस क्षेत्र का हमने उल्लेख किया है, उसमें तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता है। लागू किए गए मापदंड अलग-अलग हैं। इसका उद्देश्य निष्पादन में उच्च स्तर की पूर्णता और समय सारिणी का पालन सुनिश्चित करना है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ये संविदाएँ न्यायिक समीक्षा से बच जाएँगी। न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग तब आवश्यक होगा जब दृष्टिकोण मनमाना या दुर्भावनापूर्ण हो या अपनाई गई प्रक्रिया किसी एक पक्ष को लाभ पहुँचाने के लिए हो। निर्णय लेने की प्रक्रिया से यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होना चाहिए कि उक्त खामियों को दूर रखा गया है। लेकिन यदि कोई निर्णय संविदा अभिलेख की भाषा के अनुरूप लिया जाता है या संविदा जारी करने के उद्देश्य की पूर्ति करता है, तो न्यायालय को संयम के सिद्धांत का पालन करना चाहिए। न्यायालय द्वारा तकनीकी मूल्यांकन या तुलना अस्वीकार्य होगी। अन्य क्षेत्रों में संविदा से संबंधित सामान्य दस्तावेजों की जाँच और समझने के लिए लागू सिद्धांत को तकनीकी कार्यों और विशेष कौशल की आवश्यकता वाली परियोजनाओं से संबंधित संविदा दस्तावेजों की व्याख्या और मूल्यांकन से अलग तरीके से लागू किया जाना चाहिए। स्वामी को उद्देश्य पूरा करने की अनुमति दी जानी चाहिए और प्रक्रिया में स्वतंत्रता का प्रावधान होना चाहिए।’

20. ऐसी स्थिति में, हम यह समझने में असमर्थ हैं कि डिवीजन बेंच ने अपने स्वयं के मूल्यांकन के आधार पर यह निष्कर्ष कैसे निकाला कि अपीलकर्ता के पास मात्र 1 वर्ष का कार्य अनुभव था, और उसने चार सदस्यीय विशेषज्ञ संविदा खोलने वाली समिति के मूल्यांकन को अपने स्वयं के मूल्यांकन से प्रतिस्थापित कर दिया।

(मूल पाठ में इटैलिक में लिखी गई सामग्री पर जोर दिया गया है; बोल्ड इटैलिक में जोर दिया गया भाग अतिरिक्त है)

26. उपर्युक्त विधि संबंधी कथनों से यह स्पष्ट है कि संविदा अभिलेख के लेखक को ही उसकी आवश्यकताओं को समझने और सराहने का सर्वोत्तम अधिकार माना जाता है; और यदि उसकी व्याख्या संविदा अभिलेख की भाषा के अनुरूप हो या संविदा की खरीद के लिए सहायक हो, तो न्यायालय संयम बरतना उचित समझेगा। इसके अतिरिक्त, न्यायालय द्वारा तकनीकी मूल्यांकन या तुलना करना अनुमेय नहीं है; और यदि संविदा आमंत्रित करने वाले व्यक्ति द्वारा संविदा अभिलेख की दी गई व्याख्या संवैधानिक न्यायालय को स्वीकार्य न भी हो, तो भी यह व्याख्या में हस्तक्षेप करने का कारण नहीं होगा।”

67. जहां तक इस न्यायालय द्वारा संविदा प्रदान करने के मामलों में हस्तक्षेप के दायरे का संबंध है, विधि में स्थिति स्पष्ट है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एग्माटेल इंडिया (पी) लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में कई निर्णयों का हवाला दिया है जिनमें संविदात्मक मामलों में रिट न्यायालय द्वारा संयम बरतने की आवश्यकता बताई गई है। संविदा खंडों की व्याख्या करने या तकनीकी मूल्यांकन या तुलना करने में संयम बरतना भी सर्वमान्य है।

68. हालांकि, इस मामले में विचारणीय मुद्दा संविदा या तकनीकी मूल्यांकन या तुलना या बोली आदि की व्याख्या नहीं है। इस मामले में उठने वाला प्रश्न तृतीय प्रतिवादी के पक्ष में क्लाउड संविदा प्रदान करने के लिए एमएसई नीति की प्रयोज्यता से संबंधित है।

69. इसमें कोई शक नहीं कि याचिकाकर्ता क्लाउड संविदा के लिए सबसे कम बोली लगाने वाला है। उसे संविदा देने से अस्वीकार मात्र एमएसई नीति के लाभ के कारण किया गया है। इसलिए, हमें यह जांच करनी होगी कि क्या इस मामले में एमएसई नीति लागू होती है या नहीं?

70. भारत के संविधान का अनुच्छेद 14 सभी को विधि के समक्ष समानता की गारंटी देता है। यह सर्वविदित है कि अनुच्छेद 14 के अंतर्गत वर्गीकरण कभी भी मनमाना नहीं होना चाहिए। वर्गीकरण सदैव किसी वास्तविक और ठोस भेद पर आधारित होना चाहिए, जिसका उन माल से उचित और न्यायसंगत संबंध हो जिनके संदर्भ में वर्गीकरण किया जा रहा है। अंततः कसौटी बोधगम्य भेद और वांछित उद्देश्य से तार्किक संबंध की है।

71. यदि सरकारी खरीद में एमएसएमई इकाई को बढ़ावा देने का उद्देश्य पूरा नहीं होता है, क्योंकि या तो माल का उत्पादन उसके द्वारा नहीं किया जाता है या सेवाएं उसके द्वारा प्रदान नहीं की जाती हैं, तो एमएसई नीति का लाभ देना मनमाना होगा।

72. इसी सीमित उद्देश्य से न्यायालय ने वर्तमान मामले के तथ्यों में एमएसई नीति की प्रयोज्यता की जांच की है। एमएसई नीति स्पष्ट है। यह नीति किसी एमएसई पर मात्र उसके द्वारा उत्पादित माल या प्रदान की गई सेवाओं के लिए ही लागू होती है।

73. लाइफकेयर इनोवेशन्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे मामलों में न्यायिक समीक्षा के दायरे को स्पष्ट किया है। न्यायालय ने कहा है कि इन मामलों में न्यायिक समीक्षा का दायरा संस्थागत उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अधिकारियों के प्रभावी और कुशल ढंग से कार्य करने की जाँच करने की न्यायिक समीक्षा की मानक शक्ति से कहीं अधिक होना चाहिए।

74. हमने संविदा की शर्तों की पहले ही जांच कर ली है और यह स्पष्ट है कि यद्यपि इसे सेवा संविदा कहा गया है, लेकिन इसमें माल की आपूर्ति भी शामिल है। माल की आपूर्ति मुख्य रूप से सीएसपी द्वारा की जाएगी। क्लाउड संविदा के अंतर्गत प्रदान की जाने वाली सेवाएं भी मुख्य रूप से सीएसपी द्वारा ही दी जाएंगी।

75. इस संबंध में याचिकाकर्ता ने दलील दी है कि संविदा का प्रमुख हिस्सा 'क' और 'ख' शीर्षकों के अंतर्गत सौंपे गए कार्यों से बना है, जिनमें डेटा वेयरहाउस की स्थापना और अनुसंधान एवं विकास में भारी निवेश की आवश्यकता है। संविदा का यह हिस्सा प्रमुख है और तृतीय प्रतिवादी (एमएसपी) द्वारा प्रस्तुत बोली के अनुसार, इसे सीएसपी इस मामले में एडब्ल्यूएस द्वारा प्रदान किया जाना है। याचिकाकर्ता द्वारा 4.2.2025 को दायर किए गए पूरक शपथपत्र के पैरा 10 में निम्नलिखित कथन किए गए हैं:-

“10. प्रतिवादी संख्या 3 के वित्तीय प्रस्ताव के मूल्यांकन से पता चलता है कि कुल 37,92,17,479.47/- रुपये की बोली में से, 35,83,14,173.61/- रुपये की राशि उक्त प्रस्ताव के शीर्ष क और ख के अंतर्गत सीएसपी से माल और सेवाओं की खरीद के लिए प्रस्तावित की गई थी, जबकि 89,57,854.34/- रुपये और 1,19,45,451.52/- रुपये क्रमशः शीर्ष ग और घ के अंतर्गत स्थापना, चालू करने, प्रशिक्षण और रखरखाव सेवाओं से संबंधित आकस्मिक सेवाओं के शुल्क के लिए निर्धारित किए गए थे। उपरोक्त आंकड़े दर्शाते हैं कि प्रतिवादी संख्या 3 के शुल्क प्रस्ताव का लगभग 97% हिस्सा सीएसपी, अर्थात् अमेज़ॉन वेब सर्विसेज से माल और सेवाओं की खरीद के लिए निर्धारित किया गया था, जबकि शेष मामूली शुल्क सीएसपी की स्थापना/सेट-अप/कमीशनिंग/रखरखाव के लिए आकस्मिक सेवा के लिए प्रस्तावित किया गया था। प्रतिवादी संख्या 3 के सीएसपी द्वारा प्रस्तुत किए गए उत्पाद और सेवाएं।”

76. इस शपथपत्र के संलग्नक-2 में याचिकाकर्ता और तृतीय प्रतिवादी की वित्तीय बोली का चार्ट दिया गया है। इस चार्ट के अनुसार, संविदा में क्लाउड सेवा प्रदाता की हिस्सेदारी याचिकाकर्ता के लिए 97.21% है, जबकि तृतीय प्रतिवादी के लिए यह 97.12% है। संविदा में वित्तीय व्यय के संदर्भ में एमएसपी घटक, अर्थात् याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 3 की भूमिका, याचिकाकर्ता के लिए 2.79% है, जबकि तृतीय प्रतिवादी के लिए यह 2.88% है। चार्ट (संलग्नक एसए-3) का उल्लेख याचिकाकर्ता द्वारा दायर पूरक शपथपत्र के पैरा 11 में किया गया है।

77. प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता द्वारा पूरक शपथपत्र में किए गए दावों के जवाब में अपना पूरक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया है। पूरक शपथपत्र के पैरा 10 का जवाब पैरा 36 में दिया गया है, जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“36. पूरक शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 10 की सामग्री, अभिलेख में दर्ज तथ्यों के अतिरिक्त, भ्रामक, गलत और अस्वीकृत है; इसके उत्तर में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि इस प्रति-शपथपत्र के पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में पहले ही एक उपयुक्त उत्तर दिया जा चुका है, जिसे संक्षिप्तता के लिए यहां दोहराया नहीं जा रहा है।”

78. चार्ट में उल्लिखित आंकड़े बताते हैं कि क्लाउड संविदा के लिए वित्तीय व्यय का 97% हिस्सा सीएसपी को जाता है जबकि एमएसपी का हिस्सा 3% से कम रहता है, इस पर विशेष रूप से कोई विवाद नहीं है। पूरक प्रति-शपथपत्र के पैरा 32 से 34 में तृतीय प्रतिवादी ने कहा है कि याचिकाकर्ता द्वारा एक भ्रामक विवरण प्रस्तुत किया गया है और क्लाउड अवसंरचना मुख्य रूप से 'उपयोग के लिए भुगतान' सिद्धांत पर आधारित है और सेवाओं/क्लाउड भुगतान का शुल्क उपयोग के आधार पर परिवर्तनीय है। प्रतिवादी का तर्क है कि:-

“बिना किसी पूर्वाग्रह के, यह भी निवेदन किया जाता है कि एमएसपी और सीएसपी के बीच वितरित कार्य की मात्रा और उनके बीच धन का प्रवाह इस पहलू पर स्वतः ही कोई प्रभाव नहीं डालेगा कि क्या उत्तर देने वाला प्रतिवादी एमएसई आदेश के लाभ का पात्र है या नहीं, क्योंकि उचित मात्रा का न्यायिक निर्धारण किया जा सकता है जो एमएसएमई को लाभ के लिए पात्र बनाएगा या नहीं।”

79. पैरा 32 में प्रतिवादी ने फिर से निम्नलिखित कथन दिया है:-

“कार्य का स्वरूप और निधियों का वितरण अप्रासंगिक हो जाता है और याचिकाकर्ता को इस माननीय न्यायालय के समक्ष इतने विलंबित चरण में इस पर प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह भी ध्यान देने योग्य है कि एमएसएमई अधिनियम का उद्देश्य संबंधित संस्थाओं की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ावा देना, बढ़ाना और विकसित करना है, न कि अंततः उनके द्वारा अर्जित लाभ के आधार पर।”

80. पैरा 34 में प्रतिवादी ने निम्नलिखित कथन दिया है:-

“इसलिए, यह तथ्य कि प्रतिवादी ने 20 सीएसपी-प्रशिक्षित विशेषज्ञों को नियुक्त किया है, उसकी सेवाओं की विशिष्ट प्रकृति को रेखांकित करता है और मात्र व्यापार या पुनर्विक्रय की धारणा को स्पष्ट रूप से नकारता है। यदि प्रतिवादी मात्र एक पुनर्विक्रेता होता, तो ऐसे विशिष्ट कर्मियों की आवश्यकता नहीं होती।

81. संविदा अभिलेख में निहित प्रावधानों के साथ-साथ रिट याचिका में किए गए विशिष्ट निवेदनों से यह स्पष्ट होता है कि संविदा का अधिकांश कार्य सीएसपी द्वारा ही संपन्न किया जाना है। क्लाउड संविदा के लिए वित्तीय व्यय का 97% हिस्सा सीएसपी को जाता है, जबकि एमएसपी को आवंटित हिस्सा 3% से भी कम है।

82. सीएसपी और एमएसपी द्वारा प्रदान की गई सेवाओं और संविदा के निष्पादन में उनके मौद्रिक हिस्से के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सीएसपी क्लाउड संविदा में प्रमुख भागीदार है, जो न मात्र कंप्यूटिंग सेवाओं और उनके भंडारण से संबंधित संविदा के अधिकांश भाग का निष्पादन करता है, बल्कि संविदा अवधि के लिए एमएसपी की ओर से डीजीएच को सॉफ्टवेयर लाइसेंस, प्रक्रियाएं और अभिलेख भी प्रदान करता है। एमएसपी क्लाउड संविदा में एक अधीनस्थ भागीदार है जो मात्र सहायक सेवाएं आदि प्रदान करने में सहायक भूमिका निभाता है, जिसके लिए उसे संविदा मूल्य का 3% से भी कम हिस्सा मिलता है।

83. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं ने न्यायालय में यह स्वीकार किया कि क्लाउड कंप्यूटिंग सेवाएं और डेटा स्टोरेज आदि प्रदान करना उच्च कौशल वाली सेवाएं हैं, जो वर्तमान में कुछ ही बहुराष्ट्रीय निगमों जैसे अमेज़न वेब सर्विसेज, माइक्रोसॉफ्ट, गूगल आदि तक सीमित हैं। याचिकाकर्ता और तृतीय प्रतिवादी, दोनों बोलीदाताओं की ओर से, क्लाउड सेवाएं या तो अमेज़न वेब सर्विसेज या मेसर्स माइक्रोसॉफ्ट इंटरनेशनल द्वारा सीएसपी (क्लाउड सर्विस प्रोवाइडर) के रूप में प्रदान की जानी हैं। एमएसपी अर्थात याचिकाकर्ता या तृतीय प्रतिवादी के पास क्लाउड कंप्यूटिंग सेवाएं या स्टोरेज आदि प्रदान करने के लिए आवश्यक तकनीकी संसाधन नहीं हैं, जो संविदा का प्रमुख हिस्सा है। क्लाउड संविदा में उनकी भूमिका मात्र सहायक सेवाएं प्रदान करने और सीएसपी के स्वामित्व वाले सॉफ्टवेयर पर डेटा माइग्रेट करने तक सीमित है।

84. चूंकि डीजीएच भारत सरकार के पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्यरत निकाय है, इसलिए एमएसएमई आदेश, 2012 के सार्वजनिक खरीद नीति के प्रावधान इस पर लागू होंगे। हालांकि, यह मुद्दा कि क्लाउड संविदा में बोली लगाने वाला माल का उत्पादन कर रहा है या सेवाएं प्रदान कर रहा है ताकि एमएसएमई नीति उस पर लागू हो सके, इस पर न तो विचार किया गया है और न ही सही परिप्रेक्ष्य में इसकी जांच की गई है। एमएसएमई नीति को क्लाउड संविदा में बिना यह जांचे कि क्या इसके लागू होने के लिए आवश्यक तत्व उपलब्ध हैं, नियमित रूप से लागू करना स्पष्ट रूप से मनमाना है।

85. अभिलेख में उपलब्ध सामग्री और उसके सावधानीपूर्वक विश्लेषण से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि क्लाउड संविदा के लिए वस्तुएं और सेवाएं बोलीदाता द्वारा एमएसपी (तृतीय प्रतिवादी) के रूप में प्रदान नहीं की जा रही हैं। यह मात्र एडब्ल्यूएस/सीएसपी की ओर से क्लाउड सेवाएं प्रदान करने में सहायक भूमिका निभा रहा है।

86. नामकरण चाहे जो भी हो: चाहे वह एकमात्र एजेंट/वितरक/साझेदार/सहयोगी हो या कंसोर्टियम सदस्य, एमएसपी/बोलीदाता (तृतीय प्रतिवादी) क्लाउड संविदा के लिए सेवाएं प्रदान करने या सामान उपलब्ध कराने वाला नहीं माना जा सकता। यह विशिष्टता अनिवार्य रूप से सीएसपी (इस मामले में एडब्ल्यूएस) को ही मिलनी चाहिए।

87. हालांकि, याचिकाकर्ताओं के इस तर्क से हम बहुत प्रभावित नहीं हैं कि तृतीय प्रतिवादी सेवा का प्रवर्तक नहीं है, जो कि संविदा में प्रयुक्त शब्द नहीं है, फिर भी, यह स्पष्ट है कि सीएसपी (इस मामले में एडब्ल्यूएस) मुख्य रूप से क्लाउड संविदा के लिए माल और सेवाएं प्रदान कर रहा है, जो कि एक एमएसएमई नहीं है।

88. एक बार ऐसा हो जाने पर, हमारे विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि क्या क्लाउड संविदा प्रदान करने के मामले में तृतीय प्रतिवादी को वरीयता मात्र इसलिए दी जा सकती थी क्योंकि वह एमएसई के रूप में पंजीकृत है?

89. क्लाउड संविदा की संरचना इस प्रकार है कि बोलीदाता (तृतीय प्रतिवादी) एमएसपी है। यह न मात्र अपनी ओर से बल्कि सीएसपी की ओर से भी बोली प्रस्तुत करता है। क्लाउड संविदा एमएसपी और उसके प्रमुख भागीदार, अर्थात् सीएसपी के बीच एक समझौते की परिकल्पना करता है। संविदा में आगे सीएसपी द्वारा यह गारंटी दी गई है कि वह वे सभी सेवाएं प्रदान करेगा जो सीएसपी से अपेक्षित हैं और संविदा के अंतर्गत एमएसपी के दायित्वों को पूरा करने में उसकी सहायता करने का आश्वासन भी देता है। अतः, एमएसपी क्लाउड संविदा के अंतर्गत कर्तव्यों के निर्वहन के लिए सीएसपी के साथ सहयोग कर रहा है, जिसमें प्रमुख कार्य सीएसपी द्वारा किए जाते हैं।

90. क्लाउड संविदा में एमएसपी और सीएसपी दो अलग-अलग संस्थाएं हैं, जिन्हें अलग-अलग भूमिकाएं सौंपी गई हैं। क्लाउड संविदा का प्रमुख भागीदार, अर्थात् सीएसपी, एमएसई नहीं है। एमएसई व्यवस्था विदेशी सहयोग या किसी ऐसी आपात स्थिति में एमएसई नीति का लाभ नहीं देती है, जिसमें पंजीकृत एमएसई स्वयं सेवाएं प्रदान नहीं कर रहा हो या किसी गैर-एमएसई प्रमुख भागीदार के अधीन भूमिका निभा रहा हो। एमएसएमई व्यवस्था में विदेशी सहयोग या संयुक्त उद्यम आदि भी अनुमत नहीं हैं। कार्य संविदा भी इसके दायरे से बाहर हैं। एमएसएमई नीति, जैसा कि अधिनियम 2006 और 2012 की खरीद नीति से स्पष्ट है, मात्र पंजीकृत एमएसएमई इकाइयों द्वारा उत्पादित माल या प्रदान की गई सेवाओं पर ही लागू होती है। इससे अधिक कुछ नहीं।

91. क्लाउड संविदा प्रदान करने में एमएसई नीति का लाभ तृतीय प्रतिवादी को देना एमएसई व्यवस्था के नीतिगत उद्देश्यों और प्रावधानों के विपरीत होगा। ऐसा लाभ देना पूरी तरह से तर्कहीन और मनमाना होगा। एमएसएमई नीति के अंतर्गत तृतीय प्रतिवादी को अधिमान्य व्यवहार देना नीति के उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेगा और मनमाना होगा।

92. चूंकि क्लाइड संविदा प्रदान करने के लिए तृतीय प्रतिवादी के पक्ष में एमएसई नीति का लाभ देना अस्वीकार्य और मनमाना पाया गया है, इसलिए तृतीय प्रतिवादी को दिया गया संविदा वैध नहीं ठहराया जा सकता और इसे रद्द किया जाता है। फलस्वरूप, यह याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है। प्रतिवादी संख्या 2 को इस निर्णय में निहित टिप्पणियों के आलोक में क्लाइड संविदा प्रदान करने के लिए विधि के अनुसार आगे की कार्यवाही करने का निर्देश दिया जाता है।

93. पक्षकारों को अपने-अपने खर्च स्वयं वहन करने होंगे।

(2025) 3 ILRA 633

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट सी संख्या 2218 / 2025

के साथ अन्य मामले सम्बद्ध

विजय प्रताप सिंह एवं अन्य

.....याचीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री मनोज कुमार द्विवेदी, श्री अखिलेश कुमार मिश्रा, श्री विक्रान्त द्विवेदी

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

ए. सिविल विधि - उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 - धारा 24, 24-क और 36-क - नई आबकारी नीति, 2025 - शराब की दुकान का लाइसेंस - नवीनीकरण - ई-लॉटरी - दावा किया गया अपवर्जन - शराब का व्यापार करने का अधिकार - पात्रता - उगाड़ शुगर वर्क्स लिमिटेड के मामले पर आधारित - शराब का व्यापार करने का कोई मौलिक अधिकार नहीं है - अभिनिर्धारित किया, शराब के व्यापार पर 'रेस एक्स्ट्रा कॉमर्सियम' / 'वाणिज्य से बाहर' का सिद्धांत लागू होता है, क्योंकि यह सर्वविदित है कि अपराध में कोई वाणिज्य या व्यवसाय नहीं हो सकता, क्योंकि विशेष रूप से शराब और मादक पदार्थों को विनियमित किया जाना आवश्यक है, जैसाकि वे

स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं; कोई भी नागरिक, सार्वजनिक नीति अर्थात् 'रेस एक्स्ट्रा कॉमर्सियम' / 'वाणिज्य से बाहर' के सिद्धांतों के आधार पर ऐसे सामानों के व्यापार का अधिकार नहीं जता सकता। (पैरा 24 और 33)

बी. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट - न्यायिक समीक्षा - आबकारी नीति - हस्तक्षेप का दायरा - बी. सुरेंद्र दास का मामला - नीति को सीमित आधार पर चुनौती दी जा सकती है और नीति को चुनौती देने के लिए उपलब्ध आधारों में से एक भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन था - एक बार यह मान लिया जाए कि याचिकाकर्ताओं को कोई अधिकार नहीं है, तो कोई रिट जारी नहीं की जा सकती क्योंकि नीति को चुनौती एक अधिकार के आधार पर दी गई है। (पैरा 25 और 34)

सी. 'रेस एक्स्ट्रा कॉमर्सियम' / 'वाणिज्य से बाहर' के सिद्धांतों का - सार्वजनिक नीति - प्रयोज्यता। (पैरा 33)

डी. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 300-क - संपत्ति का अधिकार - धन वापसी का अधिकार - नियमों के अंतर्गत संरक्षित अधिकार, किसी नीति द्वारा किस हद तक छीना जा सकता है - अभिनिर्धारित किया, लाइसेंस वर्ष के अंत में धन वापसी का अधिकार नियमों में भी संरक्षित है, उक्त अधिकार को किसी नीति निर्णय के माध्यम से नहीं छीना जा सकता - उच्च न्यायालय ने नीति के खंड 5.15.2.2(1)(छक) को संविधान के अनुच्छेद 300-क का उल्लंघन घोषित करते हुए निरस्त कर दिया। (पैरा 36 और 40)

ई. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 300-क - 'विधि' शब्द - अर्थ - संविधान के अनुच्छेद 300 क के संदर्भ में प्रयुक्त 'विधि' शब्द का अर्थ विधायिका द्वारा निर्मित विधि है, न कि संविधान के अनुच्छेद 162 के अंतर्गत कार्यपालिका द्वारा दिए गए निर्देश। (पैरा 38)

एफ. व्यवहार एवं प्रक्रिया - यद्यपि नीति के प्रावधान को चुनौती नहीं दी गई थी, फिर भी इससे संबंधित मुद्दा उठा और दोनों पक्षों द्वारा इस पर विचार-विमर्श किया गया - नीति की वैधता का निर्धारण करने की अनुमति - अभिनिर्धारित किया, उक्त नीति के खंड 5.15.2.2 (1) (छक) का प्रभाव अनुच्छेद 300-क के अंतर्गत निहित अधिकारों को समाप्त करने जैसा है; यद्यपि उक्त प्रावधान को चुनौती नहीं दी गई है, फिर भी यह मुद्दा उठा और दोनों पक्षों द्वारा इस पर विस्तार से विचार-विमर्श किया गया - उच्च न्यायालय ने नीति के खंड 5.15.2.2 (1) (छक) को निरस्त कर दिया। (पैरा 40)

रिट याचिका निरस्त। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. कृष्णा राय (मृत) के विधिक प्रतिनिधियों एवं अन्य बनाम बनारस हिंदू विश्वविद्यालय; (2022) एससीसी 713

2. भारत सरकार बनाम वेदांता लिमिटेड एवं अन्य; (2020) 10 एससीसी 1
3. खोदे डिस्टिलरीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य; (1995) 1 एससीसी 574
4. उगाड़ शुगर वर्क्स लिमिटेड बनाम दिल्ली प्रशासन एवं अन्य; (2001) 3 एससीसी 635
5. केरल राज्य एवं अन्य बनाम बी. सुरेंद्र दास एवं अन्य; (2015) 12 एससीसी 101
6. कुलदीप सिंह बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार; (2006) 5 एससीसी 702
7. यू.ओ.आई. बनाम इंडो-अफगान एजेंसीज लिमिटेड; (1968) 2 एससीआर 366
8. नेशनल बिल्डिंग कंस्ट्रक्शन कॉर्पोरेशन बनाम एस. रघुनाथन एवं अन्य; (1998) सुपप (1) एससीआर 156
9. एस.बी. इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम सहायक महानिदेशक विदेश व्यापार एवं अन्य; 1996 (2) एससीसी 439
10. यू.ओ.आई. बनाम इंडियन चार्ज क्रोम एवं अन्य; 1999 (7) एससीसी 314
11. हावड़ा नगर निगम एवं अन्य बनाम गंगा रोप कंपनी लिमिटेड एवं अन्य; 2004 (1) एससीसी 663
12. कुलदीप सिंह बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार; 2006 (5) एससीसी 702
13. शिमला नगर निगम आयुक्त बनाम प्रेम लता सूद एवं अन्य; 2007 (11) एससीसी 40
14. आनंद कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2014 एससीसी ऑनलाइन ऑल 15240
15. महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम लोक शिक्षण संस्था एवं अन्य; 1971 (2) एससीसी 410
16. कर्नल ए. एस. सांगवान बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य; 1980 (सप्लीमेंट) एस.सी.सी. 559
17. श्री सीताराम शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य; 1990 (3) एससीसी 223
18. यू.ओ.आई. बनाम एस. एल. दत्ता एवं अन्य; 1991 (1) एससीसी 505
19. उगाड़ शुगर वर्क्स लिमिटेड बनाम दिल्ली प्रशासन एवं अन्य; 2001 (3) एससीसी 635
20. सिधेश्वर सहकारी सखर कारखाना लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य; 2005 (3) एससीसी 369
21. धामपुर शुगर काशीपुर लिमिटेड बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य; 2007 (8) एससीसी 418
22. बजाज हिंदुस्तान लिमिटेड बनाम सर शादी लाल एंटरप्राइजेज लिमिटेड एवं अन्य; 2011 (1) एससीसी 640
23. एहसान खालिद बनाम यू.ओ.आई. माध्यम सचिव एवं अन्य; 2014 (13) एससीसी 356
24. रिट टैक्स संख्या 504 / 2002; बृज भूषण चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, निर्णीत दिनांक 05.07.2002.
25. बॉम्बे डाइंग एंड मैनुफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम बॉम्बे राज्य; एआईआर 1958 एससी 328
26. बिशंभर दयाल चंद्र मोहन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; (1982) 1 एससीसी 39
27. हिंदुस्तान टाइम्स एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; (2003) 1 एससीसी 591

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार द्विवेदी, श्री शोभित मोहन शुक्ला, श्री अनुराग कुमार सिंह, श्री रोहित जायसवाल, श्री अभिषेक सिंह और श्री अविनाश सिंह तथा राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री अनिल प्रताप सिंह से सहायता प्राप्त विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा, विद्वान सीएससी श्री शैलेंद्र कुमार सिंह, विद्वान ए.सी.एस.सी. श्री पंकज खरे, विद्वान ए.सी.एस.सी. श्री तुषार वर्मा, विद्वान ए.सी.एस.सी. श्री बद्धीश त्रिपाठी, विद्वान ए.सी.एस.सी. श्री अभिषेक कुमार पाण्डेय और प्रतिवादी - राज्य के स्थायी अधिवक्ता श्री धीरेंद्र सिंह को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिकाएं प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 06.02.2025 विशेष रूप से 5.11 को चुनौती देते हुए दायर की गई हैं।

प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जारी किए गए परिणामी आदेश दिनांक 06.02.2025 और प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा जारी किए गए नोटिसों दिनांक 13.02.2025 को भी चुनौती दी गई है, जिसमें संलग्नक - 1 से 3 में उल्लिखित याचिकाकर्ताओं की दुकान सहित सभी देसी शराब की दुकानों का व्यवस्थापन ई-लॉटरी प्रक्रिया के माध्यम से करने का प्रावधान है।

इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी संख्या 3 को यह आदेश देने के लिए एक और परमादेश मांगा गया है कि वह याचिकाकर्ताओं की दुकान को आबकारी वर्ष 2025-26 के लिए ई-लॉटरी के माध्यम से व्यवस्थापन से बाहर रखे।

इसके अतिरिक्त यह भी प्रार्थना की जाती है कि न्यायालय द्वारा उचित समझे जाने वाली कोई अन्य रिट जारी की जाए।

3. सभी याचिकाओं से यह तथ्य सामने आता है कि याचिकाकर्ता नीति दिनांक 06.02.2025 पारित होने से पहले लागू नीति के अंतर्गत उन्हें दिए गए लाइसेंसों के आधार पर शराब की दुकानें चला रहे थे। यह दावा किया गया है कि अधिकांश याचिकाकर्ता वर्ष 2018 से ही दुकानें चला रहे थे, जो उन्हें ई-लॉटरी प्रक्रिया के माध्यम से दिए गए थे और समय-समय पर बढ़ाई गई मांगों और शुल्कों के आधार पर वार्षिक रूप से नवीनीकृत किए जाते थे। यह भी कहा गया है कि 2018 में दिए गए और बाद में वर्ष-दर-वर्ष नवीनीकृत किए गए लाइसेंस के अनुसार, याचिकाकर्ताओं के पक्ष में अंतिम ऐसा लाइसेंस 31.03.2025 तक वैध रहना था और यह वैध अपेक्षा थी कि नियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार, याचिकाकर्ताओं को नवीनीकरण का विकल्प दिया जाएगा, हालांकि, राज्य सरकार ने शासनादेश दिनांक 06.02.2025 के माध्यम से आबकारी नीति बनाई। उक्त आबकारी नीति के अनुसार, दुकानों के आवंटन और आवंटन के तरीके में व्यापक संशोधन किया गया और यह प्रावधान किया गया कि राज्य सरकार के नियंत्रण में आने वाली और उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम एवं उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों द्वारा विनियमित सभी शराब की दुकानों में संशोधन किया जाएगा और सरकारी नीति में निर्धारित विधि के अनुसार एक नई ई-लॉटरी के माध्यम से उन्हें आवंटित किया जाएगा। उक्त सरकारी नीति में कुछ अन्य प्रावधान भी शामिल थे। संक्षेप में, इस नीति को 'नई आबकारी नीति, 2025' कहा जा रहा है।

4. संक्षेप में, उक्त नीति की शर्त संख्या 5.11 नवीकरण के लिए याचिकाकर्ताओं को विभिन्न नियमों के अनुसार प्राप्त अधिकारों को छीन लेती है, और इस हद तक यह तर्क दिया जाना प्रस्तावित है कि नीति विधिवत रूप से दोषपूर्ण है। उठाया गया अन्य आक्षेपित मुद्दा खंड 5.15.2.2(1)(जीए) से संबंधित है, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि लाइसेंसधारी के पास पड़ा सारा स्टॉक 01.04.2025 को ले लिया जाएगा और आबकारी आयुक्त की हिरासत में रखा जाएगा, जिसे वे अपने मार्गदर्शन और वीडियोग्राफी के अंतर्गत नष्ट कर देंगे, और लाइसेंसधारी को किसी भी प्रकार का प्रतिकर देय नहीं होगा।

5. संक्षेप में, याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए तर्क इन दो खंडों के संबंध में हैं जिन्हें आपत्तिजनक बताया जा रहा है।

6. पहला तर्क यह है कि नीतिगत निर्णय विभिन्न शराब की दुकानों की बिक्री को विनियमित करने के लिए बनाए गए नियमों के नियम 5 के विपरीत है। दूसरा तर्क यह है कि शासनादेश के रूप में जारी परिपत्र उन नियमों को रद्द नहीं कर सकता जिनमें विशेष रूप से विचारणीय प्रावधान और नवीनीकरण का अधिकार दिया गया है, जिनका उल्लेख मैं आगे करूंगा। यह भी तर्क दिया गया है कि चूंकि नियमों में संशोधन नहीं किया गया है, इसलिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि विभिन्न दुकानों से संबंधित नियमों में संशोधन किए बिना ही शासनादेश जारी कर दिया गया है। यह तर्क दिया गया है कि उक्त विधिक खामी को दूर करने के लिए अत्यधिक जल्दबाजी में 03.03.2025 को एक प्रकाशन जारी करके नियमों में संशोधन किया गया। उक्त नियमों के अनुसार, मॉडल दुकानों के माध्यम से शराब की बिक्री से संबंधित नियमों में संशोधन किया गया, साथ ही देसी शराब से संबंधित नियमों में भी संशोधन किया गया। यह कहा गया है कि उक्त नियमों में संशोधन के बाद, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रिट टैक्स संख्या 748/2025 में पारित अंतरिम आदेश को समाप्त कर दिया गया और पक्षों को अपने अधिकारों को चुनौती देने की स्वतंत्रता दी गई।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने 03.03.2025 से प्रभावी नियमों में किए गए उक्त संशोधन पर आपत्ति जताते हुए तर्क दिया है कि उक्त नियमों को पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जा सकता। उनका कहना है कि नीति 06.02.2025 को शासनादेश के माध्यम से तैयार की गई थी और उसके बाद प्रतिभागियों से आवेदन आमंत्रित किए गए थे। अतः ई-लॉटरी के माध्यम से निविदा आमंत्रित करने की तिथि पर लागू विधि ही प्रासंगिक विधि होना चाहिए और इस प्रकार, 03.03.2025 से प्रभावी संशोधन राज्य द्वारा उत्पन्न खामी को दूर नहीं करते हैं। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं को नियमों के आधार पर प्राप्त विधिक अधिकारों से एक अवैध नीति के माध्यम से वंचित नहीं किया जा सकता है, जो कि वर्तमान मामले में शासनादेश दिनांक 06.02.2025 का है। यह भी तर्क दिया गया है कि राज्य को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में कार्य करना चाहिए और विधि के शासन और गरिमा को बनाए रखना चाहिए, जो कि वर्तमान मामले में अनुपस्थित है। खंड 5.15.2.2(1)(जीए) में निहित प्रावधानों के आधार पर यह तर्क दिया गया है कि संपत्ति के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और याचिकाकर्ताओं को बिना किसी विधि के उनके संपत्ति के अधिकार से वंचित किया गया है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 300क का भी उल्लंघन है। यह भी तर्क दिया गया है कि राज्य ने अपनी

नीति में उत्तर प्रदेश आबकारी (विदेशी मदिरा के प्रीमियम फुटकर बिक्री दुकानों के लाइसेंसों का व्यवस्थापन) नियमावली 2020 के अंतर्गत एक प्रकार की दुकान को विशेष रूप से बाहर रखा है और इस हद तक राज्य की नीति भेदभावपूर्ण है क्योंकि उन्होंने मात्र कुछ प्रकार की दुकानों के संबंध में नीति अपनाई है जबकि प्रीमियम फुटकर बिक्री दुकानों को उक्त नीतिगत निर्णय से छूट दी गई है, जो याचिकाकर्ताओं के अनुसार मनमाना और अवैध है। यह भी तर्क दिया गया है कि मात्र दो प्रकार की दुकानों के संबंध में दो नियमों में संशोधन किया गया है और अन्य दुकानों, विशेष रूप से भांग की फुटकर बिक्री दुकानों और अन्य फुटकर बिक्री दुकानों, जिनमें बीयर बेचने वाली दुकानें भी शामिल हैं, के संबंध में कोई संशोधन नहीं किया गया है।

8. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्तागण में से एक ने यह तर्क दिया कि नियमों के अनुसार, लाइसेंस की अवधि समाप्त होने के बाद, यदि लाइसेंसधारी चाहे, तो राज्य सरकार उपलब्ध सामग्री के आधार पर लाइसेंस के नवीनीकरण के लिए कदम उठा सकती है। वर्तमान मामले में, नियमों के अंतर्गत व्यक्त और प्रदत्त उक्त 'इच्छा' के अधिकार को नीति के माध्यम से छीन लिया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि नीति नियम 5 का उल्लंघन करती है। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 19(6) के अंतर्गत कोई मौलिक अधिकार नहीं है, फिर भी नीति को संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए, जो वर्तमान नीति में घोर विफल है। मैं पक्षों द्वारा संदर्भित निर्णयों पर बाद में विचार करूंगा।

9. उपरोक्त दर्ज तर्क के आधार पर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता को बुलाया गया।

10. राज्य की ओर से अन्य अधिवक्ताओं से सहायता प्राप्त विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा यह तर्क देते हैं कि प्रथम तो, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है, शराब का व्यापार करने का कोई अधिकार नहीं है। वे आगे तर्क देते हैं कि विदेशी शराब की प्रीमियम फुटकर बिक्री दुकानों के संबंध में किया गया भेद और उस आधार पर संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आरोप इस एकमात्र कारण से खारिज किए जाने योग्य हैं कि उक्त दुकानें एक अलग श्रेणी की हैं और याचिकाकर्ताओं द्वारा, जिनके पास अलग-अलग श्रेणी की दुकानों का लाइसेंस है, समानता का दावा नहीं किया जा सकता है। वे आगे तर्क देते हैं कि विदेशी शराब की बिक्री के संबंध में अलग नियम लागू होते हैं, इसलिए समानता का दावा उचित नहीं है। वे आगे तर्क देते हैं कि पैरा 5.15.2.2 के खंड 1(जीए) को कोई विशिष्ट चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए याचिकाकर्ता उक्त खंड पर तर्क नहीं दे सकते हैं। वे आगे तर्क देते हैं कि यह तर्क कि मात्र दो नियमों के सेट को 03.03.2025 को संशोधित/परिवर्तित किया गया है, इस कारण से है कि दुकानों की श्रेणी को घटा दिया गया है, जो पिछली नीति में पाँच थीं और अब चार रह गई हैं। उनका तर्क है कि उपर्युक्त दर्ज किए गए दो प्रकार की दुकानों से संबंधित संशोधन प्रकाशित किए जा चुके हैं, लेकिन अन्य प्रकार की दुकानों के संबंध में अभी तक कोई नियम नहीं बनाए गए हैं, जिन्हें आबकारी अधिनियम में निहित प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकार द्वारा बनाया जाएगा। उनका यह भी तर्क है कि याचिकाकर्ताओं को उनके संपत्ति के अधिकार से वंचित किए जाने के दावे के संबंध में, उन्होंने पहले शराब को नष्ट करने के संबंध में दिए गए बयान में कहा है कि राज्य सरकार इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार उन पर विचार करेगी और उचित प्राधिकारी द्वारा उचित स्तर पर तर्कसंगत

निर्णय लिया जाएगा। उनका तर्क है कि वे इस संबंध में कोई बयान देने में असमर्थ हैं क्योंकि विचाराधीन नीतिगत निर्णय को मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित किया जा चुका है और मंत्रिमंडल की स्वीकृति के बिना इस स्तर पर कोई निर्णय/बयान नहीं दिया जा सकता है। हालांकि, वह यह आश्वासन देता है कि जब तक मंत्रिमंडल द्वारा उचित स्तर पर कोई नया निर्णय नहीं लिया जाता, लाइसेंस की अवधि समाप्त होने के बाद बचे हुए स्टॉक को नष्ट नहीं किया जाएगा और उसे सुरक्षित रखा जाएगा, जो राज्य सरकार द्वारा विधि के अनुसार उचित स्तर पर लिए जाने वाले आगे के निर्णय के अधीन होगा।

11. उन्होंने उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम की धारा 36-क का भी हवाला दिया है, जिस पर आगे चर्चा की जाएगी। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि 03.03.2025 को नियमों में किए गए संशोधन को वर्तमान रिट याचिकाओं में चुनौती नहीं दी गई है। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता का यह प्रस्तुति है कि विज्ञापन जारी होने के समय प्रचलित विधि ही मान्य होगा, स्थापित सिद्धांतों के विपरीत है, क्योंकि लाइसेंस जारी होने की तिथि पर लागू विधि ही पक्षों के बीच अधिकारों को नियंत्रित करेगा और इस हद तक याचिकाकर्ताओं का यह तर्क गलत है।

12. अपने प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ऊपर दिए गए तर्कों को दोहराते हुए यह प्रस्तुति दी है कि लाइसेंस जारी होने के बाद याचिकाकर्ताओं के पक्ष में अधिकार उत्पन्न होने लगते हैं और इन अधिकारों को मात्र विधि के अनुसार ही छीना जा सकता है। साथ ही, जारी किए गए लाइसेंसों से जो भी लाभ मिलते हैं, वे याचिकाकर्ताओं को मिलने चाहिए, जिन्हें इस नीति के माध्यम से उनसे छीन लिया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता 2018 से लगातार काम कर रहे थे और उन्होंने भारी निवेश किया था। राज्य सरकार ने अचानक एक ऐसी नीति लागू कर दी है जिससे याचिकाकर्ताओं को भारी हानि होगा। यह भी तर्क दिया गया है कि चूंकि 2018 से लाइसेंसों का नवीनीकरण हर साल होता रहा है, इसलिए याचिकाकर्ताओं ने भारी निवेश किया है और इस प्रकार, यह एक वैध उम्मीद थी कि इस वर्ष भी लाइसेंसों का नवीनीकरण होगा।

13. राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा ने वैध अपेक्षा के तर्कों का खंडन करते हुए तर्क दिया कि वैध अपेक्षा का दावा विधि के विरुद्ध नहीं किया जा सकता है और इस हद तक, तर्क अस्वीकृत किए जाने योग्य हैं।

14. राज्य के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं ने भी नई नीति के अंतर्गत आवेदन किया है और इसलिए वे नीति को चुनौती देने से वंचित हैं। उक्त दलीलों का लाभ उठाते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मात्र इसलिए कि याचिकाकर्ताओं ने नई नीति के अंतर्गत आवेदन किया है, उन्हें अपने निहित अधिकार पर बहस करने से नहीं रोका जा सकता, जो उनके अनुसार उनके पक्ष में उपलब्ध अधिकारों के आधार पर उन्हें प्राप्त होता है।

15. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस तर्क के समर्थन में कि उन्हें राज्य के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क के अनुसार दलील उठाने से रोका नहीं गया है, *कृष्णा राय (मृत) के विधिक प्रतिनिधियों एवं अन्य*

बनाम बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (2022) एससीसी 713 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा 24 पर भरोसा किया है, जो इस प्रकार है:

"24. खंडपीठ द्वारा जिन मामलों पर भरोसा किया गया है, वे वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होंगे क्योंकि खंडपीठ द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनमें से किसी में भी यह नहीं कहा गया है कि विबंधन का सिद्धांत विधि से ऊपर है। यह एक स्थापित सिद्धांत है कि विबंधन का सिद्धांत विधि को ओवरराइड नहीं कर सकता। कार्यकारी परिषद द्वारा विधिवत अनुमोदित नियमावली विबंधन या सहमति के किसी भी सिद्धांत पर प्रभावी होगी।"

16. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने **भारत सरकार बनाम वेदांता लिमिटेड एवं अन्य (2020) 10 एससीसी 1** के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा जताते हुए तर्क दिया कि लोक नीति की तिथि पर प्रचलित विधि लागू होगा। इस संदर्भ में पैरा 106 पर भरोसा जताया गया है, जो इस प्रकार है:

*"106. धारा 48 में दिए गए दोनों स्पष्टीकरण "किसी भी संदेह से बचने के लिए" शब्दों से शुरू होते हैं। हालांकि, इसे स्पष्टीकरणात्मक और पूर्वव्यापी नहीं माना जा सकता, क्योंकि प्रतिस्थापित स्पष्टीकरण 1 में नए उपखंड जोड़े गए हैं, जिससे धारा में महत्वपूर्ण और सारगर्भित परिवर्तन आया है। एक नया स्पष्टीकरण 2 जोड़ा गया है जिसमें कहा गया है कि भारतीय विधि की मौलिक नीति के उल्लंघन की जांच में विवाद के गुण-दोष पर पुनर्विचार शामिल नहीं होगा। चूंकि संशोधनों ने पहली बार विशिष्ट मानदंड प्रस्तुत किए हैं, इसलिए इसे भविष्योन्मुखी माना जाना चाहिए, भले ही "संदेह दूर करने के लिए" वाक्यांश का उपयोग किया गया हो। इस संबंध में इस न्यायालय के *सेडको फॉरेक्स इंटरनेशनल ड्रिल इंक बनाम सीआईटी [सेडको फॉरेक्स इंटरनेशनल ड्रिल इंक बनाम सीआईटी, (2005) 12 एससीसी 717]* मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि कोई स्पष्टीकरण विधि में परिवर्तन करता है, तो उसे पूर्वव्यापी नहीं माना जा सकता। चाहे प्रयुक्त वाक्यांश "यह घोषित किया जाता है" हो या "संदेहों को दूर करने के लिए" हो। *ससंग योंग कंस्ट्रक्शन इंजीनियरिंग एंड कंपनी लिमिटेड बनाम एनएचएआई [ससंग योंग इंजीनियरिंग एंड कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड बनाम एनएचएआई, (2019) 15 एस.सी.सी. 131 : (2020) 2 एस.सी.सी. (सिविल) 213]* के मामले में, इस न्यायालय ने धारा 34 में किए गए संशोधनों पर विचार किया था, जिसमें धारा 34 के दो स्पष्टीकरण जोड़े गए थे, जो धारा 48 के दो स्पष्टीकरणों के समान ही हैं। उस मामले में, पूर्वव्यापी प्रभाव का एक समान आधार प्रस्तुत किया गया था। इस न्यायालय ने माना कि चूंकि स्पष्टीकरण पहली बार जोड़े गए थे, इसलिए संशोधन के स्वरूप के बजाय उसके सार को देखा जाना चाहिए। यहां तक कि उन मामलों में भी जहां "संदेह से बचने के लिए" किसी संशोधन के माध्यम से कुछ स्पष्ट किया जाता है, ऐसे स्पष्टीकरण का पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं हो सकता, यदि पूर्ववर्ती विधि में पर्याप्त परिवर्तन किया गया हो।"*

17. उपरोक्त दर्ज तथ्यों पर विचार करने से पहले, यह ध्यान देना आवश्यक है कि उत्तर प्रदेश राज्य में आबकारी, उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 के प्रावधानों के अंतर्गत शासित होता है; विनियमन करने

वाले अधिकारियों की शक्तियां और कर्तव्य निर्दिष्ट हैं; शराब की दुकानों की स्थापना और नियंत्रण पूरी तरह से जिला आबकारी विभागों के प्रशासन के अधीन है; आयात, निर्यात और परिवहन भी अध्याय III के अंतर्गत विनियमित होता है; और निर्माण, कब्ज़ा और बिक्री उक्त अधिनियम के अध्याय IV द्वारा शासित होती है।

18. उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम की धारा 24 और धारा 24क पर ध्यान देना आवश्यक है। धारा 24 निर्माण का एकान्तिक विशेषाधिकार प्रदान करती है, जिसे राज्य सरकार आबकारी आयुक्त के माध्यम से प्रदान कर सकती है, जो धारा 31 के प्रावधानों के अधीन है, जिसका उल्लेख नीचे किया गया है:

"24. निर्माण, आदि के एकान्तिक विशेषाधिकार का दिया जाना – धारा 31 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए आबकारी आयुक्त किसी भी व्यक्ति को किसी स्थानीय क्षेत्र के भीतर किसी देशी शराब या मादकभेषज का -

(1) निर्माण करने या थोक सम्भरण करने या दोनों ही के लिये, या

(2) थोक या फुटकर विक्रय के लिये, या

(3) निर्माण करने या थोक सम्भरण करने या दोनों ही के लिये और फुटकर बिक्री के लिए एकान्तिक विशेषाधिकार का लाइसेंस दे सकता है।"

19. धारा 24क, दुकानों में फुटकर बिक्री के संबंध में अमन्य या अन्य विशेषाधिकार के लिए लाइसेंस जारी करने के आबकारी आयुक्त के अधिकार को नियंत्रित करती है। धारा 24ए का उद्धरण नीचे दिया गया है:

"24 -क. विदेशी शराब के सम्बन्ध में बिक्री करने का एकान्तिक विशेषाधिकार का दिया जाना। -- (1) धारा 31 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, आबकारी आयुक्त किसी व्यक्ति को किसी क्षेत्र में किसी विदेशी शराब का --

(क) निर्माण करने या थोक सम्भरण करने, या दोनों ही के लिये, या

(ख) निर्माण करने या थोक सम्भरण करने, या दोनों ही के लिये और फुटकर बिक्री के लिये, या

(ग) थोक या फुटकर विक्रेताओं की थोक विक्रेता द्वारा बिक्री के लिये, या

(घ) दुकानों पर फुटकर बिक्री के लिये (भू-गृहादि के "अन्दर" या "बाहर" उपभोग के लिये अथवा भू-गृहादि के "बाहर" उपभोग के लिये) एकान्तिक या अन्य विशेषाधिकार के लिये लाइसेंस अथवा लाइसेंसों को स्वीकृत कर सकता है।

(2) किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में उपधारा (1) के खण्ड (घ) के अधीन कोई लाइसेंस या लाइसेंस के स्वीकृत किये जाने से उसी क्षेत्र में होटलों और रेस्ट्रॉ में उनके ही भू-गृहादि में उपभोग के निमित्त विदेशी शराब की फुटकर बिक्री के लिये लाइसेंस के स्वीकृत किये जाने पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(3) जहां उसी अवधि के लिये किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में उपधारा (1) के खण्ड (घ) के अधीन एक से अधिक लाइसेंस स्वीकृत करने का प्रस्ताव हो वहां प्रत्येक ऐसे लाइसेंस के लिये भावी प्रार्थियों को प्रस्ताव की अग्रिम सूचना दी जायगी।

(4) इस धारा के अधीन एकान्तिक या अन्य विशेषाधिकार के लिये लाइसेंस स्वीकृत किये जाने के सम्बन्ध में धारा 25 और धारा 39 के प्रतिबन्धात्मक खण्ड के उपबन्ध उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार वे धारा 24 के अधीन एकान्तिक विशेषाधिकार के लिये कोई लाइसेंस स्वीकृत किये जाने के सम्बन्ध में लागू होते हैं।”

20. आबकारी अधिनियम की धारा 24 और 24क के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों के संदर्भ में, राज्य आबकारी आयुक्त के माध्यम से शराब की दुकानों की बिक्री आदि को नियंत्रित और विनियमित करने के लिए सशक्त है।

21. उक्त अधिनियम के अध्याय VI में लाइसेंस, परमिट और पास जारी करने का प्रावधान है, जिसमें लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने की शक्ति भी शामिल है। आबकारी अधिनियम की धारा 36-क पर ध्यान देना आवश्यक है, जो इस प्रकार है:

“36-क. नवीकरण और प्रतिकर अधिकार पर रोक – कोई व्यक्ति जिसे इस अधिनियम के अधीन लाइसेंस दिया गया हो, ऐसे लाइसेंस के नवीकरण के लिये कोई दावा न कर सकेगा या न उसे समाप्त किये जाने पर या उसके नवीकृत न किये जाने पर प्रतिकर के लिये दावा कर सकेगा।”

22. अधिनियम के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों के अनुसार, विभिन्न प्रकार के मादक पेय पदार्थों की बिक्री के संबंध में नियम बनाए गए हैं। उक्त वैधानिक प्रावधानों और बनाए गए नियमों के अनुसार याचिकाकर्ताओं को लाइसेंस प्रदान किया गया था। यह ध्यान देने योग्य है कि विभिन्न प्रकार के मादक पेय पदार्थों पर लागू होने वाले नियमों को उत्तर प्रदेश आबकारी (बीयर की फुटकर बिक्री के लिए लाइसेंस का व्यवस्थापन) नियम, उत्तर प्रदेश (देसी शराब की फुटकर बिक्री के लिए लाइसेंस का व्यवस्थापन) नियम, उत्तर प्रदेश आबकारी विदेशी शराब (बीयर और वाइन को छोड़कर) की फुटकर बिक्री दुकानों के लिए लाइसेंस का व्यवस्थापन नियम और उत्तर प्रदेश आबकारी (वाइन की फुटकर बिक्री के लिए लाइसेंस का व्यवस्थापन) नियम के रूप में जाना जाता है, जिन्हें समय-समय पर बनाया गया है। राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश आबकारी (विदेशी शराब की मॉडल दुकानों के लिए फुटकर बिक्री लाइसेंस का व्यवस्थापन) नियम भी बनाए हैं।

23. इस पहले तर्क की जाँच करने के लिए कि याचिकाकर्ताओं को नवीनीकरण का अधिकार नियमों के आधार पर दिया गया है, लाइसेंस मिलते ही यह अधिकार उन्हें प्राप्त हो जाता है। इस तर्क की जाँच के लिए, **खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य (1995) 1 एससीसी 574** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के संवैधानिक पीठ के निर्णय पर ध्यान देना आवश्यक है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत प्रदत्त अधिकारों के विपरीत, शराब के व्यापार करने के अधिकारों पर विचार करने का अवसर मिला था। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संक्षेप में बताया गया विधि इस प्रकार है:

“60. अब हम उपरोक्त निर्णयों से संकलित विषय पर विधि का सारांश प्रस्तुत कर सकते हैं।

(क) अनुच्छेद 19(1) द्वारा संरक्षित अधिकार निरपेक्ष नहीं बल्कि सीमित हैं। ये सीमितताएँ अनुच्छेद 19 के खंड (2) से (6) में वर्णित हैं। अतः अनुच्छेद 19(1) (क) से (घ) में गारंटीकृत मौलिक अधिकारों को उक्त सीमितताओं के साथ पढ़ा जाना चाहिए। अन्य सभ्य देशों के संविधानों के अंतर्गत गारंटीकृत अधिकार भी निरपेक्ष नहीं हैं, बल्कि उन पर निहित सीमाओं के अधीन पढ़े जाते हैं। ये निहित सीमाएँ हमारे संविधान के अनुच्छेद 19 के खंड (2) से (6) द्वारा स्पष्ट की गई हैं।

(ख) किसी भी पेशे को अपनाने या किसी भी व्यवसाय, व्यापार या कारोबार को चलाने का अधिकार ऐसे पेशे या व्यवसाय को अपनाने या चलाने तक विस्तारित नहीं होता जो स्वाभाविक रूप से अनैतिक और हानिकारक हो और जिसे सभी सभ्य समाजों द्वारा निंदनीय माना जाता हो। यह नागरिकों को अनैतिक और आपराधिक गतिविधियों में तथा आम जनता के स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण के लिए हानिकारक वस्तुओं या सामानों में व्यापार या कारोबार करने का अधिकार नहीं देता, अर्थात्, रेस एक्स्ट्रा कॉमर्सियम (वाणिज्यिक क्षेत्र से बाहर)। अपराध में कारोबार नहीं हो सकता।

(ग) पेय पदार्थ मादक और अवसादकारी होता है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है और इसलिए यह एक ऐसा पदार्थ है जो स्वाभाविक रूप से हानिदायक होने के कारण वाणिज्यिक क्षेत्र से बाहर है। अतः किसी नागरिक को शराब का व्यापार या व्यवसाय करने का कोई मौलिक अधिकार नहीं है। इसलिए शराब के व्यापार या व्यवसाय पर पूर्णतः प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

(घ) संविधान का अनुच्छेद 47 मादक पेय पदार्थों और औषधियों को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मानता है और इन्हें लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर में सुधार तथा जन स्वास्थ्य में वृद्धि में बाधक मानता है। अतः, यह राज्य को मादक पेय पदार्थों के सेवन पर प्रतिबंध लगाने का आदेश देता है, जिनमें स्पष्ट रूप से मादक पेय पदार्थ भी शामिल हैं, सिवाय औषधीय प्रयोजनों के लिए। अनुच्छेद 47 देश के शासन में मूलभूत मार्गदर्शक सिद्धांतों में से एक है। अतः, राज्य को मादक पेय पदार्थों के निर्माण, बिक्री, कब्जे, वितरण और सेवन पर पूर्णतः प्रतिबंध लगाने का अधिकार है, क्योंकि यह स्वाभाविक रूप से एक खतरनाक उपभोग वस्तु है और अनुच्छेद 47 में निहित मार्गदर्शक सिद्धांत के कारण भी, सिवाय तब जब इसका उपयोग औषधीय प्रयोजनों के लिए किया जाता है।

(ङ) इसी कारण से, राज्य स्वयं या उसके द्वारा गठित एजेंसी में पेय पदार्थ के रूप में शराब के निर्माण, कब्जे, बिक्री और वितरण के लिए एकाधिकार स्थापित कर सकता है। उक्त उद्देश्य के लिए शुल्क लेकर नागरिकों को लाइसेंस भी बेचे जा सकते हैं। यह अनुच्छेद 19(6) के अंतर्गत या अन्यथा भी किया जा सकता है।

(च) इसी कारण से, राज्य पेय पदार्थ के रूप में पेयजल के व्यापार या व्यवसाय पर प्रतिबंध लगा सकता है, जो वैध गतिविधियों और वस्तुओं तथा वाणिज्यिक संपत्ति के व्यापार या व्यवसाय पर लगाए गए प्रतिबंधों से भिन्न प्रकृति के होते हैं। पेयजल के व्यापार या व्यवसाय पर प्रतिबंध और सीमाएँ अनुच्छेद 19(6) के अंतर्गत या अन्य माध्यमों से भी लगाई जा सकती हैं। ये प्रतिबंध और सीमाएँ राज्य द्वारा स्वयं व्यापार या व्यवसाय करने और दूसरों को इससे वंचित करने तथा/या स्वयं को दूसरों को व्यापार या व्यवसाय करने के लाइसेंस बेचने का अधिकार सुरक्षित रखने तक विस्तारित हो सकती हैं।

(छ) जब राज्य पीने योग्य मादक पदार्थों के व्यापार या व्यवसाय की अनुमति देता है, चाहे उस पर कोई सीमा हो या न हो, तो नागरिक को उन सीमाओं के अधीन व्यापार या व्यवसाय करने का अधिकार है, और राज्य उन नागरिकों के बीच भेदभाव नहीं कर सकता जो व्यापार या व्यवसाय करने के योग्य हैं।

(ज) राज्य अपने राजस्व को अधिकतम करने के उद्देश्य से व्यापार या व्यवसाय के लिए लाइसेंस बेचने का कोई भी तरीका अपना सकता है, बशर्ते कि अपनाया गया तरीका भेदभावपूर्ण न हो।

(झ) राज्य मादक पेय होने के बावजूद भी पेय पदार्थों का व्यापार या व्यवसाय कर सकता है, जबकि अनुच्छेद 47 में इसके सेवन पर प्रतिबंध लगाने का प्रावधान है। जब राज्य ऐसा व्यवसाय करता है, तो वह शराब के उत्पादन, आपूर्ति और सेवन को प्रतिबंधित और विनियमित करने के लिए ऐसा करता है, जो आम जनता के हित में उचित प्रतिबंध का एक पहलू भी है। इस कारण से राज्य को अवैध व्यवसाय करने वाला नहीं कहा जा सकता।

(ञ) राज्य द्वारा पेय पदार्थों के उत्पादन, बिक्री और उससे प्राप्त आय पर कर या शुल्क लगाने मात्र से, चाहे उत्पादन, बिक्री या आय वैध हो या अवैध, राज्य उक्त गतिविधियों में भागीदार नहीं बन जाता। कर और शुल्क लगाकर राजस्व जुटाने की राज्य की शक्ति को संबंधित व्यापार या व्यवसाय को प्रतिबंधित या विनियमित करने की राज्य की शक्ति के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। राज्य ऐसे अवसरों पर अपनी दो अलग-अलग शक्तियों का प्रयोग करता है। इसलिए, मात्र इस तथ्य से कि राज्य शराब के व्यापार या व्यवसाय या उससे प्राप्त आय पर कर और शुल्क लगाता है, शराब के व्यापार या व्यवसाय को करने का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं बन जाता, या यहां तक कि विधिक अधिकार भी नहीं बन जाता जब ऐसा व्यापार या व्यवसाय पूरी तरह से प्रतिबंधित हो।

(ट) राज्य मादक पेय या अल्कोहल युक्त औषधीय एवं शौच उत्पादों के व्यापार या व्यवसाय पर प्रतिबंध नहीं लगा सकता। हालांकि, अनुच्छेद 19(6) के अंतर्गत राज्य आम जनता के हित में इनके व्यापार या व्यवसाय के अधिकार पर उचित प्रतिबंध लगा सकता है।

(ठ) इसी प्रकार, राज्य औद्योगिक अल्कोहल के व्यापार या व्यवसाय पर प्रतिबंध नहीं लगा सकता है, जिसका उपयोग पेय पदार्थ के रूप में नहीं बल्कि औद्योगिक उद्देश्यों के लिए वैध रूप से किया जाता है। हालांकि, राज्य संविधान के अनुच्छेद 19(6) के अंतर्गत आम जनता के हित में उक्त व्यापार या व्यवसाय पर उचित प्रतिबंध लगा सकता है।

(ड) औद्योगिक अल्कोहल या शराब या अल्कोहल युक्त औषधीय और शौचालय संबंधी उत्पादों के व्यापार या व्यवसाय पर लगाए गए प्रतिबंध, उनके दुरुपयोग या पेय पदार्थ के रूप में उपयोग के लिए उनके परिवर्तन को रोकने के उद्देश्य से भी हो सकते हैं।”

24. इसी प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय को **उगाड़ शुगर वर्क्स लिमिटेड बनाम दिल्ली प्रशासन एवं अन्य (2001) 3 एससीसी 635** के मामले में अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आबकारी नीति को चुनौती देने में न्यायिक समीक्षा के दायरे से निपटने का अवसर मिला, जिसमें संवैधानिक पीठ के निर्णय की पुष्टि करते हुए यह माना गया कि शराब का व्यापार करने का कोई मौलिक अधिकार नहीं है और चुनौती देने के आधार भी बहुत सीमित थे।

25. **केरल राज्य एवं अन्य बनाम बी. सुरेंद्र दास एवं अन्य (2015) 12 एससीसी 101** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के अगले निर्णय पर ध्यान देना आवश्यक है, जिसमें यह पुनः स्थापित किया गया कि किसी को भी शराब के व्यापार का मौलिक अधिकार नहीं है। इसमें यह भी कहा गया कि नीति को सीमित आधारों पर ही चुनौती दी जा सकती है और नीति को चुनौती देने के लिए उपलब्ध आधारों में से एक भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन था।

26. **कुलदीप सिंह बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार (2006) 5 एससीसी 702** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी ध्यान देना आवश्यक है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार किया था कि नीति में परिवर्तन के कारण किए गए भारी निवेश से लाइसेंसधारी को कोई ऐसा अर्जित या निहित अधिकार प्राप्त नहीं होता है जिससे सरकार को पिछली नीतिगत निर्णयों को बदलने से रोका जा सके। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 15 और 30 पर ध्यान देना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं:

“15. अपीलकर्ताओं ने राज्य द्वारा अपनाए गए नीतिगत निर्णय के अनुसार लाइसेंस प्राप्त करने हेतु आवेदन प्रस्तुत किए। उन्होंने भारी धनराशि का निवेश किया होगा, लेकिन इससे उन्हें कोई अंतर्निहित या प्रदत्त अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। शराब के व्यापार के लिए लाइसेंस प्रदान करने का मामला राज्य के अनन्य अधिकार क्षेत्र में आता है। यदि राज्य को नीतिगत निर्णय लेने का अधिकार है, तो निस्संदेह उसे उसमें परिवर्तन, संशोधन या निरस्त करने का भी अधिकार है। राज्य द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णय के प्रभाव पर विचार करते समय भारत के संविधान के अनुच्छेद 47 में निहित प्रावधानों के साथ-साथ आबकारी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार व्यापार के संबंध में उसके विनियमन और नियंत्रण की शक्ति को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।”

30. अतः, जब तक अपीलकर्ताओं द्वारा कोई अर्जित या निहित अधिकार प्राप्त नहीं किया गया होता, तब तक नीतिगत निर्णय को बदला जा सकता था।”

27. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने **उगाड़ शुगर वर्क्स लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा जताया है और तर्क दिया है कि चुनौती के सीमित आधार उपलब्ध हैं, जैसा कि पैरा 13 से 18 में कहा गया है, जो इस प्रकार हैं:

“13. इस न्यायालय ने आंध्र प्रदेश राज्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी [(1996) 3 एससीसी 709] के मामले में यह स्पष्ट रूप से कहा है कि शराब जैसे मादक पदार्थों के व्यापार का कोई मौलिक अधिकार नहीं है। इस मामले में, इस न्यायालय के कुछ पूर्व संविधान पीठ के निर्णयों का हवाला देते हुए, इस तर्क को एक बार फिर स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया कि इस देश के नागरिक को मादक पेय पदार्थों के व्यापार का मौलिक अधिकार है। अतः यह मुद्दा अब कोई नया नहीं है। मैकडॉवेल मामले [(1996) 3 एससीसी 709] में पीठ की निम्नलिखित टिप्पणियाँ शिक्षाप्रद हैं: (एससीसी पृष्ठ 735-36, पैरा 39)

“39. यह तर्क कि इस देश के नागरिक को मादक पेय पदार्थों के व्यापार का मौलिक अधिकार है, खोडे डिस्टिलरीज [खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य, (1995) 1 एससीसी 574] मामले में संविधान

पीठ के हालिया निर्णय के बावजूद भी समाप्त नहीं हुआ है। इसे हमारे समक्ष फिर से उठाया गया है। खोडे डिस्टिलरीज [खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य, (1995) 1 एससीसी 574] मामले में इस न्यायालय ने इस विषय पर सभी विधिक मामलों की समीक्षा की और निष्कर्ष निकाला कि किसी नागरिक को मादक पेय पदार्थों के व्यापार या व्यवसाय का कोई मौलिक अधिकार नहीं है और ऐसे पेय पदार्थों के व्यापार या व्यवसाय को पूर्णतः प्रतिबंधित किया जा सकता है। न्यायालय ने माना कि मादक पेय पदार्थों का व्यापार, इसके हानिकारक और दुष्परिणाम स्वरूप के कारण, रेस एक्स्ट्रा कॉमर्सियम (वाणिज्य से बाहर) माना जाता है। न्यायालय ने बताया कि संविधान का अनुच्छेद 47 राज्य को औषधीय प्रयोजनों को छोड़कर मादक पेय पदार्थों और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सभी दवाओं के सेवन पर प्रतिबंध लगाने का प्रयास करने का निर्देश देता है। इसी कारण से, पीठ ने माना कि राज्य स्वयं में या अपने द्वारा स्थापित किसी एजेंसी में मादक पेय के निर्माण, कब्जे, बिक्री और वितरण के लिए एकाधिकार स्थापित कर सकता है। यह निर्णय स्पष्ट और असंदिग्ध है। फिर भी, निर्णय के पैरा 60 में दिए गए सारांश के खंड (ड) और (च) में प्रयुक्त कुछ शब्दों के आधार पर तर्क गढ़ने का प्रयास किया जा रहा है। इन खंडों में यह उल्लेख किया गया है कि मादक पेय पदार्थों के व्यापार के लिए राज्य में एकाधिकार स्थापित करना और उस पर प्रतिबंध, सीमाएं और यहां तक कि निषेध लगाने की शक्ति अनुच्छेद 19 के खंड (6) के अंतर्गत या अन्य तरीकों से भी लागू की जा सकती है। इन टिप्पणियों का लाभ उठाते हुए, श्री गांगुली ने तर्क दिया कि यह निर्णय अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार करता है कि मादक पेय पदार्थों का व्यापार अनुच्छेद 19(1)(छ) के अंतर्गत एक मौलिक अधिकार है। यदि ऐसा नहीं है, तो विद्वान अधिवक्ता ने पूछा, अनुच्छेद 19(6) का संदर्भ अर्थहीन है। हमारा मानना है कि उक्त टिप्पणियों के आधार पर ऐसा कोई तर्क नहीं गढ़ा जा सकता। खंड (च) में, पीठ ने माना कि राज्य या उसकी एजेंसी में एकाधिकार स्थापित किया जा सकता है। अनुच्छेद 19(6) के अंतर्गत या अन्यथा भी। इसी प्रकार, खंड (च) में, इस व्यवसाय पर प्रतिबंध और सीमाएं लगाने के संबंध में यह कहा गया है कि इन्हें अनुच्छेद 19(6) के अंतर्गत या अन्यथा भी लगाया जा सकता है। उक्त शब्दों को उक्त सारांश के खंड (ख), (ग), (घ), (ड) और (च) में प्रतिपादित स्पष्ट प्रस्तावों के विरुद्ध नहीं पढ़ा जा सकता है। वास्तव में, उक्त निर्णय हर शंकर [हर शंकर बनाम उप आबकारी एवं कराधान आयुक्त, (1975) 1 एससीसी 737] के निर्णय को स्पष्ट रूप से दोहराता है कि किसी नागरिक को मादक पेय पदार्थों का व्यापार करने का कोई मौलिक अधिकार नहीं है। इस स्थिति में, अनुच्छेद 19(1)(छ) पर आधारित कोई भी तर्क अनुपयुक्त है।”

14. हर शंकर बनाम उप आबकारी एवं कराधान आयुक्त [हर शंकर बनाम उप आबकारी एवं कराधान आयुक्त, (1975) 1 एससीसी 737] मामले में न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ (जो उस समय माननीय मुख्य न्यायाधीश थे) ने निर्णय के पैरा 53 में यह राय व्यक्त की: (एससीसी पृष्ठ 758)

“53. हमारी राय में, नशीले पदार्थों के लेन-देन को नियंत्रित करने वाली सही स्थिति बालसारा मामला [बॉम्बे राज्य बनाम एफ.एन. बालसारा, 1951 एससीसी 860: एआईआर 1951 एससी 318 : 52 क्रिमिनल एलजे 1361], क्वरजी मामला [क्वरजी बी. भरुचा बनाम एक्साइज कमिशनर, एआईआर 1954 एससी 220], किदवई मामला [असम राज्य बनाम ए.एन. किदवई, हिल्स डिवीजन के कमिशनर, 1957 एससीआर 295: एआईआर 1957 एससी 414], नागेंद्र नाथ मामला [नागेंद्र नाथ बोरा बनाम हिल्स डिवीजन के कमिशनर, एआईआर 1958 एससी 398], अमर चक्रवर्ती मामला [अमर चंद्र चक्रवर्ती बनाम कलेक्टर ऑफ एक्साइज,

(1972) 2 एससीसी 442] और आर.एम.डी.सी. मामला [बॉम्बे राज्य बनाम आर.एम.डी. चमारबागवाला, एआईआर 1957 एससी 699] में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णयों में बताई और परिलक्षित होती है जैसा कि हरिनारायण जायसवाल मामले [उड़ीसा राज्य बनाम हरिनारायण जायसवाल, (1972) 2 एससीसी 36] और नासिरवार मामले [नासिरवार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1975) 1 एससीसी 29] में व्याख्या की गई है। मादक पदार्थों का व्यापार या व्यवसाय करने का कोई मौलिक अधिकार नहीं है। राज्य को अपनी नियामक शक्तियों के अंतर्गत मादक पदार्थों से संबंधित हर प्रकार की गतिविधि - इसके निर्माण, भंडारण, निर्यात, आयात, बिक्री और कब्जे - पर पूर्णतः प्रतिबंध लगाने का अधिकार है। अपने सभी रूपों में, ये अधिकार राज्य में निहित हैं और वास्तव में ऐसे निहित होने के बिना मादक पदार्थों से संबंधित विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का कोई प्रभावी विनियमन नहीं हो सकता है। अमेरिकन विधिशास्त्र, खंड 30 में कहा गया है कि यद्यपि शराब की तस्करी में संलग्न होना स्वाभाविक रूप से गैरविधिक नहीं है, फिर भी यह एक विशेषाधिकार है, अधिकार नहीं, जो सरकारी नियंत्रण के अधीन है (पृष्ठ 538)। यह शक्ति नियंत्रण समाज के आत्मरक्षा के अधिकार का एक हिस्सा है और यह लोगों के स्वास्थ्य, नैतिकता और कल्याण की देखभाल करने के राज्य के अधिकार पर आधारित है। शराब की तस्करी गरीबी और अपराध का स्रोत है (पृष्ठ 539, 540, 541)।”

15. हर शंकर मामले [हर शंकर बनाम उप आबकारी और कराधान आयुक्त, (1975) 1 एससीसी 737] में पांच संविधान पीठों के निर्णयों पर विचार करने के बाद, विधि को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया गया: (एससीसी पृष्ठ 755, पैरा 47)

“47. पाँच संविधान पीठों के इन सर्वसम्मति निर्णयों में, समस्या पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, इस बात पर एकमत से बल दिया गया कि राज्य को उन व्यापारों पर प्रतिबंध लगाने का अधिकार है जो जनता के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए हानिकारक हैं; कि शराब के कारोबार में किसी को भी व्यवसाय से बाहर करना और रोकना अंतर्निहित है, कि किसी भी व्यक्ति को शराब का व्यापार करने का पूर्ण अधिकार नहीं है और शराब के सभी प्रकार के व्यापारों को, उनकी अंतर्निहित प्रकृति के कारण, सभी सभ्य समुदायों द्वारा एक अलग वर्ग के रूप में माना गया है। इस प्रकार, यह तर्क कि नागरिक को शराब का व्यापार या व्यवसाय करने का कोई प्राकृतिक या मौलिक अधिकार है, खारिज कर दिया गया।”

16. विधि की इस स्थापित स्थिति को देखते हुए, अनुच्छेद 19(1)(छ) के आधार पर आक्षेपित अधिसूचना में परिलक्षित राज्य सरकार के नीतिगत निर्णय को चुनौती देने वाला कोई भी तर्क पूरी तरह से अनुचित है और सीधे तौर पर खारिज करने योग्य है और हमें ऐसा करने में कोई संकोच नहीं है।

17. यह स्थापित विधिक स्थिति देखते हुए कि शराब के व्यापार का कोई मौलिक अधिकार नहीं है, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने शराब के व्यापार को विनियमित करने और विभिन्न नियामक उपाय निर्धारित करने के संबंध में नीतिगत निर्णय लेने के लिए दिल्ली प्रशासन की सक्षमता पर प्रश्न उठाने के लिए अनुच्छेद 19(1)(छ) पर आधारित तर्क नहीं दिया, और हमारी राय में यह उचित ही था। हालांकि, विद्वान अधिवक्ता ने अनुच्छेद 14 के आधार पर आक्षेपित अधिसूचना को चुनौती दी, मुख्य रूप से इस आधार पर कि आक्षेपित अधिसूचना में परिलक्षित नीति तर्कहीन थी और दिल्ली में बेची जा रही शराब की “गुणवत्ता” को विनियमित करने के उद्देश्य से पिछले वर्षों के आंकड़ों की तुलना में एमएसएफ आवश्यकताओं को बढ़ाना मनमाना था और इसका उस उद्देश्य से कोई संबंध नहीं था जिसे प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा था,

अर्थात् दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में उपभोक्ताओं को अच्छी गुणवत्ता वाली शराब उपलब्ध कराना। यह भी तर्क दिया गया कि यह नीति भेदभावपूर्ण है और इस नीति के परिणामस्वरूप, अच्छी गुणवत्ता वाली शराब बनाने वाले छोटे पैमाने के निर्माताओं को दिल्ली के संभावित बाजार में अपने विपणन ब्रांड से वंचित होना पड़ सकता है, यदि वे दिल्ली के बाहर निर्धारित एमएसएफ (न्यूनतम बिक्री मूल्य स्तर) प्राप्त नहीं करते हैं। इससे बाजार में मात्र बड़े व्यापारिक घरानों के लिए ही जगह बचेगी, जो दिल्ली के बाजार में अपना एकाधिकार बनाए रखेंगे।

18. इस प्रकार, चुनौती असल में दिल्ली में शराब के व्यापार को नियंत्रित करने वाली कार्यपालिका नीति के विरुद्ध है। यह सर्वविदित है कि न्यायालय, न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, सामान्यतः कार्यपालिका के नीतिगत निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करते, जब तक कि नीति को दुर्भावना, अताकिक्ता, स्वेच्छाचारिता या अन्याय आदि के आधार पर त्रुटिपूर्ण न ठहराया जा सके। वास्तव में, स्वेच्छाचारिता, अताकिक्ता, विकृति और दुर्भावना नीति को असंवैधानिक बना देती हैं। हालांकि, यदि नीति को इनमें से किसी भी आधार पर त्रुटिपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता, तो मात्र इस तथ्य से कि यह किसी पक्ष के व्यावसायिक हितों को हानि पहुंचाएगी, नीति को अमान्य ठहराना उचित नहीं है। कर और आर्थिक विनियमन मामलों में, कार्यपालिका के निर्णय के प्रति न्यायिक संयम बरतने के अच्छे कारण हैं, भले ही न्यायिक सम्मान न दिया जाए। न्यायालयों से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे इस संबंध में अपनी राय व्यक्त करें कि किसी विशेष समय या विशेष स्थिति में ऐसी कोई नीति अपनाई जानी चाहिए थी या नहीं। यह निर्णय राज्य के विवेक पर छोड़ देना ही सर्वोत्तम है।”

28. उन्होंने अपने इस तर्क के समर्थन में कि उन्हें यह दलील उठाने से रोका नहीं गया है, सर्वोच्च न्यायालय के यूनियन ऑफ इंडिया बनाम इंडो-अफगान एजेंसीज लिमिटेड; (1968) 2 एससीआर 366 मामले में दिए गए निर्णय पर भी भरोसा जताया है।

29. वैध अपेक्षा के संबंध में अपने तर्कों के समर्थन में, नेशनल बिल्डिंग कंस्ट्रक्शन कॉर्पोरेशन बनाम एस. रघुनाथन एवं अन्य (1998) अनुपूरक (1) एससीआर 156 के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है।

30. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि नीति और नियमों के लागू होने के लिए लाइसेंस जारी करने की तिथि प्रासंगिक है, न कि निविदाएं आमंत्रित करने या आवेदन आमंत्रित करने की तिथि। उक्त तर्कों के समर्थन में, निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया गया है:

1. 1996 (2) एससीसी 439 (एस.बी. इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम विदेश व्यापार के सहायक महानिदेशक एवं अन्य);
2. 1999 (7) एससीसी 314 (भारत संघ बनाम इंडियन चार्ज क्रोम एवं अन्य);
3. 2004 (1) एससीसी 663 (हावड़ा नगर निगम एवं अन्य बनाम गंगा रोप कंपनी लिमिटेड एवं अन्य) ;
4. 2006 (5) एससीसी 702 (कुलदीप सिंह बनाम एनसीटी दिल्ली सरकार);

5. 2007 (11) एससीसी 40 (शिमला नगर निगम आयुक्त बनाम प्रेम लता सूद एवं अन्य);
6. 2014 एससीसी ऑनलाइन ऑल 15240 (आनंद कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)

31. इस बात के समर्थन में कि नीतिगत निर्णयों को न्यायिक समीक्षा के ज्ञात दायरे से परे चुनौती नहीं दी जा सकती, निम्नलिखित निर्णयों का हवाला दिया गया है:

1. 1971 (2) एससीसी 410 (महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य बनाम लोक शिक्षण संस्थान एवं अन्य);
2. 1980 (सप) एससीसी 559 (कर्नल ए.एस. सांगवान बनाम भारत संघ एवं अन्य);
3. 1990 (3) एससीसी 223 (श्री सीताराम शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य);
4. 1991 (1) एससीसी 505 (भारत संघ बनाम एस.एल. दत्ता एवं अन्य);
5. 2001 (3) एससीसी 635 (उगर शुगर वर्क्स लिमिटेड बनाम दिल्ली प्रशासन एवं अन्य);
6. 2005 (3) एससीसी 369 (सिद्धेश्वर सहकारी साखर कारखाना लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य);
7. 2007 (8) एससीसी 418 (धामपुर शुगर (काशीपुर लिमिटेड बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य);
8. 2011 (1) एससीसी 640 (बजाज हिंदुस्तान लिमिटेड बनाम सर शादी लाल एंटरप्राइजेज लिमिटेड एवं अन्य);
9. 2014 (13) एससीसी 356 (एहसान खालिद बनाम सचिव भारत संघ एवं अन्य)।

32. राज्य के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के पूर्णपीठ के **रिट कर याचिका संख्या 504/2002 (बृज भूषण चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में दिनांक 05.07.2002 को दिए गए निर्णय** पर विशेष भरोसा जताया है और प्रश्न संख्या 4 का निर्णय करते समय निम्नलिखित टिप्पणियों पर विशेष भरोसा जताया है, जो इस प्रकार हैं:

प्रश्न संख्या 4 के संबंध में, अर्थात् यदि याचिकाकर्ता लाइसेंस के नवीनीकरण के पात्र हैं, तो इस बात में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ताओं को शराब के व्यापार या व्यवसाय का कोई मौलिक अधिकार नहीं है, जो वास्तव में राज्य का अनन्य विशेषाधिकार है। इस संबंध में उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम की धारा 36-क भी स्पष्ट है। धारा 36क में निम्नलिखित प्रावधान है:

“36-क. नवीकरण और प्रतिकर अधिकार पर रोक – कोई व्यक्ति जिसे इस अधिनियम के अधीन लाइसेन्स दिया गया हो, ऐसे लाइसेंस के नवीकरण के लिये कोई दावा न कर सकेगा या न उसे समाप्त किये जाने पर या उसके नवीकृत न किये जाने पर प्रतिकर के लिये दावा कर सकेगा।”

लाइसेंस प्रदान करना राज्य का अनन्य विशेषाधिकार होने के कारण, नियमों के अंतर्गत राज्य सरकार को लाइसेंस को उन शर्तों और नियमों पर नवीनीकृत करने का अधिकार दिया गया है, जिन्हें वह उचित समझे। नियमों में निहित प्रावधानों का सरसरी तौर पर अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लाइसेंस संबंधी मामलों से निपटने का विशेषाधिकार राज्य सरकार के पास है। नियमों को राजपत्र में उनके प्रकाशन के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए। विदेशी शराब तृतीय संशोधन नियम 2002 और बीयर द्वितीय संशोधन नियम 2002 के नियम 1 (ii) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वे तुरंत लागू होंगे। “तुरंत” का अर्थ 14 मार्च, 2002 से तत्काल है। धारा 77 के दृष्टिगत, इसमें कोई संदेह नहीं है कि विदेशी शराब और बीयर नियम 14.3.2002 से लागू

होंगे। मेजर जी.एस. सोढ़ी (उपरोक्त) के मामले में यह माना गया था कि राजपत्र की मुद्रित प्रति प्रस्तुत करने पर आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन मान लिया जाता है। हालांकि, इस मामले में इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्रकाशन 3 अप्रैल, 2002 को हुआ था। राजपत्र में प्रकाशन से पहले कोई लाइसेंस जारी नहीं किया गया था। मात्र एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया था। विज्ञापन लाइसेंस जारी करने की दिशा में एक कदम है और नियमों के अनुरूप है, इसलिए मात्र इसके प्रकाशन न होने के आधार पर इसे चुनौती देने की कोई गुंजाइश नहीं है।”

33. उपरोक्त लिखित प्रस्तुतियों और विधि के आधार पर, इस न्यायालय को यह विचार करना है कि क्या याचिकाकर्ताओं के पक्ष में कोई ऐसा अधिकार उत्पन्न हुआ है जिसके लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट जारी करके हस्तक्षेप करना आवश्यक हो, जैसा कि दावा किया गया है। नियमों के आधार पर याचिकाकर्ताओं द्वारा दावा किया गया नवीनीकरण का अधिकार इस कारण से खारिज किया जाना चाहिए कि उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम की धारा 36-क के अंतर्गत लाइसेंसधारी के नवीनीकरण के अधिकार के दावे पर विशेष रोक लगाई गई है। उक्त दावा इस आधार पर भी खारिज किया जा सकता है कि शराब के व्यापार का कोई मौलिक अधिकार नहीं है। शराब का व्यापार रेस एक्स्ट्रा कॉमर्सियम (वाणिज्य से बाहर) के सिद्धांतों को आकर्षित करता है, क्योंकि यह सर्वविदित है कि अपराध में कोई वाणिज्य या व्यवसाय नहीं हो सकता, क्योंकि शराब और मादक पदार्थों को विनियमित किया जाना आवश्यक है, क्योंकि वे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक और हानिदायक हैं; कोई भी नागरिक रेस एक्स्ट्रा कॉमर्सियम (वाणिज्य से बाहर) के सिद्धांतों के आधार पर ऐसे सामानों के व्यापार का कोई अधिकार नहीं मांग सकता। याचिकाकर्ताओं को दिए गए लाइसेंस भी कोई अधिकार प्रदान नहीं करते; वे मात्र विशेषाधिकार हैं।

34. शराब के व्यापार का कोई अधिकार न होने और उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम की धारा 36-क के अंतर्गत नवीनीकरण के लिए आवेदन करने पर स्पष्ट रोक होने के कारण, नियमों के आधार पर नवीनीकरण/नवीनीकरण पर विचार किए जाने का दावा निराधार है और स्वीकार नहीं किया जा सकता। एक बार यह मान लिया जाए कि याचिकाकर्ताओं को कोई अधिकार नहीं है, तो कोई रिट जारी नहीं की जा सकती क्योंकि नीति को चुनौती एक ऐसे अधिकार के आधार पर दी गई है, जो इस मामले में अस्तित्वहीन पाया गया है।

35. विदेशी शराब की प्रीमियम फुटकर बिक्री दुकानों के नाम से जानी जाने वाली दुकानों की श्रेणी के साथ भेदभाव के आधार पर नीति को चुनौती देने के संबंध में, यह चुनौती इस साधारण कारण से खारिज की जानी चाहिए कि उक्त दुकानों की श्रेणी एक अलग श्रेणी है और उक्त श्रेणी के साथ कोई समानता का दावा नहीं किया जा सकता है क्योंकि याचिकाकर्ता अलग-अलग श्रेणियों में दुकानें चला रहे हैं। इस हद तक, मनमानी के आधार पर चुनौती खारिज की जानी चाहिए और इसे अस्वीकार किया जाता है। रिट याचिकाओं में नीति के निर्माण में किसी भी दुर्भावना या अनुचितता के संबंध में कोई आरोप नहीं है। इस न्यायालय द्वारा ऊपर विचार किए गए भेदभाव के अतिरिक्त कोई अन्य भेदभाव का आरोप नहीं है, इसलिए यह मानने का कोई कारण नहीं है कि नीति भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर खरी नहीं उतरती है।

36. हालांकि, यह न्यायालय इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता कि 5.15.2.2(1)(जीए) के अंतर्गत नीतिगत निर्णय के कारण प्रथम दृष्टया संविधान के अनुच्छेद 300-क के अंतर्गत संपत्ति का अधिकार छीन लिया गया है। लाइसेंस वर्ष के अंत में धन वापसी का अधिकार नियमों में संरक्षित है, उक्त अधिकार को नीतिगत निर्णय के माध्यम से नहीं छीना जा सकता।

37. यह सर्वविदित है कि अनुच्छेद 300-क संपत्ति के अधिकार की रक्षा करता है, जिसे मात्र विधि के अनुसार ही लिया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि संविधान के अनुच्छेद 300-क के अंतर्गत प्रयुक्त 'विधि' शब्द राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि होना चाहिए, न कि कोई शासनादेश। **बॉम्बे डाइंग एंड मैनुफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम बॉम्बे राज्य ; AIR 1958 SC 328** के मामले में यह स्पष्ट किया गया है कि धन भी संपत्ति की श्रेणी में आता है, और इसलिए किसी व्यक्ति को संपत्ति से वंचित करने के लिए विधि का अधिकार होना आवश्यक है।

38. संविधान के अनुच्छेद 300-क के संदर्भ में प्रयुक्त 'विधि' शब्द का अर्थ विधायिका द्वारा निर्मित विधि है, न कि संविधान के अनुच्छेद 162 के अंतर्गत दिए गए कार्यपालिका संबंधी निर्देश। यह दृष्टिकोण माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **बिशंभर दयाल चंद्र मोहन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (1982) 1 एससीसी 39** मामले में दिए गए निर्णय से पुष्ट होता है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 41 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"यह प्रश्न अब भी बना हुआ है कि क्या गृह की जब्ती विधि के अधिकार के बिना संपत्ति से वंचित करने के बराबर है। अनुच्छेद 300-क यह प्रावधान करता है कि किसी भी व्यक्ति को विधिवत अधिकार के बिना उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता। राज्य सरकार अनुच्छेद 162 के अधीन राज्य की कार्यकारी शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं कर सकती। ऐसी शक्ति का प्रयोग मात्र विधिवत अधिकार से ही किया जा सकता है, न कि किसी कार्यकारी आदेश या फरमान से। अनुच्छेद 162, जैसा कि इसके आरंभिक शब्दों से स्पष्ट है, संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन है। अतः यह अनिवार्य रूप से अनुच्छेद 300-क के अधीन है। अनुच्छेद 300-क के संदर्भ में 'विधि' शब्द का अर्थ संसद या राज्य विधानमंडल का अधिनियम, नियम या वैधानिक आदेश होना चाहिए; जिसमें विधिवत बल हो, अर्थात् सकारात्मक या राज्य द्वारा निर्मित विधि हो। **वज़ीर चंद बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और बिशन दास एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य** के निर्णयों से यह सिद्ध होता है कि अवैध ज़ब्ती विधिवत अधिकार के बिना संपत्ति से वंचित करना है। **वज़ीर चंद (उपरोक्त)** के मामले में, भारत में पुलिस ने जम्मू और कश्मीर राज्य की पुलिस के कहने पर याचिकाकर्ता के कब्जे में उपलब्ध सामान ज़ब्त किया था। यह स्वीकार किया जाता है कि ज़ब्ती विधि के अधिकार के अंतर्गत नहीं थी, क्योंकि यह किसी मजिस्ट्रेट के आदेश पर नहीं की गई थी; न ही यह दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 51, 96, 98 और 165 के अंतर्गत थी, क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा किए गए किसी भी अपराध की रिपोर्ट भारत में पुलिस को नहीं दी गई थी, और भारतीय पुलिस किसी भी प्रकार की जांच करने के लिए अधिकृत नहीं थी। इन परिस्थितियों में, न्यायालय ने माना कि ज़ब्ती विधि के अधिकार के अंतर्गत नहीं

थी और अनुच्छेद 31 (1) के अंतर्गत मौलिक अधिकार का उल्लंघन थी। इस दृष्टिकोण की पुष्टि बिशन दास (उपरोक्त) के मामले में भी की गई थी।”

39. उक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **हिंदुस्तान टाइम्स एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2003) 1 एससीसी 591** के मामले में इसकी पुष्टि की है। प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 23, 24 और 25 इस प्रकार हैं:

“23. अनुच्छेद 300-क के अर्थ में 'विधि' अभिव्यक्ति का अर्थ संसदीय अधिनियम या राज्य विधानमंडल का अधिनियम या विधि का बल रखने वाला वैधानिक आदेश होगा।

24. बिशंभर दयाल चंद्र मोहन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य इत्यादि [(1982) 1 एससीसी 39] में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया: "41. यह प्रश्न अभी भी बना हुआ है कि क्या गेहूं की ज़ब्ती विधि के अधिकार के बिना संपत्ति से वंचित करना है। अनुच्छेद 300-क यह प्रावधान करता है कि किसी भी व्यक्ति को विधि के अधिकार के बिना उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है। राज्य सरकार अनुच्छेद 162 के अंतर्गत राज्य की कार्यकारी शक्ति का सहारा लेते हुए किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं कर सकती है। ऐसी शक्ति का प्रयोग मात्र विधि के अधिकार से ही किया जा सकता है, न कि मात्र एक कार्यकारी आदेश या फरमान से। अनुच्छेद 162, जैसा कि आरंभिक शब्दों से स्पष्ट है, संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन है। इसलिए, यह अनिवार्य रूप से अनुच्छेद 300-क के अधीन है। अनुच्छेद 300-क के संदर्भ में "विधि" शब्द का अर्थ संसद या राज्य विधानमंडल का अधिनियम, नियम या वैधानिक आदेश होना चाहिए, जिसमें विधि का बल हो, अर्थात् सकारात्मक या राज्य द्वारा निर्मित विधि।"

25. प्रतिवादियों का यह दावा नहीं है कि याचिकाकर्ताओं को कोई सेवा प्रदान की गई है। प्रतिवादियों का यह दावा भी नहीं है कि याचिकाकर्ता कार्यरत पत्रकारों को सेवानिवृत्ति लाभ देने के अपने वैधानिक दायित्व के कारण प्रश्नगत राशि का भुगतान करने के लिए बाध्य हैं। प्रतिवादियों का यह भी कहना नहीं है कि याचिकाकर्ता केंद्रीय अधिनियमों के प्रावधानों के साथ-साथ बचाव पुरस्कार के अनुसार अपने स्वयं के प्रतिष्ठान में कार्यरत पत्रकारों को सेवानिवृत्ति लाभ के भुगतान के संबंध में अपने वैधानिक दायित्वों का निर्वहन नहीं कर रहे हैं।

40. वर्तमान मामले में, उक्त नीति के खंड 5.15.2.2(1)(जीए) का प्रभाव अनुच्छेद 300-क के अंतर्गत निहित अधिकारों को छीनने का है; यद्यपि उक्त प्रावधान को कोई चुनौती नहीं दी गई है, फिर भी यह मुद्दा उठा और दोनों पक्षों द्वारा इस पर विस्तार से चर्चा की गई। उक्त खंड को संविधान के अनुच्छेद 300-क का उल्लंघन मानते हुए, उक्त नीति दिनांक 06.02.2025 के खंड 5.15.2.2(1)(जीए) को निरस्त किया जाता है।

41. राज्य सरकार को संबंधित नियमों के अनुसार धन वापसी के लिए कदम उठाने का निर्देश दिया जाता है, जो समान हैं और 03.03.2025 तक संशोधित नहीं किए गए हैं, और परिणामस्वरूप प्रचलित नियमों के अनुसार विधि के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं को धन की वापसी की जाएगी।

42. उपर्युक्त उल्लेख के अतिरिक्त, रिट याचिकाएं *निरस्त* की जाती हैं।

(2025) 3 ILRA 652

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित

रिट सी संख्या 3824 / 2025

दीपक कुमार वर्मा

.....याची

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अवधेश कुमार मालवीय

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

ए.एस.जी.आई., श्री देवी शंकर शुक्ला, श्री गौरव कुमार चंद

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - खुदरा दुकान डीलरशिप की अस्वीकृति के विरुद्ध - याचिकाकर्ता ने विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन किया, सभी आवश्यकताओं को पूरा किया, प्रतिवादी द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया - खतौनी के अवलोकन से पता चलता है, उक्त संपत्ति के छः अन्य सह-मालिक हैं, जबकि पट्टा विलेख मात्र राज नारायण और स्वर्गीय लाल बहादुर सिंह के विधिक वारिसों द्वारा निष्पादित किया गया था - अन्य सह-स्वामियों ने पट्टा विलेख पर हस्ताक्षर नहीं किए थे, क्योंकि विभाजन नहीं हुआ था, याचिकाकर्ता को भूमि पट्टे पर देने वाले भूस्वामियों ने एसडीएम के समक्ष विभाजन के लिए आवेदन किया था और आवेदन की तिथि पर, गाटा संख्या 485 और 488 वाली भूमि का विभाजन नहीं हुआ था और पट्टा विलेख सभी सह-स्वामियों द्वारा निष्पादित नहीं किया गया था - इस प्रकार, साक्ष्य के आधार पर आक्षेपित आदेश, कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 3, 5 से 8)

रिट याचिका निरस्त। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित द्वारा प्रदत्त)

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत यह रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 28.12.2024 को रद्द करने के लिए दायर की गई है, जिसके द्वारा खुदरा आउटलेट डीलरशिप के लिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी निरस्त कर दी गई थी।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अवधेश कुमार मालवीय, प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव कुमार चंद, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री देवी शंकर शुक्ला को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने विज्ञापन दिनांक 28.06.2023 के अनुसरण में खुदरा दुकान डीलरशिप के लिए आवेदन किया था। याचिकाकर्ता ने विज्ञापन के अनुसार सभी आवश्यकताओं को पूरा किया है, लेकिन प्रतिवादी प्राधिकरण ने केवल इस आधार पर उसकी उम्मीदवारी को अस्वीकार कर दिया है कि पट्टा विलेख सभी सह-स्वामियों द्वारा निष्पादित नहीं किया गया था। पट्टा विलेख दिनांक 23.09.2023 को राज नारायण और स्वर्गीय लाल बहादुर सिंह के विधिक वारिसों द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित अराज़ी संख्या 485 और 488 से 35 x 35 मीटर भूमि (कुल क्षेत्रफल 1225 वर्ग मीटर) भूमि की आवश्यकता को पूरा करता है।

1. हमने आक्षेपित आदेश दिनांक 28.12.2024 का अध्ययन किया है। प्रतिवादी प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी इस आधार पर निरस्त कर दी थी कि भूमि सभी सह-स्वामियों द्वारा पट्टे पर नहीं दी गई थी। आदेश दिनांक 28.12.2024 का प्रासंगिक अंश नीचे दिया गया है:

"शिकायत 1:-

चयनित आवेदक श्री दीपक कुमार वर्मा द्वारा प्रस्तावित भूमि को सभी सह-स्वामियों से पट्टे पर नहीं लिया गया है:

शिकायत की जांच के बाद, निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं:

1. आपके द्वारा प्रस्तुत आवेदन एवं खतौनी के अनुसार, प्रस्तावित भूमि, गाटा संख्या 485 एवं 488, ग्राम पिरतीपुर, तहसील एवं जिला गाज़ीपुर, श्री राज नारायण पुत्र कुवंर एवं स्व. लाल बहादुर पुत्र कुवंर द्वारा सह-स्वामी है।

श्री लाल बहादुर पुत्र कुवर का देहांत हो गया है, और खतौनी में निम्नलिखित विधिक वारिसों के नाम दर्ज कर लिए गए हैं:-

श्रीमती विमला देवी पत्नी लाल बहादुर सिंह

श्री मनीष कुमार सिंह पुत्र लाल बहादुर सिंह

श्री उदय प्रताप सिंह पुत्र लाल बहादुर सिंह

श्री सुभासग सिंह पुत्र लाल बहादुर सिंह

2. हालांकि, शिकायत के अनुसार, गाटा संख्या 485 और 488 के खतौनी की जाँच करने पर यह पाया गया कि कुछ अतिरिक्त व्यक्तियों को सह-मालिक के रूप में सूचीबद्ध किया गया था। कुछ सह-स्वामियों ने शपथपत्र प्रस्तुत कर स्वयं को सह-मालिक बताया है, और संपत्ति का विभाजन अभी लंबित है। अतिरिक्त नाम इस प्रकार हैं:

श्री अजय पुत्र राम आशीष
 श्री विजय पुत्र राम आशीष
 श्री संजय पुत्र राम आशीष
 श्री मृत्युंजय पुत्र राम आशीष

3. आवेदक और शिकायत से प्राप्त दस्तावेजों के आधार पर, और उचित सत्यापन के बाद, यह पाया गया कि डीलरशिप के लिए आवेदन जमा करने से पहले प्रस्तावित भूमि का विभाजन नहीं किया गया था। आवेदक को भूमि पट्टे पर देने वाले भूस्वामियों ने एसडीएम, सदर, गाजीपुर में ऑनलाइन वाद संख्या टी202414291000249 दिनांक 15.12.2023 के अंतर्गत भूमि विभाजन के लिए आवेदन किया था।

4. एसडीएम के आदेश दिनांक 28.06.2024 के अनुसार, यह स्पष्ट है कि भूमि का विभाजन अभी तक पूरा नहीं हुआ है।

5. भूमि के अन्य सह-स्वामियों, जिनमें श्री विजय सिंह भी शामिल हैं, ने सिविल जज जूनियर डिवीजन न्यायालय, गाजीपुर, में श्री मनीष सिंह और आवेदक सहित अन्य लोगों के विरुद्ध मामला दायर किया, जो मूल वाद संख्या 185/2024 दिनांक 11.03.2024 के रूप में पंजीकृत हुआ। इस मामले में पेट्रोल पंप के निर्माण पर आपत्ति जताई गई है, क्योंकि सभी सह-स्वामियों के बीच भूमि का बंटवारा अभी लंबित है।

6. हमारे पैनल अधिवक्ता श्री विनोद कुमार गुप्ता, गाजीपुर से राय ली गई। उनके पत्र दिनांक 25.07.2024 के अनुसार, चूंकि प्रस्तावित भूमि सह-स्वामियों के बीच विवादित है और उसका बंटवारा अभी पूरा नहीं हुआ है, इसलिए आगे कोई कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए। न्यायालय ने अगली सुनवाई दिनांक 20.08.2024 निर्धारित की है। इसके अतिरिक्त, अधिवक्ता की रिपोर्ट दिनांक 25.07.2024 और गाजीपुर के सिविल जज (एसडी) के समक्ष लंबित वाद संख्या 185/2024 की शिकायत की प्रति से यह स्पष्ट होता है कि पट्टा विलेख उन सभी सह-स्वामियों द्वारा निष्पादित नहीं किया गया है, जिन्हें एक ही पूर्वज से भूमि विरासत में मिली है। पट्टा निष्पादित करते समय प्रस्तावित गटा संख्या 485 और 488 का कोई बंटवारा नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त, उक्त वाद पट्टा विलेख को रद्द करने के लिए लंबित है। अतः, शिकायत में लगाए गए आरोप सिद्ध होते हैं।

7. दस्तावेजों की जांच और सत्यापन के आधार पर, और ऊपर उल्लिखित विवरणों के अनुसार, यह सिद्ध होता है कि आवेदक ने आवेदन जमा करते समय प्रस्तावित भूमि को सभी सह-स्वामियों के साथ पंजीकृत नहीं कराया था। शिकायत की पुष्टि हो गई है।

उपरोक्त बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए, निर्दिष्ट स्थान पर रिटेल आउटलेट डीलरशिप के लिए आपकी उम्मीदवारी निरस्त की जाती है। यह निर्णय डीलरशिप चयन दिशानिर्देशों के अनुपालन में और जांच के निष्कर्षों तथा प्राप्त विधिक सलाह के आधार पर लिया गया है।

5. खतौनी (रिट याचिका के संलग्नक संख्या 2) के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि राज नारायण और स्वर्गीय लाल बहादुर सिंह के अतिरिक्त उक्त संपत्ति के छः अन्य सह-मालिक हैं, जबकि पट्टा विलेख मात्र राज नारायण और स्वर्गीय लाल बहादुर सिंह के विधिक वारिसों द्वारा निष्पादित किया गया था। अन्य सह-स्वामियों ने पट्टा विलेख पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं और चूंकि विभाजन नहीं हुआ है, इसलिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अस्वीकृत करने का प्रतिवादी प्राधिकरण का निर्णय मनमाना या दुर्भावनापूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

6. अभिलेख से यह भी स्पष्ट है कि जिन भूस्वामियों ने याचिकाकर्ता को भूमि पट्टे पर दी थी, उन्होंने 15.12.2023 को एसडीएम, सदर, गाजीपुर के समक्ष विभाजन के लिए आवेदन किया था और आदेश दिनांक 28.06.2024 (रिट याचिका के संलग्नक संख्या 6) के अनुसार, भूमि का अभी तक विभाजन नहीं हुआ था।

7. अभिलेख की जांच करने पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आवेदन की तिथि पर, प्रस्तावित भूमि, अर्थात् गाटा संख्या 485 और 488 का विभाजन नहीं हुआ था और पट्टा विलेख सभी सह-स्वामियों द्वारा निष्पादित नहीं किया गया था।

8. प्रतिवादी प्राधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता की खुदरा दुकान के डीलरशिप के लिए उम्मीदवारी अस्वीकृत करने के जो कारण बताए गए हैं, वे साक्ष्यों पर आधारित हैं और उनमें किसी भी प्रकार की कोई अवैधता नहीं है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह साबित करने में विफल रहे हैं कि सह-स्वामियों के बीच कोई विभाजन हुआ था या पट्टा विलेख सभी सह-स्वामियों द्वारा निष्पादित किया गया था।

9. हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं बनता है।

10. रिट याचिका में गुण-दोष की कमी है और तदनुसार निरस्त किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 654

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

रिट सी संख्या 6049 / 2020

मैसर्स जय प्रकाश एसोसिएट लिमिटेड

.....याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री नवीन सिन्हा (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री राहुल अग्रवाल, श्री रोहन गुप्ता

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

श्री अभिनव गौड़, अमी टंडन, श्री अरविंद श्रीवास्तव, श्री आशीष कुमार सिंह, सी.एस.सी., श्री गौरव त्रिपाठी, श्री कार्तिकेय सरन, श्री राहुल अग्रवाल, श्री रोहित नंदन पाण्डेय, श्री संदीप अरोड़ा, श्री श्रीश श्रीवास्तव, श्री सुजान सिंह, श्री सैयद इमरान इब्राहिम

ए. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, रिट याचिका की पोषणीयता - संविदात्मक मामले - न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा - लोक विधि तत्व - विद्यमान विधिक अधिकार - अभिनिर्धारित किया : संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका की पोषणीयता पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है, यहां तक कि उन मामलों में भी जो राज्य या उसके संस्थानों से संबंधित संविदात्मक दायित्वों से उत्पन्न होते हैं। हालांकि, ऐसे मामलों में न्यायिक पुनर्विलोकन इस बात की जांच तक सीमित है कि क्या आक्षेपित कार्रवाई में लोक विधि तत्व है और क्या वह मनमानी, अनुचित या तर्कहीन होने के कारण अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है। अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अनुतोष तब दी जा सकती है जब किसी विद्यमान विधिक अधिकार का उल्लंघन हुआ हो और विवादित कार्रवाई का लोक विधि स्वरूप हो, लेकिन रिट याचिका तब नहीं दायर की जा सकती जब मात्र संविदात्मक अधिकार स्थापित करना हो या विवादों में तथ्यों के गंभीर विवादित प्रश्नों का निर्णय आवश्यक हो। अनुच्छेद 226 के अंतर्गत शक्ति पूर्ण और विवेकाधीन है, और इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए जहां विवाद विशुद्ध रूप से निजी विधि के दायरे में आता हो। तथ्यों के आधार पर, चुनौती दी गई रद्दीकरण आदेश अवैध, मनमाना और अनुपातहीन कार्यकारी आदेश बताया गया था, जो सार्वजनिक हित

और आवंटन के अंतर्गत वर्तमान अधिकारों को प्रभावित करता है। अभिनिर्धारित किया, रिट याचिका पोषणीय है। (पैरा 68 - 76)

बी. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14, आनुपातिकता के सिद्धांत - दायरा और परीक्षण - आनुपातिकता के सिद्धांत को लागू करते समय निम्नलिखित सिद्धांत उभरते हैं: प्रशासनिक कार्रवाई का एक वैध उद्देश्य होना चाहिए; की गई कार्रवाई इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त होनी चाहिए; आनुपातिकता के सिद्धांत का उपयोग किसी प्रशासनिक कार्रवाई का परीक्षण करने के लिए किया जाता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि वह न्यायसंगत और उचित है तथा अत्यधिक नहीं है; यह सुनिश्चित करता है कि विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं बल्कि उचित रूप से किया जाए और मौलिक अधिकारों का असमान रूप से उल्लंघन न हो; उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपनाया गया उपाय कम से कम प्रतिबंधात्मक या कम से कम बोझिल होना चाहिए; और उचितता का परीक्षण आम जनता के हित के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, न कि उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से जिसके विरुद्ध कार्रवाई की गई है (पैरा 130)।

सी. संविदा का निर्माण/व्याख्या - सर्वसम्मति - पक्षकारों का आचरण और पत्राचार - बाध्यकारी प्रभाव - किसी भी बाध्यकारी संविदा की मूल विशेषता पक्षकारों की आपसी सहमति है अर्थात्, सर्वसम्मति। संविदा के अनुसार पक्षकारों का व्यवहार उनकी संविदा संबंधी सामान्य समझ का एक महत्वपूर्ण सूचक है और इस प्रकार संविदा की शर्तों की व्याख्या में एक महत्वपूर्ण साधन है। पक्षकारों का वास्तविक आशय उनके द्वारा संविदा को समझने के तरीके से ही ज्ञात किया जा सकता है, और इसके लिए उनके बीच हुए पत्राचार पर विचार किया जा सकता है। यदि संविदा के पक्षकार अपने व्यवहार के माध्यम से उसकी शर्तों की कोई विशेष व्याख्या करते हैं - जिसके आधार पर उनमें से प्रत्येक, दूसरे की जानकारी में, कार्य करता है और अपने आपसी मामलों का संचालन करता है - तो वे उस व्याख्या से उसी प्रकार बाध्य होते हैं जैसे कि उन्होंने उसे संविदा में संशोधन के रूप में लिखित रूप में दर्ज किया हो। यह जांचने की आवश्यकता नहीं है कि वह व्याख्या सही है, गलत है या मूल शर्तों के अनुरूप है। संविदा के निर्माण के मामले में पक्षकारों का आचरण भी एक प्रासंगिक कारक होगा। संविदा के निर्माण के लिए आदान-प्रदान किए गए पत्राचारों को ध्यान में रखना आवश्यक है। (पैरा 100, 101)

डी. उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 - धारा 7 और 14 - पट्टा पुनः प्राप्त करना - शक्ति का स्वरूप - सामान्य संविदा विधि और संपत्ति अंतरण अधिनियम से अंतर - अभिनिर्धारित किया, अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति आवंटन/पट्टा रद्द करने और शर्तों के उल्लंघन या बकाया राशि के भुगतान न होने पर कब्जा पुनः प्राप्त करने की विशेष शक्ति है - यह प्रावधान मुख्य कार्यकारी अधिकारी को संपत्ति पुनः प्राप्त करने और भुगतान की गई सम्पूर्ण या आंशिक राशि को समपहरण करने का अधिकार देता है - इसके अतिरिक्त, कलेक्टर अनुरोध पर कब्जा ले सकता है - पट्टा विलेख स्वयं इस वैधानिक शक्ति के सर्वोपरि प्रभाव को दोहराता है - संपत्ति अंतरण अधिनियम के अंतर्गत विस्तृत प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक नहीं है - यह पर्याप्त है कि आदेश में यह कहा गया हो कि पुनः प्राप्त करने का कारण स्पष्ट शर्तों का उल्लंघन है

- यह अधिनियम एक विशेष विधि होने के कारण संपत्ति अंतरण अधिनियम के अंतर्गत सामान्य विधि को अधिभावी करता है। (पैरा 111, 113)

ई. डेवलपर-याचिकाकर्ता ने गृह खरीदारों से लगभग 80% बकाया राशि वसूल कर ली थी, लेकिन आवास परियोजनाओं को पूरा करने में विफल रहा और विशेष विकास क्षेत्र (एसडीजेड) नीति के अंतर्गत अपने दायित्वों का बार-बार उल्लंघन किया, जिसमें विकास प्राधिकरण को देय राशि का भुगतान न करना भी शामिल है। आवंटन रद्द करना वैध माना गया और यह आनुपातिकता के सिद्धांत के अंतर्गत नहीं आता। प्राधिकरण ने नियोजित विकास को आगे बढ़ाने के लिए विकास न होना, दिवालियापन और गृह खरीदारों के हितों की रक्षा जैसे कारकों पर उचित विचार किया। दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 के अंतर्गत याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई दिवालियापन कार्यवाही ने इस कार्रवाई को और भी उचित ठहराया। अभिनिर्धारित किया : संपूर्ण आवंटन रद्द करना न तो आनुपातिकता के सिद्धांत के अंतर्गत आता है और न ही किसी अन्य कारण से अवैध है। रद्दीकरण आदेश पारित करते समय, प्राधिकरण ने विकास/निर्माण में डिफॉल्ट सहित कई कारकों पर विचार किया था, लेकिन रद्द करने का मुख्य आधार प्राधिकरण को देय राशि का भुगतान न करना था। (पैरा 166, 167)

निरस्त किया गया। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता &
माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रदत्त)

1. चर्चा में सुगमता के लिए, निर्णय को निम्नलिखित विषय-सूची के अनुसार संरचित किया गया है: -

क्रम संख्या	विषयसूची	पृष्ठ संख्या
1.	परिचय	3 आगे
	(i) याचिकाकर्ता का मामला	5-13
	(ii) वाईईए का मामला	13-15
	(iii) रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान घटित होने वाली घटनाएँ	15-16
	(iv) मौके पर निरीक्षण	16-18
	(v) आईबीसी के अंतर्गत कार्यवाही	18-19
	(vi) पक्षकारों को सुना	19

2.	विवादयक	20-21
3.	तर्क - याचिकाकर्ता के अधिवक्ता	21-31
4.	तर्क - वाईईए के अधिवक्ता	31-56
	विश्लेषण	56 आगे
5.	विवादयक संख्या 1 रिट याचिकाओं की पोषणीयता	56-65
6.	विवादयक संख्या 2 क्या पट्टा निष्पादित होने के बाद आवंटन की शर्तें लागू रहेंगी? विवादयक संख्या 3. क्या आवंटन रद्द होने से पट्टा भी रद्द हो जाता है?	65 से आगे
	(क) आवंटन, पट्टा और एसडीजेड नीति की प्रमुख विशेषताएं	65-90
	(ख) पक्षकारों ने संविदा को कैसे समझा	90-94
	(ग) अधिनियम, 1976 की धारा 14 के अधीन स्वतंत्र वैधानिक शक्ति	94-108
	(घ) निष्कर्ष	108
7.	विवादयक संख्या 4 याचिकाकर्ता की पिछली रिट याचिका संख्या 47262/2017 का वर्तमान याचिका पर प्रभाव।	108-109
8.	विवादयक संख्या 5 क्या संपूर्ण आवंटन को रद्द करने की कार्रवाई आनुपातिकता के सिद्धांत के अंतर्गत आती है? विवादयक संख्या 6 क्या बकाया राशि का भुगतान न करना ही संविदा रद्द करने का एकमात्र आधार है या विकास न होना भी इसका कारण हो सकता है? विवादयक संख्या 7 यदि विकास न होने के आधार पर रद्दीकरण आदेश दिया जाता है तो वह अवैध है।	109 से आगे

	ए- आनुपातिकता	113 से आगे
	i. पूर्व निर्णय	113-117
	ii. प्रमुख सिद्धांत	117-118
	iii. आवंटन पत्र और पट्टा विलेखों के संदर्भ में अपनाए गए प्रतिबंधात्मक उपाय	118-120
	iv. अन्य प्रतिबंधात्मक उपाय किए गए	121-122
	v. विचार किए गए कारक	123 से आगे
	• भुगतान में डिफॉल्ट	123-125
	• जेएल की वित्तीय स्थिति और गृह खरीदारों के प्रति उसके दायित्वों का आकलन।	125-136
	• आनुपातिकता निर्धारित करने के लिए परीक्षण: व्यापक जनहित	137-138
	• टेरी ओट्स	138-140
	vi. सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए किए गए प्रयास	140-142
	vii. दिवालियापन स्थापित	142-145
	बी- निष्कर्ष	146
9.	जेएल द्वारा वाईईए को भुगतान की गई धनराशि का क्या हुआ?	146-150
10.	विवादक संख्या 8 क्या वैध पट्टा के बिना गृह खरीदार और उप-पट्टाधारक अपना अस्तित्व बनाए रख सकते हैं?	150 से आगे
	(i) गृह खरीदारों का हित	151-157
	(ii) उप-पट्टाधारकों का हित	157-158
	(iii) वित्तीय संस्थानों का हित	159-166
	(iv) आगे के निर्देश	166-167
11।	निष्कर्ष	167-171

2. रिट याचिका संख्या 6049/2020 को मुख्य याचिका माना गया और निर्णय में वर्णित तथ्य, जहां स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है, मुख्य याचिका में पक्षकारों के अभिवचनों से लिए गए हैं।

परिचय:

3. मैसर्स जय प्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड (संक्षेप में 'जेएएल' या 'याचिकाकर्ता') कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के अंतर्गत निगमित एक कंपनी है। प्रारंभ में, यह रिट याचिका दो प्रतिवादियों, अर्थात् उत्तर प्रदेश राज्य और यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण (संक्षेप में 'वाईईए' या 'प्राधिकरण') के विरुद्ध दायर की गई थी। बाद में, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.09.2023 के अनुसरण में लगभग 258 गृह खरीदारों को भी इसमें शामिल किया गया। याचिकाकर्ता कंपनी के विरुद्ध सीपी (आईबी) संख्या 330/एएलडी/2018 (आईसीआईसीआई बैंक बनाम जय प्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड) के रूप में परिसमापन कार्यवाही चल रही थी और श्री भुवन मदन को अंतरिम संकल्प पेशेवर (संक्षेप में 'आईआरपी') नियुक्त किया गया था। इस घटनाक्रम के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता को उक्त आईआरपी के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी गई और परिणामस्वरूप, आदेश दिनांक 26.07.2024 के अनुसरण में वाद शीर्षक में संशोधन किया गया।

4. रिट याचिका में प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादी संख्या 2 (वाईईए) द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.02.2020 को रद्द किया जाए, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में किए गए भूमि आवंटन को रद्द कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता के प्रश्नगत भूमि पर शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने और उक्त आदेश के अंतर्गत कोई अन्य दंडात्मक कार्रवाई करने से प्रतिवादियों को रोकने के लिए परमादेश की मांग की गई है; साथ ही प्रतिवादी संख्या 2 को पानी, सीवर और जल निकासी जैसी आवश्यक/मूलभूत सुविधाएं प्रदान करने और एस्क्रो अनुबंध दिनांक 24.09.2018 के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए अन्य सभी आवश्यक कदम उठाने का निर्देश देने की भी मांग की गई है। रिट याचिका में संशोधन किया गया और इसमें वाईईए बोर्ड द्वारा अपनी 70^{वीं} बैठक में पारित प्रस्ताव दिनांक 28.06.2021 (संलग्नक संख्या 37-ख) को रद्द करने की प्रार्थना जोड़ी गई, जिसमें वाईईए ने याचिकाकर्ता पर बहाली शुल्क लगाने का प्रयास किया था और प्रस्तावित पुनर्निर्धारण और बकाया राशि की पुनर्गणना को वर्ष 2023 तक सीमित कर दिया था। एक अन्य अनुतोष परिणामी पत्र दिनांक 05.07.2021 (संलग्नक संख्या 37-ग) को रद्द करने की मांग की गई है, जिसमें बोर्ड द्वारा अपनी 70^{वीं} बैठक में लिए गए निर्णय और अन्य निर्णयों की सूचना याचिकाकर्ता को दी गई थी। वाईईए को बकाया राशि का पुनर्निर्धारण और पुनर्गणना करने और प्रत्यावेदन दिनांक 02.03.2021 पर निर्णय लेने का आदेश देने की प्रार्थना भी की गई है।

याचिकाकर्ता (जेएएल) का मामला :

5. उत्तर प्रदेश सरकार ने यमुना एक्सप्रेसवे परियोजना और क्षेत्र में संबंधित विकास कार्यों को लागू करने के लिए उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1976') के अंतर्गत अधिसूचना दिनांक 24.04.2001 द्वारा ताज एक्सप्रेस औद्योगिक विकास प्राधिकरण (संक्षेप में 'टीईए') का गठन किया। पूर्ववर्ती टीईए की जिम्मेदारियों में अन्य बातों के अतिरिक्त यमुना एक्सप्रेसवे का निर्माण, एक्सप्रेसवे क्षेत्र के

निर्माण के लिए भूमि अधिग्रहण, एक्सप्रेसवे के साथ नियोजित विकास के लिए क्षेत्रीय योजना/मास्टर प्लान का विकास और तैयारी, जल निकासी, सहायक सड़कों, विद्युतीकरण आदि का विकास शामिल था। अधिनियम 1976 के अंतर्गत टीईए को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और अपने आवश्यक कार्यों के निर्वहन को आगे बढ़ाते हुए, वाईईए ने विशेष विकास क्षेत्र (एसडीजेड) की नीति लाई, जिसमें उद्यमी द्वारा निर्दिष्ट विकल्पों में से चुनी गई एक विशिष्ट मुख्य गतिविधि के साथ एसडीजेड की स्थापना की परिकल्पना की गई थी। 29.02.2008 को, वाईईए ने विभिन्न नियमों और शर्तों वाले विस्तृत ब्रोशर के वितरण के माध्यम से एसडीजेड नीति का व्यापक प्रचार-प्रसार करके इच्छुक पक्षकारों से आवेदन आमंत्रित किए। याचिकाकर्ता ने "खेल" को मुख्य गतिविधि बनाकर एसडीजेड स्थापित करने के लिए इस सूचना के जवाब में आवेदन किया। आवेदन के समय, कंपनी का नाम जेपीएसके स्पोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड था, जिसका नाम बाद में बदलकर जयपी स्पोर्ट्स इंटरनेशनल लिमिटेड (जेपीएसआई) कर दिया गया, जो बाद में विलय योजना के अंतर्गत वर्ष 2014 में याचिकाकर्ता कंपनी में विलय हो गई। वाईईए ने पत्र दिनांक 11.06.2008 के माध्यम से याचिकाकर्ता को एक आवंटन पत्र जारी किया, जिसमें उसे सूचित किया गया कि वाईईए ने "खेल" को मुख्य गतिविधि बनाकर एसडीजेड स्थापित करने के लिए 1000 हेक्टेयर भूमि आवंटित करने का निर्णय लिया है।

6. 28.08.2008 को, वाईईए ने याचिकाकर्ता को सूचित किया कि उसने नोएडा के सेक्टर 25 में लगभग 1000 हेक्टेयर भूमि याचिकाकर्ता के लिए आरक्षित कर दी है ताकि खेल गतिविधियों को मुख्य गतिविधि बनाकर एसडीजेड विकसित किया जा सके। यह भी सूचित किया गया कि यह भूमि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा अधिग्रहण कार्यवाही के अंतर्गत भूमि पर कब्जा लेने की प्रत्याशा में आरक्षित की गई थी। वर्ष 2009 और 2011 के बीच, वाईईए ने याचिकाकर्ता को छः आवंटन पत्र दिनांक 24.02.2009, 20.03.2009, 10.08.2009, 27.01.2010, 23.06.2010 और 07.12.2010 जारी किए और याचिकाकर्ता को 1085.3327 हेक्टेयर भूमि आवंटित की गई, जिसमें ग्राम विकास और आबादी विस्तार के लिए 98.9862 हेक्टेयर और कुल 14.6673 हेक्टेयर भूमि शामिल है। सभी आवंटन पत्रों में, जो समान प्रकृति के थे, भुगतान अनुसूची, आवंटित भूमि का क्षेत्रफल और प्रीमियम के भुगतान के लिए निर्धारित किश्तें शामिल थीं।

7. इसी अवधि के दौरान, याचिकाकर्ता द्वारा छः आवंटन पत्रों और 20% अग्रिम आवंटन राशि के भुगतान के बाद, 32 पट्टा विलेख निष्पादित किए गए, जिनके द्वारा लगभग 965.7390 हेक्टेयर भूमि पट्टे पर दी गई। सभी पट्टा विलेखों में विस्तृत नियम और शर्तें थीं जिनके अंतर्गत याचिकाकर्ता को भूमि का अधिकार हस्तांतरित किया गया था, और याचिकाकर्ता द्वारा देय किसी भी राशि की वसूली का तरीका निर्दिष्ट किया गया था, जो भू-राजस्व के बकाया के रूप में थी। आवंटन पत्रों में निहित विभिन्न खंड, जिन्हें पट्टा विलेखों का हिस्सा माना जाता था, उन्हें समग्र रूप से आवंटन पत्रों को अपनाए बिना स्पष्ट रूप से उनमें शामिल किया गया था। पट्टा विलेखों में ऐसा कोई खंड नहीं है जो प्रतिवादियों को पट्टा विलेखों को रद्द/समाप्त करने में सक्षम बनाए। पट्टा विलेखों में निहित नियमों और शर्तों के अनुसार, वाईईए को याचिकाकर्ता को पूर्ण सहयोग देना था और एसडीजेड योजना के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक परमिट, स्वीकृति, अनुमोदन, स्वीकृति आदि प्राप्त करने में सहायता प्रदान करनी थी। हालांकि, याचिकाकर्ता के अनुसार, वाईईए ने लगातार लापरवाही बरती और

निर्माणाधीन रियल एस्टेट विकास योजनाओं के रेखाचित्रों को स्वीकृति नहीं दी। यह आचरण न मात्र आवासीय क्षेत्रों के आवंटियों के हितों के लिए हानिकारक था, बल्कि याचिकाकर्ता को भी अनुचित हानि पहुँचाई।

8. उपर्युक्त स्वीकृतियों के लिए आवेदन करने के बाद, याचिकाकर्ता ने विनियमों द्वारा अनुमत भवनों का निर्माण शुरू किया और संरचनाओं का एक बड़ा हिस्सा निर्मित कर लिया था। याचिकाकर्ता ने पट्टे पर दी गई भूमि पर आवास परियोजनाएं शुरू की थीं, लेकिन परियोजनाओं को आवश्यक स्वीकृति नहीं मिली, जिससे याचिकाकर्ता को गंभीर वित्तीय कठिनाई का सामना करना पड़ा। ये परियोजनाएं वाईईए द्वारा बिना किसी स्पष्टीकरण के आवश्यक स्वीकृतियां न देने के कारण रुकी रहीं, जो पट्टा विलेख की शर्तों का उल्लंघन है।

9. याचिकाकर्ता के अनुसार, उसने अपेक्षित मुख्य गतिविधियाँ पूरी कर ली थीं और वर्ष 2011 और 2012 में संबंधित शुल्क जमा करने के बाद पूर्णता प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए आवेदन किया था, लेकिन बिना किसी स्पष्टीकरण या उचित कारण के प्राधिकरण के समक्ष यह आवेदन लंबित रहा। याचिकाकर्ता के नियंत्रण से परे भारी देरी और आर्थिक मंदी के कारण, याचिकाकर्ता पट्टा विलेखों के अनुसार सहमत भुगतान प्रक्रिया का पालन करने में असमर्थ रहा। यह निवेदन किया जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा 31.07.2017 तक वाईईए को 2,379.74 करोड़ रुपये का भुगतान विधिवत कर दिया गया था और कुल बकाया राशि मात्र 359.81 करोड़ रुपये थी। वाईईए ने विभिन्न बिल्डरों द्वारा सामना की जा रही ऐसी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए, अपने कार्यालय आदेश दिनांक 16.06.2017 के माध्यम से एक योजना प्रस्तावित की, जिसके अंतर्गत वाईईए के सभी आवंटियों को लिखित आवेदन दाखिल करके अपने-अपने पट्टों के अंतर्गत बकाया राशि (प्रीमियम और पट्टा किराया) के पुनर्निर्धारण की मांग करने की अनुमति दी गई ("पुनर्निर्धारण योजना")। इसके अतिरिक्त, पुनर्निर्धारण योजना के अनुसार, आवेदक को बकाया राशि का 5% 31.07.2017 तक और 10% बकाया राशि वाईईए द्वारा जारी किए जाने वाले पुनर्निर्धारण मांग पत्र की तिथि से 30 दिनों की अवधि के भीतर जमा करनी थी। शेष राशि पुनर्निर्धारण मांग पत्र के माध्यम से निर्धारित किश्तों में जमा करनी थी।

10. याचिकाकर्ता ने पत्र दिनांक 24.07.2017 के माध्यम से पुनर्निर्धारण योजना के लिए आवेदन किया और उसी दिन वाईईए के मुख्य कार्यकारी अधिकारी से इस मामले पर चर्चा की गई। उन्होंने याचिकाकर्ता को आश्वासन दिया कि 300 करोड़ रुपये के भुगतान पर, ब्याज दर में कमी और शेष राशि के पुनर्निर्धारण पर विचार करने के लिए मामले को बोर्ड के समक्ष उठाया जाएगा। पक्षकारों के बीच चर्चा के बाद, याचिकाकर्ता ने 31.07.2017 को आईसीआईसी बैंक से एस्क्रो खाते से 300 करोड़ रुपये जारी करने का अनुरोध किया और आईसीआईसी बैंक द्वारा जारी बैंक ड्राफ्ट संख्या 551184 के माध्यम से उक्त राशि जमा कर दी। याचिकाकर्ता के अनुसार, जमा की गई राशि बकाया राशि के 50% से अधिक है, जो पुनर्निर्धारण योजना के अंतर्गत निर्धारित 15% राशि से भी अधिक है। याचिकाकर्ता के अनुसार, पुनर्निर्धारण योजना के अंतर्गत याचिकाकर्ता के आवेदन को स्वीकृति देने के बजाय, वाईईए ने आवंटन रद्द करने की धमकी दी, जिसके कारण याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 47262/2017 दायर की, जिसमें पत्र दिनांक 04.08.2017 को रद्द करने और वाईईए को योजना में निर्दिष्ट पुनर्निर्धारण मांग पत्र तत्काल जारी करने का आदेश देने के लिए परमादेश याचिका की मांग की गई

थी। उक्त रिट याचिका को आदेश दिनांक 02.08.2017 द्वारा मुख्य याचिका से जोड़ दिया गया था। वाईईए ने पत्र दिनांक 16.02.2018 द्वारा याचिकाकर्ता को बकाया राशि के पुनर्निर्धारण का लाभ उठाने के लिए 31.03.2018 तक 170.78 करोड़ रुपये जमा करने का निर्देश दिया। इसके जवाब में, याचिकाकर्ता ने अपने पत्र दिनांक 08.03.2018 के माध्यम से स्पष्ट किया कि उसने 29.03.2017 से 31.07.2017 के दौरान वाईईए को 410 (चार सौ दस) करोड़ रुपये का भुगतान पहले ही कर दिया है, जो भूमि बकाया की किश्तों की मूल राशि का 83% है, और 31.03.2018 तक देय कुल राशि को बारह अर्धवार्षिक किश्तों में पुनर्निर्धारित करने पर विचार करने का अनुरोध किया।

11. पुनर्निर्धारण योजना की स्वीकृति के बाद, छः आवंटन पत्रों में निर्धारित भुगतान शर्तों से भुगतान तंत्र में परिवर्तन किया गया और शेष भुगतान 30.09.2018 से 31.12.2023 तक बारह अर्धवार्षिक किस्तों में किया जाना था। हालांकि, याचिकाकर्ता को पुनर्निर्धारण पत्र तैयार करते समय कुछ विसंगतियां और असंगत आंकड़े मिले और उन्होंने पाया कि एसबीआई द्वारा निर्धारित प्राइम लेंडिंग रेट से 3% अधिक, मनमाने ढंग से 1% से 3% का अतिरिक्त जुर्माना लगाया गया था। याचिकाकर्ता ने पत्र दिनांक 04.07.2018 द्वारा इस त्रुटि को सुधारने का अनुरोध किया। आगे यह निवेदन किया गया है कि याचिकाकर्ता कंपनी की सहायक कंपनी जयपी इंफ्राटेक लिमिटेड की कॉर्पोरेट दिवालियापन समाधान प्रक्रिया से संबंधित रिट याचिका संख्या 744/2017 (चित्रा शर्मा बनाम भारत संघ) में, सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 09.08.2018 द्वारा याचिकाकर्ता को समय-समय पर आवश्यक राशि जमा करने का निर्देश दिया था और इन निर्देशों के अनुपालन में याचिकाकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष 750 करोड़ रुपये जमा किए थे। उक्त राशि बाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 09.08.2019 द्वारा राष्ट्रीय कंपनी विधि न्यायाधिकरण, इलाहाबाद (एनसीएलटी) को हस्तांतरित कर दी गई और यह राशि एनसीएलटी की हिरासत में है।

12. याचिकाकर्ता 750 करोड़ रुपये की जमा राशि और वित्तीय वर्ष 2011 से वाईईए को 14% से 14.75% तक की अत्यधिक ब्याज दर (जिसमें 3% की दंडात्मक ब्याज दर भी शामिल है, जबकि औसत बैंक ब्याज दर लगभग 12% है) के कारण वित्तीय संकट का सामना कर रहा था। इसलिए, याचिकाकर्ता ने वाईईए से अतिरिक्त दंडात्मक ब्याज को माफ करने, ब्याज दर कम करने और पहली दो किस्तों (जो 30.09.2018 और 30.03.2019 को देय थीं) को क्रमशः 31.12.2018 और 20.06.2019 तक स्थगित करने का अनुरोध किया। हालांकि, वाईईए ने शेष राशि जमा करने में आनाकानी जारी रखी और याचिकाकर्ता के बार-बार किए गए अनुरोध व्यर्थ गए। आर्थिक मंदी और इस तथ्य के कारण कि 87% तक भूमि बकाया का भुगतान करने के बाद भी वाईईए द्वारा भवन निर्माण के नक्शे स्वीकृत नहीं किए गए, रियल एस्टेट परियोजनाएं अव्यवहार्य हो गईं और याचिकाकर्ता को भारी हानि हुआ। हालांकि, बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद, वाईईए ने कोई उचित कार्रवाई नहीं की और यहां तक कि याचिकाकर्ता को, अन्य बातों के अतिरिक्त, पट्टा विलेखों को रद्द करने/समाप्त करने की धमकी भी दी।

13. याचिकाकर्ता ने बकाया किस्तों के लिए 10 करोड़ रुपये का चेक प्रस्तुत किया और 15.02.2019 तक शेष राशि जमा करने का वादा किया। याचिकाकर्ता ने पहली किस्त की शेष राशि जमा करने के लिए समय बढ़ाने, ब्याज दर में कमी करने और अतिरिक्त दंडात्मक ब्याज में सुधार करने के लिए वाईईए को पत्र भी प्रस्तुत किए। वाईईए ने अपने पत्र दिनांक 04.06.2019 के माध्यम से याचिकाकर्ता को सूचित किया कि 65^{वाँ} बोर्ड बैठक में यह निर्णय लिया गया था कि भुगतान तंत्र को एस्क्रो खाते में बदलने पर तभी विचार किया जा सकता है जब याचिकाकर्ता पुनर्निर्धारण पत्र दिनांक 28.05.2018 के अनुसार डिफॉल्ट को ठीक कर दे। वाईईए ने याचिकाकर्ता को शेष राशि के लिए प्रस्तावित एस्क्रो समझौते के निष्पादन हेतु 98 करोड़ रुपये जमा करने का निर्देश दिया। याचिकाकर्ता ने पत्र दिनांक 18.06.2019 के माध्यम से, अन्य बातों के अतिरिक्त, वाईईए को पंजाब और सिंध बैंक द्वारा जारी की गई सौ करोड़ रुपये की प्रदर्शन बैंक गारंटी को लागू करने की सलाह दी, जिसे वाईईए ने उक्त बैंक को जारी किए गए पत्र दिनांक 02.07.2019 के माध्यम से विधिवत लागू किया और तदनुसार, 03.07.2019 को उक्त बैंक में वाईईए के खाते में सौ करोड़ रुपये स्थानांतरित कर दिए गए; जिसके बाद, याचिकाकर्ता ने पत्र दिनांक 13.08.2019 के माध्यम से एस्क्रो समझौते को प्राधिकरण के अधिकृत हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा निष्पादित करवाने और आईसीआईसीआई बैंक द्वारा इसके कार्यान्वयन को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रस्तुत किया।

14. बाद में, याचिकाकर्ता ने पत्र दिनांक 21.12.2019 के माध्यम से वाईईए को सूचित किया कि सौ करोड़ रुपये की बैंक गारंटी 10 वर्षों के लिए रखी जानी थी, जिसकी अवधि पहले ही समाप्त हो चुकी थी और कोर गतिविधि क्षेत्र के लिए बहुत पहले प्रस्तुत किए गए रेखाचित्रों को स्वीकृति नहीं मिली थी। तदनुसार, याचिकाकर्ता ने कोर क्षेत्र के पूरा होने के दृष्टिगत बैंक गारंटी की आवश्यकता को समाप्त करने के लिए वाईईए से अनुरोध किया और लंबित अचल संपत्ति विकास परियोजनाओं को भी स्वीकृति देने का अनुरोध किया, क्योंकि उक्त परियोजनाओं की बिक्री से प्राप्त आय याचिकाकर्ता के लिए भूमि के संबंध में बकाया राशि के भुगतान को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक थी। पक्षकारों के बीच सहमत शर्तों के अनुपालन के बावजूद, वाईईए ने आक्षेपित आदेश दिनांक 12.02.2020 पारित कर सेक्टर-25 में संपूर्ण भूमि का आवंटन इस आधार पर रद्द कर दिया कि याचिकाकर्ता ने पुनर्निर्धारण योजना दिनांक 28.05.2018 के अनुसार किस्तों का भुगतान करने में डिफॉल्ट की थी, जबकि यह ध्यान में नहीं रखा गया कि एस्क्रो अनुबंध दिनांक 24.09.2019 द्वारा इसे निरस्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता का तर्क है कि वाईईए की कार्रवाई अवैध, मनमानी और वित्तीय रूप से दमनकारी है। पर्याप्त अनुपालन और निवेश के बावजूद, वाईईए की अनुचित मांगों और महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे को स्वीकृति न देने के कारण एसडीजेड परियोजना खतरे में पड़ गई है। याचिकाकर्ता इन विवाद्यों को हल करने और अनुचित वित्तीय बोझ को रोकने के लिए न्यायिक हस्तक्षेप की मांग करता है।

वाईईए का मामला :

15. याचिकाकर्ता ने एसडीजेड परियोजना विकसित करने के लिए एक वाणिज्यिक अनुबंध किया था, लेकिन भुगतान में डिफॉल्ट की और अपेक्षित विकास कार्य पूरा करने में विफल रहा। रद्दीकरण आदेश उचित प्रक्रिया के अनुसार और भुगतान न करने से संबंधित संविदात्मक खंडों के अनुरूप था। आवंटन पत्र के खंड 5.2 के

अंतर्गत तीन डिफॉल्ट नोटिस की अनुमति थी, जिसके बाद प्राधिकरण को पट्टा समाप्त करने का अधिकार था। याचिकाकर्ता को मुख्य गतिविधियों के लिए कुल क्षेत्रफल का 35% विकसित करना था, लेकिन वह ऐसा करने में विफल रहा।

16. यह विवाद संविदात्मक है, जो आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों से उत्पन्न हुआ है, इसलिए अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका दायर करना अनुपयुक्त है। सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार यह निर्णय दिया है कि संविदात्मक मामलों में न्यायिक पुनर्विलोकन सीमित है और इसे तब तक नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि मनमानी या मौलिक अधिकारों का उल्लंघन शामिल न हो। आवंटन पत्रों के खंड 4.2 के अनुसार रद्द किया गया था, और याचिकाकर्ता ने अपने भुगतान डिफॉल्ट पर कोई विवाद नहीं किया है।

17. पट्टानामा एक स्वतंत्र अभिलेख नहीं है; यह आवंटन पत्र से सीधे जुड़ा हुआ है। चूंकि आवंटन पत्र रद्द कर दिया गया है, इसलिए पट्टानामा भी समाप्त हो जाता है।

18. भुगतान में पुनर्गठन के कई अवसरों के बावजूद, याचिकाकर्ता नए शेड्यूल का पालन करने में विफल रहा। प्राधिकरण ने कई बार समय सीमा बढ़ाई, लेकिन फिर भी समय पर भुगतान प्राप्त नहीं हुआ। 24.09.2019 के एस्क्रो समझौते का उद्देश्य भुगतान को सुगम बनाना था, फिर भी याचिकाकर्ता ने मात्र ₹47.09 लाख जमा किए, जबकि देय राशि इससे कहीं अधिक थी।

19. वर्ष 2024 में किए गए एक सर्वेक्षण में पाया गया कि याचिकाकर्ता ने अपेक्षित 40% क्षेत्र में से मात्र 5.46% क्षेत्र का ही विकास किया है। कई आवश्यक खेल और अवसंरचना परियोजनाएं (जैसे स्टेडियम, प्रशिक्षण संस्थान, व्यायामशालाएं, छात्रावास आदि) विकसित नहीं की गईं। याचिकाकर्ता आवास परियोजनाओं को पूरा करने में भी विफल रहा, जिससे घर खरीदारों को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा।

20. आनुपातिकता का सिद्धांत संविदात्मक समझौतों पर लागू नहीं होता। रद्दीकरण आदेश कई चेतावनियों के बाद जारी किया गया था, जिससे यह अंतिम उपाय बन जाता है, न कि असंगत प्रतिक्रिया।

21. परियोजना में देरी के कारण प्रभावित हुए घर खरीदारों के हितों की रक्षा के लिए यह रद्द करना आवश्यक था। प्राधिकरण की योजना है कि घर खरीदारों पर इसका कोई प्रभाव न पड़े, इसके लिए या तो परियोजना की पुनः नीलामी की जाए, इस शर्त के साथ कि नया डेवलपर इसे पूरा करे, या फिर प्राधिकरण स्वयं विकास कार्य करे।

22. याचिकाकर्ता को 03.06.2024 को दिवालिया घोषित कर दिया गया था। वित्तीय कुप्रबंधन साबित करते हुए। याचिकाकर्ता के विरुद्ध ₹47.09 लाख से अधिक के दावे दायर किए गए, जबकि देय राशि 64,552 करोड़ थी, जिसमें से 51,512 करोड़ स्वीकार किए गए। दिवालियापन की कार्यवाही से पता चलता है कि याचिकाकर्ता की वित्तीय परेशानियाँ रद्द करने के कारण नहीं, बल्कि वर्षों से हो रही डिफॉल्ट के कारण थीं।

याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान घटित होने वाली घटनाएँ :

23. मुख्य रिट याचिका पर 25.02.2020 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था, जिसमें पक्षकारों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया था, बशर्ते याचिकाकर्ता एक माह के भीतर वाईईए के खाते में सौ करोड़ रुपये जमा कर दे, लेकिन दो भागों में, अर्थात् 10.03.2020 तक 50 करोड़ रुपये और 25.03.2020 तक 50 करोड़ रुपये। याचिकाकर्ता ने 25.02.2020 के आदेश के पहले निर्देश/भाग का अनुपालन करते हुए 09.03.2020 को वाईईए के खाते में 50 करोड़ रुपये जमा कर दिए और 16.03.2020 को 5 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि जमा की। हालांकि, याचिकाकर्ता शेष 45 करोड़ रुपये जमा करने में विफल रहा। आदेश का अनुपालन करने के लिए समय बढ़ाने हेतु याचिकाकर्ता के आवेदन दिनांक 04.01.2021 का निस्तारण 08.02.2021 को किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को एक सप्ताह का समय दिया गया। न्यायालय ने आदेश दिनांक 08.02.2021 द्वारा (दिनांक 01.03.2021 को संशोधित/संशोधित) याचिकाकर्ता को एक सप्ताह के भीतर 52,50,26,551/- रुपये जमा करने की अनुमति दी और साथ ही वाईईए को निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा आदेश का अनुपालन करने के बाद बकाया राशि के पुनर्गठन और पुनर्गणना पर विचार किया जाए। इसके बाद, आदेश दिनांक 29.09.2022 द्वारा याचिकाकर्ता को 100 करोड़ रुपये जमा करने का निर्देश दिया गया। याचिकाकर्ता ने यह राशि जमा कर दी और इस संबंध में एक शपथपत्र दिनांक 02.11.2022 दाखिल किया गया। तदनुसार, याचिकाकर्ता ने 50 करोड़ रुपये + 5 करोड़ रुपये + 52,50,26,551/- रुपये + 100 करोड़ रुपये (कुल 207,50,26,551/- रुपये) जमा कर दिए हैं।

24. वाईईए के बोर्ड ने याचिकाकर्ता कंपनी के पुनर्गठन के प्रस्ताव पर विचार किया और पत्र दिनांक 05.07.2021 के माध्यम से पूर्व शर्त के रूप में "पुनर्स्थापन शुल्क" के रूप में 425.10 करोड़ रुपये की एकमुश्त राशि की मांग की। याचिकाकर्ता ने वाईईए की उपरोक्त मांग को रिट याचिका संख्या 17785/2021 दायर करके चुनौती दी, जिसे वापस ले लिया गया और याचिकाकर्ता को वर्तमान रिट याचिका में संशोधन करने की स्वतंत्रता दी गई। तदनुसार, संशोधन की मांग की गई और उसे स्वीकार कर लिया गया।

सुनवाई के दौरान मौके पर निरीक्षण:

25. सुनवाई के दौरान, न्यायालय ने आदेश दिनांक 09.05.2024 द्वारा याचिकाकर्ता के प्रतिनिधि की उपस्थिति में वाईईए द्वारा स्थल का सर्वेक्षण करने का निर्देश दिया। तदनुसार, स्थल सर्वेक्षण विभिन्न तिथियों पर किया गया। निरीक्षण रिपोर्ट और स्थल की तस्वीरें दाखिल कर दी गई हैं।

26. जबकि प्रतिवादी प्राधिकरण का जोर शुरू से ही इस बात पर रहा है कि याचिकाकर्ता आवंटन पत्रों में निहित शर्तों के अनुसार निर्माण कार्य करने में विफल रहा है, याचिकाकर्ता का कहना है कि संबंधित भूमि के मुख्य और गैर-मुख्य क्षेत्रों में पर्याप्त निर्माण कार्य किया जा चुका है और जो निर्माण कार्य नहीं हो सका, वह प्रतिवादी प्राधिकरण की लापरवाही के कारण हुआ है। किए गए निर्माण का सारणीबद्ध विवरण 7^{वें} पूरक शपथपत्र के साथ-साथ संयुक्त सर्वेक्षण के बाद दायर किए गए शपथपत्र दिनांक 25.07.2024 में भी दिया गया है। याचिकाकर्ता के अनुसार, मौके पर किए गए निर्माण की स्थिति इस प्रकार है:-

क्रमांक संख्या	मुख्य क्षेत्र	कुल भूमि क्षेत्र	विकसित भूमि क्षेत्र	विकास के अंतर्गत क्षेत्र	भविष्य के विकास के लिए भूमि क्षेत्र
		(हेक्ट.)	(हेक्ट.)	(हेक्ट.)	(हेक्ट.)
1	एफआई रेस ट्रैक + सेवा (एसटीपी, डब्ल्यूटीपी, ईएसएस और बारिश के लिए तालाब) पानी संचयन	80.61	80.61	0.00	0.00
2	क्रिकेट स्टेडियम और संबंध सुविधाएं	14.66	9.57	0.00	5.09
3	हॉकी एवं बहुउद्देशीय खेल कमरा	11.09	0.00	0.00	11.09
4	सड़क	55.45	44.36	0.00	11.09
5	हरित	57.34	54.79	0.00	2.55
6	अन्य सेवा (बारिश के पानी के लिए झील संचयन)	10.21	0.00	0.00	10.21
7	अन्य खेल एवं सहायक गतिविधियाँ	121.76	0.00	11.33	110.43
ए	कुल	351.12	189.33	11.33	150.46
			कुल = 200.66		

क्रमांक संख्या	गैर मुख्य क्षेत्र	कुल भूमि क्षेत्र	विकसित भूमि क्षेत्र	विकास के अंतर्गत भूमि क्षेत्र	भविष्य के विकास के लिए भूमि क्षेत्र
		(हेक्ट.)	(हेक्ट.)	(हेक्ट.)	(हेक्ट.)
1	उपपट्टा (सड़क और हरित शामिल हैं)	64.07	0.00	64.07	0.00
2	प्रोजेक्ट	138.61	115.30	23.31	0.00
3	अन्य भूमि (आवासीय, वाणिज्यिक & संस्थागत)	284.29	0.00	2.82	281.47
4	अन्य सड़कें	85.03	29.76	38.26	17.01
5	अन्य हरित	76.88	26.91	34.60	15.38
ख	कुल	648.88	171.96	163.06	313.86
			कुल = 335.02		
क+ख	कुल योग	1000.00	361.29	174.39	464.32
			कुल = 535.68		

दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 के अंतर्गत कार्यवाही :

27. एनसीएलटी के आदेश दिनांक 3.6.2024 द्वारा, आईसीआईसीआई बैंक द्वारा वर्ष 2018 में दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता की धारा 7 के अंतर्गत दायर आवेदन को एनसीएलटी द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 3.6.2024 को एनसीएलटी के समक्ष कंपनी अपील (80) (दिवालियापन) संख्या 1185 - 1162/2024 के माध्यम से चुनौती दी। एनसीएलटी ने फैसला दिनांक 6.12.2024 से अपील खारिज कर दी। इसके बाद, सिविल अपील संख्या 98 - 102/2025 और 2011 - 2012/2025, साथ ही विभिन्न हस्तक्षेप आवेदन, उपरोक्त आदेशों को चुनौती देते हुए सर्वोच्च न्यायालय में दायर किए गए। सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 10.1.2025 से इन्हें खारिज कर दिया। हमें सूचित किया गया है कि वर्तमान में, समाधान पेशेवर कार्यरत हैं और अभी तक कोई अनुमोदित समाधान योजना नहीं है।

पक्षकारों को सुना गया :

28. हमने याचिकाकर्ता (जेएएल) की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री विशाल गुप्ता, श्री रोहन गुप्ता, श्री अमर्त्य भूषण, श्री आदित्य मारवाह, श्री अनूप रावत, श्री सागर धवन, श्री अहकाम खान, सुश्री शिखा गुप्ता, सुश्री कीर्ति गुप्ता, श्री प्रणय कुमार और श्री जतिन कुमार मिश्रा से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जयंत भूषण, प्रतिवादी संख्या 2 (वाईईए) की ओर से संकल्प पेशेवर श्री भुवन मदन, विद्वान अधिवक्ता श्री प्रवीण कुमार, श्री सैयद इमरान इब्राहिम और श्री प्रणव तंवर से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल, ऋणदाताओं/वित्तीय लेनदारों, बंधकदारों और उप-पट्टाधारकों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल, अधिवक्ता सुश्री उपासना अग्रवाल और अधिवक्ता सुश्री ऐश्वर्या गुप्ता से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमित सक्सेना, गृह खरीदारों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अभिनव गौर से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी को सुना।

विवादक :

29. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुति रिट याचिका की पोषणीयता से संबंधित विवादक; विभिन्न आधारों पर आक्षेपित रद्दीकरण आदेश को चुनौती; विभिन्न हितधारकों, उप-पट्टाधारकों, गृह खरीदारों और वित्तीय संस्थानों के हितों और याचिकाकर्ता द्वारा देय राशि के निर्धारण से संबंधित सहायक विवादक तक फैली हुई हैं, यदि रद्दीकरण को चुनौती सफल होती है और वाईईए के पास इसे प्राप्त करने के लिए उपलब्ध अनुतोष हैं। मुख्य विवादक जो उठेंगे वे इस प्रकार हैं: -

1. क्या रिट याचिका पोषणीय है?
2. क्या आवंटन पत्र की शर्तें, उन शर्तों को छोड़कर जिनका विशेष रूप से उल्लेख किया गया है और पट्टा विलेख में संदर्भ द्वारा शामिल किया गया है, पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद भी लागू रहेंगी?
3. क्या पत्र दिनांक 12.02.2020 द्वारा आवंटन पत्र को रद्द करने से पट्टा विलेख के रद्द होने का परिणाम पट्टा विलेख को रद्द करने के रूप में सामने आता है, जबकि इसमें पट्टा विलेख का विशेष रूप से उल्लेख नहीं है?

4. क्या याचिकाकर्ता की पिछली रिट सी संख्या 47262/2017, जिसमें प्रतिवादी हुई बैठक द्वारा 04.09.2017 में आनुपातिक भूमि को रद्द करने के निर्णय को चुनौती दी गई थी, याचिकाकर्ता को वर्तमान रद्द करने को आनुपातिकता के आधार पर चुनौती देने से वंचित कर देगी?
5. क्या कुछ बकाया राशि का भुगतान न करने पर संपूर्ण आवंटन को रद्द करना अत्यधिक प्रशासनिक कार्रवाई है और आनुपातिकता के सिद्धांत के अंतर्गत आता है?
6. क्या संपूर्ण आवंटन को रद्द करने का कारण मात्र बकाया राशि का भुगतान न होना था या विकास/निर्माण में कथित डिफॉल्ट भी थी?
7. यदि विकास/निर्माण में कथित डिफॉल्ट के कारण आवंटन रद्द किया गया है, तो क्या यह रद्द करना अवैध है?
8. क्या पट्टे की वैधता के बिना गृह खरीदारों और बैंकों के उप-पट्टे कायम रह सकते हैं?

30. आक्षेपित निरस्तीकरण आदेश को रद्द किए जाने की स्थिति में पोषणीय सहायक विवादक निम्नलिखित हैं: -

ए. क्या कंपनी के कॉर्पोरेट दिवालियापन समाधान प्रक्रिया (सीआईआरपी) में होने के तथ्य से कंपनी को अनुतोष से वंचित किया जाना चाहिए, भले ही यह पाया जाए कि रद्द करना अवैध था, जबकि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (आईबीसी) विशेष रूप से कंपनी के संचालन को एक चालू व्यवसाय के रूप में जारी रखने की परिकल्पना करती है?

बी. वाईईए की मांगों की वैधता/उपयुक्तता का निर्धारण करने में, अर्थात् उसके बकाया के संबंध में, किन व्यापक सिद्धांतों को लागू किया जा सकता है?

सी. क्या आईबीसी के वैधानिक प्रावधानों और वाईईए द्वारा कंपनी के समाधान पेशेवर के समक्ष अपना दावा प्रस्तुत करने के आलोक में, आईबीसी के कथित बकाया का निस्तारण आईबीसी के प्रावधानों के अनुसार किया जाना आवश्यक है?

डी. क्या वाईईए के दावे आईबीसी के अंतर्गत संरक्षित हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 की धारा 13 और धारा 13क के अंतर्गत दावा करने से वाईईए एक सुरक्षित लेनदार बन जाएगा और आईबीसी की धारा 30(2)(ख) सपठित धारा 53 को पढ़ने पर सुरक्षित वित्तीय लेनदारों के हक के बराबर हो जाएगा?

31. हम मुख्य विवादक के संबंध में पक्षकारों के बीच हुई प्रस्तुति पर विस्तार से विचार करेंगे और यदि निरस्तीकरण आदेश को अवैध माना जाता है, तो हम सहायक विवादकों पर उनके द्वारा प्रस्तुति पर भी विस्तार से चर्चा करेंगे।

याचिकाकर्ता की ओर से उठाए गए तर्क

विवादक संख्या 1:

32. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जयंत भूषण का तर्क है कि यद्यपि प्रतिवादी के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि रिट याचिका पोषणीय नहीं है, लेकिन वाईईए द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र में ऐसी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई है। एकमात्र आपत्ति यह है कि नीतिगत निर्णयों से संबंधित न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा सीमित है। वास्तव में, प्रतिवादी यह स्वीकार करता है कि कार्यकारी आदेश न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे से बाहर नहीं है, बल्कि मात्र यह कहता है कि नीतिगत निर्णयों को चुनौती देने का दायरा सीमित है। **एबीएल इंटरनेशनल बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉर्पोरेशन (2004) 3 एससीसी 553 ; राजस्थान औद्योगिक विकास और निवेश निगम बनाम डायमंड एंड जेम डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन (2013) 5 एससीसी 470 और टेरी ओट्स एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम यू.टी. चंडीगढ़ एवं अन्य (2004) 2 एससीसी 130** के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का हवाला देते हुए यह तर्क दिया गया है कि संविदात्मक दायित्वों से उत्पन्न राज्य या राज्य के किसी संस्थान के विरुद्ध रिट याचिका भी पोषणीय है।

विवादक संख्या 2:

33. याचिकाकर्ता को दिनांक 11.06.2008 को जारी किए गए आवंटन पत्र में यह स्पष्ट रूप से लिखा था कि आवंटन पत्र जारी होने के 90 दिनों के भीतर 20% प्रीमियम का भुगतान करने पर 90 वर्षों के लिए पट्टा विलेख निष्पादित किया जाएगा। इसमें यह भी कहा गया था कि पट्टा विलेख के निष्पादन की तिथि को भूमि का वास्तविक कब्जा सौंपने की तिथि माना जाएगा। छः आवंटन पत्रों के आधार पर याचिकाकर्ता ने 20% प्रीमियम का भुगतान किया और इसके परिणामस्वरूप 32 (बत्तीस) पट्टा विलेख निष्पादित किए गए। गौरतलब है कि पट्टा विलेख के पैराग्राफ 2 में आवंटन पत्र का उल्लेख है और इसके बाद पैराग्राफ 3 में कहा गया है कि पट्टा "इस दस्तावेज़ में निहित नियमों और शर्तों के अनुसार" दिया जा रहा है। इस प्रकार, यह स्पष्ट हो गया कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी के बीच हुए लेन-देन से संबंधित सभी शर्तें पट्टा विलेख में स्पष्ट रूप से लिखी गई थीं। आवंटन पत्र के खंड 3.1, 3.6 से 3.8, 3.9 और 11 को पट्टा विलेख के खंड 3, 15 और 16 में शामिल किया गया है। आवंटन पत्र में कई खंड हैं जो पट्टा विलेख में लगभग हूबहू दोहराए गए हैं। यदि प्रतिवादी द्वारा दी गई व्याख्या सही है, अर्थात् आवंटन पत्र और पट्टा विलेख को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद भी आवंटन पत्र के सभी खंड मान्य हैं, तो पट्टा विलेख में आवंटन पत्र के खंडों को दोहराने का कोई उद्देश्य नहीं था। इसके अतिरिक्त, आवंटन पत्र के कई खंडों को पट्टा विलेख में काफी हद तक बदल दिया गया है। यह फिर से इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद आवंटन पत्र की शर्तें अब लागू नहीं रह गई थीं। यदि ऐसा नहीं होता, तो पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद यह स्पष्ट नहीं होता कि दोनों अलग-अलग खंडों में से कौन सा लागू होगा। इसके अतिरिक्त, आवंटन पत्र में उपलब्ध कुछ खंडों को पूरी तरह से हटा दिया गया था, या पट्टे के विलेख में हटाकर उनकी जगह दूसरे खंड शामिल कर दिए गए थे। इसका एक उदाहरण आवंटन पत्र में उल्लिखित खंड 4.2 है, जो रद्द करने का प्रावधान करता है। यह खंड पट्टे के विलेख में स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है और इसके स्थान पर खंड 38 है, जो भू-राजस्व बकाया के रूप में देय राशि की वसूली का प्रावधान करता है। यदि आवंटन पत्र और पट्टा विलेख दोनों एक साथ उपलब्ध होते, तो यह तय करना पूरी तरह से भ्रमित करने वाला होता कि कौन सा खंड मान्य होगा। साथ ही, आवंटन पत्र के कुछ खंडों को पट्टा विलेख से हटाने का कोई कारण भी स्पष्ट नहीं है।

34. प्रतिवादी का यह प्रस्तुति कि आवंटन पत्र पट्टा विलेख के साथ संलग्न होने के कारण पट्टा विलेख का हिस्सा बन जाता है, त्रुटिपूर्ण है। आवंटन पत्र मात्र घटनाओं के कालक्रम को दर्शाने के लिए संलग्न किया गया है, क्योंकि पट्टा विलेख के खंड 2 में इसका उल्लेख है और आवंटन पत्र के कुछ खंड पट्टा विलेख में संदर्भ के रूप में शामिल किए गए हैं। यह तर्क दिया जाता है कि पट्टा विलेख निष्पादित होने के बाद, जिन भूमि भूखंडों के लिए पट्टा विलेख निष्पादित किए गए हैं, उनके लिए आवंटन पत्र अप्रभावी हो जाता है, क्योंकि पट्टा विलेख, जो पक्षकारों के बीच मूल संविदा है, द्वारा आवंटन पत्र को प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। आवंटन पत्र बाद में निष्पादित पट्टा विलेखों द्वारा निरस्त कर दिए गए हैं और ये पट्टा विलेख ही याचिकाकर्ता को भूमि पर अधिकार प्रदान करते हैं और आवंटन पत्र पर प्रभावी होते हैं, सिवाय उस सीमा तक जो पट्टा विलेखों द्वारा स्पष्ट रूप से संरक्षित है। इसलिए, एकमात्र वैध उपाय भूमि राजस्व के बकाया की वसूली के लिए पट्टा विलेख के खंड 38 को लागू करना होता और आवंटन को रद्द करने का कोई कारण नहीं था, जो वैसे भी पट्टा विलेखों की शर्तों द्वारा निरस्त कर दिया गया था। पट्टा विलेख पक्षकारों के बीच अंतिम अनुबंध होने के नाते याचिकाकर्ता को पट्टा विलेखों के अंतर्गत आने वाली भूमि का स्वामित्व प्रदान करते हैं, इसलिए उक्त पट्टा विलेखों को रद्द/समाप्त करने की कोई भी शक्ति उक्त पट्टा विलेख में स्पष्ट रूप से प्रदान की जानी आवश्यक थी। चूंकि वाईईए को भलीभांति पता है कि पट्टा विलेख में इसे रद्द करने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए उसने पट्टा विलेखों को रद्द करने के बजाय भूमि के आवंटन को रद्द करने का सहारा लिया है, जो स्पष्ट रूप से गलत है। इस संबंध में एच.आर. बसवराज एवं अन्य बनाम कैनरा बैंक एवं अन्य: (2010) 12 एससीसी 458 और आंध्र प्रदेश औद्योगिक अवसंरचना निगम लिमिटेड: एआईआर 2018 एससी 1981 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया था।

विवादक संख्या 3:

35. जैसा कि ऊपर विवादक संख्या 2 में बताया गया है, पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद आवंटन पत्र का कोई महत्व नहीं रह गया, क्योंकि पट्टा विलेख द्वारा इसे निरस्त कर दिया गया था। अतः, निरस्त किए गए आवंटन पत्र को रद्द करने का कोई अर्थ नहीं है। इसका पट्टा विलेख को रद्द करने जैसा प्रभाव नहीं है, जो एक बाद का, पूरी तरह से स्वतंत्र और अलग अभिलेख है और जिसने पहले ही आवंटन पत्र को निरस्त कर दिया है।

विवादक संख्या 4:

36. पिछली रिट याचिका में चुनौती मुख्य रूप से इस आधार पर दी गई थी कि भूमि का आनुपातिक रूप से रद्द करना भी उचित नहीं था, क्योंकि भुगतान में डिफॉल्ट स्वयं वाईईए की विभिन्न कार्रवाइयों, जैसे कि भवन योजनाओं को स्वीकृति न देना आदि के कारण हुई थी। हालांकि, आक्षेपित रद्दीकरण आदेश के माध्यम से, वाईईए ने मनमाने ढंग से भूमि का संपूर्ण आवंटन रद्द कर दिया है। आनुपातिक रद्द करने को चुनौती देने के संबंध में पिछली रिट याचिका निष्प्रभावी है और याचिकाकर्ता इसे वापस ले सकता है और यदि वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाती है तो योजनाओं की स्वीकृति आदि से संबंधित अन्य प्रार्थनाओं के लिए न्यायालय में जाने के लिए स्वतंत्र है।

विवादक संख्या 5:

37. पट्टा विलेखों ने याचिकाकर्ता को तीसरे पक्ष के अधिकार सृजित करने का असीमित अधिकार दिया था, जिसमें पट्टादाता अर्थात प्रतिवादी संख्या 2 की अनुमति के बिना उप-पट्टा देने की शक्ति (पट्टा विलेख का खंड 5), बैंकों/वित्तीय संस्थानों/ऋणदाताओं के पक्ष में गिरवी रखने की अनुमति (पट्टा विलेख का खंड 14) आदि शामिल हैं। इसमें भूमि का विकास करने की शक्ति भी दी गई है (पट्टा विलेख का खंड 4), और वास्तव में, याचिकाकर्ता ने फॉर्मूला वन रेसट्रैक (बुद्ध इंटरनेशनल सर्किट) के निर्माण सहित संपूर्ण एसडीजेड भूमि के विकास में 2,500 करोड़ रुपये से अधिक की भारी राशि खर्च की है। इसके अतिरिक्त, रद्दीकरण आदेश की तिथि के आसपास, याचिकाकर्ता ने भूमि प्रीमियम के रूप में 1659.25 करोड़ रुपये के आवंटन राशि के मुकाबले 2294.49 करोड़ रुपये (ब्याज सहित) और पट्टे के किराए के रूप में 264.42 करोड़ रुपये (ब्याज सहित) के मुकाबले 195.73 करोड़ रुपये (ब्याज सहित) का भुगतान किया था। अतः, अधिकांश भुगतान पहले ही किए जा चुके थे और बकाया भूमि प्रीमियम ब्याज सहित मात्र 547.77 करोड़ रुपये था तथा पट्टा किराया ब्याज सहित मात्र 68.69 करोड़ रुपये था। इसके अतिरिक्त, इस मामले में डिफॉल्ट स्पष्ट रूप से जानबूझकर या बेईमानी से नहीं की गई थी और विभिन्न चरणों में, रद्द करने के समय डिफॉल्ट कुल देय राशि का 9% से 25% के बीच थी। महत्वपूर्ण बात यह है कि याचिकाकर्ता के अनुसार, रद्द करने की तिथि पर, उस तिथि तक देय कुल राशि का 91% याचिकाकर्ता द्वारा पहले ही भुगतान किया जा चुका था और मात्र 9% की डिफॉल्ट थी।

38. उस समय संपूर्ण आवंटन रद्द करना सरासर अनुचित था। 2017 में, वाईईए की 61वीं बोर्ड बैठक दिनांक 04.09.2017 को, बकाया राशि के अनुपात में भूमि वापस लेने का निर्णय लिया गया था। यह वास्तव में पट्टा विलेख के खंड 38 के अतिरिक्त था, जिसमें भूमि राजस्व के बकाया के रूप में बकाया राशि की वसूली का प्रावधान था। हालांकि, 12.02.2020 को मात्र आनुपातिक भूमि रद्द करने के बजाय, वाईईए द्वारा 1000 हेक्टेयर का संपूर्ण आवंटन रद्द कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने इस माननीय न्यायालय के अंतरिम आदेशों दिनांक 25.02.2020, 08.02.2021 और 29.09.2022 के अनुपालन में मूलधन के रूप में 200 करोड़ रुपये से अधिक जमा करके अपनी सत्यनिष्ठा प्रदर्शित की है। याचिकाकर्ता टेरी ओट्स (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर, विशेष रूप से पैराग्राफ 42 से 46 और 49 पर निर्भर करता है।

39. यह निवेदन किया जाता है कि यद्यपि अधिनियम 1976 की धारा 14 में निरस्त करने की वैधानिक शक्ति निहित है, फिर भी प्रतिवादी की कार्यवाही की तर्कसंगतता और आनुपातिकता न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन है। सर्वोच्च न्यायालय ने टेरी ओट्स (उपरोक्त) मामले में भी यही बात कही है। आनुपातिकता के सिद्धांत का उल्लेख आंध्र प्रदेश औद्योगिक अवसंरचना निगम (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में भी किया गया है।

40. यह रद्दकरण न केवल याचिकाकर्ता को प्रभावित करता है, बल्कि गृह खरीदारों और ऋणदाताओं (बैंकों) जैसे विभिन्न तृतीय पक्षकारों को भी प्रभावित करता है। पट्टा विलेख की खंड 14 के अनुसार प्रतिवादी द्वारा बंधक के लिए पूर्व अनुमति दी गई थी। यह रद्दकरण, पट्टा विलेख के विपरीत होने के अतिरिक्त, बैंकों को

भी प्रभावित करेगा और पूरी तरह से मनमाना और अनुपातहीन है। वाईईए पट्टा विलेख की खंड 38 का सहारा लेकर अपनी बकाया राशि वसूल कर सकता था, जिसके अंतर्गत वे याचिकाकर्ता की उन संपत्तियों को बेच सकते थे जो उनकी बकाया राशि की वसूली के लिए पर्याप्त थीं। इस प्रकार, पट्टे की भूमि का एक छोटा सा हिस्सा रद्द किया जा सकता था, जिसका मूल्य वाईईए को देय राशि के बराबर होता। इसलिए, प्रतिवादी के लिए यह आवश्यक था कि वह अपनी बकाया राशि की पूर्ति के लिए सबसे कम प्रतिबंधात्मक उपाय का चयन करे। इसमें संपत्ति के मात्र उस हिस्से की कुर्की और उसके बाद बिक्री शामिल होती जो बकाया राशि की वसूली के लिए पर्याप्त होती। वर्तमान मामले में, इसका अर्थ आवंटित भूमि के 10% से कम होता। वर्तमान मामले में डिफॉल्ट स्पष्ट रूप से जानबूझकर या बेईमानी से नहीं की गई थी और विभिन्न चरणों में, रद्द किए जाने के समय डिफॉल्ट कुल देय राशि के 9% से 25% के बीच थी। वास्तव में, याचिकाकर्ता के अनुसार, रद्द किए जाने की तिथि तक देय कुल राशि का 91% याचिकाकर्ता द्वारा पहले ही भुगतान किया जा चुका था और मात्र 9% की डिफॉल्ट थी।

विवादक संख्या 6 और 7:

41. वाईईए ने अपने प्रति-शपथपत्र में कभी यह दावा नहीं किया कि निर्माण/विकास में डिफॉल्ट के कारण संविदा रद्द किया गया था। वाईईए के प्रति-शपथपत्र के पैरा 97-99 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविदा रद्द करना भुगतान में डिफॉल्ट और 100 करोड़ रुपये की प्रदर्शन सुरक्षा राशि कथित रूप से न देने के कारण था, न कि निर्माण में किसी कथित डिफॉल्ट के कारण। रद्द करने का पत्र स्वयं यह स्पष्ट करता है कि संविदा रद्द करना कुछ बकाया राशि का भुगतान न होने के कारण है। रद्दीकरण आदेश के मुख्य भाग को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। रद्द करने के पत्र में कुछ विकास कार्यों में कमी का उल्लेख मात्र डिफॉल्ट और संविदा रद्द करने से संबंधित तथ्यों को दोहराने के लिए है, न कि उन्हें संविदा रद्द करने का आधार बताने के लिए। इसके अतिरिक्त, यदि उक्त आधार पर संविदा रद्द किया जाता है, तो वह अवैध होगा।

विवादक संख्या 8:

42. माननीय न्यायालय के प्रश्न के उत्तर में प्रतिवादियों ने कहा कि वे गृह खरीदारों को प्रत्यक्ष उप-पट्टाधारक मानकर और उन्हें उप-पट्टाधारक के रूप में बनाए रखकर उनके हितों की रक्षा करेंगे। प्रतिवादियों ने यह मान लिया है कि पट्टा रद्द होने के बावजूद उप-पट्टे वैध रहेंगे और उप-पट्टाधारक वाईईए के प्रत्यक्ष उप-पट्टाधारक बन जाएंगे। प्रतिवादियों का यह तर्क/समझ त्रुटिपूर्ण है। वाईईए और गृह खरीदारों/उप-पट्टाधारकों के बीच कोई संविदा संबंध नहीं है। पट्टा समाप्त होने के बाद उप-पट्टे के बने रहने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अतः, वाईईए द्वारा दिए गए पूरक प्रति-शपथपत्र दिनांक 26.7.2024 में उल्लिखित उत्तर विधिक रूप से त्रुटिपूर्ण है।

43. याचिकाकर्ता की ओर से निम्नलिखित संदर्भों पर भरोसा किया गया:-

- (i) आंध्र प्रदेश औद्योगिक अवसंरचना निगम एवं अन्य बनाम एस.एन. राज कुमार एवं अन्य: (2018) 6 एससीसी 410;
- (ii) टेरी ओट्स (पी) लिमिटेड बनाम यू.टी., चंडीगढ़ एवं अन्य: (2004) 2 एससीसी 130;

- (iii) भारती सेल्युलर लिमिटेड बनाम भारत संघ और अन्य: (2010) 10 एससीसी 174;
- (iv) एम. शाम बनाम मैसूर राज्य: (1973) 2 एससीसी 303;
- (v) राजस्थान राज्य एवं अन्य बनाम फेरो कंक्रीट कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड: (2009) 12 एससीसी 1;
- (vi) एच.आर. बसवराज बनाम केनरा बैंक: (2010) 12 एससीसी 458;
- (vii) अहमदाबाद शहरी विकास प्राधिकरण बनाम शरद कुमार जयंती कुमार पसावाला एवं अन्य: (1992) 3 एससीसी 285;
- (viii) उपभोक्ता ऑनलाइन फाउंडेशन एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य: (2011) 5 एससीसी 360;
- (ix) स्टाइल (ट्रेस लैंड) बनाम केंद्र शासित प्रदेश, चंडीगढ़: (1999) 7 एससीसी 89;
- (x) इंडियन एक्सप्लोसिव्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम कोल इंडिया लिमिटेड एवं अन्य: (2019) 16 एससीसी 258;
- (xi) वर्चुअल सॉफ्ट सिस्टम्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, दिल्ली: (2007) 9 एससीसी 490;
- (xii) झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम अंबाय सीमेंट एवं अन्य: (2005) 1 एससीसी 368;
- (xiii) मध्य प्रदेश राज्य बनाम ठाकुर भरत सिंह: (1697) 2 एससीआर 454;
- (xiv) क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम मसूद अहमद खान एवं अन्य: (2010) 9 एससीसी 496; और
- (xv) अहमद उल्लाह बनाम भारत संघ एवं अन्य: 2019 एससीसी ऑनलाइन ऑल 5904.

वाईईए (प्रतिवादी संख्या 2) की ओर से उठाए गए तर्क:

44. प्रतिवादी संख्या 2-वाईईए की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने प्रस्तुति दी कि वर्तमान रिट याचिका पोषणीय नहीं है। उठाया गया विवाद विशुद्ध रूप से संविदात्मक है, और याचिकाकर्ता अनुबंधों (आवंटन पत्र और पट्टा विलेख) की शर्तों, उनकी व्याख्या और प्रवर्तन से उत्पन्न अनुतोषों की मांग कर रहा है। सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार यह माना है कि अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा संविदात्मक विवादों में सीमित है। संविदात्मक कार्यों पर निष्पक्षता, समानता और आनुपातिकता के आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है यदि यह सिद्ध किया जा सके कि प्राधिकरण की कार्यवाही संविदा के अनुसार थी, जैसा कि वर्तमान मामले में है, जिसमें प्राधिकरण ने आवंटन पत्र के खंड 4.2 के अंतर्गत याचिकाकर्ता के आवंटन और पट्टा विलेख को समाप्त कर दिया। वाणिज्यिक लेन-देन में, पक्षकारों के अधिकार और दायित्व संविदा द्वारा निर्धारित होते हैं, और न्यायालयों को विशुद्ध रूप से संविदात्मक विवादों पर निर्णय देने से बचना चाहिए। याचिकाकर्ता संविदा में निर्धारित शर्तों के पालन में व्यावसायिक कठिनाई, असुविधा या परेशानी के आधार पर ही भुगतान के लिए समय बढ़ाने और बकाया राशि के पुनर्निर्धारण की मांग कर रहा था। रिट न्यायालय पक्षकारों के बीच हुए समझौते में शामिल शर्तों और नियमों के आधार पर किसी भी प्रकार की अनुतोष मांगने का मंच नहीं हो सकता (रे: राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास और निवेश निगम एवं अन्य बनाम डायमंड एंड जेम डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य: (2013) 5 एससीसी 470)।

45. जोशी टेक्नोलॉजीज इंटरनेशनल इंक. बनाम भारत संघ: (2015) 7 एससीसी 728 मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को इस आधार पर रद्द कर दिया कि उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए था, क्योंकि मामला विशुद्ध रूप से संविदा से संबंधित था। सर्वोच्च न्यायालय ने उन परिस्थितियों को निर्धारित किया जिनमें उच्च न्यायालय सामान्यतः अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने विवेक का प्रयोग नहीं करेगा। याचिकाकर्ता आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों की महत्वपूर्ण शर्तों का लगातार और जानबूझकर उल्लंघन कर रहा था, और निरस्तीकरण आदेश पारित करने में प्राधिकरण की ओर से कोई मनमानी या प्रक्रिया में डिफॉल्ट नहीं थी। याचिकाकर्ता आवंटन के लिए भुगतान करने में विफल रहा है और इसलिए, वर्तमान रिट याचिका दायर करने का पात्र नहीं है। याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तथ्यों के कई प्रश्न हैं जिनका निर्णय इस माननीय न्यायालय के समक्ष उसकी रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत नहीं किया जा सकता है। बिहार राज्य बनाम जैन प्लास्टिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड: (2002) 1 एससीसी 216 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि विवादित तथ्यों के प्रश्नों का निर्धारण रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में नहीं किया जा सकता है।

विषय: समानुपातिकता की अवधारणा

46. प्रारंभ में, प्राधिकरण यह प्रस्तुत करता है कि 'आनुपातिकता', अपने सभी पहलुओं में, वर्तमान मामले में लागू नहीं होती, क्योंकि यह याचिकाकर्ता और प्राधिकरण के बीच वाणिज्यिक और संविदात्मक संबंध से उत्पन्न हुआ है। संविदात्मक कार्यों पर निष्पक्षता और आनुपातिकता के आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता यदि यह सिद्ध हो जाए कि प्राधिकरण की कार्रवाई संविदा के अनुसार थी, जैसा कि वर्तमान मामले में है, जिसमें प्राधिकरण ने आवंटन पत्रों के खंड 4.2 के अनुसार याचिकाकर्ता के आवंटन और पट्टा विलेखों को समाप्त कर दिया। प्राधिकरण के पास याचिकाकर्ता की डिफॉल्ट पर आवंटन और पट्टा विलेखों को रद्द करने का अधिकार था। याचिकाकर्ता ने डिफॉल्ट की, जिसे वह अस्वीकार नहीं करता है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता आवास परियोजनाओं सहित एसडीजेड परियोजना को विकसित करने और प्रदर्शन बैंक गारंटी को बनाए रखने में विफल रहा। इस प्रकार, रद्द करने के वैध आधार थे और प्राधिकरण ने अपने संविदात्मक अधिकारों का वैध रूप से प्रयोग करते हुए आवंटन और पट्टा विलेखों को समाप्त कर दिया।

47. मुख्य प्रस्तुति यह है कि आनुपातिकता का सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू नहीं होता। याचिकाकर्ता की लगातार और निरंतर डिफॉल्ट, आवास परियोजनाओं सहित एसडीजेड परियोजना के विकास में विफलता, घर खरीदारों को हुए हानि और जनहित को हुए हानि को देखते हुए वाईईए को रद्दीकरण आदेश पारित करने के लिए विवश होना पड़ा। प्राधिकरण ने समय-समय पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध न्यूनतम प्रतिबंधात्मक उपाय किए थे। इन उपायों और अवसरों के बावजूद, याचिकाकर्ता अपने वित्तीय और विकासात्मक दायित्वों को पूरा करने में लगातार डिफॉल्ट करता रहा। प्राधिकरण ने जनहित में और अंतिम उपाय के रूप में रद्दीकरण आदेश पारित किया। रद्दीकरण आदेश का एक उचित उद्देश्य था और यह उस लक्ष्य से तार्किक रूप से जुड़ा हुआ था जिसे प्राप्त करना चाहता था। रद्दीकरण आदेश का प्राथमिक उद्देश्य जनहित की रक्षा करना और एसडीजेड परियोजना के विकास के लिए आवश्यक संविदात्मक अखंडता को बनाए रखना था। एक दशक से अधिक समय

से याचिकाकर्ता की लगातार डिफॉल्ट (वित्तीय और अवसंरचनात्मक) उसके दायित्वों के प्रति घोर अवहेलना को दर्शाती है, जिसके कारण घर खरीदारों और प्राधिकरण को गंभीर परिणाम भुगतने पड़े हैं। प्राधिकरण ने रद्द करने का सहारा लेने से पहले याचिकाकर्ता को कई अवसर देकर अत्यधिक संयम बरता। अपनी कमियों को दूर करने और एसडीजेड परियोजना को विकसित करने में विफलता के कारण जनता में असंतोष उत्पन्न हुआ। इस मामले के तथ्यों पर आनुपातिकता का सिद्धांत लागू करने से यह स्पष्ट होता है कि प्राधिकरण की कार्रवाई आनुपातिक, आवश्यक और वैध जनहित को ध्यान में रखकर की गई थी। इसलिए, याचिकाकर्ता के अत्यधिकता और कठोरता के दावों को निराधार मानते हुए खारिज कर दिया जाना चाहिए।

48. श्री गोयल ने पुरजोर ढंग से रिट याचिका के पैरा 79 का हवाला दिया, जिसमें याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित दावा किया है:

"79. चूंकि यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादी संख्या 2 के पास भूमि के संपूर्ण आवंटन को रद्द करने का कोई अवसर नहीं था, जबकि यह स्वीकार किया जाता है कि आनुपातिकता के सिद्धांत को लागू करके पट्टे पर दी गई भूमि के आवश्यक भाग पर खंड 38 को लागू किया जा सकता था, इसलिए आक्षेपित आदेश भी आनुपातिकता के सुस्थापित सिद्धांत का उल्लंघन है।"

49. अपने प्रतिउत्तर शपथपत्र में भी याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित समान दावा उठाया है:

"जेएल द्वारा जमा की गई सभी धनराशि को इस तरह से विनियोजित करना वाईईए के अधिकार क्षेत्र में था कि कुछ पट्टा विलेखों के लिए सभी बकाया राशि का भुगतान हो जाए और वाईईए मात्र शेष पट्टा विलेखों को ही समाप्त कर सके।"

50. याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसने अनुबंधों की शर्तों का पालन करने में डिफॉल्ट की है। याचिकाकर्ता ने भुगतान की देयता पर भी कोई विवाद नहीं किया है। याचिकाकर्ता का एकमात्र तर्क यह है कि प्रतिवादी को संपूर्ण आवंटन रद्द नहीं करना चाहिए था, बल्कि मात्र आनुपातिक भूमि ही वापस लेनी चाहिए थी। याचिकाकर्ता ने यह तर्क अपने नापाक इरादों को पूरा करने और लाभकारी भूमि का उपयोग बिना भुगतान किए करने के लिए उठाया है। याचिकाकर्ता दोहरी चाल चल रहा है। प्राधिकरण ने 4 सितंबर 2017 को अपनी 61^{वीं} बोर्ड बैठक में आनुपातिक भूमि वापस लेने का निर्णय लिया था। इसकी सूचना याचिकाकर्ता को भी दी गई थी। याचिकाकर्ता ने संबंधित रिट याचिका संख्या 47262/2017 में इस माननीय न्यायालय के समक्ष उक्त निर्णय को चुनौती दी, जिसमें यह विशिष्ट आधार उठाया गया कि प्राधिकरण का उक्त निर्णय आवंटन पत्र, आरक्षण पत्र और पट्टा विलेखों की शर्तों और नियमों को रद्द नहीं कर सकता और प्राधिकरण को पट्टा विलेखों के अंतर्गत याचिकाकर्ता की भूमि वापस लेने का कोई अधिकार नहीं है। याचिकाकर्ता ने 3 नवंबर 2017 के पत्र द्वारा आनुपातिक भूमि वापस लेने का भी विरोध किया है। इस पृष्ठभूमि और परिस्थितियों में, प्राधिकरण की 62^{वीं} बोर्ड बैठक में बकाया राशि की पुनर्निर्धारण योजना को स्वीकृति दी गई और 28 मई 2018 को याचिकाकर्ता को सूचित किया गया। हालांकि, याचिकाकर्ता पुनर्निर्धारण पत्र की पहली और दूसरी किस्त का भुगतान करने में भी विफल रहा।

यह स्पष्ट है कि संबंधित रिट याचिका संख्या 47262/2017 में आनुपातिक भूमि को वापस लेने के निर्णय को चुनौती देने के बाद, याचिकाकर्ता वर्तमान रिट याचिका में विपरीत प्रस्तुति दे रहा है।

51. प्राधिकरण उन निर्णयों पर भी भरोसा करता है जिनमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि पक्षकार 'अपना रुख बदलकर काम नहीं कर सकते' क्योंकि यह विधि का घोर दुरुपयोग है, देखें- **उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड एवं अन्य बनाम अदानी पावर (मुंद्रा) लिमिटेड एवं अन्य: 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 461, शिवली एंटरप्राइजेज बनाम गोदावरी (मृतक) के विधिक वारिसों एवं अन्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1211, एल्कोन इलेक्ट्रॉनिक्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम सेलेम एस.ए. ऑफ एफओएस 34320 रुजान, फ्रांस एवं अन्य: (2017) 2 एससीसी 253।** इसके अतिरिक्त, पक्षकारों के बीच संविदा नियोजित विकास के उद्देश्य से संपूर्ण भूमि के लिए था। इसलिए, याचिकाकर्ता को भूमि के संपूर्ण हिस्से के लिए भुगतान करने के अपने दायित्व से बचने की अनुमति नहीं दी जा सकती। प्राधिकरण का कहना है कि यमुना एक्सप्रेसवे का विकास एक एकीकृत और समयबद्ध परियोजना है [**नंद किशोर गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 10 एससीसी 282।** प्रारंभ में, यमुना एक्सप्रेसवे के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया था और बाद में एक्सप्रेसवे के किनारे विशेष विकास क्षेत्र और टाउनशिप के रूप में नामित भूमि पार्सल बनाने के लिए भी भूमि का अधिग्रहण किया गया। एक्सप्रेसवे के अधिकतम उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए इन भूमि पार्सलों की रणनीतिक रूप से योजना बनाई गई थी। एक्सप्रेसवे परियोजना और आसपास के भूमि पार्सलों का विकास एक एकीकृत योजना के परस्पर निर्भर घटक हैं।

52. याचिकाकर्ता द्वारा **टेरी ओट्स बनाम चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश (2004) 2 एससीसी 130 ("टेरी ओट्स")** के निर्णय पर भरोसा करना गलत बताया गया, क्योंकि दोनों मामलों में कई विशिष्ट अंतर थे। यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा निष्पक्षता और आनुपातिकता के विवादक उठाने का प्रयास निराधार है, क्योंकि प्राधिकरण की कार्रवाई आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों की शर्तों के अनुसार थी। याचिकाकर्ता की डिफॉल्ट आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों के अंतर्गत संविदात्मक दायित्वों से उत्पन्न होती है, और इसमें कोई मनमानी नहीं है जिसके लिए अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस माननीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। प्राधिकरण ने संविदा के अंतर्गत अपने अधिकारों के भीतर कार्य किया और रद्दीकरण आदेश जारी करने में उचित प्रक्रिया का पालन किया। याचिकाकर्ता का तर्क है कि जब पर्याप्त विकास कार्य पहले ही हो चुके हैं, तो प्रतिवादी संपूर्ण आवंटन रद्द नहीं कर सकते थे, और डिफॉल्ट राशि के एक हिस्से से संबंधित है, लेकिन संपूर्ण आवंटन रद्द कर दिया गया है, जो मनमाना है और मात्र संबंधित भूमि के संबंध में आनुपातिक रद्दीकरण ही सर्वोत्तम हो सकता था। इस संबंध में श्री गोयल का प्रस्तुति है कि प्राधिकरण के बोर्ड ने अपनी 70वीं बोर्ड बैठक में एक प्रस्ताव (70/39) पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता के आवंटन और पट्टा विलेखों को आवंटित परियोजना की प्रचलित दरों के 10% की दर से बहाली शुल्क ("बहाली शुल्क") के भुगतान के अधीन बहाल करने का निर्णय लिया गया। प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को बोर्ड के उक्त निर्णय के बारे में सूचित किया और तदनुसार, प्राधिकरण को आवंटन बहाल करने के लिए आगे की कार्रवाई करने में सक्षम बनाने हेतु याचिकाकर्ता को बहाली शुल्क जमा करने का निर्देश दिया। याचिकाकर्ता ने बहाली शुल्क लगाए जाने को चुनौती देते हुए रिट याचिका संख्या

17785/2021 दायर की। उक्त रिट याचिका को उच्च न्यायालय द्वारा 17.08.2021 को "वापस लिए जाने के कारण निरस्त" कर दिया गया था, और याचिकाकर्ता को बहाली शुल्क के विरुद्ध अनुतोष के लिए वर्तमान रिट याचिका में संशोधन करने की स्वतंत्रता दी गई थी।

53. याचिकाकर्ता आवंटन रद्द करने के प्राधिकरण के निर्णय में किसी भी सार्वजनिक विधि तत्व या मनमानी को साबित करने में विफल रहा है। याचिकाकर्ता का यह तर्क कि रद्दीकरण आदेश ने मात्र आवंटन पत्रों को समाप्त किया है और इसका पट्टा रद्द करने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, भ्रामक है और तथ्यों या विधि में इसका कोई आधार नहीं है। आवंटन पत्र पट्टा विलेखों के साथ-साथ अस्तित्व में बने रहे। आवंटन पत्र मुख्य अनुबंध थे और पट्टा विलेख सहायक थे तथा आवंटन पत्रों के कार्यान्वयन के लिए थे। यह आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों की शर्तों के साथ-साथ पक्षकारों के बीच पत्राचार से भी स्पष्ट है, जो स्पष्ट रूप से इस आम सहमति को दर्शाते हैं कि आवंटन पत्र पट्टा विलेखों के साथ-साथ अस्तित्व में हैं। भुगतान में डिफॉल्ट की स्थिति में, आवंटन पत्रों के खंड 4.2 को लागू किया जाना था। प्राधिकरण के पास अधिनियम 1976 की धारा 14 के अंतर्गत शर्तों के उल्लंघन पर आवंटन और पट्टा विलेखों को रद्द करने का वैधानिक अधिकार भी था। आवंटन पत्र और पट्टा विलेख एक ही उद्देश्य के लिए निष्पादित किए गए थे और वे एक साथ ही मान्य होते हैं। पट्टा विलेख आवंटन का अभिन्न अंग हैं और इनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। पट्टा विलेख आवंटन पत्रों के उद्देश्यों को लागू करने और उन्हें पूरा करने के लिए निष्पादित किए गए थे। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टा विलेख आवंटन पत्रों के साथ ही समाप्त हो जाते हैं और आवंटन रद्द होने के बाद इनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।

54. यह सर्वमान्य विधि है कि संविदा के पक्षकार अपने व्यवहार के आधार पर उसकी शर्तों की एक विशेष व्याख्या करते हैं और वे उस व्याख्या से बाध्य होते हैं। इसके अतिरिक्त, संविदा की व्याख्या करते समय पक्षकारों के बीच हुए पत्राचार को भी ध्यान में रखा जा सकता है। **ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन ऑफ आंध्र प्रदेश लिमिटेड बनाम जीएमआर वेमागिरी पावर जनरेशन लिमिटेड (2018): 3 एससीसी 716** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "संविदा की शर्तों की व्याख्या करते समय सभी संबंधित तथ्यों और परिस्थितियों, जिनमें पत्राचार भी शामिल है, को ध्यान में रखना होगा ताकि पक्षकारों के वास्तविक आशय का पता चल सके, न कि उस बात को जो किसी एक पक्षकार ने बाद में अपना आशय बताया हो या जिसे बाद में शामिल किया गया हो।"

55. आवंटन पत्र और पट्टा विलेख सह-अस्तित्व में रहने और पक्षकारों के दायित्वों को एक साथ नियंत्रित करने के लिए बनाए गए थे। पट्टा विलेख में आवंटन पत्रों का स्पष्ट रूप से उल्लेख है, जिन्हें अभिन्न अनुसूचियों के रूप में संलग्न किया गया था और उन्हें निरस्त नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता का स्वयं का आचरण इस समझ की पुष्टि करता है, क्योंकि पट्टा विलेख निष्पादित होने के बाद भी उसने भुगतान अनुसूची और विस्तार जैसी महत्वपूर्ण शर्तों के लिए आवंटन पत्रों पर भरोसा करना जारी रखा। इस प्रकार, याचिकाकर्ता का यह दावा कि पट्टा विलेख आवंटन पत्रों को निरस्त करते हैं, तथ्यात्मक रूप से गलत और विधिक रूप से निराधार है।

याचिकाकर्ता का यह तर्क कि डिफॉल्ट राशि मात्र पट्टा विलेख के खंड 38 के अनुसार भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जा सकती है और इसलिए, आवंटन पत्रों का खंड 4.2 निरर्थक हो जाता है, समग्र लेनदेन की त्रुटिपूर्ण समझ है। पट्टा विलेख में उल्लिखित खंड आवंटन पत्रों का स्थान नहीं लेता, क्योंकि आवंटन पत्रों को पट्टा विलेखों के निष्पादन द्वारा किसी भी स्तर पर निरस्त नहीं किया गया था। यह खंड आवंटन पत्रों के पहले से उपलब्ध खंड 4.2 के अतिरिक्त था। आवंटन पत्रों का खंड 4.2 स्पष्ट रूप से प्राधिकरण को याचिकाकर्ता द्वारा की गई डिफॉल्ट के जवाब में आवंटन और पट्टा विलेख दोनों को रद्द करने का संविदात्मक अधिकार प्रदान करता है। इसलिए, यह निवेदन किया जाता है कि प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता की स्वीकृत डिफॉल्टों के कारण याचिकाकर्ता के आवंटन (पट्टा विलेख सहित) को समाप्त करने में अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर कार्य किया।

56. निम्नलिखित प्राधिकारियों पर भरोसा किया गया है:-

- (i) ग्रामीण विकास आयुक्त एवं अन्य बनाम ए.एस. जगन्नाथन: (1999) 2 एससीसी 313;
- (ii) सुपर पॉली फैब्रिक्स लिमिटेड बनाम कमिशनर ऑफ सेंट्रल एक्साइज, पंजाब: (2008) 11 एससीसी 398;
- (iii) उड़ीसा पावर ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम एशियन स्कूल ऑफ बिजनेस मैनेजमेंट ट्रस्ट एवं अन्य: (2013) 8 एससीसी 738;
- (iv) फॉरवर्ड कंस्ट्रक्शंस कंपनी एवं अन्य बनाम प्रभात मंडल (पंजीकृत), अंधेरी एवं अन्य: (1986) 1 एससीसी 100;
- (v) प्रत्यक्ष भर्ती श्रेणी द्वितीय इंजीनियरिंग अधिकारी संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य: (1990) 2 एससीसी 715; और
- (vi) शिव चंद्र मोरे एवं अन्य बनाम लेफ्टिनेंट गवर्नर एवं अन्य: (2014) 11 एससीसी 744.
- (vii) मैक्स बनाम व्हाइटली: (1912) 1 अध्याय 735;
- (viii) इन्फ्रास्ट्रक्चर लीजिंग एंड फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम एचडीएफसी बैंक लिमिटेड एवं अन्य: 2023 एससीसी ऑनलाइन 1371;
- (ix) एमटीएनएल बनाम केनरा बैंक एवं अन्य: (2020) 12 एससीसी 767;
- (x) कॉक्स एंड किंग्स लिमिटेड बनाम सैप इंडिया (पी) लिमिटेड: (2024) 4 एससीसी 1;
- (xi) इनोवेटिव इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आईसीआईसीआई बैंक एवं अन्य: (2018) 1 एससीसी 407; और
- (xii) दिलीप बी. जीवराजका बनाम भारत संघ एवं अन्य: (2024) 5 एस435.

57. मैक्स बनाम व्हाइटली (उपरोक्त) के निर्णय पर भरोसा करते हुए यह तर्क दिया गया कि जहां कई विलेख एक ही लेनदेन का हिस्सा हैं और समकालीन रूप से निष्पादित किए गए हैं, तो मामले से संबंधित सभी उद्देश्यों के लिए उनका वही प्रभाव होता है मानो वे एक ही विलेख हों। यह तर्क दिया गया कि वर्तमान मामले में आवंटन पत्र और पट्टा विलेख को अलग-अलग विलेख या अभिलेख नहीं माना जा सकता है और वे एक ही संपूर्ण लेनदेन का प्रतिनिधित्व करते हैं। मैक्स (उपरोक्त) पर एस. चतनाथ करायलर बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया: (1965) 3 एससीआर 318 में पुनर्विचार किया गया था। एमटीएनएल (उपरोक्त) के निर्णय पर भरोसा

करते हुए, यह तर्क दिया गया कि एक मिश्रित लेनदेन से तात्पर्य ऐसे लेनदेन से है जो प्रकृति में परस्पर जुड़ा हुआ है; या, जहां सामान्य उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पूरक या सहायक समझौते के निष्पादन और निष्पादन की सहायता के बिना समझौते का निष्पादन संभव नहीं है, और जिसका विवाद पर सामूहिक रूप से प्रभाव पड़ता है। यह तर्क दिया गया कि एकाधिक समझौतों से जुड़े मिश्रित लेनदेन के मामले में, न्यायालयों के लिए यह आकलन करना अनिवार्य होगा कि क्या समझौते परिणामी हैं या मूल समझौते के अनुपालन के रूप में हैं।

58. प्रस्तुति यह है कि प्राधिकरण ने अपने संविदात्मक अधिकारों और वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों की शर्तों का लगातार उल्लंघन करने के कारण आवंटन और पट्टा विलेखों को रद्द करने के लिए विवश हुआ। यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता लगातार और निरंतर डिफॉल्टकर्ता है। याचिकाकर्ता ने अपनी डिफॉल्ट स्वीकार की है और यह भी स्वीकार किया है कि वह एसडीजेड परियोजना के लिए निष्पादित आवंटन और पट्टा विलेखों से उत्पन्न बकाया राशि का भुगतान करने में विफल रहा है। प्राधिकरण द्वारा भुगतान के लिए कई बार समय सीमा बढ़ाए जाने के बावजूद, याचिकाकर्ता सहमत भुगतान अनुसूची का पालन करने में विफल रहा। प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता के भुगतान को पुनर्निर्धारित करने के बार-बार अनुरोधों को कई बार स्वीकार किया, फिर भी याचिकाकर्ता आवंटन पत्रों, पट्टा विलेखों और पुनर्निर्धारित भुगतान योजना के अंतर्गत अपने भुगतान दायित्वों का उल्लंघन करता रहा। जैसा कि नीचे विस्तार से बताया गया है, याचिकाकर्ता के अनुरोधों पर उसे विभिन्न रियायतें (न्यूनतम प्रतिबंधात्मक उपाय) प्रदान की गईं, फिर भी याचिकाकर्ता अपने बकाया का भुगतान करने में विफल रहा। याचिकाकर्ता आवासीय परियोजनाओं सहित एसडीजेड परियोजना के विकास कार्य को पूरा करने में भी विफल रहा। याचिकाकर्ता द्वारा विकास दायित्वों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप घर खरीदारों से नियमित शिकायतें प्राप्त हुईं, जिन्हें याचिकाकर्ता की विफलता और धन के दुरुपयोग के कारण हानि उठाना पड़ा। याचिकाकर्ता के दुर्यवहार ने आवंटन और पट्टा विलेखों के मूल उद्देश्य को ही विफल कर दिया, जिससे जनहित, घर खरीदारों और प्राधिकरण को अपूरणीय क्षति हुई। अंततः और अंतिम उपाय के रूप में, प्राधिकरण के पास आवंटन और पट्टा विलेखों को रद्द करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा। याचिकाकर्ता आवंटन के अनुसार भुगतान अनुसूची का पालन करने में लगातार और निरंतर डिफॉल्ट करता रहा। प्राधिकरण द्वारा 21 डिफॉल्ट नोटिस जारी किए गए (13 सितंबर 2011 से 25 अगस्त 2015 तक) जिनमें याचिकाकर्ता से समय-समय पर संशोधित (या विस्तारित) भुगतान अनुसूची के अनुसार भुगतान की मांग की गई थी। याचिकाकर्ता ने 18 फरवरी 2014, 7 अगस्त 2014 और 1 दिसंबर 2014 के पत्रों के माध्यम से तीन अलग-अलग अवसरों पर अपने बकाया भुगतान के लिए समय बढ़ाने का अनुरोध किया। प्राधिकरण ने आवंटन (आवंटन पत्र के खंड 3.6) के अनुसार और न्यूनतम प्रतिबंधात्मक उपाय के रूप में, 21 फरवरी 2014, 13 अगस्त 2014 और 29 दिसंबर 2014 को भुगतान के लिए तीन बार समय बढ़ाया। हालांकि, याचिकाकर्ता विस्तारित समय में भी अपना बकाया भुगतान करने में विफल रहा। याचिकाकर्ता ने 22 अगस्त 2017, 8 मार्च 2018 और 12 अप्रैल 2018 के पत्रों के माध्यम से तीन अलग-अलग अवसरों पर वित्तीय बाधाओं के कारण बकाया भुगतान को पुनर्निर्धारित करने के लिए समय मांगा। अंतिम पुनर्निर्धारण: 28 मई 2018 के पत्र द्वारा (8 मार्च 2018 के अनुरोध के जवाब में), प्राधिकरण ने पुनर्निर्धारण के लिए

सहमति दी। हालांकि, याचिकाकर्ता ने भुगतान नहीं किया, और प्राधिकरण ने 16 अक्टूबर 2018 को एक डिफॉल्ट नोटिस जारी किया। डिफॉल्ट को ठीक करने के बजाय, याचिकाकर्ता ने पुनर्निर्धारण के अंतर्गत भी 19 सितंबर 2018 और 27 अक्टूबर 2018 के पत्रों के माध्यम से भुगतान के लिए विस्तार की मांग जारी रखी। प्राधिकरण ने पुनर्निर्धारित भुगतान योजना की पहली किस्त जमा करने के लिए 31 दिसंबर 2018 तक का विस्तार दिया। 31 दिसंबर 2018 को, याचिकाकर्ता ने मात्र 10 करोड़ रुपये (लगभग 108 करोड़ रुपये की पहली पुनर्निर्धारित किस्त राशि के मुकाबले) जमा किए और 15 फरवरी 2019 तक के लिए और विस्तार का अनुरोध किया। डिफॉल्ट को पूरा करने के लिए प्रदर्शन बैंक गारंटी लागू की गई। 31 अक्टूबर 2019 को, प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को प्रदर्शन बैंक गारंटी बहाल करने का निर्देश दिया क्योंकि पिछली गारंटी बकाया राशि के भुगतान में समायोजित कर दी गई थी। हालांकि, याचिकाकर्ता ऐसा करने में विफल रहा।

एस्करो व्यवस्था:

59. याचिकाकर्ता से बकाया राशि के भुगतान को सुगम बनाने के लिए, दोनों पक्षकारों ने 24 सितंबर 2019 को एक एस्करो अनुबंध किया। एस्करो व्यवस्था यह सुनिश्चित करने का एक तंत्र था कि आवास परियोजना से प्राप्त राशि एस्करो खाते में जमा हो और याचिकाकर्ता से बकाया राशि के भुगतान के लिए उपयोग की जाए। याचिकाकर्ता एक बार फिर अपनी प्रतिबद्धता पूरी करने में विफल रहा और 28 फरवरी 2020 तक एस्करो खाते में मात्र 47.09 लाख रुपये (लगभग) जमा हुए। इन परिस्थितियों में, भारी बकाया राशि जमा हो गई थी, और इसके लिए याचिकाकर्ता पूरी तरह से उत्तरदायी था। प्राधिकरण ने पंजाब और सिंध बैंक को एक पत्र लिखकर बैंक गारंटी लागू की और वसूली गई राशि को बकाया राशि में समायोजित किया। याचिकाकर्ता ने प्राधिकरण से एस्करो समझौते को लागू करने का अनुरोध किया। प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को डिफॉल्ट नोटिस भेजा और उसे पुनर्निर्धारित भुगतान योजना के अंतर्गत देय राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया। एस्करो समझौते के उद्देश्य से, याचिकाकर्ता ने अचल संपत्ति योजनाओं से प्राप्त राशि और प्राप्य राशि का विवरण प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता ने बताया कि उसे 10 आवास परियोजनाओं के गृह खरीदारों से 2433.41 करोड़ रुपये में से 1900.78 करोड़ रुपये प्राप्त हुए हैं। प्राधिकरण ने उसमें उल्लिखित शर्तों के अधीन एस्करो खाता खोलने की स्वीकृति दे दी। याचिकाकर्ता, प्राधिकरण और आईसीआईसीआई बैंक के बीच एस्करो समझौते पर हस्ताक्षर किए गए, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता ने अपनी किश्तों के पुनर्निर्धारण के लिए आवेदन किया था और यह सहमति हुई कि प्राधिकरण को देय भूमि बकाया के समाधान के लिए एक एस्करो खाता खोला जाएगा। याचिकाकर्ता ने आईसीआईसीआई बैंक को प्राधिकरण से "बकाया न होने का प्रमाण पत्र" प्राप्त होने तक आवास परियोजनाओं के आवंटियों से प्राप्त प्राप्य राशि का 20% प्राधिकरण के बैंक खाते में स्थानांतरित करने के लिए अधिकृत किया। याचिकाकर्ता ने भुगतान करने के अपने दायित्व पर कोई विवाद नहीं किया और संविदात्मक दायित्वों को पूरा करने में अपनी व्यावसायिक कठिनाई या परेशानी व्यक्त की। याचिकाकर्ता के बकाया का सारांश इस प्रकार है:

क्रमांक	शीर्ष	12 फरवरी 2020 (रद्दीकरण आदेश की तिथि) तक देय राशि (ब्याज सहित)	12 सितंबर 2024 (जिस तारीख को इस मामले में फैसला सुरक्षित रखा गया था) तक देय राशि (ब्याज सहित)
1.	भूमि प्रीमियम	8,15,23,41,447	14,12,24,67,031
2.	पट्टा किराया	1,03,50,15,204	5,58,87,88,809
3.	अतिरिक्त प्रतिकर	14,93,44,99,056	30,64,56,52,563
4.	कुल	24,12,18,55,707 रुपये	50,35,69,08,403 रुपये

एसडीजेड परियोजना के विकास में विफलता:

44. याचिकाकर्ता एसडीजेड परियोजना को विकसित करने में भी विफल रहा। प्राधिकरण द्वारा बार-बार नोटिस और अवसर दिए जाने के बावजूद, याचिकाकर्ता ने भवन उपनियमों और आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों के अंतर्गत कोर क्षेत्र के आंशिक निर्माण के लिए आवेदन के साथ आवश्यक सभी अभिलेख विधिवत जमा नहीं किए। प्राधिकरण की सर्वेक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि याचिकाकर्ता कोर क्षेत्र में मात्र 5.46% "अनुमत आवरण क्षेत्र" (19.2 हेक्टेयर) का ही विकास कर पाया है, जो कोर क्षेत्र में 40% "अनुमत आवरण क्षेत्र" (148 हेक्टेयर) के विकास के दायित्व से काफी कम है। 20 अक्टूबर 2011 को, याचिकाकर्ता ने कोर क्षेत्र के 148 हेक्टेयर के आंशिक निर्माण के लिए आवेदन किया था। साथ ही, 15 अक्टूबर 2011 को, याचिकाकर्ता ने कोर क्षेत्र में मुख्य गैडस्टैंड के निर्माण को पूरा करने के लिए आवेदन किया था। प्राधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता को छः नोटिस (8 दिसंबर 2011 से 12 जुलाई 2018 तक) जारी किए गए थे, जिनमें कोर क्षेत्र के आंशिक निर्माण के आवेदन में खामियों और भवन विनियमों के अनुसार आवेदन की वैधता समाप्त होने का उल्लेख किया गया था। हालांकि, याचिकाकर्ता ने न तो खामियों को दूर किया और न ही एसडीजेड परियोजना के कोर क्षेत्र के आंशिक निर्माण के लिए नया आवेदन दाखिल किया। प्राधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता को तीन अलग-अलग नोटिस (7 दिसंबर 2011 से 22 अगस्त 2012 तक) जारी किए गए थे, जिनमें कोर क्षेत्र में मुख्य गैडस्टैंड के आंशिक निर्माण के आवेदन में खामियों और भवन विनियमों के अनुसार आवेदन की वैधता समाप्त होने का उल्लेख किया गया था, लेकिन इसका कोई लाभ नहीं हुआ। 13 दिसंबर 2018 को, प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को भवन विनियमों का पालन न करने और उसके अनुसार कार्यवाही न करने के लिए अंतिम नोटिस भेजा। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, अर्थात् याचिकाकर्ता की लगातार और निरंतर डिफॉल्ट, आवास परियोजनाओं सहित एसडीजेड परियोजना के विकास को शुरू करने में विफलता, गृह खरीदारों की शिकायतें और आवंटन एवं पट्टा विलेखों की शर्तों का लगातार पालन न करने के कारण, प्राधिकरण के पास अंततः अंतिम उपाय के रूप में रद्दीकरण आदेश जारी करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा था।

61. 2024 में, प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को आवंटित सतत विकास क्षेत्र (एसडीजेड) भूमि का सर्वेक्षण किया। उक्त सर्वेक्षण के आधार पर, प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता द्वारा किए गए विकास कार्यों की सीमा को सत्यापित करते हुए एक सर्वेक्षण रिपोर्ट ("सर्वेक्षण रिपोर्ट") तैयार की। सर्वेक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने विकास संबंधी दायित्वों को बिल्कुल भी पूरा नहीं किया है। आवंटन पत्रों के अनुसार निर्धारित समय के भीतर याचिकाकर्ता को जिन लक्ष्यों को प्राप्त करना था, साइट पर विकास कार्य उनसे बहुत कम है। सर्वेक्षण रिपोर्ट में निष्कर्ष निकाला गया है कि याचिकाकर्ता ने मुख्य क्षेत्र में मात्र 5.46% क्षेत्र का विकास किया है, जो मुख्य गतिविधि में "अनुमत क्षेत्र" के 40% हिस्से का विकास करने के अपने दायित्व से काफी कम है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता मुख्य क्षेत्र में कई सुविधाओं का विकास करने में विफल रहा, जिनमें क्रिकेट स्टेडियम, फुटबॉल स्टेडियम, हॉकी स्टेडियम, खेल अकादमी, खेल प्रशिक्षण संस्थान, कार्टिंग मनोरंजन क्षेत्र, जिम और हेल्थ क्लब, खिलाड़ियों के लिए आवास, गोल्फ कोर्स, बास्केटबॉल/बैडमिंटन सुविधाएं, कुश्ती सुविधाएं, ओपन-एयर थिएटर, छात्रावास, ट्रांजिट छात्रावास, गेस्ट हाउस, तीरंदाजी/झील से संबंधित गतिविधियां, प्रो शॉप, सांस्कृतिक सूचना केंद्र, संग्रहालय, सभागार, स्टाफ आवास और स्पोर्ट्स थीम पार्क शामिल हैं।

62. याचिकाकर्ता समूह आवास परियोजनाओं, अस्पताल, कॉलेज, शॉपिंग सेंटर, अग्निशमन केंद्र आदि सहित गैर-मुख्य क्षेत्र का विकास करने में भी विफल रहा। निरस्तीकरण आदेश में, प्राधिकरण ने विशेष रूप से याचिकाकर्ता द्वारा आवास और आवासीय कार्यों को पूरा न करने का उल्लेख किया है। निरस्तीकरण आदेश में गृह खरीदारों की दुर्दशा और आवास और आवासीय कार्यों को पूरा करने में अत्यधिक देरी के लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्राधिकरण को उनकी शिकायतों का भी उल्लेख किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा आवास और आवासीय कार्यों का विकास न करना निरस्तीकरण आदेश पारित करने के प्राथमिक कारकों में से एक था। एसडीजेड परियोजना का विकास न होना और आवश्यक अनुमोदन (आवंटन पत्र/पट्टा विलेख और भवन विनियमों के अनुसार) प्राप्त करने में विफलता आवंटन पत्र/पट्टा विलेख का गंभीर उल्लंघन है और निरस्तीकरण आदेश के लिए एक वैध आधार है। फिर भी, प्राधिकरण के पास धारा 14 के अंतर्गत निरस्तीकरण की स्वतंत्र वैधानिक शक्ति थी, जो "इस अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए किसी भी नियम या विनियम के उल्लंघन या ऐसे अंतरण की किसी भी शर्त के उल्लंघन के मामले में" समाप्ति का प्रावधान करती है। जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, याचिकाकर्ता के कार्यों ने आवंटन पत्रों और भवन विनियमों के खंड 6.1, 8.1, 8.11, 10.1 और 15.1 का उल्लंघन किया है। अतः, प्राधिकरण को आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों को समाप्त करने का पूरा अधिकार था।

घर खरीदारों की शिकायत:

63. एसडीजेड नीति, आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों के अनुसार, याचिकाकर्ता को आवंटित भूमि को आवासीय और सामूहिक आवास परियोजनाओं सहित विभिन्न उद्देश्यों के लिए विकसित करना आवश्यक था। हालांकि, याचिकाकर्ता एक भी आवास परियोजना पूरी करने में विफल रहा। याचिकाकर्ता द्वारा आवासीय और सामूहिक आवास परियोजनाओं को विकसित न कर पाने और याचिकाकर्ता के कारण हुई लंबी देरी से घर खरीदारों को हो रही परेशानी को देखते हुए, यह निरस्तीकरण आदेश जनहित में आवश्यक था। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता

दिवालिया घोषित हो चुका है और उसकी लगातार खराब वित्तीय स्थिति जगजाहिर है। ऐसे में, याचिकाकर्ता को एसडीजेड परियोजना जारी रखने की अनुमति देने से घर खरीदारों, प्राधिकरण और आम जनता को और अधिक हानि होगा। याचिकाकर्ता की टालमटोल और निष्क्रियता से घर खरीदार व्यथित थे। निरस्तीकरण आदेश में घर खरीदारों की दुर्दशा और आवासीय कार्यों को पूरा करने में अत्यधिक देरी के लिए प्राधिकरण से याचिकाकर्ता के समक्ष उनकी शिकायतों का उल्लेख किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा आवास और आवासीय कार्यों का विकास न करना, निरस्तीकरण आदेश पारित करने के प्राथमिक आधारों में से एक था। इस न्यायालय को गुमराह करने के प्रयास में, याचिकाकर्ता ने उप-पट्टाधारकों द्वारा किए गए विकास कार्यों को अपना बताया है। याचिकाकर्ता के अनुसार, उसने दस (10) आवास परियोजनाओं के गृह खरीदारों से 1900.78 करोड़ रुपये की राशि एकत्र की है। हालांकि, याचिकाकर्ता ने मात्र तीन आवास परियोजनाएं ही शुरू की हैं, जैसा कि उसने अपनी रिट याचिका में स्वीकार किया है। गृह खरीदार संघ द्वारा दायर संबंधित रिट याचिका (जयपी स्पोर्ट्स सिटी वेलफेयर सोसाइटी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट सी संख्या 21532/2021) में भी इसी तरह का आरोप लगाया गया है। निरस्तीकरण आदेश न मात्र याचिकाकर्ता द्वारा संविदा के उल्लंघन को संबोधित करता है, बल्कि गृह खरीदारों की कठिनाइयों को भी दूर करता है। इसलिए, निरस्तीकरण आदेश न्यायसंगत, उचित और तर्कसंगत था।

याचिकाकर्ता द्वारा दायर अन्य मामले:

64. याचिकाकर्ता का मुकदमों का लंबा इतिहास रहा है, उसने सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय सहित विभिन्न न्यायालयों में कई बार इसी तरह के विवादों को चुनौती दी है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता वर्तमान कार्यवाही में अपने पिछले मुकदमों के बारे में जानकारी देने में विफल रहा है, जिनमें उसने या तो यहाँ उठाए गए विवादों के समान विवाद उठाए थे या पूरी तरह से विपरीत रुख अपनाया था। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 2 की 51वीं बोर्ड बैठक के कार्यवृत्त को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए रिट सी संख्या 40702/2017 दायर की। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा लिखे गए पत्र याचिकाकर्ता को दिनांक 15 दिसंबर 2014, 4 अगस्त 2015, 25 अगस्त 2015, 26 मई 2016 को भेजे गए पत्र, दिनांक 28 मार्च 2017 को जारी कारण बताओ नोटिस और अंत में दिनांक 17 अगस्त 2017 को जारी मांग पत्र, ये सभी उत्तर प्रदेश सरकार के अवर सचिव द्वारा पारित आदेश दिनांक 29 अगस्त 2014 के फलस्वरूप हैं, जिसके अंतर्गत मुकदमेबाजी से बचने के लिए प्रोत्साहन के रूप में 64.7% अतिरिक्त प्रतिकर के भुगतान की मांग की गई है। इस न्यायालय ने अतिरिक्त प्रतिकर की मांग पर रोक लगाते हुए एक अंतरिम आदेश पारित किया। याचिकाकर्ता ने प्राधिकरण के बोर्ड के 61वीं बैठक में लिए गए भूमि के आनुपातिक अधिग्रहण संबंधी निर्णय को चुनौती देते हुए एक अन्य रिट याचिका संख्या 47262/2017 दायर की। याचिकाकर्ता की पहली रिट याचिका अतिरिक्त प्रतिकर की मांग को चुनौती देने वाले अन्य मामलों के समूह से संबंधित थी। मेसर्स शकुंतला एजुकेशनल एंड वेलफेयर सोसाइटी द्वारा दायर रिट याचिका (रिट-सी संख्या 28968/2018) इस बैच की प्रमुख याचिका थी। इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता की पहली रिट याचिका स्वीकार करते हुए प्राधिकरण द्वारा अतिरिक्त प्रतिकर की मांग और मांग पत्र दिनांक 15.12.2014 को रद्द कर दिया। प्राधिकरण ने अतिरिक्त प्रतिकर की मांग और मांग पत्रों को रद्द करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी। सर्वोच्च न्यायालय ने इस

न्यायालय के निर्णय को रद्द करते हुए अतिरिक्त प्रतिकर की मांग और मांग पत्रों को बरकरार रखा ("शकुंतला-1")। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अतिरिक्त प्रतिकर की मांग व्यापक जनहित में है। याचिकाकर्ता ने शकुंतला-1 के निर्णय में संशोधन की मांग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय में एक विविध आवेदन दायर किया। याचिकाकर्ता ने अन्य बातों के अतिरिक्त यह आधार उठाया कि प्राधिकरण अतिरिक्त प्रतिकर के विलंबित भुगतान पर ब्याज लगा रहा है और वह एलएमसी भूमि (अधिग्रहित भूमि) के संबंध में अतिरिक्त प्रतिकर की वसूली कर रहा है। सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता के संशोधन आवेदन को खारिज कर दिया। इसके बाद याचिकाकर्ता ने शकुंतला-1 के विरुद्ध पुनर्विचार याचिका दायर की। सर्वोच्च न्यायालय ने पुनर्विचार याचिका को भी खारिज कर दिया।

अधिनियम 1976 की धारा 14 के अंतर्गत निरस्तीकरण की स्वतंत्र वैधानिक शक्ति:

65. उपरोक्त बातों पर बिना किसी पूर्वाग्रह के, प्राधिकरण प्रस्तुत करता है कि उसे अधिनियम 1976 की धारा 14 के अंतर्गत निरस्तीकरण का स्वतंत्र वैधानिक अधिकार प्राप्त है। याचिकाकर्ता को भूमि का आवंटन अधिनियम 1976 द्वारा शासित है। आवंटन पत्र और पट्टा विलेख दोनों इसी अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अंतर्गत निष्पादित किए गए थे। इसके अतिरिक्त, आवंटन पत्र के खंड 20.3 में कहा गया है कि आवंटन और पट्टा विलेख दोनों की शर्तें अधिनियम 1976 के प्रावधानों के साथ-साथ लागू नियमों और विनियमों द्वारा शासित होंगी। धारा 14 प्राधिकरण के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को प्राधिकरण द्वारा हस्तांतरित किसी स्थल या भवन को पुनः प्राप्त करने और ऐसे अंतरण के संबंध में भुगतान की गई पूरी या आंशिक राशि को समपहरण करने का अधिकार देती है।

विषय: रद्दीकरण आदेश घर खरीदारों और उप-पट्टाधारकों के हितों की रक्षा करता है:

66. याचिकाकर्ता आवासीय और सामूहिक आवास परियोजनाओं को विकसित करने में विफल रहा, जिसके कारण घर खरीदारों को याचिकाकर्ता द्वारा उत्पन्न लंबी देरी से परेशानी हो रही थी, इसलिए सार्वजनिक हित में रद्दीकरण आदेश आवश्यक था। प्राधिकरण याचिकाकर्ता द्वारा फ्लैटों के कब्जे में देरी के कारण घर खरीदारों/आवंटियों को हो रही समस्याओं के प्रति पूरी तरह से सहानुभूति रखता है। एक सार्वजनिक प्राधिकरण के रूप में, प्रतिवादी प्राधिकरण उन सामूहिक आवास परियोजनाओं के पुनर्वास के लिए पूरी तरह से प्रतिबद्ध है, जिनमें उक्त घर खरीदारों/आवंटियों ने बुकिंग की है। यह उप-आवंटियों के हितों की रक्षा के लिए भी प्रतिबद्ध है। जैसा कि प्राधिकरण के 26 जुलाई 2024 के पूरक प्रति शपथपत्र में दर्शाया गया है, यह याचिकाकर्ता को आवंटित भूमि में निर्मित तीसरे पक्षकारों, विशेष रूप से याचिकाकर्ता के घर खरीदारों और उप-पट्टाधारकों के हितों की रक्षा करने के लिए तत्पर है। यह निवेदन किया जाता है कि यदि निरस्तीकरण आदेश को बरकरार रखा जाता है और याचिकाकर्ता को आवंटित भूमि विधिक बाधा से मुक्त हो जाती है, तो याचिकाकर्ता द्वारा शुरू की गई अधूरी समूह आवास परियोजना सहित संपूर्ण परियोजना के पुनर्वास के लिए निम्नलिखित विकल्प उपलब्ध हैं (उप-पट्टाधारकों को छोड़कर, जिनके अधिकार निरस्तीकरण आदेश के अंतर्गत संरक्षित हैं)। एक विकल्प यह है कि समूह आवास परियोजनाओं सहित संपूर्ण भूमि की पुनः नीलामी की जाए, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त यह शर्त हो कि बोलीदाता प्राधिकरण के बकाया का भुगतान बोली जमा करने की तिथि तक करे, और बोलीदाता को गृहस्वामियों की अधूरी आवास परियोजनाओं को प्राथमिकता के आधार पर पूरा करना होगा

और गृहस्वामियों द्वारा याचिकाकर्ता के साथ पहले से तय की गई शर्तों और नियमों के अनुसार उन्हें बुक/आवंटित इकाइयाँ शीघ्रता से सौंपनी होंगी। भूमि के मूल्य में वृद्धि को देखते हुए, परियोजना न मात्र व्यवहार्य होगी, बल्कि संभावित बोलीदाताओं के लिए आर्थिक रूप से भी लाभदायक होगी। इस प्रकार के पुनर्वास से यह सुनिश्चित होगा कि समूह आवास परियोजनाओं में गृहस्वामियों को उनकी आवास इकाइयाँ यथाशीघ्र प्राप्त हों। इसके अतिरिक्त, प्राधिकरण के पास दूसरा विकल्प यह है कि वह स्वयं आवास परियोजनाओं का विकास करे, आवास इकाइयों का निर्माण पूरा करे और उन्हें गृहस्वामियों/आवंटियों को सौंप दे। रद्दीकरण आदेश से यह सुनिश्चित होता है कि जब तक प्राधिकरण को नियमित रूप से और समय पर बकाया राशि का भुगतान किया जाता है, तब तक किसी भी उप-पट्टे का आवंटन रद्द नहीं किया जाएगा, जिससे उप-पट्टों की निरंतरता सुनिश्चित होती है। इस प्रकार उप-पट्टे के अंतर्गत उप-पट्टाधारकों के हितों की पूरी तरह से रक्षा की जाती है और वे बिना किसी बाधा के उनका लाभ उठा सकेंगे, जब तक वे उप-पट्टे के अंतर्गत दायित्वों का पालन करते रहते हैं और साथ ही प्राधिकरण के साथ संबंधित पट्टे के अंतर्गत उन दायित्वों का भी पालन करते हैं, जिसके अंतर्गत उप-पट्टा दिया गया है, जहां तक वे उन पर लागू होते हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि रद्दीकरण आदेश के पारित होने के बाद, उप-पट्टाधारक सीधे प्राधिकरण को भुगतान कर रहे हैं और उनके उप-पट्टे रद्द नहीं किए गए हैं।

विषय: याचिकाकर्ता द्वारा बकाया राशि को चुनौती देना तुच्छ और निराधार है:

67. वर्तमान मामले में, प्राधिकरण के निरस्तीकरण आदेश को चुनौती देने और मूल विवाद्यों को उठाने के लिए रिट याचिका दायर की गई थी। दूसरी ओर, याचिकाकर्ता का सुलह प्रस्ताव (दिनांक 9 मई 2023) एक अंतरिम व्यवस्था के संदर्भ में उठाया गया था, जिसे अस्वीकार कर दिया गया था। इन दोनों प्रकार की प्रस्तुतियों की प्रकृति और दायरा भिन्न हैं। चूंकि अंतरिम व्यवस्था के संदर्भ में उठाए गए आधारों का न्यायालय द्वारा अलग दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया जाता है, इसलिए मूल आदेश (जैसे निरस्तीकरण आदेश) को चुनौती देने के लिए समान आधार उठाना अनुमेय नहीं है। याचिकाकर्ता निरस्तीकरण आदेश को चुनौती देने के लिए अस्वीकृत अंतरिम व्यवस्था के विवाद्यों को दोबारा नहीं उठा सकता है। रिट याचिका को अपने गुणों के आधार पर ही मान्य होना चाहिए। प्राधिकरण भूमि प्रीमियम और पट्टा किराए पर अतिरिक्त दंडात्मक ब्याज (1%+1%+1%= 3%) वसूलने का पात्र है। प्राधिकरण इस बात से अस्वीकार करता है कि वह संविदात्मक शर्तों के विपरीत भूमि प्रीमियम और पट्टा किराए पर कोई अतिरिक्त ब्याज वसूल रहा है। याचिकाकर्ता के पक्ष में भूमि का आवंटन आरक्षण पत्र और आवंटन पत्रों के माध्यम से किया गया था। ये दोनों पत्र विलेखों का अभिन्न अंग हैं। आरक्षण पत्र के अनुसार, प्राधिकरण को किसी भी देय राशि के भुगतान में डिफॉल्ट होने की स्थिति में, आवंटियों को डिफॉल्ट की अवधि के लिए बकाया राशि पर प्रचलित एसबीआई पीएलआर + 3% प्रति वर्ष की दर से अर्धवार्षिक चक्रवृद्धि ब्याज का भुगतान करना होगा। इसी प्रकार, आवंटन पत्रों के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी देय राशि के भुगतान में डिफॉल्ट होने की स्थिति में, याचिकाकर्ता को डिफॉल्ट की अवधि के लिए प्रचलित एसबीआई पीएलआर + 3% प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त ब्याज का भुगतान करना होगा, जो अर्धवार्षिक चक्रवृद्धि होगा। आवंटन पत्रों के खंड 3.6 के अनुसार, प्राधिकरण के मुख्य कार्यकारी अधिकारी ("सीईओ") द्वारा विशेष परिस्थितियों में अधिकतम 30 दिनों के लिए राशि जमा करने की समय सीमा बढ़ाई

जा सकती है, बशर्ते कि विस्तारित अवधि के लिए प्रचलित एसबीआई पीएलआर + 3% प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त ब्याज का भुगतान किया जाए। प्राधिकरण का निवेदन है कि भुगतान अनुसूची के अंतर्गत भुगतान के पुनर्निर्धारण/विस्तार के लिए अतिरिक्त दंडात्मक ब्याज लगाना एक उचित शर्त थी, जिसे याचिकाकर्ता ने स्वयं मांगा और प्राप्त किया था। याचिकाकर्ता ने अतिरिक्त दंडात्मक ब्याज लगने के बावजूद भुगतान किया। याचिकाकर्ता अब भुगतान विस्तार की शर्तों पर विवाद करने का पात्र नहीं है। आवंटन के अनुसार, प्राधिकरण के पास याचिकाकर्ता की डिफॉल्ट के कारण उसके आवंटन और पट्टा विलेख को रद्द करने का अधिकार था। याचिकाकर्ता की लगातार डिफॉल्ट के कारण, वह 'डिफॉल्टर' की श्रेणी में आ गया था और प्राधिकरण याचिकाकर्ता के आवंटन और पट्टा विलेख को रद्द कर सकता था। हालांकि, प्राधिकरण ने 1% अतिरिक्त दंडात्मक ब्याज लगाकर और याचिकाकर्ता को भुगतान विस्तार देकर एक उचित और न्यूनतम प्रतिबंधात्मक उपाय अपनाया। हालांकि, इस उचित विस्तार के बावजूद, याचिकाकर्ता भुगतान विस्तार पत्रों के अंतर्गत भी पूरा भुगतान करने में विफल रहा। प्राधिकरण का कहना है कि अतिरिक्त ब्याज उचित उद्देश्य के लिए लगाया गया था, जो प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से तार्किक रूप से जुड़ा हुआ था, इच्छित उद्देश्य को पूरा करने के लिए आवश्यक था, और दोनों पक्षकारों के हितों को संतुलित करने में आनुपातिक था।

प्रतिद्वंद्वी तर्कों और निष्कर्षों का विश्लेषण

विवादयक संख्या 1: क्या आवंटन रद्द करने के विरुद्ध दायर रिट सी संख्या 6049/2020 पोषणीय है?

68. वाईईए के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया विवाद पूरी तरह से संविदात्मक है और याचिकाकर्ता संविदा की शर्तों से उत्पन्न अनुतोष की मांग कर रहा है। इसमें आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों के विभिन्न खंडों की व्याख्या शामिल है, और इसलिए, मामला पूरी तरह से संविदात्मक होने के कारण, रिट याचिका पोषणीय नहीं है। यह लगातार माना गया है कि अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा संविदात्मक विवादों में सीमित है; संविदात्मक कार्यों पर निष्पक्षता, समानता और आनुपातिकता के आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है यदि यह दिखाया जा सकता है कि प्राधिकरण की कार्रवाई संविदा की शर्तों के अनुसार थी, जैसा कि वर्तमान मामले में है। वाणिज्यिक लेन-देन में, पक्षकारों के अधिकार और दायित्व संविदा द्वारा निर्धारित होते हैं, और न्यायालयों को पूरी तरह से संविदात्मक विवादयकों पर निर्णय देने से बचना चाहिए। रिट न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौते में शामिल नियमों और शर्तों के आधार पर किसी भी अनुतोष की मांग करने का मंच नहीं हो सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया गया है: (i) राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास और निवेश निगम एवं अन्य बनाम डायमंड एंड जेम डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य: (2013) 5 एससीसी 470 (ii) जोशी टेक्नोलॉजीज इंटरनेशनल इंक. बनाम भारत संघ: (2015) 7 एससीसी 728 (iii) जगदीश मंडल बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य: (2007) 14 एससीसी 517 (iv) यूफ्लेक्स लिमिटेड बनाम तमिलनाडु सरकार एवं अन्य: (2022) 1 एससीसी 165 (v) बिहार राज्य बनाम जैन प्लास्टिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड: (2002) 1 एससीसी 210 और (vi) एबीएल इंटरनेशनल बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉर्पोरेशन: (2004) 3 एससीसी 553।

69. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वाईईए ने अपने प्रति-शपथपत्र में न्यायिक पुनर्विलोकन की वैधता के संबंध में कोई विवादक नहीं उठाया है, बल्कि मात्र यह आपत्ति उठाई है कि नीतिगत निर्णयों से संबंधित न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा सीमित है। यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी द्वारा उद्धृत **राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास** (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में यह स्पष्ट किया गया है कि सामान्यतः न्यायालय को संविदात्मक दायित्व को लागू करने के लिए अपनी रिट याचिका का प्रयोग नहीं करना चाहिए। रिट याचिका तभी दी जा सकती है जब आवेदक का कोई वैध अधिकार पहले से उपलब्ध हो और उसका उल्लंघन हो रहा हो। हालांकि, रिट याचिका किसी वैध अधिकार का सृजन या स्थापना नहीं करती है। दूसरे शब्दों में, ऐसी स्थिति में रिट याचिका दायर नहीं की जा सकती जहां विशिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमा दायर करना आवश्यक हो। हालांकि, यदि कोई अधिकार पहले से उपलब्ध है और उसका उल्लंघन हो रहा है, तो रिट याचिका दायर की जा सकती है।

70. सर्वोच्च न्यायालय ने **एबीएल इंटरनेशनल बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉर्पोरेशन (2004) 3 एससीसी 553** में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

अनुच्छेद 14 की आवश्यकता संविदात्मक मामलों के क्षेत्र में भी राज्य की गतिविधियों के संचालन को विनियमित करने के लिए लागू होनी चाहिए। राज्य की सभी कार्यकारी कार्रवाइयों पर अनुच्छेद 14 की प्रयोज्यता स्थापित है और इसी कारण कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में संविदा करने की प्रारंभिक अवस्था में इसकी प्रयोज्यता निर्विवाद है। इसके बाद राज्य अपनी विशिष्टता को त्यागकर संविदात्मक मामलों के क्षेत्र में अनुच्छेद 14 की आवश्यकता से मुक्त होकर बेलगाम शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता और यह दावा नहीं कर सकता कि वह मात्र निजी विधि के सिद्धांतों द्वारा शासित है जो निजी व्यक्तियों पर लागू होते हैं जिनके अधिकार मात्र संविदा की शर्तों से ही प्राप्त होते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। राज्य की विशिष्टता, जिसके लिए अनुच्छेद 14 की आवश्यकता के अनुसार सभी क्षेत्रों में उसके आचरण का विनियमन आवश्यक है, मात्र इसलिए कि दूसरे पक्ष को कुछ अतिरिक्त संविदात्मक अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, संविदा होने के बाद इस प्रकार का आमूल-चूल परिवर्तन नहीं करती। ऐसा नहीं है कि अनुच्छेद 14 की आवश्यकता और संविदात्मक दायित्व पराक्रमी अवधारणाएं हैं जो सह-अस्तित्व में नहीं हो सकतीं। संविधान राज्य की कार्रवाइयों में अनुचितता या तर्कहीनता की परिकल्पना या अनुमति नहीं देता है। राज्य की गतिविधियों का कोई भी क्षेत्र प्रस्तावना में वर्णित आदर्शों के विपरीत हो। अतः, संविदात्मक क्षेत्र में राज्य की कार्रवाइयों से अनुच्छेद 14 (मनमानी न करना, जो विधि के शासन का मूल आधार है) का पूर्ण बहिष्कार उचित नहीं है। यह बात तब और भी महत्वपूर्ण हो जाती है जब आधुनिक चलन के अंतर्गत ऐसे अनुबंधों में किसी शर्त की अनुचितता की जांच की जाती है जहां सौदेबाजी की शक्ति असमान होती है, जिससे ये संविदा मात्र बातचीत से तय नहीं होते बल्कि असमान पक्षकारों के बीच मानक रूप के संविदा बन जाते हैं। निजी पक्षकारों के विपरीत, राज्य अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए और अपने कार्यों का निर्वहन करते हुए, जैसा कि उससे अपेक्षा की जाती है, निस्संदेह सार्वजनिक हित और जनहित के लिए कार्य करता है। राज्य की प्रत्येक कार्रवाई का प्रभाव भी जनहित पर पड़ता है। वास्तव में, राज्य के रूप में उसके व्यक्तित्व का स्वरूप ही महत्वपूर्ण है और उसके सभी कार्यों को, चाहे वे किसी भी क्षेत्र में हों, परिभाषित करना

चाहिए, न कि कार्य का स्वरूप, चाहे वह संविदात्मक हो या अन्य, जो उसके कार्य की वैधता की जांच के लिए अनुमत जांच के स्वरूप को निर्धारित करता है। अनुच्छेद 14 की आवश्यकता निष्पक्ष, न्यायसंगत और तर्कसंगत रूप से कार्य करने का कर्तव्य है, इसलिए संविदात्मक मामलों में भी राज्य को सदैव ऐसा करने की आवश्यकता के विरुद्ध कुछ भी नहीं है। मात्र यही कारक सार्वजनिक विधि दायित्वों की न्यूनतम आवश्यकताओं को लागू करने और राज्य या उसके किसी संस्थान द्वारा किए गए अनुबंधों को इस चरित्र से प्रभावित करने के लिए पर्याप्त है। यह एक अलग बात है कि संविदात्मक दायित्वों के दायरे में आने वाले विवादों के संबंध में न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा अधिक सीमित हो सकता है और संदेहास्पद मामलों में पक्षकारों को विशुद्ध रूप से संविदात्मक विवादों के निपटारे के लिए प्रदान किए गए उपायों का सहारा लेकर अपने अधिकारों के न्यायनिर्णय के लिए भेजा जा सकता है। हालांकि, यदि अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर यह आरोप लगाकर चुनौती दी जाती है कि आक्षेपित कार्य मनमाना, अनुचित या तर्कहीन है, तो यह तथ्य कि विवाद संविदात्मक दायित्वों के दायरे में भी आता है, राज्य को अनुच्छेद 14 की मूलभूत आवश्यकताओं का पालन करने के अपने दायित्व से मुक्त नहीं करेगा। इस हद तक, दायित्व हर मामले में सर्वसम्मत रूप से सार्वजनिक प्रकृति का होता है, चाहे इसके अतिरिक्त कोई अन्य अधिकार या दायित्व हो या न हो। कोई अतिरिक्त संविदात्मक दायित्व, अनुच्छेद 14 के अंतर्गत राज्य द्वारा किसी भी कार्रवाई में मनमानी न करने की गारंटी से दावेदार को वंचित नहीं कर सकता। xxx

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि जब राज्य का कोई अंग सार्वजनिक हित और जनहित के विपरीत, अनुचित, अन्यायपूर्ण और तर्कहीन तरीके से अपने संविदात्मक, संवैधानिक या वैधानिक दायित्वों का उल्लंघन करता है, तो वह वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित संवैधानिक गारंटी का उल्लंघन करता है”।

71. मध्य प्रदेश पावर मैनेजमेंट कंपनी लिमिटेड, जबलपुर बनाम स्काई पावर साउथईस्ट सोलर इंडिया प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य (2023) 2 एससीसी 703 के मामले में , सर्वोच्च न्यायालय ने एक निजी संस्था और राज्य के एक तंत्र के बीच संविदात्मक दायित्वों से उत्पन्न रिट याचिका की पोषणीयता पर विस्तार से विचार किया और निम्नानुसार निर्णय दिया:-

..... अनुच्छेद 14 के दायरे में आने से रिट न्यायालय को राज्य द्वारा संविदा किए जाने के बाद भी मनमानी राज्य कार्रवाई से निपटने का अधिकार प्राप्त है। कई तरह की परिस्थितियाँ अनुच्छेद 14 को लागू करने के लिए कार्रवाई के कारण उत्पन्न कर सकती हैं। इन मामलों से निपटने में न्यायालय का दृष्टिकोण निस्संदेह मनमानी राज्य कार्रवाई को रोकने की प्रबल आवश्यकता से निर्देशित होगा, खासकर उन मामलों में जहाँ रिट उपाय राज्य द्वारा स्पष्ट रूप से अनुचित कार्रवाई से उत्पन्न न्याय के उल्लंघन को रोकने का एक प्रभावी और निष्पक्ष साधन प्रदान करता है।

xxxxx

..... संविदा की समाप्ति कई तरह की परिस्थितियों में उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी संविदा को ऐसे व्यक्ति द्वारा समाप्त किया जाता है, जिसके बारे में बिना किसी तर्क के यह सिद्ध हो जाता है कि वह संविदा को रद्द करने के लिए पूरी तरह से अनाधिकृत है, तो संबंधित पक्ष को अनावश्यक रूप

से लंबी और टाली जा सकने वाली विधिक कार्यवाही में उलझाने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे मामले में, जहां कोई विवाद हल करने की आवश्यकता नहीं है, उच्च न्यायालय का हस्तक्षेप जनहित में भी सहायक होगा, साथ ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार की रक्षा भी करेगा। जब किसी संविदा की समाप्ति को चुनौती दी जाती है, जिसे राज्य द्वारा समाप्त किया गया हो, जो एक गैर-वैधानिक निकाय है और ऐसे संविदा के अंतर्गत शक्तियाँ/अधिकारों का कथित रूप से प्रयोग कर रहा है, तो न्यायालय के पक्ष में कोई कठोर नियम निर्धारित करना और याचिकाकर्ता को वैकल्पिक मंचों की ओर मोड़ना एक जटिल विवादक को अति सरल बनाना होगा। सामान्यतः, राज्य द्वारा अपने संविदात्मक अधिकार क्षेत्र के भीतर कार्य करते हुए संविदा समाप्त करने के मामलों में रिट न्यायालय द्वारा उचित निवारण संभव नहीं हो पाता है। यह बात निस्संदेह तब लागू होती है जब न्यायालय का कर्तव्य है कि वह ऐसे निष्कर्ष निकाले जिनमें तथ्यों के विवादित प्रश्नों से उत्पन्न जटिलताओं को सुलझाना शामिल हो। निस्संदेह, एबीएल लिमिटेड (उपरोक्त) के संदर्भ में, यदि संविदा के उल्लंघन के मामले में विवाद का समाधान मात्र प्रस्तुतियों के आलोक में अभिलेखीय सामग्री के वास्तविक दायरे का आकलन करने तक सीमित है, तो न्यायालय आवेदक को अनुतोष प्रदान कर सकता है। हमें एक बात स्पष्ट करनी होगी। न्यायालय आज मुकदमों की अत्यधिक संख्या के बोझ तले दबे हुए हैं, जो वास्तव में चिंताजनक है। यदि किसी मामले में बड़ी संख्या में अभिलेख शामिल हैं और न्यायालय को तथ्यों के निष्कर्ष निकालने हैं तथा मात्र दस्तावेजों की व्याख्या करनी है, तो पक्षकार को वैकल्पिक उपाय अपनाने के लिए कहना अनुचित विवेकाधिकार नहीं होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायालय को एबीएल (उपरोक्त) में निर्धारित संवैधानिक शक्ति से वंचित किया जाए। विवाद के दायरे को ध्यान में रखते हुए, क्या न्यायालय याचिका पर विचार करेगा या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है।

. यदि राज्य किसी संविदा का पक्षकार है और उस पर संविदा के उल्लंघन का आरोप लगाया जाता है, तो उचित न्यायाधिकरण में दीवानी मुकदमा निःसंदेह चलाया जा सकता है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती। राज्य की स्थिति और उसके निष्पक्ष रूप से कार्य करने तथा सभी कार्यों में मनमानी से बचने के कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए, यदि कार्रवाई मनमानी है, तो संवैधानिक उपाय का सहारा लेना अनुमेय है। हालांकि, यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि राज्य द्वारा संविदा के उल्लंघन से जुड़े प्रत्येक मामले को राज्य की मनमानी कार्रवाई का मामला बताकर छिपाया नहीं जा सकता। यद्यपि मनमानी कार्रवाई या निष्क्रियता की अवधारणा को किसी अपरिवर्तनीय मंत्र तक सीमित नहीं किया जा सकता और प्रत्येक मामले के तथ्यों के संदर्भ में इसे स्पष्ट किया जाना चाहिए, फिर भी मात्र संविदा के उल्लंघन का आरोप लगाना पर्याप्त नहीं होगा। मामले में ऐसी कार्रवाई/निष्क्रियता होनी चाहिए जो स्पष्ट रूप से अनुचित या पूर्णतः अतार्किक हो और किसी भी सिद्धांत से रहित हो। जो कार्रवाई पूरी तरह से दुर्भावनापूर्ण हो, उसे निष्पक्ष कार्रवाई कहना असंभव है और तथ्यों के आधार पर वह मनमानी कार्रवाई भी हो सकती है। इस प्रश्न का उत्तर न्यायालय द्वारा ही दिया जाना चाहिए और हमारा उद्देश्य मात्र यह स्पष्ट करना है कि उचित मामलों में अनुतोष प्रदान करने का विवेक न्यायालय के पास है।

72. यह सर्वविदित है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्राप्त शक्ति पूर्ण प्रकृति की है और राज्य या उसके किसी भी अंग के विरुद्ध संविदात्मक मामलों तक भी विस्तारित है। यद्यपि न्यायालय ने इस शक्ति के

प्रयोग में स्वयं पर कुछ प्रतिबंध लगाए हैं। इस प्रकार, संविदात्मक मामलों में भी रिट याचिका की पोषणीयता पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है, परन्तु किसी विशेष मामले में हस्तक्षेप करना या न करना न्यायिक विवेकाधिकार का विषय है। इन सिद्धांतों को सर्वोच्च न्यायालय ने **जोशी टेक्नोलॉजीज इंटरनेशनल इंक. बनाम भारत संघ, (2015) 7 एससीसी 728, पैरा 69 और 70** में संक्षेप में इस प्रकार बताया है:-

“69.1. न्यायालय इस विवादक की जांच तब तक नहीं कर सकता जब तक कि कार्रवाई में कोई सार्वजनिक विधि चरित्र जुड़ा न हो।

69.2. जब भी संविदा में विवाद निस्तारण का कोई विशेष तरीका निर्धारित किया गया हो, तो उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने विवेक का प्रयोग करने से अस्वीकार करेगा और पक्षकार को उक्त निस्तारण विधि पर निर्भर करेगा, विशेष रूप से जब विवादों का निस्तारण मध्यस्थता के माध्यम से किया जाना हो।

69.3. यदि तथ्य के बहुत गंभीर विवादित प्रश्न हैं जो जटिल प्रकृति के हैं और उनके निर्धारण के लिए मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता है।

69.4. संविदात्मक दायित्वों से उत्पन्न होने वाले धन संबंधी दावों को सामान्यतः असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर स्वीकार नहीं किया जाएगा।

70. इसके अतिरिक्त, राज्य/सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा निजी पक्षकारों के साथ किए गए अनुबंधों से संबंधित विभिन्न स्थितियों/पहलुओं से निपटने वाले इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों से उभरने वाली विधिक स्थिति को निम्नलिखित रूप में संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

70.1. संविदा में प्रवेश करने के चरण में, राज्य विशुद्ध रूप से अपनी कार्यकारी क्षमता में कार्य करता है और निष्पक्षता के दायित्वों से बाध्य होता है।

70.2. राज्य अपनी कार्यकारी क्षमता में, संविदात्मक क्षेत्र में भी, निष्पक्ष रूप से कार्य करने के लिए बाध्य है और कुछ भेदभावों का अभ्यास नहीं कर सकता है।

70.3. संविदा के क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले, चाहे चुनाव का प्रश्न हो या प्रतिस्पर्धी दावों पर विचार करना हो, संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन का प्रश्न उठने से पहले तथ्यों की जांच और पुष्टि करना आवश्यक है। यदि वे तथ्य विवादित हों और साक्ष्यों के मूल्यांकन की आवश्यकता हो, जिनकी सत्यता का संतोषजनक परीक्षण मात्र विस्तृत साक्ष्य लेकर, जिसमें गवाहों की जांच और जिरह शामिल हो, द्वारा ही किया जा सकता है, तो संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कार्यवाही में मामले का उचित या संतोषजनक निर्णय नहीं किया जा सकता। ऐसे मामलों में न्यायालय पीड़ित पक्ष को दीवानी वाद आदि जैसे वैकल्पिक उपाय अपनाने का निर्देश दे सकता है।

70.4. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार का उद्देश्य स्वेच्छा से किए गए दायित्व से बचने में सुविधा प्रदान करना नहीं था।

70.5. संविदात्मक दायित्व से बचने के लिए रिट याचिका स्वीकार्य नहीं थी। संविदा में सहमत शर्तों के पालन में व्यावसायिक कठिनाई, असुविधा या परेशानी उत्पन्न होने से संविदा की शर्तों का पालन न करने का कोई औचित्य नहीं बनता, जिन्हें पक्षकारों ने जानबूझकर स्वीकार किया था। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि कोई

लाइसेंसधारी लाभप्रद होने पर लाइसेंस का उपयोग करे; और यदि उसे अपना व्यवसाय चलाना व्यावसायिक रूप से अनुचित लगे तो वह उन शर्तों को चुनौती दे सकता है जिनके अंतर्गत उसने लाइसेंस लेने पर सहमति व्यक्त की थी।

70.6. सामान्यतः, यदि संविदा के उल्लंघन की शिकायत की जाती है, तो उल्लंघन की शिकायत करने वाला पक्ष संविदा के विशिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमा कर सकता है, यदि संविदा का विशिष्ट निष्पादन संभव हो। अन्यथा, पक्ष क्षतिपूर्ति के लिए मुकदमा कर सकता है।

70.7. रिट तब जारी की जा सकती है जब कार्यकारी कार्रवाई विधि द्वारा समर्थित न हो या किसी निगम के संबंध में भी विधि के समक्ष समानता या विधि के समान संरक्षण से अस्वीकार किया गया हो या यदि यह दिखाया जा सके कि सार्वजनिक अधिकारियों की कार्रवाई बिना किसी सुनवाई के की गई थी और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया था, यह मानते हुए कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना कार्रवाई नहीं की जा सकती थी।

70.8. यदि निजी पक्ष और राज्य/राज्य के साधन और/या एजेंसी के बीच का संविदा निजी विधि के दायरे में आता है और उसमें सार्वजनिक विधि का कोई तत्व नहीं है, तो पीड़ित पक्ष के लिए सामान्य तरीका यह है कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय में जाकर उसके असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान करने के बजाय साधारण दीवानी विधि के अंतर्गत प्रदान किए गए उपायों का सहारा ले।

70.9. राज्य के साथ संविदा में सार्वजनिक विधि और निजी विधि के तत्वों के बीच का अंतर धुंधला होता जा रहा है। हालांकि, यह पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है और जहां मामला विशुद्ध रूप से संविदा के निजी क्षेत्र में आता है, वहां इस न्यायालय ने यह रुख अपनाया है कि रिट याचिका पोषणीय नहीं है। सार्वजनिक विधि और निजी विधि के अधिकारों और उपायों के बीच का अंतर प्रत्येक मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर निर्भर करेगा और सार्वजनिक विधि के उपायों और निजी विधि के क्षेत्र के बीच के अंतर को सटीक रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, प्रत्येक मामले की जांच उसके तथ्यों के आधार पर की जानी चाहिए कि क्या पक्षकारों के बीच संविदात्मक संबंधों में सार्वजनिक विधि के तत्व उपलब्ध हैं। एक बार किसी विशेष मामले के तथ्यों के आधार पर यह पाया जाता है कि गतिविधि या विवाद की प्रकृति में सार्वजनिक विधि के तत्व शामिल हैं, तो उच्च न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिकाओं में मामले की जांच की जा सकती है ताकि यह देखा जा सके कि राज्य और/या राज्य के किसी साधन या एजेंसी की कार्रवाई निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित है या प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखा गया है और अप्रासंगिक कारकों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल नहीं किया गया है या निर्णय मनमाना तो नहीं है।

70.10. ऐसी स्थिति में किसी नागरिक की मात्र उचित या वैध अपेक्षा अपने आप में एक अलग लागू करने योग्य अधिकार नहीं हो सकती है, लेकिन इस पर विचार करने और इसे उचित महत्व न देने से निर्णय मनमाना हो सकता है, और इस प्रकार वैध अपेक्षा पर उचित विचार करने की आवश्यकताएँ गैर-मनमानी के सिद्धांत का हिस्सा बनती हैं।

70.11. संविदात्मक दायित्वों के दायरे में आने वाले विवादों के संबंध में न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा अधिक सीमित हो सकता है और संदेहपूर्ण मामलों में पक्षकारों को विशुद्ध रूप से संविदात्मक विवादों के निस्तारण के लिए प्रदान किए गए उपायों का सहारा लेकर अपने अधिकारों के न्यायनिर्णय के लिए भेजा जा सकता है।"

(जोर दिया गया)

73. अतः यह माना गया है कि संविदा से उत्पन्न होने वाले विवाद्यों की सामान्यतः न्यायालय द्वारा जांच नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि पक्षकार के पास क्षतिपूर्ति के रूप में अनुतोष प्राप्त करने का उपाय होता है, जब तक कि चुनौती दी गई कार्रवाई में सार्वजनिक विधि का चरित्र निहित न हो। एक बार, किसी विशेष मामले के तथ्यों के आधार पर, यह पाया जाता है कि गतिविधि या विवाद की प्रकृति में सार्वजनिक विधि के तत्व शामिल हैं, तो मामले की जांच भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत की जा सकती है।

74. वाईईए के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उद्धृत राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास (उपरोक्त) मामले में यह स्पष्ट किया गया है कि सामान्यतः न्यायालय को संविदात्मक दायित्व को लागू करने के लिए अपनी रिट याचिका का प्रयोग नहीं करना चाहिए। रिट याचिका तभी दायर की जा सकती है जब पहले से ही कोई वैध अधिकार उपलब्ध हो और उसका उल्लंघन हो रहा हो। वैध अधिकार की स्थापना के लिए रिट याचिका दायर नहीं की जा सकती, क्योंकि ऐसी स्थिति में उपाय विशिष्ट निष्पादन का मुकदमा होगा।

75. जगदीश मंडल और यूफ्लेक्स लिमिटेड के मामले में निविदाओं के मूल्यांकन से संबंधित न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति पर विचार किया गया था। इसमें यह माना गया था कि ऐसे मामलों में यदि संविदा प्रदान करने से संबंधित निर्णय सद्भावनापूर्ण और जनहित में है, तो न्यायालय प्रक्रियात्मक अनियमितता या त्रुटि होने पर भी या निष्पक्षता के आधार पर हस्तक्षेप नहीं करेंगे। हमारी राय में, ये निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं।

76. रद्द करने के आक्षेपित आदेश को अवैध, मनमाना और अनुपातहीन कार्यकारी आदेश बताकर चुनौती दी जा रही है। याचिकाकर्ता किसी नए अधिकार की स्थापना नहीं कर रहा है, बल्कि अपने पक्ष में किए गए आवंटन के अंतर्गत अपने अधिकारों की रक्षा करना चाहता है। आक्षेपित आदेश में ही कहा गया है कि यह न मात्र वाईईए के हितों की रक्षा के लिए, बल्कि उप-पट्टाधारकों और गृह खरीदारों के हितों की रक्षा के लिए भी पारित किया गया था। इस प्रकार, यह व्यापक जनहित की पूर्ति का प्रयास करता है। ऐसे में, यह नहीं कहा जा सकता कि याचिका को पोषणीयता के आधार पर खारिज किया जा सकता है। हालांकि, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग सुस्थापित मापदंडों के भीतर ही किया जाना चाहिए।

77. अतः, विवादक संख्या 1 का उत्तर वाईईए के विरुद्ध और याचिकाकर्ता के पक्ष में दिया जाता है, जिसमें रिट याचिका को पोषणीय माना जाता है।

विवादक संख्या 2 और 3:

क्या आवंटन पत्र की शर्तें, उन शर्तों को छोड़कर जिनका विशेष रूप से उल्लेख किया गया है और पट्टा विलेख में संदर्भ द्वारा शामिल किया गया है, पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद उन भूमि पार्सलों के संबंध में प्रभावी रहती हैं जिन्हें पट्टा विलेख के अंतर्गत पट्टे पर दिया गया है?

और

क्या पत्र दिनांक 12.02.2020 द्वारा आवंटन पत्र को रद्द करने से, पट्टा विलेख को भी रद्द करने का परिणाम स्वरूप प्रभाव पड़ता है, जबकि पट्टा विलेख को विशेष रूप से रद्द नहीं किया गया है?

78. चूंकि ये विवादक आपस में जुड़े हुए हैं, इसलिए इन्हें एक साथ संबोधित किया गया।

(ए) आवंटन, पट्टा और एसडीजेड नीति की प्रमुख विशेषताएं :

79. पट्टा विलेख और आवंटन पत्र की शर्तों की तुलना करने पर पता चलता है कि दोनों दस्तावेजों में कई खंड समान या लगभग एक जैसे हैं; कुछ खंडों में संशोधन किया गया है; कुछ खंडों को संदर्भ द्वारा शामिल किया गया है और कुछ में पर्याप्त परिवर्तन किए गए हैं।

समान खंड:

विवरण	आवंटन पत्र में खंड	पट्टा विलेख में खंड
1. आवंटन पत्र और पट्टा विलेख दोनों में लगभग समान खंड।	1. खंड 3.2, 3.5, 3.9 2. खंड 3.10 3. खंड 3.11 4. खंड 5.2 5. खंड 6.1 + 8.12 6. खंड 8.4 7. खंड 8.5 8. खंड 8.10 9. खंड 8.3 10. खंड 9.1	1. खंड 3 2. खंड 11(क) 3. खंड 11(ख) 4. खंड 2 का भाग 5. खंड 4 6. खंड 8 का भाग 7. खंड 10 (i) और (iii) 8. खंड 9 9. खंड 6 10. खंड 14

वे खंड जिन्हें संदर्भ द्वारा शामिल किया गया है:

विवरण	आवंटन पत्र में खंड	पट्टा विलेख में खंड

आवंटन पत्र में वे खंड जो संदर्भ और समावेशन द्वारा पट्टा विलेख में शामिल किए गए हैं।	1. खंड 3.1, 3.6- 3.8 2. खंड 3.9 3. खंड 10 4. खंड 11	1. खंड 3 2. खंड 15 3. खंड 10(ii) 4. खंड 16

खंडों जिन्हें संशोधित या प्रतिस्थापित किया गया है:

विवरण	आवंटन पत्र में खंड	पट्टा विलेख में खंड
आवंटन पत्र में वे खंड जिन्हें पट्टा विलेख में हटा दिया गया था और/या प्रतिस्थापित किया गया था।	1. खंड 2 2. खंड 3.4 3. खंड 4.2 4. खंड 5.1 5. खंड 8.1 6. खंड 8.2	1. हटा दिया गया 2. हटा दिया गया 3. हटा दिया गया + खंड 38 जोड़ी गई 4. हटा दिया गया 5. हटा दिया गया 6. हटा दिया गया

जिन खंडों में पर्याप्त परिवर्तन किए गए:

विवरण	आवंटन पत्र में खंड	पट्टा विलेख में खंड
आवंटन पत्र में वे खंड थे जिनमें पट्टा विलेख में पर्याप्त परिवर्तन किए गए थे।	1. खंड 5.3 2. खंड 8.9 3. खंड 16.1 4. खंड 19 5. खंड 20.2 6. खंड 20.3	1. खंड 23(iv) 2. खंड 8 3. खंड 30 4. खंड 28 5. खंड 37 6. खंड 27

80. पट्टा विलेख सभी एक समान हैं। इसकी शुरुआत प्रस्तावना से होती है जिसमें इसके निष्पादन से संबंधित पृष्ठभूमि तथ्यों का वर्णन है। याचिकाकर्ता ने वाईईए विकास क्षेत्र में खेल को मुख्य गतिविधि मानते हुए एसडीजेड के विकास के लिए पट्टादाता द्वारा आवेदन आमंत्रित किए गए नोटिस के जवाब में आवेदन किया था। इसमें निर्मित अधिकार की प्रकृति, अर्थात् पट्टा, का स्पष्ट उल्लेख है, साथ ही उस आवंटन पत्र का भी उल्लेख है जिसके अनुसरण में पट्टा निष्पादित किया गया था। पट्टे की अवधि, पट्टे पर दी गई भूमि का क्षेत्रफल, पट्टे से संलग्न अनुसूची-II में भूमि का विवरण और प्रीमियम, अर्थात् प्रतिफल, स्पष्ट रूप से उल्लिखित

हैं। प्रस्तावना का पैराग्राफ 3, जिसमें कहा गया है कि पक्षकारों ने 'इस दस्तावेज़ में निहित नियमों और शर्तों' पर पट्टे पर सहमति व्यक्त की थी, महत्वपूर्ण है। इससे पता चलता है कि पट्टा अधिकार के संबंध में पक्षकारों के अधिकार और दायित्व इसमें निर्धारित नियमों और शर्तों द्वारा शासित होंगे। आवंटन पत्र दिनांक 20.03.2009 के अनुसरण में 25.09.2009 को निष्पादित पट्टा विलेखों में से एक नीचे दिया गया है:

"पट्टा विलेख"

यह पट्टा विलेख दिनांक 25 सितंबर 2009 को किया गया है।

मध्य

यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण (वाईईए) (उत्तर प्रदेश सरकार की अधिसूचना संख्या 1165/77-4-08-65 एन/08 लखनऊ दिनांक 11 जुलाई 2008 के अनुसार ताज एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण से नाम परिवर्तित), उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 के अंतर्गत गठित एक वैधानिक निकाय है, जिसका प्रधान कार्यालय ए-1, प्रथम मंजिल वाणिज्यिक परिसर, सेक्टर-बीटा-II, ग्रेटर नोएडा, जिला गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश (भारत) में स्थित है (जिसे इसके बाद "पट्टादाता" कहा जाएगा, जिसका अर्थ संदर्भ के विपरीत न होने पर इसके प्रशासक, उत्तराधिकारी और असाइनमेंट भी शामिल होंगे) प्रथम पक्ष।

और

मेसर्स जेपीएसके स्पोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड, कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत निगमित एक कंपनी, जिसका पंजीकृत कार्यालय सेक्टर-128, नोएडा 201304, जिला गौतम बुद्ध नगर (यूपी.) में स्थित है। (इसके बाद "पट्टाधारक" के रूप में संदर्भित, जिसका अर्थ, जब तक संदर्भ के विपरीत न हो, इसके उत्तराधिकारी और असाइनमेंट शामिल होंगे) द्वितीय पक्ष।

जबकि

1. पट्टाधारक ने यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण (वाईईए) के विकास क्षेत्र में विशेष विकास क्षेत्र (एसडीजेड) के विकास के लिए पट्टादाता द्वारा आवेदन आमंत्रित किए जाने के जवाब में, खेल को मुख्य गतिविधि के रूप में रखते हुए एसडीजेड के विकास के लिए आवेदन किया था, और
2. पट्टादाता ने पट्टाधारक को एसडीजेड सेक्टर संख्या 25 आवंटित किया है, जिसमें खेल को मुख्य गतिविधि के रूप में शामिल किया गया है, पत्र संख्या वाईईए-32/2009 दिनांक 20.03.2009 (अनुसूची-I में संलग्न आवंटन पत्र) के माध्यम से एसडीजेड के विकास के लिए। उक्त आवंटन पत्र में निहित शर्तों और नियमों के अनुसार, लगभग 646.7530 हेक्टेयर भूमि का आवंटन 90 वर्षों की अवधि के लिए पट्टे पर दिया गया है, जो कि 241.86 रुपये प्रति वर्ग मीटर के प्रीमियम पर है, जिसमें बाह्य विकास शुल्क शामिल नहीं है, साथ ही प्रीमियम पर 2.5% प्रति वर्ष की दर से पट्टा किराया भी शामिल है।
3. उक्त आवंटन पत्र के अंतर्गत अपने दायित्वों के आंशिक निर्वहन के रूप में, पट्टादाता एतद्वारा ग्राम गुनपुरा, तहसील सदर, जिला गौतम बुद्ध नगर (यूपी.) में स्थित 175.3639 हेक्टेयर भूमि (जिसे इसके बाद पट्टे पर दी गई भूमि कहा जाएगा) को सतत विकास क्षेत्र (एसडीजेड) के विकास के लिए पट्टे पर देने के लिए सहमत है, जिसका विस्तृत विवरण इस दस्तावेज़ में संलग्न अनुसूची II में दिया गया है, और यह पट्टे पर दी जाने वाली भूमि के नियमों और शर्तों के अनुरूप है।

I. अतः, यह पट्टा विलेख निम्नलिखित बातों की पुष्टि करता है और इसके पक्षकार निम्नलिखित बातों पर सहमत होते हैं:

- (1) पट्टादाता पट्टे पर दी गई भूमि का वैध स्वामी है और उस पर उसका वैध अधिकार, स्वामित्व और हित है तथा वह पट्टाधारक को भूमि पट्टे पर देने के लिए सक्षम है। पट्टे पर दी गई भूमि का विस्तृत विवरण और उसका नक्शा (मानचित्र में दर्शाया और चिह्नित) अनुसूची-III के रूप में संलग्न है।
- (2) इस संविदा के अंतर्गत आरक्षित किराए के भुगतान और पट्टाधारक द्वारा नीचे दिए गए अनुबंधों और शर्तों के प्रतिफल के बदले में, पट्टादाता एतद्द्वारा पट्टाधारक को ग्राम गुनपुरा, तहसील सदर, जिला गौतम बुद्ध नगर (यू.पी.) में स्थित 175.3639 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाली वह संपूर्ण भूमि, जिसका विस्तृत विवरण अनुसूची-II में दिया गया है, साथ ही उससे संबंधित सभी स्वतंत्रताएं, विशेषाधिकार, अधिकार, सुखाधिकार और सहायक वस्तुएं, और साथ ही उस पर भविष्य में निर्मित होने वाली संरचनाएं और भवन, पट्टाधारक को पट्टे पर दी गई भूमि पर कब्जे की तिथि से प्रारंभ होने वाले 90 (नब्बे) वर्षों ("अवधि") के लिए पट्टे पर देता है।
- (3) पट्टे की अवधि के दौरान, पट्टाधारक, पट्टादाता को प्रति वर्ष प्रीमियम के 2.5% की दर से अग्रिम रूप से पट्टा किराया ("किराया राशि") का भुगतान करेगा, जो सितंबर 2009 से शुरू होगा। पट्टाधारक ने पट्टादाता को प्रीमियम राशि के 20% के रूप में 1,21,83,01,561.00 रुपये (एक सौ इक्कीस करोड़ तिरासी लाख एक हजार पाँच सौ एकसठ रुपये मात्र) का भुगतान पट्टादाता के चालू खाता संख्या 30767210435 (आईएफसी कोड एसबीआईएन0004324), बैंक ऑफ इंडिया, लैंगरस्ट्रोमिया शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, ग्रेटर नोएडा (यू.पी.) में, आरटीजीएस के माध्यम से 646.7530 हेक्टेयर भूमि के लिए किया है, जिसमें 175.3639 हेक्टेयर पट्टे पर दी गई भूमि शामिल है, जिसका विवरण अनुसूची-II में दिया गया है, जिसकी प्राप्ति पट्टादाता स्वीकार करता है। प्रीमियम की शेष 80% राशि का भुगतान 20 अर्धवार्षिक किस्तों में, शेष राशि पर प्रचलित एसबीआई पीएलआर दर के अनुसार ब्याज सहित किया जाएगा। उपर्युक्त पहली अर्धवार्षिक किस्त आवंटन पत्र जारी होने की तिथि से 180 दिनों के बाद देय होगी, जो 20.03.2009 के आवंटन पत्र के प्रावधानों के अनुसार होगी।
- (4) पट्टाधारक को नीचे दिए गए भूमि उपयोग प्रतिशत के अनुसार एसडीजेड के विकास की योजना बनानी होगी:-

एसडीजेड के कुल क्षेत्रफल का %

ए. मुख्य गतिविधि 35% से कम नहीं होनी चाहिए

(सड़क और खुले स्थान सहित)

बी. अन्य गतिविधियाँ

- i) वाणिज्यिक क्षेत्र 20% से अधिक नहीं
 - ii) संस्थागत और सुविधाएं 5% से कम नहीं
 - iii) सड़कें, खुले और अन्य आवागमन क्षेत्र 25% से कम नहीं
 - iv) आवासीय क्षेत्र जिसमें समूह आवास और भूखंडित विकास क्षेत्र शामिल हैं, 15% से कम नहीं
- उपरोक्त प्रावधानों के अधीन रहते हुए, पट्टाधारक को पट्टे पर दी गई भूमि के उपयोग के उद्देश्य और विभिन्न उपयोगों के लिए उस भूमि के क्षेत्रफल के आवंटन का अनन्य अधिकार होगा। पट्टाधारक यह निर्णय लेने के लिए भी स्वतंत्र होगा कि पट्टे पर दी गई भूमि का वह भाग जिसे पट्टाधारक ने उप-पट्टे/पट्टे पर देने का

निर्णय लिया है, भूखंडों के रूप में हो या निर्मित संपत्तियों के रूप में। पट्टे पर दी गई भूमि के उपयोग या उप-पट्टे/एकाधिक उप-पट्टे/पट्टे पर देने के लिए पट्टादाता की अनुमति की आवश्यकता नहीं होगी। पट्टाधारक संबंधित अधिकारियों द्वारा अनुमोदित लेआउट योजनाओं के अनुसार पट्टे पर दी गई भूमि या उसके किसी भाग में संशोधन करने का पात्र होगा। यदि सतत विकास क्षेत्र (एसडीजेड) के विकास के लिए भूमि पट्टाधारक को भागों में आवंटित की जाती है, तो पट्टाधारक आवंटित भूमि के उक्त भागों को एक स्थान पर संयोजित/विलयित करने का पात्र होगा।

(5) पट्टाधारक को पट्टे पर दी गई भूमि के संपूर्ण या किसी भी भाग को, चाहे वह विकसित हो या अविकसित, भूखंडों या निर्मित संपत्तियों के रूप में उप-पट्टे पर देने, अनुमति और लाइसेंस पर देने या उसके किसी भाग/अनुमति में अपने हित का किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रकार से समाधान करने का पूर्ण अधिकार होगा, जिसके लिए पट्टादाता या किसी अन्य संबंधित प्राधिकारी की सहमति या अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी। पट्टे पर दी गई भूमि के उप-पट्टाधारक भी पट्टे पर दी गई भूमि को उप-पट्टे पर देने के पात्र होंगे, इसलिए पट्टे पर दी गई भूमि के छोटे-छोटे भागों में कई उप-पट्टे हो सकते हैं। पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक/लाइसेंसधारी, जैसा भी मामला हो, पट्टादाता को ऐसे सभी उप-पट्टों/अनुमति और लाइसेंस/समाधान का विवरण सूचित करेगा। पट्टादाता को ऐसी सूचना दिए जाने तक, पट्टादाता/उप-पट्टादाता/लाइसेंसदाता, जैसा भी मामला हो, पट्टाधारक के साथ किराया राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी बना रहेगा। पट्टादाता को देय किराया राशि किसी भी उप-पट्टे/पट्टा और लाइसेंस से अप्रभावित रहेगी। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि पट्टाधारक और विभिन्न उप-पट्टाधारकों/हस्तांतरितियों द्वारा देय कुल किराया राशि पट्टे पर दी गई भूमि के प्रीमियम के 2.5% प्रति वर्ष की अधिकतम सीमा तक होगी (विभिन्न उप-पट्टाधारक/हस्तांतरिती अपने द्वारा धारित भूमि के हिस्से के लिए आनुपातिक किराया का भुगतान करेंगे)। प्रत्येक उप-पट्टे और/या अंतरण पर हस्ताक्षर होने के बाद, अंतरणकर्ता या उप-पट्टादाता/उप-पट्टाधारक द्वारा पट्टादाता को सूचित किया जाएगा और जब तक ऐसा सूचित नहीं किया जाता है, अंतरणकर्ता/उप-पट्टाधारक, हस्तांतरिती/उप-पट्टाधारक के साथ पट्टादाता को पट्टा किराया भुगतान करने के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग रूप से उत्तरदायी बना रहेगा। हालांकि, मुख्य गतिविधि वाली भूमि के उप-पट्टे के लिए, पट्टादाता की पूर्व अनुमति आवश्यक होगी।

(6) उप-पट्टे के माध्यम से भूमि के पहले अंतरण के लिए, पट्टाधारक द्वारा पट्टादाता या किसी भी प्राधिकरण को कोई अतिरिक्त शुल्क या अंतरण प्रीमियम देय नहीं होगा। हालांकि, बाद के हस्तांतरणों के लिए, पट्टादाता द्वारा निर्दिष्ट दरों पर पट्टादाता को अतिरिक्त भुगतान करना होगा।

(7) पट्टाधारक और उप-पट्टाधारकों दोनों को एकाधिक किराये की अनुमति होगी।

(8) भूमि के सकल क्षेत्रफल पर स्वीकार्य समग्र एफएआर, एफएआर, ग्राउंड कवरेज, अनुमेय ऊंचाई और सेट बैक आदि, भूमि के विभिन्न उपयोगों जैसे आवासीय, वाणिज्यिक, मनोरंजक, संस्थागत आदि के लिए, यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण (पूर्व में ताज एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के नाम से जाना जाता था) के अंतर्गत विकसित विशेष विकास क्षेत्र (एसडीजेड) के लिए उत्तर प्रदेश सरकार की नीति और यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण के समय-समय पर लागू होने वाले जोनिंग विनियमों और भवन विनियमों के अनुसार होंगे।

(9) भवनों की ऊंचाई संबंधित हवाई अड्डा प्राधिकरण के नियमों/मानकों द्वारा निर्धारित की जाएगी, जैसा कि लागू हो।

(10) पट्टाधारक को आवंटित क्षेत्र में संपूर्ण विकास कार्य निम्नलिखित का पालन करते हुए करना होगा:-

(i) पट्टादाता के भवन एवं अन्य विनियमों/संबंधित भारतीय मानकों/राष्ट्रीय संहिता आदि में निर्धारित मानक एवं विशिष्टताएँ।

(ii) पट्टादाता और अन्य संबंधित अधिकारियों की मास्टर योजनाएं और नियम एवं विनियम।

(iii) भूमि उपयोग नियोजन और निर्माण कार्य में आपदा प्रबंधन से संबंधित सरकारी नीतियां और बीआईएस/आईएस के प्रासंगिक कोड।

(11)

ए. वार्षिक पट्टा किराया प्रत्येक 30 वर्ष की समाप्ति पर अंतिम निर्धारित पट्टा किराए के 50% से अधिक की राशि से बढ़ाया जा सकता है।

बी. आवंटन प्राप्तकर्ता के पास पट्टा विलेख के निष्पादन से पहले वार्षिक पट्टा किराए के 11 गुना अर्थात् कुल प्रीमियम के 27.5% के बराबर एकमुश्त राशि का भुगतान करने का विकल्प होगा, जिसे एकमुश्त पट्टा किराया के रूप में भुगतान किया जाएगा।

नोट: यदि आवंटिती पट्टा विलेख के निष्पादन के समय न्यूनतम वार्षिक किराया भुगतान का विकल्प चुनता है, तो वह बाद में वाईईए/पट्टादाता की पूर्व लिखित अनुमति से ऊपर बताए गए एकमुश्त किराया भुगतान का विकल्प चुन सकता है। ऐसे मामले में, आवंटिती को विकल्प चुनने की तिथि तक कुल प्रीमियम का 2.5% प्रति वर्ष की दर से किराया देना होगा और इसके अतिरिक्त, कुल प्रीमियम का 27.5% एकमुश्त किराया भी देना होगा।

(12) पट्टे के आधार पर हस्तांतरित की जा रही भूमि को पट्टादाता द्वारा निर्दिष्ट नियमों और शर्तों के अनुसार भविष्य में स्वतंत्र स्वामित्व वाली भूमि में परिवर्तित किया जा सकता है।

(13) पट्टाधारक को पट्टे पर दी गई भूमि से सटे सभी भूभागों, परिसरों और सड़कों पर आने-जाने का अधिकार होगा और वह पट्टादाता या सार्वजनिक हित को हानि पहुंचाए बिना पट्टे पर दी गई भूमि तक पहुंचने के उद्देश्य से ऐसी भूमि, परिसरों और सड़कों पर प्रवेश करने का पात्र होगा।

(14) आवंटिती परियोजना के कार्यान्वयन के लिए धन की व्यवस्था करने हेतु बैंकों/वित्तीय संस्थानों/ऋणदाताओं के पक्ष में भूमि को गिरवी रख सकता है, ऐसी शर्तों पर जो पट्टाधारक, पट्टादाता और ऋणदाताओं के बीच पारस्परिक रूप से सहमत हों।

(15) पट्टादाता सतत विकास क्षेत्रों (एसडीजेड) के बाहरी विकास को यथाशीघ्र पूरा करेगा। आवंटन पत्र दिनांक 20.03.2009 के प्रावधानों के अनुसार पट्टाधारक द्वारा बाहरी विकास शुल्क का भुगतान किया जाएगा। सतत विकास क्षेत्रों का आंतरिक विकास पट्टाधारक द्वारा किया जाएगा।

(16) पट्टादाता, आवंटन पत्र दिनांक 20.03.2009 की शर्तों के अनुसार, एसडीजेड क्षेत्र में ग्राम विकास योजना और आबादी विस्तार की पहचान करेगा और उसे लागू करेगा।

(17) पट्टादाता, पट्टे पर दी गई भूमि के प्रभावी उपयोग के लिए लागू परमिट, स्वीकृति, अनुमोदन, स्वीकृति आदि प्राप्त करने में पट्टाधारक की सहायता करने का प्रयास करेगा।

(18) एसडीजेड के लिए बाहरी विकास कार्यों का रखरखाव पट्टादाता द्वारा किया जाएगा और एसडीजेड के भीतर के कार्यों का रखरखाव पट्टाधारक द्वारा अपने-अपने खर्च पर किया जाएगा।

(19) पट्टाधारक के लिखित अनुरोध पर, पट्टादाता पट्टाधारक को सभी आवश्यक अवसंरचना सुविधाओं और उपयोगिताओं तक पहुँच प्राप्त करने में सहायता करेगा, जिसमें पानी, बिजली, दूरसंचार सुविधाएं आदि शामिल हैं, और यह सहायता उन दरों और शर्तों पर प्रदान की जाएगी जो वाणिज्यिक ग्राहकों को सामान्यतः उपलब्ध दरों और शर्तों से कम अनुकूल न हों।

(20) राज्य सरकार की नीति/विधि के अनुसार समय-समय पर पट्टाधारक को विभिन्न प्रोत्साहन/रियायतें आदि प्राप्त होंगी।

(21) पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक एतद्वारा पट्टादाता या किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण/केंद्रीय या राज्य सरकार द्वारा पहले से लगाए गए या भविष्य में लगाए जाने वाले सभी करों, शुल्कों और प्रभारों का भुगतान करने का वचन देते हैं। पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक को निर्माण प्रयोजन के लिए और बाद में नियमित पेयजल आपूर्ति आदि के लिए स्थानीय प्राधिकरण को आवश्यक शुल्क का भुगतान करते हुए अपने खर्च पर अपने नाम से जल आपूर्ति/जल निकासी/सीवरेज का स्वतंत्र कनेक्शन लेना होगा। यदि आवश्यक हो, तो पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक को निर्माण प्रयोजन के लिए और बाद में नियमित आपूर्ति के लिए ऐसे विद्युत/विद्युत कनेक्शन प्रदान करने वाले प्राधिकरण को आवश्यक शुल्क का भुगतान करते हुए अपने नाम से और अपने खर्च पर अस्थायी विद्युत/विद्युत कनेक्शन भी लेना होगा।

(22) पट्टाधारक यह वचन और गारंटी देता है कि:

i) पट्टाधारक, पट्टादाता और स्थानीय नगरपालिका या अन्य प्राधिकरण के सभी वर्तमान या भविष्य में लागू होने वाले कानूनों और उपनियमों, नियमों, भवन विनियमों और निर्देशों का पालन करेगा, जहां तक वे अचल संपत्ति से संबंधित हैं और जहां तक वे उस स्थान के अन्य निवासियों के स्वास्थ्य, सुरक्षा और सुविधा को प्रभावित करते हैं।

ii) पट्टाधारक इस पट्टा विलेख के निष्पादन से संबंधित विधिक खर्चों का वहन करेगा, जिसमें लागू होने वाले पंजीकरण शुल्क भी शामिल हैं।

iii) पट्टाधारक, पट्टादाता के सदस्यों, अधिकारियों और अधीनस्थों तथा पट्टादाता द्वारा नियोजित कामगारों और अन्य व्यक्तियों को, पट्टे पर दी गई भूमि और उस पर निर्मित होने वाले भवन में, 7 दिन की पूर्व लिखित सूचना के साथ, दिन के किसी भी उचित समय पर प्रवेश करने की अनुमति देगा, ताकि वे पट्टे पर दी गई भूमि का निरीक्षण कर सकें और आवश्यक कार्य कर सकें। पट्टाधारक इस उप-खंड के प्रावधान की सूचना अपने उप-पट्टाधारक(कों) को भी देगा।

(23) पट्टादाता यह वचन और गारंटी देता है कि:

i) पट्टादाता को इस विलेख को निष्पादित करने और पट्टे पर दी गई भूमि का पट्टा प्रदान करने का पूर्ण अधिकार है, और पट्टाधारक, किराया चुकाने और इसमें निहित अनुबंधों का पालन करने पर, इस पट्टा की पूरी अवधि के दौरान पट्टादाता या पट्टादाता की ओर से दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा, व्यवधान, दावे या मांग के बिना, शांतिपूर्वक पट्टे पर दी गई भूमि पर अपना अधिकार और उपयोग बनाए रखेगा, जैसा कि इस पट्टा विलेख के अनुबंधों और प्रावधानों के अनुसार है।

ii) पट्टादाता, पट्टे पर दी गई भूमि के उस हिस्से के संबंध में, जो पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक द्वारा लागू मास्टर प्लान और स्थानीय अधिकारियों के अन्य विनियमों के अनुसार भूमि उपयोग के लिए आवश्यक हो, समय-समय पर अपने सभी प्रत्यावर्ती अधिकारों, स्वामित्व और हितों को प्रदान करेगा, हस्तांतरित करेगा, सौंपेगा और सुनिश्चित करेगा।

iii) पट्टादाता एतद्वारा यह वचन देता है कि पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक को पट्टे पर दी गई भूमि पर बिना किसी व्यवधान के शांतिपूर्ण कब्जा प्राप्त होगा, चाहे वह व्यवधान उसके द्वारा हो या उसके उत्तराधिकारी द्वारा या किसी भी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो किसी भी प्रकार से उस पर सर्वोच्च अधिकार का दावा करता हो।

iv) पट्टादाता यह आश्वासन देता है कि पट्टे पर दी गई भूमि किसी भी प्रकार के भार, दावे, विवाद, अतिक्रमण, कब्जा, मुकदमे, निषेधाज्ञा, बंधक, प्रभार, गिरवी, ग्रहणाधिकार, बंधक, सुरक्षा हित, आवंटन, विशेषाधिकार या किसी भी प्रकार की प्राथमिकता से मुक्त है, जो सुरक्षा या अन्य ऐसे दायित्वों के समान प्रभाव रखती हो। पट्टादाता यह भी आश्वासन देता है कि यदि पट्टे पर दी गई भूमि के संबंध में कोई प्रतिकर बकाया है और देय है, तो उसका भुगतान पट्टादाता द्वारा सीधे किया जाएगा और पट्टाधारक के पट्टे पर दी गई भूमि के उपयोग पर किसी भी प्रकार से कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(24) पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक पट्टे पर दी गई भूमि पर स्थित भवन(नों) और सार्वजनिक सेवाओं के रखरखाव के लिए आवश्यक व्यवस्था करेंगे। यदि भवनों का उचित रखरखाव नहीं किया जाता है, तो पट्टादाता के मुख्य कार्यकारी अधिकारी या उनके द्वारा अधिकृत किसी भी अधिकारी को प्राधिकरण के माध्यम से रखरखाव करवाने और पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक से खर्च की गई राशि वसूल करने का अधिकार होगा। पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक अपनी संपत्ति से संबंधित रखरखाव राशि के भुगतान के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे। पट्टादाता द्वारा भवन के रखरखाव पर खर्च की गई राशि पर कोई आपत्ति स्वीकार नहीं की जाएगी और पट्टादाता का निर्णय अंतिम होगा।

(25) पट्टादाता को पट्टे पर दी गई भूमि के किसी भी भाग में स्थित सभी खानों और खनिजों, खंदकों, सोने की धुलाई, मिट्टी के तेलों और खदानों पर पूर्ण अधिकार और स्वामित्व होगा, और पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक के शांतिपूर्ण कब्जे और उपभोग के अधिकार को प्रभावित किए बिना, इन खानों की खोज, निष्कासन और उपभोग के उद्देश्य से यथोचित रूप से आवश्यक या उपयुक्त सभी कार्य और गतिविधियाँ करने का अधिकार होगा।

(26) पट्टादाता को बिना किसी मांग नोटिस जारी किए वार्षिक रूप से अग्रिम रूप से पट्टा किराया प्राप्त करने का अधिकार है।

(27) पट्टे पर दी गई भूमि के किसी भी भाग पर निर्मित कोई भी भवन (मुख्य गतिविधि को छोड़कर) पट्टाधारक/उप-पट्टाधारकों द्वारा समय-समय पर उप-नियमों में निर्धारित नियमों और शर्तों के अधीन उप-पट्टे पर दिया जा सकता है। हालांकि, उप-पट्टाधारकों को भूमि उपयोग के लिए वैधानिक कानूनों/उप-नियमों, मास्टर प्लान, भवन विनियमों और उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 के अंतर्गत निर्मित निर्देशों का पालन करना होगा और वे इसमें निहित सभी अनुबंधों और शर्तों से बाध्य होंगे तथा इन सभी के लिए उत्तरदायित्वपूर्वक उत्तरदायी होंगे।

(28) पट्टादाता के मुख्य कार्यकारी अधिकारी, पट्टाधारक के परामर्श से, इन नियमों और शर्तों में ऐसे संशोधन, परिवर्धन, परिवर्तन या संशोधन कर सकते हैं, जिन पर मुख्य कार्यकारी अधिकारी और पट्टाधारक के बीच पारस्परिक सहमति हो।

(29) पट्टाधारक, पट्टादाता को उन सभी कार्यवाहियों, मुकदमों, दावों, मांगों और कार्यवाही तथा किसी भी हानि, क्षति, लागत या व्यय से होने वाले हानि की भरपाई करेगा जो पट्टाधारक द्वारा एसडीजेड के विकास के संबंध में किए गए या न किए गए किसी भी कार्य के कारण पट्टादाता को हो सकता है।

(30) पट्टादाता, पट्टाधारक को हस्तांतरित भूमि में स्वामित्व संबंधी दोष और/या पट्टादाता के अधिकारों से उत्पन्न होने वाली किसी भी प्रकार की हानि, क्षति और व्यय के लिए सभी कार्यवाही, कार्यवाई, तृतीय पक्ष दावों के विरुद्ध क्षतिपूर्ति करेगा, बचाव करेगा और उसे हानिरहित रखेगा।

(31) पट्टाधारक, पट्टादाता/अन्य की किसी भी संपत्ति को निर्माण कार्य के निष्पादन के परिणामस्वरूप होने वाली किसी भी क्षति के दावों के विरुद्ध और पट्टाधारक या उसके कामगारों या प्रतिनिधियों के कार्यों से उत्पन्न होने वाली क्षति के दावों के विरुद्ध पट्टादाता को क्षतिपूर्ति करता रहेगा, जो कि:-

ए. पट्टे पर दी गई भूमि से सटे या उससे लगे किसी भवन या उसके किसी भाग या अन्य संरचना को हानि पहुंचाता या नष्ट करता है।

बी. पट्टे पर दी गई भूमि पर नींव, सुरंगें या अन्य गड्ढे खुले या मौसम के संपर्क में रहते हैं जिससे आस-पास की इमारतों को कोई क्षति पहुंच सकती है।

सी. किसी भी इमारत की नींव के पास गड्ढा खोदना जिससे उस इमारत को कोई चोट या क्षति पहुंचे।

(32) क्षतिपूर्ति का आकलन पट्टादाता द्वारा किया जाएगा, जिसका निर्णय क्षति या हानि की सीमा या देय राशि के संबंध में अंतिम और पट्टाधारक पर बाध्यकारी होगा।

(33) पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक किसी भी प्रकार की ऐसी तस्वीर, पोस्टर या अन्य सामग्री प्रदर्शित नहीं करेंगे जो नैतिकता के विरुद्ध हो, अश्लील हो या अनैतिक हो। पट्टाधारक/उप-पट्टाधारक पट्टे पर दी गई भूमि पर निर्मित होने वाले भवन की बाहरी दीवार के किसी भी भाग पर कोई विज्ञापन या तख्ती प्रदर्शित नहीं करेंगे, सिवाय उन स्थानों के जो प्राधिकरण द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्दिष्ट किए गए हों।

(34) इस पट्टा विलेख के अंतर्गत पट्टादाता द्वारा प्रयोग की जाने वाली सभी शक्तियाँ पट्टादाता के मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं, जो अपने किसी अन्य अधिकारी को भी इस पट्टा विलेख के अंतर्गत प्रयोग की जाने वाली सभी या किसी भी शक्ति का प्रयोग करने के लिए अधिकृत कर सकते हैं। ऐसे प्राधिकरण की एक प्रति पट्टादाता द्वारा पट्टाधारक को प्राधिकरण जारी होते ही तुरंत सौंप दी जाएगी।

(35) इस संविदा के अंतर्गत पट्टादाता द्वारा पट्टाधारक को दी गई कोई भी छूट या रियायत किसी भी तरह से पट्टादाता के विधिक अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगी।

(36) पट्टादाता और पट्टाधारक एतद्वारा सहमत हैं कि इस संविदा के अंतर्गत किसी भी पक्ष को सभी सूचनाएँ व्यक्तिगत रूप से दी जाएँगी या पंजीकृत डाक द्वारा पावती सहित या फैक्स द्वारा नीचे दिए गए पते पर या ऐसे किसी अन्य पते पर भेजी जाएँगी जो भविष्य में उस पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को लिखित रूप में निर्दिष्ट किया जाए। व्यक्तिगत रूप से दी गई सूचनाएँ प्राप्ति की तिथि को प्राप्त मानी जाएँगी, पंजीकृत डाक द्वारा भेजी गई सूचनाएँ डाक द्वारा भेजे जाने के दसवें दिन प्राप्त मानी जाएँगी, और फैक्स द्वारा भेजी गई सूचनाएँ

प्रेषण के एक (1) कार्यदिवस बाद प्राप्त मानी जाएँगी, बशर्ते (i) प्राप्ति की मौखिक पुष्टि की जाए और (ii) उसकी मूल प्रति पाँच (5) कार्यदिवसों के भीतर शीघ्र ही डाक द्वारा भेजी जाए।

(ए) पट्टादाता को सूचनाएँ:

यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण (वाईईए),

ए-1, प्रथम मंजिल वाणिज्यिक परिसर,

सेक्टर-बीटा-II,

ग्रेटर नोएडा,

जिला गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश, भारत।

ध्यान दें: मुख्य कार्यकारी अधिकारी

टेलीफोन नंबर 0120-4291361, फैक्स नंबर 0120-4291360.

(बी) पट्टाधारक को सूचनाएँ:

जेपीएसके स्पोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

सेक्टर-128, नोएडा 201304,

जिला गौतमबुद्धनगर उत्तर प्रदेश

ध्यान दें: श्री समीर गौर (मैनेजिंग डायरेक्टर एवं सीईओ)

टेलीफोन नंबर: 0120-4609000, फैक्स नंबर: 0120-4609025

पट्टा की शर्तों के अंतर्गत या उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम 1976 (यू.पी. अधिनियम संख्या 6 / 1976) या उसके अंतर्गत बनाए गए किसी भी नियम या विनियम के अंतर्गत आवश्यक सभी नोटिस, आदेश और अन्य अभिलेख, यू.पी. शहरी योजना और विकास अधिनियम 1973 की धारा 43 के अंतर्गत विधिवत रूप से तामील किए गए माने जाएंगे, जैसा कि यू.पी. राष्ट्रपति अधिनियम (संशोधन सहित पुनः अधिनियमन) अधिनियम 74 (यू.पी. अधिनियम संख्या 30 / 1974) द्वारा पुनः अधिनियमित और संशोधित किया गया है। (37) यह पट्टा विलेख गौतम बुद्ध नगर स्थित जिला न्यायालय या इलाहाबाद उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन होगा।

(38) पट्टादाता को देय सभी बकाया राशियाँ, उस समय लागू किसी अन्य विधि के अंतर्गत उसके अन्य अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जा सकेंगी, हालांकि यह इस विलेख की शर्तों के अधीन होगा।

(39) उत्तर प्रदेश सरकार की अधिसूचना संख्या केएन 5-3279/XI-2009-500 (54)-2009 दिनांक 17 अगस्त, 2009 (लखनऊ) द्वारा पट्टाधारक से पट्टाधारक को भूमि अंतरण के दस्तावेजों पर लगने वाले स्टाम्प शुल्क को माफ कर दिया गया है। यह अधिसूचना अनुसूची-IV के रूप में संलग्न है और इसके साथ ही उत्तर प्रदेश सरकार के विशेष सचिव, आईडीसी-3 द्वारा दिनांक 26 अगस्त, 2009 को जारी पत्र संख्या 2922/77-3-09-50 (अवस्थापना)/09 टी.सी. दिनांक 26 अगस्त, 2009 का भी उल्लेख है, जो अनुसूची-V के रूप में संलग्न है। तदनुसार, इस पट्टा विलेख पर कोई स्टाम्प शुल्क देय नहीं है।

इसके प्रमाण स्वरूप पट्टादाता और पट्टाधारक ने उपर्युक्त तिथि, माह और वर्ष को, नीचे वर्णित तरीके से, अपनी-अपनी ओर से इस अभिलेख पर हस्ताक्षर करवाए हैं।”

81. पक्षकारों के बीच विवाद का मुख्य बिंदु यह है कि पट्टा विलेख के निष्पादन के परिणामस्वरूप, आवंटन पत्र का खंड 4.2, जो प्रीमियम या किशतों के भुगतान में डिफॉल्ट होने की स्थिति में वाईईए को पट्टा रद्द करने का अधिकार प्रदान करता है, क्या अभी भी प्रभावी रहेगा। यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि पट्टा विलेख में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था। इससे जुड़ा प्रश्न यह भी है कि क्या आवंटन रद्द करने से याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टा और उसके अंतर्गत प्रदत्त अधिकार समाप्त हो जाएंगे या नहीं। याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि पट्टा विलेख निष्पादित होने के बाद, आवंटन पत्र उन भूमि भूखंडों के लिए अप्रभावी हो जाता है जिनके लिए पट्टा विलेख निष्पादित किए गए हैं, क्योंकि यह पट्टा विलेख द्वारा प्रतिस्थापित हो गया है, जो पक्षकारों के बीच आवश्यक संविदा है। दूसरी ओर, वाईईए के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि आवंटन पत्र और पट्टा विलेख एक ही उद्देश्य के लिए निष्पादित किए गए थे और वे एक साथ प्रभावी हैं। यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रत्येक संविदा पर उसके उद्देश्य और उसकी सभी शर्तों के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए और तदनुसार, पक्षकारों के वास्तविक इरादे को समझने के लिए संपूर्ण संदर्भ पर विचार किया जाना चाहिए [बिहार राज्य विद्युत बोर्ड बनाम ग्रीन रबर इंडस्ट्रीज: (1990) 1 एससीसी 731]। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि जहां लेनदेन एक दस्तावेज का विषय नहीं है, बल्कि कई दस्तावेजों का विषय है, जो एक दूसरे का संदर्भ देते हैं, या उन सभी को पढ़ने से संपूर्ण संविदा का वर्णन होता है, तो न्यायालय उन सभी पर एक साथ विचार कर सकता है। **मैनक्स बनाम व्हाइटली: (1912) 1 च 735; इंफ्रास्ट्रक्चर लीजिंग एंड फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम एचडीएफसी बैंक लिमिटेड एवं अन्य: 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1371 एमटीएनएल बनाम केनरा बैंक: (2020) 12 एससीसी 767 और कॉक्स एंड किंग्स लिमिटेड बनाम एसएपी इंडिया (पी) लिमिटेड: (2024) 4 एससीसी 1** पर भरोसा किया गया है; यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि आवंटन पत्रों और एसडीजेड नीति के अनुपालन में पट्टा विलेख निष्पादित किए गए थे और चूंकि यह एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति करता है, इसलिए उनकी शर्तें बिना किसी असंगति के सह-अस्तित्व में हैं। पक्षकारों का वास्तविक आशय संविदा को समझने के तरीके से जाना जा सकता है, जिससे पता चलता है कि याचिकाकर्ता ने पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद भी आवंटन पत्रों में उल्लिखित विभिन्न प्रावधानों का लाभ उठाने का प्रयास जारी रखा, जो याचिकाकर्ता को प्रदान भी किए गए थे। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पक्षकारों ने संविदा को इस प्रकार समझा था कि आवंटन पत्र और पट्टा विलेख एक साथ प्रभावी रहेंगे। याचिकाकर्ता को यह तर्क देने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद भी आवंटन पत्र में उल्लिखित प्रावधानों का लाभ उठाने के कारण आवंटन पत्र पूरी तरह से निरस्त हो गए थे।

82. **मैनक्स बनाम व्हाइटली** मामले में, चांसरी डिवीजन ने कई दस्तावेजों में निहित लेनदेन की व्याख्या से संबंधित विधि को इस प्रकार निर्धारित किया:

"...जहां कई विलेख एक ही लेन-देन का हिस्सा होते हैं और एक ही समय में निष्पादित किए जाते हैं, तो इस मामले से संबंधित सभी उद्देश्यों के लिए उनका वही प्रभाव होता है मानो वे एक ही विलेख हों। प्रत्येक विलेख अन्य सभी के निष्पादित होने के भरोसे पर निष्पादित किया जाता है और इसका उद्देश्य मात्र एक ही लेन-देन के हिस्से के रूप में कार्य करना है, और यदि कोई पक्षकारों पर साम्या लागू करना चाहता है, तो वह साम्या पूरे लेन-देन से उत्पन्न होनी चाहिए। तीसरे पक्ष के लिए प्रत्येक विलेख को एक अलग और स्वतंत्र लेन-देन का

प्रतिनिधित्व करने वाले विलेख के रूप में मानकर उन अधिकारों का दावा करना उचित नहीं है जो उन्हें मात्र तभी प्राप्त होंगे जब चयनित विलेख द्वारा दर्शाया गया लेन-देन अलग से प्रभावी हो। दूसरे शब्दों में, साम्या के सिद्धांत चीजों के सार से संबंधित होते हैं, जो ऐसे मामले में पूरा लेन-देन होता है, न कि किसी एक विलेख के अन्य विलेखों के बिना अकेले प्रभावी होने जैसी अवास्तविकताओं से।"

83. इंफ्रास्ट्रक्चर लीजिंग एंड फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड बनाम एचडीएफसी बैंक लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिवादी बैंक और अपीलकर्ता के बीच वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए निष्पादित 'मास्टर फैसिलिटी एग्रीमेंट' और उनके बीच निष्पादित 'असाइनमेंट एग्रीमेंट' की व्याख्या करते हुए **मैनक्स बनाम व्हाइटली (उपरोक्त)** के निर्णय को लागू किया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "जहां लेनदेन एक दस्तावेज़ का विषय नहीं है, बल्कि कई दस्तावेज़ों का विषय है जो एक दूसरे का संदर्भ देते हैं, या उन सभी को पढ़ने से संपूर्ण संविदा का वर्णन होता है, तो न्यायालय उन सभी पर एक साथ विचार कर सकता है।"

84. ऊपर उल्लिखित व्याख्या के सिद्धांत एक ही लेन-देन से उत्पन्न अनेक दस्तावेज़ों के संबंध में निर्धारित किए गए हैं। ये अनेक अभिलेख एक ही समय में निष्पादित किए गए थे। फिर भी, एक ही लेन-देन से उत्पन्न अनेक दस्तावेज़ों के संबंध में इन निर्णयों में निर्धारित व्याख्या के सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक हैं। यहाँ हम **क्रिएटिव इन्फोसिटी लिमिटेड बनाम गुजरात इन्फॉर्मेटिक्स लिमिटेड (मनु/जीजे/0516/2009)** मामले में गुजरात उच्च न्यायालय के एक निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं। उक्त मामले में, प्रतिवादी, जो गुजरात सरकार की पूर्ण स्वामित्व वाली कंपनी है और गुजरात राज्य द्वारा गुजरात अवसंरचना विकास अधिनियम, 1999 की धारा 2(ड) के अर्थ में 'सरकारी एजेंसी' के रूप में निर्गमित है, याचिकाकर्ता ने एक रियायत अनुबंध दिनांक 01.08.2000 को एक संयुक्त उद्यम कंपनी के पक्ष में निष्पादित किया था। इस समझौते का उद्देश्य विभिन्न अवसंरचना परियोजनाओं में निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहित करना था। इसके अंतर्गत, याचिकाकर्ता को गांधीनगर के पास इन्फोसिटी के विकास का कार्य सौंपा गया था। उक्त रियायत समझौते में याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टा निष्पादित करने की परिकल्पना की गई थी। इसके अनुसरण में, एक पट्टा अनुबंध दिनांक 26.02.2001 निष्पादित किया गया। प्रश्न उठा कि क्या पक्षकारों के बीच विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है, क्योंकि रियायत समझौते में ऐसा प्रावधान था, जबकि रियायत समझौते के अनुसरण में निष्पादित पट्टा समझौते में ऐसा प्रावधान नहीं था। उपरोक्त पृष्ठभूमि में, संपूर्ण योजना और उसके उद्देश्य तथा पक्षकारों के बीच हुए पत्राचार को ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित निर्णय लिया गया है:

"17. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रतिवादी और वादी के बीच मुख्य पट्टा अनुबंध हुआ था और रियायत समझौते के अनुसार 116 एकड़ भूमि वादी को पट्टे पर दी गई थी। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि मुख्य पट्टा अनुबंध रियायत समझौते का अनुसरण करता है और पक्षकारों को रियायत समझौते के साथ-साथ मुख्य पट्टा समझौते में दिए गए प्रावधानों के अनुसार कार्य करना था। अतः, यह कहा जा सकता है कि रियायत अनुबंध मुख्य अनुबंध है, और इसलिए, रियायत अनुबंध और मुख्य पट्टा अनुबंध दोनों को एक साथ

पढ़ा जाना आवश्यक है और इन्हें अलग-अलग नहीं पढ़ा जा सकता है, जैसा कि वादी की ओर से तर्क दिया गया है।

..... वादी और प्रतिवादी के बीच हुए विभिन्न पत्राचारों, अर्थात् प्रदर्श 39/1 से 39/9 में प्रस्तुत दस्तावेजों को ध्यान में रखते हुए भी, वादी का पूरा मामला यही साबित करता है कि रियायत अनुबंध और मुख्य पट्टा अनुबंध दोनों ही अस्तित्व में हैं और वास्तव में वादी ने रियायत समझौते में दिए गए मध्यस्थता खंड के संरक्षण को स्वीकार किया है। इसलिए, वादी की ओर से यह तर्क कि मुख्य पट्टा समझौते के निष्पादन के बाद रियायत अनुबंध अस्तित्व में नहीं है और/या समाप्त हो गया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(ज़ोर दिया गया)

85. निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता को भूमि राज्य की एसडीजेड नीति के उद्देश्यों को पूरा करने और उन्हें प्रभावी बनाने के लिए आवंटित की गई थी। इसलिए, एसडीजेड नीति के संदर्भ और उद्देश्यों तथा समय-समय पर पक्षकारों के बीच निष्पादित अनेक दस्तावेजों से अलग, मात्र आवंटन पत्रों और पट्टा विलेख में उल्लिखित शर्तों के आधार पर दलीलों का उत्तर नहीं दिया जा सकता। अतः, हम एसडीजेड नीति और आवंटन पत्र, आरक्षण पत्र और आवंटन पत्रों में उल्लिखित शर्तों की विस्तृत रूप से जांच करेंगे। जैसा कि उल्लेख किया गया है, सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 6 आवंटन पत्रों के अनुसरण में विभिन्न भूखंडों के लिए 32 पट्टा विलेखों के निष्पादन के बाद, क्या आवंटन पत्र पूरी तरह से निरस्त हो गए थे और मात्र आवंटन रद्द करने और पट्टा रद्द न करने का क्या प्रभाव होगा।

86. विशेष विकास क्षेत्र परियोजना ('एसडीजेड/एसडीजेड') गौतम बुद्ध नगर के सेक्टर 25 में स्थित 'एसडीजेड' परियोजना की परिकल्पना ताज एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास क्षेत्र के नियोजित औद्योगिक विकास के लिए शासनादेश दिनांक 29.12.2007 में निहित नीति अभिलेख के अंतर्गत की गई थी। यह मुख्य रूप से यमुना नदी के किनारे स्थित क्षेत्र है। ताज एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण (संक्षेप में 'टीईए'), जिसका नाम बाद में अधिसूचना दिनांक 11.07.2008 द्वारा 'यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण' (संक्षेप में 'वाईईए') कर दिया गया, को अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले विकास क्षेत्र में एसडीजेड परियोजना को लागू करने के लिए नोडल एजेंसी के रूप में नामित किया गया था। प्रत्येक एसडीजेड में अन्य गतिविधियों के अतिरिक्त एक मुख्य गतिविधि 'कोर गतिविधि' होगी। कोर गतिविधि औद्योगिक सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, संस्थागत खेल, मनोरंजन या सेवा उद्योग हो सकती है। त्वरित और उच्च गुणवत्ता वाले विकास को सुनिश्चित करने के लिए, भूमि आवंटन को दो भागों में विभाजित किया गया था: (क) 1000 फीट से कम और (ख) 1000 फीट या उससे अधिक। श्रेणी (ख) में आने वाले क्षेत्र को एसडीजेड के रूप में वर्गीकृत किया गया था। किसी भी सतत विकास क्षेत्र (एसडीजेड) में मुख्य गतिविधि कुल क्षेत्रफल के कम से कम 35% हिस्से को कवर करेगी। अन्य अनुमत गतिविधियाँ वाणिज्यिक गतिविधियाँ (20% से अधिक नहीं), संस्थागत और सेवाएँ (कम से कम 25%

से अधिक नहीं), सड़क और अन्य खुले क्षेत्र (25% से कम नहीं) और आवास (15% से कम नहीं) थीं। नीति के अंतर्गत, समाचार पत्रों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में विज्ञापन के माध्यम से जनता से आवेदन आमंत्रित किए जाने थे। आवेदकों की पात्रता, जिसमें उनकी वित्तीय क्षमता, अनुभव आदि शामिल थे, निर्दिष्ट की गई थी। चयन प्राधिकरण द्वारा गठित एक समिति द्वारा किया जाना था। समिति का प्रस्ताव बोर्ड और फिर सरकार की स्वीकृति के अधीन होगा। आवंटन 90 वर्षों की अवधि के लिए पट्टे के आधार पर होगा, जिसके लिए आवंटिती और टीईए के बीच पट्टा विलेख निष्पादित किया जाना था। भूमि निर्धारित पट्टा किराया और अधिग्रहण लागत के साथ-साथ बाहरी विकास शुल्क पर दी जाएगी। अधिग्रहण लागत, विकास शुल्क और पट्टा किराया समय-समय पर टीईए द्वारा निर्धारित किया जाएगा। विकास प्राधिकरण की नीति/नियमों में जिन पहलुओं का प्रावधान नहीं है, उनका निर्णय 'टीईए' द्वारा किया जाएगा। आवंटिती को कोर क्षेत्र की भूमि को छोड़कर अन्य भूमि को टीईए की अनुमति या अनुमोदन के बिना उप-पट्टे पर देने का अधिकार होगा। कोर क्षेत्र के उप-पट्टे के संबंध में, टीईए की पूर्व अनुमति आवश्यक होगी। अलग-अलग छोटे भूखंडों के लिए एकाधिक उप-पट्टे अनुमत हैं। एकाधिक किरायेदारी और उप-पट्टे भी अनुमत हैं। समय आने पर आवंटिती निर्धारित शर्तों की पूर्ति पर भूमि का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त कर सकता है। आवंटिती को परियोजना की रूपरेखा, भूमि उपयोग, आवश्यक सेवाओं, प्रबंधन, कार्यान्वयन और रखरखाव आदि का विस्तृत परियोजना विवरण प्रस्तुत करना होगा। आवंटिती को कब्जा सौंपे जाने के बाद संपूर्ण विकास टीईए के पर्यवेक्षण और नियंत्रण में होगा और समय-समय पर निर्धारित उसके नियम और विनियम लागू होंगे।

87. 11.06.2008 को याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि 19 मार्च 2008 को प्राप्त उसके आवेदन के अनुसार, जो टीईए कार्यालय में 24.03.2008 को क्रमांक 3 पर पंजीकृत है, लगभग 1000 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाला एक एसडीजेड (खेल गतिविधियों के विकास के लिए आरक्षित क्षेत्र) उसे आवंटित किया गया है। एसडीजेड के आवंटन की शर्तों और नियमों को निर्दिष्ट करने वाला आवंटन पत्र यथाशीघ्र जारी किया जाना था। 28.08.2008 को वाईईए द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में एक आरक्षण पत्र जारी किया गया, जिसमें सेक्टर संख्या 25 में 1000 हेक्टेयर भूमि को एसडीजेड के विकास के लिए आरक्षित किया गया, जिसमें खेल गतिविधियां मुख्य गतिविधि होंगी और उसमें निर्धारित शर्तों और नियमों का पालन करना होगा। आरक्षण पत्र के खंड 1.1 में यह दर्शाया गया है कि यह आरक्षण वाईईए द्वारा उस भूमि पर कब्जा लेने की प्रत्याशा में किया गया था, जिसके संबंध में अधिग्रहण की कार्यवाही प्रगति पर बताई गई थी। उक्त भूमि के पूर्ण या आंशिक आवंटन पत्र समय रहते जारी किए जाएंगे। आरक्षण पत्र का खंड 1.1 इस प्रकार है:

“1.1 उपर्युक्त भूमि का आरक्षण आपके पक्ष में इस प्रत्याशा में किया जा रहा है कि वाईईए उस भूमि पर कब्जा ले लेगा जिसके लिए अधिग्रहण की कार्यवाही पहले से ही चल रही है। उक्त भूमि के पूर्ण या आंशिक आवंटन पत्र यथाशीघ्र जारी किए जाएंगे।”

88. याचिकाकर्ता को आवंटन पत्र प्राप्त होने के साठ दिनों के भीतर वाईईए के पक्ष में एक सौ करोड़ रुपये की प्रदर्शन सुरक्षा जमा करनी थी। यह प्रदर्शन सुरक्षा तब तक बनाए रखनी थी जब तक कि मुख्य गतिविधि चालू

नहीं हो जाती। वाईईए ने आवंटन की शर्तों के अनुसार आबंटिती द्वारा वाईईए को देय किसी भी बकाया राशि को प्रदर्शन सुरक्षा से वसूल करने का अधिकार सुरक्षित रखा था, यदि ऐसी राशि वाईईए द्वारा आबंटिती को नोटिस दिए जाने के तीस दिनों के भीतर भुगतान नहीं की जाती है। आबंटिती को प्रदर्शन सुरक्षा को उसकी पूरी सीमा तक पुनःपूर्ति करनी थी। खंड 3.2 के अनुसार आवंटित भूमि के लिए प्रतिफल को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया था: एक अनंतिम प्रीमियम और दूसरा अंतिम प्रीमियम। अनंतिम प्रीमियम का अर्थ आवंटन पत्र में निर्धारित प्रीमियम होगा। अंतिम प्रीमियम का अर्थ वह प्रीमियम होगा जो अंततः वाईईए द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम की करार नियमावली के अंतर्गत या किसी भी न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाएगा। आवंटित भूमि के लिए प्रीमियम में वास्तविक अधिग्रहण लागत, जिसमें बाद में निर्धारित किया जाने वाला ब्याज शामिल है, और बाह्य विकास लागत @ 721 रुपये प्रति वर्ग मीटर शामिल होगी। इसके अतिरिक्त, आवंटिती को प्रीमियम राशि पर 2.5% प्रति वर्ष की दर से पट्टा किराया, कब्जे की सुपुर्दगी की तिथि से देय था। आवंटिती आवंटन पत्र में उल्लिखित अनंतिम प्रीमियम का 20% अनंतिम पट्टा किराया सहित जमा करने के लिए बाध्य था, बशर्ते कि प्रदर्शन सुरक्षा के विरुद्ध बयाना राशि का समायोजन न किया गया हो। यह राशि आवंटन पत्र जारी होने की तिथि से 90 दिनों के भीतर जमा करनी थी। विशेष परिस्थितियों में, उपरोक्त राशि जमा करने की समय सीमा बढ़ाने का अधिकार वाईईए के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को वाईईए द्वारा निर्धारित शुल्क के भुगतान पर दिया गया था। अनंतिम प्रीमियम का शेष 80% 20 अर्धवार्षिक किस्तों में देय था, जिसमें घटती राशि पर ब्याज और प्रचलित एसबीआई पीएलआर शामिल थे। अनंतिम प्रीमियम समय-समय पर संशोधित किया जा सकता था। 725 रुपये प्रति वर्ग मीटर की बाह्य विकास लागत अनंतिम थी और विकास लागत की अंतिम गणना के अधीन थी। धारा 5.2 के अंतर्गत वाईईए को भूमि आवंटन और उसके अनुसरण में निष्पादित पट्टा विलेखों को बिना किसी दायित्व के रद्द करने का अधिकार दिया गया है, यदि आवंटन प्राप्तकर्ता को दोषों को सुधारने के लिए तीन नोटिस देने के बाद भी डिफॉल्ट बनी रहती है। संदर्भ की सुविधा के लिए धारा 5.2 नीचे दी गई है:

“5.2 डिफॉल्ट की स्थिति में, वाईईए आबंटिती को नोटिस जारी करेगा जिसमें डिफॉल्ट को सुधारने के लिए अधिकतम 30 दिन का समय दिया जाएगा। ऐसे तीन से अधिक नोटिस जारी नहीं किए जाएंगे और यदि उक्त नोटिसों की अवधि समाप्त होने के बाद भी डिफॉल्ट जारी रहती है, तो वाईईए बिना किसी दायित्व के भूमि का आवंटन और उससे संबंधित पट्टे के विलेख रद्द कर सकता है।”

89. आवंटन पत्र में उल्लिखित उप-पट्टे संबंधी प्रावधान आरक्षण पत्र में भी उल्लिखित हैं (खंड 9.12, 9.13, 9.14 देखें)। आबंटिती को परियोजना के कार्यान्वयन हेतु धन जुटाने के लिए संपत्ति को गिरवी रखने का अधिकार कुछ शर्तों के अधीन दिया गया था। आबंटिती को पट्टा विलेख के निष्पादन की तिथि से पांच वर्षों के भीतर मुख्य गतिविधि के लिए निर्धारित अनुमत क्षेत्र का न्यूनतम 40% पूर्ण करना आवश्यक था। विशेष परिस्थितियों में, उक्त अवधि को बढ़ाया जा सकता था। उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 और उसके अंतर्गत निर्मित विनियम लागू होते थे।

90. 24.02.2009 को, वाईईए ने गौतम बुद्ध नगर जिले के सदर तहसील में स्थित मथुरापुर, मुस्तफाबाद, अट्टा गुजरां, बेला कलां और औरंगपुर गांवों में 311.2641 हेक्टेयर भूमि के पहले लॉट के आवंटन का पत्र जारी किया। यह लॉट 1000 हेक्टेयर भूमि का हिस्सा था और इसके साथ संलग्न 'संलग्नक-1' में निर्धारित नियमों और शर्तों के अधीन था। नियम और शर्तें आरक्षण पत्र में दी गई शर्तों के लगभग समान थीं, सिवाय इसके कि आवंटित भूमि का प्रीमियम 941.59 रुपये प्रति वर्ग मीटर निर्धारित किया गया था, जिसमें भविष्य में मेट्रो के लिए लगने वाले किसी भी शुल्क को छोड़कर 574 रुपये प्रति वर्ग मीटर अनुमानित बाह्य विकास शुल्क शामिल नहीं था। आवंटिती को आवंटन पत्र जारी होने की तिथि से नब्बे दिनों के भीतर बाह्य विकास लागत का 20% जमा करना था और शेष 80% बाह्य विकास लागत का बीस अर्धवार्षिक किस्तों में ब्याज सहित भुगतान करना था। यह भुगतान एसबीआई पीएलआर में प्रीमियम भुगतान के लिए निर्धारित अनुसूची के अनुसार किया जाना था। आवंटन पत्र के खंड 4 में भुगतान में डिफॉल्ट के परिणामों का प्रावधान इस प्रकार किया गया था:

“4. भुगतान में डिफॉल्ट:

4.1 प्राधिकरण को किसी भी बकाया राशि (प्रदर्शन सुरक्षा को छोड़कर) के भुगतान में डिफॉल्ट होने की स्थिति में, आवंटिती को डिफॉल्ट की अवधि के लिए बकाया राशि पर प्रचलित एसबीआई पीएलआर + 3% प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त ब्याज का भुगतान करना होगा, जो अर्धवार्षिक रूप से चक्रवृद्धि होगा।

4.2 डिफॉल्ट की स्थिति में, वाईईए आवंटिती को नोटिस जारी करेगा जिसमें डिफॉल्ट को सुधारने के लिए अधिकतम 30 दिन का समय दिया जाएगा। ऐसे तीन से अधिक नोटिस जारी नहीं किए जाएंगे और यदि उक्त नोटिसों की अवधि समाप्त होने के बाद भी डिफॉल्ट जारी रहती है, तो वाईईए बिना किसी दायित्व के भूमि का आवंटन और उससे संबंधित पट्टे के विलेख रद्द कर सकता है।

4.3 आवंटिती द्वारा किया गया कोई भी भुगतान, यदि कोई हो, तो पहले देय ब्याज की ओर समायोजित किया जाएगा, और उसके बाद शेष राशि किस्त या किसी अन्य देय राशि की ओर समायोजित की जाएगी।

4.4 इस पत्र में जहां कहीं भी एसबीआई पीएलआर का उल्लेख किया गया है, उसे भुगतान की नियत तिथि पर लागू माना जाएगा।”

91. आवंटन पत्र जारी होने की तिथि से नब्बे दिनों के भीतर आवंटिती को पट्टा विलेख निष्पादित करना और भूमि का भौतिक कब्जा प्राप्त करना आवश्यक था। पट्टा विलेख के निष्पादन की तिथि को भूमि का वास्तविक कब्जा सौंपने की तिथि माना जाएगा। खंड 7 में आवंटिती द्वारा डीपीआर तैयार करने की प्रक्रिया निर्धारित की गई है, जो इस प्रकार है:

“7. विस्तृत परियोजना रिपोर्ट:

7.1 आवंटन प्राप्तकर्ता को इस आवंटन पत्र जारी होने की तिथि से 6 माह की अवधि के भीतर परियोजना की विस्तृत परियोजना रिपोर्ट (डीपीआर) तैयार करके वाईईए को प्रस्तुत करनी होगी, जिसे परिस्थितियों के अनुसार वाईईए द्वारा उपयुक्त रूप से बढ़ाया जा सकता है। रिपोर्ट में प्रस्तावित मुख्य गतिविधि, भूमि उपयोग, कार्यान्वयन अनुसूची और वित्तीय व्यवस्था आदि का विवरण शामिल होगा।

7.2 हालांकि, चूंकि भूमि का अंतरण आवंटिती को भागों में किया जाना है, इसलिए संपूर्ण स्थल के लिए एक अवधारणा योजना प्रस्तुत की जाएगी और आवंटिती को सौंपे जा रहे भूमि के भाग के लिए विस्तृत योजना भूमि पर कब्जा प्राप्त होने की तिथि से छः माह के भीतर प्रस्तुत की जाएगी।

92. खंड 9.1 संपत्ति के बंधक से संबंधित है, जो इस प्रकार है:

“9. संपत्ति का बंधक:

9.1 आवंटिती परियोजना के कार्यान्वयन के लिए धन जुटाने हेतु बैंकों/वित्तीय संस्थानों/ऋणदाताओं के पक्ष में भूमि को गिरवी रख सकता है, ऐसी शर्तों पर जो आवंटिती, वाईईए और ऋणदाताओं के बीच पारस्परिक रूप से तय की जा सकती हैं।

93. मुख्य गतिविधि के लिए अनुमत कवर किए गए क्षेत्र के 40% भाग को पूरा करने की अवधि पट्टा विलेख के निष्पादन की तिथि से दस वर्ष थी। मुख्य कार्यकारी अधिकारी को इस संबंध में उचित विस्तार देने का अधिकार दिया गया था। खंड 10.1 इस प्रकार है:

“10.1 आवंटन प्राप्तकर्ता को एसडीजेड भूमि के कोर गतिविधि क्षेत्र में आने वाली भूमि के लिए अंतिम पट्टा विलेख के निष्पादन की तिथि से 10 वर्षों की अवधि के भीतर कोर गतिविधि के अनुमत कवर क्षेत्र का न्यूनतम 40% पूरा करना आवश्यक होगा। हालांकि, विशेष परिस्थितियों में मुख्य कार्यकारी अधिकारी या इस संबंध में अधिकृत कोई अन्य अधिकारी परियोजना को पूरा करने के लिए उचित विस्तार प्रदान कर सकता है।”

94. कुल मिलाकर, समान प्रावधानों वाले छः आवंटन पत्र जारी किए गए, जिनका विवरण इस प्रकार है:

एस	पत्र संख्या एवं दिनांक	आवंटित क्षेत्रफल (हेक्टेयर)
1.	वाईईए पत्र संख्या वाईईए/48/2009 दिनांक 24.02.2009	311.2641
2.	वाईईए पत्र संख्या वाईईए/82/2009 दिनांक 20.03.2009	646.7530
3.	वाईईए पत्र संख्या वाईईए/206/2009 दिनांक 10.08.2009	58.4182
4.	वाईईए पत्र संख्या वाईईए/393/2010 दिनांक 27.01.2010	20.2960
5.	वाईईए पत्र संख्या वाईईए/459/2009 दिनांक 23.06.2010	20.5098
6.	वाईईए पत्र संख्या वाईईए/497/2009 दिनांक 07.12.2010	28.0916
कुल		1,085.3327

95. खंड 21 में 23.08.2009 से 23.02.2019 तक बीस अर्धवार्षिक किस्तों में भुगतान अनुसूची का प्रावधान किया गया था।

96. 25 सितंबर, 2009 को प्राधिकरण और मेसर्स जे.पी.एस.के. स्पोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड (याचिकाकर्ता कंपनी में विलय हो चुकी) के बीच 20 मार्च, 2009 के आवंटन पत्र में उल्लिखित भूमि के एक भाग के संबंध में पट्टा विलेख निष्पादित किया गया था। आवंटन पत्र को पट्टा विलेख के साथ अनुसूची-1 के रूप में संलग्न किया गया था। संदर्भ की सुगमता के लिए, पट्टा विलेख के खंड 2 और 3 नीचे दिए गए हैं:-

“2. पट्टादाता ने पट्टाधारक को एसडीजेड सेक्टर संख्या 25 आवंटित किया है, जिसमें खेल को एसडीजेड के विकास के लिए मुख्य गतिविधि के रूप में शामिल किया गया है, पत्र संख्या वाईईए/32/2009 दिनांक 20.03.2009 (आवंटन पत्र अनुसूची-I के रूप में संलग्न है) के माध्यम से उक्त आवंटन पत्र में निहित नियमों और शर्तों पर, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त, लगभग 646.7530 हेक्टेयर भूमि का आवंटन शामिल है, जो कि सलारपुर, मुंजखेड़ा, फतेहपुर अट्टा, गुनपुरा, जगनपुर, अफजेएलपुर, डंकौर और औरंगपुर गांवों में, तहसील सदर, जिला गौतम बुद्ध नगर (यूपी.) में, 90 वर्षों की अवधि के लिए 941.86 रुपये प्रति वर्ग मीटर के प्रीमियम पर पट्टे पर दी गई है, जिसमें बाह्य विकास शुल्क शामिल नहीं है, साथ ही प्रीमियम पर 2.5% प्रति वर्ष की दर से पट्टा किराया भी शामिल है।

3. उक्त आवंटन पत्र के अंतर्गत अपने दायित्वों के आंशिक निर्वहन के रूप में, पट्टादाता एतद्वारा ग्राम गुनपुरा, तहसील सदर, जिला गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश) में स्थित 175.3639 हेक्टेयर भूमि (जिसे इसके बाद पट्टे पर दी गई भूमि कहा जाएगा) को सतत विकास क्षेत्र (एसडीजेड) के विकास के लिए पट्टे पर देने के लिए सहमत है, जिसका विस्तृत विवरण इस दस्तावेज़ में संलग्न अनुसूची-II में दिया गया है, और यह पट्टे पर दी जाने वाली भूमि के नियमों और शर्तों के अनुरूप है।

97. पट्टे पर दी गई भूमि का विवरण अनुसूची-II में दिया गया है और प्रीमियम का भुगतान आवंटन पत्र दिनांक 20.03.2009 में इस संबंध में दिए गए प्रावधान के अनुसार किया जाना था। प्रीमियम के भुगतान के तरीके से संबंधित खंड-3 इस प्रकार है:

“(3) पट्टे की अवधि के दौरान, पट्टाधारक सितंबर 2009 से शुरू होकर, पट्टादाता को प्रीमियम के 2.5% प्रति वर्ष की दर से अग्रिम रूप से पट्टा किराया (“किराया राशि”) का भुगतान करेगा। पट्टाधारक ने पट्टादाता को प्रीमियम राशि के 20% के रूप में 1,21,83,01,561.00 रुपये (एक सौ इक्कीस करोड़ तिरासी लाख एक हजार पाँच सौ एकसठ रुपये मात्र) पट्टादाता के चालू खाता संख्या 30767210435 आईएफएससी कोड एसबीआईएन0004324 में जमा कर दिए हैं। बैंक ऑफ इंडिया, लैंगरस्ट्रोमिया शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, ग्रेटर नोएडा (यूपी.) को 646.7530 हेक्टेयर भूमि के लिए आरटीजीएस के माध्यम से भुगतान किया गया है, जिसमें 175.3639 हेक्टेयर पट्टे पर दी गई भूमि शामिल है, जिसका विवरण अनुसूची-II में दिया गया है, जिसकी प्राप्ति को पट्टादाता स्वीकार करता है। प्रीमियम का शेष 80% 20 अर्धवार्षिक किस्तों में ब्याज सहित देय होगा, जो कि घटती राशि पर प्रचलित एसबीआई पीएलआर की दर से लागू होगा। उपर्युक्त पहली अर्धवार्षिक किस्त आवंटन पत्र जारी होने की तिथि से 180 दिनों के बाद देय होगी, जो आवंटन पत्र दिनांक 20.03.2009 के प्रावधानों के अनुसार होगी।

98. पट्टे पर दी गई भूमि पर विभिन्न गतिविधियों के विकास का अनुपात आरक्षण और आवंटन पत्रों में निर्धारित अनुपात के समान ही रहा। इस प्रकार, सतत विकास क्षेत्र (एसडीजेड) के कुल क्षेत्रफल का कम से कम 35% भाग मुख्य गतिविधि अर्थात् खेलकूद के लिए विकसित किया जाना था, जिसमें सड़कें और खुले स्थान शामिल थे। पट्टे में यह भी प्रावधान था कि निर्दिष्ट भूमि उपयोग प्रतिशत के अधीन रहते हुए, पट्टाधारक को पट्टे पर दी गई भूमि के उपयोग के उद्देश्य और विभिन्न उपयोगों के लिए पट्टे पर दी गई भूमि के क्षेत्रफल के आवंटन का अनन्य अधिकार होगा। आबंटिती को पट्टादाता की अनुमति के बिना पट्टे पर दी गई भूमि के किसी भी भाग को उप-पट्टे पर देने या अनुमति एवं लाइसेंस पर देने का अधिकार था। खंड-5 के अंतर्गत प्राधिकरण की अनुमति के बिना पट्टे पर दी गई भूमि के किसी भी भाग को और प्राधिकरण की अनुमति से मुख्य क्षेत्र को उप-पट्टे पर देने का अधिकार प्रदान किया गया था। आबंटिती को पट्टाधारक, पट्टादाता और ऋणदाताओं के बीच पारस्परिक रूप से तय की गई शर्तों पर भूमि को गिरवी रखने का भी अधिकार दिया गया था।

99. पट्टा विलेख के खंड 38 में पट्टादाता को देय बकाया राशि की वसूली का प्रावधान है, जो कि उस समय लागू किसी अन्य विधि के अंतर्गत उसके अन्य अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, पट्टा विलेख की शर्तों के अधीन रहते हुए, भू-राजस्व के बकाया के रूप में की जाएगी। खंड 38 इस प्रकार है:-

"पट्टादाता को देय सभी बकाया राशि, उस समय लागू किसी अन्य विधि के अंतर्गत उसके अन्य अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाएगी, हालांकि यह इस विलेख की शर्तों के अधीन होगी।"

(ख) पक्षकारों ने संविदा को किस प्रकार समझा:

100. किसी भी बाध्यकारी संविदा की मूलभूत विशेषता आपसी सहमति है, अर्थात् संविदा पर पक्षकारों का एकमत होना। संविदा के अनुसार पक्षकारों द्वारा किया गया कार्य संविदा के प्रति उनकी साझा समझ का एक महत्वपूर्ण सूचक है। इस प्रकार, यह संविदा की शर्तों की व्याख्या में एक महत्वपूर्ण साधन है। सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रांसमिशन कॉर्पोरेशन ऑफ आंध्र प्रदेश लिमिटेड बनाम जीएमआर वेमागिरी पावर जनरल लिमिटेड: (2018) 3 एससीसी 716 में यह अभिनिर्धारित किया कि किसी संविदा के पक्षकारों का वास्तविक आशय उनके द्वारा संविदा को समझने के तरीके से जाना चाहिए और इसके लिए उनके बीच हुए पत्राचार को ध्यान में रखा जा सकता है। निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे दिया गया है:-

"25. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि आयोग के समक्ष प्रतिवादी द्वारा कार्यवाही शुरू किए जाने तक, पक्षकारों ने अपने आचरण और व्यवहार से यह स्पष्ट रूप से समझा था कि पीपीए के अंतर्गत आरएलएनजी को "प्राकृतिक गैस" शब्द में शामिल नहीं किया जाना था। गेडेला सचीदानंद मूर्ति [गेडेला सचीदानंद मूर्ति बनाम आयुक्त, बंदोबस्ती विभाग, (2007) 5 एससीसी 677] में की गई टिप्पणियाँ वर्तमान मामले के तथ्यों के संदर्भ में उपयुक्त मानी जाती हैं: (एससीसी पृष्ठ 688-89, पैरा 32)

"32. ... 'जिस सिद्धांत पर मिस रिच भरोसा करती हैं, वह लॉर्ड डेनिंग, एम.आर. द्वारा एमल्गामेटेड इन्वेस्टमेंट एंड प्रॉपर्टी कंपनी लिमिटेड बनाम टेक्सास कॉमर्स इंटरनेशनल बैंक लिमिटेड [एमल्गामेटेड इन्वेस्टमेंट एंड प्रॉपर्टी कंपनी लिमिटेड बनाम टेक्सास कॉमर्स इंटरनेशनल बैंक लिमिटेड, 1982 क्यूबी 84: (1981) 3 डब्ल्यूएलआर 565 (सीए)], क्यूबी पृष्ठ 121 पर प्रतिपादित किया गया है:

"..... यदि किसी संविदा के पक्षकार अपने व्यवहार के माध्यम से उसकी शर्तों की कोई विशेष व्याख्या करते हैं—जिसके आधार पर वे एक-दूसरे की जानकारी में कार्य करते हैं और अपने आपसी मामलों का संचालन करते हैं—तो वे उस व्याख्या से उसी प्रकार बाध्य होते हैं जैसे कि उन्होंने उसे संविदा में संशोधन के रूप में लिखित रूप में दर्ज किया हो। यह जानने की कोई आवश्यकता नहीं है कि उनकी विशेष व्याख्या सही है या नहीं—या वे गलत थे या नहीं—या उन्होंने मूल शर्तों को ध्यान में रखा था या नहीं। पर्याप्त यही है कि उन्होंने अपने व्यवहार के माध्यम से संविदा की अपनी व्याख्या की है, और उन्हें इससे पीछे हटने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

(जोर दिया गया)

101. मैकडरमॉट इंटरनेशनल इंक बनाम बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड, (2006) 11 एससीसी 181 में, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से यह अभिनिर्धारित किया कि:

112. यह सर्वविदित है कि संविदा की शर्तें स्पष्ट या निहित हो सकती हैं। संविदा की व्याख्या करते समय पक्षकारों का आचरण भी एक महत्वपूर्ण कारक होता है। मध्यस्थता समझौते की व्यापक प्रकृति, दायरे और सीमा को ध्यान में रखते हुए, मध्यस्थों के अधिकार क्षेत्र में संविदा समझौते की व्याख्या करना आता है और पक्षकारों के आचरण को ध्यान में रखते हुए निर्णय सुनाते समय उन्हें गुमराह करने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यह भी सर्वविदित है कि संविदा की व्याख्या के लिए पक्षकारों द्वारा किए गए पत्राचार को भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक है।"

(जोर दिया गया)

102. आवंटन पत्र के खंड 3.6 के अंतर्गत निम्नलिखित को शक्ति प्रदान की गई है विशेष परिस्थितियों में वार्डईए के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को किशतों के भुगतान की निर्धारित अवधि को 30 दिनों तक बढ़ाने का अधिकार है, बशर्ते विस्तारित अवधि के लिए प्रचलित एसबीआई पीएलआर + 3% प्रति वर्ष की दर से अतिरिक्त ब्याज का भुगतान किया जाए। पट्टा विलेखों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था। हालांकि, याचिकाकर्ता ने उक्त प्रावधान का हवाला देते हुए समय-समय पर समय विस्तार का अनुरोध किया और उसे विस्तार प्रदान भी किया गया। याचिकाकर्ता के अनुरोध पर प्राधिकरण द्वारा दिए गए विस्तारों का विवरण इस प्रकार है:-

क्रमांक	याचिकाकर्ता के अनुरोध की तिथि	विस्तार प्रदान करने की तिथि
1.	18 फरवरी 2014	21 फरवरी 2014 @ पृष्ठ 21, याचिकाकर्ता के छोटे पूरक शपथपत्र पर प्राधिकरण का जवाब

2.	07 अगस्त 2014	13 अगस्त 2014 @ पृष्ठ 22, याचिकाकर्ता के छठे पूरक शपथपत्र पर प्राधिकरण का जवाब
3.	01 दिसंबर 2014	29 दिसंबर 2014 , पृष्ठ 23, याचिकाकर्ता के छठे पूरक शपथपत्र पर प्राधिकरण का जवाब

103. आवंटन पत्रों में खंड 4.1 के अंतर्गत डिफॉल्ट राशि पर अतिरिक्त ब्याज के भुगतान का भी समान प्रावधान था।

अर्थात् -

"डिफॉल्ट की स्थिति में, वाईईए आबंटिती को नोटिस जारी करेगा जिसमें डिफॉल्ट को ठीक करने के लिए अधिकतम 30 दिन का समय दिया जाएगा। ऐसे तीन से अधिक नोटिस जारी नहीं किए जाएंगे और यदि उक्त नोटिस की अवधि समाप्त होने के बाद भी डिफॉल्ट जारी रहता है, तो वाईईए बिना किसी दायित्व के भूमि का आवंटन और उससे संबंधित पट्टा विलेख रद्द कर सकता है।"

104. याचिकाकर्ता ने पत्रों दिनांक 08.03.2018 और 12.04.2018 के माध्यम से अंतिम तिथि तक देय बकाया राशि और किश्तों के पुनर्निर्धारण के लिए आवेदन किया। इसमें याचिकाकर्ता ने आवंटन पत्रों में उल्लिखित विभिन्न शर्तों का हवाला दिया। उक्त अनुरोध को वाईईए के मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने अनुमोदन दिनांक 25.01.2018 द्वारा स्वीकार कर लिया और याचिकाकर्ता को पुनर्निर्धारण योजना प्रदान की गई। याचिकाकर्ता ने आवंटन पत्रों पर भरोसा करते हुए पत्रों दिनांक 04.07.2018, 20.09.2018, 03.12.2018, 13.12.2018 और 31.12.2018 के माध्यम से वाईईए के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को यह प्रत्यावेदन दिया कि आवंटन पत्रों के खंड 4.1 के अंतर्गत निर्धारित एसबीआई पीएलआर के अतिरिक्त मात्र 3% जुर्माना लगाया जाए। इसने वाईईए को यह समझाने की कोशिश की कि इसने आवंटन पत्रों के खंड 4.1 के अंतर्गत निर्धारित 3% के अतिरिक्त 1 से 3% तक का अतिरिक्त दंडात्मक ब्याज लगाया है और इसलिए, इसे पुनर्निर्धारण योजना के अंतर्गत याचिकाकर्ता द्वारा देय राशि की पुनर्गणना करनी चाहिए।

105. पट्टा विलेख निष्पादित होने के बाद भी, याचिकाकर्ता ने बार-बार आवंटन पत्रों का सहारा लेकर विभिन्न लाभ प्राप्त किए थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह सर्वमान्य सहमति थी कि आवंटन पत्र सीमित उद्देश्यों के लिए पट्टा विलेख के साथ-साथ मान्य रहेंगे, जिनके संबंध में पट्टा विलेख में कोई विरोधाभासी प्रावधान नहीं था और जो सह-अस्तित्व में रह सकते थे। पट्टा विलेखों के निष्पादन से याचिकाकर्ता कंपनी के पक्ष में विधिवत पट्टा अधिकार प्रदत्त हो गए, लेकिन आवंटन पत्र का पूर्ण रूप से निरस्तीकरण नहीं हुआ।

(सी) निरस्तीकरण और पुनः प्राप्ति की स्वतंत्र वैधानिक शक्ति :

106. संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 111 जो पट्टा रद्द करने के अधिकार को विनियमित करने वाले प्रावधान इस प्रकार हैं: -

111. पट्टे का पर्यवसान- स्थावर सम्पत्ति के पट्टे का पर्यवसान हो जाता है-

(क) तद्वारा परिसीमित समय के बीत जाने से;

(ख) जहां कि ऐसा समय किसी घटना के घटित होने की शर्त पर परिसीमित है, वहां ऐसी घटना के घटित होने से;

(ग) जहां कि उक्त सम्पत्ति में पट्टाकर्ता के हित का पर्यवसान किसी घटना के घटित होने पर होता है या उसका व्ययन करने की उसकी शक्ति का विस्तार किसी घटना के घटित होने तक ही है, वहां ऐसी घटना के घटित होने से;

(घ) उस दशा में, जबकि उस सम्पूर्ण सम्पत्ति के पट्टेदार और पट्टाकर्ता के हित एक ही व्यक्ति में एक ही समय एक ही अधिकार के नाते निहित हो जाते हैं;

(ङ) अभिव्यक्त अभ्यर्पण द्वारा, अर्थात् उस दशा में जबकि पट्टेदार पट्टे के अधीन अपना हित पारस्परिक करार द्वारा पट्टाकर्ता के प्रति छोड़ देता है;

(च) विवक्षित अभ्यर्पण द्वारा;

(छ) सम्पहरण द्वारा; अर्थात् (1) उस दशा में जब कि पट्टेदार किसी ऐसी अभिव्यक्त शर्त को भंग करता है, जिससे यह उपबंधित है कि उसका भंग होने पर पट्टाकर्ता पुनः प्रवेश कर सकेगा; या (2) उस दशा में, जबकि पट्टेदार किसी अन्य व्यक्ति का हक खड़ा करके या यह दावा करके कि वह स्वयं हकदार है अपनी पट्टेदारी हैसियत का त्याग करता है, [या (3) जब कि पट्टेदार दिवालिया न्यायनिर्णीत हो जाता है और पट्टा यह उपबंध करता है कि पट्टाकर्ता ऐसी घटना के घटित होने पर पुनः प्रवेश कर सकेगा,] और जब कि उन दशाओं में से किसी में] पट्टाकर्ता या उसका अन्तरिती [पट्टेदार को पट्टे का पर्यवसान करने के अपने आशय की लिखित सूचना देता है,]

(ज) पट्टे का पर्यवसान करने या पट्टे पर दी गई सम्पत्ति को छोड़ देने या छोड़ देने के आशय की एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को सम्यक् रूप से दी गई सूचना के अवसान पर।”

107. खंड (छ) अन्य बातों के अतिरिक्त पट्टाधारक को किसी स्पष्ट शर्त के उल्लंघन की स्थिति में पट्टे को रद्द करने का अधिकार प्रदान करता है, जिसमें यह प्रावधान है कि उल्लंघन होने पर पट्टाधारक पुनः प्रवेश कर सकता है। पट्टे को रद्द करने के अधिकार का प्रयोग पट्टाधारक को पट्टा समाप्त करने के अपने इरादे की लिखित सूचना देकर किया जाना चाहिए।

108. इस मामले में, आवंटन पत्र और पट्टा विलेख दोनों ही उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 (अधिनियम, 1976) की धारा 7 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए वाईईए द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित किए गए थे, जो इस प्रकार हैं: -

“7. भूमि के अन्तरण के सम्बन्ध में प्राधिकारी की शक्ति - प्राधिकारी औद्योगिक विकास क्षेत्र में प्राधिकारी की किसी भूमि या भवन को ऐसे निबन्धनों और शर्तों पर, जिन्हें वह इस अधिनियम के अधीन बनाये जाने वाले किसी नियम के अधीन रहते हुए, आरोपित करना उचित समझे, नीलाम, आवंटन या अन्य प्रकार से, बेच सकता है, पट्टे पर दे सकता है या अन्य प्रकार से अन्तरित कर सकता है।”

109. अधिनियम, 1976 की धारा 14 स्थानांतरण की शर्तों के उल्लंघन के लिए समपहरित का प्रावधान करती है और इस प्रकार है: -

“14. अंतरण की शर्तों के उल्लंघन के लिए समपहरण (1) प्राधिकारी द्वारा किसी स्थल या भवन के अन्तरण के फलस्वरूप प्रतिफल-धन या उसके किसी किस्त के अंशदान की स्थिति में ऐसे अन्तरण की किसी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में या इस अधिनियम के अधीन निर्मित किसी नियम या विनियम के उल्लंघन की स्थिति में मुख्य कार्यपालक अधिकारी इस प्रकार अन्तरित स्थल या भवन को पुनः ग्रहण कर सकता है और उसके सम्बन्ध में संदत्त सम्पूर्ण धन या उसके किसी भाग का, यदि कोई हो, समपहरण कर सकता है।

(2) जहां मुख्य कार्यपालक अधिकारी उपधारा (1) के अधीन किसी स्थल या भवन के पुनर्ग्रहण का आदेश देता है, वहां कलेक्टर, उसके अधियाचन पर, उसका कब्जा उसे दिला सकता है और इस प्रयोजन के लिये ऐसी शक्ति का प्रयोग कर सकता है या करा सकता है जो आवश्यक हो।”

110. पट्टा विलेख में स्पष्ट रूप से यह प्रावधान था कि भू-राजस्व के बकाया के रूप में देय राशि की वसूली का अधिकार किसी अन्य विधि के अंतर्गत प्राधिकरण के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा। संदर्भ की सुगमता के लिए, खंड 38 नीचे उद्धृत किया गया है:

“(38) पट्टादाता को देय सभी बकाया राशि, उस समय लागू किसी अन्य विधि के अंतर्गत उसके अन्य अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाएगी, हालांकि इस विलेख की शर्तों के अधीन होगी।”

111. औद्योगिक विकास प्राधिकरण की अधिनियम, 1976 के अंतर्गत शक्तियों के दायरे को सर्वोच्च न्यायालय ने आईटीसी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (2016) 7 एससीसी 493 में निम्नानुसार स्पष्ट किया है:

“30. संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (संक्षेप में “टीपी अधिनियम”) के प्रावधानों द्वारा शासित पट्टा मात्र इसे रद्द करने या इसे अवैध, शून्य और अमान्य घोषित करने तथा कब्जे की वापसी के लिए दीवानी मुकदमा दायर करके ही रद्द किया जा सकता है। जब तक सक्षम न्यायालय ऐसा निर्णय नहीं देता, पट्टा प्रभावी और बाध्यकारी बना रहेगा। पट्टादाता द्वारा पंजीकृत पट्टा विलेख को एकतरफा रद्द करने से न तो पट्टा समाप्त होगा और न ही पट्टादाता को कब्जा मांगने का अधिकार मिलेगा। निजी विधि के अंतर्गत यही स्थिति है। लेकिन जहां पट्टा प्रदान करना किसी कानून या वैधानिक नियमों द्वारा शासित होता है, और यदि ऐसा कानून स्पष्ट रूप से पट्टादाता को रद्द करने या निरस्त करने की शक्ति सुरक्षित रखता है, तो प्राधिकरण, पट्टादाता के रूप में,

विधिवत निष्पादित और पंजीकृत पट्टा विलेख को रद्द कर सकता है, भले ही कब्जा सौंप दिया गया हो, कानून में दिए गए रद्द करने के विशिष्ट आधारों पर।

31. नोएडा प्राधिकरण, अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत उत्तर प्रदेश में औद्योगिक और शहरी टाउनशिप (जिसे नोएडा के नाम से भी जाना जाता है) के विकास के लिए गठित एक प्राधिकरण है। धारा 7 प्राधिकरण को औद्योगिक विकास क्षेत्र में स्थित अपनी किसी भी भूमि या भवन को नीलामी, आवंटन या अन्य किसी भी तरीके से बेचने, पट्टे पर देने या हस्तांतरित करने का अधिकार देती है, ऐसी शर्तों और नियमों के अधीन रहते हुए जो वह उचित समझे।

32. धारा 14 अंतरण की शर्तों के उल्लंघन के लिए समपहरित का प्रावधान करती है। उक्त धारा प्राधिकरण के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को प्राधिकरण द्वारा हस्तांतरित स्थल या भवन को वापस लेने और ऐसे अंतरण के संबंध में भुगतान की गई पूरी या आंशिक राशि को निम्नलिखित दो परिस्थितियों में ज़ब्त करने का अधिकार देती है: (क) पट्टाधारक द्वारा प्राधिकरण द्वारा किसी स्थल या भवन के अंतरण के कारण देय प्रतिफल राशि या उसकी किसी किस्त का भुगतान न करना; या (ख) पट्टाधारक द्वारा ऐसे अंतरण की किसी शर्त का उल्लंघन करना या अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए किसी नियम या विनियम का उल्लंघन करना।

33. उपधारा (2) में यह प्रावधान है कि यदि प्राधिकरण का मुख्य कार्यकारी अधिकारी धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन किसी स्थल या भवन को अपने अनुरोध पर पुनः प्राप्त करता है, तो कलेक्टर आवश्यक बल का प्रयोग करके हस्तांतरिती से उसका कब्जा ले सकता है और उसे प्राधिकरण को सौंप सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि कोई पट्टाधारक प्रीमियम, पट्टा किराया या अन्य देय राशि का भुगतान करने में डिफॉल्ट करता है, या पट्टा विलेख की किसी शर्त का उल्लंघन करता है, या अधिनियम के अंतर्गत किसी नियम या विनियम का उल्लंघन करता है, तो नोएडा प्राधिकरण का मुख्य कार्यकारी अधिकारी बिना दीवानी मुकदमा दायर किए, विधि में दिए गए तरीके से पट्टे पर दिए गए भूखंड या भवन को पुनः प्राप्त कर सकता है। पुनः प्राप्त करने के प्राधिकरण के अधिकार में पट्टा को एकतरफा रद्द करने का अधिकार भी शामिल है।

36. इसलिए, विधि द्वारा सशक्त किए जाने के कारण, नोएडा प्राधिकरण को दो परिस्थितियों में दीवानी न्यायालय में मुकदमा दायर किए बिना पट्टा रद्द करने और कब्जा वापस लेने का अधिकार है: (i) प्रीमियम/किराया/अन्य देय राशि का भुगतान न करना; (ii) अंतरण की शर्तों का उल्लंघन या अधिनियम के अंतर्गत नियमों या विनियमों का उल्लंघन (उल्लेखित शर्तों में पट्टा प्राप्त करने में पट्टाधारक द्वारा तथ्यों को छिपाना, गलत बयान देना, गलत जानकारी देना या धोखाधड़ी करना शामिल होगा)।”

(जोर दिया गया)

112. न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण गाजियाबाद बनाम मैसर्स डाबर कंटेनर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली: (2004) 1 SAC 426 में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने यह माना कि अधिनियम, 1976 एक विशेष विधि है और इसलिए किसी भी असंगति की स्थिति में यह संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882, जो एक सामान्य विधि है, पर प्रभावी होगा। तदनुसार, यह तर्क कि अधिनियम, 1976 की धारा 14 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करके किए गए पट्टे की समपहरित को संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 114-क के अनुसार क्षमा किया जाना चाहिए, खारिज कर दिया गया। प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

“29. हमारा मत है कि उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 एक विशेष विधि है, और इसलिए किसी भी असंगति की स्थिति में यह संपत्ति अंतरण अधिनियम, जो एक सामान्य विधि है, पर प्रभावी होगा। अतः, यह मानते हुए भी कि संपत्ति अंतरण अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन हुआ है, इससे वादी-प्रतिवादी को कोई सहायता नहीं मिलेगी, क्योंकि हमारी राय में नोएडा की कार्रवाई स्पष्ट रूप से उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 की धारा 14 के अनुरूप थी, जो नोएडा क्षेत्र के लिए एक विशेष विधि है और संपत्ति अंतरण अधिनियम के प्रावधानों पर प्रभावी होगा।”

(जोर दिया गया)

113. अधिनियम, 1976 की धारा 14 के अंतर्गत दी गई शक्ति मात्र पट्टे द्वारा अंतरण तक ही सीमित नहीं है। यह अधिनियम, 1976 की धारा 7 के अंतर्गत परिकल्पित अन्य तरीकों, जैसे बिक्री, नीलामी, आवंटन आदि द्वारा अंतरण पर भी लागू होती है। अतः, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 111(छ) के विपरीत, इस विधि में स्थल या भवन की पुनः प्राप्ति की शक्ति के प्रयोग हेतु कोई विशिष्ट प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है (प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन की अंतर्निहित आवश्यकता को छोड़कर)। मात्र इतना ही आवश्यक है कि आदेश में यह दर्शाया जाए कि भवन स्थल को पट्टे/अंतरण की किसी स्पष्ट शर्त के उल्लंघन के कारण पुनः प्राप्त किया जा रहा है।

114. आक्षेपित आदेश में एक बार नहीं, बल्कि कई स्थानों पर पट्टे की शर्तों के उल्लंघन और परिणामस्वरूप स्थल को वापस लेने की कार्रवाई का उल्लेख किया गया है। आक्षेपित आदेश में निम्नलिखित कथनों से यह स्पष्ट है: -

"(ए) प्राधिकरण ने अपनी 64^{वीं} बोर्ड बैठक दिनांक 27.11.2018 को मद संख्या 64/09 पर याचिकाकर्ता द्वारा पत्र दिनांक 30.10.2018 के माध्यम से किए गए अनुरोध को अस्वीकार कर दिया और निर्णय लिया कि यदि 31.12.2018 तक बकाया राशि का भुगतान नहीं किया गया, तो याचिकाकर्ता के विरुद्ध रद्द करने/वसूली के लिए कार्रवाई की जाए। (आक्षेपित आदेश के आंतरिक पृष्ठ 5 का दूसरा पैराग्राफ)"

(बी) याचिकाकर्ता ने 64^{वीं} बोर्ड बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार 31.12.2018 तक बकाया राशि का भुगतान न करके आवंटन और पट्टा विलेख की शर्तों का पालन करने में डिफॉल्ट की है, इसलिए पट्टा विलेख और आवंटन तत्काल प्रभाव से रद्द किए जाने योग्य हैं। (आक्षेपित आदेश के आंतरिक पृष्ठ संख्या 7 पर खंड 1)

(सी) ऋण के पुनर्निर्धारण के बाद भी, दूसरी और तीसरी किस्त का भुगतान और बैंक गारंटी की भरपाई में डिफॉल्ट हुई और डिफॉल्टकर्ता नोटिस जारी होने के बाद भी 225,46,22,814 रुपये का भुगतान नहीं किया गया, जिसके परिणामस्वरूप आवंटन/पट्टा विलेख को रद्द करने की कार्यवाही चल रही है। (आक्षेपित आदेश के आंतरिक पृष्ठ संख्या 7 का पैरा 1)

(डी) याचिकाकर्ता ने घर खरीदारों की शिकायतों पर ध्यान नहीं दिया, जिससे उनमें भारी असंतोष पैदा हुआ। इसलिए, प्राधिकरण के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह सभी अधूरी आवास योजनाओं को अपने हाथ में ले

और उन्हें पूरा करवाकर घर खरीदारों को कब्जा सौंप दे, जिससे उनकी शिकायतों का समाधान हो सके। (आक्षेपित आदेश के आंतरिक पृष्ठ संख्या 10 का प्रथम पैरा)

(ई) याचिकाकर्ता कंपनी ने आवंटन आदेश और पट्टा विलेख का बार-बार उल्लंघन किया था। (आक्षेपित आदेश के आंतरिक पृष्ठ संख्या 11 का प्रथम पैराग्राफ)

(एफ) अधूरे प्रोजेक्टों को पूरा करने और 943.92 करोड़ रुपये के बकाया का भुगतान न होने तथा 100 करोड़ रुपये की बैंक गारंटी की भरपाई न होने के कारण सेक्टर 25 में भूमि का आवंटन रद्द किया जाता है। (आक्षेपित आदेश के आंतरिक पृष्ठ संख्या 11 का दूसरा अंतिम पैराग्राफ)"

115. आक्षेपित आदेश में उल्लिखित विवरण से स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि याचिकाकर्ता को बतीस अलग-अलग पट्टा विलेखों (विवरण आक्षेपित आदेश के आंतरिक पृष्ठ संख्या 2 और 3 पर उल्लिखित हैं) द्वारा पट्टे पर दी गई भूमि को विचार राशि और किशतों का भुगतान न करने और आवासीय परियोजनाओं को पूरा न करने के आधार पर पुनः प्राप्त किया गया था। कोई भी अन्य व्याख्या अधिनियम, 1976 की धारा 14 द्वारा प्राधिकरण को प्रदत्त वैधानिक शक्ति को कमजोर करेगी।

116. ए.पी. इंडस्ट्रियल इन्फ्रास्ट्रक्चर कॉर्पोरेशन लिमिटेड (उपरोक्त) का मामला, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने विशेष बल दिया है, स्पष्ट रूप से भिन्न है। उसमें, अपीलकर्ता-निगम ने प्रतिवादियों को परिवहन कार्यालय और गोदाम के निर्माण के लिए औद्योगिक भूखंड आवंटित किए थे। आवंटन आदेशों के खंड 17 में यह प्रावधान था कि 'अंतिम आवंटन और भूमि/भूखंड/शेड पर कब्जा लेने की तिथि से दो वर्ष के भीतर यदि परियोजना कार्यान्वित नहीं की जाती है, तो आवंटन रद्द कर दिया जाएगा'। आवंटन के बाद विक्रय समझौते हुए, जिसके दौरान अपीलकर्ता-निगम ने भूखंड के लिए पूर्ण विक्रय मूल्य प्राप्त किया और उसके बाद प्रतिवादियों के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किए, जिसमें ऐसी कोई शर्त नहीं थी। विक्रय विलेखों के निष्पादन के लगभग छः वर्ष बाद, अपीलकर्ता-निगम ने प्रतिवादियों द्वारा भूमि का उपयोग गोदामों के उद्देश्य से न करने के कथित आरोप के संबंध में स्पष्टीकरण मांगने के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किए। 20.01.2006 को अपीलकर्ता निगम ने स्वयं भवन निर्माण योजनाओं को स्वीकृति दी और इसके अनुसरण में प्रतिवादियों ने निर्माण कार्य शुरू किया। प्रतिवादी निगम ने कारण बताओ नोटिस के जवाब में कहा कि सड़क, पानी और बिजली की सुविधाएं मात्र 2006 में ही उपलब्ध कराई गई थीं, जिस वर्ष कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। 28.03.2006 को अपीलकर्ता निगम ने इस आधार पर आवंटन रद्द कर दिया कि प्रतिवादी आवंटन पत्रों में निर्दिष्ट समय के भीतर औद्योगिक/व्यावसायिक इकाइयां स्थापित करने में विफल रहे थे। प्रतिवादियों ने आवंटन रद्द करने पर यह कहते हुए आपत्ति जताई कि विक्रय विलेखों के निष्पादन के बाद अपीलकर्ता निगम के पास आवंटन रद्द करने का कोई अधिकार नहीं रह गया था और विक्रय विलेखों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों द्वारा दायर रिट याचिकाओं को स्वीकार करते हुए आवंटन रद्दीकरण आदेश को इस आधार पर निरस्त कर दिया कि आमतौर पर विक्रय विलेखों के निष्पादन के बाद एक पूर्ण संविदा अस्तित्व में आ जाता है। आवंटन की शर्तें और बिक्री समझौते के संविदा समाप्त हो गए। उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को निर्णय के पैरा 11 में इस प्रकार उल्लेख किया गया है:

“11. आगे यह माना गया कि अपीलकर्ता निगम ने औद्योगिक भूखंडों की पेशकश की और प्रतिवादियों/उद्यमियों ने प्रति-प्रस्ताव दिया जिसे निगम ने स्वीकार कर लिया। उस समय, प्रस्ताव, प्रति-प्रस्ताव और स्वीकृति की शर्तें आवंटन पत्र (शर्तों के अधीन प्रस्ताव की स्वीकृति) और विक्रय समझौते (विक्रय संविदा) में संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (जिसे आगे "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 54 के अनुसार व्यक्त की गई थीं। इसके परिणामस्वरूप अंततः विक्रेता द्वारा क्रेता के पक्ष में विक्रय विलेख के निष्पादन द्वारा संविदा संपन्न हुआ। एक बार संविदा संपन्न हो जाने के बाद, संपत्ति अंतरण अधिनियम, संविदा अधिनियम, 1872, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 और विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 के विभिन्न प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, जो भारत की नागरिक संहिता का गठन करते हैं और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अचल संपत्ति के अंतरण को नियंत्रित करते हैं, आवंटन की शर्तें या विक्रय समझौते के संविदा सामान्यतः लागू नहीं किए जा सकते। आवंटन पत्र या विक्रय अनुबंध अब मान्य नहीं रहता। एक बार संविदा संपन्न हो जाने पर, पंजीकृत विक्रय विलेख के निष्पादन के परिणामस्वरूप संपत्ति का अंतरण, अंतरण, आवंटन और स्वामित्व का अंतरण हो जाता है।”

(जोर दिया गया)

116 (i). उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया गया और अपीलकर्ता निगम का यह तर्क कि यह शर्त सहित बिक्री थी, खारिज कर दिया गया। प्रमुख अंतर यह है कि उक्त मामले में, पूर्ण विक्रय राशि स्वीकार करने के बाद प्रतिवादियों के पक्ष में विक्रय विलेखों के निष्पादन के साथ उन्हें पूर्ण स्वामित्व प्रदान किया गया था और विक्रय विलेखों में ऐसी कोई शर्त नहीं जोड़ी गई थी कि निर्माण दो वर्षों में पूरा किया जाएगा। संक्षेप में, यह माना गया कि अपीलकर्ता को बिक्री रद्द करने का कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि आवंटन आदेश मान्य नहीं रहेंगे। इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि:

“15. उपर्युक्त किसी भी तर्क में हमें कोई दम नहीं लगता। सर्वप्रथम, यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि विक्रय विलेख में दो वर्ष की अवधि के भीतर निर्माण पूर्ण करने की ऐसी कोई शर्त नहीं है। ऐसी शर्त मात्र आवंटन पत्र में ही थी। हालांकि, उक्त आवंटन के बाद, अपीलकर्ता निगम ने न मात्र पूर्ण प्रतिफल प्राप्त किया बल्कि विक्रय विलेख भी निष्पादित किए। विक्रय विलेखों में ऐसी कोई शर्त निर्धारित नहीं थी। इसलिए, उच्च न्यायालय का यह निर्णय सही है कि अपीलकर्ता निगम द्वारा प्रतिवादियों को संपत्ति की बिक्री के बाद, जिससे प्रतिवादियों ने संपत्ति का पूर्ण विपणन योग्य स्वामित्व प्राप्त कर लिया, अपीलकर्ता निगम को आवंटन पत्र में उल्लिखित शर्तों पर जोर देने का कोई अधिकार नहीं था, जो विक्रय विलेख के निष्पादन के बाद अप्रभावी हो जाती हैं।”

(जोर दिया गया)

116 (ii). यह उल्लेखनीय है कि सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निष्कर्ष पर पहुँचते समय संपत्ति अंतरण अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों पर भरोसा किया, जो संपत्ति में पूर्ण हित के अंतरण से संबंधित हैं, अर्थात् बिक्री द्वारा, न कि पट्टे जैसे सीमित हित के अंतरण के मामले में। यह निर्णय के पैराग्राफ संख्या 16 और 17 में हुई चर्चाओं से स्पष्ट है, जिन्हें संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया गया है:

“16. अधिनियम की धारा 5 में "अंतरण" को एक जीवित व्यक्ति से एक या अधिक जीवित व्यक्तियों को संपत्ति के अंतरण के रूप में परिभाषित किया गया है। इसकी धारा 8, 10 और 11 अचल संपत्ति के अंतरण को पवित्रता और गंभीरता प्रदान करती हैं। ये प्रावधान इस प्रकार हैं:

“8. अंतरण का प्रभाव - जब तक कि कोई भिन्न आशय अभिव्यक्त न हो या आवश्यक रूप से विवक्षित न हो, सम्पत्ति का अन्तरण अन्तरिती को तत्काल ही सम्पत्ति में के और उसकी विधिक प्रसंगतियों में के उस समस्त हित का संक्रामण कर देता है जिसका संक्रामण करने के लिए अन्तरक तब समर्थ हो।

ऐसी प्रसंगतियों के अन्तर्गत आते हैं, जहां कि सम्पत्ति भूमि हो, वहां उससे उपाबद्ध सुखाचार, अन्तरण के पश्चात् प्रोद्भवमान उसके भाटक और लाभ तथा भूबद्ध सब चीजें,

और जहां कि संपत्ति भूबद्ध मशीनरी हो, वहां उसके जंगम भाग,

और जहां कि संपत्ति कोई गृह हो वहां उसके उपाबद्ध सुखाचार, अंतर के पश्चात् प्रोद्भवमान उसका भाटक और इसके साथ स्थायी उपयोग के लिए उपबन्धित उसके ताले, चाबियां, छड़ें, द्वार, खिड़कियां और अन्य सब चीजें, और जहां कि संपत्ति कोई ऋण या अन्य अनुयोज्य दावा हो वहां उसके लिए प्रतिभूतियां (उस दशा के सिवाय जिसमें वे ऐसे अन्य ऋणों या दावों के लिए भी हैं, जिन्हें अन्तरिती को अन्तरित नहीं किया गया है), किन्तु अंतरण के पूर्व प्रोद्भूत ब्याज की बकाया नहीं, और जहां कि संपत्ति धन या आय देने वाली अन्य सम्पत्ति हो, वहां अंतरण के प्रभावशील होने के पश्चात् प्रोद्भवमान उसका ब्याज या आय।

10. अन्य-संक्रामण अवरुद्ध करने वाली शर्त - जहां कि सम्पत्ति ऐसी शर्त या मर्यादा के अध्यधीन अन्तरित की जाती है, जो अन्तरिती या उसके अधीन दावा करने वाले व्यक्ति को सम्पत्ति में अपने हित को अलग करने या व्ययनित करने से आत्यन्तिकतः अवरुद्ध करती है, वहां ऐसी शर्त या मर्यादा शून्य है, सिवाय ऐसे पट्टे की दशा के जिसमें कि वह शर्त पट्टाकर्ता या उसके अधीन दावेदारों के फायदे के लिए हो, परन्तु सम्पत्ति किसी स्त्री को (जो हिन्दू, मुसलमान या बौद्ध न हो) या उसके फायदे के लिए इस प्रकार अन्तरित की जा सकेगी कि उसे अपनी विवाहित स्थिति के दौरान उस सम्पत्ति को या उसमें के अपने फायदाप्रद हित को अन्तरित या भारित करने की शक्ति न होगी।

11. सृष्ट हित के विरुद्ध निर्बन्धन - जहां कि सम्पत्ति के अन्तरण पर उस सम्पत्ति में किसी व्यक्ति के पक्ष में हित आत्यन्तिकतः सृष्ट किया जाता हो, किन्तु अन्तरण के निर्बन्धन निदेश करते हों कि वह ऐसे हित का किसी विशिष्ट रीति से उपयोजन या उपभोग करे, वहां वह ऐसे हित को ऐसे प्राप्त और व्ययनित करने का हकदार होगा मानो ऐसा कोई निदेश था ही नहीं।

जहां कि ऐसा कोई निदेश स्थावर सम्पत्ति के एक टुकड़े के बारे में उस सम्पत्ति के दूसरे टुकड़े के फायदाप्रद उपभोग को सुनिश्चित करने के प्रयोजन से किया गया हो, वहां इस धारा की कोई भी बात किसी ऐसे अधिकार पर, जो अन्तरक ऐसे निदेश का प्रवर्तन कराने के लिए रखता हो, या किसी ऐसे उपचार पर, जो वह उसके भंग के बारे में रखता हो, प्रभाव डालने वाली नहीं समझी जाएगी।”

17. अधिनियम की धारा 55 क्रेता और विक्रेता के अधिकारों और दायित्वों से संबंधित है। इस प्रावधान के अनुसार, जब क्रेता अपने दायित्वों का निर्वहन करता है और विक्रेता संपत्ति का स्वामित्व हस्तांतरित करता है, तो संविदा संपन्न हो जाता है। इसके बाद, क्रेता और विक्रेता के बीच यदि कोई दायित्व, दायित्व और अधिकार

हों, तो वे विक्रय विलेख के निष्पादन पर संविदा अधिनियम और विशिष्ट अनुतोष अधिनियम के अन्य प्रावधानों द्वारा शासित होंगे। विक्रेता एकतरफा रूप से अंतरण या विक्रय को रद्द नहीं कर सकता।”

116 (iii). उक्त पहलू पैराग्राफ संख्या 18 में की गई चर्चा से और अधिक स्पष्ट हो जाता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने **इंदु कक्कड़ बनाम हरियाणा एसआईडीसी लिमिटेड, 1999 (2) एससीसी 37** में अपने पूर्व के निर्णय को मात्र इस आधार पर अलग किया कि उक्त मामले में समझौते में एक विशिष्ट शर्त थी। तदनुसार, समझौते के खंड 7 में यह शर्त थी कि औद्योगिक इकाई को एक निर्दिष्ट अवधि के भीतर स्थापित किया जाना था, अन्यथा निगम को भूखंड वापस लेने का अधिकार होगा। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 31 पर भरोसा करते हुए, इस प्रावधान को वैध और प्रवर्तनीय माना गया। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 11 पर आधारित यह तर्क कि ऐसा कोई भी प्रतिबंध सृजित हित के विपरीत होगा, खारिज कर दिया गया, यह मानते हुए कि यह मात्र 'पूर्ण हित' के अंतरण के मामलों पर लागू होता है, न कि सभी प्रकार के हस्तांतरणों पर। उक्त निर्णय में इस संबंध में प्रासंगिक चर्चा नीचे दी गई है:

"18. इंदु कक्कड़ मामले में दिए गए निर्णय के संबंध में, उच्च न्यायालय ने सही ही माना है कि यह इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा। उस मामले के तथ्यों के आधार पर, न्यायालय ने सर्वप्रथम यह निष्कर्ष निकाला कि पक्षकारों के बीच हुए समझौते की खंड 7 बाध्यकारी थी। खंड 7 के अनुसार, उद्योग स्थापित करने के लिए भवन का निर्माण, जिसके लिए उस मामले में अपीलकर्ता को भूमि दी गई थी, छः माह की अवधि के भीतर शुरू होना था और आवंटन पत्र जारी होने की तिथि से दो वर्ष के भीतर निर्माण पूरा होना था। चूंकि अपीलकर्ता निर्धारित समय के भीतर निर्माण शुरू करने या निर्माण करने में विफल रहा, इसलिए कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है कि समझौते की खंड 7 के अनुसार भूखंड को वापस क्यों नहीं लिया जाए। इस पृष्ठभूमि में, अपीलकर्ता ने अधिनियम की धारा 11 का सहारा लेकर समझौते की खंड 7 की प्रवर्तनीयता को चुनौती दी थी। इस तर्क को निम्नलिखित तरीके से खारिज कर दिया गया: (एससीसी पृष्ठ 43, पैरा 16 और 17)

"16. हालांकि, आबंटिती ने अवर न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया है कि टीपी अधिनियम की धारा 11 के दृष्टिगत समझौते का खंड 7 अप्रवर्तनीय है। लेकिन हमारे अनुसार, इस तर्क को सही ठहराया गया क्योंकि अंतरण विलेख ने हस्तांतरित भूखंड के संबंध में आबंटिती के पक्ष में कोई पूर्ण हित सृजित नहीं किया था। हस्तांतरित संपत्ति में हित का इस प्रकार उपयोग करने के लिए कि संपत्ति के उपभोग के विशेष तरीके के संबंध में कोई निर्देश नहीं है, अंतरण विलेख में यह प्रमाणित होना चाहिए कि हस्तांतरिती के पक्ष में एक पूर्ण हित सृजित किया गया है। यह टीपी अधिनियम की धारा 11 से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। यह धारा इस सिद्धांत पर आधारित है कि सृजित हित के विपरीत कोई भी शर्त शून्य है और जब संपत्ति का पूर्ण अंतरण किया जाता है, तो यह उसके सभी विधिक पहलुओं के साथ किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, टीपी अधिनियम की धारा 31 उपरोक्त तर्क का उत्तर देने के लिए पर्याप्त है। यह धारा प्रावधान करती है कि-

'सम्पत्ति के अन्तरण पर उस सम्पत्ति में कोई हित इस अधियोजित शर्त के साथ सृष्ट किया जा सकेगा कि किसी विनिर्दिष्ट अनिश्चित घटना के घटित होने की दशा में या किसी विनिर्दिष्ट अनिश्चित घटना के घटित न होने की दशा में उसके अस्तित्व का अन्त हो जाएगा।'

इस खंड के दृष्टांत (ख) से स्थिति स्पष्ट हो जाती है, और इसमें लिखा है:

‘(ख) क कोई फार्म ख को इस उपबन्ध के साथ अन्तरित करता है कि यदि अन्तरण की तारीख के पश्चात् तीन वर्ष के भीतर ख इंग्लैंड न जाएगा तो फार्म में उसके हित का अन्त हो जाएगा। ख विहित अवधि के भीतर इंग्लैंड नहीं जाता। फार्म में उस हित का अन्त हो जाता है।’

17. संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 32 में मात्र इतना ही प्रावधान है कि 'इसके लिए कि यह शर्त विधिमान्य हो कि हित के अस्तित्व का अंत हो जाएगा, यह आवश्यक है कि वह घटना, जिससे वह सम्बन्धित है, ऐसी हो जो हित के सृजन की शर्त विधितः हो सकती है।' यदि शर्त अमान्य है, तो उसे सृजित हित के साकार होने के लिए पूर्व शर्त के रूप में स्थापित नहीं किया जा सकता। औद्योगिक इकाई की स्थापना एक निर्दिष्ट अवधि के भीतर की जानी चाहिए, अन्यथा हित समाप्त हो जाएगा, यह शर्त वैध है। अतः, पक्षकारों के बीच हुए समझौते का खंड 7 वैध है और पक्षकारों पर बाध्यकारी है।”

19. इस विधिक स्थिति पर कोई विवाद नहीं है। हालांकि, इस मामले में, विक्रय समझौते या विक्रय विलेख में ऐसी कोई शर्त नहीं थी। यह आवंटन पत्र में थी। इसके विपरीत, निष्पादित विक्रय विलेखों के खंड 7 के अनुसार, एकमात्र शर्त यह है कि क्रेता भूमि का उपयोग सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत अनुमति प्राप्त कारखाने या कारखानों की स्थापना के लिए करेगा, किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं। यही दोनों मामलों में अंतर पैदा करता है। यहां, निर्विवाद तथ्य यह है कि अपीलकर्ता निगम और प्रतिवादियों के बीच हुए समझौतों/विक्रय विलेखों में कोई भी ऐसा खंड नहीं है जिसे "अतिरिक्त शर्त" माना जा सके।

117. **इंदु कक्कड़** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 31 पर भरोसा करते हुए यह माना कि धारा 11 तभी लागू होती है जब हस्तांतरिती के पक्ष में पूर्ण हित सृजित हो जाता है। हालांकि, उक्त मामले में, राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा प्रतिवादियों को औद्योगिक स्थल इस शर्त के साथ आवंटित किया गया था कि यदि प्रतिवादी औद्योगिक इकाई का निर्माण करके भूमि का औद्योगिक प्रयोजनों के लिए उपयोग करने में विफल रहते हैं तो यह स्थल अस्तित्वहीन हो जाएगा, और ऐसी शर्त संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 31 और 32 के अंतर्गत लागू करने योग्य थी।

118. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह मामला बिक्री द्वारा पूर्ण अंतरण का मामला नहीं है, इसलिए संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 10 और 11, जिन पर **ए.पी. इंडस्ट्रियल इंफ्रास्ट्रक्चर कॉर्पोरेशन लिमिटेड** (उपरोक्त) का मामला आधारित था, लागू नहीं होती हैं। इसके अतिरिक्त, यह मामला मात्र संविदा की शर्तों की व्याख्या पर आधारित था। जैसा कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है, इस मामले में प्रतिवादी निगम, आवंटन पत्र के खंड 4.2 से स्वतंत्र रूप से भी, पट्टा विलेख के खंड 38 के अंतर्गत पट्टा रद्द करने की शक्ति रखता है, जो अधिनियम, 1976 की धारा 14 सहित किसी भी लागू विधि के अंतर्गत वाईईए को प्रदत्त सभी अधिकारों को सुरक्षित रखता है। धारा 14 के अंतर्गत साइट को पुनः प्राप्त करने की वैधानिक शक्ति किसी भी तरह से कम नहीं की गई है। **ए.पी. इंडस्ट्रियल इंफ्रास्ट्रक्चर कॉर्पोरेशन लिमिटेड (उपरोक्त)** का निर्णय भिन्न है और याचिकाकर्ता के लिए किसी भी प्रकार से सहायक नहीं होगा।

(डी) निष्कर्ष :

119. विवादक संख्या 2 और 3 का उत्तर देते हुए यह माना गया है कि आवंटन पत्र पट्टा विलेखों के साथ सीमित उद्देश्यों के लिए ही उपलब्ध थे और आवंटन पत्रों के खंड 4.2 के बावजूद, यूपीआईएडी अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत वाईईए को पट्टा विलेखों के खंड 38 से स्वतंत्र रूप से और उसके साथ पढ़े जाने पर स्थल को पुनः प्राप्त करने का अधिकार था। अतः, आक्षेपित आदेश पट्टा विलेखों को रद्द करने के समान है।

विवादक संख्या 4: क्या याचिकाकर्ता की पिछली रिट याचिका सी-47262/2017, जिसमें प्रतिवादी द्वारा अपनी बैठक दिनांक 04.09.2017 में आनुपातिक भूमि को रद्द करने के निर्णय को चुनौती दी गई थी, याचिकाकर्ता को आनुपातिकता के आधार पर वर्तमान रद्दीकरण को चुनौती देने से वंचित कर देगी?

120. अभिलेख की जांच करने पर हमें पता चलता है कि पिछली रिट याचिका संख्या 47262/2017 में चुनौती मुख्य रूप से इस आधार पर थी कि भूमि को आनुपातिक रूप से रद्द करने का कोई अवसर भी नहीं था, क्योंकि भुगतान में डिफॉल्ट स्वयं प्रतिवादियों के विभिन्न कार्यों जैसे कि भवन योजनाओं को स्वीकृति न देना आदि के कारण हुई थी।

121. इस मामले की सुनवाई के दौरान, संपूर्ण भूमि का आवंटन रद्द कर दिया गया था, जिसे एक नई रिट याचिका में चुनौती दी गई है। याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जयंत भूषण ने कहा कि बाद के घटनाक्रमों को देखते हुए, आनुपातिक रद्द करने की चुनौती निष्प्रभावी हो गई है। उन्होंने निवेदन किया कि यदि संपूर्ण रद्द करने की चुनौती सफल होती है, तो याचिकाकर्ता अन्य अनुतोषों के लिए उचित उपाय अपनाएगा। हमारा भी यही मत है कि 2020 के उस आदेश को चुनौती दिए जाने के दृष्टिगत, जिसके द्वारा संपूर्ण आवंटन रद्द कर दिया गया है, पिछली रिट याचिका का महत्व समाप्त हो गया है। पहले उठाए गए विवादक बाद की रिट याचिका में समाहित हो गए थे, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि पिछली रिट याचिका याचिकाकर्ता को आनुपातिकता सहित किसी भी आधार पर वर्तमान रद्दीकरण आदेश को चुनौती देने से वंचित कर देगी।

122. विवादक संख्या 4 का उत्तर याचिकाकर्ता के पक्ष में दिया गया है और तदनुसार निर्णय लिया गया है, लेकिन साथ ही, हम रिट याचिका संख्या 47262/2017 को निष्फल मानते हुए निस्तारित करते हैं।

विवादक संख्या 5: क्या कुछ बकाया राशि का भुगतान न करने पर संपूर्ण आवंटन को रद्द करना अत्यधिक प्रशासनिक कार्रवाई है और आनुपातिकता के सिद्धांत के अंतर्गत आता है?

और

विवादक संख्या 6: क्या संपूर्ण आवंटन को रद्द करना मात्र बकाया राशि का भुगतान न करने के कारण था या विकास/निर्माण में कथित डिफॉल्ट के कारण भी था?

और

विवादक संख्या 7: क्या विकास/निर्माण में कथित डिफॉल्ट के कारण आवंटन रद्द करना अवैध है?

123. विवादक संख्या 2 और 3 पर निर्णय लेते हुए, हमने यह माना है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 12.02.2020 पारित करना और पट्टे पर दी गई भूमि को पूरी तरह से वापस लेना वाईईए के अधिकार क्षेत्र में था। हालांकि, जेएएल के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि संपूर्ण पट्टा रद्द करने का वाईईए का कठोर

कदम अनुचित, तर्कहीन और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन था, और वाईईए को अपने बकाया की वसूली के लिए कम से कम प्रतिबंधात्मक उपाय अपनाने चाहिए थे। इस प्रकार, वह पट्टे के खंड 38 के अंतर्गत अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता था, जो वाईईए को भू-राजस्व के बकाया के रूप में अपने बकाया की वसूली करने की अनुमति देता है। इससे सार्वजनिक धन की वसूली का अंतिम उद्देश्य पूरा होता, साथ ही जेएएल, गृह खरीदार और वित्तीय संस्थानों को न्यूनतम हानि होता।

124. प्रस्तुति को विस्तार से बताते हुए यह तर्क दिया गया कि पट्टा विलेखों ने याचिकाकर्ता को तीसरे पक्ष के अधिकार बनाने का असीमित अधिकार दिया था, जिसमें पट्टादाता अर्थात् प्रतिवादी संख्या 2 की अनुमति के बिना उप-पट्टा देने की शक्ति; बैंकों/वित्तीय संस्थानों/ऋणदाताओं आदि के पक्ष में गिरवी रखने की अनुमति; भूमि का विकास करने की शक्ति भी शामिल थी और याचिकाकर्ता ने फॉर्मूला वन रेसट्रैक (बुद्ध इंटरनेशनल सर्किट) के निर्माण सहित संपूर्ण एसडीजेड भूमि के विकास में 2,500 करोड़ रुपये से अधिक की बड़ी राशि खर्च की है; इसके अतिरिक्त, रद्दीकरण आदेश की तिथि के आसपास, याचिकाकर्ता ने भूमि प्रीमियम के रूप में 1659.25 करोड़ रुपये की आवंटन राशि के मुकाबले 2294.49 करोड़ रुपये (ब्याज सहित) और पट्टे के किराए के रूप में 264.42 करोड़ रुपये (ब्याज सहित) का भुगतान किया था। वर्तमान मामले में डिफॉल्ट स्पष्ट रूप से जानबूझकर या बेईमानी से नहीं की गई थी और विभिन्न चरणों में, रद्द करने के समय डिफॉल्ट कुल देय राशि के 9% से 25% के बीच थी; जिस तिथि को रद्द किया गया था, उस समय संपूर्ण आवंटन को रद्द करना पूरी तरह से अनुचित था। यह सुझाव दिया गया कि भूमि का वर्तमान मूल्य वाईईए के बकाया से कहीं अधिक है। यदि वाईईए के बकाया को भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जाता, तो जेएएल की भूमि या अन्य संपत्तियों के मात्र कुछ हिस्से की बिक्री से ही उसकी भरपाई की जा सकती थी और 1000 हेक्टेयर के संपूर्ण आवंटन को रद्द करना स्वतः ही अवैध और मनमाना था। यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के अंतरिम आदेशों दिनांक 25.02.2020, 08.02.2021 और 29.09.2022 के अनुपालन में मूलधन के रूप में 200 करोड़ रुपये से अधिक जमा करके अपनी सद्भावना प्रदर्शित की है। याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि और उसके द्वारा किए गए विकास कार्यों को ध्यान में रखते हुए, रद्दीकरण आदेश कठोर, अत्यधिक और अनुचित है तथा आनुपातिकता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इस संबंध में **टेरी ओट्स एस्टेट्स (पी) लिमिटेड** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया गया है।

125. इसके विपरीत, वाईईए का तर्क है कि 'आनुपातिकता', अपने सभी पहलुओं में, वर्तमान मामले में लागू नहीं होती, जो याचिकाकर्ता और प्राधिकरण के बीच वाणिज्यिक और संविदात्मक संबंध से उत्पन्न होता है; संविदात्मक कार्यों पर निष्पक्षता और आनुपातिकता के आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता यदि यह सिद्ध हो जाए कि प्राधिकरण की कार्यवाही संविदा के अनुसार थी, जैसा कि वर्तमान मामले में है, जिसमें प्राधिकरण ने आवंटन पत्रों के खंड 4.2 के अनुसार याचिकाकर्ता के आवंटन और पट्टा विलेखों को समाप्त कर दिया; प्राधिकरण के पास याचिकाकर्ता की डिफॉल्ट पर आवंटन और पट्टा विलेखों को रद्द करने का अधिकार था। याचिकाकर्ता ने डिफॉल्ट की, जिसे वह अस्वीकार नहीं करता है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता आवास परियोजनाओं सहित एसडीजेड परियोजना को विकसित करने और प्रदर्शन बैंक गारंटी को बनाए रखने में विफल रहा। इस प्रकार,

रद्द करने के वैध आधार थे और प्राधिकरण ने अपने संविदात्मक अधिकारों का वैध रूप से प्रयोग करते हुए आवंटन और पट्टा विलेखों को समाप्त कर दिया। प्राधिकरण ने 04.09.2017 को अपनी 61^{वीं} बोर्ड बैठक में आनुपातिक भूमि वापस लेने का निर्णय लिया। इसकी सूचना याचिकाकर्ता को भी दी गई थी। याचिकाकर्ता ने इस निर्णय को संबंधित रिट याचिका संख्या 47262/2017 में माननीय न्यायालय के समक्ष चुनौती दी, जिसमें उसने यह विशिष्ट आधार उठाया कि प्राधिकरण का यह निर्णय आवंटन पत्र, आरक्षण पत्र और पट्टा विलेखों की शर्तों और नियमों को रद्द नहीं कर सकता और प्राधिकरण को पट्टा विलेखों के अंतर्गत याचिकाकर्ता की भूमि वापस लेने का कोई अधिकार नहीं है। याचिकाकर्ता ने पत्र दिनांक 03.11.2017 द्वारा आनुपातिक भूमि वापस लेने का भी विरोध किया है। इस पृष्ठभूमि और परिस्थितियों में, प्राधिकरण की 62^{वीं} बोर्ड बैठक में बकाया राशि की पुनर्निर्धारण योजना को स्वीकृति दी गई और 28.05.2018 को याचिकाकर्ता को सूचित किया गया। हालांकि, याचिकाकर्ता पुनर्निर्धारण पत्र की पहली और दूसरी किस्त का भुगतान करने में भी विफल रहा। यह स्पष्ट है कि संबंधित रिट याचिका संख्या 47262/2017 में आनुपातिक भूमि वापस लेने के निर्णय को चुनौती देने के बाद, याचिकाकर्ता वर्तमान रिट याचिका में विपरीत प्रस्तुति दे रहा है।

(ए) आनुपातिकता :

(i) पूर्व-निर्णय:

126. **टेरी ओट्स एस्टेट्स (पी) लिमिटेड** के मामले में, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने विशेष बल दिया है, सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत की व्याख्या करते हुए कहा कि यह किसी भी विधायी या प्रशासनिक कार्रवाई की वैधता का आकलन करने के लिए तर्कसंगतता की कसौटी है। यह सुनिश्चित करता है कि सरकारी कार्य निष्पक्ष, न्यायसंगत और अतिवादी न हों। इसके लिए आवश्यक है कि राज्य या किसी भी प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा की गई कोई भी कार्रवाई उसके द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के अनुपात में हो। जहां कई विकल्प उपलब्ध हों, वहां सबसे कम प्रतिबंधात्मक उपाय अपनाया जाना चाहिए। 19^{वीं} शताब्दी में इस सिद्धांत की उत्पत्ति और इसके अनुप्रयोग के मार्गदर्शक सिद्धांतों को निर्णय के पैरा 40 से 53 में निर्धारित किया गया है, जिसके प्रासंगिक अंश संदर्भ की सुगमता के लिए यहां उद्धृत किए गए हैं।

“45. उक्त सिद्धांत की उत्पत्ति 19^{वीं} शताब्दी में रूस में हुई थी और बाद में इसे जर्मनी, फ्रांस और अन्य यूरोपीय देशों द्वारा अपनाया गया था, जैसा कि इस न्यायालय ने *ओम कुमार बनाम भारत संघ के मामले* में उल्लेख किया है।

46. आनुपातिकता से तात्पर्य यह है कि मौलिक अधिकारों के प्रयोग को विनियमित करते समय, क्या विधायिका या प्रशासक द्वारा उचित या न्यूनतम प्रतिबंधात्मक उपायों का चयन किया गया है ताकि विधि के उद्देश्य या प्रशासनिक आदेश के प्रयोजन को प्राप्त किया जा सके। इस सिद्धांत के अंतर्गत, न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि विधायिका और प्रशासनिक प्राधिकरण

“विधि या प्रशासनिक आदेश के उन प्रतिकूल प्रभावों के बीच उचित संतुलन बनाए रखें जो व्यक्तियों के अधिकारों, स्वतंत्रता या हितों पर पड़ सकते हैं, साथ ही उस उद्देश्य को भी ध्यान में रखें जिसके लिए वे बनाए गए थे”।

47. इस न्यायालय ने 1952 में स्टेट ऑफ मद्रास बनाम वी.जी. राव के मामले में यह टिप्पणी की थी: (एआईआर पृष्ठ 200, पैरा 15)

“जहां कहीं भी तर्कसंगतता का परीक्षण निर्धारित किया गया है, उसे चुनौती दिए गए प्रत्येक विधि पर लागू किया जाना चाहिए, और तर्कसंगतता का कोई अमूर्त मानक या सामान्य प्रतिमान सभी मामलों पर लागू नहीं किया जा सकता है। कथित रूप से उल्लंघन किए गए अधिकार की प्रकृति, लगाए गए प्रतिबंधों का अंतर्निहित उद्देश्य, इसके द्वारा दूर किए जाने वाले हानि की सीमा और तात्कालिकता, लगाए गए प्रतिबंधों का अनुपातहीन होना, उस समय की प्रचलित परिस्थितियाँ, ये सभी न्यायिक निर्णय में शामिल होने चाहिए। ऐसे जटिल कारकों का मूल्यांकन करते समय और किसी दिए गए मामले की सभी परिस्थितियों में तर्कसंगतता की अपनी अवधारणा बनाते समय, निर्णय में भाग लेने वाले न्यायाधीशों के सामाजिक दर्शन और मूल्यों का पैमाना महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, और ऐसे मामलों में विधायी निर्णय में उनके हस्तक्षेप की सीमा मात्र उनकी उत्तरदायित्व की भावना और आत्म-संयम तथा इस गंभीर चिंतन द्वारा निर्धारित की जा सकती है कि संविधान न मात्र उनकी विचारधारा वाले लोगों के लिए बल्कि सभी के लिए है, और जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के बहुमत ने प्रतिबंधों को लागू करने की अनुमति देते समय उन्हें तर्कसंगत माना है।”

48. यह सिद्धांत अन्य देशों में गति पकड़ने लगा और इंग्लैंड में भी इसका अनुप्रयोग और विकास हुआ, जैसा कि लॉर्ड डिप्लोक ने आर. बनाम गृह विभाग के सचिव, पूर्व पी ब्रिंड के मामले में उल्लेख किया है। टाटा सेलुलर बनाम भारत संघ के मामले में, इस न्यायालय ने सिविल सेवा संघ परिषद बनाम सिविल सेवा मंत्री के मामले में सदन के निर्णय से सहमति जताते हुए कहा कि न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा सामान्यतः अवैधता, अतार्किकता और प्रक्रियात्मक अनुचितता तक ही सीमित होना चाहिए, और यह भी कहा कि ये मात्र व्यापक आधार हैं, लेकिन समय के साथ और आधारों को जोड़ने की संभावना से अस्वीकार नहीं किया और “ब्रिंड” का भी उल्लेख किया।

49. सन् 1952 से ही भारत में विधायी और प्रशासनिक कार्यों में आनुपातिकता के सिद्धांत का सख्ती से पालन किया जाता रहा है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) में वर्णित मौलिक स्वतंत्रताओं का उल्लंघन करने वाले कानूनों की वैधता पर विचार करते समय, इस न्यायालय को यह देखना पड़ा है कि क्या कानूनों द्वारा लगाए गए प्रतिबंध स्थिति के अनुपातहीन थे और क्या वे उपलब्ध विकल्पों में से सबसे कम प्रतिबंधात्मक थे। ऐसे मामलों में जहां विधि बनाए जाते हैं और प्रतिबंध उचित होते हैं; फिर भी, यदि संबंधित विधि प्रशासनिक अधिकारियों को व्यक्तिगत परिस्थितियों में प्रतिबंध लगाते समय शक्ति या विवेक का प्रयोग करने की अनुमति देता है, तो अक्सर यह प्रश्न उठता है कि क्या प्रशासक ने प्रतिबंध लगाने में गलत चुनाव किया है या क्या प्रशासक ने मौलिक अधिकार और प्रतिबंध की आवश्यकता के बीच उचित संतुलन नहीं बनाया है या क्या उसने सबसे कम प्रतिबंध लगाए हैं या प्रतिबंधों की उचित मात्रा लगाई है आदि। ऐसे मामलों में, हमारे देश में प्रशासनिक कार्रवाई का परीक्षण आनुपातिकता के सिद्धांत पर किया जाना चाहिए, जैसा कि मुख्य कानूनों के मामले में किया जाता है। वास्तव में, न्यायालयों द्वारा यही किया जा रहा है। भारत में मौलिक स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाली प्रशासनिक कार्रवाइयों को पिछले 50 वर्षों में सदैव आनुपातिकता के सिद्धांत पर परखा गया है, भले ही यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है कि लागू किया जाने वाला सिद्धांत आनुपातिकता का सिद्धांत है। (देखें ओम कुमार)

(जोर दिया गया)

127. ए.पी. इंडस्ट्रियल इंफ्रास्ट्रक्चर कॉर्पोरेशन लिमिटेड के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने आनुपातिकता के सिद्धांत को इस प्रकार समझाया है:

"20. हम अपीलकर्ता निगम के इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि इन मामलों में आनुपातिकता का सिद्धांत लागू नहीं होता। प्रशासनिक विधि के क्षेत्र में, "आनुपातिकता" एक ऐसा सिद्धांत है जहाँ न्यायालय उस प्रक्रिया, विधि या तरीके से संबंधित होता है जिसके द्वारा निर्णयकर्ता ने अपनी प्राथमिकताओं को क्रमबद्ध किया है और किसी निष्कर्ष पर पहुँचा है या निर्णय लिया है। निर्णय लेने का मूल तत्व मामले में कारकों और विचारों को सापेक्षिक महत्व देना है। इस प्रकार आनुपातिकता का सिद्धांत अभ्यास की वास्तविक प्रकृति पर ध्यान केंद्रित करता है - अनुमेय प्राथमिकताओं के नियम का निर्धारण। डी स्मिथ यह भी कहते हैं कि "आनुपातिकता" में "संतुलन परीक्षण" और "आवश्यकता परीक्षण" शामिल हैं। "संतुलन परीक्षण" अत्यधिक कठोर दंडों या अधिकारों या हितों के उल्लंघन और प्रासंगिक विचारों के स्पष्ट असंतुलन की जाँच की अनुमति देता है।"

(जोर दिया गया)

128. मॉडर्न डेंटल कॉलेज एंड रिसर्च सेंटर एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य (2016) 7 एससीसी 353 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने विधि द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों की तर्कसंगतता का निर्धारण करने के लिए आनुपातिकता के सिद्धांत को लागू किया। प्रासंगिक अंश इस प्रकार है -

"63. इस दिशा में अगला प्रश्न यह उठता है कि किसी कानून द्वारा लगाए गए अधिकारों और सीमाओं के दो पहलुओं के बीच उचित संतुलन के लिए कौन से मानदंड अपनाए जाने चाहिए। यहीं पर "आनुपातिकता" की अवधारणा आती है, जो एक उपयुक्त मानदंड है। संक्षेप में कहें तो, जब कोई विधि किसी संवैधानिक अधिकार को सीमित करता है, तो ऐसी सीमा संवैधानिक तभी होती है जब वह आनुपातिक हो। प्रतिबंध लगाने वाले विधि को आनुपातिक माना जाएगा यदि इसका उद्देश्य किसी उचित लक्ष्य को प्राप्त करना है, और यदि ऐसे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उठाए गए उपाय उस लक्ष्य से तर्कसंगत रूप से जुड़े हुए हैं, और ऐसे उपाय आवश्यक हैं। आनुपातिकता के सिद्धांत का यह सार कनाडा के मुख्य न्यायाधीश डिकसन ने आर. बनाम ओक्स मामले में निम्नलिखित शब्दों में खूबसूरती से व्यक्त किया है (पृष्ठ 138 पर):

"किसी स्वतंत्र और लोकतांत्रिक समाज में किसी सीमा को उचित और सिद्ध रूप से न्यायसंगत साबित करने के लिए, दो मुख्य मानदंडों को पूरा किया जाना चाहिए। पहला, वह उद्देश्य, जिसकी पूर्ति के लिए संविधान के किसी अधिकार या स्वतंत्रता पर सीमा लगाने वाले उपाय बनाए गए हैं, संवैधानिक रूप से संरक्षित अधिकार या स्वतंत्रता को दरकिनार करने के लिए पर्याप्त रूप से महत्वपूर्ण होना चाहिए... दूसरा... धारा 1 का हवाला देने वाले पक्ष को यह दिखाना होगा कि चुने गए साधन उचित और सिद्ध रूप से न्यायसंगत हैं। इसमें "आनुपातिकता परीक्षण का एक रूप" शामिल है... यद्यपि आनुपातिकता परीक्षण की प्रकृति परिस्थितियों के अनुसार भिन्न होगी, प्रत्येक मामले में न्यायालयों को समाज के हितों और व्यक्तियों एवं समूहों के हितों के बीच संतुलन स्थापित करना होगा। मेरे विचार में, आनुपातिकता परीक्षण के तीन महत्वपूर्ण घटक हैं। पहला, अपनाए गए

उपाय ... उद्देश्य से तर्कसंगत रूप से जुड़े होने चाहिए। दूसरा, साधन ... संबंधित अधिकार या स्वतंत्रता को "जितना संभव हो उतना कम" प्रभावित करने चाहिए.... तीसरा, संविधान के किसी अधिकार या स्वतंत्रता को सीमित करने वाले उपायों के प्रभावों और "पर्याप्त महत्व" के रूप में पहचाने गए उद्देश्य के बीच आनुपातिकता होनी चाहिए। किसी उपाय के हानिकारक प्रभाव जितने अधिक गंभीर होंगे, किसी स्वतंत्र और लोकतांत्रिक समाज में उपाय को तर्कसंगत और स्पष्ट रूप से न्यायसंगत बनाने के लिए उद्देश्य का महत्व और भी अधिक होना चाहिए।"

64. इसलिए, जो अभ्यास किया जाना है, वह यह पता लगाना है कि क्या संवैधानिक अधिकारों की सीमा एक लोकतांत्रिक समाज में उचित और आवश्यक उद्देश्य के लिए है, और इस तरह के अभ्यास में प्रतिस्पर्धी मूल्यों का मूल्यांकन करना और अंततः आनुपातिकता के आधार पर आकलन करना शामिल है, अर्थात् विभिन्न हितों को संतुलित करना।

65. हम निःसंकोच कह सकते हैं कि आनुपातिकता का यह सिद्धांत, जिसका संक्षेप में ऊपर वर्णन किया गया है, अनुच्छेद 19 में ही निहित है, जब हम इसके खंड (1) को खंड (6) के साथ पढ़ते हैं। यह परिभाषित करते हुए कि उचित प्रतिबंध क्या होता है, इस न्यायालय ने अनेक निर्णयों में यह माना है कि "उचित प्रतिबंध" शब्द अनुच्छेद 19 के खंड (1) के किसी भी उपखंड द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता और खंड (2) से (6) द्वारा अनुमत सामाजिक नियंत्रण के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। यह माना जाता है कि "उचित" शब्द का अर्थ यह है कि किसी व्यक्ति पर उसके अधिकार के उपभोग में लगाया गया प्रतिबंध मनमाना या सार्वजनिक हित से अधिक नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, उचित होने के लिए, प्रतिबंध का उस उद्देश्य से उचित संबंध होना चाहिए जिसे विधान प्राप्त करना चाहता है, और उस उद्देश्य से आगे नहीं जाना चाहिए (देखें पी.पी. एंटरप्राइजेज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया)। साथ ही, किसी प्रतिबंध की तर्कसंगतता का निर्धारण वस्तुनिष्ठ तरीके से और आम जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए, न कि उन व्यक्तियों के दृष्टिकोण से जिन पर प्रतिबंध लगाए गए हैं या अमूर्त विचारों के आधार पर (देखें मोहम्मद हनीफ कुरैशी बनाम बिहार राज्य)। एम.आर.एफ. लिमिटेड बनाम केरल राज्य के मामले में, इस न्यायालय ने माना कि किसी वैधानिक प्रावधान की तर्कसंगतता की जांच करते समय निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखना होगा:

(1) राज्य के नीति निदेशक तत्व।

(2) प्रतिबंध मनमाने या अत्यधिक प्रकृति के नहीं होने चाहिए, जो आम जनता के हित की आवश्यकता से परे हों।

(3) प्रतिबंधों की तर्कसंगतता का आकलन करने के लिए, कोई अमूर्त या सामान्य प्रतिरूप या निश्चित सिद्धांत निर्धारित नहीं किया जा सकता है जो सार्वभौमिक रूप से लागू हो और यह मामले दर मामले के साथ-साथ बदलती परिस्थितियों, मानव जीवन के मूल्यों, संविधान के सामाजिक दर्शन, प्रचलित स्थितियों और आसपास के परिवेश के अनुसार भिन्न होगा।

(4) लगाए गए प्रतिबंधों और अनुच्छेद 19(6) द्वारा परिकल्पित सामाजिक नियंत्रण के बीच उचित संतुलन स्थापित किया जाना चाहिए।

(5) प्रचलित सामाजिक मूल्य और साथ ही सामाजिक आवश्यकताएं जिन्हें प्रतिबंधों के माध्यम से पूरा किया जाना है।

(6) लगाए गए प्रतिबंधों और हासिल किए जाने वाले उद्देश्य के बीच सीधा और निकट संबंध या उचित जुड़ाव होना आवश्यक है। यदि प्रतिबंधों और अधिनियम के उद्देश्य के बीच सीधा संबंध है, तो अधिनियम की संवैधानिकता के पक्ष में एक प्रबल अनुमान स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होगा।”

(ii) आनुपातिकता के प्रमुख सिद्धांत:

44. अतः निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं:

(ए) प्रशासनिक कार्रवाई का उद्देश्य वैध होना चाहिए;

(बी) इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए की गई कार्रवाई उपयुक्त होनी चाहिए;

(सी) आनुपातिकता के सिद्धांत का प्रयोग किसी प्रशासनिक कार्रवाई का परीक्षण करने के लिए किया जाता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि वह न्यायसंगत और उचित है तथा अत्यधिक तो नहीं है;

(डी) यह सुनिश्चित करता है कि विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं बल्कि उचित रूप से किया जाए और मौलिक अधिकारों का असमान रूप से उल्लंघन न हो;

(ई) अपनाए गए उपाय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कम से कम प्रतिबंधात्मक या कम से कम बोझिल होने चाहिए; और

(एफ) तर्कसंगतता की कसौटी का मूल्यांकन आम जनता के हित के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, न कि उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से जिसके विरुद्ध कार्रवाई की जा रही है।

(iii) आवंटन पत्र और पट्टा विलेखों के अनुसार अपनाए गए प्रतिबंधात्मक उपाय:

130. निःसंदेह, याचिकाकर्ता ने पट्टा विलेख के अनुच्छेद 3 और आवंटन पत्र के खंड 3 के अनुसार जमा की जाने वाली राशि का भुगतान करने में डिफॉल्ट की थी। बचाव के मुख्य आधारों में से एक यह है कि आक्षेपित आदेश अंतिम उपाय के रूप में पारित किया गया था और प्राधिकरण द्वारा कई अन्य प्रतिबंधात्मक विकल्पों को समाप्त करने के बाद पारित किया गया था, इसलिए हम पहले इस संबंध में उठाए गए कदमों की जांच करते हैं -

(ए) डिफॉल्ट नोटिस जारी करना:

13 सितंबर, 2011 और 25 अगस्त, 2015 के बीच, प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को कुल 21 डिफॉल्ट नोटिस भेजे, जिसमें आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों की शर्तों के अनुसार भुगतान करने का अनुरोध किया गया था।

(बी) भुगतान की समय सीमा बढ़ाने का अनुरोध:

याचिकाकर्ता ने तीन अलग-अलग अवसरों पर— पत्रों दिनांक 18 फरवरी, 2014, 7 अगस्त, 2014 और 1 दिसंबर, 2014 के माध्यम से—अपने बकाया भुगतान के लिए समय सीमा बढ़ाने का अनुरोध किया। आवंटन पत्र के खंड 3.6 के अनुसार, प्राधिकरण ने फरवरी में तीन बार समय सीमा बढ़ाई। 21 अगस्त, 2014, 13 अगस्त, 2014 और 29 दिसंबर, 2014 को न्यूनतम प्रतिबंधात्मक उपाय के रूप में भुगतान करने का प्रयास किया गया। इसके बावजूद, याचिकाकर्ता समय पर भुगतान करने में विफल रहा।

(सी) शुल्क का पुनर्निर्धारण:

31 मार्च 2018 तक याचिकाकर्ता पर लगभग 718 करोड़ रुपये का बकाया था। वित्तीय कठिनाइयों का हवाला देते हुए, याचिकाकर्ता ने पत्रों दिनांक 22 अगस्त 2017, 8 मार्च 2018 और 12 अप्रैल 2018 के माध्यम से

भुगतान की तिथि में परिवर्तन का अनुरोध किया। इसके जवाब में, प्राधिकरण ने 28 मई 2018 को जारी एक पत्र के माध्यम से संशोधित भुगतान योजना पर सहमति व्यक्त की।

(डी) पुनर्निर्धारण के बावजूद बार-बार डिफॉल्ट होना:

पुनर्निर्धारित योजना पर सहमति बनने के बावजूद, याचिकाकर्ता डेढ़ साल से अधिक समय तक पहली दो किस्तों का भुगतान करने में विफल रहा। विशेष रूप से, पहली किस्त (लगभग 125 करोड़ रुपये) और तीसरी किस्त (लगभग 100 करोड़ रुपये) का भुगतान नहीं किया गया। इसके जवाब में, प्राधिकरण ने 16 अक्टूबर, 2018, 3 दिसंबर, 2018, 13 दिसंबर, 2018, 19 अगस्त, 2019, 31 अक्टूबर, 2019 और 9 दिसंबर, 2019 को छः अतिरिक्त डिफॉल्ट नोटिस जारी किए। बकाया राशि का भुगतान करने के बजाय, याचिकाकर्ता ने पुनर्निर्धारित योजना के अंतर्गत और अधिक समय बढ़ाने की मांग जारी रखी।

(ई) अंतिम विस्तार और गैर-अनुपालन:

एक अन्य कम प्रतिबंधात्मक उपाय के रूप में, प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को संशोधित योजना के अंतर्गत पहली किस्त जमा करने के लिए 31 दिसंबर, 2018 तक का समय दिया। हालांकि, समय सीमा तक याचिकाकर्ता ने मात्र 10 करोड़ रुपये जमा किए, जो कि अपेक्षित पहली किस्त राशि लगभग 108 करोड़ रुपये से काफी कम थी। इसके बाद याचिकाकर्ता ने 15 फरवरी, 2019 तक एक और समय बढ़ाने का अनुरोध किया।

(एफ) बकाया राशि की भरपाई के लिए प्रदर्शन बैंक गारंटी का आह्वान:

18 जून, 2019 को याचिकाकर्ता ने प्राधिकरण से बकाया राशि के समाधान के लिए 100 करोड़ रुपये की प्रदर्शन बैंक गारंटी को भुनाने का अनुरोध किया। इसके बाद, 2 जुलाई, 2019 को प्राधिकरण ने बैंक गारंटी का आह्वान किया और राशि को बकाया राशि के भुगतान में लगा दिया। यह कार्रवाई आरक्षण पत्र और आवंटन पत्र दोनों के खंड 2.3 के आधार पर की गई थी। 31 अक्टूबर, 2019 को प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को प्रदर्शन बैंक गारंटी को बहाल करने का निर्देश दिया क्योंकि पिछली गारंटी को बकाया राशि में समायोजित कर लिया गया था। हालांकि, याचिकाकर्ता ऐसा करने में विफल रहा।

(जी) एस्क्रो अनुबंध:

भुगतान को सुगम बनाने के लिए, दोनों पक्षकारों ने 24 सितंबर, 2019 को एक एस्क्रो अनुबंध किया। हालांकि, इस व्यवस्था के बावजूद, याचिकाकर्ता अपने दायित्वों को पूरा करने में विफल रहा। 28 फरवरी, 2020 तक, एस्क्रो खाते में मात्र लगभग 47.09 लाख रुपये ही जमा किए गए थे।

(एच) त्रुटियों को सुधारने का अंतिम अवसर:

प्राधिकरण द्वारा स्थिति को सुलझाने और याचिकाकर्ता को अपनी डिफॉल्ट को दूर करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करने के कई प्रयासों के बावजूद, याचिकाकर्ता अनुपालन करने में विफल रहा। परिणामस्वरूप, प्राधिकरण ने 9 दिसंबर, 2019 को कारण बताओ नोटिस जारी किया, जिसमें डिफॉल्ट को सुधारने का अंतिम अवसर दिया गया।

(iv) अन्य प्रतिबंधात्मक उपाय:

131. अभिलेख से यह भी पता चलता है कि जब याचिकाकर्ता ने पूरे आवंटन को रद्द न करने और उसके द्वारा की गई डिफॉल्ट के अनुपात में कार्रवाई करने पर जोर दिया, तो बोर्ड ने अपनी बैठक दिनांक 04.09.2017

में मद संख्या 61/2016 पर इस मामले पर विचार किया, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा की गई डिफॉल्ट के अनुपात में भूमि को वापस लेने का निर्णय लिया गया। निर्णय का सटीक विवरण नीचे दिया गया है:-

"संचालक मण्डल द्वारा प्रस्ताव पर विचारोपरान्त निम्न निर्णय लिये गये:-

प्रस्ताव-1 जो कि विदेश बैंक के पक्ष में बन्धक- अनुमति से सम्बन्धित है को संचालक मण्डल द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

प्रस्ताव-2 प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान संचालक मण्डल द्वारा मैं, जेपीएसआई को सैक्टर-25 में आवंटित एस.डी.जेड. योजना के अंतर्गत दिनांक 31.08.2017 तक कुल बकाया धनराशि का संज्ञान लिया गया। तदक्रम में देनदारी के सम्बंध में निर्णय लिया गया कि चूँकि जे०पी० द्वारा प्राधिकरण को दिनांक 31.08.2017 तक एस०डी० जेड० परियोजना की मूल धनराशि, लीज रेन्ट तथा 64.7 प्रतिशत अतिरिक्त प्रतिकर के सापेक्ष कुल रु, 1453.40 करोड़ की देनदारियों का भुगतान नहीं किया गया है अतः ऐसी स्थिति में उक्त धनराशि के सापेक्ष समानुपातिक भूमि प्राधिकरण द्वारा जे०पी० से वापिस ली जाये। यह भी सुनिश्चित कर लिया जाये कि वापिस ली जाने वाली भूमि जे०पी० द्वारा किसी को सब-लीज, आवंटित अथवा जे०पी० द्वारा आवंटित किसी योजना का भाग न हो।

भविष्य में भी जब -2 जे०पी० द्वारा समय पर किश्तों का भुगतान न किया जाये तो डिफाल्टिड धनराशि के सापेक्ष समानुपातिक भूमि समय-2 पर जे०पी० से वापिस ली जाये।

एस.डी.जेड. सैक्टर-25, यमुना एक्सप्रेसवे क्षेत्र में जे०पी० द्वारा स्कैप की गई विभिन्न परियोजनाओं यथा बुद्धा सर्किट-1 आदि के सब-आवंटियों के हितों को सुरक्षित रखते हुये यह निर्णय लिया गया कि जे०पी० द्वारा 31 अक्टूबर, 2017 तक पूर्व निर्णय के आधार पर सभी सब-आवंटियों को वापिस नहीं किया जाता तो समस्त धनराशि के विपरीत समानुपातिक भूमि वापिस ले ली जाए तथा उक्त संस्तुति के साथ प्रस्ताव शासन को इस अनुरोध के साथ प्रेषित किया जाये कि शासन उक्त भूमि के निस्तारण हेतु भूमि को विक्रय कर आवंटियों को धनराशि वापिस कराने के सम्बन्ध में समुचित व्यवस्था करा दे।"

132. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 47262/2017 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष उक्त निर्णय को चुनौती दी, जिसमें यह विशिष्ट आधार उठाया गया कि प्राधिकरण का उक्त निर्णय आवंटन पत्र, आरक्षण पत्र और पट्टा विलेखों की शर्तों और नियमों को रद्द नहीं कर सकता और प्राधिकरण को पट्टा विलेखों के अंतर्गत याचिकाकर्ता की भूमि वापस लेने का कोई अधिकार नहीं है। याचिकाकर्ता ने पत्र दिनांक 3 नवंबर 2017 द्वारा आनुपातिक भूमि वापस लेने का भी विरोध किया। इस पृष्ठभूमि और परिस्थितियों में, प्राधिकरण की 62वीं बोर्ड बैठक में बकाया राशि की पुनर्निर्धारण योजना पर सहमति बनी और 28 मई 2018 को याचिकाकर्ता को इसकी सूचना दी गई। हालांकि, याचिकाकर्ता पुनर्निर्धारण पत्र की पहली और दूसरी किस्त का भुगतान करने में भी विफल रहा। अंततः, रद्दीकरण आदेश पारित किया गया।

133. घटनाक्रम से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि आवंटन पत्र जारी होने से लेकर पट्टा विलेखों पर हस्ताक्षर होने तक, हर चरण में वाईईए ने न केवल याचिकाकर्ता को संविदात्मक शर्तों के अनुसार कार्य करने

के लिए कहा, बल्कि समझौतों/पट्टा विलेखों की शर्तों के अनुसार अपेक्षित किसी भी कठोर कार्रवाई से भी परहेज किया। वाईईए ने याचिकाकर्ता के समय-समय पर किए गए अनुरोधों को स्वीकार किया, चाहे वह पुनर्निर्धारण द्वारा जमा राशि जमा करने के लिए अतिरिक्त समय देने का अनुरोध हो या कोई अन्य अनुरोध।

(v) विचार किए गए कारक:

बकाया भुगतान में डिफॉल्ट :

134. 2009-11 के बीच याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टा विलेख निष्पादित किए गए थे। अंतिम पट्टा विलेख 28.3.2011 का है। याचिकाकर्ता ने आवंटन पत्र के अनुसार प्रीमियम राशि का 20% भुगतान कर दिया था और शेष 80% प्रीमियम का भुगतान बीस अर्धवार्षिक किस्तों में, वर्तमान एसबीआई पीएलआर की दर से घटती राशि पर ब्याज सहित किया जाना था। पहली अर्धवार्षिक किस्त आवंटन पत्र जारी होने की तिथि से 180 दिन बाद देय हो गई थी। याचिकाकर्ता ने वर्ष 2011 से ही भुगतान में डिफॉल्ट करना शुरू कर दिया था। उसे पहला डिफॉल्ट नोटिस 13.09.2011 को दिया गया था, जिसके बाद अगस्त 2015 तक बीस और डिफॉल्ट नोटिस जारी किए गए।

135. पक्षकारों के बीच हुए समझौते की शर्तों के अनुसार, प्रीमियम और पट्टे के किराए के लिए निर्धारित राशि के अतिरिक्त, जो बीस अर्धवार्षिक किस्तों में देय थी, याचिकाकर्ता भूमि अधिग्रहण की लागत का भुगतान करने के लिए भी उत्तरदायी था। यह निर्विवाद है कि परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता अतिरिक्त प्रतिकर का भुगतान करने के लिए भी उत्तरदायी था, जो भूमि अधिग्रहण लागत का एक घटक था। इस संबंध में, वाईईए ने पत्र दिनांक 15.12.2014 द्वारा 759,19,02,236.54 रुपये की मांग उठाई थी और याचिकाकर्ता को इसे चार अर्धवार्षिक किस्तों में जमा करने की अनुमति दी गई थी।

136. याचिकाकर्ता ने अपने शपथपत्र दिनांक 12.10.2023 (छठा पूरक शपथपत्र) में वाईईए द्वारा बकाया ऋण प्रीमियम, पट्टा किराया, अतिरिक्त प्रतिकर के रूप में दावा की जा रही राशि पर आपत्ति जताई और पैराग्राफ-13 में अपने अनुसार देय राशि 10,67,78,65,669 रुपये बताई। पैराग्राफ-13 नीचे उद्धृत है:

“13. उपरोक्त प्रस्तुतियों के दृष्टिगत यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता निम्नलिखित मदों के अंतर्गत कुल 1067,78,65,669/- रुपये का भुगतान करने के लिए ही उत्तरदायी है:

(ए) दिनांक 12.02.2020 (अर्थात् रद्दीकरण आदेश की तिथि) तक शेष भूमि प्रीमियम - 547,77,22,591 रुपये

(बी) 12.02.2020 तक का किराया, अर्थात् रद्द करने की तिथि तक का किराया 68,68,93,823/- रुपये है।

(सी) अतिरिक्त प्रतिकर 451,40,40,275/- रुपये।”

137. उसी शपथपत्र के पैराग्राफ 14 और 15 में याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित बातें कही हैं:

“14. याचिकाकर्ता वाईईआईडीए को भुगतान करने के लिए इच्छुक और तैयार है और निम्नलिखित अनुसार शेष राशि 1067,78,65,669/- रुपये का भुगतान करने का वचन देता है:-

- i) माननीय उच्च न्यायालय के अंतिम आदेश की तिथि से 6 माह के भीतर 75% भुगतान करना होगा।
 ii) माननीय उच्च न्यायालय के अंतिम आदेश की तिथि से 9 माह के भीतर शेष 25% का भुगतान करें।

15. याचिकाकर्ता यह भी प्रस्तुत करता है कि वह अपने द्वारा शुरू की गई आवास परियोजनाओं का निर्माण कार्य करेगा और वाईईआईडीए द्वारा उसकी भवन योजनाओं को स्वीकृति दिए जाने की तिथि से 6 से 30 माह की अवधि के भीतर इसे पूरा करेगा।

138. उक्त शपथपत्र के जवाब में, प्रतिवादी प्राधिकरण ने अपने शपथपत्र दिनांक 25.10.2023 के पैराग्राफ-4 में अपना पक्ष रखा है। पैराग्राफ-4 नीचे उद्धृत है:

“4. प्रारंभ में, प्राधिकरण यह प्रस्तुत करता है कि याचिकाकर्ता की ओर से 30 नवंबर 2022 तक निम्नलिखित मदों के अंतर्गत लगभग 36,21,50,48,491/- रुपये [3621 करोड़ रुपये] की कुल राशि लंबित और देय है:

क्रम संख्या	विषय	राशि [INR]
1.	अधिमूल्य	9,981,785,782.21 [लगभग 998 करोड़]
2.	पट्टा किराया	3,580,201,571.85 [लगभग 358 करोड़]
3.	अतिरिक्त मुआवज़ा	22,653,061,136.90 [लगभग 2265 करोड़]
कुल		36,21,50,48,491 [3621 करोड़ रुपये]

139. इस स्तर पर, याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए आंकड़ों के आधार पर भी, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता पर देय राशि कुल राशि का मात्र 9% से 25% नहीं बल्कि कहीं अधिक थी। मात्र प्रीमियम और पट्टे के किराए के आधार पर देय राशि का दावा करना निराधार है, क्योंकि याचिकाकर्ता ने अतिरिक्त प्रतिकर के रूप में भारी राशि का भुगतान करने की बात स्वीकार की है।

याचिकाकर्ता की वित्तीय स्थिति का आकलन और गृह खरीदारों के प्रति दायित्वों को पूरा करने में विफलता :

140. यह स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा गठित विशेष प्रयोजन वाहन (एसपीवी) जेआईएल की विभिन्न परियोजनाओं के गृह खरीदारों ने अपने हितों की रक्षा के लिए विभिन्न निर्देशों की मांग करते हुए रिट याचिका (सिविल) संख्या 744/2017 (चित्रा शर्मा एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य) के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय का रुख किया। उक्त मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि आरबीआई ने

एक आंतरिक सलाहकार समिति (आईएसी) का गठन किया था। इसने 31 मार्च 2017 तक बैंकिंग प्रणाली में शीर्ष 500 खातों में से आंशिक या पूर्ण रूप से गैर-निष्पादित (निष्पादित) के रूप में वर्गीकृत खातों पर विचार किया। प्रथम चरण के रूप में, आईएसी ने 5,000 करोड़ रुपये से अधिक के निधि और गैर-निधि आधारित बकाया वाले सभी गैर-निष्पादित परिसंपत्ति खातों की सिफारिश की। जेआईएल उन बारह खातों में से एक था जिनके संबंध में बैंकों को दिवालियापन समाधान शुरू करने के निर्देश जारी किए गए हैं। इसके बाद, आईएसी ने सिफारिश की कि जिन खातों में 30 जून 2017 तक 60% या उससे अधिक को एनपीए के रूप में वर्गीकृत किया गया था, उनके संबंध में बैंकों को छः माह के भीतर एक व्यवहार्य समाधान योजना लागू करने का निर्देश दिया जाए, अन्यथा 31 दिसंबर 2017 तक इन खातों को आईबीसी के अंतर्गत संदर्भित किया जा सकता है। याचिकाकर्ता कंपनी ऐसी ही एक इकाई थी। कोई व्यवहार्य समाधान योजना नहीं मिल सकी, जिसके परिणामस्वरूप इसे भी सीआईआरपी के लिए संदर्भित किया जाना आवश्यक है। निर्णय में इस तथ्य पर भी ध्यान दिया गया है कि बैंकों द्वारा 3 अक्टूबर 2014 को ही जेएल को एसएमए - II श्रेणी (60 दिनों से अधिक समय से बकाया मांगों) के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया था और 31 मार्च 2015 से इसे एनपीए घोषित किया गया था। उक्त निर्णय में आगे यह टिप्पणी की गई है कि “आरबीआई द्वारा दायर आवेदन से न्यायालय के समक्ष जो तथ्य सामने आए हैं, वे जेएल और जेआईएल की वित्तीय कठिनाई को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं। तदनुसार, हम आरबीआई की ओर से किए गए अनुरोध को स्वीकार करते हुए उसे आईबीसी के अंतर्गत जेएल के विरुद्ध सीआईआरपी शुरू करने के लिए आईएसी की सिफारिशों का पालन करने की अनुमति देते हैं।”

141. याचिकाकर्ता के अनुसार, उसने प्रतिवादी प्राधिकरण को विभिन्न मदों के अंतर्गत कुल 2294.48 करोड़ रुपये का भुगतान किया है और मुख्य एवं गैर-मुख्य क्षेत्रों के विकास में 2500 करोड़ रुपये का निवेश किया है, इस प्रकार कुल 4794.48 करोड़ रुपये खर्च किए हैं। याचिकाकर्ता ने न्यायालय को दिए गए लिखित नोट में स्वीकार किया है कि उसने 2011-2016 के बीच अब तक 2500 आवासीय भूखंड बेचे हैं। याचिकाकर्ता का कहना है कि उसकी चार समूह आवास योजनाओं में 2750 इकाइयों का प्रावधान है, जिनमें से 2155 इकाइयां बिक चुकी हैं, जबकि 595 इकाइयां अविक्रयित हैं। याचिकाकर्ता ने एसडीजेड की विभिन्न भूखंडों को गिरवी रखकर वित्तीय संस्थानों और अन्य ऋणदाताओं से भारी मात्रा में वित्तीय सहायता प्राप्त की है। उसने वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए वित्तीय संस्थानों के पक्ष में उप-पट्टा भी बनाया था। हालांकि, भूमि का मुद्रीकरण करके वित्तीय सहायता के रूप में प्राप्त की गई सटीक राशि का खुलासा नहीं किया गया है।

142. सुरक्षा एसेट रिकंस्ट्रक्शन लिमिटेड द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 8909/2021 में कहा गया है कि याचिकाकर्ता कंपनी ने विभिन्न बैंकों से वित्तीय सहायता ली थी और डिफॉल्ट के परिणामस्वरूप, प्रतिभूतिकरण और वित्तीय परिसंपत्तियों के पुनर्निर्माण और प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के अंतर्गत दिनांक 21.05.2019 को उसे नोटिस जारी किया गया था, जिसमें 31 मार्च, 2019 तक बकाया राशि 692,54,27,494.92 रुपये की मांग की गई थी।

143. यहां यह ध्यान देने योग्य है कि आवंटन पत्रों के खंड 10.1 के अनुसार, याचिकाकर्ता को एसडीजेड भूमि के मुख्य गतिविधि क्षेत्र में आने वाली भूमि के लिए अंतिम पट्टा विलेख के निष्पादन की तिथि से दस वर्षों की अवधि के भीतर मुख्य गतिविधि के लिए अनुमत कवर किए गए क्षेत्र का न्यूनतम 40 प्रतिशत पूरा करना था। आवंटन पत्रों के खंड 15.1 के अनुसार, याचिकाकर्ता का यह दायित्व था कि वह प्राधिकरण से लागू स्वीकृतियां, अनुमोदन और स्वीकृति प्राप्त करे। याचिकाकर्ता को समूह आवास परियोजनाओं सहित गैर-मुख्य क्षेत्र का भी विकास करना था।

144. होमबायर्स एसोसिएशन द्वारा दायर संबंधित रिट याचिका [जयपी स्पोर्ट्स सिटी वेलफेयर सोसाइटी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट सी संख्या 21532 / 2021] में कहा गया है कि अधिकांश फ्लैट/प्लॉट याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 2011 से आवंटित किए गए थे और आवंटन के समय, आवंटन की शर्तों के अनुसार आवंटियों से काफी बड़ी रकम ली गई थी। याचिकाकर्ता ने आवंटन की तिथि से 18 से 24 महीनों के भीतर कब्जा सौंपने का वचन दिया था। इस प्रकार, कब्जा लगभग वर्ष 2014-15 में दिया जाना था। हालांकि, दस वर्ष बीत जाने के बाद भी याचिकाकर्ता कंपनी परियोजनाओं को पूरा करने में विफल रही है। अधिकांश परियोजनाएं तो शुरू भी नहीं हुई हैं और अन्य आंशिक रूप से पूरी हो चुकी हैं, जिनमें मात्र ढांचा ही उपलब्ध है। याचिकाकर्ता कंपनी की रियल एस्टेट रेगुलेटरी अथॉरिटी (रेरा) के साथ पंजीकृत परियोजनाओं का विवरण और उस समय की निर्माण स्थिति पैराग्राफ 10 में दी गई है, जो इस प्रकार है:

परियोजनाओं की स्थिति

परियोजना का नाम	परियोजना प्रकार	रेरा पंजीकरण संख्या	मूल लाउंस तिथि	रेरा पंजीकरण की तिथि	रेरा पूर्ण तिथि	वर्तमान स्थिति
जेपी हरित बौगेनविल ईएस, एसडीजेड, वाईईडब्लू	बड़े आवासीय भूखंड	यूपी रera पीआरजे 5436	30-08-2012	29-07-2017	31-12-2014	इस प्रस्तावित विकास परियोजना में कोई बुनियादी ढांचा मौजूद नहीं है, न ही उचित सड़कें हैं, न ही पानी की आपूर्ति है, न ही सीवेज कनेक्शन है, न ही पार्क, क्लब या कोई अन्य

						सुविधाएं उपलब्ध हैं।
जेपी हरित देश घर-I, एसडीजेड, वाईईडब्लू	आवासीय भूखंड	यूपी रेरा पीआरजे 5440	16-01-2010	29-07-2017	30-11-2011	इस भूखंड पर कोई बुनियादी ढांचा मौजूद नहीं है, न ही उचित सड़कें हैं, केवल कच्ची सड़क बनी हुई है जिस पर कुछ बिजली के खंभे हैं लेकिन उनमें बिजली नहीं है, न ही पानी की आपूर्ति है, न ही सीवेज कनेक्शन है, न ही पार्क, क्लब या कोई अन्य सुविधाएं उपलब्ध हैं।
जेपी हरित क्राउन, एसडीजेड, वाईईडब्लू	आवासीय भूखंड	यूपी रेरा पीआरजे 5445	22-10-2010	29-07-2017	28-02-2012	इस भूखंड पर कोई बुनियादी ढांचा मौजूद नहीं है, न ही उचित सड़कें हैं, केवल कच्ची सड़क बनी हुई है जिस पर कुछ बिजली के खंभे हैं लेकिन उनमें बिजली नहीं है, न ही पानी की आपूर्ति है, न ही सीवेज

						कनेक्शन है, न ही पार्क, क्लब या कोई अन्य सुविधाएं उपलब्ध हैं।
जेपी हरित बुद्ध सर्किट स्टूडियो-I, एसडीजेड, वाईईडब्लू	आवासीय फ्लैट	यूपी रेरा पीआरजे 4818	22-04-2013	29-07-2017	31-03-2021	अभी तक कोई काम नहीं हुआ है, सब कुछ केवल योजना चरण में है, कोई मंजूरी नहीं मिली है। यह जगह खाली पड़ी है।
जेपी हरित कासिया I, एसडीजेड, वाईईडब्लू	आवासीय फ्लैट	यूपी रेरा पीआरजे 4716	19-02-2011	29-07-2017	31-12-2019	बाहरी ईंट-पत्थर की संरचना का काम पूरा हो चुका है, बाकी सभी काम 2012 से रुके हुए हैं और तब से कोई निर्माण कार्य नहीं हुआ है।
जेपी हरित कासिया II, III, एसडीजेड, वाईईडब्लू	आवासीय फ्लैट	यूपी रेरा पीआरजे 4751	09-02-2011	29-07-2017	31-12-2020	विभिन्न चरणों में बन रही कई मीनारों का केवल ईंटों से बनी दीवारें ही तैयार हैं और बाकी सभी काम 2012 से रुके हुए हैं और तब से कोई निर्माण कार्य नहीं हुआ है।

जेपी हरित कोव, एसडीजेड, वाईईडब्लू	आवासीय फ्लैट	यूपी रेरा पीआरजे 4777	29-06-2011	29-07-2017	30-06-2022	कुछ टावर अलग-अलग चरणों में हैं, केवल ईट की दीवारें ही बनी हैं और बाकी सारा काम 2012 से रुका हुआ है और तब से कोई निर्माण कार्य नहीं हुआ है। निर्माण स्थल चारों ओर से ढका हुआ है, लेकिन अंदर देखने पर पता चलता है कि पूरा स्थल एक या दो मंजिल तक पानी में डूबा हुआ है और ऐसा लगता है मानो भूमिगत जल स्थल पर आ गया हो।
जेपी हरित स्पोर्ट्स विले, एसडीजेड, वाईईडब्लू	स्वतंत्र मकान	यूपी रेरा पीआरजे 5424	15-01-2015	29-07-2017	30-06-2020	इस भूखंड पर कोई बुनियादी ढांचा मौजूद नहीं है, न ही उचित सड़कें हैं, केवल कच्ची सड़क बनी हुई है जिस

						पर कुछ बिजली के खंभे हैं लेकिन उनमें बिजली नहीं है, न ही पानी की आपूर्ति है, न ही सीवेज कनेक्शन है, न ही पार्क, क्लब या कोई अन्य सुविधाएं उपलब्ध हैं।
जेपी हरित विला एक्सपांज़ा देश होम्स-II, एसडीजेड,	स्वतंत्र मकान	यूपी रेरा पीआरजे 5415	05-10- 2013	29-07- 2017	31-03- 2020	इस भूखंड पर कोई बुनियादी ढांचा मौजूद नहीं है, न ही उचित सड़कें हैं, केवल कच्ची सड़क बनी हुई है जिस पर कुछ बिजली के खंभे हैं लेकिन उनमें बिजली नहीं है, न ही पानी की आपूर्ति है, न ही सीवेज कनेक्शन है, न ही पार्क, क्लब या कोई अन्य सुविधाएं उपलब्ध हैं।

जेपी हरित विला एक्सपांज़ा ग्रीनक्रेस्ट घर, एसडीजेड, वाईईडब्लू	स्वतंत्र मकान	यूपी रेरा पीआरजे 5048	14-09- 2013	29-07- 2017	30-06- 2020	इस भूखंड पर कोई बुनियादी ढांचा मौजूद नहीं है, न ही उचित सड़कें हैं, केवल कच्ची सड़क बनी हुई है जिस पर कुछ बिजली के खंभे हैं लेकिन उनमें बिजली नहीं है, न ही पानी की आपूर्ति है, न ही सीवेज कनेक्शन है, न ही पार्क, क्लब या कोई अन्य सुविधाएं उपलब्ध हैं।

145. यह भी दावा किया गया है कि दस आवासीय परियोजनाओं में, कुल 2433.41 करोड़ रुपये की प्राप्य राशि में से, याचिकाकर्ता कंपनी ने लगभग 1900 करोड़ रुपये वसूल कर लिए थे, जो बकाया राशि का 80% है, और कब्ज़ा सौंपते समय मात्र 532.64 करोड़ रुपये का भुगतान शेष था। उक्त याचिका में **चित्रा शर्मा** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता की वित्तीय अक्षमता और लगभग 30,000 करोड़ रुपये के ऋण के संबंध में की गई टिप्पणियों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, जिससे कंपनी व्यावहारिक रूप से दिवालिया हो गई है। याचिका के विभिन्न पैराग्राफ में यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता कंपनी परियोजनाओं को पूरा करने और उन्हें घर खरीदारों को सौंपने में आर्थिक रूप से असमर्थ है। हालांकि उक्त रिट याचिका में कोई प्रतिवाद आमंत्रित नहीं किया गया था और इसलिए याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में किए गए कथनों का उत्तर नहीं दिया, लेकिन उसने रिट याचिका संख्या 6049/2020 में आवंटियों और गृह खरीदारों से संबंधित विवाद्यों के बारे में कई शपथपत्र दायर किए हैं, जिनमें वह गृह खरीदारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के संबंध में कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण देने में विफल रहा है और उसने अपने कथनों को मात्र मुख्य और गैर-मुख्य क्षेत्रों के विकास के लिए खर्च की गई राशि तक ही सीमित रखा है। जब याचिकाकर्ता ने सद्भावना और निष्पक्षता का तर्क प्रस्तुत करने का प्रयास किया, तो उससे यह अपेक्षा की गई थी कि वह भूमि के मुद्रीकरण से प्राप्त राशि का विशिष्ट विवरण प्रस्तुत करे, चाहे वह बिक्री, आवंटन, गिरवी, प्रभार, संपात्तिविक सुरक्षा, उप-पट्टा या किसी अन्य तरीके से हो।

146. वास्तव में, हमें गृह खरीदारों के साथ-साथ प्राधिकरण द्वारा स्थापित मामले में काफी बल मिलता है कि याचिकाकर्ता ने आवंटियों/गृह खरीदारों से कुल प्राप्तियों का लगभग 80% वसूल कर लिया था और इसी कारण से वाईईए के बकाया के समाधान को सुविधाजनक बनाने के लिए 24 सितंबर 2019 को की गई एस्क्रो व्यवस्था से लगभग 47.09 लाख रुपये की मामूली राशि ही प्राप्त हो सकी और यह उद्देश्य को पूरा करने में विफल रही।

147. वाईईए के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा गैर-मुख्य क्षेत्रों में कुल 61 समूह आवास परियोजनाएं विकसित करने का प्रस्ताव था। इनमें से सभी 13 आवास परियोजनाओं को उप-पट्टे पर दिया जा चुका था। निर्धारित समय सीमा पूरी होने के बावजूद याचिकाकर्ता ने शेष परियोजनाओं पर कोई विकास कार्य नहीं किया। याचिकाकर्ता ने इन परियोजनाओं के लिए घर खरीदारों से बड़ी रकम वसूल की थी और उसे आवास परियोजनाओं के विकास में विफलता के लिए घर खरीदारों से बार-बार शिकायतें मिल रही थीं। इसलिए, वाईईए ने आवंटन रद्द करते समय घर खरीदारों की शिकायत पर भी विचार किया है और यह रद्दीकरण आदेश घर खरीदारों के हितों की रक्षा के उद्देश्य से भी जारी किया गया है।

148. हमने विवादित रद्दीकरण आदेश में उल्लिखित तथ्यों पर पहले ही ध्यान दिया है और इसमें याचिकाकर्ता द्वारा एसडीजेड परियोजना को विकसित करने में विफलता और गृह खरीदारों के प्रति अपने दायित्वों को पूरा न करने की डिफॉल्ट का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इसमें गृह खरीदारों से प्राप्त विभिन्न शिकायतों और प्राधिकरण द्वारा याचिकाकर्ता कंपनी और गृह खरीदार संघ के प्रतिनिधियों के बीच आयोजित बैठक का भी विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इसमें याचिकाकर्ता कंपनी के प्रतिनिधि द्वारा गृह खरीदारों की सभी शिकायतों के निवारण और परियोजना को पूरा करने और उन्हें कब्जा सौंपने के लिए कदम उठाने के आश्वासन का भी उल्लेख है, लेकिन याचिकाकर्ता कंपनी अपने वादे को पूरा करने में विफल रही।

149. रद्दीकरण आदेश का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर पता चलता है कि रद्दीकरण का मूल आधार याचिकाकर्ता कंपनी द्वारा विकास प्राधिकरण के बकाया का भुगतान न करना था। यहां तक कि अंतिम कारण बताओ नोटिस दिनांक 9.12.2019 भी प्राधिकरण के बकाया का कथित भुगतान न करने के लिए था, न कि विकास न होने के कारण। इसलिए, हम याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के इस तर्क से सहमत हैं कि विकास न होना रद्दीकरण का आधार नहीं हो सकता। साथ ही, हम इस तर्क को भी स्वीकार नहीं करते कि रद्दीकरण पत्र में विकास न होने का उल्लेख मात्र डिफॉल्ट और रद्दीकरण से संबंधित तथ्यों को दोहराने के लिए किया गया है। हालांकि विकास न होने का उल्लेख रद्दीकरण का आधार नहीं था, फिर भी आवंटन को पूरी तरह से रद्द करते समय, यहां तक कि बकाया का भुगतान न करने के आधार पर भी, यह एक प्रासंगिक पोषणीय बिंदु था। इसी प्रकार, एसडीजेड नीति के एक अन्य महत्वपूर्ण हितधारक, गृह खरीदारों के प्रति याचिकाकर्ता कंपनी के दायित्व को भी ध्यान में रखा गया था। इससे पता चलता है कि प्राधिकरण ने क्षेत्र के नियोजित विकास और सतत विकास क्षेत्र नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक विभिन्न कारकों

को जानबूझकर ध्यान में रखा। वास्तव में, यह प्राधिकरण के पक्ष में एक प्रबल प्रमाण है जो इस तर्क को खारिज करता है कि उसकी कार्रवाई मनमानी और अनुचित जल्दबाजी में की गई थी।

150. इन तथ्यों के आधार पर प्राधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उसके पास पट्टा रद्द करने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं बचा था। मुख्य और गैर-मुख्य क्षेत्रों के विकास संबंधी पहलुओं और गृह खरीदारों के हितों के अतिरिक्त, प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता की पिछली बार-बार और लगातार डिफॉल्ट से स्पष्ट दिवालियापन की आशंका को भी ध्यान में रखा होगा। इस स्तर पर याचिकाकर्ता द्वारा 10.01.2020 को अंतिम कारण बताओ नोटिस दिनांक 09.12.2019 के जवाब में दिए गए उत्तर पर ध्यान देना उचित होगा, जिसमें याचिकाकर्ता कंपनी ने विभिन्न हितधारकों के प्रति अपने दायित्वों को स्वीकार किया और कहा कि उसने अपने 50,000 करोड़ रुपये मूल्य के उन जलविद्युत और सीमेंट संयंत्रों को बेचने के लिए पहले ही कदम उठा लिए हैं, जिनका पचास वर्ष का व्यावसायिक जीवन समाप्त हो चुका था, ताकि ऋणदाताओं के प्रति अपनी देनदारियों को पूरा किया जा सके। हालांकि, स्थिति में सुधार नहीं हुआ बल्कि और बिगड़ गई।

151. जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है, एसडीजेड नीति के अंतर्गत आवंटन का एकमात्र और प्राथमिक उद्देश्य यमुना एक्सप्रेसवे के किनारे योजनाबद्ध विकास सुनिश्चित करना था। एसडीजेड परियोजना के उचित कार्यान्वयन की निगरानी करने वाली नोडल एजेंसी और क्षेत्र के विकास प्राधिकरण के रूप में प्रतिवादी को इस मामले के तथ्यों के आधार पर कार्रवाई तय करते समय यह निर्णय लेने की पर्याप्त छूट दी जानी चाहिए कि कौन सा विशिष्ट उपाय व्यापक जनहित में होगा। उक्त उद्देश्य के लिए, उसे विकास न होने, गृह खरीदारों और उप-पट्टाधारकों के हितों से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचार करने का अधिकार था, और उसने ऐसा उचित रूप से किया भी।

समानुपातिकता निर्धारित करने के लिए परीक्षण:

152. **सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत संघ, विधि मंत्रालय एवं अन्य, 2016(7) एससीसी 221** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आनुपातिकता के सिद्धांत के संदर्भ में तर्कसंगतता का निर्धारण वस्तुनिष्ठ रूप से आम जनता के हित के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, न कि उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से जिस पर प्रतिबंध लगाए गए हैं या अमूर्त विचार के आधार पर। निर्णय का वह प्रासंगिक भाग जिसमें ये टिप्पणियाँ की गई हैं, नीचे उद्धृत किया गया है:-

“जब कोई विधि किसी संवैधानिक अधिकार को सीमित करता है, जैसा कि कई विधि करते हैं, तो ऐसी सीमा तभी संवैधानिक होती है जब वह आनुपातिक हो। प्रतिबंध लगाने वाला विधि आनुपातिक होता है यदि उसका उद्देश्य उचित हो, और यदि उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उठाए गए उपाय उस उद्देश्य से तर्कसंगत रूप से जुड़े हों, और ऐसे उपाय आवश्यक हों। ऐसी सीमाएं मनमानी या सार्वजनिक हित से अधिक नहीं होनी चाहिए। तर्कसंगतता का मूल्यांकन उस उद्देश्य के संदर्भ में किया जाता है जिसे विधि प्राप्त करना चाहता है, और यह उस उद्देश्य से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, तर्कसंगतता की जांच वस्तुनिष्ठ रूप से

आम जनता के हित के दृष्टिकोण से की जाती है, न कि उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से जिस पर प्रतिबंध लगाए गए हैं या अमूर्त विचारों के आधार पर।”

(जोर दिया गया)

153. सर्वोच्च न्यायालय ने स्टेट ऑफ मद्रास बनाम वी.जी. राव: एआईआर 1952 एससी 196 में यह अभिनिर्धारित किया कि तर्कसंगतता की कसौटी को तथ्य-दर-तथ्य आधार पर लागू किया जाना चाहिए और तर्कसंगतता का कोई अमूर्त मानक या सामान्य प्रतिमान सभी मामलों पर लागू होने योग्य नहीं माना जा सकता है।

154. उपरोक्त मानदंडों को लागू करने पर, हमारा मानना है कि प्राधिकरण के लिए सभी हितधारकों और व्यापक जनहित को ध्यान में रखना आवश्यक था, न कि मात्र याचिकाकर्ता के दृष्टिकोण को, जिसके विरुद्ध कार्रवाई की गई थी। इसी प्रकार, यदि प्राधिकरण ने मात्र अपने बकाया की वसूली के पहलू को ध्यान में रखा होता, तो उसकी कार्रवाई त्रुटिपूर्ण हो जाती।

टेरी ओट्स:

155. आनुपातिकता के संबंध में, याचिकाकर्ता ने टेरी ओट्स बनाम चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश (2004) 2 एससीसी 130 ("टेरी ओट्स") के निर्णय पर अत्यधिक भरोसा जताया है। हालांकि, हम पाते हैं कि उक्त फैसला वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। उक्त मामले में, आबंटिती ने भवन का निर्माण पूरा कर लिया था, लेकिन क्षेत्र के अविकसित होने के कारण उसे तुरंत किराए पर नहीं दे सका। टेरी ओट्स मामले में भी, पट्टाधारक ने अपनी रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान किशतों और पट्टे के किराए के रूप में देय पूरी मूल राशि का भुगतान कर दिया था। पट्टाधारक ने समपहरण की गई पूरी राशि पर जुर्माना भी अदा किया था। हालांकि, वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता पर भूमि प्रीमियम, पट्टे के किराए और अतिरिक्त प्रतिकर की मूल राशि का भारी बकाया है। टेरी ओट्स मामले में, जनहित और गृह खरीदारों को हुए हानि का कोई विवादक नहीं था। हालांकि, वर्तमान मामले में जनहित के महत्वपूर्ण विवादक शामिल हैं, विशेष रूप से उन गृह खरीदारों से संबंधित जो याचिकाकर्ता की निष्क्रियता के कारण पीड़ित हुए हैं। सार्वजनिक हित की रक्षा करने और एसडीजेड परियोजना के नियोजित विकास को सुनिश्चित करने के लिए प्राधिकरण का दायित्व आवंटन को रद्द करने के उसके निर्णय को उचित ठहराता है।

156. टेरी ओट्स का मामला उस विशेष परिस्थिति और तथ्यों पर आधारित था। निर्णय में ही यह कहा गया है कि क्या संपत्ति की वापसी और समपहरित की अत्यधिक शक्ति का प्रयोग उचित रूप से किया गया है या नहीं, यह प्रत्येक मामले की तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर करेगा। इसलिए, प्रत्येक मामले को अलग-अलग देखना होगा और इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। वर्तमान मामले में, रद्दीकरण आदेश मनमाना नहीं पाया गया है, बल्कि याचिकाकर्ता द्वारा किए गए गंभीर उल्लंघनों के लिए एक आवश्यक प्रतिक्रिया

है, जो याचिकाकर्ता को दिए गए नोटिसों और अनुपालन के अवसरों की श्रृंखला के माध्यम से अच्छी तरह से प्रमाणित हैं।

157. इसके अतिरिक्त, **टेरी ओट्स** के निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **एचयूडीए बनाम देस राज चावला, (2018) 16 एससीसी 30** (पैराग्राफ 7) में अलग माना गया है और उस पर भरोसा नहीं किया गया है, जिसे संदर्भ की सुविधा के लिए उद्धृत किया गया है:

“7. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के टेरी ओट एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम राज्य (चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश) के निर्णय पर भरोसा जताया है, जिसमें यह कहा गया है कि पट्टाधारक द्वारा देय भुगतान में डिफॉल्ट होने पर जमा की गई राशि को वापस लेने और समपहरण करने की शक्ति का प्रयोग संयमित रूप से किया जाना चाहिए। हालांकि, हम पाते हैं कि उक्त मामला पूरी तरह से अलग तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर आधारित है। जबकि भूखंड का अंतरण होना था, भुगतान में देरी हुई थी। इस प्रकार, संदर्भित मामला वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है। यद्यपि आवंटन वापस लेने की शक्ति मामूली उल्लंघन पर नहीं बल्कि गंभीर उल्लंघन पर लागू होनी चाहिए, हम पाते हैं कि विचाराधीन मामला एक ऐसा मामला था जिसमें घोर दुरुपयोग हुआ था। इस प्रकार, राशि वापस लेने की शक्ति का प्रयोग उचित था।

158. **स्टेट (यू.टी. ऑफ चंडीगढ़) बनाम हरि राम** के मामले में भी, **टेरी ओट्स** के निर्णय को तथ्यों के आधार पर अलग बताया गया था। प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:-

“8. आवंटन रद्द करने से प्रतिवादी को कठिनाई होगी और उसे बकाया राशि का भुगतान करने का एक और अवसर दिया जाना चाहिए, इस बात को मानते हुए उच्च न्यायालय ने टेरी ओट एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम राज्य (चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश) मामले का हवाला दिया है। टेरी ओट एस्टेट्स मामले में, प्रतिवादी ने पहले ही किश्त की राशि का भुगतान कर दिया था और न्यायालय में मामले की सुनवाई के दौरान प्रतिवादी ने देय राशि का एक बड़ा हिस्सा 12% की दर से ब्याज सहित चुका दिया था। इन्हीं तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, टेरी ओट एस्टेट्स मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि भूमि और भवन की वापसी से पक्षकारों को अत्यधिक कठिनाई होगी और सामान्यतः ऐसा नहीं किया जाना चाहिए। उचित संतुलन बनाए रखने के लिए, टेरी ओट एस्टेट्स मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि इस मामले में आनुपातिकता के सिद्धांत को लागू करना आवश्यक है।

9. वर्तमान मामले में, आवंटन के बाद, प्रतिवादी ने मात्र प्रारंभिक भुगतान किया है और पहली, दूसरी और तीसरी किस्त तथा 25-12-1997, 21-12-1998 और 25-12-1999 को देय भूमि किराया नहीं चुकाया है। कई अवसर दिए जाने के बावजूद, प्रतिवादी ने भुगतान नहीं किया है। जब प्रतिवादी लगातार प्रीमियम/किस्तों के भुगतान में डिफॉल्ट करता रहा है, तो सक्षम प्राधिकारी विधि के अनुसार कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र है।

159. उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड (उपरोक्त), शिवली एंटरप्राइजेज (उपरोक्त), एल्कोन इलेक्ट्रॉनिक्स प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) के आधार पर प्राधिकरण द्वारा प्रस्तुत इस तर्क में भी हमें पर्याप्तता मिलती है कि पक्षकारों के बीच संविदा नियोजित विकास के प्रयोजनों के लिए संपूर्ण भूमि के लिए था और एक बार जब हम संतुष्ट हो जाते हैं कि याचिकाकर्ता आवंटन और पट्टा विलेख की शर्तों का पालन करने में विफल रहा है, तो प्राधिकरण जनहित में और एसडीजेड परियोजना के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अंतिम उपाय के रूप में संपूर्ण आवंटन को रद्द करने में उचित था।

(vi) सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए किए गए प्रयास जो असफल रहे:

45. इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाही लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता कंपनी ने परियोजना को पुनर्जीवित करने और प्राधिकरण तथा गृह खरीदारों/आवंटितियों के प्रति अपने दायित्वों का समाधान करने के लिए एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। न्यायालय ने विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझाने के कई प्रयास किए। प्रारंभ में, प्राधिकरण ने अपनी 70^{वीं} बोर्ड बैठक में दिनांक 02.06.2021 के प्रस्ताव के अनुसार, बहाली शुल्क के रूप में 10% भुगतान के अधीन आवंटन बहाल करने पर सहमति व्यक्त की। हालांकि, याचिकाकर्ता इससे सहमत नहीं हुआ। उसने संशोधन के माध्यम से इसे चुनौती दी, लेकिन सुनवाई के समय, शुल्क की वैधता के संबंध में कोई प्रस्तुति नहीं दी गई, सिवाय इसके कि यदि रद्दीकरण आदेश रद्द कर दिया जाता है, तो बहाली शुल्क के भुगतान का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आदेश दिनांक 29.09.2022 द्वारा, इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता से फिर से यह बताने को कहा कि वह परियोजनाओं को पुनर्जीवित करने और प्राधिकरण तथा गृह खरीदारों के प्रति अपने सभी दायित्वों का समाधान करने का आशय कैसे रखता है। इसके अनुसरण में, याचिकाकर्ता द्वारा एक संशोधित समग्र समाधान प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। प्राधिकरण के बोर्ड ने 2 दिसंबर, 2022 को अपनी 75^{वीं} बैठक में इस पर विचार किया, लेकिन दोनों पक्ष फिर से सौहार्दपूर्ण ढंग से मामले को सुलझाने में विफल रहे। उपरोक्त तथ्य याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन पर पारित आदेश दिनांक 13.07.2023 में दर्ज हैं, जिसमें याचिकाकर्ता को एसडीजेड योजना के अंतर्गत सेक्टर 25 के मुख्य क्षेत्र में 150 एकड़ भूमि बेचने के लिए एक वर्ष का समय देने का अनुरोध किया गया था, ताकि वाईईए के बकाया का भुगतान करने के लिए धन जुटाया जा सके। आदेश में याचिकाकर्ता द्वारा वाईईए को देय राशि के संबंध में पक्षकारों के दावे और प्रतिदावे भी दर्ज हैं, जो नीचे दिए गए हैं:-

"7. श्री भूषण द्वारा प्रस्तुत चार्ट दिनांक 09.05.2023 पर भरोसा करते हुए, वे यह प्रस्तुत करेंगे कि वाईईआईडीए अधिकतम 3621,50,48,489/- रुपये का दावा कर रही है। इसमें याचिकाकर्ता से की जा रही सभी मांगें (विवादित और अविवादित दोनों) शामिल हैं।"

8. भूमि आवंटन रद्द करने के विरुद्ध अपील करने के अपने अधिकार का हवाला देते हुए, उन्होंने दृढ़तापूर्वक यह तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता वाईईआईडीए के साथ जाने और उचित राशि जमा करने के लिए तैयार है, जो वाईईआईडीए के उचित बकाया का भुगतान करने के साथ-साथ इस याचिका के लंबित रहने तक विवादित राशि को सुरक्षित करने के लिए पर्याप्त हो।

9. अतः, वाईईआईडीए द्वारा प्रस्तुत प्रतिप्रस्ताव पर भरोसा करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि वाईईआईडीए के सर्वोत्तम पक्ष के अनुसार भी, उसने मूल भूमिधारकों/भूमि मालिकों में से किसी को भी भुगतान किए गए अतिरिक्त प्रतिकर पर ब्याज का भुगतान नहीं किया है और न ही भविष्य में ब्याज भुगतान करने का कोई दायित्व बनता है। उस काल्पनिक ब्याज (अतिरिक्त प्रतिकर पर) की राशि 1506,11,58,900/- रुपये निर्धारित की गई है। यदि इसे (वर्तमान में) 3621,50,48,489/- रुपये (वाईईआईडीए द्वारा मांगी गई कुल राशि) से घटा दिया जाए, तो शेष राशि लगभग 2115,38,89,589/- रुपये होगी।

10. सर्वप्रथम, उस राशि की प्राप्ति के लिए याचिकाकर्ता ने सेक्टर-25 के "कोर एरिया" में 150 एकड़ भूमि बेचने का प्रस्ताव रखा है, जिससे लगभग 2715,00,00,000/- रुपये की पर्याप्त आय प्राप्त हो सके (उपरोक्त राशि का भुगतान करने के लिए)। यह राशि ऊपर उल्लिखित लगभग 2115 करोड़ रुपये की देनदारी को चुकाने के लिए पर्याप्त से अधिक होगी। शेष लगभग 600 करोड़ रुपये की राशि के संबंध में, याचिकाकर्ता का कहना है कि इसे एक एस्क्रो खाते में रखा जा सकता है, जो रिट याचिका के अंतिम निर्णय पर निर्भर करेगा।

11. अतिरिक्त प्रतिकर पर ब्याज के रूप में दावा की जा रही लगभग 1506 करोड़ रुपये की राशि के संबंध में, श्री भूषण ने तर्क दिया है कि यह मांग अभी तक स्पष्ट नहीं हुई है। वास्तव में, इसका कोई विधिक आधार नहीं है। विधि के अंतर्गत किसी भी दायित्व के अभाव में और किसी भी गणना के अस्तित्व में न होने के कारण, रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान इस मांग को पूरी तरह से स्थगित किया जा सकता है।

12. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 2715 करोड़ रुपये जमा करने के तरीके और विधि के संबंध में, कोर एरिया में 150 एकड़ जमीन बेचने का प्रस्ताव है। समय अवधि के संबंध में, पिछली तीन से अधिक सुनवाईयों में गहन विचार-विमर्श के बाद यह निष्कर्ष निकला है कि इस राशि को जमा करने में कम से कम एक वर्ष का समय लगेगा। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि एक समय याचिकाकर्ता ने यह भी प्रस्ताव दिया था कि वह कोर एरिया में लगभग 100 एकड़ जमीन वाईईआईडीए को 2115 करोड़ रुपये (लगभग) की मांग के बदले में दे दे। हालांकि, वाईईआईडीए ने इस प्रस्ताव को पूरी तरह से खारिज कर दिया था।

(vii) दिवालियापन स्थापित:

161. यह निर्विवाद है कि विवादित निरस्तीकरण आदेश पारित होने के बाद, याचिकाकर्ता को उसकी डिफॉल्टों के कारण एनसीएलटी के समक्ष दिवालियापन कार्यवाही में शामिल किया गया था। न्यायाधिकरण ने आदेश दिनांक 03.06.2024 (याचिकाकर्ता के 8^{वें} पूरक शपथपत्र के संलग्नक संख्या 1) द्वारा कार्यवाही का निस्तारण किया। एनसीएलटी के आदेश का मुख्य भाग इस प्रकार है:-

"102. धारा 14 के अंतर्गत लगाए गए स्थगन के आवश्यक परिणाम स्वरूप, निम्नलिखित प्रतिबंध लागू किए जाते हैं, जिनका पालन सभी को करना होगा:

(ए) निगम देनदार के विरुद्ध वाद दायर करना या लंबित वादों या कार्यवाही को जारी रखना, जिसमें किसी भी न्यायालय, न्यायाधिकरण, मध्यस्थता पैनल या अन्य प्राधिकरण में किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश का निष्पादन शामिल है;

(बी) किसी कॉर्पोरेट देनदार द्वारा अपनी किसी भी संपत्ति या उसमें निहित किसी भी विधिक अधिकार या लाभकारी हित का अंतरण, गिरवी रखना, विनिवेश करना या समाधान करना;

(सी) कॉर्पोरेट देनदार द्वारा अपनी संपत्ति के संबंध में सृजित किसी भी सुरक्षा हित को समपहरण करने, वसूल करने या लागू करने के लिए कोई भी कार्रवाई, जिसमें वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के अंतर्गत कोई भी कार्रवाई शामिल है;

(डी) किसी संपत्ति के मालिक या पट्टादाता द्वारा उसकी वसूली, जहां ऐसी संपत्ति कॉर्पोरेट देनदार के कब्जे में हो या उसके अधिकार में हो।

(ई) इसके अतिरिक्त यह भी निर्देश दिया जाता है कि निर्दिष्ट किए गए अनुसार कॉर्पोरेट देनदार को आवश्यक वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति, स्थगन अवधि के दौरान समाप्त, निलंबित या बाधित नहीं की जाएगी।

(एफ) हालांकि, धारा 14(3) के प्रावधान ऐसे लेन-देन पर लागू नहीं होंगे जिन्हें केंद्र सरकार किसी वित्तीय क्षेत्र नियामक के परामर्श से अधिसूचित कर सकती है और किसी कॉर्पोरेट देनदार को गारंटी के संविदा में जमानतदार पर लागू नहीं होंगे।

(जी) स्थगन का आदेश इस आदेश की तिथि से लेकर कॉर्पोरेट दिवालियापन समाधान प्रक्रिया के पूर्ण होने तक या इस पीठ द्वारा धारा 31 की उपधारा (1) के अंतर्गत समाधान योजना को स्वीकृति देने तक या धारा 33 के अंतर्गत कॉर्पोरेट देनदार के परिसमापन का आदेश पारित करने तक, जैसा भी मामला हो, प्रभावी रहेगा।”

103. हम वित्तीय लेनदार को निर्देश देते हैं कि वह अंतरिम समाधान पेशेवर के पास 3 लाख रुपये की राशि जमा करे, ताकि दिवाला और शोधन अक्षमता बोर्ड ऑफ इंडिया (कॉर्पोरेट व्यक्तियों के लिए दिवालियापन समाधान प्रक्रिया) विनियम, 2016 के विनियम 6 के अनुसार उसे सौंपे गए कार्यों को पूरा करने के लिए खर्चों को पूरा किया जा सके। हालांकि, यह राशि अंतरिम समाधान पेशेवर द्वारा सीआईआरपी के समापन पर हिसाब किए जाने के अनुसार लेनदारों की समिति द्वारा समायोजन के अधीन है।

104. आदेश की प्रमाणित प्रति दोनों पक्षकारों को भेजी जाएगी। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता इस आदेश की प्रमाणित प्रति तत्काल अंतरिम समाधान पेशेवर को सौंपेंगे। रजिस्ट्री को भी निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की प्रमाणित प्रति अंतरिम समाधान पेशेवर को उनके ईमेल पते पर तत्काल भेजे।

105. आई.ए. संख्या 263/2024 का निस्तारण कर दिया गया है और तदनुसार आई.ए. संख्या 406/2023 को निष्फल होने के कारण निरस्त कर दिया गया है।

106. प्रगति रिपोर्ट दाखिल करने/आगे की कार्यवाही के लिए मामले को 08.07.2024 को सूचीबद्ध करें।

162. याचिकाकर्ता ने आदेश दिनांक 03.06.2024 को एनसीएलएटी के समक्ष कंपनी अपील (एटी) (दिवालियापन) संख्या 1158-1162 / 2024 के माध्यम से चुनौती दी। एनसीएलएटी ने निर्णय दिनांक 06.12.2024 द्वारा अपील को खारिज कर दिया, जो प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से दायर सिविल विविध आवेदन संख्या 77 / 2024 का संलग्नक संख्या 2 है और जिसे इस न्यायालय के आदेश दिनांक 03.01.2025 द्वारा अभिलेख में लिया गया है, जो इस प्रकार है:-

“1. आवेदन हमारे समक्ष रोस्टर के अनुसार रखा गया है।

2. संकल्प पेशेवर की ओर से प्रस्तुत हुई सुश्री गुंजन जाडवानी ने कहा कि उनका कोई प्रस्तुति करने का आशय नहीं है, क्योंकि एनसीएलएटी का वह आदेश जिसे अभिलेख में लाने की मांग की जा रही है, वह अभिलेख का विषय है।

3. इसलिए, आवेदन को अभिलेख में रखा जाए।”

163. उपरोक्त आदेशों को चुनौती देते हुए सर्वोच्च न्यायालय में विभिन्न दीवानी अपीलें संख्या 98-102/2025 और 211-212/2025 तथा विभिन्न हस्तक्षेप याचिकाएं दायर की गईं। सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 10.01.2025 द्वारा इन्हें निरस्त कर दिया, जो इस प्रकार है:-

“आदेश

हमें विवादित निर्णय/आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई ठोस आधार या कारण नहीं मिलता; अतः अपीलें निरस्त की जाती हैं।

यदि कोई आवेदन लंबित है, तो उसे निस्तारित किया जाता है।”

164. यह उल्लेखनीय है कि एनसीएलएटी ने अपील को निरस्त करते हुए एसबीआई के इस कथन को विधिवत रूप से नोट किया है कि पचास हजार करोड़ रुपये से अधिक की राशि 2016 से समाधान की प्रतीक्षा कर रही थी।

165. इस प्रकार, याचिकाकर्ता द्वारा लगातार की जा रही डिफॉल्टों के संबंध में क्या कार्रवाई की जानी चाहिए, इस पर निर्णय लेते समय प्रतिवादी - विकास प्राधिकरण की याचिकाकर्ता की आसन्न दिवालियापन की आशंका भी सिद्ध हुई। एसडीजेड नीति में एसडीजेड विकास के लिए आवेदन करने वाले आवेदकों की वित्तीय स्थिति का आकलन करने के लिए विभिन्न मापदंड निर्धारित किए गए थे। यद्यपि याचिकाकर्ता उक्त मानदंडों पर खरा उतरा और आवंटन प्राप्त करने में सफल रहा, लेकिन कुछ समय बाद उसने चूकें करना शुरू कर दिया और ऐसी स्थिति में पहुँच गया जहाँ परियोजना को पूरा करने की उसकी क्षमता पर गंभीर संदेह पैदा हो गया। अतः, प्राधिकरण ने कार्रवाई का निर्णय लेते समय याचिकाकर्ता की वित्तीय स्थिति और परियोजना को पूरा करने की उसकी क्षमता पर उचित रूप से विचार किया था, और एक बार संदेह उत्पन्न होने पर यह नहीं कहा जा सकता कि प्राधिकरण ने आगे प्रतिबंधात्मक उपाय न करके अनुचित और मनमाना कार्य किया।

बी - निष्कर्ष :

166. इस प्रकार, विवादक संख्या 5 का निर्णय यह मानते हुए किया जाता है कि संपूर्ण आवंटन को रद्द करना आनुपातिकता के सिद्धांत के अंतर्गत नहीं आता है और न ही किसी अन्य कारण से अवैध था।

167. विवादक संख्या 6 और 7 का निर्णय यह मानते हुए किया गया है कि रद्दीकरण आदेश पारित करते समय, प्राधिकरण ने विकास/निर्माण में डिफॉल्ट सहित कई कारकों पर विचार किया था, लेकिन रद्द करने का मुख्य आधार प्राधिकरण के बकाया का भुगतान न करना था।

याचिकाकर्ता द्वारा आवंटन/आवंटन/पट्टे के अंतर्गत वाईईए को अब तक भुगतान की गई राशि का क्या होगा:

168. हम ध्यान देते हैं कि आदेश दिनांक 25.02.2020 द्वारा याचिकाकर्ता को 100 करोड़ रुपये की राशि दो भागों में जमा करने का निर्देश दिया गया था, अर्थात् 50 करोड़ रुपये 10.03.2020 तक और शेष 50 करोड़ रुपये 25.03.2020 तक। याचिकाकर्ता ने 50 करोड़ रुपये 09.03.2020 को जमा कर दिए और विभिन्न कारणों से शेष 50 करोड़ रुपये 25.03.2020 तक जमा नहीं कर सका, बल्कि उसने मात्र 5 करोड़ रुपये 16.03.2020 को जमा किए। इन तथ्यों और याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए वचन को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने 08.02.2021 को एक आदेश पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता को 52,50,26,551/- रुपये जमा करने का निर्देश दिया गया और यह टिप्पणी की गई कि इस राशि को जमा करने के बाद, यदि याचिकाकर्ता देय राशि के पुनर्गठन और पुनर्गणना के लिए आवेदन करता है, तो प्रतिवादी प्राधिकरण द्वारा विधि के अनुसार उस पर विचार किया जाएगा। उक्त राशि जमा कर दी गई। इसके बाद, 29.09.2022 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को 100 करोड़ रुपये जमा करने का निर्देश दिया गया। याचिकाकर्ता ने यह राशि जमा कर दी और इस संबंध में 02.11.2022 को एक शपथपत्र दाखिल किया गया। तदनुसार, याचिकाकर्ता ने 50 करोड़ रुपये + 5 करोड़ रुपये + 52,50,26,551/- रुपये + 100 करोड़ रुपये (कुल 207,50,26,551/- रुपये) जमा कर दिए हैं।

169. यद्यपि श्री मनीष गोयल की प्रस्तुति है कि मामले के तथ्यों के आधार पर याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि वाईईए द्वारा समपहरण की जा सकती है, हम श्री गोयल के इस प्रस्तुति को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं। इसका कारण अधिनियम 1976 की धारा 14 में निहित विशिष्ट भाषा है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

“14. अंतरण की शर्तों के उल्लंघन के लिए समपहरण (1) प्राधिकारी द्वारा किसी स्थल या भवन के अन्तरण के फलस्वरूप प्रतिफल-धन या उसके किसी किस्त के अंशदान की स्थिति में ऐसे अन्तरण की किसी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में या इस अधिनियम के अधीन निर्मित किसी नियम या विनियम के उल्लंघन की स्थिति में मुख्य कार्यपालक अधिकारी इस प्रकार अन्तरित स्थल या भवन को पुनः ग्रहण कर सकता है और उसके सम्बन्ध में संदत्त सम्पूर्ण धन या उसके किसी भाग का, यदि कोई हो, समपहरण कर सकता है।

(2)

170. धारा 14 (1) का सरसरी तौर पर अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उक्त प्रावधान के अंतर्गत मुख्य कार्यकारी अधिकारी को दो शक्तियाँ प्राप्त हैं। पहली शक्ति प्राधिकरण द्वारा हस्तांतरित स्थल या भवन को पुनः प्राप्त करने की है और दूसरी शक्ति हस्तांतरिणी द्वारा भुगतान की गई पूरी या आंशिक राशि को समपहरण करने की है। अंतरण की शर्तों के उल्लंघन के मामले में, प्राधिकरण को स्थल या भवन को पुनः प्राप्त करने का अधिकार है और वह "इसके संबंध में भुगतान की गई पूरी या आंशिक राशि को भी समपहरण कर सकता

है"। इस प्रकार, स्थल की समपहरित के प्रत्येक मामले में प्राधिकरण को भुगतान की गई राशि स्वतः समपहरण नहीं हो जाती। प्राधिकरण को भुगतान की गई **पूरी या आंशिक राशि को समपहरण** करने का विवेक दिया गया है। निस्संदेह, यदि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाता है, तो यह सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने पर आधारित होना चाहिए। आक्षेपित आदेश में यह दर्ज नहीं है कि प्राधिकरण ने स्थल को पुनः प्राप्त करते समय जेएएल द्वारा भुगतान की गई राशि को समपहरण कर लिया है। जेएएल का दावा है कि उसने एसडीजेड भूमि के विकास में अब तक 2500 करोड़ रुपये से अधिक का निवेश किया है। जेएएल द्वारा जमा की गई कुल राशि, जिस पर कोई गंभीर विवाद नहीं है, भूमि प्रीमियम के रूप में 2294.49 करोड़ रुपये (ब्याज सहित) और पट्टे के किराए के रूप में 195.73 करोड़ रुपये (ब्याज सहित) थी। निस्संदेह, प्राधिकरण के मन में यह तथ्य रहा होगा कि डिफॉल्ट के बावजूद, साइट के विकास में वर्षों से एक बड़ी राशि खर्च की गई है, और अधिग्रहण के बाद उसे आंशिक रूप से विकसित साइट ही मिलेगी। इसके अतिरिक्त, आनुपातिकता की प्रस्तुति को खारिज कर दिया गया है क्योंकि आक्षेपित आदेश को मात्र पट्टा रद्दीकरण आदेश माना गया है, न कि प्राधिकरण को भुगतान की गई राशि की समपहरित का आदेश। न्यायालय आक्षेपित आदेश में शब्दों को जोड़ नहीं सकता, अर्थात् वह आक्षेपित आदेश की व्याख्या उससे आगे नहीं कर सकता जो उसमें स्पष्ट रूप से लिखा है, विशेष रूप से तब जब न्यायालय प्राधिकरण की कार्रवाई से संबंधित सभी पहलुओं की जांच कर रहा है। हालांकि हमें साइट या भवन को पुनः प्राप्त करने की शक्ति के प्रयोग में कोई त्रुटि नहीं मिली है, हम संतुष्ट हैं कि प्राधिकरण को दी गई दूसरी शक्ति, अर्थात् याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई पूरी या आंशिक राशि को समपहरण करने की शक्ति, का प्रयोग वाईईए द्वारा नहीं किया गया है। इसलिए, हमारा मानना है कि चुनौती दिए गए आदेश के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता द्वारा अब तक जमा की गई राशि की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई समपहरित नहीं होती है। इसके फलस्वरूप, प्राधिकरण जेएएल को पट्टा रद्द होने तक प्राप्त राशि वापस करने के लिए बाध्य होगा, सिवाय पैराग्राफ 187(डी) के अंतर्गत अनुमत सीमा तक।

171. चूंकि वाईईए की दिवालियापन प्रक्रिया स्वीकार कर ली गई है और आईबीसी के अंतर्गत कार्यवाही एनसीएलटी के समक्ष लंबित है, इसलिए हमारा मानना है कि याचिकाकर्ता द्वारा वाईईए को भुगतान की गई पूरी राशि को एनसीएलटी के समक्ष दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 के प्रावधानों के अनुसार निपटाने के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए, क्योंकि याचिकाकर्ता को दिवालियापन प्रक्रिया में स्वीकार करने के एनसीएलटी द्वारा पारित आदेश को एनसीएलटी और फिर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही बरकरार रखा जा चुका है। राशि का समाधान संकल्प पेशेवर (आरपी) के निर्देशों के अनुसार किया जाएगा। यह वित्तीय संस्थानों के हितों का ध्यान रखने के लिए भी किया जा रहा है, क्योंकि याचिकाकर्ता को धनराशि उपलब्ध कराने में सार्वजनिक धन शामिल है। यद्यपि प्रतिवादी वाईईए की ओर से यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता कंपनी की संपत्तियों पर, जिनमें सीमेंट संयंत्र, इंजीनियरिंग और निर्माण प्रभाग, विभिन्न पांच सितारा होटल और कुछ अन्य संयंत्र मशीनरी शामिल हैं, उसका प्रथम प्रभार है, फिर भी दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016 (आईबीसी) के अंतर्गत दिवालियापन कार्यवाही लंबित होने के कारण हम उक्त पहलू पर कोई राय व्यक्त करने से परहेज करते हैं। एनसीएलटी के समक्ष **[देखें मोहम्मद एंटरप्राइजेज (तंजानिया) लिमिटेड बनाम फारूक अली खान एवं अन्य: 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 23; केएसके महानदी पावर कंपनी लिमिटेड के लेनदारों की समिति बनाम**

उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य: 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 4013; चित्रा शर्मा बनाम भारत संघ; एआईआर ऑनलाइन 2018 एससी 1215]।

विवादयक संख्या 8 : उप-पट्टाधारकों पर पट्टा रद्द करने का प्रभाव, गृह खरीदारों और वित्तीय संस्थानों के पक्ष में

172. रद्दीकरण आदेश में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि इसमें उप-पट्टे शामिल नहीं हैं। ये उप-पट्टे जेएल और तीसरे पक्षकारों के बीच थे। वाईईए इस संविदा से अवगत नहीं थी। जब तक वाईईए पर इन्हें बाध्यकारी बनाने के लिए उचित निर्देश जारी नहीं किए जाते, तब तक उप-पट्टे प्रभावी नहीं रहेंगे। विभिन्न हितधारकों के हित विविध और कभी-कभी परस्पर विरोधी होते हैं, जबकि कभी-कभी वे एक-दूसरे के अनुरूप होते हैं। हम मानते हैं कि पूर्ण संतुलन प्राप्त करना संभव नहीं है, लेकिन हमने दी गई स्थिति में उचित संतुलन बनाने के लिए हर संभव प्रयास किया है।

172 (i). रिट याचिकाओं की सुनवाई के दौरान, प्रतिवादी प्राधिकरण से जेएल के उप-पट्टाधारकों और गृह खरीदारों के संबंध में अपना रुख स्पष्ट करने को कहा गया था। अनुपालन में, प्राधिकरण की ओर से प्रबंधक (प्रशासन)/महाप्रबंधक, वाईईए द्वारा एक शपथपत्र दिनांक 26.7.2024 दाखिल किया गया, जिसमें यह बताया गया कि यदि आक्षेपित आदेश को बरकरार रखा जाता है तो वाईईए उप-पट्टाधारकों और गृह खरीदारों के हितों की रक्षा कैसे करेगा। गृह खरीदारों के संबंध में, लिया गया रुख इस प्रकार है: -

गृह खरीदारों की रुचि :-

"11. जब तक वर्तमान कार्यवाही लंबित है, और यथास्थिति का अंतरिम आदेश (आदेश दिनांक 25 फरवरी 2020) लागू है, प्रतिवादी प्राधिकरण अपूर्ण समूह आवास के पुनर्वास के लिए कोई कदम नहीं उठा सकता है जो घर खरीदारों/आवंटितियों को प्रभावित करता है।

12. यदि निरस्तीकरण आदेश को बरकरार रखा जाता है और याचिकाकर्ता को आवंटित भूमि विधिक बाधा से मुक्त हो जाती है, तो याचिकाकर्ता द्वारा शुरू की गई अधूरी समूह आवास परियोजना सहित संपूर्ण परियोजना के पुनर्वास के लिए निम्नलिखित विकल्प उपलब्ध हैं (उप-पट्टाधारकों के लिए नहीं, जिनके अधिकार निरस्तीकरण आदेश के अंतर्गत संरक्षित रहते हैं)।

13. एक विकल्प यह है कि सामूहिक आवास परियोजनाओं सहित संपूर्ण भूमि की पुनः नीलामी की जाए, जिसमें निम्नलिखित शर्तें लागू हों:

- i. बोलीदाता बोली जमा करने की तिथि तक प्रतिवादी प्राधिकरण के बकाया भुगतान का भुगतान करेगा; और
- ii. बोलीदाता को गृह खरीदारों की अधूरी आवास परियोजनाओं को प्राथमिकता के आधार पर पूरा करना होगा और गृह खरीदारों द्वारा याचिकाकर्ता के साथ पहले से तय की गई शर्तों और नियमों के अनुसार उन्हें बुक/आवंटित इकाइयाँ शीघ्रता से सौंपनी होंगी।

14. भूमि के मूल्य में वृद्धि को देखते हुए, यह परियोजना न मात्र व्यवहार्य होगी, बल्कि संभावित बोलीदाताओं के लिए आर्थिक रूप से लाभदायक भी होगी। इस प्रकार के पुनर्वास से यह सुनिश्चित होगा कि सामूहिक आवास

परियोजनाओं में रहने वाले मकान मालिकों को उनके आवास यथाशीघ्र प्राप्त हों और परियोजना का नए सिरे से विकास हो सके।

15. **इसके अतिरिक्त**, प्रतिवादी प्राधिकरण के पास दूसरा विकल्प यह है कि वह स्वयं आवास परियोजनाओं का विकास करे, आवास इकाइयों का निर्माण पूरा करे और उन्हें घर खरीदारों/आवंटियों को सौंप दे।"

173. चूंकि गृह खरीदारों का हित सर्वोपरि है, इसलिए आदेश दिनांक 26.7.2024 के माध्यम से अधिकृत प्रतिनिधि (श्री अमर पाल) को इस मुकदमे में गृह खरीदारों का प्रतिनिधित्व करने के लिए नोटिस जारी किया गया था। इसके बाद, उनकी ओर से एक शपथपत्र दिनांक 28.8.2024 दायर किया गया है, जिसमें गृह खरीदारों से संबंधित विवाद्यों और आक्षेपित आदेश के बरकरार रहने की स्थिति में उनके हितों की रक्षा के लिए पारित किए जाने वाले निर्देशों को सूचीबद्ध किया गया है। इस प्रकार, गृह खरीदारों की ओर से प्रार्थना की गई है कि वाईईए को आवास परियोजनाओं के पूरा होने को सुनिश्चित करने के लिए विस्तृत प्रक्रिया और समय-सीमा सहित एक अद्यतन प्रस्ताव प्रस्तुत करने का निर्देश जारी किया जाए; गृह खरीदारों के अधिकृत प्रतिनिधि को उक्त परियोजना से संबंधित निर्णय लेने की प्रक्रिया/निर्माण समिति का हिस्सा बनाया जाए और कोई भी निर्णय लेते समय अधिकृत प्रतिनिधि के माध्यम से प्रस्तुत गृह खरीदारों के विचारों पर विचार किया जाए; गृह खरीदारों और जेएएल के बीच वर्तमान समझौते का वाईईए द्वारा सम्मान किया जाए। भुगतान की जाने वाली राशि, पहले से भुगतान की गई राशि और देय राशि, जेएएल के साथ हुए समझौते और वाईईए द्वारा इस संबंध में रखे गए अभिलेख के अनुसार होनी चाहिए और वाईईए/नए डेवलपर को इसका पालन करना चाहिए; विभिन्न न्यायालयों से गृह खरीदारों द्वारा प्राप्त आदेशों का वाईईए/नए डेवलपर द्वारा उसी प्रकार पालन किया जाना चाहिए जैसे वाईईए द्वारा किया जाना अपेक्षित था; गृह खरीदारों को वाईईए/नए डेवलपर को कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं देना चाहिए; बिक्री/नीलामी की राशि एस्को खाते में जमा की जानी चाहिए और इसका उपयोग मात्र लंबित परियोजनाओं को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए; उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट नियामक प्राधिकरण को इस न्यायालय के निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाए।

174. इसके क्रम में, एक अन्य शपथपत्र दिनांक 30.8.2024 दाखिल किया गया जिसमें कहा गया कि अधिकृत प्रतिनिधि को संकल्प पेशेवर (आरपी) की टीम से 6.8.2024 को गृह खरीदारों की एक सूची प्राप्त हुई है, जिसमें जेएएल की स्पोर्ट सिटी परियोजना के 4,638 गृह खरीदारों का विवरण शामिल है। इसे शपथपत्र के साथ संलग्न किया गया है। यह भी कहा गया है कि जयपी स्पोर्ट सिटी वेलफेयर सोसाइटी ने अपने प्रतिनिधि के माध्यम से जेएएल द्वारा आयोजित एक संयुक्त ऑडियो-वीडियो बैठक में भाग लिया। गृह खरीदारों के अधिकृत प्रतिनिधि। उक्त बैठक में 284 व्यक्तिगत गृह खरीदारों ने भी भाग लिया। इसके बाद, जेपीएससीडब्ल्यूएस के उपाध्यक्ष ने गृह खरीदारों की भावनाओं को दर्शाते हुए एक ईमेल (दिनांक 25.8.2024) भेजा और उसी के आधार पर सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

175. इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान विवाद में गृह खरीदार प्रमुख हितधारकों में से एक हैं। वास्तव में, वाईईए द्वारा पट्टे पर दी गई भूमि को वापस लेने जैसे चरम कदम उठाने का मुख्य कारण जेएएल द्वारा

निर्माण कार्य पूरा करने के लिए निर्धारित समय-सीमा का पालन करने में अत्यधिक देरी है, जिसके परिणामस्वरूप गृह खरीदारों को भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि उल्लेख किया गया है, वाईईए ने गृह खरीदारों के हितों की रक्षा करने की अपनी प्रतिबद्धता और इस संबंध में उठाए जाने वाले कदमों को दोहराते हुए शपथपत्र भी दाखिल किया है। इसलिए यह आवश्यक है कि वाईईए को अपनी प्रतिबद्धता पूरी करने और आवंटियों/गृह खरीदारों के हितों की रक्षा सुनिश्चित करने के लिए निर्देश जारी किए जाएं।

176. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, पहली चिंता आवास परियोजनाओं के समय पर पूरा होने से संबंधित है। रिट - सी संख्या 21532/2021 में दायर अभिवचनों के अनुसार, जेएएल आवंटन की तिथि से 18-24 महीनों के भीतर आवंटियों को फ्लैट/प्लॉट सौंपने के लिए बाध्य था। यह लगभग वर्ष 2014-2015 की बात है। तब से लगभग पांच वर्ष बीत चुके हैं। निस्संदेह, आवास परियोजनाओं को पूरा करने के लिए एक समय सारणी तैयार की जानी चाहिए। तदनुसार, निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाते हैं: -

176 (क). "याचिकाकर्ता की विभिन्न परियोजनाओं के गृह खरीदारों के हितों पर आक्षेपित आदेश के कारण किसी भी प्रकार से कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वाईईए, अपनी प्रतिबद्धताओं के अनुसार, परियोजनाओं का अधिग्रहण करेगी और याचिकाकर्ता कंपनी और गृह खरीदारों के बीच सहमत शर्तों और नियमों के अनुसार निम्नलिखित समय सीमा के भीतर उनका पूरा होना सुनिश्चित करेगी--

- (i) वे परियोजनाएं जो कम से कम 75% पूर्ण हो चुकी हैं - 1 वर्ष
- (ii) वे परियोजनाएं जो कम से कम 50% पूर्ण हो चुकी हैं - 18 माह
- (iii) वे परियोजनाएं जो कम से कम 25% पूर्ण हो चुकी हैं - 30 माह
- (iv) अन्य -- 36 माह"

176 (ख). आवास परियोजनाओं के समय पर पूरा होने के लिए, वाईईए यह सुनिश्चित करेगा कि आवास परियोजनाओं को पूरा करने की योजना और डेवलपर के चयन सहित अन्य औपचारिकताओं को आज से तीन माह के भीतर सकारात्मक रूप से अंतिम रूप दिया जाए।

176 (ग). राज्य सरकार द्वारा आज से चार सप्ताह के भीतर एक समिति का गठन किया जाएगा जिसमें (i) प्रधान सचिव, आवास एवं औद्योगिक विकास; (ii) यू.पी. रेरा के अध्यक्ष; (iii) मुख्य कार्यकारी अधिकारी, वाईईए या उनके नामित व्यक्ति और (iv) लेनदारों के वर्ग, अर्थात् गृह खरीदारों के अधिकृत प्रतिनिधि (इसके बाद 'समिति' कहा जाएगा) शामिल होंगे। उक्त समिति आवास परियोजनाओं के पूरा होने से संबंधित समय-सीमा के अनुपालन की निगरानी करेगी।

176 (घ). जैसा कि उल्लेख किया गया है, 25.2.2020 से जेएएल के पक्ष में यथास्थिति का आदेश लागू है, जिसके कारण कोई व्याख्या नहीं की जा सकती। जेएएल की डिफॉल्ट और यथास्थिति के आदेश के कारण गृह खरीदारों को हानि नहीं पहुंचाया जा सकता। इसलिए, हमारा मत है कि आक्षेपित आदेश पारित होने की तिथि, अर्थात् 11.2.2020 से आज तक की अवधि को शून्य अवधि (डाइज़-नॉन) घोषित किया जाए। गृह खरीदारों की स्थिति आक्षेपित आदेश पारित होने की तिथि, अर्थात् 11.2.2020 से ठीक पहले की तिथि पर बहाल कर दी

जाएगी। तदनुसार, उनसे उक्त अवधि के लिए कोई ब्याज, जुर्माना या कोई अन्य राशि नहीं ली जाएगी। हमारे विचार में, यह निर्देश आक्षेपित आदेश और यथास्थिति के आदेश के प्रभाव को काफी हद तक समाप्त कर देगा। 176 (ई). वाईईए चार सप्ताह के भीतर एक नोडल अधिकारी नियुक्त करेगा, जो राजपत्रित अधिकारी (या समकक्ष) होना चाहिए, ताकि गृह खरीदारों द्वारा देय शेष राशि से संबंधित किसी भी विवादक का निर्णय किया जा सके। गृह खरीदार इस संबंध में उनके समक्ष शिकायत दर्ज करने के लिए स्वतंत्र होंगे और लिखित में विवाद प्राप्त होने की तिथि से चार सप्ताह के भीतर इसका निर्णय किया जाएगा। निर्णय लेते समय, नोडल अधिकारी आवंटन/समझौते की शर्तों और अन्य प्रासंगिक कारकों तथा जेएएल द्वारा इस संबंध में रखे गए दस्तावेजों/अभिलेखों या आबंटिती द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों/अभिलेखों को ध्यान में रखेगा।

176 (एफ). आवास परियोजनाओं के समय पर निष्पादन और पूर्णता के लिए, वाईईए आवंटियों से एकत्रित राशि की परवाह किए बिना, सदैव आवश्यक धनराशि उपलब्ध कराएगा। यह निर्देश वाईईए के इस स्वयं के रुख को ध्यान में रखते हुए जारी किया जा रहा है कि भूमि का मूल्य कई गुना बढ़ गया है और आवास परियोजनाएं आर्थिक रूप से लाभदायक और व्यवहार्य होंगी।

176 (जी). एनसीएलटी के समक्ष लंबित दिवालियापन कार्यवाही के दायरे में आने वाले जेएएल के विरुद्ध गृह खरीदारों का कोई भी दावा, जिसमें जेएएल के विरुद्ध किसी आदेश या निर्देश के अनुसरण में जेएएल से किसी भी राशि की वसूली शामिल है, संरक्षित रहेगा।

176 (एच). गृह खरीदारों को उपलब्ध कोई भी अधिकार या उपाय भू-संपदा (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 और उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2019, या किसी अन्य विधि के अंतर्गत भी संरक्षित रहेगा।

176(आई). चित्रा शर्मा (उपरोक्त) मामले में, निर्णय के पैराग्राफ 44 में यह उल्लेख किया गया है कि मात्र 8% गृह खरीदारों ने धनवापसी का विकल्प चुना है, जबकि 92% ने धनवापसी का दावा नहीं किया है। गृह खरीदारों के अधिकृत प्रतिनिधि ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि आय में कमी, सेवानिवृत्ति, या मूल आवंटनकर्ता या परिवार के मुख्य कमाने वाले की मृत्यु के कारण, कुछ आवंटनकर्ता अतिरिक्त बैंक ऋण प्राप्त करने के मानदंडों को पूरा करने में असमर्थ हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वृद्धावस्था, बीमारी या दुर्बलता के कारण गृह खरीदारों का शारीरिक और वित्तीय स्वास्थ्य बिगड़ सकता है, जिससे उनके लिए लंबे समय से वंचित घर को सुरक्षित करने के लिए चल रहे संघर्ष को जारी रखना अव्यावहारिक हो जाता है। इसलिए, ऐसे आवंटनकर्ताओं के लिए एक निकास नीति तैयार की जानी चाहिए।

परियोजना के निर्धारित समापन के बाद से काफी समय बीत जाने के कारण, हम समझते हैं कि कुछ आवंटियों का आशय परियोजना से बाहर निकलने और धन वापसी की मांग करने का हो सकता है। इसलिए, एक सुस्पष्ट निकास नीति तैयार करना आवश्यक है। यह नीति प्राधिकरण और गृह खरीदारों के हितों के बीच संतुलन बनाए रखेगी। इसलिए, हम इसे समितियों पर छोड़ देते हैं, जिसमें गृह खरीदार के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं, ताकि वे इसे तैयार कर सकें।

यदि कोई आवंटिती परियोजना से हटने का विकल्प चुनता है, तो संबंधित इकाई वाईईए द्वारा बिक्री के लिए उपलब्ध हो जाएगी। परिणामस्वरूप, सभी धनवापसी दावों का वहन वाईईए द्वारा किया जाएगा।

हमारी राय में, निकास नीति में प्रत्येक आवंटी द्वारा किए गए निवेश पर उचित ब्याज राशि के भुगतान का प्रावधान होना चाहिए। पिछले दस वर्षों के ब्याज की संरचना को ध्यान में रखते हुए और दोनों पक्षकारों के हितों

को संतुलित करने के लिए, हम यह प्रावधान करते हैं कि नीति में अन्य बातों के अतिरिक्त 9% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ धन वापसी का प्रावधान होना चाहिए।

निकास नीति को प्रेस और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में व्यापक रूप से प्रचारित किया जाएगा।

उप-पट्टाधारकों का हित:

177. विवादित रद्दीकरण आदेश में ही यह प्रावधान है कि उप-पट्टाधारकों के हितों की रक्षा की गई है, क्योंकि उनके पक्ष में उप-पट्टा समाप्त नहीं किया गया है। वाईईए ने पूरक प्रति शपथपत्र दिनांक 26.07.2024 में इस संबंध में अपना रुख इस प्रकार स्पष्ट किया है:-

"7. जैसा कि रद्दीकरण आदेश से ही स्पष्ट है, याचिकाकर्ता के उप-पट्टाधारकों के हितों की रक्षा की गई है क्योंकि उनके पक्ष में उप-पट्टा समाप्त नहीं किया गया है। रद्दीकरण आदेश यह सुनिश्चित करता है कि जब तक प्रतिवादी प्राधिकरण को नियमित रूप से और समय पर देय राशि का भुगतान किया जाता है, तब तक किसी भी उप-पट्टे का आवंटन रद्द नहीं किया जाएगा, जिससे उप-पट्टों की निरंतरता सुनिश्चित होती है।

8. इस प्रकार उप-पट्टे के अंतर्गत उप-पट्टाधारकों के हितों की पूर्ण सुरक्षा की जाती है और वे उप-पट्टे के अंतर्गत दायित्वों का पालन करते रहने तक तथा संबंधित प्राधिकरण के साथ हुए उस पट्टे के अंतर्गत दायित्वों का पालन करते रहने तक, जिसके अंतर्गत उप-पट्टा दिया गया है, बिना किसी बाधा के उनका लाभ उठा सकेंगे। यह उप-पट्टाधारकों के साथ हुए पत्राचार से स्पष्ट है। उदाहरण के तौर पर, ऐसे ही एक उप-पट्टाधारक के साथ हुए पत्राचार को संलग्नक 1 के रूप में संलग्न किया गया है।

9. रद्दीकरण आदेश पारित होने के बाद, उप-पट्टाधारक सीधे प्राधिकरण को भुगतान कर रहे हैं, और उनके उप-पट्टे रद्द नहीं किए गए हैं।"

177 (क). जेएएल के उप-पट्टाधारकों के अधिकारों की सुरक्षा तभी संभव है जब वाईईए उन्हें अपने पट्टाधारक के रूप में मान्यता दे। इसके लिए वाईईए को उप-पट्टाधारकों के साथ पट्टा अनुबंध करना होगा। निस्संदेह, नियम और शर्तें जेएएल और उप-पट्टाधारकों के बीच समान होनी चाहिए, बशर्ते वाईईए को अपने बकाया की वसूली का अधिकार हो। उपरोक्त प्रक्रिया के परिणामस्वरूप, वाईईए विवादित रद्दीकरण आदेश पारित होने तक याचिकाकर्ता से प्राप्त आनुपातिक राशि को अपने पास रखने का पात्र होगा।

177 (ख). इस संबंध में आवश्यक अभिलेखीय कार्य आज से बारह सप्ताह के भीतर पूरा कर लिया जाएगा। वाईईए आज से चार सप्ताह के भीतर उप-पट्टाधारकों को व्यक्तिगत नोटिस जारी करेगा और सार्वजनिक सूचना भी जारी करेगा। उप-पट्टाधारक अगले आठ सप्ताह के भीतर वाईईए के साथ पट्टा समझौते में प्रवेश करने की औपचारिकताएं पूरी करेंगे। इस संबंध में सभी खर्च वाईईए द्वारा वहन किए जाएंगे।

177 (सी). उपरोक्त निर्देश उप-पट्टाधारकों और जेएएल के बीच उप-पट्टा विलेखों के अंतर्गत अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है। पट्टा विलेख के निष्पादन पर, जेएएल और उप-पट्टाधारकों के बीच उप-पट्टा विलेखों में निहित समान शर्तों और नियमों पर वाईईए जेएएल के स्थान पर प्रतिस्थापित हो जाएगा।

वित्तीय संस्थानों का हित:

178. हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते कि इस मामले में वित्तीय संस्थानों का भी बड़ा हित जुड़ा हुआ है। मैसर्स सुरक्षा एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड (रिट - सी संख्या 8909/2021) ने 'संपत्ति पुनर्निर्माण कंपनी' के रूप में, पट्टे पर दी गई भूमि के कुछ हिस्से के पट्टे के अधिकारों में सुरक्षा हित का दावा करते हुए, अपने सुरक्षा हित की रक्षा के लिए रद्दीकरण आदेश को चुनौती दी है।

179. आईसीआईसीआई बैंक लिमिटेड ("आईसीआईसीआई बैंक") ने अपनी व्यक्तिगत क्षमता में, बंधकधारक और उप-पट्टाधारक के रूप में अपने हितों की रक्षा के लिए सिविल विविध पक्षकार बनने आवेदन संख्या 5/2020 दायर किया था, जिसे आदेश दिनांक 8 फरवरी, 2021 द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। इसके अलावा, आईसीआईसीआई बैंक ने ऋणदाताओं के संघ, अर्थात् स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया (पूर्ववर्ती कॉर्पोरेशन बैंक), पंजाब नेशनल बैंक (पूर्ववर्ती ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स), लक्ष्मी विलास बैंक लिमिटेड, आईएफसीआई लिमिटेड, एक्सिस बैंक लिमिटेड, आईसीआईसीआई बैंक, एसेट्स केयर एंड रिकंस्ट्रक्शन एंटरप्राइज लिमिटेड (एसीआरई-86-ट्रस्ट के न्यासी और यस बैंक लिमिटेड के ऋणों के असाइनी के रूप में कार्य करते हुए), एलआईसी ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ महाराष्ट्र, आईडीबीआई बैंक, जम्मू और कश्मीर बैंक, बैंक ऑफ इंडिया, साउथ इंडियन बैंक, एसेट्स केयर एंड रिकंस्ट्रक्शन एंटरप्राइज लिमिटेड (एसीआरई-98-ट्रस्ट के न्यासी और कर्नाटक बैंक लिमिटेड के ऋणों के असाइनी के रूप में कार्य करते हुए), एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी (इंडिया) लिमिटेड (एल एंड टी इंफ्रास्ट्रक्चर फाइनेंस कंपनी लिमिटेड के ऋणों के असाइनी) और केनरा बैंक (सामूहिक रूप से इसके बाद "ऋणदाताओं का संघ" कहा गया है) की ओर से आई.ए. संख्या 6/2020 के तहत एक पक्षकार बनने का आवेदन भी दायर किया था, जिसे विभिन्न आदेशों के माध्यम से स्वीकार कर लिया गया था।

179 (ए). यह ध्यान दिया जा सकता है कि एक्सिस बैंक और स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक ने भी अपने-अपने संघों की ओर से पक्षकार बनने के लिए आवेदन दायर किए हैं और उन्हें भी रिट याचिका में पक्षकार बनाया गया है।

179 (बी). ऋणदाताओं/वित्तीय संस्थानों के संघ की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि जेएएल की खेल अवसंरचना परियोजना के विकास और संचालन की लागत को पूरा करने और जेएएल द्वारा देय अन्य देनदारियों के भुगतान सहित अन्य उद्देश्यों के लिए धन की व्यवस्था करने हेतु, जेएएल ने आईसीआईसीआई बैंक और ऋणदाताओं के संघ सहित कई ऋणदाताओं से संपर्क किया, जिन्होंने जेएएल को कई ऋण सुविधाएं प्रदान कीं। ये ऋण सुविधाएं अन्य बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित के लिए सुरक्षित थीं:

(ए) आईसीआईसीआई बैंक एकमात्र ऋणदाता के रूप में, पट्टे पर दी गई संपत्ति के एक हिस्से पर 25 एकड़ तक के अनन्य बंधक/प्रभार के माध्यम से, आईडीबीआई ट्रस्टीशिप सर्विसेज लिमिटेड (आईसीआईसीआई बैंक के सुरक्षा न्यासी के रूप में कार्य करते हुए) के पक्ष में, 7 जुलाई, 2014 के बंधक विलेख के माध्यम से बंधक रखा गया था। 23.5 एकड़ भूमि पार्सल को बाद में सुरक्षा न्यासी (आईडीबीआई ट्रस्टीशिप सर्विसेज लिमिटेड) द्वारा 30 जून, 2017 के पुनर्हस्तांतरण विलेख के माध्यम से जेएएल के पक्ष में मुक्त कर दिया गया था। इस प्रकार, वर्तमान में, पट्टे पर दी गई 1.5 एकड़ भूमि (जो एसडीजेड के अंतर्गत जेएएल को आवंटित भूमि पार्सल का हिस्सा है) आईसीआईसीआई बैंक के लाभ के लिए अनन्य रूप से बंधक ("अनन्य बंधक") बनी हुई है। अनन्य बंधक विधिवत पंजीकृत था और आईसीआईसीआई बैंक के पक्ष/लाभ के लिए वैध रूप से बनाया गया था; और

(बी) ऋणदाताओं के संघ के मामले में, एसडीजेड के अंतर्गत जेएएल को आवंटित कुछ पट्टे पर ली गई भूमि के एक हिस्से (588.42 एकड़) पर समतुल्य आधार पर बंधक के माध्यम से ऋणदाताओं के संघ के लाभ के लिए बनाई गई सामान्य सुरक्षा के माध्यम से एक्सिस ट्रस्टी सर्विसेज लिमिटेड, अर्थात् ऋणदाताओं के संघ के लाभ के लिए कार्य करने वाले सुरक्षा न्यासी के पक्ष में सुरक्षा प्रदान की गई। उपरोक्त सुरक्षा का निर्माण 1 सितंबर, 2015 के बंधक विलेख के माध्यम से पंजीकृत बंधक द्वारा किया गया था। उपरोक्त बंधक को जेएएल द्वारा 30 दिसंबर, 2016 के बंधक विलेख के माध्यम से पंजीकृत बंधक द्वारा पुनर्गठित किया गया था ताकि जेएएल के ऋणदाताओं के संघ की संरचना को पुनर्व्यवस्थित किया जा सके, इस प्रकार कुल 23,490.75 करोड़ रुपये के ऋण को सुरक्षित किया जा सके।

179 (सी). यह कहा गया है कि ऋणदाताओं ने सद्भावनापूर्वक, अन्य बातों के अतिरिक्त, ऋणदाताओं के पक्ष में/के लाभ के लिए बनाए गए सुरक्षा हित की मजबूती के आधार पर, जेएएल को भारी मात्रा में ऋण वितरित किए। इसके अतिरिक्त, उपर्युक्त बंधक ऋणदाताओं के पक्ष में/के लाभ के लिए वैध रूप से बनाया गया था।

179 (डी). वाईईए द्वारा आवंटित भूखंडों/भूमियों को रद्द करने से उधारदाताओं के हितों पर सीधा प्रभाव पड़ा है, क्योंकि उक्त आवंटित भूखंडों/भूमियों के कुछ हिस्से उधारदाताओं के पक्ष में/के लाभ के लिए जेएएल के पक्ष में उधारदाताओं द्वारा स्वीकृत ऋण सुविधाओं को सुरक्षित करने के लिए गिरवी रखे गए थे।

179 (ई). निरस्तीकरण आदेश के अनुसार, जब तक वाईईए का बकाया भुगतान हो जाता है, तब तक विभिन्न पक्षकारों के पक्ष में उप-पट्टे पर दी गई भूमि पर निरस्तीकरण का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। गौरतलब है कि वाईईए ने इस रिट याचिका में दायर अपने पूरक शपथपत्र दिनांक 26 जुलाई, 2024 ("पूरक शपथपत्र") में यह भी स्वीकार किया है कि उप-पट्टाधारकों के हित सुरक्षित हैं क्योंकि उनके पक्ष में उप-पट्टा समाप्त नहीं किया गया है।

179 (एफ). हालांकि, इसके बावजूद, वाईईए ने 12 जुलाई, 2024 को दस पत्र ("वाईईए पत्र") जारी किए हैं, जिनमें कथित आधार पर उप-पट्टा विलेखों को रद्द करने की धमकी दी गई है कि आईसीआईसीआई बैंक उप-पट्टा विलेखों के अंतर्गत उप-पट्टे पर दी गई भूमि पर मानचित्र अनुमोदन प्राप्त करके निर्माण कार्य करने के लिए तैयार नहीं है। जबकि आईसीआईसीआई बैंक ने वाईईए पत्रों के जवाब में निर्माण कार्य करने/मानचित्र अनुमोदन प्राप्त करने में आने वाली चुनौतियों का विस्तृत विवरण देते हुए प्रत्यावेदन प्रस्तुत किया है, आईसीआईसीआई बैंक को आज तक वाईईए पत्रों के जवाब पर कोई प्रतिक्रिया/स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई है।

179 (जी). यह तर्क दिया गया है कि वाईईए ने उप-पट्टाधारकों के हितों की रक्षा के लिए अभिलेख पर प्रस्तुतियाँ तो की हैं, लेकिन उन्हीं के पूर्ण उल्लंघन में उसने उप-पट्टा विलेखों के अंतर्गत वित्तीय संस्थानों के अधिकारों को रद्द करने की धमकी भरे पत्र भी जारी किए हैं। अतः निवेदन है कि वाईईए को इस प्रकार की मनमानी करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

179 (एच). दूसरी ओर, वाईईए के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल ने प्रस्तुत किया कि जेएएल मुख्य देनदार होने के नाते वित्तीय संस्थानों द्वारा दिए गए ऋणों के लिए उत्तरदायी है। वित्तीय संस्थानों को जेएएल, मुख्य देनदार, के विरुद्ध कार्रवाई करने का अधिकार था और रहेगा, और वित्तीय संस्थान उससे अपने बकाया ऋणों की वसूली के पात्र होंगे। इसके अतिरिक्त, वर्तमान मुकदमे का विषय बनी भूमि में पट्टेदारी हित के अतिरिक्त, जेएएल के पास अपनी और अपनी सहायक कंपनियों की कई अन्य संपत्तियां भी हैं, जिनमें सीमेंट

संयंत्र, इंजीनियरिंग और निर्माण प्रभाग की संपत्तियां, भारी निर्माण उपकरण और मशीनरी, विभिन्न पांच सितारा होटल शामिल हैं।

179(आई). वित्तीय संस्थानों का उस भूमि में कोई हित नहीं था, जो प्राधिकरण के स्वामित्व में है और बनी रहेगी। हालांकि, वित्तीय संस्थानों ने उस पट्टे के अधिकार में सुरक्षा हित अर्जित कर लिया है जो याचिकाकर्ता ने अपने पक्ष में पट्टा विलेखों के अंतर्गत गिरवी रखकर प्राप्त किया है। याचिकाकर्ता द्वारा पट्टा की शर्तों के अंतर्गत देय राशि का भुगतान न करने के कारण पट्टा रद्द होने पर यह सुरक्षा हित समाप्त हो जाता है।

179 (जे). उपरोक्त के बावजूद, यह प्रस्तुत किया जाता है कि किसी भी स्थिति में प्राधिकरण को प्रथम प्रभार प्राप्त है, जिसे वित्तीय संस्था के दावों पर प्राथमिकता प्राप्त है।

180. इसमें कोई संदेह नहीं है कि 9 जुलाई 2013 से 15 जनवरी 2015 तक प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता को मुख्य और गैर-मुख्य क्षेत्रों में समय-समय पर भूमि गिरवी रखने की अनुमति दी। याचिकाकर्ता ने लगभग 660 हेक्टेयर भूमि अपने ऋणदाताओं के पास गिरवी रखी थी। 9 जुलाई 2013 को चार अनुमतियाँ, 18 नवंबर 2013 को दो अनुमतियाँ, और 22 अगस्त 2014, 25 अगस्त 2014 और 15 जनवरी 2015 को एक-एक अनुमति प्रदान की गई।

181. ये अनुमतियाँ इस शर्त के अधीन थीं कि प्राधिकरण को भूमि में सभी हितों पर प्रथम आधिपत्य प्राप्त होगा और उसका दावा उन बैंकों और वित्तीय संस्थानों के दावों पर प्राथमिकता रखेगा जिनके पक्ष में बंधक बनाया जा रहा है। उक्त अनुमतियों में निम्नलिखित प्रावधान भी हैं:

“2....वाईईआईडीए का संपत्ति पर प्रभार, सभी ऋणदाता बैंकों के प्रथम प्रभार से ऊपर, वाईईआईडीए को देय राशि की सीमा तक सर्वोच्च प्रथम प्रभार होगा, जो कि किश्तों, ब्याज, दंडात्मक ब्याज, पट्टा किराया, जुर्माने और अन्य देय राशियों के रूप में वाईईआईडीए को देय राशि के बराबर होगा, जैसा कि वाईईआईडीए और जेपीएसआई के बीच निष्पादित भूमि आवंटन पत्रों और पट्टा विलेखों में उल्लिखित है। जेपीएसआई और ऋणदाता बैंकों/वित्तीय संस्था के बीच निष्पादित होने वाले बंधक विलेख में यह शामिल होगा कि भूमि पर प्राधिकरण का प्रभार अन्य सभी प्रभारों से सर्वोपरि और पूर्व होगा, जो अन्य पक्षकारों के पक्ष में बनाए गए हैं और/या बनाए जाने वाले हैं, और प्राधिकरण के प्रभार के अधीन होगा, चाहे उसका नाम या नामकरण कुछ भी हो।

3. जेपीएसआई को उक्त भूमि के पट्टा विलेखों में निर्धारित समय पर प्राधिकरण को भुगतान सुनिश्चित करना होगा। यदि उक्त भूमि के लिए बैंक/वित्तीय संस्थानों से प्राप्त परियोजना वित्तपोषण में भूमि की लागत शामिल है, तो बंधक विलेख में प्रवेश करने या इस बंधक अनुमति का उपयोग करने से पहले प्राधिकरण को समयबद्ध भुगतान करना होगा। अन्यथा, प्राधिकरण पट्टा विलेख में निर्धारित भुगतान में डिफॉल्टर मानते हुए ऐसी राशि की वसूली के लिए कार्रवाई करने को स्वतंत्र होगा।”

182. वित्तीय संस्थानों और ऋणदाताओं के संघ की ओर से प्रस्तुत हुए विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क का मुख्य बिंदु यह है कि पट्टा रद्द होने पर वित्तीय संस्थानों को भारी हानि होगा। विद्वान अधिवक्ताओं ने इस बात से

अस्वीकार नहीं किया कि भूमि पर वित्तीय संस्थानों का सुरक्षा हित, भूमि के पुनः अधिग्रहण के परिणामस्वरूप विधि के अनुसार समाप्त हो जाएगा। सुरक्षा एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड द्वारा दायर रिट याचिका (रिट-सी संख्या 8909/2021) के पैराग्राफ 32 में भी यही बात स्वीकार की गई है। इस प्रकार, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 68 के अनुसार, वित्तीय संस्थानों के पास मूल उधारकर्ता के विरुद्ध ही उपाय उपलब्ध होंगे। इसके अतिरिक्त, एनसीएलटी के समक्ष दिवालियापन की कार्यवाही को देखते हुए, हम ऋणदाताओं के दावे या पक्षकारों के प्रभार की प्राथमिकता के संबंध में कोई टिप्पणी करने से परहेज करते हैं। हम यह स्पष्ट करते हैं कि इस आदेश में ऋणदाताओं/वित्तीय संस्थानों के दावे से संबंधित कोई भी आकस्मिक टिप्पणी, उप-पट्टाधारकों के पक्ष में की गई सीमा को छोड़कर, एनसीएलटी के समक्ष लंबित कार्यवाही पर कोई प्रभाव नहीं डालेगी और न ही उसे प्रभावित करेगी।

183. यह उल्लेखनीय है कि पुनः अधिग्रहण आदेश के प्रभाव पर विचार करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि वाईईए, जेएएल द्वारा प्राधिकरण के पास जमा की गई पूरी राशि वापस करने के लिए उत्तरदायी होगी और इसे एनसीएलटी के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। उक्त राशि जेएएल के कोष का हिस्सा होगी, जिसका समाधान आईबीसी के प्रावधानों के अनुसार किया जाएगा। इससे वित्तीय संस्थानों के हितों का भी कुछ हद तक ध्यान रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त, आक्षेपित आदेश में और वाईईए द्वारा पूरक प्रति-शपथपत्र दिनांक 26.07.2024 में लिए गए रुख के अनुसार, वित्तीय संस्थानों के पक्ष में किए गए उप-पट्टे संरक्षित हैं।

184. वित्तीय संस्थानों की चिंताओं में से एक यह है कि एक ओर तो वाईईए ने उप-पट्टाधारकों के हितों की रक्षा करने का रुख अपनाया है, वहीं दूसरी ओर इसके बिल्कुल विपरीत, उसने वित्तीय संस्थानों को पत्र जारी कर धमकी दी है कि पट्टे की शर्तों का उल्लंघन करने और पट्टे पर दी गई भूमि पर निर्माण कार्य करने के कारण उनके उप-पट्टे रद्द कर दिए जाएंगे। यह प्रस्तुत किया जाता है कि वित्तीय संस्थान बैंकिंग गतिविधियों में लगे हुए हैं और विधि के अनुसार उन्हें भूमि विकास और संबंधित गतिविधियों में शामिल होने की मनाही है। वित्तीय संस्थानों के पक्ष में उप-पट्टे वाईईए की सहमति से जेएएल को दिए गए ऋण की सुरक्षा के रूप में बनाए गए थे।

185. हमें इस प्रस्तुति में पर्याप्त बल दिखाई देता है। निस्संदेह, वित्तीय संस्थानों से भूमि विकास और निर्माण गतिविधियों में संलग्न होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। वित्तीय संस्थानों ने जेएएल को दिए गए ऋण की सुरक्षा के लिए उप-पट्टा प्राप्त किया था। यह स्वीकार किया जाता है कि यह वाईईए की सहमति से और आवंटन आदेशों/पट्टा विलेखों के प्रावधानों के अनुसार किया गया था। वाईईए उप-पट्टाधारकों के हितों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है, जो वित्तीय संस्थानों के पक्ष में दिए गए पट्टे सहित सभी उप-पट्टों पर लागू होता है। इसलिए, हमारा मत है कि वित्तीय संस्थानों को अपना हित किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरित करने की अनुमति दी जानी चाहिए। तदनुसार, हम वित्तीय संस्थानों के पक्ष में दिए गए उप-पट्टों के संबंध में निम्नलिखित निर्देश जारी करते हैं:

(ए) वित्तीय संस्थानों के पक्ष में उप-पट्टे आक्षेपित आदेश के अनुसार संरक्षित रहेगा।

(बी) उप-पट्टों पर कोई असर न पड़े, इस प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए वाईईए वित्तीय संस्थानों को उन्हीं शर्तों और नियमों पर पट्टा प्राप्त करने का विकल्प देगा, जैसा कि वित्तीय संस्थानों और वाईईए के बीच उनके अपने पक्ष में या उनके असाइनी के पक्ष में है, बशर्ते कि वाईईए को बकाया राशि की वसूली का अधिकार प्राप्त हो।

(सी) वित्तीय संस्थानों द्वारा इस संबंध में अनुरोध किए जाने की तिथि से चार सप्ताह के भीतर दस्तावेजीकरण का कार्य पूरा किया जाना चाहिए, जिसकी अधिकतम सीमा इस आदेश के पारित होने की तिथि से बारह सप्ताह होगी।

(डी) वाईईए को जेएएल से प्राप्त राशि को निरस्तीकरण आदेश पारित होने तक आनुपातिक आधार पर अपने पास रखने का अधिकार होगा।

आगे के निर्देश:

186. निम्नलिखित राशि छः सप्ताह के भीतर वाईईए द्वारा एनसीएलटी द्वारा नियुक्त आरपी के खाते में स्थानांतरित करके जेएएल को वापस कर दी जाएगी।

(1) वर्तमान मुकदमे में पारित आदेशों के अनुसरण में जेएएल द्वारा जमा की गई कोई भी राशि, जमा की तिथि से वापसी की तिथि तक प्रचलित ब्याज (एसबीआई पीएलआर) सहित।

(2) आवंटन और पट्टे के संबंध में वाईईए द्वारा जेएएल से अब तक प्राप्त अन्य सभी राशियाँ, चाहे रद्द करने से पहले या उसके बाद, पुनः प्राप्त भूमि के क्षेत्रफल के अनुपात में होंगी। अतः, वाईईए उप-पट्टों द्वारा कवर किए गए क्षेत्र के लिए प्राप्त आनुपातिक राशि को रखने का पात्र होगा, जो आक्षेपित आदेश के दायरे से बाहर हैं।

निष्कर्ष :

187. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, रिट - सी संख्या 47562/2017 निष्प्रभावी होने के कारण निरस्त की जाती है, जबकि रिट - सी संख्या 6049/2020, रिट - सी संख्या 21532/2021 और रिट - सी संख्या 8909/2021 तथा गृह खरीदारों, उप-पट्टाधारकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा दायर विभिन्न हस्तक्षेप आवेदनों का निस्तारण निम्नलिखित निर्देशों के साथ किया जाता है:-

(ए) गृह खरीदार:

(क) याचिकाकर्ता की विभिन्न परियोजनाओं के गृह खरीदारों के हितों पर आक्षेपित आदेश के कारण किसी भी प्रकार से कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वाईईए, अपनी प्रतिबद्धताओं के अनुसार, परियोजनाओं का अधिग्रहण करेगी और याचिकाकर्ता कंपनी और गृह खरीदारों के बीच सहमत शर्तों और नियमों के अनुसार निम्नलिखित समय सीमा के भीतर उनका पूरा होना सुनिश्चित करेगी-

- (i) वे परियोजनाएं जो कम से कम 75% पूर्ण हो चुकी हैं - 1 वर्ष
- (ii) वे परियोजनाएं जो कम से कम 50% पूर्ण हो चुकी हैं - 18 माह
- (iii) वे परियोजनाएं जो कम से कम 25% पूर्ण हो चुकी हैं - 30 माह
- (iv) अन्य -- 36 माह"

(बी) आवास परियोजनाओं को समय पर पूरा करने के लिए, वाईईए यह सुनिश्चित करेगा कि आवास परियोजनाओं को पूरा करने की योजना और डेवलपर के चयन सहित अन्य औपचारिकताओं को आज से तीन माह के भीतर सकारात्मक रूप से अंतिम रूप दे दिया जाए।

(सी) राज्य सरकार आज से चार सप्ताह के भीतर एक समिति का गठन करेगी जिसमें (i) प्रधान सचिव, आवास एवं औद्योगिक विकास; (ii) यू.पी. रेरा के अध्यक्ष; (iii) वाईईए के सीईओ या उनके नामित व्यक्ति और (iv) लेनदारों के वर्ग, अर्थात् गृह खरीदारों के अधिकृत प्रतिनिधि (जिसे आगे 'समिति' कहा गया है) शामिल होंगे। यह समिति आवास परियोजनाओं के पूरा होने से संबंधित समय-सीमा के अनुपालन की निगरानी करेगी।

(डी) आक्षेपित आदेश पारित होने की तिथि, अर्थात् 11.2.2020 से आज तक की अवधि को शून्य अवधि (डाइज़-नॉन) घोषित किया जाना चाहिए। गृह खरीदारों की स्थिति आक्षेपित आदेश पारित होने की तिथि, अर्थात् 11.2.2020 से ठीक पहले की स्थिति में बहाल कर दी जाएगी। तदनुसार, उक्त अवधि के लिए उन पर कोई ब्याज, जुर्माना या कोई अन्य राशि नहीं लगाई जाएगी।

(ई) वाईईए चार सप्ताह के भीतर एक नोडल अधिकारी नियुक्त करेगा, जो राजपत्रित अधिकारी (या समकक्ष) होना चाहिए। यह नोडल अधिकारी गृह खरीदारों द्वारा देय शेष राशि से संबंधित किसी भी विवादक पर निर्णय लेगा। गृह खरीदार इस संबंध में नोडल अधिकारी के समक्ष अपनी शिकायत दर्ज करा सकेंगे और लिखित में विवाद प्राप्त होने की तिथि से चार सप्ताह के भीतर इसका निर्णय किया जाएगा। निर्णय लेते समय, नोडल अधिकारी आवंटन/समझौते की शर्तों और अन्य प्रासंगिक कारकों तथा जेएएल द्वारा इस संबंध में रखे गए दस्तावेजों/अभिलेखों या आबंटिती द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों/अभिलेखों को ध्यान में रखेगा।

(एफ) आवास परियोजनाओं के समय पर क्रियान्वयन और पूर्णता के लिए, वाईईए आवंटियों से एकत्रित राशि की परवाह किए बिना, सदैव आवश्यक धनराशि उपलब्ध कराएगा। यह निर्देश वाईईए के इस स्वयं के रुख को ध्यान में रखते हुए जारी किया जा रहा है कि भूमि का मूल्य कई गुना बढ़ गया है और आवास परियोजनाएं आर्थिक रूप से लाभदायक और व्यवहार्य होंगी।

(जी) एनसीएलटी के समक्ष लंबित दिवालियापन कार्यवाही के दायरे में आने वाले जेएएल के विरुद्ध गृह खरीदारों के किसी भी दावे, जिसमें जेएएल के विरुद्ध किसी भी आदेश या निर्देश के अनुसरण में जेएएल से किसी भी राशि की वसूली शामिल है, को संरक्षण प्राप्त रहेगा।

(एच) गृह खरीदारों को उपलब्ध कोई भी अधिकार या उपाय भू-संपदा (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 और उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2019, या किसी अन्य विधि के अंतर्गत भी संरक्षित रहेगा।

(आई) पैराग्राफ 176(i) में दिए गए अवलोकनों को ध्यान में रखते हुए, समिति द्वारा एक सुव्यवस्थित निकास नीति तैयार की जाएगी।

(बी) उप-पट्टाधारक:

(ए) वाईईए उप-पट्टाधारकों के साथ पट्टा अनुबंध करेगी। निःसंदेह, जेएएल और उप-पट्टाधारकों के बीच के नियम और शर्तें समान होंगी, बशर्ते वाईईए को अपने बकाया की वसूली का अधिकार हो। उपरोक्त प्रक्रिया के परिणामस्वरूप, वाईईए को याचिकाकर्ता से प्राप्त आनुपातिक राशि को विवादित रद्दीकरण आदेश पारित होने तक अपने पास रखने का अधिकार होगा।

(बी) इस संबंध में आवश्यक अभिलेखीय कार्य आज से बारह सप्ताह के भीतर पूरा कर लिया जाएगा। वाईईए आज से चार सप्ताह के भीतर उप-पट्टाधारकों को व्यक्तिगत नोटिस जारी करेगा और सार्वजनिक सूचना भी जारी करेगा। उप-पट्टाधारक अगले आठ सप्ताह के भीतर वाईईए के साथ पट्टा समझौते में प्रवेश करने की औपचारिकताएं पूरी करेंगे। इस संबंध में सभी खर्च वाईईए द्वारा वहन किए जाएंगे।

(सी) उपरोक्त निर्देश उप-पट्टाधारकों और जेएएल के बीच उप-पट्टा विलेखों के अंतर्गत अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है। पट्टा विलेख के निष्पादन के बाद, जेएएल और उप-पट्टाधारकों के बीच उप-पट्टा विलेखों में निहित समान शर्तों और नियमों पर वाईईए जेएएल के स्थान पर प्रतिस्थापित हो जाएगा।

(सी) वित्तीय संस्थान:

(ए) आक्षेपित आदेश के अनुसार वित्तीय संस्थानों के पक्ष में किए गए उप-पट्टे संरक्षित रहेंगे।

(बी) उप-पट्टों पर कोई असर न पड़े, इस प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए वाईईए वित्तीय संस्थानों को उन्हीं शर्तों और नियमों पर पट्टा प्राप्त करने का विकल्प देगा, जैसा कि वित्तीय संस्थानों और वाईईए के बीच उनके अपने पक्ष में या उनके असाइनी के पक्ष में है, बशर्ते कि वाईईए को बकाया राशि की वसूली का अधिकार प्राप्त हो।

(सी) वित्तीय संस्थानों द्वारा इस संबंध में अनुरोध किए जाने की तिथि से चार सप्ताह के भीतर अभिलेखीय का कार्य पूरा किया जाना चाहिए, जिसकी अधिकतम सीमा इस आदेश के पारित होने की तिथि से बारह सप्ताह होगी।

(डी) वाईईए को जेएएल से प्राप्त राशि को निरस्तीकरण आदेश पारित होने तक आनुपातिक आधार पर अपने पास रखने का अधिकार होगा।

(घ) निम्नलिखित राशियाँ छः सप्ताह के भीतर वाईईए द्वारा एनसीएलटी द्वारा नियुक्त आरपी के खाते में स्थानांतरित करके जेएएल को वापस कर दी जाएंगी: -

(i) वर्तमान मुकदमे में पारित आदेशों के अनुसरण में जेएएल द्वारा जमा की गई कोई भी राशि, जमा की तिथि से वापसी की तिथि तक प्रचलित ब्याज (एसबीआई पीएलआर) सहित।

(ii) आवंटन और पट्टे के संबंध में वाईईए द्वारा जेएएल से अब तक प्राप्त अन्य सभी राशियाँ, चाहे रद्द करने से पहले या उसके बाद, पुनः प्राप्त भूमि के क्षेत्रफल के अनुपात में होंगी। अतः, वाईईए उप-पट्टों द्वारा कवर किए गए क्षेत्र के लिए प्राप्त आनुपातिक राशि को रखने का पात्र होगा, जो आक्षेपित आदेश के दायरे से बाहर हैं।

188. उपरोक्त निर्देशों के अधीन रहते हुए, विवादित रद्दीकरण आदेश दिनांक 12.02.2020 को बरकरार रखा जाता है।

189. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 3 ILRA 756

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

रिट सी संख्या 7611 / 2019

श्री रामदेव संस्कृत महाविद्यालय के मुख्य प्रबंधक एवं अन्य

.....याचीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री ऋतुध्वज प्रताप साही, श्री रमेश चंद्र तिवारी, श्री विजय कुमार सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री पंकज कुमार, श्री राज मणि विश्वकर्मा

ए. सिविल विधि - सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 - धारा 3(क)(4) एवं 15 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - अध्यक्ष द्वारा चुनाव हेतु बैठक - वैधता - निर्धारित प्राधिकारी द्वारा यह निष्कर्ष कि सोसायटी के प्रबंधक राम चंद्र पाण्डेय, जिसके अध्यक्ष विजय कुमार दुबे थे, को चुनाव हेतु बैठक बुलाने का अधिकार था, अतः यह सोसायटी के उपनियमों के खंड 9(6) के अनुसार था - चुनाव में भाग लेने वाले सभी व्यक्ति सोसायटी के वैध सदस्य हैं - चुनाव कराने का निर्णय लेने हेतु बैठक बुलाने के लिए कोरम पूर्ण था - सोसायटी के सदस्यों ने चुनाव से 15 दिन पहले पूर्व सूचना दी थी, और 51 सदस्यों में से 40 सदस्यों ने चुनाव में भाग लिया था - इस प्रकार, प्रतिवादी का चुनाव दिनांक 05.03.2006 वैध था और प्रबंधन समिति का बाद का चुनाव विधि के अनुसार आयोजित किया गया था। (पैरा 33 से 37)

रिट याचिका निरस्त। (ई-13)

3.इला श्री रामदेव संस्कृत महाविद्यालय के मुख्य प्रबंधक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 921

उद्धृत मामलों की सूची:

1. वी.सी. चरती बनाम हुसैन नहानु जमादार, 1998 (8) एससी 120, (पैरा 9)
2. मेहंदी हसन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2007 (3) एडब्ल्यूसी 3066 (ऑल)

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र तिवारी से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी. के. सिंह और प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री आर. एम. विश्वकर्मा से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. के. ओझा को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने इस रिट याचिका के माध्यम से निर्धारित प्राधिकारी/उप-जिला मजिस्ट्रेट, मंडियाहू, जिला जौनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक **08.02.2019** को चुनौती दी है, जिसके द्वारा उन्होंने यह माना है कि याचिकाकर्ता की सोसाइटी, अर्थात् रामदेव संस्कृत महाविद्यालय बरेली, जिला जौनपुर की प्रबंधन समिति का चुनाव वैध है।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षकारों के मध्य लंबे समय से विवाद चल रहा था और उन्होंने कई मुकदमे दायर किए थे। अंततः, पक्षकारों के मध्य यह विवाद सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक **25.02.2009** में परिणत हुआ। इसके अतिरिक्त, हरि नाथ दुबे द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर सोसायटी के नवीनीकरण के आवेदन को स्वीकार करते हुए रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा एक और आदेश दिनांक **26.11.2010** पारित किया गया था।

4. सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक **25.02.2009** में राम चंद्र पाण्डेय के सोसायटी की प्रबंधन समिति के प्रबंधक होने के दावे को स्वीकार करने और याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करते हुए याचिकाकर्ता की सोसायटी के प्रमाण पत्र के नवीनीकरण को बरकरार रखने के आदेश को हरि नाथ दुबे द्वारा **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 23641/2009** में चुनौती दी गई थी, जिसमें उन्होंने स्वयं को राम देव संस्कृत महाविद्यालय, बरेली, जिला जौनपुर की प्रबंधन समिति का प्रबंधक बताया था।

5. राम चंद्र पाण्डेय द्वारा **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 72367/2010** के माध्यम से रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक **26.11.2010** को रद्द करने के लिए दायर किया गया, जिसमें हरि नाथ दुबे द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर सोसायटी के नवीनीकरण के आवेदन को स्वीकार किया गया था, जो **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 23641/2009** में याचिकाकर्ता थे।

6. दोनों रिट याचिकाएं, अर्थात् सिविल विविध रिट याचिका संख्या 23641/2009 और 72367/2010, इस न्यायालय द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 03.05.2012 द्वारा एक साथ निर्णीत की गईं, जिसके अंतर्गत न्यायालय ने मामले को निर्धारित प्राधिकारी को भेजा ताकि वह निर्णय दिनांक 03.05.2012 में न्यायालय द्वारा विरचित तीन विवाद्यों पर पक्षकारों के मध्य विवाद का निर्णय कर सके। न्यायालय द्वारा विरचित तीन विवाद्यों नीचे दिए गए हैं:-

- “(i) बैठक बुलाने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को बैठक बुलाने और चुनाव कराने का अधिकार था;
(ii) चुनाव में भाग लेने वाले व्यक्ति, सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 15 के अनुसार वैध सदस्य हैं और चुनाव में भाग लेने के पात्र हैं;
(iii) जो चुनाव संपन्न हुए हैं, वे सोसायटी के उपनियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार ही संपन्न हुए हैं, अधिमानतः अगले छः महीनों के भीतर और आदेश दिनांक 26.11.2010 निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के परिणाम स्वरूप लागू होगा और धारा 3-क की उपधारा (4) के अंतर्गत प्रस्तुत सूची में तदनुसार संशोधन/परिवर्तन किया जाएगा।”*

7. न्यायालय ने आगे निर्देश दिया कि आदेश दिनांक 26.11.2010 निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के परिणाम का पालन करेगा और सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 3 (क) की उपधारा (4) के अंतर्गत प्रस्तुत सूची को तदनुसार संशोधित/परिवर्तित किया जाएगा।

8. ऐसा प्रतीत होता है कि पहले ‘श्री रामदेव दुबे संस्कृत पाठशाला, बरेली, जौनपुर’ नाम से एक सोसाइटी थी, जो वर्ष 1954 में पंजीकृत हुई थी (जिसे आगे ‘पुरानी सोसाइटी’ कहा गया है)। राम देव दुबे इस पुरानी सोसाइटी के आजीवन अध्यक्ष रहे। 1980 में पुरानी सोसाइटी के प्रबंधक राज देव दुबे का निधन हो गया और उनके स्थान पर सूर्य मणि दुबे को प्रबंधक और बद्री नारायण दुबे को अध्यक्ष चुना गया। इसके बाद, 25.12.1981 को पुरानी सोसाइटी की प्रबंधन समिति का चुनाव हुआ।

9. पता चला है कि पुरानी सोसायटी के नवीनीकरण के लिए जनवरी 1982 में आवेदन किया गया था। सहायक रजिस्ट्रार ने सोसायटी का नवीनीकरण करने से अस्वीकार कर दिया और प्रबंधक सूर्यमणि दुबे, जिन्होंने सोसायटी के नवीनीकरण के लिए आवेदन किया था, से एक नए सोसायटी पंजीकृत कराने को कहा। इसके बाद, 26.04.1982 को “रामदेव संस्कृत महाविद्यालय बरेली, जौनपुर” के नाम से एक नए सोसायटी पंजीकृत की गई। (जिसे आगे ‘नए सोसायटी’ कहा जाएगा)। बद्री नारायण दुबे को अध्यक्ष और सूर्यमणि दुबे को प्रबंधक निर्वाचित दिखाया गया।

10. इसके बाद, नए सोसाइटी की प्रबंधन समिति के लिए बाद के चुनाव हुए। हालांकि, 1984 के चुनाव में, सभापति उपाध्याय ने आपति दर्ज कराई और पुरानी सोसाइटी के नवीनीकरण के लिए आवेदन किया, जिसे सहायक रजिस्ट्रार ने आदेश दिनांक 13.08.1986 द्वारा स्वीकार कर लिया।

3.इला श्री रामदेव संस्कृत महाविद्यालय के मुख्य प्रबंधक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 923

11. सूर्यमणि दुबे द्वारा आदेश दिनांक **13.08.1986** को चुनौती देते हुए **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 13289/1986** दायर की गई थी, जिसमें इस न्यायालय द्वारा **25.03.1988** को एक अंतरिम आदेश दिया गया था।

12. इस बीच, अभिलेखों से यह पता चलता है कि संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के कुलपति ने सभापति उपाध्याय को प्रबंधक और बद्री नारायण को अध्यक्ष के रूप में नियुक्त करने का आदेश दिनांक 02.08.1990 को पारित किया था, जिसे सूर्यमणि दुबे ने सिविल विविध रिट याचिका संख्या 20536/1990 दायर करके चुनौती दी थी। उक्त रिट याचिका को इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 12.12.1990 द्वारा अनुमति दी और कुलपति के आदेश दिनांक 02.08.1990 को इस न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया था। इसके बाद, पक्षकारों के मध्य कई मुकदमे हुए, जिनका विवरण वर्तमान मामले के तथ्यों के संदर्भ में आवश्यक नहीं है, इसलिए उनका वर्णन नहीं किया जा रहा है क्योंकि इससे निर्णय पर अनावश्यक बोझ पड़ेगा।

13. निर्धारित प्राधिकारी ने इस न्यायालय के निर्णय दिनांक 03.05.2012 के अनुसरण में आदेश दिनांक 08.12.2019 द्वारा विवाद का निस्तारण किया, जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

14. इस न्यायालय ने निर्णय दिनांक **03.05.2012** द्वारा मामले को निर्धारित प्राधिकारी को वापस भेजते हुए तीन विवादक विरचित किए थे, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है।

15. विवादक संख्या 1 पर, "बैठक बुलाने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को बैठक बुलाने और चुनाव कराने का अधिकार था"; निर्धारित प्राधिकारी ने सोसाइटी के उपनियमों के खंड 9 (6) पर विचार किया, जिसमें यह प्रावधान है कि अध्यक्ष आजीवन पद पर रहेगा और उसे अध्यक्ष नियुक्त या मनोनीत करने का अधिकार है, जो नए सोसाइटी के अध्यक्ष के रूप में आजीवन बना रहेगा। उपनियमों के खंड 9 (6) में यह भी प्रावधान है कि यदि अध्यक्ष अपने जीवनकाल में किसी को अध्यक्ष नियुक्त या मनोनीत नहीं करता है, तो सबसे बड़ा पुत्र या वरिष्ठता क्रम में आने वाला पुत्र सोसाइटी का अध्यक्ष बनेगा।

16. सोसाइटी के उपनियमों के उक्त खंड 9 (6) की व्याख्या करते हुए, निर्धारित प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष निकाला कि विजय कुमार दुबे, जो नए सोसाइटी के पूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय बद्री नारायण दुबे के पुत्र थे, अपने पिता की मृत्यु के बाद सोसाइटी के अध्यक्ष बने। अतः, सोसाइटी के प्रबंधक द्वारा बुलाई गई बैठक, जिसके अध्यक्ष विजय कुमार दुबे थे, सोसाइटी के उपनियमों के अनुसार थी। फलस्वरूप, प्राधिकारी ने यह माना कि राम चंद्र पाण्डेय द्वारा बुलाई गई बैठक, जिसके अध्यक्ष विजय कुमार दुबे थे, **05.03.2006** को चुनाव कराने के लिए बैठक बुलाने के लिए अधिकृत थी। प्राधिकारी ने आगे यह भी माना कि सोसाइटी के उपनियमों के अनुसार, मात्र सोसाइटी के अध्यक्ष का सबसे बड़ा पुत्र ही नए सोसाइटी का अध्यक्ष हो सकता है, अतः उनके द्वारा बुलाई गई बैठक विधिवत थी।

17. उन्होंने याचिकाकर्ता के संबंध में यह निष्कर्ष भी दर्ज किया कि सूर्यमणि दुबे द्वारा प्रस्तुत सूची में हरि नाथ दुबे को सोसायटी के सदस्य के रूप में नहीं दिखाया गया था। उन्होंने आगे कहा कि सूर्यमणि दुबे की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्ता संख्या 2 ने अपूर्ण साक्ष्यों के आधार पर कागजात प्रस्तुत किए थे। उन्होंने यह भी कहा कि सोसायटी के कथित प्रबंधक सूर्यमणि दुबे द्वारा प्रस्तुत रजिस्टर में हरि नाथ दुबे का नाम नहीं था, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत चुनाव मात्र सोसायटी का नाम बदलकर प्रस्तुत किया गया था और कोई चुनाव नहीं कराया गया था।

18. इस न्यायालय द्वारा विरचित विवादक संख्या 2 पर, “चुनाव में भाग लेने वाले व्यक्ति सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 15 के अनुसार वैध सदस्य हैं और चुनाव में भाग लेने के पात्र हैं”, न्यायालय ने माना कि बैठक उचित व्यक्ति द्वारा बुलाई गई थी और सदस्यों के संबंध में कोई विवाद नहीं उठाया गया था। तदनुसार, न्यायालय ने माना कि चुनाव में भाग लेने वाले सभी सदस्य सोसायटी के वैध सदस्य थे।

19. विवादक संख्या 3 पर, “आयोजित चुनाव, सोसायटी के उपनियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार ही संपन्न हुए हैं”, निर्धारित प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष दिया कि चुनाव सोसायटी के उपनियमों के अनुसार ही संपन्न हुए हैं, क्योंकि बैठक में उपस्थित सदस्यों की संख्या पूर्ण थी और चुनाव की सूचना सोसायटी के सदस्यों को चुनाव की तिथि से 15 दिन पहले ही दे दी गई थी, तथा 51 सदस्यों में से 40 सदस्यों ने चुनाव में भाग लिया था। तदनुसार, प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करते हुए प्रतिवादियों द्वारा संपन्न चुनाव दिनांक **05.03.2006** को वैध घोषित किया।

20. उपरोक्त आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि निर्धारित प्राधिकारी ने स्पष्ट रूप से गैरविधिक कार्य किया है और इस न्यायालय द्वारा निर्णय दिनांक **03.05.2012** में विरचित विवादकों का सही परिप्रेक्ष्य में निर्णय न करके अवैधता बरती है। उन्होंने आगे कहा कि निर्धारित प्राधिकारी ने विवाद का निर्णय करते समय संदर्भ से परे जाकर निर्णय लिया है, क्योंकि विवाद मात्र 2006 के चुनाव से संबंधित था, जबकि उन्होंने बाद के चुनाव पर निर्णय दिया है, जिसका अधिकार उनके पास नहीं था। इसलिए, निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश इस न्यायालय द्वारा **2007 (3) एडब्ल्यूसी 3066 (ऑल) मेहंदी हसन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के मामले में दिए गए निर्णय में निर्धारित विधि के विरुद्ध है।

21. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दिया गया निर्णय विधि और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के उचित मूल्यांकन पर आधारित तथ्यात्मक निर्णय है, इसलिए न्यायालय निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने से परहेज करे। उन्होंने प्रस्तुति दी कि चूंकि नए सोसायटी के उपनियमों के खंड 9 (6) में यह प्रावधान है कि अध्यक्ष जीवन भर अध्यक्ष पद पर बने रहेंगे, और उन्हें अपने जीवनकाल में अध्यक्ष की नियुक्ति या नामांकन करने का अधिकार है, और यदि वे अपने जीवनकाल में अध्यक्ष की नियुक्ति/नामांकन नहीं करते हैं, तो उनके सबसे बड़े पुत्र या वरिष्ठतम पुत्र सोसायटी

3.इला श्री रामदेव संस्कृत महाविद्यालय के मुख्य प्रबंधक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 925 के अध्यक्ष होंगे, इसलिए निर्धारित प्राधिकारी द्वारा विवादक संख्या 1 पर दिया गया निर्णय सही है और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्यों के उचित मूल्यांकन पर आधारित है।

22. उन्होंने आगे यह भी कहा कि विवादक संख्या 2 पर एक विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि सदस्य की वैधता के संबंध में कोई विवाद नहीं है, और इस तथ्य को देखते हुए, इस न्यायालय द्वारा विवादक संख्या 2 पर दिए गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

23. अंत में, उनका तर्क है कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दिया गया यह निष्कर्ष कि प्रतिवादी की प्रबंधन समिति का चुनाव दिनांक 05.03.2006 को सोसायटी के उपनियमों के अनुसार आयोजित किया गया था, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के उचित मूल्यांकन पर आधारित है और तथ्य का निष्कर्ष होने के नाते इस न्यायालय द्वारा इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

24. मैंने दोनों पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए विरोधी प्रस्तुतियों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया।

25. आवश्यक तथ्य ऊपर पहले ही स्पष्ट किए जा चुके हैं, इसलिए उन्हें दोहराया नहीं जा रहा है।

26. इस स्तर पर, सोसायटी के उपनियमों के खंड 9 (6) को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा:-

“9 (6) - अध्यक्ष आजीवन अपना अधिकार ग्रहण करेगा परन्तु स्वेच्छा से अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति कर सकता है। तथा उसके द्वारा मनोनीत उत्तराधिकारी को अध्यक्ष का पूरा अधिकार प्राप्त होगा। यदि अपने जीवन काल में किसी की नियुक्ति नहीं करता है तो यह क्रम वंश परम्परा के ज्येष्ठता क्रम अथवा वरिष्ठता क्रम में अनुसार माना जायेगा।”

27. उपरोक्त खंड के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इसमें यह प्रावधान है कि सोसायटी के अध्यक्ष अपने जीवनकाल तक अध्यक्ष पद पर बने रहेंगे। उक्त खंड अध्यक्ष को किसी भी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त या मनोनीत करने का अधिकार भी प्रदान करता है, जो सोसायटी का अध्यक्ष बनेगा और उसे अध्यक्ष के सभी अधिकार प्राप्त होंगे। यदि वह अपने जीवनकाल में किसी को अध्यक्ष नियुक्त नहीं करता है, तो उसका सबसे बड़ा पुत्र या वरिष्ठतम पुत्र सोसायटी का अध्यक्ष होगा।

28. अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि पहले पक्षकारों के मध्य विवाद उत्पन्न हुआ था, और कुलपति द्वारा सभापति उपाध्याय और बट्टी नारायण के पक्ष में एक आदेश दिनांक 02.08.1990 पारित किया था, जिसे याचिकाकर्ता ने सिविल विविध रिट याचिका संख्या 20536/1990 दायर करके चुनौती दी थी, जिसे इस न्यायालय

ने आदेश दिनांक 12.12.1990 द्वारा अनुमति दी और आदेश दिनांक 02.08.1990 को रद्द कर दिया था। इस रिट याचिका को अनुमति देते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

“दो व्यक्तियों द्वारा आम सभा की प्रबंधन समिति का गठन नहीं किया जा सकता। सोसाइटी के आजीवन अध्यक्ष और प्रबंधन को नियुक्त करना भी उचित नहीं है। आक्षेपित आदेश में शामिल किए गए समझौते की शर्तें और नियम अवैध और सोसाइटी के अधिनियम, कानून और उपनियमों के विपरीत होने के कारण मान्य नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कुलपति ने समझौते की शर्तों और नियमों की वैधता की जाँच किए बिना ही यांत्रिक रूप से आक्षेपित आदेश पारित कर दिया है। अतः कुलपति का आदेश रद्द किया जाना चाहिए।”

29. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सिविल विविध रिट याचिका संख्या 20536/1990 में इस न्यायालय के निर्णय में उल्लिखित टिप्पणी पर विशेष बल देते हुए तर्क दिया है कि एक बार जब इस न्यायालय ने यह माना है कि प्रबंधन/सोसाइटी का आजीवन अध्यक्ष बनाना उचित नहीं है और आक्षेपित आदेश का हिस्सा बनाए गए समझौते की शर्तें और नियम अवैध और सोसाइटी के अधिनियम, कानून और उपनियमों के साथ असंगत हैं, इसलिए सिविल विविध रिट याचिका संख्या 20536/1990 में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पक्षकारों पर बाध्यकारी है और पक्षकार इस निर्णय से पीछे नहीं हट सकते। इस तथ्य को देखते हुए, निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दिया गया यह निष्कर्ष कि विजय कुमार दुबे अपने पिता बद्री नारायण की मृत्यु के बाद अध्यक्ष बने, अवैध है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि सिविल विविध रिट याचिका संख्या 20536/1990 में दिए गए निर्णय दिनांक 12.12.1990 में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी ने सोसाइटी के उपनियमों के खंड 9 (6) को वस्तुतः अमान्य कर दिया है। इस संबंध में, उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के 1998 (8) एससी 120 वी.सी. चरती बनाम हुसैन न्हानू जमादार के निर्णय पर भरोसा किया है। निर्णय का पैराग्राफ 9 नीचे दिया गया है:-

“प्रतिवादी ने प्रस्तुत किया कि कृषि भूमि न्यायाधिकरण द्वारा धारा 32जी के अंतर्गत कार्यवाही को समाप्त करना उचित नहीं था। इसका 31.5.1961 का आदेश विधिवत गलत है। उन्होंने बॉम्बे उच्च न्यायालय के नागो दत्त महाजन बनाम श्रीमती यशोदाबाई हुना महाजन (1976) 78 बीएलआर 427 में प्रतिवेदित के मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया, जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 31 के अंतर्गत, जमींदारों के पास भूमि वापसी के दो प्रावधानों में से किसी एक का विकल्प है, अर्थात् धारा 31(1) या धारा 31(3)। कोई भी जमींदार दोनों प्रावधानों का लाभ नहीं उठा सकता। अतः प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता ने धारा 31(1) के अंतर्गत अपना विकल्प चुन लिया था, इसलिए वह धारा 32जी के अंतर्गत कार्यवाही में धारा 31(3) के अंतर्गत नाबालिग होने की अपनी अक्षमता का हवाला नहीं दे सकता था। हालांकि, कृषि भूमि न्यायाधिकरण के 31.5.1961 के आदेश को प्रतिवादी द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी। 31.5.1961 का आदेश अंतिम हो चुका है और कृषि भूमि न्यायाधिकरण द्वारा अपीलकर्ता और प्रतिवादी के बीच दिया गया निर्णय दोनों पक्षकारों पर बाध्यकारी है। कोई निर्णय मात्र गलत होने से अमान्य नहीं हो जाता। जब तक इसे रद्द नहीं किया जाता, यह पक्षकारों पर बाध्यकारी बना रहेगा। इसलिए, 31.5.1961 के निर्णय के पक्षकारों पर पड़ने वाले प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। वर्तमान मामले में, चूंकि धारा 32जी

3.इला श्री रामदेव संस्कृत महाविद्यालय के मुख्य प्रबंधक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 927

के अंतर्गत कार्यवाही रद्द होने के कारण किरायेदार अपनी खरीद पूरी नहीं कर सका, इसलिए वह अब यह तर्क नहीं दे सकता कि निर्णय का कोई विधिक प्रभाव नहीं है या धारा 32जी के अंतर्गत कार्यवाही पूरी की जानी चाहिए थी और इसलिए उसे क्रेता माना जाना चाहिए।”

30. न्यायालय की राय में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का उपरोक्त तर्क निराधार है क्योंकि उपनियमों के खंड 9 (6) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सोसायटी का अध्यक्ष अपने जीवनकाल तक पद पर बना रहेगा और वह किसी ऐसे व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त या मनोनीत करेगा जो सोसायटी के अध्यक्ष के सभी अधिकार का निर्वहन करने के लिए अधिकृत हो, और यदि अध्यक्ष द्वारा अपने जीवनकाल में कोई नामांकन/नियुक्ति नहीं की गई है, तो उसका सबसे बड़ा पुत्र या वरिष्ठतम पुत्र सोसायटी का अध्यक्ष बनेगा।

31. उपनियमों का खंड 9 (6), जिस पर प्रतिवादी का दावा आधारित है, **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 20536/1990** में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। न्यायालय के समक्ष यह विवादक नहीं था कि क्या सोसायटी के उपनियमों का खंड 9 (6) विश्वविद्यालय के अधिनियम/विधान के विरुद्ध है, और इसलिए, इसे निरस्त या अमान्य घोषित किया जाना चाहिए।

32. **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 20536/1990** में विवाद मात्र कुलपति द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.08.1990 की वैधता के संबंध में था, जो पक्षकारों के मध्य हुए समझौते के आधार पर पारित किया गया था और कुलपति ने पक्षकारों के मध्य हुए समझौते को ध्यान में रखते हुए आदेश पारित किया था। इस न्यायालय ने इस संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया कि क्या सोसायटी के उपनियमों का खंड 9 (6) किसी कानून या विधि के किसी प्रावधान के विरुद्ध है।

33. चूंकि उपर्युक्त विवाद **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 20536/1990** में न्यायालय के समक्ष नहीं था, इसलिए **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 20536/1990** में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में दिया गया निष्कर्ष पक्षकारों पर बाध्यकारी नहीं होगा, विशेष रूप से तब जब उपनियमों के खंड 9 (6) में स्पष्ट रूप से यह प्रावधान है कि सोसायटी का अध्यक्ष आजीवन सोसायटी का अध्यक्ष रहेगा और याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में इस खंड की वैधता को चुनौती नहीं दी है। इस तथ्य को देखते हुए, निर्धारित प्राधिकारी द्वारा विवादक संख्या 1 पर दिया गया निष्कर्ष कि सोसायटी का प्रबंधक राम चंद्र पाण्डेय, जिसके अध्यक्ष विजय कुमार दुबे थे, को **05.03.2006** को होने वाले चुनाव के लिए बैठक बुलाने का अधिकार था, इस मामले में इस न्यायालय द्वारा किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

34. याचिकाकर्ता के दावे के संबंध में निर्धारित प्राधिकारी द्वारा विवादक संख्या 1 पर दिए गए निष्कर्ष के अनुसार, याचिकाकर्ता ने सोसायटी का नाम बदलकर चुनाव प्रस्तुत किया है और सूर्यमणि दुबे द्वारा प्रस्तुत अभिलेख में उसका नाम नहीं है, यह एक तथ्यात्मक निष्कर्ष है, जिसमें इस न्यायालय द्वारा तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता जब तक यह सिद्ध न हो जाए कि यह निष्कर्ष गलत है या अभिलेख के विरुद्ध है। इस

तथ्य को देखते हुए, न्यायालय को विवादक संख्या 1 के निर्णय में निर्धारित प्राधिकारी द्वारा कोई त्रुटि नहीं पाई गई।

35. जहां तक विवादक संख्या 2 का संबंध है, निर्धारित प्राधिकारी ने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि सोसायटी के सदस्यों के संबंध में कोई विवाद नहीं उठाया गया है, तदनुसार, उसने यह निष्कर्ष दिया है कि चुनाव में भाग लेने वाले सभी व्यक्ति सोसायटी के वैध सदस्य हैं। विवादक संख्या 2 पर दिया गया यह निष्कर्ष भी एक तथ्यात्मक निष्कर्ष है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस न्यायालय द्वारा इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

36. जहां तक विवादक संख्या 3 का संबंध है, निर्धारित प्राधिकारी ने स्पष्ट रूप से पाया है कि अभिलेखों से पता चलता है कि चुनाव कराने के निर्णय हेतु बैठक बुलाने के लिए आवश्यक कोरम पूर्ण था। प्राधिकारी ने यह भी कहा कि समिति के सभी सदस्यों को चुनाव से 15 दिन पहले पूर्व सूचना दी गई थी, और 51 सदस्यों में से 40 सदस्यों ने चुनाव में भाग लिया था। निर्धारित प्राधिकारी द्वारा विवादक संख्या 3 पर दिया गया निर्णय अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों और सामग्रियों के उचित मूल्यांकन पर आधारित है।

37. अब, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क के संबंध में कि निर्धारित प्राधिकारी ने बाद के चुनाव के संबंध में विवाद में हस्तक्षेप करने में विधिगत त्रुटि की है, क्योंकि उन्हें 2006 के चुनाव का विवाद संदर्भित किया गया था, न्यायालय को उक्त तर्क में कोई सार नहीं मिलता है, क्योंकि निर्धारित प्राधिकारी ने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष दर्ज करने के बाद कि प्रतिवादी का **05.03.2006** का चुनाव वैध और विधि के अनुसार है, यह माना है कि प्रबंधन समिति का बाद का चुनाव भी विधि के अनुसार हुआ है। अतः, न्यायालय पाता है कि निर्धारित प्राधिकारी ने संदर्भ से आगे नहीं बढ़ा है, क्योंकि उन्होंने 2006 के चुनाव के संबंध में स्पष्ट रूप से निष्कर्ष दर्ज किया है, और इस तथ्य को देखते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस न्यायालय के **2007 (3) एडब्ल्यूसी 3066 (ऑल) मेहंदी हसन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के निर्णय पर भरोसा जताया है, जो वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

38. चूंकि इस न्यायालय ने उपरोक्त रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि निर्धारित प्राधिकारी ने निर्णय दिनांक **03.05.2012** में इस न्यायालय द्वारा विरचित विवादकों पर निष्कर्ष दर्ज करने में कोई अवैधता नहीं की है, इसलिए यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि रिट याचिका में गुण-दोष की कमी है और इसे निरस्त किया जाना चाहिए।

39. परिणामस्वरूप, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं के साथ रिट याचिका को *निरस्त* किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 763

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित

रिट सी संख्या 8253/2022

मैसर्स मनोज पेट्रोलियम एवं अन्य

.....याचीगण

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री मनीष गुप्ता, श्री पुनीत कुमार उपाध्याय, श्री अरुण कुमार गुप्ता (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

श्री अरविंद कुमार गोस्वामी, श्री आनंद तिवारी, श्री यश पाडिया

ए. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 12 - राज्य - यह निर्धारित करने के लिए कि कोई प्राधिकारी/निकाय अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' के अंतर्गत आता है या नहीं, सरकार के वित्तीय, कार्यात्मक और प्रशासनिक प्रभुत्व और/या नियंत्रण के संचयी तथ्यों के आधार पर निर्णय लेना होगा। यदि ऐसा नियंत्रण तथ्यात्मक रूप से पाया जाता है, तो उस निकाय को अनुच्छेद 12 के अंतर्गत 'राज्य' माना जाएगा। (पैरा 17)

बी. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - परमादेश रिट - सार्वजनिक कर्तव्य - परमादेश रिट जारी करने का दायरा मूलतः सार्वजनिक कर्तव्य के प्रवर्तन तक सीमित है। न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि कर्तव्य की प्रकृति सार्वजनिक कर्तव्य की सीमा में आती है या नहीं। यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि संबंधित निकाय/प्राधिकारी जनता के प्रति ऐसा कर्तव्य या दायित्व रखता है जिसमें सार्वजनिक विधि का तत्व शामिल हो। विशुद्ध रूप से निजी विधि से उत्पन्न अधिकार को रिट क्षेत्राधिकार की सहायता से लागू नहीं किया जा सकता, भले ही वह संस्था सार्वजनिक कर्तव्यों और/या सार्वजनिक कार्यों का निर्वहन कर रही हो। व्यक्तिगत गलतियाँ या पारस्परिक अनुबंधों का उल्लंघन, जिनमें सार्वजनिक विधि का कोई अभिन्न अंग न हो, अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका के माध्यम से सुधारा नहीं जा सकता। (पैरा 12)

सी. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट याचिका की पोषणीयता - निजी संविदात्मक विवाद - फ्रैंचाइज़ समझौता - पेट्रोलियम उत्पादों की बिक्री के व्यवसाय में लगी एक साझेदारी फर्म (याचिकाकर्ता संख्या 1) ने अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक रिट याचिका दायर की गई, जिसमें कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत पंजीकृत एक निजी कंपनी, नायरा एनर्जी लिमिटेड (प्रतिवादी संख्या 3) द्वारा फ्रैंचाइज़ समझौते की समाप्ति को चुनौती दी गई थी। फ्रैंचाइज़ समझौता पूरी तरह से पेट्रोलियम और डीजल उत्पादों की बिक्री से संबंधित वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए किया गया था। निरीक्षण करने पर, याचिकाकर्ता के खुदरा आउटलेट से एकत्र किए गए नमूने अपेक्षित विशिष्टताओं के अनुरूप नहीं पाए गए, जिसके कारण समझौता समाप्त कर दिया गया। *अभिनिर्धारित किया* : विवाद पूरी तरह से दो निजी पक्षों के बीच संविदात्मक दायित्वों से संबंधित है। याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादी संख्या 3 के बीच संबंध निजी विधि द्वारा शासित है, न कि सार्वजनिक विधि द्वारा। यद्यपि पेट्रोलियम उत्पाद विनियमित वस्तुएं हैं, फिर भी प्रतिवादी कंपनी संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में कोई राज्य या सार्वजनिक प्राधिकारी नहीं है, क्योंकि यह किसी विधि द्वारा सृजित नहीं है और न ही सरकार के व्यापक वित्तीय या प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन है। सार्वजनिक क्षेत्र की तेल कंपनियों के विपरीत, प्रतिवादी कंपनी एक स्वतंत्र निजी इकाई है। संविदा की शर्तों के उल्लंघन के कारण फ्रैंचाइजी समझौते को समाप्त करने में सार्वजनिक कर्तव्य का कोई तत्व शामिल नहीं है। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 3 के विरुद्ध कोई रिट याचिका दायर नहीं की जा सकती और रिट याचिका को पोषणीय नहीं माना गया। (पैरा 20-23)

निरस्त। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ द्वारा प्रदत्त)

1. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दायर एक रिट याचिका है, जिसमें याचिकाकर्ताओं ने 21 अगस्त, 2021 की प्रयोगशाला परीक्षण रिपोर्ट के आधार पर नायरा एनर्जी लिमिटेड (जिसे आगे 'प्रतिवादी संख्या 3' कहा गया है) द्वारा पारित समापन आदेश दिनांक 28 दिसंबर, 2021 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट की मांग की है। याचिकाकर्ताओं ने आगे प्रतिवादी संख्या 1 और 2 को याचिकाकर्ताओं की शिकायत दिनांक 31 जनवरी, 2022 और अनुस्मारक दिनांक 4 मार्च, 2022 पर जांच करने का आदेश देने के लिए परमादेश रिट की भी मांग की है।

तथ्य

2. इस रिट याचिका को जन्म देने वाली तथ्यात्मक पृष्ठभूमि का विवरण नीचे दिया गया है:

क. याचिकाकर्ता संख्या 1 एक साझेदारी फर्म है, जो श्रीमती संगीता पाठक (साझेदारी फर्म के साझेदारों में से एक) और श्रीमती सोनम सिंघल (इसके बाद 'याचिकाकर्ता संख्या 2' के रूप में संदर्भित) के बीच साझेदारी विलेख के माध्यम से पंजीकृत दिनांक 2 अक्टूबर, 2018 को हुआ, जिसका गठन पेट्रोलियम उत्पादों (तेल), गीस, आसुत जल और अन्य उत्पादों की बिक्री का व्यवसाय करने के उद्देश्य से किया गया।

ख. कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत पंजीकृत कंपनी नायरा एनर्जी लिमिटेड, जिसे मूल रूप से एस्सार ऑयल लिमिटेड के नाम से जाना जाता था, ने भारत सरकार के पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय (जिसे आगे 'प्रतिवादी संख्या 1' कहा गया है) से याचिकाकर्ता संख्या 1 जैसे निजी व्यक्तियों/फर्मों को पेट्रोलियम और डीजल उत्पादों जैसी आवश्यक वस्तुओं की बिक्री और खरीद के लिए फ्रैंचाइजी वितरित करने का प्राधिकारी प्राप्त कर लिया है।

ग. याचिकाकर्ता संख्या 1 ने पेट्रोलियम और डीजल उत्पादों के खुदरा आउटलेट के लिए आवेदन किया और परिणामस्वरूप प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता संख्या 1 को 5 नवंबर, 2019 को मोटर स्पीड पेट्रोल और हाई स्पीड डीजल लुब्रिकेंट्स की खुदरा बिक्री के लिए नियुक्ति पत्र जारी किया।

घ. उपर्युक्त नियुक्ति पत्र के अनुसरण में, याचिकाकर्ता संख्या 1 और प्रतिवादी संख्या 3 के बीच पेट्रोल और हाई-स्पीड डीजल लुब्रिकेंट्स की आपूर्ति के लिए एक फ्रैंचाइजी समझौता दिनांक 6 जनवरी, 2020 निष्पादित किया गया, जो याचिकाकर्ता संख्या 1 के खुदरा आउटलेट को दिया जाना था, जो खसरा संख्या 232, गांव नरसैना, तहसील सायना, जिला बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश में स्थित है।

इ 18 अगस्त, 2021 को प्रतिवादी संख्या 3 के अधिकारियों ने याचिकाकर्ता संख्या 1 के उक्त खुदरा स्टोर का निरीक्षण करने और वहां से उत्पादों के नमूने एकत्र करने के लिए दौरा किया। इन उत्पादों के नमूनों को आगे की जांच के लिए 18 अगस्त, 2021 को भारत पेट्रोलियम निगम लिमिटेड (जिसे आगे 'बीपीसीएल' कहा गया है) की गुणवत्ता आश्वासन प्रयोगशाला, बिजवासन, नई दिल्ली भेजा गया। प्राप्त नमूनों में से, बीपीसीएल ने 21 अगस्त, 2021 को एक रिपोर्ट तैयार की, जिसमें कई अनियमितताओं की ओर इशारा किया गया और प्रतिवादी संख्या 3 को सूचित किया गया कि भेजे गए नमूने अपेक्षित विनिर्देशों को पूरा करने में विफल रहे हैं।

च. उपरोक्त परीक्षण रिपोर्ट के आधार पर, प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता संख्या 1 को कारण बताओ नोटिस दिनांक 26 अगस्त, 2021 जारी किया, जिसमें उसे नोटिस प्राप्त होने के पंद्रह दिनों के भीतर यह स्पष्ट करने का निर्देश दिया गया कि फ्रैंचाइज़ समझौते दिनांक 6 जनवरी, 2020 को उक्त रिपोर्ट में पाई गई विभिन्न अनियमितताओं के कारण क्यों समाप्त नहीं किया जाना चाहिए, जो फ्रैंचाइज़ समझौते दिनांक 6 जनवरी, 2020 के नियमों और शर्तों का उल्लंघन करती हैं।

छ. याचिकाकर्ता संख्या 1 ने 9 सितंबर, 2021 को उपरोक्त कारण बताओ नोटिस का विस्तृत जवाब दिया, जिसमें कहा गया है कि आउटलेट से लिए गए उत्पादों के नमूनों में दो प्रमुख अनियमितताएं पाई गईं: (क) नोजल द्वारा पेट्रोल और डीजल की आपूर्ति में गड़बड़ी, जिसके संबंध में 6 अगस्त, 2021 को प्रतिवादी कंपनी के निरीक्षण अधिकारी से शिकायत की गई थी, जिसका प्रतिवादी कंपनी द्वारा कभी समाधान नहीं किया गया; और (ख) एकत्रित नमूनों पर सील संख्या अंकित नहीं थी, जिससे परीक्षण रिपोर्ट की सत्यता पर संदेह उत्पन्न होता है, क्योंकि याचिकाकर्ताओं के आउटलेट से लिए गए नमूनों के लिए परीक्षण रिपोर्ट तैयार नहीं की गई होगी। हालांकि, प्रतिवादी संख्या 3 ने उत्तरों को असंतोषजनक पाया और तदनुसार आदेश दिनांक 28 दिसंबर, 2021 द्वारा उपरोक्त फ्रैंचाइजी समझौते को समाप्त कर दिया।

ज. संविदा समाप्त होने से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता संख्या 1 ने 31 जनवरी, 2022 को केंद्रीय सतर्कता आयोग (जिसे आगे 'सीवीसी' कहा गया है) से संपर्क किया और प्रतिवादी संख्या 3 के विरुद्ध

अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने और याचिकाकर्ता संख्या 1 और प्रतिवादी संख्या 3 के बीच 6 जनवरी, 2020 को निष्पादित फ्रेंचाइजी समझौते को अवैध और मनमाने ढंग से समाप्त करने की शिकायत दर्ज की।

झ. चूंकि सीवीसी से कोई प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं हुई, इसलिए याचिकाकर्ता संख्या 1 ने सीवीसी के समक्ष रखी गई अपनी शिकायतों के निवारण के लिए प्रतिवादी संख्या 1 को 4 मार्च, 2022 को एक अनुस्मारक भेजा।

ज. उपर्युक्त अधिकारियों की निष्क्रियता के कारण, याचिकाकर्ता संख्या 1 ने इस याचिका में मांगी गई उपरोक्त अनुतोषों की मांग करते हुए इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ है।

विवादयक

3. प्रारंभ में ही प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है। उनका तर्क है कि इस रिट याचिका में मुख्य विवाद याचिकाकर्ता संख्या 1 और प्रतिवादी संख्या 3 के बीच है और इस न्यायालय द्वारा अपने असाधारण रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत इस पर निर्णय नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि प्रतिवादी संख्या 3 भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अनुसार 'राज्य' नहीं है। उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति के आलोक में, हमारा मत है कि मामले की गुण-दोष पर विचार करने से पूर्व हमें सर्वप्रथम इस पर विचार करना चाहिए।

याचिकाकर्ताओं के तर्क

4. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अरुण कुमार गुप्ता ने रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में निम्नलिखित दलीलें दीं:

क. भारत सरकार का पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय, हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड (जिसे आगे 'एचपीसीएल' कहा गया है) और इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड (जिसे आगे 'आईओसीएल' कहा गया है) जैसी एजेंसियों को प्रतिनिधि नियुक्त करता है, जिनमें प्रतिवादी संख्या 3 जैसी अन्य एजेंसियां भी शामिल हैं, इन एजेंसियों को पेट्रोलियम उत्पादों जैसी आवश्यक वस्तुओं की बिक्री का अधिकार दिया जाता है, क्योंकि खुले बाजार में इनकी बिक्री प्रतिबंधित है। अतः, प्रतिवादी संख्या 3, प्रतिवादी संख्या 1 का 'प्रतिनिधि' होने के नाते, केंद्र सरकार के अधीन आता है और अंततः प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से जनहित में कार्य करता है। अतः, प्रतिवादी संख्या 3 भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत 'राज्य' की परिभाषा में आता है।

ख. प्रतिवादी संख्या 3 'राज्य का एक साधन' है। ब्लैक लॉ डिक्शनरी (सातवां संस्करण) में 'इंस्ट्रुमेंटैलिटी' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "एक साधन या प्रतिनिधि जिसके माध्यम से किसी अन्य संस्था का कार्य पूरा किया जाता है, जैसे कि शासकीय निकाय की कोई शाखा" और 'प्रतिनिधि' का अर्थ है, "स्पष्ट या निहित संविदा या विधि द्वारा निर्मित एक विश्वासपूर्ण संबंध, जिसमें एक पक्ष (एजेंट) दूसरे पक्ष (प्रिंसिपल) की ओर से कार्य कर सकता है और दूसरे पक्ष को शब्दों या कार्यों द्वारा बाध्य कर सकता है"। प्रतिवादी संख्या 3, एक अधिकृत प्रतिनिधि के रूप में, प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से निजी व्यक्तियों/कंपनी को पेट्रोलियम

उत्पादों की बिक्री के लिए खुदरा दुकानों की फ्रेंचाइजी वितरित करता है, जिसके माध्यम से राज्य के कार्यों को पूरा किया जाता है, और इसलिए, यह 'राज्य' की एक इन्स्ट्रुमेंटैलिटी और प्रतिनिधि है।

ग. भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 में प्रविष्टि 52 और 53 के अंतर्गत उद्योगों को नियंत्रित करने का अधिकार केंद्र सरकार को दिया गया है। इसलिए, संसद ने देश में पेट्रोलियम उद्योग को विनियमित करने के लिए पेट्रोलियम अधिनियम, 1934 बनाया है। प्रविष्टि 52 और 53 दोनों को एक साथ पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि संविधान ने केंद्र सरकार को न केवल पेट्रोलियम उद्योग को विनियमित करने का, बल्कि उसका नियंत्रण अपने हाथ में लेने का भी अधिकार दिया है। पेट्रोलियम उत्पाद आवश्यक वस्तुओं की श्रेणी में आते हैं और अत्यंत ज्वलनशील होते हैं, इसलिए पेट्रोलियम अधिनियम, 1934 के अंतर्गत जारी लाइसेंस के अतिरिक्त कोई भी निजी व्यक्ति/कंपनी पेट्रोलियम उत्पादों की बिक्री, भंडारण या परिवहन नहीं कर सकती है। यह भी निवेदन किया जाता है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 जैसी निगमों के परिसरों की तलाशी लेने का अधिकार केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियों के पास पेट्रोलियम अधिनियम, 1934 की धारा 26 के अंतर्गत है और निरीक्षण/नमूना लेने का अधिकार इसी अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत है। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 3 केंद्र सरकार के नियंत्रण में कार्य कर रहा है, जिससे यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन हो जाता है।

घ. प्रतिवादी संख्या 3 का कार्य एचपीसीएल, बीपीसीएल और आईओसीएल जैसी अन्य तेल कंपनियों के समान है, जो प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से पेट्रोलियम और संबद्ध उत्पादों की बिक्री के लिए खुदरा दुकानों की फ्रेंचाइजी वितरित करने का काम करती हैं। ये अन्य तेल कंपनियां भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत 'राज्य' की परिभाषा में आती हैं। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 3 भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अनुसार एक 'राज्य' है, जिससे यह रिट क्षेत्राधिकार के अधीन है।

इ तर्कों को पुष्ट करने के लिए, सर्वोच्च न्यायालय के **अजय हासिया बनाम खालिद मुजीब सेहरावर्दी (1981) 1 एससीसी 722** में प्रतिवेदित के मामले में दिए गए फैसले पर भरोसा किया, जिसमें यह निर्धारित करने के लिए छः प्रमुख परीक्षण तैयार किए गए थे कि क्या किसी निगम को सरकार का साधन या प्रतिनिधि कहा जा सकता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि ये परीक्षण सिद्धांतों का एक कठोर समूह नहीं हैं, जिसके अनुसार यदि कोई निकाय इनमें से किसी एक के अंतर्गत आता है, तो उसे स्वतः ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' माना जाना चाहिए। उपर्युक्त फैसले से जोर दिया गया पांचवां परीक्षण इस प्रकार है:

"5. यदि निगम के कार्य सार्वजनिक महत्व के हैं और सरकारी कार्यों से निकटता से संबंधित हैं, तो निगम को सरकार के एक साधन या प्रतिनिधि के रूप में वर्गीकृत करने में यह एक प्रासंगिक कारक होगा।"

प्रतिवादी संख्या 3, पेट्रोलियम और संबद्ध उत्पादों की बिक्री के माध्यम से सार्वजनिक महत्व के कार्यों का निर्वहन कर रहा था, क्योंकि पेट्रोलियम उद्योग से निपटने का अधिकार मात्र केंद्र सरकार के पास है। **अजय हासिया (उपरोक्त)** में निर्धारित मानदंडों में से एक के अंतर्गत आने से प्रतिवादी संख्या 3 स्पष्ट रूप से सरकार का एक साधन या प्रतिनिधि बन जाता है।

च. इन तर्कों को पुष्ट करने के लिए **प्रदीप कुमार विश्वास बनाम इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ केमिकल बायोलॉजी एवं अन्य (2002) 5 एससीसी 111** में प्रतिवेदित मामले पर और अधिक भरोसा किया गया

है, जिसमें प्रारंभ में 'राज्य' की परिभाषा को व्यापक माना गया था और इसे उन प्राधिकारियों तक सीमित रखा गया था जिन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 में उल्लिखित प्राधिकारियों के साथ 'समान प्रकृति का' / 'एजुसडेम जेनेरिस' के रूप में पढ़ा जा सकता है। बाद में, 'राज्य' की परिभाषा को इसके विरुद्ध उपलब्ध उपायों के संदर्भ में स्थापित किया गया। इस प्रकार, वैधानिक शक्तियों के अंतर्गत ऐसे निगम द्वारा बनाए गए नियमों सहित एक वैधानिक निगम को 'राज्य' माना गया, क्योंकि सार्वजनिक कर्तव्य उन तक सीमित थे जो कानून द्वारा सृजित किए गए थे।

छ. मामले का एक अन्य पहलू यह है कि वैकल्पिक उपाय रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में पूर्ण रूप से बाधक नहीं है, इसलिए वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर रिट याचिका स्वीकार्य है। इसके लिए सर्वोच्च न्यायालय के **राम एण्ड श्याम कंपनी बनाम हरियाणा राज्य (1985) 3 एससीसी 267** में प्रतिवेदित के मामले में दिए गए फैसले पर भरोसा किया गया है।

प्रतिवादियों के तर्क

5. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका की पोषणीयता को चुनौती देते हुए निम्नलिखित प्रस्तुति दी हैं:

क. याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि प्रतिवादी संख्या 3, प्रतिवादी संख्या 1 का अधिकृत प्रतिनिधि है, जो पेट्रोलियम उत्पादों की खुदरा बिक्री करता है। आईओसीएल, बीपीसीएल और एचपीसीएल जैसी अन्य पेट्रोलियम निगमों के विपरीत, जो इसी क्षेत्र में कार्यरत हैं, प्रतिवादी संख्या 3 का प्रशासनिक और वित्तीय नियंत्रण पूरी तरह से स्वतंत्र है और केंद्र सरकार का प्रतिवादी संख्या 3 के प्रबंधन या वित्त पर कोई नियंत्रण नहीं है। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 3 भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अनुसार 'राज्य' की परिभाषा के दायरे में नहीं आता है।

ख. प्रतिवादी संख्या 3, कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत निगमित एक निजी स्वामित्व वाली और नियंत्रित इकाई है, जिसे पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय द्वारा पेट्रोलियम उत्पादों की खुदरा बिक्री की फ्रेंचाइजी वितरित करने का अधिकार प्राप्त है। परिणामस्वरूप, उक्त उद्देश्य के लिए याचिकाकर्ता संख्या 1 और प्रतिवादी संख्या 3 के बीच एक फ्रेंचाइजी समझौता दिनांक 6 जनवरी, 2020 को किया गया। यह फ्रेंचाइजी समझौता स्पष्ट रूप से और मूल रूप से निजी पक्षों के बीच किया गया एक निजी संविदा है, जो सरकारी नियंत्रण से मुक्त है।

ग. चूंकि प्रतिवादी संख्या 3 एक लाभ कमाने वाली संस्था है और पेट्रोलियम उत्पादों की बिक्री का उक्त व्यवसाय किसी जन कल्याण के उद्देश्य से नहीं किया जाता है, बल्कि पूरी तरह से प्रतिवादी संख्या 3 के लाभ और विकास के उद्देश्य से किया जाता है, इसलिए यह मात्र प्रतिवादी संख्या 1 के साथ हुए समझौते के अनुसार अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है और उसके निर्देशों का पालन कर रहा है। इसे किसी भी तरह से जनहित में किए गए कार्यों का निर्वहन नहीं माना जा सकता।

घ. चूंकि यह एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है, इसलिए याचिकाकर्ता संख्या 1 और प्रतिवादी संख्या 3 के बीच संविदात्मक संबंध में सार्वजनिक विधि का कोई तत्व शामिल नहीं है।

इ याचिकाकर्ताओं के पास एक वैकल्पिक और प्रभावी उपाय उपलब्ध था, और उक्त उपाय का लाभ उठाए बिना उन्होंने रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत इस न्यायालय का रुख किया है, जो विधि का घोर उल्लंघन है। फ्रैंचाइज समझौते की खंड 20 में शिकायत निवारण प्रतिष्ठान का प्रावधान है और उसी की खंड 21 में एक मध्यस्थता खंड है जो पक्षों के बीच समझौते का अभिन्न अंग है।

विश्लेषण

6. इस न्यायालय के समक्ष निर्धारण के लिए सीमित प्रश्न यह है कि क्या प्रतिवादी संख्या 3, अर्थात् नायरा एनर्जी लिमिटेड, भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के दायरे में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित और स्पष्ट की गई 'राज्य' की परिभाषा के अंतर्गत आता है।

7. भारत के संविधान का अनुच्छेद 12 मौलिक अधिकारों को लागू करने के उद्देश्य से 'राज्य' शब्द को परिभाषित करता है। मौलिक अधिकार मुख्य रूप से निजी व्यक्तियों या निकायों के बजाय 'राज्य' और उसके संस्थानों के विरुद्ध लागू किए जा सकते हैं। अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिकाएँ मात्र उन्हीं निकायों/व्यक्तियों के विरुद्ध दायर की जा सकती हैं जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत आते हैं।

8. भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत 'राज्य' शब्द की उक्त परिभाषा दी गई है, जो नीचे उद्धृत है:

"इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, "राज्य" के अंतर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक राज्य की सरकार और विधान-मंडल तथा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी हैं।"

9. उपरोक्त परिभाषा के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि 'राज्य' शब्द में निम्नलिखित शामिल हैं:

- (i) भारत सरकार और संसद
- (ii) प्रत्येक राज्य की सरकार और विधानमंडल,
- (iii) सभी स्थानीय प्राधिकारी,
- (iv) भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन अन्य प्राधिकारी।

10. सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 3(31) में 'स्थानीय प्राधिकारी' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: *"स्थानीय प्राधिकारी" से नगरपालिका समिति, जिला बोर्ड, पत्तन आयुक्तों का निकाय या अन्य प्राधिकारी जो नगरपालिका या स्थानीय निधि के नियंत्रण या प्रबन्ध का वैध रूप से हकदार हैं या जिसका नियंत्रण या प्रबन्ध सरकार द्वारा न्यस्त है, अभिप्रेत होगा।* हालांकि, 'अन्य प्राधिकारी' शब्द को किसी भी विधि में परिभाषित नहीं किया गया है, इसलिए इस शब्द की व्याख्या में काफी कठिनाई आई है और वर्षों से इसकी परिभाषा पर न्यायिक मत में कई परिवर्तन हुए हैं।

11. इस प्रश्न पर विचार करते समय, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनुच्छेद 12 के अंतर्गत 'राज्य' की परिभाषा में शामिल होने के कारण 'अन्य प्राधिकारियों' अभिव्यक्ति के अंतर्गत आने वाला प्राधिकारी रिट क्षेत्राधिकार के अधीन होगा।

12. **अजय हासिया (उपरोक्त)** के चर्चित मामले में, मुख्य न्यायाधीश वाई.वी. चंद्रचूड़ की अध्यक्षता में सर्वोच्च न्यायालय की पांच-न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने **आर.डी. शेट्टी बनाम भारत की अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकारी (1979) 3 एससीसी 489** में प्रतिवेदित के मामले पर विचार किया और यह निर्धारित करने के लिए छः कारकों का परीक्षण निर्धारित किया कि कोई संस्था सरकार की साधन या प्रतिनिधि है या नहीं। ये परीक्षण इस प्रकार हैं:

- (i) यदि संस्था की संपूर्ण शेयर पूंजी सरकार के पास है;
- (ii) यदि सरकार द्वारा दी गई वित्तीय सहायता इतनी महत्वपूर्ण है कि वह संस्था के लगभग संपूर्ण व्यय को पूरा करती है;
- (iii) यदि संस्था को राज्य द्वारा प्रदत्त या संरक्षित एकाधिकार का दर्जा प्राप्त है;
- (iv) यदि राज्य का नियंत्रण व्यापक और गहन हो;
- (v) यदि शरीर के कार्य सार्वजनिक महत्व के हों और सरकारी कार्यों से निकटता से संबंधित हों;
- (vi) सरकारी विभाग का निगम को हस्तांतरण।

(जोर दिया गया)

13. **अजय हासिया (उपरोक्त)** मामले में दिए गए फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ को बेहतर ढंग से समझने के लिए नीचे दिया गया है:

"9. यह निर्धारित करने के लिए कि कोई निगम सरकार का साधन या प्रतिनिधि कब कहला सकता है, परीक्षण अब अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकारी मामले [(1979) 3 एससीसी 489] के निर्णय से निकाले जा सकते हैं। ये परीक्षण निर्णायक या संवलन नहीं हैं, बल्कि ये मात्र सांकेतिक संकेत हैं जिनका उपयोग सावधानी और सतर्कता से किया जाना चाहिए, क्योंकि "अन्य प्राधिकारी" अभिव्यक्ति पर व्यापक अर्थ रखने की आवश्यकता पर जोर देते हुए, यह महसूस किया जाना चाहिए कि इसे इतना नहीं बढ़ाया जाना चाहिए कि सरकार से किसी भी तरह का संबंध रखने वाले प्रत्येक स्वायत्त निकाय को इस अभिव्यक्ति के दायरे में लाया जा सके। अर्थ के व्यापक विस्तार को एक विवेकपूर्ण सीमा द्वारा संयमित किया जाना चाहिए। हम अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकारी मामले के निर्णय से एकत्रित प्रासंगिक परीक्षणों को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत कर सकते हैं:

"(1) एक बात स्पष्ट है कि यदि निगम की संपूर्ण शेयर पूंजी सरकार के पास है, तो यह इस बात का स्पष्ट संकेत होगा कि निगम सरकार का एक साधन या प्रतिनिधि है। (एससीसी पृष्ठ 507, पैरा 14)

(2) जहां राज्य की वित्तीय सहायता इतनी अधिक हो कि निगम के लगभग संपूर्ण व्यय को पूरा कर सके, वहां यह निगम के सरकारी स्वरूप से प्रभावित होने का संकेत देती है। (एससीसी पृष्ठ 508, पैरा 15)

(3) यह भी एक महत्वपूर्ण कारक हो सकता है... कि क्या निगम को राज्य द्वारा प्रदत्त या संरक्षित एकाधिकार का दर्जा प्राप्त है। (एससीसी पृष्ठ 508, पैरा 15)

(4) राज्य के व्यापक और गहन नियंत्रण की उपस्थिति इस बात का संकेत दे सकती है कि निगम राज्य की एक प्रतिनिधि या संस्था है। (एससीसी पृष्ठ 508, पैरा 15)

(5) यदि निगम के कार्य सार्वजनिक महत्व के हैं और सरकारी कार्यों से निकटता से संबंधित हैं, तो निगम को सरकार की संस्था या प्रतिनिधि के रूप में वर्गीकृत करने में यह एक महत्वपूर्ण कारक होगा। (एससीसी पृष्ठ 509, पैरा 16)

(6) विशेष रूप से, यदि सरकार का कोई विभाग किसी निगम को हस्तांतरित कर दिया जाता है, तो यह निगम के सरकार की एक संस्था या प्रतिनिधि होने के निष्कर्ष का एक प्रबल समर्थन होगा। (एससीसी पृष्ठ 510, पैरा 18)

यदि इन प्रासंगिक कारकों पर विचार करने पर यह पाया जाता है कि निगम सरकार की एक संस्था या प्रतिनिधि है, तो जैसा कि अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा प्राधिकारी मामले में बताया गया है, यह एक "प्राधिकारी" होगा और इसलिए, अनुच्छेद 12 में उल्लिखित अर्थ के अनुसार 'राज्य' होगा।

.....
 "11. हम यह बताना चाहेंगे कि इस उद्देश्य के लिए यह अप्रासंगिक है कि निगम किसी कानून द्वारा बनाया गया है या किसी कानून के अधीन। परीक्षण यह है कि क्या यह सरकार का एक साधन या प्रतिनिधि है, न कि यह कैसे बनाया गया है। जाँच इस बात की नहीं होनी चाहिए कि विधिक इकाई का जन्म कैसे हुआ, बल्कि यह कि इसे अस्तित्व में क्यों लाया गया है। निगम किसी कानून द्वारा बनाया गया एक वैधानिक निगम हो सकता है, या यह एक सरकारी कंपनी हो सकती है, या कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत गठित कंपनी हो सकती है, या यह सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 या किसी अन्य समान कानून के अंतर्गत पंजीकृत सोसायटी हो सकती है। इसका मूल चाहे जो भी हो, यदि यह सरकार का एक साधन या प्रतिनिधि है, तो यह अनुच्छेद 12 के अर्थ में एक "प्राधिकारी" होगा, और यह प्रासंगिक कारकों के आलोक में तथ्यों के उचित मूल्यांकन के आधार पर तय किया जाना चाहिए। सरकार के साधन या प्रतिनिधि की अवधारणा किसी कानून द्वारा बनाए गए निगम तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह किसी कंपनी या सोसायटी पर भी समान रूप से लागू होती है, और किसी दिए गए मामले में प्रासंगिक कारकों पर विचार करने के बाद यह निर्णय लिया जाएगा कि क्या कंपनी या संस्था सरकार का कोई साधन या प्रतिनिधि है, जिससे वह अनुच्छेद 12 में उल्लिखित "प्राधिकारी" शब्द के अर्थ के अंतर्गत आ सके।"

14. प्रदीप कुमार बिस्वास (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मानदंड को और स्पष्ट किया है कि किसी निकाय को 'राज्य' घोषित करने के लिए, सरकार का उस निकाय पर व्यापक नियंत्रण होना चाहिए, जैसा कि पहले आर.डी. शेट्टी (उपरोक्त) और अजय हासिया (उपरोक्त) मामलों में प्रतिपादित किया गया है। निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिया गया है:

"40. अंततः जो तस्वीर उभरती है वह यह है कि अजय हासिया मामले [अजय हासिया बनाम खालिद मुजीब सेहरावर्दी, (1981) 1 एससीसी 722 : 1981 एससीसी (एल एंड एस) 258] में प्रतिपादित परीक्षण सिद्धांतों का

एक कठोर समूह नहीं हैं, जिससे यह निष्कर्ष निकले कि यदि कोई निकाय इनमें से किसी एक के अंतर्गत आता है, तो उसे स्वतः ही अनुच्छेद 12 के अर्थ में राज्य माना जाना चाहिए। प्रत्येक मामले में प्रश्न यह होगा कि क्या स्थापित तथ्यों के आलोक में, निकाय वित्तीय, कार्यात्मक और प्रशासनिक रूप से सरकार के प्रभुत्व में है या उसके नियंत्रण में है। ऐसा नियंत्रण संबंधित निकाय के लिए विशिष्ट और व्यापक होना चाहिए। यदि ऐसा पाया जाता है, तो निकाय अनुच्छेद 12 के अंतर्गत एक राज्य है। दूसरी ओर, जब नियंत्रण मात्र विनियामक होता है, चाहे वह कानून के अंतर्गत हो या अन्यथा, तो यह निकाय को राज्य बनाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।”

15. इसके बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **फेडरल बैंक लिमिटेड बनाम सागर थॉमस (2003) 10 एससीसी 733** में प्रतिवेदित के मामले में कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत पंजीकृत निजी कंपनियों के विरुद्ध रिट याचिका की पोषणीयता के मुद्दे पर और अधिक विस्तार से चर्चा की, जो आजीविका कमाने और उससे लाभ कमाने के लिए व्यापार और व्यवसाय करती हैं, और कहा कि वे सार्वजनिक कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर रही हैं। निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिया गया है:

“27. ऐसी निजी कंपनियाँ सामान्यतः संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं होंगी। परन्तु कुछ परिस्थितियों में ऐसी निजी संस्थाओं या व्यक्तियों के विरुद्ध रिट जारी की जा सकती है, क्योंकि ऐसे विधि हो सकते हैं जिनका पालन सभी संबंधित पक्षों, जिनमें निजी कंपनियाँ भी शामिल हैं, को करना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक विवाद अधिनियम, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, कारखाना अधिनियम या उचित पर्यावरण बनाए रखने के लिए वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 या जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 आदि जैसे कुछ विधि हैं जो ऐसी निजी संस्थाओं पर कुछ कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ निर्धारित करते हैं जिनका पालन करना उनके लिए अनिवार्य है। यदि वे ऐसे किसी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करते हैं तो उन प्रावधानों के अनुपालन हेतु निश्चित रूप से रिट जारी की जाएगी। उदाहरण के लिए, यदि कोई निजी नियोक्ता औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए अपने कर्मचारी की सेवा समाप्त कर देता है, तो असंख्य मामलों में उच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप किया है और निजी संस्थाओं को रिट जारी की है। इस संबंध में कंपनियों को विधिक सहायता दी जा सकती है। लेकिन रिट जारी करने में कठिनाई तब उत्पन्न हो सकती है जब निजी निकाय द्वारा किसी भी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन या गैर-अनुपालन न हुआ हो। ऐसी स्थिति में रिट जारी नहीं की जा सकती है। ऐसे में उपलब्ध अन्य उपायों का सहारा लेना पड़ सकता है।”

16. **सेंट मैरीज़ एजुकेशन सोसाइटी बनाम राजेंद्र प्रसाद भार्गव, (2023) 4 एससीसी 498** में प्रतिवेदित के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि शैक्षणिक संस्था केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबद्ध है, फिर भी यह ‘राज्य’ के दायरे में नहीं आती। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"66. मात्र इस आधार पर कि सार्वजनिक कर्तव्यों और/या सार्वजनिक कार्यों का निर्वहन करने वाले निजी व्यक्तियों के विरुद्ध रिट याचिका दायर की जा सकती है, यदि प्रवर्तन किसी निजी विधि के दायरे में किया जा रहा हो तो उसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। यह कहना उचित नहीं होगा कि जैसे ही कोई निजी संस्था रिट क्षेत्राधिकार के अधीन हो जाती है, तो उससे संबंधित प्रत्येक विवाद रिट क्षेत्राधिकार के अधीन हो जाता है। यह काफी हद तक विवाद की प्रकृति और किसी व्यक्ति द्वारा ऐसी संस्था के विरुद्ध अधिकार के प्रवर्तन पर निर्भर करता है। जो अधिकार विशुद्ध रूप से निजी विधि से उत्पन्न होता है, उसे रिट क्षेत्राधिकार की सहायता से लागू नहीं किया जा सकता, भले ही ऐसी संस्था सार्वजनिक कर्तव्यों और/या सार्वजनिक कार्यों का निर्वहन कर रही हो। परमादेश का दायरा मूल रूप से सार्वजनिक कर्तव्य के प्रवर्तन तक सीमित है, और इसलिए, न्यायालय का यह परम कर्तव्य है कि वह यह पता लगाए कि कर्तव्य की प्रकृति सार्वजनिक कर्तव्य की सीमा के अंतर्गत आती है या नहीं। किसी भी कार्रवाई में सार्वजनिक विधि का तत्व होना आवश्यक है।"

.....
 "75.1. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आवेदन किसी ऐसे व्यक्ति या निकाय के विरुद्ध पोषणीय है जो सार्वजनिक कर्तव्यों या सार्वजनिक कार्यों का निर्वहन कर रहा हो। सार्वजनिक कर्तव्य वैधानिक या गैर-वैधानिक हो सकता है, और यदि वह गैर-वैधानिक है, तो यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि निकाय या व्यक्ति सार्वजनिक विधि के तत्व से युक्त जनता के प्रति उस कर्तव्य या दायित्व का पालन करता है। इसी प्रकार, सार्वजनिक कार्य के निर्वहन का निर्धारण करने के लिए, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि निकाय या व्यक्ति जनता या उसके किसी वर्ग के सामूहिक लाभ के लिए ऐसा करने का प्रयास कर रहा था और ऐसा करने का अधिकार जनता द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए।

75.2. यदि यह मान भी लिया जाए कि कोई शिक्षण संस्थान सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन कर रहा है, तो भी शिकायत में उल्लिखित कृत्य का सार्वजनिक कर्तव्य निर्वहन से सीधा संबंध होना चाहिए। यह निर्विवाद रूप से सार्वजनिक विधि से संबंधित मामला है, जो पीड़ित को अनुच्छेद 226 के अंतर्गत विशेष रिट याचिका दायर करने का अधिकार प्रदान करता है। व्यक्तिगत गलतियाँ या पारस्परिक अनुबंधों का उल्लंघन, जिनमें सार्वजनिक तत्व अभिन्न अंग नहीं है, अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका के माध्यम से हल नहीं किया जा सकता। जहाँ कहीं भी न्यायालयों ने अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप किया है, वहाँ या तो सेवा शर्तें वैधानिक प्रावधानों द्वारा विनियमित थीं, या नियोक्ता अनुच्छेद 12 के अंतर्गत व्यापक परिभाषा में "राज्य" का दर्जा रखता था, या यह पाया गया कि शिकायत में उल्लिखित कृत्य में सार्वजनिक विधि का तत्व निहित है।

75.3. अतः यह माना जाना चाहिए कि यद्यपि कोई संस्था सार्वजनिक कार्य या सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन कर रही हो और इस प्रकार उसके कार्यों की संवैधानिक न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की जा सकती हो, फिर भी उसके कर्मचारियों को सेवा संबंधी मामलों में अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त उच्च न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार नहीं होगा, जहाँ वे वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित या नियंत्रित नहीं होते हैं। एक शैक्षणिक संस्था सार्वजनिक जीवन और सामाजिक क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं से संबंधित अनेक कार्य कर सकती है। जबकि ऐसे कार्य जो "सार्वजनिक कार्य" या "सार्वजनिक कर्तव्य" के दायरे में आते हैं, संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत निर्विवाद रूप से चुनौती और जांच के योग्य हैं, वहीं साधारण सेवा संविदा के दायरे में लिए गए कार्य या निर्णय, जिनका कोई वैधानिक बल या समर्थन नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 226 के

अंतर्गत चुनौती के योग्य नहीं माने जा सकते। सेवा शर्तों के वैधानिक प्रावधानों द्वारा नियंत्रित या शासित न होने की स्थिति में, मामला साधारण सेवा संविदा के दायरे में ही रहेगा।

75.4. भले ही यह माना जाए कि निजी गैर-सहायता प्राप्त स्कूलों द्वारा शिक्षा प्रदान करना, इस शब्द के व्यापक अर्थ में, एक सार्वजनिक कर्तव्य है, फिर भी स्कूल द्वारा प्रशासन या आंतरिक प्रबंधन के लिए नियुक्त गैर-शिक्षण कर्मचारी मात्र स्कूल द्वारा गठित एक इकाई है। यह अप्रासंगिक है कि “क” या “ख” को स्कूल द्वारा उस कर्तव्य के निर्वहन के लिए नियुक्त किया गया है। किसी भी स्थिति में, स्कूल और गैर-शिक्षण कर्मचारियों के बीच संविदा की शर्तों को शिक्षा प्रदान करने के दायित्व का अभिन्न अंग नहीं माना जा सकता है और न ही माना जाना चाहिए। यह विशेष रूप से किसी कर्मचारी के विरुद्ध शुरू की जा सकने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में लागू होता है। मात्र तभी जब गैर-शिक्षण कर्मचारियों को हटाने का कार्य किसी वैधानिक प्रावधान द्वारा विनियमित हो, तो नियोक्ता द्वारा विधि के उल्लंघन में इसका उल्लंघन करने पर न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है। लेकिन ऐसा हस्तक्षेप विधि के उल्लंघन के आधार पर होगा, न कि सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन में हस्तक्षेप के आधार पर।

75.5. मूल रिट याचिका में दिए गए कथनों से यह स्पष्ट है कि किसी भी सार्वजनिक विधि का कोई भी तत्व उठाया या सिद्ध नहीं किया गया है। दूसरे शब्दों में, चुनौती दी गई कार्रवाई में कोई सार्वजनिक तत्व नहीं है और परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती क्योंकि यह कार्रवाई मूल रूप से निजी प्रकृति की थी।”

निष्कर्ष

17. दोनों पक्षों द्वारा उद्धृत असंख्य निर्णयों का अध्ययन करने और विभिन्न निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का विश्लेषण करने पर, वे सिद्धांत निकाले जा सकते हैं जो किसी कंपनी को रिट क्षेत्राधिकार के अधीन बनाते हैं। उक्त सिद्धांतों का सारांश नीचे दिया गया है:

क. अनुच्छेद 12 के अर्थ में किसी प्राधिकारी/निकाय को ‘राज्य’ के अंतर्गत माना जाए या नहीं, यह निर्धारित करने के लिए सरकार द्वारा उस निकाय पर वित्तीय, कार्यात्मक और प्रशासनिक प्रभुत्व और/या नियंत्रण के संचयी तथ्यों पर विचार करना होगा। यदि ऐसा नियंत्रण तथ्यात्मक रूप से सिद्ध हो जाता है, तो उस निकाय को अनुच्छेद 12 के अंतर्गत ‘राज्य’ माना जाएगा।

ख. मात्र इसलिए कि कोई निजी संस्था सार्वजनिक कर्तव्य या कार्य का निर्वहन कर रही है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत ‘राज्य’ की परिभाषा में आती है, इसका अर्थ यह नहीं है कि उक्त संस्था से संबंधित प्रत्येक विवाद रिट क्षेत्राधिकार के अधीन हो जाएगा। यह काफी हद तक विवाद की प्रकृति और किसी व्यक्ति द्वारा ऐसी संस्था के विरुद्ध अपने अधिकार के प्रवर्तन पर निर्भर करेगा। एक ऐसा अधिकार जो विशुद्ध रूप से निजी विधि से उत्पन्न होता है, उसे रिट क्षेत्राधिकार की सहायता से लागू नहीं किया जा सकता, भले ही ऐसी संस्था सार्वजनिक कर्तव्यों और/या सार्वजनिक कार्यों का निर्वहन कर रही हो।

ग. परमादेश रिट जारी करने का दायरा मूलतः सार्वजनिक कर्तव्य के प्रवर्तन तक सीमित है, इसलिए न्यायालय का यह परम कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि कर्तव्य की प्रकृति सार्वजनिक कर्तव्य के दायरे में आती

है या नहीं। सार्वजनिक कर्तव्य वैधानिक या गैर-वैधानिक हो सकता है, और यदि यह गैर-वैधानिक है, तो यह सिद्ध करना आवश्यक है कि जनहित में कर्तव्य या दायित्व में सार्वजनिक विधि का तत्व शामिल है।

घ. यह ध्यान में रखना होगा कि सार्वजनिक विधि के किसी भी तत्व के अभिन्न अंग के रूप में शामिल न होने वाले व्यक्तिगत गलत कार्य या पारस्परिक अनुबंधों के उल्लंघन को अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका के माध्यम से ठीक नहीं किया जा सकता है।

18. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि वर्तमान रिट याचिका पोषणीय है क्योंकि प्रतिवादी संख्या 3, प्रतिवादी संख्या 1 का विस्तारित अंग होने के नाते, पेट्रोलियम उत्पादों की बिक्री में शामिल है, जो एक आवश्यक वस्तु है और ऐसी वस्तुओं से निपटने का पूर्ण अधिकार मात्र संसद को है, तथा भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 में प्रविष्टियाँ 52 और 53 के अनुसार किसी भी निजी व्यक्ति/कंपनी को इससे निपटने का अधिकार नहीं है। अतः, प्रतिवादी संख्या 3 राज्य का एक साधन या प्रतिनिधि है। भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 में प्रविष्टियाँ 52 और 53 नीचे उद्धृत हैं:

“52. वे उद्योग जिनके संबंध में संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि उन पर संघ का नियंत्रण लोकहित में समीचीन है।”

“53. तेलक्षेत्रों और खनिज तेल संपत्ति स्रोतों का विनियमन और विकास; पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पाद; अन्य द्रव और पदार्थ जिनके विषय में संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि वे खतरनाक रूप से ज्वलनशील हैं।”

19. वर्तमान रिट याचिका का संक्षिप्त अवलोकन मामले को सरल बना देता है। विवाद दोनों पक्षों के बीच हुए फ्रैंचाइज़ समझौते की समाप्ति से संबंधित है। उक्त समाप्ति करने से पहले, प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता को 26 अगस्त, 2021 को कारण बताओ नोटिस जारी किया था, जिसका जवाब याचिकाकर्ता संख्या 1 ने 9 सितंबर, 2021 को दिया था। उक्त जवाब पर विचार करने के बाद, प्रतिवादी संख्या 3 ने उक्त फ्रैंचाइज़ समझौते के प्रावधानों के अनुसार फ्रैंचाइज़ समझौते को समाप्त कर दिया। उक्त फ्रैंचाइज़ समझौते को रद्द करने के कारण समाप्ति पत्र दिनांक 28 दिसंबर, 2021 के खंड 4 और 5 में दिए गए हैं। समाप्ति आदेश के उक्त पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

“4. फ्रैंचाइज़ समझौते के अंतर्गत, आप उसमें निहित नियमों और शर्तों के अनुसार और विपणन प्रक्रिया अनुशासन संहिता सहित लागू कानूनों और नीतियों का पालन करते हुए व्यवसाय करने के लिए बाध्य हैं। निरीक्षण के समय अनुसंधान इकाई (आरओ) की स्थिति और नमूनों की विफलता से यह सिद्ध होता है कि आपने कंपनी के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से उत्पाद प्राप्त किए हैं। इससे यह भी साबित होता है कि आप इस संबंध में लागू प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए आरओ का संचालन कर रहे थे।

5. उपर्युक्त कृत्य और चूक फ्रैंचाइज़ समझौते और लागू विधिक प्रावधानों का घोर उल्लंघन हैं। आपके अनुरोध के अनुसार इन्हें माफ नहीं किया जा सकता है और इसके परिणामस्वरूप फ्रैंचाइज़ समझौता समाप्त किया जाता है।”

20. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता की प्रस्तुति सुनने के बाद यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो जाता है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 और प्रतिवादी संख्या 3, दोनों ही निजी संस्थाएं हैं, और इनके बीच का संबंध संविदात्मक प्रकृति का है, जो पेट्रोलियम और डीजल उत्पादों की व्यावसायिक बिक्री के लिए एक फ्रैंचाइज़ समझौते के माध्यम से स्थापित किया गया है। यद्यपि पेट्रोलियम उत्पादों की बिक्री भारत सरकार के पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय द्वारा जारी दिशानिर्देशों और विनियमों द्वारा नियंत्रित होती है, फिर भी प्रतिवादी संख्या 3 को निजी फर्मों को फ्रैंचाइज़ वितरित करने के लिए प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया गया है, जिनमें से एक याचिकाकर्ता संख्या 1 है। प्रतिवादी कंपनी पूरी तरह से एक निजी कंपनी है क्योंकि यह न तो किसी विधि के अंतर्गत स्थापित है और न ही सरकार द्वारा वित्तीय या प्रशासनिक रूप से नियंत्रित है।

21. यद्यपि प्रतिवादी संख्या 3 आंशिक रूप से आईओसीएल, बीपीसीएल और एचपीसीएल जैसी सरकारी तेल कंपनियों के समान क्षेत्र (पेट्रोलियम उत्पादों का वितरण और बिक्री) में कार्यरत है, लेकिन यह सरकारी कंपनियों से इस कारण से भिन्न है कि ये सरकारी कंपनियां कार्यात्मक, वित्तीय और प्रशासनिक रूप से भारत सरकार के व्यापक और गहन नियंत्रण में हैं, जबकि प्रतिवादी संख्या 3 एक स्वतंत्र संगठन है जिस पर सरकार का ऐसा कोई नियंत्रण नहीं है।

22. याचिकाकर्ता का यह तर्क कि पेट्रोलियम उत्पादों की बिक्री ज्वलनशील उत्पाद होने के कारण भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 में दी गई प्रविष्टियों 52 और 53 द्वारा सख्ती से नियंत्रित होती है, एक खोखला तर्क है और याचिकाकर्ताओं के पक्ष में नहीं है। यह ध्यान देने योग्य है कि भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 में दी गई प्रविष्टि 45 में 'बैंकिंग' का उल्लेख है। यदि याचिकाकर्ता का तर्क सही होता, तो सभी सार्वजनिक बैंक (जैसे स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, पंजाब नेशनल बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, केनरा बैंक, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, इंडियन बैंक) या निजी बैंक (जैसे एचडीएफसी, आईसीआईसीआई, एक्सिस, इंडसइंड, फेडरल बैंक, कोटक महिंद्रा) भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत 'राज्य' की परिभाषा में आते। इसी प्रकार, यदि दूरसंचार उद्योग को देखें, तो मात्र बीएसएनएल जैसी सरकारी नियंत्रण वाली कंपनियां ही 'राज्य' मानी जाती हैं, जबकि वोडाफोन, एयरटेल और जियो जैसी निजी कंपनियां 'राज्य' की परिभाषा में नहीं आतीं और रिट याचिका के दायरे में नहीं आतीं। यह तथ्य कि वोडाफोन, एयरटेल, जियो, एचडीएफसी बैंक, आईसीआईसीआई बैंक, एक्सिस बैंक, इंडसइंड बैंक, फेडरल बैंक, कोटक महिंद्रा बैंक जैसी निजी कंपनियां विभिन्न मंत्रालयों और भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) और भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकारी (टीआरएआई) जैसे सार्वजनिक नियामकों द्वारा स्थापित नियमों और विनियमों का अनुपालन करती हैं, अपने आप में उन्हें अनुच्छेद

12 के अंतर्गत 'राज्य' के अर्थ में नहीं लाता है, क्योंकि इनमें से कोई भी कंपनी भारत सरकार के व्यापक नियंत्रण (कार्यात्मक, वित्तीय और/या प्रशासनिक रूप से) के अधीन नहीं है।

23. प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा फ्रैंचाइज़ समझौते को समाप्त करने के कारणों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह फ्रैंचाइज़ समझौते का अनुपालन न करने और घोर उल्लंघन के परिणामस्वरूप हुआ था। ऐसी स्थिति में, वर्तमान तथ्यों के संदर्भ में सार्वजनिक कर्तव्य का कोई तत्व लागू नहीं होता है और याचिकाकर्ताओं द्वारा यह तर्क कि समझौते को समाप्त करने के संबंध में प्रतिवादी संख्या 3 की कार्रवाई रिट क्षेत्राधिकार के अधीन होगी, निराधार और भ्रामक है। अतः, हमारा मानना है कि याचिकाकर्ता रिट क्षेत्राधिकार का सहारा लेकर व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि फ्रैंचाइज़ समझौते में ही शिकायत निवारण प्रतिष्ठान और/या मध्यस्थता के संबंध में उपचारात्मक उपायों का स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है।

24. उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, न्यायालय का मत है कि प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा याचिका की पोषणीयता के संबंध में उठाई गई आपत्ति उचित है, और तदनुसार, याचिका पोषणीय न होने के कारण निरस्त किया जाता है। पक्षकार विधि के अनुसार उपलब्ध वैकल्पिक प्रक्रियाओं का सहारा लेने के लिए स्वतंत्र होंगे।

25. यह न्यायालय सभी पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं द्वारा बहस के दौरान दिखाई गई कुशलता और धैर्य तथा उनके द्वारा किए गए व्यापक और विस्तृत शोध की सराहना करना चाहता है, जिसने न्यायालय को अपने निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता की है।

26. चूंकि इस रिट याचिका में एक विधिक मुद्दा शामिल है, इसलिए लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

(2025) 3 ILRA 778

मूल क्षेत्राधिकार, दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 28.03.2012

माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा,
माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,
के समक्ष

रिट याचिका संख्या 12502/2012

मेसर्स इंग्रेविया लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: श्री निखिल अग्रवाल

प्रतिवादियों के वकील: श्री पीयूष शुक्ला

अ. आपराधिक कानून - विष अधिनियम, 1919 - धारा 2, 6 और 8 - उत्तर प्रदेश विष (कब्जा एवं बिक्री विनियमन) नियम, 1921, नियम 17-बी(बी), 17-डी(डी), 17-एफ - बिना लाइसेंस के मेथिल अल्कोहल का कब्जा एवं बिक्री - निर्णय: 1921 के नियमों के नियम 17-बी और 17-डी, विष अधिनियम, 1919 की धारा 2 और 8 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए थे। न्यायालय ने याचिकाकर्ता के इस तर्क को खारिज कर दिया कि नियम 17-बी और 17-डी राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं। न्यायालय ने माना कि नियम 17-B(b), 17-B(c) और 17-D(d) राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र और शक्ति के अंतर्गत आते हैं। विषम अधिनियम, 1919 की धारा 2 और 8 के अंतर्गत। (पैरा 10, 11)

B. विष अधिनियम, 1919, धारा 2, 6, 8 - उत्तर प्रदेश विष (कब्जे और बिक्री का विनियमन) नियम, 1921, नियम 17-F और 17-H - ज़ब्ती - निर्णय: ये नियम मेथिल अल्कोहल के संबंध में विशेष प्रावधान प्रदान करते हैं। न्यायालय ने माना कि नियम 17-F के अंतर्गत ज़ब्ती की शक्ति विषम अधिनियम की धारा 6 के विपरीत नहीं है और वैध है। याचिकाकर्ता का यह तर्क कि नियम 17-F विष अधिनियम, 1919 की धारा 6 के दायरे से बाहर है, न्यायालय द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। (पैरा 13, 14)

सी. याचिकाकर्ता ने एक ऐसे आपूर्तिकर्ता से मेथिल अल्कोहल खरीदा जिसके पास एम.ए.-1, एम.ए.-2 या एम.ए.-3 लाइसेंस नहीं था। कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और याचिकाकर्ता का लाइसेंस निलंबित कर दिया गया। निर्णय: प्रथम दृष्टया, 1921 के नियमों के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है। याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस के विरुद्ध 1921 के नियमों के नियम 17-1 के तहत आपति या अपील दायर करने की स्वतंत्रता के साथ रिट याचिका का निपटारा किया गया। (पैरा 15)

खारिज। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल, द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री निखिल अग्रवाल और राज्य के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री डी.के. तिवारी की बात सुनी गई।

2. यह याचिका मूल रूप से जिला मजिस्ट्रेट (लाइसेंसिंग प्राधिकरण) द्वारा दिनांक 12.02.2012 को पारित आदेश को रद्द करने के लिए दायर की गई थी, जिसके द्वारा आवेदक का एम.ए.-4 लाइसेंस उत्तर प्रदेश विष (कब्जा एवं बिक्री विनियमन) नियम 1921 (जिसे आगे "नियम 1921" कहा गया है) के नियम 17-डी, 17-ई,

17-एफ, 17-जी के बार-बार उल्लंघन और दिनांक 28.05.2011 के आदेश के अनुसार एम.ए.-2 लाइसेंस प्राप्त न करने के कारण निलंबित कर दिया गया था, और साथ ही यह निर्देश देने के लिए भी दायर की गई थी कि आवेदक का एम.ए.-4 लाइसेंस रद्द क्यों न किया जाए। इसके बाद, इस न्यायालय की दिनांक 12.11.2018 की अनुमति से रिट याचिका में एक संशोधन भी किया गया, जिसके द्वारा नियम 17-बी(बी), नियम 17-डी(डी), नियम 17-एफ की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई कि यह विष अधिनियम, 1919 की धारा 2 के साथ धारा 6 के तहत राज्य सरकार की शक्ति से परे है।

3. याचिकाकर्ता एक कंपनी है जो औद्योगिक उद्देश्यों के लिए मेथिल अल्कोहल खरीदती है, जिसके लिए याचिकाकर्ता कंपनी ने नियम 1921 के नियम 17-बी(सी) के तहत लाइसेंस एम.ए.-4 प्राप्त किया था। एम.ए.-4 लाइसेंस धारक को चिकित्सा, वैज्ञानिक, शैक्षिक, औद्योगिक या व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए मेथिल अल्कोहल खरीदने, रखने, उपयोग करने या बेचने की अनुमति देता है। जिला उत्पाद शुल्क अधिकारी, ज्योतिबा फुले नगर द्वारा 20.05.2011 को याचिकाकर्ता के परिसर का निरीक्षण किया गया, जिसमें नियम 1921 के कुछ उल्लंघन पाए गए, जिनमें गैर-लाइसेंस प्राप्त इकाई से मेथिल अल्कोहल खरीदना शामिल है। इसके बाद, याचिकाकर्ता को 01.06.2011 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसका उसने 13.06.2011 को जवाब दिया। इसके बाद, जिला नोडल समिति ने 11.08.2011 को अपनी बैठक में याचिकाकर्ता को एम.ए.-2 प्रारूप में लाइसेंस लेने का निर्देश दिया। इसके बाद, 12.10.2011 को एक पत्र भी जारी किया गया जिसमें याचिकाकर्ता को एम.ए.-2 लाइसेंस प्राप्त करने का निर्देश दिया गया। याचिकाकर्ता ने 11.08.2011 के संकल्प, 12.10.2011 के आदेश और नियम 1921 के नियम 17-डी की वैधता को इस न्यायालय में रिट-सी संख्या 70182/2011 के माध्यम से चुनौती दी, जिसे 07.12.2011 के आदेश द्वारा आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए 11.08.2011 के संकल्प और 12.10.2011 के आदेश को रद्द कर दिया गया और याचिकाकर्ता के 13.06.2011 के उत्तर पर विचार करने के बाद एक नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। हालांकि, न्यायालय ने नियम 1921 के नियम 17-डी(डी) को अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित करने से इनकार कर दिया। रिट-सी संख्या 70182/2011 में दिनांक 07.12.2011 को पारित आदेश के अनुसरण में, दिनांक 12.02.2012 का विवादित आदेश पारित किया गया है, जिसे चुनौती दी गई है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का तर्क है कि यह निर्विवाद है कि आवेदक औद्योगिक उपयोग के लिए मेथिल अल्कोहल की खरीद और भंडारण कर रहा है। वह मेथिल अल्कोहल की बिक्री में शामिल नहीं है। एम.ए.-2 लाइसेंस मेथिल अल्कोहल की बिक्री के साथ-साथ उसके कब्जे के लिए भी है। इसलिए, याचिकाकर्ता को एम.ए.-2 लाइसेंस प्राप्त करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे कहा कि राज्य को, विष अधिनियम, 1919 की धारा 2 के तहत, किसी भी विष की बिक्री के साथ-साथ उसके कब्जे को विनियमित करने का अधिकार है। इसलिए, राज्य बिक्री के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए विष के कब्जे को विनियमित करने के लिए नियम नहीं बना सकता। इसलिए, नियम 17-बी(बी), 17-बी(सी), 17-डी(डी) और 17-एफ, 1921 के नियम, विष अधिनियम, 1919 की धारा 2 के विरुद्ध हैं, क्योंकि ये राज्य सरकार की

शक्ति से परे हैं, जबकि ये विष अधिनियम, 1919 की धारा 3 के अंतर्गत केंद्र सरकार की शक्ति के अंतर्गत आते हैं।

5. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी वकील ने याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के तर्क का पुरजोर विरोध किया और प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने स्वयं नियम 17-बी(सी) के तहत एम.ए.-4 लाइसेंस प्राप्त किया है। इसलिए, वह नियम 1921 के नियम 17-बी, 17-डी और 17-एफ का पालन करने के लिए बाध्य है। विद्वान स्थायी वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि विष अधिनियम, 1919 की धारा 8, धारा 2 के तहत नियम बनाने की शक्ति के अतिरिक्त नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है, सिवाय विष अधिनियम, 1919 की धारा 3 के तहत केंद्र सरकार की नियम बनाने की शक्ति के विषय पर।

6. प्रतिपक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों पर विचार करने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता औद्योगिक प्रयोजनों के लिए मेथिल अल्कोहल की खरीद, कब्जे, उपयोग और बिक्री के लिए नियम 17-बी(सी) के तहत एम.ए.-4 लाइसेंस धारक है, और यह भी निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता मेथिल अल्कोहल की बिक्री के व्यवसाय में शामिल नहीं है। नियम 1921 का नियम 17-डीएम.ए.-4 लाइसेंस धारक पर एम.ए.-1, एम.ए.-2 या एम.ए.3 लाइसेंस धारक से मेथिल अल्कोहल खरीदने का कर्तव्य भी लगाता है। संदर्भ के लिए, नियम 1921 की धारा 17-बी और 17-डी (वर्ष 2014 में किए गए संशोधन से पहले विद्यमान) को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

17-ख. बिना लाइसेंस के मेथिल अल्कोहल का कब्जा और विक्रय निषिद्ध है-

(क) राज्य में मेथिल अल्कोहल का उप-उत्पादन करने वाला कोई भी उद्योग, लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा प्रपत्र एम.ए.-1 में जारी लाइसेंस के बिना इसका विक्रय नहीं कर सकता।

(ख) इन नियमों के संचालन से छूट प्राप्त व्यक्तियों को छोड़कर, कोई भी व्यक्ति लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा क्रमशः थोक और खुदरा के लिए प्रपत्र एम.ए.-2 और प्रपत्र एम.ए.-3 में जारी लाइसेंस के बिना मेथिल अल्कोहल का भंडारण, विक्रय हेतु कब्जा या विक्रय नहीं कर सकता।

(ग) कोई भी व्यक्ति चिकित्सा, वैज्ञानिक, शैक्षिक, औद्योगिक या व्यावसायिक प्रयोजन के लिए या किसी अन्य कार्य के प्रयोजन के लिए लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा प्रपत्र एम.ए.-4 में जारी लाइसेंस के बिना मेथिल अल्कोहल की खरीद, कब्जा, उपयोग या विक्रय नहीं कर सकता।

(घ) कोई भी व्यक्ति प्रपत्र एम.ए.-4 में जारी लाइसेंस के बिना दो लीटर से अधिक मात्रा में थिनर, पेंट और वार्निश के रूप में मेथिल अल्कोहल की खरीद, कब्जा, उपयोग या विक्रय नहीं कर सकता।

(ई) राज्य में कोई भी व्यक्ति या उद्योग, उत्तर प्रदेश के उत्पाद शुल्क आयुक्त द्वारा निर्धारित रंग और उचित रंग मिलाए बिना, किसी भी लाइसेंस के तहत किसी भी व्यक्ति या उद्योग को मेथिल अल्कोहल का भंडारण, कब्जा, वितरण, हस्तांतरण या बिक्री नहीं करेगा।

(एफ) 'ज़हर' शब्द और चिह्न उन सभी स्थानों और पात्रों पर प्रमुखता से लिखा और प्रदर्शित किया जाएगा जहाँ मेथिल अल्कोहल या इसके किसी भी उत्पाद का भंडारण या भंडारण किया जाता है।

17-डी. आपूर्ति के स्रोत-

(क) उत्तर प्रदेश राज्य में मेथिल अल्कोहल का कोई भी निर्माता फॉर्म एम.ए. 1 के लाइसेंस के बिना मेथिल अल्कोहल नहीं बेच सकता।

(ख) फॉर्म एम.ए.-2 के लाइसेंसधारक को मेथिल अल्कोहल की आपूर्ति निम्नलिखित स्रोतों के अलावा किसी अन्य स्रोत से प्राप्त नहीं होगी-

(i) राज्य का कोई भी लाइसेंसधारी जिसके पास फॉर्म एम.ए.-1 में मेथिल अल्कोहल के कब्जे और थोक बिक्री का लाइसेंस है:

(ii) उत्तर प्रदेश राज्य के बाहर भारत का कोई भी भाग, कलेक्टर द्वारा फॉर्म एम.ए.-5 में जारी परमिट के अधीन।

(ग) फॉर्म एम.ए.-3 का लाइसेंस धारक फॉर्म एम.ए.-2 के लाइसेंस धारक से मेथिल अल्कोहल की आपूर्ति प्राप्त करेगा।

(घ) फॉर्म एम.ए.-4 का लाइसेंस धारक लाइसेंसिंग प्राधिकरण द्वारा निर्धारित फॉर्म एम.ए.-1, एम.ए.-2 या एम.ए.-3 के लाइसेंस धारक से मेथिल अल्कोहल की आपूर्ति प्राप्त करेगा। यदि एम.ए.-4 लाइसेंस धारक थिनर, पेंट और वार्निश के रूप में मेथिल अल्कोहल खरीदना और बेचना चाहता है, तो उसे ऐसे उत्पादों के निर्माण के लिए अधिकृत एम.ए.-4 लाइसेंस धारक से खरीदने और बेचने की अनुमति होगी।

(ई) फॉर्म एम.ए.-2 और एम.ए.-3 के लाइसेंस धारक अपने लाइसेंस प्राप्त परिसर में किसी भी प्रकार का मेथिल अल्कोहल तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि कलेक्टर द्वारा फॉर्म एम.ए.-5 में जारी परमिट न दिया गया हो।

(एफ) फॉर्म एम.ए.-1 और एम.ए.-2 के लाइसेंस धारक अपने लाइसेंस प्राप्त परिसर से किसी भी प्रकार का मेथिल अल्कोहल तब तक नहीं निकाल सकते या किसी अन्य व्यक्ति को निकालने की अनुमति नहीं दे सकते जब तक कि उनके द्वारा फॉर्म एम.ए.-6 में परिवहन परमिट जारी न किया गया हो।

7. उपरोक्त नियमों से यह स्पष्ट है कि एम.ए.-2 लाइसेंस केवल थोक विक्रेता के रूप में बिक्री हेतु मेथिल अल्कोहल के कब्जे और बिक्री के लिए ही आवश्यक है, न कि औद्योगिक प्रयोजनों के लिए इसके उपयोग हेतु मेथिल अल्कोहल के कब्जे के लिए। धारा 17-डी(डी) के अनुसार, एम.ए.-4 लाइसेंस धारक को एम.ए.-1, एम.ए.-2 और एम.ए.-3 लाइसेंस धारक से ही मेथिल अल्कोहल खरीदना होगा। इसलिए, यदि राज्य के भीतर या बाहर स्थित मेथिल अल्कोहल आपूर्तिकर्ता के पास एम.ए.-1, एम.ए.-2 और एम.ए.-3 लाइसेंस नहीं हैं, तो एम.ए.-4 लाइसेंस धारक उस आपूर्तिकर्ता से मेथिल अल्कोहल नहीं खरीद सकता। नियम 1921 में एम.ए.-4 लाइसेंस धारक को राज्य के भीतर भी बिना लाइसेंस वाले आपूर्तिकर्ताओं से मेथिल अल्कोहल खरीदने या प्राप्त करने की अनुमति देने का कोई प्रावधान नहीं है, लेकिन यदि वह राज्य के बाहर के आपूर्तिकर्ता से इसे खरीदना चाहता है, तो यह केवल एम.ए.-2 लाइसेंस प्राप्त करने के बाद ही अनुमत है। उपरोक्त विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि एम.ए.-4 लाइसेंस धारक नियम 1921 के नियम 17-बी(सी) में उल्लिखित उद्देश्य के लिए मेथिल अल्कोहल बेच सकता है, लेकिन यदि वह नियम 17-बी(सी) में उल्लिखित किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसे बेचना या अपने पास रखना चाहता है, तो उसे थोक विक्रेता के रूप में एम.ए.-2 लाइसेंस या खुदरा विक्रेता के रूप में एम.ए.-3 लाइसेंस प्राप्त करना होगा। एम.ए.-2 लाइसेंस वाला थोक विक्रेता राज्य के बाहर से नियम 17-बी(सी) में उल्लिखित उद्देश्य सहित किसी भी उद्देश्य के लिए मेथिल अल्कोहल खरीद सकता है।

8. विवादित आदेश से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने औद्योगिक उद्देश्यों के लिए भी राज्य के भीतर और बाहर के आपूर्तिकर्ताओं से मेथिल अल्कोहल खरीदा था, हालांकि उनमें से किसी के पास भी एम.ए.-1, एम.ए.-2 या एम.ए.-3 लाइसेंस नहीं था। यद्यपि कलेक्टर की अनुमति से राज्य के बाहर से मेथिल अल्कोहल खरीदने के लिए एम.ए.-2 लाइसेंस आवश्यक है, लेकिन यदि याचिकाकर्ता राज्य के भीतर लाइसेंस प्राप्त आपूर्तिकर्ता से मेथिल अल्कोहल खरीदना चाहता है, तो उसे एम.ए.-2 लाइसेंस प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है और नियम 17-डी(डी) के अनुसार एम.ए.-4 लाइसेंस पर इसकी अनुमति है, बशर्ते कि इसे एम.ए.-1, एम.ए.-2 और एम.ए.-3 लाइसेंस धारक से खरीदा जाए, लेकिन वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने बिना लाइसेंस वाले आपूर्तिकर्ताओं से मेथिल अल्कोहल खरीदा है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के इस तर्क के संबंध में कि नियम 1921 के नियम 17-बी और 17-डी राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं, इस उद्देश्य के लिए, विष अधिनियम, 1919 की धारा 2, 3 और 8 पर विचार करना आवश्यक है। विष अधिनियम, 1919 की धारा 2 राज्य सरकार को मेथिल अल्कोहल के कब्जे और बिक्री को विनियमित करने के लिए नियम बनाने का अधिकार देती है, और धारा 3 केंद्र सरकार को देश के बाहर से जहर की खरीद के विनियमन के संबंध में नियम बनाने का अधिकार देती है, जो कि इस मामले में लागू नहीं होता है। विष अधिनियम, 1919 की धारा 8 राज्य को विष अधिनियम, 1919 की धारा 2

के तहत नियम बनाने की शक्ति के अतिरिक्त नियम बनाने का अधिकार देती है। सिवाय उस क्षेत्र के जो विष अधिनियम, 1919 की धारा 3 के अंतर्गत विष अधिनियम, 1919 के उद्देश्य और लक्ष्य को पूरा करने के लिए आता है। इसलिए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि भारत के बाहर से मेथिल अल्कोहल के आयात को विनियमित करने के अलावा, राज्य सरकार को विष के विनियमन, बिक्री, खरीद और कब्जे के लिए नियम बनाने का अधिकार है। विष अधिनियम, 1919 की धारा 2, 3 और 8 को निम्न प्रकार से उद्धृत किया जा रहा है:-

2. किसी विष के विक्रय हेतु कब्जे और विक्रय को विनियमित करने की राज्य सरकार की शक्ति-

(1) राज्य सरकार अपने प्रशासन के अधीन संपूर्ण या किसी भाग में किसी निर्दिष्ट विष के विक्रय हेतु कब्जे और विक्रय, चाहे थोक हो या खुदरा, को विनियमित करने के लिए नियम बना सकती है।

(2) विशेष रूप से, और पूर्वोक्त शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित के लिए प्रावधान कर सकते हैं-

(क) किसी निर्दिष्ट विष के विक्रय हेतु थोक या खुदरा, के लिए लाइसेंस प्रदान करना और ऐसे लाइसेंसों के लिए प्रभारित शुल्क (यदि कोई हो) निर्धारित करना;

(ख) वे वर्ग जिन्हें केवल ऐसे लाइसेंस प्रदान किए जा सकते हैं;

(ग) वे वर्ग जिन्हें केवल ऐसा विष बेचा जा सकता है;

(घ) किसी एक व्यक्ति को बेची जा सकने वाली ऐसे विष की अधिकतम मात्रा;

(ङ) ऐसे विष के विक्रेताओं द्वारा विक्रय रजिस्ट्रारों का रखरखाव, ऐसे रजिस्ट्रारों में दर्ज की जाने वाली जानकारी और उनका निरीक्षण;

(एफ) ऐसे विषों की सुरक्षित अभिरक्षा और उन पात्रों, पैकेजों या आवरणों पर लेबल लगाना जिनमें ऐसा कोई विष बेचा जाता है या बिक्री के लिए रखा जाता है; और

(जी) किसी विक्रेता द्वारा बिक्री के लिए रखे गए ऐसे किसी विष का निरीक्षण और परीक्षण।

3. लाइसेंस के बिना किसी विष के आयात पर राज्यों में रोक लगाने की शक्ति-केंद्र सरकार, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, लाइसेंस की शर्तों के अनुसार और उसके अधीन रहते हुए, किसी निर्दिष्ट विष के भारत में आयात पर रोक लगा सकती है (केंद्र सरकार द्वारा परिभाषित किसी सीमा शुल्क सीमा के पार) और नियमों द्वारा लाइसेंस प्रदान करने को विनियमित कर सकती है।

8. नियम.-(1) इस अधिनियम द्वारा पूर्वोक्त प्रदत्त नियमों को बनाने की किसी अन्य शक्ति के अतिरिक्त, राज्य सरकार इस अधिनियम के उद्देश्यों और प्रयोजनों को पूरा करने के लिए सामान्यतः नियम बना सकती है (धारा 3 को छोड़कर)।

(2) इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त नियमों को बनाने की प्रत्येक शक्ति पूर्व प्रकाशन के अधीन होगी।

(3) केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाए गए सभी नियम आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किए जाएंगे और ऐसे प्रकाशन पर वे इस अधिनियम में अधिनियमित किए गए नियमों के समान प्रभावी होंगे।

[(4) इस अधिनियम के अधीन केंद्र सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के तुरंत बाद, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिनों की अवधि के लिए रखा जाएगा, जो एक सत्र या दो या दो से अधिक लगातार सत्रों में शामिल हो सकती है। यदि, उक्त सत्र या लगातार सत्रों के तुरंत बाद वाले सत्र की समाप्ति से पहले, दोनों सदन नियम में कोई संशोधन करने पर सहमत हों या दोनों सदन यह तय करें कि नियम नहीं बनाया जाना चाहिए, तो नियम उसके बाद केवल ऐसे संशोधित रूप में प्रभावी होगा या कोई प्रभाव नहीं होगा, जैसा भी मामला हो; यद्यपि, ऐसा कोई भी संशोधन या निरस्तीकरण उस नियम के अधीन पहले किए गए किसी भी कार्य की वैधता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।]

(5) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के तुरंत बाद, राज्य विधानमंडल के समक्ष रखा जाएगा।]

10. नियम 1921 के नियम 17-बी और 17-डी के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि ये नियम विष अधिनियम, 1919 की धारा 2 और 8 के तहत प्राप्त शक्तियों के प्रयोग में बनाए गए थे। अतः याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि नियम 17-बी और 17-डी राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं, भ्रामक है और इसलिए इसे अस्वीकार किया जाता है।

11. उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, न्यायालय यह मानता है कि नियम 17-बी(बी), 17-बी(सी) और 17-डी(डी) नियम 1921 के विष अधिनियम, 1919 की धारा 2 और 8 के तहत राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में आते हैं।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के इस तर्क के संबंध में कि नियम 17-एफ, जो जिला मजिस्ट्रेट को मेथिल अल्कोहल को जब्त करने का अधिकार देता है, जिसे किसी व्यक्ति या उद्योग द्वारा नियम 1921 के प्रावधानों के उल्लंघन में प्राप्त, संग्रहित, बेचा या उपयोग किया गया हो, विष अधिनियम, 1919 की धारा 6 के दायरे से बाहर है, इस मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि प्रारंभ में विष (कब्जा और बिक्री

का विनियमन) नियम 1921, विष अधिनियम, 1919 की धारा 2 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए बनाए गए थे। बाद में, दिनांक 27.07.1995 के संशोधन द्वारा, नियम 17 से 17-1 को विष अधिनियम, 1919 की धारा 2 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए मेथिल अल्कोहल के संबंध में विशेष प्रावधानों के रूप में जोड़ा गया। नियम 17-एफ, नियम 1921 विशिष्ट प्रावधान प्रदान करता है। इन नियमों के प्रावधानों के उल्लंघन में किसी व्यक्ति या उद्योग द्वारा प्राप्त, संग्रहित, बेची या उपयोग की गई मेथिल अल्कोहल के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट को ज़बती का अधिकार दिया गया है। इसके बाद, नियम 17-एच, नियम 1921, आगे अभियोजन और ज़हर अधिनियम, 1919 की धारा 6 के प्रावधानों के अनुसार दंड का प्रावधान करता है, जो ज़हर अधिनियम के नियम 2 और 3 के उल्लंघन से संबंधित था। नियम 17-एफ और नियम 17-एच, नियम 1921, नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:-

17-एफ. ज़बती - यदि कोई अधिकृत अधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि किसी व्यक्ति या उद्योग द्वारा इन नियमों के प्रावधानों के उल्लंघन में मेथिल अल्कोहल का अधिग्रहण, भंडारण, विक्रय या उपयोग किया गया है, तो वह उसे अपने कब्जे में लेने और मामले की सूचना जिला मजिस्ट्रेट को देने के लिए सक्षम होगा। जिला मजिस्ट्रेट अधिकृत अधिकारी की उपस्थिति में उसे ज़ब्त करने या नष्ट करने के लिए सक्षम होगा।

17-एच. अभियोग और दंड - इन नियमों के उल्लंघन में मेथिल अल्कोहल के कब्जे में पाए जाने वाले किसी भी व्यक्ति पर समय-समय पर संशोधित विष अधिनियम, 1919 (अधिनियम संख्या XII, 1919) के प्रावधानों के तहत अभियोग और दंड लगाया जाएगा।

13. उपर्युक्त नियमों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इन नियमों में मेथिल अल्कोहल के संबंध में विशेष प्रावधान हैं, यद्यपि ये नियम अन्य विषों पर लागू नहीं होते जो मेथिल अल्कोहल नहीं हैं। इसी कारण से, नियम

17-एफ के तहत ज़बती की विशेष शक्ति प्रदान की गई है, लेकिन अन्य दंडों के लिए, विष अधिनियम की धारा 6 का प्रावधान संशोधित नियम 1921 के नियम 17-एच द्वारा अपनाया गया है। यह न्यायालय यह भी मानता है कि ज़बती की शक्ति विष अधिनियम की धारा 6 के विपरीत नहीं है और वैध है। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का यह तर्क कि नियम 17-एफ ज़बती के संबंध में विष अधिनियम, 1919 की धारा 6 के प्रावधानों से परे है, पूरी तरह से गलत है और इसलिए इसे अस्वीकार किया जाता है।

14. वर्तमान मामले में, यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता ने राज्य के भीतर स्थित एक आपूर्तिकर्ता से मेथिल अल्कोहल खरीदा है, जिसके पास एम.ए.-1, एम.ए.-2 या एम.ए.-3 लाइसेंस नहीं है, और साथ ही राज्य के बाहर स्थित एक आपूर्तिकर्ता से भी मेथिल अल्कोहल प्राप्त किया है, जिसके पास एम.ए.-2 लाइसेंस नहीं है। इसलिए, प्रथम दृष्टया, नियम 1921 के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है और इस कारण से, कारण बताओ नोटिस/आदेश में कोई अवैधता नहीं दिखती है। हालांकि, विवादित आदेश केवल एक कारण बताओ नोटिस है

जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का लाइसेंस निलंबित किया गया है। याचिकाकर्ता उस कारण बताओ नोटिस के विरुद्ध आपति या नियम 17-1 के अंतर्गत अपील दायर कर सकता है।

15. उपरोक्त को देखते हुए, याचिकाकर्ता को 15 दिनों के भीतर कारण बताओ नोटिस के विरुद्ध आपति या अपील दायर करने की स्वतंत्रता के साथ वर्तमान रिट याचिका का निपटारा किया जाता है। यदि याचिकाकर्ता द्वारा विवादित कारण बताओ नोटिस के विरुद्ध कोई आपति या अपील दायर की जाती है, तो उस पर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अगले एक महीने के भीतर विचार किया जाएगा और उपरोक्त टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना निर्णय लिया जाएगा।

(2025) 3 ILRA 784

मूल क्षेत्राधिकार: दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 18.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव,

के समक्ष

रिट याचिका संख्या 16710/2015

जनता प्रसार समिति एवं अन्य

....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.... प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के वकील: योगेश कुमार सक्सेना

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी., विनीत कुमार सिंह

दीवानी विधि - उत्तर प्रदेश सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 - धारा 4 और 25(1) - याचिकाकर्ता ने अपने पिता की मृत्यु के बाद सोसायटी के उपनियमों में खंड 8(ख) में किए गए संशोधन के आधार पर प्रबंधक पद पर नियुक्ति का दावा किया - निर्धारित प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार कर दिया - विवादित आदेश की वैधता - एक बार खंड 10 द्वारा विशिष्ट शर्त लगाए जाने के बाद, खंड 10 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रबंधन समिति की आम सभा द्वारा खंड 8(ख) में कोई संशोधन या संशोधन नहीं किया जा सकता था - सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(क)(ख)(गा) में कोई भी संशोधन या संशोधन खंड 10 में सोसायटी के उपनियमों के अनुसार संशोधन के बाद ही किया जा सकता था, जिसमें उस शर्त को हटा दिया गया हो जो यह निर्धारित करती थी कि यह खंड 8(क)(ख)(गा) को प्रभावित नहीं करेगी - इसलिए, खंड 8(ख) में संशोधन/संवर्धन अमान्य था, और प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा प्रबंधक के रूप में नियुक्त होने के अधिकार

का कोई त्याग नहीं किया गया था, क्योंकि वरिष्ठतम कानूनी उत्तराधिकारी होने के नाते, उसने नियुक्ति के तुरंत बाद अपने अधिकार का दावा किया था। उनके पिता की मृत्यु। (पैरा 15, 30, 31, 34)

रिट याचिका खारिज। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव, द्वारा सुनाया गया)

1. हमने याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री वाई.के. सक्सेना, राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह, जिनके साथ प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक द्विवेदी उपस्थित थे, की दलीलें सुनीं।

2. याचिकाकर्ताओं ने इस रिट याचिका के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 2-उप-विभागीय मजिस्ट्रेट-डेरपुर, कानपुर देहात द्वारा दिनांक 16.02.2015 को पारित आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा निर्धारित प्राधिकारी ने याचिकाकर्ताओं के श्री जनता प्रसार समिति सदरामाऊ मानेपुर, पोस्ट झिंजक, जिला कानपुर देहात नामक संस्था के प्रबंधक के रूप में बने रहने के दावे को अस्वीकार कर दिया है।

3. श्री जनता प्रसार समिति सदरामाऊ मानेपुर, पोस्ट झिंजक, जिला कानपुर देहात (जिसे आगे 'सोसायटी' कहा जाएगा) के नाम से उत्तर प्रदेश सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के प्रावधानों के तहत एक सोसायटी पंजीकृत है। सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(ख) के अनुसार, आजीवन प्रबंधक श्री हरिश्चंद्र सिंह के वरिष्ठतम उत्तराधिकारी को सोसायटी का प्रबंधक मनोनीत किया जाएगा।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि हरिश्चंद्र सिंह के जीवनकाल में, याचिकाकर्ता, जो हरिश्चंद्र सिंह का पाँचवाँ पुत्र था, को सोसायटी का प्रबंधक नियुक्त किया गया था और वह हरिश्चंद्र सिंह की मृत्यु तक प्रबंधक के रूप में कार्यरत रहा, जिनकी मृत्यु 11.03.2009 को हुई थी।

5. हरिश्चंद्र सिंह की मृत्यु के बाद, प्रतिवादी संख्या 4-अरविंद कुमार सिंह, जो स्वर्गीय हरिश्चंद्र सिंह के द्वितीय पुत्र और सबसे वरिष्ठ उत्तराधिकारी हैं, ने 09.06.2009 को प्रबंधक के रूप में नियुक्त होने के अपने अधिकार का दावा इस आधार पर किया कि सोसायटी के उपनियमों के तहत, वे स्वर्गीय हरिश्चंद्र सिंह के सबसे वरिष्ठ कानूनी उत्तराधिकारी होने के नाते प्रबंधक के रूप में नियुक्त होने के हकदार हैं।

6. याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 4 के दावे का इस आधार पर खंडन किया कि सोसायटी के उपनियमों के मुख्य खंड 8(ख) में 'या (अथवा)' शब्द के बाद एक अतिरिक्त वाक्यांश जोड़ा गया है, जिसमें कहा गया है, "या श्री अभिषेक कुमार सिंह, श्रीमती उमा सिंह और श्री वीरेंद्र सिंह भदौरिया, जिन्हें सोसायटी के आजीवन सदस्य के रूप में शामिल किया गया है, किसी ऐसे व्यक्ति को सोसायटी का प्रबंधक नियुक्त कर सकते हैं जिसने

सोसायटी के उद्देश्यों को पूरा करने में निष्ठा, ईमानदारी और समर्पण दिखाया हो।" तदनुसार, याचिकाकर्ता ने दावा किया कि सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(ख) में उपरोक्त संशोधन के आधार पर उन्हें प्रबंधक नियुक्त किया गया था।

7. याचिकाकर्ता के अनुसार, सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(ख) में संशोधन के बाद, याचिकाकर्ता 28.02.2006 को प्रबंधक के रूप में निर्वाचित हुए और वर्ष 2005-06 के लिए पदाधिकारियों की सूची 28.02.2006 को पंजीकृत की गई। परिणामस्वरूप, उन्होंने निवेदन किया कि प्रबंधक के रूप में उनकी नियुक्ति वैध है और सोसायटी के उपनियमों के अनुरूप है।

8. याचिकाकर्ता की नियुक्ति के विरुद्ध प्रतिवादी संख्या 4 की आपति को उप-पंजीयक ने दिनांक 06.11.2009 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। प्रतिवादी संख्या 4 ने उप-पंजीयक के दिनांक 06.11.2009 के आदेश को चुनौती देते हुए रिट याचिका संख्या 70071/2009 दायर की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 02.04.2013 के निर्णय और आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया और प्रतिवादी संख्या 4 को निर्धारित प्राधिकारी से संपर्क करने की अनुमति दी। इस न्यायालय ने निर्धारित प्राधिकारी को निर्देश दिया कि वह रिट याचिका संख्या 70071/2009 में दिनांक 02.04.2013 के निर्णय और आदेश में की गई टिप्पणियों के आलोक में पक्षों के दावे का निर्णय करे।

9. रिकॉर्ड से यह भी पता चलता है कि इस न्यायालय के दिनांक 02.04.2013 के निर्णय के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने विशेष अपील संख्या 672/2013 दायर की थी, जो अभी भी लंबित है, और इस बीच, निर्धारित प्राधिकारी ने रिट याचिका संख्या 70071/2009 में इस न्यायालय के दिनांक 02.04.2013 के निर्णय और आदेश के अनुपालन में प्रतिवादी संख्या 4 के आवेदन पर निर्णय लिया।

10. निर्धारित प्राधिकारी ने विवादित आदेश में यह माना कि सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 के उपखंड (ख) में संशोधन या जोड़ सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 के कारण नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे यह भी माना कि इस कारण याचिकाकर्ता को प्रबंधक के पद पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने आदेश में यह भी दर्ज किया कि याचिकाकर्ता ने न तो कोई आपति प्रस्तुत की और न ही प्रतिवादी की आपति का उत्तर दिया। तदनुसार, उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता प्रबंधक के पद पर बने नहीं रह सकते।

11. उपरोक्त आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि निर्धारित प्राधिकारी ने यह मानने में विधिगत त्रुटि की है कि सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(ख) में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(ख) में इसका समावेश केवल एक वैकल्पिक तरीका है, जिसके द्वारा स्वर्गीय हरिश्चंद्र सिंह के वरिष्ठ कानूनी उत्तराधिकारी या वारिस न होने की स्थिति में प्रबंधक की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है। तदनुसार, उनका निवेदन है कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दिया

गया यह निष्कर्ष कि सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(ख) में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है, विकृत है और सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 के गलत अर्थ पर आधारित है।

12. उन्होंने आगे निवेदन किया कि इस न्यायालय ने मामले को वापस भेजते हुए निर्धारित प्राधिकारी को यह निर्णय करने का निर्देश दिया था कि क्या प्रतिवादी संख्या 4 ने प्रबंधक के रूप में बने रहने के अपने अधिकार का त्याग कर दिया है, लेकिन निर्धारित प्राधिकारी इस मुद्दे पर कोई निष्कर्ष देने में विफल रहा है। इन तथ्यों को देखते हुए, विवादित आदेश विधिवत मान्य नहीं हो सकता।

13. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह का तर्क है कि सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 से यह स्पष्ट है कि खंड 8 (क)(ख)(ग) में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है। यह निवेदन किया गया है कि याचिकाकर्ता का मामला तब बन सकता है जब सोसायटी के उपनियमों के अनुसार खंड 10 में यह खंड हटाकर संशोधन किया गया हो कि “सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (क)(ख)(ग) में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है”, तभी खंड (क)(ख)(ग) में कोई संशोधन किया जा सकता है।

14. यह निवेदन किया जाता है कि चूंकि सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि खंड 8 (क)(ख)(ग) में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है, इसलिए खंड 10 द्वारा लगाई गई शर्त के कारण खंड 8 (क)(ख)(ग) में कोई संशोधन या कोई परिवर्धन नहीं किया जा सकता है। अतः, खंड 10 की शर्त के कारण खंड 8 (ख) में संशोधन स्वतः ही अवैध और अमान्य है। इसलिए, यह तर्क दिया जाता है कि तथ्यों को देखते हुए, याचिकाकर्ता को सोसायटी के प्रबंधक के रूप में बने रहने का कोई अधिकार नहीं है और प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा प्रबंधक के रूप में नियुक्त किए जाने के उनके मुवक्किल के अधिकार को छोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।

15. उन्होंने आगे निवेदन किया कि यह वह मामला नहीं है जिसमें प्रतिवादी संख्या 4 ने अपने अधिकार का त्याग किया हो, क्योंकि प्रबंधक के रूप में केवल स्वर्गीय हरिश्चंद्र सिंह ही कार्य कर सकते थे, और उनकी मृत्यु के बाद ही सोसायटी के उपनियमों के तहत प्रतिवादी संख्या 4 को प्रबंधक नियुक्त किया जा सकता था। इस मामले में, हरिश्चंद्र सिंह की मृत्यु के तुरंत बाद याचिकाकर्ता ने आपत्ति उठाई और प्रबंधक पद पर नियुक्ति का दावा किया। इसलिए, सोसायटी के प्रबंधक पद का दावा करने में याचिकाकर्ता द्वारा अपने अधिकार का कोई त्याग नहीं किया गया है।

16. हमने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वाई.के. सक्सेना और प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह की बात सुनी और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

17. विवाद पर विचार करने से पहले, सोसायटी के असंशोधित खंड 8(अ) को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा:-

"(8) प्रबन्धकारिणी समिति:-

(अ) गठन:-

(क) प्रबन्धक पद पर वर्तमान पदासीन व्यक्ति आजीवन प्रबन्धक रहेगा और भविष्य में प्रबन्धक पद पर कोई निर्वाचन नहीं होगा।

(ख) वर्तमान प्रबन्धक का पद रिक्त होने की दशा त्याग पत्र/मृत्यु से / में उसका वैधानिक ज्येष्ठ उत्तराधिकारी ही वैध प्रबन्धक माना जायेगा जिसकी स्थिति एवं शक्ति पूर्णतया (8-क) के अनुसार होगी।"

18. सोसायटी के उपनियमों के संशोधित खंड 8 को पुनः प्रस्तुत करना भी उचित होगा:

"8- प्रबन्धकारिणी समिति:-

(अ) गठन:-

(क) प्रबन्धक पद पर वर्तमान पदासीन व्यक्ति आजीवन प्रबन्धक रहेगा और भविष्य में प्रबन्धक पद पर कोई निर्वाचन नहीं होगा।

(ख) वर्तमान प्रबन्धक का पद रिक्त होने की दशा त्याग पत्र या मृत्यु से। में उसका वैधानिक ज्येष्ठ उत्तराधिकारी ही वैध प्रबन्धक माना जायेगा जिसकी स्थिति एवं शक्ति पूर्णतया 8-क के अनुसार होगी अथवा समिति ने सर्व सम्मति से श्री अभिषेक कुमार सिंह श्रीमती उमा सिंह तथा श्री वीरेन्द्र सिंह भदौरिया को उनके संस्था के प्रति अटूट श्रद्धा, निष्ठा एवं भवन मरम्मत में विशेष आर्थिक योगदान एवं महत्वपूर्ण कार्यों के आधार पर आजीवन विशिष्ट सदस्य बनाया है भविष्य में यदि यह तीनों सदस्य अन्य किसी व्यक्ति को उसके संस्था के प्रति विशेष योगदान पर बहुमत या सर्व सम्मति से आजीवन विशिष्ट सदस्य बनाना चाहें तो बना सकेंगे। यही आजीवन विशिष्ट सदस्य भविष्य में प्रबन्धक का पद रिक्त होने की दशा में अपने में से बहुमत या सर्व सम्मति से प्रबन्धक चुनेंगे और इस प्रकार चुना हुआ व्यक्ति ही प्रबन्धक होगा, शेष प्रबन्ध समिति का चुनाव यथास्थिति के अनुसार संपन्न होगा।"

19. सोसायटी के उपनियमों का खंड 10 इस प्रकार है:

"संस्था के नियमों व विनियमों में संशोधन साधारण सभा के 2/3 सदस्यों के बहुमत से किया जा सकेगा परन्तु धारा-8, क, ख, ग पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकेगा।"

20. सोसायटी के उपनियमों के असंशोधित खंड 8 (अ)(क) के अनुसार, प्रबंधक के रूप में नियुक्त व्यक्ति जीवन भर प्रबंधक बना रहेगा और प्रबंधक का कोई चुनाव नहीं होगा।

21. असंशोधित खंड 8 (अ)(ख) के अनुसार, त्यागपत्र/मृत्यु के कारण प्रबंधक का पद रिक्त होने पर, प्रबंधक के सबसे वरिष्ठ कानूनी उत्तराधिकारी को प्रबंधक नियुक्त किया जाएगा, और वह प्रबंधक की सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा और सभी कर्तव्यों का निर्वहन करेगा।

22. धारा 8(ख) में एक परिवर्धन/संशोधन किया गया है और इसके द्वारा प्रबंधक की नियुक्ति का एक अन्य तरीका प्रदान किया गया है कि "अभिषेक कुमार सिंह, श्रीमती उमा सिंह और श्री वीरेंद्र सिंह भदौरिया, जिन्हें सोसायटी के आजीवन सदस्य के रूप में शामिल किया गया है, वे भी किसी ऐसे व्यक्ति को प्रबंधक के रूप में मनोनीत/नियुक्त कर सकते हैं जिसने सोसायटी के कार्य और उद्देश्य को पूरा करने में निष्ठा, ईमानदारी और समर्पण दिखाया हो।"

23. याचिकाकर्ता के अनुसार, खंड 8 (अ)(ख) में संशोधन केवल प्रबंधक के पद की रिक्ति को भरने के लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था प्रदान करने के लिए किया गया है, यदि प्रबंधक का कोई वरिष्ठतम कानूनी उत्तराधिकारी उपलब्ध न हो या यदि वह प्रबंधक का पद स्वीकार करने से इनकार कर दे। अतः, यह संशोधन नहीं बल्कि केवल एक संशोधन है जो किसी विशेष परिस्थिति में रिक्ति को भरने का प्रावधान करता है।

24. इस स्तर पर, सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 का उल्लेख करना उचित होगा, जिसे ऊपर उद्धृत किया जा चुका है, जिसमें कहा गया है कि सोसायटी के उपनियमों में संशोधन केवल सोसायटी की आम सभा के 2/3 सदस्यों के बहुमत से ही किया जा सकता है। हालांकि, यह खंड सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (क)(ख)(ग) को प्रभावित नहीं करेगा।

25. इस स्तर पर, इस न्यायालय के पूर्व के उस निर्णय का उल्लेख करना उचित होगा जिसके द्वारा इस न्यायालय ने दिनांक 02.04.2013 के निर्णय और आदेश के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 4 को विवाद के निर्णय हेतु निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष आवेदन दाखिल करने की अनुमति दी थी, जो इस प्रकार है:

"उप रजिस्ट्रार ने विवादित आदेश पारित करते समय मामले के उपरोक्त पहलू को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया है। इसके अलावा, यह मुद्दा कि क्या इस उद्देश्य के लिए बुलाई गई आम सभा की किसी वैध बैठक में प्रस्ताव पारित किया गया था, इसका भी अंतिम निर्णय नहीं किया गया है। केवल इसलिए कि कुछ पदाधिकारियों ने संशोधनों पर हस्ताक्षर कर दिए हैं, स्वतः ही यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि आम सभा की कोई वैध बैठक हुई है। यह जांच करनी होगी कि क्या ऐसी बैठक का एजेंडा उपनियमों के अनुसार सदस्यों के बीच वितरित किया गया था और क्या वैध सदस्यों के बीच इस उद्देश्य के लिए कोई वैध बैठक हुई थी। यह निष्कर्ष देना होगा कि क्या धारा 8 (खा) में कोई वैध संशोधन किया गया है और क्या धारा 10 के मददेनजर धारा बी (खा) में संशोधन किया जा सकता है।"

वैसे भी, संशोधित धारा 8 (खा) को सरलता से पढ़ने पर न्यायालय पाता है कि उक्त धारा दो भागों में है: (क) जिसमें यह घोषित किया गया है कि यदि पूर्ववर्ती प्रबंधक अपना त्यागपत्र देता है या उसकी मृत्यु हो जाती है, तो वर्तमान प्रबंधक का वरिष्ठतम कानूनी उत्तराधिकारी स्वतः ही प्रबंधक माना जाएगा; इसके बाद "अथवा" शब्द से शुरू होने वाली दूसरी धारा है। (ख) जो तीन व्यक्तियों, अर्थात् अभिषेक कुमार सिंह, श्रीमती उमा सिंह और

वीरेंद्र सिंह भदौरिया को रिक्ति होने की स्थिति में अपने बीच से एक नए प्रबंधक का चुनाव करने का अधिकार प्रदान करती है।

न्यायालय की राय में, दोनों खंडों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि निवर्तमान प्रबंधक के वरिष्ठतम कानूनी उत्तराधिकारी के अक्षम हो जाने या सचिव/प्रबंधक के रूप में कार्य करने से इनकार करने की स्थिति में ही खंड में उल्लिखित तीन व्यक्ति अपने बीच से प्रबंधक का चुनाव करने के लिए अपने अधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। अतः प्रबंधक के रूप में माने जाने की पहली प्राथमिकता निवर्तमान प्रबंधक के वरिष्ठतम कानूनी उत्तराधिकारी को दी जाती है।

मामले के तथ्यों में यह निर्विवाद है कि हरीश चंद्र सिंह के सबसे बड़े पुत्र अशोक कुमार का उनके जीवनकाल में ही देहांत हो गया था। याचिकाकर्ता हरीश चंद्र सिंह के दूसरे सबसे बड़े पुत्र हैं, जो पूर्व प्रबंधक/सचिव थे। अतः, संशोधित धारा के अनुसार हरीश चंद्र सिंह के इस्तीफे/मृत्यु के बाद उन्हें प्रबंधक के रूप में अधिमान्य अधिकार प्राप्त है।

हालांकि, प्रश्न यह बना हुआ है कि क्या याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 4 के 2006 में प्रबंधक चुने जाने और उसके बाद अधिनियम, 1860 की धारा 4 के तहत प्रतिवादी संख्या 4 के नाम पर पदाधिकारियों की सूची पंजीकृत होने के मद्देनजर अपने अधिकार का त्याग कर दिया था।

उक्त मुद्दे का निर्धारण करने के लिए, यह जांच करना आवश्यक है कि क्या प्रतिवादी संख्या 4 ने 2006 में प्रबंधक के रूप में अपने कथित चुनाव के बाद कभी भी सोसायटी के प्रबंधक/सचिव के अधिकारों का प्रयोग किया था या नहीं, जिसके लिए सोसायटी के प्रासंगिक दस्तावेजों और इस संबंध में रखे गए खातों आदि पर विचार करना आवश्यक है। किसी अधिकार का त्याग मूलतः एक तथ्यात्मक मुद्दा है जिसे पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों और उनके आचरण से निकाला जाना है।

रिकॉर्ड पर मौजूद सभी तथ्यों के आधार पर, न्यायालय की राय है कि वर्तमान रिट याचिका का निपटारा इस प्रकार किया जाए कि याचिकाकर्ता को आज से दो सप्ताह के भीतर निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 25 (1) के तहत एक संदर्भ याचिका दायर करने की अनुमति दी जाए, जिसमें इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ प्रतिवादी संख्या 3 को सोसायटी के प्रबंधक/सचिव के रूप में स्वीकार किए जाने और उनके पद पर बने रहने के आदेश को चुनौती दी गई हो। यदि ऐसी याचिका दायर की जाती है, तो निर्धारित प्राधिकारी विवाद का संज्ञान लेगा और उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में, याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 3 से 5 को सुनवाई का अवसर प्रदान करने और सोसायटी के मूल अभिलेखों की जांच करने के बाद, संदर्भ याचिका प्राप्त होने की तिथि से दो माह के भीतर उसका निर्णय करेगा। वह एक तर्कसंगत आदेश पारित करेगा। उप रजिस्ट्रार द्वारा पारित विवादित आदेश, उपरोक्त निर्देशानुसार निर्धारित प्राधिकारी

द्वारा पारित आदेशों के अधीन होगा। उपरोक्त निर्देशानुसार निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के अनुसार सभी परिणामी कार्रवाई तत्काल की जाएगी।

उपरोक्त निर्देश/टिप्पणियों के साथ, यह रिट याचिका निपटाई जाती है।

26. इस न्यायालय के निर्णय के उद्धृत अंश से पता चलता है कि इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता को निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करने की अनुमति दी है और निर्धारित प्राधिकारी को यह निर्णय लेने का निर्देश दिया है कि क्या सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(ख) में कोई वैध संशोधन किया गया है और क्या खंड 10 के आलोक में खंड 8(ख) में संशोधन किया जा सकता है।

इस न्यायालय ने निर्धारित प्राधिकारी को यह निष्कर्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया कि क्या रिट याचिका के याचिकाकर्ता (वर्तमान रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 4) ने अपने अधिकार का त्याग कर दिया है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी संख्या 4 (वर्तमान रिट याचिका में याचिकाकर्ता संख्या 2) वर्ष 2006 में प्रबंधक के रूप में निर्वाचित हुए थे और उसके बाद, उत्तर प्रदेश सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के प्रावधानों के तहत पदाधिकारियों की सूची प्रतिवादी संख्या 4 के पास पंजीकृत है।

27. अब न्यायालय वर्तमान मामले में यह विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ता है कि क्या निर्धारित प्राधिकारी ने प्रतिवादी संख्या 4 के आवेदन पर निर्णय लेते समय उपरोक्त दो मुद्दों पर निष्कर्ष दिया था या नहीं।

28. जहां तक इस प्रश्न का संबंध है कि क्या धारा 10 के आलोक में सोसायटी के उपनियमों की धारा 8(ख) में संशोधन किया जा सकता है, विवादित आदेश से पता चलता है कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा इस मुद्दे पर एक निष्कर्ष दिया गया है। यद्यपि निष्कर्ष विस्तृत नहीं है, फिर भी निर्धारित प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि सोसायटी के उपनियमों की धारा 8(ख) में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है।

29. निर्धारित प्राधिकारी ने इस मुद्दे पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया है कि क्या प्रतिवादी संख्या 4 ने सोसायटी के प्रबंधक के रूप में बने रहने के अपने अधिकार का त्याग कर दिया है।

30. यदि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा अपने अधिकार का त्याग किया गया है या नहीं, इस विषय पर कोई निर्णय नहीं दिया गया होता, तो यह न्यायालय मामले को वापस भेज सकता था। वर्तमान मामले में विवाद लंबे समय से लंबित है और विचारणीय मुख्य प्रश्न यह है कि क्या सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 के आलोक में सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (ख) में कोई वैध संशोधन या परिवर्धन किया जा सकता है। यदि उक्त प्रश्न का उत्तर 'सकारात्मक' है, तो न्यायालय का मत है कि प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा अपने अधिकार का त्याग किया गया है या नहीं, इस संबंध में निर्धारित प्राधिकारी द्वारा कोई और निर्णय दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है, और यदि उक्त प्रश्न का उत्तर 'नकारात्मक' है, तो यह मामला वापस भेजने योग्य है।

31. इस मामले में, इस न्यायालय ने पहले ही सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 का उल्लेख किया है, जिसमें यह प्रावधान है कि उपनियमों में कोई भी संशोधन सोसायटी के 2/3 सदस्यों द्वारा बहुमत के आधार पर किया जा सकता है। हालांकि, यह खंड सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (क)(ख)(ग) को प्रभावित नहीं करेगा। खंड 10 विशिष्ट और असंदिग्ध है और यह निर्धारित करता है कि सोसायटी के उपनियमों का उक्त खंड सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (क)(ख)(ग) को प्रभावित नहीं करेगा, जिसका अर्थ है कि खंड 10 सोसायटी की आम सभा की सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (क)(ख)(ग) में संशोधन करने की शक्ति पर प्रतिबंध लगाता है। एक बार जब सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 द्वारा कोई विशिष्ट शर्त लगा दी जाती है, तो इस न्यायालय का मत है कि प्रबंधन समिति की आम सभा द्वारा उपनियमों के खंड 10 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए खंड 8(क) में कोई संशोधन या परिवर्धन नहीं किया जा सकता है। सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(क)(ख)(ग) में कोई भी परिवर्धन या संशोधन केवल तभी किया जा सकता है जब सोसायटी के उपनियमों के अनुसार खंड 10 में संशोधन किया जाए और उपनियमों में खंड 10 द्वारा लगाई गई उस शर्त को हटा दिया जाए कि "यह सोसायटी के उपनियमों के खंड 8(क)(ख)(ग) को प्रभावित नहीं करेगा।"

32. इस मामले में, अभिलेख में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 में कोई संशोधन किया गया है और खंड 10 द्वारा लगाई गई शर्त कि यह सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (क)(ख)(ग) को प्रभावित नहीं करेगी, हटा दी गई है।

33. इस न्यायालय का मत है कि जब तक सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 में यह शर्त लागू रहती है कि इससे सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (क) (ख) (ग) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, तब तक खंड 8 (क) (ख) (ग) में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का मत है कि सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 में दी गई शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रबंधन समिति या आम सभा द्वारा सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (ख) में संशोधन/जोड़ नहीं किया जा सकता है। अतः, सोसायटी के उपनियमों के खंड 8 (ख) में संशोधन स्वतः ही अवैध है और सोसायटी के उपनियमों की भावना के विरुद्ध है। अतः, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा खंड 8 (ख) में केवल कुछ तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किए गए संशोधन के संबंध में दिया गया तर्क निराधार है और इसे अस्वीकार किया जाता है।

34. चूंकि इस न्यायालय ने यह माना है कि सोसायटी के उपनियमों के खंड 10 में दी गई शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रबंधन समिति या आम सभा द्वारा खंड 8 (ख) में कोई संशोधन/संवर्धन नहीं किया जा सकता है, इसलिए खंड 8 (ख) में किया गया संशोधन/संवर्धन अमान्य है, और केवल मूल खंड ही अस्तित्व में रहता है। अतः, केवल प्रतिवादी संख्या 4 को ही प्रबंधक नियुक्त किया जा सकता है, क्योंकि वे प्रबंधक के सबसे वरिष्ठ कानूनी उत्तराधिकारी हैं।

35. चूंकि याचिकाकर्ता धारा 8 (ख) में संशोधन के आधार पर अपनी नियुक्ति का दावा कर रहा है और इस न्यायालय द्वारा इसे अमान्य घोषित किया जा चुका है, इसलिए याचिकाकर्ता की प्रबंधक के रूप में नियुक्ति

सोसायटी के उपनियमों के विरुद्ध थी। तथ्यों को देखते हुए, प्रतिवादी संख्या 4 के अधिकार के त्याग का प्रश्न ही नहीं उठता।

36. इस समय यह भी ध्यान देने योग्य है कि सोसायटी के उपनियमों के अनुसार, प्रतिवादी संख्या 4 को प्रबंधक के रूप में नियुक्त होने का अधिकार हरिश्चंद्र सिंह की मृत्यु के बाद ही प्राप्त होता है। अतः, इस तथ्य को देखते हुए, प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा प्रबंधक के रूप में नियुक्त होने के अधिकार का कोई त्याग नहीं किया गया है, क्योंकि प्रतिवादी संख्या 4 ने हरिश्चंद्र सिंह की मृत्यु के तुरंत बाद प्रबंधक के रूप में नियुक्त होने के अपने अधिकार का दावा किया था।

37. अतः, ऊपर दिए गए कारणों से, रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं है और इसे बिना किसी लागत आदेश के खारिज किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 792

मूल क्षेत्राधिकार, दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 03.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान,

के समक्ष

रिट याचिका संख्या 23088/2018

सत्यवीर

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: श्री भरत सिंह, श्री भेषज पुरी, सुश्री प्रीति चौधरी

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 323, 504, 506 और 171सी - आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013 - धारा 7 - याचिकाकर्ता को .32 बोर रिवॉल्वर के लिए आग्नेयास्त्र लाइसेंस जारी किया गया था, जिसे आपराधिक मामले के लंबित होने के कारण जिला मजिस्ट्रेट द्वारा रद्द कर दिया गया था। - यह माना गया कि यह प्रदर्शित करने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है कि याचिकाकर्ता सार्वजनिक शांति और व्यवस्था के लिए खतरा कैसे था। - केवल आपराधिक मामले के लंबित होने से स्वतः ही हथियार लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता। - केवल एसएसपी की रिपोर्ट पर भरोसा किया गया है, जिसमें आपराधिक मामले का विवरण है। - अभियोजन पक्ष यह प्रदर्शित करने में विफल रहा कि याचिकाकर्ता ने किसी

भी तरह से अपने आग्नेयास्त्र का दुरुपयोग किया है और याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई दोषसिद्धि नहीं हुई है। - इसलिए, विवादित आदेश रद्द किया जाता है और अधिकारियों को आग्नेयास्त्र लाइसेंस बहाल करने का निर्देश दिया जाता है। (पैरा 8, 9, 12)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान, द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ता के वकील श्री भेषज पुरी की ओर से अधिवक्ता सुश्री प्रीति चौधरी और राज्य-प्रतिवादियों के अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील की दलीलें सुनी गईं।

2. याचिकाकर्ता के वकील ने बताया कि शुरुआत में याचिकाकर्ता को दो आग्नेयास्त्र लाइसेंस जारी किए गए थे। एक .32 बोर रिवाल्वर और दूसरा 12 बोर राइफल। यह मामला .32 बोर रिवाल्वर से संबंधित हथियार लाइसेंस रद्द करने के संबंध में है। दिनांक 7.12.2012 के विवादित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता का आग्नेयास्त्र लाइसेंस आपराधिक मामले (केस क्राइम नंबर 1056/2010) के लंबित होने के आधार पर रद्द कर दिया गया है, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323, 504, 506, 171C और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत आता है। इसी प्रकार के तथ्यों के आधार पर इस न्यायालय द्वारा दिनांक 23.7.2013 के आदेश द्वारा अन्य 12 बोर राइफल का लाइसेंस पहले ही बहाल किया जा चुका है, जिसे प्रतिवादियों ने स्वीकार कर लिया है। इसके बाद, .12 बोर राइफल के संबंध में लाइसेंस बहाल कर दिया गया है। रिट याचिका संख्या 32621/2012 में दिनांक 23.7.2013 को पारित आदेश नीचे दिया गया है:-

"याचिकाकर्ता का शस्त्र लाइसेंस एक आपराधिक मामले के लंबित होने के आधार पर रद्द कर दिया गया है, इस तथ्य के अलावा कि जो मामला दर्ज किया गया है वह एक मामूली विवाद से संबंधित है और किसी भी मामले में, याचिकाकर्ता के हथियार का दुरुपयोग नहीं किया गया था।"

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, विवादित आदेश को वैध नहीं ठहराया जा सकता और इसे रद्द किया जाता है। याचिका स्वीकार की जाती है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि आगामी चुनावों के कारण याचिकाकर्ता का आग्नेयास्त्र लाइसेंस संबंधित पुलिस स्टेशन में पहले ही जमा करा दिया गया था और प्रथम सूचना रिपोर्ट शारीरिक हमले से संबंधित है तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध यह आरोप नहीं है कि उसने कथित घटना में आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने यह स्वीकार किया कि वर्तमान मामले में आपराधिक मुकदमा विचाराधीन है। हालांकि, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का कहना है कि केवल याचिकाकर्ता के आपराधिक अभियोजन के आधार पर, जबकि याचिकाकर्ता पर घटना में आग्नेयास्त्र का प्रयोग करने का आरोप नहीं है, आग्नेयास्त्र लाइसेंस

रद्द करने का आधार नहीं बनाया जा सकता। विशेष रूप से, जब ऐसे कोई ठोस प्रमाण नहीं हैं जो यह प्रदर्शित करते हों कि याचिकाकर्ता सार्वजनिक शांति और व्यवस्था के लिए खतरा है। विवादित आदेश को अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी गई थी। याचिकाकर्ता ने संबंधित जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष समीक्षा याचिका दायर की थी, जिसे दिनांक 30.8.2013 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। जिसके खिलाफ अपील दायर की गई थी, जिसे दिनांक 7.9.2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे बताया कि इसके बाद, दिनांक 7.12.2012 के मूल आदेश के विरुद्ध अपील दायर की गई थी, जिसे दिनांक 12.4.2018 के आदेश द्वारा समय सीमा समाप्त होने के कारण खारिज कर दिया गया था।

6. विद्वान स्थायी वकील ने बताया कि याचिकाकर्ता भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323, 504, 506, 171C और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7 के तहत केस संख्या 1056/2010 में संलिप्त था और उपरोक्त आधार पर, दिनांक 7.12.2012 के विवादित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता का लाइसेंस रद्द कर दिया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने पुनर्विचार याचिका दायर की, जिसे दिनांक 30.8.2013 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। पुनर्विचार याचिका पर पारित आदेश के विरुद्ध अपील दायर की गई थी, जिसे दिनांक 7.9.2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है। इसके बाद, दिनांक 7.12.2012 के मूल आदेश के विरुद्ध अपील दायर की गई, जिसे समय सीमा समाप्त होने के कारण दिनांक 12.4.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

7. हालांकि, विद्वान स्थायी वकील इस तथ्य से इनकार नहीं कर सके कि याचिकाकर्ता के एक अन्य आग्नेयास्त्र लाइसेंस के संबंध में समान परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने 23.7.2013 को याचिकाकर्ता का लाइसेंस बहाल कर दिया था और इसे किसी उच्च न्यायालय में चुनौती नहीं दी गई थी।

8. वर्तमान मामले में यह देखा जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता को .32 बोर रिवॉल्वर के लिए आग्नेयास्त्र लाइसेंस जारी किया गया था, जिसे दिनांक 7.12.2012 के विवादित आदेश द्वारा आपराधिक मामले (केस क्राइम नंबर 1056/2010) के लंबित होने के कारण रद्द कर दिया गया था। यह मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 323, 504, 506, 171C और आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत था। राज्य का यह मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता ने उस आग्नेयास्त्र का उपयोग किया है जिसके लिए लाइसेंस जारी किया गया था। संबंधित जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 7.12.2012 के विवादित आदेश में यह पाया है कि याचिकाकर्ता का आपराधिक इतिहास है और हथियार लाइसेंस जारी रहने से सार्वजनिक शांति और व्यवस्था भंग होगी।

9. दिनांक 7.12.2012 के आदेश का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा सार्वजनिक शांति और व्यवस्था को खतरा साबित करने के लिए विवादित आदेश में कोई भी सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है। यह सर्वविदित कानून है कि किसी आपराधिक मामले के लंबित होने मात्र से स्वतः ही शस्त्र लाइसेंस रद्द नहीं हो जाता। यह भी सर्वविदित कानून है कि जब तक किसी व्यक्ति को दोषी सिद्ध नहीं किया जाता, तब

तक उसे निर्दोष माना जाता है। अतः, जिला मजिस्ट्रेट के लिए एक विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज करना अनिवार्य है। जिला मजिस्ट्रेट ने किसी भी सामग्री पर भरोसा नहीं किया है। केवल एसएसपी की दिनांक 29.11.2010 की रिपोर्ट पर भरोसा किया गया है, जिसमें आपराधिक मामले का विवरण है। न ही इस न्यायालय के समक्ष यह सिद्ध किया गया है कि याचिकाकर्ता ने किसी भी प्रकार से अपने आग्नेयास्त्र का दुरुपयोग किया है और आज तक याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई दोषसिद्धि नहीं हुई है।

10. यह ध्यान देने योग्य है कि समान परिस्थितियों में याचिकाकर्ता का दूसरा शस्त्र लाइसेंस रिट सी-नंबर 32621 ऑफ 2012 में दिनांक 23.7.2013 के आदेश द्वारा पहले ही बहाल कर दिया गया है, जिसे चुनौती नहीं दी गई है।

11. चूंकि वर्तमान मामले और उपरोक्त रिट याचिका की परिस्थितियां समान थीं और विद्वान स्थायी वकील इस न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके जिससे यह सिद्ध हो कि याचिकाकर्ता सार्वजनिक शांति और व्यवस्था के लिए खतरा है। मात्र किसी आपराधिक मामले के लंबित होने से, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा आग्नेयास्त्र के दुरुपयोग का कोई आरोप नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता सार्वजनिक शांति और व्यवस्था के लिए खतरा है।

12. तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 12.4.2018 का आदेश, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 7.9.2027 का आदेश और दिनांक 7.12.2012 और 30.8.2013 के आदेश रद्द किए जाते हैं। रिट याचिका स्वीकार की जाती है। संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से 30 दिनों के भीतर याचिकाकर्ता का आग्नेयास्त्र लाइसेंस बहाल करने का निर्देश दिया जाता है। याचिकाकर्ता के हथियार लाइसेंस को बहाल करते समय, जिला मजिस्ट्रेट लाइसेंस के नवीनीकरण के समय यह निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होंगे कि दिनांक 7.12.2012 के आदेश के बाद की घटनाओं के आधार पर नवीनीकरण प्रदान किया जा सकता है या नहीं।

(2025) 3 ILRA 794

मूल क्षेत्राधिकार: दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 18.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता,

के समक्ष

रिट याचिका संख्या 31219/2024

कल्याण सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: दिलीप कुमार गोस्वामी, हिमांशु पांडे, सुनील कुमार पांडे

प्रतिवादियों के वकील: श्री अखिलेश कुमार शर्मा, मुख्य न्यायाधिकरण वकील

सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - पंजीकरण शुल्क की वापसी - वाईईआईडीएने आवासीय भूखंडों के आवंटन के लिए एक योजना का विज्ञापन किया। - योजना में नियोजित विकास के लिए अधिग्रहित/खरीदी गई भूमि वाले व्यक्तियों के लिए कुल भूखंडों का 17.5% आरक्षित करने का प्रावधान था। - याचिकाकर्ता के पिता की भूमि पहले अधिग्रहित की गई थी, लेकिन योजना शुरू होने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। याचिकाकर्ता ने 'किसान श्रेणी' के तहत आवेदन किया। - उन्होंने पंजीकरण शुल्क के साथ ऑनलाइन आवेदन जमा किया, जिसे स्वीकार कर लिया गया और लॉटरी में शामिल किया गया। - यह माना गया कि याचिकाकर्ता आवंटन शुल्क का भुगतान करने के लिए इच्छुक था, पट्टा विलेख प्राप्त करने के लिए, उन्होंने अपने दो भाइयों को नोटिस जारी करने का अनुरोध किया, जो अनापत्ति प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार नहीं थे। - वाईईआईडीएने द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई, याचिकाकर्ता ने पंजीकरण शुल्क की वापसी के लिए आवेदन किया। - यह ब्रोशर के खंड 18(iv) और 18(v) के तहत समर्पण का मामला नहीं है। - याचिकाकर्ता ने ब्रोशर में उल्लिखित न होने वाली लेकिन बाद में यानी दस महीने बाद लागू की गई शर्त के मद्देनजर पंजीकरण शुल्क की वापसी का अनुरोध किया। आवंटन पत्र जारी होने के बाद - विवरणिका में किसी शर्त के अभाव में, याचिकाकर्ता पंजीकरण राशि की ज़बती का शिकार नहीं हो सकता - विवादित आदेश रद्द किया जाता है। (पैरा 2, 4, 13 से 15)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता, और माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता, द्वारा सुनाया गया)

1. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने दिनांक 04.04.2024 को पारित उस आदेश को चुनौती दी है, जो प्रतिवादी संख्या 2, यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण (संक्षेप में 'वाईईआईडीए') द्वारा पारित किया गया था, जिसमें प्लॉट संख्या 104, ब्लॉक-ई, सेक्टर-16, क्षेत्रफल 162 वर्ग मीटर के संबंध में आवंटित 3,98,520/- रुपये की राशि जब्त कर ली गई थी। यह आवंटन याचिकाकर्ता को 'किसान श्रेणी' के तहत किया गया था।

पृष्ठभूमि तथ्य:

2. संक्षेप में तथ्य यह हैं कि वाईईआईडीए ने अन्य बातों के साथ-साथ खसरा संख्या 531, क्षेत्रफल 1.2840 हेक्टेयर, का अधिग्रहण किया, जो याचिकाकर्ता के पिता जगपाल सिंह का था। अधिग्रहित भूमि के लिए मुआवजा याचिकाकर्ता के पिता को विधिवत भुगतान कर दिया गया था। याचिकाकर्ता के पिता का 21.03.2017 को निधन हो गया, और वे अपने पीछे विधवा श्रीमती छोड़ गए। निर्मला, दो विवाहित बेटियाँ और याचिकाकर्ता

सहित पाँच पुत्र। वाईईआईडीए ने वर्ष 2023 में विभिन्न आकारों के आवासीय भूखंडों के आवंटन के लिए एक योजना का विज्ञापन दिया। इस योजना में कुल भूखंडों का 17.5% उन व्यक्तियों के लिए आरक्षित करने का प्रावधान था जिनकी भूमि वाईईआईडीए द्वारा नियोजित विकास या जेवर हवाई अड्डे के निर्माण के लिए अधिग्रहित/खरीदी गई थी। चूंकि याचिकाकर्ता के पिता की भूमि भी वाईईआईडीए द्वारा नियोजित विकास के लिए अधिग्रहित की गई थी, लेकिन योजना के 08.08.2023 को प्रारंभ होने से पहले 21.03.2017 को उनका निधन हो गया था, इसलिए याचिकाकर्ता ने उनके माध्यम से अधिकार का दावा करते हुए 'किसान श्रेणी' के तहत आवंटन के लिए आवेदन किया। खंड 15D इस श्रेणी के तहत आवंटन के लिए पात्रता निर्धारित करता है और इसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"डी. पात्र किसान जिनकी भूमि येड़ा द्वारा या जेवर हवाई अड्डे पर अधिग्रहित/खरीदी गई है।"

इस श्रेणी के अंतर्गत विस्तृत पात्रता शर्तें और आवंटन प्रक्रिया निम्न प्रकार से दी गई हैं:

(i) इस योजना के अंतर्गत केवल वे किसान आवेदन करने के पात्र हैं जिनकी भूमि यमुना एक्सप्रेसवे औद्योगिक विकास प्राधिकरण या जेवर हवाई अड्डे द्वारा इस योजना की अंतिम तिथि से पहले अधिग्रहित/खरीदी गई हो और उस पर बिना किसी अतिक्रमण के कब्जा लिया गया हो। (आवेदक किसान को ब्रोशर में दिए गए प्रपत्र के अनुसार 100 रुपये के स्टॉप पेपर पर वचन पत्र-1 देना होगा।)

(ii) यदि किसी भूमिधारक को प्राधिकरण की किसी भी आवासीय योजना में उसके नाम पर या उसके जीवनसाथी/आश्रित बच्चों के नाम पर पहले से ही आवासीय भूखंड/निर्मित फ्लैट आवंटित किए गए हैं, तो वह इस योजना के अंतर्गत आवेदन करने के पात्र नहीं होंगे।

(iii) आवेदक किसान को इस योजना की अंतिम तिथि तक या उससे पहले अपनी अधिग्रहित भूमि का मुआवजा प्राप्त हो जाना चाहिए। वे किसान जिन्होंने प्राधिकरण की किसी भी अधिग्रहित भूमि पर अतिक्रमण किया है या प्राधिकरण के विरुद्ध कोई रिट/मुकदमा दायर किया है, वे इस योजना के अंतर्गत आवंटन के पात्र नहीं हैं।

(iv) यदि एक से अधिक संयुक्त खातेदार हैं, तो सभी संयुक्त खातेदार इस योजना के अंतर्गत आवेदन कर सकते हैं। खाते के सभी पात्र संयुक्त खातेदारों के बीच लॉटरी निकाली जाएगी और सभी संयुक्त खातेदारों में से एक सफल आवेदक का चयन किया जाएगा, जिसे अंतिम लॉटरी में शामिल किया जाएगा।

(v) इस श्रेणी के अंतर्गत, सफल आवेदक/आवंटी आवंटन की तिथि से पांच वर्ष तक आवंटित भूखंड का हस्तांतरण नहीं कर सकता है।

(vi) आवेदक द्वारा यमुना प्राधिकरण द्वारा अधिग्रहित/खरीदी गई भूमि पर, चाहे वह अधिग्रहित भूमि हो या कोई अन्य भूमि जिसके लिए इस योजना के अंतर्गत आवंटन हेतु आवेदन किया जा रहा है, कोई अतिक्रमण

नहीं किया गया होना चाहिए। इस संबंध में आवेदक/किसान को आवेदन पत्र (अंडरटेकिंग II) में दिए गए प्रपत्र के अनुसार 100/- रुपये के स्टॉप पेपर पर घोषणा करनी होगी।

(vii) आवेदक को अधिग्रहित भूमि का पूरा मुआवजा बिना किसी विवाद/मुकदमेबाजी के प्राप्त हो चुका होना चाहिए। आवेदक को सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी प्रपत्र-11/प्रमाणित केले की प्रति आवेदन के साथ जमा करनी होगी।

(viii) आवेदक किसान और सभी खातेदारों को एक शपथपत्र प्रस्तुत करना होगा जिसमें यह कहा गया हो कि वे किसी भी न्यायालय में मुआवजे में वृद्धि या अतिरिक्त भूमि के दावे के लिए कोई कानूनी मामला दायर नहीं करेंगे।

(ix) यदि सत्यापन के दौरान या किसी भी स्तर पर यह पाया जाता है कि उपरोक्त शर्तों में से किसी का उल्लंघन हुआ है, तो आवेदन अस्वीकृत कर दिया जाएगा और पंजीकरण शुल्क बिना किसी ब्याज के वापस कर दिया जाएगा।

(x) यदि इस श्रेणी के अंतर्गत आवेदकों की संख्या आरक्षित भूखंडों की संख्या से कम है, तो शेष भूखंडों को सामान्य श्रेणी के लिए आयोजित लॉटरी में शामिल किया जाएगा।

3. ऑनलाइन माध्यम से आवेदन जमा करने की प्रक्रिया, अन्य बातों के अलावा, इस प्रकार थी:

16. आवेदन प्रक्रिया

(i) आवेदन केवल यमुना प्राधिकरण की वेबसाइट www.yamunaexpresswayauthority.com पर ऑनलाइन जमा किया जा सकता है। भुगतान गेटवे/नेट बैंकिंग के माध्यम से।

(ii) आवेदन पत्र यमुना प्राधिकरण की वेबसाइट www.yamunaexpresswayauthority.com से ऑनलाइन भुगतान गेटवे या नेट बैंकिंग के माध्यम से 500/- रुपये + 18% जीएसटी का भुगतान करके प्राप्त किया जा सकता है।

(iii) विधिवत भरा और हस्ताक्षरित आवेदन पत्र, आवश्यक पंजीकरण शुल्क और सभी आवश्यक अनुलग्नकों के साथ, इस योजना के खुलने और बंद होने की तिथि के बीच किसी भी कार्य दिवस पर इस विवरणिका के पृष्ठ पर दिए गए ऑनलाइन आवेदन पत्र पर नेट बैंकिंग के माध्यम से जमा किया जाना चाहिए।

(iv) यदि आवेदन किसी भी प्रकार से अपूर्ण है, या कोई कॉलम खाली छोड़ दिया गया है, या फोटो निर्धारित स्थान पर नहीं चिपकाया गया है, या पता अधूरा या गलत है, या घोषणापत्र पर हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान

नहीं है या गलत दर्ज किया गया है, तो आवेदन प्रक्रिया पूरी नहीं होगी। आवेदन पत्र में दी गई जानकारी के आधार पर आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

4. योजना में उल्लिखित शर्तों के अनुसार, याचिकाकर्ता ने पंजीकरण शुल्क के रूप में 3,98,520/- रुपये के साथ ऑनलाइन आवेदन जमा किया। आवेदन विधिवत स्वीकार कर लिया गया और उसे एक विशिष्ट क्रमांक आवंटित किया गया। इसे लॉटरी में शामिल किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता सफल रहा और तदनुसार, दिनांक 01.11.2023 को याचिकाकर्ता के पक्ष में आवंटन पत्र जारी किया गया। इससे पता चलता है कि याचिकाकर्ता को सेक्टर-16 के ब्लॉक-ई का प्लॉट नंबर 104 आवंटित किया गया था, जिसका क्षेत्रफल 162 वर्ग मीटर है। दिनांक 08.11.2023 के पत्र के अनुसार, याचिकाकर्ता को यह साबित करने के लिए 100 रुपये के हलफनामे पर क्षतिपूर्ति बांड और भूमि अधिग्रहण अधिनियम के प्रपत्र संख्या 11(2) की प्रति जमा करनी थी कि योजना के समापन से पहले वाईईआईडीए द्वारा भूमि का अधिग्रहण किया गया था और मुआवजा दिया गया था, और इस प्रकार वह 'किसान श्रेणी' के तहत आवेदन करने के लिए पात्र था। याचिकाकर्ता ने तदनुसार प्रपत्र संख्या 11 की प्रति के साथ दो क्षतिपूर्ति बांड प्रस्तुत किए। यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि दिनांक 08.11.2023 के पत्र के फुटनोट में यह शर्त थी कि यदि आवेदक ने मूल पट्टेदार (किसान) की मृत्यु के बाद आवेदन किया है, तो आवेदक को उत्तराधिकार प्रमाण पत्र और अन्य वारिसों से अनापति प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत करना होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के दो भाइयों, राकेश कुमार और अमित कुमार ने याचिकाकर्ता को कोई अनापति नहीं दी। इसलिए, याचिकाकर्ता ने 28.11.2023 को वाईईआईडीए के समक्ष एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उक्त तथ्य को ध्यान में लाया गया और यह भी अनुरोध किया गया कि उसके भाइयों को नोटिस जारी किया जाए और यदि वे कोई आपत्ति दर्ज नहीं करते हैं, तो याचिकाकर्ता के पक्ष में पट्टा विलेख निष्पादित किया जाए। दिनांक 05.12.2023 को, वाईईआईडीए के प्रबंधक (संपत्ति) ने याचिकाकर्ता को एक बार फिर पत्र जारी कर उनसे निर्धारित प्रारूप में अनापति प्रमाण पत्र और क्षतिपूर्ति बांड तथा फॉर्म संख्या 11 जमा करने को कहा, ताकि वे 'किसान श्रेणी' के अंतर्गत अपने दावे का समर्थन कर सकें। यह पत्र 31.12.2023 तक जमा करना था, अन्यथा आवंटन रद्द कर दिया जाएगा।

5. इस चरण में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.12.2023 के पत्र को रद्द करने की मांग करते हुए इस न्यायालय से संपर्क किया, लेकिन उक्त याचिका को प्राधिकरण के समक्ष शिकायत को आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता के साथ वापस ले लिया गया। तदनुसार, दिनांक 17.01.2024 के आदेश द्वारा रिट याचिका खारिज कर दी गई। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने 21.02.2024 को फिर से प्राधिकरण को अभ्यावेदन दिया, जिसमें कहा गया कि जबकि अन्य भाइयों ने कोई आपत्ति नहीं दी है, उसके दो भाई अनापति प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं हैं। याचिकाकर्ता ने यह भी कहा कि उसने अपने भाइयों को भूखंड की पेशकश भी की थी, लेकिन उसे भी स्वीकार नहीं किया गया। इसलिए, उसने एक बार फिर अपने दोनों भाइयों को नोटिस जारी करने का अनुरोध किया। हालांकि, जब इस मामले में कोई कार्रवाई नहीं की गई, तो याचिकाकर्ता को यह एहसास हो गया कि वह अपने दोनों भाइयों से अनापति प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं कर पाएगा, इसलिए उसने आवंटन राशि की वापसी के लिए 28.02.2024 और 15.03.2024 को आवेदन किया। याचिकाकर्ता का दिनांक 28.02.2024 का आवेदन,

जिसमें आवंटन राशि की वापसी की मांग की गई थी, ब्रोशर के खंड 18 (iv) पर भरोसा करते हुए खारिज कर दिया गया है।

याचिकाकर्ता के वकील की दलीलें:

6. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि विवादित आदेश पूरी तरह से अवैध है और मनमाने ढंग से शक्ति का प्रयोग करने का परिणाम है। ब्रोशर में अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की कोई शर्त नहीं थी। उक्त शर्त पहली बार दिनांक 08.11.2023 के पत्र के माध्यम से अवैध रूप से जोड़ी गई थी। यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी लॉटरी के बाद ऐसी कोई शर्त नहीं जोड़ सकते थे। वैकल्पिक रूप से, यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त शर्त, यदि वैध भी होती, तो भी याचिकाकर्ता का मामला ब्रोशर के खंड 18(iv) के अंतर्गत नहीं आता। उक्त खंड केवल समर्पण के मामले पर लागू होता है, न कि वर्तमान जैसे मामले पर। यदि प्राधिकरण आवंटन रद्द करने के लिए सक्षम भी था, तो उसे आवंटन राशि वापस कर देनी चाहिए थी और उसे वैध नहीं ठहराना चाहिए था।

प्रतिवादी के वकील का निवेदन:

7. दूसरी ओर, वाईईआईडीए के विद्वान वकील ने प्रति-हलफनामे पर भरोसा करते हुए निवेदन किया कि यद्यपि ब्रोशर में अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने के लिए कोई विशिष्ट शर्त नहीं थी, फिर भी धारा 28 के तहत मुख्य कार्यकारी अधिकारी आवंटन की शर्तों और नियमों को जोड़ने/बदलने/संशोधित करने के लिए सक्षम थे और वाईईआईडीए द्वारा लगाई गई अतिरिक्त शर्त इसी शक्ति का प्रयोग करते हुए लगाई गई थी। उनका निवेदन है कि चूंकि याचिकाकर्ता अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने में विफल रहा, इसलिए प्राधिकरण ने ब्रोशर की धारा 18(iv) के तहत उचित कार्रवाई की है। उनका यह भी निवेदन है कि याचिकाकर्ता ने अपने आवेदन और हलफनामे में कहा है कि उसे मुआवजा प्राप्त हुआ है, जबकि मुआवजा उसके पिता को दिया गया था। नीति के अनुसार, केवल मूल भूमिधारक (किसान) ही आवेदन करने के पात्र थे। याचिकाकर्ता ने अपने पिता के माध्यम से दावा किए गए अधिकारों के आधार पर आवेदन किया था, इसलिए उसे अन्य वारिसों से अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी, और चूंकि वह अनापत्ति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने में विफल रहा, इसलिए आवंटन राशि को विवरणिका के खंड 18(iv) के तहत उचित रूप से जब्त कर लिया गया है।

विश्लेषण:

8. धारा 15D के तहत, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, वे किसान आवेदन करने के पात्र थे जिनकी भूमि YEIDA द्वारा नियोजित विकास या जेवर हवाई अड्डे के लिए अधिग्रहित/खरीदी गई थी। प्रपत्र 1 में क्षतिपूर्ति बांड इस दावे को सत्यापित करने के लिए था कि भूमि YEIDA द्वारा अधिग्रहित/खरीदी गई थी। क्षतिपूर्ति बांड संख्या 2 एक घोषणा के रूप में था कि आवेदक YEIDA या जेवर हवाई अड्डे की किसी भी

भूमि पर अवैध कब्जे में नहीं है और विकास कार्यों में कोई बाधा नहीं डालेगा। याचिकाकर्ता ने प्रोफार्मा संख्या 1 और 2 में आवश्यकतानुसार वचन दिया था और इस संबंध में कोई विवाद नहीं है। याचिकाकर्ता ने अपने ऑनलाइन आवेदन में आवेदक के रूप में अपना नाम और अपने पिता जगपाल सिंह का नाम भी उस किसान के रूप में दर्ज किया था जिसकी भूमि अधिग्रहित की गई थी।

9. धारा 16(iv) के तहत, YEIDA को किसी भी ऐसे आवेदन पर विचार करने से इनकार करने का अधिकार था जो किसी भी तरह से अपूर्ण हो या यदि कोई कॉलम खाली छोड़ दिया गया हो या उसमें कोई गलत तथ्य दर्ज किया गया हो। येड़डा ने आवेदन को विधिवत स्वीकार कर लिया, उसे एक विशिष्ट क्रमांक आवंटित किया और उसे लॉटरी में भी शामिल किया। इस प्रकार, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आवेदन सभी दृष्टियों से पूर्ण था।

10. स्पष्ट रूप से, किसानों के पक्ष में आरक्षण का उद्देश्य उनका पुनर्वास करना था। ब्रोशर में मूल भूमिधारक के उत्तराधिकारियों के आवेदन पर किसी विशिष्ट रोक के अभाव में, उक्त श्रेणी के अंतर्गत याचिकाकर्ता की आवेदन करने की पात्रता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। हालांकि, विवादित आदेश में यह टिप्पणी की गई है कि ब्रोशर के अनुसार, केवल वही किसान आवेदन कर सकते थे जिनकी भूमि का अधिग्रहण किया गया था, लेकिन उस स्थिति में, धारा 15D की उप-धारा (ix) लागू होगी, जिसके तहत, पात्रता के सत्यापन के चरण में, यदि कोई उल्लंघन पाया जाता है, तो आवेदन अस्वीकृत किया जा सकता है और पंजीकरण शुल्क बिना किसी ब्याज के वापस कर दिया जाएगा।

11. इस विवाद को एक अन्य दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है, जिससे वही निष्कर्ष निकलता है। अनापति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने के संबंध में ब्रोशर में कोई उल्लेख नहीं है। यह शर्त पहली बार 8.11.2023 के पत्र के माध्यम से लागू की गई थी, जबकि याचिकाकर्ता पंजीकरण शुल्क जमा कर चुका था और उसे लॉटरी में सफल घोषित किया जा चुका था। स्पष्ट रूप से, यह शर्त मूल भूमिधारक (किसान) के वारिसों के बीच भविष्य के विवादों से बचने के लिए लागू की गई थी, जो समझ में आता है, लेकिन साथ ही, यदि यह ब्रोशर का हिस्सा होता और याचिकाकर्ता को इसकी जानकारी होती, तो शायद उसने आवेदन नहीं किया होता। इसलिए, यद्यपि हमें याचिकाकर्ता से अन्य वारिसों से अनापति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की मांग में YEIDA की ओर से कोई अवैधता या मनमानी नहीं दिखती है, फिर भी YEIDA को इस आधार पर पूरी आवेदन राशि जब्त करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता है।

12. यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 18(v) के तहत कार्रवाई की जा रही है, लेकिन विवादित आदेश और प्रति-हलफनामे दोनों में धारा 18(iv) पर भरोसा किया गया है। धारा 18(iv) और 18(v) इस प्रकार हैं:

"(iv) आवंटन के बाद लेकिन नियत तिथि की समाप्ति और आवंटन राशि जमा करने से पहले किसी भी समय समर्पण के मामले में, पंजीकरण राशि का 10% काटकर शेष राशि बिना किसी ब्याज के वापस कर दी जाएगी।

(v) आवंटन राशि जमा करने की नियत तिथि के बाद लेकिन पट्टा विलेख के निष्पादन से पहले किसी भी समय समर्पण के मामले में, पंजीकरण राशि के समतुल्य राशि काटने के बाद, शेष राशि यदि कोई हो, तो बिना किसी ब्याज के वापस कर दी जाएगी।"

13. धारा 18(iv) और 18(v) अलग-अलग स्थितियों पर लागू होती हैं, जैसा कि उक्त धाराओं को पढ़ने से स्पष्ट है। इनमें सामान्य बात यह है कि ये आवंटिती द्वारा आवंटन के समर्पण के मामले में लागू होंगी। जैसा कि हमने देखा है, इस मामले में याचिकाकर्ता शुरू से ही आवंटन राशि का भुगतान करने और अपने पक्ष में पट्टा विलेख प्राप्त करने में रुचि रखता था। उसने बार-बार YEIDA से अनुरोध किया कि वह उसके दो भाइयों को नोटिस जारी करे, जो अनापति प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार नहीं थे, और यदि कोई वैध आपति न हो, तो उसके पक्ष में पट्टा विलेख निष्पादित करे। हालांकि, जब YEIDA ने उक्त आवेदनों पर कोई कार्रवाई नहीं की, तो याचिकाकर्ता ने यह महसूस करते हुए कि अब आवेदन को आगे बढ़ाना व्यर्थ होगा, पंजीकरण राशि की वापसी के लिए आवेदन किया। इस प्रकार, इसे ब्रोशर की धारा 18(iv) और 18(v) के तहत परिकल्पित समर्पण का मामला नहीं कहा जा सकता। यह एक ऐसा मामला है जहां याचिकाकर्ता को आवंटन रद्द करने और पंजीकरण शुल्क वापस लेने का अनुरोध करने के लिए विवश होना पड़ा, क्योंकि ब्रोशर में विशेष रूप से उल्लेखित न की गई एक शर्त आवंटन पत्र जारी होने के दस महीने बाद, दिनांक 08.11.2023 के पत्र द्वारा बाद में लगाई गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि YEIDA ने भी ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं की थी, जो वर्तमान मामले में उत्पन्न हुई है, और इसलिए ऐसे आवेदनों से निपटने के लिए कोई प्रावधान नहीं किया गया था। YEIDA ने 05.07.2024 को जारी अपनी बाद की आवासीय योजना में, ऐसी स्थिति में अनापति प्रमाण पत्र दाखिल करने का विशेष प्रावधान किया है। शर्त इस प्रकार है:

यदि किसान (जिसकी भूमि अधिग्रहित/खरीदी गई है) की मृत्यु हो गई है, तो सभी वैधानिक वारिस एक वैधानिक वारिस के पक्ष में सहमति देंगे और किसान का मृत्यु प्रमाण पत्र और वैधानिक वारिस प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत करेंगे। प्राधिकरण द्वारा केवल एक ही भूखंड आवंटित किया जाएगा।

14. यदि ऐसी कोई शर्त विवरणिका में होती और याचिकाकर्ता उसका पालन करने में विफल रहता, तो YEIDA द्वारा पंजीकरण राशि जब्त करना उचित हो सकता था। हालांकि, इस मामले में, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, विवरणिका में ऐसी किसी शर्त के अभाव में, याचिकाकर्ता को पंजीकरण राशि जब्त करके दंडित नहीं किया जा सकता है और न ही उसका मामला विवरणिका के खंड 18(iv) या 18(v) के अंतर्गत आता है।

15. तदनुसार, आवंटन राशि जब्त करने का विवादित आदेश रद्द किया जाता है। प्रतिवादी संख्या 2 को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को इस आदेश की सूचना मिलने की तिथि से तीन सप्ताह के भीतर खाता विवरण सहित पंजीकरण राशि वापस कर दे और यदि कोई अन्य औपचारिकताएं हों तो उन्हें पूरा कर दे।

16. रिट याचिका को तदनुसार स्वीकार किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 800

मूल क्षेत्राधिकार: दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 10.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ और

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित,

के समक्ष

रिट याचिका संख्या 31628/2024

मेसर्स भारत एंटरप्राइजेज

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री वैभव शांडिल्य

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी, श्री उदित चंद्र

(ए) संवैधानिक कानून - रिट क्षेत्राधिकार - कार्य पूर्ण होने और निर्धारित दायित्व के अभाव के बावजूद बैंक गारंटी को मनमाने ढंग से रोकना - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट न्यायालय तब हस्तक्षेप कर सकता है जब प्राधिकरण अनुबंध से बाहर मनमाने या दुर्भावनापूर्ण तरीके से कार्य करता है - रिट न्यायालय मध्यस्थता खंड के अस्तित्व के बावजूद क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है यदि प्राधिकरण मनमाने ढंग से कार्य करता है या विवादित तथ्यों को हलफनामों द्वारा सत्यापित किया जा सकता है - मनमानी कार्रवाई - बैंक गारंटी को रोकना - विवादित दायित्व - वैकल्पिक उपाय - स्थापित दायित्व के बिना पूरी बैंक गारंटी को रोकना मनमाना है; अनुबंध के अनुसार आंशिक सुरक्षा रोकी जा सकती है। (पैरा - 2 से 8)

ठेकेदार द्वारा प्रस्तुत बैंक गारंटी को प्रतिवादियों ने कर्मचारी मृत्यु और जीएसटी बकाया से उत्पन्न संभावित देनदारियों का हवाला देते हुए रोक लिया - हालांकि ऐसी देनदारियां न तो उत्पन्न हुई थीं और न ही निर्धारित की गई थीं - याचिकाकर्ता ने रोके जाने की मनमानी का विरोध किया। (पैरा - 2, 3, 4, 5, 6)

निर्णय: - पूरी बैंक गारंटी को रोकना मनमाना और कानून में आधारहीन प्रतीत होता है। समझौते के खंड 14.3 को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा कुछ राशि रोकी जानी आवश्यक है।

याचिकाकर्ता को चार सप्ताह के भीतर प्रतिवादी अधिकारियों के पास 50 लाख रुपये जमा करने का निर्देश दिया जाता है। जमा होने पर बैंक गारंटी जारी कर दी जाएगी। (पैरा - 8)

रिट याचिका का निपटारा किया गया। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ, और माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित, द्वारा सुनाया गया)

1. हमने पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं की बात सुनी।

2. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दायर एक रिट याचिका है, जिसमें याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित प्रार्थनाएँ की हैं:-

"अतः इस माननीय न्यायालय से अत्यंत विनम्रतापूर्वक निवेदन है कि वह परमादेश जारी करने की रिट जारी करे, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 और 3 को निर्देश दिया जाए कि वे याचिकाकर्ता द्वारा एसई, ईडीसी, गाजीपुर के अनुबंध पर हस्ताक्षर के समय आईडीबीआई बैंक लिमिटेड, सिगरा शाखा, वाराणसी द्वारा पूर्वचल विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, वाराणसी के प्रबंध निदेशक के प्रशासनिक अधिकारी के पक्ष में सुरक्षा जमा के रूप में प्रस्तुत की गई बैंक गारंटी संख्या 200081IBGP00004 दिनांक 05.3.2020 को प्रतिवादी संख्या 3 के पास इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित विशिष्ट अवधि के भीतर जारी करें।

और/या कोई अन्य आदेश या निर्देश पारित कर सकता है जिसे यह माननीय न्यायालय उचित समझे।"

3. वर्तमान मामले में तथ्यात्मक स्थिति से यह स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी अधिकारियों ने उस बैंक गारंटी को रोक रखा है जो याचिकाकर्ता द्वारा अनुबंध पर हस्ताक्षर के समय ठेकेदार द्वारा उन सात कर्मचारियों को देय कुछ राशियों के बदले में प्रस्तुत की गई थी जिनकी कार्य निष्पादन के दौरान मृत्यु हो गई थी। इसके अलावा, प्रतिवादियों ने 11,80,79,376/- रुपये की जीएसटी देयता के भुगतान के संबंध में एक मुद्दा उठाया है ब्याज सहित, जिसका भुगतान याचिकाकर्ता द्वारा नहीं किया गया है। प्रतिवादी अधिकारियों ने अनुबंध के खंड 14.3 पर भरोसा किया है, जो इस प्रकार है:-

14.3: किसी दुर्घटना और/या चोट की स्थिति में, जिसके लिए कामगार मुआवजा अधिनियम-83, 1923 (उसके सभी संशोधनों सहित) के तहत मुआवजा देय हो सकता है, डिस्कॉम के अधिकृत अधिकारी को ठेकेदार को देय/देय होने वाली किसी भी राशि में से, सक्षम प्राधिकारी से उक्त अधिनियम के तहत मुआवजे का निर्धारण प्राप्त होने पर, ऐसी देयता को पूरा करने के लिए पर्याप्त समझी जाने वाली कोई भी राशि रोक लेने का पूर्ण अधिकार होगा, और यह राशि इसी राशि से समायोजित की जाएगी। किसी भी कमी की वसूली की जाएगी और किसी भी अधिक राशि की वापसी की जाएगी। इस खंड के अंतर्गत उत्पन्न होने वाले सभी मामलों के संबंध में डिस्कॉम के अधिकृत अधिकारी की राय अंतिम होगी।

4. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मध्यस्थता खंड के रूप में एक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध होने के कारण याचिकाकर्ता को मध्यस्थता मंच पर भेजा जाना चाहिए।

5. प्रतिवादी अधिकारियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री उदित चंद्र ने आगे निवेदन किया कि याचिकाकर्ता/ठेकेदार द्वारा भविष्य निधि का भुगतान न करने, जीएसटी का भुगतान न करने और सात कर्मचारियों की मृत्यु से उत्पन्न होने वाली देनदारी से संबंधित कई मुद्दे हैं, जिसके कारण बैंक गारंटी को प्रतिभूति के रूप में रखा गया है।

6. इसके विपरीत, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि सात कर्मचारियों की मृत्यु के लिए याचिकाकर्ता द्वारा किए जाने वाले भुगतान से उत्पन्न देयता का अभी तक निर्धारण नहीं किया गया है और मामला कर्मचारी मुआवजा आयुक्त के समक्ष लंबित है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जीएसटी के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा अपील दायर की गई है और यह प्रयागराज स्थित अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष लंबित है। उपरोक्त के आलोक में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादियों द्वारा 2,24,00,000 रुपये की बैंक गारंटी जारी न करना सरासर दुर्भावनापूर्ण और मनमाना है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा श्रमिकों की मृत्यु के भुगतान के संबंध में 1,51,29,371.41 रुपये की देयता की गणना निराधार और कानून में निराधार है।

7. हमने अपने समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों का अध्ययन किया है और पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें भी सुनी हैं। यह सर्वविदित कानून है कि जब कोई प्राधिकरण अपने और निजी पक्ष के बीच हुए अनुबंध से इतर मनमाने या दुर्भावनापूर्ण तरीके से कार्य करता है, तो रिट न्यायालय ऐसे दुर्भावनापूर्ण कार्य को रद्द करने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है। हालांकि, यह समझना आवश्यक है कि असाधारण रिट क्षेत्राधिकार एक विवेकाधीन क्षेत्राधिकार है, जिसमें इस न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के अनुसार निर्धारित कानून पर भरोसा करते हुए न्यायिक विवेक का प्रयोग करना होता है। इसके अतिरिक्त, जब मध्यस्थता के रूप में कोई वैकल्पिक उपाय उपलब्ध हो, तो यह न्यायालय केवल तभी हस्तक्षेप करेगा जब तथ्य विवादित न हों या विवादित तथ्य ऐसे हों जिनकी जांच और सत्यापन इस न्यायालय द्वारा हलफनामों के आदान-प्रदान के बाद किया जा सके। वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि कार्य पूर्ण होने के बाद भी 2,24,00,000.00 रुपये की बैंक गारंटी उन देनदारियों के लिए रोकी गई है जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुई हैं और जिनका निर्धारण नहीं हुआ है। प्रतिवादियों द्वारा दायर प्रति-हलफनामे के अवलोकन से भी हम 1,51,29,371.41 रुपये की गणना का आधार नहीं समझ पाए हैं।

8. इस न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह पक्षों के बीच न्यायसंगत व्यवहार सुनिश्चित करे और वर्तमान मामले में, कुछ देनदारियों के उत्पन्न होने के बहाने संपूर्ण बैंक गारंटी को रोके रखना तर्कहीन प्रतीत होता है। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि कर्मचारियों को देय देनदारियां भी कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम और कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के अंतर्गत आती हैं। यद्यपि संपूर्ण बैंक गारंटी को रोके रखना मनमाना और विधिवत आधारहीन प्रतीत होता है, फिर भी हमारा मानना है कि समझौते के खंड 14.3 को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा कुछ राशि रोकी जानी आवश्यक है। न्यायालय के सुझाव पर, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्रम बकाया और जीएसटी बकाया से संबंधित किसी भी देनदारी के लिए सुरक्षा हेतु

50,00,000 रुपये जमा करने के लिए तैयार हैं। तदनुसार, याचिकाकर्ता को निर्देश दिया जाता है कि वह दिनांक से चार सप्ताह की अवधि के भीतर प्रतिवादी अधिकारियों के पास 50,00,000/- रुपये जमा करे। उक्त राशि 50,00,000/- रुपये जमा होते ही, प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा बैंक गारंटी जारी कर दी जाएगी, अधिमानतः उक्त जमा के 48 घंटों के भीतर।

9. हम स्पष्ट करते हैं कि हमारे उपरोक्त निष्कर्ष केवल अस्थायी प्रकृति के हैं और इन निष्कर्षों का उपयोग किसी भी कार्यवाही में नहीं किया जाना चाहिए, जो बाद में हो सकती है, जिसमें मध्यस्थता की कार्यवाही भी शामिल है, यदि याचिकाकर्ता ऐसी मध्यस्थता का विकल्प चुनता है।

10. उपरोक्त निर्देशों के साथ, रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

11. हम स्पष्ट करते हैं कि यह आदेश बाध्यकारी प्रकृति का है और याचिकाकर्ता को उपरोक्त 50,00,000/- रुपये जमा करने के लिए कोई और समय नहीं दिया जाएगा। उक्त राशि को निर्धारित समय सीमा के भीतर जमा न करने की स्थिति में, प्राधिकरण कानून के अनुसार कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र होगा।

(2025) 3 ILRA 803

मूल क्षेत्राधिकार, दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 06.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ, और

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित,

के समक्ष

रिट याचिका संख्या 39180/2024

सीमा पदालिया और अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के वकील: श्री राहुल सहाय, श्री सौमित्र आनंद

प्रतिवादियों के वकील: मुख्य न्यायाधिकरण, श्री कौशलेन्द्र नाथ सिंह

(ए) संवैधानिक कानून - रिट क्षेत्राधिकार - स्टाम्प शुल्क की वापसी - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - अनुच्छेद 226, भारत का संविधान; नियम 218, उत्तर प्रदेश स्टाम्प नियम, जैसा कि 5वें संशोधन नियम, 2021 द्वारा संशोधित किया गया है - परिसीमा का कानून प्रक्रियात्मक और पूर्वव्यापी है जब तक कि यह किसी

निहित अधिकार को समाप्त न कर दे - केवल परिसीमा के तकनीकी आधार पर धनवापसी से इनकार नहीं किया जा सकता - परिसीमा की समाप्ति उपाय को रोक सकती है, लेकिन अधिकार को नहीं - तकनीकी आधार किसी न्यायसंगत दावे को विफल नहीं कर सकते। (पैरा -7)

याचिकाकर्ताओं ने त्रिपक्षीय बिक्री और उपपट्टा विलेख के निष्पादन के लिए 2015 में स्टाम्प खरीदे थे, लेकिन नोएडा के इनकार के कारण समझौता निष्पादित नहीं हो सका - 2024 में दाखिल धनवापसी के आवेदन को उत्तर प्रदेश स्टाम्प (5वें संशोधन) नियम, 2021 द्वारा संशोधित नियम 218 के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया - प्राधिकरण द्वारा दावा समय-बाधित घोषित किया गया। (पैरा - 3, 4, 5, 6)

निर्णय: - तकनीकी आधार पर धनवापसी अस्वीकार करने वाला विवादित आदेश रद्द किया जाता है। समझौता संशोधन से पहले का है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार धनवापसी उचित है। प्राधिकरण तीन महीने के भीतर धनवापसी पर पुनर्विचार करे। (पैरा - 9,10)

रिट याचिका का निपटारा किया गया। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. हर्षित हरीश जैन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2025 लॉ सूट (एससीसी) 105
2. मध्य प्रदेश स्टील कॉर्पोरेशन बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त, 2015 7 एससीसी 58

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ और माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित, द्वारा सुनाया गया)

1. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की बात सुनी और अभिलेखों का अवलोकन किया।
2. याचिकाकर्ताओं ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह रिट याचिका निम्नलिखित राहतों के साथ दायर की है:
 - i. प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा दिनांक 16.05.2024 को पारित विवादित आदेश (पत्रांक संख्या 314/सा.मा. नि.-प्रथम/2024) को रद्द करने के लिए सर्टिओरारी प्रकृति का रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं के स्टाम्प शुल्क की वापसी के आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया है (रिट याचिका का अनुलग्नक-1)।
 - ii. उत्तर प्रदेश स्टाम्प पंचम संशोधन नियम 2021 द्वारा प्रतिस्थापित/संशोधित नियम 218 को भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के अल्ट्रा वायर्स घोषित करने के लिए उपयुक्त आदेश या निर्देश जारी किया जाए।

iii. प्रतिवादी संख्या 2 से 4 को दिनांक 27.04.2024 के आवेदन को स्वीकार करते हुए कानून के अनुसार स्टाम्प शुल्क वापस करने का निर्देश देने के लिए परमादेश प्रकृति का उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।

3. मामले का तथ्यात्मक आधार यह है कि याचिकाकर्ताओं ने न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण (पट्टेदार) और मेसर्स एजीसी रियल्टी प्राइवेट लिमिटेड (पट्टेदार) के साथ आवासीय इकाई के अधिचरणा और भूमि के संबंध में बिक्री विलेख और उपपट्टा विलेख का त्रिपक्षीय समझौता करना चाहा। यह समझौता नोएडा के गौतमबुद्ध नगर स्थित प्लॉट संख्या जीएच - सेक्टर 121 में बने "होम्स 121" कॉम्प्लेक्स के टावर डब्ल्यू की 11वीं मंजिल पर स्थित आवास इकाई संख्या डब्ल्यू-1101 के लिए था। इस संबंध में कुल विक्रय मूल्य 87,37,470 रुपये था और स्टाम्प शुल्क 4,37,000 रुपये निर्धारित किया गया था। उक्त समझौते में प्रवेश करने के इच्छुक याचिकाकर्ताओं ने 22.09.2015 को निम्नलिखित विवरण के अनुसार आवश्यक स्टाम्प खरीदे:

25,000 x 17

10,000 x 1

1,000 x 2

4. इसके बाद, उपर्युक्त स्टाम्प पर एक समझौता तैयार किया गया, हालांकि, इसे पंजीकरण के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया और इसलिए यह अप्रयुक्त और अनुपयोगित रहा। नोएडा प्राधिकरण द्वारा "होम 121" परियोजना में फ्लैटों के हस्तांतरण और बिक्री पर प्रतिबंध लगाया गया था, जिसमें विचाराधीन संपत्ति भी शामिल थी। परिणामस्वरूप, समझौता सफल नहीं हो सका क्योंकि न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण ने उक्त लेनदेन में सहमति/भागीदारी नहीं दिखाई। याचिकाकर्ताओं को "होम 121" परियोजना में फ्लैटों की बिक्री और हस्तांतरण पर प्रतिबंध के बारे में तब तक जानकारी नहीं थी जब तक कि नोएडा प्राधिकरण समझौते से पीछे नहीं हट गया। याचिकाकर्ताओं को यह पूर्ण विश्वास था कि समझौता जल्द ही निष्पादित हो जाएगा और वे इसके निष्पादन और पंजीकरण की प्रतीक्षा करते रहे।

5. जब यह स्पष्ट हो गया कि बिक्री/उप-पट्टे का समझौता प्रक्रिया में नहीं आएगा, तो याचिकाकर्ताओं ने नवंबर 2023 में फ्लैट का अपना आवंटन सरेंडर कर दिया क्योंकि बिल्डर ने नोएडा प्राधिकरण की सहमति के बिना समझौते को निष्पादित करने में असमर्थता व्यक्त की थी। इसके बाद, 27.04.2024 के आवेदन के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 2 और 4 से 4,37,000/- रुपये के डाक टिकटों की वापसी की मांग की।

6. मामला प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष रखा गया, जिसने 16.05.2024 को विवादित आदेश पारित किया, यह बहाना बनाकर कि उत्तर प्रदेश स्टाम्प (5वां संशोधन) नियम, 2021 के तहत एक संशोधन लागू किया गया है, जिसके द्वारा नियम 2018 को प्रतिस्थापित किया गया है और एक शर्त लगाई गई है जिसके अनुसार स्टाम्प की खरीद के 8 साल बाद उसका नवीनीकरण या वापसी नहीं की जाएगी,

और इसलिए, याचिकाकर्ताओं का दावा समय-बाधित है।

7. याचिकाकर्ताओं की ओर से वकील का कहना है कि वर्ष 2021 में लागू हुआ संशोधित प्रावधान वर्तमान मामले पर लागू नहीं होगा क्योंकि स्टाम्प वर्ष 2015 में संशोधन से पहले खरीदे गए थे। याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने **हर्षित हरीश जैन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा जताया है, जो 2025 लॉ सूट (एससी) 105 में प्रकाशित हुआ है। इस फैसले में, तीन न्यायाधीशों की पीठ ने बॉम्बे स्टाम्प अधिनियम, 1958 से संबंधित एक समान मुद्दे पर विचार किया था। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मुद्दा पैराग्राफ संख्या 5 में स्पष्ट किया गया है और उसके बाद, **सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश स्टील कॉर्पोरेशन बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त, 2015 7 एससीसी 58** के मामले पर भरोसा करते हुए, एक अर्जित कारण पर परिसीमा अवधि में संशोधन की प्रयोज्यता की जांच की है। हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 10 और 11 में यह माना है कि परिसीमा के तकनीकी आधार पर वैध धनवापसी से इनकार नहीं किया जाना चाहिए और यह माना है कि राजकोषीय या अर्ध-न्यायिक आदेशों में न्यायसंगत संतुलन को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। प्रासंगिक पैराग्राफ संख्याएँ... 5, 9, 10 और 11 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है :-

5. अपीलकर्ताओं और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ताओं की बात सुनने के बाद, हमारे समक्ष विचारणीय मुख्य मुद्दा यह है कि क्या अधिनियम की धारा 48(1) में 24.04.2015 को किए गए संशोधन द्वारा लागू की गई संशोधित छह महीने की समय सीमा, स्टाम्प शुल्क वापसी के लिए अपीलकर्ताओं के दावे पर लागू होती है, विशेष रूप से तब जब रद्द करने का विलेख संशोधन से पहले निष्पादित किया गया था लेकिन उसके बाद पंजीकृत किया गया था।

9. इसके अलावा, एम.पी. स्टील कॉर्पोरेशन बनाम कमिशनर ऑफ सेंट्रल एक्साइज, 2015 7 एससीसी 58 में, इस न्यायालय ने यह माना है कि समय सीमा संबंधी प्रावधान में संशोधन, उस स्थिति में लागू नहीं होता है जब संशोधन ने पहले से निर्धारित अवधि को कम कर दिया हो। इस निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे दिए गए हैं:

“53. राजस्व विभाग की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ए.के. सांधी ने हमारे समक्ष दृढ़तापूर्वक तर्क दिया है कि वर्तमान अपील पर इसकी दाखिल करने की तिथि से परिसीमा अवधि लागू होनी चाहिए। ऐसा होने पर, यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपील 23-5-2003 को ही सीईएसटीएटी के समक्ष दाखिल की गई थी, इसलिए संशोधन के बाद की धारा 128 लागू होगी और अतः अपीलकर्ता को उपलब्ध अधिकतम अवधि 60 प्लस 30 दिन होगी। यहां तक कि यदि असफल कार्यवाही में लगे समय को भी छोड़ दिया जाए, तो भी अपील उपर्युक्त अवधि के बाद दाखिल की गई होने के कारण समय सीमा से बाहर मानी जाएगी।

54. यह स्थापित कानून है कि परिसीमा अवधि प्रक्रियात्मक प्रकृति की होती है और सामान्यतः पूर्वव्यापी रूप से लागू होती है। हालांकि, यह एक शर्त के अधीन है। न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम शांति मिश्रा, [(1975) 2 एससीसी 840 : (1976) 2 एससीआर 266], इस न्यायालय ने कहा: (एससीसी पृष्ठ 844, अनुच्छेद 5)

5. धारा 110-ए और 110-एफ के स्पष्ट शब्दों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि कानून में परिवर्तन केवल मंच का परिवर्तन था, अर्थात् विशेषणात्मक या प्रक्रियात्मक कानून का परिवर्तन, न कि मूल कानून का। यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि कानून में ऐसा परिवर्तन पूर्वव्यापी रूप से लागू होता है और व्यक्ति को नए मंच पर जाना पड़ता है, भले ही उसका वाद कारण या वाद का अधिकार मंच के परिवर्तन से पहले उत्पन्न हुआ हो। उसके पास वाद का निहित अधिकार होगा, लेकिन मंच का निहित अधिकार नहीं होगा। यदि स्पष्ट शब्दों में यह कहा जाए कि नया मंच केवल मंच के निर्माण के बाद उत्पन्न होने वाले वाद कारणों के लिए ही उपलब्ध है, तो कानून का पूर्वव्यापी प्रभाव समाप्त हो जाता है। अन्यथा, सामान्य नियम इसे पूर्वव्यापी बनाना है।

55. मोटर वाहन अधिनियम की धारा 110-ए के अंतर्गत उठे एक प्रश्न का उत्तर देते हुए, इस न्यायालय ने कहा: (शांति मिश्रा मामला [(1975) 2 एससीसी 840 : (1976) 2 एससीआर 266] , एससीसी पृष्ठ 846, पैरा 7)

7. "... '(1) धारा 110-ए के तहत आवेदन दाखिल करने के उद्देश्य से समय की गणना न्यायाधिकरण के गठन से पहले शुरू नहीं हुई थी।

मुकदमा दाखिल करने के लिए समय की गणना शुरू हो गई थी, लेकिन इसके समाप्त होने से पहले ही मंच बदल दिया गया था। और बदले हुए मंच के उद्देश्य से, नए मंच में जाने का उपाय उपलब्ध होने से पहले समय की गणना शुरू नहीं मानी जा सकती।

(2) यद्यपि सामान्यतः परिसीमा कानून को प्रक्रियात्मक कानून माना गया है, फिर भी इस सिद्धांत के कुछ अपवाद हैं। सामान्यतः परिसीमा कानून, जो वाद प्रारंभ होने की तिथि को प्रचलित होता है, उसे लागू करता है। लेकिन इस सिद्धांत के कुछ अपवाद हैं। लंबी अवधि प्रदान करने वाला नया परिसीमा कानून किसी मृत उपाय को पुनर्जीवित नहीं कर सकता। न ही यह परिसीमा की छोटी अवधि प्रदान करके किसी निहित वाद अधिकार को अचानक समाप्त कर सकता है।”

56. कानून के इस कथन को विनोद गुरुदास राजक बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, [(1991) 4] में अनुमोदन के साथ संदर्भित किया गया था। एस.सी.सी. 333] इस प्रकार है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 337, पैरा 7)।

7. “यह सत्य है कि अपीलकर्ता पहले परिसीमा अवधि समाप्त होने के छह महीने से अधिक समय बाद भी आवेदन दाखिल कर सकता था, लेकिन क्या इसे अपीलकर्ता द्वारा अर्जित अधिकार माना जा सकता है? उत्तर है नहीं। दुर्घटना के कारण अपीलकर्ता जिस मुआवजे का हकदार था, वह निश्चित रूप से एक अधिकार के रूप

में लागू करने योग्य था। जहां तक कानूनी कार्यवाही शुरू करने की परिसीमा अवधि का संबंध है, यह विशेषणात्मक प्रकृति की है और दो शर्तों के अधीन नए अधिनियम द्वारा शासित होनी चाहिए। यदि निरस्त अधिनियम के तहत परिसीमा अवधि कम होने के परिणामस्वरूप उपाय अचानक वर्जित हो जाता है, तो इसे मामले पर लागू नहीं किया जा सकता है, अन्यथा इसका परिणाम वादी को अर्जित अधिकार से वंचित करना होगा। दूसरा अपवाद वह है जहां नया अधिनियम दावेदार को कानूनी कार्यवाही शुरू करने के लिए इतनी कम अवधि देता है कि उसके लिए उपाय का लाभ उठाना अव्यावहारिक हो जाता है। इस सिद्धांत का इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में पालन किया गया है और उदाहरण के तौर पर हम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम शांति मिश्रा, [(1975) 2 एससीसी 840 : (1976) 2 एससीआर 266] का उल्लेख करना चाहूंगा। उस मामले में प्रतिवादी के पति की 1966 में एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। प्रतिवादी को क्षतिपूर्ति की वसूली के लिए मुकदमा दायर करने हेतु दो वर्ष की अवधि उपलब्ध थी। मार्च 1967 में मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 110 के तहत दावा न्यायाधिकरण का गठन किया गया, जिसने सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार को वर्जित करते हुए परिसीमा अवधि 60 दिन निर्धारित की। प्रतिवादी ने जुलाई 1967 में आवेदन दायर किया। यह माना गया कि मार्च 1967 से पहले मुकदमा दायर न करने के कारण प्रतिवादी का एकमात्र उपाय न्यायाधिकरण के समक्ष आवेदन करना था। परिसीमा अवधि के संबंध में, यह देखा गया कि कम अवधि प्रदान करने वाला एक नया परिसीमा कानून निश्चित रूप से कार्रवाई के निहित अधिकार को समाप्त नहीं कर सकता है। कानून में परिवर्तन के मद्देनजर यह माना गया कि ट्रिब्यूनल के गठन के बाद उचित समय के भीतर आवेदन दाखिल किया जा सकता था; और, ट्रिब्यूनल के गठन के बाद प्रतिवादी द्वारा ट्रिब्यूनल से संपर्क करने में लिया गया लगभग चार महीने का समय या तो उचित समय माना जा सकता है या धारा 110-ए (3) के परंतुक के तहत लगभग दो महीने की देरी को माफ किया जा सकता है। इन दोनों निर्णयों का हवाला दिया गया और यूनियन ऑफ इंडिया बनाम हरनाम सिंह, [(1993) 2 एससीसी 162 : 1993 एससीसी (एल एंड एस) 375 : (1993) 24 एटीसी 92] में इनका अनुसरण किया गया, पैरा 12 देखें।

57. उपर्युक्त सिद्धांत परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 30(क) में भी निहित है:

30. “उन मुकदमों आदि के लिए प्रावधान, जिनके लिए निर्धारित अवधि भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1908 द्वारा निर्धारित अवधि से कम है— इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी—

(क) कोई भी मुकदमा जिसके लिए परिसीमा अवधि भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1908 द्वारा निर्धारित परिसीमा अवधि से कम है, इस अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद सात वर्षों की अवधि के भीतर या भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1908 द्वारा ऐसे मुकदमे के लिए निर्धारित अवधि के भीतर, जो भी अवधि पहले समाप्त हो, दायर किया जा सकता है।”

58. उक्त सिद्धांत का कारण स्पष्ट है। यद्यपि परिसीमा अवधि, प्रक्रियात्मक कानून होने के नाते, पूर्वव्यापी रूप से लागू की जानी चाहिए, फिर भी यदि किसी कानून में बाद में संशोधन द्वारा परिसीमा अवधि कम कर

दी जाती है, तो ऐसी अवधि कानून में निहित कार्रवाई के अधिकार को निष्प्रभावी बना देगी क्योंकि संशोधित प्रावधान के तहत ऐसा कार्रवाई का अधिकार अब समय-बाधित हो जाएगा।

10. यदि यह मान भी लिया जाए कि अपीलकर्ताओं के दावे की जांच संशोधित छह महीने की अवधि के अंतर्गत की गई है, तो भी हमारा यह मत है कि मात्र तकनीकी विलंब से किसी वैध दावे को समाप्त नहीं किया जा सकता। स्टाम्प शुल्क वापसी प्रावधानों की योजना यह सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई है कि जब मूल लेन-देन को सद्भावनापूर्ण कारणों से रद्द किया जाता है, तो निष्पक्षता बनी रहे। डेवलपर द्वारा समय पर कब्जा देने में असमर्थता के कारण अपीलकर्ताओं को खरीद रद्द करने के लिए विवश होना पड़ा, और वे किसी भी तरह से लापरवाह या दोषी नहीं थे।

11. केवल परिसीमा के तकनीकी आधार पर वैध वापसी से इनकार करना, विशेष रूप से तब जब पंजीकरण का समय विधायी संशोधन के निकट था, राजकोषीय या अर्ध-न्यायिक निर्णयों में आमतौर पर अपेक्षित न्यायसंगत संतुलन को बनाए रखने में विफल रहता है। विवेकाधिकार या सद्भावनापूर्ण आचरण पर विचार करना उन वैधानिक प्रक्रियाओं का अभिन्न अंग है जो नागरिकों को राज्य द्वारा अनुचित संवर्धन से बचाती हैं। इस न्यायालय ने बानो सैय्यद परवाज़ बनाम मुख्य राजस्व नियंत्रक प्राधिकरण एवं पंजीकरण महानिरीक्षक एवं स्टाम्प नियंत्रक, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 979 मामले में यह स्पष्ट किया है कि स्टाम्प कानून में (स्टाम्प शुल्क की वापसी की मांग के लिए) परिसीमा प्रावधान को इस प्रकार लागू नहीं किया जाना चाहिए जिससे आवेदक के निर्दोष होने की स्थिति में उसके उपाय को समाप्त कर दिया जाए। उसी मामले के प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे दिए गए हैं:

“14. कमिटी-जीएफआईएल बनाम लिब्रा बिल्डटेक प्राइवेट लिमिटेड के मामले में, जिसमें इसी अधिनियम के तहत स्टाम्प शुल्क की वापसी का मुद्दा विचाराधीन था, इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित अवलोकन और निर्णय दिया:

“29. यह मामला हमें फर्म कलुरम सीताराम बनाम डोमिनियन ऑफ इंडिया [1953 एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे 39: एआईआर 1954 बॉम्बे 50] में एम.सी. छागला, मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई टिप्पणियों की याद दिलाता है।” माननीय मुख्य न्यायाधीश ने अपनी विशिष्ट लेखन शैली में अनुच्छेद 19 में निम्नलिखित टिप्पणी की: (कलूराम मामला, एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे) 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 979

“19. ... हमने अक्सर यह कहा है कि जब राज्य किसी नागरिक से निपटता है तो उसे सामान्यतः तकनीकी पहलुओं पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, और यदि राज्य संतुष्ट है कि नागरिक का मामला न्यायसंगत है, भले ही उसके पास कानूनी बचाव के विकल्प उपलब्ध हों, तो उसे, जैसा कि प्रख्यात न्यायाधीशों ने कहा है, एक ईमानदार व्यक्ति की तरह कार्य करना चाहिए।”

हम उपरोक्त टिप्पणियों से पूरी तरह सहमत हैं, क्योंकि हमारे विचार में ये टिप्पणियां राज्य के विरुद्ध विचाराधीन मामले पर पूर्णतः लागू होती हैं, क्योंकि परिसीमा की दलील के अलावा, राज्य के पास अपने कार्य का बचाव करने के लिए कोई मामला नहीं है।

32. हमारी राय में, भले ही हम यह पाते हैं कि अधिनियम की धारा 50 के तहत निर्धारित समय सीमा के आधार पर एसडीएम द्वारा स्टॉप शुल्क राशि की वापसी के लिए आवेदन सही ढंग से खारिज कर दिए गए थे, फिर भी इस स्थापित कानूनी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए कि किसी भी कानून के तहत निर्धारित समय सीमा की समाप्ति उपाय को तो रोक सकती है, लेकिन अधिकार को नहीं, आवेदक उपरोक्त आधारों पर स्टॉप शुल्क राशि की वापसी का दावा करने के हकदार हैं। दूसरे शब्दों में, समय सीमा के आधार पर आवेदन खारिज किए जाने के बावजूद, हमारा मानना है कि आवेदक उपरोक्त आधारों के आलोक में राज्य से स्टॉप शुल्क राशि की वापसी का दावा करने के हकदार हैं।

15. इस प्रकार लिब्रा बिल्डटेक (उपरोक्त) मामले में कानूनी स्थिति स्पष्ट है कि जब राज्य किसी नागरिक से व्यवहार करता है तो उसे सामान्यतः तकनीकी पहलुओं पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, भले ही ऐसे बचाव उपलब्ध हों।

16. हम उपरोक्त निर्णय से निष्कर्ष निकालते हैं और इस मत पर पहुंचे हैं कि अपीलकर्ता का मामला स्टॉप शुल्क की वापसी के लिए उपयुक्त है, क्योंकि यह स्थापित कानून है कि किसी भी कानून के तहत निर्धारित परिसीमा अवधि की समाप्ति उपाय को तो रोक सकती है, लेकिन अधिकार को नहीं। अपीलकर्ता को स्टॉप शुल्क राशि की वापसी का दावा करने का हकदार माना जाता है, इस आधार पर कि अपीलकर्ता ने कानून में उपलब्ध उपायों के अनुसार अपना मामला आगे बढ़ाया है और उसे केवल तकनीकी पहलुओं के आधार पर उक्त वापसी से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि अपीलकर्ता का मामला न्यायसंगत है जिसमें उसने सद्भावनापूर्वक पंजीकरण के लिए स्टॉप शुल्क का भुगतान किया था, लेकिन विक्रेता द्वारा उसके साथ धोखाधड़ी की गई जिसके कारण बिक्री विलेख रद्द हो गया।

8. प्रतिवादियों की ओर से वकील ने निवेदन किया कि संशोधित उत्तर प्रदेश स्टाम्प अधिनियम इस मामले में लागू होगा क्योंकि याचिकाकर्ताओं का वापसी का आवेदन उक्त संशोधन के बाद किया गया था।

9. प्रस्तुत कथनों, संलग्न दस्तावेजों और **हर्षित हरीश जैन एवं अन्य (उपरोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करने के बाद, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस मामले में याचिकाकर्ताओं की वापसी को अस्वीकार करने का विवादित आदेश केवल तकनीकी कारणों से पारित किया गया है। तथ्यों से स्पष्ट

है कि पक्षों के बीच समझौता स्टाम्प पेपरों में किए गए संशोधन से पहले हुआ था, और तदनुसार, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, यह स्पष्ट है कि स्टाम्प शुल्क की वापसी का लाभ इस मामले में लागू होगा।

10. विवादित आदेश में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के निर्णय को ध्यान में नहीं रखा गया है। तदनुसार, उक्त आदेश को रद्द किया जाता है और संबंधित प्राधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वे उपरोक्त उद्धृत सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ताओं के धन वापसी आवेदन की पुनः जांच दिनांक से तीन माह की अवधि के भीतर करें।

11. उपरोक्त अवलोकन के साथ, रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 809

मूल क्षेत्राधिकार: दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद, 19.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ, और

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेंद्र,

के समक्ष

रिट याचिका संख्या 41735/2024

विजय कुमार दीक्षित

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: मनोज कुमार सिंह

प्रतिवादियों के वकील: सहायक सरकारी वकील, निशांत मेहरोत्रा, प्रांजल मेहरोत्रा

(ए) संवैधानिक कानून - रिट क्षेत्राधिकार - आंतरिक जांच के आधार पर सूचीबद्ध अधिवक्ता से पेशेवर शुल्क की वसूली - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - कलंक लगाने पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन - बिना सुनवाई और जांच रिपोर्ट के अधिक भुगतान की वसूली के आदेश को कलंकपूर्ण और प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन माना जाना -आंतरिक वित्तीय जांच - जांच रिपोर्ट से इनकार - कारण बताओ नोटिस का अभाव - राज्य के किसी निकाय द्वारा कलंकपूर्ण कार्यवाई - कलंक लगाने वाले प्राधिकारी को यह सुनिश्चित करना होगा कि उचित प्रक्रिया का पालन किया जाए, जिसमें जांच रिपोर्ट की प्रति और जवाब देने का अवसर शामिल हो। (पैरा - 3, 6, 7, 8, 9, 11)

याचिकाकर्ता, जो एफसीआई के पैनल में शामिल एक वकील हैं, को आंतरिक समिति की रिपोर्ट के आधार पर अधिक भुगतान के रूप में 17,16,767 रुपये की वापसी की मांग करते हुए कई आदेश दिए गए - उन्हें ऐसी रिपोर्ट की प्रति नहीं दी गई और न ही जांच में भाग लेने का अवसर दिया गया। मुवक्किल (एफसीआई) द्वारा वकील (याचिकाकर्ता) से भविष्य में याचिकाकर्ता को देय भुगतानों के विरुद्ध कथित अधिक भुगतानों को समायोजित करके वसूली की मांग की जा रही थी। (पैरा - 2, 3, 6, 10)

निर्णय: अधिकारियों ने विवादित आदेश पारित करके अपनी सीमा का उल्लंघन किया है, जो निश्चित रूप से कलंकित करने वाले हैं। इन आदेशों ने न केवल याचिकाकर्ता पर कलंक लगाया, बल्कि ये याचिकाकर्ता द्वारा दी गई सेवाओं के लिए मूल्यवान मुआवजे से वंचित करने का भी प्रयास थे। विवादित आदेश मान्य नहीं थे और इन्हें रद्द कर दिया गया। एफसीआई को कानून के अनुसार नए सिरे से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता दी गई। (पैरा -8,11,12)

रिट याचिका का निपटारा किया गया। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. इंप्रूवमेंट ट्रस्ट, रोपड़, अध्यक्ष सहित बनाम एस. तेजिंदर सिंह गुजराल और अन्य, 1995 सप्लीमेंट (4) एसएससी 577
2. के.एन. मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2006 (4) ए.डी.जे. 473 (ऑल) (डीबी)
3. पृथ्वीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 2003 सुप्रीम कोर्ट केस (एल एंड एस) 103
4. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम जगदीश चंद्र, (1995) 2 सुप्रीम कोर्ट केस 567
5. उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य बनाम बृजेश कुमार और अन्य। एआईआर 2024 एससी 4424

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ, और माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र, द्वारा दिया गया)

1. हमने याचिकाकर्ता की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन और उनके साथ अधिवक्ता श्री मनोज कुमार सिंह की दलीलें सुनीं, तथा प्रतिवादी निगम की ओर से अधिवक्ता श्री निशांत मेहरोत्रा की दलीलें सुनीं।

2. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर की गई एक रिट याचिका है, जिसमें याचिकाकर्ता प्रतिवादी निगम द्वारा दिनांक 05.03.2024 (अनुलग्नक संख्या 13), 24/28.06.2022 (अनुलग्नक संख्या 10), 24.06.2022 (अनुलग्नक संख्या 8) और 16.02.2022 (अनुलग्नक संख्या 5) को पारित किए गए कई आदेशों से व्यथित है, जिनमें यह दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता को निगम के पैनलबद्ध अधिवक्ता के रूप में वित्तीय वर्ष 2017-18, 2018-19 और 2019-2020 के लिए पेशेवर शुल्क के रूप में 17,16,767/- रुपये (सत्रह

लाख सोलह हजार सात सौ सड़सठ रुपये) का अतिरिक्त भुगतान किया गया था। विवादित आदेश भारतीय खाद्य निगम कार्यालय द्वारा गठित एक समिति की रिपोर्ट पर आधारित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समिति ने एक जांच की और उस जांच के आधार पर याचिकाकर्ता को किए गए कथित अतिरिक्त भुगतानों की मांग करते हुए विवादित आदेश पारित किए गए हैं।

3. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने निवेदन किया कि प्राधिकरण द्वारा अपनाई गई पूरी प्रक्रिया कानून के विरुद्ध है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन है, क्योंकि याचिकाकर्ता को न तो जांच रिपोर्ट की कोई प्रति दी गई और न ही उसे जांच में भाग लेने की अनुमति दी गई। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अत्यधिक भुगतान की मांग के बहाने प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता पर कलंक लगाया है, जिसे भविष्य में याचिकाकर्ता की पैनल सदस्यता समाप्त करने का आधार माना जा सकता है।

4. इसके विपरीत, भारतीय खाद्य निगम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री निशांत मेहरोत्रा ने निवेदन किया कि समिति की जांच रिपोर्ट याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराने का कानून में कोई प्रावधान नहीं है, क्योंकि यह समिति द्वारा की गई एक आंतरिक वित्तीय जांच थी। जांच का उद्देश्य वकीलों और अन्य व्यक्तियों को किए गए भुगतानों का लेखापरीक्षा करना था। उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, रोपड़ बनाम एस. तेजिंदर सिंह गुजराल और अन्य, 1995 सप्लीमेंट (4) सुप्रीम कोर्ट केस 577** के फैसले और इस न्यायालय के एक डिवीजन बेंच के फैसले के.एन. मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2006 (4) ए.डी.जे. 473 (ऑल) (डी.बी.) पर भरोसा करते हुए अपने इस तर्क को पुष्ट किया कि फीस की वसूली के लिए एक वकील द्वारा दायर रिट याचिका विचारणीय नहीं है।

5. इस विशेष मामले में, हमने कोई प्रति-शपथपत्र नहीं मांगा है क्योंकि हमारा मानना है कि मामला जांच के संबंध में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित है, जो तथ्य हमारे समक्ष निर्विवाद था।

6. अभिलेख से स्पष्ट है कि समिति की जांच रिपोर्ट याचिकाकर्ता को कभी नहीं दी गई, जैसा कि याचिकाकर्ता ने जांच के बाद जारी किए गए नोटिस के जवाब में भी कहा है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता को मांग नोटिस जारी होने से पहले किए गए पेशेवर शुल्क के किसी भी अतिरिक्त भुगतान के संबंध में कभी कारण बताओ नोटिस नहीं भेजा गया। वास्तव में, मांग नोटिस निगम के बैंक खाते में राशि जमा करने के आदेश के रूप में थे। यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता कभी भी जांच का हिस्सा नहीं था।

7. मामले के विभिन्न तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, हमारा यह मत है कि किसी भी प्राधिकरण द्वारा पारित कोई भी आदेश, जिसमें किसी व्यक्ति पर कलंक लगाने का आभास हो, उसे विधिवत प्रक्रिया के तहत एक विशेष तरीके से निष्पादित किया जाना आवश्यक है। कानून की ऐसी प्रक्रिया के तहत, जिस व्यक्ति पर इस प्रकार का कलंक लगाया जा रहा है, उसे अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाना चाहिए।

यदि कोई जांच रिपोर्ट उपलब्ध कराई गई है, तो उसकी एक प्रति भी उस व्यक्ति को प्रदान की जानी चाहिए और उसके बाद उसे उस पर अपनी प्रतिक्रिया प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए। उपरोक्त तत्व स्पष्ट रूप से वर्तमान मामले में अनुपस्थित हैं।

8. अतः, हमारा मानना है कि अधिकारियों ने विवादित आदेश पारित करके अपनी सीमा का उल्लंघन किया है, जो निश्चित रूप से कलंकित करने वाले हैं। ये आदेश न केवल याचिकाकर्ता पर कलंक लगाते हैं, बल्कि याचिकाकर्ता को उसके द्वारा दी गई सेवाओं के लिए मूल्यवान मुआवजे से वंचित करने का भी प्रयास हैं।

9. जब राज्य के किसी निकाय द्वारा की गई कोई कार्रवाई किसी व्यक्ति पर कलंक लगाती है, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए, यह मुद्दा कोई नया नहीं है। ऐसा मुद्दा सामान्यतः सेवा मामलों में न्यायालयों के समक्ष आता है। हालांकि, राज्य के निकाय द्वारा की गई सभी कार्रवाइयों में यह सिद्धांत समान रहता है। इस संबंध में, हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **पृथ्वीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 2003 सुप्रीम कोर्ट केस (कानून एवं न्याय) 103** के फैसले का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें पंजाब पुलिस में अस्थायी कर्मचारी के रूप में कार्यरत एक कांस्टेबल को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बर्खास्तगी आदेश को कलंकित मानते हुए नियोक्ता के निर्णय को इस आधार पर रद्द कर दिया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया था और बर्खास्तगी आदेश पारित करने से पहले कांस्टेबल को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम जगदीश चंद्र, (1995) 2 सुप्रीम कोर्ट केस 567** भी इसी बिंदु पर एक प्रामाणिक उदाहरण है। हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश में... स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन और अन्य बनाम बृजेश कुमार और अन्य, AIR 2024 SC 4424, में यह माना गया है कि कथित कदाचार के आधार पर कर्मचारी की सेवा समाप्ति, बिना किसी नियमित जांच या सुनवाई का अवसर दिए, और केवल एक रिपोर्ट के आधार पर, जिसकी प्रति कर्मचारी को भी नहीं दी गई थी और उसे कोई कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था, स्पष्ट रूप से अपमानजनक प्रकृति की है, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना नहीं की जा सकती थी।

10. हमें प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णयों पर विवाद करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हम इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं कि एक वकील अपनी पेशेवर फीस की वसूली के लिए रिट याचिका दायर नहीं कर सकता है। हालांकि, मामले की वर्तमान तथ्यात्मक स्थिति पूरी तरह से अलग है, जिसमें मुवक्किल (एफसीआई) द्वारा वकील (याचिकाकर्ता) से भविष्य में याचिकाकर्ता को देय भुगतानों के विरुद्ध कथित अतिरिक्त भुगतानों की समायोजन के माध्यम से वसूली की मांग की जा रही है।

11. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, दिनांक 05.03.2024 (अनुलग्नक संख्या 13), 24/28.06.2022 (अनुलग्नक संख्या 10), 24.06.2022 (अनुलग्नक संख्या 8) और 16.02.2022 (अनुलग्नक संख्या 5) के विवादित आदेश प्रतिवादी निगम द्वारा जारी किए गए आदेशों को मान्य नहीं माना जा सकता है और इन्हें निरस्त किया जाता है।

12. भारतीय खाद्य निगम को याचिकाकर्ता के विरुद्ध नए सिरे से जांच करने की स्वतंत्रता दी जाती है, यदि वह ऐसा करना चाहे। हालांकि, निगम को ऊपर बताए गए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना होगा।

13. रिट याचिका का निपटारा कर दिया गया है।

(2025) 3 ILRA 812

मूल क्षेत्राधिकार, दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 17.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली,

के समक्ष

रिट याचिका संख्या 1001723/2003

पवन कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: ए.एन. मिश्रा, वीरेंद्र मिश्रा

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी.

(ए) राजस्व कानून - स्टाम्प शुल्क - स्टाम्प अधिनियम के तहत आदेशों की वैधता और समझौते की व्याख्या, कब्जे के हस्तांतरण के संबंध में - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 56 और 47ए/33 - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 164 - भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 - प्रासंगिक प्रावधान - धारा 164 की प्रयोज्यता के लिए केवल कब्जे का हस्तांतरण पर्याप्त नहीं है; कब्जे का हस्तांतरण जोत के हस्तांतरण के अनुसरण में होना चाहिए - 100 रुपये से अधिक मूल्य के लिए पंजीकृत दस्तावेज आवश्यक है - धारा 164 के लिए कानूनी पूर्व शर्त स्थापित नहीं है - विक्रय समझौता स्वामित्व प्रदान नहीं कर सकता। (पैरा - 6, 8, 14, 15, 16)

याचिकाकर्ता ने भारतीय स्टाम्प अधिनियम के तहत पारित आदेशों को चुनौती दी - किरायेदारी समझौते पर स्टाम्प शुल्क की कमी और उसके बाद की पुनरीक्षण याचिका - दोनों आदेश बिना कारण या निष्कर्ष दर्ज किए पारित किए गए थे। (पैरा - 2 से 5)

निर्णय: - न्यायालय ने भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 और 47ए/33 के तहत पारित आदेशों को रद्द कर दिया, यह मानते हुए कि उनमें कारण और निष्कर्ष का अभाव था। अपंजीकृत समझौते के तहत मात्र कब्जा

सौंपना उत्तर प्रदेश जेडए एवं एलआर अधिनियम की धारा 164 के तहत वैध हस्तांतरण नहीं माना जाता है।
(पैरा - 16 से 18)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मोहम्मद फसीह, अपीलकर्ता बनाम मुनीर खान और अन्य, प्रतिवादी, 1987 ऑल. एल.जे. 617
2. उमेश चंद और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, ऑल.डी. और अन्य, 2002 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1508 : 2002 ऑल एलजे 680
3. रमा शंकर और अन्य बनाम डी.डी.सी., रिट बी संख्या 5314 ऑफ 1980

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वीरेंद्र मिश्रा और प्रतिवादी (राज्य) के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता की दलीलें सुनी गईं।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता, फैजाबाद डिवीजन, फैजाबाद के आयुक्त द्वारा भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 के तहत पुनरीक्षण संख्या 73 बाराबंकी में दिनांक 14.05.2003 को पारित आदेश (पवन कुमार अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) और अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व) (एडीएम - एफ एंड आर), बाराबंकी द्वारा भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47ए/33 के तहत मामले संख्या 80/2000-01 में दिनांक 05.03.2001 को पारित आदेश (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पवन कुमार अग्रवाल) को चुनौती दे रहा है।

3. मामले का तथ्यात्मक स्वरूप यह है कि याचिकाकर्ता ने पूर्व से पश्चिम दिशा में 130 फीट और चौड़ाई में 350 फीट क्षेत्रफल वाली एक भूमि ली थी। राजस्व ग्राम सत्राही परगना और तहसील हैदरगढ़, जिला बाराबंकी में स्थित गटा संख्या 171 और 173 की उत्तर-दक्षिण लंबाई में। बाराबंकी के स्टाम्प कलेक्टर द्वारा एक नोटिस जारी किया गया था, जिसका याचिकाकर्ता ने 14.09.1998 को उत्तर दिया और आरोपों का स्पष्ट रूप से खंडन करते हुए संबंधित भूमि के किरायेदारी विलेख पर स्टाम्प के मूल्यांकन को उचित ठहराया।

4. हैदरगढ़ के तहसीलदार ने एक रिपोर्ट तैयार की और उसमें 1200 रुपये मूल्य के स्टाम्प की कमी पाई गई। एडीएम (फर्श एवं वापसी)/कलेक्टर स्टाम्प, बाराबंकी ने याचिकाकर्ता द्वारा 14.09.1998 को प्रस्तुत स्पष्टीकरण और जवाब को खारिज कर दिया और तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को भी बिना किसी निष्कर्ष या टिप्पणी के अनदेखा करते हुए 09.06.1999 को मामले का अंतिम निर्णय कर दिया।

5. तहसीलदार ने बिना कोई कारण, टिप्पणी या निष्कर्ष बताए याचिकाकर्ता द्वारा दायर बहाली आवेदन पर 05.03.2001 के आदेश द्वारा निर्णय कर दिया। एडीएम (फर्श एवं वापसी) द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने 05.03.2001 के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिसे आयुक्त ने बिना कोई कारण बताए और तहसीलदार की रिपोर्ट और याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण पर कोई निष्कर्ष दिए बिना खारिज कर दिया। अतः, यह रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का निवेदन है कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम (उत्तर प्रदेश जमींदारी एवं भूमि सुधार अधिनियम) की धारा 164 के आलोक में, विचाराधीन समझौता हस्तांतरण माना जाएगा क्योंकि इसमें यह स्वीकार किया गया है कि उक्त समझौते के अनुसरण में विवादित संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों को सौंप दिया गया था। चूंकि उक्त समझौते के अनुसरण में संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों को हस्तांतरित कर दिया गया था, इसलिए यह समझौता सर्वथा संपत्ति की बिक्री माना जाएगा। यह निवेदन भी स्पष्ट रूप से निराधार है। उत्तर प्रदेश जमींदारी एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 भूमिधर द्वारा कब्जे के साथ हस्तांतरण से संबंधित है। इसमें भूमिधर द्वारा किसी भी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण का प्रावधान है, जिसके द्वारा उक्त धारा में उल्लिखित किसी धन के भुगतान को सुरक्षित करने के उद्देश्य से हस्तांतरित को कब्जा हस्तांतरित किया जाता है। धारा 164 के आवेदन के लिए केवल कब्जे का हस्तांतरण ही पर्याप्त नहीं है। इस धारा के अनुसार किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण के परिणामस्वरूप कब्जे का हस्तांतरण होना आवश्यक है। चूंकि विक्रय समझौता किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण का प्रभाव नहीं रखता, भले ही उक्त समझौते के अनुसार जोत का कब्जा हस्तांतरित कर दिया गया हो, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि समझौता धारा 164 के अंतर्गत विक्रय के बराबर है। धारा 164 भूमिधर द्वारा हस्तांतरण की परिकल्पना करती है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने मोहम्मद फसीह, अपीलकर्ता बनाम मुनीर खान और अन्य, प्रतिवादी; 1987 ऑल लॉ जर्नल 617, अनुच्छेद 16 के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का अगला तर्क यह है कि विवादित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि 100 रुपये या उससे अधिक मूल्य की किसी भी जोत का हस्तांतरण केवल पंजीकृत दस्तावेजों द्वारा ही किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत संदर्भित "किसी भी जोत का हस्तांतरण" किसी अचल संपत्ति में किसी भी हित के हस्तांतरण को संदर्भित करता है। यदि मूल्य 100 रुपये से अधिक है, तो हस्तांतरण कानून के अनुसार किया जाना चाहिए। अचल संपत्ति में कोई भी अधिकार या हित हस्तांतरण अधिनियम और भारतीय पंजीकरण अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत तरीके से हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है।

8. उनका अगला तर्क यह है कि केवल कब्जे का हस्तांतरण पर्याप्त नहीं है। धारा के अनुसार किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण के अनुसरण में किए गए कब्जे का हस्तांतरण आवश्यक है। इस प्रकार, धारा 164 के अंतर्गत कब्जे के हस्तांतरण की प्रयोज्यता किसी जोत के हस्तांतरण के अनुसरण में होनी चाहिए।

किसी जोत का हस्तांतरण कब्जे के हस्तांतरण के लिए पूर्व शर्त है। अतः यदि भूमिधर द्वारा जोत में किसी भी हित का हस्तांतरण किए बिना भी कब्जा हस्तांतरित कर दिया जाता है, तो उक्त हस्तांतरण उत्तर प्रदेश जेडए एवं एलआर अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत नहीं आएगा। अपने तर्कों के समर्थन में उन्होंने उमेश चंद और अन्य बनाम बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद और अन्य; 2002 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1508 : 2002 ऑल एलजे 680, अनुच्छेद 18, 19, 20 और 21 के एक फैसले पर भरोसा जताया।

9. उन्होंने आगे रमा शंकर और अन्य बनाम डी.डी.सी.; रिट बी संख्या 5314/1980 दिनांक 18.02.2020 के एक फैसले पर भरोसा जताया, जिसमें इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के उपरोक्त संदर्भित निर्णय का अनुसरण किया गया था। प्रासंगिक अनुच्छेद हैं 18, 19 और 20।

10. दूसरी ओर, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादियों द्वारा पारित विवादित आदेश किसी भी प्रकार से दोषपूर्ण या अवैध नहीं है और न्यायसंगत एवं वैध है।

11. उनका अगला तर्क यह है कि समझौते के आधार पर कब्जा हस्तांतरिती को सौंप दिया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णय मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होते हैं।

12. मैंने दोनों पक्षों के विद्वान वकीलों द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के साथ-साथ याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णयों का भी अध्ययन किया है।

13. इस मामले में विवाद को सुलझाने के लिए, उद्धृत निर्णयों के प्रासंगिक अंश नीचे दिए गए हैं:

i) मोहम्मद फसीह, अपीलकर्ता बनाम मुनीर खान और अन्य, प्रतिवादी; 1987 ऑल लॉ जर्नल 617:

16) इस संबंध में प्रतिवादियों के वकील ने तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 के मद्देनजर, विचाराधीन समझौता हस्तांतरण माना जाएगा क्योंकि इसमें यह स्वीकार किया गया है कि उक्त समझौते के अनुसार विवादित संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों को सौंप दिया गया था। उनके अनुसार, चूंकि उक्त समझौते के अनुसार संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों को हस्तांतरित कर दिया गया था, इसलिए यह समझौता हर मायने में संपत्ति की बिक्री है। यह तर्क भी स्पष्ट रूप से निराधार है। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 भूमिधर द्वारा कब्जे के हस्तांतरण से संबंधित है। इसमें भूमिधर द्वारा किसी भी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण का प्रावधान है, जिसके द्वारा उक्त धारा में उल्लिखित किसी धन के भुगतान को सुरक्षित करने के उद्देश्य से हस्तांतरणकर्ता को कब्जा हस्तांतरित किया जाता है। स्पष्ट रूप से धारा 164 के आवेदन के लिए केवल कब्जे का हस्तांतरण ही पर्याप्त है। यह पर्याप्त नहीं है। इस धारा के अनुसार किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण के अनुसरण में किए गए

कब्जे का हस्तांतरण आवश्यक है। चूंकि विक्रय समझौता किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण का प्रभाव नहीं रखता, भले ही उक्त समझौते के अनुसरण में जोत का कब्जा हस्तांतरित कर दिया गया हो, यह नहीं कहा जा सकता कि समझौता धारा 164 के अंतर्गत विक्रय के बराबर था। इसके अलावा, धारा 164 भूमिधर द्वारा हस्तांतरण की परिकल्पना करती है।.....।

ii) उमेश चंद और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद और अन्य; 2002 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1508 : 2002 ऑल एलजे 680:

"18. उपरोक्त चर्चाओं से यह स्पष्ट है कि 100 रुपये या उससे अधिक की किसी भी जोत का हस्तांतरण केवल पंजीकृत दस्तावेजों द्वारा ही किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत संदर्भित "किसी भी जोत का हस्तांतरण" से तात्पर्य किसी भी जोत में किसी भी हित के हस्तांतरण से है। यदि अचल संपत्ति का मूल्य 100 रुपये से अधिक है, तो हस्तांतरण कानून के अनुसार किया जाना चाहिए। अचल संपत्ति में कोई भी अधिकार या हित हस्तांतरण अधिनियम और भारतीय पंजीकरण अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत तरीके से हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय की खंडपीठ ने मोहम्मद फसीह बनाम मुनीर खान, 1987 एलजे 617 में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 के दायरे और सीमा पर विचार किया। खंडपीठ ने अनुच्छेद 16 में कहा,

16. इस संबंध में प्रतिवादियों के वकील ने तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 के मददेनजर, विचाराधीन समझौता हस्तांतरण माना जाएगा क्योंकि इसमें यह स्वीकार किया गया है कि उक्त समझौते के अनुसार विवादित संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों को सौंप दिया गया था। उनके अनुसार, चूंकि उक्त समझौते के अनुसार संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों को हस्तांतरित कर दिया गया था, इसलिए यह समझौता हर मायने में संपत्ति की बिक्री है। यह तर्क भी स्पष्ट रूप से निराधार है। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 भूमिधर द्वारा कब्जे के हस्तांतरण से संबंधित है। इसमें भूमिधर द्वारा किसी भी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण का प्रावधान है, जिसके द्वारा उक्त धारा में उल्लिखित किसी भी धन के भुगतान को सुरक्षित करने के उद्देश्य से हस्तांतरिती को कब्जा हस्तांतरित किया जाता है। स्पष्ट रूप से, धारा 164 के आवेदन के लिए केवल कब्जे का हस्तांतरण ही पर्याप्त नहीं है। धारा के अनुसार, किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण के अनुसरण में किए गए कब्जे का हस्तांतरण ही आवश्यक है। चूंकि विक्रय समझौता किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण का प्रभाव नहीं रखता, भले ही उक्त समझौते के अनुसरण में जोत का कब्जा हस्तांतरित कर दिया गया हो, यह नहीं कहा जा सकता कि समझौता धारा 164 के अंतर्गत विक्रय के बराबर था। इसके अलावा, धारा 164 भूमिधर द्वारा हस्तांतरण की परिकल्पना करती है।

19. उपर्युक्त निर्णय में डिवीजन बेंच ने स्पष्ट रूप से कहा है कि धारा 164 के तहत, केवल कब्जे का हस्तांतरण पर्याप्त नहीं है। उसने कहा, "धारा के अनुसार, किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण के अनुसरण में

किया गया कब्जे का हस्तांतरण आवश्यक है।" इस प्रकार, धारा 164 की प्रयोज्यता के लिए, कब्जे का हस्तांतरण किसी जोत के हस्तांतरण के अनुसरण में होना चाहिए। किसी जोत का हस्तांतरण कब्जे के हस्तांतरण के लिए पूर्व शर्त है। इस प्रकार, यदि भूमिधर द्वारा जोत में किसी भी हित का हस्तांतरण किए बिना कब्जे का हस्तांतरण किया जाता है, तो उक्त हस्तांतरण उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत नहीं आएगा। जैसा कि ऊपर बताया गया है, भूमिधर द्वारा किसी जोत में किसी अधिकार का हस्तांतरण 100 रुपये से अधिक मूल्य का पंजीकृत दस्तावेज द्वारा किया जा सकता है। डिवीजन बैंच ने यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि यदि पंजीकृत विक्रय समझौते द्वारा भूमिधर द्वारा कब्जे का हस्तांतरण किया जाता है, तो उक्त हस्तांतरण उत्तर प्रदेश की धारा 164 के अंतर्गत नहीं आएगा। चूंकि विक्रय समझौते द्वारा भूमि में कोई अधिकार या हित हस्तांतरित नहीं होता, इसलिए यह उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत आता है। जब पंजीकृत विक्रय समझौते के साथ कब्जे का हस्तांतरण उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत नहीं आता, तो वर्तमान मामले में धारा 164 के प्रावधान लागू होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रतिवादियों के पिता द्वारा विवादित भूमि के हस्तांतरण के लिए अग्रिम के रूप में केवल राजस्व स्टाम्प की एक सादी रसीद दी गई थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वादी का मामला स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि यह लेन-देन लगभग विक्रय समझौते के समान था। डिवीजन बैंच के निर्णय के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

20. इस न्यायालय ने कई अन्य निर्णयों में भी यही दृष्टिकोण अपनाया है। दाता राम बनाम अतिरिक्त सिविल जज, बुलंदशहर और अन्य, 1978 एएलजे 840 में, इस न्यायालय ने माना कि विधिवत रूप से जोत का हस्तांतरण होना चाहिए, जैसे कि जोत में काश्तकार के किसी अधिकार, हक या हित का हस्तांतरण होना चाहिए। अनुच्छेद 4 में यह कहा गया था कि:

"4. मामले पर गहन विचार करने के बाद, मैं विद्वान अधिवक्ता के तर्क से सहमत नहीं हूँ। यद्यपि धारा 164 में "किसी भूमिधर द्वारा किए गए किसी भी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण" का उल्लेख है, इसका यह अर्थ नहीं है कि इसके द्वारा वर्णित जोत का हस्तांतरण केवल जोत में शामिल भूमि पर कब्जे का हस्तांतरण हो। जोत का विधिवत हस्तांतरण होना चाहिए, जिससे जोत में काश्तकार का कोई अधिकार, हक या हित हस्तांतरित हो। 100 रुपये से अधिक मूल्य की संपत्ति के मामले में पंजीकृत विलेख के बिना जोत में हित का हस्तांतरण नहीं किया जा सकता।

यदि किसी अपंजीकृत समझौते के तहत कब्जे का हस्तांतरण भी होता है, तो भी जोत में काश्तकार के किसी अधिकार, हक या हित का हस्तांतरण नहीं होता है। मेरी राय में, किसी काश्तकार द्वारा भूमि के कब्जे का मात्र हस्तांतरण, चाहे वह उसे दिए गए किसी अग्रिम भुगतान को सुरक्षित करने के लिए ही क्यों न हो, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत नहीं आता है। भूमि सुधार अधिनियम, 1950। धारा 164 का उद्देश्य जरपेशगी पट्टा या भोगबंधक जैसे लेन-देन को बिक्री में परिवर्तित करना है, न कि भूमिधारक द्वारा भूमि पर कब्जे के मात्र हस्तांतरण को, जिसमें भूमि में किसी हित का हस्तांतरण न हो, बिक्री में परिवर्तित

करना। इस दृष्टि से अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश के आदेश में किसी प्रकार की विधिगत त्रुटि नहीं पाई जा सकती।

21. 1978 रेव. डिसीजन 307 : (1978 ऑल एलजे 836) केदार बनाम जिला न्यायाधीश, बांदा में यह माना गया कि:

इस प्रावधान के लागू होने से पहले, विचाराधीन लेन-देन हस्तांतरण होना चाहिए। विक्रय समझौता इस धारा के अनुसार हस्तांतरण नहीं माना जा सकता, क्योंकि इस लेन-देन के परिणामस्वरूप किसी अन्य व्यक्ति को कोई स्वामित्व हस्तांतरित नहीं होता। इसके अलावा, यह मानते हुए भी कि ऐसा समझौता अधिनियम की धारा 164 के दायरे में आता है, क्योंकि इसे प्रमाणित करने वाला दस्तावेज पंजीकृत नहीं था, इस दस्तावेज के तहत कोई स्वामित्व हस्तांतरित नहीं हो सकता, क्योंकि विक्रय समझौते में प्रतिफल 100 रुपये से अधिक था। अतः, इस तर्क को अस्वीकार किया जाना चाहिए।

iii) रामा शंकर और अन्य बनाम डी.डी.सी., रिट बी संख्या 5314/1980 दिनांक 18.02.2020:

19. मोहम्मद फसीह (उपरोक्त) के मामले में विभाजन पीठ को भी इसी मुद्दे की जांच करने का अवसर मिला था। उसने विशेष रूप से याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा रिपोर्ट के पृष्ठ 41 पर दिए गए सटीक तर्क पर विचार किया, जिसमें निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी:-

इस संबंध में प्रतिवादियों के वकील ने तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 के आलोक में विचाराधीन समझौता हस्तांतरण माना जाएगा, क्योंकि इसमें यह स्वीकार किया गया है कि उक्त समझौते के अनुसरण में विवादित संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों को सौंप दिया गया था। उनके अनुसार, चूंकि उक्त समझौते के अनुसरण में संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों को हस्तांतरित कर दिया गया था, इसलिए यह समझौता सभी प्रयोजनों के लिए संपत्ति की बिक्री है। यह तर्क भी स्पष्ट रूप से निराधार है। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 164 भूमिधर द्वारा कब्जे के साथ हस्तांतरण से संबंधित है। इसमें किसी भूमिधर द्वारा किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण की परिकल्पना की गई है, जिसके द्वारा उक्त धारा में निर्दिष्ट किसी धन के भुगतान को सुरक्षित करने के उद्देश्य से कब्जा हस्तांतरित किया जाता है। धारा 164 के आवेदन के लिए केवल कब्जे का हस्तांतरण ही पर्याप्त नहीं है। धारा के अनुसार जो आवश्यक है वह है... किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण के अनुसरण में किए गए कब्जे का हस्तांतरण। चूंकि विक्रय समझौता किसी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण का प्रभाव नहीं रखता, भले ही उक्त समझौते के अनुसरण में जोत का कब्जा हस्तांतरित कर दिया गया हो, यह नहीं कहा जा सकता कि समझौता धारा 164 के तहत विक्रय के बराबर था।

20. विभाजन पीठ द्वारा दिए गए कानून के आधिकारिक निर्णय को देखते हुए और किसी विपरीत कानून के अस्तित्व में न होने के कारण, ज़मींदारी अधिनियम की धारा 164 के आधार पर प्रस्तुत की गई दलील स्पष्ट रूप से किसी भी सक्रिय विचारणीयता के लिए मान्य नहीं है। चूंकि बिक्री के एक साधारण समझौते से किसी भी जोत का हस्तांतरण नहीं होता है, इसलिए मात्र कब्जे का हस्तांतरण, भले ही सिद्ध हो जाए, ज़मींदारी अधिनियम की धारा 164 के तहत नेपाल के पक्ष में स्वामित्व का आधार नहीं बन सकता था। ज़मींदारी अधिनियम की धारा 164 की आवश्यक पूर्व शर्त का कभी दावा नहीं किया गया और न ही इसके अस्तित्व को सिद्ध किया गया। निर्विवाद रूप से, इस तथ्य को सिद्ध करने का भार नेपाल पर था, जिसे कभी पूरा नहीं किया गया। ऐसे अनुबंध का अस्तित्व या गैर-अस्तित्व, जिससे नेपाल के पक्ष में कब्जा उत्पन्न हो सकता था, एक तथ्यात्मक दलील बनी रहेगी। इसे तथ्य-जांच अधिकारियों के समक्ष कभी नहीं उठाया गया था। इसे अब नहीं उठाया जा सकता।

14. **मोहम्मद फसीह (उपरोक्त)** के मामले में यह माना गया है कि चूंकि उक्त समझौते के अनुसार संपत्ति का कब्जा प्रतिवादियों को हस्तांतरित कर दिया गया था, इसलिए यह समझौता हर मायने में संपत्ति की बिक्री ही है। यह तर्क भी स्पष्ट रूप से निराधार है। उत्तर प्रदेश जमानत एवं भूमि अधिकार अधिनियम की धारा 164 भूमिधर द्वारा कब्जे सहित हस्तांतरण से संबंधित है। इसमें भूमिधर द्वारा किसी भी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण का उल्लेख है, जिसके द्वारा उक्त धारा में उल्लिखित धन के भुगतान को सुरक्षित करने के उद्देश्य से कब्जा हस्तांतरित किया जाता है। धारा 164 के लागू होने के लिए केवल कब्जे का हस्तांतरण ही पर्याप्त नहीं है। धारा के अनुसार किसी भी जोत या उसके किसी भाग के हस्तांतरण के अनुसार कब्जे का हस्तांतरण आवश्यक है। चूंकि विक्रय समझौते से किसी भी जोत या उसके किसी भाग का हस्तांतरण नहीं होता, भले ही उक्त समझौते के अनुसार जोत का कब्जा हस्तांतरित कर दिया गया हो, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि समझौता धारा 164 के तहत विक्रय के बराबर था। धारा 164 भूमिधर द्वारा हस्तांतरण की परिकल्पना करती है।

15. **उमेश चंद और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में यह माना गया है कि यह स्पष्ट है कि 100 रुपये या उससे अधिक मूल्य की किसी भी जोत का हस्तांतरण केवल पंजीकृत दस्तावेजों द्वारा ही किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश जमींदारी एवं भूमि स्वामित्व अधिनियम की धारा 164 के अंतर्गत संदर्भित "किसी भी जोत का हस्तांतरण" से तात्पर्य किसी भी जोत में किसी भी हित के हस्तांतरण से है। यदि अचल संपत्ति का मूल्य 100 रुपये से अधिक है, तो हस्तांतरण कानून के अनुसार किया जाना चाहिए। अचल संपत्ति में कोई भी अधिकार या हित हस्तांतरण अधिनियम और भारतीय पंजीकरण अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत तरीके से हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है।

16. **रमा शंकर और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में यह माना गया है कि चूंकि बिक्री के एक साधारण समझौते से किसी जोत का हस्तांतरण नहीं होता है, इसलिए मात्र कब्जे का हस्तांतरण, भले ही सिद्ध हो जाए, ज़मींदारी अधिनियम की धारा 164 के तहत नेपाल के पक्ष में स्वामित्व का आधार नहीं बन सकता। ज़मींदारी अधिनियम

की धारा 164 की अनिवार्य पूर्व शर्त का न तो कभी दावा किया गया और न ही इसके अस्तित्व को सिद्ध किया गया।

17. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे इस मामले पर पूरी तरह से लागू होते हैं और उनमें दर्ज तर्कों के मददेनजर, रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

18. तदनुसार, आयुक्त, फैजाबाद डिवीजन, फैजाबाद द्वारा पुनरीक्षण संख्या 73 बाराबंकी में भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 56 के तहत दिनांक 14.05.2003 को पारित आदेश; पवन कुमार अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य तथा अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (वित्त और राजस्व) (एडीएम - एफ एंड आर), बाराबंकी द्वारा मामला संख्या 80/2000-01 में भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47ए/33 के तहत दिनांक 05.03.2001 को पारित आदेश; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम... पवन कुमार अग्रवाल के खिलाफ दायर किए गए सभी आदेश रद्द किए जाते हैं।

19. रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है।

20. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 3 ILRA 819

मूल क्षेत्राधिकार: दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 19.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली,

के समक्ष

रिट याचिका संख्या 1002243 वर्ष 2001

राजू

...याचिकाकर्ता

बनाम

कलेक्टर सीतापुर और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: अवधेश कुमार

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी., आर.एन. गुप्ता

(ए) राजस्व कानून - अनाधिकृत कब्जा - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 122-ख - अध्याय VIII नियम 12 न्यायालय के नियमों का स्पष्टीकरण II - निरीक्षण और प्रमाण की कानूनी आवश्यकता - याचिकाकर्ता या वकील की उपस्थिति में निरीक्षण न करना और विश्वसनीय माप का अभाव आदेश को अवैध बनाता है - राजस्व अभिलेख में आधार के बिना कब्जा ग्रहण करना अवैध है - दोषपूर्ण माप और अप्रमाणित लेखपाल रिपोर्ट पर भरोसा करना त्रुटिपूर्ण है - निचली अदालतों ने असत्यापित और अप्रमाणित सामग्री पर भरोसा करने में गलती की - लेखपाल की रिपोर्ट सिद्ध नहीं हुई, कब्जा ग्रहण करने का कोई आधार नहीं था, निरीक्षण नियमों के अनुसार नहीं किया गया - असत्यापित रिपोर्ट पर और प्रक्रियात्मक निष्पक्षता का पालन किए बिना पारित आदेश अस्थिर हैं। (पैरा -20, 21, 22, 23)

याचिकाकर्ता पर आरोप है कि उसने अनाधिकृत रूप से 2000 वर्ग फुट ग्राम सभा की भूमि पर कब्जा कर लिया और उस पर मकान बना लिया। लेखपाल की रिपोर्ट पर धारा 122-बी के तहत कार्यवाही शुरू की गई। याचिकाकर्ता ने पैतृक भूमि पर निर्माण का दावा करते हुए इस दावे का विरोध किया। याचिकाकर्ता या उसके वकील की अनुपस्थिति में मौके का निरीक्षण किया गया। सहायक कलेक्टर ने बेदखली और जुर्माने का निर्देश दिया। कलेक्टर ने पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी। (पैरा 4 से 11)

निर्णय: नायब तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर भरोसा करना पूरी तरह से गलत था और उस आधार पर पारित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध था। निचली अदालतों ने इस तथ्य को गलत समझा कि लेखपाल की शिकायत किसी भी तरह से सिद्ध नहीं हुई थी, इसलिए उस पर भरोसा करना कानून की दृष्टि से स्वीकार्य नहीं था। तदनुसार, विवादित आदेशों को रद्द किया जाता है। (पैरा 21, 22, 23)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अवधेश कुमार और प्रतिवादी राज्य के विद्वान अतिरिक्त सीएससी की बात सुनी गई।
2. प्रतिवादी संख्या 3 को नोटिस जारी किया गया था और 22.01.2025 की कार्यालय रिपोर्ट के आधार पर न्यायालय के नियमों के अध्याय VIII नियम 12 स्पष्टीकरण II में निहित प्रावधानों के मददेनजर प्रतिवादी संख्या 3 को जारी किया गया नोटिस पर्याप्त माना गया, अतः मामला अंतिम निपटारे के लिए तैयार है।
3. इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता सीतापुर के अतिरिक्त तहसीलदार/सहायक कलेक्टर द्वारा दिनांक 27.11.2000 को पारित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक 5) और सीतापुर के कलेक्टर द्वारा दिनांक 19.01.2001 को पारित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक 7) को चुनौती दे रहा है।

4. मामले का तथ्यात्मक आधार यह है कि लेखपाल की रिपोर्ट के आधार पर, प्लॉट संख्या 114 मीटर/0.251 हेक्टेयर के संबंध में, जिसे राजस्व दस्तावेजों में बंजर घास के रूप में दर्ज किया गया था, याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किया गया था कि उसने अनाधिकृत रूप से 2000 वर्ग फुट जमीन पर कब्जा कर लिया है और अनाधिकृत रूप से मकान का निर्माण किया है तथा ग्राम सभा की 50,000 रुपये की संपत्ति को नुकसान पहुंचाया है।

5. लेखपाल की दिनांक 14.07.1998 की उक्त रिपोर्ट के आधार पर, धारा 122-बी, उत्तर प्रदेश जेडए एंड एलआर अधिनियम के तहत मामला संख्या 85/190 दर्ज किया गया था, जिसमें ग्राम सभा खगेसिया मौं बनाम राजू का मामला दर्ज किया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता को धारा 49-का के तहत नोटिस जारी किया गया था।

6. धारा 49-क के तहत उक्त नोटिस प्राप्त होने पर, याचिकाकर्ता ने 18.01.1999 को इस आधार पर आपत्ति दर्ज कराई कि वह पिछड़ी जाति का गरीब व्यक्ति है और पारिवारिक समझौते के अनुसार, उसने अपने भाई के लिए प्लॉट संख्या 113/3 क्षेत्रफल 0.045 में आवंटित हिस्से पर एक घर और एक झोपड़ी का निर्माण करवाया था। याचिकाकर्ता के घर के सामने ग्राम सभा का प्लॉट संख्या 114 था, जो खाली पड़ा था और याचिकाकर्ता का उस पर कोई कब्जा नहीं था तथा लेखपाल द्वारा झूठी रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी। वर्ष 1396-1401 एफ. के खतौनी उद्धरण की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 1 के रूप में संलग्न है।

7. 22.09.1998 को सतेंद्र कुमार - लेखपाल और 15.02.2000 को राम सहाय वर्मा - लेखपाल को मौखिक गवाही के लिए पेश किया गया। 11.08.2000 को याचिकाकर्ता ने गांव सभा खगेसिया मौं के अब्दुल रज्जाक - प्रधान को पेश किया, जिन्होंने गवाही दी कि वे याचिकाकर्ता को जानते हैं, जिनके पांच भाई हैं - आशा राम, राम आसरे, नानकाई, छोटे लाल और राजू (याचिकाकर्ता)। उनका पैतृक घर गांव में स्थित था और राम स्वरूप - प्रधान ने राम आसरे के पक्ष में भूमि का पट्टा निष्पादित किया था। जिस पर घर बना था, जहां याचिकाकर्ता रहता था।

8. 09.10.2000 को याचिकाकर्ता ने एक आवेदन दायर किया कि उसने गांव सभा खगेसिया मौं के विवादित भूखंड संख्या 114 के एक इंच पर भी कब्जा नहीं किया है और इसलिए, याचिकाकर्ता के वकील की उपस्थिति में माप किया जाए। 20.10.2000 को नायब तहसीलदार, खैरबाद, जिला सीतापुर ने तहसीलदार को अपनी रिपोर्ट सौंपी कि उन्होंने मौंके पर जाकर देखा और याचिकाकर्ता को प्लॉट संख्या 114 पर कब्जा प्राप्त है।

9. नायब तहसीलदार, खैरबाद या लेखपाल द्वारा की गई माप याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति में की गई थी। इसके अलावा, माप निश्चित बिंदुओं या चौमेरा या तिहाडा से नहीं की गई थी। कोई फील्ड बुक तैयार नहीं की गई थी और मापों की क्रॉस-चेकिंग भी नहीं की गई थी। 27.11.2000 को अपार तहसीलदार/सहायक कलेक्टर, सीतापुर ने खगेसिया मऊ गांव में स्थित 2000 वर्ग फुट के प्लॉट संख्या 114 को खाली करने का आदेश पारित किया और 5500 रुपये का जुर्माना भी लगाया।

10. चुनौती दिए गए आदेश में कहा गया है कि याचिकाकर्ता की ओर से 19.10.2000 को आवेदन प्रस्तुत करने पर, 20.10.2000 को स्वयं याचिकाकर्ता द्वारा मौके का निरीक्षण किया गया और संबंधित लेखपाल द्वारा माप लिया गया। माप और निरीक्षण से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया कि याचिकाकर्ता का मकान प्लॉट संख्या 114 पर बना है।

11. सीतापुर के सहायक कलेक्टर के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने 8.01.2001 को सीतापुर के कलेक्टर के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिसमें विवादित प्लॉट संख्या 114 पर कब्जे से इनकार करते हुए कहा गया कि उसका मकान प्लॉट संख्या 113/3 क्षेत्रफल 0.045 पर बना है। सीतापुर के कलेक्टर ने भी 19.01.2001 को पुनरीक्षण याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि माप और मौके के निरीक्षण से यह सिद्ध हो गया कि याचिकाकर्ता ने विवादित प्लॉट संख्या 114 पर बिना किसी अनुमति के मकान का निर्माण किया है।

12. विवादित आदेशों को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का निवेदन है कि सीतापुर कलेक्टर ने निचली अदालत के अभिलेखों का अवलोकन किए बिना ट्रायल कोर्ट के फैसले और आदेश की पुष्टि करने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की है, क्योंकि ट्रायल कोर्ट के आदेश में उल्लेख किया गया था कि उन्होंने स्वयं मौके का निरीक्षण किया था, जबकि यह निरीक्षण खैराबाद के नायब तहसीलदार द्वारा किया गया था, न कि ट्रायल कोर्ट द्वारा।

13. उनका अगला निवेदन यह है कि नायब तहसीलदार ने याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति में निरीक्षण किया, जबकि याचिकाकर्ता ने अपने वकील की उपस्थिति में मौके का निरीक्षण करने का अनुरोध किया था।

14. उनका आगे निवेदन यह है कि दोनों निचली अदालतों ने मौके के निरीक्षण और माप पर भरोसा किया है, लेकिन इस बात का कोई विवरण नहीं दिया गया है कि किस प्रकार और कैसे माप किया गया था, क्योंकि न तो कोई निश्चित बिंदु निर्धारित किया गया था और न ही चौमेरा या तिहाड़ा का पता लगाया गया था, बल्कि यह दो निश्चित बिंदुओं से किया गया था, कोई फील्ड बुक तैयार नहीं की गई थी और न ही क्षेत्र की क्रॉस-चेक की गई थी।

15. उनका अगला निवेदन यह है कि निचली अदालत ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा 19.10.2000 को दायर आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया था कि माप याचिकाकर्ता के वकील की उपस्थिति में किया जाए। इसके अलावा, आवश्यकतानुसार याचिकाकर्ता के वकील की उपस्थिति में मौके का निरीक्षण नहीं किया गया और याचिकाकर्ता को मौके के निरीक्षण का कोई विवरण नहीं दिया गया तथा याचिकाकर्ता को इसका खंडन करने का अवसर नहीं दिया गया।

16. उन्होंने निवेदन किया कि दोनों निचली अदालतों ने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि लेखपाल की रिपोर्ट सिद्ध नहीं हो सकी क्योंकि यह लेखपाल सतेंद्र कुमार द्वारा दी गई थी और बयान राम सहाय वर्मा द्वारा दिया गया था। इसलिए, लेखपाल, जो शिकायतकर्ता नहीं था, के बयान को नजरअंदाज किया जाना चाहिए।

17. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का अंतिम निवेदन यह है कि रिपोर्ट भी विश्वसनीय नहीं थी क्योंकि माप का विवरण नहीं दिया गया था, माप का पैमाना नहीं दिया गया था और जरीब का विवरण भी नहीं दिया गया था।

18. दूसरी ओर, प्रतिवादी राज्य के विद्वान अतिरिक्त सीएससी ने प्रस्तुत किया कि निचली अदालत द्वारा पारित दोनों आदेश न्यायसंगत और वैध हैं और निचली अदालतों द्वारा कोई खामी या अवैधता नहीं की गई है। रिट याचिका भ्रामक है और इसे खर्च सहित खारिज किया जाना चाहिए।

19. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख में मौजूद सामग्री का अध्ययन किया है।

20. अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि कार्यवाही लेखपाल की शिकायत पर शुरू की गई थी, जिसकी पूछताछ सहायक कलेक्टर द्वारा विवादित आदेश पारित करते समय नहीं की गई थी। एक अन्य लेखपाल की पूछताछ की गई और उसके बयान पर भरोसा करते हुए आदेश पारित किया गया।

21. अभिलेखों के अवलोकन से यह भी स्पष्ट नहीं है कि मौके का निरीक्षण राजस्व अभिलेखों के आधार पर किया गया था, जो निरीक्षण के समय उपलब्ध थे। यह भी स्पष्ट नहीं है कि किस आधार पर यह माना गया कि याचिकाकर्ता का कब्जा प्लॉट संख्या 114 पर है न कि प्लॉट संख्या 113/3 पर। याचिकाकर्ता द्वारा अपने अधिवक्ता की उपस्थिति में निरीक्षण हेतु दायर आवेदन के बारे में कोई चर्चा नहीं है और 20.10.2000 को याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की उपस्थिति में निरीक्षण नहीं किया गया और न ही याचिकाकर्ता को इसकी सूचना दी गई। इसलिए, नायब तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर भरोसा करना पूरी तरह से गलत है और उस आधार पर पारित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है।

22. यह भी पता चला है कि लेखपाल द्वारा दिए गए तथ्य और रिपोर्ट को निचली अदालत और पुनरीक्षण न्यायालय दोनों ने ही साक्ष्यों पर विचार करते हुए सिद्ध नहीं किया है, इसलिए आदेश दुर्भावनापूर्ण प्रतीत होता है। निचली अदालतों ने इस तथ्य को गलत समझा है कि लेखपाल की शिकायत किसी भी तरह से सिद्ध नहीं हुई है, इसलिए उस पर भरोसा करना कानून की दृष्टि में स्वीकार्य नहीं है। विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी वकील द्वारा दिया गया निराधार तर्क है और इस न्यायालय द्वारा विवादित आदेशों को रद्द किया जाना चाहिए।

23. तदनुसार, सीतापुर के अतिरिक्त तहसीलदार/सहायक कलेक्टर द्वारा दिनांक 27.11.2000 को पारित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक 5) और सीतापुर के कलेक्टर द्वारा दिनांक 19.01.2001 को पारित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक 7) को निरस्त किया जाता है।

24. रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है।

25. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 3 ILRA 823

मूल क्षेत्राधिकार: दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 12.03.2025

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

के समक्ष

रिट याचिका संख्या 1003067 वर्ष 2015

श्रीमती बिगनी देवी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश सहकारी न्यायाधिकरण, लखनऊ और अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: सुदीप सेठ, मनोज कुमार, श्रीधर अवस्थी

प्रतिवादियों के वकील: सी.एस.सी., के.एस. पवार, राकेश कुमार चौधरी, राकेश श्रीवास्तव

ए. सिविल कानून - उत्तर प्रदेश सहकारी समितियां अधिनियम, 1965 - धारा 2(सी), 12, 13 और 14 - आवंटन रद्द करना - आदर्श उपनियम - रजिस्ट्रार द्वारा अधिसूचित -उपनियमों में किए गए संशोधन, लेकिन समिति द्वारा अपनाए नहीं गए - प्रयोज्यता - निर्णय: रजिस्ट्रार द्वारा अधिसूचित आदर्श उपनियम किसी समिति पर स्वतः लागू नहीं होता है और वास्तव में इसे पहले समिति द्वारा अपनाया जाना आवश्यक है, जिसके बाद प्रक्रिया का अनिवार्य रूप से पालन किया जाना आवश्यक है। अतः, विवादित मामले पर 1976 के उपनियम लागू होंगे, न कि 1979 के उपनियम, जिन्हें समिति ने कभी नहीं अपनाया। (पैरा 31 और 35)

ख. दीवानी कानून - उत्तर प्रदेश सहकारी समितियां अधिनियम, 1965 - धारा 2(ग), 12, 13 और 14 - आवंटन रद्द करना - आवंटन एक ही परिवार के दो सदस्यों के पक्ष में किया गया था - वैधता को चुनौती - एक परिवार पर प्रतिबंध - 1976 के उपनियमों में प्रतिबंध का प्रावधान था, लेकिन 1979 के उपनियमों में नहीं - प्रयोज्यता - यह माना गया कि समिति में एक 'परिवार' के पास एक से अधिक भूखंड होने पर प्रतिबंध 1976 के उपनियमों

में मौजूद नहीं था - चूंकि 1976 के उपनियमों में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं था, इसलिए यह माना गया कि याचिकाकर्ता के भूखंड आवंटन को 24 मार्च, 1986 के विलेख द्वारा रद्द करना कानून के अनुसार नहीं था। (पैरा 4, 41 और 42)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. ईश्वर नगर सहकारी आवास भवन समिति बनाम प्रेमानंद शर्मा और अन्य; एआईआर 2011 एससी 548

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा सुनाया गया)

1. याचिकाकर्ता की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ, उनके सहायक अधिवक्ता श्री श्रीधर अवस्थी, विपक्षी पार्टी संख्या 1 की ओर से राज्य अधिवक्ता, विपक्षी पार्टी संख्या 2 की ओर से अधिवक्ता श्री राकेश कुमार चौधरी और विपक्षी पार्टी संख्या 3 की ओर से अधिवक्ता श्री राकेश श्रीवास्तव की दलीलें सुनी गईं।

2. यह याचिका याचिकाकर्ता के भूखंड के निरस्तीकरण को बरकरार रखने वाले मध्यस्थता मामले संख्या 128-ई/2008 में दिनांक 23 जुलाई, 2010 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 7 मई, 2015 के उस निर्णय और आदेश को भी चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील संख्या 161/2015 को खारिज कर दिया गया है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने बताया कि याचिकाकर्ता ने विपक्षी पार्टी संख्या 3 श्री सरस्वती सहकारी आवास समिति लिमिटेड, कानपुर की सदस्य बनने के लिए 5 नवंबर, 1985 को आवेदन दिया था, जिसे स्वीकार कर लिया गया था और इसके अनुसरण में, 24 मार्च, 1986 के विलेख द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में स्थायी पट्टा विलेख निष्पादित किया गया था, जिसके तहत कानपुर के सुजानपुर जिले के दहेली में स्थित प्लॉट संख्या 45 आवंटित किया गया था। याचिकाकर्ता ने 1993 में उस पर एक आवास का निर्माण किया और उसका मकान कर नियमित रूप से अदा किया जा रहा है। यह बताया गया है कि याचिकाकर्ता अपनी छोटी बेटी के साथ उक्त प्लॉट पर रह रही हैं।

4. आगे यह निवेदन किया जाता है कि याचिकाकर्ता को बिना किसी पूर्व सूचना के और एकतरफा रूप से, सोसायटी द्वारा 26 अक्टूबर, 2008 के प्रस्ताव द्वारा उपरोक्त पट्टा रद्द कर दिया गया, जिसके दो कारण थे: याचिकाकर्ता के पति, श्री हरिद्वार को पहले ही 10 अक्टूबर, 1984 के विलेख द्वारा उसी सोसायटी में प्लॉट संख्या 44 आवंटित किया गया था, और इसलिए सोसायटी पर लागू उपनियमों के अनुसार, एक ही परिवार के दो सदस्यों को एक साथ सोसायटी में प्लॉट आवंटित नहीं किए जा सकते थे। रद्द करने का दूसरा कारण यह

था कि याचिकाकर्ता सोसायटी के उपनियमों में निर्धारित आवंटन तिथि से तीन वर्ष की अवधि के भीतर प्रश्नगत प्लॉट पर कोई स्थायी आवासीय निर्माण करने में विफल रही।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पक्ष में भूखंड के आवंटन के समय, 1976 का आदर्श उपनियम लागू था और उसके उपनियम 5 के अनुसार, एक ही परिवार के दो व्यक्तियों को एक साथ भूखंड आवंटित किए जाने पर कोई रोक नहीं थी।

6. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने निर्धारित तीन वर्ष की अवधि के भीतर प्रश्नगत भूखंड पर स्थायी निर्माण कर लिया है; इस तथ्य का उल्लेख विवादित आदेश में भी किया गया है और इसलिए इस आधार पर याचिकाकर्ता के भूखंड को रद्द करने का कोई कारण नहीं बनता।

7. आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि आवंटन 1986 में किया गया था, इसलिए 22 वर्ष से अधिक की अवधि के बाद इसे रद्द नहीं किया जा सकता था और इसलिए यह समय सीमा से वर्जित है।

8. विपक्षी पार्टी संख्या 3 के विद्वान वकील ने याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्कों का खंडन करते हुए कहा कि 24 मार्च, 1986 की पट्टा विलेख के माध्यम से याचिकाकर्ता के पक्ष में आवंटन के समय, वास्तव में सोसायटी में 1976 के उपनियमों के बजाय 1979 के आदर्श उपनियम प्रचलित थे। यह तर्क दिया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता के पति को उसी सोसायटी में प्लॉट संख्या 44 पहले ही आवंटित और हस्तांतरित किया जा चुका था, इसलिए याचिकाकर्ता सोसायटी की सदस्य बनने और 1979 के उपनियमों के उपनियम 5 के अनुसार प्लॉट आवंटन के लिए अपात्र थी।

9. यह भी तर्क दिया गया है कि 2004 के उपनियमों के उपनियम-3 (11) के अनुसार, याचिकाकर्ता ने निर्धारित समय सीमा के भीतर प्लॉट संख्या 45 पर मकान का निर्माण नहीं किया था और केवल 10 फीट x 12 फीट का कमरा बनाने से यह उपनियम के दायरे में नहीं आएगा; 'आवासीय मकान', चूंकि 2004 के उपनियमों के उपनियम 3(11) के अनुसार, आवासीय मकान एक पूर्ण आवासीय इकाई को दर्शाता है जिसमें एक बैठक कक्ष, एक रसोई, शौचालय और एक स्नानघर शामिल है जैसा कि उसमें परिभाषित किया गया है।

10. यह निवेदन किया जाता है कि श्रीमती प्रतिमा के विरुद्ध सोसायटी द्वारा दायर मध्यस्थता मामले में कार्यवाही के दौरान ही याचिकाकर्ता के पक्ष में आवंटन में विसंगतियां सामने आईं। इसके बाद, सोसायटी ने 26 अक्टूबर, 2008 को एक प्रस्ताव पारित कर याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 24 मार्च, 1986 के विलेख को रद्द कर दिया। उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 के प्रावधानों के तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध मध्यस्थता मामला दायर किया गया था, जिसे अपना पक्ष रखने का पूरा अवसर दिया गया था।

11. आगे यह निवेदन किया जाता है कि यद्यपि पूर्व में यह समिति राज्य सरकार द्वारा अधिनियम 1965 की धारा 3(2) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए दिनांक 15 जून, 1976 को जारी अधिसूचना के अनुसार 1976 के आदर्श उपनियमों द्वारा शासित थी, सभी शहरी सहकारी आवास समितियाँ इसके अंतर्गत पंजीकृत थीं और वर्ष 1965 में आवास आयुक्त के कार्यालय से जारी आदर्श उपनियम ऐसी सभी सहकारी आवास समितियों पर लागू थे, जो वर्ष 2004 तक जारी रहे, जब आवास आयुक्त द्वारा अधिनियम 1965 की धारा 14 के तहत नए आदर्श उपनियम लागू किए गए और समिति द्वारा इन्हें अपनाया गया। इस अपनाने की सूचना दिनांक 26 दिसंबर, 2004 के पत्र के माध्यम से उप आवास आयुक्त को प्रस्तुत की गई और 1979 के पुराने उपनियमों को वापस कर दिया गया।

12. अतः यह निवेदन किया जाता है कि 1979 के उपनियम की उपनियम 3(10) के अनुसार 'परिवार' शब्द को पति, पत्नी और आश्रित बच्चों को शामिल करते हुए परिभाषित किया गया है और उक्त उपनियम 1979 के उपनियम 5(1) के अनुसार एक ही परिवार के दो या अधिक सदस्यों को सोसायटी में एक साथ भूखंड आवंटित करने की मनाही है। यह भी निवेदन किया जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा सोसायटी में भूखंड संख्या 45 पर निर्मित बिना साज-सज्जा वाला छोटा कमरा रहने योग्य नहीं है और वैसे भी, याचिकाकर्ता कभी उसमें नहीं रहा है और वास्तव में वह 122/9, लेबर कॉलोनी (जे.के. कॉलोनी), जाजमऊ, कानपुर नगर का निवासी है और याचिकाकर्ता के वास्तविक निवास का तथ्य साक्ष्य द्वारा सिद्ध हो चुका है।

13. उन्होंने 2004 के उपनियमों के उपनियम 3(11) का हवाला देते हुए यह तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्लॉट संख्या 45 पर किया गया निर्माण उक्त उपनियमों के प्रावधान के अनुसार 'मकान' की परिभाषा में नहीं आता है, और उनका कहना है कि यह पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू होगा। इन्हीं परिस्थितियों में सोसायटी की प्रबंधन समिति ने 26 अक्टूबर, 2008 को हुई अपनी बैठक में याचिकाकर्ता को प्लॉट संख्या 45 का आवंटन रद्द करने का संकल्प लिया।

14. यह भी कहा गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता के पक्ष में अवैध आवंटन की जानकारी सोसायटी को श्रीमती प्रतिमा से संबंधित एक अन्य मध्यस्थता मामले में सितंबर-अक्टूबर, 2008 में लिखित बयान में दिए गए कथनों के अनुसार प्राप्त हुई थी, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता के आवंटन को रद्द करने के प्रस्ताव को पारित करने में कोई अत्यधिक देरी हुई है।

15. विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निर्देशों के आधार पर प्रस्तुत किया कि आवास आयुक्त कार्यालय के पास वर्ष 1979 के आदर्श उपनियमों की कोई प्रति उपलब्ध नहीं है, लेकिन उन्होंने अन्य समितियों पर लागू होने वाले वर्ष 1979 के विभिन्न अन्य आदर्श उपनियमों को रिकॉर्ड पर प्रस्तुत किया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अधिनियम 1965 की धारा 14 के अनुसार संबंधित समिति पर आदर्श उपनियमों को लागू किया जाना आवश्यक है।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने इसके खंडन में प्रस्तुत किया कि पूर्व उपनियमों में संशोधन या आवास आयुक्त कार्यालय द्वारा तैयार किए गए आदर्श उपनियमों को अपनाने की प्रक्रिया को 1965 के अधिनियम में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार लागू और कार्यान्वित किया जाना आवश्यक है, जिसका पालन 1979 के उपनियमों के संबंध में नहीं किया गया है, जो रजिस्ट्रार कार्यालय में पंजीकृत नहीं हैं, और इसलिए याचिकाकर्ता के मामले में केवल 1976 के अनुमोदित उपनियम ही लागू होते हैं।

17. पक्षों के विद्वान वकीलों द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार करने और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन करने के बाद, इस याचिका में जिन प्रश्नों पर निर्णय लिया जाना आवश्यक है, वे इस प्रकार हैं:-

- (1) क्या याचिकाकर्ता से संबंधित आवंटन 1976, 1979 या 2004 के उपनियमों द्वारा शासित होगा?
- (2) क्या 1979 के उपनियम 5 के आलोक में याचिकाकर्ता के पक्ष में भूखंड का आवंटन रद्द करना वैध है?
- (3) क्या याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित सोसायटी में भूखंड संख्या 45 पर आवंटन के बाद किए गए निर्माण सोसायटी पर लागू उपनियमों के अनुरूप हैं?

प्रश्न संख्या (1) का उत्तर

18. उपरोक्त प्रश्न के संबंध में, 1965 के अधिनियम की धारा 2(सी) का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो सहकारी समिति के वर्तमान में लागू पंजीकृत उपनियमों को परिभाषित करती है। उक्त अधिनियम की धारा 7 प्रस्तावित उपनियमों के पंजीकरण से संबंधित है और यह इंगित करती है कि यदि रजिस्ट्रार संतुष्ट है कि समिति के प्रस्तावित उपनियम अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं और उनके तहत आवश्यकताओं का अनुपालन करते हैं, तो उक्त उपनियमों को पंजीकृत किया जाएगा। 1965 के अधिनियम की धारा 12 सहकारी समिति के उपनियमों के संशोधन से संबंधित है और यह निर्धारित करती है कि एक सहकारी समिति, अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, अपने उपनियमों को निर्धारित तरीके से संशोधित कर सकती है और ऐसा कोई भी संशोधन तब तक वैध और प्रभावी नहीं होगा जब तक कि इसे इस अधिनियम के तहत पंजीकृत न किया गया हो। प्रासंगिक प्रावधान इस प्रकार हैं:-

"12. सहकारी समिति के उपनियमों में संशोधन.-(1) कोई सहकारी समिति, इस अधिनियम और नियमों के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, अपने उपनियमों में निर्धारित तरीके से संशोधन कर सकती है; बशर्ते कि ऐसा कोई संशोधन तब तक वैध और प्रभावी नहीं होगा जब तक कि वह इस अधिनियम के तहत पंजीकृत न हो।

(2) उपनियमों में संशोधन का प्रस्ताव रजिस्ट्रार को भेजा जाएगा और यदि रजिस्ट्रार संतुष्ट है कि प्रस्तावित संशोधन-

(i) अधिनियम की धारा 4 में निर्दिष्ट उद्देश्यों के विपरीत नहीं है; और

[(ii) अधिनियम या नियमों के अन्य प्रावधानों के विपरीत नहीं है, तो वह ऐसे प्रस्ताव की प्राप्ति की तिथि से एक माह के भीतर संशोधन को पंजीकृत करेगा। यदि रजिस्ट्रार एक माह के भीतर संशोधन को पंजीकृत नहीं करता है तो यह माना जाएगा कि उसने संशोधन को पंजीकृत करने से इनकार कर दिया है और इस मामले में रजिस्ट्रार के लिए अगले एक माह के भीतर समिति को संशोधन को पंजीकृत न करने के कारणों की सूचना देना अनिवार्य होगा।]

(3) [* * * * *]2"

19. अधिनियम की धारा 13 में यह उल्लेख है कि सहकारी समिति के उपनियमों में संशोधन पंजीकरण के बाद किसी विशेष दिन से या अन्य मामलों में पंजीकरण के दिन से लागू होगा।

20. विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं ने 1979 के उपनियमों के प्रवर्तन को इंगित करने के लिए 1965 के अधिनियम की धारा 14 का हवाला दिया है, जिसके तहत याचिकाकर्ता का आवंटन रद्द किया गया है। अधिनियम की धारा 14 इस प्रकार है:-

14. उपनियमों में संशोधन का निर्देश देने की शक्ति।- (1) जहाँ रजिस्ट्रार को, किसी सहकारी समिति के सदस्य के निवेदन पर या अन्यथा, यह राय हो कि सहकारी समिति के उपनियमों में संशोधन ऐसी समिति के हित में या जनहित में आवश्यक या वांछनीय है, तो वह निर्धारित परिस्थितियों में, पंजीकृत डाक द्वारा समिति को लिखित आदेश जारी करके, समिति को उस समय सीमा के भीतर संशोधन करने के लिए कह सकता है जो वह आदेश में निर्दिष्ट करे।

(2) यदि समिति निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर संशोधन करने में विफल रहती है, तो रजिस्ट्रार, समिति को सुनवाई का अवसर देने के बाद, [X X X]3 ऐसे संशोधन को पंजीकृत कर सकता है और पंजीकृत डाक द्वारा समिति को संशोधन की एक प्रति जारी कर सकता है जिसे वह एक प्रति के रूप में प्रमाणित करेगा और ऐसी प्रति इस बात का निर्णायक प्रमाण होगी कि संशोधन विधिवत किया गया है और ऐसी प्रति पंजीकृत है।

21. उपर्युक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से रजिस्ट्रार द्वारा पहले से अनुमोदित उपनियमों के संशोधन से संबंधित है।

22. सहकारी समिति पर लागू करने के उद्देश्य से आदर्श उपनियमों की अधिसूचना के संबंध में, उत्तर प्रदेश सहकारी समिति नियम, 1968 का अध्याय III प्रासंगिक है।

23. उक्त नियमों का नियम 13 यह दर्शाता है कि रजिस्ट्रार प्रत्येक प्रकार की समिति या समितियों के लिए आदर्श उपनियम बना सकता है और समय-समय पर उनमें ऐसे परिवर्तन कर सकता है जिन्हें वह आवश्यक समझे। नियम 14 यह प्रावधान करता है कि रजिस्ट्रार की राय में किसी समिति के लिए उपयुक्त आदर्श

उपनियम को ऐसी समिति अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, यदि आवश्यक समझे तो, संशोधनों के साथ अपना सकती है।

24. नियम 13 और 14 को एक साथ पढ़ने से स्पष्ट होता है कि यद्यपि रजिस्ट्रार द्वारा आदर्श उपनियम बनाए और अधिसूचित किए जा सकते हैं, लेकिन सोसायटी को अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें अपनाना आवश्यक है और इसलिए वे स्वतः लागू नहीं होंगे।

25. नियम 1968 का अध्याय IV उपनियमों में संशोधन की प्रक्रिया से संबंधित है। उक्त नियमों के नियम 24, 29, 31, 32 और 33 इस प्रकार हैं:-

24. किसी सहकारी समिति के उपनियमों में संशोधन, जिसमें संपूर्ण उपनियमों के स्थान पर नए उपनियमों को प्रतिस्थापित करना भी शामिल है, समिति की आम सभा के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई मतों से पारित प्रस्ताव द्वारा किया जा सकता है: बशर्ते कि रजिस्ट्रार द्वारा पूर्व में अनुमोदित मॉडल उपनियमों या संशोधन के मामले में, या धारा 14 की उपधारा (1) के तहत रजिस्ट्रार द्वारा किए जाने वाले संशोधन के मामले में, प्रस्ताव केवल साधारण बहुमत से पारित किया जा सकता है।

29. जहां रजिस्ट्रार नियम 28(1) के तहत किसी संशोधन को पंजीकृत करता है, वह-

(क) अपने हस्ताक्षर से-

- (i) पंजीकरण रजिस्टर के संबंधित स्तंभ में संशोधन के संबंध में प्रविष्टि करेगा या करवाएगा,
- (ii) अपने कार्यालय में मूल उपनियमों की कार्यालय प्रति में संशोधन के संबंध में पृष्ठांकन करेगा,

(ख) पंजीकृत संशोधन की एक प्रति अपने कार्यालय अभिलेख के लिए रखेगा,

(ग) भेजेगा या करवाएगा पंजीकृत संशोधन की प्रमाणित प्रति निम्नलिखित को भेजी जाएगी:

- (i) संबंधित सहकारी समिति को,
- (ii) यदि संबंधित समिति किसी केंद्रीय समिति से संबद्ध है, तो उसे, यदि उसकी राय में उक्त संशोधन केंद्रीय समिति के लिए महत्वपूर्ण है,

(d) समिति को निम्नलिखित लौटाया जाएगा या लौटाया जाएगा:

- (i) पंजीकरण प्रमाण पत्र जिसमें उपनियमों के संशोधन के पंजीकरण की तिथि अंकित हो, और
- (ii) संशोधन के संबंध में पृष्ठांकन सहित मूल उपनियम।

[29ए. जहां किसी सहकारी समिति के उपनियमों को नए उपनियमों से प्रतिस्थापित किया जाता है, वहां रजिस्ट्रार अध्यक्ष और उपाध्यक्ष सहित प्रथम प्रबंधन समिति को मनोनीत कर सकता है। मनोनीत प्रबंधन समिति तब तक पद पर बनी रहेगी जब तक कि प्रबंधन समिति विधिवत गठित नहीं हो जाती:

बशर्ते कि रजिस्ट्रार प्रबंधन समिति का नामांकन केवल उन्हीं समितियों में करेगा जहाँ निर्वाचित प्रबंधन समिति विद्यमान नहीं है। उन समितियों के मामले में जहाँ उपनियमों को नए उपनियमों से प्रतिस्थापित कर दिया गया है, लेकिन निर्वाचित प्रबंधन समिति अभी भी विद्यमान है, रजिस्ट्रार को निर्वाचित प्रबंधन समिति का कार्यकाल समाप्त होने के बाद ही प्रबंधन समिति को नामांकित करने का अधिकार होगा।

31. जहां रजिस्ट्रार धारा 14 की उपधारा (1) के तहत किसी उपनियम में संशोधन का आदेश जारी करता है, वहां आदेश में निम्नलिखित बातें शामिल होंगी:

(क) प्रस्तावित संशोधन का पाठ;

(ख) वह अवधि जिसके भीतर समिति द्वारा ऐसे संशोधन को अपनाया जाना आवश्यक है;

(ग) संशोधन प्रस्तावित करने के कारण।

32. यदि समिति प्रस्तावित संशोधन पर आपत्ति करती है, तो रजिस्ट्रार समिति की आपत्तियों पर विचार करेगा और यदि संतुष्ट है कि समिति की आपत्तियां सही हैं, तो वह आगे की कार्यवाही रोक सकता है, और यदि संतुष्ट नहीं है, तो वह धारा 14 की उपधारा (2) के तहत आगे की कार्यवाही करेगा।

33. जहां धारा 14 की उपधारा (2) के तहत कोई संशोधन पंजीकृत किया गया है, तो इस उद्देश्य के लिए रखे गए रजिस्टर में प्रपत्र 'I' में इसकी प्रविष्टि की जाएगी और इस प्रकार पंजीकृत संशोधन की एक प्रति संबंधित सहकारी समिति को भेजी जाएगी। नियम 29 के उप-नियम (क), (ख) और (ग) में दिए गए प्रावधानों के अनुसार उस संशोधन के संबंध में भी कार्यवाही की जाएगी। यदि समिति ने पंजीकरण प्रमाण पत्र और मूल पंजीकृत उपनियम रजिस्ट्रार को भेजे हैं, तो नियम 29 के उप-नियम (घ) के तहत भी कार्यवाही की जाएगी।

26. 1965 के अधिनियम की धारा 12, 13 और 14 तथा ऊपर उल्लिखित नियमों को एक साथ पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि चाहे समिति के मौजूदा उपनियमों में संशोधन किया जाए या रजिस्ट्रार द्वारा अधिसूचित आदर्श उपनियम लागू हों, वे सहकारी समिति पर स्वतः लागू नहीं होते। नियम 13 और 14 के प्रावधानों से यह स्पष्ट होता है कि एक बार आदर्श उपनियम तैयार हो जाने के बाद, समिति को उन्हें आवश्यक समझे जाने वाले संशोधनों सहित अपनाना अनिवार्य है।

27. इसी प्रकार, किसी समिति के मौजूदा उपनियमों में संशोधन के मामले में, नियम 24, 1968 के नियमों के अनुसार, उस उद्देश्य के लिए बुलाई गई आम सभा में उपस्थित और मतदान करने वाले समिति के आम सभा सदस्यों के कम से कम दो तिहाई मतों से पारित प्रस्ताव द्वारा इसे अपनाया जाना आवश्यक है। नियम 24 का परंतु यह भी इंगित करता है कि आदर्श उपनियमों के कारण मौजूदा उपनियमों में किए जाने वाले संशोधन के मामले में, उन्हें भी 1965 के अधिनियम की धारा 14(1) के अनुसार आम सभा के साधारण बहुमत से पारित प्रस्ताव द्वारा अपनाया जाना आवश्यक है। इस प्रकार, रजिस्ट्रार द्वारा जारी आदर्श उपनियमों के अनुसार

किसी सहकारी समिति के मौजूदा उपनियमों में संशोधन के मामले में भी, नियम 24, 1968 के नियमों के तहत परिकल्पित तरीके से समिति द्वारा इसे अपनाना अनिवार्य है।

28. नियम 1968 के नियम 24 के अनुसार मौजूदा उपनियमों में संशोधन की प्रक्रिया लागू हो जाने के बाद, रजिस्ट्रार को उपरोक्त वर्णित अनुसार नियम 29 के अनुसार उस संशोधन को पंजीकृत करना आवश्यक है।

29. चूंकि विपक्षी पक्षों ने यह तर्क देने के लिए कि 1979 के आदर्श उपनियम स्वतः ही सोसायटी पर लागू होते हैं, 1965 के अधिनियम की धारा 14 पर भरोसा किया है, इसलिए नियम 1968 के नियम 31, 32 और 33 पर विचार करना आवश्यक है, जिनके अनुसार, अधिनियम की धारा 14(1) के तहत आदेश जारी होने के बाद, नियम 31 में निर्दिष्ट विशिष्टताओं सहित उपनियम में संशोधन का आदेश जारी करना आवश्यक है।

30. केवल तभी जब समिति प्रस्तावित संशोधन को लागू करने पर आपत्ति जताती है, तो रजिस्ट्रार को अधिनियम की धारा 14(2) और 1968 के नियमों के नियम 32 के तहत दी गई कार्रवाई करनी होती है। नियमों का नियम 33 यह प्रावधान करता है कि जहां अधिनियम की धारा 14(2) के तहत कोई संशोधन पंजीकृत किया गया है, उसके बाद रजिस्ट्रार में प्रपत्र 'I' में प्रविष्टि करना आवश्यक है और संशोधन की एक प्रति संबंधित सहकारी समिति को भी भेजी जानी चाहिए, जिसके बाद नियम 29 के अनुसार कार्यवाही करना आवश्यक है।

31. उपरोक्त पहलुओं पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि रजिस्ट्रार द्वारा अधिसूचित आदर्श उपनियम किसी समिति पर स्वतः लागू नहीं होता है और वास्तव में इसे पहले समिति द्वारा अपनाया जाना आवश्यक है, जिसके बाद ऊपर बताई गई प्रक्रिया का अनिवार्य रूप से पालन करना आवश्यक है। मौजूदा उपनियमों में संशोधन के संबंध में भी यही स्थिति है, भले ही वे 1965 के अधिनियम की धारा 14 के तहत जारी किए गए हों।

32. मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में उपरोक्त प्रावधान की प्रयोज्यता के आधार पर, विपक्षी पक्ष 2 और 3 की ओर से दिए गए निवेदनों से स्पष्ट है कि 1979 के ऐसे कोई भी अनुमोदित उपनियम अभिलेख में प्रस्तुत नहीं किए गए हैं। इतना ही नहीं, उक्त विपक्षी पक्ष नियम 31 के तहत पारित कोई आदेश या 1968 के नियमों के नियम 33 के तहत कोई दस्तावेज अभिलेख में प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं, जो एक अनिवार्य पहलू है।

33. ऊपर उद्धृत 1965 के अधिनियम और 1968 के नियमों की धाराओं पर विचार करते हुए, विपक्षी पक्षों का यह निवेदन कि 1975 के उपनियम समितियों पर स्वतः लागू होते हैं, अस्वीकार किया जाता है।

34. विपक्षी पक्षों ने अपने अभिवेदनों में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि 1979 के आदर्श उपनियमों के जारी होने से पहले, 1976 के उपनियम सोसायटी पर लागू थे।

35. उपरोक्त कथन के आलोक में, न्यायालय पाता है कि विवादित मामले पर 1976 के उपनियम लागू होंगे, न कि 1979 के उपनियम, जिन्हें समिति ने कभी अपनाया ही नहीं था।

36. जहां तक 2004 के उपनियमों का संबंध है, यद्यपि विपक्षी पक्ष संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि इसके प्रावधान पूर्वव्यापी रूप से लागू होंगे, लेकिन 2004 के उपनियमों की जांच से स्पष्ट है कि उनमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो इन उपनियमों को पूर्वव्यापी रूप से प्रभावी बनाता हो। सहकारी समिति पर लागू होने वाले उपनियमों या नियमों के पूर्वव्यापी प्रकृति के पहलू पर सर्वोच्च न्यायालय ने **ईश्वर नगर सहकारी आवास भवन समिति बनाम प्रेमानंद शर्मा और अन्य**, AIR 2011, सुप्रीम कोर्ट 548 के मामले में निम्नलिखित रूप से विचार किया है:-

12. प्रतिवादी-1 के विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि नियम 25 प्रतिवादी-1 के मामले पर लागू नहीं होता क्योंकि उक्त नियम पूर्वव्यापी नहीं है और उक्त संपत्ति खरीदने की कथित 'अयोग्यता' नियमों को अपनाने से पहले ही उत्पन्न हो गई थी। हमारा यह मत है कि प्रतिवादी-1 के विद्वान वकील का उपरोक्त तर्क भ्रामक है। केवल इसलिए कि कोई व्यक्ति उस समय समाज का सदस्य बना था जब नियम 25 में उल्लिखित अयोग्यता अस्तित्व में नहीं थी और उक्त नियम के कारण अब समाज का सदस्य नहीं रहेगा, इसका यह अर्थ नहीं है कि उक्त नियम पूर्वव्यापी है। "किसी कानून को पूर्वव्यापी कानून नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसके कार्य करने की कुछ शर्तें उसके पारित होने से पहले के समय से ली गई हैं।" (देखें क्रेज़ ऑन स्टैच्यूट लॉ, 17वां संस्करण, पृष्ठ 386)। क्वीन बनाम वीना (1875) का भी संदर्भ लिया जा सकता है। 10 क्यू.बी 195 में अधिनियमित किया गया कि गंभीर अपराध के दोषी प्रत्येक व्यक्ति को खुदरा शराब बेचने से हमेशा के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा। यह माना गया कि यह अयोग्यता प्रत्येक दोषी अपराधी पर लागू होती है, चाहे उसे अधिनियम के लागू होने से पहले या बाद में दोषी ठहराया गया हो।

15. वे सबसे ठोस मामले जिनमें कानूनों को पूर्वव्यापी बनाया जाता है, वे हैं जिनमें अधिनियम के लागू होने की तिथि अधिनियमन तिथि से पहले की होती है, या जो किसी अमान्य कानून को वैध बनाते हैं। अन्यथा, प्रत्येक कानून उन अधिकारों को प्रभावित करता है जो उस कानून के न होने पर भी अस्तित्व में होते, और कोई कानून केवल इसलिए पूर्वव्यापी नहीं हो जाता क्योंकि उसके लागू होने की आवश्यकता का एक हिस्सा उसके पारित होने से पहले के समय से लिया गया है। इसे वर्तमान मामले पर लागू करने पर, यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि नियम 25(2) पूर्वव्यापी नहीं है। नियम 25(2) केवल इतना करता है कि यह भविष्य में लागू होता है, हालांकि कार्रवाई का आधार अतीत में भूखंड प्राप्त करना है। इस प्रकार, जब नियम 25(2) के अनुसार, किसी सदस्य को समाज का सदस्य नहीं माना जाता है, तो यह समाप्ति 2 अप्रैल, 1973 से प्रभावी होती है, जब नियम लागू हुए थे।

37. उपरोक्त निर्णय और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि 2004 के उपनियमों में इसके पूर्वव्यापी प्रभाव से संबंधित कोई विशिष्ट शर्त नहीं है, विपक्षी पार्टी संख्या 3 के विद्वान वकील द्वारा 2004 के उपनियमों के पूर्वव्यापी प्रभाव से संबंधित प्रस्तुत तर्क को अस्वीकार किया जाता है।

38. उपरोक्त चर्चा पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के मामले में केवल 1976 के उपनियम ही लागू होंगे।

39. अतः प्रश्न संख्या 1 का उत्तर याचिकाकर्ता के पक्ष में दिया जाता है।

प्रश्न संख्या (2) का उत्तर

40. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, यह स्पष्ट हो जाने के बाद कि 1976 के उपनियम लागू होंगे, न कि 1979 के, उक्त 1976 के उपनियमों पर विचार करना प्रासंगिक हो जाता है। यह प्रासंगिक है कि याचिका के अनुच्छेद 18 में कहा गया है कि 1976 के उपनियमों के उपनियम 5 के अनुसार, एकमात्र शर्त यह थी कि सोसायटी के कार्यक्षेत्र में रहने वाला कोई भी व्यक्ति, जिसका अपना निवास स्थान न हो, सोसायटी का सदस्य बन सकता है। यह भी कहा गया है कि उक्त उपनियमों के उपनियम 42 में यह प्रावधान था कि किसी भी सदस्य को एक से अधिक भूखंड आवंटित/कब्जे में रखने की अनुमति नहीं होगी। यह भी कहा गया है कि उक्त उपनियमों में 'परिवार' शब्द का उल्लेख या परिभाषा नहीं दी गई है। विपक्षी पार्टी संख्या 3 द्वारा दायर प्रति-हलफनामे के अनुच्छेद 16 में इन कथनों का खंडन नहीं किया गया है, जो केवल 1979 के आदर्श उपनियमों पर आधारित है।

41. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'परिवार' शब्द की परिभाषा पहली बार 1979 के आदर्श उपनियमों में शामिल की गई थी और एक परिवार द्वारा सोसायटी में एक से अधिक भूखंड रखने पर रोक 1976 के उपनियमों में नहीं थी।

42. इस संदर्भ में, चूंकि 1976 के उपनियमों में ऐसी कोई रोक नहीं थी, इसलिए यह माना जाता है कि 24 मार्च, 1986 के विलेख द्वारा याचिकाकर्ता के भूखंड आवंटन को रद्द करना विधि के अनुसार नहीं था।

43. अतः प्रश्न का उत्तर याचिकाकर्ता के पक्ष में दिया जाता है।

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर

44. उपरोक्त प्रश्न के संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि 1976 में प्रचलित उपनियमों और आवंटन आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता ने सोसायटी में भूखंड संख्या 45 पर निर्धारित समय अवधि के भीतर एक आवासीय इकाई का निर्माण किया था।

45. उपर्युक्त पहलू पर विपक्षी पक्षों ने अपने प्रतिवाद हलफनामे में या विवादित आदेशों में भी कोई विवाद नहीं किया है।

46. इसके विपरीत, 23 जुलाई, 2010 के फैसले को देखने से स्पष्ट है कि एक मौके पर निरीक्षण रिपोर्ट में यह उल्लेख है कि उक्त भूखंड पर 10 फीट x 12 फीट क्षेत्रफल का एक कमरा बना हुआ है और शेष क्षेत्र में पेड़ और बगीचा मौजूद हैं। इस निष्कर्ष के बावजूद, विवादित फैसले में आगे कहा गया है कि उक्त भूखंड का उपयोग आवासीय प्रयोजन के लिए नहीं किया जा रहा है।

47. विपक्षी पक्ष संख्या 3 ने अपने प्रतिवाद हलफनामे में 2004 के उपनियमों का हवाला देते हुए यह तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उक्त भूखंड पर किया गया निर्माण उक्त उपनियमों में दी गई मकान की परिभाषा के अनुरूप नहीं है, क्योंकि निर्माण में रसोई, शौचालय और स्नानघर के लिए जगह नहीं है, जैसा कि 2004 के उपनियमों के उपनियम 3(11) में परिभाषित है।

48. प्रति-हलफनामे में 1976 के उपनियमों के अनुसार मकान या आवासीय इकाई की किसी भी परिभाषा का उल्लेख नहीं है।

49. चूंकि यह पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि 2004 के उपनियम वर्तमान विवाद में लागू नहीं होंगे, इसलिए प्रतिवादी पक्ष द्वारा जिस 'मकान' की परिभाषा पर भरोसा किया जा रहा है, उसे अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।

50. दिनांक 23 जुलाई, 2010 के निर्णय से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि विवादित भूखंड पर एक स्थायी निर्माण मौजूद है और इसलिए यह स्वाभाविक रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उक्त निर्माण याचिकाकर्ता द्वारा निर्धारित समय अवधि के भीतर किया गया है। 1976 के उपनियमों में 'मकान' या 'आवासीय इकाई' से संबंधित किसी भी विशिष्ट परिभाषा का उल्लेख न होने के कारण, इस न्यायालय की राय में, उक्त निर्माण 1976 के उपनियमों के अनुसार मकान की परिभाषा के अंतर्गत आता है।

51. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि उपरोक्त आधार पर याचिकाकर्ता के पक्ष में आवंटन रद्द करना भी अस्वीकृत किया जाना चाहिए।

52. अतः प्रश्न का उत्तर याचिकाकर्ता के पक्ष में दिया जाता है।

53. उपरोक्त चर्चाओं के आलोक में, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 26 अक्टूबर, 2008 को सोसायटी द्वारा पारित संकल्प के माध्यम से आवंटन रद्द करना और दिनांक 23 जुलाई, 2010 को पारित निर्णय (मामला संख्या 128-ई/2008) तथा सहकारी न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 7 मई, 2015 को पारित निर्णय एवं आदेश (अपील संख्या 161/2015) के माध्यम से इसे बरकरार रखना, कानून के प्रावधानों के विरुद्ध होने के कारण, एतद्वारा सर्टिओरारी रिट जारी करके निरस्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त, परमादेश रिट जारी की जाती है जिसमें विपक्षी पक्षों को आदेश दिया जाता है कि वे कानपुर के सुजानपुर जिले के दहेली स्थित योजना संख्या 2 में भूखंड संख्या 45 पर याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करें।

54. परिणामस्वरूप याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। पक्षकार अपना-अपना खर्च वहन करेंगे।

(2025) 3 ILRA 833

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट सी संख्या 3000181 / 1997

सूर्य लाल एवं अन्य

.....याचीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री बलराम यादव, श्री मोहम्मद असलम खान, श्री मोहम्मद असलम खान, श्री मोहम्मद सरताज अहमद, श्री मोहम्मद असलम खान

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

ए. सीलिंग विधि - उत्तर प्रदेश भूमि अधिकतम जोत - सीमा आरोपण अधिनियम, 1960 - धारा 5(6), 10(1) और 10(2) - अतिरिक्त भूमि - घोषणा हेतु नोटिस जारी किया गया - विचाराधीन भूमि के हिस्से से संबंधित विक्रय विलेख 24.01.1971 से पूर्व निष्पादित किया गया था - प्रभाव - विक्रय विलेख की वैधता का निर्णय

करने के लिए नियत प्राधिकारी का क्षेत्राधिकार कहाँ तक है - अभिनिर्धारित किया, नियत प्राधिकारी को विक्रय विलेख की वैधता की जाँच करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था क्योंकि उसका क्षेत्राधिकार तभी उत्पन्न होता है जब हस्तांतरण विलेख निर्धारित दिन या उसके बाद निष्पादित किया गया हो - धारा 5 की उपधारा 6 प्राधिकारियों को विक्रय की वैधता निर्धारित करने का क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती है और इसलिए विक्रय विलेख की विषयवस्तु या विक्रय प्रतिफल की पर्याप्तता या अन्यथा पर ऐसे प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की भी जाँच नहीं की जा सकती - *रामधर सिंह के मामले* पर भरोसा किया गया। (पैरा 36)

रिट याचिका की अनुमति। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. राजा महिपाल सिंह (मृतक) विधिक वारिसों के माध्यम से बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2007 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2334 : (2007) 102 आरडी 792
2. रिट सी संख्या 55503 / 2002; व्यास प्रसाद बनाम अपर आयुक्त, गोरखपुर एवं अन्य, निर्णीत दिनांक 20.07.2017
3. सिविल अपील संख्या 5798-5799 / 2008; बछ्ज नाहर बनाम नीलिमा मंडल एवं अन्य, निर्णीत दिनांक 23.09.2008 (सुप्रीम कोर्ट)
4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमर सिंह आदि, एआईआर 1997, सुप्रीम कोर्ट 1534
5. रामधर सिंह बनाम नियत प्राधिकारी एवं अन्य; 1994 सप्प (3) एससीसी 702

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता मोहम्मद असलम खान से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता मोहम्मद आरिफ खान और प्रतिवादी-राज्य की ओर से विद्वान अतिरिक्त सी.एस.सी. श्री एस. पी. मौर्य को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने अपर आयुक्त, न्यायपालिका, फैजाबाद डिवीजन, फैजाबाद द्वारा अपील संख्या 47 (सीलिंग) में पारित आदेश दिनांक 12.08.1997 और साथ ही उत्तर प्रदेश भूमि अधिकतम जोत - सीमा आरोपण अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 2 के अंतर्गत वाद संख्या 812 में नियत प्राधिकारी (सीलिंग), बहराइच द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.12.1993 को चुनौती दे रहे हैं।

3. मामले का संक्षिप्त विवरण यह है कि याचिकाकर्ताओं और उनके पिताओं के नाम पर एक नोटिस दिनांक 10.11.1989 जारी किया गया था, जिसमें उनसे उत्तर प्रदेश भूमि अधिकतम जोत - सीमा आरोपण अधिनियम

की धारा 10 की उपधारा 1 के अंतर्गत भूमि को अतिरिक्त घोषित न करने का कारण बताने को कहा गया था। याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध जारी किए गए उक्त नोटिस से पहले, मृतक प्रभु के नाम पर भी एक नोटिस दिनांक 18.05.1989 जारी किया गया था, जिनकी मृत्यु हो चुकी थी, जो याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 के पिता और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा थे।

4. याचिकाकर्ताओं ने अपनी आपत्तियों दिनांक 11.01.1990 के माध्यम से उक्त नोटिस पर आपत्ति जताई, जिसमें उन्होंने कहा कि नोटिस अवैध और मनमाना था क्योंकि याचिकाकर्ताओं और उनके पूर्वजों के पास भूमि जोत पर अधिकतम सीमा अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित सीमा से अतिरिक्त भूमि नहीं थी, क्योंकि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 के पिता और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा का बहुत पहले ही निधन हो चुका था। इतना ही नहीं, विवादित भूमि दिनांक 02.02.1970 के पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 को पहले ही हस्तांतरित कर दी गई थी, और अन्य आधारों के साथ-साथ यह भी कहा कि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के पिता वर्ष 1972 में अधिकतम सीमा अधिनियम लागू होने की तिथि पर बालिग थे।

5. इसके बाद, साक्षियों के माध्यम से मौखिक और अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तुत किए गए जिससे यह साबित हुआ कि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के पिता भूमि जोत पर सीमा अधिनियम लागू होने के समय बालिग थे और यह भी साबित हुआ कि विक्रय विलेख 24.01.1971 से पहले निष्पादित किया गया था और सभी हस्तांतरिती अपनी-अपनी भूमि पर अलग-अलग कब्जे में थे, साथ ही दो बीघा भूमि बाग भूमि थी और लगभग एक एकड़ भूमि उसर भूमि थी।

6. इसके बाद, नियत प्राधिकारी (सीलिंग), बहराइच द्वारा आदेश दिनांक 31.12.1993 के माध्यम से आपत्ति का निर्णय लिया गया और न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना आपत्तियों को खारिज कर दिया गया क्योंकि वह पहले से ही अभिलेखों में उपलब्ध साक्ष्यों का मूल्यांकन करने में विफल रहा।

7. उक्त मनमाने और अवैध आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने आयुक्त, फैजाबाद डिवीजन, फैजाबाद के समक्ष अपील संख्या 47 दायर की, जिसमें यह आधार दिया गया कि नियत प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश विधि की दृष्टि से घोर त्रुटिपूर्ण था क्योंकि इसमें कोई विशिष्ट और प्रासंगिक विवादक निर्धारित नहीं किए गए थे और यह भी कि नियत प्राधिकारी याचिकाकर्ताओं के नाम पर वर्ष 1970 में निष्पादित विक्रय विलेख को समझने में विफल रहा। अपील में यह भी आरोप लगाया गया कि सिंचित और असिंचित भूमि की स्थिति पर विचार किए बिना मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण ढंग से किया गया।

8. अपर आयुक्त, न्यायिक ने याचिकाकर्ता की अपील पर आदेश दिनांक 12.08.1997 द्वारा निर्णय लिया और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार और जांच किए बिना, मात्र बाहरी और अप्रासंगिक तथ्यों के आधार पर इसे फिर से खारिज कर दिया।

9. अवर न्यायालय इस अभिवचन पर कोई निष्कर्ष देने में विफल रही कि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के पिता वर्ष 1972 में भूमि जोत पर अधिकतम सीमा अधिनियम लागू होने के समय वयस्क थे और इसलिए मृतक प्रभु के सभी वयस्क पुत्रों को अधिकतम सीमा क्षेत्र निर्धारित करते समय दी गई अतिरिक्त 2 हेक्टेयर भूमि का लाभ उन्हें नहीं दिया गया।

10. अवर न्यायालय 24.01.1971 से पहले निष्पादित विक्रय विलेख के साक्ष्य मूल्य पर विचार करने में भी विफल रही, जबकि भूमि जोत पर अधिकतम सीमा अधिनियम के प्रावधान स्पष्ट रूप से यह निर्धारित करते हैं कि उक्त तिथि से पहले निष्पादित विक्रय विलेख को अधिकतम क्षेत्रफल निर्धारित करते समय ध्यान में रखा जाएगा।

11. अवर न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों में सिंचित और असिंचित भूमि के साथ-साथ बाग भूमि के विवादक पर कोई निष्कर्ष नहीं है, जबकि उक्त विवादक पर याचिकाकर्ताओं ने स्पष्ट रूप से दलील दी थी और साक्ष्यों के माध्यम से इसे साबित करने का प्रयास किया था, इसलिए अवर न्यायालयों द्वारा पारित आदेश विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण हैं।

12. याचिकाकर्ता ने अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तुत किया था, अर्थात् परिवार रजिस्टर की सही और प्रमाणित प्रति, जिसमें याचिकाकर्ताओं के परिवार के सदस्यों को वर्ष 1978 के आधार पर अलग-अलग दर्शाया गया था, जो परिवार के सदस्यों के निर्धारण में प्रासंगिक था क्योंकि याचिकाकर्ताओं के परिवार वर्ष 1978 से पहले अलग-अलग रह रहे थे और अलग-अलग हस्तांतरित जोतों पर खेती कर रहे थे, लेकिन अवर न्यायालयों ने उक्त अभिलेख के साक्ष्य मूल्य की जांच करने में विफल रहते हुए तथ्यों को ध्यान में रखे बिना आपत्ति का निर्णय कर दिया।

13. मृतक प्रभु द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा को हस्तांतरित भूमि के मूल्यांकन के आधार पर आवश्यक स्टॉप पत्रों पर पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किए गए थे, जो प्रश्नगत जोतों के एकमात्र खातेदार थे।

14. यह भी कहा गया है कि क्षेत्र के लिए निर्धारित दरों पर मूल्यांकन विधिवत किया गया था और पंजीकरण अधिकारियों या किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा किसी भी स्तर पर कोई विवाद नहीं उठाया गया था, इसलिए याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निष्पादित उक्त विक्रय विलेख अधिकतम क्षेत्रफल निर्धारित करते समय विचारणीय थे, लेकिन नियत प्राधिकारी 02.02.1970 और 03.02.1970 को निष्पादित उक्त विक्रय विलेखों पर विचार करने में विफल रहे, इसलिए आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि से मान्य नहीं हैं।

15. खातेदार प्रभु की मृत्यु नोटिस जारी होने से पहले ही 15.08.1988 को हो चुकी थी और विक्रय विलेख के आधार पर भी भूमि याचिकाकर्ताओं के नाम पर पंजीकृत हो चुकी थी। प्रभु के जीवनकाल में याचिकाकर्ता अलग

रह रहे थे। यह मामला सीमा निर्धारण अधिनियम के क्षेत्राधिकार से बाहर था और विधिक रूप से कोई नोटिस जारी नहीं किया जा सकता था।

16. याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 के पिता और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा प्रभु की मृत्यु के बाद, उनके नाम पर एक नोटिस दिनांक 18.05.1989 जारी किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने अपनी आपत्तियों दिनांक 11.01.1990 के माध्यम से उक्त नोटिस पर आपत्ति जताते हुए कहा कि यह नोटिस अवैध और मनमाना है, क्योंकि याचिकाकर्ताओं और उनके पूर्वजों के पास भूमि जोत पर अधिकतम सीमा अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित सीमा से अतिरिक्त भूमि नहीं थी, क्योंकि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 के पिता और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा की मृत्यु बहुत पहले ही हो चुकी थी। इतना ही नहीं, विवादित भूमि पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 02.02.1970 के माध्यम से याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और 1 से 3 को हस्तांतरित कर दी गई थी, इस आधार पर कि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के पिता वर्ष 1972 में भूमि जोत पर अधिकतम सीमा अधिनियम लागू होने की तिथि पर बालिग थे।

17. नियत प्राधिकारी (सीलिंग), बहराइच ने आदेश दिनांक 31.12.1993 द्वारा आपत्ति का निस्तारण किया और उसे अस्वीकार कर दिया। उक्त आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने आयुक्त, फैजाबाद डिवीजन, फैजाबाद के समक्ष अपील संख्या 47 दायर की, जिसमें यह तर्क दिया गया कि नियत प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश विधि की दृष्टि से घोर त्रुटिपूर्ण था क्योंकि इसमें कोई विशिष्ट और प्रासंगिक विवादक निर्धारित नहीं किए गए थे, और यह भी कि नियत प्राधिकारी याचिकाकर्ताओं के नाम पर वर्ष 1970 में निष्पादित विक्रय विलेख को समझने में विफल रहा।

18. अपर आयुक्त, न्यायिक ने आदेश दिनांक 12.08.1997 द्वारा याचिकाकर्ता की अपील का निस्तारण किया और मात्र बाहरी और अप्रासंगिक तथ्यों के आधार पर अपील को फिर से खारिज कर दिया। अतः, वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है।

19. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि आक्षेपित आदेश अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों की जांच करते समय न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना पारित किया गया था। उन्होंने कहा कि अवर न्यायालयों ने इस बात पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया कि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के पिता, वर्ष 1972 में भूमि जोत सीमा अधिनियम लागू होने के समय बालिग थे।

20. उन्होंने आगे कहा कि अवर न्यायालयों ने अधिनियम की धारा 5 की उपधारा 6 के प्रावधानों के अनुसार 24.01.1971 से पहले निष्पादित विक्रय विलेख के साक्ष्य पर भी विचार नहीं किया है। उन्होंने कहा कि अवर न्यायालयों ने याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए तर्कों और कारणों का उल्लेख किए बिना ही आक्षेपित आदेश पारित किया है।

21. उन्होंने आगे कहा कि प्रतिवादियों ने विवाद का निस्तारण विधि के अनुसार नहीं किया। उन्होंने बताया कि खातेदार प्रभु की मृत्यु 15.08.1988 को नोटिस जारी होने से पहले ही हो गई थी और विक्रय विलेख के आधार पर भी भूमि याचिकाकर्ताओं के नाम पर पंजीकृत थी तथा वे प्रभु के जीवनकाल में अलग रह रहे थे। उन्होंने कहा कि यह मामला सीमा अधिनियम के क्षेत्राधिकार से बाहर है और विधि के अनुसार कोई नोटिस जारी नहीं किया जा सकता, अतः कार्यवाही अवैध, मनमानी और याचिकाकर्ताओं के हित में नहीं है।

22. उन्होंने आगे कहा कि आक्षेपित आदेशों में सिंचित और असिंचित भूमि के साथ-साथ हथियाई गई भूमि के क्षेत्र के संबंध में कोई साक्ष्य नहीं है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि परिवार रजिस्टर की प्रमाणित प्रति में याचिकाकर्ताओं के परिवार के सदस्यों को 1978 के आधार पर अलग-अलग दर्शाया गया है, जो परिवार के सदस्यों के निर्धारण के लिए प्रासंगिक है। उन्होंने कहा कि पंजीकृत विक्रय विलेख आवश्यक स्टॉप पत्रों पर निष्पादित किए गए थे, जो मृतक प्रभु द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा को हस्तांतरित भूमि के मूल्यांकन के आधार पर थे, जो प्रश्नगत जोतों के एकमात्र खातेदार थे। मूल्यांकन क्षेत्र के लिए निर्धारित दरों पर उचित रूप से किया गया था और पंजीकरण अधिकारियों द्वारा किसी भी स्तर पर कोई विवाद नहीं उठाया गया था, इसलिए पूरी कार्यवाही अवैध, मनमानी और याचिकाकर्ताओं के लिए हानिकारक थी। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:

ए) राजा महिपाल सिंह (मृतक) विधिक वारिसों के माध्यम से बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2007 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2334 : (2007) 102 आरडी 792.

बी) व्यास प्रसाद बनाम अपर आयुक्त, गोरखपुर एवं अन्य; रिट-सी संख्या 55503 / 2002, निर्णय दिनांक 20.07.2017।

23. दूसरी ओर, प्रतिवादी - राज्य की ओर से विद्वान अतिरिक्त सी.एस.सी. ने प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालयों ने याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध सर्वसम्मत फैसला सुनाया है और यह माना है कि विचाराधीन विक्रय विलेख पिता और पुत्र के बीच एक फर्जी लेन-देन था, इसलिए खरीदार मात्र नाममात्र के स्वामी हैं। याचिकाकर्ताओं का यह तर्क कि नोटिस मृत व्यक्ति के नाम पर जारी किया गया है, सही नहीं है क्योंकि उत्तर प्रदेश भूमि अधिकतम जोत - सीमा आरोपण अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमों के नियम 19 में यह प्रावधान है कि यदि 08.06.1973 को खातेदार जीवित था, तो नोटिस सदैव मृत खातेदार के नाम पर जारी किए जाएंगे और तामील मृत खातेदार के वारिसों को की जाएगी।

24. उन्होंने आगे कहा कि कथित विक्रय विलेख एक फर्जी लेनदेन था जो सीलिंग अधिनियम के प्रावधानों के उद्देश्य को विफल करने और उसे बर्बाद करने के लिए किया गया था। इसके अतिरिक्त, कथित विक्रय विलेख वास्तविक नहीं है क्योंकि यह पिता और पुत्र के बीच है और यह उचित रूप से नहीं माना जा सकता कि विक्रेता और खरीदार के बीच कोई प्रतिफल नहीं दिया गया था, इसलिए, चुनौती दिए गए आदेशों में कोई अवैधता नहीं

हैं और रिट याचिका पोषणीय नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:

ए) बच्चज नाहर बनाम नीलिमा मंडल एवं अन्य; 2008 की सिविल अपील संख्या 5798-5799 / 2008 (एसएलपी (सी) संख्या 23766-67 / 2005 से उत्पन्न) डी/- 23-9-2008।

बी) उत्तर प्रदेश राज्य अपीलकर्ता बनाम अमर सिंह आदि प्रतिवादी; एआईआर 1997 सुप्रीम कोर्ट 1534।

25. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार किया और अभिलेख में उपलब्ध सामग्री के साथ-साथ पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों का भी अध्ययन किया।

26. इस मामले में उत्पन्न विवाद को सुलझाने के लिए, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उद्धृत किए गए निर्णयों को नीचे दिया जा रहा है:

i) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है:

ए) राजा महिपाल सिंह (मृतक) विधिक वारिसों के माध्यम से (उपरोक्त):

5) उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि अपीलीय न्यायालय ने धनी राम के पक्ष में चार उपहार विलेखों और एक विक्रय विलेख का मूल्यांकन धारा 5(6)(ख) के आधार पर किया। इस संदर्भ में अपीलीय न्यायालय का निर्णय सही नहीं था। धारा 5(6)(ख) 24.1.1971 के बाद किए गए हस्तांतरण विलेखों से संबंधित है। कुछ परिस्थितियों में, 24.1.1971 से पहले के विलेखों को भी फर्जी, काल्पनिक या मिलीभगत से किए गए लेनदेन मानकर नजरअंदाज किया जा सकता है। हालांकि, 24.1.1971 से पहले और बाद के विलेखों में कुछ अंतर करना आवश्यक है। 24.1.1971 के बाद के विलेखों पर लागू होने वाले मानदंड 24.1.1971 से पहले के विलेखों पर लागू नहीं किए जा सकते।

6) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के एक खंडपीठ के निर्णय, यदुनाथ बनाम राज्य, का हवाला दिया है। उक्त निर्णय के पैरा 18 में यह कहा गया है कि 24.1.1971 से पहले निष्पादित हस्तांतरण विलेखों की भी नियत प्राधिकारी द्वारा जांच की जा सकती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि लेनदेन दिखावटी, काल्पनिक या मिलीभगत से किया गया था या नहीं।

बी) व्यास प्रसाद बनाम अपर आयुक्त, गोरखपुर एवं अन्य (उपरोक्त):

15. उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत ही, 24 जनवरी 1971 (निर्धारित तिथि) से पहले निष्पादित विक्रय विलेख की वैधता की जांच नियत प्राधिकारी द्वारा नहीं की जा सकती। उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा 6 में कहा गया है कि किसी खातेदार पर लागू अधिकतम क्षेत्रफल निर्धारित करते समय, 24 जनवरी 1971 के बाद किए गए किसी भी भूमि हस्तांतरण को, जो हस्तांतरण न होने पर अधिनियम के अंतर्गत अतिरिक्त भूमि घोषित किया जाता, अनदेखा किया जाएगा और ध्यान में नहीं रखा जाएगा। इसके परंतु (ख) में अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान है कि नियत प्राधिकारी की संतुष्टि के अनुसार सद्भावनापूर्वक और पर्याप्त प्रतिफल के लिए किया गया तथा

अपरिवर्तनीय विलेख, जो बेनामी लेनदेन न हो या खातेदार या उसके परिवार के अन्य सदस्यों के तत्काल या विलंबित लाभ के लिए न हो, उपरोक्त उपधारा के दायरे से बाहर है। इसके बाद स्पष्टीकरण (ii) में यह प्रावधान है कि यह साबित करने का भार कि कोई मामला परंतुक के खंड (b) के अंतर्गत आता है, उस पक्ष पर होगा जो इसका लाभ लेने का दावा करता है।

16. सर्वोच्च न्यायालय ने रामधर सिंह (उपरोक्त) मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि पंजीकृत बिक्री विलेख होने के कारण इसके अस्तित्व पर कोई प्रश्न नहीं उठाया गया था और यह तथ्य कि इसे 24 जनवरी, 1971 से पहले निष्पादित किया गया था, विवादित नहीं था, इसलिए धारा 5 की उपधारा (6) के अंतर्गत ऐसे बिक्री विलेख की वैधता के संबंध में कोई भी जांच पूरी तरह से अनुचित थी। नियत प्राधिकारी को बिक्री विलेख की वैधता की जांच करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था, क्योंकि उसका क्षेत्राधिकार तभी उत्पन्न होता था जब हस्तांतरण विलेख निर्धारित दिन या उसके बाद निष्पादित किया गया हो। धारा 5 की उपधारा 6 प्राधिकारियों को बिक्री की वैधता निर्धारित करने का क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती है और इसलिए बिक्री विलेख की सामग्री या विक्रय प्रतिफल की पर्याप्तता या अन्यथा के संबंध में ऐसे प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की भी जांच नहीं की जा सकती थी।

17. याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि कथित मोती राम नायक के पक्ष में पंजीकृत विक्रय विलेख नियुक्त तिथि से पहले का है और इसलिए रामधर सिंह बनाम नियत प्राधिकारी एवं अन्य 1994 सप्प (3) एससीसी 702 के मामले में दिए गए निर्णय के आधार पर इस पर विचार नहीं किया जा सकता है, यह तर्क पूरी तरह से गलत है और इसलिए खारिज किए जाने योग्य है।

18. रामधर सिंह (उपरोक्त) के मामले में दिया गया निर्णय त्रुटिपूर्ण माना गया था और संत सिंह बनाम ए.डी.जे. झांसी 1996 (3) एससीसी 400 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संत सिंह (उपरोक्त) में यह माना है कि ग्रामीण सीमा अधिनियम की धारा 5 (6) में प्रयुक्त विशिष्ट भाषा को देखते हुए। नियत प्राधिकारी किसी खातेदार पर लागू अधिकतम सीमा निर्धारित करते समय 24.1.1971 के बाद किए गए किसी भी भूमि हस्तांतरण को अनदेखा करेगा, जो हस्तांतरण न होने पर अधिनियम के अंतर्गत अतिरिक्त भूमि घोषित किया जाता। हालांकि, परंतुक में आगे कहा गया है कि “बशर्ते कि इस उपधारा की कोई बात निम्नलिखित पर लागू नहीं होगी: ---

(क) उपधारा 2(ख) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति (सरकार सहित) के पक्ष में किया गया हस्तांतरण; नियत प्राधिकारी की संतुष्टि के अनुसार सद्भावनापूर्वक और पर्याप्त प्रतिफल के साथ तथा एक अपरिवर्तनीय विलेख के अंतर्गत किया गया हस्तांतरण, जो बेनामी लेनदेन न हो, या खातेदार या परिवार के अन्य सदस्यों के तत्काल या विलंबित लाभ के लिए किया गया हो, उपरोक्त उपधारा के दायरे से बाहर है। इसके बाद, स्पष्टीकरण 2 में कहा गया है कि परंतुक के खंड (ख) के अंतर्गत मामला आने का प्रमाण देने का भार उस पक्ष पर होगा जो इसका लाभ मांग रहा है।

ii) प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है:

ए) बच्छज नाहर बनाम नीलिमा मंडल एवं अन्य (उपरोक्त):

9. अभिवचनों और विवाद्यों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि मुकदमे के पक्षकार सभी विवाद्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करके विचारण में प्रवेश करें और विचारण के दौरान मामलों का विस्तार

या आधारों में परिवर्तन को रोका जा सके। इसका उद्देश्य यह भी सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक पक्ष उन प्रश्नों से पूरी तरह अवगत हो जो उठाए जाने या विचारे जाने की संभावना है, ताकि उन्हें न्यायालय के समक्ष विवाद्यों के अनुरूप प्रासंगिक साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर मिल सके। इस न्यायालय ने बार-बार यह माना है कि अभिवचनों का उद्देश्य प्रत्येक पक्ष को दूसरे पक्ष के मामले की जानकारी देना है ताकि उसका जवाब दिया जा सके, न्यायालयों को यह निर्धारित करने में सक्षम बनाना है कि वास्तव में पक्षों के बीच क्या विवाद है, और विशिष्ट मामलों पर मुकदमेबाजी के निर्धारित मार्ग से किसी भी प्रकार के विचलन को रोकना है।

बी) उत्तर प्रदेश राज्य अपीलकर्ता बनाम अमर सिंह आदि (उपरोक्त):

5. अतः, जिस तिथि से संशोधन अधिनियम लागू हुआ, अर्थात् 21 जनवरी, 1971 से, उत्तर प्रदेश राज्य में किसी भी खातेदार के पास उसके लिए निर्धारित अधिकतम क्षेत्रफल से अतिरिक्त भूमि नहीं होगी। स्पष्टीकरण । में यह स्पष्ट किया गया है कि खातेदार के लिए निर्धारित अधिकतम क्षेत्रफल का निर्धारण करते समय, उसके द्वारा अपने अधिकार में धारित सभी भूमियों को, चाहे वह उसके अपने नाम पर हो या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर दर्शाई गई हो, ध्यान में रखा जाएगा। दूसरे शब्दों में, जिस तिथि से संशोधन अधिनियम लागू हुआ, उस तिथि तक भूमि खातेदार के अपने अधिकार में होनी चाहिए और किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर दर्शाई गई भूमियों को ध्यान में रखा जाएगा। इस मामले में, यह स्वीकार किया जाता है कि किशन सिंह ने अपने पुत्रों और बहुओं के पक्ष में भूमि का हस्तांतरण किया था। सामान्यतः, यह अपेक्षा की जाती है कि यदि भूमि के हस्तांतरण की कोई बाध्यकारी विधिक आवश्यकता हो, तो व्यक्ति भूमि को तीसरे पक्ष को बेचेगा, और वह भी एक विवेकपूर्ण विक्रेता के रूप में मूल्यवान प्रतिफल के बदले, न कि पुत्रों और बहुओं को। जैसा कि जिला न्यायाधीश ने सही बताया है, ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि का हस्तांतरण पंजीकृत दस्तावेजों के माध्यम से मात्र पुत्रों और बहुओं के पक्ष में किया गया था ताकि अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन न हो और भूमि अजनबियों के हाथों में न जाए। यह सत्य है कि प्रतिवादियों द्वारा नामान्तरण के प्रमाण के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे। नामान्तरण इस आधार पर किया गया था कि विक्रय विलेख पुत्रों और बहुओं के पक्ष में निष्पादित किए गए थे। इसलिए, नामान्तरण अधिकारी उस स्तर पर यह पता लगाने के लिए चिंतित नहीं था कि विक्रय बेनामी थे या अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करने के उद्देश्य से किए गए थे। यह स्थापित विधि है कि नामान्तरण प्रविष्टियाँ मात्र राज्य को कब्जेदार से भू-राजस्व वसूल करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से होती हैं, लेकिन यह भूमि पर कोई स्वामित्व प्रदान नहीं करती हैं। स्वामित्व स्टाम्प अधिनियम के अनुसार स्वामी द्वारा हस्तांतरिती के पक्ष में निष्पादित और पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत अभिलेख से प्राप्त होता है। चूंकि हस्तांतरिती पुत्र और बहुएं थे, इसलिए भूमि का खातेदार स्वामी और धारक बना रहा। अधिनियम की धारा 5(1) के स्पष्टीकरण । के अनुसार पुत्र और बहुएँ मात्र नाममात्र के स्वामी हैं। यह सत्य है कि लेख पाल ने स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया है कि क्या प्रतिवादी हस्तांतरण के बाद अपने अधिकार से भूमि पर कब्जा बनाए रखे। यह निर्विवाद है कि पिता और पुत्र संयुक्त परिवार के सदस्य बने रहे और भूमि पर खेती कर रहे थे। इन परिस्थितियों में, सामान्यतः यह अपेक्षा की जाती है कि लेख पाल यह स्पष्ट रूप से नहीं कह सकते कि क्या प्रतिवादी अपने अधिकार से स्वामी के रूप में कब्जा बनाए रखे या वे स्वयं या सहदायिकों की ओर से भूमि पर खेती कर रहे थे। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय के निष्कर्ष अवैध हैं। यह मामला धारा 5(1) के स्पष्टीकरण । के अंतर्गत आता है और यह साबित करने का भार सदैंव

प्रतिवादियों पर ही होता है कि वे नाममात्र के लिए भूमि के स्वामी नहीं थे, बल्कि अपने अधिकार से स्वामी बने रहे। तदनुसार, हम मानते हैं कि किशन सिंह भूमि के खातेदार थे। वे उस तिथि पर खातेदार थे और इसलिए, अधिकतम क्षेत्रफल की गणना उन्हें भूमि का स्वामी मानकर की जानी चाहिए; उनके अतिरिक्त उनके आठ पुत्र थे, जो अधिनियम के अंतर्गत उन्हें दी गई अतिरिक्त अधिकतम भूमि के पात्र हैं। अतः अधिकारियों को निर्देश दिया जाता है कि वे तदनुसार अधिकतम भूमि की गणना करें और अतिरिक्त भूमि पर कब्जा कर लें।

27. याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 के पिता और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा प्रभु की मृत्यु के बाद, उनके नाम पर एक नोटिस दिनांक 18.05.1989 जारी किया गया था। याचिकाकर्ताओं ने अपनी आपत्तियों दिनांक 11.01.1990 के माध्यम से उक्त नोटिस पर आपत्ति जताते हुए कहा कि यह नोटिस अवैध और मनमाना है, क्योंकि याचिकाकर्ताओं और उनके पूर्वजों के पास भूमि जोत पर अधिकतम सीमा अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित सीमा से अतिरिक्त भूमि नहीं थी, क्योंकि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 के पिता और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा की मृत्यु बहुत पहले ही हो चुकी थी। इतना ही नहीं, विवादित भूमि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 को पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 02.02.1970 के माध्यम से हस्तांतरित की जा चुकी थी, जो संशोधन दिनांक 24.01.1971 से बहुत पहले की बात है। इसलिए, याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख वैध अभिलेख हैं और इनमें कोई खामी या अवैधता नहीं है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **राजा महिपाल सिंह (मृतक) विधिक वारिसों के माध्यम से (उपरोक्त)** के मामले में दिए गए निर्णय वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर पूरी तरह लागू होता है।

28. नियत प्राधिकारी (सीलिंग), बहराइच ने आदेश दिनांक 31.12.1993 द्वारा आपत्ति का निस्तारण किया और उसे खारिज कर दिया। याचिकाकर्ता ने इससे व्यथित होकर आयुक्त, फैजाबाद डिवीजन, फैजाबाद के समक्ष अपील संख्या 47 दायर की, जिसमें यह तर्क दिया गया कि नियत प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश विधि की दृष्टि से घोर त्रुटिपूर्ण था क्योंकि उसमें कोई विशिष्ट और प्रासंगिक विवादक निर्धारित नहीं किए गए थे। साथ ही, नियत प्राधिकारी याचिकाकर्ताओं के नाम पर वर्ष 1970 में निष्पादित विक्रय विलेख को समझने में विफल रहा, जो सीलिंग अधिनियम, 1952 के अंतर्गत किए गए संशोधन से बहुत पहले का था। अतः, साक्ष्यों के आधार पर विवादकों को निर्धारित न किए जाने के कारण, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध हैं और उन्हें रद्द किया जाना चाहिए।

29. अपर आयुक्त, न्यायिक ने आदेश दिनांक 12.08.1997 द्वारा याचिकाकर्ताओं की अपील का निर्णय किया और बाहरी और अप्रासंगिक तथ्यों के आधार पर अपील को फिर से खारिज कर दिया। अतः, वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है। आक्षेपित आदेश अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों की जांच करते समय न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना पारित किए गए हैं। अवर न्यायालयों ने इस बात पर कोई

निष्कर्ष नहीं दिया कि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के पिता वर्ष 1972 में भूमि जोत सीमा अधिनियम लागू होने के समय बालिग थे।

30. अवर न्यायालयों ने अधिनियम की धारा 5 की उपधारा 6 के प्रावधानों के अनुसार 24.01.1971 से पहले निष्पादित विक्रय विलेख के साक्ष्य पर भी विचार नहीं किया। अवर न्यायालयों ने याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए तर्कों और कारणों का उल्लेख किए बिना ही आक्षेपित आदेश पारित कर दिए।

31. प्रतिवादियों ने विवाद का निस्तारण विधि के अनुसार नहीं किया। खातेदार प्रभु की मृत्यु नोटिस जारी होने से पहले 15.08.1988 को हो गई थी और विक्रय विलेख के आधार पर भी भूमि याचिकाकर्ताओं के नाम पर पंजीकृत थी। प्रभु के जीवनकाल में याचिकाकर्ता अलग रह रहे थे। यह मामला सीमा अधिनियम के क्षेत्राधिकार से बाहर था और विधि के अनुसार कोई नोटिस जारी नहीं किया जा सकता था। अतः कार्यवाही अवैध, मनमानी और याचिकाकर्ताओं के हित में हानिकारक थी।

32. आक्षेपित आदेशों में सिंचित और असिंचित भूमि के साथ-साथ बाग भूमि के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया है। परिवार रजिस्टर की प्रमाणित प्रति में याचिकाकर्ताओं के परिवार के सदस्यों को 1978 के आधार पर अलग-अलग दर्शाया गया है, जो परिवार के सदस्यों के निर्धारण के लिए प्रासंगिक है। पंजीकृत विक्रय विलेख मृतक प्रभु द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा को हस्तांतरित भूमि के मूल्यांकन के आधार पर आवश्यक स्टॉप पत्रों पर निष्पादित किए गए थे, जो प्रश्नगत जोतों के एकमात्र खातेदार थे। मूल्यांकन क्षेत्र के लिए निर्धारित दरों पर विधिवत किया गया था और पंजीकरण अधिकारियों द्वारा किसी भी स्तर पर कोई विवाद नहीं उठाया गया था, इसलिए पूरी कार्यवाही अवैध, मनमानी और याचिकाकर्ताओं के लिए हानिकारक है।

33. विद्वान ए.सी.एस.सी. ने तर्क दिया है कि अवर न्यायालयों ने याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध एकमत फैसला सुनाया है और अभिनिर्धारित किया है कि विचाराधीन विक्रय विलेख पिता और पुत्र के बीच एक फर्जी लेन-देन था, इसलिए खरीदार मात्र नाममात्र के स्वामी हैं। विद्वान ए.सी.एस.सी. का एक अन्य तर्क यह है कि उत्तर प्रदेश भूमि अधिकतम जोत - सीमा आरोपण अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए नियमों के नियम 19 में यह प्रावधान है कि यदि 08.06.1973 को खातेदार जीवित था, तो नोटिस सदैव मृतक खातेदार के नाम से जारी किए जाएंगे और तामील मृतक खातेदार के वारिसों को की जाएगी। इस संबंध में यह कहा गया है कि यह स्पष्ट है कि अपीलीय न्यायालय ने याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख पर विचार नहीं किया है।

34. यह स्पष्ट है कि अपीलीय न्यायालय ने धनी राम के पक्ष में चार उपहार विलेखों और एक विक्रय विलेख का मूल्यांकन धारा 5(6)(ख) के आधार पर किया। इस संदर्भ में अपीलीय न्यायालय का निर्णय सही नहीं था। धारा 5(6)(ख) 24.1.1971 के बाद किए गए हस्तांतरण विलेखों से संबंधित है। कुछ परिस्थितियों

में, 24.1.1971 से पहले के विलेखों को भी दिखावटी, काल्पनिक या मिलीभगत से किए गए लेन-देन मानकर अनदेखा किया जा सकता है। हालांकि, 24.1.1971 से पहले और बाद के विलेखों में कुछ अंतर करना आवश्यक है। 24.1.1971 के बाद के विलेखों पर लागू होने वाले मानदंड 24.1.1971 से पहले के विलेखों पर लागू नहीं किए जा सकते। 24.1.1971 से पहले निष्पादित हस्तांतरण विलेखों की भी नियत प्राधिकारी द्वारा जांच की जा सकती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि लेन-देन दिखावटी, काल्पनिक या मिलीभगत से किया गया था या नहीं।

35. वर्तमान मामले में, अभिलेख में कोई भी साक्ष्य उपलब्ध न होने के बावजूद, नियत प्राधिकारी और अपीलीय न्यायालय दोनों इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख निराधार और विधि में कोई आधार न रखने वाला एक दिखावटी लेन-देन है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **व्यास प्रसाद (उपरोक्त)** मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि 24.01.1971, निर्धारित तिथि से पहले निष्पादित विक्रय विलेख की वैधता पर विचार करते समय, नियत प्राधिकारी द्वारा इस पर विचार नहीं किया जा सकता। उक्त अधिनियम की धारा 5 की उपधारा 6 में कहा गया है कि किसी खातेदार पर लागू अधिकतम क्षेत्रफल का निर्धारण करते समय, 24 जनवरी 1971 के बाद किए गए किसी भी भूमि हस्तांतरण को, जो हस्तांतरण न होने पर अधिनियम के अंतर्गत अतिरिक्त भूमि घोषित किया जाता, अनदेखा किया जाएगा और उस पर विचार नहीं किया जाएगा। इसके परंतुक (ख) में अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान है कि नियत प्राधिकारी की संतुष्टि के अनुसार सद्भावनापूर्वक और पर्याप्त प्रतिफल के साथ किया गया तथा अपरिवर्तनीय विलेख हो, और वह बेनामी लेनदेन न हो तथा खातेदार या उसके परिवार के अन्य सदस्यों के तत्काल या विलंबित लाभ के लिए न हो, तो वह उपरोक्त उपधारा के दायरे से बाहर है। इसके बाद स्पष्टीकरण (ii) में यह प्रावधान है कि परंतुक के खंड (ख) के अंतर्गत मामला आने का प्रमाण देने का भार उस पक्ष पर होगा जो इसका लाभ लेना चाहता है।

36. राम आधार (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पंजीकृत विक्रय विलेख होने के कारण इसके अस्तित्व पर कोई प्रश्न नहीं उठाया गया था और यह तथ्य कि इसे 24 जनवरी, 1971 से पहले निष्पादित किया गया था, विवादित नहीं था, इसलिए धारा 5 की उपधारा (6) के अंतर्गत ऐसे विक्रय विलेख की वैधता के संबंध में कोई भी जांच पूरी तरह से अनुचित थी। नियत प्राधिकारी को विक्रय विलेख की वैधता की जांच करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था क्योंकि उसका क्षेत्राधिकार तभी उत्पन्न हुआ जब हस्तांतरण विलेख निर्धारित दिन या उसके बाद प्रभावी हुआ था। याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख को कभी भी किसी भी मंच के समक्ष चुनौती नहीं दी गई है और न ही इसे कभी रद्द किया गया है, इसलिए दोनों अवर न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विधि की दृष्टि से मान्य नहीं हैं और इन्हें रद्द किया जाना चाहिए। धारा 5 की उपधारा 6 के अंतर्गत अधिकारियों को विक्रय की वैधता निर्धारित करने का अधिकार नहीं दिया गया है, इसलिए विक्रय विलेख की सामग्री या विक्रय प्रतिफल की पर्याप्तता या अपर्याप्तता के संबंध में ऐसे प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर भी विचार नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ता की ओर से दिए गए इस

तर्क के संबंध में कि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 7 और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के दादा के पक्ष में पंजीकृत विक्रय विलेख निर्धारित तिथि से पहले का है और इसलिए रामधर सिंह बनाम नियत प्राधिकारी एवं अन्य 1994 सप्प (3) एससीसी 702 के मामले में दिए गए निर्णय के आधार पर इस पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया जा सकता है।

37. विद्वान ए.सी.एस.सी. की ओर से दिए गए तर्क पूरी तरह से भ्रामक हैं और दोनों अवर न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय विधि की दृष्टि से मान्य नहीं हैं। अभिवचनों और विवाद्यों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि मुकदमे के पक्षकार सभी विवाद्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करके विचारण में आएँ और विचारण के दौरान मामलों का विस्तार या आधार परिवर्तन को रोका जा सके। इसका उद्देश्य यह भी सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक पक्ष उन प्रश्नों से पूरी तरह अवगत हो जो उठाए जाने या विचारे जाने की संभावना है, ताकि उन्हें न्यायालय के समक्ष विवाद्यों के अनुरूप प्रासंगिक साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर मिल सके। इस न्यायालय ने बार-बार यह माना है कि अभिवचनों का उद्देश्य प्रत्येक पक्ष को दूसरे पक्ष के मामले की जानकारी देना है ताकि उसका जवाब दिया जा सके, न्यायालयों को यह निर्धारित करने में सक्षम बनाना है कि वास्तव में पक्षों के बीच क्या विवादक है, और विशिष्ट मामलों पर मुकदमेबाजी के निर्धारित मार्ग से किसी भी प्रकार के विचलन को रोकना है।

38. वर्तमान मामले में, अवर दोनों न्यायालयों ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करने में विफल रही हैं और विकृत आधारों पर दिए गए निष्कर्ष स्वीकार करने योग्य नहीं हैं।

39. उपरोक्त निष्कर्षों के दृष्टिगत, अपर आयुक्त, न्यायिक, फैजाबाद डिवीजन, फैजाबाद द्वारा अपील संख्या 47 (सीलिंग) में पारित आदेश दिनांक 12.08.1997 और साथ ही नियत प्राधिकारी (सीलिंग), बहराइच द्वारा उत्तर प्रदेश भूमि अधिकतम जोत - सीमा आरोपण अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 2 के अंतर्गत वाद संख्या 812 में पारित आदेश दिनांक 31.12.1993 पूर्णतः त्रुटिपूर्ण हैं और विधि की दृष्टि से मान्य नहीं हैं, और इन्हें निरस्त किया जाता है।

40. रिट याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है।

41. मामले को नियत प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है ताकि वह इस रिट याचिका में उल्लिखित विषय पर साक्ष्य प्रस्तुत कराए और विक्रय विलेख के संबंध में यह निष्कर्ष दर्ज करे कि पर्याप्त स्टॉप शुल्क का भुगतान करके निष्पादित किए जाने के बाद यह कैसे फर्जी लेनदेन है, और याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए अन्य बिंदुओं पर भी विचार करे।

42. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2025) 3 ILRA 843

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

रिट सी संख्या 1005313 / 2013

उषा देवी @ उर्मिला देवी एवं अन्य

.....याचीगण

बनाम

मालती देवी एवं अन्य

....प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री लक्ष्मण सिंह

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

श्री जी सी वर्मा, सुनीता द्विवेदी

ए. सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश IX नियम 13 - एकपक्षीय डिक्री - पर्याप्त कारण - वाद की बहाली - याचिकाकर्ताओं ने स्थायी निषेधाज्ञा के वाद में पारित एकपक्षीय निर्णय और डिक्री दिनांक 24.10.2008 को रद्द करने की मांग की, जिसमें उन्होंने नोटिस की तामील न होने और वादपत्र में संशोधन की जानकारी न होने का दावा किया - विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय दोनों ने सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अंतर्गत उनके आवेदन को खारिज कर दिया। न्यायालय ने माना कि जहां घोर लापरवाही या दुर्भावना उपलब्ध नहीं है, वहां "पर्याप्त कारण" की व्याख्या उदारतापूर्वक की जानी चाहिए - यह पाया गया कि याचिकाकर्ताओं ने सीपीसी के आदेश IX नियम 13 के अंतर्गत तत्काल आवेदन दायर किया था, पहले वाद का विरोध किया था और अपने अधिवक्ता पर निर्भर थे - न्यायालय ने तकनीकी पहलुओं पर वास्तविक न्याय की प्रधानता पर जोर दिया और माना कि वाद का विरोध करने का अवसर न मिलने से संभावित अपूरणीय क्षति हुई - तदनुसार, एकपक्षीय डिक्री को रद्द कर दिया गया और मूल वाद को बहाल कर दिया गया। (पैरा 1 से 37)

बी. यह अच्छी तरह से सर्वविदित है कि जहां तकनीकी पहलुओं को वास्तविक न्याय के विरुद्ध खड़ा किया जाता है, वहां वास्तविक न्याय को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि न्यायालय अति तकनीकी दृष्टिकोण अपनाकर पक्षों के अधिकारों को नकारने के बजाय वास्तविक न्याय करने के पक्ष में है। (पैरा 28)

रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. राम नाथ साओ @ राम नाथ साहू एवं अन्य बनाम गोबर्धन साओ एवं अन्य, (2002) 3 एससीसी 195
2. ईशा भट्टाचार्य बनाम रघनाथपुर नफर अकादमी, एम/सी एवं अन्य (2013) 12 एससीसी 649
3. कुमारी साहू बनाम भुवनानंद साहा एवं अन्य, मनु/एससीओआर/15950/2025
4. रफीक एवं अन्य बनाम मुंशीलाल एवं अन्य (1981) 2 एससीसी 788
5. रेवाजीतु बिल्डर्स एंड डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस एवं अन्य (2009) 10 एससीसी 84
6. विनोद सेठ बनाम देविंदर बजाज एवं अन्य (2010) 8 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री लक्ष्मण सिंह और निजी-प्रतिवादीगण संख्या 1 से 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री सुनीता द्विवेदी को सुना।
2. याचिकाकर्ताओं ने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 9, प्रतापगढ़ द्वारा विविध सिविल अपील संख्या 91/2011 में पारित आदेश दिनांक 24.04.2013 को चुनौती देने के लिए इस न्यायालय का रुख किया है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर अपील अंतर्गत आदेश XLII नियम 1(घ) सी.पी.सी. को खारिज कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ताओं के आवेदन अंतर्गत आदेश IX नियम 13 सी.पी.सी. को खारिज कर दिया गया, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.09.2011 को बरकरार रखा गया।
3. इस याचिका से संबंधित संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित हैं:-
4. प्रतिवादी संख्या 1 से 3 के पूर्वज गजेंद्र प्रसाद ने सिविल जज (जूनियर डिवीजन), सदर, प्रतापगढ़ की न्यायालय में स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद योजित किया था। वर्तमान याचिकाकर्ताओं को उत्तरदाता संख्या 3 और 4 के रूप में शामिल किया गया था। वादी/प्रतिवादी संख्या 1 से 3 के पूर्वज का तर्क था कि वे विवादित संपत्ति पर शांतिपूर्ण कब्जे में हैं और पूर्वी तरफ एक नाला है जिसका उपयोग गंदे पानी की निकासी के लिए किया जा रहा है, लेकिन उत्तरदाता अपने निर्माण का विस्तार करने के लिए उक्त नाले को ढकने और नष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में, स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री की मांग करते हुए निषेधाज्ञा का वाद योजित किया गया था।
5. प्रारंभ में, याचिकाकर्ताओं ने अपना लिखित बयान दाखिल करके वाद का विरोध किया, हालांकि, इसके बाद 22.11.2006 को मामले को एकपक्षीय सुनवाई के लिए निर्धारित किया गया। अंततः, वादियों द्वारा दायर वाद का निस्तारण 24.10.2008 को एकपक्षीय निर्णय और डिक्री द्वारा किया गया।

6. याचिकाकर्ताओं ने एकपक्षीय निर्णय और डिक्री दिनांक 24.10.2008 से व्यथित होकर, एक आवेदन अंतर्गत आदेश IX नियम 13 सीपीसी दायर किया, जिसे विविध वाद संख्या 65/2008 के रूप में पंजीकृत किया गया। याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए आधार निम्नलिखित थे:-

(i) वाद की सुनवाई के दौरान, कुछ उत्तरदाताओं की मृत्यु हो गई थी और उनके विधिक वारिसों को अभिलेख में शामिल नहीं किया गया था, इसलिए, निर्णय गलत था क्योंकि यह मृत व्यक्तियों के विरुद्ध सुनाया गया था।

(ii) वाद की कार्यवाही एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दी गई थी, लेकिन उत्तरदाताओं या उनके अधिवक्तागण को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था और इसी कारण से, उत्तरदाताओं को इस बात की जानकारी नहीं थी कि कार्यवाही कहाँ और कैसे आगे बढ़ाई जा रही है, इसलिए, पर्याप्त कारण का मामला बनता है।

(iii) वादीपक्ष ने वादपत्र में संशोधन करवा लिया था, लेकिन चूंकि वाद एकपक्षीय रूप से तय किया गया था, इसलिए इसकी कोई सूचना जारी नहीं की गई थी। अतः उत्तरदाताओं को कार्यवाही का विरोध करने के लिए पर्याप्त कारण नहीं मिले। जैसे ही उन्हें एकपक्षीय निर्णय और डिक्री दिनांक 24.10.2008 के संबंध में सूचना मिली, याचिकाकर्ताओं ने एक आवेदन प्रस्तुत किया जो समय सीमा के भीतर था। ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय को उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए था और आवेदन स्वीकार किए जाने योग्य था।

7. उक्त आवेदन पर आपत्ति जताई गई और मूल वादी ने लिखित आपत्ति दर्ज कराई। विचारण न्यायालय ने इस पर विचार किया, लेकिन उत्तरदाताओं/याचिकाकर्ताओं के तर्कों से सहमत नहीं हुई। तदनुसार, दायर आवेदन अंतर्गत आदेश IX नियम 13 सीपीसी को आदेश दिनांक 17.09.2011 द्वारा खारिज कर दिया गया।

8. याचिकाकर्ता व्यथित होकर आदेश 43 नियम 1(घ) सी.पी.सी. के अंतर्गत अपील दायर की और इसे विविध वाद संख्या 91/2011 के रूप में पंजीकृत किया गया तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय ने भी याचिकाकर्ताओं के तर्कों को स्वीकार नहीं किया और आदेश दिनांक 24.04.2013 द्वारा अपील खारिज कर दी।

9. इसके बाद याचिकाकर्ताओं ने इस याचिका में दोनों आदेशों को चुनौती दी और मुख्य रूप से यह तर्क दिया कि चूंकि याचिकाकर्ताओं का मामला ठोस है, इसलिए कम से कम उन्हें सुनवाई का अवसर तो दिया जाना चाहिए था। यदि कोई देरी हुई हो, तो उसकी भरपाई हर्जाने के रूप में की जा सकती थी, हालांकि, याचिकाकर्ता के आवेदन अंतर्गत आदेश IX नियम 13 सिविल प्रक्रिया संहिता को खारिज करते समय दोनों न्यायालयों ने इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया।

10. आगे यह तर्क दिया गया है कि चूंकि वादियों की ओर से कभी भी यह दावा नहीं उठाया गया कि उत्तरदाताओं ने विवादित भूमि पर अतिक्रमण किया है या उस पर निर्माण कार्य किया है, और मामले की एकपक्षीय सुनवाई 22.11.2006 को होने के बाद ही वादियों ने संशोधन के लिए आवेदन किया और उसके बाद वादियों ने स्थायी

निषेधाज्ञा की प्रार्थना भी शामिल की, जिसमें उत्तरदाताओं को आपत्तिजनक निर्माणों को हटाने का निर्देश देने की मांग की गई थी, जिससे याचिकाकर्ताओं के अधिकारों को गंभीर खतरा था।

11. यह तर्क दिया गया है कि यह भी एक गलत बयान था क्योंकि उत्तरदाताओं ने अपने पूर्वज से संपत्ति खरीदी थी और उन्होंने पहले ही निर्माण कार्य कर लिया था तथा वादी ने वाद योजित करते समय सही और सटीक तथ्यों को अभिलेख पर नहीं रखा था। ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ताओं को कम से कम सुनवाई का अवसर दिया जाना अनिवार्य था, अन्यथा याचिकाकर्ताओं को अपूरणीय क्षति हो सकती है। उपरोक्त कारणों से, यह तर्क दिया गया है कि एकपक्षीय आदेशों को रद्द किया जाना चाहिए।

12. निजी-प्रतिवादीगण संख्या 1 से 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री द्विवेदी ने उपरोक्त प्रस्तुतियों का विरोध करते हुए बताया कि याचिकाकर्ताओं द्वारा आदेश IX नियम 13 सी.पी.सी. के अंतर्गत अपने आवेदन में उठाए गए तीन आधार स्वयं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के विपरीत हैं और इस बात को दोनों न्यायालयों ने उक्त आवेदन को खारिज करते समय ध्यान में रखा है।

13. आगे यह तर्क दिया गया है कि जहां तक इस आधार का संबंध है कि वाद एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित किया गया था जिसकी सूचना उत्तरदाताओं को नहीं भेजी गई थी, यह बताया गया है कि प्रतिवादी संख्या 1 से 3 ने इस न्यायालय के समक्ष एक पूरक शपथपत्र दिनांक 28.08.2024 दायर किया था और उक्त शपथपत्र के साथ आदेशपत्रों की प्रमाणित प्रतियां अभिलेख पर लाई गई थीं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्थानांतरण के बाद, फाइल स्थानांतरित न्यायालय द्वारा प्राप्त की गई थी और आदेशपत्रों दिनांक 13.08.2008 से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि याचिकाकर्ता अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित थे।

14. यह तर्क दिया गया है कि इस स्थिति में याचिकाकर्ताओं का यह कहना उचित नहीं है कि वे कार्यवाही से अनभिज्ञ थे। आदेश पत्र दिनांक 10.09.2008 में भी यह दर्शाया गया है कि उत्तरदाताओं के अधिवक्ता उपस्थित थे।

15. उपरोक्त परिस्थितियों में, चूंकि उत्तरदाताओं को पहले से ही सूचना प्राप्त थी और वे कार्यवाही से अवगत थे, इसलिए यह आवश्यक नहीं था कि प्रत्येक चरण पर उत्तरदाताओं को बार-बार नोटिस जारी किया जाए।

16. आगे यह तर्क दिया गया है कि अन्य उत्तरदाताओं के संबंध में समन की तामील न होने का मामला भी तर्कसंगत है, क्योंकि उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्होंने विक्रय विलेख दिनांक 21.08.2003 के माध्यम से संपत्ति खरीदी थी और उसके बाद वाद योजित किया गया था। यदि उत्तरदाताओं में से किसी की मृत्यु हो गई होती, तो पीड़ित पक्ष के उत्तराधिकारी ही इस दलील को उठा सकते थे, लेकिन चूंकि उत्तरदाता वादी के दावे का अपने दम पर विरोध कर रहे थे, इसलिए उन्हें अन्य सह-उत्तरदाताओं का पक्ष लेने की अनुमति नहीं है। वैसे भी, संपत्ति बिक जाने के बाद अन्य उत्तरदाताओं को नोटिस भेजने की कोई आवश्यकता नहीं थी और इसलिए

वर्तमान याचिकाकर्ता, जो सह-उत्तरदाता थे, अन्य सह-उत्तरदाताओं को नोटिस न भेजे जाने का लाभ नहीं उठा सकते, जिन्होंने स्पष्ट रूप से अपने अधिकार खो दिए थे, क्योंकि उन्होंने वाद योजित होने से पहले ही संपत्ति हस्तांतरित कर दी थी और मृतक पक्ष के विधिक वारिसों को समन न भेजे जाने से वर्तमान याचिकाकर्ताओं के मामले पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा।

17. अतः यह निवेदन किया जाता है कि उपरोक्त सभी कारणों से, चुनौती दिए गए आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

18. न्यायालय ने दोनों पक्षों की प्रस्तुतियों पर विचार किया और अभिलेख में उपलब्ध सामग्री का भी परिशीलन किया।

19. पक्षकारों के बीच तथ्यों पर कोई विवाद नहीं है क्योंकि वादी ने वाद योजित किया था जिसमें उत्तरदाताओं ने उपस्थित होकर अपना लिखित बयान दाखिल किया था। 22.11.2006 को उत्तरदाताओं/वर्तमान याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही शुरू की गई थी।

20. अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि जिन सह-उत्तरदाताओं से याचिकाकर्ताओं ने संपत्ति खरीदी थी, उनमें से एक की मृत्यु हो चुकी थी। चूंकि वाद योजित होने से पहले ही बिक्री हो चुकी थी, इसलिए मृतक उत्तरदाता के विधिक वारिसों को नोटिस भेजना अनिवार्य नहीं था। इसके अतिरिक्त, एक और कारण यह है कि सह-उत्तरदाताओं की मृत्यु से वर्तमान याचिकाकर्ताओं के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि वाद स्थायी निषेधाज्ञा के लिए था। स्वाभाविक रूप से, स्थायी निषेधाज्ञा व्यक्ति विशेष के लिए होती है, न कि संपत्ति विशेष के लिए। वादी वाद के स्वामी हैं और उनके लिए किसी भी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध निषेधाज्ञा का वाद लड़ना सदैव खुला है जिसके विरुद्ध कोई खतरा हो। इस संदर्भ में, यदि संपत्ति के मूल स्वामी उत्तरदाताओं की मृत्यु हो गई होती और उन्होंने परिसर में अपने अधिकार उत्तरदाताओं को हस्तांतरित कर दिए होते, तो वर्तमान याचिकाकर्ताओं के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था, जब तक कि स्पष्ट पूर्वाग्रह सिद्ध न हो जाए, जो कि निःसंदेह सिद्ध नहीं किया जा सका।

21. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी बताया है कि मूल उत्तरदाताओं के उत्तराधिकारी, जिन्होंने याचिकाकर्ताओं को संपत्ति बेची थी, कभी भी आदेश XXII नियम 4 उप-नियम (4) के अनुसार कार्यवाही में भाग लेने के लिए आगे नहीं आए, जहां कोई पक्षकार, जिसने कार्यवाही में भाग नहीं लिया है या अपना लिखित बयान दाखिल नहीं किया है, तो उसकी मृत्यु पर न्यायालयों की अनुमति से, उसके विधिक वारिसों को अभिलेख में लाना आवश्यक नहीं है।

22. उपरोक्त विधिक प्रस्तावों के आलोक में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत यह प्रारंभिक प्रस्तुति कि अन्य उत्तरदाताओं को नोटिस जारी न करने के कारण उन्हें हानि हुआ है, निराधार है और इसे खारिज किया जाता है।

23. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में वाद के स्थानांतरण पर याचिकाकर्ताओं या उनके अधिवक्ता को कोई नोटिस नहीं भेजा गया था। यह तर्क भी पर्याप्त रूप से मान्य नहीं है, क्योंकि निजी प्रतिवादी संख्या 1 से 3 द्वारा प्रस्तुत पूरक शपथपत्र दिनांक 28.08.2024 के साथ आदेशपत्रों की प्रमाणित प्रतियों से स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता 13.08.2008 और 10.09.2008 को स्थानांतरित न्यायालय के समक्ष उपस्थित थे। जब उनके अधिवक्ता कार्यवाही में उपस्थित थे, तो यह कहना कि वर्तमान याचिकाकर्ताओं को कोई नोटिस उपलब्ध नहीं था या उन्हें इसकी जानकारी नहीं थी, निराधार है। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क भी निराधार है।

24. अंत में, यह प्रस्तुति कि वाद में एकपक्षीय कार्यवाही शुरू होने के बाद संशोधन किया गया जिससे वादी-याचिकाकर्ताओं के अधिकारों पर प्रभाव पड़ा है, यदि इसकी जांच की जाए तो यह पता चलता है कि कार्यवाही 22.11.2006 को एकपक्षीय शुरू की गई थी। वादपत्र में वर्ष 2008 में संशोधन किया गया जिसमें 2006 में उत्पन्न हुए एक कारण का उल्लेख किया गया। एक बार जब कार्यवाही एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ाई जा चुकी थी, तो याचिकाकर्ताओं का यह कर्तव्य था कि वे 22.11.2006 के एकपक्षीय आदेश को वापस लेने के लिए आदेश IX नियम 7 के अंतर्गत उचित आवेदन करें।

25. इस उपाय को न अपनाने के परिणामस्वरूप, उक्त आदेश दिनांक 22.11.2006, विचारण न्यायालय द्वारा पारित एकपक्षीय निर्णय और डिक्री दिनांक 24.10.2008 में विलीन हो गया। इसके बाद, याचिकाकर्ताओं के पास आदेश IX नियम 13 सीपीसी का उपाय उपलब्ध था और इसके अनुसरण में, याचिकाकर्ताओं ने एकपक्षीय निर्णय और डिक्री दिनांक 24.10.2008 पारित होने के दो सप्ताह के भीतर, अर्थात् 04.11.2008 को एक आवेदन अंतर्गत आदेश IX नियम 13 सीपीसी प्रस्तुत किया।

26. उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ताओं ने न्यायालय में तत्काल याचिका दायर की, क्योंकि उक्त एकपक्षीय डिक्री की जानकारी याचिकाकर्ताओं को मिल गई थी और उक्त डिक्री में वादपत्र में किए गए संशोधन के कारण उत्तरदाताओं द्वारा किए गए निर्माणों पर संदेह उत्पन्न हो गया था, जिसका उल्लेख दायर लिखित बयान दिनांक 23.05.2006 में पहले ही किया जा चुका था। यह स्पष्ट रूप से एक प्रतिवाद योग्य दलील थी। हालांकि, संशोधित वादपत्र के अनुसार, वादियों ने यह संकेत दिया है कि आपत्तिजनक निर्माण मात्र 2006 में वाद के लंबन के दौरान ही किया गया था, जो वादपत्र की प्रति से स्पष्ट है, जो पेपर-बुक के पृष्ठ 63 पर है और पैराग्राफ-10 में यह उल्लेख किया गया है कि आपत्तिजनक निर्माणों को हटाने का कारण 21.01.2006 को उत्पन्न हुआ था।

27. मामले की इस दृष्टि से, जहां कुछ परस्पर विरोधी दावों का निस्तारण किया जाना है और उपर्युक्त परिस्थितियों तथा आदेश IX नियम 13 सीपीसी के अंतर्गत आवेदन में दिए गए कथनों के आधार पर, न्यायालय यह नहीं मानता कि उत्तरदाताओं का आचरण इतना लापरवाहीपूर्ण था कि उन्हें सुनवाई का अवसर न दिया जाए। याचिकाकर्ता संख्या 1 उषा देवी ने उत्तरदाताओं की ओर से वाद लड़ा था और यह कहा गया है कि वह अपने अधिवक्ता पर निर्भर थीं क्योंकि उनके पति प्रतापगढ़ जिले से बाहर सेवा में थे।

28. यह अब सर्वविदित है कि जहां तकनीकी पहलुओं को वास्तविक न्याय के विरुद्ध खड़ा किया जाता है, वहां वास्तविक न्याय को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि न्यायालय अति-तकनीकी दृष्टिकोण अपनाकर पक्षों के अधिकारों को समाप्त करने की बजाय वास्तविक न्याय करने के पक्ष में झुकाव रखता है।

29. इस बात में कोई विवाद नहीं है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश IX नियम 13 के अंतर्गत आवेदन एकपक्षीय निर्णय के पारित होने के दो सप्ताह के भीतर दायर किया गया था। आदेश IX नियम 13 के अंतर्गत दायर आवेदन में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 उषा देवी अपने पति की अनुपस्थिति में अपने अधिवक्ता पर निर्भर थीं और उन्हें कार्यवाही के बारे में जानने का कोई अन्य साधन नहीं था सिवाय इसके कि उनके अधिवक्ता ने उन्हें क्या बताया था। न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या याचिकाकर्ताओं को पर्याप्त कारणों से उस मामले में प्रस्तुत होने से रोका गया था जिसके कारण एकपक्षीय निर्णय सुनाया गया।

30. 'पर्याप्त कारण' शब्द पर सर्वोच्च न्यायालय ने **राम नाथ साओ उर्फ राम नाथ साहू एवं अन्य बनाम गोबरधन साओ एवं अन्य, (2002) 3 एससीसी 195** में विचार किया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:-

“12. इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम की धारा 5 या संहिता के आदेश 22 नियम 9 या किसी अन्य समान प्रावधान के अर्थ में "पर्याप्त कारण" अभिव्यक्ति का उदारतापूर्वक अर्थ लगाया जाना चाहिए ताकि वास्तविक न्याय सुनिश्चित हो सके जब किसी पक्ष पर लापरवाही, निष्क्रियता या सद्भावना की कमी का आरोप न लगाया जा सके। किसी विशेष मामले में, दी गई व्याख्या "पर्याप्त कारण" होगी या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। कदम उठाने में हुई देरी के लिए दी गई व्याख्याओं को स्वीकार या अस्वीकार करने का कोई निश्चित सूत्र नहीं हो सकता। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि न्यायालयों को दिए गए कारण में दोष ढूंढने और निस्तारण अभियान की अति-उत्साह में लापरवाही से याचिका खारिज करने की प्रवृत्ति नहीं अपनानी चाहिए। दी गई व्याख्या को स्वीकार करना नियम होना चाहिए और अस्वीकृति अपवाद, विशेष रूप से तब जब दोषी पक्ष पर लापरवाही, निष्क्रियता या सद्भावना की कमी का आरोप न लगाया जा सके। दूसरी ओर, मामले पर विचार करते समय न्यायालयों को इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि निर्धारित समय के भीतर कदम न उठाने से एक मूल्यवान संपत्ति का हानि हो सकता है। दूसरे पक्ष को वह अधिकार प्राप्त हो चुका है जिसे सामान्य तरीके से देरी को माफ करके आसानी से समाप्त नहीं किया जाना चाहिए। हालांकि, मामले को अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण से देखने पर, जब मामला गंभीर हो और/या तथ्यों और विधि

के तर्कपूर्ण बिंदु शामिल हों, तो दी गई व्याख्या को अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे वाद का निस्तारण करने वाले पक्ष को भारी हानि और अपूरणीय क्षति पहुंच सकती है, चाहे वह चूक से हो या निष्क्रियता से, और ऐसे पक्ष के योग्यता के आधार पर निर्णय प्राप्त करने के मूल्यवान अधिकार का हनन हो सकता है। मामले पर विचार करते समय, न्यायालयों को अपने द्वारा पारित किए जाने वाले आदेश के दोनों पक्षों पर पड़ने वाले परिणामी प्रभाव के बीच संतुलन बनाना होगा।”

31. ईशा भट्टाचार्य बनाम रघनाथपुर नफर अकादमी की प्रबंध समिति एवं अन्य, (2013) 12 एससीसी 649 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: -

“21. उपर्युक्त निर्णयों से व्यापक रूप से निकाले जा सकने वाले सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

21.1. (i) विलंब की क्षमा के लिए आवेदन से निपटते समय उदार, व्यावहारिक, न्यायोन्मुखी, गैर-विवेकी दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए, क्योंकि न्यायालयों को अन्याय को वैध नहीं बनाना चाहिए बल्कि अन्याय को दूर करना चाहिए।

21.2. (ii) “पर्याप्त कारण” शब्द को उसके उचित अर्थ, दर्शन और उद्देश्य के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि ये शब्द मूल रूप से लचीले हैं और इन्हें वर्तमान तथ्य-स्थिति के उचित परिप्रेक्ष्य में लागू किया जाना है।

21.3. (iii) वास्तविक न्याय सर्वोपरि और महत्वपूर्ण होने के कारण तकनीकी विचारों पर अनुचित और अनावश्यक जोर नहीं दिया जाना चाहिए।

21.4. (iv) जानबूझकर देरी करने का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, लेकिन अधिवक्ता या मुवक्किल की ओर से घोर लापरवाही को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

21.5. (v) विलंब के लिए क्षमा मांगने वाले पक्ष पर सद्भावना का अभाव एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक तथ्य है।

21.6. (vi) यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सख्त सबूतों का पालन सार्वजनिक न्याय को प्रभावित नहीं करना चाहिए और सार्वजनिक उपद्रव का कारण नहीं बनना चाहिए क्योंकि न्यायालयों को सतर्क रहने की आवश्यकता है ताकि अंततः न्याय की कोई वास्तविक विफलता न हो।

21.7. (vii) उदार दृष्टिकोण की अवधारणा में तर्कसंगतता की अवधारणा समाहित होनी चाहिए और इसे पूरी तरह से अनियंत्रित मुक्त खेल की अनुमति नहीं दी जा सकती।

21.8. (viii) अत्यधिक विलंब और अल्प विलंब या कुछ दिनों के विलंब में अंतर है, क्योंकि पहले पर पूर्वाग्रह का सिद्धांत लागू होता है जबकि दूसरे पर यह लागू नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त, पहले वाले के लिए कठोर दृष्टिकोण आवश्यक है जबकि दूसरे के लिए उदार व्याख्या की आवश्यकता है।

21.9. (ix) किसी पक्ष की निष्क्रियता या लापरवाही से संबंधित आचरण, व्यवहार और दृष्टिकोण प्रासंगिक कारक हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूलभूत सिद्धांत यह है कि न्यायालयों को दोनों पक्षों के संबंध में न्याय के तराजू को तौलना आवश्यक है और उदार दृष्टिकोण के नाम पर उक्त सिद्धांत को पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

21.10. (x) यदि दी गई व्याख्या मनगढ़ंत है या आवेदन में बताए गए आधार काल्पनिक हैं, तो न्यायालयों को सतर्क रहना चाहिए कि दूसरे पक्ष को अनावश्यक रूप से ऐसे वाद का सामना न करना पड़े।

21.11. (xi) यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति परिसीमा विधि की तकनीकी बारीकियों का सहारा लेकर धोखाधड़ी, भ्रामक प्रस्तुति या प्रक्षेप से बच नहीं सकता।

21.12. (xii) तथ्यों के संपूर्ण दायरे की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए और दृष्टिकोण न्यायिक विवेक के प्रतिमान पर आधारित होना चाहिए जो वस्तुनिष्ठ तर्क पर आधारित है न कि व्यक्तिगत धारणा पर।

21.13. (xiii) राज्य या सार्वजनिक निकाय या सामूहिक उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था को कुछ स्वीकार्य छूट दी जानी चाहिए।

22. उपरोक्त सिद्धांतों में हम वर्तमान परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए कुछ और दिशा-निर्देश जोड़ सकते हैं। वे इस प्रकार हैं:

22.1. (क) विलंब की क्षमा के लिए आवेदन सावधानीपूर्वक और चिंतापूर्वक तैयार किया जाना चाहिए, न कि इस धारणा के साथ कि न्यायालयों को इस सिद्धांत के आधार पर विलंब को क्षमा करना आवश्यक है कि किसी मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय न्याय वितरण प्रणाली के लिए मौलिक है।

22.2. (ख) विलंब की क्षमा के लिए आवेदन पर व्यक्तिगत दर्शन के आधार पर नियमित रूप से विचार नहीं किया जाना चाहिए, जो मूल रूप से व्यक्तिपरक है।

22.3. (ग) यद्यपि न्यायिक विवेकाधिकार की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए कोई सटीक सूत्र निर्धारित नहीं किया जा सकता है, फिर भी न्याय प्रणाली में एकरूपता और सहकारिता प्राप्त करने के लिए सचेत प्रयास किया जाना चाहिए क्योंकि यही अंतिम संस्थागत आदर्श वाक्य है।

22.4. (घ) विलंब को गैर-गंभीर मामला समझने की बढ़ती प्रवृत्ति और परिणामस्वरूप लापरवाही भरे रवैये को विधिक मापदंडों के भीतर ही प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना आवश्यक है।

32. हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने **कुमारी साहू बनाम भुबनानंद साहू एवं अन्य, मनु/एससीओआर/15950/2025** मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

“10. हम इस बात से अवगत हैं कि लंबी अवधि की देरी को माफ करने से संबंधित मामलों में सावधानी बरतने की आवश्यकता है। हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ऐसे मामलों में न्याय के तराजू को संतुलित करना अनिवार्य हो जाता है, खासकर भारत की आबादी के एक बड़े हिस्से की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि को देखते हुए, जो वादी के रूप में न्याय के इन द्वारों का रुख करते हैं।

11. हमें यहां **रफीक एवं अन्य बनाम मुंशीलाल एवं अन्य (1981) 2 एससीसी 788** मामले से एक पैराग्राफ प्रस्तुत करना प्रासंगिक लगता है, जिसमें अधिवक्ता की गलती के कारण देरी के संबंध में बहुत समान तथ्यात्मक मैट्रिक्स था, निम्नलिखित देखा गया:

“3. इस मामले की चिंताजनक बात यह है कि हमारी वर्तमान विरोधी विधिक प्रणाली में, जहाँ पक्षकार आमतौर पर अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से प्रस्तुत होते हैं, पक्षकारों का दायित्व है कि वे अपने अधिवक्ता का चयन करें, उन्हें जानकारी दें, उनके द्वारा माँगी गई फीस का भुगतान करें और फिर विद्वान अधिवक्ता पर शेष कार्य करने का भरोसा करें। पक्षकार गाँव का निवासी हो सकता है या ग्रामीण क्षेत्र से संबंधित हो सकता

हैं और उसे न्यायालय की प्रक्रिया का कोई ज्ञान नहीं हो सकता है। अधिवक्ता नियुक्त करने के बाद, पक्षकार पूरी तरह आश्वस्त हो सकता है कि अधिवक्ता उसके हितों का ध्यान रखेगा। अपील की सुनवाई के समय, पक्षकार की व्यक्तिगत उपस्थिति न मात्र आवश्यक नहीं है बल्कि शायद ही उपयोगी है। इसलिए, पक्षकार ने कार्यवाही में प्रभावी ढंग से भाग लेने के लिए अपनी शक्ति के अनुसार सब कुछ कर लिया है और वह निश्चित हो सकता है कि उसे न तो उच्च न्यायालय में जाकर यह पता लगाना है कि उसकी अपील के संबंध में उच्च न्यायालय में क्या हो रहा है और न ही उसे अधिवक्ता पर नज़र रखनी है कि वह मामले की सुनवाई के समय उपस्थित हो। यह उसके काम का हिस्सा नहीं है। श्री ए. के. सांघी ने कहा कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अधिवक्तागण के बीच यह प्रथा विकसित हो गई है कि जब उन्हें कोई विशेष पीठ पसंद नहीं आती है तो वे अनुपस्थित रहते हैं। हो सकता है, हमें पता न हो, कि इस मामले में उन्हें बेहतर जानकारी हो। इस मामले में अज्ञानता ही हमारा सुख है। भले ही हम इस मामले को खारिज करके कथित प्रथा पर अपनी मुहर न लगाएं, जिससे ऐसी प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जा सके, क्या इससे न्याय व्यवस्था बदनाम नहीं होगी? उस पक्ष का क्या दोष है जिसने अपनी पूरी कोशिश करने के बावजूद अपने अधिवक्ता की चूक के कारण हानि उठाया? यदि हम इस अपील को खारिज कर देते हैं, जैसा कि श्री ए.के. सांघी ने हमें करने का आग्रह किया है, तो हानि उठाने वाला मात्र वह अधिवक्ता नहीं होगा जो उपस्थित नहीं हुआ, बल्कि वह पक्ष होगा जिसके हितों का उसने प्रतिनिधित्व किया। हमें जो प्रश्न परेशान करता है वह यह है कि क्या यह उचित है कि पक्ष को अपने प्रतिनिधि की निष्क्रियता, जानबूझकर की गई चूक या दुर्व्यवहार के लिए हानि उठाना पड़े? इसका उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक है। हो सकता है कि विद्वान अधिवक्ता जानबूझकर या इरादे से अनुपस्थित रहे हों। हमारे पास इस पहलू की पुष्टि करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है। हम इस पहलू पर और कुछ नहीं कहेंगे। हालांकि, हम किसी निर्दोष पक्ष के साथ अन्याय होते हुए नहीं देख सकते, मात्र इसलिए कि उसके चुने हुए अधिवक्ता ने चूक की। इसलिए, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और आदेश को रद्द करते हैं। उच्च न्यायालय द्वारा अपील खारिज करने और उस आदेश को वापस लेने से अस्वीकार करने के संबंध में, हम निर्देश देते हैं कि अपील को उच्च न्यायालय में उसके मूल क्रमांक पर बहाल किया जाए और विधि के अनुसार उसका निस्तारण किया जाए। यदि बेदखली पर रोक है, तो वह उच्च न्यायालय द्वारा मामले के निस्तारण तक जारी रहेगी। अब यह प्रश्न बना हुआ है कि प्रतिवादी का खर्च कौन वहन करेगा। चूंकि हमारा मानना है कि प्रतिवादी उत्तरदायी नहीं है क्योंकि उसने वह सब कुछ किया है जो संभव था और उसके अधिकार में था, इसलिए अनुपस्थित रहने वाले अधिवक्ता से 200 रुपये का खर्च वसूल किया जाना चाहिए। उस आदेश को लागू करने का अधिकार श्री ए.के. सांघी द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए पक्ष के पास सुरक्षित है।”

(मैंने इस पर विशेष जोर दिया है)

12. हालांकि उपर्युक्त उद्धृत मामला 1981 का है, हम इस तथ्य से अस्वीकार नहीं कर सकते कि वादबाजों के एक बड़े हिस्से का अपने अधिवक्तागण पर पूरी तरह से निर्भर होना आज भी वैसा ही है, खासकर उन क्षेत्रों में जहां आर्थिक और शैक्षिक क्षमता कम है।”

33. इस प्रकार, उपर्युक्त निर्णयों से निकाले जा सकने वाले सिद्धांत, यदि वर्तमान मामले पर लागू किए जाएं, तो यह प्रकट करेंगे कि 'पर्याप्त कारण' शब्द की व्याख्या उदारतापूर्वक की जानी चाहिए और दी गई व्याख्या

को स्वीकार किया जाना चाहिए, जब तक कि न्यायालय से रियायत मांगने वाले पक्ष पर घोर लापरवाही का आरोप न लगाया जा सके।

34. इस मामले में, अधिवक्ता पर भरोसा और निर्भरता निर्विवाद है। उषा देवी के पति का काम के सिलसिले में अनुपस्थित रहना भी निर्विवाद है। यह भी निर्विवाद है कि उषा देवी और उनके पति ने कार्यवाही का विरोध करते समय विलंबकारी रवैया नहीं अपनाया और अपने अधिवक्ता द्वारा बताई गई जानकारी के अतिरिक्त, उनके पास ज्ञान प्राप्त करने का कोई अन्य साधन नहीं था। साथ ही, यह भी सच है कि आदेश IX नियम 13 सीपीसी के अंतर्गत आवेदन समय सीमा के भीतर दायर किया गया था। इसलिए, न्यायालय का मत है कि याचिकाकर्ताओं को बिना सुने ही दोषी ठहराने के बजाय उन्हें एक अवसर दिया जाना चाहिए था।

35. अभिलेख से यह भी पता चलता है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने आदेश दिनांक 09.09.2013 द्वारा अधिकारों की रक्षा की थी और एकपक्षीय डिक्री का निष्पादन नहीं किया गया है। कार्यवाही में हुई देरी को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **रेवाजीतु बिल्डर्स एंड डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस एवं अन्य (2009) 10 एससीसी 84 और विनोद सेठ बनाम देविंदर बजाज एवं अन्य (2010) 8 एससीसी 1** में निर्धारित सिद्धांतों के आलोक में निजी-प्रतिवादियों को लागत प्रदान करके क्षतिपूर्ति देकर कम किया जा सकता है।

36. उपरोक्त परिस्थितियों में, न्यायालय का मत है कि रिट याचिका को स्वीकार करके, एकपक्षीय निर्णय और डिक्री दिनांक 24.10.2008 को रद्द करके न्यायोचित हित सिद्ध हो सकता है, बशर्ते 30,000/- रुपये का हर्जाना अदा किया जाए (जिसमें से 20,000/- रुपये वादी को देय होंगे और 10,000/- रुपये जनपद विधि सेवा प्राधिकरण, प्रतापगढ़ के पास जमा किए जाएंगे)। यह हर्जाना आज से दो सप्ताह के भीतर अदा किया जाना चाहिए। ओ.एस. संख्या 1486/2003 की कार्यवाही को उसके मूल क्रमांक पर बहाल किया जाएगा, जिसमें **पक्षकार 16.04.2025 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे**। वाद की कार्यवाही उस चरण से आगे बढ़ेगी जहां वादी ने संशोधन के लिए आवेदन किया था। उत्तरदाताओं को संशोधन आवेदन पर आपत्ति दर्ज करने सहित वाद का विरोध करने का उचित अवसर दिया जाएगा। पक्षकार नए साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र होंगे। पक्षकारों को ओ.एस. संख्या 1486/2003 की कार्यवाही में सहयोग करने का निर्देश दिया जाता है। जो भी पक्ष इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने का प्रयास करेगा, उस पर समय-समय पर बढ़ता हुआ जुर्माना लगाया जाएगा। विचारण न्यायालय ओ.एस. संख्या 1486/2003 का निस्तारण शीघ्रता से, अधिमानतः पक्षकारों के न्यायालय में प्रस्तुत होने की तिथि से छः माह के भीतर करने का प्रयास करेगी। यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि इस न्यायालय द्वारा निर्देशित जुर्माना अदा नहीं किया जाता है, तो कार्यवाही को पुनः शुरू नहीं किया जाएगा।

37. उपरोक्त टिप्पणियों के आधार पर, रिट याचिका की **अनुमति** दी जाती है।

(2025) 3 ILRA 853

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.12.2024

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 25039 / 2024

राजू मौर्य

.....आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....विरोधी पक्ष

आवेदक के अधिवक्ता:

श्री आर पी जैन

विरोधी पक्ष के अधिवक्ता:

जी.ए., श्रीमती रंजना सिंह, श्री शेष नाथ सिंह यादव

आपराधिक विधि- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 82 और 83 : कुर्क की गई वस्तुओं की रिहाई के लिए **आवेदन** - वर्तमान मामले में, सच्चाई का पता लगाए बिना - चाहे यह भागकर शादी करने का मामला हो या सक्रिय रूप से साथ रहने का - पुलिस ने उस लड़के से तथ्यों की पुष्टि किए बिना परिवार के आठ सदस्यों के विरुद्ध आरोप-पत्र दायर कर दिया, जिस पर एक युवती को भागकर शादी करने का आरोप लगाया गया था। इसके अतिरिक्त, पुलिस ने संपत्ति के स्वामित्व की पुष्टि किए बिना परिवार के घर में उपलब्ध सभी चल और अचल संपत्तियों को कुर्क कर लिया --- न्यायालय ने इस महत्वपूर्ण तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि जब्त की गई संपत्ति कथित भगोड़े की नहीं थी --- न्यायिक आदेश जारी करने और निष्पादित करते समय विचारण न्यायालयों और पुलिस दोनों के लिए न्यूनतम विधिक और प्रक्रियात्मक मानकों का पालन करना अत्यंत आवश्यक है। ऐसे आदेश निष्पक्ष, विधिवत और पारदर्शी तरीके से पारित और कार्यान्वित किए जाने चाहिए, जिससे संवैधानिक अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित हो और न्यायिक प्रणाली में जनता का विश्वास बना रहे। यह विशेष रूप से उन मामलों में महत्वपूर्ण है जिनमें (i) फरार व्यक्तियों के लिए घोषणा जारी करना, (ii) संपत्ति की कुर्की, (iii) घोषित अपराधियों की संपत्ति की पहचान और ज़बती, और (iv) ऐसी कुर्की से संबंधित दावों और आपत्तियों का निस्तारण शामिल है। विधिक सिद्धांतों और प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का कड़ाई से पालन सुनिश्चित करके, न्यायपालिका और विधि प्रवर्तन एजेंसियां विधि के शासन को कायम रख सकती हैं, व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा कर सकती हैं और न्याय प्रणाली में जनता का विश्वास बहाल कर सकती हैं --- आवेदक और अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही रद्द की जाती है। (पैरा 19, 26, 30 और 32)

याचिका की अनुमति। (ई-15)**उद्धृत मामलों की सूची:**

बिहार राज्य एवं अन्य बनाम जे.ए.सी. साल्डाना एवं अन्य, 1980 एससीसी (क्रि) 272

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी. राजन, राज्य-प्रतिवादी के विद्वान ए.जी.ए. श्री विभव आनंद, विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया।
2. श्री मोहित अग्रवाल, पुलिस आयुक्त, वाराणसी वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से वर्चुअल रूप से उपस्थित हुए।
3. वर्तमान आवेदन आक्षेपित आदेश दिनांक 1.4.2024 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया है, जो विशेष सत्र परीक्षण संख्या 1203/2021 में पारित किया गया था, जो मुकदमा अपराध संख्या 212/2021 अन्तर्गत धारा 363, 366, 368 आई.पी.सी. सपठित धारा 16/17 पोक्सो अधिनियम के अंतर्गत मामला थाना चौबेपुर, जिला वाराणसी में पंजीकृत है, जिसका विचारण अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम), न्यायालय संख्या 3, वाराणसी के समक्ष लंबित है, जिसके द्वारा आवेदक के माल की रिहाई के आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया।
4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, जब्त किए गए माल के ज़ापन की जांच और आक्षेपित आदेश का अवलोकन करने पर, इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 11.11.2024 द्वारा पुलिस आयुक्त, वाराणसी को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से वर्चुअली उपस्थित होने और अवधेश मौर्य और ज्योति यादव, जो 10.05.2021 को लापता हो गए थे, की बरामदगी के लिए पुलिस द्वारा उठाए गए दैनिक कदमों का विवरण देते हुए एक व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया। उपरोक्त आदेश का प्रासंगिक अंश नीचे दिया गया है:

“3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक अवधेश मौर्य का सगा भाई है, जो शिकायतकर्ता की फर्म में ड्राइवर के रूप में काम करता था। प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप है कि आवेदक के भाई ने शिकायतकर्ता की नाबालिग बेटी का अपहरण किया है और आवेदक तथा दो-तीन अज्ञात व्यक्तियों ने अपहरण में उसकी सहायता की है। आवेदक के छोटे भाई को भी इस मामले में सह-अभियुक्त बनाया गया है, जो एफआईआर दर्ज होने की तिथि से पहले शिकायतकर्ता की बेटी के साथ लापता है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया कि आवेदक के संबंध में विवेचना के दौरान इस निराधार आरोप का समर्थन करने वाला कोई साक्ष्य

सामने नहीं आया। विवेचना के विलंबित चरण में, दुर्भावनापूर्ण हेतुक से, पीड़िता की मां के कहने पर अन्य सह-अभियुक्तों के साथ आवेदक का नाम भी इस मामले में घसीटा गया है।

4. मुख्य अभियुक्त अवधेश मौर्य, जिस पर शिकायतकर्ता की बेटी के साथ भागने का आरोप है, पुलिस द्वारा लापता पाया गया। इसलिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और 83 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई। परिणामस्वरूप, पुलिस ने आवेदक के पिता द्वारा अर्जित पारिवारिक संपत्ति को जब्त कर लिया। बाद में, आवेदक के पिता ने सामान की रिहाई के लिए आवेदन दिया, जिसे न्यायालय ने आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया और आदेश दिनांक 14.02.2022 द्वारा एक लोडर (टेम्पो) जिसका संख्या ए7एल1144062 है, आवेदक के पिता के पक्ष में जारी कर दिया गया। इसके बाद, आवेदक ने अपने सामान की रिहाई के लिए आवेदन दिया, लेकिन कुछ त्रुटि के कारण आवेदन पर आगे कार्रवाई नहीं की गई और परिणामस्वरूप उसे खारिज कर दिया गया। आवेदक ने जब्त किए गए घरेलू सामानों की रिहाई के लिए फिर से एक आवेदन दिया, जिसे विचारण न्यायालय ने आदेश दिनांक 01.04.2024 द्वारा अस्वीकृत कर दिया।

5. आक्षेपित आदेश के अवलोकन करने पर यह कहीं भी उल्लेखित नहीं है कि कुर्क की गई संपत्ति सह-अभियुक्त अवधेश मौर्य की कमाई से खरीदी गई थी, न ही जब्त किए गए सामान की खरीद से संबंधित कोई रसीद अभिलेख में है। विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया है कि आवेदक और उसके पिता (सह-अभियुक्त) नियमित रूप से न्यायालय की कार्यवाही में उपस्थित होते हैं, इसलिए, यह सुनिश्चित किए बिना कि जब्त की गई संपत्ति भगोड़े द्वारा अर्जित की गई है, संपत्ति (घरेलू सामान) को कुर्क नहीं किया जा सकता है, और इस संबंध में अभिलेख में कोई साक्ष्य नहीं है। इसलिए, विचारण न्यायालय को इस आदेश की प्रति प्राप्त होने के तुरंत बाद जब्ती नॉपन 25.12.2021 के अंतर्गत जब्त किए गए संपूर्ण सामान को रिहा करने का निर्देश दिया जाता है और यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि सामान उसी स्थिति में हो जैसा जब्ती के समय था। अनुपालन रिपोर्ट अगली सुनवाई की तिथि को या उससे पहले इस न्यायालय को भेजी जाए।

6. बहस के दौरान, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने गंभीर आशंका जताई है कि उसके छोटे भाई और पीड़ित की हत्या शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा की जा सकती है। गाँव में शिकायतकर्ता द्वारा उसके भाई और पीड़ित की ऑनर किलिंग की अफवाहें फैली हुई हैं। पुलिस ने सह-अभियुक्त अवधेश मौर्य और पीड़ित ज्योति यादव का पता लगाने के लिए भी कोई ठोस कदम नहीं उठाया है, क्योंकि दोनों गाँव से गायब हो गए हैं।

7. मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों का समग्र आकलन करने के बाद, मैं पाता हूँ कि आवेदक की आशंका उचित है, और इसलिए, पुलिस आयुक्त, वाराणसी को अवधेश मौर्य और ज्योति यादव का पता लगाने के लिए पुलिस द्वारा उठाए गए दिन-प्रतिदिन के कदमों का विवरण देते हुए अपना व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल

करने का निर्देश दिया जाता है, और उन्हें सुबह 10:00 बजे वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष वर्चुअली उपस्थित रहना होगा।”

5. उपरोक्त आदेश के अनुसार, विद्वान ए.जी.ए. ने पुलिस आयुक्त का व्यक्तिगत शपथपत्र न्यायालय को सौंप दिया, और इसे अभिलेख में ले लिया गया है। शपथपत्र की सामग्री की जांच करने पर, निम्नलिखित तथ्य नोट किए गए हैं;

5.1 श्री शंभू यादव ने एफआईआर मुकदमा अपराध संख्या 212/2021 अन्तर्गत धारा 363, 366 और 368 आई.पी.सी. थाना चौबेपुर, जिला वाराणसी में दर्ज कराई, जिसमें आरोप लगाया गया कि 10.05.2021 को शिकायतकर्ता की लगभग 17 वर्षीय नाबालिग बेटी अवधेश मौर्य के साथ भाग गई थी और तब से उसका कोई पता नहीं चल पाया है।

5.2 एफआईआर दर्ज होने के बाद, विवेचना अधिकारी द्वारा उसी दिन शिकायतकर्ता का बयान दर्ज किया गया और 15.05.2021 को अभियुक्त और पीड़ित के संभावित ठिकानों की तलाशी ली गई। इसके बाद, सीडीआर विश्लेषण के आधार पर, 28.05.2021 को मुंबई में संभावित ठिकानों की भी तलाशी ली गई।

5.3 अभियुक्त और पीड़िता का पता लगाने के लिए सी.ओ. पिंड्रा, कमिश्नरेट वाराणसी के नेतृत्व में एक टीम का गठन किया गया। तलाशी-गश्ती भी जारी की गई और 26.08.2021 को दूरदर्शन और आकाशवाणी पर एक जन प्रसारण भी किया गया।

5.4 साक्ष्य जुटाने के बाद, सह-अभियुक्त सुभाष मौर्य, अक्षय मौर्य और अजीत मौर्य को 20.06.2021 को गिरफ्तार किया गया, जबकि सह-अभियुक्त सूर्यनाथ मौर्य और राजू मौर्य को 17.09.2021 को गिरफ्तार किया गया। सभी अभियुक्तों को जेल भेज दिया गया।

5.5 18.09.2021 को एस.पी. (ग्रामीण), कमिश्नरेट वाराणसी द्वारा अभियुक्त और पीड़ित की तलाश के लिए दो पुलिस टीमों का पुनर्गठन किया गया: (क) एक टीम स्थानीय पुलिस द्वारा बनाई गई, और (ख) दूसरी टीम अपराध शाखा द्वारा गठित की गई।

5.6 अभियुक्त अवधेश मौर्य के विरुद्ध धारा 82 सीआर.पी.सी. के अंतर्गत कार्यवाही 27.09.2021 को शुरू की गई, जिसके बाद 09.11.2021 को धारा 83 सीआर.पी.सी. के अंतर्गत कार्यवाही की गई।

5.7 अभियुक्त का पता महाराष्ट्र में चला; हालांकि, तमाम कोशिशों के बावजूद पुलिस पीड़िता को बरामद नहीं कर सकी।

5.8 13.05.2021 से 04.12.2024 तक, पुलिस ने विवेचना के दौरान उठाए गए कदमों को **104 अभियोग दैनिकी प्रविष्टियाँ** में दर्ज किया, लेकिन कोई सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं हुआ।

6. पुलिस आयुक्त के निजी शपथपत्र से यह भी पता चलता है कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश प्राप्त होने पर, सहायक आयुक्त, सारनाथ, वाराणसी को विवेचना अधिकारियों द्वारा की गई चूक की जांच करने और दस दिनों के भीतर रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था। इसके बाद, 05.12.2024 को, पुलिस आयुक्त ने सहायक पुलिस आयुक्त, सारनाथ के नेतृत्व में एक टीम का पुनर्गठन किया, जिसमें निगरानी प्रकोष्ठ के प्रभारी, वाराणसी आयुक्त कार्यालय के एस.ओ.जी. प्रभारी और विवेचना अधिकारी चौबेपुर थाना, वाराणसी शामिल

थे। टीम को पीड़ित को बरामद करने के लिए सभी उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करने का निर्देश दिया गया था।

7. परिणामस्वरूप, पीड़ित को सफलतापूर्वक बरामद कर लिया गया और अभियुक्त अवधेश मौर्य को पुलिस ने 07.12.2024 को पिंपलगांव, जिला नासिक, महाराष्ट्र से गिरफ्तार कर लिया। पुलिस ने पिंपलगांव, निफाड, जिला नासिक, महाराष्ट्र के न्यायिक मजिस्ट्रेट से पारगमन रिमांड प्राप्त की। इसके बाद, धारा 68 आई.पी.सी. और धारा 16/17 पोक्सो अधिनियम के अंतर्गत आरोप जोड़े गए। अभियुक्त को बाद में जमानत पर रिहा कर दिया गया। यह बात सामने आई है कि लड़के और लड़की ने अपने गांव छोड़ने के तुरंत बाद शादी कर ली थी और गिरफ्तारी से पहले नासिक में खुशी-खुशी साथ रह रहे थे। हाल ही में, उन्हें एक बच्चा हुआ था।

8. संलग्न माल को मुक्त करने के निर्देश के संबंध में, विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम) ने आदेश दिनांक 07.12.2024 द्वारा आवेदक राजू मौर्य के पक्ष में माल मुक्त कर दिया था। आदेश दिनांक 11.11.2024 के अनुपालन में, व्यक्तिगत शपथपत्र के पृष्ठ 29 पर संलग्न सुपुर्दगीनामा के माध्यम से माल मुक्त किया गया था।

9. मामले की पृष्ठभूमि संक्षेप में कहें तो, एक एफआईआर दर्ज की गई जिसमें आरोप लगाया गया कि एक 17 वर्षीय लड़की उसी गांव के एक युवक के साथ भाग गई थी। विवेचना के दौरान, पुलिस ने लड़के के परिवार के पांच सदस्यों को गिरफ्तार किया, जिन्हें बाद में जमानत पर रिहा कर दिया गया। परिवार के सभी पांच पुरुष और तीन महिला सदस्यों के विरुद्ध आरोप-पत्र दायर की गई, जिन्होंने न्यायालय से अग्रिम जमानत प्राप्त कर ली थी। इसके अतिरिक्त, पुलिस ने 25.12.2021 को परिवार द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले सभी घरेलू सामानों को जब्त कर लिया। जब्त किए गए सामानों की सूची नीचे दी गई है:

क्रम संख्या	वस्तुओं का विवरण	मात्रा	मूल्य (रुपये में)
1.	पुरानी इस्तेमाल की हुई साइकिल	2 टुकड़े	100
2.	पुराना इस्तेमाल किया हुआ खटिया	1 टुकड़ा	80
3.	पुरानी इस्तेमाल की हुई मेज	1 टुकड़ा	20
4.	लकड़ी का तख्ता	1 टुकड़ा	15
5.	स्टूल	2 टुकड़े	28
6.	ग्राइंडर की एक पत्थर की प्लेट	1 टुकड़ा	5
7.	लकड़ी का पलंग	1 टुकड़ा	75

8.	छोटी बैटरी	2 टुकड़े	40
9.	चार्जर	1 टुकड़ा	10
10.	बड़े आकार का टिन का डिब्बा	1 टुकड़ा	50
11.	लकड़ी का तख्ता	2 01	80
12.	लोहे का ड्रम	1 टुकड़ा	15
13.	एक प्लास्टिक के ड्रम में 10 किलो चावल रखे हैं।	1 टुकड़ा	80
14.	कथारी (चादर)	4 पीस	16
15.	बिस्तर की चादर	1 टुकड़ा	35
16.	कंबल	2 पीस	8
17.	लकड़ी का तख्ता	2 पीस	100
18.	स्टूल के साथ मेकअप बॉक्स	017	30
19.	लोहे की अलमारी		120
20.	गद्दा	02	15
21.	पुराना इस्तेमाल किया हुआ टिन का डिब्बा	01	
22.	बुजुर्ग महिलाओं का पर्स	01	20
23.	पुरानी साड़ी	06	24
24.	पुरुष धोती	02	3
25.	गमछा	03	3
26.	सूट सलवार	02	4
27.	पुरानी जैकेट	01	2
28.	महिलाओं की पुरानी शॉल	01	1
29.	बच्चों की स्कूल ड्रेस	01	1
30.	पुरानी लेगिंग	01	1
31.	पुरानी फ्रॉक	02	1
32.	हाफ स्वेटर	02	2

33.	मफलर	01	1
34.	महिलाओं के लिए मफलर	01	1
35.	ओढ़नी	05	5
36.	ब्लाउज	01	2
37.	मैक्सी	06	6
38.	सूट सलवार	06	6
39.	तकिया	06	6
40.	छोटी बिस्तर कथारी	10	10
41.	छोटा एलजी टीवी	01	150
42.	छोटा पीसने वाला पत्थर	1 जोड़ी	5
43.	टिन के ड्रम में 10 किलो गेहूं	01	25
44.	टिन के ड्रम में 10 किलो चावल	01	25
45.	लकड़ी का डबल बेड	01	25
46.	टूटे हुए प्लास्टिक अतानी	01	2
47.	लकड़ी का ढोलक	01	1
48.	प्लास्टिक ताल	01	2
49.	टूटा हुआ छोटा टिन का डिब्बा	02	1
50.	सीलिंग फैन	01	15
51.	ग्राइंडस्टोन हैंड ग्राइंडर	01	2
52.	एक बाल्टी लोहा/स्टील	02	2
53.	छोटा स्टील का कटोरा	04	1
54.	स्टील लोटा	01	1
55.	स्टील ग्लास	01	1
56.	पुराना इस्तेमाल किया हुआ लोहे का तवा	01	5
57.	पुराने इस्तेमाल किए हुए चिमटे	02	2

58.	पुरानी प्रयुक्त स्टील प्लेट	01	1
59.	छोटी स्टील की छलनी	01	1
60.	पुरानी प्रयुक्त स्टील प्लेट	01	1
61.	पुराना, इस्तेमाल किया हुआ, टूटा हुआ रोलर	01	2
62.	पुराना, इस्तेमाल किया हुआ, एक छोटी चम्मच	03	2
63.	पुरानी इस्तेमाल की हुई रस्सी	01	1
64.	चावल के पाँच पैकेट	150 किलोग्राम	
65.	गेहूं के छह पैकेट	160 किलोग्राम	600
66.	धान के दो पैकेट	45 किलो	320
67.	टूटी हुई लोहे की धई	01	5
68.	गेहूं के चार पैकेट	80 किलोग्राम	160
69.	पुराना इस्तेमाल किया हुआ सूप फटकने वाला टोकरी	01	1
70.	20 मिलीलीटर तेल की एक बोतल	01	1
71.	ढक्कन रहित 50 ग्राम हल्दी की लोहे की बोतल		2
72.	5 ग्राम मिर्च की प्लास्टिक की बोतल		1
73.	50 ग्राम नमक की प्लास्टिक की बोतल		1
74.	एक टूटी हुई कंघी और एक छोटा सा दर्पण		2
75.	लकड़ी की बेंच	01	1
76.	दीवार घड़ी	01	5
77.	पुरानी इस्तेमाल की हुई झाड़ू	01	2
78.	टूटा हुआ हाथ से बना पंखा	02	1
79.	5 लीटर की लाल रंग की प्लास्टिक की बोतल	02	2
80.	पुराना इस्तेमाल किया हुआ सीएफएल बल्ब	05	20
81.	टूटी हुई प्लास्टिक की कुर्सी	02	20
82.	लौह क्रशर	01	450

83.	डीजल इंजन	01	1250
84.	पुराना अल्फा टेम्पो मालवाहक वाहन	01	15,000
85.	पुरानी लोहे की छड़	01	750
86.	क्षतिग्रस्त लोहे की थ्रेशर मशीन	01	35
87	चारा मशीन	01	50
88.	गुड़ का पुराना इस्तेमाल किया हुआ बर्तन	01	50
89.	टूटी खिड़की	01	10

10. सामान की कुर्की के बाद, लड़के के पिता ने उसे छुड़ाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया। आदेश दिनांक 14.02.2022 के अनुसार, लोडर संख्या ए7एल1144062 आवेदक के पक्ष में रिहा कर दी गई, जबकि अन्य सामान को छुड़ाने का आवेदन अस्वीकार कर दिया गया।

11. इसके बाद, 02.05.2023 को, आवेदक ने माल की रिहाई के लिए एक और आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें यह कहा गया कि कुर्क किया गया कोई भी सामान सह-अभियुक्त अवधेश मौर्य द्वारा खरीदा नहीं गया था, और न ही ज़ब्त की जापन में उल्लिखित कोई भी वस्तु उसकी थी। इसलिए, घरेलू सामान विधि के उल्लंघन में कुर्क किया गया। हालांकि, उक्त आवेदन पर बाल नहीं दिए जाने के कारण 19.02.2024 को वापस ले लिया गया।

12. इसके बाद, आवेदक द्वारा एक तीसरा आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें इस बात को दोहराया गया कि इस मामले में सभी अभियुक्त, अर्थात्:

(i) शुभम मौर्य, (ii) अक्षय मौर्य, (iii) अजीत मौर्य, (iv) सूर्यनाथ मौर्य, (v) राजू मौर्य, (vi) सावित्री देवी, (vii) कंचन मौर्य और (viii) मालती मौर्य जमानत पर हैं, और पुलिस द्वारा जब्त की गई वस्तुएं सह-अभियुक्त अवधेश मौर्य की नहीं हैं। आवेदक ने आगे बताया कि वस्तुएं दिन-प्रतिदिन खराब होती जा रही हैं और पूरे परिवार को अपने दैनिक कामकाज चलाने में कठिनाई हो रही है। हालांकि, इस आवेदन को आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया।

13. यदि पुलिस ने उत्तरदायित्व से काम किया होता और पेशेवर तरीके से निष्पक्ष, स्वतंत्र और बिना किसी भेदभाव के विवेचना की होती, तो दोनों परिवारों को उस सदमे से न गुजरना पड़ता। पुलिस की लापरवाही और फैसलों के परिणामों पर विचार न करने के कारण उस लड़के का पूरा परिवार लगभग सड़कों पर भूखा मरने को मजबूर हो गया है। प्रथम दृष्टया पूरी विवेचना में गड़बड़ी दिखाई देती है, जिसके कारण विवेचना दल में समय-समय पर शामिल रहे विवेचना अधिकारियों को ही बेहतर पता हैं। विवेचना अधिकारी की हरकतें पुराने

औपनिवेशिक काल की पुलिसिंग शैली की याद दिलाती हैं, जो विधि के शासन और मानवीय मूल्यों की कीमत पर अपने आकाओं - भारत के शासकों, अंग्रेजों - के आदेशों पर चलाई जाती थी।

14. भारत में पुलिस व्यवस्था का संक्षिप्त ऐतिहासिक अवलोकन पुलिस सुधारों की आवश्यकता को समझने के लिए महत्वपूर्ण संदर्भ प्रदान कर सकता है। औपनिवेशिक ब्रिटिश भारत में पुलिस व्यवस्था मूल रूप से ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की पूर्ति के लिए बनाई गई थी। 1857 के विद्रोह के बाद, ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने भारत में एक केंद्रीकृत पुलिस बल की स्थापना की, जिसे भारतीय पुलिस अधिनियम, 1861 के माध्यम से औपचारिक रूप दिया गया।

15. दिए गए तथ्यों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि औपनिवेशिक विरासत पर आधारित भारतीय पुलिस व्यवस्था आज भी सत्तावादी और सामंती ढांचे के अंतर्गत काम कर रही है, जो सामुदायिक-आधारित पुलिसिंग मॉडल के सिद्धांतों के बिल्कुल विपरीत है। ऐसे मॉडल को लागू करने के लिए व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों और संसाधनों की आवश्यकता है ताकि अधिकारियों को सामुदायिक जुड़ाव, संघर्ष समाधान और समस्या-समाधान के लिए आवश्यक कौशल से लैस किया जा सके। इतिहास के इस काले अध्याय से मिले सबक हमें किसी भी लोकतांत्रिक समाज में जवाबदेही, नैतिक शासन और नागरिक स्वतंत्रता की सुरक्षा के महत्व की याद दिलाते हैं।

16. निष्पक्ष और प्रभावी विवेचना आपराधिक न्याय प्रणाली की रीढ़ है। विवेचना की निष्पक्षता को भंग करने वाला कोई भी कार्य गंभीर प्रक्रियात्मक परिणामों को जन्म दे सकता है, जिससे न्याय में बाधा उत्पन्न हो सकती है और विधि प्रवर्तन में जनता का विश्वास कम हो सकता है। त्रुटिपूर्ण विवेचना के परिणामस्वरूप गलत दोषसिद्धि या गलत दोषमुक्त होना हो सकता है, दोनों ही न्याय का घोर उल्लंघन हैं। जैसा कि वर्तमान मामले में हुआ, सच्चाई का पता लगाए बिना - चाहे यह भागकर शादी करने का मामला हो या सक्रिय रूप से साथ रहने का - पुलिस ने उस लड़के से तथ्यों की पुष्टि किए बिना परिवार के आठ सदस्यों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल कर दिया, जिस पर एक युवती के भागकर शादी करने का आरोप लगाया गया था। इसके अतिरिक्त, पुलिस ने संपत्ति के स्वामित्व की पुष्टि किए बिना परिवार के घर में उपलब्ध सभी चल और अचल संपत्तियों को जब्त कर लिया।

17. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 (समतुल्य धारा 84, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023) का उद्देश्य फरार व्यक्ति को दंडित करना नहीं, बल्कि उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करना है। इसके विपरीत, भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174-क (समतुल्य धारा 209, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023) उस व्यक्ति के लिए दंड निर्धारित करती है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 की उपधारा (4) के अंतर्गत जारी उद्घोषणा के अनुसार निर्धारित स्थान और समय पर उपस्थित नहीं होता है। यदि उसे उद्घोषित अपराधी घोषित किया जाता है, तो ऐसे व्यक्ति को सात वर्ष तक के कारावास और जुर्माने का सामना करना पड़ सकता है।

18. बीएनएसएस, 2023 की धारा 84 और 85 का सामंजस्यपूर्ण अध्ययन यह दर्शाता है कि यदि किसी न्यायालय के पास यह “विश्वास करने का कारण” हो (चाहे साक्ष्य के आधार पर हो या अन्यथा) कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध वारंट जारी किया गया है वह फरार हो गया है या निष्पादन से बचने के लिए जानबूझकर छिप रहा है, तो न्यायालय लिखित घोषणा प्रकाशित कर सकता है। इस घोषणा के अनुसार, संबंधित व्यक्ति को प्रकाशन की तिथि से कम से कम 30 दिनों के भीतर एक निर्दिष्ट स्थान और समय पर उपस्थित होना होगा।

19. इसके अतिरिक्त, बीएनएसएस की धारा 84 के अंतर्गत उद्घोषणा जारी करने वाला न्यायालय, लिखित रूप में “दर्ज किए जाने वाले कारणों” के आधार पर, उद्घोषित व्यक्ति की किसी भी चल या अचल संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकता है। ऐसा आदेश न्यायालय द्वारा शपथपत्र या अन्य माध्यमों से संतुष्ट होने के बाद पारित किया जा सकता है कि व्यक्ति:

(क) अपनी पूरी या आंशिक संपत्ति का निस्तारण करने वाला है, या

(ख) अपनी पूरी या आंशिक संपत्ति को न्यायालय के स्थानीय क्षेत्राधिकार से बाहर ले जाने वाला है। ऐसे मामलों में, न्यायालय उद्घोषणा जारी करते समय संपत्ति की कुर्की का आदेश साथ ही दे सकता है, बशर्ते कि वह बीएनएसएस, 2023 की धारा 85(2), 85(3)(क)-(घ), 85(4)(क)-(घ), 85(5) और 85(6) में उल्लिखित प्रक्रिया का पालन करे और आवश्यकताओं को पूरा करे।

20. संदर्भ के लिए, ब्लैक लॉ डिक्शनरी में “संबंध” की परिभाषा इस प्रकार है: “जो किसी व्यक्ति या संस्था से संबंधित हो, उससे जुड़ा हो, या उसकी वैध संपत्ति हो”। इसी प्रकार, स्ट्राउड ज्यूडिशियल डिक्शनरी में “संबंध” की परिभाषा इस प्रकार है: “वह जो किसी व्यक्ति या संस्था की वैध संपत्ति हो या स्वामित्व, कब्ज़ा या जुड़ाव के माध्यम से विधिक रूप से उससे जुड़ी हो”। स्वामित्व पूर्ण या सीमित हो सकता है, जो कानूनों, अनुबंधों, या किसी अन्य बाध्यकारी मिसाल या प्रथागत व्यवस्था द्वारा प्रदत्त विधिक दृष्टिकोण की प्रकृति पर निर्भर करता है।

21. बिहार राज्य एवं अन्य बनाम जे.ए.सी. सल्दान्हा एवं अन्य, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि पूछताछ, विवेचना एवं विचारण में अंतर करना आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक का विधिक उद्देश्य अलग-अलग होता है। “पूछताछ” से तात्पर्य मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा बीएनएसएस, 2023 के अंतर्गत किए गए विचारण के अतिरिक्त किसी भी अन्य पूछताछ से है। मजिस्ट्रेट या न्यायालय द्वारा की गई पूछताछ प्रक्रियात्मक निष्पक्षता सुनिश्चित करती है और व्यक्तियों को अनुचित अभियोजन से बचाती है। इसमें न्यायाधीश द्वारा तथ्यों और साक्ष्यों का आकलन करने और यह निर्धारित करने के लिए सचेत और विवेकपूर्ण निर्णय लिया जाता है कि क्या विधिक कार्रवाई आवश्यक है। पूछताछ का प्राथमिक उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है, जिसके लिए विचारण चलाया जा सके। विचारण में अपराध

या निर्दोषता का औपचारिक निर्णय शामिल होता है, जिसमें अभियोजन पक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करता है और अभियुक्त को बचाव का अवसर दिया जाता है।

22. इस न्यायालय ने पाया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 83 के अंतर्गत कुर्की आदेशों को लागू करने के लिए पुलिस द्वारा, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, अपनाई गई प्रक्रिया बर्बर और विधिवत नहीं है। यह देखा गया है कि पुलिस, विधिहीनता से कार्य करते हुए, बड़ी संख्या में अधिकारियों के साथ जबरन गांवों या आवासीय क्षेत्रों में प्रवेश करती है, अक्सर दुर्यवहार करती है और अंधाधुंध तोड़फोड़ करती है। वे मिट्टी या ईंट से बने ढांचों को ध्वस्त कर देते हैं, भूसे या मिट्टी से बनी झोपड़ियों को नष्ट कर देते हैं, और स्वामित्व या खरीद विवरण की पुष्टि किए बिना सभी चल और अचल घरेलू सामानों को जब्त कर लेते हैं।

23. यदि कोई भगोड़ा संयुक्त परिवार में रहता है, तो बिना विधिक स्वामित्व का पता लगाए, पूरे घर की संपत्ति अंधाधुंध जब्त कर ली जाती है। इस प्रकार की कार्रवाई निर्दयतापूर्वक, विधिक प्रक्रियाओं का घोर उल्लंघन करते हुए और संपत्ति के अधिकारों तथा मूलभूत विधिक सुरक्षा उपायों का हनन करते हुए की जाती है।

24. वर्तमान मामले में, न तो न्यायालय धारा 83 सीआर.पी.सी. की आवश्यकताओं से संतुष्ट था, और न ही पुलिस ने जब्त किए गए माल के स्वामित्व का सत्यापन किया। न्यायालयों और पुलिस द्वारा इस प्रकार के उल्लंघन आम बात हो गई है।

25. आपराधिक न्यायालयों का यह मूलभूत कर्तव्य है कि वे यह सुनिश्चित करें कि पुलिस निष्पक्ष, तटस्थ और गहन विवेचना करे। न्यायालय को मामले का संज्ञान लेने से पहले विवेचना के दौरान अभियुक्त के विरुद्ध एकत्रित साक्ष्यों से प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए। वर्तमान मामले में, जब्त की गई वस्तुओं की सूची की जांच करने पर यह स्पष्ट है कि पुलिस का आचरण उनके कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के प्रति घोर अवहेलना को दर्शाता है। न्यायालय यह कहने के लिए विवश है कि उद्घोषणा आदेश प्राप्त करने और बाद में उसे लागू करने के लिए उत्तरदायी अधिकारी ने अपने पद के प्रति घोर अनादर और बुनियादी मानवीय मूल्यों की पूर्ण अवहेलना प्रदर्शित की है। ऐसे कृत्य न मात्र न्यायिक प्रक्रिया की अखंडता को कमजोर करते हैं बल्कि विधि प्रवर्तन एजेंसियों में जनता के विश्वास को भी ठेस पहुंचाते हैं।

26. साथ ही, न्यायालय अभियुक्तों के विरुद्ध प्रस्तुत की गई सामग्री का मूल्यांकन करने में अपने निष्पक्ष न्यायिक विवेक का प्रयोग करने में भी विफल रही, ये सभी अभियुक्त अवधेश मौर्य के परिवार के सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने इस महत्वपूर्ण तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि जब्त की गई संपत्ति कथित फरार व्यक्ति की नहीं थी। पूरे परिवार पर मुकदमा चलाया जा रहा है, यह निर्धारित किए बिना कि क्या बच्ची स्वेच्छा से घर छोड़कर गई थी या उसी गांव के एक युवक अवधेश मौर्य द्वारा बहकाई गई थी। विडंबना यह है कि परिवार के आठ सदस्यों को मात्र शिकायतकर्ता और उसकी पत्नी के अपुष्ट दावों के आधार पर आपराधिक

मुकदमे का सामना करना पड़ रहा है, एक ऐसा दावा जो लड़के और बच्ची की बरामदगी के बाद गलत साबित हो चुका है।

27. विचारण न्यायालयों पर संवैधानिक न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के प्रवर्तन से संबंधित कार्रवाइयों की निगरानी करने का वैधानिक दायित्व है। न्यायिक प्रणाली में न्याय की पहली कड़ी के रूप में, मजिस्ट्रेट और जिला एवं सत्र न्यायालय न्याय में जनता के विश्वास की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब न्यायाधीश स्वतंत्र न्यायिक विवेक का प्रयोग करने में विफल रहते हैं, या जब पुलिस अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करती है, तो इससे विधि के शासन को अपूरणीय क्षति पहुँचती है और न्याय प्रशासन में जनता का विश्वास कमजोर होता है। यह न्यायालय इस मामले में न्यायाधीश के दृष्टिकोण और पुलिस के आचरण दोनों की कड़ी निंदा करता है, क्योंकि इस प्रकार की चूक संवैधानिक न्यायालयों के लिए गंभीर चिंता का विषय है।

28. इस न्यायालय ने विचारण न्यायालयों के न्यायाधीशों को जागरूक करने की आवश्यकता पर निरंतर बल दिया है, उनसे आग्रह किया है कि वे तीक्ष्ण विधिक समझ विकसित करें, अपने पद के प्रति गहरी उत्तरदायित्व की भावना रखें और लगन एवं समर्पण के साथ अपने विधिक ज्ञान को बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध हों। न्यायाधीशों के लिए यह अनिवार्य है कि वे न्याय की बदलती मांगों और गतिशील विधिक प्रणाली की अपेक्षाओं के अनुरूप प्रगतिशील और सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाएं। ऐसा करके वे न्यायपालिका में निष्पक्षता, दक्षता और जनता के विश्वास को सुनिश्चित कर सकते हैं, जो एक सशक्त लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला है।

29. यह रेखांकित करना अत्यंत आवश्यक है कि न्यायाधीशों की सामूहिक अंतरात्मा उनके निर्णयों के मार्गदर्शक के रूप में कार्य करे। न्यायाधीशों को अपने न्यायिक विवेक का पूर्ण उपयोग करते हुए, अपने कर्तव्यों के निर्वहन में अटूट उत्तरदायित्व और लगन का प्रदर्शन करना चाहिए। खेदजनक रूप से, यह देखा गया है कि कुछ न्यायाधीश “अपवाद के नियम” को एक व्यापक दृष्टिकोण के रूप में लागू करते हैं, अक्सर आत्मविश्वास की कमी, अक्षमता या विधि की सतही समझ को छिपाने के लिए। वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय वैधानिक प्रावधानों और विधिक आवश्यकताओं का पालन करने में विफल रही, विशेष रूप से सह-अभियुक्त को घोषित अपराधी घोषित करने, कुर्की आदेश जारी करने और माल की रिहाई के आवेदन को अस्वीकार करने में। इस प्रकार की चूक न मात्र न्यायिक प्रक्रिया की अखंडता को कमजोर करती है, बल्कि न्याय प्रशासन में जनता के विश्वास को भी कम करती है। इसलिए, न्यायाधीशों के लिए एक प्रगतिशील और सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाना महत्वपूर्ण है, यह सुनिश्चित करते हुए कि उनके निर्णय निष्पक्षता, वैधता और जवाबदेही की गहरी भावना पर आधारित हों।

30. न्यायिक आदेश जारी करने और उन्हें लागू करने के दौरान विचारण न्यायालयों और पुलिस दोनों के लिए न्यूनतम विधिक और प्रक्रियात्मक मानकों का पालन करना अत्यंत आवश्यक है। ऐसे आदेश निष्पक्ष, विधिवत और पारदर्शी तरीके से पारित और लागू किए जाने चाहिए, जिससे संवैधानिक अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित हो और न्यायिक प्रणाली में जनता का विश्वास बना रहे। यह विशेष रूप से उन मामलों में महत्वपूर्ण है जिनमें (i)

फरार व्यक्तियों के लिए घोषणा जारी करना, (ii) संपत्ति की कुर्की, (iii) घोषित अपराधियों की संपत्ति की पहचान और ज़ब्ती, और (iv) ऐसी कुर्की से संबंधित दावों और आपतियों का निस्तारण शामिल है। विधिक सिद्धांतों और प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का कड़ाई से पालन सुनिश्चित करके, न्यायपालिका और विधि प्रवर्तन एजेंसियां विधि के शासन को कायम रख सकती हैं, व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा कर सकती हैं और न्याय प्रणाली में जनता का विश्वास बहाल कर सकती हैं।

31. उपरोक्त विचार-विमर्श के आधार पर, निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाते हैं:

न्यायालयों के लिए

31.1 किसी व्यक्ति को निर्दिष्ट स्थान और समय पर उपस्थित होने के लिए लिखित घोषणा जारी करते समय, ऐसी घोषणा के प्रकाशन की तिथि से कम से कम 30 दिनों के भीतर, न्यायालय को अपने आदेश में यह *“विश्वास करने के कारण”* दर्ज करने होंगे कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध वारंट जारी किया गया है वह फरार हो गया है या वारंट के निष्पादन से बचने के लिए छिपा हुआ है। आदेश में बीएनएसएस की धारा 84 की आवश्यकताओं को स्पष्ट रूप से पूरा किया जाना चाहिए।

31.2 चल, अचल या दोनों प्रकार की संपत्ति की कुर्की का आदेश जारी करने से पहले, न्यायालय को लिखित में कारण बताते हुए यह पुष्टि करनी होगी कि कुर्क की गई संपत्ति घोषित व्यक्ति की है। आदेश में बीएनएसएस की धारा 85 की आवश्यकताओं का भी पालन होना चाहिए और न्यायालय द्वारा न्यायिक विवेक के स्वतंत्र प्रयोग को दर्शाना चाहिए, जिसमें स्पष्ट रूप से यह उल्लेख हो कि कुर्क की गई संपत्ति घोषित व्यक्ति के स्वामित्व में है।

31.3 यदि घोषित व्यक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, संपत्ति में अपना हित जताते हुए और यह दावा करते हुए कि संपत्ति कुर्की के योग्य नहीं है, बीएनएसएस की धारा 85 के अंतर्गत संपत्ति की कुर्की के संबंध में कोई दावा या आवेदन प्रस्तुत किया जाता है, या कोई आपत्ति उठाई जाती है, तो न्यायालय दावे या आवेदन के अंतिम निस्तारण से पहले उचित जांच करेगा।

31.4 स्पष्टता के लिए, वर्तमान संदर्भ में, “घोषित व्यक्ति से संबंधित कोई भी संपत्ति, चल या अचल, या दोनों” शब्द का तात्पर्य उस व्यक्ति द्वारा संपत्ति के वैध स्वामित्व, कब्जे या नियंत्रण से है जिसके विरुद्ध न्यायालय द्वारा एक लिखित घोषणा जारी की गई है, जिसमें उसे ऐसी घोषणा के प्रकाशन की तिथि से कम से कम 30 दिनों के भीतर एक निर्दिष्ट स्थान और समय पर उपस्थित होने के लिए कहा गया है।

पुलिस के लिए

31.5 विवेचना अधिकारी को बीएनएसएस की धारा 85 के अंतर्गत आवेदन में फरार व्यक्ति की संपत्ति का विवरण स्पष्ट रूप से देना होगा। अधिकारी को कुर्क की गई संपत्ति के स्वामित्व, कब्जे या उससे संबंधित जानकारी को ज़बती ज़ापन में सटीक और स्पष्ट रूप से दर्ज करना होगा। यदि स्वामित्व का पता लगाना संभव न हो, तो घोषित अपराधी को संदेह का लाभ दिया जाएगा, विशेष रूप से साझा घरों या सामान्य घरेलू वस्तुओं से जुड़े मामलों में।

31.6 न्यायिक आदेशों का निष्पादन अत्यधिक, दंडात्मक या विधि द्वारा स्थापित विधिक दायरे और प्रक्रिया से परे नहीं होना चाहिए। विधि प्रवर्तन अधिकारियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि कुर्की आदेशों का प्रवर्तन निष्पक्ष, आनुपातिक और विधिक रूप से अनुपालन करते हुए किया जाए, जिससे निर्दोष व्यक्तियों को अनावश्यक कठिनाई न हो।

32. उपरोक्त वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में यह स्पष्ट है कि मुकदमा अपराध संख्या 212/2021 अन्तर्गत धारा 363, 366, 368 आई.पी.सी. सपठित धारा 16/17 पोक्सो अधिनियम के अंतर्गत मामला थाना चौबेपुर, जिला वाराणसी में दर्ज मामले आवेदक और अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध विधिक कार्यवाही जारी रखना निरर्थक होगा। यह देखते हुए कि दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम है, और यह ध्यान में रखते हुए कि अभियुक्त अवधेश मौर्य और उसकी पत्नी कथित घटना के बाद से साथ रह रहे हैं - उनका विवाह संपन्न हुआ है और हाल ही में उनका एक बच्चा भी हुआ है - न्याय के हित में यही होगा कि उनके विरुद्ध कार्यवाही रद्द कर दी जाए। तदनुसार, विधि के दुरुपयोग को रोकने और निष्पक्षता और न्याय के सिद्धांतों को बनाए रखने के लिए, आवेदक और अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध कार्यवाही रद्द की जाती है।

33. आदेश दिनांक 11.11.2024 का अनुपालन किया जा चुका है और आवेदक को माल प्राप्त हो चुका है, इसलिए माल की रिहाई के लिए किसी नए आदेश की आवश्यकता नहीं है। तदनुसार, उपरोक्त शर्तों के अनुसार वर्तमान आवेदन की अनुमति दी जाती है।

34. **रजिस्ट्रार (अनुपालन)** को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की एक प्रति निम्नलिखित पते पर भेजें:

- (i) पुलिस महानिदेशक (डी.जी.पी.), उत्तर प्रदेश, जो इस आदेश को सभी जिलों के पुलिस प्रभारी को भेजेंगे। प्रत्येक जिले के पुलिस प्रभारी यह सुनिश्चित करेंगे कि इस आदेश की एक प्रति सभी थाना अधिकारियों (एस.एच.ओ.) को अनुपालन, संदर्भ और अभिलेख के लिए वितरित की जाए।
- (ii) डी.जी.पी., उत्तर प्रदेश इस आदेश के अनुसार सभी संबंधित अधिकारियों/एस.एच.ओ. को अधिसूचना/शासनादेश (जी.ओ.) जारी करेंगे और इसके पूर्ण अनुपालन को सुनिश्चित करेंगे।
- (iii) इस न्यायालय के हस्तक्षेप तक इस मामले की विवेचना में शामिल सभी पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध विभागीय जांच शुरू की जाएगी। यह जांच समयबद्ध तरीके से पूरी की जाएगी।
- (iv) सभी जिला न्यायाधीश अपने-अपने क्षेत्राधिकारों के सभी न्यायाधीशों के साथ तत्काल बैठक बुलाकर इस आदेश का अक्षरशः अनुपालन सुनिश्चित करेंगे। बैठक का विवरण भविष्य के संदर्भ और अभिलेख के लिए दर्ज और संरक्षित किया जाएगा।

35. विद्वान जिला न्यायाधीशों और पुलिस महानिदेशक (डी.जी.पी.), उत्तर प्रदेश को इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से चार सप्ताह के भीतर अपनी-अपनी अनुपालन रिपोर्ट दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है। ये रिपोर्टें न्यायालय के अभिलेख हेतु इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से प्रस्तुत की जाएंगी।

(2025) 3 ILRA 864

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.02.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश पाठक

आपराधिक अपील संख्या 2348 / 2021

अकरम एवं अन्य

.....अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

....विरोधी पक्ष

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अमरेंद्र प्रताप सिंह, श्री देश रतन चौधरी, श्री हरिश्चंद्र यादव, श्री ईश्वर चंद्र त्यागी, श्री मासूम आलम, श्री प्रवीण कुमार सिंह, श्री सैयद इमरान इब्राहिम, श्री सैयद शाहनवाज शाह

विरोधी पक्ष के अधिवक्ता:

जी.ए.

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 313 और 342 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34, 201, 302, 364, 404 और 411 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 27 - आपराधिक अपील - दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध - गुमशुदगी और संदिग्ध हत्या का मामला - एफआईआर - अपहरण और हत्या का अपराध - आरोप था कि अभियुक्त ने मृतक की हत्या इसलिए की क्योंकि वह उसी लड़की से प्यार करता था - विवेचना के दौरान, अभियुक्त के बयानों के आधार पर एक मोबाइल फोन, हथियार, कंकाल के अवशेष और कपड़े बरामद किए गए - आरोप पत्र - विचारण - दोषसिद्धि और सजा - अपील - न्यायालय ने पाया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत बरामदगी अवैध थी क्योंकि स्वतंत्र साक्षियों और मेमो का अभाव था, चश्मदीनों की गवाही में विरोधाभास ने "अंतिम बार देखा गया" सिद्धांत को कमजोर कर दिया, चिकित्सकीय सलाह के बावजूद डीएनए परीक्षण नहीं किया गया, और न ही साक्ष्यों के माध्यम से हेतुक स्थापित किया गया और न ही धारा 313 सीआर.पी.सी. के तहत अभियुक्त से पूछताछ की गई - यह माना गया कि प्रक्रियात्मक और साक्ष्य संबंधी गंभीर चूक हुई हैं, और अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपराध साबित करने में विफल रहा है - इसलिए, अपील स्वीकार की जाती है - अपीलकर्ताओं को दोषमुक्त करने और अवर न्यायालय के फैसले को रद्द करने के निर्देश जारी किए जाते हैं। (पैरा - 12, 14, 15)

आपराधिक अपील स्वीकार की गई। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2023) 11 एससीसी 255 में प्रतिवेदित,
2. दिगम्बर वैष्णव एवं अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य 2019 4 एससीसी 522,
3. दरियाओ सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1991 2 एससीसी 588 में प्रतिवेदित,
4. शरद बिरधीचंद सरदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116 में प्रतिवेदित,

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

&

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश पाठक द्वारा प्रदत्त)

1. 6.11.2011 को सलमान के लापता होने पर, एक गुमशुदगी/लापता रिपोर्ट उसके पिता शमीम पुत्र बुंदू हसन द्वारा दर्ज कराई गई थी। गुमशुदगी रिपोर्ट में बताया गया है कि शमीम के छोटे बेटे ने अपने टेलीफोन नंबर 8126580512 से लापता बेटे शमीम के फोन नंबर 8126573540 पर कॉल किया था और लापता बेटे सलमान ने फोन करने वाले बेटे को बताया था कि वह सिदकी, सहारनपुर में है और आधे घंटे में पहुँच जाएगा। हालांकि, जब सलमान घर नहीं पहुँचा, तो 07.11.2011 को गुमशुदगी रिपोर्ट दर्ज कराई गई। इसे 'प्रदर्श क-2' के रूप में प्रस्तुत किया गया। हालांकि, जब खोजबीन की गई और सलमान नहीं मिला, तो 15.11.2011 को लापता बेटे के पिता द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई। स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रथम सूचनादाता का पुत्र 06.11.2011 की सुबह अपने टेम्पो संख्या यूपी 11 टी 5974 से घर से निकला था और यात्रियों को ले जाने के उद्देश्य से सहारनपुर गया था। आगे यह भी कहा गया है कि 06.11.2011 को सुबह लगभग 11 बजे दर्ज कराई गई गुमशुदगी की रिपोर्ट के अनुसार, लापता पुत्र सलमान ने बताया था कि वह सहारनपुर के सिदकी में है और लगभग आधे घंटे में वापस आ जाएगा। लेकिन जब वह उस समय तक वापस नहीं आया, तो प्रथम सूचनादाता ने अपने रिश्तेदारों और परिचितों के साथ मिलकर उसकी तलाश शुरू की। प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही यह उल्लेख किया गया है कि प्रथम सूचनादाता को संदेह है कि कुछ बदमाशों ने उसके पुत्र सलमान का अपहरण उसकी हत्या करने के उद्देश्य से किया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट आई.पी.सी. की धारा 364 के अंतर्गत दर्ज की गई थी, जिससे मुकदमा अपराध संख्या 363/2011 कायम हुआ। प्रथम सूचनादाता का लेखक मोहम्मद मेहताब था। इसके बाद, 27.11.2011 को विवेचना शुरू हुई। अभियुक्तों में से एक अकरम को सुबह लगभग 11:30 बजे गिरफ्तार किया गया और उसके पास से एक मोबाइल फोन भी बरामद हुआ। हालांकि, गिरफ्तारी के समय, अभियुक्त अकरम ने बताया कि उसने 6.11.2011 को अपने जीजा शमीम की मदद से प्रथम सूचनादाता सलमान के बेटे का अपहरण किया था और उन्होंने मिलकर शव को गांव कोरवाल आलमपुर, पुलिस स्टेशन-भाबरेड़ा, जिला- हरिद्वार, उत्तराखंड में एक नहर के किनारे खेत में छिपा दिया था और मोबाइल फोन अभियुक्त ने अपने पास रख लिया था। इसके बाद, 27.11.2011 को अकरम की गिरफ्तारी के बाद, एक गिरफ्तारी जापन

तैयार किया गया और इसे 'प्रदर्श क-5' के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसके बाद, 02.12.2011 को अभियुक्त शमीम को भी गिरफ्तार कर लिया गया और उसके पास से एक मोबाइल फोन बरामद किया गया जिसे पुलिस ने अपने पास रख लिया और बरामदगी जापन 'प्रदर्श क-9' के रूप में तैयार किया गया। अभियुक्त अकरम और शमीम के संबंध में बरामदगी जापन तैयार करते समय क्षेत्र का कोई स्वतंत्र साक्षी उपस्थित नहीं था।

2. गिरफ्तार व्यक्तियों - अकरम और शमीम द्वारा दी गई सूचना के आधार पर, जिस हथियार से कथित हत्या की गई थी, अर्थात् लगभग दो बालिशत (लगभग 18 इंच) की लोहे की छड़ भी बरामद की गई। यह बरामदगी भी किसी स्वतंत्र साक्षी की उपस्थिति के बिना की गई थी। इसके बाद, 15.11.2011 को टेम्पो संख्या यूपी 11 टी 5974 भी बरामद किया गया और इससे संबंधित बरामदगी जापन 'प्रदर्श क-18' के रूप में तैयार किया गया। इसके बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस ने शव की तलाशी ली और काफी समय बाद, 27.11.2011 को, शव बरामद होने के बाद, पंचनामा रिपोर्ट तैयार की गई। शव गन्ने के खेत में मिला था। यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि पुलिस द्वारा बरामद शव हड्डियों का एक ढेर मात्र था। यह मात्र एक कंकाल था। इस पर मांस नहीं पाया गया और पंचनामा रिपोर्ट, जो 27.11.2011 को अब्दुल सत्तार, रियासत, अब्दुल रहमान, शमीम और मोहम्मद शाहजाद की उपस्थिति में तैयार की गई थी। जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि शव ऐसी अवस्था में मिला था कि उसकी पहचान करना संभव नहीं था और मात्र हड्डियाँ ही बिखरी हुई थीं। इसके बाद, 28.11.2011 को दोपहर 12 बजे शव के बचे हुए हिस्से का पोस्टमार्टम किया गया और पोस्टमार्टम रिपोर्ट में, मृत्यु के कारण वाले कॉलम में स्पष्ट रूप से लिखा गया कि इसका पता नहीं लगाया जा सका और डॉक्टर ने शव की पहचान और मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए डीएनए परीक्षण कराने की इच्छा व्यक्त की। विवेचना पूरी होने पर, पुलिस ने आई.पी.सी. की धारा 364/302/201/404/411 के अंतर्गत न्यायालय में आरोप-पत्र प्रस्तुत किया। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अकरम को 27.11.2011 को, शमीम को 2/3.12.2011 को और अब्दुल सत्तार को 13.12.2011 को गिरफ्तार किया गया था। इसके बाद, न्यायालय ने 05.02.2013 को अकरम, शमीम और अब्दुल सत्तार नामक तीन अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप विरचित किए। जब उन्होंने आरोपों से अस्वीकार किया और विचारण की मांग की, तो विचारण प्रारंभ हुआ।

3. अभियोजन पक्ष की ओर से, अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के लिए नौ साक्षी प्रस्तुत हुए। पीडब्लू 1 नरेंद्र कुमार एक कांस्टेबल थे, जिन्होंने अपने मुख्य बयान में कहा कि बयान दर्ज करने से दो साल पहले उनकी तैनाती सहारनपुर में थी और उन्होंने ही गुमशुदगी रिपोर्ट दर्ज कराई थी। उन्होंने गुमशुदगी की पुष्टि भी की। पीडब्लू 2 शमीम (मृतक के पिता) ने अपने मुख्य बयान में क्रमबद्ध रूप से बताया कि 06.11.2011 को उनका बेटा किस तरह लापता हुआ था। इसके बाद, उन्होंने बताया कि उन्होंने पहले गुमशुदगी की रिपोर्ट कैसे दर्ज कराई और फिर रिश्तेदारों और परिचितों ने लापता बेटे सलमान को खोजने की कोशिश कैसे की। इसके बाद उन्होंने बताया कि 21.11.2011 को गांव में उनकी मुलाकात शाहजाद और लियाकत से हुई थी, जिन्होंने उन्हें बताया कि उनका बेटा सलमान 6.11.2011 की सुबह करीब 8 बजे शमीम और अकरम को सहारनपुर में अपने टेम्पो में ले जा रहा था। इसके बाद, साक्षी-2 ने बताया कि 27.11.2011 को अभियुक्त अकरम साक्षी-2 और अन्य पुलिसकर्मियों को गन्ने के खेत में ले गया, जहां खून और मिट्टी से सनी नीली पैंट

के साथ हड़्डियां मिलीं। उन्होंने यह भी बताया कि चेक प्रिंट वाली एक कमीज भी मिली थी। बनियान का भी यही हाल था। उन्होंने बताया कि पुलिस ने उन सभी कपड़ों को सील कर दिया और उसके बाद शव को पोस्टमार्टम के लिए ले जाया गया। मुख्य बयान में उसने बताया था कि अकरम द्वारा उसके बेटे की हत्या का हेतुक यह था कि वह बेनजीर नाम की एक लड़की से प्यार करता था और अकरम, जो अभियुक्त है, भी उसी लड़की को पसंद करता था और उससे जबरदस्ती शादी करना चाहता था। प्रति परीक्षा में उसने बताया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में उसने कहा था कि बेटे के लापता होने के बाद उसकी पहली मुलाकात शाहजाद और लियाकत से 21.11.2011 को हुई थी, लेकिन मुख्य परीक्षा में उसने बताया कि जब वह अन्य रिश्तेदारों और परिचितों के साथ अपने बेटे की तलाश कर रहा था, तब शाहजाद भी उसकी तलाश कर रहा था।

4. पीडब्लू 3 शाहजाद है, जिसने बताया है कि उसने मृतक को अकरम के साथ जाते देखा था और उसके बाद वह खुद लियाकत के साथ दिल्ली चला गया था। उसने अपने मुख्य बयान में कहा है कि 20.11.2011 को दिल्ली से लौटने के बाद उसने मृतक के पिता शमीम को बताया था कि उसने सलमान को उसी दिन देखा था जिस दिन वह लापता हुआ था। प्रति परीक्षा के दौरान जब उससे पूछा गया कि वह दिल्ली क्यों गया था, तो उसने बताया कि वह अपने दोस्त के साथ घूमने गया था। जब उससे पूछा गया कि वह किस ट्रेन से गया था, तो उसने कहा कि उसे ट्रेन का नाम नहीं पता। जब उससे पूछा गया कि वह कहाँ रुका था, तो उसने कहा कि उसे उस मोहल्ले का नाम नहीं पता जहाँ उसका दोस्त उसे ले गया था। इसके बाद उसने बताया कि वह मात्र दिल्ली में ही रुका था और कहीं घूमने नहीं गया था। फिर उसने बताया कि वह लियाकत के साथ दिल्ली से वापस आया था। उन्होंने यह भी कहा है कि दिल्ली से आने पर पुलिस ने धारा 161 सीआर.पी.सी. के अंतर्गत उनका बयान दर्ज किया था।

5. पीडब्लू 4 लियाकत वही साक्षी है जिसने मृतक को अभियुक्त के साथ जाते देखा था। उसने बताया है कि पीडब्लू 3 शाहजाद उसका दोस्त था और वह काम की तलाश में उसके साथ दिल्ली आया था।

6. पीडब्लू 5 उप-निरीक्षक कुलवीर सिंह तोमर हैं, जो विवेचना अधिकारी थे। उन्होंने बताया है कि उन्होंने अभियुक्तों को कैसे गिरफ्तार किया और कैसे उन्होंने अपराध स्वीकार किया। उन्होंने यह भी बताया है कि अभियुक्तों ने शव बरामद करने में पुलिस की मदद की और शव के अतिरिक्त मृतक के कपड़े बरामद करने में भी पुलिस की सहायता की। पेपर बुक के पृष्ठ संख्या 63 पर उन्होंने बताया है कि शव और कपड़ों की बरामदगी के बाद उन्होंने एक "शिनाख्त मेमो" तैयार किया था। प्रति परीक्षा के दौरान, जब इस साक्षी से पूछा गया कि शव के पास मिली नीली पैंट और भूरी कमीज को मृतक के लापता होने के दिन पहने हुए कपड़ों से कैसे जोड़ा जा रहा है, तो उन्होंने कहा कि गुमशुदगी की रिपोर्ट में ही कपड़ों का रंग लिखा हुआ था। हालांकि, जब उनसे पूछा गया कि गुमशुदगी की रिपोर्ट में यह जानकारी किसकी लिखावट में दी गई थी, तो उन्होंने कहा कि यह कहना गलत है कि कपड़ों के रंग का जिक्र बाद में जोड़ा गया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह भी कहा है कि शाहजाद का बयान पहली बार 21.11.2011 को और लियाकत का बयान 24.11.2011 को धारा 161 सीआर.पी.सी. के अंतर्गत दर्ज किया गया था।

7. पी.डब्लू. 6 डॉ. एस.एन. सिंह हैं, जिन्होंने पोस्टमार्टम किया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक की सही पहचान के लिए हड्डियों का डीएनए परीक्षण आवश्यक था और मृत्यु का कारण भी डीएनए परीक्षण से ही पता चल सकता था। उन्होंने यह भी बताया कि उन्होंने डीएनए परीक्षण के लिए हड्डियां पुलिस को सौंप दी थीं।

8. पी.डब्लू. 7 अजय कुमार चौहान हैं, जो दूसरे विवेचना अधिकारी थे। उन्होंने एफआईआर के पूर्व-दिनांकित या पूर्व-समय पर दर्ज होने से अस्वीकार किया है। हालांकि, उन्होंने अभियोग दैनिकी में कई बार अतिलेखन होने की बात कही है। उन्होंने यह भी बताया है कि डीएनए परीक्षण के लिए कोई नमूना नहीं भेजा गया था और न ही किसी विशेषज्ञ की कोई रिपोर्ट दी गई थी।

9. पी.डब्लू. 8 अशोक कुमार त्यागी हैं, जो पुलिस में सेवानिवृत्त हेड कांस्टेबल थे और उन्होंने यह साबित किया कि चिक कांस्टेबल अनिल कुमार द्वारा तैयार किया गया था। उन्होंने बताया कि अनिल कुमार जीवित थे, लेकिन उस समय वे कहाँ थे, यह ज्ञात नहीं है।

10. पी.डब्लू. 9 भगवान महार हैं, जिन्होंने बताया कि अभियुक्तों के बताए जाने पर मृतक का शव (कंकाल) मिला था। उन्होंने कपड़ों की बरामदगी के बारे में भी बताया है।

11. इसके बाद, तीनों अभियुक्तों के बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत दर्ज किए गए और उन्होंने अपराध करने से इन्कार किया। इसके बाद, जब विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या 2, सहारनपुर की न्यायालय ने सत्र परीक्षण संख्या 434/2012 में अपने फैसले और आदेश दिनांक 25.02.2021 द्वारा दो अभियुक्तों अकरम और शमीम को धारा 364, 302, 201, 404 सपठित धारा 34 आई.पी.सी. के अंतर्गत दोषी ठहराया और उन्हें सजा सुनाई, तो यह अपील दायर की गई।

12. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी:

(i) साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत मोबाइल फोन और उस हथियार की बरामदगी, जिससे कथित हत्या हुई थी, विधिवत रूप से अवैध थी। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **सुब्रमण्य बनाम कर्नाटक राज्य (2023) 11 एससीसी 255** में प्रतिवेदित के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एक फैसले का हवाला देते हुए यह तर्क दिया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत, उपर्युक्त फैसले के अनुसार, कथित बरामदगी से पहले, एक जापन तैयार किया जाना था जिसमें यह उल्लेख हो कि क्या बरामद किया जाना है। यह जापन अनिवार्य रूप से दो स्वतंत्र साक्षियों की उपस्थिति में तैयार किया जाना था। हालांकि, ऐसा न होने के कारण, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत सम्पूर्ण बरामदगी विधिवत रूप से अवैध हो गई।

(ii) अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि यह स्थापित विधि है कि अंतिम बार साथ देखे जाने की परिस्थिति मात्र किसी भी अपराध के लिए अभियुक्त को दोषी ठहराने का आधार नहीं बन सकती। यद्यपि,

संदेह की सुई काफी हद तक अभियुक्त के अपराधी होने की ओर इशारा करती है, फिर भी अभियुक्त को आरोपित अपराध के लिए दोषी ठहराने के लिए अन्य परिस्थितियों का ठोस समर्थन होना आवश्यक है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि यदि “अंतिम बार साथ देखे जाने” का साक्ष्य विश्वासयोग्य नहीं है या विश्वसनीय नहीं है, तो कोई दोषसिद्धि नहीं होनी चाहिए। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **दिगंबर वैष्णव एवं अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य 2019 4 एससीसी 522** में प्रतिवेदित के मामले के पैराग्राफ 40, 41 और 42 पर भरोसा जताया है, इसलिए इसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

“40. अभियोजन पक्ष ने पीडब्लू 8 के साक्ष्य पर भरोसा करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि अभियुक्त और पीड़ित अंतिम बार एक साथ देखे गए थे। यह सर्वविदित है कि अंतिम बार एक साथ देखे जाने की परिस्थिति मात्र अभियुक्त को अपराध का दोषी ठहराने का आधार नहीं बन सकती। यदि कोई विश्वसनीय साक्ष्य है कि पीड़ित की मृत्यु से ठीक पहले या तत्काल पहले, उन्हें घटना स्थल पर या उसके आसपास अभियुक्त के साथ अंतिम बार देखा गया था, तो संदेह की सुई निश्चित रूप से अभियुक्त की ओर इंगित करेगी और यह पीड़ित के साथ कथित अपराध के लिए उन्हें दोषी ठहराने वाले प्रबल कारकों या परिस्थितियों में से एक होगा। हालांकि, यदि अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य विश्वासयोग्य नहीं है या विश्वसनीय नहीं है, तो दोषसिद्धि नहीं हो सकती। अंतिम बार एक साथ देखे जाने के कारक को दोषसिद्धि का आधार बनाने के लिए, शव को देखने और बरामद करने के समय के बीच निकट संबंध होना आवश्यक है।

41. अर्जुन मारिक बनाम बिहार राज्य [अर्जुन मारिक बनाम बिहार राज्य, 1994 सप्प (2) एससीसी 372 : 1994 एससीसी (क्रिमिनल) 1551] में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि: (एससीसी पृष्ठ 385, पैरा 31)

“31. इस प्रकार, यह साक्ष्य कि अपीलकर्ता 19-7-1985 की शाम को सीताराम के घर गया था और मृतक सीताराम के घर पर रात बिताई थी, अत्यंत कमजोर और निर्णायक नहीं है। यदि यह मान भी लिया जाए कि वे वहाँ थे, तो भी यह अधिकतम इस बात का साक्ष्य होगा कि अपीलकर्ताओं को मृतक के साथ अंतिम बार देखा गया था। लेकिन यह स्थापित विधि है कि मात्र अंतिम बार देखे जाने की परिस्थिति से ही यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं मिलते कि अभियुक्त दोषी है, और इसलिए मात्र इसी आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती।”

42. कन्हैया लाल बनाम राजस्थान राज्य [कन्हैयालाल बनाम राजस्थान राज्य, (2014) 4 एससीसी 715 : (2014) 2 एससीसी (क्रिमिनल) 413] मामले में न्यायालय ने दोहराया है कि अंतिम बार साथ देखे जाने से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि अपराध अभियुक्त ने ही किया था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है: (एससीसी पृष्ठ 719, पैरा 12)

“12. अंतिम बार साथ देखे जाने की परिस्थिति मात्र से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि अपराध अभियुक्त ने ही किया है। अभियुक्त और अपराध के बीच संबंध स्थापित करने के लिए कुछ और साक्ष्य होना आवश्यक है। हमारी राय में, अपीलकर्ता द्वारा मात्र स्पष्टीकरण न देना, अपने आप में अपीलकर्ता के विरुद्ध दोष सिद्ध करने का आधार नहीं बन सकता।”

इसके बाद अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि यदि साक्ष्य का समग्र रूप से अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि शहजाद ने अभियुक्त और मृतक को एक साथ उस वाहन में देखा

था जिसमें वे बैठे थे और वाहन चल रहा था। हालांकि, जब लियाकत यह बता रहा था कि उसने मृतक के साथ दोनों अभियुक्तों को कैसे देखा था, तब वाहन रुका हुआ था। इस तथ्य के बावजूद कि दोनों ने अभियुक्तों को एक ही समय पर देखा था, विरोधाभास है। इसलिए अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अभियोजन पक्ष के दो साक्षियों, अर्थात् पीडब्लू-3, शहजाद और पीडब्लू-4, लियाकत की गवाही बिल्कुल भी विश्वसनीय नहीं है।

(iii) अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि कंकाल की बरामदगी किसी भी तरह से विश्वसनीय साक्ष्य नहीं थी। इसके अतिरिक्त, कोई बरामदगी जापन तैयार नहीं किया गया था। कंकाल की बरामदगी के समय कोई स्वतंत्र साक्षी उपस्थित नहीं था। इतना ही नहीं, कंकाल स्वयं एक ऐसा साक्ष्य था जिसकी आगे जांच की आवश्यकता थी और पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टर ने भी स्पष्ट रूप से कहा था कि मृतक की पहचान और मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए डीएनए परीक्षण अनिवार्य था। हालांकि, इस मामले में डीएनए परीक्षण नहीं किया गया। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे **दरयाओ सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य 1991 2 एससीसी 588** में प्रतिवेदित के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया और पैराग्राफ 7, 8 और 9 का हवाला देते हुए कहा कि मात्र हड्डियों को देखकर, किसी भी विशेषज्ञ को किसी भी तरह से यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता कि मृतक की आयु क्या थी और हड्डियों की बरामदगी से कितने दिन पहले मृत्यु हुई थी। चूंकि अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने पैराग्राफ 7, 8 और 9 पर भरोसा किया है, इसलिए उन्हें यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“7. हालांकि, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पीडब्लू 2 - डॉ. शर्मा के साक्ष्य पर जोर दिया। इस साक्षी ने विभिन्न चोटों का वर्णन करने के बाद कहा कि जब उन्होंने 27 सितंबर, 1970 की सुबह पोस्टमार्टम किया, तो शरीर ठंडा था, अकड़न समाप्त हो चुकी थी और शरीर सड़ चुका था। उन्होंने पूरे शरीर पर लाल रंग के तरल पदार्थ से भरे छाले भी देखे। पेट फूला हुआ था और हरापन दिखाई दे रहा था। उनके अनुसार, मृत्यु मस्तिष्क की चोट के कारण हुई थी। अपने बयान के पैराग्राफ 6 में उन्होंने कहा, “मृत्यु के बाद चोट की अवधि 36 से 48 घंटे थी।” प्रति परीक्षा में उन्होंने कहा:

“शव का बाहरी और आंतरिक रूप से सड़ जाना देखते हुए, पूरे शरीर पर छाले पड़ गए थे, अंडकोष फूल गए थे, शरीर पर सूजन के निशान थे, शरीर पर कीड़े उपस्थित थे; ये सभी लक्षण संकेत देते हैं कि मृत्यु के बाद से चोट की अवधि 14 से 20 दिन भी हो सकती है।”

पीडब्लू 2 द्वारा दिए गए इन बयानों के आधार पर, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि मृत्यु 25 सितंबर, 1970 से बहुत पहले हुई होगी क्योंकि शरीर पर छाले दिखाई दिए थे। इस संबंध में उन्होंने मोदी की मेडिकल ज्यूरिस्ट्रडेंस एंड टॉक्सिकोलॉजी (12वां संस्करण) के पृष्ठ 134 पर दी गई तालिका पर भरोसा जताया। यह इस प्रकार है:

सड़नशील परिवर्तन

समय

1. आंखों के निचले हिस्से में हरे रंग की परत। मृत्यु के 1 से 3 दिन पश्चात आंखें मुलायम और लचीली होती हैं।
2. पेट, जननांगों और शरीर के अन्य हिस्सों पर हरे रंग का फैलाव। मुंह और नाक

मृत्यु के 3 से 5 दिन पश्चात

से झागदार खून निकलना।

3. पेट गैस से फूला हुआ है। कॉर्निया धंसा हुआ और अवतल है। हाथ-पैरों पर बैंगनी-लाल रंग की नसें स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही हैं, स्फिंक्टर शिथिल हैं, नाखून सख्त हैं।

मृत्यु के 8 से 10 दिन पश्चात

4. शरीर हरा-भूरा। पूरे शरीर पर छाले पड़ रहे हैं। त्वचा छिल रही है। चेहरे के हाव-भाव पहचानना मुश्किल है। अंडकोष फूले हुए हैं। सूजन के कारण शरीर सूजा हुआ है। शरीर पर कीड़े हैं। नाखून और बाल ढीले हैं और आसानी से झड़ जाते हैं।

मृत्यु के 8 से 10 दिन पश्चात

5. कोमल अंग एक गाढ़े, अर्ध-तरल, काले द्रव्यमान में परिवर्तित हो गए। खोपड़ी, पेट और वक्ष फट गए। हड्डियाँ उजागर हो गईं। नेत्रगोलक खाली हो गए।

मृत्यु के 2 से 5 माह पश्चात

यह वाकई आश्चर्यजनक है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों के समक्ष बचाव पक्ष की ओर से ऐसी कोई प्रस्तुति नहीं दी गई। अपील जापान में भी ऐसा कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। हालांकि, हमने इस प्रस्तुति को तकनीकी आधार पर खारिज करने के बजाय इसके गुण-दोष के आधार पर इसकी जांच करना उचित समझा है।

8. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने पीडब्लू-2 - डॉ. शर्मा के इस बयान पर जोर देते हुए तर्क दिया कि पूरे शरीर पर छाले होना इस बात का पुख्ता साक्ष्य है कि मृत्यु पोस्टमार्टम से 14 से 20 दिन पहले हुई थी। गौरतलब है कि मृतक 45 वर्ष का था और उस पर घातक हथियारों से हिंसक हमला किया गया था, जिसमें उसके सिर पर 6" x 4" का घातक अर्धवृत्ताकार घाव था, जो बाईं ओर मध्य रेखा से 2" आगे तक फैला हुआ था। इसके अतिरिक्त, उसकी बाईं बांह पर चीरे के घाव थे, जिससे हड्डियाँ टूट गई थीं। उसका दाहिना पैर टिबिया से 6" नीचे दो टुकड़ों में कट गया था, जिससे तरल खून बह रहा था, कीड़े उपस्थित थे, पूरे शरीर पर छाले थे और त्वचा की कोमल ऊपरी परत आसानी से उतर रही थी। बाएं पैर पर एक और घाव था जिससे टिबिया दिखाई दे रही थी। मुंह के दाहिनी ओर 5" का घाव था। सिर की चोट ही मौत का कारण बनी।

9. यह सर्वविदित है कि मृत्यु के बाद शरीर आसपास के तापमान के अनुरूप ठंडा होने लगता है। शरीर का ठंडा होना सबसे प्रारंभिक घटना है, जिसके बाद रक्त संचार रुकने और गुरुत्वाकर्षण बल के कारण शरीर के कुछ हिस्सों में रक्त जमा होने से शव का रंग नीला पड़ने लगता है, जो शव की स्थिति पर निर्भर करता है। रक्त संचार रुकने और प्राकृतिक रक्षा तंत्र के निष्क्रिय होने से शरीर में उपस्थित और बाहर से प्रवेश करने वाले जीवाणु शरीर के हर हिस्से में फैल जाते हैं, जिससे सड़न की प्रक्रिया शुरू हो जाती है, जब तक कि इसे रोकने के लिए विशेष सावधानी न बरती जाए। इस प्रकार अपघटन मूलतः सड़न की प्रक्रिया है जो पर्यावरणीय और

जलवायु परिस्थितियों पर निर्भर करती है। वर्तमान मामले में मृत्यु 25 सितंबर को हुई थी और शव अगले दिन शाम 5:20 बजे अस्पताल लाए जाने तक पुलिस स्टेशन में घावों के साथ पड़ा रहा। शव अगले दिन सुबह 7 बजे तक अस्पताल में उसी अवस्था में रहा, जब पोस्टमार्टम किया गया। इस प्रकार, शव सितंबर महीने की गर्मी और नमी के संपर्क में तीस घंटे से अधिक समय तक पूरी तरह से खुला रहा, इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि अकड़न समाप्त हो गई थी। आमतौर पर अकड़न समाप्त होने के बाद, सड़न की प्रक्रिया शुरू हो जाती है, लेकिन गर्मी के मौसम में गर्मी और नमी के आधार पर यह पहले भी शुरू हो सकती है। शरीर का रंग बदलना और दुर्गंध आना, अपघटन प्रक्रिया के दो विशेष लक्षण हैं। सड़न का पहला बाहरी लक्षण पेट की त्वचा पर इलियाक फोसा के ऊपर हरे रंग का धब्बा बनना है, जो गर्मियों में छह से बारह घंटे के भीतर होता है और मृत्यु के बारह से अठारह घंटे के भीतर पूरे शरीर में फैल जाता है। समय बीतने के साथ, इसका रंग गहरा होता जाता है और यह बैंगनी हो जाता है। बैक्टीरिया के फैलने से, बारह से अठारह घंटे के भीतर आंतों में धीरे-धीरे गैसों बनने लगती हैं और द्रवीकरण भी होता है जो जल्द ही शरीर के अन्य भागों में फैल जाता है। सड़न के कारण कोशिकाओं में बची हुई एंजाइमेटिक गतिविधि से ऊतकों का सामान्य विघटन होता है, जिससे व्यापक रूप से गैसों उत्पन्न होती हैं और दुर्गंध आती है। यदि शरीर खुला रह जाता है, जैसा कि इस मामले में है, तो मक्खियाँ खुले घावों पर अंडे देती हैं जिससे कीड़े पड़ जाते हैं। शरीर फूल जाता है और तरल हो जाता है, त्वचा ढीली पड़ जाती है, ऊपरी परतें आसानी से उतर जाती हैं और छाले बन जाते हैं। इसलिए, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि गैसों के निर्माण के कारण लिंग और अंडकोष सूजे हुए थे और उनमें कीड़े उपस्थित थे।

(iv) अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि कंकाल और कपड़ों की बरामदगी पूरी तरह संदिग्ध है और इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, यह प्रस्तुत करते हुए अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान गुमशुदगी रिपोर्ट की ओर भी दिलाया, जिसमें कपड़ों के रंग का उल्लेख था, और यह बताया कि कपड़ों के रंग और विवरण जिस लिखावट में लिखे गए थे, वह बिल्कुल अलग थी। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि भले ही न्यायालय के समक्ष दिए गए बयानों में शव के कपड़ों की बरामदगी का दावा किया गया हो, लेकिन किसी भी स्थान पर उन कपड़ों का कोई बरामदगी जापन तैयार नहीं किया गया था, और इसलिए वे पूरी तरह से अस्वीकार्य साक्ष्य हैं। विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क भी विश्वसनीय प्रतीत होता है कि गुमशुदगी रिपोर्ट में कपड़ों के रंग का उल्लेख कपड़ों को कंकाल के पास रखे जाने के बाद किया गया था। उन्होंने कहा कि जब शव सड़ चुका था, तो कपड़ों का सही-सलामत रहना अत्यंत असंभव था।

(v) अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस मुद्दे पर विस्तार से जोर दिया है कि मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित था और अभियोजन पक्ष के दो साक्षियों, अर्थात् पीडब्लू-3, शहजाद और पीडब्लू-4, लियाकत ने क्रमशः 21.11.2011 और 24.11.2011 को पुलिस के समक्ष धारा 161 सीआर.पी.सी. के अंतर्गत अपने बयान दर्ज कराए थे। इसलिए, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत मामला निराधार है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने शरद बिरधीचंद सरदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एससीसी 116 में प्रतिवेदित के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले का हवाला दिया है और इसने पैराग्राफ 153 पर भरोसा जताया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर

दोषसिद्धि के लिए पालन किए जाने वाले पांच स्वर्णिम सिद्धांतों को निर्धारित किया गया था। निर्णय का पैराग्राफ 153 यहाँ नीचे दिया गया है:

“153. इस निर्णय का गहन विश्लेषण यह दर्शाता है कि किसी अभियुक्त के विरुद्ध मामला पूर्णतः स्थापित होने से पहले निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है:

(1) जिन परिस्थितियों के आधार पर दोष सिद्ध किया जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि परिस्थितियाँ “अवश्य या चाहिए” से संबंधित हैं, न कि “हो सकता है” से। “सिद्ध किया जा सकता है” और “सिद्ध किया जाना चाहिए या सिद्ध होना चाहिए” के बीच न केवल व्याकरणिक बल्कि कानूनी अंतर भी है, जैसा कि इस न्यायालय ने शिवाजी सहबराव बोबाडे बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1973) 2 एससीसी 793 : 1973 एससीसी (क्रिमिनल) 1033 : 1973 क्रिमिनल लॉ जर्नल 1783] में कहा था, जहाँ निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गई थीं: [एससीसी पैरा 19, पृष्ठ 807: एससीसी (क्रिमिनल) पृष्ठ 1047]

“निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले अभियुक्त को दोषी होना चाहिए, न कि मात्र दोषी हो सकता है, और ‘हो सकता है’ और ‘होना ही चाहिए’ के बीच मानसिक दूरी बहुत अधिक है और यह अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से अलग करती है।”

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य मात्र अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, उन्हें इस परिकल्पना के अतिरिक्त किसी अन्य परिकल्पना के आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता कि अभियुक्त दोषी है।

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए।

(4) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना के अतिरिक्त हर संभव परिकल्पना को खारिज कर देना चाहिए, और

(5) साक्ष्यों की एक ऐसी संपूर्ण शृंखला होनी चाहिए जिससे अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष निकालने का कोई उचित आधार न बचे और यह प्रदर्शित होना चाहिए कि सभी मानवीय संभावनाओं के आधार पर यह कृत्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया होगा।”

(vi) आगे, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया कि अभियुक्त से हेतुक के संबंध में कभी प्रश्न नहीं पूछा गया था और इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत हेतुक के संबंध में कोई जवाब/बयान अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। उन्होंने कहा कि इसलिए इस मामले में हेतुक के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है, और इस संबंध में शरद बिरधीचंद सरदा (उपरोक्त) के फैसले के पैराग्राफ 143, 144 और 145 महत्वपूर्ण हो जाते हैं और इन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

“143. उपर्युक्त टिप्पणियों के अतिरिक्त, उच्च न्यायालय द्वारा उल्लिखित और जिन परिस्थितियों पर भरोसा किया गया है, उनमें से कुछ में एक महत्वपूर्ण दोष है, जैसे परिस्थितियाँ 4, 5, 6, 8, 9, 11, 12, 13, 16 और 17। चूंकि ये परिस्थितियाँ अपीलकर्ता के दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अंतर्गत दिए गए बयान में उसके समक्ष नहीं रखी गईं, इसलिए इन्हें पूरी तरह से विचार से बाहर रखा

जाना चाहिए क्योंकि अपीलकर्ता को इन्हें स्पष्ट करने का कोई अवसर नहीं मिला। इस न्यायालय ने 1953 में हेत सिंह भगत सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य [1951 एससीसी 1060 : एआईआर 1953 एससी 468 : 1953 क्रि एलजे 1933] के मामले में लगातार यही अभिनिर्धारित किया है कि कोई भी परिस्थिति जिसके संबंध में किसी अभियुक्त से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 342 के अंतर्गत पूछताछ नहीं की गई है, उसके विरुद्ध प्रयोग नहीं की जा सकती। इस निर्णय के बाद से, इस न्यायालय के अनेक न्यायालयों ने सर्वसम्मति से यह मत व्यक्त किया है कि जब तक किसी अभियुक्त के विरुद्ध प्रतीत होने वाली परिस्थितियाँ पुराने संहिता की धारा 342 (जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के समतुल्य है) के अंतर्गत उसकी परीक्षा में उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं की जातीं, तब तक उनका प्रयोग उसके विरुद्ध नहीं किया जा सकता। शामू बालू चौगुले बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1976) 1 एससीसी 438 : 1976 एससीसी (क्रिमिनल) 56] मामले में इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया: [एससीसी पैरा 5, पृष्ठ 440: एससीसी (क्रिमिनल) पृष्ठ 58]

“यह तथ्य कि अपीलकर्ता फरार बताया जा रहा था, और उस पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 342 के अंतर्गत मामला दर्ज नहीं किया गया था, इसका इस्तेमाल उसके विरुद्ध नहीं किया जा सकता था।”

144. इसी आशय का एक अन्य निर्णय इस न्यायालय द्वारा हरिजन मेघा जेशा बनाम गुजरात राज्य [1979 एससीसी (क्रि) 652: एआईआर 1979 एससी 1566 : 1979 क्रि एलजे 1137] में दिया गया है, जहाँ निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गई थीं: [एससीसी (क्रि) पृष्ठ 653, पैरा 3]

“सबसे पहले, उसने कहा कि अपीलकर्ता की व्यक्तिगत तलाशी में एक खून से सना हुआ छेदी मिला और सीरोलॉजिस्ट की रिपोर्ट के अनुसार, उसमें मानव रक्त था। दुर्भाग्य से, चूंकि धारा 342 के अंतर्गत दिए गए उसके बयान में इस परिस्थिति को अभियुक्त के सामने नहीं रखा गया था, इसलिए अभियोजन पक्ष को अपीलकर्ता को दोषी ठहराने के लिए इस बयान पर भरोसा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है...

145. इस बिंदु पर हमें और अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह प्रश्न इस न्यायालय के कई निर्णयों द्वारा पहले ही निस्तारित किया जा चुका है। इस स्थिति में, वे परिस्थितियाँ जो अपीलकर्ता से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अंतर्गत पूछताछ के दौरान नहीं पूछी गईं, उन्हें पूरी तरह से विचार से बाहर रखा जाना चाहिए।”

(vii) अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह भी प्रस्तुत किया है कि भले ही यह हेतुक सामने आया हो कि मृतक बेनज़ीर नाम की एक महिला से प्यार करता था और बेनज़ीर को अकरम भी पसंद करता था, लेकिन बेनज़ीर को कभी साक्षी के तौर पर प्रस्तुत नहीं किया गया।

13. श्री अमित सिन्हा, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने हालांकि विचारण न्यायालय के फैसले का समर्थन किया और पुरजोर तर्क दिया कि यदि पी.डब्लू. 5-कुलवीर सिंह तोमर के बयान का अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कंकाल की बरामदगी सर्वोत्तम संभव तरीके से की गई थी। श्री अमित सिन्हा ने आगे कहा कि शव की बरामदगी में कोई खामी नहीं पाई जा सकती, जो निश्चित रूप से अभियुक्त के निर्देश पर की गई थी।

14. अपीलकर्ता संख्या 1 अकरम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद वदूद से सहायता प्राप्त विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद समीउज्जमान खान, अपीलकर्ता संख्या 2 शमीम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सैयद इमरान इब्राहिम; और विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिन्हा की प्रस्तुति सुनने के बाद, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अपील स्वीकार की जानी चाहिए। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत की गई बरामदगी का अवलोकन करने पर, हम पाते हैं कि यह निश्चित रूप से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सुब्रमण्य (उपरोक्त)** मामले में निर्धारित विधि के अनुसार नहीं की गई थी। हम यह भी पाते हैं कि बरामदगी के समय कोई स्वतंत्र साक्षी उपस्थित नहीं था। इसके अतिरिक्त, हम पाते हैं कि जब कंकाल और मृतक द्वारा पहने गए कपड़े बरामद किए गए थे, तब भी पुलिस दल के साथ कोई स्वतंत्र साक्षी नहीं था। दरअसल, जैसा कि पीडब्लू-5 के बयान में कहा गया है, भले ही अभियुक्त पुलिस के साथ गया था, लेकिन कोई बरामदगी ज़ापन आदि तैयार नहीं किया गया था, और जब वह अनुपस्थित था, तो निश्चित रूप से अभियोजन पक्ष के पास साबित करने या खंडन करने के लिए कोई मामला नहीं था, और इसलिए यह कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष के पास बिल्कुल भी मामला नहीं था। इसके अतिरिक्त, हमारा मानना है कि पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टर ने स्वयं कहा था कि मृतक की पहचान और मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए डीएनए परीक्षण आवश्यक था। हालांकि, न तो जांच एजेंसी और न ही अभियोजन पक्ष ने किसी भी स्तर पर डीएनए परीक्षण कराने का कोई प्रयास किया। हमारा यह भी मानना है कि मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित था। हालांकि, कोई भी साक्ष्य ऐसा नहीं था जिससे न्यायालय को यह विश्वास हो कि मात्र एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है और वह यह है कि अकरम और शमीम ने मृतक सलमान की हत्या की थी। इसके अतिरिक्त, हमारा यह दृढ़ मत है कि यदि हेतुक सिद्ध करना था तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत बयान देते समय अभियुक्तों से एक निश्चित प्रश्न पूछा जाना आवश्यक था। साथ ही, हमारा यह भी मत है कि बेनजीर नामक एक अत्यंत महत्वपूर्ण साक्षी, जिसे निश्चित रूप से साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था, को अभियोजन पक्ष द्वारा कभी भी साक्षी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया। अतः, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत बरामदगी और कंकाल की बरामदगी को दोषपूर्ण पाते हुए और यह पाते हुए कि आवश्यक और अनिवार्य डीएनए परीक्षण नहीं किया गया, न्यायालय मात्र एक ही निष्कर्ष पर पहुंच सकता है और वह यह है कि अभियुक्तों को इस मामले में गलत तरीके से फंसाया गया था और अपीलकर्ताओं के विरुद्ध लगाए गए आरोप कभी भी सिद्ध नहीं हुए।

15. अपीलकर्ताओं को सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। निर्णय और आदेश दिनांक 25.02.2021 रद्द किया गया और अपास्त किया जाता है।

16. अतः, वर्तमान आपराधिक अपील की **अनुमति** दी जाती है।

(2025) 3 ILRA 874

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट ए संख्या 10743 / 2018

राज किरण सिंह

.....याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री अजय कुमार श्रीवास्तव, श्री समीर शर्मा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

श्री अनादि कृष्ण नारायण, सी.एस.सी., श्री मंगला प्रसाद राय (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री सर्वेश्वर लाल श्रीवास्तव, श्री यू. एस. सिंह विसेन

ए. सेवा विधि - बर्खास्तगी - यह स्वीकार किया जाता है कि जांच अधिकारी पहले आरोप के दो तत्वों में से किसी पर भी विशिष्ट अभियोग लगाने में विफल रहा। आरोप के संबंध में विशिष्ट निष्कर्ष न निकालकर जांच अधिकारी ने विधि में त्रुटि की।

जांच रिपोर्ट में यह निष्कर्ष नहीं निकाला गया कि याचिकाकर्ता लापरवाही या भ्रष्टाचार का दोषी है या नहीं। कंडक्टर या तो लापरवाही का दोषी है या भ्रष्टाचार का। उक्त आरोप के एक पहलू पर अभियोग साबित होने से दूसरे पहलू पर स्वतः दोषमुक्ति हो जाएगी। इस मामले के तथ्यों के आधार पर उसे एक साथ दोनों कदाचार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। स्पष्ट अभियोग के अभाव और दोष सिद्ध होने के मोटे तौर पर दिए गए निष्कर्ष के कारण, याचिकाकर्ता अपने मामले का प्रभावी बचाव करने और अपने पक्ष में राहत देने वाले कारकों को बताने में असमर्थ रहा। (पैरा 7)

ख. जांच अधिकारी द्वारा दूसरे आरोप पर किया गया अभियोग याचिकाकर्ता के बचाव पर विचार न करने के कारण त्रुटिपूर्ण है। दूसरे आरोप के विरुद्ध याचिकाकर्ता का बचाव यह था कि भार गुणांक की गणना गलत तरीके से की गई थी। भार गुणांक निर्धारित करते समय मासिक पास का उपयोग करने वाले यात्रियों और वाहन की स्थिति पर विचार नहीं किया गया था। (पैरा 9)

अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आक्षेपित आदेश दिनांक 20.02.2016 को पारित करते समय जांच अधिकारी के उपरोक्त निष्कर्षों पर ही पूर्णतः भरोसा किया। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत बचाव को सभी अवर न्यायालयों ने लगातार अनदेखा किया। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 27.07.2016 और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा दिनांक 07.03.2018 को पारित आक्षेपित आदेश भी इससे बेहतर नहीं हैं। अतः, उपरोक्त आदेशों को रद्द किया जाता है। (पैरा 10, 11, 14)

मामले को प्रतिवादी संख्या 5 - क्षेत्रीय प्रबंधक, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम, अलीगढ़ को निर्देशों के साथ वापस भेजा जाता है। याचिकाकर्ता द्वारा दावा किए गए सभी अधिकारों का निर्धारण इस फैसले के अनुसरण में अंतिम आदेश पारित होने के बाद किया जाएगा। (पैरा 15, 16)

रिट याचिका की अनुमति। (ई-4)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार श्रीवास्तव से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री समीर शर्मा। प्रतिवादी संख्या 1 - राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 2 से 6 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सर्वेश्वर लाल श्रीवास्तव उपस्थित हुए।
2. याचिकाकर्ता ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा 20.02.2016 को पारित अपनी सेवा समाप्ति के आदेश को चुनौती दी है।
3. संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं। याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम (यूपीएसआरटीसी) में कंडक्टर था। 10.10.2005 को याचिकाकर्ता दिल्ली से फर्रुखाबाद जा रही बस में था। गोला कुआं में बस का अचानक निरीक्षण किया गया। निरीक्षण दल ने पाया कि एटा से धूमरी जा रहे सात यात्रियों के पास टिकट नहीं थे। इन यात्रियों ने दावा किया कि वे दिल्ली परिवहन निगम में काम करते हैं और उन्हें मासिक मुफ्त यात्रा का अधिकार है। हालांकि, मुफ्त पास के लिए अपनी पात्रता साबित करने के लिए कोई अभिलेख प्रस्तुत नहीं किए गए। अतः, इन यात्रियों पर जुर्माना लगाया गया।
4. याचिकाकर्ता के विरुद्ध 22.10.2005 को आरोप पत्र तैयार किया गया। पहला आरोप यह था कि याचिकाकर्ता ने बिना टिकट यात्रियों को यात्रा करने की अनुमति दी। वैकल्पिक रूप से, याचिकाकर्ता यात्रियों से उनके गंतव्य पर शुल्क लेकर उसे हड़प सकता था। दूसरे आरोप का मुख्य बिंदु यह था कि अप्रैल से सितंबर 2005 तक बस का औसत भार वहन क्षमता डिपो की औसत भार वहन क्षमता से काफी कम थी।
5. उक्त आरोप-पत्र तामील होने पर जांच कार्यवाही शुरू हुई। याचिकाकर्ता ने जांच अधिकारी के समक्ष अपना बचाव प्रस्तुत किया। जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को दोनों आरोपों में दोषी पाया।

6. जैसा कि ऊपर देखा गया है, पहला आरोप भ्रष्टाचार या लापरवाही नामक दो वैकल्पिक अभियोगों से मिलकर बना था, जो परस्पर अनन्य हैं।

7. जांच अधिकारी प्रथम आरोप के दो तत्वों में से किसी पर भी स्पष्ट अभियोग लगाने में विफल रहे। जांच रिपोर्ट में यह निष्कर्ष नहीं निकाला गया कि याचिकाकर्ता लापरवाही या भ्रष्टाचार का दोषी है या नहीं। कंडक्टर या तो लापरवाही का दोषी है या भ्रष्टाचार का। उक्त आरोप के एक तत्व पर अभियोग लगने से स्वतः ही दूसरे पहलू पर दोषमुक्ति हो जाएगी। इस मामले के तथ्यों के आधार पर, उसे एक साथ दोनों कदाचार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। आरोप के संबंध में स्पष्ट निष्कर्ष न निकालकर जांच अधिकारी ने विधि का उल्लंघन किया है। स्पष्ट अभियोग के अभाव और दोष सिद्ध होने के मोटे तौर पर दिए गए निष्कर्ष के कारण, याचिकाकर्ता अपने मामले का प्रभावी बचाव करने और अपने पक्ष में राहत देने वाले कारकों को बताने में असमर्थ रहा।

8. यह मुद्दा इस तथ्य के दृष्टिगत महत्वपूर्ण हो जाता है कि निरीक्षण दल ने यह भी पाया था कि यात्रियों ने स्वयं को दिल्ली परिवहन निगम का कर्मचारी बताया था और मुफ्त यात्रा का दावा किया था।

9. दूसरे आरोप के विरुद्ध याचिकाकर्ता का बचाव यह था कि भार गुणांक की गणना गलत तरीके से की गई थी। भार गुणांक निर्धारित करते समय मासिक पास का उपयोग करने वाले यात्रियों और वाहन की स्थिति पर विचार नहीं किया गया था। दूसरे आरोप पर जांच अधिकारी द्वारा किया गया अभियोग इस संबंध में याचिकाकर्ता के बचाव पर विचार न करने के कारण त्रुटिपूर्ण है।

10. अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आक्षेपित आदेश दिनांक 20.02.2016 को पारित करते समय जांच अधिकारी के उपरोक्त निष्कर्षों पर ही पूर्णतः भरोसा किया। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत बचाव को सभी अवर न्यायालयों ने लगातार अनदेखा किया।

11. अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 27.07.2016 और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा दिनांक 07.03.2018 को पारित किए गए आक्षेपित आदेश भी बेहतर नहीं हैं। याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई विशिष्ट आपत्तियों के बावजूद, उपरोक्त आदेश में जांच अधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा की गई उक्त अवैधताओं को दूर करने में विफल रहे हैं।

12. प्रतिवादियों द्वारा दायर किए गए प्रतिवाद शपथपत्र के अनुसार, याचिकाकर्ता आदतन किराया न चुकाने वाला था और कई बार बिना टिकट यात्रियों को ले जाने का दोषी पाया गया था। इन तथ्यों ने दुराचार को और भी गंभीर बना दिया।

13. यह स्वीकार किया जाता है कि दंड का आक्षेपित आदेश पारित होने से पहले याचिकाकर्ता के पिछले आचरण पर ध्यान नहीं दिया गया था।

14. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश दिनांक 20.02.2016 और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.07.2016 तथा पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.03.2018 निरस्त किए जाने योग्य हैं और निरस्त किए जाते हैं।

15. मामले को प्रतिवादी संख्या 5 - क्षेत्रीय प्रबंधक, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम, अलीगढ़ को निम्नलिखित निर्देशों के साथ वापस भेजा जाता है:

I). प्रतिवादी संख्या 5 - क्षेत्रीय प्रबंधक, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम, अलीगढ़, याचिकाकर्ता को उपरोक्त टिप्पणियों के अनुरूप एक नया नोटिस जारी करेंगे। कारण बताओ नोटिस में याचिकाकर्ता पर पहले लगाए गए दंडों का विवरण भी शामिल किया जाएगा, यदि उनका उपयोग उसके विरुद्ध किया जाना प्रस्तावित है। याचिकाकर्ता उक्त कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत करेगा।

II). उपर्युक्त जवाब प्राप्त होने पर प्रतिवादी संख्या 5 - क्षेत्रीय प्रबंधक, यू.पी. राज्य सड़क परिवहन निगम, अलीगढ़, आदेश में की गई टिप्पणियों के अनुरूप एक नया आदेश पारित करेगा।

III). यह प्रक्रिया इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से छः माह की अवधि के भीतर पूरी की जाएगी।

IV). प्रतिवादियों को यह अधिकार होगा कि वे मामले को इस निर्देश के साथ वापस भेज दें कि पिछली जांच कार्यवाही में पहले से प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर की गई टिप्पणियों के आलोक में विशिष्ट निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाएं।

16. याचिकाकर्ता द्वारा दावा किए गए सभी अधिकारों का निर्धारण इस फैसले के अनुसरण में अंतिम आदेश पारित होने के बाद किया जाएगा।

17. रिट याचिका को उपरोक्त सीमा तक अनुमति दी जाती है।

(2025) 3 ILRA 877

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए संख्या 14995 / 2024

डॉ. सुमन जैन

.....याची

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री सिद्धार्थ खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

ए.एस.जी.आई., श्री हेम प्रताप सिंह, श्री प्रेम नारायण राय, श्री राहुल अग्रवाल

ए. सेवा विधि - चयन - यह तर्क कि चयन समिति के लिए पुरालेख विद्या के तीन विशेषज्ञ होने चाहिए, विधिक रूप से निराधार है, क्योंकि पदोन्नति के लिए विचार-विमर्श एआईएचसी और पुरातत्व विभाग में वरिष्ठ प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 15) के पद के लिए किया जा रहा था, न कि पुरालेख विद्या जैसे किसी विशिष्ट विषय के लिए। (पैरा 9)

याचिकाकर्ता का मामला यह है कि जब वह चयन समिति के समक्ष उपस्थित हुई, तो उसे पता चला कि समिति के तीन सदस्य उसके विषय अर्थात् पुरालेख विद्या के विशेषज्ञ नहीं थे। इसलिए, उसके अनुसार, चयन समिति का गठन उपरोक्त नियमों के अनुसार नहीं किया गया था। अतः उसने इस न्यायालय का रुख किया है। (पैरा 4)

याचिकाकर्ता को प्रारंभ में विशेष सहायक कार्यक्रम के अंतर्गत एआईएचसी और पुरातत्व विभाग में पुरालेख विद्या में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त किया गया था। बाद में, उसे एआईएचसी और पुरातत्व विभाग में प्रवक्ता (वरिष्ठ वेतनमान) के पद पर पदोन्नत किया गया और इसी प्रकार उसे एआईएचसी और पुरातत्व विभाग में रीडर, एसोसिएट प्रोफेसर और प्रोफेसर (चरण-V) के पदों पर पदोन्नत किया गया, न कि किसी विशिष्ट विषय, अर्थात् पुरालेख विद्या में। (पैरा 9)

एआईएचसी और पुरातत्व में बीए (ऑनर्स) के पाठ्यक्रम में छठे सेमेस्टर में एक मुख्य विषय 'प्राचीन भारतीय पुरालेख विद्या एवं शिलालेख विद्या' है। इस प्रकार, पूरे पाठ्यक्रम में पुरालेख विद्या 20 मुख्य विषयों में से एक है। स्नातकोत्तर में छह विशिष्ट पाठ्यक्रमों में से मात्र एक ही 'पुरालेख विद्या एवं शिलालेख विद्या' का है। (पैरा 10, 11)

बी. याचिकाकर्ता यह साबित करने में विफल रही है कि वह मात्र पुरालेख विद्या विषय की कक्षाएं ले रही है। (पैरा 12)

सी. पुरालेख विषय में याचिकाकर्ता की विशेषज्ञता पर कोई संदेह नहीं है, लेकिन ऐसी विशेषज्ञता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि चयन समिति में तीनों विशेषज्ञ मात्र पुरालेख विषय के ही हों। अधिसूचना दिनांक 18.07.2018 के खंड 5 (IV)(iii) में विशेषज्ञों के लिए विषय/क्षेत्र में न्यूनतम 10 वर्ष के अनुभव का प्रावधान

है, जिसका व्यापक अर्थ है और याचिकाकर्ता द्वारा बताए गए अनुसार इसे सीमित नहीं किया जा सकता। तीनों विशेषज्ञ पुरातत्व क्षेत्र में विशेषज्ञ हैं, जिसमें पुरालेख विद्या सहित कई विषय शामिल हैं। (पैरा 13, 14)

डी. बीएचयू की वेबसाइट पर याचिकाकर्ता का विवरण है कि वह प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग में कार्यरत हैं। पुरालेख विद्या विषय का कोई उल्लेख नहीं है, इसलिए इस संबंध में तर्क निराधार है। तीनों विशेषज्ञ चयन समिति के सदस्य बनने के योग्य थे और इस पर किसी भी प्रकार की आपत्ति को अस्वीकार किया जाता है। (पैरा 15)

रिट याचिका निरस्त की गई। (ई-4)

पूर्व-निर्णय अनुपालित:

1. मोनिका बंसल बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2024:एचसी:190635 (पैरा 6, 16)
2. दीपांविता सिंघा रॉय बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट-ए संख्या 4884 / 2024 (पैरा 6, 16)
3. त्रिलोकी नाथ सिंह बनाम भगवान दीन मिश्रा एवं अन्य, एआईआर 1990 एससी 2063 (पैरा 6, 16)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री काउंटेय सिंह से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे और प्रतिवादी-विश्वविद्यालय की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल को सुना।
2. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता प्रतिवादी विश्वविद्यालय, अर्थात् बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में 1996 से कार्यरत हैं और कैरियर उन्नति योजना के अंतर्गत प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति (एआईएचसी) और पुरातत्व विभाग में वरिष्ठ प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 15) के पद के लिए चयन समिति का पहली बार सामना किया है।
3. याचिकाकर्ता को पूर्व में 'विशेष सहायक कार्यक्रम' के अंतर्गत एआईएचसी एवं पुरातत्व विभाग में पुरालेख विद्या में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त किया गया था। बाद में, उसे एआईएचसी एवं पुरातत्व विभाग में प्रवक्ता (वरिष्ठ वेतनमान) के पद पर पदोन्नत किया गया और इसी प्रकार उसे एआईएचसी एवं पुरातत्व विभाग में रीडर, एसोसिएट प्रोफेसर और प्रोफेसर (चरण-V) के पदों पर पदोन्नत किया गया। अब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अधिसूचना दिनांक 18.7.2018 के अनुसार, उसे उक्त अधिसूचना के खंड 5.1 (iv) के अंतर्गत वरिष्ठ प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 15) के पद के लिए गठित चयन समिति का सामना करना होगा।

4. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि जब वह चयन समिति के समक्ष उपस्थित हुई, तो उसे पता चला कि समिति के तीन सदस्य उसके विषय, अर्थात् पुरालेख विद्या के विशेषज्ञ नहीं थे। अतः, उसके अनुसार, चयन समिति का गठन उपरोक्त नियमों के अनुसार नहीं किया गया था। इसलिए, उसने इस न्यायालय का रुख किया है। विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्रोफेसर के पद पर पदोन्नति के लिए चयन समिति के गठन का विवरण नीचे दिया गया है:

“IV. वरिष्ठ प्रोफेसर

(क) विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्रोफेसर के पद के लिए चयन समिति में निम्नलिखित व्यक्ति शामिल होंगे:

I. कुलपति, जो समिति के अध्यक्ष होंगे।

II. वरिष्ठ प्रोफेसर/प्रोफेसर के पद से नीचे का कोई शिक्षाविद नहीं होना चाहिए, जिसके पास कम से कम दस वर्ष का अनुभव हो और जो विजिटर/कुलपति का नामित हो, जहाँ भी लागू हो।

III. विश्वविद्यालय के संबंधित वैधानिक निकाय द्वारा अनुमोदित नामों की सूची में से कुलपति द्वारा नामित वरिष्ठ प्रोफेसर/प्रोफेसर के पद से नीचे के तीन विशेषज्ञ, जिन्हें संबंधित विषय/क्षेत्र में कम से कम दस वर्ष का अनुभव हो।

IV. संकाय के डीन (वरिष्ठ प्रोफेसर/प्रोफेसर के पद से नीचे का न हो और न्यूनतम दस वर्ष का अनुभव हो), जहाँ भी लागू हो।

V. विभाग/विद्यालय के प्रमुख/अध्यक्ष (वरिष्ठ प्रोफेसर/प्रोफेसर के पद से नीचे का न हो और न्यूनतम दस वर्ष का अनुभव हो) या सबसे वरिष्ठ प्रोफेसर (वरिष्ठ प्रोफेसर/प्रोफेसर के पद से नीचे का न हो और न्यूनतम दस वर्ष का अनुभव हो)।

VI. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग/अल्पसंख्यक/महिला/दिव्यांग श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई शिक्षाविद (वरिष्ठ प्रोफेसर/प्रोफेसर के पद से नीचे का न हो और न्यूनतम दस वर्ष का अनुभव हो), यदि इन श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाले उम्मीदवारों में से कोई आवेदक है, तो कुलपति द्वारा नामित किया जाएगा, यदि चयन समिति के उपरोक्त सदस्यों में से कोई भी उस श्रेणी से संबंधित नहीं है।

(ख) दो बाहरी विषय विशेषज्ञों सहित चार सदस्य कोरम का गठन करेंगे।”

5. संदर्भ के लिए, इस रिट याचिका में की गई प्रार्थनाओं को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“(i) उपयुक्त प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जिसमें प्रतिवादी को प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 15) के पद पर पदोन्नति के लिए 29.07.2024 को हुई चयन समिति की सिफारिशें प्रस्तुत करने और उन्हें रद्द किया जाए।

(ii) उपयुक्त प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश, जिसमें प्रतिवादी को 29.07.2024 को हुई चयन समिति की सिफारिश के अनुसार वरिष्ठ प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 15), प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के पद पर पदोन्नति के लिए कोई भी कार्यवाही करने से रोका जाए।

(iii) उपयुक्त प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जिसमें प्रतिवादी को यह निर्देश दिया जाए कि वह इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट अवधि के भीतर पुरालेख विद्या विषय/क्षेत्र में बाहरी विशेषज्ञों को शामिल करने के बाद याचिकाकर्ता को वरिष्ठ प्रोफेसर शैक्षणिक स्तर 15 के पद पर पदोन्नति के लिए विचार करने हेतु चयन समिति की बैठक पुनः बुलाए।

(iv) एक रिट, आदेश या निर्देश जिसकी प्रकृति को यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों के अनुसार उचित और उपयुक्त समझे।

(v) इस रिट याचिका के दौरान याचिकाकर्ता को लागत का भुगतान करने का आदेश दिया जाए।

6. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 22 का हवाला दिया, जिसमें तीन विशेषज्ञों का विवरण दिया गया है, कि वे पुरालेख विद्या विषय में विशेषज्ञ नहीं थे। उन्होंने आगे कहा कि दो समतुल्य पीठ के फैसले हैं, अर्थात् रिट-ए संख्या 12176/2024 डॉ. मोनिका बंसल बनाम भारत संघ एवं अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या: 2024:एचसी:190635 और रिट-ए संख्या 4884/2024, डॉ. दीपाविता सिंघा रॉय बनाम भारत संघ एवं 5 अन्य, तटस्थ उद्धरण संख्या 2025:एचसी:21621, जिनमें विशेषज्ञों की विशेषज्ञता के मुद्दे पर विचार किया गया था और संबंधित विशेष अपीलें इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष लंबित हैं और तथ्यों के आधार पर वे भिन्न हैं।

7. इसके विपरीत, प्रतिवादी विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त दो निर्णयों का हवाला देते हुए कहा है कि यह मुद्दा पहले ही सुलझा लिया गया है और इस न्यायालय के लिए कोई विपरीत दृष्टिकोण अपनाने का कोई कारण नहीं है। डॉ. मोनिका बंसल (उपरोक्त) मामले में यह माना गया था कि चयन समिति के गठन पर इस आधार पर आपत्ति कि विशेषज्ञ पीरियडेंटोलॉजी विषय से नहीं थे, खारिज कर दी गई थी क्योंकि विशेषज्ञ प्रतिष्ठित संस्थानों के दंत चिकित्सक थे।

8. वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्कों को समझने और याचिकाकर्ता की पिछली पदोन्नतियों के संबंध में दी गई जानकारी की सत्यता की जाँच करने के लिए, मैंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की आधिकारिक वेबसाइट और इस रिट याचिका के साथ संलग्न दस्तावेजों की जाँच की है। इनमें सरल भाषा में निम्नलिखित तथ्य सामने आए हैं, जिन्हें समझने के लिए पुरातत्व के ज्ञान की आवश्यकता नहीं है।

9. तथ्यों की सही स्थिति यह है कि याचिकाकर्ता को प्रारंभ में विशेष सहायक कार्यक्रम के अंतर्गत एआईएचसी एवं पुरातत्व विभाग में पुरालेख विद्या में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त किया गया था। बाद में, उसे एआईएचसी एवं पुरातत्व विभाग में प्रवक्ता (वरिष्ठ वेतनमान) के पद पर पदोन्नत किया गया और इसी प्रकार उसे एआईएचसी एवं पुरातत्व विभाग में रीडर, एसोसिएट प्रोफेसर और प्रोफेसर (चरण-V) के पदों पर पदोन्नत किया गया, न कि किसी विशिष्ट विषय, अर्थात् पुरालेख विद्या में। इसलिए, यह तर्क कि चयन समिति के लिए पुरालेख विद्या के तीन विशेषज्ञ होने चाहिए, का कोई विधिक आधार नहीं है, क्योंकि पदोन्नति के लिए विचार

एआईएचसी एवं पुरातत्व में वरिष्ठ प्रोफेसर (शैक्षणिक स्तर 15) के पद के लिए किया गया था, न कि पुरालेख विद्या जैसे किसी विशिष्ट विषय के लिए।

10. मैंने एआईएचसी और पुरातत्व में बीए (ऑनर्स) के पाठ्यक्रम का भी अध्ययन किया है और इसके छठे सेमेस्टर में एक मुख्य विषय है, अर्थात् 'प्राचीन भारतीय पुरालेख विद्या और शिलालेख विद्या', इसलिए, पूरे पाठ्यक्रम में, पुरालेख विद्या 20 मुख्य विषयों में से एक मुख्य विषय है।

11. स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में, छह विशिष्ट पाठ्यक्रमों में से मात्र एक ही 'पुरालेख विद्या और शिलालेख विद्या' का है।

12. याचिकाकर्ता यह साबित करने में विफल रही है कि वह मात्र पुरालेख विद्या विषय में ही कक्षाएं संचालित कर रही है।

13. जैसा कि रिट याचिका में उल्लेख किया गया है, तीनों विशेषज्ञ पुरातत्व के क्षेत्र में विशेषज्ञ हैं, जिसमें 'पुरालेख विद्या' सहित कई विषय शामिल हैं।

14. न्यायालय याचिकाकर्ता की पुरालेख विद्या विषय में विशेषज्ञता के संबंध में कोई संदेह नहीं कर रहा है, लेकिन ऐसी विशेषज्ञता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि चयन समिति में तीन विशेषज्ञ मात्र पुरालेख विद्या विषय के ही हों। अधिसूचना दिनांक 18.07.2018 के खंड 5 (IV)(iii) में विशेषज्ञों के लिए विषय/क्षेत्र में न्यूनतम 10 वर्ष के अनुभव का प्रावधान है, जिसका व्यापक अर्थ है और याचिकाकर्ता द्वारा बताए गए अनुसार इसे सीमित नहीं किया जा सकता। चयन प्रक्रिया का परिणाम भी अभिलेख में नहीं है।

15. बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर याचिकाकर्ता का विवरण है कि वह प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग में कार्यरत हैं। वेबसाइट पर पुरालेख विद्या विषय का कोई उल्लेख नहीं है, इसलिए इस संबंध में तर्क निराधार है। तीनों विशेषज्ञ चयन समिति के सदस्य बनने के योग्य थे और इस पर किसी भी प्रकार की आपत्ति को अस्वीकार किया जाता है।

16. न्यायालय डॉ. मोनिका बंसल (उपरोक्त), डॉ. दीपाविता सिंघा रॉय (उपरोक्त) और डॉ. त्रिलोक नाथ सिंह बनाम डॉ. भगवान दीन मिश्रा एवं अन्य (1990) 4 एससीसी 510 का भी संज्ञान लेता है और यह याचिकाकर्ता के मामले में सहायक नहीं होगा बल्कि उसके विरुद्ध है।

17. उपरोक्त परिस्थितियों में, वर्तमान रिट याचिका में मांगी गई अनुतोष प्रदान करने का कोई आधार नहीं है, इसलिए इसे निरस्त किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 881

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट ए संख्या 16327 / 2022

सौरभ लाल

.....याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री नीरज तिवारी

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री विवेक रतन अग्रवाल

ए. सेवा विधि - अनुकंपा नियुक्ति - याचिकाकर्ता के पिता पर लगाए गए दंड का हवाला अनुकंपा के आधार पर उनकी नियुक्ति के आवेदन को अस्वीकार करने के लिए नहीं दिया जा सकता। इस मामले में, गंभीर दंड लगाए जाने के दो साल बाद समाप्त हो गया था, और याचिकाकर्ता के पिता की पदोन्नति के बाद इसका प्रतिकूल प्रभाव समाप्त हो गया। (पैरा 6)

आक्षेपित आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता की अनुकंपा आधार पर नियुक्ति की मांग अनुकंपा आधार पर नियुक्ति योजना के प्रावधानों के आधार पर अमान्य कर दी गई है, जिसमें यह प्रावधान है कि समिति को अनुकंपा नियुक्ति/अनुग्रह भुगतान के सभी अनुरोधों को अस्वीकार करने का अधिकार होगा, उन मामलों में जहां पूर्व कर्मचारी पर सेवा के दौरान कोई गंभीर दंड लगाया गया हो, और/या जहां पूर्व कर्मचारी की मृत्यु के समय लंबित अनुशासनात्मक कार्रवाई के परिणामस्वरूप गंभीर दंड लगाया जा सकता हो। (पैरा 4)

उपर्युक्त अयोग्यता उस कर्मचारी पर लागू होगी जिसके विरुद्ध गंभीर दंड लगाया गया था और जो उसकी मृत्यु के समय अभिलेख में दर्ज था। (पैरा 5)

आक्षेपित आदेश दिनांक 03.03.2021 रद्द किया जाता है। रिट याचिका की अनुमति दी गई। (ई-4)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नीरज तिवारी और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक रतन अग्रवाल को सुना।

1. आक्षेपित आदेश दिनांक 03.03.2021 द्वारा याचिकाकर्ता की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने की मांग को अस्वीकार कर दिया गया है। आक्षेपित आदेश में कहा गया है:-

"उपरोक्त विषय पर आपके आवेदन के संदर्भ में, हमें आपको सूचित करना है कि मामला सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था और भारत सरकार के दिशानिर्देशों और योजना के अनुसार, योजना के अंतर्गत अच्छले के असंतोषजनक सेवा रिकॉर्ड को देखते हुए, अनुकंपा नियुक्ति के लिए आपके अनुरोध पर बैंक द्वारा अनुकूल विचार नहीं किया गया है।"

2. आदेश दिनांक 31.05.2012 द्वारा उसके पिता पर दो वर्ष तक की सजा सुनाई गई थी। उक्त अवधि समाप्त होने के बाद याचिकाकर्ता के पिता को यूनियन ऑफ इंडिया, शाखा कलेक्टरेट कार्यालय, जिला मऊ, उत्तर प्रदेश में प्रबंधक के पद पर पदोन्नति दी गई। इसके बाद उन्हें अमिलिया शाखा, जिला रीवा (उत्तर प्रदेश) में उप शाखा प्रमुख के पद पर पदोन्नत किया गया।

3. इस स्थिति में यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि याचिकाकर्ता के पिता के सेवा रिकॉर्ड संतोषजनक से कम थे।

4. आक्षेपित आदेश के अनुसार, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति योजना के निम्नलिखित प्रावधानों के आधार पर अमान्य घोषित कर दिया गया है:

"1. अनुकंपा आधार पर नियुक्ति योजना में अनुशासनात्मक कार्रवाई के मामलों पर विचार करने हेतु दिनांक 01/03/2017 का नोट संख्या एचआर एमपीआरडी 119:2017 आज अर्थात् 21.03.2017 को निदेशक मंडल की मानव संसाधन उप-समिति में विचार-विमर्श किया गया।

2. समिति ने संशोधनों से सहमत होते हुए निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं:

क) अनुकंपा नियुक्ति समिति को अनुकंपा नियुक्ति/अनुग्रह भुगतान के सभी अनुरोधों को अस्वीकार करने का अधिकार होगा, ऐसे मामलों में जहां पूर्व कर्मचारी पर सेवा के दौरान कोई गंभीर दंड लगाया गया हो, और/या जहां पूर्व कर्मचारी की मृत्यु के समय लंबित अनुशासनात्मक कार्रवाई के परिणामस्वरूप गंभीर दंड लगाया जा सकता हो;"

5. उपर्युक्त अयोग्यता उस कर्मचारी पर लागू होगी जिसके विरुद्ध गंभीर सजा लगाई गई थी और जो उसकी मृत्यु के समय पत्रवाली में दर्ज थी।
6. उपरोक्त मामले में, जैसा कि देखा गया है, गंभीर सजा दो साल बाद समाप्त हो गई थी, और याचिकाकर्ता के पिता की पदोन्नति के बाद इसका प्रतिकूल प्रभाव जारी नहीं रहा। याचिकाकर्ता के पिता पर लगाई गई उक्त सजा को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए उसके आवेदन को अस्वीकार करने का आधार नहीं बनाया जा सकता।
7. उपरोक्त चर्चा के आलोक में प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 03.03.2021 रद्द किया जाना चाहिए और इसे रद्द किया जाता है।
8. याचिकाकर्ता द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए दिए गए आवेदन पर इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर विधि के अनुसार नए सिरे से विचार किया जाएगा।
9. याचिका को उपरोक्त सीमा तक अनुमति दी जाती है।

(2025) 3 ILRA 882

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्र

माननीय न्यायमूर्ति डोनाडी रमेश

रिट सी संख्या 39442 / 2024

अरविंद कुमार सिंह

.....याची

बनाम

लोक आयुक्त, उत्तर प्रदेश एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री नमित श्रीवास्तव, पारुल श्रीवास्तव

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री मानस भार्गव

ए. सेवा विधि - नियुक्ति - क्षेत्राधिकार - लोक सेवक की नियुक्ति या सेवा शर्तों से संबंधित कोई भी विवाद, चूंकि वे वैधानिक योजना द्वारा विनियमित होते हैं, इसलिए उन्हें अधिनियम 1975 के प्रावधानों से बाहर रखा जाना चाहिए।

किसी लोक सेवक की नियुक्ति अवैध रूप से या विधि के विरुद्ध की गई है, यह अभिकथन लोक आयुक्त या उप लोक आयुक्त के क्षेत्राधिकार में नहीं आता। यह विशेष रूप से इसलिए है क्योंकि धारा 8(1)(ख) लोक आयुक्त/उप लोक आयुक्त के क्षेत्राधिकार से बाहर के मामलों को संदर्भित करती है। तीसरी अनुसूची का खंड (घ) स्पष्ट रूप से यह बताता है कि नियुक्तियों, बर्खास्तगी, वेतन, अनुशासन आदि के संबंध में की गई कार्रवाई लोक आयुक्त/उप लोक आयुक्त की जांच के दायरे से बाहर होगी, सिवाय पेंशन, ग्रेच्युटी, भविष्य निधि आदि के दावों से संबंधित मामलों के, जो सेवानिवृत्ति, बर्खास्तगी या सेवा समाप्ति पर उत्पन्न होते हैं। (पैरा 11)

इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा उप लोक आयुक्त के समक्ष निजी प्रतिवादी की नियुक्ति पर प्रश्न उठाते हुए की गई शिकायत पोषणीय नहीं है। (पैरा 12)

रिट याचिका खारिज। (ई-4)

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्र
&
माननीय न्यायमूर्ति डोनाडी रमेश द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मानस भार्गव, प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. यह रिट याचिका प्रथम प्रतिवादी को याचिकाकर्ता की शिकायत दिनांक 29.05.2023 पर तर्कसंगत आदेश पारित करने का निर्देश देने हेतु परमादेश जारी करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है। इस मामले में प्रथम प्रतिवादी लोक आयुक्त, उत्तर प्रदेश, लखनऊ हैं। शिकायत दिनांक 29.05.2023, बरेली स्थित उप श्रम आयुक्त कार्यालय में वरिष्ठ सहायक के पद पर निजी प्रतिवादी को दिए गए नियुक्ति प्रस्ताव से संबंधित है। याचिकाकर्ता के अनुसार, यह नियुक्ति अवैध रूप से प्राप्त की गई है।

3. रिट याचिका पर सुनवाई के दौरान, उप लोक आयुक्त के समक्ष इस प्रकार के दावे की स्वीकार्यता और इस संबंध में जांच करने के संबंध में संदेह व्यक्त किए गए। इस मामले में 27.2.2025 को निम्नलिखित आदेश पारित किए गए:-

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नमित श्रीवास्तव और प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री मानस भार्गव को सुना।

हमने मामले को आज के लिए स्थगित कर दिया ताकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता न्यायालय को उस पहलू से अवगत करा सकें जिसमें सरकारी कर्मचारी की नियुक्ति को चुनौती दिए जाने के मामले में जांच करने के लिए उप-लोक आयुक्त के क्षेत्राधिकार से संबंधित है।"

इसकी बारी आने पर इसे नवीन सूची में दोहराएं।"

4. श्री मानस भार्गव द्वारा निर्देश प्राप्त किए गए हैं, जिन्होंने एक वैधानिक योजना प्रस्तुत की है, जिसके अनुसार, इस प्रकार की शिकायत जिसमें किसी सरकारी कर्मचारी की नियुक्ति को चुनौती दी गई है, उप लोक आयुक्त के समक्ष सुनवाई योग्य नहीं होगी।

5. इस विवाद को समझने के लिए यह ध्यान देना आवश्यक है कि उत्तर प्रदेश लोक आयुक्त एवं उप लोक आयुक्त अधिनियम, 1975 राज्य द्वारा मंत्रियों, विधायकों और अन्य लोक सेवकों के विरुद्ध शिकायतों और अभिकथनों की जांच के लिए तथा उनसे संबंधित मामलों के लिए कुछ प्राधिकारियों की नियुक्ति एवं कार्यों के प्रावधान हेतु अधिनियमित किया गया है। अधिनियम, 1975 की धारा 2 में परिभाषा खंड निहित है। धारा 2 की उपधारा (ख) तथा धारा 2 की उपधारा (घ) में 'अभिकथन' और 'शिकायतों' को परिभाषित किया गया है, जिनका विवरण नीचे दिया गया है:-

"(ख) 'अभिकथन' का तात्पर्य किसी लोक सेवक के संबंध में ऐसे किसी प्रतिज्ञान से है कि- उस लोक सेवक ने उसी रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अभिलाभ या अनुग्रह अभिप्राप्त करने या किसी अन्य व्यक्ति को अनुचित अपहानि या कष्ट पहुंचाने के लिये किया है या वह उस लोक सेवक के रूप में अपने कृत्यों का निर्वहन करने में व्यक्तिगत हित अथवा अनुचित या भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित था; या वह उस लोक सेवक की हैसियत से भ्रष्टाचार या ईमानदारी की कमी का दोषी हो;

(घ) "शिकायत" का तात्पर्य किसी व्यक्ति के इस दावे से है कि वह कुप्रशासन के परिणामस्वरूप अन्याय या अनुचित कष्ट का भागी बना है;"

6. धारा 8 में उन मामलों का प्रावधान है, जिनकी जांच लोक आयुक्त या उप लोक आयुक्त द्वारा नहीं की जाती है। धारा 8(1)(ख)(i) के अंतर्गत हमारा ध्यान इस ओर दिलाया गया है, जिसे आगे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"8(1)(ख) जिस परिवाद में किसी कार्यवाही के संबंध में शिकायत सन्निहित हो, उस मामले में -

(1) यदि ऐसी कार्यवाही तृतीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय के सम्बन्ध में हो;

(2) यदि परिवादी के पास किसी अधिकरण या न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के रूप में कोई उपचार है या था

प्रतिबन्ध यह है कि उप खण्ड (2) की कोई बात लोक आयुक्त या उप लोक आयुक्त को अन्वेषण करने से नहीं रोकेगी, यदि उसका यह समाधान हो जाय कि ऐसा व्यक्ति पर्याप्त कारण से उस उप खण्ड में निर्दिष्ट उपचार का आश्रय नहीं ले सकता है या था।”

7. उपरोक्त प्रावधान के अनुसार, तीसरी अनुसूची तैयार की गई है, जिसमें खंड (घ) नियुक्ति से संबंधित है और इसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

“(घ) लोक सेवकों की नियुक्ति, निष्कासन, वेतन, अनुशासन, अधिवार्षिकी या सेवा शर्तों से संबंधित अन्य विषयों के बारे में की गयी कार्यवाही, किन्तु इसके अन्तर्गत पेंशन, अनुग्रह राशि, भविष्य निधि का कोई दावा अथवा सेवा निवृत्ति, निष्कासन अथवा सेवा निवृत्ति निष्कासन अथवा सेवा समापन से प्रोद्भूत कोई दावा सम्मिलित नहीं है।”

8. उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 42 / 1975 में निहित वैधानिक योजना से उद्देश्य स्पष्ट रूप से प्रकट होता है, जो मंत्रियों, विधायकों और अन्य लोक सेवकों के विरुद्ध शिकायतों और अभिकथनों की जांच करने वाले अधिकारियों की नियुक्ति और कार्य के लिए प्रावधान करना है।

9. लोक आयुक्त और उप लोक आयुक्त की नियुक्ति का प्राथमिक उद्देश्य मंत्रियों, विधायकों और अन्य लोक सेवकों के विरुद्ध उनके आधिकारिक कार्यों के निर्वहन से संबंधित अभिकथनों की जांच करना है। यह योजना स्पष्ट है, क्योंकि विधानमंडल ने अभिकथन को परिभाषित करते हुए स्पष्ट रूप से लोक सेवक से संबंधित उन अभिकथनों को भी शामिल किया है, जिनमें अपनी स्थिति का दुरुपयोग अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अभिलाभ या अनुग्रह अभिप्राप्त करने या किसी अन्य व्यक्ति को अनुचित अपहानि या कष्ट पहुंचाने के लिये किया है या वह उस लोक सेवक के रूप में अपने कृत्यों का निर्वहन करने में व्यक्तिगत हित अथवा अनुचित या भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित था; या वह उस लोक सेवक की हैसियत से भ्रष्टाचार या ईमानदारी की कमी का दोषी हो जैसे अभिकथन शामिल हैं।

10. धारा 2(घ) में लोक आयुक्त द्वारा सुनी जा सकने वाली शिकायतों का भी उल्लेख किया गया है, जिसमें किसी व्यक्ति का यह दावा शामिल है कि उसे कुप्रशासन के परिणामस्वरूप अन्याय या अनुचित कठिनाई का सामना करना पड़ा है; या यह शिकायत कि उत्तर प्रदेश राज्य के मामलों से संबंधित किसी लोक सेवा या पद पर नियुक्ति करने के लिए अधिकृत किसी प्राधिकारी ने उत्तर प्रदेश लोक आयुक्त और उप लोक आयुक्त (संशोधन) अधिनियम, 1989 के लागू होने के बाद राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के लिए आरक्षण कोटा का उल्लंघन करते हुए कोई नियुक्ति की है।

11. किसी लोक सेवक की नियुक्ति अवैध रूप से या विधि के विरुद्ध की गई है, यह अभिकथन लोक आयुक्त या उप लोक आयुक्त के क्षेत्राधिकार में नहीं आता। ऐसा इसलिए है क्योंकि धारा 8(1)(ख) लोक आयुक्त/उप

लोक आयुक्त के क्षेत्राधिकार से बाहर के मामलों को संदर्भित करती है। तीसरी अनुसूची का खंड (घ) स्पष्ट रूप से यह बताता है कि नियुक्तियों, बर्खास्तगी, वेतन, अनुशासन आदि के संबंध में की गई कार्रवाई लोक आयुक्त/उप लोक आयुक्त की जांच के दायरे से बाहर होगी, सिवाय पेंशन, ग्रेज्युटी, भविष्य निधि आदि के दावों से संबंधित मामलों के, जो सेवानिवृत्ति, बर्खास्तगी या सेवा समाप्ति पर उत्पन्न होते हैं।

12. लोक सेवक की नियुक्ति या सेवा शर्तों से संबंधित कोई भी विवाद, चूंकि वैधानिक व्यवस्था द्वारा विनियमित होते हैं, इसलिए उन्हें अधिनियम 1975 के प्रावधानों से बाहर रखा गया है। ऐसा होने पर, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश लोक आयुक्त के समक्ष निजी प्रतिवादी की नियुक्ति पर प्रश्न उठाते हुए की गई शिकायत पोषणीय नहीं है। यदि ऐसा है, तो याचिकाकर्ता की शिकायत पर निर्णय लेने के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है।

13. रिट याचिका असफल होती है और निरस्त की जाती है।

(2025) 3 ILRA 885

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट ए संख्या 13305 / 2024

आर. के. प्रसाद एवं अन्य

.....याचीगण

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री रमेश चंद्र तिवारी, अधिवक्ता

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

श्री सुदर्शन सिंह, केंद्रीय सरकारी अधिवक्ता

ए. सेवा विधि - मूल वेतन का निर्धारण - काल्पनिक वेतनवृद्धि का अनुदान - पेंशन - पिछले वर्ष के दौरान सरकारी कर्मचारी द्वारा अर्जित वार्षिक वेतनवृद्धि को उसकी पेंशन संबंधी लाभों के निर्धारण के उद्देश्य से मात्र इसलिए अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वह वेतनवृद्धि के वास्तविक देय होने वाले दिन सेवा में नहीं

था, अर्थात् यदि वह वेतनवृद्धि के देय होने से एक दिन पहले सेवानिवृत्त हो गया हो, जबकि उसने एक पूरा वर्ष सेवा पूरी कर ली हो और अन्यथा वह वेतनवृद्धि का पात्र हो। कर्मचारी के सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के निर्धारण के उद्देश्य से वेतनवृद्धि को काल्पनिक रूप से प्रदान किया जाना चाहिए और उसका लाभ दिया जाना चाहिए। (पैरा 7, 8)

ख. आवेदन लंबित होने से प्रतिवादियों, जिनमें उक्त प्रतिवादियों का एक अधिकारी भी शामिल है, को यह कहने का अधिकार नहीं मिल जाता कि वे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार इस न्यायालय के आदेशों का पालन करने में असमर्थ हैं, मात्र इसलिए कि स्पष्टीकरण आवेदन दायर किए गए हैं। निःसंदेह, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 141 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित विधि से बाध्य है और प्रतिवादी का प्रत्येक अधिकारी इस न्यायालय के प्रत्येक आदेश का पालन करने के लिए बाध्य है, जब तक कि अपील में उसे रद्द या स्थगित न कर दिया जाए। (पैरा 11)

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाए जाने के बाद, वह अंतिम नहीं रह जाता। सर्वोच्च न्यायालय से ऊपर कोई न्यायालय नहीं है, और एक बार उनके द्वारा निर्णय सुनाए जाने के बाद, दोनों पक्षों के लिए मामला समाप्त हो जाता है।

किसी संवैधानिक न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में निर्धारित विधि की अवहेलना करने के बहाने सरकार का कोई भी अधिकारी किसी आदेश की अवहेलना नहीं कर सकता, और इससे भी बढ़कर, सरकार के नीतिगत निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे पक्षों के बीच दायर रिट याचिका की अवहेलना नहीं कर सकता। यह सत्य है कि प्रत्येक वादी को न्यायालय, यहां तक कि संवैधानिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश का स्पष्टीकरण मांगने का अधिकार है, लेकिन सरकार के किसी भी अधिकारी को यह कहने का अधिकार नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का लाभ या उच्च न्यायालय के आदेश का अनुपालन, यदि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थगित या रद्द नहीं किया जाता है, तो भारत सरकार के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के नीतिगत निर्णय पर निर्भर करेगा। एक बार जारी की गई न्यायालय की रिट याचिका पर भारत सरकार कोई निर्णय नहीं दे सकती। रिट याचिका तभी रुकती है जब अपील जैसी सक्षम कार्यवाही में, यदि आदेश के विरुद्ध अपील स्वीकार की जाती है, समीक्षा, स्पष्टीकरण या ऐसी ही किसी अन्य कार्यवाही में इसे स्थगित कर दिया जाता है। महानिदेशक, आरपीएफ, रेलवे बोर्ड का यह कहना और भी अपमानजनक है कि वे 30 जून को सेवानिवृत्त हुए याचिकाकर्ताओं को निर्णय के अनुसार एक काल्पनिक वेतन वृद्धि का लाभ देने की स्थिति में नहीं हैं। (पैरा 10)

याचिकाकर्ता और उनमें से प्रत्येक 30 जून को सेवानिवृत्त होने वाले संबंधित वर्षों के लिए काल्पनिक वेतनवृद्धि प्राप्त करने के पात्र होंगे, लेकिन उन्हें 1 मई, 2023 से प्रभावी काल्पनिक वेतनवृद्धि सहित उनके संशोधित वेतन के आधार पर पेंशन का भुगतान किया जाएगा। (पैरा 14, 15, 17)

रिट याचिका की अनुमति। (ई-4)

पूर्व-निर्णय अनुपालित:

1. निदेशक (प्रशासन एवं मानव संसाधन) केपीटीसीएल एवं अन्य बनाम सी.पी. मुंडिनमणि एवं अन्य, (2023) 14 एससीसी 411 (पैरा 3)
2. भारत संघ एवं अन्य बनाम एम. सिद्धराज, विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 4722 / 2021 (पैरा 8)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका बारह याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर की गई है, सभी रेलवे सुरक्षा बल के कर्मचारी हैं और जो अलग-अलग वर्षों में लेकिन 30 जून को सेवा से सेवानिवृत्त हुए, चूंकि वे अपनी सेवानिवृत्ति के वर्ष की 1 जुलाई को सेवा में नहीं थे, इसलिए उन्हें सेवानिवृत्ति से पहले के वर्ष की 1 जुलाई से 30 जून तक की अवधि के लिए अर्जित वार्षिक वेतनवृद्धि से वंचित कर दिया गया, इस आधार पर कि वे सेवानिवृत्ति के वर्ष की 1 जुलाई को सेवा में नहीं थे, जिस दिन संबंधित वर्ष की वेतनवृद्धि देय होती। संक्षेप में, याचिकाकर्ताओं का दावा है कि यद्यपि उन्होंने सेवानिवृत्ति के संबंधित वर्ष के दौरान, सेवानिवृत्ति के वर्ष की 1 जुलाई से 30 जून तक पूरे एक वर्ष की अवधि के लिए कार्य करके वार्षिक वेतनवृद्धि अर्जित की है, फिर भी उन्हें इस भ्रामक आधार पर इससे वंचित कर दिया गया है कि जिस दिन वास्तव में वेतनवृद्धि देय थी, अर्थात् उनकी संबंधित सेवानिवृत्ति के वर्ष की 1 जुलाई को, वे सेवा में नहीं थे। सभी याचिकाकर्ता प्रार्थना करते हैं कि एक *परमादेश* जारी किया जाए, जिसमें प्रतिवादियों को यह आदेश दिया जाए कि वे उन्हें उनकी सेवानिवृत्ति के संबंधित वर्षों की 1 जुलाई को एक काल्पनिक वेतनवृद्धि प्रदान करें, जो प्रत्येक मामले में उस वर्ष की 30 जून को पड़ी थी, ताकि उनके पेंशन लाभों का निर्धारण किया जा सके। वे आगे यह भी मांग करते हैं कि प्रतिवादियों को काल्पनिक वेतनवृद्धि प्रदान करने के बाद प्रत्येक याचिकाकर्ता को देय मूल वेतन का पुनर्निर्धारण करने, उनके पेंशन लाभों को तदनुसार संशोधित करने और ब्याज सहित बकाया राशि का भुगतान करने का आदेश दिया जाए।

2. बारह याचिकाकर्ताओं का विवरण नीचे सारणीबद्ध रूप में दिया गया है:

याचिकाकर्ता संख्या	याचिकाकर्ता का नाम	सेवानिवृत्ति के समय धारित पद	सेवानिवृत्ति की तिथि	दावा
1	आर.के. प्रसाद	सहायक सुरक्षा आयुक्त	30.06.2009	वर्ष 2009 के लिए काल्पनिक वृद्धि
2	शिव पूजन	निरीक्षक	30.06.2017	वर्ष 2017 के लिए काल्पनिक वृद्धि

3	विंध्याचल	निरीक्षक	30.06.2014	वर्ष 2014 के लिए काल्पनिक वृद्धि
4	छेदी लाल	उप-निरीक्षक	30.06.2024	वर्ष 2024 के लिए काल्पनिक वृद्धि
5	केदार नाथ	सहायक उप- निरीक्षक	30.06.2017	वर्ष 2017 के लिए काल्पनिक वृद्धि
6	वीरेंद्र प्रसाद शर्मा	कांस्टेबल	30.06.2023	वर्ष 2023 के लिए काल्पनिक वृद्धि
7	मोती लाल	हेड कांस्टेबल	30.06.2021	वर्ष 2021 के लिए काल्पनिक वृद्धि
8	राम प्रसाद राम	सहायक उप- निरीक्षक	30.06.2011	वर्ष 2011 के लिए काल्पनिक वृद्धि
9	कृष्णानंद मॉल	सहायक उप- निरीक्षक	30.06.2008	वर्ष 2008 के लिए काल्पनिक वृद्धि
10	वीरेंद्र प्रसाद	हेड कांस्टेबल	30.06.2008	वर्ष 2008 के लिए काल्पनिक वृद्धि
11	रामा शंकर सिंह	हेड कांस्टेबल	30.06.2022	वर्ष 2022 के लिए काल्पनिक वृद्धि
12	राम प्रसाद	उप-निरीक्षक	30.06.2018	वर्ष 2018 के लिए काल्पनिक वृद्धि

3. याचिकाकर्ताओं का कहना है कि उन्हें 30 जून को मिलने वाली वेतनवृद्धि से वंचित कर दिया गया है, जबकि यह वेतनवृद्धि उन्हें मिलनी ही थी, सिर्फ इसलिए कि वे 1 जुलाई से एक दिन पहले सेवानिवृत्त हुए, जबकि उस दिन वेतनवृद्धि देय थी। याचिकाकर्ताओं ने उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के उस प्रमुख निर्णय का हवाला दिया है, जो **निदेशक (प्रशासन और मानव संसाधन) केपीटीसीएल एवं अन्य बनाम सी.पी. मुंडिनमणि एवं अन्य** के मामले में दिया गया था। इस निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि 30 जून को सेवानिवृत्त होने वाले सरकारी कर्मचारी को देय वेतनवृद्धि काल्पनिक रूप से दी जानी चाहिए और उनके सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों की गणना मूल वेतन के आधार पर की जानी चाहिए, जिसमें काल्पनिक वेतनवृद्धि जोड़ी गई हो।

4. इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 31.08.2024 द्वारा एक नोटिस जारी किया और विधि की स्थापित स्थिति का हवाला देते हुए, **सी.पी. मुंडिनमणि** (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के दृष्टिगत, महानिदेशक, आरपीएफ, रेलवे बोर्ड, नई दिल्ली को शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया, जिसमें यह कारण बताना था कि बारह याचिकाकर्ताओं में से प्रत्येक के मामले में लागू काल्पनिक वार्षिक वेतनवृद्धि क्यों नहीं दी गई और उनके सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों को तदनुसार संशोधित क्यों नहीं किया गया। उत्तर में, मनोज यादव, महानिदेशक, आरपीएफ, रेलवे बोर्ड, नई दिल्ली ने अपना शपथपत्र दाखिल किया है।

5. जब यह याचिका 20.09.2024 को सुनवाई के लिए आई, तो महानिदेशक का उपर्युक्त व्यक्तिगत शपथपत्र न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। न्यायालय ने व्यक्तिगत शपथपत्र को रिट याचिका के प्रतिवाद शपथपत्र के रूप में मानने का प्रस्ताव रखा, जिस पर केंद्रीय सरकार के विद्वान अधिवक्ता श्री सुदर्शन सिंह ने कोई आपत्ति नहीं जताई। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पत्युतर दाखिल करने के अपने अधिकार को त्याग दिया। याचिका सुनवाई के लिए स्वीकार कर ली गई, जो तुरंत शुरू हुई। निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

6. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र तिवारी और प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित केंद्रीय सरकार के विद्वान अधिवक्ता श्री सुदर्शन सिंह को सुना।

7. अब, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, **सी.पी. मुंडिनमणि** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने देश भर के विभिन्न उच्च न्यायालयों के मतों पर विचार किया और स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि किसी सरकारी कर्मचारी को वार्षिक वेतनवृद्धि से वंचित कर दिया जाता है, जो उसने अपनी सेवा के पिछले वर्ष में अर्जित कर ली थी, मात्र इसलिए कि वह वार्षिक वेतनवृद्धि के वास्तव में देय होने से एक दिन पहले सेवानिवृत्त हो गया था और यदि वह एक दिन और सेवा में रहता तो यह वेतनवृद्धि उसके वेतन में जुड़ जाती, तो यह मनमानी होगी। **सी.पी. मुंडिनमणि** में प्रतिपादित विधि का यही स्पष्ट सार है, जहां माननीय न्यायाधीशों ने टिप्पणी की है:

16. अब, अपीलकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत इस तर्क के संबंध में कि चूंकि वेतन वृद्धि अर्जित होने के अगले दिन से ही लागू हो जाती है, इसलिए यदि किसी कर्मचारी ने अपनी सेवानिवृत्ति से एक दिन पहले वेतन वृद्धि अर्जित कर ली है, लेकिन वह उस दिन सेवा में नहीं है जिस दिन वेतन वृद्धि लागू होती है, तो उपरोक्त मुद्दे पर विचार करते समय वार्षिक वेतन वृद्धि प्रदान करने के उद्देश्य और प्रयोजन पर विचार करना आवश्यक है।

17. सरकारी कर्मचारी को एक वर्ष की सेवा के दौरान अच्छे आचरण के आधार पर वार्षिक वेतन वृद्धि दी जाती है। अच्छे आचरण वाले अधिकारियों को वार्षिक वेतन वृद्धि दी जाती है, जब तक कि ऐसी वेतन वृद्धि दंड के रूप में रोकी न जाए या दक्षता से संबंधित न हो। इसलिए, वेतन वृद्धि एक वर्ष/निर्दिष्ट अवधि में अच्छे आचरण के साथ सेवा प्रदान करने के लिए अर्जित की जाती है। अतः, जैसे ही कोई सरकारी कर्मचारी

एक निश्चित अवधि तक अच्छे आचरण के साथ सेवा प्रदान करता है, वह वार्षिक वेतन वृद्धि का पात्र हो जाता है और यह कहा जा सकता है कि उसने अच्छे आचरण के साथ सेवा की निर्दिष्ट अवधि प्रदान करने के लिए वार्षिक वेतन वृद्धि अर्जित की है। अतः, वह एक निर्दिष्ट अवधि (एक वर्ष) तक अच्छे आचरण के साथ कुशलतापूर्वक सेवा करने पर वार्षिक वेतन वृद्धि के लाभ का पात्र है। मात्र इसलिए कि सरकारी कर्मचारी अगले ही दिन सेवानिवृत्त हो जाता है, उसे उस वार्षिक वेतन वृद्धि से कैसे वंचित किया जा सकता है जो उसने पिछले एक वर्ष में अच्छे आचरण और दक्षता के साथ सेवा प्रदान करने के लिए अर्जित की है और/या जिसके वह पात्र है।

18. गोपाल सिंह [गोपाल सिंह बनाम भारत संघ, 2020 एससीसी ऑनलाइन डेल 2640] (नंद विजय सिंह [नंद विजय सिंह बनाम भारत संघ, 2021 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1090]) पैरा 20, 23 और 24 में, दिल्ली (इलाहाबाद) उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन और अभिनिर्धारित किया : (नंद विजय सिंह मामला [नंद विजय सिंह बनाम भारत संघ, 2021 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1090], एससीसी ऑनलाइन ऑल)

“20. केंद्रीय सरकारी कर्मचारी को वेतन और वेतन वृद्धि का भुगतान वित्तीय नियमन एफ.आर., सीएसआर और केंद्रीय सिविल सेवा (पेंशन) नियमों के प्रावधानों द्वारा विनियमित होता है। एफ.आर. 9(21) में परिभाषित वेतन का अर्थ केंद्रीय सरकारी कर्मचारी द्वारा मासिक रूप से प्राप्त की जाने वाली राशि है और इसमें वेतन वृद्धि भी शामिल है। लागू प्रावधानों को समग्र रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकारी कर्मचारी को वार्षिक वेतन वृद्धि इसलिए दी जाती है ताकि वह अपने पद के कर्तव्यों का निर्वहन कर सके और वेतन एवं भत्ते भी पद से जुड़े होते हैं। सीएसआर का अनुच्छेद 43 प्रगतिशील नियुक्ति को ऐसी नियुक्ति के रूप में परिभाषित करता है जिसमें अधिकारी के अच्छे आचरण के अधीन वेतन प्रगतिशील होता है। इसका तात्पर्य है कि वेतन न्यूनतम से अधिकतम तक आवधिक वेतन वृद्धि द्वारा बढ़ता है। प्रगतिशील नियुक्ति के मामले में वेतन वृद्धि सीएसआर के अनुच्छेद 151 में निर्दिष्ट है, जिसका अर्थ है कि वेतन वृद्धि उस तिथि के अगले दिन से अर्जित होती है जिस दिन वह अर्जित की जाती है। समग्र रूप से देखने पर यह योजना स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि केंद्रीय सरकारी कर्मचारी की नियुक्ति एक प्रगतिशील नियुक्ति है और न्यूनतम से अधिकतम तक वेतन में आवधिक वेतन वृद्धि प्रगतिशील नियुक्ति वेतन संरचना का हिस्सा है। सीएसआर के अनुच्छेद 151 में यह प्रावधान है कि वेतन वृद्धि उस दिन के अगले दिन से लागू होती है जिस दिन वह अर्जित की जाती है। यह वेतन वृद्धि स्वतःस्फूर्त नहीं है, बल्कि केंद्रीय सरकारी कर्मचारी के अच्छे आचरण पर निर्भर करती है। अतः यह स्पष्ट है कि केंद्रीय सरकारी कर्मचारी को एक निश्चित अवधि (अर्थात् वार्षिक वेतन वृद्धि के मामले में एक वर्ष) के लिए अपने अच्छे आचरण के आधार पर वेतन वृद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार वेतन वृद्धि प्रगतिशील नियुक्ति का अभिन्न अंग है और यह उस दिन के अगले दिन से लागू होती है जिस दिन वह अर्जित की जाती है।

23. वार्षिक वेतनवृद्धि पद से जुड़ी होती है और जिस दिन यह अर्जित की जाती है उसके अगले दिन से देय हो जाती है, लेकिन वेतनवृद्धि अर्जित होने या देय होने का दिन अंतिम या निर्णायक नहीं होता। प्रगतिशील नियुक्ति को नियंत्रित करने वाली वैधानिक योजना में, सरकारी कर्मचारी द्वारा एक वर्ष में दी गई

सेवाओं के आधार पर वेतनवृद्धि देय होती है, बशर्ते उसका आचरण अच्छा हो। केंद्रीय सरकारी कर्मचारी का वेतन निर्धारित वेतनमान में न्यूनतम से अधिकतम तक आवधिक वेतनवृद्धि द्वारा बढ़ता है। इसलिए, वेतनवृद्धि प्राप्त करने का अधिकार तब निश्चित हो जाता है जब सरकारी कर्मचारी अच्छे आचरण के साथ निर्धारित सेवा अवधि पूरी कर लेता है और यह अगले दिन से देय हो जाता है।

24. ... इसके उद्देश्य को अलग रखते हुए, पात्रता तिथि के बाद की तिथि का निर्धारण निरर्थक है और न ही इससे कोई उद्देश्य पूरा किया जाना है। 30 जून को सेवानिवृत्त होने वाले केंद्रीय सरकारी कर्मचारी ने पहले ही एक वर्ष की सेवा पूरी कर ली है और यदि उनका आचरण अच्छा रहा हो तो उन्हें वेतन वृद्धि मिल चुकी है। इसलिए, यदि केंद्रीय सरकारी कर्मचारी को एक वर्ष के अच्छे आचरण के आधार पर अर्जित वेतन वृद्धि मात्र इस आधार पर नकारी जाती है कि वह उस दिन कार्यरत नहीं था जिस दिन वेतन वृद्धि देय हुई, तो यह पूरी तरह से मनमाना होगा। 30 जून को सेवानिवृत्त होने वाले सरकारी कर्मचारी के मामले में, जिस दिन वेतन वृद्धि देय होती है, उसके अगले दिन का महत्व समाप्त हो जाता है और एक वर्ष की संतोषजनक सेवा के लिए वेतन वृद्धि प्राप्त करने के सरकारी कर्मचारी के अधिकार को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, ताकि इस योजना की व्याख्या इस प्रकार न की जाए कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित तर्कसंगतता की भावना का उल्लंघन करे। वेतन वृद्धि के भुगतान की योजना को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और सीएसआर के अनुच्छेद 151 के एक भाग को अलग से नहीं पढ़ा जा सकता है जिससे दूसरे भाग का उल्लंघन हो, खासकर तब जब दूसरा भाग केंद्रीय सरकारी कर्मचारी को वेतन वृद्धि प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है। इससे यह सुनिश्चित होगा कि प्रगतिशील नियुक्ति की योजना बरकरार रहे और सरकारी कर्मचारी द्वारा अर्जित अधिकार सुरक्षित रहें और किसी आकस्मिक परिस्थिति के कारण उनसे वंचित न किया जाए।

19. नंद विजय सिंह [नंद विजय सिंह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, 2021 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1090] मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इसी मुद्दे पर विचार करते हुए पैरा 24 में निम्नलिखित अवलोकन और अभिनिर्धारित किया : (एससीसी ऑनलाइन ऑल)

“24. यह विधि स्थापित है कि जहां किसी लाभ को प्राप्त करने का अधिकार विधि में स्पष्ट हो जाता है, वहां वैध कारण के बिना उसका अस्वीकार मनमाना होगा। वेतन वृद्धि के लाभ से अस्वीकार करने का एकमात्र कारण, जो योजना से निकाला गया है, वह यह है कि केंद्रीय सरकारी कर्मचारी उस दिन पद पर नहीं है जिस दिन वेतन वृद्धि देय होती है। यह वेतन वृद्धि से अस्वीकार करने का वैध आधार नहीं हो सकता क्योंकि वेतन वृद्धि अर्जित होने की तिथि के अगले दिन का उद्देश्य मात्र अच्छे आचरण के साथ एक वर्ष की सेवा पूरी होने को सुनिश्चित करना है और इसके लिए कोई अन्य उद्देश्य नहीं निकाला जा सकता है। वेतन वृद्धि अर्जित होने के अगले दिन की अवधारणा का अन्यथा कोई उद्देश्य नहीं है। इसके उद्देश्य से अलग, पात्रता तिथि के बाद के दिन का निर्धारण न तो समझ में आता है और न ही इससे कोई उद्देश्य प्राप्त किया जाना है। 30 जून को सेवानिवृत्त होने वाले केंद्रीय सरकारी कर्मचारी ने पहले ही एक वर्ष की सेवा पूरी कर ली है और यदि उसका आचरण अच्छा था तो उसे वेतन वृद्धि मिल चुकी है। इसलिए, यदि केंद्रीय सरकारी कर्मचारी

द्वारा अर्जित वेतन वृद्धि को अस्वीकार कर दिया जाता है तो यह पूरी तरह से मनमाना होगा। एक वर्ष तक अच्छे आचरण के आधार पर वेतन वृद्धि से मात्र इस आधार पर अस्वीकार किया जाता है कि जिस दिन वेतन वृद्धि देय हुई, उस दिन वह कार्यरत नहीं था। 30 जून को सेवानिवृत्त होने वाले सरकारी कर्मचारी के मामले में, जिस दिन वेतन वृद्धि देय होती है, उसके अगले दिन का महत्व समाप्त हो जाता है और एक वर्ष की संतोषजनक सेवा के कारण वेतन वृद्धि प्राप्त करने के सरकारी कर्मचारी के अधिकार को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, ताकि योजना की व्याख्या इस प्रकार न की जाए कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित तर्कसंगतता की भावना का उल्लंघन करे। वेतन वृद्धि भुगतान योजना को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और सीएसआर के अनुच्छेद 151 के एक भाग को अलग से नहीं पढ़ा जा सकता है जिससे दूसरे भाग का हनन हो, विशेष रूप से तब जब दूसरा भाग केंद्रीय सरकारी कर्मचारी को वेतन वृद्धि प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है। इससे यह सुनिश्चित होगा कि प्रगतिशील नियुक्ति योजना बरकरार रहे और सरकारी कर्मचारी द्वारा अर्जित अधिकार संरक्षित रहें और किसी आकस्मिक परिस्थिति के कारण उनसे वंचित न किया जाए।"

20. इसी तरह का विचार विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा भी व्यक्त किया गया है, जैसे कि गुजरात [गुजरात राज्य बनाम तखतसिंह उदेसिंह सोंगारा, 2022 एससीसी ऑनलाइन गुज 2522] उच्च न्यायालय, मध्य प्रदेश [योगेंद्र सिंह भदौरिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन एमपी 4654] उच्च न्यायालय, उड़ीसा [अरुण कुमार बिस्वाल बनाम ओडिशा राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन ओरि 2368] उच्च न्यायालय और मद्रास [पी. अय्यमपेरुमल बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, 2017 एससीसी ऑनलाइन मद्रास 37963] उच्च न्यायालय। जैसा कि ऊपर बताया गया है, विनियमों के विनियम 40(1) की व्याख्या जिस प्रकार से अपीलकर्ताओं ने की है, वह मनमानी को बढ़ावा देगी और एक सरकारी कर्मचारी को वार्षिक वेतनवृद्धि के लाभ से वंचित करेगी, जो उसने पिछले वर्ष में अच्छे आचरण और दक्षता के साथ निर्धारित सेवा अवधि प्रदान करते हुए अर्जित की है। यह किसी व्यक्ति को बिना किसी गलती के दंडित करने के समान होगा। जैसा कि ऊपर बताया गया है, वेतनवृद्धि मात्र दंड के रूप में या कर्तव्य का कुशलतापूर्वक निर्वहन न करने पर ही रोकी जा सकती है। किसी भी ऐसी व्याख्या से बचना चाहिए जो मनमानी और/या अनुचितता की ओर ले जाए। यदि अपीलकर्ताओं की ओर से सुझाई गई व्याख्या और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा लिए गए मत [प्रधान महालेखाकार, ए.पी. बनाम सी. सुब्बा राव, 2005 एससीसी ऑनलाइन एपी 47] को स्वीकार कर लिया जाए, तो यह सरकारी कर्मचारी को उसके अच्छे आचरण के अधीन एक वर्ष में दी गई सेवाओं के लिए अर्जित वार्षिक वेतनवृद्धि से वंचित करने के समान होगा। अतः वेतनवृद्धि प्राप्त करने का अधिकार तब सिद्ध होता है जब सरकारी कर्मचारी अच्छे आचरण के साथ आवश्यक सेवा अवधि पूरी कर लेता है और यह अगले दिन देय हो जाता है।

21. वर्तमान मामले में "संचय" शब्द को व्यापक अर्थ में समझा जाना चाहिए, जिसका अर्थ है अगले दिन देय। इसके विपरीत कोई भी दृष्टिकोण मनमानी और अनुचितता को जन्म देगा और एक सरकारी कर्मचारी को वैध वार्षिक वेतन वृद्धि से वंचित कर देगा, जबकि वह एक वर्ष से अधिक समय तक अच्छे व्यवहार और कुशलता से सेवा प्रदान करने के लिए इसका पात्र है। इसलिए, इस तरह की संकीर्ण व्याख्या से बचना चाहिए।

22. हम पी. अय्यमपेरुमल [पी. अय्यमपेरुमल बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, 2017 एससीसी ऑनलाइन मद्रास 37963] में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से पूर्णतः सहमत हैं; गोपाल सिंह [गोपाल सिंह बनाम भारत संघ, 2020 एससीसी ऑनलाइन दिल्ली 2640] में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से; नंद विजय सिंह [नंद विजय सिंह बनाम भारत संघ, 2021 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1090] में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से; योगेंद्र सिंह भदौरिया [योगेंद्र सिंह भदौरिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन एमपी 4654] में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से; अरुण कुमार बिस्वाल [अरुण कुमार बिस्वाल बनाम ओडिशा राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन ओरि 2368] में उड़ीसा उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से; और गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा तखतसिंह उदेसिंह सोंगारा [गुजरात राज्य बनाम तखतसिंह उदेसिंह सोंगारा, 2022 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 2522] लिए गए दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत हैं। हम आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा प्रधान महालेखाकार, ए.पी. [प्रधान महालेखाकार, ए.पी. बनाम सी. सुब्बा राव, 2005 एससीसी ऑनलाइन एपी 47] के मामले में लिए गए विपरीत दृष्टिकोण और केरल उच्च न्यायालय द्वारा भारत संघ बनाम पवित्रां के. [भारत संघ बनाम पवित्रां के., 2022 एससीसी ऑनलाइन केरल 5922] और हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा हरि प्रकाश बनाम एच.पी. राज्य [हरि प्रकाश बनाम एच.पी. राज्य, 2020 एससीसी ऑनलाइन एचपी 2362] के मामले में लिए गए विपरीत दृष्टिकोण को भी अस्वीकार करते हैं।

8. इसलिए, सी.पी. मुंडिनामणि मामले में स्पष्ट उत्तर दिया गया था। पिछले वर्ष के दौरान किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा अर्जित वार्षिक वेतनवृद्धि को उसकी पेंशन संबंधी लाभों के निर्धारण के उद्देश्य से मात्र इसलिए नकारा नहीं जा सकता था कि वह वेतनवृद्धि के देय होने के दिन सेवा में नहीं था, अर्थात् यदि वह वेतनवृद्धि के देय होने से एक दिन पहले सेवानिवृत्त हो गया था, जबकि उसने एक पूरा वर्ष सेवा पूरी कर ली थी और अन्यथा वह वेतनवृद्धि का पात्र था। वेतनवृद्धि को सांकेतिक रूप से प्रदान किया जाना था और कर्मचारी के सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के निर्धारण के उद्देश्य से इसका लाभ दिया जाना था। लेकिन, ऐसा प्रतीत होता है कि सी.पी. मुंडिनामणि मामले में निर्णय के बाद, विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 4722/2021, भारत संघ एवं अन्य बनाम एम. सिद्धराज का मामला न्यायालय के समक्ष आया, जहाँ माननीय न्यायाधीशों ने राय दी कि यह मुद्दा सी.पी. मुंडिनामणि मामले के समान ही था। इसलिए, माननीय न्यायाधीशों ने अनुमति देने के बाद, सी.पी. मुंडिनामणि मामले में दिए गए निर्णय के अनुसार इन सिविल अपीलों का निस्तारण किया। इससे इस मुद्दे का अंत हो जाना चाहिए था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

9. इस न्यायालय ने महानिदेशक द्वारा व्यक्तिगत शपथपत्र में लिए गए रुख को पूरी तरह से अवैध, बल्कि एक भाग में तो अवज्ञापूर्ण पाया है। यह रुख, हालांकि एक लंबे-चौड़े शपथपत्र में व्यक्त किया गया है, इसके प्रत्येक शब्द को स्पष्ट रूप से बताना आवश्यक है। शपथपत्र इस प्रकार है:

7. उपर्युक्त एसएलपी में निर्णयों के आशय के बाद, इस विषय पर नीतिगत निर्देश जारी करने के लिए नोडल मंत्रालय के रूप में डीओपी एंड टी द्वारा ऐसे लाभों के अनुदान संबंधी नीति को प्रतिपादित करना आवश्यक था। यह नीति भारत सरकार के अधीन सभी मंत्रालयों/विभागों पर लागू होगी।

8. यह कि, महानिदेशक/आरपीएफ के नेतृत्व वाला सुरक्षा निदेशालय रेल मंत्रालय के निदेशालयों में से एक है। वर्तमान प्रावधानों के अनुसार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एसएलपी (सी) संख्या 6185/2020 दिनांक 11.04.2020 के मामले में दिए गए निर्णय के बाद, सेवानिवृत्त रेल कर्मचारियों के पेंशन संबंधी मामलों का निस्तारण रेल मंत्रालय के वेतन आयोग निदेशालय और वित्त निदेशालय द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त, रेल बोर्ड के सुरक्षा निदेशालय को इन निदेशालयों (वेतन आयोग निदेशालय और वित्त निदेशालय) में से किसी से भी कोई निर्देश प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए, महानिदेशक/आरपीएफ, निर्णय के अनुसार 30 जून को सेवानिवृत्त हुए याचिकाकर्ताओं को एक काल्पनिक वेतनवृद्धि का लाभ देने की स्थिति में नहीं हैं।

9. इसके अतिरिक्त, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सेवानिवृत्ति की तिथि अर्थात 30 जून और 31 दिसंबर को देय वेतन वृद्धि को नाममात्र रूप से प्रदान करने के मुद्दे पर कोई विशिष्ट नीतिगत दिशानिर्देश नहीं हैं, रेल मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर है, भारत सरकार (व्यवसाय का आवंटन) नियम, 1961 के अंतर्गत, सभी समान रूप से स्थित पेंशनभोगियों को नाममात्र वेतन वृद्धि का लाभ देने का कोई एकतरफा निर्णय लेना। इसे और स्पष्ट करने के लिए, यह कहा गया है कि उपरोक्त नियमों के पैरा-4 के 'अंतर-विभागीय परामर्श' उप-पैरा-2 के अनुसार, निम्नलिखित प्रावधान हैं;

“(2) जब तक कि मामला वित्त मंत्रालय द्वारा जारी किसी सामान्य या विशेष आदेश द्वारा व्यय स्वीकृत करने या निधियों का विनियोजन या पुनर्विनियोजन करने की शक्तियों के अंतर्गत पूर्णतः न आता हो, तब तक कोई भी विभाग वित्त मंत्रालय की पूर्व सहमति के बिना कोई भी आदेश जारी नहीं करेगा जो-

(ए) इसमें राजस्व का कोई परित्याग शामिल हो सकता है या इसमें कोई ऐसा व्यय शामिल हो सकता है जिसके लिए विनियोग अधिनियम में कोई प्रावधान नहीं किया गया हो।

(बी) इसमें भूमि का कोई अनुदान या राजस्व का आवंटन या रियायत, खनिज या वन अधिकारों का अनुदान, पट्टा या लाइसेंस या जल विद्युत का अधिकार या ऐसी रियायत के संबंध में कोई सुगमता या विशेषाधिकार शामिल हो सकता है।

(सी) पदों की संख्या या श्रेणी से संबंधित, या किसी सेवा की संख्या से संबंधित, या सरकारी कर्मचारियों के वेतन या भत्तों से संबंधित, या उनकी सेवा की किसी अन्य शर्त से संबंधित जिसका वित्तीय निहितार्थ हो; या

(डी) अन्यथा, चाहे व्यय शामिल हो या न हो, वित्तीय प्रभाव होगा, बशर्ते कि खंड (ग) में निर्दिष्ट प्रकृति के कोई भी आदेश कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग की पूर्व सहमति के बिना वित्त मंत्रालय के संबंध में जारी नहीं किए जाएंगे। इस संबंध में, भारत सरकार (व्यवसाय संचालन) नियम, 1961 दिनांक 14.01.1961 को इस माननीय न्यायालय के अवलोकन हेतु संलग्न किया जा रहा है और इसे इस शपथपत्र के संलग्नक संख्या पीए-4 के रूप में संलग्न किया गया है।

10. उपरोक्त उप-पैरा 2 (ग) में निहित प्रावधानों और सभी भारतीय रेलवे में समान स्थिति वाले पेंशनभोगियों को काल्पनिक वेतन वृद्धि का लाभ देने में निहित व्यापक प्रभावों और वित्तीय निहितार्थों को ध्यान में रखते हुए, इस मामले को नोडल विभाग, अर्थात् डीओपी एवं टी को "भारत सरकार (व्यवसाय का आवंटन) नियम, 1961" के प्रावधानों के अनुरूप संदर्भित किया गया था।

11. उपरोक्त के अनुसरण में, डीओपी एवं टी ने अपने कार्यालय ज्ञापन दिनांक 14.06.2023 के माध्यम से रेल मंत्रालय को निम्नलिखित जानकारी दी थी:

“30 जून या 31 दिसंबर को सेवानिवृत्त हुए सरकारी कर्मचारियों को राष्ट्रीय वेतनवृद्धि प्रदान करने से संबंधित मामला वर्तमान में व्यय विभाग के परामर्श से माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या 2471/2023 (एसएलपी (सी) संख्या 6185/2020, निदेशक (प्रशासन एवं मानव संसाधन) केपीटीसीएल एवं अन्य बनाम सी.पी. मुंडीनमणि एवं अन्य) तथा एसएलपी (सी) संख्या 4722/2021 (भारत संघ एवं अन्य बनाम एम. सिद्धराज) में दिए गए आदेशों के आलोक में विचाराधीन है। परामर्श प्रक्रिया पूर्ण होने पर आवश्यकतानुसार आगे की कार्रवाई की जाएगी। इस संबंध में भारत सरकार के कर्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय द्वारा जारी पत्र दिनांक 14.06.2023 को इस माननीय न्यायालय के अवलोकन हेतु संलग्न किया जा रहा है और इसे शपथपत्र के **संलग्नक संख्या पीए-5 के रूप में संलग्न किया गया है।**

12. डीओपी एवं टी के उपरोक्त स्पष्टीकरण के आधार पर, बोर्ड के पत्र दिनांक 20.06.2023 द्वारा सभी क्षेत्रीय रेलवे/पीयू को संबंधित न्यायालयों/ न्यायाधिकरणों के समक्ष विविध आवेदन प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक निर्देश जारी किए गए थे, जिसमें काल्पनिक वेतनवृद्धि का लाभ प्रदान करने वाले उनके आदेशों का अनुपालन करने के लिए अतिरिक्त समय मांगा गया था। इस बीच, भारतीय रेलवे सबसे बड़े संगठनों में से एक है, जिसमें लगभग 1.5 लाख सेवानिवृत्त कर्मचारी/पेंशनभोगी काल्पनिक वेतनवृद्धि के लाभार्थी होंगे, जिनमें से हजारों ने काल्पनिक वेतनवृद्धि का लाभ प्राप्त करने के लिए विभिन्न न्यायालयों का रुख किया था। इन मामलों में याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निर्णय लिया गया और उन्हें काल्पनिक वेतनवृद्धि का लाभ प्रदान किया गया। इस संबंध में रेल मंत्रालय द्वारा जारी किए गए पत्र, सेवानिवृत्त कर्मचारियों द्वारा दायर काल्पनिक वेतनवृद्धि के अदालती मामलों के संबंध में हैं, जिन्हें इस माननीय न्यायालय के अवलोकन हेतु सामूहिक रूप से संलग्न किया जा रहा है और इस शपथपत्र के **संलग्नक संख्या पीए-6 के रूप में संलग्न किया गया है।**

13. प्रचलित प्रथा के अनुसार, जब किसी ऐसे आदेश को लागू करना होता है जिसका वित्तीय प्रभाव बहुत अधिक हो, तो संबंधित क्षेत्रीय रेलवे द्वारा इसे बोर्ड के एनए कार्यालय को भेजा जाता है, जिसे नोडल विभाग अर्थात् डीओपी एंड टी से समाप्ति तिथि/अनुमोदन की आवश्यकता होती है और रेल मंत्रालय द्वारा इसे डीओपी एंड टी को भेजा जाता है। इसमें निहित परिणामों/प्रभावों को ध्यान में रखते हुए, डीओपी एंड टी इस मामले पर वित्त मंत्रालय और भारत सरकार के वरिष्ठ विधि अधिकारियों से परामर्श करता है, जिसमें काफी समय लगता है। इस संबंध में प्राप्त संचार की एक प्रति इस शपथपत्र के **संलग्नक संख्या पीए-7 के रूप में संलग्न है।**

14. एसएलपी (सी) संख्या 4722/2021 (भारत संघ एवं अन्य बनाम एम. सिद्धराज) को खारिज किए जाने पर, विभिन्न न्यायिक मंचों द्वारा ग्राहता के स्तर पर ही बड़ी संख्या में मामलों को स्वीकार कर लिया गया। मामलों की भारी संख्या के कारण आदेशों के कार्यान्वयन में व्यावहारिक समस्याएं उत्पन्न हुईं, क्योंकि पात्रता सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक मामले की जांच और सत्यापन आवश्यक था। कुछ मामलों में, आवेदकों ने संबंधित न्यायालयों द्वारा आदेशों के कार्यान्वयन के लिए दी गई समयावधि समाप्त होते ही अवमानना याचिकाएं दायर कर दीं।

15. कुछ मामलों में आदेशों के कार्यान्वयन में अप्रत्याशित देरी के कारण, याचिकाकर्ताओं द्वारा आदेशों के अनुपालन न होने के आधार पर अवमानना याचिकाएँ भी दायर की गईं। तदनुसार, डीओपी एंड टी से इस मामले में आगे की कार्रवाई के संबंध में सुझाव देने का पुनः अनुरोध किया गया। इसके फलस्वरूप, डीओपी एंड टी ने विधि कार्य विभाग की सलाह को ध्यान में रखते हुए, अवमानना मामलों में विभिन्न न्यायालयों द्वारा दिए गए आदेशों के अनुपालन के संबंध में प्रशासनिक निर्णय लेने के लिए इस मंत्रालय को सूचित किया।

16. नोडल विभाग अर्थात् डीओपी एवं टी की उपरोक्त सलाह को ध्यान में रखते हुए, निर्णय लेने की प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की देरी से बचने के लिए, और विभिन्न न्यायालयों द्वारा दिए गए न्यायिक आदेशों का सम्मान करते हुए, तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनका समयबद्ध तरीके से शीघ्रता से अनुपालन किया जाए, यह निर्णय लिया गया कि काल्पनिक वेतनवृद्धि का लाभ तत्काल प्रदान किया जाए। तदनुसार, सभी क्षेत्रीय रेलवे/पीयू को ऐसे अवमानना मामलों में तत्काल आवश्यक कार्रवाई करने का अधिकार दिया गया ताकि बोर्ड के पत्र दिनांक 09.02.2024 के माध्यम से विभिन्न न्यायालयों द्वारा दिए गए आदेशों का अक्षरशः और भावार्थ अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके और आवश्यकता पड़ने पर रेलवे बोर्ड को इसकी जांच और संदर्भ दिया जा सके।

17. अवमानना मामलों में विभिन्न न्यायालयों द्वारा सुनाए गए आदेशों के कार्यान्वयन के दौरान, रेलवे को कुछ प्रक्रियात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था, जैसे आदेशों के कार्यान्वयन की अंतिम तिथि, याचिकाकर्ताओं को दिए जाने वाले लाभ की सीमा आदि। इस बात को डीओपी एंड टी के संज्ञान में लाया गया, जिन्होंने रेल मंत्रालय को इस मुद्दे पर स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में स्पष्टीकरण याचिका दायर करने की संभावना तलाशने की सलाह दी। तदनुसार, मामला भारत के विद्वान अटॉर्नी जनरल के समक्ष रखा गया, जिन्होंने एसएलपी (सी) संख्या 4722/2021 (भारत संघ एवं अन्य बनाम एम. सिद्धराज) में निर्णय दिनांक 19.04.2023 के कार्यान्वयन पर स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विविध आवेदन दायर करने की राय दी। तदनुसार, विद्वान अटॉर्नी जनरल के माध्यम से माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विविध आवेदन दायर किया गया है। डायरी संख्या 2400/2024 में विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं पर स्पष्टीकरण मांगा गया है और सर्वोच्च न्यायालय से यह भी अनुरोध किया गया है कि लंबित मामले में व्यापक प्रभाव और एकरूपता बनाए रखने के लिए, स्पष्टीकरण याचिका में उठाए गए मुद्दों पर स्पष्टीकरण दिए जाने तक आक्षेपित निर्णय के कार्यान्वयन पर रोक लगाई जाए। इस संबंध में, भारत संघ

द्वारा दायर विविध स्पष्टीकरण आवेदन की एक प्रति इस माननीय न्यायालय के अवलोकन हेतु संलग्न की जा रही है और इसे इस शपथपत्र के **संलग्नक संख्या पीए-8** के रूप में संलग्न किया गया है।

18. इसके बाद, डीओपी एंड टी ने उपरोक्त स्पष्टीकरण याचिका के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय में हस्तक्षेप याचिका दायर की है, जिसका मुख्य आधार यह है कि नोडल विभाग होने के नाते डीओपी एंड टी काल्पनिक वेतन वृद्धि के मुद्दे पर आदेशों दिनांक 11.04.2023 और 19.05.2023 के माध्यम से निर्णय लेते समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपने तर्क प्रस्तुत नहीं कर सका। इसके अतिरिक्त, उपरोक्त स्पष्टीकरण याचिका के परिणाम में उनका महत्वपूर्ण हित है, इसलिए न्याय के हित में माननीय सर्वोच्च न्यायालय को स्पष्टीकरण याचिका पर निर्णय लेते समय उनकी बात सुननी चाहिए। डीओपी एंड टी ने उक्त हस्तक्षेप याचिका में अनुरोध किया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष याचिका पर निर्णय होने तक आक्षेपित निर्णय के कार्यान्वयन पर रोक लगाई जाए, क्योंकि रोक न लगाने से अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा लगातार डीएनए 19718 के अनुकूल निर्णय सुनाए जाएंगे, जिससे हस्तक्षेप याचिका निष्प्रभावी हो जाएगी। नोडल विभाग, अर्थात् डीओपी एंड टी द्वारा दायर उक्त हस्तक्षेप आवेदन (आईए) माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है। इस संबंध में, उपरोक्त स्पष्टीकरण याचिका के संदर्भ में डीओपी एंड टी द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय में दायर हस्तक्षेप आवेदन की एक प्रति इस शपथपत्र के **संलग्नक संख्या पीए-9** के रूप में संलग्न किया गया है।

19. दिनांक 22.07.2024 उक्त स्पष्टीकरण याचिका की सुनवाई के दौरान, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

"इस बीच, भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता यह जांच करेंगे कि क्या भारत संघ को सिविल अपील संख्या 2471/2023, जिसका शीर्षक "निदेशक (प्रशासन एवं मानव संसाधन) केपीटीसीएल एवं अन्य बनाम वी.सी. पी. मुंडीनामणि एवं अन्य" है, में आवेदन दाखिल करने की आवश्यकता है, जिसका निस्तारण निर्णय दिनांक 11.04.2023 द्वारा किया गया था। प्रतिवादियों को अतिरिक्त अभिलेख दाखिल करने की अनुमति दी गई है। इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.07.2024 को इस माननीय न्यायालय के अवलोकन हेतु संलग्न किया जा रहा है और इसे इस शपथपत्र के **संलग्नक संख्या पीए-10** के रूप में संलग्न किया गया है।

20. उपर्युक्त आदेशों के अनुसार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नोडल विभाग, अर्थात् डीओपी एंड टी को इस मामले में अतिरिक्त अभिलेख दाखिल करने का निर्देश दिया है। तदनुसार, डीओपी एंड टी ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सिविल अपील संख्या 2471/2023 में सुनाए गए अपने आदेश दिनांक 11.04.2023 (डीआईपी संख्या 19718) की समीक्षा याचिका दायर की है, जो एसएलपी (सी) संख्या 6185/2020 (निदेशक (प्रशासन एवं मानव संसाधन) केपीटीसीएल एवं अन्य बनाम सी.पी. मुंडीनामणि एवं अन्य) से संबंधित है। अतः, काल्पनिक वेतनवृद्धि का मुद्दा अभी तक अंतिम रूप नहीं ले पाया है और काल्पनिक वेतनवृद्धि के लाभ

प्रदान करने के मुद्दे को अंतिम रूप देने के लिए संबंधित न्यायिक प्रक्रियाएं माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय हेतु अभी भी जारी हैं।

21. यह भी विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत है कि सेवानिवृत्त कर्मचारी/पेंशनभोगी को काल्पनिक वेतनवृद्धि की पात्रता और प्रयोज्यता सुनिश्चित करने के लिए, वेतनवृद्धि की पात्रता के संबंध में आवेदक की योग्यताओं की गहन जांच आवश्यक है ताकि अनजाने में कोई अनुचित वित्तीय लाभ न दिया जाए। इस प्रक्रिया में समय लगता है क्योंकि संपूर्ण सेवाकाल में कर्मचारियों को दी गई सभी सेवा विवरण/वेतन वृद्धि/करियर प्रगति/वित्तीय उन्नयन/वेतनवृद्धि की पूरी तरह से जांच करना आवश्यक है, जो एक समय लेने वाली प्रक्रिया है। यह विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत है कि इसी संदर्भ में रेलवे बोर्ड ने सभी क्षेत्रीय इकाइयों को यह स्पष्ट कर दिया है कि अवमानना मामलों को छोड़कर ऐसे सभी आदेश रेलवे बोर्ड को संदर्भित किए जाएं।

22. इस महत्वपूर्ण कार्य में निहित जटिलताओं पर जोर देने के लिए, विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि विभिन्न रेलवे से संबंधित कुछ मामलों में, जैसे कि उत्तरी रेलवे (ओ.ए. संख्या 3071/2023 (श्री नरेश एआरवाई कुमार गुप्ता बनाम भारत संघ एवं अन्य)) और उत्तर मध्य रेलवे (सी.पी. संख्या 19718 28/2024, श्री सुरेश नारायण व्यास द्वारा दायर, ओ.ए. संख्या 330/1085/2023 (श्री विजय कुमार वर्मा एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य)) में माननीय न्यायाधिकरणों ने इन याचिकाकर्ताओं को काल्पनिक वेतनवृद्धि का लाभ देने का निर्देश दिया था। हालांकि, उनकी सेवा विवरण की जांच करने पर पाया गया कि विभिन्न कारणों से दोनों काल्पनिक वेतनवृद्धि के लाभ के लिए पात्र नहीं थे और उन्होंने पिछली वार्षिक वेतनवृद्धि की तिथि से 12 माह की सेवा पूरी नहीं की थी, जो कि काल्पनिक वेतनवृद्धि के लिए पात्र होने के लिए पूरी की जाने वाली मुख्य शर्त है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 11.04.2023 में तय किया है। तदनुसार, संबंधित रेलवे को काल्पनिक वेतन वृद्धि का लाभ न देने और संबंधित न्यायाधिकरणों द्वारा दिए गए आदेशों को उच्च न्यायालय में चुनौती देने की सलाह दी गई थी। इस संबंध में उत्तरी रेलवे और उत्तर मध्य रेलवे के साथ किए गए पत्राचार की प्रतियां सामूहिक रूप से संलग्न की जा रही हैं और इस शपथपत्र के संलग्नक पी.ए.11 के रूप में संलग्न किया गया है।

23. यह दोहराया जाता है कि काल्पनिक वेतन वृद्धि का मुद्दा अभी तक अंतिम रूप से तय नहीं हुआ है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है। अतः, नोडल विभाग, अर्थात् डीओपी एंड टी द्वारा काल्पनिक वेतन वृद्धि के मुद्दे पर सामान्य नीतिगत दिशा-निर्देश अभी तक जारी नहीं किए गए हैं। उपर्युक्त स्पष्टीकरण याचिका/हस्तक्षेप आवेदन/पुनर्विचार याचिका के निस्तारण के बाद जब भी रेलवे एवं परिवहन विभाग से इस मामले में सामान्य नीतिगत निर्णय प्राप्त होगा, उसे भारतीय रेलवे पर विधिवत लागू किया जाएगा और सभी समान स्थिति वाले पेंशनभोगियों को काल्पनिक वेतन वृद्धि का लाभ प्रदान किया जाएगा।

24. उपर्युक्त पैरा में दिए गए कथनों से यह स्पष्ट है कि काल्पनिक वेतन वृद्धि का मुद्दा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है और अभी तक अंतिम निर्णय नहीं हुआ है। अतः, अत्यंत विनम्रतापूर्वक निवेदन है कि:

(i) रेल मंत्रालय के उपर्युक्त पदों पर माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.08.2024 के अनुपालन में तत्काल डब्लू.पी. संख्या 13305/2024 में विचार किया जाए, जब तक कि नोडल विभाग, अर्थात् डीओपी एवं टी द्वारा दायर उपर्युक्त समीक्षा याचिका और हस्तक्षेप आवेदन पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय नहीं हो जाता और काल्पनिक वेतन वृद्धि का मुद्दा अंतिम रूप से तय नहीं हो जाता।

(ii) वर्तमान याचिका संख्या 13305/2024 को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित किया जा सकता है और इस पर अंतिम निर्णय तभी लिया जा सकता है जब नोडल विभाग, अर्थात् डीओपी एवं टी द्वारा दायर उपर्युक्त समीक्षा याचिका और हस्तक्षेप आवेदन पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय लिया जाए और काल्पनिक वेतन वृद्धि का मुद्दा अंतिम रूप से तय हो जाए।

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

10. यह सत्य है कि प्रत्येक वादी को न्यायालय द्वारा पारित आदेश, यहाँ तक कि संवैधानिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश का स्पष्टीकरण मांगने का अधिकार है, लेकिन सरकार के किसी भी अधिकारी को यह कहने का अधिकार नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का लाभ या उच्च न्यायालय के आदेश का अनुपालन, यदि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थगित या रद्द नहीं किया जाता है, तो भारत सरकार के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के नीतिगत निर्णय पर निर्भर करेगा। एक बार जारी किए गए न्यायालय के आदेश पर भारत सरकार निर्णय नहीं दे सकती। आदेश तभी समाप्त होता है जब अपील जैसी सक्षम कार्यवाही में, यदि आदेश के विरुद्ध अपील स्वीकार की जाती है, समीक्षा, स्पष्टीकरण या ऐसी ही किसी अन्य कार्यवाही में, उस पर रोक लगा दी जाती है। सरकार का कोई भी अधिकारी यह कहकर आदेश की अवहेलना नहीं कर सकता कि वह संवैधानिक न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में निर्धारित विधि की अवहेलना करेगा, और उससे भी बढ़कर, सरकार के नीतिगत निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे अंतरपक्षीय आदेश की अवहेलना करेगा। यह और भी अधिक अवज्ञापूर्ण है कि महानिदेशक, आरपीएफ, रेलवे बोर्ड ने अपने व्यक्तिगत शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 8 में कहा है कि वह "निर्णय के अनुसार 30 जून को सेवानिवृत्त हुए याचिकाकर्ताओं को एक काल्पनिक वेतन वृद्धि का लाभ देने की स्थिति में नहीं हैं"।

11. महानिदेशक ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि **सी.पी. मुंडिनमणि और एम. सिद्धराज (उपरोक्त) मामले में** सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम नहीं है, क्योंकि डीओपी एंड टी द्वारा स्पष्टीकरण के लिए आवेदन, समीक्षा याचिका और हस्तक्षेप याचिका दायर की गई है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाए जाने के बाद, उसमें कुछ भी अनिश्चित नहीं रह जाता। सर्वोच्च न्यायालय से ऊपर कोई न्यायालय नहीं है, और एक बार उनके द्वारा निर्णय सुनाए जाने के बाद, दोनों पक्षों के लिए मामला समाप्त हो जाता है। फिर भी, यह सच है कि कोई पक्ष समीक्षा या स्पष्टीकरण के लिए आवेदन कर सकता है, जैसा कि इस मामले में हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी भी निर्णय में निर्धारित विधि के सिद्धांत के अनुसार, जहां किसी पक्ष द्वारा

स्पष्टीकरण मांगा गया हो, वहां न्यायालय सामान्यतः स्पष्टीकरण आवेदन पर माननीय न्यायाधीशों द्वारा पारित आदेशों के परिणाम की प्रतीक्षा करता है। हालांकि, आवेदन लंबित होने से प्रतिवादियों, जिनमें उक्त प्रतिवादियों का एक अधिकारी भी शामिल है, को यह कहने का अधिकार नहीं मिल जाता कि वे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार दिए गए इस न्यायालय के आदेशों का पालन करने में असमर्थ हैं, मात्र इसलिए कि स्पष्टीकरण आवेदन दायर किए गए हैं। निःसंदेह, यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 141 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित विधि से बाध्य है और प्रतिवादी का प्रत्येक अधिकारी इस न्यायालय के प्रत्येक आदेश का पालन करने के लिए बाध्य है, जब तक कि अपील में इसे रद्द या स्थगित न कर दिया जाए।

12. मनोज यादव, महानिदेशक, रेलवे सुरक्षा बोर्ड, रेलवे बोर्ड, नई दिल्ली द्वारा दायर व्यक्तिगत हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 7 और 8 की सामग्री अवज्ञापूर्ण प्रकृति की है। हम उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी कर सकते थे कि इस मामले को अवमानना आवेदनों की सुनवाई करने वाले माननीय न्यायाधीश के समक्ष क्यों न रखा जाए, लेकिन वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए हमें यह आवश्यक नहीं लगता। मात्र इतना ही करना उचित है कि हम मनोज यादव, महानिदेशक, रेल सुरक्षा बोर्ड, नई दिल्ली को भविष्य में अपने तर्क प्रस्तुत करते समय सावधान रहने की चेतावनी दें, जो उन्हें आवश्यक विधिक सलाह के बाद ही करना चाहिए, न कि अपने विवेक के आधार पर, जैसा कि इस मामले में प्रतीत होता है।

13. अब, जहां तक मामले की खूबियों का संबंध है, एम. सिद्धराज मामले में भारत संघ की ओर से दायर पुनर्विचार याचिका, अन्य स्पष्टीकरण आवेदनों और हस्तक्षेप आवेदनों के अतिरिक्त, 06.09.2024 को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आई, जब माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:

यह बताया गया है कि भारत सरकार द्वारा दायर की गई पुनर्विचार याचिका (डायरी संख्या 36418/2024) लंबित है।

वर्तमान आवेदनों में उठाया गया मुद्दा विचारणीय है, जहां तक सिविल अपील संख्या 2471/2023, जिसका शीर्षक "निदेशक (प्रशासन और मानव संसाधन) केपीटीसीएल एवं अन्य बनाम सी.पी. मुंडीनमणि एवं अन्य" है, में निर्णय दिनांक 11.04.2023 का तीसरे पक्ष पर लागू होने की तिथि का संबंध है।

हमें सूचित किया गया है कि बड़ी संख्या में नई रिट याचिकाएं दायर की गई हैं।

आगे किसी भी प्रकार की विधिक कार्यवाही और भ्रम की स्थिति से बचने के लिए, हम अंतरिम आदेश द्वारा यह निर्देश देते हैं कि:

(क) निर्णय दिनांक 11.04.2023 का तृतीय पक्षों के मामले में निर्णय की तिथि से प्रभावी होगा, अर्थात् एक वेतनवृद्धि को ध्यान में रखते हुए पेंशन का भुगतान 01.05.2023 को या उसके बाद किया जाएगा। 31.04.2023 से पूर्व की अवधि के लिए बढ़ी हुई पेंशन का भुगतान नहीं किया जाएगा।

(ख) जिन व्यक्तियों ने रिट याचिकाएं दायर की हैं और उनमें सफलता प्राप्त की है, उनके लिए उक्त निर्णय में दिए गए निर्देश रेस ज्यूडिकाटा के रूप में लागू होंगे, और तदनुसार, एक वेतन वृद्धि काटकर बढ़ी हुई पेंशन का भुगतान करना होगा।

(ग) (ख) में दिया गया निर्देश लागू नहीं होगा, जहां निर्णय अंतिम नहीं हुआ है, और ऐसे मामलों में जहां अपील दायर की गई है, या यदि दायर की गई है, तो अपीलीय न्यायालय द्वारा उस पर विचार किया जा रहा है।

(घ) यदि किसी सेवानिवृत्त कर्मचारी ने सिविल अपील संख्या 3933/2023 या किसी अन्य रिट याचिका में हस्तक्षेप/पक्षकार बनने के लिए कोई आवेदन दायर किया है और उसके पक्ष में कोई लाभकारी आदेश पारित किया गया है, तो एक वेतन वृद्धि सहित बढ़ी हुई पेंशन उस माह से देय होगी जिस माह में हस्तक्षेप/पक्षकार बनने के लिए आवेदन दायर किया गया था।

यह अंतरिम आदेश न्यायालय के अगले आदेश तक लागू रहेगा। हालांकि, जिन व्यक्तियों को पहले से ही बकाया सहित बढ़ी हुई पेंशन मिल चुकी है, उन पर (क), (ग) और (घ) में दिए गए निर्देशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

इसे 04.11.2024 से शुरू होने वाले सप्ताह में पुनः सूचीबद्ध किया जाएगा।

14. इस अंतरिम आदेश द्वारा, सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रावधान किया कि तृतीय पक्षों, अर्थात् **सी.पी. मुंडिनमणि** और **एम. सिद्धराज** के मामलों में पक्षकार न होने वाले व्यक्तियों के मामले में, निर्णय का लाभ निर्णय की तिथि से प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में, निर्णय भविष्य में लागू होगा। यह स्पष्ट किया गया है कि **सी.पी. मुंडिनमणि** मामले में निर्धारित सिद्धांत के अनुसार, एक वेतनवृद्धि का भुगतान निर्देशानुसार किया जाएगा, लेकिन 31.04.2023 से पूर्व की अवधि के लिए बढ़ी हुई पेंशन का वास्तविक लाभ उपलब्ध नहीं होगा। याचिकाकर्ताओं जैसे तृतीय पक्षों को यह लाभ 01.05.2023 से प्राप्त होगा। यह याचिका **एम. सिद्धराज** मामले में भारत संघ द्वारा दायर पुनर्विचार याचिका पर पारित आदेश दिनांक 06.09.2024 के निर्देशों (ख), (ग) और (घ) के अधीन होगी, क्योंकि यह याचिका किसी तीसरे पक्ष द्वारा दायर की गई है, जिसका निर्णय अंतरिम आदेश दिनांक 06.09.2024 से पहले नहीं हुआ है, और न ही यह ऐसा मामला है जिसमें निर्णय अंतिम हो चुका है या कोई अपील लंबित है। यह ऐसा मामला भी नहीं है जिसमें याचिकाकर्ताओं ने सिविल अपील संख्या 3933/2023 या किसी रिट याचिका में हस्तक्षेप के लिए कोई आवेदन दायर किया हो, जिसमें उनके पक्ष में कोई लाभकारी आदेश पारित किया गया हो।

15. अतः अंतरिम आदेश का प्रभाव यह होगा कि याचिकाकर्ता उन संबंधित वर्षों के लिए अपनी काल्पनिक वेतनवृद्धि के पात्र होंगे जिनमें वे उस वर्ष की 30 जून को सेवानिवृत्त हुए थे, लेकिन काल्पनिक वेतनवृद्धि के अनुसार संशोधित पेंशन 01.05.2023 से देय होगी। अंतरिम आदेश दिनांक 06.09.2024 को अगले आदेश तक प्रभावी रहने का निर्देश दिया गया था। विविध आवेदन डायरी संख्या 2400/2024 से उत्पन्न मामला, अर्थात् भारत संघ द्वारा दायर समीक्षा याचिका, और कई अन्य मामले, जिनमें अवमानना याचिकाएं भी शामिल हैं, जो सभी **एम. सिद्धराज** मामले में दायर की गई थीं, सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा एक आदेश दिनांक 20.02.2025 द्वारा सुने और अंतिम रूप से तय किए गए। माननीय न्यायाधीशों द्वारा उपर्युक्त आदेशों को शब्दशः उद्धृत करना उचित होगा। आदेश इस प्रकार है:

विविध आवेदन 35785/2024 और 35786/2024 डायरी संख्या 2400/2024, 35783/2024

विलंब माफ किया गया।

हमने निम्नलिखित अंतरिम आदेश दिनांक 06.09.2024 पारित किया था, जिसका प्रभावी भाग इस प्रकार है:

"(क) तीसरे पक्षकारों के मामले में निर्णय दिनांक 11.04.2023 को निर्णय की तिथि से लागू किया जाएगा, अर्थात् एक वेतन वृद्धि को ध्यान में रखते हुए पेंशन 01.05.2023 को या उसके बाद देय होगी। 31.04.2023 से पहले की अवधि के लिए बढ़ी हुई पेंशन का भुगतान नहीं किया जाएगा।"

(ख) जिन व्यक्तियों ने रिट याचिकाएं दायर की हैं और उनमें सफलता प्राप्त की है, उनके लिए उक्त निर्णय में दिए गए निर्देश रेस ज्यूडिकाटा के रूप में लागू होंगे, और तदनुसार, एक वेतन वृद्धि काटकर बढ़ी हुई पेंशन का भुगतान करना होगा।

(ग) (ख) में दिया गया निर्देश लागू नहीं होगा, जहां निर्णय अंतिम नहीं हुआ है, और ऐसे मामलों में जहां अपील दायर की गई है, या यदि दायर की गई है, तो अपीलीय न्यायालय द्वारा उस पर विचार किया जा रहा है।

(घ) यदि किसी सेवानिवृत्त कर्मचारी ने सिविल अपील संख्या 3933/2023 या किसी अन्य रिट याचिका में हस्तक्षेप/पक्षकार बनने के लिए कोई आवेदन दायर किया है और उसके पक्ष में कोई लाभकारी आदेश पारित किया गया है, तो एक वेतन वृद्धि सहित बढ़ी हुई पेंशन उस माह से देय होगी जिस माह में हस्तक्षेप/पक्षकार बनने के लिए आवेदन दायर किया गया था।"

हम वर्तमान विविध आवेदनों का निस्तारण करते हुए यह निर्देश देना चाहते हैं कि आदेश दिनांक 06.09.2024 के खंड (क), (ख) और (ग) को अंतिम निर्देश माना जाए। हालांकि, हमारा मत है कि आदेश दिनांक 06.09.2024 के खंड (घ) में संशोधन की आवश्यकता है, जो अब निम्नानुसार होगा:

"(घ) यदि किसी सेवानिवृत्त कर्मचारी ने केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण/उच्च न्यायालयों/इस न्यायालय के समक्ष हस्तक्षेप/पक्षकारिता/रिट याचिका/मूल आवेदन के लिए आवेदन दायर किया है, तो याचिका/मूल आवेदन दायर किए जाने वाले माह से पहले के तीन वर्षों की अवधि के लिए एक वेतन वृद्धि सहित बढ़ी हुई पेंशन देय होगी।"

इसके अतिरिक्त, खंड (घ) उन सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारियों पर लागू नहीं होगा जिन्होंने "भारत संघ एवं अन्य बनाम एम. सिद्धराज" के निर्णय के बाद केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण/उच्च न्यायालयों/इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका/मूल आवेदन या हस्तक्षेप के लिए आवेदन दायर किया है, क्योंकि ऐसे मामलों में खंड (क) लागू होगा।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, विविध आवेदनों का निस्तारण किया जाता है।

हम आगे यह भी स्पष्ट करते हैं कि यदि कोई अतिरिक्त भुगतान किया जा चुका है, जिसमें बकाया राशि भी शामिल है, तो भुगतान की गई ऐसी राशि की वसूली नहीं की जाएगी।

इस आदेश में न्यायालय के निर्देशों और स्पष्टीकरणों का पालन न होने से पीड़ित किसी भी व्यक्ति को यह सुविधा उपलब्ध होगी कि वह सर्वप्रथम संबंधित अधिकारियों से संपर्क करे और यदि आवश्यक हो तो विधि के अनुसार प्रशासनिक न्यायाधिकरण या उच्च न्यायालय से संपर्क करे।

इस आदेश के अनुसार सभी लंबित आवेदनों, जिनमें हस्तक्षेप/पक्षकारिता संबंधी सभी आवेदन शामिल हैं, का निस्तारण कर दिया जाएगा।

अवमानना याचिका (सिविल) डायरी संख्या 38437/2023, 38438/2023, 11336/2024 और 20636/2024

आज संबंधित मामलों, अर्थात् एम.ए. डायरी संख्या 2400/2024 और अन्य संबंधित आवेदनों में पारित आदेश के दृष्टिगत, वर्तमान अवमानना याचिकाओं का निस्तारण हुआ माना जाएगा और याचिकाकर्ताओं को आवश्यकतानुसार उचित उपाय करने की स्वतंत्रता होगी, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी आज पारित आदेश के अनुसार याचिकाकर्ताओं/आवेदकों के मामलों की जांच करेंगे और उनका शीघ्रता से अनुपालन करेंगे।

यदि कोई आवेदन लंबित है, तो उसे निस्तारित किया जाएगा।

16. स्पष्टतः, भारत संघ द्वारा दायर पुनर्विचार मामले में पारित अंतरिम आदेश दिनांक 06.09.2024 में निहित निर्देश (क) को अंतिम रूप दे दिया गया है, जिसके अंतर्गत आदेश दिनांक 06.09.2024 के खंड (क), (ख) और (ग) को अंतिम निर्देश माना जाएगा। अंतरिम आदेश दिनांक 06.09.2024 के खंड (घ) में कुछ संशोधन किया गया है, लेकिन जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, यह याचिकाकर्ताओं के मामले पर लागू नहीं होगा, क्योंकि उनका मामला निर्देशों दिनांक 06.09.2024 के खंड (क) द्वारा शासित है, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 20.02.2025 को पुष्टि की थी।

17. इसका प्रभाव यह होगा कि याचिकाकर्ता और उनमें से प्रत्येक संबंधित वर्ष के लिए काल्पनिक वेतनवृद्धि प्राप्त करने के पात्र होंगे, जिस वर्ष वे 30 जून को सेवानिवृत्त हुए थे, लेकिन उन्हें 1 मई, 2023 से प्रभावी काल्पनिक वेतनवृद्धि सहित उनके संशोधित वेतनमान के आधार पर पेंशन का भुगतान किया जाएगा। उनकी वर्तमान पेंशन को तदनुसार तत्काल संशोधित किया जाएगा और सभी बकाया राशि का भुगतान उन्हें 01.05.2023 से इस आदेश की सूचना सचिव, रेल मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, महानिदेशक, आरपीएफ, रेलवे बोर्ड, नई दिल्ली, महाप्रबंधक, उत्तर पूर्वी रेलवे, गोरखपुर, प्रधान मुख्य कार्मिक अधिकारी, उत्तर पूर्वी रेलवे, गोरखपुर और प्रधान वित्त सलाहकार/मुख्य लेखा अधिकारी, उत्तर पूर्वी रेलवे, गोरखपुर को भेजे जाने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर किया जाएगा। तीन माह की अवधि की गणना उपरोक्त अधिकारियों में से किसी के द्वारा आदेश प्राप्त होने की तिथि से की जाएगी।

18. परिणामस्वरूप, यह याचिका सफल होती है और अनुमति दी जाती है। तदनुसार परमादेश जारी किया जाता है। याचिकाकर्ता ₹50,000 की लागत के पात्र होंगे, जिसका भुगतान प्रतिवादियों द्वारा किया जाएगा।

19. इस आदेश को इस न्यायालय के विद्वान रजिस्ट्रार जनरल द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से, सचिव, रेल मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली और महानिदेशक, आरपीएफ, रेलवे बोर्ड, नई दिल्ली, तथा महाप्रबंधक, उत्तर पूर्वी रेलवे, गोरखपुर, प्रधान मुख्य कार्मिक अधिकारी, उत्तर पूर्वी

रेलवे, गोरखपुर और प्रधान वित्त सलाहकार/मुख्य लेखा अधिकारी, उत्तर पूर्वी रेलवे, गोरखपुर को, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गोरखपुर के माध्यम से सूचित किया जाए।

(2025) 3 ILRA 902

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

रिट ए संख्या 14895 / 2017

जय पाल सिंह

.....याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री विजय गौतम, श्री विनोद कुमार मिश्रा

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

ए. सेवा विधि - सेवानिवृत्ति - जन्म तिथि - वेतन की वसूली - यह विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि यदि कोई नियोक्ता किसी कर्मचारी से गलती के कारण काम लेता है, तो कर्मचारी को उसके पारिश्रमिक या वेतन से वंचित नहीं किया जा सकता है। यदि इस आधार पर वेतन से वंचित करने की अनुमति दी जाती है कि कर्मचारी का पद पर बने रहना और उसके द्वारा सेवा प्रदान करना विधि के अधिकार के बिना था, तो यह अवैतनिक श्रम लेने के समान होगा, जो संविधान के अनुच्छेद 23 के अंतर्गत निषिद्ध है।

यहां प्रतिवादीगण राज्य है और वे याचिकाकर्ता से उस अतिरिक्त वर्ष के लिए अवैतनिक श्रम नहीं ले सकते, जिस वर्ष उसने उनकी सेवा की है। यह कहना गलत होगा कि याचिकाकर्ता ने निःशुल्क सेवा की है। 30.06.2014 से ठीक पहले, याचिकाकर्ता प्रतिवादियों के अधीन काम करने का पात्र था और अगले एक वर्ष के लिए, चरित्र सूची में गलत जन्मतिथि दर्ज होने के कारण उसे काम करने की अनुमति दी गई थी। याचिकाकर्ता न तो पद पर अनाधिकृत रूप से आसीन है और न ही अतिक्रमणकारी। वह विधिवत नियुक्त उप निरीक्षक था, जिसे प्रतिवादियों के अधीन अपने कर्तव्यों का निर्वहन जारी रखने की अनुमति दी गई थी, यह मानते हुए कि उसे एक वर्ष बाद सेवानिवृत्त होना था, क्योंकि उसकी जन्मतिथि 13.06.1955 थी। इन परिस्थितियों में, यदि

प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता द्वारा 01.07.2014 से 30.06.2015 की अवधि के लिए प्राप्त पारिश्रमिक की वसूली की अनुमति दी जाती है, तो यह संवैधानिक रूप से निषिद्ध अवैतनिक श्रम होगा। (पैरा 18)

ख. इस मामले में, याचिकाकर्ता की आयु के बारे में प्रतिवादी सही हो सकते हैं, लेकिन याचिकाकर्ता ने भी कोई धोखाधड़ी या दुर्भावनापूर्ण कार्य नहीं किया है। चरित्र सूची में याचिकाकर्ता की जन्मतिथि की गलत प्रविष्टि के लिए याचिकाकर्ता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। प्रतिवादियों को उस प्रविष्टि की उत्तरदायित्व लेनी होगी, चाहे उसे काटकर सही किया गया हो या त्रुटिरहित दर्ज किया गया हो। याचिकाकर्ता के पास भी यह मानने का सद्भावनापूर्ण आधार था कि वह 30.06.2015 तक कार्य जारी रखने का पात्र होगा, क्योंकि हाई स्कूल प्रमाणपत्र में उसकी जन्मतिथि 13.06.1955 दर्ज है। इसलिए, यदि प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को उसकी जन्मतिथि 13.06.1955 के आधार पर कार्य जारी रखने की अनुमति दी, तो वे इसे 13.06.1954 में संशोधित करने में सही हो सकते हैं, लेकिन याचिकाकर्ता भी उस अर्थ में पूरी तरह से गलत नहीं है जिस अर्थ में धोखाधड़ी करने वाले व्यक्ति का मस्तिष्क काम करता। याचिकाकर्ता के मामले में ऐसा कुछ भी नहीं है। (पैरा 21)

याचिकाकर्ता अपनी सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों की गणना और अंतिम पेंशन के निर्धारण एवं भुगतान के लिए 30.06.2014 को अपनी सेवानिवृत्ति तिथि के अनुसार पात्र होगा, न कि 30.06.2015 को। यह इस आधार पर किया जाएगा कि उसकी जन्मतिथि 13.06.1954 है। (पैरा 23)

रिट याचिका को आंशिक रूप से अनुमति दी गई। (ई-4)

पूर्व-निर्णय अनुपालित:

1. सुशील कुमार पाण्डेय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2010 (7) एडीजे 617 (डीबी) (पैरा 19)
2. मान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 726 (पैरा 22)

(माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका पुलिस अधीक्षक, शामली के आदेश दिनांक 08.07.2016 के विरुद्ध दायर की गई है, जिसमें याचिकाकर्ता की जन्मतिथि 13.06.1954 बताई गई है, न कि 13.06.1955, और इस प्रकार उसने सेवानिवृत्ति की आयु से एक वर्ष अधिक सेवा की है। इस आधार पर आदेश में याचिकाकर्ता द्वारा सेवानिवृत्ति की तिथि से आगे प्राप्त किए गए एक वर्ष के वेतन की वसूली का निर्देश दिया गया है, जिसकी गणना उसकी जन्मतिथि 13.04.1954 के आधार पर की गई है।

2. वसूली पर प्रश्न उठाने के अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने यह भी प्रार्थना की है कि प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को उसका भविष्य निधि, पेंशन का परिवर्तित मूल्य, अवकाश नकदीकरण और अस्थायी पेंशन के बजाय अंतिम

पेंशन का भुगतान करने का आदेश देने हेतु परमादेश जारी किया जाए। याचिकाकर्ता नियमित पेंशन के कारण देय पेंशन की बकाया राशि पर ब्याज सहित भुगतान की भी मांग करता है।

3. याचिकाकर्ता 30.06.2015 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर राज्य पुलिस से उप-निरीक्षक (विशेष श्रेणी) के पद से सेवानिवृत्त हुए। उसकी अंतिम तैनाती पुलिस स्टेशन झिंझाना, जिला शामली में थी। वे समूह-सी कर्मचारी थे। सेवानिवृत्ति के बाद, याचिकाकर्ता को अस्थायी पेंशन स्वीकृत की गई, उसकी ग्रेच्युटी और समूह बीमा का भुगतान किया गया, लेकिन भविष्य निधि, परिवर्तित पेंशन, अवकाश नकदीकरण और अंतिम पेंशन का भुगतान नहीं किया गया।

4. याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद, चरित्र सूची में उसकी जन्मतिथि में हेरफेर के संबंध में उनके आचरण की प्रारंभिक जांच की गई। प्रारंभिक जांच के आधार पर, उन्हें कारण बताओ नोटिस दिनांक 29.03.2016 जारी किया गया, जिसमें पूछा गया कि सेवानिवृत्ति की आयु के बाद एक वर्ष की सेवा के लिए वेतन क्यों न वसूला जाए। कारण बताओ नोटिस में कहा गया है कि 30.06.2015 को उसकी सेवानिवृत्ति के बाद, उनके सेवा अभिलेखों की जांच करने पर पाया गया कि सेवा अभिलेख में उसकी जन्मतिथि 13.06.1954 के स्थान पर 13.06.1955 कर दी गई थी। याचिकाकर्ता को पंद्रह दिनों के भीतर कारण बताओ नोटिस का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था। याचिकाकर्ता ने 15.04.2016 को पुलिस अधीक्षक, शामली के समक्ष कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया। उन्होंने आरोपों से अस्वीकार किया और स्पष्ट रूप से कहा कि उसकी जन्मतिथि 13.06.1955 ही थी। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता द्वारा चरित्र सूची में कोई हेरफेर नहीं किया गया है। कारण बताओ नोटिस के जवाब में याचिकाकर्ता ने दावा किया कि उसके हाई स्कूल प्रमाणपत्र में उसकी जन्मतिथि 13.06.1955 स्पष्ट रूप से दर्ज है, जो उसकी सही और वास्तविक जन्मतिथि है। याचिकाकर्ता ने अपने जवाब के साथ अपने हाई स्कूल प्रमाणपत्र की फोटोकॉपी संलग्न की है। उन्होंने आगे कहा कि वे उत्तर प्रदेश हाई स्कूल और इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड, इलाहाबाद (संक्षेप में, 'बोर्ड') द्वारा जारी मूल हाई स्कूल प्रमाणपत्र पुलिस अधीक्षक के समक्ष प्रस्तुत करेंगे।

5. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसकी नियुक्ति कांस्टेबल के पद पर हुई थी और यह नियुक्ति बोर्ड द्वारा प्राप्त हाई स्कूल अंकपत्र और प्रमाण पत्र के आधार पर की गई थी। याचिकाकर्ता के हाई स्कूल प्रमाण पत्र और अंकपत्र में उसकी जन्मतिथि 13.06.1955 स्पष्ट रूप से अंकित है। याचिकाकर्ता ने बोर्ड द्वारा आयोजित हाई स्कूल परीक्षा वर्ष 1973 में रोल संख्या 624710 के साथ उत्तीर्ण की थी।

6. पुलिस अधीक्षक, शामली ने याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए कारण बताओ नोटिस के स्पष्टीकरण को खारिज कर दिया और उसकी जन्मतिथि 13.06.1954 मानते हुए, याचिकाकर्ता से उस एक वर्ष की अवधि के लिए वेतन की वसूली का निर्देश दिया, जो उसने अपनी गलत जन्मतिथि, अर्थात् 30.06.1955 के कारण अतिरिक्त सेवा की थी। पुलिस अधीक्षक का कहना है कि सेवा अभिलेखों में पहले दर्ज जन्मतिथि 13.06.1954 को काटकर यह गलत जन्मतिथि दर्ज की गई थी।

7. इससे व्यथित होकर यह रिट याचिका दायर की गई है।

8. दिनांक 05.05.2017 को एक याचिका नोटिस जारी किया गया और आक्षेपित आदेश के संचालन पर अंतरिम रोक लगा दी गई। याचिकाकर्ता ने पूरक शपथपत्र दायर की है, जबकि प्रतिवादी संख्या 2 से 4 ने प्रतिवाद शपथपत्र दायर किया है। प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से एक संक्षिप्त प्रतिवाद शपथपत्र दायर किया गया है, जो औपचारिक है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पत्युत्तर दाखिल करने के अपने अधिकार को त्याग दिया।

10. पक्षकारों द्वारा शपथपत्र प्रस्तुत करने के बाद, याचिका सुनवाई के लिए स्वीकार कर ली गई और सुनवाई तुरंत शुरू हो गई। निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

11. याचिका के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री देवेश मिश्रा और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री शरद चंद्र उपाध्याय को सुना।

12. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने के बाद, न्यायालय ने पाया कि सर्किल अधिकारी, झिंझाना जिला शामली के द्वारा की गई प्रारंभिक जांच में यह बात सामने आई कि याचिकाकर्ता ने वर्ष 1971 में गांधी स्मारक अंतर महाविद्यालय, दोघाट, जिला बागपत से नियमित छात्र के रूप में उच्च विद्यालय परीक्षा दी थी और बोर्ड द्वारा आयोजित उच्च विद्यालय परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया था। याचिकाकर्ता के सेवा अभिलेख में उपलब्ध 1973 की परीक्षा के उच्च विद्यालय प्रमाण पत्र को सत्यापन के लिए गांधी स्मारक अंतर महाविद्यालय, दोघाट, जिला बागपत भेजा गया, जिसके परिणामस्वरूप महाविद्यालय के प्रधानाचार्य ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की कि याचिकाकर्ता ने जब 1971 में उनके संस्थान से उच्च विद्यालय परीक्षा दी थी, तब उसकी जन्मतिथि 13.06.1954 दर्ज थी। याचिकाकर्ता ने 1973 की उच्च विद्यालय परीक्षा संस्थागत छात्र के रूप में नहीं, बल्कि निजी छात्र के रूप में उत्तीर्ण की थी। सेवा अभिलेख में छात्रवृत्ति रजिस्टर और स्थानांतरण प्रमाण पत्र प्रपत्र भी उपलब्ध हैं, जिनमें याचिकाकर्ता की जन्मतिथि 13.06.1954 दर्ज है। हेड कांस्टेबल कैडेट प्रपत्र में भी याचिकाकर्ता की जन्मतिथि 13.06.1954 दर्ज है। चरित्र सूची के पृष्ठ 2 पर, सब-इंस्पेक्टर के नाम और पते के बाद, उसकी जन्मतिथि 13.06.1954 दर्ज थी, जिसे बाद में काटकर 13.06.1955 कर दिया गया। यह भी देखा गया है कि भर्ती के समय याचिकाकर्ता ने अपना आवेदन पत्र स्वयं भरा था और उस पर विधिवत हस्ताक्षर किए थे, जिसमें उन्होंने अपनी जन्मतिथि 13.06.1954 ही लिखी थी। इन सभी साक्ष्यों के आधार पर प्रारंभिक जांच करने वाले अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि याचिकाकर्ता के हाई स्कूल प्रमाणपत्र में दर्ज जन्म तिथि के बावजूद, उसकी सही जन्म तिथि, जो मूल रूप से 13.06.1954 दर्ज थी, को काट दिया गया था और बदलकर 13.06.55 कर दिया गया था।

13. पुलिस अधीक्षक ने प्रारंभिक जांच कर रहे अधिकारी के निष्कर्षों के आधार पर याचिकाकर्ता की जन्मतिथि 13.06.1954 मानी है, न कि 13.06.1955। जैसा कि हमने आक्षेपित आदेश में पढ़ा है, यह भी सच है कि पुलिस अधीक्षक ने अपने निष्कर्षों के लिए कोई कारण दर्ज नहीं किया है, जबकि उन्हें ऐसा करना चाहिए था। लेकिन याचिकाकर्ता की जन्मतिथि से संबंधित अंतर्निहित साक्ष्यों की जांच करने वाली प्रारंभिक जांच भर्ती आवेदन पत्र और हेड कांस्टेबल कैडेट फॉर्म तक पूरी तरह से मेल खाती है। भर्ती फॉर्म में याचिकाकर्ता की जन्मतिथि 13.06.1954 उसके स्वयं के हस्ताक्षरों में अंकित है। छात्र रजिस्टर और स्थानांतरण प्रमाण पत्र फॉर्म, जो उस विद्यालय से होना चाहिए जहां याचिकाकर्ता ने पहले पढ़ाई की थी और जो अभिलेख में उपलब्ध है, उसमें भी याचिकाकर्ता की जन्मतिथि 13.06.1954 दर्ज है।

14. यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि सामान्यतः और सदैव की तरह, कर्मचारी की जन्मतिथि के संबंध में किसी भी अन्य साक्ष्य की तुलना में हाई स्कूल प्रमाणपत्र को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कर्मचारी की जन्मतिथि के संबंध में हाई स्कूल प्रमाणपत्र का साक्ष्यिक महत्व लगभग अपरिहार्य है। हम भी याचिकाकर्ता के हाई स्कूल प्रमाणपत्र में दर्ज जन्मतिथि का ही अनुसरण करते, जिसकी प्रामाणिकता पर प्रतिवादियों द्वारा कोई संदेह नहीं जताया गया है, लेकिन इस मामले में कुछ विशेष परिस्थितियाँ हैं।

15. याचिकाकर्ता के चरित्र सूची में दिनांक 13.06.1954 से 13.06.55 तक की तिथि को मिटाने के संबंध में, संशोधित प्रविष्टि को सही मानने में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि यह हाई स्कूल प्रमाणपत्र में दर्ज जन्म तिथि से मेल खाती है। जहां तक पिछली प्रविष्टि को मिटाने का प्रश्न है, इसकी व्याख्या प्रतिवादियों को करनी होगी, क्योंकि चरित्र सूची उनके पास है, याचिकाकर्ता के पास नहीं। इस मामले में मुख्य अंतर यह है कि याचिकाकर्ता की जन्म तिथि का अभिलेख उसके छात्र रजिस्टर और स्थानांतरण प्रमाणपत्र में एक समान है, जो उस संस्थान से उपलब्ध है जहां उसने अध्ययन किया था और गांधी स्मारक अंतर महाविद्यालय, दोघाट, जिला बागपत से भी, जहां उसने वर्ष 1971 में हाई स्कूल परीक्षा दी थी और असफल रहा था। इसमें याचिकाकर्ता की जन्म तिथि 13.06.1954 दर्ज है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि याचिकाकर्ता ने अपने हाथ से भरे आवेदन पत्र में अपनी जन्मतिथि 13.06.1954 लिखी है। उसके हेड कांस्टेबल कैडेट फॉर्म-2 में भी यही तिथि दर्ज है। अतः, हमारे विचार में, प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता की जन्मतिथि पर प्रश्न उठाने में कोई गलती नहीं की है, जिसे चरित्र सूची में काटकर 13.06.1954 से बदलकर 13.06.1955 कर दिया गया था, और पहली तिथि को सही मानते हुए तदनुसार उसकी सेवानिवृत्ति की आयु निर्धारित की है।

16. एस.पी. के आदेश में कारणों का अभाव एक खामी है, लेकिन जिस सामग्री पर यह आधारित है, उससे इसकी भरपाई हो जाती है। हम इस आधार पर इसमें कोई परिवर्तन नहीं करना चाहते, क्योंकि पुनर्विचार के लिए मामला वापस भेजना मात्र समय की बर्बादी होगी और इससे वही निष्कर्ष निकल सकता है जो दिए गए कारणों के साथ आसानी से निकाला जा सकता है। संक्षेप में, यह ऐसा मामला है जिसमें याचिकाकर्ता को आदेश में कारणों के अभाव से कोई हानि नहीं हुई है। किसी भी दृष्टिकोण से इस मामले में कोई भिन्न निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

17. अब हम मामले के अगले पहलू पर आते हैं, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने फिर से बड़े ही ज़ोरदार तरीके से बहस की है। उनका कहना है कि यदि याचिकाकर्ता ने किसी भी कारण से, अपनी जन्मतिथि 13.06.1955 मानकर, प्रतिवादियों के प्रतिष्ठान में 30.06.2015 तक काम किया है, तो प्रतिवादी उस अवधि के लिए उसे भुगतान किए गए वेतन की वसूली नहीं कर सकते, जिस अवधि में उसने उन्हें सेवा दी है। दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री शरद चंद्र उपाध्याय ने राज्य की ओर से उतने ही ज़ोरदार तरीके से तर्क दिया कि याचिकाकर्ता का 30.06.2014 के बाद पद पर बने रहना अमान्य और नियमों के विरुद्ध है, क्योंकि उसकी सही जन्मतिथि के अनुसार वह 30.06.2014 को सेवानिवृत्त हो गया था। उसे कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जा सकता क्योंकि वह उस अवधि के दौरान विधिक रूप से पद पर नहीं था। हम इस बिंदु पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता से सहमत नहीं हैं।

18. यह विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि यदि कोई नियोक्ता किसी कर्मचारी से गलती के कारण काम लेता है, तो कर्मचारी को उसके पारिश्रमिक या वेतन से वंचित नहीं किया जा सकता। यदि इस आधार पर वेतन से वंचित करने की अनुमति दी जाती है कि कर्मचारी का पद पर बने रहना और उसके द्वारा सेवा प्रदान करना विधि के अधिकार के बिना था, तो यह संविधान के अनुच्छेद 23 के अंतर्गत निषिद्ध *अवैतनिक श्रम* लेने के बराबर होगा। प्रतिवादी राज्य हैं और वे निश्चित रूप से याचिकाकर्ता से उस अतिरिक्त वर्ष के लिए *अवैतनिक श्रम* नहीं ले सकते जिसके लिए उसने उन्हें सेवा दी है। यह नहीं है कि याचिकाकर्ता ने *निःशुल्क* सेवा दी है। 30.06.2014 से ठीक पहले, याचिकाकर्ता प्रतिवादियों के यहाँ काम करने का पात्र था और अगले एक वर्ष के लिए, उसे चरित्र सूची में दर्ज गलत जन्मतिथि के कारण काम करने की अनुमति दी गई थी। याचिकाकर्ता पद का अतिक्रमण करने वाला या राहगीर नहीं है। वह विधिवत नियुक्त सब-इंस्पेक्टर थे, जिन्हें प्रतिवादियों के इस विश्वास के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन जारी रखने की अनुमति दी गई थी कि उसकी जन्मतिथि 13.06.1955 होने के कारण उन्हें एक वर्ष बाद सेवानिवृत्त होना था। इन परिस्थितियों में, यदि प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता द्वारा 01.07.2014 से 30.06.2015 की अवधि के लिए प्राप्त पारिश्रमिक की वसूली करने की अनुमति दी जाती है, तो यह संवैधानिक रूप से निषिद्ध *अवैतनिक श्रम* होगा।

19. अनुकंपा नियुक्ति के संदर्भ में, जो नियोक्ताओं के साथ धोखाधड़ी करके प्राप्त की गई थी, मृतक कर्मचारी, जिसके आश्रित ने नियुक्ति का दावा किया था, 10 वर्ष बाद एक अस्थायी कर्मचारी निकला, जिसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। अनुकंपा नियुक्त व्यक्ति की सेवा से बर्खास्तगी को वैध मानते हुए, नियोक्ताओं को उस अवधि के लिए पूर्ण वेतन वसूलने का पात्र नहीं माना गया, जिस अवधि के लिए अनुकंपा नियुक्त व्यक्ति ने वास्तव में अपनी धोखाधड़ीपूर्ण नियुक्ति के आधार पर उनके लिए काम किया था। यह मामला **सुशील कुमार पाण्डेय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2010 (7) एडीजे 617 (डीबी)** में हुआ, जहाँ इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने टिप्पणी की:

“23. अतः, उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, हमारा यह मत है कि विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि, हमें आदेश के उस भाग पर आपत्ति है जिसमें विद्वान एकल

न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को भुगतान किए गए वेतन की वसूली का निर्देश दिया है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि अपीलकर्ता द्वारा नियुक्ति प्राप्त करने में धोखाधड़ी की गई है और यह भी सत्य है कि यदि अपीलकर्ता की माता ने पारिवारिक पेंशन के लिए आवेदन न किया होता तो यह धोखाधड़ी पकड़ी नहीं जा सकती थी। इस दौरान 10 वर्ष से अधिक समय बीत चुका था और अधिकारियों ने अपीलकर्ता से काम लेना जारी रखा तथा उसके द्वारा दी गई सेवाओं के लिए उसे वेतन का भुगतान किया गया। अब 10 वर्ष की सेवा के बाद अपीलकर्ता को बर्खास्त कर दिया गया है, ऐसे में उससे पूरे वेतन की वसूली करना उसके कृत्यों और चूक के साथ-साथ अपीलकर्ता को नियुक्ति देने में अधिकारियों की चूक और लापरवाही के लिए भी अत्यधिक कठोर होगा, जिसे मामले के तथ्यों में नकारा नहीं जा सकता। वैसे भी भारत के संविधान का अनुच्छेद 23 'अवैतनिक श्रम' लेने पर रोक लगाता है। राज्य के प्रतिवादियों ने धोखाधड़ी का पता चलने से पहले अपीलकर्ता (सुशील कुमार पाण्डेय) से 10 वर्षों से अधिक समय तक काम लिया था, इसलिए उन्हें भुगतान किए गए पूरे वेतन की वापसी की मांग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, क्योंकि यह 'अवैतनिक श्रम' लेने के समान होगा, जिस पर भारत का संविधान सख्ती से रोक लगाता है।”

20. इस न्यायालय को यह ध्यान देना चाहिए कि **सुशील कुमार पाण्डेय (उपरोक्त)** मामले में पीठ के निर्णय में, नियोक्ताओं को न्यूनतम वेतनमान पर भुगतान किए गए वेतन की वसूली का अधिकार नहीं दिया गया था; भत्तों और अन्य परिलब्धियों का नहीं। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि **सुशील कुमार पाण्डेय** का मामला रोजगार प्राप्त करने और उसके बाद सेवा प्रदान करने में घोर धोखाधड़ी का था। ऐसे मामलों में जहां कर्मचारी की नियुक्ति और सेवा का मुख्य भाग किसी भी प्रकार से धोखाधड़ी का परिणाम नहीं है, बल्कि विधि के अंतर्गत एक निश्चित तिथि तक वैध रूप से धारित पद है और मुद्दा सेवानिवृत्ति की आयु के बाद नियोक्ता द्वारा कर्मचारी को काम करने की अनुमति दी गई अतिरिक्त अवधि के लिए भुगतान किए गए वेतन से संबंधित है, वसूली से सुरक्षा न्यूनतम मूल वेतनमान तक सीमित नहीं हो सकती।

21. इस मामले में, याचिकाकर्ता की आयु के बारे में प्रतिवादियों का रुख सही हो सकता है, लेकिन याचिकाकर्ता ने भी कोई धोखाधड़ी या *दुर्भावनापूर्ण* कार्य नहीं किया है। चरित्र सूची में याचिकाकर्ता की जन्मतिथि की गलत प्रविष्टि के लिए याचिकाकर्ता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। प्रतिवादियों को उस प्रविष्टि की उत्तरदायित्व लेनी होगी, चाहे उसे काटकर सही किया गया हो या त्रुटिरहित रूप से दर्ज किया गया हो। याचिकाकर्ता को भी यह मानने का *सद्भावनापूर्ण* आधार था कि वह 30.06.2015 तक कार्य जारी रखने का पात्र होगा, क्योंकि हाई स्कूल प्रमाणपत्र में उसकी जन्मतिथि 13.06.1955 दर्ज है। इसलिए, यदि प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को उसकी जन्मतिथि 13.06.1955 के आधार पर कार्य जारी रखने की अनुमति दी, तो वे इसे 13.06.1954 में संशोधित करने में सही हो सकते हैं, लेकिन याचिकाकर्ता भी उस अर्थ में पूरी तरह से गलत नहीं है जिस अर्थ में धोखाधड़ी करने वाले व्यक्ति का मस्तिष्क काम करता। याचिकाकर्ता के मामले में ऐसा कुछ भी नहीं है।

22. वसूली के अधिकार के संबंध में, इसी तरह का एक प्रश्न **मान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 726** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उठा था, जहां तथ्यों और सिद्धांत को माननीय न्यायाधीशों ने अद्वितीय संक्षिप्तता के साथ इस प्रकार व्यक्त किया है:

“3. अपीलकर्ता को वर्ष 1974-1975 में प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त किया गया था, जब जूनियर हाई स्कूल को हाई स्कूल में अपग्रेड किया गया और राज्य सरकार द्वारा मान्यता दी गई। इस प्रकार, अपीलकर्ता ने लगभग 24 वर्षों तक सेवा की, इससे पहले कि चयन समिति के सदस्य का रिश्तेदार होने के कारण उसकी सेवा रद्द कर दी गई।

4. आदेश दिनांक 24.12.1998 में यह भी दर्ज है कि अपीलकर्ता से वह धनराशि वसूल की जाए जो उसे प्रधानाचार्य के पद पर अनियमित नियुक्ति के परिणामस्वरूप भुगतान की गई है।

5. हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने में विफल रहा है कि भले ही नियुक्ति अनियमित थी, अपीलकर्ता ने अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया था और कर्तव्यों के बदले उसे वेतन दिया जाना चाहिए था। राज्य किसी भी कर्मचारी से बिना वेतन दिए कोई काम नहीं ले सकता।”

23. जिन परिस्थितियों पर हमने यहाँ विचार किया है, उनके आधार पर न्यायालय का मत है कि याचिकाकर्ता से 01.07.2014 से 30.06.2015 की अवधि के दौरान उसे वेतन और अन्य भत्तों के रूप में भुगतान की गई राशि की वसूली नहीं की जा सकती। याचिकाकर्ता अपने सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों की गणना और अंतिम पेंशन के निर्धारण एवं भुगतान के लिए 30.06.2014 को ही अपनी सेवानिवृत्ति तिथि मानकर पात्र होगा, न कि 30.06.2015 को। यह इस आधार पर किया जाएगा कि उसकी जन्मतिथि 13.06.1954 है।

24. परिणामस्वरूप, यह याचिका सफल होती है और आंशिक रूप से **अनुमति** दी जाती है। पुलिस अधीक्षक, शामली द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 08.07.2016 जिसमें याचिकाकर्ता से एक वर्ष के वेतन के समतुल्य राशि की वसूली का निर्देश दिया गया है, को **निरस्त** किया जाता है। आक्षेपित आदेश का वह भाग, जिसमें याचिकाकर्ता की जन्मतिथि 13.06.1954 निर्धारित की गई है, को **बरकरार रखा जाता है**। अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक, मुख्यालय, प्रयागराज/लखनऊ, पुलिस महानिरीक्षक, मेरठ रेंज, मेरठ और पुलिस अधीक्षक, शामली को यह सुनिश्चित करने के लिए **परमादेश** जारी किया जाता है कि वे याचिकाकर्ता की देय भविष्य निधि (यदि कोई हो), परिवर्तित पेंशन, अवकाश नकदीकरण और अंतिम पेंशन का भुगतान इस निर्णय में निर्देशित तरीके से तत्काल करें। पेंशन और भविष्य निधि (यदि पहले से भुगतान नहीं किया गया है) का बकाया, परिवर्तित पेंशन और अवकाश नकदीकरण का मूल्य याचिकाकर्ता को 6% साधारण ब्याज के साथ वार्षिक आधार पर देय होगा।

25. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

26. इस आदेश की एक प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक, मुख्यालय, प्रयागराज/लखनऊ, पुलिस महानिरीक्षक, मेरठ रैंज, मेरठ और पुलिस अधीक्षक, शामली को भेजी जाए।

(2025) 3 ILRA 908

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

रिट ए संख्या 18731 / 2024

के साथ अन्य मामले सम्बद्ध

गौरव कुमार

.....याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री नितीश शाक्य, श्री प्रभाकर अवस्थी

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., श्री कुशमोंडेय शाही

ए. सेवा विधि - नियुक्ति - उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 - नियम 12 सपठित 1998 के नियम - चयनित उम्मीदवार को भी नियुक्ति का कोई अविभाज्य अधिकार नहीं होता और किसी भी प्रक्रिया को पूरा करने के लिए एक समयसीमा निर्धारित होनी चाहिए और वर्तमान मामले में, भर्ती प्रक्रिया शुरू में 2013 में अर्थात् लगभग 12 वर्ष पहले प्रारंभ की गई थी और अंतिम पूरक चयन सूची 2018 में अर्थात् 7 वर्ष पहले प्रकाशित हुई थी। इतने वर्षों के बाद इस प्रक्रिया को जारी रखना उचित नहीं है। (पैरा 16)

रिट याचिकाएं निरस्त की गई। (ई-4)

पूर्व-निर्णय अनुपालित:

सुदेश कुमार गोयल बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, 2023 आईएनएससी 842; (2023) 10 एससीसी 54 (पैरा 16)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी, अभिषेक कुमार सरोज, राहुल अग्रवाल, गणेश शंकर श्रीवास्तव, अश्वनी कुमार यादव, आशुतोष पाण्डेय और प्रवीण कुमार मिश्रा, उत्तर प्रदेश शिक्षा सेवा चयन आयोग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री के. शाही, अनिल कुमार सिंह और आकाश राय, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार नागवंशी, श्री डी.पी. सिंह और श्री राजेश कुमार तिवारी को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिकाओं के समूह में याचिकाकर्ता लंबे समय से मुकदमेबाजी में उलझे हुए हैं और अपनी परिवेदनाओं के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये परिवेदना तब शुरू हुईं जब उन्होंने उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड (जिसे आगे "बोर्ड" कहा गया है) द्वारा विज्ञापन संख्या 01/2013 के माध्यम से उत्तर प्रदेश राज्य के कई गैर-सरकारी अंतर महाविद्यालयों/उच्च विद्यालयों में विभिन्न विषयों में प्रशिक्षित स्नातक शिक्षकों (टी.जी.टी.) की नियुक्ति के लिए शुरू की गई सीधी भर्ती प्रक्रिया में भाग लिया था, जिसमें उन्हें सफल घोषित किया गया था।

3. याचिकाकर्ताओं में से कुछ इस बात से असंतुष्ट थे कि विज्ञापित पदों की संख्या कम कर दी गई थी और इस कारण उन्हें कॉलेज आवंटित नहीं किए गए थे। इसलिए उन्होंने रिट ए संख्या 22128/2018 (संजय कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) दायर की, जिसमें उन्होंने उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 के नियम 12 सपठित 1998 के नियमों के अनुसार यह तर्क दिया कि बोर्ड को उक्त भर्ती प्रक्रिया में एक लंबी चयन समिति (लेकिन 25% से अधिक नहीं) प्रस्तावित करनी चाहिए थी।

4. उक्त रिट याचिका का निस्तारण आदेश दिनांक 26.11.2018 द्वारा किया गया था और इसका प्रासंगिक भाग नीचे दिया गया है:-

“उठाया गया मुद्दा एक संकीर्ण दायरे में आता है। बोर्ड द्वारा भर्ती प्रक्रिया उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 सपठित नियम 1998 के प्रावधानों द्वारा विनियमित होती है। नियम 11 रिक्तियों के निर्धारण को विनियमित करता है, जबकि नियम 12 सीधी भर्ती की प्रक्रिया का प्रावधान करता है। नियम 12 के उप-नियम 8 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रवक्ता या शिक्षक एल. टी. ग्रेड के पद पर रिक्ति होने की स्थिति में, चयन समिति रिक्तियों की संख्या से अधिक (लेकिन 25% से अधिक नहीं) होगी। नियम 1998 के नियम 12(8) को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

इसके बाद बोर्ड, प्रत्येक श्रेणी के पद के लिए, साक्षात्कार में प्राप्त अंकों के साथ ऊपर उप-खंड (4) या उप-खंड (5) में प्राप्त अंकों को जोड़कर प्राप्त अंकों के आधार पर योग्यता क्रम में नियुक्ति के लिए सबसे उपयुक्त पाए गए उम्मीदवारों का पैनल तैयार करेगा। प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक के पद के लिए पैनल संस्थावार तैयार किया जाएगा, जिसमें किसी विशेष संस्था में नियुक्ति के लिए उम्मीदवार द्वारा दी गई वरीयता (यदि कोई हो) को ध्यान में रखा जाएगा, जबकि प्रवक्ता और प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी के पदों के लिए पैनल क्रमशः विषयवार और समूहवार तैयार किया जाएगा। यदि दो या अधिक उम्मीदवारों को समान अंक प्राप्त होते हैं, तो उच्च गुणवत्ता अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवार का नाम पैनल में ऊपर रखा जाएगा और यदि गुणवत्ता

अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवारों के अंक भी समान हैं, तो अधिक आयु वाले उम्मीदवार का नाम ऊपर रखा जाएगा। प्रधानाचार्य या प्रधानाध्यापक के पद के पैनल में नामों की संख्या रिक्तियों की संख्या से तीन गुना होगी और प्रवक्ता और प्रशिक्षित स्नातक श्रेणी के शिक्षकों के पदों के लिए यह संख्या (पर्याप्त संख्या पच्चीस प्रतिशत से अधिक नहीं) रिक्तियों की संख्या की तुलना में अधिक होगी।

अधिसूचित रिक्तियों की अनुपलब्धता जैसी व्यावहारिक मजबूरियाँ बोर्ड को ऐसी प्रक्रिया अपनाने का औचित्य नहीं देंगी जो स्वयं वैधानिक योजना में निर्धारित प्रावधानों के विपरीत हो।

आयोग को प्रवक्ता या शिक्षक एल. टी. ग्रेड के पदों पर रिक्तियों की संख्या से कम संख्या में शिक्षकों का पैनल गठित करने का कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है। रिक्ति को नियम 1998 के नियम 2(ड) के अंतर्गत निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया गया है:-

"रिक्ति" से तात्पर्य किसी शिक्षक की मृत्यु, सेवानिवृत्ति, त्यागपत्र, सेवा समाप्ति, बर्खास्तगी या पद से हटाए जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली रिक्ति से है, या नए पद के सृजन या वर्तमान शिक्षक की किसी उच्च पद पर स्थायी नियुक्ति या पदोन्नति से है।"

एक बार रिक्ति की सूचना बोर्ड को मिल जाने के बाद, बोर्ड के लिए यह संभव है कि वह अधिसूचित पदों की संख्या से कम उम्मीदवारों का पैनल न बनाए। बोर्ड को अधिकतम 25% तक उम्मीदवारों की संख्या को अधिसूचित रिक्तियों से अधिक करने का विवेकाधिकार प्राप्त है। हालांकि, बोर्ड पहले से विज्ञापित रिक्तियों की संख्या को कम करके अधिसूचित रिक्तियों की संख्या से कम उम्मीदवारों का पैनल नहीं बना सकता।

विधि अन्यथा स्थापित है कि किसी उम्मीदवार का मात्र चयन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा शंकरसन डैश बनाम भारत संघ 1991 एआईआर 1612 में निर्धारित विधि के आधार पर नियुक्ति का अविभाज्य अधिकार प्रदान नहीं करता है।

न्यायालय श्री पी. एन. सक्सेना के इस तर्क से भी सहमत नहीं है कि बोर्ड ने हिंदी शिक्षक के पद पर भर्ती के लिए रिक्तियों का पता लगाने हेतु एक नई परीक्षा कराई है। इस स्तर पर, जब परीक्षाएं पहले ही आयोजित हो चुकी हैं और आयोग को अपने स्तर पर मात्र एक चयन समिति तैयार करनी है, तो जिला विद्यालय निरीक्षक से नई रिपोर्ट मंगवाकर रिक्तियों की संख्या में संशोधन करना उचित नहीं होगा। यदि ऐसा होने दिया जाता है, तो पूरी प्रक्रिया ही अव्यवहारिक हो जाएगी, क्योंकि विभिन्न कारणों से भर्ती प्रक्रिया पूरी नहीं हो पाएगी, जिनमें बाद की रिपोर्टें भी शामिल हैं जो बोर्ड को पहले से सूचित रिक्तियों की स्थिति के विपरीत हो सकती हैं। उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मेरा मानना है कि बोर्ड विज्ञापित रिक्तियों के विरुद्ध एक चयन समिति तैयार करने के लिए बाध्य है, जो पहले से विज्ञापित कुल रिक्तियों की संख्या से अधिक हो सकती है, लेकिन अधिकतम 25% तक अधिक हो सकती है। तदनुसार, बोर्ड को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से 4 सप्ताह की अवधि के भीतर नियम 12(8) के अनुसार संशोधित चयन पैनल तैयार करने के लिए परमादेश जारी किया जाता है। बोर्ड का हित अन्यथा सुरक्षित है क्योंकि चयनित उम्मीदवारों की नियुक्ति उपलब्ध पदों की वास्तविक संख्या तक ही सीमित होगी और चयन पैनल तैयार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। बोर्ड से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह वर्तमान रिक्तियों को भरने के उद्देश्य से विधि के अनुसार आगे की कार्रवाई करे।

5. बोर्ड ने उपरोक्त संदर्भित आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विशेष अपील (डी) संख्या 354/2019 दायर की थी, जिसे खंडपीठ ने आदेश दिनांक 15.10.2019 द्वारा निरस्त कर दिया। संदर्भ हेतु, उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है:-

“अपीलकर्ता का मामला यह नहीं है कि वास्तविक स्थायी रिक्तियों की कुल संख्या कम हो गई है और इसलिए उन्हें चयन प्रक्रिया से बाहर रखा जाना आवश्यक है। उनका एकमात्र निवेदन यह है कि चयनित उम्मीदवारों की सूची तैयार करने का अनुरोध कम संख्या में प्राप्त हुआ है, क्योंकि संबंधित रिक्तियां तदर्थ नियुक्तियों या नियमित किए गए व्यक्तियों द्वारा भरी गई हैं। 1998 के नियमों की योजना के अंतर्गत, स्थायी रिक्तियों के विरुद्ध चयन प्रक्रिया की जानी आवश्यक है। रिक्तियों का निर्धारण तदर्थ नियुक्तियों या नियमों के विपरीत की गई नियुक्तियों जैसी काल्पनिक रिक्तियों को छोड़कर किया जाना आवश्यक है।

बोर्ड ने स्थायी रिक्तियों के लिए सिफारिशें की थीं और यदि वे रिक्तियां बरकरार हैं, तो पैनल की संख्या कम करने का कोई कारण नहीं बनता। उपलब्ध स्थायी रिक्तियों से कम व्यक्तियों का पैनल तैयार करना स्पष्ट रूप से अनुचित है। यह भी उचित होगा कि विद्वान एकल पीठ द्वारा दिया गया निर्देश मात्र 1998 के नियमों के नियम 12 के उप-नियम (8) के प्रावधानों के अनुसार पैनल तैयार करने तक ही सीमित रहे, जिसमें नियुक्ति प्राधिकारी को मात्र वर्तमान स्थायी रिक्तियों के विरुद्ध नियुक्ति करने की स्वतंत्रता हो।

विद्वान एकल पीठ द्वारा दिया गया निर्देश 1998 के नियमों के अनुरूप है और इसमें अपीलीय क्षेत्राधिकार में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।”

6. उपरोक्त निर्णय के अनुसरण में, 2018 में एक चयन सूची प्रकाशित की गई थी और सभी याचिकाकर्ताओं के अनुसार, वे उक्त चयन सूची में और 2013 में जारी विज्ञापन के समय घोषित पदों की संख्या के अंतर्गत भी आते थे।

7. याचिकाकर्ताओं के अनुसार, उन्हें अभी तक कॉलेज आवंटित नहीं किए गए हैं और अवमानना याचिकाओं पर कोई कार्रवाई न होने के कारण, उन्हें लगभग 5 वर्ष इंतजार करने के बाद, वर्ष 2024 में इस न्यायालय में आने के लिए विवश होना पड़ा।

8. अभिवचनों का आदान-प्रदान हुआ और वर्तमान मामलों में मुख्य रूप से दो मुद्दे हैं, अर्थात् पहला यह कि क्या बोर्ड/राज्य द्वारा दी गई यह व्याख्या कि रिक्तियों की सही पहचान नहीं की गई थी और साथ ही किसी भी कनिष्ठ को नियुक्त नहीं किया गया था, रिक्तियों को कम करने का एक तर्कसंगत कारण हो सकता है और दूसरा यह कि क्या भर्ती प्रक्रिया के लिए कोई समयसीमा निर्धारित की जा सकती है क्योंकि इस पर वर्ष 2013 में विचार किया गया था और अब हम 2025 में हैं?

9. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं ने मुकदमेबाजी के पिछले दौर में दिए गए एक निर्णय पर जोर दिया है कि बोर्ड के पास याचिकाकर्ताओं को नियुक्ति न देने का कोई विकल्प नहीं बचा था क्योंकि वे बाद की चयन सूची में शामिल थे और कोई भी अस्पष्ट स्पष्टीकरण खारिज किए जाने योग्य है।

10. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने ऐसे दस्तावेजों का हवाला दिया है जिनसे पता चलता है कि पदों की संख्या का सत्यापन नहीं किया गया था और उन्हें रिक्तियों की सूची में गलत तरीके से शामिल किया गया था, और यह त्रुटि बाद में सावधानीपूर्वक जांच के बाद सामने आई, और तदनुसार, मात्र स्पष्ट, रिक्त और बाद की रिक्तियों के विरुद्ध ही नियुक्तियों की गईं।

11. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया।

12. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अब इस बात पर काफी विवाद है कि पदों की संख्या के लिए विज्ञापन जारी किए गए थे, कम पदों के लिए परिणाम घोषित किया गया था और इस न्यायालय के उपरोक्त संदर्भित निर्णय के आधार पर, एक और चयन सूची प्रकाशित की गई थी और याचिकाकर्ताओं को, हालांकि वे उस सूची में शामिल थे, स्कूल आवंटित नहीं किए गए थे।

13. अब न्यायालय को यह विचार करना होगा कि प्रतिवादियों द्वारा दी गई यह व्याख्या कि पहले विज्ञापित पदों की संख्या विभिन्न विस्तृत कारणों (विषय और संस्थानवार) से सत्यापित नहीं हो सकी, क्या उसमें कोई सार है। एक पत्र दिनांक 28.01.2023 (माध्यमिक शिक्षा चयन बोर्ड के सचिव से शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) को) का एक संक्षिप्त चार्ट प्रासंगिक होने के कारण नीचे दिया गया है:-

क्र०सं०	विज्ञापित विषय	विज्ञापित पदों की संख्या	सत्यापित पदों की संख्या	असत्यापित पदों की संख्या
1.	हिन्दी	909	720	189
2.	संस्कृत	472	369	103
3.	सामाजिक विज्ञान	806	656	150
4.	जीव विज्ञान	239	187	52
5.	शारीरिक शिक्षा	194	170	24
6.	गृह विज्ञान	135	113	22
7.	उर्दू	35	27	08
8.	कला	267	243	24
9.	विज्ञान	929	713	216
10.	अंग्रेजी	848	676	172
11.	गणित	1036	805	231
12.	वाणिज्य	45	36	09

14. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सत्यापित पदों की कुल संख्या 4715 है और अपुष्ट पदों की संख्या 1200 है, और व्यक्तिगत शपथपत्र के साथ संलग्न विषयवार सूची में विशिष्ट विवरण भी दिए गए हैं, जैसे कि चयन बोर्ड द्वारा चयनित, सत्यापन का कारण अंकित नहीं, पद भरा हुआ, पद दो बार अधिाचित है, सत्यापित/असत्यापित सूचना अप्राप्त, स्थानान्तरण हो चुका है, सामान्य जाति का कोटा पूर्ण, दोबारा अंकित हो गया, नवीन जनशक्ति में पद समाप्त या पद कम, मृतक आश्रित कोटे से पद भरा इत्यादि। व्यक्तिगत शपथपत्र का हिस्सा होने और किसी भी विपरीत प्रमाण के अभाव में ऐसी जानकारी को झूठा नहीं माना जा सकता। यह सच है कि पदों की संख्या का विज्ञापन करते समय ऐसी प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए थी। ऐसा प्रतीत होता है कि रिक्त पदों की उचित जाँच किए बिना जल्दबाजी में विज्ञापन जारी किए गए थे।

15. ऊपर उल्लिखित चार्ट और विवरणों में दिए गए कारणों पर विवाद करने के लिए कोई ठोस आधार नहीं है और चूंकि कोई रिक्त पद नहीं हैं, इसलिए याचिकाकर्ताओं के दावे को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

16. सर्वोच्च न्यायालय ने **सुदेश कुमार गोयल बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, 2023 आईएनएससी 842 : (2023) 10 SCC 54** मामले में दोहराया है कि चयनित उम्मीदवार को भी नियुक्ति का कोई अविभाज्य अधिकार नहीं होता और किसी भी प्रक्रिया को पूरा करने के लिए एक समयसीमा होनी चाहिए। वर्तमान मामले में, भर्ती प्रक्रिया 2013 में अर्थात् लगभग 12 वर्ष पहले शुरू की गई थी और अंतिम पूरक चयन सूची 2018 में अर्थात् 7 वर्ष पहले प्रकाशित हुई थी। इतने वर्षों के बाद इस प्रक्रिया को जारी रखना उचित नहीं हो सकता। सुदेश कुमार (उपरोक्त) के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है :-

“18. प्रतिवादियों द्वारा क्रमांक 14 पर उपलब्ध अपीलकर्ता को छोड़कर मात्र 13 चयनित उम्मीदवारों को नियुक्त करने के लिए दिए गए तर्क को देखते हुए, हमारा मत है कि प्रतिवादियों ने नियुक्तियों को उचित ठहराया है और मनमाने ढंग से कार्य नहीं किया है। प्रतिवादियों ने अपीलकर्ता के प्रति किसी दुर्भावना के बिना निष्पक्ष और तार्किक रूप से कार्य किया है। इस प्रकार, अपीलकर्ता की ओर से उद्धृत निर्णय के आधार पर, हमें प्रतिवादियों की ओर से कोई मनमानी नहीं मिलती है। इसलिए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ का निर्णय उपरोक्त आधार पर बदला नहीं जा सकता, विशेष रूप से तब जब अपीलकर्ता ने चयन प्रक्रिया में अर्हता प्राप्त करने के कारण नियुक्ति का कोई अविभाज्य अधिकार प्राप्त नहीं किया है।

20. इसके अतिरिक्त, जैसा कि देखा जा सकता है कि बार से सीधी भर्ती द्वारा उच्चतर न्यायिक सेवा अधिकारियों के चयन की प्रक्रिया पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा वर्ष 2007 में प्रारंभ की गई थी और अब हम वर्ष 2023 में हैं, जिसका अर्थ है कि इस बीच 16 वर्ष बीत चुके हैं। इतने लंबे समय तक चयन प्रक्रिया को खुला रखना और इस स्तर पर इतनी पुरानी चयन प्रक्रिया के आधार पर कोई नियुक्ति करने का निर्देश देना न्याय का घोर उल्लंघन होगा। इस अतिरिक्त कारण से भी, हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश [सुदेश कुमार गोयल बनाम हरियाणा राज्य, सीडब्लूपी संख्या 16211/2009 उप नोम केशव

कौशिक बनाम हरियाणा राज्य, 2010 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 5043] में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझते हैं।

17. तदनुसार, वर्तमान रिट याचिकाओं के समूह को खारिज किया जाता है।

(2025) 3 ILRA 913

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 26.03.2012

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति जयन्त बनर्जी

रिट सी संख्या 15023 / 2024

मेसर्स आनंदेश्वर एगो फूड्स प्राइवेट लिमिटेड

.....याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री उत्कर्ष प्रसाद

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

ए. खनन विधि - पुनर्भरणित रेत का खनन - सतत खनन - उत्तर प्रदेश उपखनिज (परिहार) नियमावली, 2021 - नियम 42ज(1), अध्याय II के नियम 10, 17, अध्याय IV के नियम 23, अध्याय V के नियम 35, 36, 37, 38, 41, 42, 45 - यदि मानसून के बाद किए गए पुनर्भरण अध्ययन में ईएमजीएसएम-2020 में परिकल्पित तरीके और सीमा तक पर्याप्त पुनर्भरण नहीं दिखता है, तो खनन पट्टे से संबंधित क्षेत्र में खनन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। खनन पट्टे की शर्तों के अंतर्गत किशतों का समय पर और उचित भुगतान, पट्टा प्रदान किए गए वर्तमान खनिजों के खनन पर आधारित है, जो डीएसआर और पुनर्भरण अध्ययनों, विशेष रूप से मानसून के बाद किए गए पुनर्भरण अध्ययन में परिकल्पित गुणवत्ता और मात्रा के अनुरूप हो। पट्टे के लिए आवंटित क्षेत्र के विभिन्न अन्य भागों में खनिज की पर्याप्त आपूर्ति न होने या आवश्यक मात्रा में खनिज उपलब्ध न होने की स्थिति में, न तो किसी खनन गतिविधि की अनुमति दी जा सकती है और परिणामस्वरूप,

जब तक वास्तविक आपूर्ति या उपलब्धता न हो, तब तक किशतों के लिए कोई दावा मान्य नहीं हो सकता। इन्हीं परिस्थितियों में उचित डीएसआर तैयार करना और लेखापरीक्षा कराना महत्वपूर्ण हो जाता है। (पैरा 50)

बी. ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों में यह अनुशंसा की गई है कि किसी विशेष नदी क्षेत्र में रेत खनन से उत्पन्न प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए निर्धारित अवधि के दौरान सामग्री की पुनर्भरण का अध्ययन करना अनिवार्य है। ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों में यह प्रावधान है कि अन्य नियामक प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए खुदाई अनुमानित पुनर्भरण तक ही सीमित रहेगी। (पैरा 42)

अतः, दिनांक 8.1.2024 को किए गए मानसून के बाद के दूसरे पुनर्भरण अध्ययन में खनन के लिए उपलब्ध 16380 घन मीटर रेत के पुनर्भरण को दर्शाया गया है, और इस तथ्य को नदी के उस हिस्से में इस जमाव/पुनर्भरण के स्थान के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। इसके बाद, ईएमजीएसएम-2020 के आलोक में यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि क्या ऐसा पुनर्भरण खनन योग्य है। (पैरा 43)

सी. ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य के खजाने को लाभ पहुंचाने के लिए खनन कार्यों से राजस्व निकालने का प्रयास किया जा रहा है, जिसमें पारिस्थितिकी और सतत खनन के प्रति कोई सहानुभूति और विचार नहीं किया गया है, जबकि इन पहलुओं को राज्य के खजाने के विकास और आय की अनिवार्यताओं के साथ संतुलित करना आवश्यक है। (पैरा 47)

प्रतिवादी उचित पुनर्भरण, खनन योजना और डीएसआर के महत्व से पूरी तरह अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं, जब वे ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों में परिलक्षित पारिस्थितिक चिंताओं को संबोधित किए बिना मांगें उठाते हैं और दावे करते हैं, जिनमें सतत खनन के पहलू को भी संबोधित किया गया है। (पैरा 44, 45)

डी. पट्टा विलेख की शर्तें उपरोक्त अधिसूचना वर्ष 2016, एसएसएमएमजी-2016, ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों और अधिनियम एवं नियमों को निरस्त नहीं कर सकती। (पैरा 48)

इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रतिवादियों और याचिकाकर्ता के बीच एक अनुबंध, पट्टा विलेख, हुआ है, जिसकी शर्तें दोनों पक्षों पर बाध्यकारी हैं। हालांकि, यदि नदी का जलस्तर घटने के बाद भी पर्याप्त पुनर्भरण नहीं होता है, तो याचिकाकर्ता द्वारा किशतों का कोई भी अग्रिम भुगतान उसे गंभीर हानि पहुंचाएगा, जिसकी परिकल्पना न तो पट्टा विलेख में की गई है और न ही नियमावली, 2021 में। इसलिए, यह तर्क कि याचिकाकर्ता द्वारा किशतों का भुगतान किया जाना चाहिए और मार्च 2024 तक पिछले माह में खनन न किए जा सकने वाले खनिजों की आगे ले जाई गई मात्रा तक ईएमएम-11 प्रपत्र अपलोड किए जाने चाहिए, निराधार है। (पैरा 46)

याचिकाकर्ता को पिछली पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट में दर्शाई गई अपेक्षाकृत कम मात्रा (16380 घन मीटर) की पुनर्भरणित रेत का खनन करने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जा सकता था, जब तक यह सुनिश्चित न

हो जाए कि भूमि/नदी के उस हिस्से में हुआ पुनर्भरण इतना पर्याप्त था कि सतत खनन के संदर्भ में उसका खनन अनुमत हो सके। इस संबंध में कोई भी डीएसआर तैयार किए जाने का प्रमाण नहीं है। (पैरा 51)

चूंकि, राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता को आवंटित खनन क्षेत्र की नई नीलामी के लिए कदम उठाए हैं, इसलिए याचिकाकर्ता 1.7.2023 से खनन कार्य बंद होने के बाद की अवधि के लिए कोई भी किस्त जमा करने के लिए उत्तरदायी नहीं है। यदि याचिकाकर्ता द्वारा/के विरुद्ध कोई राशि जमा/वसूली/जब्त की गई है, तो उसे आज से एक महीने के भीतर साधारण ब्याज सहित 9% प्रति वार्षिक दर से वापस किया जाएगा, जिसकी गणना जमा/वसूली/जब्त की तिथि से वास्तविक भुगतान तक की जाएगी। (पैरा 54)

रिट याचिका की अनुमति। (ई-4)

पूर्व-निर्णय अनुपालित:

1. धर्मेन्द्र कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 1 एससीसी 93 (पैरा 6)
2. मेसर्स प्लैनेट स्टील प्राइवेट लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, अपील के लिए विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 19619-19620/2017 (पैरा 6)
3. विपुल त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 17258/2020 (पैरा 6)
4. रंजना सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 32486/2019 (पैरा 6)
5. अंजनी कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, मूल आवेदन संख्या 557/2017 (पैरा 14)
6. दीपक कुमार एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2012) 4 एससीसी 629 (पैरा 24)

(माननीय न्यायमूर्ति जयन्त बनर्जी द्वारा प्रदत्त)

1. यह रिट याचिका जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर देहात द्वारा जारी मांग नोटिस/आदेश दिनांक 19.2.2024 और जारी खनन पट्टा रद्द करने के आदेश दिनांक 27.2.2024 को रद्द करने की मांग के साथ दायर की गई है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता द्वारा योजित पुनरीक्षण संख्या 33(आर)/जी एंड एम/(यू.पी.)/2024, मेसर्स आनंदेश्वर एगो फूड्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर देहात (रिट याचिका का संलग्नक-1) में विशेष सचिव, भूविज्ञान एवं खनन विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.4.2024 को भी चुनौती दी गई है, जिसमें याचिकाकर्ता की पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी गई है। याचिका में आगे यह भी प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादियों को अक्टूबर, नवंबर और दिसंबर 2023 तथा जनवरी और फरवरी 2024 के माह के लिए पट्टा विलेख में निर्दिष्ट किसी भी मासिक किस्त की मांग न करने का निर्देश दिया जाए।

2. उत्तर प्रदेश उप खनिज (परिहार) नियमावली, 1963 के अध्याय IV के अंतर्गत कानपुर देहात जिले के सभी रिक्त खनन क्षेत्रों के लिए पांच वर्ष की अवधि के लिए ई-निविदा सह ई-नीलामी के माध्यम से रेत/मोरम के

खनन पट्टे देने हेतु जिला मजिस्ट्रेट, कानपुर देहात द्वारा एक विज्ञापन/नीलामी सूचना दिनांक 3.12.2018 जारी की गई थी। गांव बिलासपुर कच्छर, तहसील सिकंदा, जिला कानपुर देहात में स्थित 8.275 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाले भूखंड संख्या 58 के संबंध में याचिकाकर्ता की बोली 264 रुपये प्रति घन मीटर थी, जो उच्चतम बोली थी। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इसे अनुमोदित कर दिया गया और याचिकाकर्ता को 5.2.2019 को आशय पत्र जारी किया गया। याचिकाकर्ता ने खनन योजना के लिए आवेदन किया, जिसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत कर दिया गया और उसके बाद याचिकाकर्ता ने पर्यावरण स्वीकृति प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए आवेदन किया, जो याचिकाकर्ता को 15.1.2021 को प्रदान किया गया। इसके बाद, 12.3.2021 को याचिकाकर्ता के पक्ष में पाँच वर्षों की अवधि के लिए एक पट्टा विलेख निष्पादित किया गया, जिसमें प्रति वर्ष 1,10,057 घन मीटर रेत/मोरम निकालने की अनुमति दी गई थी। पहले वर्ष के लिए किशतें (सुरक्षा राशि को छोड़कर) कुल मिलाकर 2,90,55,048.00 रुपये थीं और प्रत्येक बाद के वर्ष के लिए देय रॉयल्टी पिछले वर्ष की देय रॉयल्टी पर 10% की वृद्धि के साथ बढ़ाई जाएगी। याचिकाकर्ता द्वारा सुरक्षा के रूप में 2,20,31,460.00 रुपये जमा किए गए थे।

3. यह बताया गया है कि याचिकाकर्ता ने खनन कार्य किया था और पट्टा विलेख में निर्दिष्ट भुगतान अनुसूची के अनुसार 30.6.2023 तक देय सभी किशतें अदा कर दी थीं। अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (प्रशासन), कानपुर देहात ने एक नोटिस दिनांक 2.6.2023 जारी कर याचिकाकर्ता को अपने खनन क्षेत्र का मानसून पूर्व और मानसून पश्चात पुनर्भरण अध्ययन कराने का निर्देश दिया। याचिकाकर्ता ने 25.6.2023 को मानसून पूर्व पुनर्भरण अध्ययन कराया। यह बताया गया है कि मानसून पश्चात भी पट्टा क्षेत्र पूरी तरह से जलमग्न था, इसलिए मानसून पश्चात सर्वेक्षण करना संभव नहीं था और कोई खनन कार्य भी संभव नहीं था। अतः याचिकाकर्ता ने 5.10.2023 को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत कर उनसे अनुरोध किया कि पुनर्भरण अध्ययन होने तक याचिकाकर्ता को मानसून पश्चात पट्टा राशि जमा करने के लिए बाध्य न किया जाए। यह बताया गया है कि मानसून के बाद का सर्वेक्षण 29.10.2023 को किया गया था और मानसून से पहले और मानसून के बाद की संयुक्त रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की गई थी। खनन अधिकारी ने एक मांग नोटिस दिनांक 25.11.2023 जारी कर अक्टूबर और नवंबर 2023 की किशतों की मांग की। याचिकाकर्ता ने एक आवेदन दिनांक 28.11.2023 दिया जिसमें कहा गया कि पूरा पट्टा क्षेत्र जलमग्न है और सतह का एक बहुत छोटा सा हिस्सा ही दिखाई दे रहा है जो प्रतिबंधित क्षेत्र में आता है। याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट से फिर से अनुरोध किया कि 1.10.2023 से खनन कार्य शुरू होने तक की अवधि के लिए किस्त माफ कर दी जाए।

4. खनन अधिकारी ने 4.12.2023 को याचिकाकर्ता को बकाया किशतों की मांग करते हुए एक और नोटिस जारी किया। याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट को एक आवेदन दिनांक 11.12.2023 भेजा, जिसमें उनसे इस अवधि की किशतों को माफ करने का अनुरोध किया और साथ ही यह भी अनुरोध किया कि याचिकाकर्ता को उचित अनुपालन और वास्तविक खनन योग्य भंडार के सत्यापन के लिए सक्षम एजेंसी द्वारा पट्टे पर दिए गए क्षेत्र का पुनर्मूल्यांकन कराने की अनुमति दी जाए।

5. पत्र दिनांक 21.12.2023 द्वारा जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता के उपरोक्त आवेदनों को इस आधार पर खारिज कर दिया कि पट्टा विलेख में उल्लिखित किशतों का भुगतान करना याचिकाकर्ता की उत्तरदायित्व है। याचिकाकर्ता ने 8.1.2024 को उपलब्ध खनिजों की मात्रा का आकलन करने के लिए मानसून के बाद के पुनर्भरण अध्ययन हेतु पट्टे पर दिए गए क्षेत्र का पुनः निरीक्षण कराया। यह बताया गया है कि 08.01.2024 की नई पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट में नदी तल के खनिजों में कोई महत्वपूर्ण पुनर्भरण नहीं दर्शाया गया और उस तिथि तक पट्टे पर दी गई भूमि पर संचित खनिज की मात्रा 16,380 घन मीटर थी। इस पुनर्भरण अध्ययन में यह राय दी गई कि जल स्तर घटने के बाद भविष्य में खनिज की मात्रा बढ़ सकती है।

इसके बाद, याचिकाकर्ता ने एक आवेदन दिनांक 27.1.2024 प्रस्तुत किया जिसमें उसने खनन कार्य शुरू करने की इच्छा व्यक्त की, बशर्ते कि 1.10.2021 से खनन कार्य के वास्तविक प्रारंभ तक बाधित अवधि के लिए किशतें माफ कर दी जाएं और मानसून के बाद की पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट में पाई गई वास्तविक खनिज पुनर्भरण/पुनर्पूर्ति मात्रा के अनुसार आगे की किशतों का 'पुनर्मूल्यांकन' किया जाए। याचिकाकर्ता के इस आवेदन को जिला मजिस्ट्रेट ने मांग नोटिस/आदेश दिनांक 19.2.2024 के माध्यम से खारिज कर दिया। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता को आक्षेपित आदेश दिनांक 27.2.2024 ईमेल द्वारा 29.2.2024 को प्राप्त हुआ, जिसमें याचिकाकर्ता का खनन पट्टा रद्द कर दिया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिसे आक्षेपित आदेश दिनांक 18.4.2024 द्वारा खारिज कर दिया गया।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि खनन पट्टा रद्द करना और याचिकाकर्ता की पुनरीक्षण याचिका खारिज करना साक्ष्यों पर विचार किए बिना और वैधानिक प्रावधानों के विरुद्ध है। उनका कहना है कि एक बार जब राज्य सरकार द्वारा किसी क्षेत्र को ई-टेंडर/ई-नीलामी/ई-टेंडर सह ई-नीलामी द्वारा पट्टे पर देने की घोषणा कर दी जाती है, तो जिला अधिकारी को उस घोषित क्षेत्र में खनिज की गुणवत्ता और मात्रा का मूल्यांकन करवाना अनिवार्य है ताकि न्यूनतम बोली या प्रस्ताव निर्धारित किया जा सके। यह मूल्यांकन उत्तर प्रदेश के भूविज्ञान एवं खनन निदेशक या उनके द्वारा अधिकृत किसी अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए; राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण के आदेशों के अनुसार पुनर्भरण अध्ययन किया जाना आवश्यक है; राज्य सरकार का यह दायित्व था कि वह उत्खनन के लिए आवश्यक खनिज की मात्रा उपलब्ध कराए, जिसके आधार पर याचिकाकर्ता पट्टे की किशतें अदा करेगा; अन्यथा याचिकाकर्ता किशतों की वापसी या छूट का पात्र होगा; यदि राज्य सरकार उत्खनन के लिए खनिज उपलब्ध कराने में विफल रहती है, तो पट्टे की कोई किशत राशि देय नहीं होगी। उत्तर प्रदेश उप खनिज (परिहार) नियमावली, 2021 के नियम 59 के अंतर्गत जारी नोटिस जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किया जाना आवश्यक है, न कि खनन अधिकारी द्वारा। इस संदर्भ में यह तर्क दिया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा 19.2.2024 को अंतिम नोटिस जारी करना और 27.2.2024 को पट्टा रद्द करने का आदेश पारित करना, नियमावली, 2021 के नियम 59 का उल्लंघन है, जिसमें 30+15 दिन का नोटिस अनिवार्य है।

अपने तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **धर्मेन्द्र कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय; **मेसर्स प्लैनेट स्टील प्राइवेट लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय दिनांक 10.4.2018 पारित किया गया;

और **विपुल त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा निर्णय दिनांक 11.1.2021 का हवाला दिया है और **रंजना सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय का निर्णय दिनांक 24.10.2019 का हवाला दिया है।

7. प्रतिवादियों की ओर से एक प्रतिवाद-शपथपत्र दाखिल किया गया है जिसमें कहा गया है कि पट्टा विलेख 12.3.2021 को पट्टे पर ली गई भूमि के लिए 110057 घन मीटर रेत/मोरम प्रति वर्ष की खुदाई हेतु 264 रुपये प्रति वर्ष की दर से निष्पादित किया गया था। सुरक्षा राशि, देय वार्षिक राशि और देय किश्तें पट्टा विलेख में ही निर्दिष्ट थीं। यह कहा गया है कि इस रिट याचिका में महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय की लखनऊ पीठ के समक्ष रिट-सी संख्या 9186/2022 में निम्नलिखित अनुतोषों की मांग की थी:

“1. राज्य सरकार अर्थात् प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा जारी किए गए शासनादेश दिनांक 9.11.2022 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए जो इस रिट याचिका के संलग्नक संख्या 1 में शामिल है।”

2. याचिकाकर्ता के खनन पट्टे से संबंधित अक्टूबर 2022 और नवंबर 2022 माह की रॉयल्टी राशि जमा करने की देयता से प्रतिवादियों को मुक्त करने का निर्देश देने हेतु परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए और याचिकाकर्ता को उक्त दो माह के लिए रॉयल्टी राशि जमा करने के लिए बाध्य न किया जाए क्योंकि उक्त माह में कोई खनन गतिविधि नहीं हुई है।

3. मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, माननीय न्यायालय द्वारा उचित समझे जाने वाले किसी भी अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।

4. याचिकाकर्ता को याचिका की लागत प्रदान की जाए।”

उपरोक्त याचिका के जवाब में, प्रतिवादियों द्वारा रिट याचिका का विरोध करते हुए एक प्रतिवाद शपथपत्र दायर किया गया था और वह याचिका इस न्यायालय की लखनऊ पीठ के समक्ष लंबित है।

8. वर्तमान याचिका के प्रतिवाद शपथपत्र में कहा गया है कि याचिकाकर्ता को नोटिस दिनांक 25.11.2023 और 4.12.2023 के साथ-साथ नोटिस दिनांक 21.12.2023 और 19.2.2024 जारी किए गए थे; याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रत्यावेदनों को 21.12.2023 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता के पास वार्षिक मात्रा में रेत का खनन करने और उसे बाजार दर के अनुसार बेचने के लिए नौ महीने का समय उपलब्ध था और तदनुसार पिछले महीने में खनन न की जा सकने वाली मात्रा तक फॉर्म ईएमएम-11 अपलोड करने का समय था; मानसून से पहले और मानसून के बाद की पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्टें विरोधाभासी हैं और इस न्यायालय द्वारा किसी भी उद्देश्य के लिए उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता है; मानसून के बाद की पुनर्भरण रिपोर्ट में खनन के लिए उपलब्ध खनिज की मात्रा 16380 घन मीटर दर्शाई गई है जो भविष्य में और बढ़ सकती है। कि याचिकाकर्ता द्वारा खनिज की पर्याप्त मात्रा का उत्खनन किया जा सकता था, लेकिन उसने खनन कार्य नहीं किया; कि नियमावली 2021 के नियम 30 के अनुसार खनन पट्टा समर्पण करने के लिए उसके द्वारा समर्पण आवेदन दाखिल किया जा सकता था, लेकिन ऐसा कोई आवेदन दाखिल नहीं किया गया; कि याचिकाकर्ता

ने निरीक्षण रिपोर्ट दिनांक 13.2.2023 को अभिलेख पर नहीं लाया है; कि नियमावली 2021 के नियम 42ज(1) का उल्लंघन करते हुए अवैध खनन किया जा रहा था, जिसके बाद याचिकाकर्ता को 5 लाख रुपये का जुर्माना लगाते हुए नोटिस दिनांक 21.2.2023 जारी किया गया, जिसका याचिकाकर्ता ने जवाब नहीं दिया है। प्रतिवाद शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 18 और 19 में निम्नलिखित कहा गया है:-

“18. इस माननीय न्यायालय के समक्ष विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया कि यदि पट्टाधारक किसी विशेष माह में निर्धारित मात्रा में रेत निकालने में असमर्थ होता है, तो रॉयल्टी राशि के भुगतान पर, न निकाली गई रेत की मात्रा स्वतः ही विभाग के पोर्टल पर दर्ज हो जाती है। यह भी निवेदन है कि प्रथा और प्रक्रिया यह है कि यदि पट्टाधारक को अतिरिक्त मात्रा में रेत निकालनी हो, जो वह किसी विशेष माह में निकालने में असमर्थ हो, तो उसे अगले माह की रॉयल्टी राशि का भुगतान करना होगा और अगले माह में निकाली जाने वाली रेत की बची हुई मात्रा (जो नहीं निकाली गई) को निकालना होगा। उक्त रेत की मात्रा पर्यावरण स्वीकृति प्रमाण पत्र में उल्लिखित वार्षिक रेत की मात्रा को ध्यान में रखते हुए निकाली जानी चाहिए।

19. वर्तमान मामले के तथ्यों के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा किसी विशेष वर्ष में निकाली जा सकने वाली रेत की मात्रा 1,10,0057 घन मीटर (संक्षेप में, 110057) और प्रति माह 12,228.55 घन मीटर है। यदि याचिकाकर्ता किसी विशेष माह में 12,228.55 घन मीटर रेत नहीं निकाल पाता है, तो शेष मात्रा को वह अगले माह में ले जाकर तदनुसार निकाल सकता है। याचिकाकर्ता ने जनवरी 2023 से जून 2023 तक 12,228.55 घन मीटर से अधिक रेत निकाली है और लीज आईडी संख्या 313623090133 के साथ उत्पन्न ईएमएम-11 फॉर्म और उत्पादन मात्रा को अभिलेख में लाया जा रहा है और इसे इस शपथपत्र के संलग्नक संख्या सीए-9 के रूप में संलग्न किया जा रहा है।

9. प्रतिवाद-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 19 में उल्लिखित संलग्नक में, उत्पादन माह, उत्पन्न ईएमएम-11 फॉर्म और घन मीटर में उत्पादन मात्रा दर्शाने वाली एक तालिका दी गई है, जिसे प्रतिउत्तर शपथपत्र में अस्वीकार नहीं किया गया है और वह इस प्रकार है:-

क्रम संख्या	पट्टेदार का नाम	उत्पादन महीना	जनरेटेड ईएमएम 11	उत्पादन मात्रा (घन मीटर)
01	सुनील कुमार गुप्ता लीज आईडी- 313623090133	जनवरी, 2023	711	14750
02		फरवरी, 2023	769	15926

03		मार्च, 2023	581	11907
04		अप्रैल	826	16990
05		मई, 2023	707	13864
06		जून, 2023	605	12373

अतः यह तर्क दिया जाता है कि जिला मजिस्ट्रेट और राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश न्यायसंगत हैं।

10. अपने प्रतिउत्तर शपथपत्र में याचिकाकर्ता ने एक शासनादेश दिनांक 12.11.2021 का हवाला देते हुए कहा है कि राज्य सरकार द्वारा पट्टे की राशि के भुगतान में उस खनिज की मात्रा के अनुपात में छूट दी गई थी जिसे याचिकाकर्ता नहीं निकाल सका था, और शासनादेश में निर्देश दिया गया था कि न निकाली जा सकने वाली मात्रा को वार्षिक मात्रा से घटाया जा सकता है।

प्रतिवाद शपथपत्र के साथ प्रस्तुत तालिका के संबंध में, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा तैयार किया गया फॉर्म ईएमएम-11 और खनिज के उत्पादन की मात्रा दर्शाई गई है, यह कहा गया है कि गणना जनवरी 2023 से जून 2023 की अवधि के लिए की गई थी, जब खनन क्षेत्र में पर्याप्त खनिज उपलब्ध था और याचिकाकर्ता ने जून तक पूरी पट्टे की राशि का भुगतान कर दिया था। यह कहा गया है कि वर्तमान मामले में, पूरा क्षेत्र जलमग्न था, इसलिए खनन के लिए खनिजों को आगे ले जाने का कोई अवसर नहीं था। विवाद अक्टूबर 2023 से शुरू होने वाली अवधि से संबंधित है।

विश्लेषण

11. याचिकाकर्ता का मुख्य जोर इस बात पर है कि खनन क्षेत्र के उचित मूल्यांकन के अभाव और जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार न किए जाने के कारण, उसे दिए गए खनन पट्टे पर ईमानदारीपूर्वक कार्य करने के सभी प्रयासों के बावजूद, उसे हानि हो रहा है। यह हानि सतत रेत खनन प्रबंधन दिशानिर्देश-2016, जिसे रेत खनन के लिए प्रवर्तन और निगरानी दिशानिर्देश-2020 द्वारा पूरक किया गया था के अनुसार पुनर्भरण अध्ययन के बाद अनिवार्य रूप से तैयार की जाने वाली जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट के अभाव के कारण हो रहा है। याचिकाकर्ता ने यह भी कहा है कि उत्तर प्रदेश राज्य स्तरीय पर्यावरण प्रभाव आकलन प्राधिकरण ने 31.12.2022 को आयोजित अपनी बैठक में खनन विभाग को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया था कि पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट में उल्लिखित मात्रा से अधिक खनन न किया जाए।

12. भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा ईएमजीएसएम-2020 का निर्माण किया गया था। इससे पहले मंत्रालय ने एसएसएमएमजी-2016 का निर्माण किया था, जो देश में रेत खनन के

प्रबंधन पर केंद्रित था। हालांकि, ईएमजीएसएम-2020 में यह पाया गया कि प्रबंधन और व्यवस्थित खनन प्रक्रियाओं के अतिरिक्त, नियामक प्रावधानों के प्रभावी प्रवर्तन और उनकी निगरानी के लिए दिशा-निर्देशों की तत्काल आवश्यकता है। साथ ही, खनिजों के अंधाधुंध और अवैध खनन, परिवहन और भंडारण पर चिंता व्यक्त की गई। दिशा-निर्देश रेत खनिज स्रोतों की पहचान से लेकर उसके वितरण और उपभोक्ताओं एवं आम जनता द्वारा उसके अंतिम उपयोग तक, रेत खनन की प्रभावी निगरानी पर केंद्रित हैं। सतत रेत और बजरी खनन के लिए निर्धारित नियामक प्रावधानों की निगरानी और प्रवर्तन के लिए एक समान प्रोटोकॉल बनाने हेतु सभी भौगोलिक क्षेत्रों में न्यूनतम आवश्यकताओं की पहचान करना आवश्यक समझा गया।

13. एनजीटी और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय-समय पर जारी किए गए विभिन्न निर्देशों को ध्यान में रखते हुए, ईएमजीएसएम-2020 एनजीटी के निर्देशों का अनुपालन करने की आवश्यकता को रेखांकित करता है। निगरानी और प्रवर्तन के लिए कई आवश्यकताओं का उल्लेख किया गया है, फिर भी कुछ महत्वपूर्ण आवश्यकताएं नीचे दी गई हैं:-

“ii) राज्य सरकार द्वारा उप खनिज परिहार नियमावली के अनुसार नीलाम किए गए खनन पट्टों के लिए आशय पत्र (अलओआई) जारी किया जाता है, लेकिन यह देखा गया है कि इनमें से कई स्थल पर्यावरणीय दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं। अधिकतर मामलों में, खनन पट्टे के अनियोजित आवंटन से छोटे खनन पट्टों के समूह और/या सन्निहित समूह बन जाते हैं, जिनका विनियमन और निगरानी करना कभी-कभी कठिन हो जाता है। ऐसी समस्याओं के समाधान के लिए, जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार करने और उसके प्रारूप पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।”

iii) खनन योजना एक महत्वपूर्ण अभिलेख है जो खदान मालिक को वैज्ञानिक तरीके से खदान का संचालन करने में सहायता करता है। राज्यों के पास खनन योजना तैयार करने के अपने-अपने प्रारूप होते हैं और यह देखा गया है कि प्रारंभिक खनन पट्टे के स्तर को छोटे अंतरालों पर, जैसे कि 25 मीटर x 25 मीटर ग्रिड अंतराल पर, दर्ज नहीं किया जाता है।

iv) जमाव की दर का पता लगाने के लिए नियमित पुनर्भरण अध्ययन की कोई प्रथा नहीं है; आशय पत्र में दिए गए प्रतिबंधों और सतत रेत खनन प्रबंधन दिशानिर्देश 2016 के प्रावधानों के आधार पर योजना और अनुभाग तैयार करने की आवश्यकता है।

v) पर्यावरण स्वीकृति एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें नियामक प्राधिकरण खनन के संभावित पर्यावरणीय प्रभाव पर विचार करने के बाद खनन कार्यों को करने के लिए विशिष्ट और मानक शर्तों के साथ स्वीकृति प्रदान करते हैं। हालांकि, अक्सर यह देखा जाता है कि आशय पत्र (अलओआई) ऐसे स्थान के लिए जारी किया जाता है जहां खनन की संभावना कम होती है और पर्यावरण के अनुकूल खनन संभव नहीं होता। इससे खदान मालिकों पर अनावश्यक वित्तीय बोझ पड़ता है और मुकदमेबाजी बढ़ती है। इसलिए, अलओआई उन स्थानों के लिए अधिमानतः जारी किया जाना चाहिए जहां पर्यावरण और आसपास की आबादी पर प्रभाव की संभावना सबसे कम हो।

vi) सभी वैधानिक स्वीकृतियाँ प्राप्त करना और स्वीकृति पत्र में निर्धारित शर्तों का अनुपालन करना खदान स्वामी का उत्तरदायित्व है। खनन कार्य अनुमोदित खनन योजना या अन्य नियामक प्राधिकरणों द्वारा स्वीकृत खनन योजना के अनुसार खनन पट्टे के क्षेत्र में ही किया जाना चाहिए।

.....

viii) नदी अपने साथ रेत लाकर खनिज संसाधन उपलब्ध कराती है, इसलिए खनिज की पुनर्भरण की दर का पता लगाना आवश्यक है। निक्षेपण और निष्कर्षण के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए नियमित रूप से पुनर्भरण अध्ययन करना आवश्यक है। यह दस्तावेज़ पुनर्भरण अध्ययन करने की प्रक्रिया का विवरण देता है।

14. ईएमजीएसएम-2020 इस बात पर ज़ोर देता है कि डीएसआर तैयार करना एक बहुत महत्वपूर्ण कदम है और देश के किसी भी हिस्से में सतत रेत खनन डीएसआर की गुणवत्ता पर निर्भर करेगा। एसएसएमएमजी-2016 के अंतर्गत डीएसआर तैयार करना अनिवार्य है। दिशानिर्देशों में उन क्षेत्रों की पहचान के लिए अपनाई जाने वाली विस्तृत प्रक्रियाओं पर बल दिया गया है जहां खनन की अनुमति दी जा सकती है और उन क्षेत्रों की पहचान करने के लिए जहां कटाव होता है और बुनियादी ढांचे और प्रतिष्ठानों के निकट स्थित क्षेत्रों में खनन निषिद्ध होना चाहिए। वार्षिक पुनर्भरण दर की गणना, खनन के बाद पुनर्भरण के लिए समय देना, वैज्ञानिक और व्यवस्थित खनन के तरीकों की पहचान; पर्यावरण और पारिस्थितिकी की सुरक्षा के उपायों की पहचान करना और तटबंध कटाव से सुरक्षा के उपायों का निर्धारण करना; खनन चैनल क्षेत्रों (एमसीआर) में औसत समुद्र स्तर (एमएसएल) के संबंध में बेंचमार्क (बीएम) निर्धारित करना अनिवार्य होना चाहिए, जिसके नीचे खनन की अनुमति नहीं होगी। **अंजनी कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के मामले में 8.12.2017 को एनजीटी का निर्णय भी इसी बात को दर्शाता है। इस संबंध में दिशा-निर्देशों में इसका उल्लेख किया गया है, जिसमें दिए गए निर्णय/आदेश में निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:

“इसमें कहा गया है कि जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार करने का मुख्य उद्देश्य उन क्षेत्रों की पहचान करना है जहां खनन की अनुमति दी जा सकती है, जहां मिट्टी का कटाव होता है और जो बुनियादी ढांचे और प्रतिष्ठानों के निकट स्थित हैं, जहां खनन निषिद्ध होना चाहिए। साथ ही, वार्षिक पुनर्भरण दर की गणना करना और खनन के बाद पुनर्भरण के लिए समय निर्धारित करना भी इसका उद्देश्य है। इस प्रकार, पर्यावरण संरक्षण के लिए खनन को क्षेत्रफल, मात्रा और सबसे महत्वपूर्ण रूप से उसके पुनर्भरण के संदर्भ में कड़ाई से विनियमित करना आवश्यक है।”

इसके बाद, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित आदेश/निर्देश पारित किया गया:

“डेटा संग्रह और डीएसआर की तैयारी के लिए घोषित डेटा को अन्य डेटा पर प्राथमिकता दी जाएगी और यह अधिसूचना दिनांक 15 जनवरी 2016 के परिशिष्ट-x के अनुसार खनन पट्टा प्रदान करने का आधार बनेगा। यह डेटा उसमें उल्लिखित वैधानिक प्राधिकरण, अर्थात् डीईआईएए द्वारा, उत्तर प्रदेश राज्य के किसी भी हिस्से में खनन गतिविधि करने के लिए परमिट प्रदान करने से पहले तैयार किया जाना चाहिए।”

(जोर दिया गया)

15. डीएसआर के महत्व को ध्यान में रखते हुए, रेत खनन के लिए व्यापक डीएसआर तैयार करने हेतु कुछ दिशानिर्देश तैयार किए गए हैं, जो नीचे दिए गए हैं :-

(क) संबंधित राज्यों में खनन विभाग या खनन गतिविधि से संबंधित विभाग द्वारा नीलामी/ई-नीलामी/खनन पट्टा जारी करने/आशय पत्र (एलओआई) से पहले रेत खनन के लिए जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार की जाएगी।

(ख) पहला चरण जिले में नदी तल सामग्री और अन्य रेत स्रोतों की सूची तैयार करना है। नदी तल सामग्री की सूची तैयार करने के लिए, जिले का विस्तृत सर्वेक्षण करना आवश्यक है, ताकि नदी तल सामग्री के स्रोत और रेत के वैकल्पिक स्रोत (एम-रेत) की पहचान की जा सके। इस सर्वेक्षण में नदियों, जलाशयों/बांधों से गाद निकालने, पट्टा भूमि/खातेदारी भूमि, एम-रेत आदि स्रोतों को शामिल किया जाएगा। यह प्रस्ताव रखा गया कि जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार करने के लिए नदियों का ऑडिट किया जाना आवश्यक है।

(ग) जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट इस प्रकार तैयार की जानी चाहिए कि इसमें न मात्र खनिज युक्त क्षेत्र की पहचान हो, बल्कि विभिन्न पर्यावरणीय और सामाजिक कारकों को ध्यान में रखते हुए खनन और गैर-खनन क्षेत्रों को भी परिभाषित किया जा सके।

(घ) रेत और मिश्रित रेत के स्रोत की पहचान। स्रोत नदियाँ, झीलें, तालाब, बांध, गाद निकालने वाले स्थान, पट्टा भूमि/खातेदारी भूमि हो सकते हैं।

(ङ) जिले में रेत/मिश्रित रेत के स्रोतों को परिभाषित करना अगला कदम है, जिससे संभावित निक्षेपण/संचयन क्षेत्र की पहचान की जा सके, जहां खनन पट्टा दिया जा सकता है। खनिजों की मात्रा निर्धारित करने के लिए विस्तृत सर्वेक्षण करना आवश्यक है। नदी तल में खनन का उद्देश्य नदियों का चैनलीकरण करना है ताकि बाढ़ की संभावना को रोका जा सके और नदियों का प्रवाह बना रहे। इसके लिए, नदी के पूरे क्षेत्र का सर्वेक्षण करना और मूल भू-स्तर (ओजीएल) दर्ज करना आवश्यक है। साथ ही, नदी तल के बाहर के ओजीएल और जल स्तर के बीच अंतर की तुलना करके निक्षेपण/संचयन क्षेत्र का निर्धारण करना आवश्यक है।

(च) नदी के किनारे से बाहर, सुरक्षित स्थान पर, जहां जल का जमाव और निक्षेपण हुआ हो, स्थायी सीमा स्तंभ स्थापित किए जाने चाहिए ताकि भविष्य में उनका सर्वेक्षण किया जा सके। नदी के दोनों किनारों पर स्थित सीमा स्तंभों के बीच की दूरी 100 मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(छ) खनन और गैर-खनन क्षेत्र की पहचान करने के बाद, संरक्षित क्षेत्र, वन, पुलों, महत्वपूर्ण संरचनाओं, बस्तियाँ आदि से खनन क्षेत्र की दूरी का पता लगाकर संवेदनशील क्षेत्र को परिभाषित किया जाएगा, और संवेदनशीलता के आधार पर क्षेत्र को संवेदनशील और गैर-संवेदनशील क्षेत्रों में परिभाषित किया जाना चाहिए।

(ज) बाजार सर्वेक्षण के माध्यम से नदी तल की सामग्री की मांग और आपूर्ति का विश्लेषण करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, अगले 5 वर्षों के लिए भविष्य की मांग पर भी विचार करना होगा।

(झ) यह सुझाव दिया जाता है कि जहां तक संभव हो, संवेदनशील क्षेत्रों में खनन से बचा जाना चाहिए, जब तक कि स्थानीय सुरक्षा संबंधी परिस्थितियां उत्पन्न न हों। ऐसा विचलन अस्थायी होना चाहिए और स्थायी नहीं होना चाहिए।

(ञ) खनन के लिए चयनित अंतिम क्षेत्र को राज्य सरकार की आवश्यकतानुसार खनन पट्टों में विभाजित किया जाना चाहिए। यह सुझाव दिया जाता है कि खनन पट्टा क्षेत्र का चयन इस प्रकार किया जाना

चाहिए कि वह संपूर्ण निक्षेपण क्षेत्र को कवर करे। निक्षेपण/संचयन के एक बड़े क्षेत्र को छोटे-छोटे खनन पट्टों में विभाजित करने से बचना चाहिए, क्योंकि इससे खनिज की हानि होती है और अप्रत्यक्ष रूप से अवैध खनन को बढ़ावा मिलता है।

(ट) क्लस्टर की स्थिति का विश्लेषण किया जाएगा। क्लस्टर तब बनता है जब एक ही प्रकार के खनिज का एक खनन पट्टा दूसरे खनन पट्टे से 500 मीटर की दूरी के भीतर हो। क्लस्टर बनने की संभावना को कम करने के लिए, खनन पट्टे का आकार इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए कि किन्हीं भी दो क्लस्टरों के बीच की दूरी 2.5 किलोमीटर से कम न हो। खनन पट्टों का क्षेत्रफल इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए कि एक क्लस्टर में सभी खनन पट्टों का कुल क्षेत्रफल 10 हेक्टेयर से अधिक न हो।

(ठ) सन्निहित क्लस्टरों की संख्या निर्धारित करना आवश्यक है। सन्निहित क्लस्टर तब बनते हैं जब एक क्लस्टर दूसरे क्लस्टर से 2.5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित होता है।

(ड) पट्टा/खातेदारी भूमि पर नदी तल से बाहर खनन की अनुमति तभी दी जाएगी जब सामग्री की पुनर्भरण की संभावना हो। यदि पुनर्भरण की संभावना नहीं है, तो खनन पट्टा तभी दिया जाएगा जब पट्टा/खातेदारी भूमि के 5 किलोमीटर के दायरे में नदी तल पर खनन की कोई संभावना न हो। सरकारी परियोजनाओं के लिए पट्टा/खातेदारी भूमि पर खनन की अनुमति दी जा सकती है, लेकिन खनन मात्र सरकारी एजेंसी द्वारा ही किया जाना चाहिए और सामग्री को खुले बाजार में बिक्री के लिए उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। उपरोक्त पैराग्राफ 'ट' में उल्लिखित क्लस्टर स्थिति पट्टा/खातेदारी भूमि में खनन के लिए भी लागू होती है।

(ढ) राज्य सरकार को खनन पट्टे से परिवहन मार्ग का निर्धारण करते समय खानों से अधिकतम उत्पादन को ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि इस समय खनन पट्टों का आकार, उनका स्थान, सुरक्षित रूप से खनन योग्य खनिज की मात्रा आदि की जानकारी राज्य सरकार के पास उपलब्ध है। यह सुझाव दिया जाता है कि परिवहन मार्ग का चयन इस प्रकार किया जाए कि आबाद गांवों से ट्रकों/टिपरों/ट्रैक्टरों की आवाजाही से बचा जा सके। चयनित परिवहन मार्ग की वहन क्षमता का सत्यापन राज्य सरकार द्वारा किया जाना चाहिए।

(ण) वन, संरक्षित क्षेत्र, आबादी, पुल आदि पर प्रभाव डालने वाले खनन के संभावित स्थलों से बचा जाना चाहिए। इसके लिए एक उप-विभागीय समिति का गठन किया जा सकता है, जो स्थल का दौरा करने के बाद खनन के लिए उसकी उपयुक्तता का निर्णय करेगी।

(त) सार्वजनिक परामर्श- नीलाम किए जाने वाले खनन पट्टों की सूची पर विभिन्न हितधारकों की राय मांगी जा सकती है। राज्य सरकार डीएसआर में शामिल खनन पट्टों की सूची पर आम जनता की राय जानने के लिए स्थानीय और राष्ट्रीय समाचार पत्रों में विज्ञापन प्रकाशित करेगी।

16. ईएमजीएसएम-2020 का पैरा 4.2 उन खनन पट्टों के लिए आशय पत्र जारी करने से संबंधित है जो संभावित खनन क्षेत्रों में आते हैं। यह इस प्रकार है:-

“राज्य सरकार अपने उप खनिज परिहार नियमावली में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार, अंतिम जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट पर उचित विचार करते हुए, आशय पत्र जारी करेगी। राज्य सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि सभी आशय पत्रों में खनन पट्टे का संपूर्ण विवरण शामिल हो, जिसमें कोने के बिंदुओं के भौगोलिक निर्देशांक, वन भूमि की भागीदारी, वन भूमि से दूरी, संरक्षित क्षेत्र से दूरी, अन्य पुरातात्विक महत्व के स्थलों से दूरी,

क्लस्टर की स्थिति का विवरण आदि शामिल हों। आशय पत्र/पट्टे क्षेत्र की सीमाओं का सीमांकन, आशय पत्र/पट्टे के विलेख के विवरण के साथ सार्वजनिक डोमेन में रखा जाएगा।

नदी तल और नदी तल से बाहर स्थित खनन क्षेत्रों के लिए एलओआई प्रदान नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए, एक ही पट्टे में दोनों प्रकार के क्षेत्रों को शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

रेत खनन के लिए पट्टा देने वाले प्राधिकारी को यह सुनिश्चित करना होगा कि रेत खनन प्रक्रिया, उत्पादन और नियामक प्राधिकरण द्वारा निर्धारित शर्तों (पर्यावरण स्वीकृति या खनन योजना) के अनुपालन का वार्षिक लेखापरीक्षा पट्टा समझौते की अनिवार्य शर्तों में से एक हो। वार्षिक लेखापरीक्षा रिपोर्ट जिला प्रशासन को प्रस्तुत की जाएगी, जिसे जिला वेबसाइट के माध्यम से सार्वजनिक किया जाएगा। किसी भी प्रकार की अनियमितता पाए जाने पर संबंधित प्राधिकारी द्वारा उचित और लागू विधि के अनुसार कार्रवाई की जाएगी और यदि कोई पारिस्थितिक/पर्यावरणीय क्षति पाई जाती है, तो उसकी भरपाई के लिए सुधारात्मक उपाय भी किए जाएंगे।

17. पैरा 4.3 में खनन योजना की तैयारी से संबंधित प्रावधान हैं, जो इस प्रकार हैं:-

“खनन योजना तैयार करना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। खनन योजना में नदी की लंबाई के साथ-साथ 10 मीटर x 10 मीटर से अधिक के अंतराल पर दर्ज किए गए मूल भूस्तर को शामिल किया जाना चाहिए। इन स्तरों के अतिरिक्त, खनन पट्टे के बाहर और नदी के किनारे तक मीटर तक के स्तरों को भी दर्ज किया जाना चाहिए। खनन योजना में प्रत्येक वर्ष के उत्पादन और विकास नियोजन (मानसून पूर्व, मानसून और मानसून पश्चात) के लिए 3 प्लेटें होनी चाहिए। मानसून की समयावधि डीएसआर में परिभाषित की जानी चाहिए। खनन योजना की समीक्षा के समय, सभी वर्षों के लिए किए गए पुनर्भरण अध्ययन का विवरण खनन योजना में शामिल किया जाना चाहिए। खनन योजना में वन भूमि पर पीसीसीएफ से प्रमाण पत्र, संरक्षित क्षेत्र से दूरी और विस्तार के लिए खनन पट्टों के लिए पिछले उत्पादन विवरण शामिल होने चाहिए।

18. रेत/बजरी खनन के लिए खनन योजना को स्वीकृति देने हेतु जिन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, उन्हें निर्दिष्ट किया गया है, जिनमें से प्रासंगिक प्रावधान इस मामले के संदर्भ में नीचे दिए गए हैं:-

(i) नदी के उन हिस्सों की पहचान की जाएगी जहां निक्षेपण या जमाव होता है। इन स्थानों पर जमाव की समस्या से निपटने के लिए पट्टाधारक/पर्यावरण स्वीकृति धारक को रेत और बजरी निकालने की अनुमति दी जा सकती है।

(ii) रेत और बजरी खनन स्थलों के बीच की दूरी नदी के पुनर्भरण दर पर निर्भर करेगी। संभावित स्थलों के लिए तलछट रेटिंग वक्र विकसित किया जाएगा और निकाले गए रेत और बजरी की मात्रा के आधार पर इसकी जाँच की जाएगी।

(iii) शुष्क मौसम के दौरान सक्रिय जलमार्ग से रेत और बजरी निकाली जा सकती है।

(iv) सीढ़ीदार मैदानों और निष्क्रिय बाढ़ के मैदानों पर उपलब्ध परित्यक्त जलधाराओं को सक्रिय जलधाराओं और उनके डेल्टाओं तथा बाढ़ के मैदानों की तुलना में अधिक प्राथमिकता दी जाती है। जलधाराओं को मोड़कर निष्क्रिय जलधाराएँ नहीं बनाई जानी चाहिए।

(v) नदी के तल से हटाई जा सकने वाली रेत और बजरी की परतें नदी की चौड़ाई और नदी के पुनर्भरण की दर पर निर्भर करेंगी।

(vi) तलछट के नमूने लेते समय निष्कर्षण अवधि से पहले, उसके दौरान और बाद में तलछट सामग्री और तलछट भार का विश्लेषण किया जाना चाहिए। सर्वेक्षण किए गए क्रॉस-सेक्शन का उपयोग करके संभावित क्षेत्र के ऊपरी सिरे पर तलछट रेटिंग वक्र विकसित करें। ऐतिहासिक या मापित प्रवाह रेटिंग वक्र का उपयोग करके, उच्च प्रवाह की उपयुक्त अवधि निर्धारित करें जो निष्कर्षित मात्रा की भरपाई कर सके। अनुमत खनन गहराई निर्धारित करने के बाद, तलछट रेटिंग वक्र और उच्च प्रवाह अवधि के आधार पर निष्कर्षण मात्रा की गणना करें।

(vii) खनन की गहराई 3 मीटर तक सीमित होनी चाहिए और तट से दूरी नदी की चौड़ाई का 1/4 भाग होनी चाहिए और 7.5 मीटर से कम नहीं होनी चाहिए।

19. ईएमजीएसएम-2020 के पैरा 5 में पुनर्भरण अध्ययन का प्रावधान है, जो इस प्रकार है:-

“5.0 पुनर्भरण अध्ययन

नदी तल में रेत की पुनर्भरण का अध्ययन करना आवश्यक है ताकि अत्यधिक रेत खनन से होने वाले प्रतिकूल प्रभावों को कम किया जा सके। नदी तल के भीतर या उसके आस-पास खनन का नदी की भौतिक विशेषताओं, जैसे कि चैनल की ज्यामिति, तल की ऊँचाई, आधार की संरचना और स्थिरता, तल की खुरदरापन, प्रवाह वेग, जल निकासी क्षमता, तलछट परिवहन क्षमता, मैलापन, तापमान आदि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त विशेषताओं में परिवर्तन या संशोधन से नदी के पारिस्थितिक संतुलन पर प्रभाव पड़ सकता है, चैनल की संरचना और प्रवाह पथ में व्यवधान उत्पन्न हो सकता है। इससे नदी के जीव-जंतुओं और तटीय आवासों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। यह माना जाता है कि यदि किसी निश्चित क्षेत्र में पुनर्भरण की मात्रा खनन के बराबर हो तो तटीय आवासों पर होने वाला प्रभाव न्यूनतम होता है। इसलिए, नदी के किसी निश्चित क्षेत्र में रेत खनन से होने वाले प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए, निर्धारित अवधि के दौरान सामग्री की पुनर्भरण का अध्ययन करना अनिवार्य है।

5.1 पुनर्भरण अध्ययन की सामान्य संरचना

प्रारंभ में पुनर्भरण अध्ययन के लिए चार सर्वेक्षणों की आवश्यकता होती है। पहला सर्वेक्षण मानसून से पहले खनन पट्टे के जलस्तर को दर्ज करने के लिए अप्रैल माह में किया जाना चाहिए। दूसरा सर्वेक्षण मानसून के मौसम के लिए खदानों को बंद करने के समय किया जाता है। यह सर्वेक्षण मानसून की समाप्ति से पहले उत्खनित सामग्री की मात्रा प्रदान करेगा। तीसरा सर्वेक्षण मानसून के बाद खनन पट्टे में जमा/पुनर्भरणित सामग्री की मात्रा जानने के लिए किया जाना चाहिए। चौथा सर्वेक्षण वित्तीय वर्ष के दौरान उत्खनित सामग्री की मात्रा जानने के लिए मार्च के अंत में किया जाता है। बाद के वर्षों के लिए, मात्रा तीन सर्वेक्षणों की आवश्यकता होगी। वर्षवार सर्वेक्षणों के परिणाम राज्य सरकार को नदी के पुनर्भरण दर को स्थापित करने में मदद करते हैं। पुनर्भरण दर के आधार पर भविष्य की नीलामी की योजना बनाई जा सकती है।

जल प्रवाह में परिवर्तन के कारण जल संचयन की कृति और मौसम के आधार पर पुनर्भरण की अवधि भिन्न हो सकती है। यह अवधि और मौसम क्षेत्र की भौगोलिक और वर्षा संबंधी विशेषताओं पर निर्भर करता है और स्थानीय एजेंसियों द्वारा केंद्रीय जल आयोग और भारतीय मौसम विज्ञान विभाग की सहायता से निर्धारित

किया जाना आवश्यक है। इसलिए, खुदाई अन्य नियामक प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए अनुमानित पुनर्भरण तक ही सीमित रहेगी।”

(जोर दिया गया)

20. ईएमजीएसएम-2020 के पैराग्राफ 6 में प्रवर्तन का प्रावधान है। इस मामले के संदर्भ में खनन कार्य और पर्यावरण स्वीकृति के बाद की निगरानी का विवरण नीचे दिया गया है:

“6.1 खनन संचालन:

खनन कार्य स्वीकृत खनन योजना के अनुसार और पर्यावरण एवं अन्य वैधानिक स्वीकृतियों में निर्धारित सभी शर्तों का अनुपालन करते हुए ही किया जाना चाहिए। खदान स्वामी को संबंधित राज्य सरकार द्वारा निगरानी दिशानिर्देशों में परिभाषित परिचालन प्रक्रिया (बिक्री, प्रेषण, भंडारण, भंडार मिलान और परिवहन के लिए) का पालन करना होगा। खदान स्वामी को उच्चाधिकार समिति द्वारा लागू अनुशंसाओं और सुझावों का अनुपालन करना होगा।

6.2 पर्यावरण स्वीकृति के बाद की निगरानी:

पर्यावरण स्वीकृति धारक की यह उत्तरदायित्व है कि वह पर्यावरण स्वीकृति की शर्तों का पालन करे और हर छह महीने में पर्यावरण स्वीकृति अनुपालन रिपोर्ट मंत्रालय की वेबसाइट पर अपलोड करे। श्रेणी ‘ए’ की खानों (>100 हेक्टेयर व्यक्तिगत और समूह) के लिए पर्यावरण स्वीकृति निगरानी का कार्य एमओईएफएण्डसीसी के क्षेत्रीय कार्यालय को सौंपा गया है, जबकि श्रेणी ‘बी’ की खानों के लिए यह कार्य एसईआईए को सौंपा गया है। निगरानी एमओईएफएण्डसीसी द्वारा समय-समय पर सुझाई गई प्रक्रिया/अनुसूची के अनुसार की जाएगी। एमओईएफएण्डसीसी ने अपनी अधिसूचना एसओ 637(ई) दिनांक 28.02.2014 के माध्यम से राज्य/केंद्र शासित प्रदेश पर्यावरण प्रभाव आकलन प्राधिकरण को यह अधिकार दिया है कि यदि उक्त प्राधिकरण द्वारा जारी पर्यावरण स्वीकृति की शर्तों का उल्लंघन होता है तो परियोजना प्रस्तावक को कारण बताओ नोटिस जारी किया जाए और उक्त पर्यावरण स्वीकृति को स्थगित करने या वापस लेने का निर्देश दिया जाए। इस प्रकार, श्रेणी ‘बी’ (0 से 100 हेक्टेयर) की परियोजनाओं के लिए एसईआईए पर्यावरण स्वीकृति निगरानी के लिए उत्तरदायी हैं।

21. पैराग्राफ 8, और विशेष रूप से पैराग्राफ 8.1, सतत रेत खनन के सामान्य दृष्टिकोण और रेत खनन संचालन शुरू करने की पूर्व शर्तों से संबंधित हैं और निम्नलिखित हैं:-

“8.0 सतत रेत खनन के लिए सामान्य दृष्टिकोण

8.1 रेत खनन संचालन शुरू करने के लिए पूर्व-आवश्यकताएँ

i) सभी जिलों को जिला सर्वेक्षण रिपोर्ट के प्रावधानों के अनुसार जिले के लिए एक व्यापक खनन योजना तैयार करनी होगी। ये रिपोर्टें जिला प्रशासन की वेबसाइट पर उपलब्ध कराई जाएंगी। जिले की व्यापक खनन योजना में चिन्हित न किए गए क्षेत्र में खनन की अनुमति नहीं दी जाएगी।

ii) नियमित आधार पर पुनर्भरण अध्ययन किया जाना चाहिए।

iii) सभी संभावित नदी खनन क्षेत्र/इलाकों की पहचान की जाएगी और संबंधित नीलामी प्राधिकरण द्वारा उचित भू-टैग विवरण के साथ नीलामी के लिए रखा जाएगा।

iv) प्रत्येक खनन पट्टे के अक्षांश और देशांतर का उल्लेख संभावित खनन पट्टे के लिए जारी किए गए आशय पत्र में स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए। यह जानकारी जिला प्रशासन की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

v) खनन योग्य क्षेत्र के लिए पट्टों के संभावित विस्तार/स्थानों और सीमाओं की पहचान करते समय इन दिशा-निर्देशों के प्रावधानों पर विचार किया जाएगा।

vi) सूचना का अधिकार धारक ईआईए अधिसूचना के प्रावधानों के अनुसार पर्यावरण स्वीकृति प्राप्त करेगा, और नियामक प्राधिकरण यह सुनिश्चित करेगा कि "सतत रेत खनन प्रबंधन 2016" और इन दस्तावेजों में, जहां लागू हो, सुझाए गए प्रावधान स्वीकृति की शर्तों का हिस्सा हों।

vii) मानसून के मौसम में नदी तल में खनन की अनुमति नहीं होगी। आईएमडी नागपुर द्वारा प्रत्येक राज्य के लिए निर्धारित अवधि का पालन किया जाएगा।

viii) इस दस्तावेज़ में सुझाए गए अनुसार, निगरानी संबंधी बुनियादी ढांचे, जिनमें वजन मापने का यंत्र और पट्टे वाले क्षेत्र की पर्याप्त बाड़बंदी, सीसीटीवी, परिवहन परमिट आदि शामिल हैं, को सुनिश्चित किया जाएगा ताकि अनधिकृत प्रेषण को कम किया जा सके।

ix) खनन किए गए खनिजों और उनके परिवहन और भंडारण की नियमित निगरानी सुनिश्चित की जाएगी और सभी जानकारी एक केंद्रीकृत डेटाबेस में दर्ज की जाएगी ताकि अवैध सामग्री का आसानी से पता लगाया जा सके।

x) प्रत्येक खनन पट्टे का वार्षिक लेखापरीक्षा किया जाएगा जिसमें जिला प्रशासन द्वारा नामित तीन प्रतिष्ठित स्वतंत्र सदस्य भी भाग लेंगे।

22. इस प्रकार, ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों के अवलोकन से पता चलता है कि केंद्र सरकार ने रेत खनन के प्रवर्तन और निगरानी के संबंध में कई पर्यावरणीय कारकों को ध्यान में रखते हुए विस्तृत अभ्यास करने के लिए प्रावधान किए हैं।

23. उपर्युक्त दिशा-निर्देशों में परिलक्षित केंद्र सरकार की चिंताओं की प्रतिध्वनि अध्याय II के नियम 10, 17, अध्याय IV के नियम 23, अध्याय V के नियम 35, 36, 37, 38, 41, 42, 45 और नियमावली, 2021 के अन्य प्रावधानों में भी मिलती है। यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश खनिज (अवैध खनन, परिवहन और भंडारण की रोकथाम) नियमावली, 2018 भी बनाए थे।

24. यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि रेत और बजरी के पर्यावरण की दृष्टि से सतत और सामाजिक रूप से उत्तरदायी खनन के लिए एक निर्णायक क्षण तब आया जब सर्वोच्च न्यायालय ने दीपक कुमार एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य के मामले में इस संबंध में अपनी राय व्यक्त की, जिसमें राज्य सरकारों को उचित नियम बनाकर केंद्र सरकार द्वारा जारी दिशानिर्देशों का पालन करने का निर्देश दिया गया था। दीपक कुमार मामले में आदेश के अनुसरण में, विस्तृत विचार-विमर्श और अध्ययन के बाद, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा 15.1.2016 को एसओ 141(ई) संख्या के साथ पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम,

1986 की धारा 3 की उपधारा (1) और उपधारा (2) के खंड (v) के प्रावधान के अंतर्गत एक मसौदा अधिसूचना जारी की गई थी। यह मसौदा अधिसूचना, 2016 विशेष रूप से पर्यावरण प्रभाव आकलन अधिसूचना, 2006 में कुछ संशोधन करने के उद्देश्य से थी, जो एसओ 1533(ई) संख्या के अंतर्गत दिनांक 14.9.2006 को जारी की गई थी और जिसे पर्यावरण (संरक्षण) नियम, 1986 के नियम 5 के उप-नियम (3) के अंतर्गत एसओ 2588(ई) संख्या के अंतर्गत दिनांक 22.9.2015 को प्रकाशित किया गया था। उपर्युक्त अधिसूचना राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण द्वारा 13.1.2015 के अपने आदेश के माध्यम से रेत खनन के मामले में की गई कुछ टिप्पणियों के अनुपालन में भी जारी की गई थी, जिसमें लघु खनिजों के लिए क्लस्टर में खनन पट्टों के लिए पर्यावरण स्वीकृति पर एक नीति बनाने का निर्देश जारी किया गया था।

25. यह ध्यान देने योग्य है कि दीपक कुमार (उपरोक्त) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक समिति को यह जांच करने का निर्देश दिया था कि क्या समरूप क्षेत्र को 5 हेक्टेयर से कम के टुकड़ों में विभाजित करके उक्त अधिसूचना दिनांक 14.9.2006 का उल्लंघन करने का प्रयास किया गया था, और क्या उस क्षेत्र में चल रही गतिविधियों का कोई प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभाव पड़ा था।

सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि नदी तल और अन्य स्थानों पर संभावित पर्यावरणीय प्रभाव का कोई अध्ययन किए बिना ही नीलामी नोटिस जारी किए गए थे। सर्वोच्च न्यायालय का यह मत था कि जब नदी तल के भीतर या उसके आसपास जलोढ़ सामग्री के निष्कर्षण का नदी के भौतिक आवास की विशेषताओं, जैसे नदी की स्थिरता, बाढ़ का खतरा, पर्यावरणीय गिरावट, आवास का हानि, जैव विविधता में कमी, पर प्रभाव पड़ता है, तो यह कहना उचित नहीं है कि (रेत आदि का) निष्कर्षण 5 हेक्टेयर से कम के टुकड़ों में, 1 किमी की दूरी पर किया गया था, क्योंकि उनका सामूहिक प्रभाव महत्वपूर्ण हो सकता है, इसलिए एक उचित पर्यावरणीय मूल्यांकन योजना आवश्यक है।

26. दीपक कुमार (उपरोक्त) मामले में, मंत्रालय द्वारा उठाए गए मुद्दों और सिफारिशों पर विचार किया गया, जिनमें अन्य बातों के अतिरिक्त यह प्रावधान था कि राज्य और केंद्र शासित प्रदेश यह सुनिश्चित करेंगे कि विभिन्न कारकों को ध्यान में रखते हुए लघु खनिजों के खनन को सरल लेकिन सख्त नियामक व्यवस्था के अधीन किया जाए। आदर्श दिशानिर्देश विकसित करने के लिए, खनन और लघु खनिजों के पर्यावरणीय पहलू से संबंधित मसौदा आदर्श दिशानिर्देश खनन मंत्रालय द्वारा एक पत्र के माध्यम से भेजा गया था, जिसमें सुझाव मांगे गए थे। तदनुसार, केंद्र और राज्य सरकारों को खनन मंत्रालय की मार्च 2010 की रिपोर्ट में की गई सिफारिशों और खनन मंत्रालय द्वारा तैयार किए गए आदर्श दिशानिर्देशों के अनुपालन के संबंध में निर्देश जारी किए गए थे।

27. 2016 की अधिसूचना द्वारा, रेत खनन, नदी तल खनन और अन्य लघु खनिजों के खनन के लिए डीएसआर तैयार करने संबंधी 2006 की अधिसूचना में संशोधन किया गया था। रेत खनन, नदी तल खनन और अन्य लघु खनिजों के खनन के लिए डीएसआर तैयार करने की विस्तृत प्रक्रिया इसके परिशिष्ट X में दी गई है।

यह कहना आवश्यक नहीं है कि मंत्रालय द्वारा जारी 2016 की अधिसूचना राज्य सरकार पर बाध्यकारी है।

28. उपरोक्त पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार द्वारा नियमावली 2021, नियम 23, के उप-नियम (1) के अंतर्गत घोषणा किए जाने के बाद, जिला अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह घोषित क्षेत्र या क्षेत्रों का खनिजों की गुणवत्ता और मात्रा के लिए उत्तर प्रदेश भूविज्ञान एवं खनन निदेशक या उनके द्वारा अधिकृत किसी अधिकारी से ई-टेंडर/ई-नीलामी/ई-टेंडर-सह-ई-नीलामी के लिए निर्धारित तिथि से पहले मूल्यांकन करवाए, ताकि न्यूनतम बोली या प्रस्ताव निर्धारित किया जा सके। ऐसा मूल्यांकन अनिवार्य है और नियमावली 2021 के नियम 10 में उल्लिखित विभिन्न कारकों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। डीएसआर तैयार करने के लिए ईएमजीएसएम-2020 में दिए गए दिशानिर्देश भी ऐसे मूल्यांकन के कारक हैं।

29. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मानसून से पहले और बाद में किए जाने वाले पुनर्भरण अध्ययन ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों में अनिवार्य हैं और ये नियम 23 के अंतर्गत घोषित क्षेत्र या क्षेत्रों के सर्वेक्षण, सीमांकन और मूल्यांकन का ही विस्तार हैं। नियमावली, 2021 के अध्याय II और अध्याय IV के प्रावधानों के अंतर्गत आवश्यक सर्वेक्षण और मूल्यांकन का उद्देश्य लघु खनिजों (इस मामले में रेत और मोरम) के खनन पट्टों की नीलामी/निविदा में संभावित बोलीदाताओं को सूचित करना है, ताकि वे अपनी बोली लगाने से पहले घोषित क्षेत्र में उपलब्ध खनिजों की मात्रा और गुणवत्ता से भलीभांति अवगत हों। राज्य सरकार यह कहकर संभावित बोलीदाताओं पर यह दायित्व नहीं डाल सकती कि क्षेत्र का निरीक्षण करना और पट्टे पर दिए जाने वाले प्रस्तावित क्षेत्र में उपलब्ध खनिजों की गुणवत्ता और मात्रा से स्वयं को संतुष्ट करना बोलीदाताओं का कर्तव्य है, जबकि नियमावली, 2021 और ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देश राज्य सरकार को यह कार्य करने के लिए बाध्य करते हैं।

30. एसएसएमएमजी-2016 और ईएमजीएसएम-2020 में निहित दिशा-निर्देश सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों और एनजीटी के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए तैयार किए गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये दिशा-निर्देश केंद्र सरकार द्वारा खनन और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 20-क के अंतर्गत निर्देश जारी करने की शक्ति का कथित रूप से प्रयोग करते हुए जारी किए गए हैं। नियमावली, 2021 के अंतर्गत पट्टे पर दिए जाने वाले क्षेत्रों के संबंध में पारिस्थितिकी और पर्यावरण के हित में राज्य अधिकारियों द्वारा सर्वेक्षण/मूल्यांकन के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। यह एकमात्र उपलब्ध और निर्धारित तरीका है जिसके द्वारा राज्य सरकार पारिस्थितिकी, वनस्पति और जीव-जंतुओं और नदियों की नाजुकता के साथ-साथ पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखते हुए पट्टे पर दिए गए क्षेत्र में खनन की अनुमति किस हद तक दी जा सकती है, इसका यथार्थवादी आकलन कर सकती है।

31. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याचिकाकर्ता ने राज्य अधिकारियों से प्राप्त निर्देशों के अनुसार मानसून पूर्व और मानसून पश्चात दोनों सर्वेक्षण किए थे। पुनर्भरण अध्ययन कराए बिना याचिकाकर्ता खनन

कार्य पुनः आरंभ नहीं कर सकता था। वास्तव में, याचिकाकर्ता ने 8.1.2024 को मानसून पश्चात पुनर्भरण अध्ययन की दूसरी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें उक्त पट्टे पर 16380 घन मीटर खनिज की पुनर्भरण दर्शाई गई थी। उस पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि जलस्तर घटने के बाद भविष्य में खनिज की यह मात्रा बढ़ सकती है। राज्य प्रतिवादियों ने अपने प्रतिवाद-शपथपत्र में निराधार कथन द्वारा पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट को खारिज करने का प्रयास किया है, जिसमें उन्होंने कहा है कि पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट दिनांक 29.10.2023 का विश्लेषण और निष्कर्ष कि कोई खनन गतिविधि नहीं की जा सकती, भरोसे के योग्य नहीं है।

32. प्रतिवादियों का यह दावा नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा कराए गए पुनर्भरण अध्ययन एनएपीईटी/क्यूसीआई से मान्यता प्राप्त एजेंसी द्वारा नहीं कराए गए थे, या यह कि एजेंसी विभाग द्वारा अन्वेषण एजेंसी के रूप में सूचीबद्ध नहीं थी, या यह कि पुनर्भरण अध्ययन दिशानिर्देशों के विपरीत किए गए थे। यह भी नहीं कहा गया है कि पट्टे पर दिए गए क्षेत्र के लिए डीएसआर/मूल्यांकन याचिकाकर्ता के लिए उपलब्ध था। वास्तव में, ईएमजीएसएम-2020 के दिशानिर्देशों में यह दर्शाया गया है कि अक्सर यह देखा जाता है कि आशय पत्र ऐसे स्थान के लिए जारी कर दिया जाता है जिसमें खनन की संभावना कम होती है और जो पर्यावरण के अनुकूल खनन के लिए उपयुक्त नहीं होता; इससे खदान मालिकों पर अनावश्यक वित्तीय बोझ और मुकदमेबाजी होती है; इसलिए, आशय पत्र उन स्थानों के लिए जारी किया जाना चाहिए जिनमें पर्यावरण और आस-पास की बस्तियों पर प्रभाव की संभावना सबसे कम हो।

33. प्रतिवादी पक्ष ने अपने प्रतिवाद-शपथपत्र में यह भी कहा है कि याचिकाकर्ता नियमावली, 2021 के नियम 30 के प्रावधानों के अंतर्गत पट्टा समर्पण कर सकता था, जो उसने नहीं किया। हमारी राय में, प्रतिवादी इस तरह की आपत्तियों और बचावों का इस्तेमाल इस बात को छुपाने के लिए नहीं कर सकते कि वे इस न्यायालय के समक्ष कोई भी ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं जिससे यह साबित हो सके कि याचिकाकर्ता को खनन पट्टा दिए गए क्षेत्र के संबंध में कोई सर्वेक्षण और मूल्यांकन किया गया था और याचिकाकर्ता को दिए गए खनन पट्टे वाले क्षेत्र से संबंधित एक डीएसआर प्रतिवादियों द्वारा अधिसूचना 2016/एसएसएमएमजी-2016/ईएमजीएसएम-2020 के अनुपालन में तैयार की गई थी, जो डीएसआर याचिकाकर्ता को अपनी बोली जमा करने से पहले उपलब्ध थी।

34. इसके अतिरिक्त, खनन प्रभारी अधिकारी का नोटिस दिनांक 2.6.2023, जो याचिका के संलग्नक संख्या 6 के रूप में संलग्न है, याचिकाकर्ता को आवश्यक पुनर्भरण अध्ययन कराने और उसे प्रस्तुत करने का स्पष्ट निर्देश देता है; ऐसा न करने पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध विधिक कार्यवाही शुरू की जाएगी। प्रतिवादियों द्वारा यह सिद्ध नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता का खनन पट्टे के अंतर्गत खानों में कार्य करने का आशय नहीं था।

35. रिट याचिका के पैराग्राफ 39 में याचिकाकर्ता ने कहा है कि पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट के बिना मानसून के बाद खनन क्षेत्र में कोई खनन कार्य नहीं किया जा सकता है, और इसके अतिरिक्त, मानसून के बाद की पहली पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट से स्पष्ट रूप से पता चला है कि खनन क्षेत्र जलमग्न था।

इसके अतिरिक्त, रिट याचिका के पैराग्राफ 40 में कहा गया है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी और जिला मजिस्ट्रेट दोनों इस बात पर ध्यान देने में विफल रहे हैं कि पट्टे की अवधि के दौरान उत्खनित किए जाने वाले खनिज की मात्रा राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है और याचिकाकर्ता का इस मात्रा पर कोई नियंत्रण नहीं है, इसलिए पट्टे की अवधि के दौरान पट्टाधारक द्वारा उत्खनित की जाने वाली गुणवत्ता और मात्रा राज्य सरकार द्वारा ही निर्धारित की जाती है।

36. रिट याचिकाओं के उपरोक्त पैराग्राफों के उत्तर में, प्रतिवादियों ने प्रतिवाद शपथपत्र में उल्लिखित वैधानिक प्रावधानों और पट्टा विलेख की शर्तों के साथ-साथ पट्टाधारक के अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के दायित्व का हवाला दिया है। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता अपनी सुविधा के अनुसार पट्टा विलेख की शर्तों को बदल या संशोधित नहीं कर सकता, जिससे राज्य के खजाने को हानि हो।

इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने पाया कि उत्तर में मात्र नियमावली 1963 के नियम 29 और नियमावली 2021 के नियम 30 का ही उल्लेख किया गया है। नियमावली 1963 का नियम 29 पट्टा विलेख के निष्पादन से संबंधित है, जबकि नियमावली 2021 का नियम 30 खनन पट्टा के समर्पण से संबंधित है। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि यह याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत दलीलों का कैसे मिलान करता है। प्रतिवादियों का आरोप है कि याचिकाकर्ता "अपनी मनमानी के चलते अनुबंध से बचने की कोशिश कर रहा है, क्योंकि याचिकाकर्ता को दी गई अपनी पुनर्भरण रिपोर्ट में एक जगह वह कहता है कि खनन के लिए रेत उपलब्ध नहीं है, जबकि दूसरी रिपोर्ट में वह 16380 घन मीटर रेत उपलब्ध होने का अनुमान लगाता है"। हमारी राय में, यह कथन निराधार, अनावश्यक और ईएमजीएसएम-2020 की उचित समझ के बिना दिया गया है।

37. रिट याचिका के पैराग्राफ 44 में निम्नलिखित कहा गया है:-

"44. उपर्युक्त दिशा-निर्देशों में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि डीएसआर का उद्देश्य खनन योग्य क्षेत्र की पहचान करना और इस प्रकार खनिजों की खनन योग्य मात्रा और गुणवत्ता का आकलन करना था, जिसे प्रस्ताव आमंत्रित करने (ई-नीलामी/ई-निविदा/विज्ञापन) से पहले सुनिश्चित किया जाना था, जिसका अनुपालन प्रतिवादी प्राधिकरण द्वारा नहीं किया गया।"

38. इसके जवाब में, प्रतिवाद-शपथपत्र में निम्नलिखित बातें कही गई हैं:-

"32. याचिका के पैराग्राफ 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49 और 50 में किए गए अभिकथन विधिक प्रकृति के हैं और इसलिए उन्हें किसी विशिष्ट उत्तर की आवश्यकता नहीं है, फिर भी विनम्रतापूर्वक निवेदन है कि याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत उक्त मामले वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होते हैं और वर्तमान याचिका की सुनवाई के समय इन्हें उचित रूप से अलग किया जाना चाहिए। याचिका में प्रतिपादित

सिद्धांत तथ्यों और विधिक सिद्धांतों के गलत मूल्यांकन पर आधारित हैं और वर्तमान याचिका की सुनवाई के समय इन्हें उचित रूप से अलग किया जाना चाहिए।”

39. यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि प्रतिवादियों द्वारा दायर किए गए प्रतिवाद शपथपत्र में यह नहीं कहा गया है कि नीलामी के लिए प्रस्तावित क्षेत्र का उचित सर्वेक्षण और मूल्यांकन करने के बाद कोई डीएसआर तैयार किया गया था। कोई डीएसआर प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसलिए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए बाध्य हैं कि राज्य सरकार 2016/एसएसएमएमजी-2016 की अधिसूचना और ईएमजीएसएम-2020 के दिशानिर्देशों का उचित अनुपालन करते हुए डीएसआर तैयार करने में विफल रही है। इसके अतिरिक्त, प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत मानसून के बाद की पहली पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट को बिना कोई ठोस कारण बताए खुले तौर पर खारिज कर दिया है।

40. डीएसआर तैयार करने का उद्देश्य उन क्षेत्रों की पहचान करना है जहां खनन की अनुमति दी जा सकती है; उन क्षेत्रों की पहचान करना है जहां कटाव होता है और जो बुनियादी ढांचे और प्रतिष्ठानों के निकट स्थित हैं जहां खनन निषिद्ध होना चाहिए; और वार्षिक पुनर्भरण दर की गणना करना तथा खनन के बाद उस क्षेत्र में पुनर्भरण के लिए समय देना है। इस प्रकार, पर्यावरण संरक्षण के लिए खनन को क्षेत्र, खनिज की मात्रा और सबसे महत्वपूर्ण रूप से, उसके पुनर्भरण के संदर्भ में कड़ाई से विनियमित करना आवश्यक है।

41. पट्टा विलेख की अनुसूची के भाग-1 में वर्णित भूमि पर, ग्राम - बिलासपुर कच्छर में स्थित भूखंड संख्या 58 (क्षेत्रफल 8.275 हेक्टेयर) पर खनन पट्टा प्रदान किया गया था, जिसके लिए सुरक्षा राशि जमा की गई थी। भूखंड संख्या 58 की सीमाएँ इस प्रकार हैं:-

उत्तर - प्लॉट संख्या 58 का शेष भाग, यमुना नदी

दक्षिण - प्लॉट संख्या 58 की सीमा, उसके बाद, बिछावली गांव में यमुना नदी।

पूर्व - प्लॉट संख्या 58 का शेष भाग, उसके बाद प्लॉट संख्या 42 से 56 और प्लॉट संख्या 57 की कृषि भूमि।

पश्चिम - प्लॉट संख्या 58 का शेष भाग, यमुना नदी

यद्यपि खनन पट्टे की फोटोकॉपी के साथ नक्शा संलग्न नहीं किया गया है, लेकिन सीमाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को दिए गए पट्टे के अंतर्गत खनन क्षेत्र में यमुना नदी का नदी तल भी शामिल हो सकता है।

ईएमजीएसएम-2020 के दिशानिर्देशों को देखते हुए, मानसून के बाद खनिज पुनर्भरण अध्ययन में न मात्र खनिज की उपलब्धता का पता चलेगा, बल्कि यह भी पता चलेगा कि नदी के तल/किनारे के किस हिस्से में पुनर्भरण हुआ है।

42. अतः, खनन क्षेत्र के पर्यावरण और पारिस्थितिकी को ध्यान में रखते हुए, उपर्युक्त ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों के अंतर्गत परिकल्पित वार्षिक लेखापरीक्षा और मानसून से पूर्व एवं मानसून पश्चात दोनों समय

किए जाने वाले पुनर्भरण अध्ययन का अत्यधिक महत्व है। नदी तल के भीतर या उसके निकट खनन का नदी की भौतिक विशेषताओं, जैसे कि चैनल की ज्यामिति, तल की ऊँचाई, आधार की संरचना और स्थिरता, तल की खुरदरापन, प्रवाह वेग, निर्वहन क्षमता, तलछट परिवहन क्षमता, मैलापन, तापमान आदि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त विशेषताओं में परिवर्तन या संशोधन से नदी के पारिस्थितिक संतुलन पर प्रभाव पड़ सकता है, चैनल की संरचना और प्रवाह पथ में व्यवधान उत्पन्न हो सकता है। इससे नदी के जीव-जंतुओं और तटीय आवासों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। यह माना जाता है कि यदि किसी दिए गए क्षेत्र में पुनर्भरण खुदाई के बराबर हो तो तटीय आवासों में व्यवधान न्यूनतम होता है। अतः, ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों में यह अनुशंसा की गई है कि किसी दिए गए नदी क्षेत्र में रेत खनन से उत्पन्न प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए निर्धारित अवधि के दौरान सामग्री के पुनर्भरण का अध्ययन करना अनिवार्य है। ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों में यह प्रावधान है कि खुदाई अन्य नियामक प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए अनुमानित पुनर्भरण तक ही सीमित रहेगी।

43. अतः, दिनांक 8.1.2024 को किए गए दूसरे मानसूनोत्तर पुनर्भरण अध्ययन में खनन के लिए उपलब्ध 16380 घन मीटर रेत के पुनर्भरण को नदी के उस हिस्से में इस जमाव/पुनर्भरण के स्थान के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इसके बाद, ईएमजीएसएम-2020 के आलोक में यह निर्धारित करना होगा कि क्या ऐसा पुनर्भरण खनन योग्य है।

44. प्रतिवादी उचित पुनर्भरण, खनन योजना और डीएसआर के महत्व से पूरी तरह अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं, जब वे ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों में परिलक्षित पारिस्थितिक चिंताओं को संबोधित किए बिना मांगें उठाते हैं और दावे करते हैं, जिनमें सतत खनन के पहलू को भी संबोधित किया गया है।

45. प्रतिवादियों ने जनवरी 2023 से जून 2023 के बीच खनन पट्टे वाले क्षेत्र में याचिकाकर्ता द्वारा खनन कार्यों के दौरान 85,810 घन मीटर रेत के उत्खनन को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। उनका उद्देश्य यह तर्क देना है कि याचिकाकर्ता पट्टे की शर्तों के अंतर्गत प्रति वर्ष अनुमत 11,057 घन मीटर के कुल खनन में से 24,247 घन मीटर कम रेत का उपयोग कर रहा है, जिसकी भरपाई याचिकाकर्ता जलस्तर कम होने पर कर सकता है। हालांकि, यह दावा इस धारणा पर आधारित है कि क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में रेत की भरपाई हो जाएगी, जबकि खनन कार्यों के दौरान और उसके बाद ध्यान में रखे जाने वाले पारिस्थितिक पहलुओं पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है, जैसा कि ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों में दर्शाया गया है।

46. यदि नदी का जलस्तर घटने के बाद भी पर्याप्त मात्रा में जल की भरपाई नहीं होती है, तो याचिकाकर्ता द्वारा किशतों का अग्रिम भुगतान करने से उसे गंभीर हानि होगी, जिसका उल्लेख न तो पट्टा विलेख में है और न ही नियमावली, 2021 में। इसलिए, यह तर्क कि याचिकाकर्ता द्वारा किशतों का भुगतान किया जाना चाहिए

और मार्च 2024 तक पिछले माह में खनन न किए जा सकने वाले खनिजों की आगे ले जाई गई मात्रा तक ईएमएम-11 प्रपत्र अपलोड किए जाने चाहिए, निराधार है।

47. ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य के खजाने के लाभ के लिए खनन कार्यों से राजस्व निकालने का प्रयास किया जा रहा है, जिसमें पारिस्थितिकी और सतत खनन के प्रति कोई सहानुभूति और विचार नहीं किया जा रहा है, जबकि इन पहलुओं को राज्य के खजाने के लिए विकास और आय की अनिवार्यता के साथ संतुलित किया जाना चाहिए।

48. इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रतिवादियों और याचिकाकर्ता के बीच एक अनुबंध, पट्टा विलेख, हुआ है, जिसकी शर्तें दोनों पक्षों पर बाध्यकारी हैं। हालांकि, पट्टा विलेख की शर्तें वर्ष 2016 की उपरोक्त अधिसूचना, एसएसएमएमजी-2016, ईएमजीएसएम-2020 दिशानिर्देशों और अधिनियम एवं नियमों को निरस्त नहीं कर सकती।

49. यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि प्रतिवादी अपने प्रतिवाद शपथपत्र में 16380 घन मीटर पुनर्भरण की गई रेत की उपलब्धता पर जोर देते हैं और कहते हैं कि दूसरी पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट से पता चलता है कि मानसून के बाद के मौसम में पानी कम होने के बाद, भविष्य में पानी कम होने पर खनिज की मात्रा बढ़ सकती है।

इस तथ्य के अतिरिक्त कि प्रतिवाद शपथपत्र में दिया गया यह कथन 8.1.2024 को किए गए मानसून पश्चात पुनर्भरण अध्ययन में व्यक्त राय को पूरी तरह से समझे बिना आधारित है, जिसमें यह भी कहा गया था कि उस वर्ष कोई उग्र बाढ़ नहीं देखी गई, इसलिए आरबीएम का कोई महत्वपूर्ण पुनर्भरण नहीं पाया गया, वहीं 29.10.2023 को किए गए मानसून पश्चात पुनर्भरण अध्ययन से पता चलता है कि संपूर्ण पट्टे का क्षेत्र यमुना नदी की सक्रिय धारा में डूबा हुआ था और सतह का एक बहुत छोटा हिस्सा ही पुनर्भरणित क्षेत्र के अंतर्गत दिखाई दिया। यह दृढ़तापूर्वक अनुशंसा की गई थी कि पट्टाधारक आगे के सर्वेक्षण के लिए जल स्तर घटने की प्रतीक्षा करें। इसके बाद, पुनर्भरणित रेत खनिजों की पुष्टि के लिए डीजीपीएस डेटा के लिए पट्टे के क्षेत्र की पुनः जांच की जा सकती है। अतः, यह कहा गया कि एसएसएमएमजी-2016 की अनुशंसा के अनुपालन में खनन गतिविधि व्यवहार्य नहीं है।

50. खनन पट्टे की शर्तों के अंतर्गत किशतों का समय पर और उचित भुगतान, पट्टे के लिए दिए गए वर्तमान खनिजों के खनन पर आधारित है, जो डीएसआर और पुनर्भरण अध्ययनों, विशेष रूप से मानसून के बाद के पुनर्भरण अध्ययन में परिकल्पित गुणवत्ता और मात्रा के अनुरूप हो। यदि मानसून के बाद के पुनर्भरण अध्ययन में ईएमजीएसएम-2020 में परिकल्पित तरीके और सीमा तक पर्याप्त पुनर्भरण नहीं दिखता है, तो खनन पट्टे से संबंधित क्षेत्र में खनन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। परिणामस्वरूप, पट्टे के लिए दिए गए क्षेत्र के विभिन्न अन्य भागों में खनिज के पर्याप्त पुनर्भरण न होने या आवश्यक मात्रा में खनिज की अनुपलब्धता के कारण, न तो किसी खनन गतिविधि की अनुमति दी जा सकती है

और न ही किशतों के लिए कोई दावा मान्य हो सकता है, जब तक कि वास्तविक पुनर्भरण या उपलब्धता न हो। इन्हीं परिस्थितियों में उचित डीएसआर तैयार करना और लेखापरीक्षा कराना महत्वपूर्ण हो जाता है।

51. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता का मामला तर्कसंगत है। याचिकाकर्ता को पिछली पुनर्भरण अध्ययन रिपोर्ट में दर्शाई गई अपेक्षाकृत कम मात्रा (16380 घन मीटर) की पुनर्भरणित रेत का खनन करने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जा सकता था, जब तक यह सुनिश्चित न हो जाए कि भूमि/नदी के उस हिस्से में हुआ पुनर्भरण इस प्रकार का था कि सतत खनन के संदर्भ में उसका खनन अनुमत हो सके। इस संबंध में कोई भी डीएसआर (विस्तृत खनन रिपोर्ट) तैयार होने का प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है।

52. याचिकाकर्ता द्वारा इस न्यायालय की लखनऊ पीठ के समक्ष रिट याचिका संख्या 9186/2022 दायर करने का संबंध एक भिन्न कारण से है। हालांकि, याचिकाकर्ता द्वारा अलग-अलग याचिकाएं दायर करने के लिए इस न्यायालय की लखनऊ पीठ और इलाहाबाद पीठ दोनों का चयन करना उचित नहीं है।

53. उपरोक्त कारणों से, आक्षेपित आदेशों दिनांक 18.4.2024, 27.2.2024 और 19.2.2024 को मान्य नहीं माना जा सकता है और इन्हें निरस्त किया जाता है।

54. हालांकि, 9.12.2024 को दायर शपथपत्र के साथ दिए गए स्थगन आवेदन के माध्यम से हमें सूचित किया गया है कि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ता को आवंटित खनन क्षेत्र की नई नीलामी के लिए कदम उठाए हैं, इसलिए हम निर्देश देते हैं कि याचिकाकर्ता 1.7.2023 से खनन कार्यों के बंद होने के बाद की अवधि के लिए कोई भी किस्त जमा करने के लिए उत्तरदायी नहीं है। यदि याचिकाकर्ता द्वारा/के विरुद्ध कोई राशि जमा/वसूली/जब्त की गई है, तो उसे आज से एक महीने की अवधि के भीतर 9% प्रति वार्षिक की दर से साधारण ब्याज सहित वापस किया जाएगा, जिसकी गणना जमा/वसूली/जब्त की तिथि से वास्तविक भुगतान तक की जाएगी।

55. उपरोक्त टिप्पणियों के अधीन, यह रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

56. हालांकि, विदा लेने से पहले, हम प्रतिवादियों को यह निर्देश देना उचित समझते हैं कि वे 2006 की अधिसूचना, 2016 की अधिसूचना द्वारा संशोधित, एसएसएमएमजी-2016 और ईएमजीएसएम-2020 के अनुपालन में रेत/बजरी/मोरम के खनन के लिए नीलाम किए जाने वाले प्रत्येक क्षेत्र के संबंध में डीएसआर तैयार करना सुनिश्चित करें।

(2025) 3 ILRA 935

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.03.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता

रिट सी संख्या 27598 / 2020

कन्यावती

.....याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री राजेंद्र प्रसाद तिवारी, श्री विमलेश कुमार

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

ए. भूमि विधि - प्रतिकर - संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं बल्कि संवैधानिक अधिकार है, जिसे अविभाज्य मानवाधिकारों के समान मान्यता प्राप्त है। अतः, किसी भी व्यक्ति को विधि के अनुसार ही उसकी संपत्ति से वंचित किया जा सकता है। यदि किसी नागरिक की भूमि का अधिग्रहण राज्य अधिकारियों द्वारा उचित तरीके से नहीं किया गया है, तो यह विधि के विरुद्ध कार्रवाई मानी जाएगी। अतः, जिस व्यक्ति की संपत्ति का उपयोग विधि के विरुद्ध किया गया है, वह उस तिथि को लागू विधि के प्रावधानों के अनुसार उचित प्रतिकर की पात्र है, जिस तिथि को राज्य द्वारा संपत्ति का उपयोग किया गया था। (पैरा 17)

बी. निरंतर चल रहे वाद का कारण या ऐसी परिस्थितियाँ जो न्यायालय की न्यायिक चेतना को झकझोर दें, उनके आधार पर विलंब और लापरवाही का मुद्दा नहीं उठाया जा सकता। न्यायालयों को वास्तविक न्याय प्रदान करने के लिए अपने संवैधानिक अधिकार का प्रयोग करने हेतु कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। (पैरा 18)

इस मामले में यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की 0.033 हेक्टेयर भूमि का उपयोग राज्य अधिकारियों द्वारा विधिवत अधिकार के बिना और विधिवत भूमि अधिग्रहण किए बिना किया गया था। अतः याचिकाकर्ता प्रतिकर की पात्र है, जिसका निर्धारण भूमि अधिग्रहण, पुर्नवासन एवं पुनःस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार, 2013 के प्रावधानों के अनुसार किया जाना आवश्यक है। (पैरा 19)

याचिकाकर्ता की भूमि का उपयोग बिना उचित अधिग्रहण के किया गया है, इसलिए विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी को प्रतिकर की राशि निर्धारित करने या उसके भुगतान की सिफारिश करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता। इस स्थिति में, मामले को प्रतिकर निर्धारित करने के लिए जिला स्तरीय समिति को वापस भेजा जाता है। (पैरा 20)

रिट याचिका की अनुमति। (ई-4)

पूर्व-निर्णय अनुपालित:

1. हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम डेरियस शापुर चेनाई, (2005) 7 एससीसी 627 (पैरा 10)
2. एन. पद्मम्मा बनाम एस. रामकृष्ण रेड्डी, (2008) 15 एससीसी 517 (पैरा 11)
3. दिल्ली एयरटेक सर्विसेज (पी) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2011) 9 एससीसी 354 (पैरा 12)
4. जिलुभाई नानभाई खाचर बनाम गुजरात राज्य, 1995 सप्प (1) एससीसी 596 (पैरा 13)
5. विद्या देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2020) 2 एससीसी 569 (पैरा 14)
6. हरियाणा राज्य बनाम मुकेश कुमार, (2011) 10 एससीसी 404 (पैरा 15)
7. सुखदत्त रात्रा बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2022) 7 एससीसी 508 (पैरा 16)

(माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विमलेश कुमार और श्री शिव राज सिंह तथा प्रतिवादियों के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजीव गुप्ता को सुना।
2. यह वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा जिला स्तरीय समिति द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.02.2020 से व्यथित होकर दायर की गई है, जिसका गठन शासनादेश दिनांक 12.05.2016 के अंतर्गत किया गया, इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका (सी) संख्या 29915 / 2019 (श्रीमती कन्यावती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित आदेश दिनांक 19.09.2019 में जारी निर्देशों के अनुसरण में किया गया था।
3. याचिकाकर्ता का कहना है कि वह खसरा संख्या 53, रकबा 0.0690 हेक्टेयर, ग्राम अखा, परगना- बलिया, तहसील- आंवला, जिला- बरेली में स्थित भूमि की स्वामी हैं, जिसे उन्होंने फतेह सिंह से विक्रय विलेख के माध्यम से खरीदा था (हालांकि, प्रतिउत्तर के संलग्नक आरए-1 के रूप में संलग्न विक्रय विलेख दिनांक 02.12.2009 के अवलोकन से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने यह भूमि श्रीमती उर्मिला देवी से खरीदी थी)। उपरोक्त विक्रय विलेख के आधार पर, उनका नाम राजस्व अभिलेखों में भूमिधर के रूप में हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ दर्ज किया गया था। उपरोक्त भूखंड के दक्षिण में एक चक रोड थी। याचिकाकर्ता का कहना है कि राजस्व अभिलेखों के अनुसार उक्त सड़क की चौड़ाई ढाई मीटर (8.25 फीट) थी और सड़क पहले से ही उस पर

निर्मित थी। इसके बाद सड़क का चौड़ीकरण किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता के अनुसार, पी०डब्ल्यू०डी० द्वारा बिना किसी प्रतिकर का भुगतान किए उसकी 0.033 हेक्टेयर भूमि का उपयोग किया गया है।

4. सड़क चौड़ीकरण के लिए भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही से संबंधित जानकारी प्राप्त करने हेतु लोक सूचना अधिकारी/कार्यकारी अधिकारी, पी०डब्ल्यू०डी० डिवीजन-बरेली के समक्ष एक आरटीआई आवेदन दायर किया गया था। इसके उत्तर में याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि भूमि अधिग्रहण से संबंधित कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है क्योंकि इस डिवीजन का गठन 7-8 वर्ष पूर्व हुआ था। इसके बाद, उन्होंने लगातार प्रत्यावेदन भेजकर दावा किया कि राजस्व अभिलेख में चक रोड की चौड़ाई 8.25 फीट दर्ज है जबकि सड़क का निर्माण 3 मीटर की चौड़ाई पर किया गया था। तत्पश्चात, भूमि अधिग्रहण किए बिना या भूमि स्वामियों को प्रतिकर दिए बिना सड़क को और अधिक चौड़ा कर दिया गया और उन्होंने सड़क चौड़ीकरण के लिए उपयोग की गई अपनी भूमि के लिए प्रतिकर की मांग की। जब उन्हें प्राधिकरण से कोई जवाब नहीं मिला, तो उन्होंने रिट याचिका (सी) संख्या 29915/2019 दायर की, जिसका निस्तारण जिला मजिस्ट्रेट-बरेली को शासनादेश दिनांक 12.05.2016 के अनुसार मामले को जिला स्तरीय समिति को भेजने के निर्देश के साथ किया गया, ताकि याचिकाकर्ता को प्रतिकर की पात्रता निर्धारित की जा सके। उपरोक्त निर्देशों के अनुपालन में, मामले को जिला स्तरीय समिति को भेजा गया। आदेश दिनांक 24.02.2020 द्वारा, जिला स्तरीय समिति ने याचिकाकर्ता के दावे को यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया कि सड़क मूल रूप से एक चक मार्ग थी जिस पर लगभग 25-30 वर्ष पहले 3 मीटर चौड़ी पक्की सड़क का निर्माण किया गया था और दोनों ओर 2.50 मीटर चौड़ी भूमि उपलब्ध थी। वर्ष 2012-15 में, उपलब्ध 1.25 मीटर चौड़ी भूमि का उपयोग करते हुए, किसी भी भूमिधारक की भूमि को प्रभावित किए बिना, उक्त सड़क को दोनों ओर से चौड़ा किया गया था। चूंकि याचिकाकर्ता की कोई भी भूमि सड़क चौड़ीकरण के उद्देश्य से अधिग्रहित नहीं की गई थी, इसलिए वह किसी भी प्रतिकर की पात्र नहीं है।

5. याचिकाकर्ता का दावा है कि राजस्व अभिलेख के अनुसार चक मार्ग की चौड़ाई मात्र 2.5 मीटर थी। इसलिए, सड़क निर्माण और चौड़ीकरण के लिए उपयोग की गई अतिरिक्त भूमि भूमिधरी भूमि है, अतः याचिकाकर्ता प्रतिकर की पात्र है। राज्य प्राधिकरण प्रतिकर का भुगतान किए बिना याचिकाकर्ता की भूमि का उपयोग नहीं कर सकते।

6. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि तीन मीटर चौड़ी सड़क का निर्माण 25-30 वर्ष पूर्व बिना किसी आपत्ति के किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ता, जिसने बाद में वर्ष 2019 में प्रश्नगत भूमि खरीदी, किसी भी प्रकार के प्रतिकर का दावा नहीं कर सकती। यह भी आरोप लगाया गया कि याचिकाकर्ता के विक्रय विलेख में ही उक्त भूखंड के दक्षिण में संपर्क मार्ग को याचिकाकर्ता द्वारा भूमि खरीदे जाने से पूर्व ही दर्शाया गया है। सड़क का चौड़ीकरण पी०डब्ल्यू०डी० द्वारा सड़क के दोनों ओर उपलब्ध भूमि पर बिना किसी भूमि अधिग्रहण के किया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता किसी भी प्रकार के प्रतिकर की पात्र नहीं है। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विक्रय विलेख में दिए गए स्थल मानचित्र पर भी भरोसा जताया है, जिसमें सड़क के अस्तित्व को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है।

7. पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, हमने मामले के अभिलेखों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है। अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मूलतः चक रोड पर, लगभग 20 वर्ष पूर्व, याचिकाकर्ता द्वारा खरीदी गई भूमि से तीन मीटर पहले, बिना किसी भूमि अधिग्रहण के, चीनी उद्योग और गन्ना विकास विभाग द्वारा पक्का रोड का निर्माण किया गया था। इसके बाद, पी०डब्ल्यू०डी० द्वारा 2011 और 2014 के बीच उक्त सड़क को और चौड़ा किया गया था और तहसीलदार की आख्या दिनांक 05.02.2020 से यह स्पष्ट है कि पी०डब्ल्यू०डी० द्वारा सड़क को चौड़ा करने के कारण, 2014 में याचिकाकर्ता की 0.033 हेक्टेयर भूमि, गाटा संख्या 54 से प्रभावित हुई थी। अतः, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की उक्त प्रभावित भूमि का उपयोग पी०डब्ल्यू०डी० द्वारा बिना किसी अधिग्रहण के और याचिकाकर्ता को कोई प्रतिकर दिए बिना किया गया था, या यह भी स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता या उसके पूर्वजों ने सड़क के उपयोग के लिए कभी सहमति नहीं दी थी।

8. तहसीलदार-आंवला द्वारा दी गई आख्या दिनांक 05.02.2020 के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

"तहसीलदार आंवला द्वारा उपलब्ध करायी गयी आख्या दिनांक 05.02.2020 में अंकित किया गया है कि "ग्राम अखा, परगना बल्लिया तहसील आंवला जिला बरेली में स्थित भूमि गाटा संख्या 53 रकबा 0.069 वर्तमान अभिलेख खतौनी खाता संख्या 54 पर कन्यावती पत्नी महीपाल के नाम बतौर संकमणीय भूमिधर अंकित है। गाटा सं 53 वर्तमान में चल रही सड़क अखा गैनी मार्ग पर स्थित है। उक्त गाटा सं के सम्बन्ध में चाही गयी आख्या बिन्दुवार निम्नवत् है-

1. जोत चकबन्दी आकार पत्र 45 व 41 के खाता संख्या पर पटे सिंह पुत्र गुपाल सिंह निवासी ग्राम वारिद हाल निवासी खुदसारी जिला एटा का नाम श्रेणी-1 का भूमिधर अंकित है। प्रार्थिनी कन्यावती पत्नी महीपाल सिंह का नाम आधार वर्ष खतौनी आकार पत्र- 45 में अंकित नहीं है। साक्ष्य हेतु सी.एच.-45 का उद्वरण संलग्न है।

2. प्रार्थिनी का नाम आकार पत्र 45 में अंकित नहीं है।

3. कन्यावती पत्नी महीपाल सिंह का नाम अभिलेख खतौनी में सन् फसली 1416 द्वारा बैनामा अंकित है।

4. अखा गैनी मार्ग गन्ना विभाग द्वारा लगभग 20 वर्ष पूर्व बनवायी गयी है।

5. पी०डब्ल्यू०डी० द्वारा उक्त मार्ग का 2014 के आसपास चौड़ीकरण किया जाना बताया गया है।

6. प्रार्थिनी कन्यावती पत्नी महीपाल के उक्त गाटा संख्या में $3.70 \times 90 = 0.033$ हे० रकबा सड़क में (समाहित) प्रभावित है।"

9. भारत के संविधान के अनुच्छेद 300क के अंतर्गत संपत्ति के अधिकार को संरक्षण प्राप्त है। अतः, विधि की सम्यक प्रक्रिया के बिना किसी भी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता। विधिवत उचित प्रतिकर दिए बिना किसी व्यक्ति की भूमि का अधिग्रहण नहीं किया जा सकता। विधिवत विधिक प्रक्रिया का पालन किए बिना और प्रतिकर दिए बिना किसी नागरिक की भूमि का उपयोग करने के लिए निहित सहमति

की कोई अवधारणा नहीं है। विधिवत उचित प्रतिकर देकर किसी नागरिक की संपत्ति का सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अधिग्रहण किया जा सकता है।

10. **हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम डेरियस शापुर चेनाई: (2005) 7 एससीसी 627** में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं:

“6. ... संविधान के अनुच्छेद 300-क में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, राज्य अपनी “अतिरिक्त अधिग्रहण” की शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी व्यक्ति के संपत्ति के अधिकार में हस्तक्षेप कर सकता है, लेकिन यह सार्वजनिक उद्देश्य के लिए होना चाहिए और इसके लिए उचित प्रतिकर दिया जाना चाहिए।”

11. **एन. पद्मम्मा बनाम एस. रामकृष्ण रेड्डी : (2008) 15 एससीसी 517** में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं:

“21. यदि संपत्ति का अधिकार मानव अधिकार होने के साथ-साथ संवैधानिक अधिकार भी है, तो इसे विधि के अनुसार ही छीना जा सकता है। संविधान का अनुच्छेद 300-क ऐसे अधिकारों की रक्षा करता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-क के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, ऐसे अधिकार को छीनने का प्रयास करने वाले अधिनियम के प्रावधानों की कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए।”

12. **दिल्ली एयरटेक सर्विसेज (पी) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [दिल्ली एयरटेक सर्विसेज (पी) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2011) 9 एससीसी 354]** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

“30. सभी विधिशास्त्र और विभिन्न राजनीतिक विचारकों द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि संपत्ति का कुछ अधिकार सरकार के अत्याचार और आर्थिक उत्पीड़न के विरुद्ध एक अनिवार्य सुरक्षा कवच है। जेफरसन का मत था कि संपत्ति के समर्थन के बिना स्वतंत्रता लंबे समय तक कायम नहीं रह सकती। जॉन एडम्स का मत था, “संपत्ति सुरक्षित होनी चाहिए, अन्यथा स्वतंत्रता कायम नहीं रह सकती।” वास्तव में, यह मत कि संपत्ति स्वयं वह आधारशिला है जिसे संरक्षित किया जाना चाहिए यदि अन्य संवैधानिक मूल्यों को फलने-फूलने देना है, राजनीतिक विचारकों और न्यायविदों के बीच सर्वसम्मत है।”

13. **जिलुभाई नानभाई खाचर बनाम गुजरात राज्य : 1995 सप् (1) एससीसी 596** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

“48. ... दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 300-क मात्र राज्य की शक्तियों को सीमित करता है कि किसी भी व्यक्ति को विधि के अधिकार के बिना उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता। विधि की स्वीकृति के बिना कोई भी वंचित करना संभव नहीं है। किसी अन्य तरीके से वंचित करना अनुच्छेद 300-क के अंतर्गत अधिग्रहण या कब्जा लेना नहीं है। दूसरे शब्दों में, यदि कोई विधि नहीं है, तो कोई वंचित करना भी नहीं है।”

14. विद्या देवी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य: (2020) 2 एससीसी 569 में, सर्वोच्च न्यायालय ने किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति पर उसके बहुमूल्य अधिकारों से वंचित करने के लिए उसकी मौखिक सहमति की अवधारणा को स्वीकार नहीं किया और यह देखा गया कि वैध प्रतिफल के भुगतान के बिना भूमि का ऐसा उपयोग संवैधानिक तंत्र द्वारा स्वीकृत नहीं है।

“12.8. राज्य का यह दावा कि अपीलकर्ता या उसके पूर्वजों ने अधिग्रहण के लिए “मौखिक रूप से” सहमति दी थी, पूरी तरह निराधार है। हमें राज्य द्वारा अपीलकर्ता को उसकी संपत्ति से जबरन वंचित करने में पूर्णतः अधिकार और विधिक स्वीकृति का अभाव दिखता है।

12.9. विधि के शासन द्वारा शासित लोकतांत्रिक व्यवस्था में, राज्य विधि की अनुमति के बिना किसी नागरिक को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं कर सकता। इस संबंध में इस न्यायालय के तुकाराम काना जोशी बनाम एमआईडीसी [तुकाराम काना जोशी बनाम एमआईडीसी, (2013) 1 एससीसी 353 : (2013) 1 एससीसी (सिविल) 491] मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि राज्य को अधिग्रहण, मांग या किसी अन्य अनुमत वैधानिक प्रक्रिया का पालन करना होगा। विधि के शासन द्वारा शासित कल्याणकारी राज्य होने के नाते, राज्य स्वयं को संविधान द्वारा निर्धारित अधिकारों से अधिक दर्जा नहीं दे सकता।”

15. हरियाणा राज्य बनाम मुकेश कुमार : (2011) 10 एससीसी 404 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संपत्ति का अधिकार अब न मात्र संवैधानिक या वैधानिक अधिकार है, बल्कि एक मानवाधिकार भी है। मानवाधिकारों को व्यक्तिगत अधिकारों जैसे आश्रय, आजीविका, स्वास्थ्य, रोजगार आदि के अधिकार के दायरे में रखा गया है। मानवाधिकारों ने एक बहुआयामी आयाम प्राप्त कर लिया है।

16. सुख दत्त रत्ना बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2022) 7 एससीसी 508 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि नागरिकों की भूमि का अधिग्रहण विधिवत प्रक्रिया का पालन किए बिना किया गया है, तो यह एक स्वतः अधिग्रहण माना जाएगा। इस प्रकार, राज्य प्राधिकरण उन नागरिकों को प्रतिकर देने के लिए उत्तरदायी हैं जिनकी भूमि का उपयोग अधिग्रहण के बिना किया गया है, क्योंकि यह लागू विधि के प्रासंगिक प्रावधानों के अंतर्गत अधिग्रहित मानी जाएगी। सर्वोच्च न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणी ध्यान देने योग्य है:

“26. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, संविधान के अनुच्छेद 136 और 142 के अंतर्गत इस न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार को देखते हुए, राज्य को निर्देश दिया जाता है कि वह संबंधित भूमि को स्वतः अधिग्रहित मानकर अपीलकर्ताओं को उचित प्रतिकर उसी शर्तों पर वितरित करे, जैसा कि संदर्भ न्यायालय के आदेश दिनांक 4-10-2005 में भूमि संदर्भ याचिका संख्या 10-एलएसी/ 4 / 2004 (और समेकित मामले) में निर्धारित है। प्रतिवादी राज्य को निर्देश दिया जाता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि उपयुक्त भूमि अधिग्रहण कलेक्टर प्रतिकर की गणना करे और आज से चार महीने के भीतर अपीलकर्ताओं को इसका वितरण करे। अपीलकर्ता प्रतिकर के परिणामी लाभों और 16-10-2001 (अर्थात् अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने

की तिथि) से लेकर आक्षेपित निर्णय की तिथि तक विधि के अंतर्गत देय सभी राशियों पर ब्याज के भी पात्र होंगे [सुख दत्त रत्ना बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, 2013 एससीसी ऑनलाइन एचपी 3773] अर्थात् 12-9-2013"

17. अतः, उपरोक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं बल्कि संवैधानिक अधिकार है, जिसे अविभाज्य मानवाधिकारों के समान मान्यता प्राप्त है। अतः, किसी भी व्यक्ति को विधि के अनुसार ही उसकी संपत्ति से वंचित किया जा सकता है और यदि किसी नागरिक की भूमि राज्य अधिकारियों द्वारा उचित अधिग्रहण के बिना अधिग्रहित कर ली गई है, तो यह विधि के विरुद्ध कार्रवाई मानी जाएगी। अतः, जिस व्यक्ति की संपत्ति का उपयोग विधि के विरुद्ध किया गया है, वह राज्य द्वारा संपत्ति के उपयोग की तिथि पर लागू विधि के प्रावधानों के अनुसार उचित प्रतिकर का पात्र है।

18. राज्य द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने राज्य द्वारा उपयोग की गई अपनी भूमि के प्रतिकर की मांग करते हुए न्यायालय में याचिका दायर करने में विलंब और लापरवाही बरती है। सर्वोच्च न्यायालय ने **विद्या देवी (उपरोक्त)** मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि निरंतर वाद के कारण से या यदि परिस्थितियाँ न्यायालय की न्यायिक चेतना को झकझोर देती हैं, तो विलंब और लापरवाही का मुद्दा नहीं उठाया जा सकता। यह भी कहा गया है कि न्यायालयों को वास्तविक न्याय करने के लिए अपने संवैधानिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने हेतु कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। विद्या देवी (उपरोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणी प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

"12.12. राज्य द्वारा अपीलकर्ता के न्यायालय में याचिका दायर करने में विलंब और लापरवाही का तर्क भी खारिज किया जा सकता है। निरंतर वाद-विवाद के मामले में या यदि परिस्थितियाँ न्यायालय के न्यायिक विवेक को झकझोर देती हैं, तो विलंब और लापरवाही का मुद्दा नहीं उठाया जा सकता। विलंब की क्षमा न्यायिक विवेक का विषय है, जिसका प्रयोग मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विवेकपूर्ण और उचित रूप से किया जाना चाहिए। यह मौलिक अधिकारों के उल्लंघन, मांगे गए अनुतोष और विलंब कब और कैसे हुई, इस पर निर्भर करेगा। न्यायालयों को वास्तविक न्याय करने के लिए अपने संवैधानिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने हेतु कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है।"

19. अतः, इस मामले के तथ्यों से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की 0.033 हेक्टेयर भूमि का उपयोग राज्य अधिकारियों द्वारा विधिवत अधिकार के बिना और विधिवत भूमि अधिग्रहण किए बिना किया गया था। निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता उक्त संपत्ति की स्वामी थी क्योंकि उसने वर्ष 2009 में भूमि खरीदी थी। अभिलेखों से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता उक्त संपत्ति से वंचित किए जाने की प्रक्रिया जानने के लिए लगातार प्रयासरत थी। उसने सूचना का अधिकार (आरटीआई) आवेदन दायर किए और उसे सूचित किया गया कि विधिवत उचित अधिग्रहण किए बिना उसे संपत्ति से वंचित किया गया है। उसने रिट याचिका (सी) संख्या 29915/2019 दायर करके इस न्यायालय का रुख किया, जिसका निस्तारण 19.09.2019 को इस निर्देश के साथ किया गया कि उसके मामले का निर्धारण जिला स्तरीय समिति द्वारा शासनादेश दिनांक 12.05.2016 के अनुसार किया जाए।

हालांकि आक्षेपित आदेश में राज्य अधिकारियों द्वारा यह स्वीकार किया गया कि याचिकाकर्ता की 0.033 हेक्टेयर भूमि, पी०डब्ल्यू०डी० द्वारा वर्ष 2014 में किए गए सड़क चौड़ीकरण कार्य से प्रभावित हुई है, जिसके लिए न तो भूमि का अधिग्रहण किया गया और न ही कोई प्रतिकर दिया गया है। अतः, इस न्यायालय की राय में याचिकाकर्ता प्रतिकर की पात्र है, जिसका निर्धारण भूमि अधिग्रहण, पुर्नवासन एवं पुनःस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार, 2013 के प्रावधानों के अनुसार किया जाना आवश्यक है।

20. अतः, चूंकि याचिकाकर्ता की भूमि का उपयोग उचित अधिग्रहण के बिना किया गया है, इसलिए हम विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी को प्रतिकर की राशि निर्धारित करने या उसके भुगतान की सिफारिश करने का निर्देश नहीं दे सकते। इस संदर्भ में, हम मामले को जिला स्तरीय समिति को वापस भेजते हैं ताकि वह याचिकाकर्ता की 0.033 हेक्टेयर भूमि के संबंध में प्रतिकर का निर्धारण करे, जिसका उपयोग अधिनियम, 2013 के प्रावधानों के अनुसार सड़क चौड़ीकरण के दौरान अधिग्रहण के बिना किया गया था। इस प्रकार निर्धारित प्रतिकर प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा याचिकाकर्ता को चार सप्ताह की अवधि के भीतर उक्त अधिनियम में निर्धारित ब्याज सहित भुगतान किया जाएगा।

21. याचिकाकर्ता की भूमि का उपयोग विधि के अधिकार के बिना करने के राज्य अधिकारियों के कृत्य की हम निंदा करते हैं, लेकिन हम विधि की स्वीकृति के बिना भूमि का उपयोग करने वाले राज्य अधिकारियों के विरुद्ध दंड लगाने से परहेज कर रहे हैं। राज्य अधिकारियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि वे नागरिकों की भूमि का उपयोग विधि के उचित अधिकार के बिना या अधिग्रहण की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना न करें, अन्यथा ऐसे मामलों में, जो अधिकारी विधि की उचित प्रक्रिया के बिना भूमि का उपयोग करने के लिए उत्तरदायी पाए जाएंगे, उन्हें व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जाएगा और न्यायालय को अधिकारियों के ऐसे कृत्यों के लिए उन पर भारी जुर्माना लगाना होगा, जिसकी वसूली उनके निजी खातों से की जाएगी।

22. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान रिट याचिका की **अनुमति** दी जाती है।
